• आधुनिक यूरोप का इतिहास

आधुनिक यूरोप का इतिहास

(सन् १७८९-१९६५ ई० तक)

लेखक

सी० डी० हेज़न

अनुवादक

डा० सत्यनारायण दुबे

एम० ए० (इतिहास), एम० ए० (राजनीति), पी-एच० डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, राजनीति विभाग

आगरा कॉलेज, आगरा

संशोधित संस्करण

१९७१

रतन प्रकाशन मन्दिर

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

प्रधान कार्यालय : अस्पताल मार्ग, आगरा-३

मूल्य : सोलह रुपये मात्र

प्रकाशक : रतन प्रकाशन मन्दिर

प्रधान कार्यालय : हॉस्पीटल रोड, आगरा-३

शाखाएँ : न्यू मार्केट, राजामण्डी, आगरा-२ ☆ ५६९३, नई सड़क, दिल्ली-६ ☆ गोराकुण्ड, इन्दौर ☆ धामानी मार्केट, चौड़ा रास्ता, जयपुर ☆ मैस्टन रोड, कानपुर ☆ गूँगे नवाब पार्क, अमीनाबाद लखनऊ ☆ वैस्टर्न कचहरी रोड, मेरठ ☆ खजांची रोड, पटना-४ ।

प्रेमचन्द जैन द्वारा
प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस, १/११, महात्मा गाँधी मार्ग, आगरा-२ में मुद्रित

संशोधित संस्करण का प्राक्कथन

पुस्तक का संशोधित संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष है। इस संस्करण में अनुवाद को पहले से अधिक सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है। विशेष बात यह है कि पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता लाने के लिये सर्वत्र केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित शब्दावली का ही प्रयोग किया गया है। प्रथम संस्करण में यत्र-तत्र प्रूफ आदि की कुछ अशुद्धियाँ रह गयी थीं उन्हें भी दूर कर दिया गया है।

आशा है कि यह संस्करण पाठकों को अधिक पसन्द आयेगा।

—अनुवादक

प्रकाशक की ओर से

इस ग्रन्थ के अनुवाद का कार्य लगभग ६ वर्ष पूर्व आगरा कॉलिज के डॉ० सत्यनारायण दुबे ने आरम्भ किया था। वे केवल २० अध्यायों का अनुवाद पूरा कर पाए थे कि अकस्मात बीमार पड़ गए और कार्य रुक गया। अनेक अध्यापक महानुभावों और विद्यार्थियों के आग्रह पर हमने आगरा विश्वविद्यालय के बी० ए० प्रथम भाग के पाठ्यक्रमानुसार १६ अध्यायों का संस्करण प्रकाशित कर दिया। इसके बाद पं० गंगासहाय जी उपाध्याय, एम० ए०, एल० टी०, प्राध्यापक राजकीय इण्टर कॉलिज, मैनपुरी ने कृपा करके इस कार्य में सहयोग दिया। उन्होंने बड़े परिश्रम से कार्य करके अनुवाद को पूरा किया। साथ ही साथ उन्होंने पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से १९३७ के बाद के यूरोपीय इतिहास के सम्बन्ध में चार अध्याय अपनी ओर से लिखकर जोड़ दिए। जब डॉ० दुबे स्वस्थ हो गए तो उन्होंने सम्पूर्ण पांडुलिपि को आद्योपान्त पढ़ा और आवश्यक संशोधन कर दिए। फलस्वरूप अब सम्पूर्ण अनुवाद एक खण्ड में पाठकों के सामने प्रस्तुत है। पाठकों को इस प्रकाशन के लिए इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी उसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

हम अपने अनुवादक महोदय के अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने अनेक बाधाओं के पश्चात् भी इस कार्य को पूरा करके हमारा उत्साहवर्द्धन किया।

—प्रकाशक

प्राक्कथन

यूरोपीय युद्ध ने सभी विचारशील व्यक्तियों के मन में यह बात गहराई के साथ बिठला दी है कि आधुनिक यूरोप के इतिहास का ज्ञान जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है। बिना उसके ज्ञान के कोई व्यक्ति इस युद्ध को जन्म देने वाली शक्तियों के महत्त्व को, इसमें उलझी हुई समस्याओं को, मानव इतिहास के इस महानतम संकट के स्वभाव को नहीं समझ सकता, और न समझना प्रारम्भ ही कर सकता है। इस भयंकर संघर्ष के फलस्वरूप विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में और प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन होना अनिवार्य है, और यह परिवर्तन अत्यन्त गम्भीर हो सकता है। किसी भी स्वतन्त्र देश का नागरिक, जो अपनी नागरिकता से सम्बद्ध कर्तव्यों को ईमानदारी के साथ निभाना चाहता है और आचरण के लिए वैयक्तिक प्रभाव की पूर्ण सीमा तक अपनी सरकार के स्वभाव और आचरण के लिए जवाबदेह मानता है, यह नहीं कह सकता कि मैं यूरोप के इतिहास से अपरिचित हूँ अथवा उसकी मुझे कोई परवाह नहीं है, जो ऐसा कहेगा उसके विकास और प्रगति की प्रक्रिया कुंठित हुए बिना नहीं रह सकती।

यदि उसे अपने राष्ट्र की विरासत और परम्पराओं की, उसकी विशिष्ट और आधारभूत नीति और सिद्धान्तों की परवाह है तो उसे यूरोप में जो कुछ होता है उसकी ओर अत्यधिक गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना पड़ेगा। यूरोप में जो घटनाएँ घटती हैं वे हमारे लिए पराई हैं, क्योंकि यूरोप और अमेरिका का भाग्य एक दूसरे के साथ ऐसा जुड़ा हुआ है कि पृथक नहीं किया जा सकता।

मेरी राय में आधुनिक जगत का यह सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है। अठारहवीं शताब्दी में लाफायेन ने, जो अमेरिका और फ्रांस दोनों देशों का भक्त और दो क्रांतियों का नायक था, इस तथ्य को अपने जीवन में भली-भाँति चरितार्थ कर दिखाया था। लाफायेत के पुस्तकालय में दो महत्त्वपूर्ण लेख्य अमरीका की स्वाधीनता की घोषणा और फ्रांस की मानव अधिकारों की घोषणा, साथ-साथ टँगे हुए थे और उनका इस प्रकार टाँगा जाना सर्वथा उपयुक्त था। इन दोनों घोप-णाओं के परिणाम विश्व के लिए गम्भीर हुए हैं क्योंकि अगणित लोगों ने इन सिद्धान्तों की विजय के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है, और अगणित लोगों ने इसलिए अपने प्राण गँवाए है कि इनकी जीत न हो।

स्वतंत्रता के लिए यह संघर्ष ही मूलत: आधुनिक यूरोप के इतिहास का ताना-बाना है, इस संघर्ष के गम्भीरतम उतार-चढ़ाव का दिग्दर्शन कराने का ही मैंने इस ग्रन्थ में प्रयत्न किया है। इस जद्दोजहद का इतिहास बहुत ही पेचीदा रहा है और समस्या तथा उनके हल में अनेक अन्य तत्व भी सम्मिलित हो गए हैं। उनको भी मैंने उपयुक्त स्थान दिया है, किन्तु उन्हें सदैव मुख्य कथानक के अधीन ही रखा है।

कहानी की पृष्ठभूमि को समझाने के लिए प्रारम्भिक अध्यायों में मैंने अठारहवीं शताब्दी की विशेषताओं अर्थात् यूरोप तथा फ्रांस की पुरातन व्यवस्था का वर्णन किया है। फ्रांसीसी-क्रान्ति ने इस व्यवस्था को डटकर चिनौती दी और बुरी तरह झकझोर डाला। मैंने इस क्रान्ति की भावना और अभिप्राय को स्पष्ट करने तथा उसकी प्रमुख घटनाओं और नायकों का चित्रण करने की चेष्टा की है। क्रान्ति ने यूरोप से टक्कर ली, और एक यूरोपव्यापी क्रान्ति कर दी जिसने अनेक उतार-चढ़ाव और हारें, जीतें देखीं और विभिन्न देशों में विभिन्न समस्याओं को जन्म दिया। नेपोलियन की, जो कि अपने विषय में कहा करता था कि मैं "क्रान्ति" हूँ और मैंने "क्रान्ति का बध" कर दिया है, आधीनता में इस संघर्ष ने विश्वव्यापी युद्ध का रूप धारण कर लिया। उसके इन कथनों में से एक भी सही न था, फिर भी दोनों में सत्य का अंश। मैंने नेपोलियन की व्यवस्था की इस द्वैधता, पुरातन व्यवस्था तथा नवीन व्यवस्था के इस असम्भव समागम को भी स्पष्ट करने का यत्न किया है।

नेपोलियन के पुरातन व्यवस्था को आंशिक रूप में परास्त कर दिया था और जिन्होंने स्वयं उसे परास्त करके सेंट हेलीना में भेज दिया वे उस व्यवस्था को और भी अधिक परास्त करने के इच्छुक थे। कुछ समय के लिए वे सफल रहे, किन्तु अन्त में विश्व में व्याप्त नई भावना इतनी शक्तिशाली सिद्ध हुई कि वे उसकी बाढ़ को रोकने में असमर्थ रहे और अन्त में १८४८ की क्रान्तियों ने उनको तथा उनके काम को बहुत कुछ जर्जरित कर दिया। जो लोग केवल सतह को देख कर ही सन्तोष कर लेते हैं उनकी दृष्टि में १८४८ की क्रान्तियाँ क्षणिक थीं, किन्तु जो गहराई में उत्तर कर देखते हैं उनकी निगाह में वे कदापि क्षणिक नहीं थीं।

इस ज्वार-भाटे ने ही अठारहवीं शताब्दी से अब तक यूरोप के इतिहास को लय प्रदान की है। नवीनता ने प्रगति की है, यह तो निर्विवाद है, किन्तु उसकी प्रगति विभिन्न देशों में असमान रही है, जैसा कि स्वाभाविक और अनिवार्य था क्योंकि यूरोप के देश चरित्र, विकास की अवस्था और दृष्टिकोण में एक दूसरे से भिन्न थे। यह सर्वदलीय संघर्ष अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।

स्वतन्त्रता के इस संघर्ष के अनेक पहलू रहे हैं। राष्ट्रीयता की भावना, जो कि उन्नीसवीं शताब्दी की प्रमुख विशेषता थी, अनेक देशों में स्वतन्त्रता की इस

अभिलाषा का ही एक रूप रही है, किन्तु अन्य देशों में इसके मूल में राष्ट्रीय महानता और शक्ति की इच्छा के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहा। मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि विभिन्न देशों में इस भावना ने किस प्रकार भिन्न-भिन्न रूपों में कार्य किया।

जहाँ आर्थिक और सामाजिक तत्त्वों ने राष्ट्रीय नीति के निर्माण में योग दिया है, वहाँ मैंने उनका भी वर्णन किया है, उदाहरण के लिए क्रान्ति से पहले फ्रांस की स्थिति, इंगलैंड में मुक्त व्यापार का आन्दोलन, रूस में अर्द्धदासता (सर्फडम) का उन्मूलन, जर्मनी में त्सोलवेराइन, प्रशुल्क नीति, श्रमिकों से सम्बन्ध में कानून तथा समाज सुधार के अन्य नियम जो कि आधुनिक जगत की विशेषता हैं।

पिछली शताब्दि के इतिहास के विषय में मैंने अपनी पुस्तक **"यूरोप सिन्स १८१५"** (१८१५ के बाद का यूरोप) का खुलकर प्रयोग किया है। पाठ में स्थान-स्थान पर जो चित्रादि दिए गए हैं उनके ऐतिहासिक महत्त्व को ध्यान में रखकर चयन किया गया है, और मुझे आशा है कि उनके घटनाओं तथा व्यक्तियों के यथार्थ रूप को समझने में सहायता मिलेगी। मैं डॉ० अर्नेट एफ० हंडरसन तथा उनके प्रकाशक मेसर्स जी० पी० पुटनम्स संघ का आभारी हूँ, क्योंकि उन्होंने मुझे डॉ० हंडरसन की प्रसिद्ध पुस्तक **सिम्बल एण्ड सेटाइर इन द फ्रेंच रिवोलूशन** में से अनेक चित्रों का प्रयोग करने की अनुज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त मैं मंसेचूसेटट्स स्थित नोर्थम्पटन लुई स्टेट्सन फुलर का भी जिन्होंने अनुक्रमणिका तैयार की है, बहुत आभारी हूँ।

सी० डी० एच०

कोलम्बिया विश्वविद्यालय,
जनवरी, १९१७

परिवर्द्धित तथा संशोधित संस्करण का प्राक्कथन

मैंने इन संस्करण को परिवर्द्धित करके अद्यावत कर दिया है। ऐसा करने के लिए मुझे विश्व युद्ध से सम्बन्धित अध्यायों में संशोधन करना पड़ा और यूरोप के विभिन्न देशों का शान्ति की स्थापना से लेकर अब तक का इतिहास लिखना पड़ा। परवर्ती काल का वर्णन करते समय मैंने देशों का इतिहास अधिकांशतः अलग-अलग करके लिखा है, इससे वर्णन को स्पष्ट बनाने में सहायता मिली है, और साथ ही विभिन्न देशों की विशेषताओं और प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने में भी सरलता रही है। वर्तमान ग्रन्थ में १९३७ तक के इतिहास का वर्णन है।

मई, १९३७ सी० डी० एच

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

अध्याय १

यूरोप की पुरातन व्यवस्था

फ्रांस की क्रान्ति का महत्त्व

जिस युग में हम रह रहे हैं, वह अत्यधिक उथल-पुथल का युग है। जो इस युग को समझना चाहता है, उसके लिये फ्रांसीसी क्रान्ति के इतिहास से परिचित होना आवश्यक है, क्योंकि उस क्रांति के समय से फ्रांस में ही नहीं बल्कि सारे संसार में एक नए युग का आरम्भ हुआ। १७८९ से १८१५ तक का समय क्रान्ति और नेपोलियन का युग था। इस काल में संसार में एक ऐसा गम्भीर और कठिन परिवर्तन हुआ जिसका उदाहरण इतिहास में दूसरा नहीं है। उसके महत्त्व को समझने के लिये आवश्यक है कि हम उसकी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करलें और यह देखलें कि १७८९ में यूरोप की क्या दशा थी। यहाँ पर हम उस पृष्ठभूमि का सविस्तार तथा सन्तोषजनक ढंग से अध्ययन नहीं कर सकते। केवल एक मोटी-सी रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं।

१७८९ का यूरोप

सन् १७८९ के यूरोप पर यदि दृष्टिपात करें तो हमें एक बात स्पष्ट रूप से देखने को मिलेगी। उस समय यूरोप में एकता का पूर्ण अभाव था। पूरे महाद्वीप में छोटे-बड़े अनेक प्रकार के राज्य थे, और उनकी सरकारें भी विभिन्न ढंग की थी। जो राज्य चर्च के अधीन थे उनका रूप धर्म-सापेक्ष था, अर्थात् ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर उसकी शासन-व्यवस्था चलती थी। टर्की में अत्याचार-पूर्ण निरंकुशवाद तथा स्वेच्छाचारिता का बोलबाला था। रूस, आस्ट्रिया, फ्रांस और प्रुशिया में भी निरंकुश राजा शासन करते थे। इंगलैंड में सांविधानिक राजतन्त्र था। साथ ही साथ अनेक प्रकार के गणराज्य भी थे। हालैंड और स्विट्जरलैंड में संघात्मक गणराज्य थे; पोलैंड के गणराज्य का प्रमुख निर्वाचित राजा होता था। वेसिन, जिनेवा तथा पवित्र रोमन साम्राज्य के स्वतंत्र नगरों में अभिजाति-तंत्रीय गणतंत्र व्यवस्था विद्यमान थी।

इंगलैंड के इतिहास की महत्त्वपूर्ण शताब्दी

इन राज्यों में से इंगलैंड फ्रांस का सबसे कट्टर शत्रु था। इस पूरे युग में उसने फ्रांस तथा उसके विचारों एवं आदर्शों का डट कर विरोध किया। इसलिए हमें पहले इंगलैंड का वर्णन करना आवश्यक है। उस समय वह एक प्रथम श्रेणी का व्यापारिक और औपनिवेशक साम्राज्य था। उस साम्राज्य का निर्माण और विकास धीरे-धीरे और लम्बे काल में हुआ था, और अठाहरवीं शताब्दी में वह महान् परिवर्तनों में होकर गुजर चुका था। वास्तव में वह शताब्दी इंगलैंड के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उस काल में देश के जीवन में तीन महान् परिवर्तन हुए, जिन्होंने उसके राष्ट्रीय जीवन और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को एक नई दिशा में मोड़ दिया और उन्हें एक ऐसा रूप तथा प्रवृत्ति प्रदान की, जो आज भी देखने को मिलती है। विकास की इन्हीं तीन धाराओं ने आधुनिक इंगलैंड का निर्माण किया है। पहला महत्त्वपूर्ण परि-वर्तन यह था कि इस काल में इंगलैंड का कनाडा और भारत जैसे विशाल भू-खण्डों पर प्रभुत्व स्थापित हुआ; उसके व्यापारिक साम्राज्य के ये ही सबसे महत्त्व-पूर्ण अंग थे। दूसरे, देश में संसदीय शासन-प्रणाली की स्थापना हुई, जिसका अर्थ यह था कि शासन-सत्ता राजवंश के हाथ से निकल कर जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में आ गई थी और संसद का राजा पर असंदिग्ध प्रभुत्व स्थापित हो गया था। तीसरे, इसी युग में औद्योगिक क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। पुरानी दस्तकारियों पर अवलम्बित उद्योग व्यवस्था समाप्त होने लगी और उसके स्थान पर बड़े-बड़े कल-कार-खाने स्थापित हुए, जिनमें बड़े पैमाने पर सस्ता माल उत्पन्न होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान में इसी क्रान्ति ने इंगलैंड को संसार का मुख्य औद्योगिक राष्ट्र बना दिया।

हनोवर वंश का राज्यारोहण

इंगलैंड में संसदीय शासन-प्रणाली का विकास बहुत पहले से होता आया था। किन्तु १७१४ ई० में जब हनोवर राजवंश सिंहासन पर आया तब से विकास की यह गति अधिक तीव्र हो गई। राज्य तथा संसद के बीच पहले से ही प्रभुत्व के लिए संघर्ष चलता आया था। सत्रहवीं शताब्दी में स्टुअर्ट राजाओं ने राजतंत्र को सर्व-शक्तिवान बनाने का प्रयत्न किया; इसलिए उस संघर्ष ने उग्र रूप धारण कर लिया। परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर अठारहवीं शताब्दी में संसद की महत्त्वपूर्ण विजय हुई और राजा का राज्य में प्रमुख स्थान, जैसा कि यूरोप के अन्य राज्यों में था, न रहा। वास्तविक सत्ता संसद ने हस्तगत कर ली, और राजा नाम-मात्र के, लिए रह गया।

सन् १७०१ ई० में संसद ने एक कानून बनाया, जिसके अनुसार तत्कालीन राजवंश के सीधे तथा वैध उत्तराधिकारी के अधिकार को समाप्त कर दिया गया क्योंकि वह कैथोलिक धर्म को मानने वाला था, और उसके स्थान पर हनोवर के शासक जार्ज को सिंहासन पर बिठला दिया गया, क्योंकि वह प्रोटेस्टेंट था। इस प्रकार राजवंश की पुरानी शाखा हट गई और उसके स्थान पर छोटी शाखा का अधिकार हो गया। वास्तव में यह कानून उत्तराधिकार के उन साधारण नियमों के विरुद्ध था जो राजतन्त्रीय व्यवस्था में सर्वत्र पाये जाते हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि संसद की इच्छा अधिक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली थी, और राजा की

पद एक प्रकार से निर्वाचन पर अवलम्बित हो गया। इस कानून के और भी महत्त्व-पूर्ण परिणाम हुए।

सन् १७१४ ई० में इंगलैंड के सिंहासन पर बैठने के समय जार्ज प्रथम की अवस्था ५४ वर्ष थी। वह जर्मन था, और राज्यारोहण के बाद भी एक जर्मन राजकुमार के रूप में कार्य करता रहा। अपने नये राज्य की अपेक्षा उसे अपने हनोवर के छोटे से राज्य की अधिक चिन्ता थी। वह अँग्रेजी भाषा का एक शब्द भी नहीं समझता था और न उसके मंत्रियों को जर्मन आती थी। इसलिए जब उसे उनसे बात करनी पड़ती तो लैटिन भाषा का प्रयोग करना पड़ता था। जार्ज प्रथम ने १७१४ से १७१७ तक शासन किया। उसके बाद उसका पुत्र जार्ज द्वितीय सिंहासन पर बैठा। उसने १७६० तक राज्य किया। यद्यपि उसे अँग्रेजी आती थी; किन्तु उसके बोलने का ढंग बुरा था और अपने पिता की भाँति वह भी ब्रिटेन के साम्राज्य की अपेक्षा जर्मनी की अपनी छोटी-सी जागीर में अधिक दिलचस्पी लेता था।

प्रारम्भिक हनोवर राजा

हनोवर वंश के पहले दो राजाओं (जार्ज प्रथम और जार्ज द्वितीय) को इंगलैंड से केवल इसीलिए दिलचस्पी थी कि वहाँ से उन्हें धन मिलता था; इसी-लिए राज-काज का काम उन्होंने अपने मंत्रियों के ही ऊपर छोड़ दिया और मंत्रियों की उन बैठकों में जाना तक बन्द कर दिया, जिनमें नीति-सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय होता था। ४६ वर्ष तक ही क्रम जारी रहा। परिणाम-स्वरूप देश में एक ऐसी शासन-प्रणाली स्थापित हो गई जैसी कि पहले कभी देखने को नहीं मिली थी। राजा की शक्ति और अधिकारों का प्रयोग राजा के स्थान पर उसके मंत्री करने लगे और वे मंत्री संसद के सदस्य हुआ करते थे। दूसरे शब्दों में यह कहावत चरितार्थ होने लगी कि राजा राज्य करता है, शासन नहीं। शासन की वास्तविक शक्ति संसद के हाथ में है, और वह अपने सदस्यों की एक समिति अर्थात् मन्त्रिमंडल द्वारा शासन करती है।

कैबिनेट प्रणाली का विकास

मंत्रीगण तभी राज-काज चला सकते थे जबकि उन्हें संसद में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता। इसलिए एक पूरे काल में उन्हें ह्विग दल का भरोसा करना पड़ा। ह्विग लोगों ने ही १६८८ की क्रान्ति सम्पादित की थी और वे इस सिद्धान्त को मानते थे कि राजा की शक्ति सीमित हो और वास्तविक प्रभुत्व संसद के हाथ में रहे। चूँकि जार्ज प्रथम और द्वितीय को ह्विग दल की कृपा से ही सिंहासन मिला था और चूँकि दूसरा बड़ा दल जो टोरी कहलाता था बहुत समय तक निर्वासित स्टुअर्ट वंश का पक्ष लेता रहा, इसलिए इंगलैंड में ह्विग शासन का ऐसा युग प्रारम्भ हुआ, जिसमें राजा की सत्ता की जड़ें धीरे-धीरे खोखली हो गईं। हनोवर राजा ह्विग लोगों की कृपा से ही सिंहासन पर टिक सके; इसका उन्हें भारी मूल्य चुकाना पड़ा। उन्हें केवल राज्य करते रहने के लिए वे सब शक्तियाँ त्यागनी पड़ीं जो उस समय तक राजा का जन्मसिद्ध अधिकार मानी जाती थीं।

ह्विग दल के हाथ में शक्ति

किन्तु यह बात न थी कि राजाओं की स्थिति में यह जो परिवर्तन हुआ, उसको उन्होंने समझा न हो, या उसकी ओर उनका ध्यान न गया हो। जब जार्ज द्वितीय का

उन मंत्रियों को नियुक्त करने के लिये बाध्य किया गया, जिनसे वह घृणा करता था, तो वह समझ गया कि मैं "सिंहासन पर एक वन्दी के रूप में हूँ।" एक मंत्री ने एक बार उनसे कहा—"श्रीमान् जी, आपके मंत्री आपकी सरकार को चलाने के लिए एक साधन मात्र हैं।" जार्ज द्वितीय ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "इस देश में मंत्री ही राजा हैं।"

ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार

इस विचित्र शासन-प्रणाली की नींव डालने के अतिरिक्त इस काल में ह्विग लोगों ने एक ओर महान् सफलता प्राप्त की। इंगलैंड के औपनिवेशिक साम्राज्य का असाधारण विस्तार हुआ और उसने विश्व की एक महान् शक्ति के रूप में अपना इतिहास प्रारम्भ किया। उसके साम्राज्य का यह महान् तथा सहसा विस्तार सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६-६३) का परिणाम था। यह युद्ध यूरोप, अमेरिका, एशिया, आदि संसार के सभी भागों में और समुद्र पर लड़ा गया था। संघर्ष बहुत पेचीदा था, और इसमें अनेकों राष्ट्रों ने भाग लिया था। इसके दो पहलू बहुत महत्त्व के तथा ध्यान देने योग्य हैं। पहला, इंगलैंड और फ्राँस के बीच संघर्ष, और दूसरा, एक ओर प्रुशिया तथा दूसरी ओर फ्रांस, आस्ट्रिया तथा रूस के बीच संघर्ष। इंगलैंड तथा प्रुशिया के इतिहास में सप्तवर्षीय युद्ध एक युग परिवर्तन-कारिणी घटना है; क्योंकि इन्हीं दो को उससे सबसे अधिक लाभ हुआ।

विलियम पिट

उस समय इंगलैंड का नेतृत्व विलियम पिट ने किया, जो आगे चल कर अर्ल ऑफ चैथम के नाम से विख्यात हुआ। उसमें एक असाधारण नेता के गुण थे। वह महान् वक्ता, अत्यधिक ईमानदार राजनीतिज्ञ, उत्साही, देश भक्त और कर्मठ व्यक्ति था। अपने देश के भाग्य में उसे महान् विश्वास था और देश-गौरव की भावना से उसका सारा व्यक्तित्व देदीप्यमान था। पिट ने जनसेवा के प्रत्येक विभाग को अपनी शक्ति तथा दुर्दमनीय क्रियाशीलता से अनुप्राणित कर दिया। उसने १७५७ से १७६१ तक प्रधानमंत्री के पद पर कार्य किया। युद्ध के आरम्भ में इंगलैण्ड को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था और विजय के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते थे; किन्तु पिट ने देश की राष्ट्रीय भावनाओं को इतना उभाड़ा और राष्ट्रीय-युद्ध प्रयत्नों का ऐसे दुर्दमनीय विश्वास के साथ संचालन किया कि उस युद्ध में इंगलैण्ड को अपने इतिहास की सबसे अधिक उज्ज्वल तथा महानतम सफलता प्राप्त हुई। देश ने विजय पाने के लिए जो असाधारण प्रयत्न किये, उनका उसे समुचित पुरस्कार मिला और समुद्र पर, भारत में तथा अमेरिका में फ्रान्सीसियों के विरुद्ध विजय पर विजय प्राप्त हुई। पिट शेखी से कहा करता था कि केवल मैं ही देश की रक्षा कर सकता हूँ। और इसमें सन्देह नहीं कि उसने उसकी रक्षा की। इंगलैण्ड के इतिहास का वह महान्तम युद्धमन्त्री था। उसका सबसे बड़ा गुण यह था कि उसने देश के लाखों लोगों में अपने जैसा दृढ़ संकल्प फूँक दिया। कहा जाता है कि जो भी व्यक्ति उसके कार्यालय में प्रवेश करता, वह पहले से अधिक वीर बन कर निकलता था। जब अब्राहम के मैदानों में वुल्फ ने फ्रान्सीसी सेनापति मौंटकम को परास्त किया वास्तव में उसी समय पिट की विजय पूर्ण हुई।

पेरिस की संधि से इस युग-परिवर्तनकारी संघर्ष का अन्त हुआ। इंगलैंड

पेरिस की संधि

को फ्रांस से नोवास्कोशिया के विवाद-ग्रस्त क्षेत्र सम्पूर्ण कनाडा, और ऐलीघेनी पर्वत शृंखलाओं तथा मिसीसिपी नदी के बीच का प्रदेश, और स्पेन से फ्लोरिडा प्राप्त हुआ। साथ ही साथ भारत में फ्रांस की राजनैतिक शक्ति का अन्त हो गया और उसका स्थान इंगलैण्ड ने ले लिया। इस प्रकार पिट के उत्साहवर्धक तथा अनुप्राणित करने वाले नेतृत्व में इंगलैण्ड ने सचमुच एक विश्व-साम्राज्य का रूप धारण कर लिया। सैनिक प्रतिष्ठा, शक्ति तथा साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ इंगलैण्ड का दृष्टिकोण तथा उसके हित और भी अधिक विस्तृत हो गये। संसार में उसका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया और सबमें बड़ी बात यह थी कि चैनल के उस पार स्थित उसके पुराने तथा ऐतिहासिक शत्रु फ्रान्स का प्रभाव तथा शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी।

जार्ज तृतीय का सिंहासनारोहण

किन्तु नये राजा के राज्य-काल में इंगलैण्ड की इस प्रतिष्ठा और महानता को भारी धक्का लगा। १७६० में जार्ज तृतीय सिंहासन पर बैठा और ६० वर्ष तक शासन किया। एक अंग्रेज इतिहासकार ने लिखा है, '''जार्ज तृतीय ने देश का इतना अहित किया कि उसका नाम लेने में वेदना होती है और उसके लिए मुँह से शाप निकलता है।" अपने पूर्वजों की भाँति वह जर्मन नहीं था, बल्कि इंगलैण्ड का ही बेटा था, इंगलैण्ड में ही उसका पालन-पोषण हुआ था और वहीं उसे शिक्षा-दीक्षा मिली थी। बाईस वर्ष की अवस्था में जब वह सिंहासन पर बैठा तो उसने घोषणा की कि मुझे "इंगलैण्ड के नाम का बड़ा गर्व है।" किन्तु बुद्धिमत्ता पर किसी का जन्म सिद्ध अधिकार नहीं होता, उसके सम्बन्ध में भी यह बात चरितार्थ हुई। अपने जीवन-काल में उसने इस गुण का परिचय नहीं दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उसमें अनेक व्यक्तिगत गुण थे, किन्तु उसकी गणना सबसे कम बुद्धिमान और सबसे अधिक हठी राजाओं में है।

जार्ज तृतीय द्वारा केबिनेट-प्रथा का विरोध

उसकी माता एक जर्मन राजकुमारी थी; उसकी जन्मभूमि में निरंकुशवादी धारणाओं और आदर्शों का जोर था, और इसलिये उसे भी उनसे प्रेम था। अपने पुत्र से वह बहुधा कहा करती थी, "जार्ज! तुम सच्चे अर्थ में राजा बनो।" उसका अभिप्राय यह था कि उसको (जार्ज तृतीय को) जार्ज प्रथम और द्वितीय का अनुकरण नहीं करना चाहिये, बल्कि राजनैतिक मामलों में सक्रिय भाग लेना चाहिये। जार्ज ने अपनी माता की सलाह के अनुसार कार्य करने का जीवन-भर प्रयत्न किया। उसे केवल राजा बनने से ही सन्तोष नहीं था, बल्कि वह पुराने राजाओं की भाँति सच्चे अर्थ में शासन करने का इच्छुक था। अपने इस संकल्प के कारण उसे उस युग की सामान्य राजनैतिक प्रवृत्तियों और इच्छाओं से टक्कर लेनी पड़ी। जार्ज तृतीय के राज्य-काल का ऐतिहासिक महत्त्व यह है कि उसने राज्य-संचालन का मुख्य काम अपने हाथों में लेने का संकल्प किया, उसने उस प्रणाली को चिनौती दी जिसके अनुसार शासन-सत्ता संसद तथा मंत्रियों के हाथों में जा चुकी थी, वह हाल में हुए संविधानिक विकास के मार्ग में आकर खड़ा हो गया, उसने उन परिपाटियों और परम्पराओं को तोड़ने का प्रयत्न किया जो उससे पहले के दो राजाओं के काल में स्थापित हो चुकी थीं, और संसार के अन्य

राजाओं की भाँति स्वेच्छापूर्वक शासन करने का पक्का इरादा किया। चूँकि नई व्यवस्था की उस समय तक दृढ़ता से जड़ें नहीं जम पाई थीं इसलिये उसके हस्तक्षेप के कारण एक संकट उपस्थित हो गया, जिसने उसे लगभग छिन्न-भिन्न कर दिया।

जार्ज तृतीय के राजनैतिक तरीके

जार्ज तृतीय ने सैद्धान्तिक दृष्टि से केबिनेट प्रथा का विरोध नहीं किया, बल्कि उसने मंत्रिमण्डल को अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहा और उसमें ऐसे व्यक्तियों को भरने की कोशिश की जो सदैव उसकी आज्ञाओं का पालन करें। अपने मंत्रियों को उसने संसद पर नियंत्रण रखने में हर प्रकार की सहायता दी और इसके लिए घूस तथा अनुचित प्रभाव का भी प्रयोग किया। मंत्रिमण्डल को इस प्रकार पूर्णतया अशक्त तथा अपने प्रति वफादार बनाने में उसे कई वर्ष लग गये, किन्तु अन्त में मंत्री लोग तथा संसद के दोनों सदन पूर्णरूप से उसके नियंत्रण में आ गये। ह्विग लोग जिन्होंने १६८८ से राजा के ऊपर अपना प्रभाव कायम रक्खा था और सफलता-पूर्वक संसद के प्रभुत्व की स्थापना की थी, राजा की इस दूषित नीति के कारण छिन्न-भिन्न हो गये। उनका स्थान टोरियों ने ले लिया। वे मजबूत राजतन्त्र के पक्षपाती थे, इसलिये जार्ज तृतीय की नीति से उनका मेल खा गया। अब देश के राजनीतिक जीवन में उनकी प्रमुखता हो गई जो १९ वीं शताब्दी में भी काफी समय तक कायम रही।

लार्ड नार्थ का मंत्रिमण्डल

दस वर्ष की उखाड़-पछाड़ और तोड़-फोड़ के उपरान्त राजा के विचारों की विजय हुई और उसे एक ऐसे मंत्रिमण्डल के बनाने में सफलता मिली जो पूर्णरूप से उसकी इच्छा का पालन करने वाला था। इस मंत्रिमण्डल का प्रमुख लार्ड नार्थ था। उसने १७७० से १७८२ तक राज-काज चलाया। उसने कभी सरकार का प्रमुख होने का बहाना नहीं किया, बल्कि सदैव एक पिछलगुए की भाँति राजा की इच्छाओं को स्वीकार किया और उन्हें कार्यान्वित करने की कोशिश की यद्यपि शासन का बाहरी ढाँचा वैसा ही बना रहा जैसा कि एक स्वतन्त्र सरकार का होता है, किन्तु इससे राजा की स्वेच्छाचारिता में कोई अन्तर नहीं आया।

अमेरिका की राज्यक्रान्ति

इस प्रकार मंत्रिमण्डल तथा संसद पर अपना नियंत्रण स्थापित करके जार्ज तृतीय ने ब्रिटिश साम्राज्य को विनाश के मार्ग पर घसीटना आरम्भ कर दिया। उसकी नीति का जो भयंकर परिणाम हुआ उसे गोल्डविन स्मिथ ने "इंगलैण्ड के इतिहास की सबसे दुःखद और विनाशकारी घटना" कहा है। राज तथा उसके जीहुजूरों ने एक ऐसी नीति आरम्भ की जिससे साम्राज्य के भीतर शीघ्र ही गृह-युद्ध की ज्वाला धधकने लगी। अमेरिका की राज्य-क्रान्ति वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर एक गृह-युद्ध ही थी। राजा के इंगलैण्ड तथा अमेरिका दोनों ही देशों में समर्थक थे; और दोनों ही जगह उसके शत्रु और विरोधी थे। राजनैतिक दलों की स्थिति भी दोनों ही देशों में एक-सी थी। एक ओर टोरी थे जो राजा के परमाधिकारों के समर्थक थे और दूसरी ओर ह्विग थे जो स्वशासन के सिद्धान्तों की रक्षा करना चाहते थे। इस भयंकर संकट में अमेरिका की स्वाधीनता का प्रश्न ही नहीं गुँथा हुआ था बल्कि इंगलैण्ड में जिस संसदीय शासन-प्रणाली का विकास हो चुका था वह भी दांव पर लगी थी। यदि जार्ज तृतीय की नीति

सफल हो जाती तो उपनिवेशों की स्वतन्त्रता का ही अन्त नहीं हो गया होता बल्कि इंगलैण्ड में संसद का प्रभुत्व भी लुप्त हो जाता। इंगलैण्ड के ह्विग इस बात को भली-भाँति समझते थे, इसीलिए उनके नेता पिट, फॉक्स और बर्क ने अमेरिका के विद्रोहियों की विजय पर हर्ष प्रकट किया।

लार्ड नार्थ का पतन

अमेरिका की राज्यक्रान्ति का उद्देश्य स्वतन्त्र मानव के मूल अधिकारों की स्थापना करना था; इंगलैण्ड तथा अमेरिका दोनों ही देशों में लोग उसे इसी रूप में देखते थे। इस संघर्ष में फ्रांस ने तेरह उपनिवेशों का साथ दिया। **सप्तवर्षीय युद्ध** में उसे जो अपमान तथा पराजय भुगतनी पड़ी थी उसका बदला लेने का उसे अच्छा अवसर हाथ लग गया था और उसे आशा थी कि इस प्रकार वह अपने घमण्डी पड़ौसी को जो उसे लूट-खसोट कर मोटा हो गया था, नीचा दिखा सकेगा। अमेरिका के युद्ध में इंगलैण्ड को जो पराजय भुगतनी पड़ी उससे एक लाभ हुआ। चूंकि राजा को असफलता हाथ लगी, इसलिये संसदीय शासन-प्रणाली की रक्षा हो सकी। १७८२ में लार्ड नार्थ तथा उसके सहयोगी मंत्रियों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिया। यह पहला अवसर था जबकि एक पूरे मंत्रिमण्डल को अपदस्थ होना पड़ा।

अमरीकी क्रान्ति का महत्त्व

जार्ज तृतीय ने राज्य का स्वामी बनने का जो प्रयत्न किया वह विफल रहा। उसके पूरे परिणाम कुछ समय तक प्रकट नहीं हुए, फिर भी इंगलैण्ड के भविष्य के लिए वे निर्णायक सिद्ध हुए। अब यह स्थायी रूप से निश्चय हो गया कि राजा का काम राज्य करना था न कि शासन करना। स्वतन्त्र शासन के इस सिद्धान्त को राजतन्त्र के अन्तर्गत ही स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। किन्तु इसके फलस्वरूप साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। उसके छिन्न-भिन्न होने से दो महान् परिणाम निकले। नई दुनिया (अमेरिका) में गणतन्त्रीय सरकार के सिद्धान्तों की नींव पड़ी और वहाँ आगे चल कर उनका विकास हुआ और पुरानी दुनिया के एक प्रसिद्ध देश (इंगलैण्ड) में सांविधानिक अथवा सीमित राजतन्त्र के सिद्धान्तों की स्थापना हुई। सरकार के इन रूपों ने उस समय से लेकर अब तक संसार की उन सब जातियों को प्रभावित किया है जो अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करने की इच्छुक रही हैं। अनुकरणीय आदर्शों के रूप में इन दो शासन-प्रणालियों का महत्त्व अब भी कम नहीं है।

इंगलैण्ड की प्रतिष्ठा का ह्रास

किन्तु उस समय अमरीकी युद्ध के दुष्परिणाम बहुत भयंकर हुए और इंगलैण्ड की प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। यह सच है कि इस घटना के बाद यूरोप के अधिकतर राजा समझने लगे कि इंगलैण्ड एक पतनशील राष्ट्र है। उसने अमेरिका के अपने सबसे मूल्यवान उपनिवेश खो दिए थे। लोगों के हृदय में यह धारणा बैठ गई कि **सप्तवर्षीय युद्ध में** इंगलैण्ड की सफलताओं का कारण उसकी निजी योग्यता नहीं बल्कि फ्रांस के लुई पन्द्रहवें का निकम्मापन था; जबकि वास्तव में दोनों ही उसके कारण थे। फ्रांस में यह विचार फैल गया कि इंगलैण्ड को नष्ट करना सम्भव है, उसका साम्राज्य एक छायामात्र है, जो पहले ही प्रहार में विलुप्त हो जायगा और भारत को उसके तेरह उपनिवेशों की अपेक्षा अधिक सरलता से पृथक् किया जा सकता है। लोग सोचने लगे कि अत्यधिक धनी हो जाने से उसकी

शक्ति और पौरुष जाता रहा है और विलासिता तथा प्रमाद ने उसे खोखला कर दिया है। एक ओर तो उक्त भावनायें इंगलैण्ड के शत्रुओं के हृदय में आशा का संचार कर रही थीं; किन्तु साथ ही साथ वे उससे डरते भी थे और उनका डरना किसी सीमा तक उचित भी था। यद्यपि उसे अपने शत्रुओं के अनेक प्रहार झेलने पड़े थे; किन्तु बदले में उसने उन्हें, और विशेषकर फ्रांस को अनेक बार घुटने टेकने पर बाध्य किया था। इसलिये उन्हें उसके ह्रास और खोखलेपन में थोड़ा सा सन्देह भी था। उस समय इंग्लैण्ड और फ्रांस की शताब्दियों से चली आ रही प्रतिद्वन्द्विता यूरोपीय राजनीति की एक मुख्य विशेषता थी। इस प्रतिस्पर्धा में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति के दौरान में वह प्रज्ज्वलित हो उठी और उसने भयंकर लपटों का रूप धारण कर लिया। वाटरलू के युद्ध तक के इस सम्पूर्ण काल में इसी तत्व की प्रधानता रही। फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति का इंग्लैण्ड ने दृढ़ और दुर्दमनीय संकल्प के साथ सामना किया।

इंगलैंड तथा फ्रांस की राज्यक्रान्ति

किन्तु इसके विपरीत इटली में बहुत लोगों ने फ्रांस की क्रान्ति का स्वागत किया, यद्यपि उस देश को स्वयं उसका शिकार बनना पड़ा। इटली के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि यूरोप की राजनीति में उसका कोई महत्त्व न था वास्तव में उस समय इटली नाम का कोई राष्ट्र ही न था। देश में राजनीतिक एकता का पूर्ण-प्रभाव था। वह अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, जो आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे। एक बार सुदूर अतीत में इटलीवासी भी अपने देश के स्वामी और अपने भाग्य के विधाता थे। किन्तु अब वे शताब्दियों पहले अपनी उच्च स्थिति से गिर चुके थे और किसी न किसी रूप में विदेशियों के दास बने हुए थे। कभी स्पेन ने, कभी आस्ट्रिया ने और कभी फ्रांस ने उन पर अपना प्रभुत्व कायम रक्खा था। इसका उनके चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ा था और वे भीरु, अवसरवादी और विलासी हो गये थे और उनका दृष्टिकोण निराशावादी बन गया था। पीमौंट और वेनिस तथा जिनोवा के गण-राज्यों की जनता को छोड़कर अन्य लोगों में अपनी-अपनी सरकारों के प्रति तनिक भी श्रद्धा नहीं थी, और होती भी क्यों? आखिर अपनी सरकारों से उन्हें लाभ ही क्या था? अनेक सरकारें तो विदेशी थीं अथवा विदेशियों द्वारा उन पर थोपी गई थीं। अतः जनता के हृदय में उनकी जड़ें न जम पाई थीं और न उनके हितों से ही उनका सामञ्जस्य हो सका था। राजनीतिक वातावरण, उदासीनता, अकर्मण्यता तथा निराशा से भरा था। इतना सब कुछ होने पर भी शताब्दी के अन्त में जागृति के कुछ चिन्ह दिखाई देने लगे थे। यह सम्भव नहीं था कि इटलीवासी सदैव के लिये अपने गौरवमय अतीत को भूल जाते। प्राचीन परम्पराओं का उनके मन पर अब भी गहरा प्रभाव था। इसलिए उनके लिये अपने अधिकारों को भूल जाना अथवा त्याग देना सम्भव नहीं था, चाहे उनका कितना भी उत्पीड़न क्यों न होता। कल्पना-शक्ति और उत्साह इटलीवासियों के चरित्र के मुख्य तत्व थे। यद्यपि विदेशी लोग उन्हें उसका बिलकुल उलटा समझते थे। उनका विचार था कि वे उसी धातु के बने हुए हैं, जिसके कि दास बने होते हैं। किन्तु यह मत एकदम ही भ्रममूलक था। यह ठीक है कि अठा-

इटली, छोटे-छोटे राज्यों का समूह

सरकारों की दुर्बलता

रहवीं शताब्दी में इटली में ऐसा कोई आन्दोलन न था जिसका उद्देश्य देश की राष्ट्रीय एकता स्थापित करना होता। किन्तु कवियों और इतिहासकारों की लेखनी से कभी-कभी देश भक्ति से ओत प्रोत शब्द निकल पड़ते थे, जो एक दूरस्थ और उज्ज्वल उद्देश्य की ओर इंगित करते थे और देशवासियों को उसकी प्राप्ति के लिये अनुप्राणित और प्रोत्साहित करते थे। अलफीरी ने लिखा था, "एक दिन आयेगा जब कि इटलीवासियों का पुनर्जन्म होगा और जब वे युद्धक्षेत्र में अपने दुर्द्धर्ष पराक्रम का परिचय देंगे।" इटली की मानवता को छोटे-छोटे राज्यों की सीमित परिधि के भीतर बाँधकर नहीं रखा जा सकता था। उस जाति का भाग्य ऊँचा और भविष्य उज्जवल था। राष्ट्रीय एकता की

एकता की अभिलाषा

यह अभिलाषा उन थोड़े ही लोगों तक सीमित थी, जिनमें कल्पना शक्ति थी, जिन्हें देश के गौरवपूर्ण अतीत का गर्व था और जो भविष्य द्रष्टा थे। एक फ्रेंच लेखक ने लिखा था, "इटलीवासियों का अतीत देदीप्यमान था और उनका भविष्य भी उज्ज्वल है; इसीलिए उसके वर्तमान को देखकर हमें धारणा नहीं बनानी चाहिये। वास्तव में वह एक महान् जाति है।" नई इटली के बीज उस समय अंकुरित होने लगे थे; किन्तु उनके फलने-फूलने में अभी देर थी।

फ्रांस के पूर्व में जर्मनी है। आगे चलकर उस देश को अनेक वर्षों तक यूरोप का युद्धक्षेत्र बनना पड़ा और उसके जीवन में बड़े विस्मयकारी रूपान्तर हुए। इटली की भाँति जर्मनी भी छोटे-छोटे राज्यों का एक समूह था।

जर्मनी यूरोप का युद्धक्षेत्र

अन्तर केवल इतना था कि इटली की तुलना में उसके राज्यों की संख्या कहीं अधिक थी। जर्मनी में तथा कथित **पवित्र रोमन साम्राज्य** के अस्तित्व के कारण कम से कम कहने के लिए थोड़ी बहुत एकता थी, उस साम्राज्य के कितने राज्य सम्मिलित थे, यह कहना कठिन है। यदि हम उन सब सामन्तों को गिन लें, जिन्हें अपने अधिकार सीधे सम्राट् से मिले हुए थे और जो उसे छोड़कर अन्य किसी के अधीन न थे, तो जर्मनी के राज्यों

पवित्र रोमन साम्राज्य

की संख्या कम से कम ३६० तक पहुँचेगी। ५० से अधिक स्वतन्त्र अथवा शाही नगर थे, जिन्हें सीधे सम्राट से अधिकार मिले हुए थे और जो स्वयं ही अपने मामलों का प्रबन्ध करते थे। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे राज्य थे, जो गिरजाघरों के अधीन थे, और एक दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र थे। बाडेन, बुरटैमबुर्ग और बवारिया आदि अन्य छोटी-छोटी रियासतें थीं। इस साम्राज्य के अन्तर्गत प्रुशिया और आस्ट्रिया के ही ऐसे राज्य थे, जिनका यूरोप की राजनीति में कुछ महत्त्व था।

वह साम्राज्य, जिसके नाम बहुत ऊँचे-ऊँचे थे जैसे 'पवित्र' और 'रोमन', इतना दुर्बल और निकम्मा था कि विश्वास करना भी कठिन था। उसका सम्राट वंशानुगत न था, बल्कि निर्वाचित हुआ करता था। वास्तव में, वह केवल दिखावे और शोभा की वस्तु था। उसके हाथ में वास्तविक सत्ता न थी, वह न आज्ञायें जारी कर सकता था, न सेना रख सकता था और न अपनी ओर से अच्छी अथवा बुरी नीति का ही अनुसरण कर सकता था; क्योंकि पिछली शताब्दियों में जर्मन राजकुमारों ने उसे सभी अधिकारों व शक्तियों से वंचित कर

पवित्र रोमन सम्राट्

दिया था। उसकी वास्तव में वही स्थिति थी जो किसी

तमाशे में भड़कीली पुतली की होती है। उसके अतिरिक्त एक राष्ट्रीय सभा और एक साम्राज्जीय न्यायालय भी थे, किन्तु वे वैसे ही निर्जीव थे जैसा कि स्वयं सम्राट्।

जर्मनी के भीतर साम्राज्य का कोई महत्त्व न था; क्योंकि न तो प्रतिरक्षा की ही दृष्टि से वह किसी काम का था और न उससे अन्य कोई गम्भीर प्रयोजन ही सिद्ध होता था। यदि कुछ थोड़ा बहुत महत्त्व था, तो उन राज्यों का था जिनसे कि मिल कर साम्राज्य बना था। किन्तु उनमें से भी बहुत थोड़े से ही ऐसे थे। जर्मनी के इन सब तुच्छ राजाओं अथवा सामन्तों में विशेषकर दो भावनाएं प्रबल थीं—एक तो वे अपनी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न सह सकते थे और दूसरे वे एक दूसरे की सत्ता को हड़पने के लिए सदैव इच्छुक रहते थे। उन्हें जर्मनी के, साम्राज्य के और अपनी जन्म-भूमि के हितों का तनिक भी ध्यान न था। उनके हाथ में जो कुछ शक्ति थी, वह उन्होंने साम्राज्य को लूट-खसोट कर ही प्राप्त की थी। देश-भक्ति की भावनाओं से वे अछूते थे। हर एक अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि की ताक में रहता था। इस प्रकार के परस्पर विरोधी तत्वों को जोड़कर एक संयुक्त राष्ट्र का निर्माण करना जादूगरी के काम से कम न था। राष्ट्रनिर्माण की सामग्री अत्यन्त निराशाजनक थी। फिर भी जैसा हम देखेंगे वह कठिन कार्य सम्पादित हो गया, यद्यपि इटली की भाँति उसे भी उन्नीसवीं शताब्दी में दीर्घ काल तक संघर्ष करना पड़ा।

तुच्छ जर्मन रियासतें

जो कुछ शक्ति थी वह इन्हीं राजाओं में थी, साम्राज्य पूर्णतया निर्जीव था। इसलिये आगे चल कर फ्रांसीसी क्रान्तिकारियों और नेपोलियन ने उसका सत्यानाश कर दिया। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, आस्ट्रिया और प्रुशिया का ही विशेष महत्त्व था। सामान्यतः उनमें शत्रुता चलती, प्रतिस्पर्धा तो सदैव ही बनी रहती, कभी-कभी वे भले ही मित्र बन जाते। आस्ट्रिया का राज्य पुराना और प्रसिद्ध था, प्रुशिया वास्तव में बिलकुल नया था; किन्तु उसकी प्रतिष्ठा और ख्याति तेजी से बढ़ रही थी। आस्ट्रिया में हैप्सबर्ग और प्रुशिया में होहेनजोलर्न वंश के राजा राज्य करते थे। आस्ट्रिया एक राष्ट्र न था, बल्कि राज्यों, नस्लों और भाषाओं का ऐसा विचित्र जमघट था जैसा कि यूरोप में अन्यत्र देखने को न मिलता था। राजवंश के प्रति भक्ति ही एक ऐसा सूत्र थी, जो उनको परस्पर बाँधे हुई थी। वंश की हैप्सबर्ग की भूमि दूर-दूर तथा असम्बद्ध रूप से बिखरी हुई थी, यद्यपि उसका मुख्य भाग डेन्यूब उपत्यका में स्थित था। सम्पूर्ण आस्ट्रिया को लेकर देशभक्ति की कोई भावना न थी। उसके अन्तर्गत बोहेमिया, हंगरी, मिलान, नैदरलैण्डस और स्वयं आस्ट्रिया मुख्य जनपद थे; उनमें से प्रत्येक में एकता की कुछ भावना और कुछ आत्म-चेतना थी, किन्तु इन सब तत्वों से मिलकर बना हुआ कोई राष्ट्र न था। आस्ट्रिया की तुलना फ्रांस और इंगलैंड से नहीं की जा सकती थी; फिर भी उसके अन्तर्गत लगभग ढाई करोड़ लोग रहते थे और वे सब एक व्यक्ति के अधीन थे इसलिए यूरोप की राजनीति में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था।

जर्मनी में आस्ट्रिया और प्रुशिया ही दो महत्त्वपूर्ण राज्य

हैप्सबर्ग राजाओं की भूमि

प्रशिया का छोटा किन्तु शक्तिशाली राज्य

यहाँ तक प्रशिया का सम्बन्ध था उसे सच्चे अर्थ में राष्ट्र कहा जा सकता था, यद्यपि इस समय तक उसकी राष्ट्रीय चेतना प्रारम्भिक अवस्था में ही थी। उसके अनेक कर्मठ और महत्त्वाकांक्षी राजाओं ने बार-बार तथा भली भाँति उसे ठोक पीट कर एक राष्ट्र का रूप दे दिया था। एक राज्य के रूप में प्रशिया का इतिहास १७०१ ई० में आरम्भ हुआ, किन्तु उसका केन्द्र-स्थल ब्रॅडेनवर्ग था। जिस पर होहिनजोलर्न वंश के लोगों ने दक्षिणी जर्मनी से आकर पन्द्रहवीं शताब्दी में अधिकार कर लिया था, और उसी समय से उसकी धीरे-धीरे प्रगति आरम्भ हो गई थी। सोलहवीं शताब्दी में इस वंश के अधीन प्रदेश राइन नदी के किनारे से लेकर रूस की सीमाओं तक फैले हुए थे। समस्या यह थी कि उन सब को एक राज्य के ढाँचे में कैसे ढाला जाय जिससे कि वे सब एक व्यक्ति की इच्छा का अनुसरण करने लगें। प्रत्येक अंचल में छोटी-छोटी सामन्ती रियासतें थीं जो अपने शासन के विरुद्ध अपने अधिकारों को कायम रखना चाहती थीं।

होहिनजोलन वंश

किन्तु होहिनजोलर्न राजाओं का उद्देश्य स्पष्ट और निश्चित था। वे शासकों के रूप में अपनी शक्ति की वृद्धि करना, सम्पूर्ण आन्तरिक प्रतिरोध को कुचलना और बाहर अपने राज्य का विस्तार करना चाहते थे। प्रत्येक पीढ़ी में वे अपने इस कार्यक्रम पर दृढ़ संकल्प पर डटे रहे और अन्त में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। प्रशिया का विस्तार बढ़ता गया, सरकार निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी होती गई और राज्य के भीतर सेना को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। मिराबू का यह कथन बिलकुल सत्य था कि युद्ध ही प्रशिया का सबसे बड़ा राष्ट्रीय उद्योग है। प्रशिया के शासक कर्मठ और परिश्रमी थे; राज्य की सेवा करना वे अपना उद्देश्य तथा कर्तव्य समझते थे; भोग-विलास तथा आत्म-तुष्टि में उन्होंने अपना समय राज्य के साधन नष्ट नहीं किए। प्रकृति ने उनके देश पर अधिक कृपा नहीं की थी, किन्तु उन्होंने दृढ़-संकल्प तथा बुद्धिमत्ता के साथ उसके आर्थिक साधनों का परिवर्तन किया। साथ ही साथ वे जर्मनी तथा यूरोप की राजनीति से लाभ उठा कर अपनी शक्ति की वृद्धि करने के अवसर की ताक में रहते थे। फ्रैडरिक द्वितीय (१७४०-१७८६) के लम्बे शासन-काल में इस राजवंश की चारित्रिक विशेषताओं, तरीकों और महत्त्वाकांक्षाओं की बहुत अच्छी अभिव्यक्ति हुई। निःसन्देह वह अपने वंश का योग्यतम शासक था और इसलिए उसे "महान्" कहा जाता है।

प्रशिया में सेना का महत्त्व

पीढ़ी दर पीढ़ी प्रशिया के शासकों ने सैनिक शक्ति को असाधारण महत्त्व दिया। उसको उचित ठहराने के लिए वे कहा करते कि हमारे देश की कोई प्राकृतिक सीमायें नहीं हैं, वह उत्तरी जर्मनी के रेतीले मैदान का एक अनिश्चित भाग है, उसकी प्रतिरक्षा के लिए न कोई नदी है और न पर्वत-शृंखला, और आक्रमणकारी के लिए देश में प्रवेश करना बहुत सरल है। उनका यह कथन बिल्कुल सत्य था। किन्तु साथ ही साथ यह भी सत्य था कि इस दृष्टि से प्रशिया के पड़ोसियों की स्थिति अधिक अच्छी न थी। यदि उसे उनके आक्रमण का भय था, तो वे भी उससे शंकित रहते थे। भौगोलिक दृष्टि से प्रशिया पर आक्रमण उतना सरल न था जितना कि प्रशिया द्वारा पड़ोसी राज्यों पर। कुछ भी हो, प्रशिया

का प्रत्येक शासक अपने को पहले एक सेनानायक समझता था और अपनी सेना की वृद्धि करना अपने लिए गर्व और गौरव की बात मानता था। **महान् निर्वाचक**[1] को जिसने १६४० से १६८८ तक शासन किया, विरासत में ४००० से कम सेना मिली थी, किन्तु अपने उत्तराधिकारी के लिए वह २४००० सैनिक छोड़ गया। फ्रैडरिक द्वितीय के पिता को ३८००० सेना मिली थी, और उसने उसे बढ़ा कर ८३००० कर दिया। इस प्रकार साढ़े बाईस लाख की आबादी वाली प्रुशिया की सेना ८३००० थी, जब कि ढाई करोड़ की जनसंख्या वाली आस्ट्रिया के पास १००,००० से भी कम सिपाही थे। फ्रैडरिक के पिता ने अपनी सेना को उच्चकोटि की कवायद और अनुशासन द्वारा सुयोग्य बनाया और प्रशासन के अन्य विभागों में कठोर मितव्ययिता करके उसे युद्ध के साधनों से सुसज्जित किया। ऐसी सेना के बल पर आगे बढ़ना फ्रैडरिक के भाग्य में लिखा था। उसकी गणना उन थोड़े से व्यक्तियों में है जिन्होंने यूरोप की आकृति में महान् परिवर्तन किये हैं। युद्ध तथा उससे सम्बन्धित अन्य गौण कार्यवाहियों द्वारा उसने अपने छोटे-से राज्य को यूरोपीय राजनीति की अगली पंक्ति में ले जाकर खड़ा कर दिया। अपने शासन के पूर्वार्ध के समाप्त होने से पहले उसने उसे 'महान् शक्तियों' के समकक्ष बना दिया, यद्यपि जनसंख्या, क्षेत्रफल और सम्पत्ति की दृष्टि से उसका राज्य महान् शक्तियों की तुलना में बहुत छोटा था।

फ्रैडरिक महान् की युवावस्था

यौवन-काल में फ्रैडरिक को साहित्य, कला, संगीत, दर्शन, विज्ञान, वर्तालाप तथा अन्य सांस्कृतिक विषयों में विशेष रुचि थी। फ्रान्सीसी भाषा तथा साहित्य से उसे बहुत अनुराग था और वे जीवन-भर उसके मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद के साधन बने रहे। वह फ्रेंच भाषा में कविता लिखा करता, और बाँसुरी बजाया करता; सैनिक कवायद, धूम्रपान, अधिक खान-पान तथा शिकार से उसे घृणा थी जबकि उसका पिता इन चीजों को ही राजाओं के आमोद-प्रमोद के स्वाभाविक और पुरुषोचित साधन समझता था। फ्रैडरिक विलियम प्रथम उजड्ड कर्कश, कठोर, अत्याचारी, परिश्रमी और अत्याधिक देश भक्त था। उसको यह सोच कर बड़ा क्रोध आता था कि फ्रैडरिक जैसा युवक जो प्रुशिया के राजवंश के कठोर नीरस और गम्भीर आदर्शों के प्रति इतना उदासीन है, जिसे जीवन की तुच्छ तथा निन्द्य चीजों में इतना आनन्द आता है, और जो इतना असावधान तथा आमोद-प्रिय है, एक दिन राजा बनेगा और सम्भवतः अपनी अयोग्यता और विलासिता के कारण राज्य को छिन्न-भिन्न कर देगा। इसलिए उसने युवराज को ऐसे कठोर अनुशासन में रक्खा जो कभी-कभी बर्बरता की सीमा तक पहुँच जाता। वह सेना के सामने उसके बेत लगाता और साधारण जनता के सामने उसके कान मला करता। जब युवराज के एक अत्यन्त प्रिय मित्र ने उसे इस क्रूर व्यवहार से बचने के लिए देश से भाग निकलने में सहायता देने का प्रयत्न किया, तो राजा ने उस मित्र को मृत्यु-दण्ड दिया और फ्रैडरिक को कारागार की खिड़की से उसके वध के दृश्य को देखने पर बाध्य किया। अनुशासन की ऐसी भट्टी में जवान राजकुमार का चरित्र तपाया गया और उसका हृदय कठोर बना दिया गया।

---

1. Great Elector.

इस अग्नि परीक्षा में से फ्रैडरिक स्वावलम्बी, सनकी और कुटिल वन कर निकाला; किन्तु साथ ही साथ उसमें गम्भीरता भी आ गई और पिता की उग्र इच्छा का नम्रतापूर्वक पालन करने लगा। उसके पिता के शब्दों में उसके बाद उसने फिर कभी 'न लात मारी और न पिछाई की।' वर्ष तक वह होहिनजोलर्न वंश की परम्परागत पद्धति के अनुसार अपने भावी कामों को सीखने के नीरस काम में कटिवद्ध रहा, पहले छोटे-छोटे पदों से सम्वन्धित कामों को सीखा, प्रशासन के नीरस व्यौरे से परिचय प्राप्त किया और जब उसके पिता को उसकी प्रगति से संतोष हो गया तो अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों का भार सँभाला।

फ्रैडरिक का राज्यारोहण

१७४० ई० में अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में फ्रैडिरिक सिंहासन पर वैठा; उस समय उसकी वुद्धि तीव्र चरित्र स्पात जैसा कठोर और महत्वाकांक्षा इतनी वलवती थी कि शीघ्र ही सारा संसार युद्ध की लपटों में जलने लगा। उसने छियालीस वर्ष तक शासन किया, किन्तु उसके राज्य-काल के पूर्वार्ध के समाप्त होने से पहले ही स्पष्ट हो गया था कि यूरोप में उसकी टक्कर का अन्य शासन नहीं है। लोगों का विचार था कि उसके जीवन का ढंग उसके पिता से विल्कुल भिन्न होगा। किन्तु यह धारणा गलत निकली; वल्कि उसमें भी वैसी ही कठोर सरलता और इन्द्रियनिग्रह, कर्त्तव्य में वैसी ही गहरी लगन' उद्देश्य की वैसी ही अनन्यता और प्रुशिया के उत्थान की वही उत्कट अभिलाषा देखने को मिली। सरकार के ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया गया, किन्तु नये शासक के शक्तिशाली, आक्रामक और नमनीय व्यक्तित्व के प्रभाव से वह अपूर्व गति से संचालित होने लगा। फ्रैडरिक में उच्चतम कोटि की योग्यता विद्यमान थी और सिंहासनारोहण के दिन से मृत्यु पर्यन्त उसने उसका परिचय दिया। जैसा कि लार्ड एक्टन ने कहा है, "आधुनिक युग में जिन शासकों ने विरासत में सिंहासन पाया है उनमें उसकी प्रतिभा सवसे अधिक परिपक्व और व्यावहारिक थी।"

साइलेसिया पर उसका आक्रमण

फ्रैडरिक के प्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य से ही उसके चरित्र तथा इरादों का पता चल गया। जिस व्यक्ति को अपने यौवन में सैनिक जीवन से घृणा थी और जिसने उस जीवन के उत्तरदायित्वों को जव तक वन सका टाला, वही आगे चलकर विश्व इतिहास का एक महानतम सेनानायक सिद्ध हुआ। जर्मनी का इतिहास लुटेरे सामन्तों से भरा पड़ा है; फ्रैडरिक भी उन्हीं में से एक था, किन्तु उन सवमें सवसे अधिक सफल; और उसके नैतिक सिद्धान्त भी अपने वर्ग के अनुरूप थे। उसने साइलेसिया पर आक्रमण कर दिया। यह विशाल प्रांत आस्ट्रिया का था, और एक संधि द्वारा उस पर उसका अधिकार स्वीकार कर लिया गया था, उस संधि पर प्रुशिया के भी हस्ताक्षर थे। फ्रैडरिक उसे हड़पना चाहता था, और उसे अवसर भी अच्छा मिल गया क्योंकि उस समय मेरिया थैरेसा नाम की एक अनुभवहीन स्त्री आस्ट्रिया के सिंहासन पर वैठी थी। इस प्रसिद्ध आक्रमण के सम्वन्ध में फ्रैडरिक ने कहा, "मेरे सैनिक तैयार थे और मेरी थैली भरी हुई थी।" उसका कथन था कि "मेरिया थैरेसा को विरासत में जो साम्राज्य मिला था उसमें साइलेसिया ही ऐसा भाग था जो ब्रांडेनवर्ग के राजवंश के लिए सवसे अधिक उपयोगी था।" उसका सिद्धान्त था कि "जो ले सको ले लो, और यदि

लौटना न पड़े तो तुम निर्दोष हो।" फ्रैडरिक के इन शब्दों से उसके चरित्र तथा शासन का रूप स्पष्ट व्यक्त होता है। अपनी योजनाओं में उसे अत्यधिक ठोस सफलता मिली। जिस नीति से उसे प्रुशिया का लाभ होता दिखाई देता उससे वह कभी विचलित न होता, न तो उसे अपना वचन भंग करने में हिचकिचाहट होती, न एक स्त्री के प्रति उदार भाव उसे विचलित कर सकते और न उसे निजी सम्मान की ही चिंता रहती। अपने यौवन काल में फ्रैडरिक ने मेकियावेली के राजनीतिक विचारों के विरुद्ध एक पुस्तक लिखी थी। किसी को इस बात का संदेह भी न होगा कि ऐसी कठोर भावनाओं के व्यक्ति ने भी मेकियावेली की निन्दा की होगी। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि फ्लोरेंस के उस महान् विचारक को उन व्यवहारिक सिद्धान्तों से पूर्ण सन्तोष हो गया होता, जिनके अनुसार उसके मुकुटधारी आलोचक ने जीवन भर आचरण किया। मेकियावेली के राजनीतिक दर्शन की आत्मा की सच्ची और प्रमाणिक अभिव्यक्ति इतने संक्षेप में और इतनी सही किसी ने नहीं की, जितनी की फ्रैडरिक ने। "ईमानदार होने से कोई लाभ हो, तो हम अवश्य ईमानदार बनें, यदि धोखा देने की आवश्यकता पड़े, तो हमें धूर्त बन जाना चाहिए।"

फ्रैडरिक के राजनीतिक सिद्धान्त

फ्रैडरिक के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिन सिद्धान्तों पर उसने आचरण किया, उनमें उसके सभी समसामयिक राजा विश्वास करते थे और उससे पहले तथा बाद के अन्य अनेक राजाओं ने भी उनका अनुसरण किया है। कुछ भी हो फ्रैडरिक को स्वयं अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध करने की तनिक भी चिन्ता न थी, उसकी राय में यह बात नगण्य थी।

आक्रमण इतना अप्रत्याशित था कि सन् १७४० ई० में बिना किसी कठिनाई के फ्रैडरिक का साइलेसिया पर अधिकार हो गया। उस प्रान्त का क्षेत्रफल मैसेच्यूसैट्स, कनैक्टीकट और र्होड द्वीप के सम्मिलित क्षेत्रफल से भी बड़ा था और उसकी जनसंख्या साढ़े बारह लाख से भी ऊपर थी। किन्तु उसको हस्तगत करने का परिणाम यह हुआ कि अपनी विजय को स्थायी बनाने के लिए उसे निरन्तर बीस वर्ष तक युद्ध करना पड़ा। साइलेसिया के पहले दो युद्ध (१४४०-४८) इतिहास में ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्धों के नामों से प्रसिद्ध हैं। तीसरा सप्तवर्षीय युद्ध था, जिसने विश्वयुद्ध का रूप धारण कर लिया और जिसमें, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, यूरोप के अधिकतर बड़े राज्य सम्मिलित थे; किन्तु फ्रैडरिक के लिए उसका यही महत्त्व था कि साइलेसिया को अपने अधिकार ये बनाये रख सका।

साइलेसिया का युद्ध

सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६-६३) से तो, वास्तव में सारे संसार में फ्रैडरिक के नाम और यश की दुंदुभि बजने लगी; किन्तु इस घातक युद्ध के दौरान में कई बार ऐसा प्रतीत हुआ कि इसमें उसका तथा उसके देश का सत्यानाश हो जायगा। लेकिन सौभाग्य से उसे इंगलैण्ड जैसा मित्र मिल गया, जिसने उसे आर्थिक सहायता दी और यूरोप, एशिया, अमेरिका तथा समुद्रों पर फ्रांस के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष चलाया, जिससे फ्रांस की सेनाएँ यूरोप में प्रुशिया के विरुद्ध निरन्तर अपने मित्र का साथ न दे सकीं। इस सहायता के बिना फ्रैडरिक को अवश्य पराजय भुगतनी पड़ती। उसके मार्ग में भयंकर कठिनाइयाँ थीं। वह एक छोटे से राज्य का स्वामी था

सप्तवर्षीय युद्ध

जिसकी जनसंख्या चालीस लाख से अधिक न थी, और उसके विरुद्ध आस्ट्रिया, फ्रांस, रूस, स्वीडन तथा अनेक छोटी-छोटी जर्मन रियासतों ने मिलकर एक संघ बना लिया था और उनकी आबादी प्रुशिया से कम से कम बीस गुनी थी। इस संघ के सदस्यों ने पहले से ही उसके राज्य से विभाजन की योजना बना डाली थी, जिसके अनुसार उसके अधिकार में केवल ब्रांडेनबर्ग का वह मूल प्रदेश ही छोड़ा जाता, जो १४१५ में सम्राट् होहेनजोलर्न वंश को मिला था।

प्रुशिया के इस छोटे से राज्य को यूरोपीय राजनीति के क्षेत्र में उतरे हुए कुछ भी समय न हुआ था कि सारा महाद्वीप मिलकर उसके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, किन्तु इससे फ्रेडरिक का साहस भंग नहीं हुआ।

सैक्सनी को विजय

उसने सैक्सनी को रौंद डाला। वह राज्य युद्ध में तटस्थ था; किन्तु उसकी उसने चिन्ता नहीं की; क्योंकि उसे उसके खजाने की आवश्यकता थी। यही नहीं, उसने अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराओं का उल्लंघन करते हुए सैक्सनी के नागरिकों को बलपूर्वक अपनी सेना में भरती कर लिया, जिससे उसकी संख्या बहुत बढ़ गई। जब इस अभूतपूर्व कार्य के लिए उसकी निन्दा की गई तो उसने उत्तर दिया कि मुझे तो इस बात का गर्व है कि इस सम्बन्ध में मैंने मौलिकता से काम लिया।

रौसबाख का युद्ध
नवम्बर ५, १७५७

इस प्रकार जो युद्ध आरम्भ हुआ, उसमें समय समय पर भयंकर उतार-चढ़ाव आये। फ्रेडरिक के राज्य पर दक्षिण से ऑस्ट्रिया ने और पूर्व से रूस ने आक्रमण किया। उनकी संख्या फ्रेडरिक की सेना से सदैव अधिक ही रही। उसे प्रतिरक्षात्मक युद्ध करना पड़ा, किन्तु अन्त में वह इस भयंकर स्थिति से छुटकारा पाने में सफल हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि उसकी सामरिक चालें बहुत तीव्र थीं और उसके शत्रुओं की बहुत धीमी। उसकी रण-नीति भी बहुत उच्चकोटि की थी और उधर उसके शत्रुओं में एकता और संगठन का नितान्त अभाव था। १७५७ में रौसबाख के युद्ध में उसकी विजय हुई। उसकी यह विजय अत्यधिक थी और आज भी उसका यश फीका नहीं पड़ा है। उसके पास केवल बीस हजार सैनिक थे और उसके मुकाबले में फ्रांसीसी तथा जर्मन सेना की संख्या पचपन हजार से कम न थी। युद्ध केवल डेढ़ घण्टे तक चला, जिसमें शत्रु के १६ हजार सैनिक बन्दी हुए, ७२ तोपें पकड़ी गईं और फ्रेडरिक को केवल एक हजार आदमियों का नुकसान हुआ। फ्रेडरिक ने जिस सेना को परास्त किया वह यूरोप में उस समय सबसे बढ़िया मानी जाती थी। इसलिए उसकी जीत से सारे राज्य में हर्ष और उत्साह की लहर दौड़ गई, यद्यपि हारी हुई सेना में जर्मनों की संख्या अधिक थी किन्तु इस बात की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। साधारण जनता की दृष्टि में विजय जर्मनों की फ्रांसीसियों के ऊपर थी। समस्त जर्मन जाति की उसके सम्बन्ध में अब तक यही धारणा है।

कुनर्सडोर्फ का युद्ध
१२ अगस्त सन् १७५९

दो वर्ष उपरान्त कुनर्सडोर्फ के युद्ध में फ्रेडरिक को आस्ट्रिया तथा रूस के हाथों लगभग उतनी ही भयंकर पराजय भुगतनी पड़ी। युद्ध के उपरांत उसने लिखा कि "मेरे नीचे दो घोड़े मारे गये, और यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अब भी जीवित हूँ।........४८ हजार सैनिकों में से मेरे पास केवल १३ हजार

बच रहे हैं.......मेरे पास अब कोई साधन शेष नहीं है, और सच तो यह है कि मैं सब कुछ खो बैठा हूँ।".......

आगे चलकर एक दूसरी पराजय के उपरान्त उसने लिखा, "मेरी तो यह इच्छा होती है कि फाँसी लगाकर मर जाऊँ; किन्तु हमें नाटक का अभिनय अन्त तक करना है।" इस मनोदशा में वह वर्ष प्रतिवर्ष युद्ध करता रहा। कभी हर्ष होता और कभी घोर निराशा। आगे पीछे चारों ओर पराजय ही पराजय दिखाई देती। जब तब कभी सफलता हाथ लग जाती, और दम मारने का मौका मिल जाता, कभी-कभी शत्रुओं की मूर्खता और निकम्मेपन से स्थिति संभल जाती, और फिर वही निराशा का अंधकार आ घेरता। किन्तु वह सदैव सुयोग और भाग्यलक्ष्मी की क्षणिक कृपा-दृष्टि की ताक में रहा, जैसे शत्रु-देश के राजा की मृत्यु और उसकी नीति में क्षणिक बाधा अथवा परिवर्तन। युद्ध की कहानी में घटनाओं की इतनी भर मार है कि उसका सारांश यहाँ देना कठिन है। उस लम्बे, झकझोर देने वाले और निराशाजनक युद्ध का आभास मात्र दिया जा सकता है। उसके दौरान में फ्रैडरिक सदैव अडिग, शांत, सचेत और सावधान रहा और तब तक डटा रहा जब तक उसके शत्रु स्वयं संधि के लिए तैयार न हो गये।

युद्ध का निराशाजनक रूप

इस युद्ध से उसके राज्य में विस्तार तो नहीं हुआ, किन्तु किसी प्रकार की कमी भी नहीं आई और यह ज्यों का त्यों बना रहा। साइलेसिया पर उसका अधिकार रहा, किन्तु उसे सैक्सनी छोड़ना पड़ा। युद्ध ने उसके चरित्र पर भी गहरा प्रभाव डाला। वह समय से पहले बूढ़ा हो गया, स्वभाव में पहले से भी अधिक कठोरता और कड़ुआहट आ गई और मनुष्य जाति से उसे घृणा हो गई, किन्तु विश्व इतिहास पर उसकी प्रतिभा की अमिट छाप लग गई। उसके राज्य की जनसंख्या घट गई और लोग बहुत गरीब तथा दुखी हो गये; किन्तु फिर भी वह विजेता था, और उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। फ्रैडरिक ने साइलेसिया को एक महीना में ही जीत लिया था और फिर उसे बनाये रखने के लिए कई वर्ष तक युद्ध किया। जीत में उसे केवल यश मिला; किन्तु वह असीम और अपार था।

सप्तवर्षीय युद्ध का अन्त

इस विजय के बाद फ्रैडरिक २३ वर्ष तक और जीवित रहा और निरन्तर अथक तथा सफल परिश्रम करता रहा। युद्ध से राज्य की जो क्षति हुई थी उसको शीघ्र पूरा करने और घावों को भरने के लिए उसने सैकड़ों तरीकों से काम लिया। दलदलों को सुखवाया, जंगल साफ करवाये, उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन दिया, स्कूल खुलवाये और विदेशी आगंतुकों का स्वागत किया और अपने यहाँ बसने के लिए स्थान दिया। ३००,००० से भी अधिक विदेशी आकर उसके राज्य में बस गये, जिनकी सहायता से उसने ८०० से अधिक गाँव बसाये। उसने सेना का पुनर्सगठन किया, राज्य के खजाने को भरा और विधि-संहिता को एक नया रूप दिया। धार्मिक मामलों में वह यूरोप का सबसे अधिक सहिष्णु शासक था। जैसुइटों को जब फ्रांस, पुर्तगाल स्पेन आदि कैथोलिक देशों से ही निकाल दिया गया और जब स्वयं पोप ने ही उसके संघ को भंग कर दिया तब फ्रैडरिक ने उन्हें अपने देश

शान्ति-काल में फ्रैडरिक

में आश्रय दिया। वह कहा करता था, "प्रुशिया में प्रत्येक व्यक्ति को, अपने-अपने ढंग से मुक्ति प्राप्त करने का अधिकार है।"

उसकी सरकार का निरंकुश रूप

फ्रैडरिक के राज्य में धार्मिक स्वतन्त्रता का ही अधिकार सब नागरिकों को समान रूप से मिला हुआ था, अन्यथा उसका शासन पूर्णतया निरंकुश और स्वेच्छाचारितापूर्ण था, किन्तु प्रायः वह उदारता से काम लिया करता था। उसके राज्य का रूप निरंकुश राजतन्त्र था, देश में सामंत वर्ग को विशेष अधिकार प्राप्त थे और साधारण किसान जनता अशक्त और निर्जीव थी। उसका राज्य सैनिक था और केवल सामंत ही बड़े-बड़े पदाधिकारी हो सकते थे। फ्रैडरिक गर्मियों में तीन बजे और जाड़ों में चार बजे उठता, दिनभर राजकाज के नीरस विषयों में लगा रहता; आमोद-प्रमोद के लिये उसके पास समय न था। वह कहा करता था, "मैं प्रुशिया के राजा का पहला नौकर हूँ" और उसने जीवन भर इसी भावना से कार्य किया। किन्तु उसके रोम-रोम में अत्याचार और निरंकुशता भरी हुई थी और उसके समय में प्रुशिया में स्वतन्त्रता की उस भावना का पूर्ण अभाव था, जिसने आगे चलकर यूरोप में स्वेच्छाचारिता पर अवलम्बित सड़ी-गली समाज-व्यवस्था से टक्कर ली।

पोलैंड का प्रथम विभाजन

१७७२ ई० में फ्रैडरिक ने अपने राज्य का विस्तार करने का एक नया तरीका ढूँढ़ निकाला। रूस और आस्ट्रिया के शासकों से मिलकर उसने पोलैंड का एक भाग छीन लिया और उसे आपस में बाँट लिया। चूँकि उस समय पोलैंड अपनी रक्षा करने में असमर्थ था, इसलिए यह काम बिना किसी कठिनाई के सम्पादित हो गया। फ्रैडरिक ने स्वयं बिना संकोच के स्वीकार किया कि यह काम लुटेरों और डाकुओं जैसा है; और बाद की पीढ़ियों ने उसके इस मत की पुष्टि की है। किन्तु दुनिया में अभी तक इस प्रकार के अपराधों का अन्त नहीं हुआ है।

फ्रैडरिक महान् तथा जर्मनी

१७८६ ई० में ७४ वर्ष की आयु में फ्रैडरिक का देहान्त हो गया। उस समय उसके राज्य का आकार तथा जनसंख्या उसके राज्यारोहण के समय से दूनी थी। अपने सब कामों में उसने जर्मनी के नहीं, बल्कि केवल प्रुशिया के ही हितों का ध्यान रक्खा। जर्मनी तो उसके लिये एक अमूर्त चीज थी और उसके व्यावहारिक मस्तिष्क में उसके लिये कोई स्थान न था। जर्मन भाषा को वह गवाँरू भाषा समझता था और कहा करता था कि उसमें न व्यवस्था और न लालित्य, और जर्मनी में साहित्य जैसी चीज तो नाम के लिये भी नहीं है। फिर भी प्रुशिया के बाहर समस्त जर्मन प्रदेशों में लोग उसे एक राष्ट्रीय नेता तथा वीर समझते थे; और जर्मन जाति के विचारों और कल्पना में जितना उच्च स्थान उसका है, उतना लूथर के बाद और किसी व्यक्ति को प्राप्त नहीं हुआ है। उसके व्यक्तित्व, उसके विचारों और तरीकों ने जर्मनी के विकास में एक शक्तिशाली तथा टिकाऊ तत्व का काम किया।

किन्तु निरंकुश सरकार के साथ एक दिक्कत रहती है। शक्तिशाली राजा

फ्रैडरिक का दुर्बल उत्तराधिकारी

का उत्तराधिकारी दुर्बल अथवा मूर्ख हो सकता है। फ्रैडरिक के सम्बन्ध में भी यही हुआ। उसकी मृत्यु के बाद फ्रैडरिक विलियम द्वितीय सिंहासन पर बैठा। उसके तथा उसके उत्तराधिकारी के समय में प्रुशिया को दुर्दिन देखने पड़े। फ्रैडरिक महान् के शासन-काल में उसका जितना उत्कर्ष तथा यश-विस्तार हुआ था, इस काल में उसकी प्रतिष्ठा और शक्ति को उतना ही भारी धक्का लगा।

रूस

यूरोपीय राजनीति में अन्य महान् शक्ति रूस की थी, जिसका राज्य आस्ट्रिया और प्रुशिया के उस ओर पूर्व में अनिश्चित दूरी तक फैला हुआ था।

नस्ल तथा धर्म

रूस का राज्य महाद्वीप में सबसे बड़ा था। किन्तु यूरोप की राजनीति में अठारहवीं शताब्दी से पहले उसका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रहा था। उस शताब्दी के दौरान में उसने यूरोप की बड़ी शक्तियों के समकक्ष स्थान प्राप्त कर लिया, और तब से उसका प्रभाव संसार में आज तक बराबर बढ़ता आया है। उसका पुराना इतिहास विचित्र था, और अनेक बुनियादी बातों में अपने पड़ौसियों से बिल्कुल भिन्न रहा था। यूरोप से वह अलग रहा, उसकी ओर न किसी ने ध्यान दिया और न उसके विषय में कुछ जानने का ही प्रयत्न किया। यूरोप से उसे जोड़ने वाले केवल दो ही बन्धन थे—नस्ल तथा धर्म। रूसी लोग स्लाव नस्ल के थे, इसलिए उनका पोल, बुहीमी, सर्ब तथा पूर्वी यूरोप में फैली हुई उस महान् परिवार की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध था। दसवीं शताब्दी में ही उन्होंने ईसाई धर्म अंगीकार कर लिया था, किन्तु वे ईसाइयत के उस रूप को मानने वाले न थे जो पश्चिम में प्रचलित था, बल्कि परम्परानिष्ठ यूनानी (ऑर्थोडौक्स ग्रीक) शाखा के अनुयायी थे जिसका केन्द्र कुस्तुन्तुनियाँ थी। जिन धर्म प्रचारकों ने रूस में ईसाइयत का प्रचार किया और उसके साथ-साथ सभ्यता की नींव डाली वे वहाँ कुस्तुन्तुनियाँ से ही गये थे। १४५३ में तुर्कों ने उस नगर पर अधिकार कर लिया। उसके बाद से रूसी लोग अपने को उस वैध उत्तराधिकारी और उसके विचारों तथा परम्पराओं का प्रतिनधि समझने लगे। कुस्तुन्तुनियाँ तथा पूर्वी साम्राज्य ने जिसकी वह राजधानी थी, रूसियों के विचारों तथा कल्पनाओं पर जादू जैसा प्रभाव डाला है और समय के साथ वह बराबर बढ़ता गया है।

एशियाई कबीलों द्वारा रूस की विजयें

यूरोप से रूस का सम्बन्ध बहुत हल्का था, इसलिये सैकड़ों वर्ष तक उसके इतिहास पर यूरोप का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत एशिया ने उस पर बहुत गहरा और नजदीकी असर डाला। उस काल में रूस मस्कोवी के राज्य[1] के नाम से प्रसिद्ध था। तेरहवीं शताब्दी में ऐशिया के बर्बर मंगोलों ने मस्कोवी को जीत लिया; उसके बाद लगभग तीन सौ वर्ष तक रूसी शासक दूरस्थ मंगोल खान को कर भेजते और अपनी अधीनता प्रकट करने के लिये समय-समय पर उसके दरबार में उपस्थित होते रहे। यद्यपि यह अधीनता उन्हें

1. राजधानी मास्को के नाम पर यह नाम पड़ा था।

निरन्तर खलती रही, किन्तु उसके प्रभाव से वे वच न सके। वे स्वयं अर्ध-एशियाई वन गये। रूस के लोग पूर्वी ढंग से लम्वी आस्तीनों वाले लम्वे लम्वे चोंगे, पगड़ी, और चप्पलें पहिनने लगे। वे लम्वे वाल और दाढ़ियाँ रखते। स्त्रियों को पुरुषों से अलग पर्दे के भीतर रक्खा जाता और जव वे वाहर जातीं तो वुर्के के भीतर चलतीं। जवान लड़की अपने पति को विवाह के दिन पहली वार देखती थी। जिसे हम लोग सामाजिक जीवन कहते हैं; उस तरह की वहाँ कोई चीज नहीं थी। सरकार पूर्वी ढंग की निरंकुश तथा अत्याचारमूलक थी और उसके अन्तर्गत मनुष्य के जीवन का कोई मूल्य नहीं था। जव कोई व्यक्ति शासक के सामने उपस्थित होता तो उसे पृथ्वी पर गिरकर और फर्श पर माथा टेक कर अभिवादन करना पड़ता; यह प्रथा कठिन ही नहीं वल्कि घोर अपमानजनक भी थी।

कालान्तर में रूसियों ने घोर संघर्ष के वाद मंगोलों का जुआ उतार फेंका, और फिर स्वयं एशिया के उत्तरी भाग को जिसे साइवेरिया कहते हैं विजय कर लिया। सन् १६१३ ई० में रूस के सिंहासन पर रामानोफ नामक एक नया राजवंश आया जिसने सन् १९१७ ई० तक देश पर शासन किया।

पीटर महान्, १६७२-१७२५

किन्तु यूरोप से रूसियों का सम्वन्ध पहले की भाँति वहुत क्षीण रहा; उसकी सभ्यता से वे वहुत कम परिचित थे; और न उसके सम्वन्ध में उन्होंने कुछ जानने का ही प्रयत्न किया। दुनिया से अलग रह कर वे प्रमाद के जीवन में ही मस्त रहे। किन्तु उनके पीटर महान् नामक राजा ने एक जोर का धक्का देकर उन्हें प्रमाद और आलस्य की पिछड़ी हुई अवस्था से सहसा जगा दिया। पीटर की गणना विश्व इतिहास के अत्यधिक कर्मठ और शक्तिशाली शासकों में है। उसका छत्तीस वर्ष (१६८९-१७२५) का शासन-काल रूस के इतिहास का एक महान् युग है। उसने अपने जीवन में ही महान् सफलताएँ नहीं प्राप्त कीं वल्कि राष्ट्रीय जीवन के भावी उद्देश्य को भी वहुत कुछ निश्चित कर दिया।

पीटर का वाल्यकाल

वाल्य-काल में पीटर को कोई गम्भीर ढंग की शिक्षा नहीं मिली, और न आत्मसंयम ही सिखाया गया। उसने उच्छृंखलता का जीवन विताया और हर प्रकार के लोगों से, जिनमें अनेक विदेशी थे, जान पहिचान तथा मित्रता करली। संयोगवश उसका उन यूरोपियों से सम्पर्क हो गया जो मास्को की विदेशी वस्ती में रहते थे; यह सम्पर्क उसके जीवन में एक निर्णायक तत्व सिद्ध हुआ और भविष्य में उसने जो कुछ किया उस पर उसकी अमिट छाप पड़ी। इन लोगों से उसने कुछ शिक्षा पाई जो अत्यधिक अनियमित और क्रमहीन, किन्तु मौलिक थी। उसने कुछ जर्मन और डच सीखी और थोड़ा-वहुत विज्ञान, गणित तथा रेखिकी से परिचय प्राप्त कर लिया। उसकी मुख्य दिलचस्पी यंत्रशास्त्र में थी। खेल में सिपाही का पार्ट व अन्य वालकों की अपेक्षा कहीं अधिक गम्भीरता से अदा किया करता। वह लकड़ी के किले वनाता और उन्हें दीवालों, खाइयों और वुर्जों से घेरा करता। उसके कुछ मित्र किले की रक्षा करते और वह स्वयं उस पर आक्रमण करता। कभी-कभी कुछ लोग मारे जाते और घायल तो कोई न कोई सदैव ही होता। युद्ध में सदैव यही होता है, लेकिन वालकों के युद्ध में नहीं। पीटर की

अल्पायु के कारण उसकी बहिन अविभाविका के रूप में राज-काज चलाती थी। उसके इस प्रकार के खेलों को देखकर वह कहा करती "बालक अपना मन बहला रहा है।" सैनिक खेलों के अतिरिक्त पीटर की नावों और जहाजों में इतनी रुचि थी कि उनमें वह अपने को प्रायः खो देता। बड़ी उत्सुकता के साथ उसने जहाज चलाने की कला सीखी, जितनी कुछ सीख सका, अधिक इसलिए नहीं, कि उस समय तक रूस में जहाज निर्माण और चलाने की कलाएँ आरम्भिक अवस्था में ही थीं।

पीटर का सिंहासनारोहण

जब पीटर को मालूम हुआ कि उसकी बहन सोफिया उसके अधिकारों की उपेक्षा करके स्वयं शासक बनना चाहती है तो उसने झूठी लड़ाइयाँ और जहाजरानी छोड़ दी, अपनी बहन को एक मठ में भिक्षुणी बना कर भेज दिया और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उसे यह विश्वास हो गया था कि रूस की अपेक्षा यूरोप हर बात में बढ़ा-चढ़ा है और पश्चिमी देशों के तरीकों और संस्थाओं के ज्ञान से रूस को हर प्रकार का लाभ होगा, हानि नहीं। इसलिए उसने सिंहासन पर बैठने के समय से लेकर अंत तक अपने पिछड़े हुये देश का इंगलैंड, हॉलैंड, फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि की प्रगतिशील और गौरवपूर्ण सभ्यता से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की नीति अपनाई।

यद्यपि उसके इरादे बहुत अच्छे थे, फिर भी यह काम सरल नहीं था। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों के साथ रूस का सीधा भौगोलिक सम्पर्क बिलकुल न था। उसके साथ स्वतंत्रतापूर्वक मिलना-जुलना उसके लिए सम्भव न था, क्योंकि उसके और उनके बीच में स्वीडन, पोलैंड और तुर्की के राज्य दीवार की भाँति खड़े हुये थे। रूस का देश चारों ओर स्थल से घिरा हुआ था, समुद्र उससे काफी दूर था। बाल्टिक के तट की वह पट्टी, जो आजकल रूस की है, उस समय स्वीडन के अधिकार में थी और काले सागर के पूरे तट पर तुर्की अधिकार जमाये हुए था। रूस के पास आर्केंजल का ही एक बन्दरगाह था, जो सुदूर उत्तर में स्थित है और नौ महीने बर्फ से ढका रहता है।

खुली खिड़की की नीति

जैसा कि पीटर कहा करता था, पश्चिम के साथ स्वतंत्रतापूर्वक और सरलता से मिलने-जुलने के लिए यह आवश्यक है कि रूस कहीं एक 'खिड़की खोले'। तभी उसमें बाहर से प्रकाश आ सकेगा। उसके पास यूरोपीय समुद्रों में स्थित ऐसा बन्दरगाह होना चाहिए, जो बर्फ से मुक्त हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पीटर ने तुर्की और स्वीडन से बार-बार लड़ाइयाँ लड़ीं। स्वीडन के साथ तो उसका युद्ध लगभग २० वर्ष तक चलता रहा और बीच में उसे कई करारी हारें खानी पड़ीं; किन्तु अंत में वह विजयी हुआ। उसने स्वीडन से बाल्टिक के तट पर स्थित कौरलैंड, स्थोनिया और लिवोनिया प्रांत जीत लिये और इस प्रकार एक लम्बी तटीय पट्टी पर उसका अधिकार हो गया। अब रूस के लिए जहाजी बेड़ा रखना और समुद्र द्वारा व्यापार करना सम्भव हो पाया। पीटर ने एक बार कहा था, "मुझे जमीन नहीं किन्तु पानी चाहिए।" अब उसके पास कम से कम अपना काम आरम्भ करने के लिए काफी समुद्र हो गया था।

इसी बीच में पीटर ने रूस के सबसे अच्छे परिवारों के ५० नव-

युवकों को पश्चिमी कलाओं और विज्ञान, विशेष कर जहाज और किले बनाने की कला, का अध्ययन करने के लिए इंगलैण्ड, हालैण्ड और वेनिस भेजा। बाद में उसने स्वयं पश्चिमी यूरोप की यात्रा की। वह उस सभ्यता को अपनी आँखों से देखना चाहता था, जिसकी श्रेष्ठता को वह स्वीकार कर चुका था और जिसे अपने देश पर लादने की उसकी बड़ी इच्छा थी। उसकी यह यात्रा बड़ी प्रसिद्ध थी। वह 'पीटर माइकैलोविच' के नाम से और एकदम गुप्त वेश में जगह जगह घूमा; मजदूर के कपड़े पहन कर उसने महीनों इंग्लैंड और हालैण्ड के जहाजी कारखानों में काम किया। उसे हरचीज में दिलचस्पी थी। उसने हर प्रकार के मिलों और कारखानों को देखा और इनके सम्बन्ध में सैकड़ों प्रश्न पूछे; "यह किस लिये है?" "यह कैसे चलती हैं?" उसने स्वयं अपने हाथ से कागज का एक टुकड़ा तैयार किया। अपने मनोरंजन के समय में उसने संग्रहालयों, नाट्यशालाओं, अस्पतालों और कला-कक्षों का भ्रमण किया। छापेखानों को चलते हुए देखा, शरीर-रचना-शास्त्र पर व्याख्यान सुने, थोड़ी सी शल्य-चिकित्सा सीखी और यहाँ तक कि दाँत उखाड़ने की साधारण और उपयोगी कला में भी दक्षता प्राप्त कर ली। वह अपने साथ कानूनों के संग्रह और अनेक प्रकार की मशीनों के नमूने लाया और उसने अनेक अफसर, मिस्त्री, छपाई का काम करने वाले शिल्पी, मल्लाह तथा हर प्रकार के मजदूर भरती किये और उन्हें रूस ले गया, जिससे कि वे उसके देशवासियों को ये कलाएँ सिखा सकें। वह समझता था कि हमारे लोगों को इन चीजों की बड़ी आवश्यकता है और उन्हें मन-बेमन यह सब सीखनी चाहिए।

पश्चिमी यूरोप में पीटर का भ्रमण

पीटर की अनुपस्थिति में शाही सेना के उन लोगों ने जो पुरानी व्यवस्था के भक्त थे और जिन्हें भावी परिवर्तनों के विषय में शंका थी, विद्रोह कर दिया। उसका समाचार पाकर वह तुरन्त ही स्वदेश लौट गया। उनको ऐसे बर्बरतापूर्ण दण्ड दिये गए कि सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनकी टुकड़ियाँ भंग कर दी गईं जिससे चारों ओर भय तथा आतंक स्थापित हो गया।

घरेलु विद्रोह का दमन

इसके बाद जार ने बड़ी लगन और परिश्रम के साथ रूस के रूपान्तर का कार्य आरम्भ किया। उसके सम्पूर्ण शासन-काल में यह प्रक्रिया जारी रही। इस सम्बन्ध में उसने पहले से सोच-विचार कर कोई सुनिश्चित योजना नहीं बनाई। पहले कोई एक सुधार किया, और फिर कोई दूसरा सुधार जनता पर लाद दिया। अन्त में राष्ट्रीय जीवन का कोई ऐसा पहलू न बचा, जिस पर इन सब सुधारों को थोड़ा बहुत प्रभाव न पड़ा हो। इनमें से कुछ का सम्बन्ध रहन-सहन और रीति-रिवाजों से था, कुछ का आर्थिक मामलों से और कुछ का शुद्ध राजनीतिक विषयों से। पीटर ने सर्वप्रथम लम्बी दाड़ियों और पूर्वीय फैशन के वस्त्रों पर हमला किया। इन चीजों को वह पुराने रूस के रूढ़िवाद का मुख्य प्रतीक समझता था और उस रूढ़िवाद को वह छिन्न-भिन्न करने पर तुला हुआ था। उसने स्वयं कैंची लेकर अपने अनेक सरदारों की बड़ी बड़ी दाड़ियाँ और मूँछें काट दीं और घुटनों की ओर से उनके लम्बे-लम्बे चोगे कतर दिये। वह कहा करता था कि इन लोगों को फैशन का नमूना पेश करना

पीटर का सुधार

चाहिये और वह नमूना फ्रांस और जर्मनी का हो। पहले तो उसने अपने इरादों का इस प्रकार प्रदर्शन किरा कि लोगों में सनसनी फैल गई; किन्तु वाद में कुछ ढील दे दी और लोगों को लम्बी दाढ़ियाँ रखने की आज्ञा दे दी किन्तु शर्त यह थी कि इन आभूषणों पर उन्हें कर देना पड़ेगा, जो स्थिति के अनुसार कम या अधिक होगा। इन सब सुधारों से रूस के पुरुषों की प्रकृति और चाल-ढाल में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया। लोगों ने उन्हें अपनाया भी इसलिये कि एक तो, सम्राट् प्रसन्न होता था, दूसरे, वह फैशन बन गई और फिर खर्च की वचत भी होती थी। नगरों के फाटकों पर नाई तथा दर्जी विठला दिये गये जिससे कि वे इन सुधारों की अवहेलना करने वाले सदस्यों के वस्त्रों और दाड़ी-मूछों को काट-काट कर यूरोपीय नमूने का बना दें। स्त्रियों को बुर्का पहनने से मना किया गया और उन्हें अंतःपुर की गुलामी से मुक्त कर दिया गया। पीटर ने फ्रांस और इंगलैण्ड की 'सभायें' देखी थीं, जिनमें स्त्रियाँ और पुरुष खुले आम नाचते और आपस में वातचीत करते थे। उसने रूस के पिताओं और पतियों को आज्ञा दी कि वे अपनी पुत्रियों और पत्नियों को सामाजिक उत्सवों में लाएँ। प्रारम्भ में तो ये चीज बड़ी भद्दी और भोंड़ी लगी; स्त्रियाँ कमरे के कोने में खड़ी रहती अथवा तनी हुई बैंठी रहतीं और पुरुष दरवाजे पर खड़े धूम्रपान करते रहते, किन्तु अन्त में इन क्षणिक और विनोदपूर्ण कठिनाइयों के वाद रूस में धीरे-धीरे यूरोपीय ढंग के समाज का जन्म हुआ। पीटर ने अपने पर्यटन में कुछ नृत्य सीख लिया था, अपने सरदारों को उसने स्वयं यह कला सिखाई। इनसे यह आशा की जाती थी कि वे इसी प्रकार दूसरों को नाचना सिखायेंगे।

सेना तथा जहाजी बेड़े का निर्माण

पीटर ने सरकार के राष्ट्रीय तथा स्थानोय अंगों को भी नये ढाँचे में ढालना चाहा और उसके लिए स्वीडन, जर्मनी आदि में प्रचलित ढंग तथा तरीके अपना लिये। परिणामस्वरूप राज्य पहले की अपेक्षा अधिक सुयोग्य और शक्तिशाली बन गया। जर्मनी का अनुकरण करके उसने सेना में वृद्धि की, उसे अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया और नये ढंग की शिक्षा दी। एक जहाजी वेड़े का निर्माण किया गया और धीरे-धीरे साधारण लोग भी राष्ट्रीय जीवन के लिए समुद्र का महत्त्व समझने लगे। देश का आर्थिक विकास प्रारम्भ हुआ। कारखाने खुले, खानें खोदी गईं और नहरें वनाई गईं। चर्च पर राज्य का कठोर नियन्त्रण स्थापित किया गया। देश में आवारा लोगों और डकैतों का जोर था, उनका दमन करने के लिये भी प्रयत्न किये गये। व्यावहारिक ढँग की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया। जुलियन जंत्री अपना ली गई और वहाँ लम्बे अर्से तक उसके अनुसार काम होता रहा, यद्यपि यूरोप के अन्य राष्ट्र वहुत पहले उसे छोड़ कर दूसरी अधिक सही जंत्री से काम लेने लगे। पीटर ने रूस की भाषा को भी सुधारने का काम हाथ में लिया। उसकी वर्णमाला में से ८ भारी-भरकम तथा निरर्थक अक्षर निकाल दिये और जो वच रहे उनके रूपों को सरल वना दिया।

सुधारों का विरोध

देश में इन सब सुधारों का विरोध हुआ। उसके कई कारण थे—लोग प्रमादी और स्वभाव से पुरातनपंथी और धार्मिक अन्धविश्वासों में जकड़े हुए थे। क्या पवित्र रूस के लिए अपने देशी रीति रिवाजों को छोड़ कर पश्चिम के धर्मद्रोहियों का अनुकरण करना पाप न था? किन्तु पीटर इन सब वाधाओं को कुचलता हुआ

आगे बढ़ता गया। विरोध को दबाने के लिए उसने उचित-अनुचित सभी तरीकों से काम लिया। उसे इस बात की चिन्ता न थी कि साधन कैसे हैं, उसे तो सफलता चाहिए थी। पीटर एक ऐसा व्यक्ति था, जो स्वयं अर्द्ध-बर्बर होते हुये भी उन लोगों को सभ्य बनाने पर तुला हुआ था जो उससे भी अधिक बर्बर थे।

चूँकि रूस की पुरानी राजधानी मास्को रूढ़िवाद का गढ़ थी और वहाँ के लोग पुराने विचारों और रीति-रिवाजों के भक्त थे इसलिए पीटर ने बाल्टिक के किनारे नई राजधानी बनाने का संकल्प किया। वहाँ एक नदी के मुहाने पर स्थित द्वीपों और दलदलों पर उसने सेंट-पीटर्स बर्ग के नगर का निर्माण किया। उसके बनने में इतनी जानें गई और लोगों को इतना कष्ट हुआ कि सुनकर हृदय काँपने लगता है। वहाँ पर जमीन से लेकर ऊपर तक हर चीज नये सिरे से बनाई गई। जंगल के जंगल काट कर दलदल में दबा दिये गये; जिससे कि नीव मजबूत हो जाए। काम के लिए हजारों किसानों और सैनिकों को भर्ती किया गया। प्रारम्भ में उनके पास औजार तक न थे, उन्हें लकड़ियों से ज़मीन खोदनी पड़ती और मिट्टी तथा कूड़ा-करकट अपने कोटों में भर कर फैंकना पड़ता। उनके खान-पान और आराम का भी ठीक प्रबन्ध न था; बेचारे खुली हवा में सोते, उन्हें भोजन भी पर्याप्त न मिलता। परिणामस्वरूप उनमें से हजारों मर गये और उनके स्थान पर नये हजारों फिर काम पर लगा दिये गये। पीटर के सम्पूर्ण शासन काल में यह कठिन, कष्टदायक तथा भद्दी व भौंड़ी क्रिया चलती रही। अन्त में उस साधन-सम्पन्न-स्वेच्छाचारी शासक की इच्छा सम्पूर्ण बाधाओं पर विजयी हुई। प्रत्येक बड़े जमींदार से नगर में एक निश्चित आकार और शैली का मकान बनाने को कहा गया। वहाँ आने वाले सब जहाजों के लिए आदेश था कि वे अपने साथ कुछ इमारती पत्थर लायें अन्यथा प्रवेश न करें। हालैंड के नगरों की भाँति सेंटपीटर्स बर्ग में भी अनेक नहरें थीं। जार ने सरदारों को अपने लिये नावें रखने की आज्ञा दी। उनमें से बहुत-से जिन्हें नाव चलाना अच्छी तरह न आता था, डूब कर मर गये। अपने शासन के अन्तिम दिनों में पीटर ने मास्को को छोड़ कर नीवा नदी पर स्थित सेंटपीटर्सबर्ग नगर को अपनी राजधानी बनाया। नगर पीटर की कल्पना, उसकी शक्ति और अध्यवसाय का अमर स्मारक है। उस समय न तो उसका कोई इतिहास था और न प्रगति को रोकने वाली परम्परा; केवल निर्बन्ध भविष्य उसके सामने फैला हुआ था। सचमुच यह नगर नये रूस की आत्मा की अभिव्यक्ति करता था, जिसके निर्माण के लिए पीटर ने जीवन भर अथक परिश्रम किया।

सेंटपीटर्सबर्ग का निर्माण

उस समय रूसी जनता की सबसे बड़ी आवश्यकता यह थी कि उजड्ड, असभ्य और पिछड़े हुए जीवन से निकलकर ऊपर उठना; उसे उठाने के लिये जो नेता मिला वह विचित्र था, क्योंकि वह स्वयं उजड्ड और असभ्य था। पीटर का स्वभाव अत्यधिक उग्र और जीवन बहुत ही उच्छंखला एवं असंयत और कार्य बर्बर तथा अत्याचारपूर्ण था। अपनी बहन, पत्नी, पुत्र आदि निकटतम सम्बन्धियों के साथ भी उसका व्यवहार राक्षसी था। अपने सुधारों को थोपने के लिये वह कोड़े, पहिये[1] और खूँटे[2] तक का

पीटर का चरित्र

1. शारीरिक यातनाएँ देने का एक यन्त्र।
2. खूँटे से बाँध कर जलाने की प्रथा।

प्रयोग करने से न चूकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि पीटर न तो आदर्श शासक ही था और न आदर्श पुरुष। किन्तु वर्बरता के बावजूद उसमें अनेक अच्छे गुण भी थे। साधारण परिस्थितियों में वह हँसमुख और स्पष्टवादी था। उसके स्वभाव में बनावट और आडम्बर न था। मित्रों के प्रति उसका व्यवहार बहुत ही वफादारी का और शत्रुओं के प्रति अत्यधिक कठोर और निर्मम होता। दबंग व्यक्तित्व, दैत्याकार डील-डौल, जंगली पशुओं जैसा पराक्रम, अकूत शक्ति और उद्देश्य की अनन्यता आदि पीटर के चरित्र की मुख्य विशेषताएँ थीं। रूस का रूपान्तर करने में उसे सफलता न मिली, और वह काम ऐसा था कि दो-एक पीढ़ी में पूरा भी न हो सकता था। किन्तु अपने जीवन-काल में वह अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य कर गया। उसने सेना की संख्या बढ़ा कर २०,००० कर दी, बाल्टिक तट द्वारा रूस को समुद्र से जोड़ दिया और इस प्रकार पश्चिम के बौद्धिक तथा सामाजिक दृष्टि से अधिक बढ़े-चढ़े देशों से सम्पर्क का मार्ग खोल दिया, लोगों का स्तर ऊँचा किया और भविष्य के लिए एक परम्परा छोड़ गया।

पीटर के उत्तराधिकारी

उसकी मृत्यु के बाद रूस के सिंहासन पर एक के बाद एक कई अत्यन्त साधारण योग्यता के व्यक्ति बैठे। उनके शासन-काल में ऐसा लगा कि जो कुछ भी प्रगति हुई थी वह भी छिन्न-भिन्न हो जायेगी। किन्तु एलिजाबेथ (१७४१ से ६२) के समय में रूस ने **सप्त-वर्षीय युद्ध** में महत्त्वपूर्ण भाग लिया, जिससे स्पष्ट हो गया कि अब रूस पिछड़ा हुआ रूस नहीं है। उसके बाद कैथेराइन द्वितीय (१७६२ से ९६) सिंहासन पर बैठी। उसने रूस का यूरोपीयकरण करने, राज्य का विस्तार करने और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसका स्थान उठाने की प्रक्रिया पूरी शक्ति के साथ जारी रक्खी और महान् सफलतायें प्राप्त कीं।

कैथेराइन का राज्यारोहण

कैथेराइन एक जर्मन राजकुमारी और जार पीटर तृतीय की पत्नी थी। पीटर एक निकम्मा शासक सिद्ध हुआ, इसलिए कुछ ही महीनों बाद सिंहासन से हटा कर मार डाला गया। सम्भवतः उसमें उसकी पत्नी का भी हाथ था। कैथेराइन साम्राज्ञी बन गई और उसने चौंतीस वर्ष तक बड़ी कठोरता के साथ शासन किया। उसे आमोद-प्रमोद तथा काम-काज दोनों का ही शौक था। बौद्धिक चीजों में उसकी रुचि थी, अथवा कम से कम उसका दिखावा अवश्य करती थी और उसे सन्तुष्ट करने के लिये वाल्तेयर, दिदरो तथा उस समय के अन्य प्रसिद्ध फ्रान्सीसी दार्शनिकों से पत्र-व्यवहार किया करती थी। उसकी कृपा तथा अनुग्रह के बदले में उन्होंने उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की और उसे 'उत्तर की सेमी रमीज' की उपाधि दी। कैथेराइन की अठारहवीं शताब्दी के उदार निरंकुश शासकों में गणना है। उसका जन्म पश्चिम हुआ था इसलिए रूस में पश्चिमी सभ्यता अपनाने की नीति से उसको स्वाभाविक सहानुभूति थी और उस नीति का उसने जोरदार समर्थन किया और भरपूर सहायता दी।

किन्तु इतिहास में कैथेराइन का मुख्य महत्त्व उसकी वैदेशिक नीति के कारण है। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, रूस तथा पश्चिमी यूरोप के बीच में स्वीडन

पोलैण्ड तथा तुर्की दीवार की भाँति खड़े हुये थे। पीटर ने पहले को जीतकर बाल्टिक के जल-मार्ग पर अधिकार कर लिया था। कैथेराइन ने अपने शासन का पूरा समय शेष दो को जीतने में लगाया। पौलैण्ड को हड़पने के लिये उसने अत्यन्त कुत्सित तरीके अपनाये और अपने उद्देश्य में असाधारण सफलता प्राप्त की। उसके राज्य-काल के अन्त तक पोलैण्ड पूर्णतया नष्ट हो गया और रूस की सीमायें पश्चिम में बढ़कर प्रशिया और आस्ट्रिया को छूने लगीं। कैथेराइन पोलैण्ड की भाँति तुर्की को छिन्न-भिन्न न कर सकी। किन्तु उससे उसने क्रीमिया का महाद्वीप और काकेशस से नीष्टर तक कालासागर का तट छीन लिया। उसका यह भी स्वप्न था कि तुर्की को यूरोप से बिलकुल खदेड़ दिया जाय और अपनी अधीनता में एक विजयन्तुन[1] साम्राज्य स्थापित करके भूमध्य सागर तक अपना प्रभाव कायम कर लिया जाय। किन्तु जैसा कि आगे के इतिहास से स्पष्ट है, कुस्तुन्तुनियाँ तक पहुँचने का स्वप्न स्वप्नमात्र बना रहा। फिर भी एक बात निश्चित हो गई। बाल्कान प्रायद्वीप के मानचित्र में हेर-फेर करने में और पूर्वी समस्या के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का निर्णय करने में रूस का प्रमुख हाथ रहेगा।

कैथेराइन की वैदेशिक नीति

प्रुशिया की भाँति रूस का यूरोप की राजनीति में प्रमुख स्थान प्राप्त करना अठाहरवीं शताब्दी का काम था। दोनों ही देश उस युग की विशेष उपज थे।

अठारहवीं शताब्दी में यूरोप की सरकारों की जो सामान्य दशा थी और उन्होंने जिस नीति का अनुसरण किया अथवा अनुसरण करने का प्रयत्न किया उसका हम जितने ही ध्यान से अध्ययन करते हैं उतना ही उनकी बुद्धिमत्ता और नैतिकता में हमारा विश्वास कम होता जाता है। प्रत्येक देश में राज्य का नियन्त्रण थोड़े से लोगों के हाथों में था और थोड़े लोगों के हित-साधन के लिये ही उसका संचालन किया जाता था। व्यावहारिक दृष्टि से इस सिद्धान्त को कोई नहीं स्वीकार करता था कि राज्य का प्रथम कर्तव्य, जहाँ तक हो सके, बहुसंख्यक जनता का कल्याण करना है। राज्य का कर्तव्य था उचित अथवा अनुचित तरीकों से अपनी भूमि का विस्तार करना, और शासकों तथा विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के सुख और संतोष के लिए साधन जुटाना। जिसे हम लोकतन्त्र कहते हैं उसका यूरोप में चिन्ह तक देख सकना कठिन था। यूरोप का संगठन अभिजाततन्त्रीय था, और अभिजात वंशों के ही हित के लिये। इंगलैण्ड में भी यही बात थी, यद्यपि वहाँ संसद थी और लोगों को कुछ स्वतन्त्रता भी मिली हुई थी; यहाँ तक कि वेनिस, जनेवा के गणराज्यों में और स्विट्जरलैण्ड के कैंटनों में भी यही स्थिति थी।

यूरोपीय राजनीति का निम्न स्तर

आक्रामक भावना

सर्वत्र अभिजात वंशों के हाथ में शक्ति

प्रत्येक देश में बहुसंख्यक जनता की दशा की ओर ही सबसे कम ध्यान दिया जाता था। उसकी स्थिति सर्वत्र शोचनीय थी, यद्यपि विभिन्न देशों में थोड़ा-बहुत

1. Byzantine.

जनता की शोचनीय दशा

अन्तर देखने को मिलता था। सर्वत्र किसानों की ही संख्या अधिक थी; वे बुरी तरह पिसे हुये थे और चारों ओर से ऐसे कानूनों, संस्थाओं और रूढ़ियों से घिरे हुये थे जिनका उनके हित और कल्याण से कोई सम्बन्ध न था। करों के असह्य बोझ ने उनकी आर्थिक रीढ़ तोड़ दी थी; उनके अपने निर्वाह के लिये उनके पास अपनी आय का बहुत थोड़ा सा अंश बच पाता था।

अर्धदास प्रथा का सर्वत्र प्रचार

यूरोप भर में आम जनता को अत्यन्त प्रारम्भिक कोटि तक की वैयक्तिक स्वतन्त्रता न प्राप्त थी। फ्रांस और इंगलैण्ड को छोड़कर अन्य सभी देशों में अर्धदास प्रथा का बोलबाला था, उसके बन्धनों से प्रजा का जीवन-रस सूख गया था और वह पड़ी कराह रही थी। कोई स्वप्न में भी न सोचता था कि साधारण लोगों को भी शिक्षा पाने का अधिकार है जिससे कि वे जीवन संग्राम के लिये भली-भाँति तैयार हो सकें। यूरोपीय समाज की बहुसंख्यक मानवता का जीवन दुःखी, परतन्त्र, अरक्षित और अविकसित था; उसके लिये विकास तथा उन्नति के मार्ग चारों ओर से बन्द थे।

निराशाजनक दृष्टिकोण

हमने देखा कि यूरोप की सरकारें अपने उन वर्गों के हितों की ओर तनिक भी ध्यान न देती थीं जो सबसे दुर्बल और संख्या में सबसे अधिक थे तथा जिनके कल्याण पर राष्ट्रों की समृद्धि पूर्णरूप से निर्भर थी। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वे अपने अन्य कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन तथा निर्वहन अधिक समझदारी और न्याय की भावना से करती थीं। इसका भी उत्तर है, नहीं। प्रत्येक राज्य में असन्तुष्ट तथा उपद्रवी लोगों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही थी, और चिन्ताजनक होती जा रही थी। समसामयिक विचारकों के लेखों से स्पष्ट है कि उन्हें भविष्य बड़ा अन्धकारमय और निराशाजनक दिखाई देता था।

राजकीय आय-व्यय का कुप्रबन्ध

सर्वसाधारण में यह भावना फैल रही थी कि क्रान्ति के ज्वालामुखी फूट पड़ने को है, और विपत्तियों तथा सत्यानाश का वज्र गिरने वाला है। किसी भी देश में राज्य की दशा सन्तोषप्रद न थी। शासक लोग दिखावटी तड़क-भड़क और शान-शौकत पर, सुन्दर भवनों तथा स्मारकों पर, अपने नाना प्रकार के प्रियजनों पर और सेनाओं तथा आये दिन होने वाले युद्धों पर अन्धाधुन्ध धन खर्च करते और जनता का गाढ़ी कमाई पानी की तरह बहाते थे; फलतः अनेक राष्ट्रों की वित्त-व्यवस्था अव्यवस्थित तथा छिन्न-भिन्न हो रही थी। काम चलाने के लिये सरकारों को कर्ज का सहारा लेना पड़ता, और राजकीय आय का अधिकांश व्याज चुकाने में चला जाता। घाटा कभी पूरा ही न होता था। इंगलैण्ड को छोड़कर अन्य किसी राज्य में बजट (राष्ट्रीय आय-व्यय का सरकारी चिट्ठा) नाम की कोई चीज न थी।

जनता को पीसने वाली कर-व्यवस्था

करों का बोझ दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था! उनके वितरण का तरीका अत्यन्त घृणित था। यूरोप भर में सर्वत्र यही रिवाज था कि जो व्यक्ति जितना ही अधिक धनी होता उसे उतना ही कम कर देना पड़ता। जब नये कर लगाये जाते तो सामन्तों तथा मध्यवर्ग के लोगों को उनसे आंशिक अथवा पूर्ण छूट मिल जाती। इसलिये उनका सारा बोझ नीचे के वर्गों पर पड़ता और वे कुचल जाते।

ये बुराइयाँ इतनी स्पष्ट और प्रत्यक्ष थीं कि कभी-कभी राजकीय अधिकारियों को भी उनके सुधार की ओर ध्यान देना पड़ता। विभिन्न देशों में कई ऐसे शासक हुए जिन्होंने स्थिति को सुधारने के लिये ईमानदारी से प्रयत्न किये थे। ये अठाहरवीं शताब्दी के "उदार निरंकुश शासक" थे। इन्होंने समाज को ऊपर से ठीक करने की चेष्टा की। किन्तु उन्हें स्थायी अथवा महान् सफलता नहीं मिली; इसलिये आमूल परिवर्तन की आवश्यकता पूर्ववत् बनी रही और आगे चलकर फ्रांसीसियों ने नीचे से सुधार करने का बीड़ा उठाया।

उदार निरंकुशवाद

यही नहीं कि यूरोप की सरकारें सामान्यतः उन विषयों में अयोग्य तथा निकम्मी थीं जिनका उनकी प्रजा के आर्थिक, बौद्धिक और नैतिक साधनों के पूर्ण तथा व्यवस्थित विकास से सम्बन्ध था; यही नहीं कि दमन तथा उत्पीड़न पर आधारित उनके शासन में स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के लिये कोई स्थान न था बल्कि एक दूसरे के प्रति व्यवहार में भी वे सिद्धान्तहीन थीं और उचित, अनुचित का विचार न करती थीं। राज्य को शक्ति का रूप माना जाता था, न कि एक ऐसा नैतिक प्राणी जिस पर नैतिकता के नियम तथा प्रतिबन्ध लागू होते हैं शासक का गौरव इसी में था कि दूसरे राष्ट्रों और यहाँ तक कि दूसरे राजाओं के अधिकारों की उपेक्षा करके अपने राज्य का विस्तार करें। जिन नियमों से उनके पारस्परिक सम्बन्ध नियन्त्रित होते थे वे वास्तव में आदिम किस्म के थे। लक्ष्य-प्राप्ति का प्रत्येक साधन वैध माना जाता था। सफलता ही उचित तथा अनुचित का मापदण्ड थी। रूस की कैथेराइन जिसकी गणना "उदार" शासकों में है, कहा करती थी, कि "कुछ न पाने का अर्थ है खो देना।" राजकीय क्षेत्र में प्रमुख धारणा यह थी कि राज्य का बड़प्पन उसके भौमिक विस्तार से आँका जाता है, न कि उसकी जनता की स्वतन्त्रता, समृद्धि और शिक्षा के अनुपात से। इस धारणा के प्रचलित होने का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी पड़ोसी की कठिनाइयों, दुर्बलताओं और विपत्तियों से लाभ उठाने को सदैव तत्पर रहता। सेनाएं सदैव झपट्टा मारने को तैयार रहतीं और राजनैतिक प्रत्येक गन्दी चाल चलने तथा घृणित से घृणित अपराध करने की ताक में रहते, यदि उससे कुछ लाभ होता दिखाई देता। यदि सन्धियों को तोड़ने से लाभ होता तो लोग उन्हें फाड़ फेकने में तनिक भी न हिचकिचाते। फ्रेडरिक द्वितीय कहा करता था, "बिना कारण अपने वचन को भंग करना भूल है, क्योंकि ऐसा करने से लोग समझेंगे कि तुम्हारी बुद्धि चंचल है, और गम्भीरता का अभाव है।" अपने वचन का पालन करना राजा लोग अपना कर्त्तव्य न समझते थे। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय समझौते और करार बड़े अनिश्चित होते थे।

यूरोप की सरकारों का रूप

भौतिक सफलता ही आचरण का मापदण्ड

शासकों की विश्वासघात की नीति

विश्वासघात की यह नीति कोई नई चीज न थी। अठारहवीं शताब्दी का इतिहास ऐसे शासकों से भरा पड़ा है जिन्होंने बहुत ही स्पष्ट अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों का निर्लज्जतापूर्वक उल्लघंन किया। राष्ट्रों के बीच

जनता की शोचनीय दशा

अन्तर देखने को मिलता था। सर्वत्र किसानों की ही संख्या अधिक थी; वे बुरी तरह पिसे हुये थे और चारों ओर से ऐसे कानूनों, संस्थाओं और रूढ़ियों से घिरे हुये थे जिनका उनके हित और कल्याण से कोई सम्बन्ध न था। करों के असह्य बोझ ने उनकी आर्थिक रीढ़ तोड़ दी थी; उनके अपने निर्वाह के लिये उनके पास अपनी आय का बहुत थोड़ा सा अंश बच पाता था।

अर्धदास प्रथा का सर्वत्र प्रचार

यूरोप भर में आम जनता को अत्यन्त प्रारम्भिक कोटि तक की वैयक्तिक स्वतन्त्रता न प्राप्त थी। फ्रांस और इंगलैण्ड को छोड़कर अन्य सभी देशों में अर्धदास प्रथा का बोलबाला था, उसके बन्धनों से प्रजा का जीवन-रस सूख गया था और वह पड़ी कराह रही थी। कोई स्वप्न में भी न सोचता था कि साधारण लोगों को भी शिक्षा पाने का अधिकार है जिससे कि वे जीवन संग्राम के लिये भली-भाँति तैयार हो सकें। यूरोपीय समाज की बहुसंख्यक मानवता का जीवन दु:खी, परतन्त्र, अरक्षित और अविकसित था; उसके लिये विकास तथा उन्नति के मार्ग चारों ओर से बन्द थे।

निराशाजनक दृष्टिकोण

हमने देखा कि यूरोप की सरकारें अपने उन वर्गों के हितों की ओर तनिक भी ध्यान न देती थीं जो सबसे दुर्बल और संख्या में सबसे अधिक थे तथा जिनके कल्याण पर राष्ट्रों की समृद्धि पूर्णरूप से निर्भर थी। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वे अपने अन्य कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन तथा निर्वहन अधिक समझदारी और न्याय की भावना से करती थीं। इसका भी उत्तर है, नहीं। प्रत्येक राज्य में असन्तुष्ट तथा उपद्रवी लोगों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही थी, और चिन्ताजनक होती जा रही थी। समसामयिक विचारकों के लेखों से स्पष्ट है कि उन्हें भविष्य बड़ा अन्धकारमय और निराशाजनक दिखाई देता था। सर्वसाधारण में यह भावना फैल रही थी कि क्रान्ति के ज्वालामुखी फूट पड़ने को है, और विपत्तियों तथा सत्यानाश का वज्र गिरने वाला है। किसी भी देश में राज्य की दशा सन्तोषप्रद न थी। शासक लोग दिखावटी तड़क-भड़क और शान-शौकत पर, सुन्दर भवनों तथा स्मारकों पर, अपने नाना प्रकार के प्रियजनों पर और सेनाओं तथा आये दिन होने वाले युद्धों पर अन्धाधुन्ध धन खर्च करते और जनता का गाढ़ी कमाई पानी की तरह बहाते थे; फलत: अनेक राष्ट्रों की वित्त-व्यवस्था अव्यवस्थित तथा छिन्न-भिन्न हो रही थी। काम चलाने के लिये सरकारों को कर्ज का सहारा लेना पड़ता, और राजकीय आय का अधिकांश व्याज चुकाने में चला जाता। घाटा कभी पूरा ही न होता था। इंगलैण्ड को छोड़कर अन्य किसी राज्य में बजट (राष्ट्रीय आय-व्यय का सरकारी चिट्ठा) नाम की कोई चीज न थी। करों का बोझ दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था!

राजकीय आय-व्यय का कुप्रबन्ध

जनता को पीसने वाली कर-व्यवस्था

उनके वितरण का तरीका अत्यन्त घृणित था। यूरोप भर में सर्वत्र यही रिवाज था कि जो व्यक्ति जितना ही अधिक धनी होता उसे उतना ही कम कर देना पड़ता। जब नये कर लगाये जाते तो सामन्तों तथा मध्यवर्ग के लोगों को उनसे आंशिक अथवा पूर्ण छूट मिल जाती। इसलिये उनका सारा बोझ नीचे के वर्गों पर पड़ता और वे कुचल जाते।

ये बुराइयाँ इतनी स्पष्ट और प्रत्यक्ष थीं कि कभी-कभी राजकीय अधिकारियों को भी उनके सुधार की ओर ध्यान देना पड़ता। विभिन्न देशों में कई ऐसे शासक हुए जिन्होंने स्थिति को सुधारने के लिये ईमानदारी से प्रयत्न किये थे। ये अठाहरवीं शताब्दी के "उदार निरंकुश शासक" थे। इन्होंने समाज को ऊपर से ठीक करने की चेष्टा की। किन्तु उन्हें स्थायी अथवा महान् सफलता नहीं मिली; इसलिये आमूल परिवर्तन की आवश्यकता पूर्ववत् बनी रही और आगे चलकर फ्रांसीसियों ने नीचे से सुधार करने का बीड़ा उठाया।

उदार निरंकुशवाद

यही नहीं कि यूरोप की सरकारें सामान्यत: उन विषयों में अयोग्य तथा निकम्मी थीं जिनका उनकी प्रजा के आर्थिक, बौद्धिक और नैतिक साधनों के पूर्ण तथा व्यवस्थित विकास से सम्बन्ध था; यही नहीं कि दमन तथा उत्पीडन पर आधारित उनके शासन में स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के लिये कोई स्थान न था बल्कि एक दूसरे के प्रति व्यवहार में भी वे सिद्धान्तहीन थीं और उचित, अनुचित का विचार न करती थीं। राज्य को शक्ति का रूप माना जाता था, न कि एक ऐसा नैतिक प्राणी जिस पर नैतिकता के नियम तथा प्रतिबन्ध लागू होते हैं। शासक का गौरव इसी में था कि दूसरे राष्ट्रों और यहाँ तक कि दूसरे राजाओं के अधिकारों की उपेक्षा करके अपने राज्य का विस्तार करें। जिन नियमों से उनके पारस्परिक सम्बन्ध नियन्त्रित होते थे वे वास्तव में आदिम किस्म के थे। लक्ष्य-प्राप्ति का प्रत्येक साधन वैध माना जाता था। सफलता ही उचित तथा अनुचित का मापदण्ड थी। रूस की कैथेराइन जिसकी गणना "उदार" शासकों में है, कहा करती थी, कि "कुछ न पाने का अर्थ है खो देना।" राजकीय क्षेत्रों में प्रमुख धारणा यह थी कि राज्य का बड़प्पन उसके भौमिक विस्तार से आँका जाता है, न कि उसकी जनता की स्वतन्त्रता, समृद्धि और शिक्षा के अनुपात से। इस धारणा के प्रचलित होने का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी पड़ौसी की कठिनाइयों, दुर्बलताओं और विपत्तियों से लाभ उठाने को सदैव तत्पर रहता। सेनाएँ सदैव झपट्टा मारने को तैयार रहतीं और राजनैतिक प्रत्येक गन्दी चाल चलने तथा घृणित से घृणित अपराध करने की ताक में रहते, यदि उससे कुछ लाभ होता दिखाई देता। यदि सन्धियों को तोड़ने से लाभ होता तो लोग उन्हें फाड़ फेंकने में तनिक भी न हिचकिचाते। फ्रैडरिक द्वितीय कहा करता था, "बिना कारण अपने वचन को भंग करना भूल है, क्योंकि ऐसा करने से लोग समझेंगे कि तुम्हारी बुद्धि चंचल है, और गम्भीरता का अभाव है।" अपने वचन का पालन करना राजा लोग अपना कर्त्तव्य न समझते थे। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय समझौते और करार बड़े अनिश्चित होते थे।

यूरोप की सरकारों का रूप

भौतिक सफलता ही आचरण का मापदण्ड

शासकों की विश्वासघात की नीति

विश्वासघात की यह नीति कोई नई चीज न थी। अठारहवीं शताब्दी का इतिहास ऐसे शासकों से भरा पड़ा है जिन्होंने बहुत ही स्पष्ट अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों का निर्लज्जतापूर्वक उल्लघंन किया। राष्ट्रों के बीच

राज्यों के बीच सुरक्षा का अभाव

सम्मान की कोई भावना न थी। किसी राज्य के ऐसे कोई अधिकार न थे जिनका दूसरे राज्य सम्मान करने पर बाध्य होते। उस युग के सभी राजा यह मानते थे कि हम दैवी अधिकार से अथवा ईश्वर की इच्छा से शासन करते हैं। "प्रबुद्ध" तथा "उदार" कहलाने वाले शासक भी इस नियम के अपवाद न थे। यद्यपि ऊपर से देखने में राजकीय सत्ता की दैवी उत्पत्ति का यह सिद्धान्त बहुत प्रभावोत्पादक जान पड़ता था और साधारण जनता पर इसका रौब भी बहुत पड़ता होगा, किन्तु इस विश्वास के कारण राजा लोग एक दूसरे के अधिकारों और सत्ता को पवित्र तथा उलंघनीय मानते हों और उसका अतिक्रमण करने से डरते हों, ऐसी बात न थीं; और न इस कारण से उस शासन में संसारिकता का अभाव अथवा विशिष्ट पवित्रता ही देखने को मिलती थी। राजनीति तथा प्रशासन में वे जिन सिद्धान्तों का अनुसरण करते वे सांसारिकता से ओत-प्रोत थे। एक ओर तो वे अपनी शक्ति की वृद्धि करने पर तुले रहते, और दूसरों की शक्ति की जड़ें खोदने के उपाय सोचते रहते, उनके मन में यह विचार कभी न आता कि अन्य राजाओं की शक्ति दैवी इच्छा पर निर्भर है, इसलिए हम उसे उखाड़ फेंकने का प्रयत्न न करें, अन्यथा पाप लगेगा। अठारहवीं शताब्दी में आक्रमण युद्धों के परिणामस्वरूप अनेक राजा अपदस्थ किये गये, राज्य समूल नष्ट कर दिये गये, और सीमाएँ बार-बार बदली गईं। एक और भी बात स्मरण रखने की है। उस युग के विजेता विजित देशों की जनता को जी भर कर लूट करते और मनमाने कर उगाहते, और यहाँ तक कि सेनापति भी इतना धन कमा लेते कि सुन कर लोग दंग रह जाते। यह कहना गलत होगा कि फ्रांस के क्रान्तिकारियों ने अथवा नेपोलियन ने यूरोप में इस प्रकार की परिपाटियाँ कायम कीं। युद्ध और राजनीति का नैतिक स्तर पहले से ही इतना नीचा था कि वे प्रयत्न करने पर भी उसे उससे नीचा नहीं गिरा सकते थे। अधिक से अधिक वे अपने पूर्वाधिकारियों का अनुकरण कर सकते थे।

अगणित आक्रामक युद्ध

यूरोप की इस पुरातन व्यवस्था को फ्रांस में घुमड़ रहे तूफान ने ऐसा धक्का दिया कि वह धड़ाम से गिर कर चकनाचूर हो गई। किन्तु वास्तविकता यह थी कि उस व्यवस्था की जड़ें पहले से ही खोखली हो गई थीं, जिन स्तम्भों पर वह खड़ी हुई थी, उनको उसके रक्षकों ने तथा उससे लाभ उठाने वालों ने ही नष्ट कर दिया था। पुरातन व्यवस्था के समर्थकों ने उन आधारभूत सिद्धान्तों के ही प्रति द्रोह किया जिन पर वह टिकी हुई थी। ये सिद्धान्त थे—स्थापित व्यवस्था, पुरातन, परम्परागत तथा अतीत से आई हुई सभी वस्तुओं के प्रति सम्मान, वैध अधिकारों तथा समझौतों और सन्धियों का पालन और सत्ताधारियों के प्रति भक्ति। यूरोप के शासक जिन सिद्धान्तों को पवित्र कहने के अभ्यस्थ थे और जिनमें स्वयं उनकी सुरक्षा निहित थी उनमें उनकी कितनी कम अवस्था थी यह अठारहवीं शताब्दी की महान घटनाओं से स्पष्ट है; उदाहरण के लिये **आस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्ध** और पौलैण्ड के **विभाजन** का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, प्रुशिया के फ्रेडरिख ने फ्रांस

पुरातन व्यवस्था सर्वत्र संकट में

शासकों में विश्वास तथा सम्मान की भावना का अभाव

की सहायता से आस्ट्रिया की शासक मैंरिया थैरेसा से एक बड़े तथा महत्त्वपूर्ण प्रान्त को छीन लिया था, जबकि प्रुशिया तथा फ्रांस[1] दोनों ही ने उस विशेष रूप से पवित्र सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किये थे जिसके अनुसार मेरिया थैरेसा के अधिकार स्पष्ट ढंग से तथा बल देकर स्वीकार कर लिये गये थे। किन्तु फ्रैडरिक को तो वह प्रान्त चाहिये था, इसलिये उसने उसे छीन लिया और अपने कब्जे में रक्खा। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि यूरोप के शासक उन वैध दायित्वों को ठुकराने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते, जिनसे उनकी महत्वाकांक्षाओं के पूरे होने में बाधा पड़ती।

प्रुशिया द्वारा साइलेशिया का हड़पना

दूसरा उदाहरण पोलैण्ड का है। उसका विभाजन अठारहवीं शताब्दी की सबसे अन्यायपूर्ण घटना है। भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से पोलैण्ड रूस के बाद यूरोप की सबसे बड़ी रियासत थी। उसका इतिहास भी बहुत पुराना था किन्तु उसकी सरकार पूर्णतया दुर्बल तथा निकम्मी थी। इसलिये १७७२ में प्रुशिया, आस्ट्रिया और रूस ने उस पर आक्रमण कर दिया और उसके बड़े-बड़े भागों को छीन कर अपने-अपने राज्यों में मिला लिया। आक्रमण का कारण उनके लालच के अतिरिक्त और कुछ न था। बीस वर्ष उपरान्त १७९३ और १७९५ में उन्होंने अपने इस कुकृत्य को फिर दोहराया और उस प्राचीन राज्य का समूल नाश कर दिया। इसी से स्पष्ट है कि यूरोप के शासकों को स्थापित संस्थाओं और स्थापित सत्ता के प्रति कितना आदर था।

पोलैण्ड का सर्वनाश

यूरोप में केवल दो ही चीजों का महत्त्व था—शक्ति तथा शासक की इच्छा। किन्तु शक्ति तथा इच्छा ऐसी चीजें हैं कि उनका प्रयोग क्रान्ति के लिये पुरानी तथा पवित्र व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिये भी वैसे ही सरलता से किया जा सकता है जैसे कि उसकी रक्षा के लिये। इसलिये नेपोलियन ने जो कुछ किया उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। उसके सामने फ्रेडरिक महान् और रूस की कैथराइन के उदाहरण थे और उन्हें मरे भी अभी बहुत दिन न हुए थे।

शक्ति का बोलबाला

अन्तिम दशक में अठारहवीं शताब्दी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। वह दशक विश्व इतिहास का एक स्मरणीय युग है। फ्रांस की पुरातन व्यवस्था का जो उन्मूलन हुआ उसने सम्पूर्ण यूरोप की पुरातन व्यववस्था को बुरी तरह झकझोर दिया। फ्रांस ने अपने विस्मयकारी कार्यों द्वारा अगली चौथाई शताब्दी पर यूरोप के इतिहास को नियन्त्रित तथा संचालित किया।

पुरातन व्यवस्था का चकनाचूर होना

अध्याय २

फ्रांस में पुरातन व्यवस्था

फ्रांस की क्रान्ति ने राज्य के सम्बन्ध में एक नई धारणा को जन्म दिया, राजनीति तथा समाज के विषय में नए सिद्धान्त प्रतिपादित किए, जीवन का एक नया दृष्टिकोण सामने रक्खा और एक नई आशा तथा विश्वास उत्पन्न किया। इन चीजों से बहुसंख्यक जनता की कल्पना और विचार प्रज्ज्वलित हुए; उनमें एक अद्वितीय उत्साह का संचार हुआ तथा असीम आशाओं ने उन्हें अनुप्राणित किया। अतः वे उत्साह के साथ उन लोगों के विरुद्ध एक लम्बे संघर्ष में जुट गए जो परिवर्तनों से डरते अथवा घृणा करते थे, जो विद्यमान व्यवस्था से सन्तुष्ट थे और जिनके लिए जीवन की परिस्थितियाँ सुखमय थीं। शीघ्र ही फ्रांस और समस्त यूरोप दो खेमों में बँट गया। एक और सुधारवादी थे जो उग्र परिवर्तनों में विश्वास करते थे, और दूसरी ओर अनुदार अथवा पुरातनपंथी लोग थे जो पुरानी तथा परम्परागत व्यवस्था को ज्यों का त्यों कायम रखना चाहते थे, या तो इसलिये कि उस व्यवस्था से उन्हें लाभ था, अथवा इसलिये कि उनका विश्वास था कि लोग उन्हीं परिस्थितियों में अधिक सुखी और समृद्ध होते है जिनमें वे पहले से रहते आये हैं और जिनसे वे भली भाँति परिचित होते हैं, नई चीजें और समस्याएँ कितनी ही आदर्श क्यों न हों, किन्तु अपरिचित तथा अनिश्चित होने के कारण लोग उनसे डरते हैं।

फ्रांसीसी क्रान्ति

उदारवादियों का क्रान्ति की ओर झुकाव

अनुदारवादियों को क्रान्ति से घृणा

फ्रांस की क्रान्ति को समझने के लिए उन परिस्थितियों और संस्थाओं का परीक्षण करना आवश्यक है जिन्होंने उसको जन्म दिया। दूसरे शब्दों में, हमें फ्रांस की पुरातन व्यवस्था पर दृष्टिपात करना है; तभी हमारा दृष्टिकोण ठीक हो सकता है और तभी हम चीजों का सही मूल्यांकन और आलोचना कर सकते हैं। क्रांति ने फ्रांस के जीवन में एक आमूल रूपांतर कर दिया, अर्थात् यह कहना

क्रान्ति द्वारा सामन्तवाद का विनाश और जनतन्त्र की संस्थापना

चाहिये कि उसने शताब्दियों से चली आई सामंती व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और आधुनिक लोकतन्त्रीय व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया। फ्रांस का समस्त राजकीय और सामाजिक ढाँचा एक नये साँचे में ढाला गया तथा नये व दूरगामी सिद्धान्तों की बुनियाद पर खड़ा किया गया।

सामंती व्यवस्था का रूप

सामंती व्यवस्था की मुख्य विशेषता यह थी कि समस्त समाज वर्गों में विभक्त था और उच्च वर्गों को निम्न वर्गों के मुकाबिले में विशेषाधिकार प्राप्त थे; नई अथवा लोकतन्त्रीय व्यवस्था का सार है—वर्गगत भेद-भावों का उन्मूलन, विशेषाधिकारों का अंत और यथासंभव मानवीय समता के सिद्धान्त की स्थापना।

पुरातन व्यवस्था का आधार विशेषाधिकार

पुरातन व्यवस्था पर दृष्टि डालने पर हमें सबसे पहली चीज यह देखने को मिलती है कि समाज में अनेक वर्गों को जो विशेपाधिकार मिले हुए थे उनसे सामान्य जनता का घोर उत्पीड़न होता था। समाज में ऐसे विशेपाधिकारों की भरमार थी। उनसे जीवन सर्वत्र और निरन्तर प्रभावित होता रहता था। विभिन्न वर्गों में अन्तर और भेद-भाव इतने अधिक थे कि थोड़े से शब्दों में सामाजिक ढाँचे का चित्र प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। ब्यौरे के झमेले में न पड़ कर हम मोटे तौर पर संक्षेप यह कह सकते हैं कि फ्रांसीसी समाज ऊपर से नीचे तक अनेक श्रेणियों में विभक्त था और प्रत्येक श्रेणी के कानूनी अधिकार, उपभोग तथा विकास को सुविधा और शक्तियाँ अलग अलग थीं।

दैवी अधिकार-सम्पन्न राजतंत्र

इस व्यवस्था की चोटी पर राजा विराजमान था; वह राज्य का उच्च तथा देदीप्यमान प्रमुख और राष्ट्र की शक्ति, प्रतिष्ठा तथा वैभव का मूर्त रूप था। राजा का यह दावा था कि मैं ईश्वर की इच्छा से अर्थात् ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों के आधार पर शासन करता हूं, न कि जनता की इच्छा और अनुमति से। ईश्वर को छोड़ कर वह अन्य किसी के प्रति उत्तरदायी न था। परिणामस्वरूप उसके आचारों तथा कार्यों पर किसी भी प्रकार का कोई मानवीय नियंनण न था। उसकी शक्ति पूर्णतया निरंकुश थी। वह जैसा चाहता वैसा कर सकता। राष्ट्र का कर्तव्य उसकी आज्ञा का पालन करना मात्र था। जहाँ तक सिद्धान्त का सम्बन्ध था कि राजा की इच्छा, और केवल वही, सब कुछ थी। वही यह निर्णय करता कि ढाई करोड़ फ्रांसीसियों के दैनिक जीवन को नियंत्रित तथा संचलित करने के लिए कौन से कानून उपयुक्त होंगे। लुई सोलहवाँ कहा करता था, "चूंकि मैं चाहता हूँ इसलिए यह चीज वैध (कानूनी) है।" इस एक वाक्य से राजतंत्र का रूप और उसका सिद्धान्त भली-भाँति व्यक्त होता है; और यदि राजा दबंग और शक्तिशाली होता है तो व्यवहार में भी यही सिद्धान्त लागू होता। राजा ही कानून बनाता, वही कर लगाता, वही उन्हें जैसे उचित समझता खर्च करता, वही युद्ध की घोपणा करता था और अपनी इच्छाओं और प्रवृत्ति के अनुसार शांति स्थापित करता तथा अन्य राष्ट्रों साथ समझौते व सन्धियाँ करता। सैद्धान्तिक रूप से उसकी शक्ति पर कोई नियंत्रण न था और उसके सब प्रजाजन उसकी मुट्ठी में थे। वह उनकी सम्पत्ति जप्त कर सकता; अपनी आज्ञा मात्र से

राजा की शक्ति निरंकुश

उन्हें बन्दी बना सकता और बिना मुकदमा चलाये जब तक चाहता कारागार में रख सकता। वह यदि उनके विचारों पर नहीं, तो कम से कम उनके प्रकाशन पर अवश्य प्रतिबंध लगा सकता ; क्योंकि पुस्तकों और समाचार पत्रों पर उसका पूरा-पूरा नियंत्रण था और वह उन्हें पूरी तरह से कुचल सकता था।

राजा के महलों की शान-शौकत

ऐसी शक्ति-सम्पन्न तथा ऐश्वर्यमान विभूति के कार्य-कलाप के लिए एक विस्तृत तथा तड़क-भड़क-पूर्ण रंगमंच की आवश्यकता थी। फ्रांस की राजधानी तो पेरिस थी ; किन्तु राजा वहाँ से बारह मील की दूरी पर वारसेई में निवास करता था। फ्रांस का राजा जिन प्रासादों में रहता वैसे शायद किसी शासक को कभी नसीब न हुए होंगे। वहाँ जिस महल में वह जीवन विताता और आनंद लूटता, वह ईसाई-जगत के प्रत्येक राजा के लिए स्पर्धा की वस्तु था। सैकड़ों कमरे, गिरजाघर, नाट्यशाला, भोजन कक्ष, सत्कार-गृह, अगणित अतिथि-भवन, राज-प्रसाद और सैकड़ों नौकरों-चाकरों के रहने के कमरे आदि उसे सुशोभित करते थे। इस विशाल भवन का निर्माण एक शताब्दि पहले हुआ था और आजकल के हिसाब से उस पर लगभग १० करोड़ डालर व्यय किया गया था। उसमें मीलों लम्बे दालान, अगणित उद्यान, लम्बे-लम्बे पर्यटन-मार्ग, मूर्तियाँ, फौवारे और कृत्रिम सरोवर आदि सब कुछ राजकीय वैभव और तड़क-भड़क के अनुरूप ही थे। यूरोप को चकाचौंध करने वाले वारसेई के इन

वारसेई का राज-गृह

प्रसादों में लगभग अठारह हजार व्यक्ति निवास करते थे, उनमें से लगभग १६ हजार तो राजा तथा उसके परिवार के लोगों के चाकर थे और शेष दो हजार में दरबारी, तथा राज-परिवार के कृपा-पात्र अतिथि, सामंत आदि सम्मिलित थे। वे सब निरंतर आमोद-प्रमोद में तल्लीन रहते थे और बड़े कुटिल तथा शिष्ट तरीकों से अपने लिए नाना प्रकार के लाभ और अनुग्रह प्राप्त करने की ताक में रहते। सर्वत्र विलासिता का राज्य था। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात न थी कि इन प्रसादों के निवासी अपने को सच्चे अर्थ में 'देवानां प्रिय' समझते, क्योंकि पृथ्वी पर इससे अधिक विलासिता और तड़क-भड़क कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकती थी। उस विशाल भवन में रानी, राजकुमारों और राजकुमारियों, राजा के भाइयों और बहनों तथा फूफियों आदि अन्य सम्बन्धियों के लिए अलग अलग हर दृष्टि से पूर्ण तथा सम्पन्न निवास-स्थान थे। अकेली रानी के लिए पाँच सौ चाकर थे। राजकीय अस्तबलों में १९०० घोड़े और २०० रथ थे और केवल इन्हीं का वार्षिक खर्च लगभग ४००,००० डालर था। केवल राजा के ही भोजन पर १५

अत्यधिक खर्चीली विलासिता

लाख डालर व्यय होता था। चूँकि इस विलासिता और शान-शौकत का कोई अन्त न था, इसलिये खर्च भी अपरिमित था और राज्य-प्रासाद के साधारण से साधारण व्यक्ति को इतना धन मिल जाता था कि आज का व्यक्ति उसे देखकर दाँतों तले उँगली दबाने लगता। राजारानी की नौकरानियों को दीपक वेचने का विशेषाधिकार मिला हुआ था। ये दीपक केवल एक वार जलाये जाते थे और वाद में कभी फिर प्रयोग न होता, लेकिन उनके लिए प्रत्येक वेचने वाली को डेढ़ लाख रुपया मिल जाता। रानी मारी अन्त्वानेत प्रति सप्ताह चार जोड़ी जूते खरीदती, जिससे किसी

जूते वनाने वाले को अच्छाखासा लाभ हो जाता। १७८९ में इसी अंधाधुन्ध अपव्ययता के फलस्वरूप २०,०००,००० डालर व्यय हुआ, इसलिए यह आश्चर्य की वात न थी कि लोग राज दरवार को 'राष्ट्र की कब्र' कहकर पुकारते।

यही नहीं कि राजा के परिवार और दरवार का खर्च इतना अनाप-शनाप था, वल्कि इसके अतिरिक्त वह अपने कृपापात्रों को खुले हाथों धन, ऊँची-ऊँची नौकरियों और पेंशनें लुटाता। अनुमान लगाया गया है कि लुई सोलहवें ने अपने पन्द्रह वर्ष के शासन काल (१७७४-१७८९) में अपने कृपापात्रों को जो धन लुटाया, वह हमारे आज के हिसाब से दस करोड़ डौलर होता है। राजा की छत्रछाया में फलने-फूलने वालों के लिए निःसन्देह यह एक 'स्वर्ण युग' था।

राजा की दानशीलता

राज्य के उस ढाँचे का जोकि नितांत सड़ा गला था, शिखर इतना जगमगाता हुआ तथा चकाचौंध करने वाला था। फ्रांस की शासन-व्यवस्था पूर्णतया अव्यवस्थित थी और समय की गति उसके विपरीत थी। सरकारी ढाँचे में कहीं कोई योजना अथवा व्यवस्था देखने को नहीं मिलती थी। विभागों का संगठन अत्यधिक पेचीदा होते हुए भी अनिश्चित था। कामों का भी बँटवारा ठीक न था; अनेक कार्य ऐसे थे जिनकी जिम्मेदारी कई विभागों पर थी। कहने का अर्थ यह कि राज्य की मशीन निकम्मी और अवैज्ञानिक थी। राजा की सलाह के लिए पाँच समितियाँ थीं, जो राजधानी में रहकर कानून बनातीं, आदेश जारी करतीं और राज्य का घरेलू तथा वैदेशिक काम काज चलातीं। स्थानीय प्रशासन के लिये देश अनेक भागों में विभक्त था; किन्तु दुर्भाग्य से यह विभाजन भी सरल तथा वैज्ञानिक नहीं था। कहने के लिए राज्य में ४० "सरकारें" थीं, जिनमें ३२ का सम्वन्ध फ्रांस के उन पुराने सूवों से था जो उसके सामंती इतिहास की देन थे, किन्तु ये "सरकारें" अपने नाम को सार्थक नहीं करती थीं। उनके हाथ में शासन का वहुत कम काम था, लेकिन उनकी वजह से वड़े-वड़े सामंतों को उच्च पद प्राप्त करने का अवसर मिल जाता था, क्योंकि वे ही उन "सरकारों" के राज्यपाल नियुक्त किये जाते थे। किन्तु वे सामान्यतः वारसेई में रहते और वहाँ की विलासिता और तड़क भड़क में सम्मिलित होकर मौज लूटते।

राज्य का दोषपूर्ण संगठन

राज्य के प्रांत

प्रशासन के वास्तविक अरुचिकर काम के लिये राज्य अन्य छत्तीस भागों[1] में वँटा हुआ था उनमें से प्रत्येक के ऊपर एक अध्यक्ष होता था जो इंटेंडेंट कहलाता था; वह वहुधा मध्यम वर्ग से आता, और इसलिये परिश्रमी तथा काम करने का अभ्यस्थ होता। इन अध्यक्षों की नियुक्ति राजा स्वयं करता था, और वे अपने-अपने जिलों में राजकीय काम-काज चलाते थे। सामान्यतः वे अपनी ओर से कोई नया काम न करते वल्कि राजधानी से जो आदेश पाते उनका पालन करते, और अपने काम की रिपोर्ट दरवार में भेजते रहते। व्यवहार में उनकी शक्तियों पर कोई प्रतिवन्ध

प्रांतों के अध्यक्ष

न था। प्रांतो की जनता का सुख दुख बहुत कुछ उन्हीं पर निर्भर रहता। वास्तव में राष्ट्रीय सरकार के वे ऐसे अंग थे जो क्रियाशील थे। किन्तु उनमें से अनेक अपने प्रान्तों में बहुत अप्रिय थे। इससे प्रतीत होता है कि उनसे भी जनता का कोई कल्याण न होता था, बल्कि ये अध्यक्ष लोग उस कुशासन को चलाने के लिये साधनमात्र थे जिसकी असली बागडोर पूर्वोक्त पाँच समितियों के हाथ में थी; और वे समितियाँ राजा को पाच उँगलियाँ थीं। जैसा प्रमुख होता है वैसे ही उसके नीचे के कर्मचारी होते हैं; इसलिये इन अध्यक्षों की उत्पीड़क तथा अन्यायपूर्ण नीति के कारण जनता उनके अधीन स्थानीय क्षेत्रों में काम करने वाले कर्मचारियों से भी घृणा करती थी।

स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं का अभाव

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि फ्रांस में स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ न थीं; राष्ट्रीय सरकार की भाँति स्थानीय प्रशासन भी वारसेई से ही नियंत्रित और संचालित होता था। उदाहरण के लिये यदि पेरिस से सैकड़ों मील दूर किसी छोटी सी नदी के पुल की मरम्मत करनी होती अथवा किसी गाँव के गिरिजाघर पर नई छत डालनी होती, तो इसका भी निर्णय पेरिस से ही होता, और इसमें इतनी देर लगती कि गोग तंग आ जाते और धीरज खो बैठते। सही अर्थ में राज्य भर में 'लाल-फीते' का ही बोलबाला था। इस राक्षसी व्यवस्था के अन्तर्गत साधारण जनता की दशा मूक तथा असहाय पशुओं की सी थी, बेचारी न बोल सकती और न कुछ कर सकती, जिधर को हाँक दी जाती उधर चली जाती। यदि कोई खतरा हो सकता था तो यही कि शायद वह सदैव मूक न रहती। उस समय देश में कोई ऐसी संस्था न थी जो जनता को राजनैतिक शिक्षा देती। यही कारण था कि क्रान्ति के दौरान में जनता ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली तो उसके अनेक गलतियाँ कीं और उसे अनेक विफलताओं का सामना करना पड़ा।

केन्द्रीयकृत होने पर भी फ्रांस में एकता का अभाव

चूँकि फ्रांस में केन्द्रीयकृत राजतन्त्र था और राजा उसका प्रमुख था, इसलिये कुछ लोगों को भ्रम हो सकता है कि वहाँ की सरकार एकता के सूत्र में बँधी हुई होगी। किन्तु ऐसी धारणा सत्य से बहुत दूर है। प्रशासन की मशीन में इतनी विभिन्नता और विविधता थी और इतने विभिन्न शब्द प्रयुक्त होते थे कि यदि हम सरकार के सब पहलुओं का, उसके विभिन्न विभाजनों और उपविभाजनों, उसके अधिकारियों और कार्य-प्रणालियों का अध्ययन करने लगें तो हमारा मस्तिष्क भारी उलझनों में फँस जायगा और हम कुछ भी न समझ सकेंगे। कहीं भी एकरूपता देखने को न मिलती थी। एकता यदि कहीं थी तो केवल राजा के व्यक्तित्व में, जहाँ कि उसका होना आवश्यक था। अन्यत्र सभी जगह एकता का अभाव, विविधता, बहुरूपता दिखाई देती थी; जिसमें कहीं तुक न थी। इस चीज को स्पष्ट करने के लिये शायद कई ग्रन्थ लिखने पड़ेंगे—और फिर भी पाठक के लिये अपने मस्तिष्क में पूरी व्यवस्था का सही चित्र उतारना असम्भव होगा। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि फ्रांस की सभी संस्थाओं में अव्यवस्था तथा अराजकता का बोलबाला

सरकार का बेढंगा ढाँचा

था, क्रम और शृंखला का कहीं नाम तक न था। यह कहना गलत न होगा कि वास्तव में अव्यवस्था को ही व्यवस्था का नाम दे दिया गया था। आजकल समस्त देश में एक ही कानून, एक ही कर, और एक से बाँट तथा नाप प्रचलित हैं। किन्तु १७८९ में इस प्रकार की सरलता अथवा समानता देखने को न मिलती थी। नापों और बाँटों के नाम तथा मूल्य प्रत्येक गाँव में अलग-अलग के। कुछ प्रान्त ऐसे थे जहाँ करों को वहीं के कुछ लोग निर्धारित करते थे। इसके विपरीत दूसरे सूबों में यह काम केन्द्रीय सरकार द्वारा ही किया जाता था। फ्रांस के कुछ भागों में असैनिक कानून अर्थात् ऐसे कानून जो राज्य तथा व्यक्ति के नहीं बल्कि व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियंत्रित करते रोमक उत्पत्ति के थे; और कहीं कहीं तो उनका रूप भी वही था जैसा कि प्राचीन रोम के देखने को मिलता था। ऐसे प्रदेशों में कानून लिखित थे। किन्तु अन्य भागों में, मुख्यतया उत्तर में, कोस-कोस पर कानूनों में अन्तर दिखाई देता। इन भागों में लिखित कानूनों की व्यवस्था न थी, वे परम्परागत थे, सामन्ती व्यवस्था में वे उत्पन्न हुए थे और उनकी भावना भी वैसी ही थी। फ्रांस के भीतर परम्परागत कानूनों की २८५ संहिताएँ लागू थीं, जिसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करने के २८५ कानूनी तरीके प्रचलित थे।

कानूनों में विभिन्नता

एक अन्य क्षेत्र में भी ऐसी ही विविधता देखने को मिलती थी। केन्द्रीय फ्रांस के तेरह सूबे ऐसे थे जिनमें व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था, मुक्त व्यापार का सिद्धान्त लागू था और उस पूरे क्षेत्र में माल एक कोने से दूसरे कोने तक स्वतन्त्रतापूर्वक आ जा सकता था। किन्तु अन्य उन्नीस सूबे एक दूसरे से पृथक थे, उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक राष्ट्र दूसरे से होता है। यदि माल एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाता तो उसे बीच-बीच में चुंगी घरों में होकर गुजरना पड़ता और उस पर उसी प्रकार चुंगी लगती जैसे कि यूरोप से आने वाले माल पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में लगती है।

प्रान्तीय बहिशुल्क की दीवारें

कानूनों की इस विविधता और बहिशुल्क आदि के इन प्रतिबन्धों के कारणों को समझना कठिन नहीं है। ये चीजें प्राचीन इतिहास की कष्टदायक और चिढ़ाने वाली अवशेष थीं और मध्य युग की याद दिलाती थीं। ये उस समय से चली आरहीं थीं जबकि देश में राजनैतिक एकता न थी। फ्रान्स के राजाओं ने युगों में कहीं प्रान्तों को एक-एक करके जीता; किन्तु विजय के बाद भी उन्होंने स्थानीय संस्थाओं, परम्पराओं और परिपाटियों को पूर्ववत् रहने दिया, उन्हें छिन्न-भिन्न करके एकरूपता स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया। यही कारण था कि शासन-व्यवस्था अगणित थेगरों से बनी हुई कथरी के समान थी, और उसका वर्णन करना असम्भव है।

इस सबके परिणामस्वरूप फ्रांस के प्रादेशिक भक्ति की भावना प्रबल थी। उसकी तुलना हम अमरीकियों की राज्य-भक्ति[1] की भावना से कर सकते हैं। यद्यपि सब लोग मानते थे कि हम फ्रांसीसी हैं, किन्तु वास्तव में प्रान्तवाद का जोर था और बहुधा यह भावना उग्र रूप धारण कर लेती थी। लोग अपने ब्रैटन, नार्मन आदि

स्थानीय भक्ति का जोर

---

1. संघ की अपेक्षा इकाई राज्यों के प्रति अधिक भक्ति (अनुवादक)

समझते थे और पृथक् करने वाली विशेषताओं से उन्हें मोह था। वे उन सभी प्रयत्नों का डटकर मुकाबिला करते जिनका उद्देश्य भेद-भाव को दूर करके एकता स्थापित करना होता। देश में दृढ़ एकता स्थापित करने के लिए आवश्यक था कि विभिन्न तत्वों के विलयन तथा समन्वय के लिए जोरदार प्रयत्न किया जाता। फ्रांस की क्रान्ति ने यही प्रयत्न किया; और यह उसकी सबसे अधिक टिकाऊ और स्मरणीय सफलता सिद्ध हुई।

इस फिजूलखर्च तथा निकम्मी सरकार की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय तथा संकटपूर्ण थी। राष्ट्रीय आय का लगभग आधा भाग राष्ट्रीय ऋण के व्याज के चुकाने में चला जाता था। आमदनी से खर्च सदैव अधिक होता था, जिसके फल-स्वरूप प्रति वर्ष घाटा पड़ता, फिर उसे पूरा करने के लिए ऋण लेना पड़ता जिससे ऋण तथा ब्याज दिन प्रति दिन बढ़ता जाता। राजकीय वित्त-नीति सामान्यतया इस सिद्धान्त पर चलती है कि खर्च आमदनी के हिसाब से किया जाय। किन्तु फ्रांसीसी सरकार की नीति उलटी थी; वह व्यय के अनुसार आय को निश्चित करती थी। इसलिए ऋण निरन्तर बढ़ता गया। फिर घाटे को पूरा करने का सरकार को एक ही उपाय दिखाई देता—पदों को बेचना और कर्ज लेना। लुई सोलहवें के बारह वर्ष (१७७६—१७८८) के शासन काल में ऋण बढ़कर लगभग ६००,०००,००० डालर तक पहुँच गया था। तब लोग राज्य को ऋण देने में हिचकने लगे; और करों में वृद्धि करना असम्भव था। फलतः सरकार घोर वित्तीय संकट में फँस गई; दिवाला निकलने की नौबत आगई। दिवालियापन से बचने के दो ही उपाय होते हैं—आय में वृद्धि करना, अथवा खर्च को घटना, अथवा दोनों ही उपायों से काम लेना। कभी पहला उपाय किया गया और कभी दूसरा, किन्तु कुछ फल न निकला।

राष्ट्रीय वित्त की शोचनीय दशा

आय के मुख्य साधन कर थे, और देने वालों के लिए उनका बोझ असह्य था। कर दो प्रकार के थे, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष कर जागीर, निजी सम्पत्ति और आय पर लगाए जाते थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जिनसे सामन्त लोग और चर्च के पदाधिकारी मुक्त थे, इसलिए उनका बोझ तीसरे वर्ग के लोगों पर पड़ता था। अन्य करों से सामन्त कानूनी दृष्टि से मुक्त न थे, किन्तु व्यवहार में वे बच जाते थे। कारण यह था कि राजस्व अधिकारी साधारण लोगों की अपेक्षा सामन्तों की सम्पत्ति पर जान बूझकर बहुत हल्का कर लगाते थे। कर निर्धारित करने वाले अधिकारियों पर बड़े लोगों का भारी आतंक रहता था। उदाहरण के लिए राजकुमारों पर आय-कर लगता था, और उनसे लगभग पच्चीस लाख फ्रैंक वसूल होने चाहिये थे किन्तु वास्तव में वे दो लाख भी न अदा करते थे। इसी प्रकार एक सरदार जिसे २४०० फ्रैंक सम्पत्ति कर के रूप देने चाहिए थे. केवल ४०० फ्रैंक देता था, और उसी प्रान्त में एक मध्यम वर्ग के व्यक्ति को जिसका कर ७० होता था, ६६० फ्रैंक देने पड़ते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण कर-व्यवस्था पक्षपात पर आधारित थी, किन्तु पक्षपात सदैव सामतों के साथ होता, तीसरी-श्रेणी के लोगों के साथ कभी नहीं; इसलिए उस श्रेणी के सदस्यों में भारी घृणा और विद्वेष फैलता गया। जो सबसे धनी थे और इसलिए राज्य की सबसे

कर व्यवस्था पक्षपात पूर्ण

अधिक सहायता कर सकते थे, वे ही सबसे कम देते थे। इस प्रकार यह सिद्धान्त चरितार्थ होता कि जिनके पास है उन्हें दिया जायगा, और जिनके पास नहीं है उनसे वह थोड़ा बहुत भी छीन लिया जायगा जो उन पर है। अनुमान लगाया गया है कि मध्यम वर्गों, मजदूरों और किसानों से राज्य उनकी वार्षिक आय का कम से कम आधा प्रत्यक्ष करों के रूप में वसूल कर लेता था।

अप्रिय कर

इसके अतिरिक्त अनेक अप्रत्यक्ष कर भी थे; और उनसे भी प्रजा को घोर कष्ट होता था। उनके वसूल करने का काम सरकारी अधिकारियों के हाथों में न था। व्यक्तियों अथवा कम्पनियों को उनकी वसूलयावी का ठेका दे दिया जाता था। वे राज्य को निश्चित रकम अदा कर देते, और फिर स्वयं उन्हें जनता से उगाह लेते। चूँकि उनका उद्देश्य लाभ कमाना होता था। इसलिए वे प्रजा से जितना धन सम्भव हो सकता खसोटने का प्रयत्न करते। कर वसूल करने की यह प्रणाली प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ही युगों में अत्यन्त घृणित सिद्ध हुई है। ठेकेदारों को अधिक से अधिक लाभ कमाने की धुन रहती है, इसलिए वे जनता को बड़ी निर्दयता से कसते और उसका रक्त चूसते। ऐसी व्यवस्था से लोगों में घृणा और विद्वेष का फैलना स्वाभाविक हो जाता है। किन्तु फ्रांस के अनेक अप्रत्यक्ष कर ऐसे थे कि यदि उन्हें दयापूर्वक भी वसूल किया जाता तो भी वे घोर अन्याय-पूर्ण और कष्टदायक सिद्ध होते। उदाहरण के लिए,

घृणित नमक-कर

नमक-कर प्रत्येक व्यक्ति को भारी घृणा थी। नमक का व्यापार सबके लिए नहीं खुला हुआ था। राज्य ने केवल एक कम्पनी को उसका एकाधिकार दे रक्खा था, और उस कम्पनी को इतनी सुविधाएं और रिया-यतें मिली हुई थीं कि देखकर दाँतों तले उंगली दबानी पड़ती थी। सात वर्ष से ऊपर के प्रत्येक व्यक्ति को वर्ष भर में कम से कम सात पौण्ड नमक खरीदना पड़ता था, चाहे वह चाहता अथवा न चाहता। अत्यन्त दरिद्र लोगों को भी जिनके पास रोटी मोल लेने तक को पैसा न होता, निश्चित मात्रा में नमक खरीदने पर वाध्य किया जाता, और यदि वे मना करते अथवा नियम की उपेक्षा करते तो उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता। इसके अतिरिक्त कर उगाहने वालों को सबके घरों की तलाशी लेने का अधिकार था जिससे वे देख सकते कि कहीं लोगों ने नमक सम्बन्धी नियम की अवहेलना तो नहीं की है। गैर कानूनी ढंग से नमक का व्यापार करने वालों का तुरन्त ही पता लगाया जाता और उन्हें कठोर दण्ड मिलता। क्रान्ति से कुछ ही समय पहले सरकारी तौर पर अनुमान लगाया गया था कि इस अपराध में प्रतिवर्ष लगभग बीस हजार व्यक्ति कारागार में डाले जाते, और पाँच सौ को प्राण दण्ड दिया जाता था अथवा जहाजों में गुलामों की भाँति काम करने के लिए भेज दिया जाता। जहाजी जीवन इतना बुरा था कि उससे तो लोग मरना पसन्द करते थे। उत्पीड़न का यहीं अन्त नहीं हुआ। एक नियम यह भी था कि सात पौण्ड नमक का प्रयोग भोजन पकाने और मेज पर खाने में ही किया जाय। यदि कोई व्यक्ति मछली अथवा मांस को खराब होने से बचाने के लिए नमक मिलाकर रखना चाहता तो वह इस नमक को काम में न ला सकता, उसके लिए उसे और खरीदना पड़ता।

एक और भी कर था जो इतना ही असह्य था। शराब बनाना फ्रांस का एक बड़ा राष्ट्रीय उद्योग था और शताब्दियों से चला आ रहा था, किन्तु

उस पर भी इतने प्रतिबन्ध थे कि वह भली भाँति पनप नहीं सकता था। उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचते-पहुँचते शराब पर इतने कर लग जाते कि अन्त में वे सब मिलाकर मूल उत्पादन के खर्च के बराबर ही पड़ जाते। सबसे पहले तो उत्पादक को ही कर देना पड़ता, और फिर दक्षिणी फ्रांस से पेरिस तक लगभग पैंतीस-चालीस जगह चुंगी लगती थी। इस प्रकार निरन्तर करों के बोझ से दबा हुआ उद्योग कैसे उन्नति कर सकता था ?

शराब पर कर

यही नहीं, नमक तथा शराब कर समस्त देश में एक-से न थे ; हर प्रदेश में उनकी दर अलग-अलग थी, जिससे एक तो अन्यायपूर्ण व्यवहार की भावना लोगों के मन में प्रतिदिन ताजी रहती और दूसरे चोरी से व्यापार करना अत्यधिक लाभ-दायक होगया था उसका दमन करने के लिए सरकार बर्बरतापूर्ण दण्ड देती जिससे असन्तोष की आग और भी अधिक भड़क उठती और लोगों के हृदय क्रोध और घृणा से जलने लगते। राजनैतिक ढाँचे की भाँति कर-व्यवस्था में भी सर्वत्र व्यवहार में असमानता, विशेषाधिकार, स्वेच्छाचारिता और अन्यायपूर्ण नियम देखने को मिलते; नियम प्रायः बदलते रहते, इसलिए प्रतिवर्ष अनिश्चितता की भावना लोगों को सताती रहती। ऐसी दशा में यह आश्चर्य की बात न थी कि सभी लोग, यहाँ तक कि सामन्तगण भी, इस वित्त-व्यवस्था को अन्यायपूर्ण तथा उत्पीड़नकारी समझते और उसकी कटु निन्दा करते।

फ्रांस की सामाजिक व्यवस्था भी सन्तोषजनक न थी। बिलकुल सरसरी नजर से देखने पर भी अनेक बुराइयाँ और कुरीतियाँ, अनेक असह्य शिकायतें, बहुतसी कष्टप्रद और हानिकारक कुव्यवस्थाएँ स्पष्ट रूप से सामने आतीं, जिनका न तो बुद्धि से ही कोई सम्बन्ध था और न बहुसंख्यक जनता के हितों से। सड़ी गली रूढ़ियाँ और ऐसी संस्थाएँ जो निर्जीव हो चुकी थीं, अब भी विद्यमान थीं और उनसे राष्ट्रीय जीवन के विकास की अनेक दिशाओं में बाधाएँ पड़ती थीं। सामाजिक ढाँचा खुले तौर पर असमानता के आधार पर खड़ा हुआ था। वह तीन वर्गों में विभक्त था—धर्माधिकारी (चर्च के अधिकारी), सामन्त, तथा साधारण जनता जो तीसरे वर्ग के नाम से जानी जाती थी। पहले दो वर्गों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, तीसरे वर्ग की तुलना में उनकी स्थिति कहीं अधिक ऊँची थी। इतना ही नहीं प्रत्येक वर्ग के भीतर भी असमान अधिकारों के सिद्धान्त का बोलबाला था जिससे उसकी आन्तरिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई थी। वर्गों में परस्पर असमानता थी, और फिर प्रत्येक वर्ग के विभिन्न विभागों के बीच भी विशेषाधिकार-प्राप्त दोनों वर्गों के साथ अनेक प्रकार से पक्षपात किया जाता था उदाहरण के लिए वे पूर्णतया तथा आंशिक रूप में करों से मुक्त थे, अथवा उन्हें स्वयं कर लगाने का अधिकार था। चर्च के अधिकारी धर्मांश और सामन्त लोग जागीरदारी कर वसूल करते। यहां तक तीसरे वर्ग के कुछ सदस्यों को भी ऐसे विशेषाधिकार मिले हुए थे जिनसे अन्य लोग वंचित थे। फ्रांस की जनसंख्या २५,०००,००० थी उनमें से १३०,००० धर्माधिकारी थे और १४०,००० सामन्त और इन दोनों की सम्मिलित संख्या के लगभग

समाज के तीन वर्ग

वर्गों में असमानता

विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की अल्प संख्या

बराबर मध्य वर्ग के लोग थे। इन सबको विशेष अधिकार मिले हुए थे जिसके कारण वे अपने वर्गों की साधारण जनता से पृथक् थे। इस प्रकार विशेषाधिकारों का उपभोग करने वालों की संख्या ६०००,००० से कम थी जब कि उनसे वंचित लोग संख्या में २४,०००,००० से भी अधिक थे। प्रति चालीस व्यक्तियों में से एक ऐसा था जो कृतिम लाभों तथा विशेष रियायतों का उपभोग करने के कारण अपने साथियों की तुलना में समाज में पृथक् तथा विशिष्ट स्थान रखता था।

चर्च

रोमन कैथोलिक चर्च के अधिकारी राज्य की प्रथम श्रेणी में थे। वे धनी तथा शक्तिशाली थे। फ्रांस की भूमि के लगभग पाँचवे भाग पर उनका स्वामित्व था। इस भूमि से भारी आय होती थी; इसके अतिरिक्त चर्च के अधिकारी कृषि की सब प्रकार की उपज से धर्मांश वसूल करते। यह भी वास्तव में एक प्रकार का राष्ट्रीय कर था। अन्तर केवल इतना था कि इससे होने वाली आय राष्ट्रीय कोष में न जाकर चर्च के खजाने में जमा होती थी। चर्च की आय का एक साधन और भी था—वह अपने अधीन किसानों से जागीगदारी कर भी वसूल करता था। चर्च की सम्पूर्ण आय लगभग १००,०००,००० डॉलर थी। इस आमदनी से धार्मिक इमारतों तथा सेवाओं को चलाना, चिकित्सालयों और पाठशालाओं को

इसकी आय तथा इसकी सेवाएँ

सहायता देना तथा दान द्वारा दीन दुखियों के निजी कष्टों का निवारण करना चर्च का कर्तव्य था। स्मरण रखना चाहिए कि उस काल में फ्रांस में राज्य अथवा नगर पालिकाओं की ओर से दरिद्रों को सहायता पहुँचाने का कोई प्रवन्ध न था। चर्च राज्य के भीतर एक राज्य था। उसके हाथ में अनेक ऐसे काम थे जिन्हें आधुनिक समाज में सरकारें करती हैं। यह धनी संस्था करों से मुक्त थी। यद्यपि समय-समय पर चर्च राष्ट्रीय कोष को भी कुछ इकट्ठी रकमें दे देता, किन्तु वे बहुत कम होतीं, और यदि चर्च की सम्पत्ति और आय पर भी उसी अनुपात में कर लगाया जाता जिसमें साधारण जनता पर लगता था, तो उससे राज्य को जब तब मिलने वाले उस धन से कई गुनी अधिक आय हो जाती।

चर्च के भीतर पक्षपात

यदि इतनी भारी आय को बुद्धिमानी तथा न्याय के साथ खर्च किया जाता तो लोग चर्च को कटु आलोचना न करते; क्योंकि जो सेवाएँ यह संस्था करती उनमें से अनेक देश की जनता के हित के लिए बहुत आवश्यक थी। किन्तु देश की अन्य संस्थाओं की भाँति चर्च के भीतर भी घोर पक्षपात और अपव्ययता का बोलबाला था, जिससे राष्ट्र की नैतिक भावना को ठेस पहुँचती और उसका क्रोध भड़क उठता। चर्च के अधिकारी एक विशेप प्रकार की धार्मिक पवित्रता का दावा करते थे और यही उनके विशेषाधिकारों का आधार था, किन्तु उनकी करनी कथनी के बिलकुल प्रतिकूल थी। यहाँ तक कि संस्था के कर्मचारियों के साथ भी न्यायपूर्ण बर्ताव नहीं किया जाता था। उसकी आय का अधिकांश उच्च अधिकारियों की जेब में चला जाता, जिनमें १३४ विशप और आर्क विशप, कुछ एवटट तथा अन्य अधिकरी सम्मिलित थे। उन सबकी संख्या मिलाकर पांच-छः हजार

उच्च धर्माधिकारियों की सांसारिकता

से अधिक न थी। भारी आय के इन पदों पर सामान्तों के कनिष्ठ पुत्रों का एकाधिकार था जो वेतनों को हड़पने को तो तैयार रहते किन्तु काम कुछ भी न करना चाहते थे। उनमें से अनेक तो राजदरबार में ही पड़े रहते और आमोद-प्रमोद का जीवन बिताते। वस्त्रों की थोड़ी-सी विचित्रता को छोड़कर अन्य कोई ऐसी विशेपता न थी जिससे उनके धार्मिक चरित्र का परिचय मिलता। उनमें से अनेक का नैतिक चरित्र अत्यन्त निन्दनीय और मानसिक योग्यता अत्यन्त साधारण कोटि की थी। उनमें इस भावना का सर्वथा अभाव था कि हमारा काम उच्च कोटि का तथा पवित्र है। अपने कर्त्तव्यों की वे अवहेलना करते थे। उनके उद्देश्य स्पष्ट रूप से सीमित थे और उनका आच-रण साधारण सांसारिक लोगों जैसा था। अपनी उन्नति तथा अभिवृद्धि के विषय में वे बड़े सजग और सावधान रहते और वारसेई के आमोद-प्रमोद, विलासिता और कुचक्रों में खूब दिलचस्पी लेते। निश्चय ही कुछ सम्माननीय व्यक्ति इस नियम के अपवाद थे, किन्तु वे अपवाद मात्र थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जिनका एक ही साथ कई पदों पर अधिकार था, किन्तु काम वे किसी भी पद का ठीक ढँग से न करते थे, और आय उनकी राजा-महाराजाओं जैसी थी। स्ट्रासवर्ग के आर्कविशप की वार्षिक आय ३००,००० डालर थी; उसके महल में शानदार दरबार लगता और एक समय में दो-दो सौ मेहमानों का सत्कार किया जाता। उसके रसोई घर की कढ़ाइयाँ चाँदी की थीं। उसके अस्तबल में १८० घोड़े थे जो सदैव मेहमानों की सेवा के लिये तैयार रखे जाते थे।

कुछ विशपों की आमदनी कम थी, किन्तु औसत दर्जे के विशप को वर्ष में ५०,००० डॉलर मिल जाते थे। वे मुख्यतया अपने कार्य-क्षेत्रों को छोड़ कर वारसेई में निवास करते थे जहाँ भाग्यशाली लोगों को और भी कुछ प्राप्ति हो जाती थी और जहाँ जीवन मौज और मस्ती का था। कुछ विशेष पद कुछ परिवारों की पित्रा-गत सम्पति वन गए थे; और जैसे राजकीय क्षेत्र में अनेक पद पिता से पुत्र को प्राप्त हो जाते वैसे ही वे भी चचा से भतीजे को मिल जाते थे। इसके विपरीत गिरजाघरों के उन निम्न अधिकारियों को, उन हजारों साधारण पदा-

चर्च के निम्न अधिका-रियों की दरिद्रता

धिकारियों को, जो जनता को वास्तविक अध्यात्मिक सन्तोष और शिक्षा देने का कार्य करते और जिन्हें अपने अपने क्षेत्रों में कठिन परिश्रम करना पड़ता, वहुत कम वेतन मिलता था। वे तीसरे वर्ग के लोगों की सन्तान थे, जब कि उनके उच्च अधिकारी सामन्तों के पुत्र हुआ करते थे; इसलिए उनके साथ गँवारों जैसा व्यवहार किया जाता था। उन्हें कुछ सौ फ्रैंक वेतन के रूप में मिलते थे जिससे जीवन निर्वाह करना भी कठिन होता था। इसलिए उनका असन्तुष्ट और क्रुद्ध होना आश्चर्य की वात न थी। उनका कहना था कि हमारी दशा इतनी शोचनीय है कि उसे देख कर हमारी झोंपड़ियों की कड़ियाँ और पत्थर भी क्रन्दन करने लगते हैं। यह भी कोई आश्चर्य की वात न थी कि वे अपने से उच्च अधिकारियों से, जो उनकी अवहेलना और शोषण करते, घोर अप्रसन्न थे। इस प्रकार हम देखते हैं, कि चर्च अधिकारियों का विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग दो भागों में विभक्त था जो जन्म, स्थिति तथा दृष्टिकोण में एक दूसरे से बहुत भिन्न थे। निम्नतम क्षेत्रों के पादरी साधारण जनता में से आते थे; जनता की कठिनाइयों और कष्टों का उन्हें अनुभव था। प्रचलित अन्याय-

पूर्ण व्यवस्था को वे भली भाँति समझते थे और उनके सुधार की योजनाओं से उनकी सहानुभूति थी। क्रान्ति में जनता को निम्न चर्च अधिकारियों से बड़ी सहायता मिली। संकट के समय उन्होंने तीसरे वर्ग का साथ दिया और अपने उन उच्च अधिकारियों का विरोध किया जो निरंकुश राजतन्त्र के इसलिए समर्थक थे कि उसने उनके साथ अतिशय उदारता का व्यवहार किया था। जिस वर्ग में आपस में ही फूट होती है वह अधिक दिनों तक टिक नहीं सकता।

चर्च अधिकारियों की आपसी फूट

दूसरे वर्ग—सामतों—की भी यही दिशा थी, यद्यपि इस वर्ग के सभी सदस्यों को कुछ न कुछ विशेष अधिकार मिले हुए थे, फिर भी चर्च अधिकारियों की भाँति इसके सदस्यों की दशा में भारी अन्तर और विभिन्नता देखने को मिलती थी। सामन्तों के दो मुख्य वर्ग थे, एक सैनिकों का और दूसरा न्यायाधीशों का। पहले में वे अमीर सम्मिलित थे जिनका पुराने सैनिक परिवारों से सम्बन्ध था और दूसरे में वे लोग थे जो अपने न्यायिक पदों के कारण इस वर्ग में प्रविष्ट हो गए थे। सैनिक सामन्त पुनः दो उप वर्गों में विभक्त थे : दरबारी सामन्त और प्रान्तीय सामन्त। दरबारी सामन्तों की संख्या कम थी। कुल मिला कर कदाचित वे कुछ हजार से अधिक न थे। किन्तु तड़क-भड़क और शान शौकत में सबसे बढ़े-चढ़े थे। कारण यह था कि वे वारसेई में निवास करते; राजा की सेवा में उपस्थित रहते, और जल तथा थल सेना में और राजनायिक विभाग में नियुक्तियों, तथा पेंशनों और राजकीय अनुग्रह के लिये एक दूसरे से होड़ किया करते थे। इन चीजों की उन्हें आवश्यकता भी पड़ती थी क्योंकि वे विलासितापूर्ण शान-शौकत का जीवन बिताते जिससे उनकी सारी आमदनी पानी की भाँति बह जाती। दरबार में रहने के कारण वे अपनी जागीरों की स्वयं देख-भाल न कर पाते, और उनका प्रबन्ध कारिन्दों के हाथों में छोड़ देते जो जोतने बोने वाले दरिद्र किसानों से जितना धन खसोट पाते खसोटते। इस वर्ग के सामन्तों से सभी लोग ईर्ष्या करते थे क्योंकि उनके साथ सबसे अधिक पक्षपात होता था और राज्य के सभी उच्च पदों पर उनका एकाधिकार था।

सामन्त तथा उनके उपविभाजन

दरबारी सामन्त

इनकी तथा प्रान्तीय सामन्तों की दशा में, जिनकी संख्या एक लाख के लगभग रही होगी, गहरा अन्तर था। इसके कई कारण थे। एक तो दरबार में न रहते थे, राजा से उनका परिचय न था और न उन्हें किसी प्रकार की रियासतें मिली हुई थीं। फिर भी वे समझते थे कि हम रक्त की शुद्धता तथा वंश और परम्पराओं के सम्मान की दृष्टि से राजाओं को निरन्तर घेरे रहने वाले सामन्तों के समकक्ष ही नहीं अपितु उनसे अधिक श्रेष्ठ हैं। उनमें से अनेक की आय अत्यन्त कम थी; बल्कि दयनीय। समाज में उन्हें किसी प्रकार का सम्मान प्राप्त न था। अपने धन-वैभव की वृद्धि करने का उन्हें कोई अवसर न मिलता। बल्कि इस दृष्टि से उनकी स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती ही जाती थी। उनके पुत्रों को सैनिक शिक्षा दी जाती थी। वास्तव में यही एक सम्मानीय पेशा था जिसमें उनके लिए स्थान था, किन्तु इसमें भी वे अधिक ऊँचे उठने की आशा न कर सकते थे; क्योंकि बड़े-बड़े सभी पद दरबारी कुचक्रों में लगे रहने वाले सामन्तों और उनके पुत्रों को ही मिलते थे। वे

प्रान्तीय सामन्त

बहुधा किसानों के बीच रहते; उनमें से कुछ तो ऐसे थे कि किसानों में और उनमें किसी प्रकार का अन्तर ही न दीख पड़ता था, सिवाय इसके कि वे अवकाश का जीवन बिताने का प्रयत्न करते जो उनके वर्ग की परम्पराओं के अनुरूप था और उनकी उच्चता का चिन्ह माना जाता था। काम करने का अर्थ था अपनी जाति से गिरना। इन कारणों से बाध्य हो कर वे किसानों से अपने सामन्ती कर वसूल करने में कठोरता से काम लेते। इनमें से अनेक कर असह्य भार-स्वरूप थे और उनसे किसान बहुत चिढ़ते थे। फ्रांस के कुछ भागों में, जैसे वाँदे तथा ब्रितानी में, इस कक्षा के सामन्तों का अपने किसानों से सहानुभूति और समानता का व्यवहार था, और बदले में किसान उनका सम्मान भी करते थे।

शिकार खेलने का एक ऐसा विशेषाधिकार था जो सम्पूर्ण सामन्त वर्ग को मिला हुआ था। वह उस वर्ग का मुख्य खेल समझा जाता था और किसान उससे वंचित थे जिससे उन्हें गम्भीर और अनावश्यक क्षति उठानी पड़ती थी और इसके कारण उनका जीवन, जो वैसे ही काफी कष्टमय था, और भी अधिक दूभर हो गया था। व्यवहार में इसका अर्थ यह था कि यदि जंगली पशु किसानों की फसल को नष्ट भी कर देते तो भी वे उन्हें न मार सकते थे। यह एक ऐसी कुप्रथा थी जिससे हानि ही हानि होती और सभी किसान उसकी निन्दा करते।

जनता के हृदय में सामन्त वर्ग के प्रति जो घृणा थी वह वास्तव में स्वार्थी तथा लालची दरबारी सामन्तों के लिये ही थी। निम्न पादरी वर्ग की भाँति प्रान्तीय सामन्त भी विद्यमान व्यवस्था से असन्तुष्ट थे, और उनके अनेक कारण थे। यह तो सही है कि वे समाज का अमूल रूपान्तर नहीं चाहते थे, फिर भी ऐसे राजनैतिक सुधारों के पक्षपाती थे जिनसे सामन्त वर्ग के सभी सदस्यों को लगभग समान अवसर मिलने की आशा होती। राजा के वे भक्त थे, किन्तु उस मनमानी, पक्षपातपूर्ण अथा अनियन्त्रित प्रशासन-व्यवस्था का अनुभव वे स्वयं अपने जीवन में ही करते थे।

न्यायिक सामन्त

सामन्त वर्ग का एक और भी भाग था जो हैसियत तथा विचारों की दृष्टि से इन दोनों से भिन्न था। फ्रांस में अनेक राजकीय पद ऐसे थे जिन्हें खरीदा जा सकता था। वे तथा उनसे होने वाले लाभ खरीदने वाले की सम्पत्ति हो जाते थे और उन्हें वह अपने उत्तराधिकारियों को विरासत में दे सकता था। ऐसे पदों से होने वाला एक लाभ यह था कि सरकार की ओर से सामन्त अथवा अमीर होने का प्रमाणपत्र मिल जाता था। यह बनाया हुआ सामन्त वर्ग था। उसको 'न्यायिक' सामन्त वर्ग भी कहते थे क्योंकि अधिकतर प्रमुख सदस्य न्यायाधीश थे अथवा उच्चतर न्यायाधिकरणों के सदस्य थे। एक दृष्टि से ये न्यायाधीशगण उदार विचारों के प्रतीत होते थे। विधिविज्ञों की हैसियत से उन्होंने राजा के अनेक अप्रिय नये कानूनों का विरोध किया था। किन्तु वास्तव में जैसे ही उनके अपने विशेषाधिकारों पर आँच आती वैसे ही वे भी पुरानी व्यवस्था की अनेक अत्यधिक घृणित बुराइयों के कट्टर समर्थक बन जाते। क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में तीसरे वर्ग को जिन विरोधियों का सामना करना पड़ा उनमें इन सामन्त-बने न्यायाधीशों से अधिक कट्टर और कोई न था।

विशेषाधिकृत वर्गों की यह स्थिति थी। शेष जनसंख्या, जिसमें देश की बहु-

संख्यक जनता सम्मिलित थी, तीसरे वर्ग के नाम से पुकारी जाती थी। वह सब प्रकार के अधिकारों से वंचित थी; इस दृष्टि से वह अन्य वर्गों से भिन्न थी। किन्तु असमानता का सिद्धान्त उस वर्ग के लोगों के बीच भी चरितार्थ होता था; इस दृष्टि से इसमें तथा अन्य वर्गों में समानता भी थी। सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से इसके सदस्यों के बीच गहरी विषमताएँ देखने को मिलती थीं। जो भी व्यक्ति सामन्त अथवा पादरी न होता उसकी तीसरे ही वर्ग में गिनती होती थी। धनी से धनी साहूकार, अत्यधिक प्रसिद्ध और प्रतिभाशाली साहित्यकार गरीब किसान और राह के भिखारी सभी इस वर्ग में समाए हुए थे। इस विशाल जन समुदाय के, जिसमें किसी भी प्रकार की एकरूपता न थी, तीन मुख्य भाग थे—बुर्जुआ अथवा मध्य वर्ग, दस्तकार और किसान।

तीसरा वर्ग

बुर्जआ अथवा उच्च मध्य वर्ग में वे सब लोग सम्मिलित थे जिन्हें हाथ का परिश्रम न करना पड़ता था। इस प्रकार वकील, चिकित्सक, अध्यापक, साहित्यकार इसी वर्ग के सदस्य थे, और इसी भाँति व्यापारी साहूकार और उत्पादक भी इसी कोटि में थे। महान् राष्ट्रीय पराजयों के बावजूद पिछली शताब्दी में व्यापार की वृद्धि के कारण बुर्जुआ वर्ग के सदस्य पहले से बहुत धनी हो गये थे। आर्थिक अभिवृद्धि से लाभ केवल इसी वर्ग को ही हुआ था। अनेक लोगों ने भारी धन जमा कर लिया था और उनका भौतिक स्तर स्पष्टतया पहले से अधिक ऊँचा हो गया था। इस वर्ग के लोग व्यवहार कुशल व्यवसायी थे, वे राज्य को धन कर्ज पर देते थे और बहुधा ऐसे पदों पर नियुक्त भी कर दिये जाते थे जहाँ व्यावसायिक योग्यता की आवश्यकता पड़ती थी। समझदार, कर्मठ, शिक्षित और धनी होने के कारण इन लोगों को प्रचलित व्यवस्था से सबसे अधिक असन्तोष था। उच्च वर्ग के लोगों का इनके प्रति व्यवहार इतना असह्य था कि उन्हें कदम-कदम पर अपनी सामाजिक हीनता का अनुभव होता था। साथ ही साथ इन्हें बात की भी चेतना थी कि हम शिक्षा-दीक्षा और व्यवहार-शिष्टाचार में सामन्तों के ही सदृश हैं, उनसे किसी प्रकार कम नहीं हैं; इसलिये वे सामन्तों के तिरस्कारपूर्ण बर्ताव का उत्तर ईर्ष्या और घृणा से देते थे। उन्होंने राज्य को भारी-भारी रकमें कर्ज में दे रक्खी थीं, किन्तु वह दिन पर दिन दिवालियापन की ओर अग्रसर हो रहा था, इससे उनके स्वार्थों के लिए भारी संकट उपस्थित हो गया था, और इसलिए वे बहुत भयभीत थे। यही कारण था कि वे ऐसे राजनैतिक पुर्नसंगठन के पक्षपाती थे जिससे उन्हें सरकार के कार्यों में भाग लेने, उसके व्यय को नियन्त्रित करने और उसकी साख को बनाए रखने का अवसर मिल जाय ताकि उनका व्याज और मूलधन सुरक्षित रहे, व्यवसाय में रुकावट डालने वाली बुराइयाँ दूर हो जाएँ और उनकी स्थिति जो डाँवाडोल थी सुदृढ़ हो जाय।

उच्च मध्य वर्ग

प्रचलित व्यवस्था से असन्तुष्ट

राजनैतिक और सामाजिक सुधारों के इच्छुक

वे सामाजिक क्रान्ति भी चाहते थे। वे सुरक्षित थे, उनके मस्तिष्क उस युग के साहित्य से, जिसका वे चाव से अध्ययन करते, ओत-प्रोत थे, और वाल्तेयर, रूसो, मान्तेस्क्यू तथा अर्थशास्त्रियों के विचारों ने उनके दिमागों को आन्दोलित कर रक्खा

था। व्यक्तिगत तुलना में वे उतने ही सुसंस्कृत थे जितने की सामंत लोग। वे सामाजिक समता चाहते थे; उनकी बलवती इच्छा थी कि कानून इस बात को स्वीकार करले कि बुर्जुआ वर्ग के लोग सामंतों के ही समकक्ष हैं, उनका विचार था कि जीवन के तथ्यों से यह बात पूर्णतया स्पष्ट है। सामंतों का उच्चता का दावा उन्हें बहुत खलता था, क्योंकि उनकी दृष्टि में इस प्रकार का दावा सर्वथा अनुचित था। उनके इन मनोभावों को उनके वर्ग के एक सदस्य एबे सेज ने एक पत्रिका में बड़े सुन्दर ढ़ग से व्यक्त किया। क्रान्ति से ठीक पहले इस पत्रिका का धुआँधार प्रचार किया गया था। सेज ने प्रश्न किया, "तीसरा वर्ग क्या है ?" "सब कुछ"। "राजनीति में अब तक उसका क्या स्थान रहा है ? कुछ नहीं। उसकी क्या इच्छा है ? वह कुछ होना चाहता है।"

कारीगर लोग

इसी वर्ग में किन्तु बुर्जुआ से नीचे शिल्पि लोग थे। उनकी संख्या लगभग २५ लाख रही होगी, और वे नगरों में रहते थे। तुलनात्मक दृष्टि से इनका वर्ग छोटा था, क्योंकि इस समय तक फ्रांस में उद्योग-धन्धों का अधिक विकास न हो पाया था। वे श्रेणियों में संगठित थे जिनके अपने नियम और विशेषाधिकार थे, किन्तु उनके कारण लोगों में आये दिन लड़ाई-झगड़े होते रहते थे जिससे उद्योगों का पूरा और खुल कर विकास न हो पाता और शिल्पियों के काम करने के अधिकार में कृत्रिम बाधा पड़ती। इन कारणों से उन श्रेणियों की बहुधा तीव्र आलोचना हुआ करती थी।

किसान

तीसरे वर्ग का अन्य बड़ा भाग किसानों का था। उनकी संख्या सबसे अधिक थी। वास्तव में यही वर्ग राष्ट्र था। फ्रांस कृषिप्रधान देश था, जनसंख्या का ९/१० से अधिक भाग किसानों का था, सम्भवत: २०,०००,००० से भी अधिक। उनमें से लगभग १० लाख अर्द्ध दास थे; और शेष स्वतन्त्र किसान, फिर भी उनका जीवन दुखी था। समाज का समूचा बोझ, कुचल देने वाला बोझ, उन्हीं पर पड़ता था। तुर्गो ने अनुमान लगाया था कि उन्हें अपनी कमाई का कम से कम ५५ प्रतिशत करों के रूप में देना पड़ता था। चर्च अधिकारियों को वे धर्मांश देते, और सामन्तों को अनेक कष्ट प्रद जागीरदारी कर। पुलों और सड़कों का प्रयोग करने के लिए किसानों को अपने स्वामियों को चुंगी देनी पड़ती थी। जब कोई कृषक अपनी भूमि बेचता तो उसे शुल्क देना पड़ता। अपनी शराब निकालने के लिए उसे स्वामी के शराब के कोल्हू का प्रयोग करना पड़ता। और इसी प्रकार उसे स्वामी की चक्की और चूल्हे का प्रयोग करने पर बाध्य किया जाता और इस सब के लिए उसे किराया देना पड़ता था। इन सब चीजों से धन की हानि ही नहीं होती बल्कि समय भी नष्ट होता। कभी-कभी तो किसानों को चक्की पर आटा पिसाने के लिए चार-चार, पाँच-पाँच घण्टे चल कर जाना पड़ता और मार्ग में एक दर्जन नदी और नाले पार करने पड़ते। गर्मियों में जब पानी इतना कम हो जाता कि चक्की का पहिया भी घूम न सकता, तो भी किसानों को अपने स्वामी के यहाँ आटा पिसाने के लिए जाना पड़ता और कभी-कभी तीन-तीन, चार-चार दिन तक प्रतीक्षा करनी पड़ती, और यदि वे किसी दूसरी चक्की पर आटा पिसवाने की आज्ञा माँगते तो उसके लिए भी फीस

अनेक भारी करों से उत्पीड़ित

देनी पड़ती। किसान जो कुछ राजा को, चर्च को और अपने स्वामी को देता तथा नमक कर और चुंगियों के रूप में उसे जो कुछ देना पड़ता वह सब मिला कर उसकी कमाई का ४/५ से कम न होता। शेष १/५ से वह अपना और अपने परिवार का पेट पालता। इन सबका अनिवार्य परिणाम यह था कि उसे निरन्तर संकट में फँसा रहना पड़ता। यदि किसी विषम परिस्थितियों में मौसम खराब हो जाता तो उसे घोर अभाव और भुखमरी का सामना करना पड़ता। १६८८ में ऐसा हुआ कि एक ओर तो फसल खराब हो गई और दूसरे जाड़ा अत्यधिक भयंकर पड़ा। एक विदेशी राजदूत ने लिखा था कि अलाव के सामने का पानी जम जाता है। ऐसी दशा में यह आश्चर्य की बात न थी कि भूख से पागल होकर हजारों और लाखों व्यक्ति भिखारी अथवा लुटेरे बन गए। अनुमान लगाया गया है कि अकेले पेरिस में

अत्यधिक असंतुष्ट वर्ग

जिसकी जनसंख्या ६५०,००० थी, लगभग १२०,००० भिखारी थे। इसलिए यदि भारी संख्या में लोग दंगे और हिंसात्मक कामों में भाग लेने के लिए उद्यत थे, तो इसमें अचरज ही क्या है। २०,०००,००० किसान जो न तो राजनीति समझते थे और न वाल्तेयर तथा रूसो के ध्वंसात्मक और विप्लवकारी सिद्धान्तों से ही परिचित थे, अपने जीवन की तीव्र परिस्थितियों से ही दिन प्रति दिन बल्कि प्रति क्षण सुधारों की तीव्र आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। वे इतना जानते थे कि हमारा जीवन तभी सह्य हो सकता है जब कि सामंती कर हटा दिए जायँ और राज्य के कर कम कर दिए जायँ। यह ठीक है कि जिन कारणों से वे परिवर्तन चाहते थे वे अन्य वर्गों से भिन्न थे, फिर भी इतना स्पष्ट है कि आग लगाने के लिए वे पर्याप्त थे।

जैसे ही समय बीतता गया सुधारों के लिए संयुक्त माँग बढ़ती गई और बहुत गम्भीर तथा व्यापक बन गई। जनता की आवाज अब बड़े स्पष्ट और निश्चत स्वर में सुनाई देने लगी।

स्थिति इतनी गम्भीर थी। क्रान्ति से पहले फ्रांसीसियों में न तो हैसियत की ही समता थी और न अवसर की, बल्कि अत्यधिक विविध प्रकार के विशेषाधिकारों ने उन्हें एक दूसरे से पृथक कर रक्खा था।

धार्मिक स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध

स्वतन्त्रता भी उन्हें प्राप्त न थी। धार्मिक स्वतन्त्रता का अभाव था। १६८५ में नान्ते का प्रसिद्ध धार्मिक अध्यादेश रद्द कर दिया गया था, तब से प्रौटेस्टेंट धर्म अवैध हो गया था। उस धर्म का पालन करना एक अपराध था और उसके लिए कठोर परिश्रम का दण्ड दिया जाता था। वैसे लुई सोलहवें के शासन-काल में प्रोटेस्टेंट लोगों का उत्पीड़न स्थगित कर दिया गया था, किन्तु वह किसी भी समय फिर आरम्भ किया जा सकता था। प्रोटेस्टेन्ट धर्म के उपदेश पर रोक लगा दी गई थी, इसलिए उसका प्रचार एकान्त स्थानों में और गुप्त रूप से ही हो पाता था। यहूदी विदेशी समझे जाते थे और इसलिए उनके साथ सहिष्णुता का व्यवहार होता था, फिर भी उनकी स्थिति अपमानजनक थी। कैथोलिकों को अपने धर्म के अनुष्ठानों और रूढ़ियों, जैसे कमूनियन, उपवास आदि, का पालन करने के लिए कानून द्वारा बाध्य किया जाता था, चर्च धार्मिक सहिष्णुता के पूर्णतया विरुद्ध था और यही कारण था कि वाल्तेयर जैसे विचारक उसके शत्रु हो गए थे।

विचारों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध

विचारों की भी स्वतन्त्रता न थी कम से कम उनके प्रकाशन की स्वतन्त्रता तो थी ही नहीं। यह नियम था कि प्रत्येक पुस्तक और समाचार पत्रों का प्रत्येक लेख अपने से पहले सरकारी निरीक्षक के सामने स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाय; और न कोई मुद्रक बिना आज्ञा के कुछ छाप सकता था। इतना ही नहीं, यदि इन सब शर्तों को पूरा करके पुस्तकें छप जाती तो भी बहुधा पुलिस उन्हें छीन कर जला देती; संस्करण के संस्करण नष्ट कर दिये जाते और प्रकाशकों, लेखकों और पाठकों पर अभियोग चलाया जाता और उन्हें जुर्माने अथवा कारागार का दण्ड दिया जाता। यह न समझ लेना चाहिए कि चूँकि वाल्तेयर, रूसो तथा अन्य कुछ लेखकों के विचार किसी प्रकार जनता तक पहुँच जाते थे, इसलिए सिद्धान्त के तौर पर न सही, कम से कम व्यवहार में विचारों की स्वतन्त्रता अवश्य रही होगी। वाल्तेयर को भी अपने लेखों के लिए कारागार का दण्ड भोगना पड़ा था, और अपने जीवन के अनेक वर्ष निर्वासन में बिताने पड़े थे। विचारों के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध मन माने ढँग से लगाए जाते थे और काफी संख्या में इस सम्बन्ध में लोगों पर मुकदमे भी चलते थे; इसलिये यह कथन सर्वथा उचित है कि फ्रांस में जीवन के इस क्षेत्र में स्वतन्त्रता का अभाव था।

नागरिक स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध

वैयक्तिक स्वतन्त्रता का भी अभाव था। अधिकारीगण जिस व्यक्ति को चाहते गिरफ्तार कर लेते; और बिना कारण बताए और अपने को निरपराध सिद्ध करने का अवसर दिये बिना उसे जब तक चाहते कारागार में डाले रखते। हेबियस कॉपस जैसा कोई नियम वहाँ न था? देश में बड़ी संख्या में कारागार थे जिनमें बास्तीय सबसे अधिक प्रसिद्ध था। उनमें रहने वाले बन्दी बहुधा ऐसे लोग होते थे जिन्हें अधिकारीगण मनमाने ढग से गिरफ्तारी पत्र[1] जारी करके पकड़वा लिया करते थे। यह परिपाटी पुरातन व्यवस्था की सबसे अधिक घृणित विशेषता थी। मन्त्रिगण तथा उनके अधीन अधिकारी खुल कर इस प्रकार के पत्रों का प्रयोग करते थे। सामन्तों को भी वे सरलता से मिल जाते थे, और कभी-कभी नाम का स्थान रिक्त छोड़ दिया जाता जिसे वे स्वयं भर लेते। कभी-कभी ऐसे पत्र बेच भी दिये जाते थे। इस प्रकार सामन्तों और अधिकारियों को निजी शत्रुता निभाने के लिए इन पत्रों का प्रयोग करने की पर्याप्त सुविधा थी। एक बार मालशेर्व ने लुई सोलहवें से कहा था, "आपके राज्य में ऐसा कोई नागरिक नहीं है जिसे इस बात का विश्वास हो कि निजी शत्रुता और प्रतिशोध की भावना की वेदी पर उसकी स्वतन्त्रता का बलिदान न हो सकेगा, क्योंकि इतना बड़ा कोई व्यक्ति नहीं है जो मन्त्रियों की घृणा का शिकार न बन सके और न कोई इतना छोटा है जो क्लर्कों की घृणा के भी योग्य नहीं।" पारिवारिक अनुशासन को कायम रखने के लिए भी 'गिरफ्तारी पत्रों' का प्रयोग होता। फ्रांस में परिवार के प्रमुख की सत्ता इतनी ही निरंकुश थी जितनी कि पूर्वी देशों में। उसको डगमगाने से बचाने के लिए कभी-कभी वह भी इन पत्रों का सहारा लेता। कोई पिता अपनी पत्नी और अपने वयस्क पुत्रों

---

1. Lellers de Caehet—लेत्र द काशे

को कारागार में डलवा सकता । मिराबू को उस समय भी जब कि वह एक लेखक के रूप में ख्याति पा चुका था, ऐसा अनुभव करना पड़ा था ।

राजनैतिक स्वतन्त्रता का अभाव

और न राजनैतिक स्वतन्त्रता का ही अस्तित्व था । फ्रांसीसियों को न तो सार्वजनिक सभाएँ करने का अधिकार था और न समुदाय अथवा संघ बनाने का । और यह दुहराने की आवश्यकता नहीं कि वे सरकार पर नियन्त्रण रखने के लिए किसी प्रकार की सभाओं का निर्वाचन न करते थे । फ्रांस की जनता उस प्रकार की स्वतन्त्रता से सर्वथा अपरिचित थी जिसका इंगलैण्ड में शताब्दियों से प्रचार था और अटलांटिक के दोनों ओर बसने वाली अंग्रेज जाति की बहुमूल्य विरासता मानी जाती थी ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखने पर यह आश्चर्य की बात नहीं प्रतीत होती कि स्वतन्त्रता और समता का नारा क्रान्ति का युद्ध-घोष बन गया और उसके द्वारा राष्ट्र की गम्भीरतम आकांक्षाएँ मुखरित हुईं ।

बहुधा कहा जाता है कि फ्रांस की क्रान्ति का मुख्य कारण "दार्शनिकों" अथवा अठाहरवीं शताब्दी के लेखकों का प्रभाव था । किन्तु यह तो एक उल्टी बात है । वास्तव में वे अगणित कष्ट जिनसे राष्ट्र पीड़ित था क्रान्ति के मूल कारण थे, उन्हीं को दूर करने की माँग उसके पीछे प्रेरक शक्ति थी ।

साहित्यकारों का प्रभाव

फिर भी यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि अठाहरवीं शताब्दी भर अनेक प्रतिभाशाली लेखकों ने उपर्युक्त तथा उसी प्रकार की अन्य बुराइयों की बड़ी कटु आलोचना की । अपनी कटु प्रतिपादन शैली और आलोचना द्वारा उन्होंने युग के असन्तोष, क्रोध और आकांक्षाओं की व्यापक रूप से अभिव्यक्ति की । साहित्य सुधारों का उन्मत्त और भावुक समर्थक था और उसके द्वारा फ्रांस में नये विचारों की बाढ़ सी फैल गई । इन विचारों में अनेक विदेशी थे, जर्मनी, इंगलैण्ड अथवा अमेरिका से आये थे, और बहुत से देशज थे । समूचा साहित्य राजनीति से ओत-प्रोत था और पुरातन विचारों की प्रत्येक दृष्टि से इतनी तीव्र और ध्वंसात्मक आलोचना कभी नहीं हुई थी । साहित्य सन्देह मूलक था और पुरातन परम्पराओं के प्रति तीव्रतम घृणा की अभिव्यक्ति रखता था; जिन आधारों पर फ्रांस की डगमगाती हुई व्यवस्था खड़ी थी, उन्हीं पर चोट करता था ।

अठारहवीं शताब्दी का आलोचनात्मक साहित्य

उसकी शैली विश्लेषणात्मक थी और विचारों, संस्थाओं तथा पद्धतियों का अत्यधिक सूक्ष्म ढंग से और सभी पहलुओं से परीक्षण किया जाता था । कोई कुप्रथा और कोई मूर्खता जिस पर अतीत का ढाँचा खड़ा हुआ था, ऐसी न थी जिसका इन उत्सुक जिज्ञासु और अश्रद्धालु विचारकों ने उद्घाटन न किया हो और मखौल न उड़ाया हो । साहित्य आशावादी था; न कभी किसी राष्ट्र ने ऐसे रंगीन सपने देखे थे और न ऐसी और इतनी काल्पनिक समाज व्यवस्थाओं के सुनहरे चित्र खींचे थे । शायद ही कभी कोई ऐसा साहित्य देखने को मिले जो ताजगी निर्भीकता और दुस्साहसिक विश्वास से इतना ओत प्रोत हो । वह बुद्धि को उभाड़ता, संवेगों को उद्वेलित करता समस्त मानव प्रकृति का मंथन करता और हर स्वर और हर ध्वनि से लोगों के हृदयों और

मस्तिष्कों के साथ खिलवाड़ करता। इस साहित्य की विशेषताएं थीं कटु आलोचना और निन्दा; और उसमें भविष्य को अधिक सुन्दर और सुखी बनाने के लिए विलक्षण अथवा व्यर्थ के सुझाव भरे पड़े थे। उसमें चमक थी, आवेश था, व्यंग था, और थी वैज्ञानिकता की छाप। उसके निःश्वास में क्रान्ति और घृणा का स्पंदन था, किन्तु साथ ही साथ उसमें इस बात का अपरिमित विश्वास भरा था कि मनुष्य और उसकी संस्थाओं में पूर्ण होने की असीम शक्ति विद्यमान है। जैसा कि बहुधा कहा जाता है, वह ध्वंसात्मक था। किन्तु वह रचनात्मक भी था, उसकी इस विशेषता की बहुधा उपेक्षा की गई है।

उसका प्रभाव ध्वंसात्मक और रचनात्मक भी

मौन्तेस्क्यू, वाल्तेयर, रूसो, दिदरो तथा अन्य अनेक विचारकों की लेखनियों से निकली पुस्तकों ने मानसिक जगत की गहराई को धरातल तक आन्दोलित कर दिया। उन्होंने राजनीति, धर्म, समाज, व्यवसाय आदि से सम्बन्धित अगणित विचारों के संचार की गति को तीव्र कर दिया। वास्तव में वे महान् ऐतिहासिक कृतियां थीं। उन्होंने राज्य तथा समाज सम्बन्धी समग्र विचारधाराओं को अत्यन्त प्रखर सूत्रों के रूप में निचोड़ कर रख दिया। बहुधा ये सूत्र चकाचौंध कर देने वाले सिद्ध हुए। इस रूप में वे विचारधारायें पहले फ्रांस में और फिर समस्त यूरोप में फैल गईं।

इस ज्वलनशील साहित्य का कलेवर विशाल तथा प्रभाव अत्यधिक गहरा था। उसके निःश्वास से स्वतन्त्रता का प्रेम और न्याय की अभिलाषा निकलकर वायु मण्डल में फैल गई। उदार विचारों ने जनता के मस्तिष्क में गहरा घर कर लिया। विचारों के इस व्यापक आन्दोलन और मंथन ने, प्रचलित बुराइयों तथा उनके निवारण से सम्बन्धित इस निरन्तर तथा गम्भीर वाद-विवाद ने, आने वाली उन महान घटनाओं का मार्ग प्रशस्त किया जो फ्रांस तथा समस्त यूरोप के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुईं।

मौन्तेस्क्यू (१६६९-१७५५)

तीन पीढ़ियों तक फ्रांसीसी राजतन्त्र की नींव पर कटु आलोचना और तीव्र व्यंग्य का धुंआधार प्रहार होता रहा। इसका प्रारम्भ मौन्तेस्क्यू ने किया था। वह न्यायिक वर्ग का एक सामन्त, उच्च श्रेणी का वकील तथा बोर्दो की संसद का न्यायाधीश था। 'कानून की आत्मा' उसकी महान् कृति थी जिसे उसने बीस वर्ष के कठिन परिश्रम से लिखा। उसका प्रकाशन १७४८ में हुआ। उसको तुरन्त ही महान् सफलता मिली। अठारह महीने में उसके बाइस संस्करण निकल गए। यह ग्रन्थ राजनीतिदर्शन का एक अध्ययन था, इसमें मनुष्य की सात विभिन्न शासन-प्रणालियों का विश्लेषण और उनकी विशेषताओं, गुणों तथा दोषों की सन्तुलित और आवेशरहित समीक्षा की गई थी। मौन्तेस्क्यू ने रहस्य के उस आवरण को जिससे मनुष्य ने अपनी समस्याओं को ढक रक्खा था, फाड़कर फेंक दिया; उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित दैवी सिद्धान्त की तिरस्कारपूर्वक उपेक्षा की, उनकी प्रकृति में कोई पवित्र, धार्मिक और उल्लंघनीय गुण हो सकता है, इस मत का निर्मम ढंग से खण्डन किया और उनके विभिन्न रूपों का उसी निर्लिप्त तथा हृदयगत भाव से परीक्षण किया जैसा कि कोई वनस्पतिशास्त्री पेड़-पौधों और फूल-पत्तियों का करता है। उसके इस विश्लेषण और परीक्षण से दो-तीन प्रमुख विचारों का उदय हुआ। पहला यह कि इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ थी। उसके

राजतन्त्र की शक्तियाँ सीमित थीं और देश की जनता के प्रतिनिधियों की एक सभा का उस पर नियन्त्रण था। दूसरे शब्दों में इङ्गलैंड की सरकार का वही रूप था जिसे आधुनिक राजनीतिक भाषा में सांविधानिक राजतन्त्र कहते हैं। दूसरे, मौन्तेस्क्यू ने इस बात पर जोर दिया कि एक सुनियमित राज्य में सरकार की तीन शक्तियों—विधायी, कार्यपालक और न्यायपालक को सावधानी के साथ पृथक् किया जाना चाहिए। फ्रांसीसी राजतन्त्र में सब शक्तियां एक ही व्यक्ति, राजा, के हाथों से केन्द्रित थीं और उन पर किसी सांसारिक शक्ति का नियन्त्रण नहीं था और न उस पर कोई दैवी नियन्त्रण ही ऐसा था जो दृष्टिगोचर हो सकता। इन धारणाओं का कि निरंकुश राजतन्त्र की अपेक्षा सांविधानिक राजतन्त्र अच्छा है और तीनों शक्तियों का पृथक्करण आवश्यक है, फ्रांस के उन सब संविधानों पर गहरा प्रभाव रहा जो १७८९ से अब तक बने हैं और उन्होंने उस देश की सीमा के बाहर भी संविधान के निर्माताओं को प्रभावित किया है। मौन्तेस्क्यू की पुस्तक बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों का भण्डार सिद्ध हुई; और चूँकि लेखक एक विद्वान और अध्ययनशील न्यायाधीश था और उसकी भाषा तथा शैली गम्भीर और ओजपूर्ण थी, इसलिए उससे फ्रास में तथा अन्यत्र विचारों, वाद-विवाद और कार्यों को भारी उत्तेजना मिली।

वॉल्तेयर (१६९४-१७७८)

मौन्तेस्क्यू से भिन्न, किन्तु उससे भी कहीं अधिक स्मरणीय कार्य वॉल्तेयर का था। वॉल्तेयर यूरोपीय इतिहास का एक महान् मनीषी हुआ है और उसके नाम पर एक युग का नाम पड़ गया है। जिस प्रकार लूथर अथवा इरास्मस के युग का उल्लेख किया जाता है वैसे ही वॉल्तेयर के काल की चर्चा होती है। वह बौद्धिक स्वतन्त्रता का महान् पोषक था। उसके समय में उसका क्या महत्त्व था इसका पता इस बात से चलता है कि लोगों ने उसे राजा वॉल्तेयर का नाम दे रखा था। संसार में उससे अधिक स्वतन्त्र, निर्भीक और साहसी आत्माएँ बहुत कम हुईं। उसमें साहित्यिक प्रतिभा उच्चकोटि की थी। वह एक कुशल कवि, इतिहासकार और यहां तक कि कुशल वैज्ञानिक सिद्ध हुआ। वह विशेषज्ञ न था, किन्तु उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। २३ वर्ष की आयु में ही वह अच्छी ख्याति पा चुका था। और ८४ वर्ष की अवस्था में उसका देहान्त हुआ, मृत्यु के समय उसकी प्रशंसा का पारावार न रहा लोगों के हृदय में उसके लिए उतनी ही श्रद्धा थी जितनी कि देवताओं के लिए हुआ करती है। विश्व ख्याति पा कर वह विश्व इतिहास का एक अंग बन गया।

स्वतन्त्रता का उग्र समर्थक

उसने जीवन में खिलवाड़, मौज और आनन्द का मार्ग नहीं अपनाया; बल्कि मृत्यु पर्यन्त अनेक और बहुधा आदरणीय उद्देश्यों के लिए संघर्ष करता रहा। इसमें सन्देह नहीं कि उसके चरित्र में अनेकों दुर्बलताएँ थीं जिनमें से अतिशय अहंकार सबसे बड़ी थी। किन्तु जो लोग मानव स्वतन्त्रता के संग्राम में लड़ना चाहते उनके लिए दिन में वह दिशा सूचक बादल का, और रात में प्रकाश स्तम्भ का काम करता। उसने स्वयं अपने निजी जीवन में पुरातन व्यवस्था के उत्पीड़न का अनुभव किया था और उसके प्रति उसके हृदय में गहरी और स्थायी घृणा थी। उसे अनेक बार घृणित गिरफ्तारी पत्रों द्वारा कारागार मे डाला गया था, क्योंकि उसने बड़े लोगों से शत्रुता मोल लेली थी। अपने जीवन का एक बड़ा भाग उसे

फ्रांस से बाहर बिताना पड़ा क्योंकि अपने देश में उसका जीवन सुरक्षित न था। अपने महान् मानसिक कार्यों द्वारा उसने बहुत-सा धन जमा कर लिया था और योरुप के शक्तिशाली लोगों में उसका स्थान था। जहाँ कहीं कोई अन्याय दिखाई देता; धर्म के नाम पर कहीं कोई उत्पीड़न होता, कहीं किसी निर्दोष व्यक्ति को मृत्यु के मुँह में धकेला जाता और इस प्रकार की घटनाएँ बहुधा वहाँ होती रहती थीं, वहीं पर वह जा डटता और क्रोध से प्रज्वलित होकर अत्याचारी का मुकाबिला करने को तैयार हो जाता। वॉल्तेयर के युग में यह बात अक्षरशः सत्य थी कि तलवार की अपेक्षा लेखनी में कहीं अधिक बल होता है। उसकी शैली की अतिरंजित भाषा में प्रशंसा की गई है। फिर भी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। तलवार की धार के समान उसकी शैली स्पष्ट, नुकीली, लोचदार और तीखी थी। उसकी कृतियों को पढ़कर कभी कोई थकता न था। उसमें सदैव रोकचता रहती और उनसे हमेशा कुछ न कुछ सीखने को मिलता।

हर प्रकार के अत्याचार से घृणा

उसकी अद्भुत साहित्यिक प्रतिभा

वह जो कुछ भी लिखता उसमें उसको आत्मा का उत्साह और उमंग प्रतिविम्बित रहती कटु व्यंग के तीर छोड़ने में और धूल में मिला देने वाला वाक-प्रहार करने में वह दक्ष था। अपने युग के आडम्बरों, अत्याचारों और धर्मान्धता पर उसने इन अस्त्रों का खुलकर प्रयोग किया और अपनी लेखनी की विध्वंसक आग से उन्हें जला डाला। इसी कारण उसकी राज्य और चर्च से टक्कर हो गई। उसने कानून तथा न्याय-व्यवस्था की बुराइयों और अन्याओं की ओर मनमाने ढंग से निर्दोष नागरिकों को कारागार में डालने और यातना देने की प्रथा की खुलकर भर्त्सना की। वॉल्तेयर मौन्तेक्यू की भाँति गम्भीर और सावधान विद्यार्थी न था। उस युग में जब कि पत्रकारिता का प्रचार न हो सका था वह एक प्रभावशाली पत्रकार था और अपने समय की घटनाओं और समस्याओं पर जो मन में आता निर्भीक होकर लिखता था। उसकी रचनाओं की विविधता और रोचकता आश्चर्यजनक थी।

मूलतः वॉल्तेयर राजनैतिक विचारक न था। राज्य-व्यवस्था में विशेष बुराइयाँ जो उसने देखी उन पर उसने प्रहार किया और राज्य के प्रति श्रद्धा की जड़ें खोखली करदीं। किन्तु संस्था के रूप में वह ऊपरी तौर से राजतन्त्र से संतुष्ट था। उदार निरंकुशवाद को वह आदर्श शासनव्यवस्था मानता था। वह लोकतन्त्र का पुजारी न था। "मैं सौ चूहों की अपेक्षा एक सिंह द्वारा शासित होना पसन्द करूँगा।" इन शब्दों में उसने अपने विचार प्रकट किये।

चर्च को वह पशुता का प्रतीक मानता था। उसके अनुसार वह अन्धविश्वासों का गढ़, और विचारों की स्वतन्त्रता का शत्रु था, वह उन निर्दोष आदमियों का उत्पीड़न करता जो उससे सहमत न होते, वह असहिष्णुता का केन्द्र और हर प्रकार के संकीर्ण तथा मतान्धातापूर्ण दुर्भावों का समर्थक था। वॉल्तेयर नास्तिक नहीं था। ईश्वर में उसकी आस्था थी; किन्तु वह ईसाई अथवा यहूदी ईश्वर में विश्वास नहीं करता था और रोमन कैथोलिक चर्च तथा उसके प्रत्येक कार्य से उसे गहरी घृणा थी, और उस पर उसने भीषण प्रहार किये। जैसा कि हम पहले लिख आये हैं, १८ वीं शताब्दी में फ्रांस के चर्च में अनेक दोष थे और

वॉल्तेयर का चर्च पर धुँआधार प्रहार

उन्हीं को उसने अपने घातक तथा ज्वलनशील वाक-वाणों का शिकार बनाया, वॉल्तेयर का काम रचनात्मक न होकर ध्वंशात्मक था। उसका धार्मिक विश्वास अनिश्चित था और उसमें प्रेरणादायक बल का सदैव अभाव था। धर्मो के सभी वाह्य आडम्बरों से उसे घृणा थी और उनका उसने तिरस्कर किया।

रूसो (१७१२-१७७८)

जाँ जॉक रूसो उस युग का एक अन्य महान् लेखक था। उसका काम प्रवृत्ति तथा ध्वनि दोनों ही की दृष्टि से वॉल्तेयर के काम से भिन्न था। वॉल्तेयर में शुष्क बुद्धिवाद की प्रधानता थी और उसके प्रकाश से उसने संसार के अन्धकारमय स्थलों को आलोकित किया। इसके विपरीत रूसो की बुद्धि अथवा तर्कशक्ति भावुकता से ओत-प्रोत थी। वॉल्तेयर ने अपनी शक्ति का प्रयोग मूलतः पुरातन व्यवस्था का ध्वंस करने के लिये किया, किन्तु रूसो का कार्य रचनात्मक और कल्पनामूलक था और उसमें भविष्य द्रष्टा का विश्वास छिपा हुआ था। उसने एक सर्वांगीण राजनैतिक विचार-धारा का निर्माण किया ; उसने विश्वास के साथ एक नयी सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त प्रतिपादित किये। मौन्तेस्क्यू और वॉल्तेयर वैयक्तित स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए राजनैतिक सुधार चाहते थे, और चाहते थे अत्याचारों का अन्त करना। किन्तु रूसो उनकी तुलना में बहुत आगे बढ़ गया। वह समाज का एक दम नये ढंग से पुर्नस्संगठन करना चाहता था क्योंकि उसका कहना था कि कितने ही थेगरे लगाये जायें, कितना हो जीर्णोद्धार किया जाय वर्तमान व्यवस्था सह्य नहीं हो सकती, कुछ भी किया जाय इस व्यवस्था में स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है। उसकी गद्य में जादू था ; वह सम्पन्न बोलती हुई निराशा और उद्विग्नता से भरी हुई रंगीन और संगीत की लय से परिपूर्ण थी, और उसमें उच्चकोटि का शान्त प्रवाह था।

रूसो में ऐतिहासिक भावना का अभाव

अतीत का रूसो पर कोई प्रभाव न था। ऐतिहासिक भावना उसे छू तक न गई थी। अतीत से तो वास्ताव में उसे घृणा थी। उसका कहना था कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु अतीत ही है। वह उन अगणित बुराइयों का आदि कारण है जिनसे मानवता आज संतप्त है और जिनसे उनका मुक्त होना आवश्यक है। उसके सामने जैसा संसार था उससे उसे घृणा इसलिए थी कि उसका स्वयं का जीवन बड़ी कठिनाइयों में बीता था। जिनेवा के घड़ी बनाने वाले के यहाँ उसका जन्म हुआ था, जीविका कमाने के लिये उसे इधर-उधर घूमना पड़ा। और एक के बाद एक उसने अनेक व्यवसाय किये। कहीं किसी के यहाँ चाकरी की, कहीं संगीत की शिक्षा दी और कहीं अध्यापन का कार्य किया। दुखदरिद्रता से वह भली भाँति परिचित था और उसके निजी जीवन में कोई ऐसी बात न हुई थी जिससे वह संसार को और उसकी सभ्यता को अच्छी दृष्टि से देख सकता, और उसके सम्बन्ध में अच्छे भाव रख सकता। अपने सबसे पहले ग्रन्थ में उसने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि प्रकृति ने मनुष्य को भला, न्यायशील और सुखी बनाया है ; किन्तु जिसे हम सभ्यता कहते हैं उसी ने उसे भ्रष्ट और पतित कर दिया है। इसलिए सभ्यता की जड़ें उखाड़ फेंको और इस प्रकार उसकी कृत्रिम और हानिकारक रूढ़ियों और संस्थाओं से जो भूमि मुक्त की जाय उस पर एक नये सुखी और आदर्श समाज का निर्माण करो।

रूसो का मुख्य ग्रन्थ 'सामाजिक संविदा' था। उसकी गणना विश्व

अध्याय ३

क्रान्ति का आरम्भ

राष्ट्रीय वित्त की शोचनीय दशा

लुई १६ वें के राज्य-काल में फ्रांस की वित्तीय स्थिति दिन पर दिन इतनी गम्भीर होती गई कि अन्त में उसकी उपेक्षा करना असम्भव हो गया। लुई १४ वें तथा लुई १५ वें के राज्य-काल से ही सरकार पर ऋण का भारी बोझ लदा हुआ था; अमरीकी क्रान्ति में भाग लेने के कारण उसमें और भी अधिक वृद्धि हो गई। राज्य के अतिशय एवं अनियंत्रित व्यय और दरबार की अपव्ययता में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी, परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय वित्त-व्यवस्था पूर्णत: छिन्न-भिन्न हो गई और दिवालियेपन के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। इस संकट ने, अन्त में राजा को जनता के प्रतिनिधियों को बुलाने और उनसे सहयोग की अपील करने पर वाध्य किया।

लुई सोलहवाँ (१७५४-१७९३)

इतने गम्भीर कदम को जिसके परिणामों का पहले से अनुमान लगाना कठिन था, उठाने से पहले सरकार नाना प्रकार के कम तीक्ष्ण उपायों को प्रयोग में ला चुकी थी, किन्तु किन्हीं न किन्हीं कारणों से वे सब असफल रहे थे। लुई १६ वाँ अभागा शासक था, क्योंकि उसी के शासन-काल में दीर्घ काल से एकत्रित हुई बुराइयाँ अपने परम परिणाम पर पहुँच गईं। वह पुरातन व्यवस्था के शासकों में अन्तिम था। उसने १७७४ से १७९२ तक राज्य किया। उसके शासन-काल को तीन खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। १७७४—१७७६ तक का संक्षिप्त काल जिसमें सुधार के कुछ प्रयत्न किए गये; दूसरा उसके बाद के १२ वर्षों का काल जिसमें बोरबाँ राजाओं की परम्परागत शासन-पद्धति को ही पुन: काम में लाया गया; और तीसरा क्रान्ति के ववंडर का युग।

लुई की युवावस्था में कोई भी यह न सोच सकता था कि वह भी किसी दिन राजा बनेगा। कारण यह था कि उससे पहले कई राजकुमार थे जिनका सिंहासन पर उससे कहीं अधिक हक था, अत: उसके राज्यारोहण की आशा बहुत कम थी। किन्तु

उसके वंश में मृत्यु का ऐसा अभूतपूर्ण ताँता लगा कि यह क्षीण आशा भी पूरी हो
गई। लुई सिंहासन पर बैठा, जहाँ से अठारह वर्ष बाद वह एक विचित्र घटना चक्र
के द्वारा धक्के मार कर हटाया गया। उसे इस ऊँचे तथा जोखिम के पद के लिए
उचित शिक्षा-दीक्षा न मिली थी। लुई १५ वें की मृत्यु के समय वह केवल बीस वर्ष
का था और रानी मारी अन्त्वानेत उन्नीस वर्ष की थी। उस समय उन दोनों ने
अन्त:प्रेरणा के वशीभूत होकर एक विचार व्यक्त किया : "हम कितने अभागे हैं।
शासन-भार संभालने के लिए हमरी आयु बहुत कम है।" नये राजा को शासन-कला
की तनिक भी शिक्षा न मिली थी। वह भला तथा सद्भावना वाला व्यक्ति था;
उसका नैतिकता तथा कर्तव्य परायणता का स्तर ऊँचा
था और उसमें प्रजा की सेवा करने की सच्ची इच्छा थी। **लुई १६ वें का चरित्र**
उसमें विवेक का अभाव था, उसे शिक्षा अत्यन्त साधारण
कोटि की मिली थी। उसकी विचार प्रक्रिया अव्यवस्थित, धीमी तथा अनिश्चित
थी। वह भोंड़ा, कायर तथा मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार के ओज और
लालित्य से रहित था। शायद ही कभी कोई राजा अपने पद के लिये इतना अयोग्य
रहा हो। और जिस तड़क-भड़क पूर्ण, शिष्ट, और निर्भम दरबार का वह केन्द्र था
उसके लिए उससे अधिक अनुपयुक्त शायद ही कोई मिलता। दूसरों की भाँति वह
भी अपनी इन कमजोरियों और कमियों को समझता था, और क्रान्ति के पहले भी
प्राय: खेद प्रकट किया करता था कि मैंने गद्दी नहीं छोड़ दी और अपनी इच्छा तथा
स्वभाव के अनुकूल किसी निजी कार्य में न लग गया। वह उच्च कोटि का घुड़सवार
था, शिकार में उसकी विशेष रुचि थी, और ताले बनाने की कला को उसने प्रसन्नता-
पूर्वक सीखा था। वह अपने से अधिक बुद्धिमान लोगों की सलाह सुनने के लिए तैयार
रहता था, किन्तु उसका घातक दोष था उसकी दुर्वल इच्छा शक्ति। उसमें अधिकार-
पूर्ण नेतृत्व के लिए आवश्यक गुणों में से एक भी न था। कहाँ संकट है और कहाँ
से सहायता मिल सकती है, ऐसी साधारण-सी चीजों के समझने की भी उसमें क्षमता
न थी। वह मन्द बुद्धि नहीं था, किन्तु उसकी बुद्धि पद की आवश्यकता के लिए
पर्याप्त नहीं थी। उसके मस्तिष्क में फ्रांस अथवा यूरोप की स्थिति का चित्र ही
स्पष्ट न था। उसमें व्यक्तियों को परखने की योग्यता न थी, फिर भी उस पर उनका
प्रभाव अधिक रहा करता था। कभी वह किसी की सलाह मान लेता, जो लाभदायक
सिद्ध होती, किन्तु फिर कभी ऐसे लोगों की बातों में आ जाता जिनका प्रभाव घातक
सिद्ध होता। अपने युग के अन्य राजाओं की भाँति वह भी सुधारप्रिय था, किन्तु इस
दिशा में उसकी गति बड़ी धीमी और हिचकिचाहटपूर्ण थी। एक अवसर पर नेकर
ने कहा था : "तुम किसी व्यक्ति को अपने विचार तो दे सकते हो, किन्तु उसे अपनी
दृढ़ इच्छा शक्ति नहीं दे सकते।" एक अन्य व्यक्ति ने कहा था : "हाथी दाँत की
एक दर्जन गेंदों को तेल से चुपड़ कर एक दूसरे से सटा कर रखने की कल्पना करो।
मेरा विचार है तुम ऐसी कल्पना भी कर सकते।" यही दशा राजा के विचारों की
थी। अपने शासन के प्रारम्भिक काल में लुई उस समय के सबसे बुद्धिमान राजनी-
तिज्ञ तुर्गो के प्रभाव में था। किन्तु बाद में वह अपनी रानी के प्रभाव में आ गया—
यह उसके तथा फ्रांस दोनों के लिए दुर्भाग्य का कारण बना।

बोर्बा राजवंश के युग में, फ्रांस में स्त्रियों का प्रभाव सदैव ही अधिक रहा;
और मारी आन्त्वानेत इस नियम का अपवाद न थी। इससे भी बड़ी बात यह थी कि

मारी आन्त्वानेत (१७५५-१७९३)

यह प्रभाव हमेशा ही घातक सिद्ध हुआ और इस दृष्टि से भी पुरातन व्यवस्था की यह अन्तिम रानी अपवाद न थी। यदि राजा अपने पद के लिये अयोग्य सिद्ध हुआ तो रानी भी अपने पद के लिये कम अयोग्य न निकली। वह आस्ट्रिया की महान् साम्राज्ञी मेरिया थेरेसा की पुत्री थी और लुई १६ वें के साथ उसका विवाह इस आशा से किया गया था कि यह बन्धन दोनों राज्यों की दीर्घकाल से चली आई शत्रुता को समाप्त करके उनके बीच दृढ़ एकता स्थापित कर देगा। किन्तु अनेक फ्रांसीसी इस सम्बन्ध की हर बात से घृणा करते थे, अतः मारी ने जबसे फ्रांस की भूमि पर कदम रक्खा उसी समय से वह जनता के बीच अप्रिय बन गई, और लोगों ने उसे द्रोहपूर्ण आलोचना का शिकार बनाया। वह सुन्दर लावण्यपूर्ण तथा उत्साही महिला थी। उसमें बड़ी मात्रा में वे गुण विद्यमान थे जिनका राजा में सर्वथा अभाव था। उसमें दृढ़ इच्छा-शक्ति, शीघ्र, निर्णय करने की योग्यता, पहल करने की क्षमता, तथा निर्भीकता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। किन्तु उसमें बुद्धिमानी का अभाव था। और उसकी निर्णय-शक्ति संकुचित थी; वह न तो फ्रांसवासियों के स्वभाव से ही परिचित हो पाई थी ओर न उसने अपने युग की भावनाओं को ही समझा। राजकुल में उत्पन्न होने के कारण उसका जीवन दृष्टिकोण अपने छोटे और अत्यधिक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग की संकुचित सीमाओं को न लाँघ सका।

रानी की दोषपूर्ण शिक्षा

उसका पालन-पोषण यूरोप की एक अत्यधिक विकासपूर्ण राजधानी वीना में हुआ था। उसकी शिक्षा बहुत ही दोषपूर्ण थी। जब वह लुई १६ वें की पत्नी बनकर फ्रांस आई, उस समय उसे लिखना तक न आता था। उसके लिये हर विषय के शिक्षक नियुक्त किये गये, किन्तु उसने इनसे कुछ लाभ न उठाया। वह बड़ी हटीली और घमंडी, विचारहीन तथा अपव्ययी, अरुचिकर सत्य के प्रति असहिष्णु, आडम्बरप्रिय, संयमों के सम्बन्ध में चपल तथा आमोद-प्रमोद की शौकीन थी, और उसका लगाव उन लोगों के प्रति रहता था जो उसकी इस रुचि की पूर्ति में सहायक होते।

उसका अविवेक तथा उसकी अप्रियता

अपने आचरण के सम्बन्ध में उसने अनेक भूलें कीं, तथा उन लोगों को चुनने में भी उसने बुद्धिमानी से काम नहीं लिया जो उसे सदैव घेरे रहते थे। इन्हीं लोगों के कारण उसकी अभद्रतापूर्ण निन्दा की गई और उसको समझने में भूल की गई।

मारी आन्त्वानेत ऐसे लुटेरों के दल की केन्द्र बनी हुई थी जो वहाँ की अव्यवस्था से ही अपना लाभ सिद्ध करते थे और हर प्रकार के सुधार के विरोधी थे। बिलकुल अनजाने वह वित्त-स्थिति को गम्भीरतम बनाने तथा इस महान बरबादी की गति को तीव्र करने का निमित्त बन गई।

वित्त नियन्ता तुर्गो (१७७४-१७७६)

लुई १६ वें ने अपने शासन के प्रारम्भिक काल में वित्त सम्बन्धी कार्यभार तुर्गो को सौंपा, जिसकी योग्यता तथा साहस असाधारण था तुर्गो फ्रांस के एक सबसे दरिद्र प्रान्त का सरकारी अधिकारी रह चुका था। उस प्रान्त में उसने अपने समय के सबसे प्रगतिशील आर्थिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया और उसे समृद्ध बना दिया।

उसके सिद्धान्त संक्षेप में इस प्रकार थे : उद्योग तथा व्यापार के लिये अधिकाधिक स्वतंत्रता, कृत्रिम प्रतिबन्धों तथा सूक्ष्म और दुखदाई नियमों का अन्त। यहाँ इस पद पर आते ही उसे भारी वार्षिक घाटे की समस्या का सामना करना पड़ा। निरन्तर वार्षिक घाटे का परिणाम अन्त में दिवालियेपन के अतिरिक्त और क्या हो सकता था ? तुर्गो ने राजा के सम्मुख अपने कार्यक्रम को इन शब्दों में रक्खा, "दिवालियेपन का अन्त, कर-वृद्धि पर रोक, आगे ऋण लेना बन्द।" उसने राष्ट्रीय वित्त को संकट से मुक्त करने के दो उपाय सोचे। सरकारी खर्च में कमी करना, और दूसरा सार्वजनिक धन की वृद्धि करना जिससे सरकारी आय बढ़ जाय। दूसरे लक्ष्य की प्राप्ति, कृषि, उद्योग तथा व्यापार को व्यर्थ के प्रतिबन्धों से मुक्त करके हो सकती थी।

तुर्गो की वित्त सम्बन्धी नीति

तुर्गो ने व्यर्थ के व्यय को समाप्त कर सरलता से लाखों की बचत करली, किन्तु उसकी कार्यवाही से वे सब लोग क्रुद्ध हो गये जो उस धन पर अधिकार जमाये हुए थे, और वे विद्रोह करने पर उतारू होगये। खाद्य सामग्री के व्यापार में राज्य हर प्रकार के कृत्रिम तथा घातक कानूनों और अतिशय हस्तक्षेप द्वारा रुकावटें डाला करता था। इन सबको उसने समाप्त कर दिया और अनाज के व्यापार में स्वतन्त्रता का सिद्धान्त लागू कर दिया। इससे सटोरियों का एक शक्तिशाली वर्ग अप्रसन्न होगया। उसने व्यावसायिक श्रेणियों का अन्त कर दिया। इन श्रेणियों से उत्पादन में रुकावट पड़ती थी, क्योंकि वे प्रत्येक दस्तकारी में मजदूरों की संख्या को सीमित रखती थीं और अपने संकुचित, जटिल, एकाधिकार की ईर्ष्यापूर्वक रक्षा करती थीं। इन संघों का अन्त करना तो उचित और आवश्यक था, किन्तु इनके स्वामी उसके घोर शत्रु होगये। तुर्गो ने कोरवी[1] नाम के उस घृणित शाही कर का अन्त कर दिया जिसके अन्तर्गत किसानों को विना वेतन के सरकारी सड़कों पर काम करने के लिए बाध्य कर दिया जाता था। इसके स्थान पर उसने व्यवस्था की कि इस प्रकार के कामों के लिये वेतन दिया जाय। और इसकी पूर्ति के लिये अभिजात वर्ग तथा अन-अभिजात वर्ग के सभी भू-स्वामियों पर एक समान कर लगा दिया जाय। अभिजात-वर्ग ने निश्चय किया कि कर के सम्बन्ध में इस प्रकार की घृणित समानता वे नहीं होने देंगे। इस प्रकार पुरानी व्यवस्था में फलने-फूलने वाले सभी लोगों ने एक होकर निर्ममता पूर्वक तुर्गो का विरोध किया और न्यायालयों तथा महारानी ने विशेष रूप से इस विरोध को बढ़ावा और बल दिया तथा राजा पर दबाव डाला कि वह इस घृणित मन्त्री को हटा दे। लुई रानी के इस तीव्र आग्रह के सामने झुक गया और सिंहासन के एक योग्यतम समर्थक को हटा दिया। राजा और रानी दोनों ने ही भयंकर और घातक भूल की—राजा ने इच्छा-शक्ति की दुर्बलता के कारण और रानी ने अपनी धूर्तता की वजह से। लुई १६ वाँ कहा करता था कि 'तुर्गो और मैं ही ऐसे व्यक्ति हैं जो जनता को प्यार करते हैं।" किन्तु उसने अपने आचरण

तुर्गो के आर्थिक सुधार

उसके शत्रुओं ने उसे निकलवा कर ही छोड़ा

और व्यवहार द्वारा कभी अपने इस कथन को चरितार्थ नहीं किया। इसके कुछ ही दिनों पहले तुर्गो ने राजा को लिखा था, "महाराज, यह कभी न भूलें कि चार्ल्स प्रथम की दुर्बलता ही थी जिसके कारण उसे अपना शीश कटवाना पड़ा था।"

यह घटना पुरातन व्यवस्था के स्वरूप पर अत्यधिक प्रकाश डालती है। तुर्गो के पतन ने सभी सुधारकों को सचेत कर दिया कि विशेषाधिकृत वर्गों के स्वार्थों पर चोट करने वाले कोई भी सुधार न किये जायें। चूँकि राष्ट्रीय वित्त-व्यवस्था केवल उन्हीं सुधारों द्वारा सुदृढ़ की जा सकती थी जिनसे इन वर्गों के स्वार्थों पर चोट पड़ना अनिवार्य था, इसलिये सुधार का मार्ग मन्द हो गया। तुर्गो के बाद उस पद पर जिनेवा का महाजन नेकर नियुक्त हुआ। वह अपने ही प्रयत्नों के बल पर दरिद्र से महान् सम्पत्ति का स्वामी बन गया था। जैसे ही उसने मितव्ययता का प्रस्ताव रक्खा वैसे ही उसका भी विरोध आरम्भ हो गया। उसने एक ऐसा कदम उठाया जिससे दरबारीगण क्रोध से बौखला उठे। उसने राज्य का आय-व्यय दिखाते हुए एक वित्तीय रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। ऐसा पहिले कभी नहीं हुआ। ये बातें अभी तक गुप्त रक्खी जाती थीं। दरबार के सभासद इस बात से क्रुद्ध थे कि इतनी ऊँची रहस्यपूर्ण बातें जनता के सामने प्रकट करदी गईं, विशेषकर उनमें यह बात दिखलाई गई कि दरबारियों को प्रति वर्ष पैन्शन के रूप में कितना धन मुफ्त दिया जाता था जिसके बदले में वे राज्य की कोई भी सेवा नहीं करते थे। उनकी इच्छा के विरुद्ध यह धृष्टता करने के अपराध में नेकर को भी अपने पद से हाथ धोने पड़े। राजा एक बार फिर इस दबाव के सामने झुक गया।

वित्त-संचालक नेकर (१७७६-८१)

इस बार दरबार ने अवसर हाथ से न जाने दिया और कलोन को मन्त्री बनवाया जो उनकी तीव्र इच्छा के अनुकूल ही था। उससे अधिक उनका कहा मानने वाला और कोई वित्त-मन्त्री नहीं हो सकता था। सभी प्रसन्न करना कलोन का कार्य था, और कुछ काल तक इस नीति में उसको सफलता भी मिली। प्रोसपेरो के जादू के कड़े में भी इच्छा पूर्ण करने की इतनी सामर्थ्य न थी। दरबारियों को अपनी इच्छा प्रकट करनी भर होती और वे पूर्ण करदी जातीं।

कलोन आकर्षक व्यक्ति था, सूझ-बूझ वाला था, और था बोलने में पटु। धन व्यय करने की सूक्ष्म कला का उसका अपना एक सिद्धान्त था, जिसके लिये उसके बहुत से साथी उसकी बड़ी सराहना करते थे, उसका कहना था कि "जिनको धन उधार लेना है, उन्हें धनी बनकर आना चाहिये और धनी प्रतीत होने के लिए उन्हें खुले हाथ धन व्यय करना चाहिये कि लोग चकाचौंध रह जायें।" इस शान्ति-काल में धन पानी की तरह बहाया गया। तीन वर्ष की इस गहरी शान्ति की अवधि में कलोन ने करीब ३००,०००,००० डालर उधार लिये।

महानियंता कलोन (१७८३-८७)

यह सब कुछ देखने में इतना अच्छा था कि सत्य होने के योग्य न था। और अन्त में लेखा-जोखा चुकाने के बुरे दिन भी आ पहुँचे। अगस्त १७८६ में पता लगा कि खजाना खाली है और अब कोई ऐसा मूर्ख नहीं है जो राज्य को ऋण देने के लिये तैयार हो। इस स्थिति ने मधुर स्वप्नों को भंग कर दिया। किन्तु कलोन ने अब कुछ समझदारी का परिचय दिया, जैसा कि उसने पहले कभी नहीं दिया था। उसने

सुझाव दिया कि एक ऐसा सामान्य कर लगाया जाय जिसका सामन्तों तथा साधारण जनता दोनों पर एकसा प्रभवा पड़े। अतः अब उसकी बारी आई कि वह भी उन विशेषाधिकृत वर्गो के विरोध का सामना करे जैसा कि पहले तुर्गो और नेकर को करना पड़ा था। उसके काम में भी रुकावटें डाली गईं, और उसने त्याग पत्र दे दिया।

उसके उत्तराधिकारी लौमनी द बीने की भी यही दुर्गति हुई। नये करों का सुझाव देने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न था, अतः उसने यही किया। पेरिस की संसद (पार्लियामेंट) ने तुरन्त ही इस प्रस्ताव का विरोध किया और एतात-जनराल का अधिवेशन बुलाने की माँग की। संसद का कहना था कि करों को लगाने का अधिकार उन्हीं लोगों को है जो कि उन्हें अदा करते हैं। राजा ने संसद् को आतंकित करना चाहा, किन्तु उसने राजा की भी अवज्ञा की। फिर भी इन सब उपायों से तो खजाना नहीं भरा जा सकता था। अन्त में सरकार झुकी। १ मई १७८९ को वार्सेई में एतात जनराल का अधिवेशन बुलाया गया। इससे फ्रांस के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ जिसकी सम्भावनाओं का किसी को अनुमान भी न हो सकता था। नेकर को पुनः बुलाकर मन्त्रि-परिषद् का प्रधान बनाया गया, और आगामी बैठक की तैयारियाँ होने लगीं।

एतात जनराल का आह्वान

एतात-जनराल फ्रांस की एक पुरानी संस्था थी जिसमें पादरियों, सामन्तों और जन साधारण तीनों वर्गों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुआ करते थे, किन्तु इंगलैंड की संसद की भाँति इसका विकास न हो पाया था। इसकी पिछली बैठक १७५ वर्ष पूर्व हुई थी। इस संस्था को मृतप्राय समझ लिया गया था। अब इस भयंकर राष्ट्रीय संकट के समय उसे इस आशा से पुनर्जीवित किया गया कि शायद वह राज्य को उस शोचनीय परिस्थिति से निकालने में सफल हो सके जिसमें बोर्बां राजतंत्र ने उसे लाकर पटक दिया था। किन्तु एतात जनराल पूर्णरूपेण सामन्ती संस्था थी, और फ्रास सामन्तवाद से तंग आ चुका था। उसका संगठन राष्ट्र की इच्छाओं अथवा आवश्यकताओं के अनुरूप न था। पहले इसमें तीनों वर्गों के बराबर प्रतिनिधि हुआ करते थे, और उनकी बैठकें अलग-अलग हुआ करती थीं। यह एक त्रि-सदनीय संस्था थी और दो सदनों में पूर्णतया विशेपाधिकृत वर्गो के सदस्य सम्मिलित हुआ करते थे। अब इस व्यवस्था के सम्बन्ध में आपत्ति उठाई गई, क्योंकि एक के विरुद्ध दो के होने के कारण परिस्थिति में सुधार होने की आशा न थी, और राष्ट्र की बागडोर पहले की भाँति विशेपाधिकृत वर्गो के ही हाथों में बनी रहती। वे मिलकर तीसरे वर्ग के किसी भी प्रस्ताव को रद्द कर सकते थे। वे अपने दो मतों के आधार पर तीसरे वर्ग पर जो भी निर्णय चाहते लाद सकते थे। दूसरे शब्दों में, यदि एतात जनराल का संगठन पूर्ववत् रहता तो ऊपर के दो वर्ग उन सब सुधारों को रोक सकते थे जिनका उन पर विपरीत प्रभाव पड़ता, जबकि उस स्थिति में ऐसे ही सुधारों की आवश्यकता थी। इस विषय पर पेरिस की संसद की सलाह ली गई; उसने परम्परागत संगठन के ही पक्ष में निर्णय दिया। कहने का अभिप्राय यह कि वह स्वयं एक विशेपाधिकृत संस्था

एतात जनरल एक सामन्ती संस्था

एतात जनराल में मतदान की प्रणाली

थी, इसलिये उसने विशेषाधिकारों का ही समर्थन किया। फल यह हुआ कि राजा का विरोध करने के कारण संसद पहले जितनी लोकप्रिय होगई थी उतनी वह अब अप्रिय हो गई।

इस अवसर पर नेकर ने अपने चरित्र की उस मुख्य दुर्वलता का परिचय दिया जिसके कारण उस युग में वह नेतृत्व करने के सर्वथा अयोग्य निकला। उसने समस्या को किसी भी पक्ष में दो टूक सुलझाने का प्रयत्न न किया। राजा की भाँति उसमें भी निर्णय-शक्ति का अभाव था। वह साहूकार था न कि राजनीतिज्ञ। इस बात की घोषणा कर दी गई कि तीसरे सदन के सदस्यों की संख्या अन्य दोनों सदनों की मिली हुई संख्या के बराबर होगी। इस प्रश्न का फिर भी कोई निपटारा नहीं किया गया कि क्या तीनों सदनों की बैठकें पूर्ववत् अलग-अलग होंगी और वे अलग-अलग अपना मत देंगे। यह मत फिर भी अनिश्चित ही रहा। तीसरा सदन ९० प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करता था। यदि तीनों सदनों की एक साथ बैठक न होती और मतदान व्यक्तिगत आधार पर न होकर सदनों के आधार पर होता अर्थात् एक व्यक्ति का एक मत न मानकर एक सदन का एक मत माना जाता, तो तीसरे सदन की संख्या को दूना करने से क्या लाभ था।

तीसरे सदन के सदस्यों की संख्या दूनी करदी गई

५ मई १७८९ को एतात जनराल की बैठक आरम्भ हुई। सदनों की संख्या लगभग १२०० थी जिनमें से ६०० से अधिक तीसरे सदन के सदस्य थे। वास्तव में जनता के उस वर्ग के प्रतिनिधियों की संख्या इससे भी कहीं अधिक थी, क्योंकि ३०० सदस्य पादरियों द्वारा चुनकर आये थे जिनमें से २०० से अधिक साधारण पादरी अथवा भिक्षु थे और उनका जन्म साधारण जनता में ही हुआ था और उसके साथ उनकी बहुत सहानुभूति भी थी। इन तीनों वर्गों ने अलग-अलग अपने प्रतिनिधि चुने थे। लगभग सम्पूर्ण जनता को वोट देने का अधिकार दे दिया गया था और मतदाताओं से यह भी कह दिया गया था कि वे अपनी शिकायतों का और उन सुधारों का जिन्हें वे चाहते हों, औपचारिक रूप से एक लेखा तैयार करलें। इस प्रकार जो स्मृति-पत्र तैयार किये गये उनमें से पचास-साठ हजार अभी तक सुरक्षित हैं। उनमें पुरातन व्यवस्था की आलोचना का एक विशद चित्र मिलता है और साथ ही साथ प्रत्येक वर्ग की इच्छाओं का भी पता लगता है। कुछ बातों में पादरी, सामन्त और साधारण जन एक मत थे। सभी का कहना था कि जिन बुराइयों से देश पीड़ित है उनका मुख्य कारण है मनमानी तथा अनियन्त्रित शासन-व्यवस्था। सबने यही इच्छा प्रकट की कि एक संविधान द्वारा सरकार की शक्तियों को सीमित कर दिया जाय, राजा तथा जनता के अधिकार निश्चित कर दिये जायँ और वह संविधान सब पर समान रूप से लागू किया जाय। इस प्रकार के संविधान में वैयक्तिक स्वतन्त्रता की, विचार करने, बोलने तथा लिखने के अधिकार की गारण्टी हो। ग्रफ्तारी पत्रों की प्रथा का और पुस्तकों तथा समाचार

एतात जनराल का उद्घाटन (मई ५, १७८८)

शिकायतों के स्मृति-पत्र (काहियेर)

स्मृति-पत्रों से संविधान के लिए राष्ट्र की इच्छा का प्रकटीकरण

पत्रों पर प्रतिवन्धों का अन्त कर दिया जाय। भविष्य में निश्चित समय पर एतात-जनराल की बैठकें हों, कानून बनाने की शक्ति उसके हाथ में हो, करों का निर्णय वही करे और भविष्य में सभी को समान कर देने को बाध्य किया जाय। सामन्तों तथा पादरियों ने अपने स्मृति-पत्रों में एक मत से स्वीकार कर लिया कि हमको जो करों से छूट मिली हुई है, उसे समाप्त कर दिया जाय। अपने इस विशेष अधिकार के लिए दो वर्ष पहिले वे संघर्ष कर चुके थे। इसके विपरीत तीसरे सदन के सदस्य इस बात के लिये तैयार थे कि सामन्त वर्ग को वना रहने दिया जाय और वह अपने अधिकारों तथा सम्मानों का भी उपभोग करता रहे। उसकी माँग केवल यह थी कि सामन्ती कर हटा दिये जायँ। उनके स्मृति-पत्रों में हिंसात्मक क्रान्ति की इच्छा का कहीं इशारा भी न था, उन सबने राजा के लिए गहरा प्रेम भाव प्रकट किया, और उसने एतात जनराल को बुलाने की कृपा कीथी उसके लिए धन्यवाद दिया, और सबने यह भी विश्वास प्रकट किया कि बुरे से बुरा जो हो सकता था उसका अन्त आ गया है और अब सब लोगों के हृदयों के मिलने से एक ऐसा मार्ग निकल आयेगा जिससे राज्य की शोचनीय दशा समाप्त हो जायेगी।

देश में आशा की लहर

देश में आशा की भारी लहर फैल गई। इस आशा का मुख्य आधार यह था कि जव राजा ने एतात जनराल को बुलाने की अनुमति दी थी उस समय उसने अनेक महत्वपूर्ण सुधारों की भी घोषणा कर दी थी—जैसे एतात जनराल की निश्चित अवधि के वाद बैठक हुआ करेगी, राष्ट्रीय वित्त पर उसका नियन्त्रण होगा और नागरिकों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा की जायेगी। किन्तु जैसा कि हम पहिले लिख आये हैं राजा के चरित्र का मुख्य दोष था उसकी इच्छा-शक्ति की दुर्वलता, उसके विचारों की अस्थिरता। और वार्सेई में प्रतिनिधियों के आने के समय से लेकर उसके वलपूर्वक सिंहासन से हटाये जाने के दिन तक देश के इतिहास में इस घातक तत्त्व का वोलवाला रहा। ५ मई को एतात जनराल का उद्घाटन करते समय राजा ने जो भाषण दिया उसमें संविधान वनाने के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा जव कि उस समय प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में यही विचार सबसे अधिक प्रबल था। उसने केवल यह घोषणा की कि इसको देश की अस्तव्यस्त वित्तीय दशा को सुधारने को बुलाया गया है। नेकर के भाषण में भी इससे अधिक आशा की झलक न थी। यही नहीं, सरकार ने इस सम्बन्ध में भी कुछ नहीं कहा कि तीनों सदन व्यक्तियों के आधार पर मत देंगे अथवा सामूहिक रूप में। इस प्रश्न का उत्तर ही समस्त स्थिति की कुंजी था, क्योंकि सदनों के संगठन और कार्य प्रणाली पर ही भविष्य के परिणाम पूर्णतया निर्भर थे। सरकार ने कोई विस्तृत कार्यक्रम नहीं रक्खा, उसने अपने उत्तरदायित्व की अवहेलना की और अव-सर हाथ से निकल जाने दिया।

राजा की हिचकिचाहट

परिणाम यह हुआ कि एक व्यर्थ का किन्तु गम्भीर संकट उठ खड़ा हुआ जनता को निराशा और शंकाओं ने घेर लिया। स्पष्ट था कि या तो राजा की वह उदारता जिसका परिचय वह कुछ समय पहिले दे चुका था, तिरोहित हो गई थी अथवा उस पर कोई ऐसा दवाव पड़ रहा था जिसका मुकाविला करने की शक्ति उसमें

संगठन के प्रश्न पर झगड़ा

नहीं थी। ६ मई को तीनों सदनों में एक विकट संघर्ष आरम्भ हो गया जो जून के अन्त तक चलता रहा, जिसके परिणामस्वरूप उन सम्बन्धों में जिनकी प्रारम्भ में सुधरने की सम्भावना दिखाई दे रही थी, बहुत कड़ आहट आगई। प्रश्न यह था कि प्रत्येक सदन का एक वोट हो अथवा प्रत्येक सदस्य को एक-एक वोट देने का अधिकार हो ? सभा में तीन सदन हों अथवा एक हो। इसी समय एक और कठिनाई उठ खड़ी हुई। सदस्यों के प्रमाण-पत्रों की जाँच की आवश्यकता थी। सामन्तों ने अपने को एक पृथक् सदन मानकर बैठक करली और ४७ के विरुद्ध १८८ के बहुमत से जाँच का काम पूरा कर लिया। पादरियों ने भी यही किया, किन्तु अल्प बहुमत से, १४४ के विरुद्ध १३३ से। लेकिन तीसरे सदन ने जाँच का काम करने से इन्कार कर दिया और कहा कि हम तब तक ऐसा न करेंगे जब तक यह निश्चित न हो जायगा कि तीनों वर्गों की एक साथ एक अविभाज्य सभा के रूप में बैठक होगी। उसके लिये यह जीवन अथवा मृत्यु का प्रश्न था, अथवा यों कहिए कि कम से कम शक्ति की दृष्टि से यह प्रश्न बहुत महत्त्व का था। दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी बात पर अड़े रहे; सरकार ने घटना क्रम को नियन्त्रित करने और दिशा देने का प्रयत्न नहीं किया। परिणामस्वरूप दोनों ही ओर क्रोध और आवेश की ज्वाला भड़कने लगी। बिना उचित रूप से संगठित हुये एतात जनराल कोई काम नहीं कर सकती थी। और इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय हुये बिना किसी प्रकार का संगठन नहीं किया जा सकता था।

तीन सदन होंगे अथवा एक

एक के बाद एक कई सप्ताह बीत गये किन्तु यह घातक गतिरोध जारी रहा। सम्मिलित रूप से जाँच करने का अर्थ होता वर्ग प्रणाली का त्याग, व्यक्तिगत आधार पर मत-दान, न कि वर्गों के आधार पर। और इसका परिणाम यह होता कि प्रमुखता तीसरे सदन के हाथ में चली जाती, और उसके सदस्य यह समझते भी थे कि चूँकि हम ९० प्रतिशत जनता के प्रतिनिधि हैं इसलिये हमें हावी होने का अधिकार है। उन्होंने बार-बार ऊपर के दो सदनों को निमन्त्रण दिया और अपने में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। अन्त में तीसरे सदन ने घोषणा की कि ११ जून को जाँच का काम आरम्भ होगा। दूसरे दो वर्गों को अन्तिम बार निमन्त्रण दिया गया। तब साधारण पादरी लोग एक-एक करके आने लगे और उन्होंने साधारण जनों के साथ सहानुभूति दिखलाई और और अपने वर्ग के विशेषाधिकृत लोगों का साथ छोड़ दिया। अन्त में १७ जून को तीसरे सदन ने महत्त्वपूर्ण कदम उठाया और अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। यह स्पष्ट रूप से एक क्रान्तिकारी कार्य था।

अब राजा ने दरबारियों के दबाव से एक निर्णय किया। पहिले तो वह निर्णय ही बुद्धिमानी से रहित था, फिर उसको कार्यान्वित करने में और भी अधिक मूर्खता का परिचय दिया। ३० जून को जब तीसरे सदन के सदस्य अपने सभा-गृह में जाने लगे तो उन्होंने देखा कि सैनिकों ने द्वार रोक रक्खा है। स्मरण रखने की बात यह है कि उसी सदन में पहिले उनकी सभी बैठकें हुआ करती थीं। पूछने पर उनसे कहा गया कि कुछ समय बाद एक विशेष शाही सत्र होने वाला है और गृह इसलिए बन्द कर दिया गया है कि उस सत्र के लिए आवश्यक तैयारियाँ की जा सकें। यह बहाना जितना व्यर्थ का था उतना ही शोचनीय भी। इस कार्य का अर्थ क्या था.यह

कोई न समझ सका, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को यह शंका होने लगी कि इसका अर्थ यह है कि सभा का जिस पर लोग आशाएँ लगाये बैठे थे, असामयिक अन्त होने वाला है और इस प्रयोग की विफलता के कारण देश दुखों और कठिनाइयों के पहिले से अधिक गहरे खड्ड में गिरने वाला है। क्षण भर के लिये तो सदस्यों पर निराशा छा गयी और वे पूर्णतया किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। किन्तु फिर सभी लोगों को एक साथ एक विचार सूझा और वे बगल की सड़क पर स्थिति पड़ौस की एक इमारत में घुस गये। यह इमारत टैनिस खेलने के काम में आती थी। उस विशाल गृह में, जो अभी तक पूरा नहीं बन पाया था, एक स्मरणीय बैठक हुई। सदस्यों ने प्रसिद्ध ज्योतिषी बेली को अपना सभापति बनाया और उठा कर एक मेज पर बिठला दिया और चारों ओर से उसके आस-पास एकत्रित हो गये। ऐसा लगता था मानो वे उग्र से उग्र कार्य करने के लिये तैयार हैं। उन्होंने शपथ ली जो टैनिस कोर्ट की शपथ के नाम से प्रसिद्ध है। केवल एक को छोड़ कर जितने भी प्रतिनिधि वहाँ उपस्थित थे उन्होंने शपथ ली कि "जब तक राज्य का संविधान स्थापित न हो जायगा तब तक हम कभी भी अलग न होंगे और जहाँ भी आवश्यकता पड़ेगी हम एकत्रित होंगे।"

टैनिस कोर्ट की शपथ

२३ तारीख को शाही सत्र हुआ जिस पर विशेषाधिकृत वर्गों की आशाएँ टिकी हुई थीं। राजा ने घोषणा की कि हाल में तीसरे सदन ने जो कार्य किए हैं वे अवैध और असांविधानिक हैं, और कहा कि प्रमाण-पत्रों की जाँच करने के लिये तीनों सदनों की अलग-अलग बैठकें होंगी। तदुपरान्त उठा और सभा-गृह छोड़ कर चला गया। उसी समय बाहर उसकी बग्घी के आस-पास बिगुल बज रहा था। विजयी सामन्त सभा-गृह छोड़कर चले गये और पादरियों ने भी यही किया, किन्तु भवन के केन्द्र में तीसरे सदन के सदस्य बैठे रहे, शान्त और निराशाजनक मुद्रा में। इतिहास का यह एक गम्भीर निर्णयात्मक क्षण सिद्ध हुआ। तुरन्त ही शाही उत्सवों का संचालन करने वाला अधिकारी सामने आया और बोला, "आप लोग राजा का आदेश सुन चुके हैं। श्रीमान् जी की प्रार्थना है। कि तीसरे सदन के प्रतिनिधि उठ कर चले जायँ।" अधिकारी के पीछे द्वार पर सैनिक खड़े हुये थे। लोग सोचने लगे क्या ये सैनिक सभा-गृह खाली करवाने आये हैं? राजा ने अपने आदेश जारी कर दिये थे। यदि सदस्य लोग सभा-गृह छोड़कर चले जाते तो उसका अर्थ होता उस सब का त्याग करना जिसके लिए तीसरा सदन लड़ रहा था; और वहाँ पर डटे रहने का अर्थ होता राजा की स्पष्ट अज्ञाओं का उल्लंघन करना और दण्ड भुगतने के लिये तैयार रहना।

२३ जून का शाही सत्र

समयानुकूल एक नेता भी मिल गया। मिराबू एक सामन्त था, उसके साथी सामन्तों ने उसे एतात जनराल के लिए चुनने से इन्कार कर दिया था, इसलिये वह तीसरे सदन द्वारा चुन कर आया था। वह उठा और आवेश तथा अहंकार के साथ उत्सवों के अध्यक्ष ब्रेजे की ओर बढ़ा और कड़क कर बोला, "जाओ और अपने स्वामी से कह दो कि हम जनता की इच्छा से यहाँ एकत्रित हुए हैं और भालों की नोंक को छोड़ कर और कोई हमें यहाँ से हटाने वाला नहीं है।" तुरन्त ही मिराबू के सुझाव से एक प्रस्ताव पास किया गया कि जो भी लोग राष्ट्रीय सभा के सदस्यों पर हिंसात्मक हाथ उठायेंगे वे "कमीने तथा राष्ट्र के प्रति गद्दार समझे

मिराबू द्वारा राजा को चुनौती

जाएँगे और मृत्यु दण्ड के अधिकारी होंगे।" द ब्रेजे ने इस चुनौती की सूचना राजा को दे दी। अब सब लोगों की निगाहें राजा पर ही लगी हुई थीं; देखें वह क्या करता है। किंकर्तव्यविमूढ़ हो कर उसने इशारा किया कि मैं थक गया हूँ, और फिर बोला : "अच्छा वे वहाँ सचमुच रहना चाहते हैं ? तो उन्हें रहने दो।"

राजा झुक जाता है।

दो दिन बाद भारी संख्या में पादरी और थोड़े से सामन्त आ कर सभा में सम्मिलित हो गये। २७ जून को राजा ने सामन्तों और पादरियों को एक ही सभा-गृह में तीसरे सदन के साथ बैठने की आज्ञा दी। इस प्रकार वह प्रश्न जिसका निर्णय पहली बैठक से पहिले मई में ही हो जाना चाहिये था, वह अन्तिम रूप से हल किया गया। राष्ट्रीय सभा अब पूरी हो गई। उसके तुरन्त ही एक संविधान समिति नियुक्त कर दी। इस प्रकार तीनों सदनों के सम्मिलित होने से बनी राष्ट्रीय सभा ने, उसके सामने जो काम था, उसके अनुरूप अपना नाम संविधान सभा रख लिया।

सभा का अस्तित्व संकट में

जैसे ही इस संकट का अन्त हुआ वैसे ही एक दूसरा झगड़ा उठ खड़ा हुआ। दरबारियों की प्रेरणा से राजा ने अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिये सभा को एक बार फिर दबाने और धमकाने का प्रयत्न किया। सैनिकों की बड़ी-बड़ी टुकड़ियाँ बार्सेई और पेरिस में एकत्रित होने लगीं। इनमें से अधिकतर विदेशी किराये के टट्टू अथवा सीमान्त चौकिओं पर रहने वाले दल थे जिनके बारे में यह धारणा थी कि वे जनता की भावनाओं की चिन्ता नहीं करते। ११ जुलाई को नेकर तथा उसके वे साथी जो सुधार के पक्ष में थे, सहसा पदच्युत कर दिए गये और नेकर को तुरन्त ही देश छोड़ कर चले जाने का आदेश दिया गया। इस सब का इसके सिवाय और क्या अर्थ हो सकता था कि प्रतिक्रिया और दमन का दौर आरम्भ होने को था और देश की स्थिति पूर्ववत् होने जा रही थी। सभा के लिए भारी खतरा था, किन्तु उसके पास किसी प्रकार का बल न था। यदि उस पर सैनिक चढ़ाई कर देते तो वह क्या करती ?

पेरिस ने संविधान सभा को सुरक्षा प्रदान की

पेरिस नगर के हिंसात्मक उपद्रव के कारण स्थिति सँभल गई और राष्ट्र के प्रतिनिधियों की रक्षा हो गई और उन्हें आगे कार्य करते रहने का आश्वासन मिल गया, बास्टीय पर पैरिस की जनता का अधिकार एक ऐसी घटना था जिसने तुरन्त ही सारे संसार में खलबली मचा दी और घटना के दूसरे दिन से ही उसके सम्बन्ध में इतनी अफवाएँ और जनश्रुतियाँ फैल गईं कि उसके सही रूप को समझना कठिन हो गया। बास्तीय पैरिस के पूर्वी अंचल में स्थित एक दुर्ग था। उसका राजकीय कारागार के रूप में प्रयोग किया जाता था, और अनेक ख्यातिनामा व्यक्ति उसमें बन्दी बन कर जीवन बिता चुके थे। उनमें वॉल्तेयर और मिराबू अधिक प्रसिद्ध थे। उन्हें भी गिरफ्तारी-पत्रों द्वारा उसमें एक बार बन्द करके रक्खा गया था। वह स्वेच्छाचारी सरकार का एक घृणित प्रतीक था, और एक सुदृढ़ किला भी था जिसका प्रयोग नये आये हुए सैनिक दल कर सकते थे। पैरिस की जनता का एक बड़ा वर्ग बहुत ही दुखी और असंतुष्ट था; और साथ ही साथ वहाँ उग्र अथवा उदार विचारों के लोगों का एक जत्था था। जब इन लोगों ने सुना कि सभा जिस पर सब की आशाएँ लगी हुई थीं, संकट में है तो वे बहुत

भयभीत हुए और उनके क्रोध का पारावार न रहा। सभा का पक्ष लेने वाले पैरिस निवासियों ने जब सुना कि नेकर अपने पद से हटा दिया गया है तो वे क्रोधाग्नि से धधकने लगे। शीघ्र ही भयभीत करने वाली अफवाहें चारों ओर फैल गईं। ऐसे वक्ताओं ने जो इस प्रकार के अवसरों के लिए तैयार बैठे रहते थे, उत्तेजित हो कर सार्वजनिक सभाओं में भाषण देना प्रारम्भ कर दिया। लोग उन दुकानों को लूटने लगे जहाँ से अस्त्र-शस्त्र मिल सकते थे। अन्त में उन्होंने बास्तीय पर आक्रमण कर दिया और कई घन्टे तक घमासान युद्ध और रक्तपात के बाद उस पर अधिकार कर लिया। उनके २०० व्यक्ति मारे गये अथवा घायल हुये। भीड़ ने किलेदार तथा स्विस रक्षकों में से अनेक का बर्बरतापूर्वक वध कर दिया। इस प्रकार के तथा अन्य वर्बरतापूर्ण कार्यों के बावजूद बास्तीय के पतन को फ्रांस में तथा बाहर सर्वत्र स्वतन्त्रता की एक महान विजय समझा गया। चारों ओर उत्साह की लहर फैल गई। १४ जुलाई को राष्ट्रीय छुट्टी का दिन घोषित कर दिया गया और बौर्बों राजाओं के पुराने सफेद झंडे के स्थान पर लाल, सफेद तथा नीले रंग का एक नया तिरङ्गा झंडा अपना लिया गया। साथ ही साथ पैरिस की जनता ने स्वतः नगर के पुराने शाही प्रशासन को समाप्त करके नये ढंग की म्यूनिसिपल सरकार कायम कर ली और राष्ट्रीय रक्षा दल नाम का एक नया सैनिक दल, जो आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुआ, संगठित कर दिया। तीन दिन बाद लुई १६ वें ने राजधानी में प्रवेश किया और इन सब परिवर्तनों को स्वीकार करके उन पर अपनी अनुमति की मुहर लगा दी।

बास्तीय पर आक्रमण १४ जुलाई

इस बीच में सम्पूर्ण फ्रांस में इसी प्रकार के परिवर्तन किये गये। पैरिस के अनुकरण पर सर्वत्र चुनी हुई म्यूनिसिपल सरकारें तथा राष्ट्रीय रक्षा दल स्थापित कर लिये गये। देश के ग्रामीण क्षेत्र में भी वह आन्दोलन फैल गया। किसानों ने जब देखा कि सभा ने दो महीने का समय नष्ट कर दिया है और फिर भी सामन्ती करो को समाप्त नहीं किया है, तो वे धीरज को खो बैठे और मामले को अपने हाथ में लिया। वे अपने उत्पीड़कों पर टूट पड़े और अस्त्र-शस्त्र लेकर उनके गढ़ों पर चढ़ाई कर दी और जहाँ कहीं सामन्ती करो के अभिलेख मिले अथवा सामन्तों ने स्वयं उन्हें निकाल कर दे दिया, उन सबको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, और जहाँ वे घृणित प्रपत्र न मिल सके तो वहाँ उनको जलाने के लिए गढ़ों में आग लगा दी। जुलाई १७८९ के अन्तिम सप्ताह में प्रतिदिन ध्वंस तथा दाह का यह कार्य चलता रहा और जैसा कि इन अवसरों पर अनिवार्य होता है, अव्यवस्था और अत्याचार के कांड भी बहुत हुए। इस प्रकार सामन्ती प्रथा का अन्त कर दिया गया—कानूनी तौर पर नहीं, बल्कि व्यवहार में। अब यह देखना था कि जनता की इस विजय का राष्ट्रीय सभा पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध जनता का विद्रोह

प्रभाव तत्काल ही पड़ा, और अत्यधिक उत्तेजनामूलक। ४ अगस्त को एक समिति ने राष्ट्र की दशा के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें समस्त देश में होने वाली घटनाओं का वर्णन किया गया—गढ़ों का जलाया जाना, अप्रिय कर वसूल करने वालों पर आक्रमण, चक्कियों के स्वामियों का फाँसी पर

४ अगस्त की रात्रि का सत्र

लटकाया जाना, और कानून का अन्त तथा अराजकता की विजय। जब तक यह रिपोर्ट, जिसे सुन कर सदस्य हस्तबुद्धि हो गए, समाप्त हुई तब तक रात्रि हो गई। सहसा, ८ बजे के लगभग जब कि सत्र समाप्त होने वाला था विकौंत नुआई[1] झपट कर मंच पर पहुँचा। उसने कहा कि जनता ने गढ़ों को जो भ्रष्ट किया है उसका मुख्य कारण सामन्तो कर हैं जो घृणित सामन्ती प्रथा के प्रतीक हैं, इनको समाप्त कर दिया जाय। इस सम्बन्ध में उसने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया और तुरन्त ही ड्यूक द एगीओं[2] नामक एक दूसरे सामन्त ने जो राजा के बाद फ्रांस का सबसे बड़ा सरदार था, प्रस्ताव का समर्थन किया। फिर क्या था सभा में उदारता का उन्माद सा छा गया। त्याग का उत्साह दिखाने में सामन्त लोग एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करने लगे। नान्सी के बिशप ने अपने वर्ग के सब विशेषाधिकार त्याग दिए। गाँव के पादरियों ने अपने शुल्कों का त्याग कर दिया। न्यायाधीशों ने अपनी उपाधियाँ तथा सम्मान छोड़ दिए। शिकार के अधिकार तथा धर्मांश वसूल करने के अधिकार भी समाप्त हो गए। ब्रितानी, बर्गन्दी, लोवेन, लांगड्रीक आदि नगरों और प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने अपने विशेषाधिकारों को तिलांजलि दे दी। सभा में हर्षोन्माद की लहरें दौड़ने लगीं। रात भर आँसुओं, आलिंगनों, उल्लासजनित करतल-ध्वनि, और देश-भक्तिपूर्ण त्याग के हर्षातिरेक के बीच इस प्रकार का उत्तेजनामूलक कार्य चलता रहा और प्रातः ८ बजे तक लगभग ३० अध्यादेश जारी कर दिये गये और एक ऐसी असाधारण सामाजिक क्रान्ति सम्पादित हो गई जैसी कि कभी किसी राष्ट्र के जीवन में नहीं हुई थी। सामन्ती कर दफना दिये गये, धर्मांशों का अन्त हो गया; श्रेणियाँ तथा उनके संकीर्ण प्रतिबन्ध भी जाते रहे, सरकारी पदों के क्रय-विक्रय की प्रथा भी नष्ट कर दी गई और नियम बना दिया गया कि भविष्य में सभी फ्रांसीसी नागरिक समान रूप से सार्वजनिक पदों के योग्य समझे जायँगे; न्याय निःशुल्क होगा; सभी प्रान्तों और व्यक्तियों के साथ एक-सा व्यवहार किया जायगा। वर्ग जनित भेद भावों को भी हटा दिया गया। अब समानता का सिद्धान्त राज्य का आधार बन गया।

विशेषाधिकारियों का अन्त

सामाजिक क्रान्ति

जिन लोगों ने इस स्मरणीय सत्र में, जिसमें कि एक सामाजिक क्रान्ति पूरी हुई अथवा उसका वचन दिया गया, भाग लिया, उन्होंने वर्षों बाद जब कभी उसका उल्लेख आया तो बड़े उत्साह और उत्तेजना के साथ उसका वर्णन किया। पैरिस के आर्क बिशप के सुझाव शाही गिरजाघर में घण्टा बजाकर इस आश्चर्यजनक सूत्र का विसर्जन किया गया और सभा ने लुई १६ वें को, जिसका उस सबसे उतना ही सम्बन्ध रहा था जितना कि हमारा और आपका, फ्रांस की स्वतन्त्रता का उद्धारक घोषित किया।

लुई सोलहवाँ फ्रांस की स्वतन्त्रता का उद्धारक घोषित किया गया

इस प्रकार राष्ट्र के कन्धों से अतीत की उत्पीड़नकारी तथा अन्यायपूर्ण व्यवस्था का बोझ उतार फेंका गया, शताब्दियों पुरानी शिकायतें मानो रात्रि के अंधेरे

1. Viscount of Noailles
2. Duk ed Aigaillion

में विलुप्त हो गयीं इन कोलाहल तथा उल्लासपूर्ण प्रस्तावों को औपचारिक रूप से कानून का रूप देने के लिये समय की आवश्यकता थी, किन्तु लोगों ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने यह नहीं समझा कि यह तो एक कार्य-क्रम मात्र है और उसका ब्यौरा तो बाद में धीरे-धीरे निश्चित किया जाता है, बल्कि उन्होंने उन्ही को कानून मान लिया। इसलिए जब लोग स्वप्न से जागे तो उन्होंने देखा कि हर चीज जैसी दिखाई देती है.वैसी नहीं है, और इन परिवर्तनों को वास्तव में क्रिया-न्वित करने के लिए बहुत से हेर-फेर की आवश्यकता होगी। परिणाम यह हुआ कि झगड़े होने लगे, निराशा छाने लगी और लोगों का धीरज टूटने लगा बादल फिर तेजी से घुमड़ने लगे। चूँकि **पुनः प्रतिक्रिया का डर** बहुत से सामंतों और बिशपों ने उदारता के आवेश में आकर अपने विशेषाधिकार त्याग दिये थे, इसलिए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता था कि उनके वर्गों के, सब न सही, कम से कम बहुसंख्यक सदस्य उनके इस कार्य को स्वीकार कर लेंगे। डर इस बात का था कि कहीं उसका उल्टा हो कर न रहे। हो सकता था कि सभागृह में जो उदारता दिखलाई गई थी वह उसकी दीवारों के बाहर न फैल पाए। और यह भी हो सकता था कि जो लोग क्षणिक आवेश के कारण उस सुन्दर उत्साह की लहर में बह गये थे, उनकी भी भावनाएँ, उसके दूसरे दिन ही बदल जायें, और हुआ भी यही। शीघ्र ही दो दल खड़े हुए। उनमें परस्पर भारी विरोध था। एक दल में वे लोग थे जो अब तक हुई क्रान्ति की सफलताओं को सुरक्षित रखना चाहते थे, और दूसरी ओर वे जिनकी इच्छा थी कि किए कराए पर पानी फेर दिया जाय और खोये हुए लाभ पुनः प्राप्त कर लिए जायें। इस दूसरे प्रकार के लोग प्रति-क्रान्तिकारी कहलाए। इस समय से वे लोग आधुनिक फ्रांस के इतिहास के एक तत्त्व बन गए और बारम्बार उन्होंने भारी महत्त्व प्राप्त किया। दरबारियों में जो अधिक अहंकारी और क्रोधी थे, वे १४ जुलाई के बाद राजा के भाई आर्त्वा के सरदार[1] के नेतृत्व में देश छोड़ कर भाग गए, और इस प्रकार निष्कासन का वह ताँता प्रारम्भ हुआ, जिसके कारण फ्रांस को यूरोप के अन्य राज्यों से उलझना पड़ा। किन्तु अनेक दरबारी अब भी देश में डटे रहे और मारी आन्त्वानेत की सबल सहायता से दुर्बल राजा को अपनी उँगलियों पर नचाना आरम्भ कर दिया। रानी स्वभाव तथा बुद्धि से सुधार आन्दोलन को समझने और उससे सहानुभूति दिखाने के अयोग्य थी, फिर उसे अपमान और लोकापवाद का शिकार बनाया गया। इन प्रहारों के कारण उसकी ऐंठ बढ़ गयी, उसका अहंकार प्रज्ज्वलित हो उठा, और इसलिए उसने ज्वार को पीछे धकेलने के लिए जो कुछ बन पड़ा, किया। उसके परिणाम स्वयं उसके तथा राज-तन्त्र के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध हुये। **दरबार में पुनः कुचक्र** परिस्थिति की एक और विशेषता यह थी कि कुछ व्यक्ति भीतर ही भीतर कुचक्र और षडयन्त्र रच रहे थे। उनका विचार था कि उपद्रवों और अव्यवस्था को बढ़ावा देने से हमारा लाभ होगा। राजा का चचेरा भाई ड्यूक दौर्लेआँ[2] एक ऐसा ही व्यक्ति था। उसके पास अपार धन था, किन्तु उतना ही वह सिद्धान्तहीन था। उसकी आकांक्षा थी कि लुई १६ वें को ही हटा कर बोर्वा वंश के स्थान पर औलियाँ वंश की स्थापना की जाय। क्रान्ति के

1. Count of Artois
2. Duke of Orleans

पूरे काल में हमें व्यक्तिगत महात्त्वाकांक्षाओं और ईर्ष्या के ऐसे तत्त्व देखने को मिलते हैं जो सार्वजनिक अशान्ति को उभाड़ कर लाभ उठाने की चिन्ता में लगे रहते थे। इस विचित्र तथा निर्णायक इतिहास की प्रत्येक मंजिल में हमें उदारता और नीचता का, विश्वासघात और निष्कपटता का, छल और ईमानदारी तथा देशभक्ति का मेल देखने को मिलता है। यह एक ऐसा ताना-वाना था जिसका जाला मिश्रित तन्तुओं से वुना गया था।

ड्यूक दोर्लेआ के कुचक्र

लुई १६वें के रवैये से घबड़ाहट

भावी संकट के कुछ संभावित बीज इस प्रकार थे। इस प्रकार अतिरिक्त एक और भी बात थी जिससे लोगों की चिन्ता और भय बढ़ता गया। दो महीने बीत गए थे, किन्तु राजा ने अभी तक ४ अगस्त की आज्ञप्तियों पर अपनी अनुमति नहीं दी थी, और उसकी स्वीकृति के बिना उन्हें कानून का पद नहीं मिल सकता था। संविधान के कुछ अनुच्छेदों का मसविदा तैयार हो गया था, किन्तु इस पर भी राजा की अनुमति नहीं मिली थी। प्रश्न यह था कि क्या राजा किसी प्रकार का षड्यन्त्र रच रहा है अथवा उसको घेरे रहने वाले षड्यन्त्रकारियों ने एक बार फिर से चंगुल में फँसा लिया है। जनता सन्देह के वातावरण में रह रही थी; और सहस्रों लोग ऐसे थे जिनके भूखों मरने की नौबत आ गई थी। अकाल के इस भय ने संदेहजनित भय को द्विगणित कर दिया।

जनता का संदेह भड़क उठा

असन्तोष तथा घबड़ाहट की इस स्थिति ने क्रान्ति की एक अन्य प्रसिद्ध घटना को जन्म दिया। अक्टूबर के प्रारम्भ में पैरिस में यह अफवाह फैल गई कि वार्सेई में उन पल्टनों को, जिन्हें वहाँ बुला लिया गया था, एक भोज दिया गया, उस अवसर पर तिरंगे झंडे को पैरों तले कुचला गया और सभा को धमकी दी गई, और रानी ने अपनी उपस्थिति से इन सब कुकृत्यों पर मुहर लगाई।

स्त्रियों का वार्सेई को प्रस्थान

५ अक्टूबर को नगर की कई हजार स्त्रियों में भी न जाने किस प्रकार हलचल मच गई और उन्होंने वार्सेई के लिए प्रस्थान कर दिया। अपने साथ वे एक तोप भी खींच कर ले गईं। कहा गया कि वे रोटियों के मूल्य में कमी करवाने जा रही हैं और साथ ही साथ वे यह भी देखना चाहती हैं कि जिन लोगों ने राष्ट्रीय झंडे का अपमान किया है उन्हें दण्ड दिया जाय। उनके पीछे हजारों वेकार पुरुष भी हो लिए, उनमें बहुत से संदिग्ध चरित्र के व्यक्ति थे। लाफायेत ने शीघ्रता से कुछ रक्षक एकत्रित कर लिए और उस भीड़ के पीछे चल दिया। उसी दिन संध्या के समय वह सव भीड़ वार्सेई पहुँच गई और उन सब ने खुले में सड़कों पर और शाही महल के विस्तृत आँगन में डेरा डाल दिया। रात भर कुछ गुप्त रूप से तैयारियाँ होती रहीं, मानो किसी लड़ाई के लिये। ६ तारीख को प्रातःकाल भीड़ ने फाटक तोड़ दिये, अनेक रक्षकों को मार डाला और महल पर आक्रमण कर दिया, और उनमें कुछ रानी के कमरे के द्वार तक पहुँच गए। रानी अपनी रक्षा के लिए भाग कर राजा के कमरों में चली गई। अन्त में राजा अपने परिवार के सदस्यों के साथ छज्जे पर प्रकट हुआ और भीड़ से वातचीत की और भोजन का वच्चन

शाही परिवार वासई छोड़ने पर बाध्य किया गया

दिया। इस दिन को उन साधारण और अपमानजनक घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि राजा अपने वार्सेई के गौरवशाली महल को छोड़ कर पैरिस जाने और वहाँ अपनी तथाकथित प्रजा के बीच रहने को तैयार हो गया। शाही परिवार के आठ व्यक्तियों को एक ही बग्घी में ठूँस दिया गया, और वे पैरिस के लिए चल दिये। चारों ओर से उन्हें स्त्रियाँ घेर कर चल रही थीं। और वे लुटेरे भी चल रहे थे जिन्होंने शाही महल के द्वार पर रक्षकों को मार डाला था, और उनके सिरों को वे भाले के नोंक पर लटकाए ले जा रहे थे। स्त्रियाँ चिल्लाती जाती थीं, हम "नानबाई को, नानबाई की पत्नी को, और नानबाई के लड़के को वापिस लिये जा रहे हैं।" उसी रात को ११ बजे लुई १६ वाँ तुइलेरी में पहुँच गया।

सरकार पेरिस पहुँच गई

१० दिन बाद सभा भी वहीं पहुँच गई। अब राजा तथा सभा दोनों ही पर प्रतिदिन पेरिस की जनता का निरीक्षण रहने लगा। वास्तव में वे सब बन्दी बन गए। वार्सेई को निश्चयपूर्वक छोड़ दिया गया था। उसी दिन से राजधानी का महान प्रभाव आरम्भ हुआ। अब स्थिति ऐसी हो गई कि केवल एक नगर सभा पर सदैव अपना आधिपत्य कायम रख सकता था। जनता बड़ी सरलता से अपना दबाव डाल सकती थी, क्योंकि उसको सभा-गृह के बरामदों में जहाँ लगभग एक हजार लोगों के बैठने का स्थान था, जाने की आज्ञा थी और वे समझते थे कि यहाँ पर हमें पूर्णस्वतन्त्रता है, और वे अप्रिय वक्ताओं के भाषणों में विघ्न डालते और जोर-जोर से चिल्ला कर अपनी इच्छाएँ प्रकट करते। जिन लोगों को वहाँ स्थान न मिलता वे बाहर एकत्रित हो जाते और जोर-जोर से उन विषयों पर वाद-विवाद करते जो भीतर सभा में विचाराधीन होते। समय समय पर उनमें से कोई एक व्यक्ति खिड़कियों में से बाहर खड़े लोगों को बतला देता कि सभा में क्या हो रहा है। इस प्रकार बाहर खड़ी हुई उत्तेजित भीड़ की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की आवाज सदस्यों के कानों तक पहुँच जाती।

अध्याय ४

संविधान की रचना

एतात जनरल ने, जिसकी बैठक मई १७८९ में प्रारम्भ हुई थी, जून में राष्ट्रीय, सभा नाम धारण कर लिया था। वह संविधान सभा के नाम से भी प्रसिद्ध है, क्योंकि उसका मुख्य काम संविधान बनाना था। जब वह वार्सेई में थी उसी समय उसने संविधान का कार्य आरम्भ कर दिया था और उसके परिश्रम का पहला फल था मानव अधिकारों की घोषणा, जिसमें उन अधिकारों का उल्लेख है जिनका मनुष्य मानव होने के नाते ही अधिकारी है और जो किसी राज्य की देन नहीं है। यह घोषणा अमरीकी अनुकरण पर तैयार हो गई थी। लाफायेत ने जो अमरीकी क्रांति का एक वीर था और जिसका अब फ्रांस के प्रमुख क्रान्तिकारियों में स्थान था, बास्तीय के पतन के ठीक पहले एक घोषणा का मसविदा प्रस्तुत किया था। उसको अंगीकार करने के लिये उसने दो मुख्य कारणों पर जोर दिया; पहला यह कि इससे जनता के सामने स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों का स्पष्ट चित्र आ जायगा और उनको एक बार समझ लेने पर वह सदैव उनको बनाये रखने के लिये कटिबद्ध रहेगी; और दूसरे इससे सभा को संविधान को विस्तृत रूप देने में अमूल्य सहायता मिलेगी और उसका पथ-प्रदर्शन होगा। सभी प्रस्तावनाओं की, इसके सुनिश्चित सिद्धान्तों की कसौटी पर सावधानी से जाँच की जा सकेगी। इसके सामने रहने से सभा स्वयं अनेक भूलें करने से बचेगी। एक दूसरे वक्ता ने इस बात पर प्रकाश डाला कि इस घोषणा के जिन उच्च सिद्धान्तों की कल्पना दूसरे गोलार्द्ध में की गई थी, उन्हें फ्रांस में क्यों अंगीकार किया जाय, इस प्रकार उसने अमेरिका को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। प्रस्ताव के विरोधियों ने कहा कि यह निरर्थक तथा हानिकारक है, क्योंकि इससे सदस्यों का ध्यान अपने महत्त्वपूर्ण काम से हट जायेगा, इससे संदिग्ध सामान्यी-कारणों पर समय नष्ट होगा, इससे लोग अनन्त वाद-विवाद तथा बाल की खाल निकालने में लग जायेंगे जबकि सभा का ध्यान विधि-निर्माण तथा प्राशासन सम्बन्धी तत्कालिक समस्याओं पर केन्द्रित होना चाहिए।

मानव अधिकारों की घोषणा

घोषणा के सम्बन्ध में वाद-विवाद

सभा ने लाफायेत का पक्ष लिया और लम्वे वाद-विवाद के बाद अगस्त १७८९ में इस उल्लेखनीय प्रपत्र की रचना की। १५ अक्टूबर की घटनाओं के परिणामस्वरूप, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, राजा ने इसको स्वीकार कर लिया। इस घोपणा के सम्वन्ध में कहा गया है कि फ्रान्स में, "लोकतन्त्रीय और गणतन्त्रीय विचारों के विकास के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है।" कुछ लोगों ने कहा कि आधुनिक युग की अन्जील है। स्मरण रखने की बात यह है कि यह घोषणा किसी एक मस्तिष्क की उपज न थी और न किसी एक समिति अथवा नेताओं के समूह की। इसमें भाग लेने वाले अनेक व्यक्ति थे। १८ वीं शताब्दी के राजनीतिक साहित्य के अनेक विचार और यहाँ तक कि अनेक वाक्य इसमें सम्मिलित कर लिये गये थे। इंगलैण्ड तथा अमेरिका के उदाहरणों का भी भारी प्रभाव पड़ा था। राष्ट्रीय स्थिति की आवश्यकताओं का भी उसकी रचना में महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस घोषणा के लिये सभा की तीव्र आलोचना की गई है। कहा गया है कि उस संकट के काल में उसने व्यर्थ ही उसकी रचना में अपना समय नष्ट किया। यह सूक्षम सिद्धान्तों का संदिग्ध दार्शनिक वादों का और अनन्त विवाद के विपयों का एक ताना-वाना मात्र है। एक लेखक ने तो इसे आधिभौतिक कल्पनाओं का अखाड़ा कहा है। किन्तु स्थिति पर गम्भीरता से विचार करने से समझ में आता है कि घोषणा का विचार संविधान के विचार से पृथक नहीं किया जा सकता था। जिस देश में स्वतंत्रता के सिद्धान्तों की ऐतिहासिक परम्परा नहीं थी, उसमें संविधान की आधार-शिला के रूप में इसका होना अति-आवश्यक था। इंगलैण्ड में स्वतन्त्रता की परम्पराओं का क्रमिक विकास हुआ था। फ्रांस में इस प्रकार के विकास की सम्भावना नहीं थी क्योंकि उस देश की स्थिति ही दूसरे ढँग की थी। वहाँ स्वतन्त्रता का सहसा उदय हो रहा था, इसलिये स्पष्ट और निश्यात्मक ढँग से उसको शव्द-वद्ध करना आवश्यक था। सिद्धान्तों के प्रतिपादन के बाद ही उन्हें तथ्य का रूप दिया जा सकता था।

वोषणा विभिन्न मस्तिष्कों की उपज

घोषणा की आवश्यकता

मानव अधिकारों की इस घोषण ने आधुनिक शासन-सिद्धान्तों का निरूपण किया। जिन लोगों ने इस प्रपत्र की रचना की उनका विश्वास था कि ये सिद्धान्त सार्वभौम रूप से सत्य हैं और इनको सर्वत्र लागू किया जा सकता है। उन्होंने अधिकार स्थापित नहीं किये—उसकी घोपणा मात्र की। फ्रांस के लोग जानते थे कि हम एक शुद्ध मतवादपूर्ण पाठ की रचना कर रहे हैं; पर साथ ही साथ उनका यह भी विचार था कि इस प्रकार का पाठ अत्यन्त लाभ दायक है और उसके इस विश्वास का कारण यह था कि सत्य और वुद्धि की शक्ति में उन्हें अगाध-आस्था थी। जैसा कि मिशले ने वहुत पहले लिखा था संविधान सभा की यही तात्विक मौलिकता थी—"विचारों की शक्ति में यह अनन्य आस्था, यह दृढ़ धारणा कि एक वार कानून का रूप धारण कर लेने पर सत्य अजेय हो जाता है।" सभा के सदस्यों को ये राजनैतिक मतवाद इतने सत्य प्रतीत होते थे कि उन्होंने सोचा कि सरकारों के वास्तविक आचरण में इनको क्रियान्वित कराने के लिये इनकी घोपणा-मात्र कर देना पर्याप्त है। इन लोगों का विश्वास था कि हम मानवता के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात कर रहे हैं, भविष्य के सिद्धान्तों को गम्भीरता के साथ शव्दवद्ध करके हम फ्रांस की ही नहीं वल्कि सम्पूर्ण संसार की अमूल्य सेवा कर रहे

राष्ट्रीय सभा की दृष्टि में घोषणा का महत्त्व

हैं। यद्यपि अमेरिका इस सम्बन्ध में उदाहरण प्रस्तुत कर चुका था फिर भी लोगों ने सोचा कि दूसरे गोलार्द्ध के लिये फ्रांस इन सिद्धान्तों को और भी अधिक पूर्णरूप दे सकता है और कदाचित् यह घोषणा अमेरिका की घोषणा से एक बात में अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो—इसमें बुद्धि पर उससे भी ज्यादा भरोसा किया गया है और उसकी भाषा उससे भी ज्यादा शुद्ध है।

घोषणा के मूल सिद्धान्त

इस घोषणा में १७ अनुच्छेद हैं। इनमें कहा गया है कि मनुष्य स्वतन्त्र और समान हैं, जनता ही प्रभु है, कानून जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति है, और उनके निर्माण में जनता को प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों द्वारा भाग लेने का अधिकार है, और अधिकारीगण उसी सत्ता का उपभोग कर सकते हैं जो कानून द्वारा उन्हें निश्चित रूप से दे दी जाती है। इसके अतिरिक्त उन स्वतन्त्रताओं का भी उल्लेख किया गया जिनका इंग्लैण्ड और अमेरिका में स्पष्टीकरण हो चुका था। उदाहरण के लिये वैयक्तिक स्वतन्त्रता, बोलने और एकत्र होने की स्वतन्त्रता, और अपने बराबर के व्यक्तियों द्वारा न्याय पाने का अधिकार। ये सिद्धान्त उनके बिलकुल उलटे थे जिन पर कि पुरातन व्यवस्था अवलम्बित थी। कानूनों तथा संस्थाओं में उनको समाविष्ट करने का अर्थ था उस व्यवस्था का स्थायी रूप से उन्मूलन करना।

वास्तव में बात यह है कि घोषणा के सम्बन्ध में यह धारणा कि संसार के लिए एक नया सुसमाचार सिद्ध होगी, इतनी अतिरंजित नहीं निकली जितनी कि उसके रचयिताओं की आशावादिता और आलोचकों की निराशावादिता से प्रतीत होती थी। जब कहीं मनुष्य मानव अधिकारों की बात सोचते हैं तो फ्रांस का यह प्रपत्र उनके मस्तिष्क में रहता है। यह घोषणा बहुत पहिले फ्रांस की सीमाओं के पार फैल चुकी थी। लगभग सभी जगह इसका अध्ययन किया गया, इसका अनुकरण हुआ है अथवा उसकी निन्दा हुई है।

घोषणा का व्यापक प्रभाव

आधुनिक यूरोप के राजनैतिक और सामाजिक विकास में यह एक निर्विवाद तत्व रही है। पिछली शताब्दी में जब कभी किसी राष्ट्र ने स्वतन्त्रता की आकांक्षा की है तो उसने इसी घोषणा में उसके सिद्धान्तों को पाया है। हाल में एक लेखक ने कहा है, "उसे इसमें पाँच-छ: ऐसे मंत्र मिले हैं जो गणित की प्रस्तावनाओं की भाँति तीखे, स्वयं सत्य की भाँति सच्चे और ब्रह्म-दर्शन की भाँति मादकतापूर्ण हैं।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि घोषणा एक आदर्शमात्र थी, एक ऐसे अभीष्ट की ओर इंगित करती थी जिसकी प्राप्ति के लिये समाज को प्रयत्न करना था; वह किसी उद्देश्य की पूर्णता नहीं थी। वह कुछ सिद्धान्तों की सूची थी, उन सिद्धान्तों का साक्षात्कार नहीं। वह अधिकारों की एक घोषणा थी, अधिकारों की गारन्टी नहीं। यह एक समस्या थी कि सिद्धान्तों को इतने स्पष्ट रूप से घोषित किया गया है उनकी गारन्टी कैसे की जाय, और इसको सुलझाने में फ्रांसीसी इतिहास की एक शताब्दी से अधिक बीत चुका है किन्तु उसका पूर्ण हाल अभी तक नहीं निकल सका है। अब हमें यह देखना है कि सभा, जिसने इस घोषणा की

रचना की थी, उसके सिद्धान्तों को उस संविधान में, जिसकी यह एक प्रस्तावना थी कहाँ तक समाविष्ट करने के लिये तैयार अथवा योग्य है।

नया संविधान

संविधान का निर्माण धीरे-धीरे हुआ। उसके कुछ आधारभूत अनुच्छेद १७८९ में अंगीकृत कर लिये गये थे। किन्तु १७९० और १७९१ में अनेक कानून पास किये गये जो वास्तव में संविधान के ही अंग थे। इस प्रकार वह थोड़ा-थोड़ा करके बना। अन्त में १७९१ में इन सब कानूनों को संशोधित किया गया, उनमें काट-छाँट की गई और एक प्रपत्र के रूप में संग्रहीत कर लिया गया, जिस पर राजा ने अपनी स्वीकृति दे दी। यद्यपि कभी कभी उसे १७८९ का संविधान कहा गया है किन्तु अधिक सामान्यत: और सही रूप में वह १६९१ के संविधान के नाम से जाना जाता है। फांस के इतिहास में यह पहला लिखित संविधान था। जिन परि-स्थितियों में इसकी रचना हुई थी वे उनसे बिलकुल भिन्न थी जिसमें कुछ ही समय पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान रचा गया था; फिर भी एक बात में वह फिलाडलफिया सम्मेलन की कृति (अमेरिका का संविधान)से मिलता जुलता था अर्थात् वह भी स्पष्ट रूप से समझौते की भावना की उपज था। मानव अधिकारों की घोषणा के शक्तिशाली तथा अतिवादी सिद्धान्तों को छोड़कर जो कि प्रस्तावना के रूप में इसमें जोड़ दिये गये थे, अन्य सभी दृष्टि से यह प्रपत्र अत्यधिक मर्यादित था, और उसकी यह विशेषता उन व्यापक परिवर्तनों के अनुरूप थी जिसकी माँग बहुसंख्यक जनता ने चुनाव के समय स्मृतिपत्रों में की थी।

आधारभूत सिद्धान्त

दो मुख्य सिद्धान्त उसके अंग-अंग में व्याप्त हैं। पहला, लोक-प्रभुत्व का सिद्धान्त, अर्थात् जनता की इच्छा और अनुमति सरकार की सभी शक्तियों का स्रोत है; और दूसरा, कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका शक्तियों का पूर्ण पृथक्करण—इस प्रकार के विभाजन को मॉन्तेस्क्यू ने स्वतन्त्रता की रक्षा का एकमात्र तरीका बतलाया था, और बहुत बल देकर।

सांविधानिक राजतंत्र की स्थापना

सरकार का रूप राजतन्त्रीय ही रक्खा गया। यह रूप जनता की इच्छाओं के, जिनकी अभिव्यक्ति स्मृति-पत्रों द्वारा हुई थी, अनुरूप था और संविधान सभा ने भी इसी को उचित समझा था। किन्तु पहले राजा निरंकुश था, अब उसकी शक्तियाँ सीमित करदीं गई थीं और उसे एक सांविधानिक शासक बना दिया गया था। इन दो धारणाओं में जो गहरा अन्तर था उसको व्यक्त करने के लिये राजा की उपाधि में भी परिवर्तन कर दिया गया। पहिले वह फ्रांस और नवार का राजा कहलाता था अब उसकी उपाधि हो गई फ्रांसीसियो का राजा। पहिले वह अपने निजी व्यय के लिये राष्ट्रीय कोष में से जितना धन चाहता ले सकता था, किन्तु अब उसके लिये वेतन निश्चित कर दिया गया जो २५,०००,००० फ्रैंक से अधिक न हो सकता था।

राजा की शक्तियाँ

मंत्रियों अथवा मंत्रिमंडल के विभागों के अध्यक्षों की नियुक्ति करना उसी के हाथ में था, किन्तु वह व्यवस्थापिका के सदस्यों को इन पदों पर नियुक्त नहीं कर सकता था। इंग्लैण्ड के ढंग की संसदीय प्रणाली से बचने का जानबूझकर प्रयत्न किया गया, क्योंकि सदस्यों की राय में वह एक

दूषित व्यवस्था थी : उसमें मंत्रीगण संसद के सदस्यों पर अनुचित प्रभाव डाल कर अथवा घूस देकर अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकते थे और इस प्रकार जनता की इच्छा की अवहेलना कर सकते थे। मंत्रियों को अपने कार्यों को उचित ठहराने और अपनी नीति को समझाने के लिये व्यवस्थापिका के सामने प्रस्तुत होने की भी आज्ञा नहीं थी।

विशेषाधिकार का प्रश्न

सामान्यतया शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का बड़ी दृढ़ता के साथ अनुसरण किया गया था। किन्तु एक बात में उसे त्याग दिया गया था : राजा को निषेधाधिकार दे दिया गया। अब तक कानून बनाने का काम राजा के ही हाथ में था, किन्तु अब उसको उस अधिकार से वंचित कर दिया गया, फिर भी उसको इतना अधिकार था कि वह व्यस्थापिका द्वारा पास हुए कानून को तत्काल कार्यान्वित होने से रोक सकता था। इस विषय पर सभा में वहुत वाद-विवाद हुआ। कुछ सदस्य निषेधाधिकार के सिद्धान्त के पूर्णतया विरुद्ध थे; किन्तु कुछ चाहते थे कि यह अधिकार अन्तिम और अनियन्त्रित हो। अन्त में सभा ने इन दोनों मतों के बीच समझौता कर लिया और राजा को कुछ समय के लिए कानून को स्थगित करने का अधिकार दे दिया, अर्थात् वह दो व्यवस्थापिकाओं (एक के बाद एक) द्वारा पास किये हुए कानून को क्रियान्वित होने से रोक सकता था, यानी चार वर्ष की अवधि तक। किन्तु यह नियम रक्खा गया कि यदि तीसरी व्यवस्थापिका उस कानून को स्वीकृत करले तो फिर उसे लागू कर दिया जायगा, राजा उस पर अपनी अनुमति दे चाहे न दे।

वैदेशिक नीति का संचालन राजा के ही हाथ में रहा। राजदूतों को नियुक्त करना और दूसरे देशों के राजदूतों का स्वागत करना भी उसी का काम था, स्थल तथा जल सेना का प्रमुख भी वही था और उच्च पदों पर नियुक्तियाँ करने का अधिकार भी उसी को था। पहिले सभा ने युद्ध तथा संधि का अधिकार भी उसी को देना चाहा किन्तु बाद में उसे शंका हुई कि कहीं वह राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करके निजी अथवा वंशगत स्वार्थों के लिये राष्ट्र को युद्ध में न झोंक दे, इसलिये उसने निश्चय किया कि राजा संधि अथवा युद्ध का प्रस्ताव कर सकेगा, किन्तु उस पर अंतिम निर्णय का अधिकार व्यवस्थापिका को ही होगा।

व्यवस्थापिका का निर्माण

१७९१ के संविधान के अनुसार विधान शक्ति एक सभा को दी गई जिसके सदस्यों की संख्या ७४५ निश्चित की गई और नियम रक्खा गया कि उनका चुनाव दो वर्ष की अवधि के लिये हुआ करेगा। अनेक प्रतिनिधि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के पक्ष में थे। उन्होंने इंगलैण्ड तथा अमेरिका का उदाहरण प्रस्तुत किया, किन्तु इंगलैण्ड में दूसरा सदन सामन्तों का था, और फ्रांसीसी सामन्ती व्यवस्था का उन्मूलन कर चुके थे इसलिये अब वे वंशानुक्रम के आधार पर दूसरे सदन का निर्माण करने के लिये तैयार न थे। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड की व्यवस्था असमानता के सिद्धान्त पर आधारित थी। फ्रांसीसी लोग समानता के सिद्धान्त पर अपनी व्यवस्था कायम करने जा रहे थे। स्वयं सामन्तों तक ने दूसरे सदन का विरोध किया। प्रान्तीय सामन्तों को डर था कि यदि दूसरा सदन बना तो

दरबारी सामन्त उसके सदस्य हो जायेंगे। संयुक्त राज्य में सीनेट राज्यों के अधिकारों की भावना संतुष्ट करने के लिये बनाई गई थी, जब कि फ्रांसीसी प्रान्तों को और स्थानीय प्रान्तीय भक्ति को नष्ट करके और फ्रांस का पूर्ण एकीकरण करके इस प्रकार की भावना को मिटा देना चाहते थे। इस प्रकार व्यवस्थापिका को दो सदनों में बाँटने की योजना को जानबूझ कर त्याग दिया गया।

व्यवस्थापिका का एक ही सदन

अब प्रश्न यह था कि व्यवस्थापिका का चुनाव किस प्रकार हो। इस विषय में हम देखते हैं कि सभा ने घोषणा के शब्दों तथा आत्मा दोनों को ही बहुत दूर छोड़ दिया। उसमें कहा गया था कि अधिकारों की दृष्टि से भी मनुष्य समान हैं। क्या इसका यह अर्थ नहीं था कि सभी नागरिकों को मताधिकार मिलना चाहिये? कम से कम संविधान सभा ने उसका यह अर्थ नहीं लगाया और उसने नागरिकों के दो भेद कर दिये, सक्रिय और निष्क्रिय।

सक्रिय नागरिक और निष्क्रिय नागरिक

कोई सक्रिय व्यक्ति नागरिक तभी गिना जा सकता था जबकि वह २५ वर्ष की आयु का हो और कम से कम अपने तीन दिन के वेतन के बराबर रकम प्रतिवर्ष प्रत्यक्ष करों के रूप में राज्य को देता हो। इस प्रकार गरीब लोग नागरिकों की कोटि से निकाल दिये गये, और उनकी संख्या काफी बड़ी थी। अनुमान लगाया गया है कि लगभग ४,०००,००० सक्रिय नागरिक थे और ३,०००,००० निष्क्रिय नागरिक।

सक्रिय नागरिकों को ही केवल वोट देने का अधिकार था। किन्तु व्यवस्थापिका के सदस्यों के चुनाव में वे भी प्रत्यक्ष रूप से वोट न दे सकते थे। वे प्रति १०० सक्रिय नागरिकों के पीछे एक के अनुपात से निर्वाचकों को चुनते थे। और निर्वाचक वही व्यक्ति चुना जाता जो काफी बड़ी सम्पत्ति का स्वामी होता, अर्थात् जो १५० से २०० दिनों तक का वेतन प्रत्यक्ष करों के रूप में देता। परिणाम यह हुआ कि केवल ४३००० हजार ऐसे व्यक्ति निकले जो निर्वाचकों के चुनाव के लिए खड़े होने के योग्य थे। इन्हीं निर्वाचकों के हाथ में व्यवस्थापिका के सदस्यों—प्रतिनिधियों—को चुनने का अधिकार था। नई प्रणाली के अनुसार न्यायाधीशों को भी वही चुनते थे। इस प्रकार संविधान सभा ने जिसने पुराने विशेषाधिकारों का अन्त करने में इतना उत्साह दिखाया था, स्वयं अपने सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर नये विशेषाधिकारों की स्थापना करदी। नये राज्य में राजनैतिक अधिकारों पर उन लोगों का एकाधिपत्य हो गया जिनके पास कुछ निश्चित सम्पत्ति थी। प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये सम्पत्ति सम्बन्धी किसी प्रकार की योग्यता नहीं रक्खी गई थी। कोई भी सक्रिय नागरिक चुना जा सकता था। किन्तु चूंकि प्रतिनिधियों का चुनाव सम्पत्तिशाली लोगों के ही हाथ में था इसलिए यह निश्चित था कि वे हर दशा में सम्पत्तिशालियों को अर्थात् अपने ही वर्ग के लोगों को चुनेंगे।

व्यवस्थापिका का मतदाताओं द्वारा परोक्ष रूप से चुनाव

न्याय-व्यवस्था में भी पूर्ण क्रांति करदी गई। अब तक न्यायाधीश लोग अपने पदों को खरीद लिया करते थे, और उन पदों के साथ उपाधियाँ तथा

विशेषाधिकार संलग्न रहते थे, जिन्हें वे अपने पुत्रों के लिये विरासत के रूप में छोड़ सकते थे। किन्तु अब प्रत्येक श्रेणी के न्यायाधीश उपर्युक्त निर्वाचकों द्वारा चुने जाने को थे। उनको कार्य अवधि दो चार वर्ष तक निश्चित की गई। आपराधिक मुकद्दमों के निर्णय के लिये जूरी की प्रथा, जिससे उस समय तक आधुनिक फ्रांस अपरिचित था, स्थापित की गई। इस समय तक न्यायाधीश लोग ही सब मुकद्दमों का निर्णय करते थे।

निर्वाचित न्यायपालिका

सार्वदेशिक तथा स्थानीय प्रशासन के लिए एक नई व्यवस्था की रचना की गई। पुराने ३२ सूबे समाप्त कर दिये गये और फ्रांस को लगभग समान आकार के ८३ भागों में बाँट दिया गया। विभागों को उपविभागों[1], उनको केन्टनों[2] और फिर उनको म्यूनिसिपैलिटियों (कम्यूनों)[3] में विभक्त किया गया। इन शब्दों का उस समय से निरन्तर प्रयोग होता आया है।

फ्रांस का विभागों में विभाजन

फ्रांस की पुरानी राज्य-व्यवस्था अत्यधिक केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त पर संगठित थी, अब उसका अत्यधिक विकेन्द्रीयकरण कर दिया गया। पहले प्रत्येक प्रान्त में केन्द्रीय सरकार के अपने अभिकर्त्ता अथवा अधिकारी रहते थे, अधीक्षक[4] और उनके अधीन अधिकारी। नई व्यवस्था के अनुसार विभागों में केन्द्रीय सरकार का कोई प्रतिनिधि नहीं रक्खा गया। स्थानीय वैभागिक अधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार उपर्युक्त निर्वाचकों को सौंपा गया। केन्द्रीय सरकार की आज्ञप्तियों को क्रियान्वित करने का काम इन्हीं अधिकारियों को दिया गया। किन्तु यदि वे अवज्ञा करते तो कठिनाई उठ खड़ी होती, क्योंकि केन्द्रीय सरकार का उनके ऊपर कोई नियंत्रण नहीं था क्योंकि न तो वह उनको नियुक्त करती थी, न उनको हटा सकती थी और न उन पर अनुशासन लागू कर सकती थी।

फ्रांस का विकेन्द्रीकरण

१७९१ का संविधान फ्रांस की शासन-व्यवस्था में एक प्रगतिशील कदम था; फिर भी उसने ठीक काम नहीं दिया और न बहुत दिनों तक टिक ही सका। स्वशासन की कला में यह पहला प्रयोग था, इस दृष्टि से इसका महत्त्व था। किन्तु जब उसको व्यवहार में लाया गया तो पता चला कि उसके रचयिताओं ने अनेक दृष्टि से अनुभव का अभाव था और उनकी निर्णय-बुद्धि निम्न कोटि की थी। इन्हीं बातों ने भविष्य की कठिनाइयों को जन्म दिया। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को एक दूसरे से एक दम इतना पृथक कर दिया गया था कि उनमें परस्पर विचार-विनिमय ही कठिन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप दोनों के बीच सन्देह बढ़ता गया। राजा अपने मन्त्रियों को व्यवस्थापिका में से नहीं चुन सकता था। और यदि व्यवस्थापिका से उनका मतभेद होता तो इंग्लैण्ड की भाँति वह उसे भंग न कर सकता था और न मतदाताओं को उनके बीच निर्णय करने का अवसर दे सकता था। राजा का निषेधाधिकार इतना शक्तिशाली अस्त्र न था कि वह व्यवस्थापिका के आक्रमणों से उसकी रक्षा कर सकता, फिर भी यदि उसका प्रयोग किया जाता तो व्यवस्थापिका को

संविधान के दोष

1. Arrondisements. 2. Cantons. 3. Communes. 4. Intendent.

किन्तु इस प्रकार की सम्पत्ति का प्रयोग तभी किया जा सकता था जब कि उसे मुद्रा से परिणत कर लिया जाता, किन्तु यह काम धीरे का था और पूरा होने में कई वर्ष लगते। इसलिये एक नया उपाय सोचा गया। इस सम्पत्ति को सिक्योरिटी मान कर सरकारी आवश्यकता की पूर्ति के लिये कागज के सिक्के चला दिये गये, इन सिक्कों का नाम असिन्यांत रक्खा गया। जिन लोगों के पास सिक्के होते थे, वे उनके बदले में सोना न मांग सकते थे जैसा कि हमारी आजकल की बहुत-सी कागज की मुद्रा के सम्बन्ध में है; किन्तु वे उनसे वह भूमि खरीद सकते थे इसलिये इन कागज के सिक्कों के पीछे मूल्य था। किन्तु कागज की मुद्रा के सम्बन्ध में सदैव एक खतरा रहता है, और वह यह कि बहुधा जितने मूल्य की सम्पत्ति होती है उससे अधिक सिक्के निकालने की प्रवृत्ति आ जाती है और बड़ी सरलता से सरकार उसकी शिकार बन जाती है। यह एक ऐसा प्रलोभन सिद्ध हुआ कि क्रान्तिकारी सभाओं में बुद्धि की इतनी दृढ़ता अथवा इच्छा शक्ति न थी कि वे उनका संभरण कर सकतीं। प्रारम्भ में राज्य को जैसे-जैसे धन की आवश्यकता हुई वैसे-वैसे सीमित मात्रा में असिन्यांत जारी किये गये और जनता ने उन्हें इच्छा-पूर्वक स्वीकार कर लिया, बाद में दिन प्रति दिन बड़ी संख्या में उन्हें जारी किया गया और उनका अनुपात राष्ट्रीय भूमि के मूल्य से कहीं अधिक हो गया। परिणाम यह हुआ कि कागज का मूल्य तेजी से गिरने लगा। जनता ने उसे उसके अंकित मूल्य पर स्वीकार करने से इन्कार किया। १७८९ में चर्च की सम्पत्ति का मूल्य ४,०००,०००,००० फ्रैंक आँका गया था। १७८९ और १७९६ के बीच ४५,०००,०००,००० के मूल्य के असिन्यांत जारी किये गये। १७८९ में १०० फ्रैंक के मूल्य के असिन्यांत को १०० फ्रैंक में ही स्वीकार कर लिया जाता था किन्तु १७९१ तक उसका मूल्य ८२ फ्रैंक रह गया और १७९६ तक एक फ्रैंक से भी कम। उलझन में डालने वाली वित्तीय समस्या का यह हल न तो ईमानदारी का था और न प्रभावोत्पादक ही सिद्ध हुआ, यह तो उसका टालना था, अथवा यों कहिये कि उसके उत्तरदायित्व से बचने का उपाय था। जिस समस्या को सुलझाने के लिए संविधान सभा बुलाई गई थी उसके हल करने को उसने कुछ नहीं किया। वास्तव में अब राष्ट्रीय वित्त की दिशा पहिले से भी अधिक धपले में पड़ गई।

कागज की मुद्रा (असिन्यांत)

कागज की मुद्रा के मूल्य में तेजी से गिरावट

संविधान सभा वित्तीय समस्या के हल में असफल

करता तो साधारण न्यायालयों की सहायता लेली जाती। चर्च अधिकारयों के लिये अब राज्य की ओर से वेतन निश्चित कर दिये गये, दूसरे शब्दों में वे अब राज्य के अधिकारी बन गये। बहुत से बिशपों की आय बहुत कम हो गई और इसके विपरीत गाँव और मुहल्लों के पादरियों के वेतन में काफी वृद्धि हो गई।

निष्ठावान और ईमानदार कैथोलिक इस कानून को स्वीकार नहीं कर सकते थे, क्योंकि इसका अर्थ यह था कि जो संस्था अब तक पूर्णतया अपने आप भीतर से नियन्त्रित होती आई थी उसमें राजनीतिज्ञों ने परिवर्तन कर डाला था। बिशपों और पादरियों का अन्य अधिकारियों की भाँति चुनाव होना था, जिसका अर्थ यह था कि कैथोलिक चर्च के धार्मिक कर्मचारियों के चुनाव में प्रोटेस्टैन्ट, यहूदी तथा स्वतन्त्र विचारों के लोग भी भाग ले सकते थे, न्यायाधीशों के हाथ में चाहे वे गैर-ईसाई ही क्यों न होते, निर्णायक शक्ति आ गई। पोप को तो व्यवहारिक मामलों में उपेक्षित ही कर दिया गया। हाँ, उसकी नाममात्र की प्रमुखता पर आपत्ति नहीं उठाई गई। उसकी वास्तविक शक्ति का बहुत कुछ नाश हो गया। जो कुछ होगा उसकी सूचना उसको देदी जाया करेगी; किसी विषय में अब उसकी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं थी।

इस संविधान का विरोध

सभा ने पास किया कि चर्च के सभी अधिकारियों को इस संविधान का समर्थन करने की शपथ लेनी पड़ेगी। १३४ बिशपों में से केवल २ इस के लिये तैयार हुये। शायद एक तिहाई के लगभग नीचे के पादरियों ने भी अपनी अनुमति देदी। जिन चर्च अधिकारियों ने शपथ ग्रहण करने की अनुमति देदी वे वफादार और जिन्होंने नहीं दी वे विद्रोही पादरी कहलाये। समय आने पर चुनाव हुये जैसा कि कानून द्वारा विधान किया गया था, और जो चुन लिये गये वे सांविधानिक पादरी कहलाये। फ्रांस में अब पादरियों के दो गुट्ट बन गये—एक वे जो विद्रोही थे और जिनका चुनाव पुरानी प्रणाली से हुआ था और दूसरे वे जिन्हें निर्वाचकों ने अप्रत्यक्ष रूप से चुना था। एक भारी वितण्डा उठ खड़ा हुआ और भयानक खतरा सामने दिखाई देने लगा क्योंकि नगर-नगर और नगले-नगले में धार्मिक कलह की ज्वाला धधकने लगी। एक गुट्ट के पीछे धार्मिक विश्वास था और दूसरे के पीछे राज्य का समर्थन और राज्य ने अब एक ऐसे विषय में अपनी इच्छा को लादने के लिये संघर्ष आरम्भ किया जो उसके क्षेत्राधिकार से बाहर था, और यह संघर्ष लम्बा, भयावह और असफल सिद्ध हुआ।

धार्मिक कलह

परिणाम अत्यन्त घातक निकले। पहली बात यह कि लुई १६ वें को जो एक सच्चा कैथोलिक था, स्थिति पहिले से भी कहीं अधिक कठिन हो गई। सभा के इन कार्यों पर न तो वह अपनी अनुमति दे सकता था और न देना ही चाहता था। किन्तु यदि वह इनका समर्थन करने में हिचकिचाता तो लोग उसे खुले रूप में क्रान्ति का शत्रु कहने लगते। दूसरा घातक परिणाम यह हुआ कि जनता के विभिन्न वर्गों में, विशेष कर वांदे के प्रान्त में एक ऐसा भयंकर गृह-युद्ध उमड़ पड़ा जैसा कि फ्रांस ने पहले कभी न देखा था। निम्न पादरियों में अगणित ऐसे थे जिन्होंने अब तक क्रान्ति का समर्थन किया था और बड़ी सहायता की थी किन्तु अन्तःकरण की खातिर वे अब उसके विरुद्ध हो गये। यहाँ पर हम इतिहास के शोचनीय अध्याय का

विद्रोही पादरी क्रांति के शत्रु बन गये

विस्तार से वर्णन नहीं कर सकते। इतना कहना पर्याप्त होगा कि संविधान सभा ने इससे बड़ी अथवा घातक भूल कोई और न की थी। चर्च का, जैसा कि बाद में सिद्ध हो गया, किसानों के ऊपर गहरा आध्यात्मिक प्रभाव था, और देश की बहुसंख्यक जनता किसान थी। अब जनता की वफादारी के दो ग्राहक बन गये—एक ओर राज्य था और दूसरी ओर चर्च। लोगों को इन दो में से एक को चुनना था, और इसमें सन्देह नहीं कि यह काम सरल न था, मस्तिष्क और हृदय दोनों में भारी उलझन डालने वाला और तीव्र वेदना उत्पन्न करने वाला था। अभी तक सामन्तों का एक छोटा सा प्रतिक्रान्तिकारी दल था और उनकी स्थिति वही थी जो कि बिना सेना के सेनापतिओं की होती है। किन्तु अब उनके दल में हजारों; लाखों रँगरूट भर्ती हो गये जो हर प्रकार का बलिदान करने को तैयार थे। सांसारिक कुचक्रों में दक्ष लोग जनता की इस धार्मिक श्रद्धा का ऐसे उद्देश्यों के लिये खुल कर प्रयोग कर सकते थे जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध न था। राजनीति ने राष्ट्र के जीवन में वैसे ही काफी उत्तेजना उत्पन्न कर दी थी। धार्मिक वाद-विवाद की आग को भड़का कर उसमें वृद्धि करने की आवश्यकता न थी। अब भक्तों के सामने दो चीजें थीं—एक फ्रांस की क्रान्ति, और दूसरी अनन्त अधोगति। इन दो में से उन्हें एक का वरण करना था।

प्रति क्रांतिकारी दल में भारी वृद्धि

लुई १६ वें ने जब उस आज्ञाप्ति पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार **पादरियों के व्यवहारिक संविधान** के प्रति शपथ ग्रहण करनी थी; उस समय उसने कहा, "ऐसी स्थिति में फ्रांस का राजा रहने की अपेक्षा मेत्स का राजा होना अधिक पसन्द करूँगा, किन्तु इसका शीघ्र ही अन्त होने वाला है।" इस कथन का अर्थ यह था कि राजा ने अब अपनी सैद्धान्तिक दुविधाओं पर काबू पा लिया था; यूरोप के शासकों को अपनी सहायता के लिये बुलाने का संकल्प कर चुका था और उस घटना-चक्र के बन्धन के निकलने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ था जिसने उसे कस कर जकड़ लिया था और पूरी तरह उसका गला घोंटने पर उतारू था। राजा के भाग निकलने का विचार नया न था। मारी आन्त्वानेत के मन में बहुत पहले यह बात आ चुकी थी। मिराबू ने भी किन्हीं परिस्थितियों में ऐसा करने की सलाह दी थी, किन्तु अब वैसी परिस्थितियाँ न रही थीं। बहुत से सामन्त फ्रांस से भाग गये थे, कुछ बास्तीय के पतन के बाद, और बहुत से गढ़ों पर आक्रमण के उपरान्त। वे राज्य की सीमाओं पर मँडरा रहे थे, बेल्जियम में, पीमॉन्ट में, और विशेषकर उन छोटी-छोटी जर्मन रियासतों में जो राइन के किनारों पर स्थित थीं। उन लोगों की बड़ी इच्छा थी कि राजा हम लोगों में आकर सम्मिलित हो जाय। वे इस बात के भी उत्सुक थे कि फ्रांस यूरोप के साथ लड़ाई में उलझ जाय। इस प्रकार उन्हें आशा थी कि विजयी सेना के साथ हमें पेरिस लौटने का अवसर मिल जायगा, और हम घटना-चक्र को पीछे की ओर लौटा कर १७८९ में जो स्थिति थी वैसी ही फिर कर देंगे और साथ ही साथ प्रमुख क्रान्तिकारियों को ऐसा दण्ड देंगे कि भविष्य में उदण्ड और कल्पना के जगत में रहने वाले व्यक्ति उन पर जो ईश्वर द्वारा अभिषिक्त है, जो दैवी अधिकार से राजा

लुई १६ वें पर शोचनीय प्रभाव

क्या राजा निकल भागेगा ?

दरबारी दल प्रतिशोध और देशद्रोह का षड़यन्त्र रचता है

हैं, और सामन्तों पर जिनके अधिकार कम पवित्र नहीं हैं और पवित्र पादरियों पर दूषित हाथ उठाने में हिचकिचाएँ। राजा का घमण्डी और बुद्धिहीन भाई, आर्त्वा का काउन्ट, उन व्यक्तियों में से था जो सबसे पहिले फ्रांस छोड़ कर भाग गये थे। उसने कहा था : "हम तीन महीने के भीतर वापिस आ जाएँगे।" किन्तु वास्तव में वह २३ वर्ष बाद लौट कर आ सका। उसका अनुमान बहुत ज्यादा गलत निकला, किन्तु इसके लिए वह क्षम्य है क्योंकि उस असाधारण युग में प्रत्येक व्यक्ति का हिसाब गलत बैठता था।

वरेन को पलायन

लुई १६ वें के अन्तःकरण को बहुत ठेस पहुँची। इसलिए उसने पेरिस से भाग निकलने की योजना बनाई। उसका इरादा फ्रांस के पूर्वी भाग में पहुँचने का था, जहाँ पर फ्रांसीसी सेनाएँ तैनात थीं और जिन पर उसके विचार में भरोसा किया जा सकता था। उसने सोचा कि वहाँ स्वामिभक्त अनुयायियों के बीच पहुँच कर मैं फिर राजा बन जाऊँगा और फिर पेरिस लौट कर स्थिति पर अधिकार कर लूँगा। २० जून १७९१ की रात को राजा एक चाकर का वेश धारण करके और रानी को जो एक रूसी महिला के वेश में थी, साथ लेकर एक भद्दी-भोंड़ी बग्घी में बैठ कर महलों से भाग निकला। दूसरे पूरे दिन वे तेज भयंकर धूप में शाम्पान्ज के सफेद राजमार्गों पर घूमते-फिरे और अन्त में लगभग आधी रात के समय वरेन नाम के गाँव में पहुँच गये जो सीमा से बहुत दूर न था। वहाँ पर वे पहिचान लिये गये और गिरफ्तार कर लिये गये। राष्ट्रीय सभा ने तीन अधिकारियों को उन्हें लेने के लिये भेजा। राजाओं की लम्बी परम्पराओं के इन वंशजों का पेरिस वापिस लौटना कालवरी[1] पर चढ़ना सिद्ध हुआ। जिन गाँवों में होकर वे निकले वहाँ भीड़ों ने उन्हें घेर लिया और उन्हें हर प्रकार से अपमानित किया, गालियाँ दीं और मखौल उड़ाया। जून की विनाशकारी गर्मी में और दम घुटने वाली धूल में उन्हें बिना विश्राम के निरन्तर चल कर वह यात्रा पूरी करनी पड़ी। पेरिस पहुँचने पर उनका अपमान नहीं किया गया, बल्कि लोगों की भारी भीड़ों ने जो टोप लगाये हुये खड़े थे बड़ी गम्भीर शान्ति और खामोशी के साथ उनका स्वागत किया। उसके एक मित्र ने लिखा था कि राजा बिलकुल भी उद्विग्न न था किन्तु हमारी बेचारी रानी ने अपना सिर झुका कर घुटनों में रख लिया था। राष्ट्रीय रक्षकों की पाँतें भूमि पर हथियार रखकर खड़ी थीं जैसा कि अन्त्येष्टि क्रिया के समय होता है। उसी रात को वे सात बजे फिर तुइलेरी में पहुँच गये। भय और आतंक के इन कुछ ही दिनों में रानी अपनी आयु से २० वर्ष अधिक बूढ़ी हो गई थी। उसके बाल एक दम सफेद हो गये थे, जैसे कि एक ७० वर्ष की बुढ़िया के बाल होते हैं।

राजा के पलायन का प्रभाव

इस घोर सुखदायी तथा दुर्भाग्यपूर्ण कार्य के परिणाम बहुत गम्भीर हुए। लुई १६ वें ने अपनी वास्तविक भावनाओं का परिचय दे दिया था। उसके प्रति उसकी प्रजा की भक्ति पूर्णतया नष्ट अब भी न हुई थी, किन्तु उसकी जड़ें हिल गई थीं, और इस बुरी तरह से कि उन्हें फिर से जमाना असम्भव था। अब उन्हें उसके कथनों

---

1. वह स्थान जहाँ पर ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाया गया था।

विस्तार से वर्णन नहीं कर सकते। इतना कहना पर्याप्त होगा कि संविधान सभा ने इससे बड़ी अथवा घातक भूल कोई और न की थी। चर्च का, जैसा कि बाद में सिद्ध हो गया, किसानों के ऊपर गहरा आध्यात्मिक प्रभाव था, और देश की बहुसंख्यक जनता किसान थी। अब जनता की वफादारी के दो ग्राहक बन गये—एक ओर राज्य था और दूसरी ओर चर्च। लोगों को इन दो में से एक को चुनना था, और इसमें सन्देह नहीं कि यह काम सरल न था, मस्तिष्क और हृदय दोनों में भारी उलझन डालने वाला और तीव्र वेदना उत्पन्न करने वाला था। अभी तक सामन्तों का एक छोटा सा प्रतिक्रान्तिकारी दल था और उनकी स्थिति वही थी जो कि बिना सेना के सेनापतिओं की होती है। किन्तु अब उनके दल में हजारों; लाखों रँगरूट भर्ती हो गये जो हर प्रकार का बलिदान करने को तैयार थे। सांसारिक कुचक्रों में दक्ष लोग जनता की इस धार्मिक श्रद्धा का ऐसे उद्देश्यों के लिये खुल कर प्रयोग कर सकते थे जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध न था। राजनीति ने राष्ट्र के जीवन में वैसे ही काफी उत्तेजना उत्पन्न कर दी थी। धार्मिक वाद-विवाद की आग को भड़का कर उसमें वृद्धि करने की आवश्यकता न थी। अब भक्तों के सामने दो चीजें थीं—एक फ्रांस की क्रान्ति, और दूसरी अनन्त अधोगति। इन दो में से उन्हें एक का वरण करना था।

प्रति क्रांतिकारी दल में भारी वृद्धि

लुई १६ वें ने जब उस आज्ञाप्ति पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार **पादरियों के व्यवहारिक संविधान** के प्रति शपथ ग्रहण करनी थी; उस समय उसने कहा, "ऐसी स्थिति में फ्रांस का राजा रहने की अपेक्षा मेत्स का राजा होना अधिक पसन्द करूँगा, किन्तु इसका शीघ्र ही अन्त होने वाला है।" इस कथन का अर्थ यह था कि राजा ने अब अपनी सैद्धान्तिक दुविधाओं पर काबू पा लिया था; यूरोप के शासकों को अपनी सहायता के लिये बुलाने का संकल्प कर चुका था और उस घटना-चक्र के बन्धन के निकलने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ था जिसने उसे कस कर जकड़ लिया था और पूरी तरह उसका गला घोंटने पर उतारू था। राजा के भाग निकलने का विचार नया न था। मारी आन्त्वानेत के मन में बहुत पहले यह बात आ चुकी थी। मिराबू ने भी किन्हीं परिस्थितियों में ऐसा करने की सलाह दी थी, किन्तु अब वैसी परिस्थितियाँ न रही थीं। बहुत से सामन्त फ्रांस से भाग गये थे, कुछ बास्तीय के पतन के बाद, और बहुत से गढ़ों पर आक्रमण के उपरान्त। वे राज्य की सीमाओं पर मँडरा रहे थे, बेल्जियम में, पीमॉन्ट में, और विशेषकर उन छोटी-छोटी जर्मन रियासतों में जो राइन के किनारों पर स्थित थीं। उन लोगों की बड़ी इच्छा थी कि राजा हम लोगों में आकर सम्मिलित हो जाय। वे इस बात के भी उत्सुक थे कि फ्रांस यूरोप के साथ लड़ाई में उलझ जाय। इस प्रकार उन्हें आशा थी कि विजयी सेना के साथ हमें पेरिस लौटने का अवसर मिल जायगा, और हम घटना-चक्र को पीछे की ओर लौटा कर १७८९ में जो स्थिति थी वैसी ही फिर कर देंगे और साथ ही साथ प्रमुख क्रान्तिकारियों को ऐसा दण्ड देंगे कि भविष्य में उदण्ड और कल्पना के जगत में रहने वाले व्यक्ति उन पर जो ईश्वर द्वारा अभिषिक्त है, जो दैवी अधिकार से राजा

लुई १६ वें पर शोचनीय प्रभाव

क्या राजा निकल भागेगा ?

हैं, और सामन्तों पर जिनके अधिकार कम पवित्र नहीं हैं और पवित्र पादरियों पर दूषित हाथ उठाने में हिचकिचाए। राजा का घमण्डी और बुद्धिहीन भाई, आर्त्वा का काउन्ट, उन व्यक्तियों में से था जो सबसे पहिले फ्रांस छोड़ कर भाग

दरबारी दल प्रतिशोध और देशद्रोह का षड़यन्त्र रचता है

गये थे। उसने कहा था : "हम तीन महीने के भीतर वापिस आ जाएँगे।" किन्तु वास्तव में वह २३ वर्ष बाद लौट कर आ सका। उसका अनुमान बहुत ज्यादा गलत निकला, किन्तु इसके लिए वह क्षम्य है क्योंकि उस असाधारण युग में प्रत्येक व्यक्ति का हिसाब गलत बैठता था।

लुई १६ वें के अन्त:करण को बहुत ठेस पहुँची। इसलिए उसने पेरिस से भाग निकलने की योजना बनाई। उसका इरादा फ्रांस के पूर्वी भाग में पहुँचने का था, जहाँ पर फ्रांसीसी सेनाएँ तैनात थीं और जिन पर उसके विचार में भरोसा किया जा सकता था। उसने सोचा कि वहाँ स्वामिभक्त अनुयायियों के बीच पहुँच कर मैं फिर राजा बन जाऊँगा और फिर पेरिस लौट कर स्थिति पर अधिकार कर लूँगा। २० जून १७९१ की रात को राजा एक चाकर का वेश धारण करके और रानी को जो एक रूसी महिला के वेश में थी, साथ लेकर एक भद्दी-भोंड़ी बग्घी में बैठ कर महलों से भाव निकला। दूसरे पूरे दिन वे तेज भयंकर धूप में शाम्पाञ्ज के सफेद राजमार्गों पर घूमते-फिरे और अन्त में लगभग आधी रात के समय वरेन नाम के गाँव में पहुँच गये जो सीमा से बहुत दूर न था। वहाँ पर वे पहिचान लिये गये और गिरफ्तार कर लिये गये। राष्ट्रीय सभा ने तीन अधिकारियों को उन्हें

वरेन को पलायन

लेने के लिये भेजा। राजाओं की लम्बी परम्पराओं के इन वंशजों का पेरिस वापिस लौटना कालवरी[1] पर चढ़ना सिद्ध हुआ। जिन गाँवों में होकर वे निकले वहाँ भीड़ों ने उन्हें घेर लिया और उन्हें हर प्रकार से अपमानित किया, गालियाँ दीं और मखौल उड़ाया। जून की विनाशकारी गर्मी में और दम घुटने वाली धूल में उन्हें बिना विश्राम के निरन्तर चल कर वह यात्रा पूरी करनी पड़ी। पेरिस पहुँचने पर उनका अपमान नहीं किया गया, बल्कि लोगों की भारी भीड़ों ने जो टोप लगाये हुये खड़े थे बड़ी गम्भीर शान्ति और खामोशी के साथ उनका स्वागत किया। उसके एक मित्र ने लिखा था कि राजा बिलकुल भी उद्विग्न न था किन्तु हमारी बेचारी रानी ने अपना सिर झुका कर घुटनों में रख लिया था। राष्ट्रीय रक्षकों की पाँतें भूमि पर हथियार रखकर खड़ी थीं जैसा कि अन्त्येष्टि क्रिया के समय होता है। उसी रात को वे सात बजे फिर तुइलेरी में पहुँच गये। भय और आतंक के इन कुछ ही दिनों में रानी अपनी आयु से २० वर्ष अधिक बूढ़ी हो गई थी। उसके बाल एक दम सफेद हो गये थे, जैसे कि एक ७० वर्ष की बुढ़िया के बाल होते हैं।

इस घोर दुखदायी तथा दुर्भाग्यपूर्ण कार्य के परिणाम बहुत गम्भीर हुए। लुई १६ वें ने अपनी वास्तविक भावनाओं का परिचय दे दिया था। उसके प्रति उसकी प्रजा की भक्ति पूर्णतया नष्ट अब भी न हुई थी, किन्तु उसकी जड़ें हिल गई थीं, और इस बुरी तरह से कि उन्हें फिर से जमाना असम्भव था। अब उन्हें उसके कथनों

राजा के पलायन का प्रभाव

---

1. वह स्थान जहाँ पर ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाया गया था।

की सच्चाई में विश्वास न रहा, उसने संविधान का समर्थन करने की जो शपथ ली थी उसमें भी उनकी आस्था न रही। रानी के साथ वे अशिष्टता का व्यवहार करने लगे, क्योंकि उसी को वे प्रमुख षड़यन्त्र कारिणी समझते थे। सिंहासन की जड़ें खोखली हो गईं। एक गणतन्त्रवादी दल प्रकट हो गया। इससे पहिले कभी किसी ने यह न सोचा था कि फ्रांस जैसे विशाल देश में गणतन्त्र सफल हो सकता है। गणतन्त्र तो पुराने यूनान अथवा मध्य युगीन इटली के-से छोटे राज्यों के लिये ही उपयुक्त था। रोब्सपियेर दान्तों और मारा जैसे अत्यधिक उग्र क्रान्तिवादी भी इस समय तक राजतन्त्र के समर्थक थे। किन्तु अब फ्रांस को जीता जागता सबक मिल गया। राजा की अनुपस्थिति में सभा की सरकार नियमित रूप से कार्य करती रही। इसके बाद के काल में जबकि लुई १६ वें को अपनी शक्ति के प्रयोग करने से रोक दिया गया, सरकार का काम पूर्ववत् चलता रहा और राज्य की किसी प्रकार की हानि न हुई। अब लोगों को स्पष्ट हो गया कि राजा के बिना भी काम चल सकता है। यह कथन सत्य ही है कि राजा के पलायन ने फ्रांस में एक गणतन्त्रीय दल को जन्म दिया, उस समय से उस दल का इतिहास अत्यधिक घटनापूर्ण रहा है और अन्त में अनेक उतार-चढ़ाव के बाद वह अपना शासन स्थापित करने में सफल हुआ है।

एक गणतन्त्रीय दल का उदय

किन्तु यह गणतन्त्रीय दल बहुत छोटा था। जब संविधान सभा को पता चल गया कि राजा की वफादारी पर विश्वास नहीं किया जा सकता, उस समय भी गणतन्त्र का विचार उसके लिये भयावह था। परिणामस्वरूप कुछ समय की हिचकिचाहट के बाद उसने लुई को उसका पद और पुरानी शक्तियाँ फिर लौटा दीं, संविधान को पूरा कर दिया; उसका समर्थन करने की उसकी शपथ को स्वीकार कर लिया और ३० सितम्बर १७९७ को घोषणा करदी कि, इस सभा का उद्देश्य पूरा हो गया है और इसलिये इसका विसर्जन किया जाता है।

अपने विसर्जन से पहिले राष्ट्रीय सभा ने एक अन्तिम और अनावश्यक गलती करदी। उसने आत्म-त्याग की ऐसी भावना का परिचय दिया जो घातक सिद्ध हुई। एक प्रस्ताव पास किया गया कि इस सभा का कोई भी सदस्य अपनी व्यवस्थापिका अथवा मन्त्रिपरिषद् का सदस्य न हो सकेगा। इस प्रकार दो वर्ष के अनुभव को तिलांजलि दे दी गई और नया संविधान ऐसे लोगों के हाथ में सौंप दिया गया गया जिन्होंने उनकी रचना में कोई भाग न लिया था।

आत्म-त्याग का अध्यादेश

अध्याय ५

विधान सभा

अब संविधान को क्रियान्वित करने का समय आया। पुराने निरंकुश राजतंत्र का अन्त हो गया था और उसके स्थान पर अब फ्रान्स संविधानिक राजतंत्र का प्रयोग करने जा रहा था। संविधान की धाराओं के अनुसार अब एक व्यवस्थापिका का चुनाव हुआ उसका पहिला सत्र अक्टूबर १,१७९१ को प्रारम्भ हुआ। उसका चुनाव दो वर्ष के लिए हुआ था पर उसने एक वर्ष से भी कम काम किया। आशा यह की गई थी कि सभा शांति-काल में शासन-व्यवस्था के नये सिद्धान्त को लागू करके सुख और समृद्धि के एक नये युग का उद्‌घाटन करेगी और नए आधार पर राजतंत्र को सुदृढ़ बनाएगी, किन्तु उसका कार्य-काल बहुत तूफानी सिद्ध हुआ और अपने समय में उसने राजतंत्र को सत्यानाश के गड्ढे में गिरते देखा जहाँ से वह कभी उठ न सका। उसकी बैठक होने से कुछ ही दिन पहले पैरिस में, जो राष्ट्रीय उत्सवों को समुचित ढंग से मनाने की कला में सदैव दक्ष रहा है "क्रान्ति का अन्त बड़ी धूमधाम से मनाया था।" पुरातन व्यवस्था दफना दी गई थी, और नई व्यवस्था की स्थापना होने वाली थी।

विधान सभा
(अक्टूबर १,१७९१ सितम्बर १०,१७९२)

किन्तु क्रांति का अन्त नहीं हुआ। बल्कि शीघ्र ही उसने पहले से भी गम्भीर और खतरनाक मंजिल में प्रवेश किया। इस दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ के कारण अनेक और गम्भीर थे। उस समय फ्रान्स और योरोप की जो स्थिति थी उसी में उसके बीज निहित थे। प्रश्न यह था कि क्या राजा अपनी नई स्थिति को खुले दिल से, ईमानदारी के साथ और पूर्णरूप से, बिना किसी मानसिक दुराव के, और गुप्त इरादों को त्याग कर स्वीकार कर लेगा? यदि वह ऐसा करने के लिए तैयार हो जाता, और यदि अपने आचरण द्वारा अपनी प्रजा को विश्वास दिला सकता कि वह अपने वचन पर दृढ़ रहेगा, संविधानिक राजा के रूप में शासन चलाएगा और उस समय तक जो सुधार हो चुके हैं उनका पालन करेगा और नई व्यवस्था को उलटने का कोई विचार न करेगा तब तो इस बात की पूरी सम्भावना थी कि भविष्य शान्तिमय विकास का

होगा, क्योंकि फ्रांस, परम्परा, भावना और विश्वास सभी दृष्टि से राजतंत्र का समर्थक था। विधान सभा को भी राजतन्त्र से उतना ही मोह था जितना कि संविधान सभा को था, किन्तु यदि राजा के आचरण से प्रजा को यह संदेह हो जाता कि वह पुरातन व्यवस्था की पुनः स्थापना करने के लिए कुचक्र रच रहा है और अपनी शपथों का ईमानदारी से पालन करने को तैयार नहीं है तो वे अवश्य उसके विरुद्ध हो जावेंगे और सांविधानिक राजतन्त्र का प्रयोग जोखिमपूर्ण सिद्ध होगा। फ्रांस के लोग गणतन्त्र की स्थापना करने के इच्छुक न थे, किन्तु पुरातन व्यवस्था के प्रति उनकी घृणा असंदिग्ध और दृढ़ थी।

विधान सभा राजतन्त्र के पक्ष में

लुई १६ वां जब भाग कर विरेन गया था उसी समय से उसके सम्बन्ध में गहरा संदेह चारों ओर फैलने लग गया था, और यह अनिवार्य भी था। उसने अपने आचरण द्वारा उस संदेह को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया; अगले महीनों में वह इतना बढ़ गया कि क्रांतिकारी उत्तेजना के शान्त होने की सम्भावना जाती रही, बल्कि वह दृढ़ता के साथ अधिक तीव्र होती गई। राजा के विचारों पर उसके वंशानुगत दृष्टिकोण का अनिवार्य रूप के गहरा प्रभाव था। इससे अतिरिक्त, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, क्रान्ति में धार्मिक कलह का विष इतना गहरा घोल दिया गया था कि एक कैथोलिक होने के नाते राजा का अन्तःकरण विक्षुब्ध हो ही उठा। यही मुख्य कारण था कि विधान सभा और लुई के सम्बन्धों में इतना तनाव उत्पन्न हो गया कि उनके टूटने की नोबत आ गई। पादरियों के व्यावहारिक संविधान के कारण एक कटु और दुःखदायी गृह-युद्ध उठ खड़ा हुआ था। लवांदे नाम के प्रदेश में कई हजार किसानों ने विद्रोह पादरियों के नेतृत्व में बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया और निर्वाचित संविधानिक पादरियों को गिरजाघरों और उपदेश-मंचों से मार भगाया। जब कानून की स्थापना करने के लिए राष्ट्रीय रक्षक वहाँ भेजे गये तो वे हथियार लेकर उन पर भी टूट पड़े और इस प्रकार गृह-युद्ध आरम्भ हो गया।

लुई १६ वें के विरुद्ध बढ़ता हुआ अविश्वास

वाँदे में विद्रोह

सभा ने विद्रोही पादरियों के विरुद्ध तत्काल ही एक आज्ञप्ति निकाल दी जिससे स्थिति और भी अधिक बिगड़ गई। उनसे कहा गया कि एक सप्ताह के भीतर वे संविधान के प्रति शपथ ग्रहण करलें। यदि उन्होंने इन्कार किया तो उन्हें संदेहास्पद समझा जायगा, उनकी पेंशनें जब्त करली जाएँगी और सरकार उन पर कड़ी निगरानी और शत्रुतापूर्ण नियन्त्रण रखेगी। लुई १६ वें ने संविधान द्वारा प्राप्त अपने विशेषाधिकार का विधिवत् प्रयोग करते हुए इस आज्ञप्ति को रद्द कर दिया। इसके बाद भी राजा ने कई बार अपने निषेधाधिकार का प्रयोग किया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि जनता उससे क्रुद्ध हो गई और देश पर उसका जो कुछ भी प्रभाव और अधिकार था वह भी शिथिल हो गया। अच्छा होता यदि लुई को निषेध का अधिकार कभी न दिया गया होता, क्योंकि जब-जब उसने इस अधिकार का प्रयोग किया, तब-तब सभा ने उसका विरोध किया और परिणामस्वरूप दलगत विद्वेष बढ़ता गया।

विद्रोही पादरियों के विरुद्ध आज्ञप्ति

लुई १६ वें द्वारा इस आज्ञप्ति का निषेध

अन्य आज्ञप्तियों का सम्बन्ध जिनको उसने रद्द किया उन राजकुमारों तथा सामन्तों से था जो फांस छोड़कर चले गये थे। उनके देश से भागने के दो मुख्य कारण थे। कुछ तो यह समझते थे कि हमारा जीवन यहाँ सुरक्षित नहीं है। किन्तु कुछ ऐसे भी थे जिनका विचार था कि विदेशों में जाकर हम वहाँ के शासकों को अपने पक्ष में कर लेंगे और फ्रांस के मामलों में उनका हस्तक्षेप करवाकर पुरातन व्यवस्था की पुनः स्थापना करने में सफल होंगे। उनका यह विचार आग से खिलवाड़ करने से कम न था, क्योंकि फांस पर इसका एकदम उल्टा ही प्रभाव हो सकता था। इस बात का डर था कि जनता की भावनाएँ उत्तेजित हो जावें, वह अपना धीरज खो बैठे और राजतन्त्र के लिए और भी बड़ा संकट खड़ा हो। देश से भागने वालों में से अधिकतर विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के लोग थे और उन्होंने बास्तींय के पतन के दूसरे दिन से ही भागना आरम्भ कर दिया था। लुई १६ वें के छोटे भाई आर्त्वा के काउन्ट ने १५ जुलाई, १७८९ को देश छोड़ दिया था।

राजतन्त्र के समर्थकों का पलायन

१७९० की उस आज्ञप्ति के बाद, जिसके द्वारा सामन्तों की सब उपाधियाँ हटा दी गई थीं, देश छोड़ने वालों की संख्या बढ़ने लगी क्योंकि इस आज्ञप्ति से सामन्तों के अहंकार को गहरी ठेस पहुँची थी। १७९१ में जब राजा भागकर वरेन पहुँचा और बाद में जब उसको अपने पद से अस्थायी रूप से हटा दिया गया तो और भी भारी संख्या में लोग देश छोड़ गए। इसके बाद उन पादरियों के पलायन से, जिनकी भक्ति कैथोलिक चर्च के प्रति अडिग रही और जिन्होंने व्यवहारिक संविधान को स्वीकार नहीं किया, इस संख्या में और भी अधिक वृद्धि होगई।

अनुमान लगाया गया है कि क्रान्ति के दौरान में इस प्रकार लगभग डेढ़ लाख व्यक्ति फ्रांस छोड़कर चले गए। उनमें से बहुत से पूर्वी सीमा पर स्थित छोटी-छोटी जर्मन रियासतों में जाकर बस गये और वहाँ पर उन्होंने लगभग २० हजार आदमियों की सेना तैयार करली। इन लोगों का नाम मात्र का नेता लुई सोलहवें का भाई प्रौवस का काउण्ट था। उसने घोषणा की कि चूँकि लुई सोलहवाँ बन्दी बना लिया गया है, इस लिए में फ्रांस के सिंहासन का अधिकारी हूँ। भगोड़ों ने

भगोड़ों के देशद्रोहपूर्ण कुचक्र

जर्मनी तथा यूरोप के अन्य दरबारों में निरन्तर कुचक्र एवं षडयंत्र चलाए। विशेषकर उन्होंने आस्ट्रिया और प्रुशिया के महत्त्वपूर्ण सैनिक राज्यों के शासकों को भड़काया और उन्हें फ्रांस पर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित किया। उन्होंने सुझाया कि भावना तथा व्यावहारिक बुद्धिमत्ता दोनों की ही दृष्टि से एक राजा के भाग्य का अन्य सभी राजाओं के भाग्य से गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि यदि फ्रान्स में यह भयंकर क्रान्ति सफल होगई तो फिर दूसरे राजाओं की बारी आ जावेगी और उन्हें भी अपनी विद्रोही प्रजा के हाथों ऐसा ही बर्ताव भुगतना पड़ेगा। १७९१ में भगोड़े आस्ट्रिया और प्रुशिया के राजाओं को फुसलाने में सफल हुए। परिणामस्वरूप उन नरेशों ने "पिलनित्स की घोषणा" करदी जिसमें कहा गया कि लुई १६वें का पक्ष यूरोप के सब शासकों का पक्ष है। इस

पिलनित्स की घोषणा (अगस्त, २७ १७९१)

घोषणा में शर्त रक्खी गई थी कि यदि सभी देश सहयोग देंगे को इस विषय में कोई क्रियात्मक कदम उठाया जावेगा, इसलिए घोषणा का कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ा। वह झाँसा मात्र सिद्ध हुई। युद्ध प्रारम्भ करने के लिए वह पर्याप्त न थी। किन्तु

इसका एक परिणाम अवश्य हुआ। फ्रांस में क्रोधाग्नि भड़कने लगी और राजा के प्रति जनता का सन्देह और भी गहरा होगया। विधान सभा ने दो आज्ञप्तियाँ जारी कीं। एक में कहा गया कि यदि प्रौवंस का काउण्ट दो महीने के अन्दर फ्रांस नहीं लौट आता तो वह सदैव के लिए सिंहासस पर बैठने के अधिकार से वंचित कर दिया जावेगा। और दूसरी का यह आशय था कि भगोड़े लोग १ जनवरी १७९२ तक अपनी सेनाएँ भंग नहीं कर देते तो उनकी सारी सम्पत्ति जप्त करली जावेगी और देशद्रोह के अपराध में उनके साथ शत्रुओं जैसा व्यवहार किया जावेगा। यह भी कहा गया कि फ्रांस के अन्य राजकुमार तथा राजकीय अधिकारी जो देश छोड़कर चले गये हैं यदि इस तारीख तक वापस नही लौटते हैं तो उनके सम्वन्ध में भी यह समझा जायगा कि वे राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं और इसलिये वे मृत्य-दण्ड के भागी समझे जायँगे।

भगोड़ों के विरुद्ध आज्ञप्ति

लुई सोलहवें ने इन आज्ञप्तियों को रद्द कर दिया। किन्तु उसने अपने दोनों भाइयों को फ्रान्स लौटने का आदेश दिया, लेकिन उन्होंने राजा के प्रति "कोमल" भावनाओं के कारण इस आदेश को मानने से इन्कार किया प्रौवंस के काउण्ट में धृष्टता विशेष गुण था। सभा ने उसे वापिस आने के लिए जो निमन्त्रण भेजा उसके उत्तर में उसने अपसी इस धृष्टता का खुलकर परिचय दिया। इससे देश में फैली हुई असन्तोष और क्रोध की ज्वाला शान्त नहीं हुई बलिक उसने उठती हुई लपटों में ईंधन का काम किया। जो विनाश की अग्नि से खिलवाड़ करते हैं उनके लिए ऐसा आचरण शायद स्वाभाविक ही होता है, किन्तु बुद्धिमान लोग इस प्रकार के व्यवहार से बचने का ही प्रयत्न करते हैं।

लुई १६वें द्वारा इन आज्ञप्तियों का रद्द किया जाना

युद्ध के बादल तेजी से घुमड़ने लगे और उन्होंने भयंकर रूप धारण कर लिया। क्रान्ति के प्रारम्भ में फ्रांस तथा यूरोप के बीच संघर्ष की तनिक भी सम्भावना न थी। फ्रांस शान्ति की नीति पर चलने का प्रयत्न कर रहा था और संघर्ष के कोई विशेष कारण भी न थे। इसके अतिरिक्त दूसरे देशों के शासक फ्रान्स के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए बिल्कुल उत्सुक न थे बल्कि उनकी इच्छा थी कि फ्रांस इसी प्रकार पूर्ण रूप से अपनी घरेलू समस्याओं में उलझा रहे जिससे कि उन्हें षड्यन्त्र रचने का खुला मैदान मिल सके। वे पोलैण्ड का अन्तिम बँटवारा करने की तैयारियाँ कर रहे थे और चाहते थे कि घोर अन्याय के इस काम में और कोई हस्तक्षेप न करे। किन्तु धीरे-धीरे वे उन सिद्धान्तों से उत्पन्न खतरे को समझने लगे जिनकी घोषणा फ्रांसीसियों ने की थी—लोक-प्रभुत्व तथा नागरिकों की समानता के सिद्धान्त। स्वयं उनकी प्रजा में विशेषकर किसानों और मध्यम वर्ग के लोगों में फ्रांसीसियों की सफलताओं से भारी उत्साह और उमंग फैल गई थी। यदि इन सिद्धान्तों से अनुप्राणित होकर लोग इसी प्रकार के कार्य करने लगे तो केवल लुई सोलहवें के निरंकुश राजतन्त्र को धक्का न लगेगा।

युद्ध के घुमड़ते हुए बादल

जिस प्रकार पड़ौसी देशों के शासक लोग क्रान्तिकारी फ्रांस के सिद्धान्तों के सम्वन्ध में उदासीनता का भाव छोड़कर सजग होने लग गए थे उसी प्रकार स्वयं फ्रांस के भीतर एक नया परिवर्तन दिखाई देने लगा था। वहाँ के कुछ दलों ने कहना

आरम्भ कर दिया कि हम पड़ौसी राष्ट्रों की जनता को भी अपनी ही भाँति सुखी और सम्पन्न देखना चाहते हैं। इसका सीधा अर्थ यह था कि वे अब फ्रांस के बाहर अपने विचारों और आदर्शों के प्रचार की बात सोचने लगे थे। वे यह भी कहने लगे कि अत्याचारी शासकों के विरुद्ध युद्ध करने और दासता में पड़े हुए राष्ट्रों को मुक्त करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार दोनों ही ओर लड़ाकू भावनाएँ जोर पकड़ रही थीं। इस प्रकार की मनःस्थिति में युद्ध की इच्छा रखने वाले लोगों को उसका बहाना ढूँढने में कठिनाई नहीं होती। इसके अतिरिक्त दोनों ही पक्षों को निश्चित शिकायतें थीं।

फ्रांस और जर्मन साम्राज्य के बीच तनाव के कारण

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, भगोड़े राज-भक्तों ने पूर्वी सीमाओं पर जर्मन राजाओं के प्रोत्साहन से अथवा उनकी अनुमति सेनाएँ एकत्र करली थीं। इस चीज से फ्रांस में घोर अप्रसन्नता फैली हुई थी दूसरी ओर जर्मन साम्राज्य को भी फ्रांस के खिलाफ सीधी शिकायत थी। १७ वीं शताब्दी में जब एलसास का प्रान्त फ्रांस में सम्मिलित किया गया था उस समय अनेक जर्मन राजाओं का वहाँ की जमीनों पर अधिकार था और वे वास्तव में अपनी-अपनी भूमि के सामन्त थे। उसके बाद वे जर्मन साम्राज्य के सामन्त बने रहे और उनके भौतिक अधिकार संधियों द्वारा सुरक्षित कर दिए गये थे। किन्तु साथ ही साथ वे फ्रांस के राजा के भी सामान्त थे। उसका प्रभुत्व स्वीकार करते, और सामन्ती कर पहले की भाँति वसूल करते। जब ४ अगस्त, १७८९ को फ्रांसीसियों ने सामन्ती करों को हटा दिया तो उन्होंने उस समय घोषणा की कि यह आज्ञप्तियों ऐलसास में भी उसी प्रकार लागू होंगी जिस प्रकार कि शेष फ्रांस में। जर्मन राजाओं ने इसका विरोध किया और कहा कि ये आज्ञप्तियाँ वेस्टफेलिया की

४ अगस्त १७८९ को आज्ञप्तियों के सम्बन्ध में विवाद

संधियों के विरुद्ध हैं। जर्मन साम्राज्य की संसद ने उनका पक्ष-पोषण किया फ्रांस की संविधान सभा ने अपने कानूनों को कायम रखने का निश्चय किया किन्तु यह भी कहा कि उनमें हम थोड़ा बहुत हेर फेर कर सकते हैं। किन्तु जर्मन संसद ने यह स्वीकार नहीं किया और माँग की कि इन घृणित कानूनों को तुरन्त रद्द कर दिया जाय और एलसास में सामन्ती कर पुनः लगा दिये जायें यह विवाद खतरे से परिपूर्ण था क्योंकि उस समय फ्रांस तथा अन्य देशों में अनेक ऐसे लोग थे जो लड़ाई के इच्छुक थे और उसको भड़काने के लिए हर साधन का प्रयोग करने के लिये तैयार थे। भयंकर तूफान घिर रहा था जिसने आगे चलकर एक चौथाई शताब्दी तक यूरोप को बुरी तरह झकझोरा और सत्यानाश का ताण्डव खड़ा कर दिया।

संविधान सभा ने अपने अन्तिम समय में आत्म-त्याग का जो अध्यादेश जारी किया था उसके कारण विधान सभा में अधिकतर ऐसे व्यक्ति आ गये थे जिन्हें राज-नीति का कुछ अनुभव न था। फिर भी संविधान ने इस सभा को इतनी शक्तियाँ देदी थीं कि उनके मुकाबले में राजा की शक्तियाँ नहीं के बराबर थीं। तथापि सभा को राजा के प्रति संदेह था क्योंकि उसका मन्त्रि-परिषद पर; जो असली कार्यपालिका थी और वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करती, कोई नियंत्रण न था।

इनके अतिरिक्त फ्रांस की घरेलू राजनीति में कुछ नए तत्त्व उठ खड़े हुए

जिनके सम्बन्ध में संसार को आगामी महीनों में बहुत कुछ सुनने को मिला। कुछ राजनीतिक गोष्ठियाँ उठ खड़ी हुई और वे सभा तक से प्रतिस्पर्धा करने लगीं। इनमें जैकोबिन और कार्देलिये क्लब सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। इनका जन्म क्रांति के आरम्भ में ही हो चुका था। किन्तु विधान सभा तथा उसके उत्तराधिकारी के समय में उन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया।

राजनीतिक गोष्ठियों का उदय

जैकोविन क्लब आगे चलकर बहुत वदनाम हुआ। उसमें सभा के अनेक सदस्य तथा बाहर के लोग, विशेपकर पेरिस के नागरिक, सम्मिलित थे। एक राजनीतिक गोष्ठी के रूप में इसके सदस्य निरन्तर अपनी बैठकें चलाते और सभा के सामने जो प्रश्न आते उन पर बड़े उत्साह और स्वतन्त्रता के साथ विवाद करते। इस समय इस क्लब का सबसे प्रभावशाली नेता रोब्सपियेर था। उग्र जनवादी होते हुए भी वह हृदय से राजतन्त्र का समर्थक था और उस छोटे से गणतान्त्रिक दल का, जो राजा के पलायन के समय उठ खड़ा हुआ था, कट्टर शत्रु था। जैसे जैसे क्रांति की प्रगति होती गई और उसके अपेक्षाकृत अनुदारवादी सदस्य अलग होते गये अथवा निकाल दिए गए वैसे वैसे यह क्लब अधिक उग्र और शक्तिशाली होता गया। दो हजार से अधिक नगरों और गाँवों में जैकोविन क्लबों की स्थापना हुई। वे सब पेरिस के केन्द्रीय क्लब से सम्बद्ध थे और सारे देश में उनका जाल बिछ गया था। पेरिस से उनको आदेश मिलते थे, और उन्होंने सामूहिक रूप से काम करने की विशेष योग्यता विकसित करली। इस ऐच्छिक संगठन का अनुशासन असाधारण कोटि का था जिसके कारण व महान् निर्णायक कार्य कर सकता था। धीरे-धीरे उसने राज्य के भीतर राज्य का रूप धारण कर लिया। बल्कि कुछ बातों में उसकी शक्ति राज्य से भी अधिक थी, इसलिए कि राज्य विकेन्द्रीयकृत एवं प्रभावहीन था जबकि इस संस्था का संगठन उच्चकोटि के केन्द्रीयकरण पर कायम था और काम करने में इसकी गति बहुत ही तीव्र थी। धीरे-धीरे जैकोबिन क्लब विधान सभा का प्रतिद्वन्द्वी बन गया और समय समय पर वह उस पर अपना भारी प्रभाव डालने लगा, फिर भी सभा वैध रूप से फ्रांस की निर्मित सरकार थी।

जैकोविन क्लब

कोर्देलिये क्लब इससे भी अधिक उग्र था। उसके सदस्य समाज की निम्न श्रेणियों के लोग थे। वह अधिक लोकतान्त्रिक था। राजा के पलायन के समय से वह गणतन्त्रीय विचारों का अड्डा बन गया था। उसका मुख्य प्रभाव पेरिस के मजदूर वर्ग पर था। मजदूर लोग क्रान्ति के बड़े उत्साही समर्थक थे, उसको आगे ले जाने के इच्छुक थे। और जिस किसी पर भी क्रान्ति के खुले अथवा गुप्त शत्रु होने का आरोप लगाया जाता उसके खिलाफ बड़ी सरलता से भड़क उठते। ये लोग उद्दण्ड और अशिष्ट थे किन्तु उनकी क्रियाशीलता अद्भुत थी। वह उस धातु के बने थे जिससे भीड़ें बहुधा बनी होती हैं। उनका नेता दांतों नाम का एक वकील था। उसके व्याख्यान एक दम सीधे और प्रभावकारी होते। वास्तव में यह अत्यधिक योग्य, चतुर और निर्मम नेता था। कोर्देलिये क्लब केवल पेरिस तक सीमित था। जैकोविन क्लब की तरह उसकी शाखाएँ सब विभागों में न फैली थीं। जैकोविन क्लब के सदस्यों की भाँति कोर्देलिये के सदस्य भी सरकार पर शारीरिक दवाव डालने के अभ्यस्त हो

कोर्देलिये क्लब

गए थे। वे राष्ट्र के प्रतिनिधियों, राजा और सभा पर अपनी इच्छा लादने का प्रयत्न किया करते।

क्लब तथा विधान सभा

इस प्रकार ये संस्थाएँ जनता को प्रभावित करने के शक्तिशाली साधन थीं। वे सभा का समर्थन करतीं जब तक कि उसका आचरण उनकी इच्छाओं के अनुकूल होता, किन्तु उनका आत्म-विश्वास और इच्छाशक्ति इतनी प्रबल थी कि वे समय समय पर उसका विरोध करने से न चूँकतीं और उस पर अपना प्रभाव भी जमाने का प्रयत्न करती। दोनों का ही क्रान्ति में उत्साहपूर्वक विश्वास था। क्रान्ति के शत्रुओं को ताड़ लेने में वे दोनों बड़ी दक्ष थीं और उनको ढूँढ़ निकालने के लिए उसकी आँखें सदैव चौकन्नी रहती। उस समय तक जो सुधार हो चुके थे उनको मिटाने का जो लोग प्रयत्न करते उनको कुचलने के लिए वे कुछ भी करने के लिए तैयार रहतीं। दोनों को ही राजा के प्रति सन्देह था।

जनता में उग्र प्रवृत्ति की वृद्धि

पेरिस की जनता में भारी उत्तेजना थी इसलिए उनको भड़काना इन संस्थाओं के लिए बहुत सरल था। जैसे-जैसे महीने वीतते गए वैसे ही राजधानी के लोगों की उत्तेजना बढ़ती गई और उनका पारा चढ़ता गया। उनका स्वाधीनता-प्रेम धर्मान्धता का रूप धारण कर चुका था और उसको वे आकर्षक और कुत्सित तरीकों से व्यक्त करते। वे अपने को सच्चा "देश भक्त" समझते और यही कहकर अपने को पुकारते। अपने कम उग्र विचारों के साथी नागरिकों के प्रति उन्हें गहरी ईर्षा और सन्देह था जैसा कि सब मातन्ध लोगों को हुआ करता है। स्वाधीनता की एक गहरी मादकतापूर्ण शराब उनके मस्तिष्क पर खतरनाक प्रभाव डाल रही थी। वे सर्वत्र और सब अवसरों पर क्रान्तिकारी रंगों का प्रदर्शन करते और अपनी टोपियों में तिरंगे फीते लगाते। उन्होंने लाल टोपी को एक विशेष चिन्ह के रूप में अपना लिया और उसको वे सदैव पहनते। यह टोपी फ्रीजियावालों की उस पुरानी टोपी से मिलती थी जिसे वहाँ के दासों ने अपनी मुक्ति के बाद पहनना आरम्भ कर दिया था। उस काल की भाँति इस समय भी वह स्वाधीनता का प्रतीक बन गई थी।

सांकुलोत[1]

इस काल में हमें एक और भी चीज देखने को मिलती है। जनता की नव-जात लोकतन्त्र-भक्ति को अधिक गहरा और स्थायी बनाने की दृष्टि से सर्वत्र सार्व-जनिक आनन्द और समारोह के साथ स्वतन्त्रता-स्तम्भ अथवा स्वतन्त्रता-वृक्ष लगाए गए। यहाँ तक कि पोशाक में भी नए उग्रवादी फैशन और प्रतीक चल पड़े। सांकुलोत की पोशाक देश भर में फैशन बन गई। इन लोगों ने पुरानी फैशन की घुटनों तक आने वाली बिरजिस छोड़कर लम्बे पाजामें पहनना शुरू कर दिया। ये पाजामें अब तक मजदूर पहनते थे, इसलिए वे सामाजिक हीनता का चिन्ह माने जाते थे।

वातावरण की यह नई विशेषता थी और इस प्रकार के लोग थे जो कि घटना-चक्र के आस पास एकत्र हो रहे थे। सभा जो फ्रांस की वैध सरकार थी अपने

---

1. फ्रांस की क्रान्ति के प्रारम्भ में दरबारी दल ने पेरिस के लोकतांत्रिक दल का यह घृणा सूचक नाम रख दिया था।

तूफानी जीवन काल के पूरे वर्ष भर इन लोगों के प्रभाव में रही। **मानव अधिकारों की घोषणा** में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था उनसे इन लोगों के हृदयों में उत्साह, आशा एवं प्रसन्नता की एक नई लहर दौड़ गई थी। घोषणा का सारांश था कि प्रभु-शक्ति जनता में निवास करती है, और राजा के व्यक्तित्व में किसी प्रकार का ईश्वरीय अंश नहीं है। वह तो एक झूठा ढकोसला है जिसे बहुत पहले भोली जनता पर लाद दिया गया था। चूंकि अब फ्रांस इस झूठे जादू के प्रभाव से मुक्त हो गया है और अज्ञान का अंधकार हट गया है इसलिए अब इन नए सिद्धान्तों पर निर्भयता पूर्वक आचरण करना चाहिए।

विधान सभा की बढ़ती हुई उग्र नीति

विधान सभा के कार्यों पर इन सब चीजों की गहरी प्रतिक्रिया हुई। सभा का एक पहला काम यह था कि उसने राजा के लिए "श्रीमान्", "श्री महाराज" आदि जो शब्द प्रयुक्त होते थे उनको हटा दिया। एक और भी प्रमाण था जिससे स्पष्ट होता था कि जनता के प्रभुत्व का सिद्धान्त एक कोरा रंगीन चित्र, एक निस्सार कल्पना की वस्तु न था बल्कि दैनिक राजनीतिक जीवन का एक निश्चित सिद्धान्त बन गया था। जनता जब कभी सभा से असन्तुष्ट होती तो वह उसके कक्षों में आकर जमा हो जाती, उसके कामों के सम्बन्ध में अपनी अस्वीकृति व्यक्त करती और अपनी इच्छाओं को स्पष्ट भाषा में उसके सामने प्रकट करती। और चूंकि सभा में जन प्रभुत्व के सिद्धान्त में विश्वास करती थी इसलिए वह इस आचरण को बुरा न समझती और कभी यह जताने का साहस न करती कि चूंकि हम फ्रांस के प्रतिनिधि हैं, कानून और व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं इसलिए हमारे अधिकार पवित्र और अलंघनीय हैं।

शक्तिशाली और सन्देह-मूलक लोकतन्त्र

इस प्रकार समय के लक्षण उन लोगों के लिए शुभ न थे जो क्रान्ति के कार्य को समाप्त करके राजा और सामन्तों को उनके पुराने पदों पर पुनः आसीन करना चाहते थे। यदि वे इस बात का प्रयत्न करते तो जनता उन पर टूट पड़ने के लिए तैयार बैठी थी। उन्हें लोकतन्त्र के ऐसे उद्दण्ड तथा क्रियाशील समर्थकों से संघर्ष करना पड़ता जिसके हृदय में पुरातन व्यवस्था के लिए कोई श्रद्धा न रह गई थी, पुरानी परम्पराओं के सम्बन्ध में जिनका धीरज टूट चुका था और जो कष्ट सहने के लिए तैयार थे और उससे भी अधिक उन लोगों को कष्ट और यातना देने को तैयार थे जो क्रान्ति को हानि पहुँचने का यत्न करते। किसी प्रकार का देशद्रोह का सन्देह होते ही जनता में विस्फोट होने का डर था। फिर भी राजा और रानी ने इन महत्त्वपूर्ण क्षणों का प्रयोग विदेशी शासकों से मिल कर षड्यन्त्र रचने में किया। वे उनकी सहायता से सिंहासन की खोई हुई शक्तियों को पुनः प्राप्त करना चाहते थे। इसी प्रकार कौवलैन्त्स और वर्म्स में बसने वाले भगोड़े सामन्तों ने प्रतिक्रान्तिकारी कुचक्रों और युद्ध की तैयारियों में यह समय लगाया। उनके हितों की दृष्टि के सबसे अच्छी नीति यह थी कि वे खुले दिल से और स्पष्ट रूप से नई व्यवस्था को स्वीकार कर लेते। किन्तु यह एक ऐसी चीज थी जिसके समझने के लिए वे बुद्धि और स्वभाव दोनों की ही दृष्टि से अयोग्य थे।

भगोड़ों की आग से खिलवाड़

यह बात इसलिए और भी खतरनाक थी कि उनकी भाँति उनके शत्रु भी युद्ध की आग से खिलवाड़ करने के लिए तैयार बैठे थे।

विधान सभा में एक गुट था जो जिरोंदीस्त के नाम से प्रसिद्ध था। उसका यह नाम इसलिए पड़ गया था कि उसके कई नेता, वेन्यिओं, इस्नार, ब्यूजो, जिरोंद आदि दक्षिणी पश्चिमी फ्रांस के जिरोंद नाम के प्रदेश के रहने वाले थे। कवि लैमरताइन ने अपनी क्रान्ति के इतिहास की पुस्तकों में जिरोंदीस्त लोगों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे पवित्र और उच्च विचारों के देशभक्त थे, परन्तु दुर्भाग्य के इस धूर्त दुनियाँ के भँवर में फँस गए। लैमरताइन के इस वर्णन ने उन्हें अमर कर दिया है और तब से उनके सम्बन्ध में लोगों के हृदय में भावुक काव्यात्मक धारणायें घर कर गई हैं, किन्तु इनका यह चित्रण सही नहीं है। वे ऐसे निर्लिप्त शहीद न थे जिन्होंने सुशासन के लिये अपना बलिदान किया हो। वे ऐसे राजनीतिज्ञों का एक गुट थे जिनकी महत्त्वाकाक्षायें उनके विवेक की तुलना में कहीं अधिक बलवती थीं। अपनी इस दुर्बलता का उन्हें उचित मूल्य चुकाना पड़ा जैसा कि राजनीति में बहुधा हुआ करता है। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने जीवन के रगमंच से साहस और वीरता के साथ प्रस्थान किया। किन्तु इससे भी कठिन काम है बुद्धिमानी से और संसार के हित के लिए जीवन बिताना। इस कला से वे अनभिज्ञ थे। वे अधिकतर युवक थे और उनकी नेता भी एक रोमांटिक स्वभाव की युवती थी। इस दल का नेतृत्व मादाम रोलाँ के हाथों में था। उसे भी इतिहास के रंगमंच पर कुछ समय तक अभिनय करने का अवसर मिला; किन्तु क्रान्ति की परवर्ती अवस्था के शोरगुल में उनका नाम डूब गया। संसार के सम्बन्ध में जिरोदिस्तों का दृष्टिकोण बहुत कुछ किताबी था। प्लूटार्क की रचनाओं का उन्होंने गहन अध्ययन किया था और उससे उन्हें भारी प्रेरणा मिली थी, और इसलिए पुराने यूनानियों और रोमन लोगों के लिये उनके हृदय में असीम प्रशंसा थी। वे गणतन्त्र के समर्थक थे क्योंकि प्राचीन युग के वे तेजस्वी योग भी गणतन्त्रवादी थे; साथ ही साथ उनकी यह भी कल्पना थी कि गणराज्य में उन्हें चमकने और संसार को आलोकित करने का अच्छा अवसर मिलेगा। यूनानी और रोमन लोगों के चरित्र और कार्यों ने उनकी आँखें चकाचौंध करदी थीं और अनुकरण की तीव्र भावना उनके हृदय में प्रज्ज्वलित होने लगी। पाठक को यह बात स्पष्ट रूप से ध्यान में रखनी चाहिए कि जिरोंदिस्त और जैकोबिन दो अलग दल थे। आगे चल कर वे वास्तव में एक दूसरे के कट्टर प्रतिद्वन्द्वी और शत्रु हुए।

जिरोंदीस्त

इस प्रकार के पात्र थे जिन्होंने उस समय के धुँआधार नाटक में अपने-अपने भिन्न ढँग के पार्ट अदा किए। रंगमंच तैयार था। यूरोप की *डगमगाती हुई सम्पूर्ण* राज्यव्यवस्था ने पृष्ठभूमि का कार्य किया। फ्रांस द्वारा आस्ट्रिया के शासक और मारी आन्त्वानेत के भतीजे फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के साथ नाटक का सूत्रपात हुआ। इस युद्ध की लपेट में धीरे-धीरे समस्त यूरोप आ गया, बल्कि वह विश्वव्यापी सिद्ध हुआ, और लम्बे २३ वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। उसने क्रान्ति को बुरी तरह तोड़-मरोड़ डाला और उसके रूप को विकृत कर दिया। उसी के उपफल के रूप में फ्रांस में, पहले गणतन्त्र की स्थापना हुई, फिर आतंकवाद का राज्य कायम हुआ, नेपोलियन का युग आया, बोर्वों वंश का पतन और पुनः स्थापना हुई और अन्त में वटरलू की विनाशकारी घटना में उसकी परिसमाप्ति हुई।

फ्रांस द्वारा फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध युद्ध की घोषणा, अप्रैल २०, १७९२

युद्ध का आरम्भ फ्रांस ने ही किया। उसने आस्ट्रिया के सम्राट को भगोड़ों के सम्बन्ध में एक अल्टीमेटम भेजा। फ्रांसिस ने जवाब में माँग कि आल्सास में जर्मन राजाओं के सामन्ती अधिकार थे वे वापस कर दिये जायँ, और फ्रांस में उन सब चीजों को दबा दिया जाय, जिनसे दूसरे राज्यों को चिन्ता और घबराहट होती हो। २० अप्रेल, १७९२ को युद्ध की घोषणा हुई। विधान सभा के सभी दल उसके पक्ष में थे। केवल सात सदस्यों ने युद्ध के विरुद्ध वोट दिया। राजा के समर्थक लड़ाई इसलिए चाहते थे कि उसमें विजयी होकर राजा अधिक लोकप्रिय हो जायगा, और साथ ही साथ उसके अधिकार में एक शक्तिशाली सेना आ जायेगी, जिससे वह अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर सकेगा। जिरोंदिस्त और जैकोबिन दलों के लोगों ने भी युद्ध का समर्थन किया, किन्तु उनका उद्देश्य इससे बिल्कुल उल्टा था। वे समझते थे कि लड़ाई से सिद्ध हो जायेगा कि राजा देशद्रोही है और फ्रांस के शत्रुओं के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। एक बार यह बात सिद्ध हो जाने पर राजतंत्र को उखाड़ फेंकना सरल हो जायगा और गणतंत्र की स्थापना हो सकेगी। केवल रोब्सपियेर तथा थोड़े से कुछ अन्य लोगों ने इसका विरोध किया। उनका कथन था कि लड़ाई से सदैव ही शक्तिशाली और धनी लोगों को लाभ होता है, और गरीब लोगों को उसकी कीमत चुकानी पड़ती है, उनको उससे लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है, और लड़ाई से कभी भी लोकतन्त्र का हित नहीं होता। किन्तु उन लोगों की बात कौन सुनता था ? यह धारणा व्यापक रूप में फैली हुई थी कि यह युद्ध लोकतंत्र तथा निरकुशतंत्र के बीच अनिवार्य संघर्ष का परिणाम है, यह दो युगों की एक टक्कर है—अतीत और भविष्य के बीच। इनमें से एक का प्रतिनिधित्व फ्राँस कर रहा है और दूसरे का हैप्सवर्ग वंश। सारे राष्ट्र में गहरी प्रसन्नता छा गई और लोग सोचने लगे कि स्वतन्त्रता और समता के क्रान्तिकारी विचारों को, जो इतने मूल्यवान हैं और जिन्हें हमने अभी प्राप्त किया है, फ्रांस की सीमाओं के बाहर फैलाने का यह अच्छा अवसर है। इस लड़ाई में धार्मिक युद्धों जैसी कुछ विशेषताएँ थीं, वैसा ही आत्मिक उल्लास, वैसा ही कट्टर विश्वास कि ये सिद्धांत सारे ही संसार के लिये उपयोगी हैं और वैसी ही भावना कि इनका प्रचार करना आवश्यकता पड़ने पर शक्ति के द्वारा भी, हमारा परम कर्त्तव्य है।

विधान सभा के सभी दल युद्ध के पक्ष में

रोब्सपियेर द्वारा युद्ध का विरोध

इस युद्ध ने लोगों को सहसा चकित कर दिया, और क्रान्ति के इतिहास में यह एक मोड़ सिद्ध हुआ। इसके कुल परिणाम तो ऐसे थे जिनका लोगों को पूर्वाभास हो गया था, किन्तु अधिकतर ऐसे निकले जिनकी किसी ने कल्पना भी नहीं की। फ्रांसीसियों पर इसकी गहरी प्रतिक्रिया हुई और उसके समाप्त होने से पहले ही उन्हें अपनी घरेलू स्वतन्त्रता से भी बहुत कुछ हाथ धोना पड़ा; और उसने एक सैनिक निरंकुशतन्त्र को जन्म दिया जिसकी कार्यक्षमता और सुयोग्यता अपने लम्बे इतिहास में बोर्वा वंश कभी नहीं कर सका था।

युद्ध आधुनिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण मोड़

युद्ध का प्रथम और अग्रगण्य प्रभाव यह हुआ कि उससे फ्रांस के यशस्वी राजवंश का मूलोच्छेद हो गया, और राजा तथा रानी को मौत के घाट उतार दिया गया। प्रारम्भ में फ्रांसीसियों को भारी क्षति उठानी पड़ी; उन्हें बेल्जियम को, जो फ्रांसिस

प्रारम्भ में फ्रांस की पराजय

द्वितीय का था, बड़ी सरलता से जीत लेने का विश्वास था, किन्तु हुआ उसका उल्टा और उन्हें पराजय भुगतनी पड़ी । इसका एक कारण यह था कि उनकी सेना के प्राय: सभी अधिकारी या तो त्यागपत्र देकर चले गये अथवा देश छोड़कर भाग गये । परिणाम यह हुआ कि सेना का संगठन छिन्न-भिन्न हो गया । दूसरा कारण यह था कि लुई सोलहवें तथा उसकी रानी ने देशद्रोह किया और आस्ट्रिया वालों को फ्रांस की युद्ध-योजना पहले ही बतला दी । जनता को अपने राजा और रानी के विश्वासघात का पता न चल पाया, यद्यपि उन्हें संदेह अवश्य था । इस विश्वास का परिणाम गहरा पड़ा । उसी समय जबकि फ्रांसीसी सेनाओं को पीछे हटना पड़ रहा था धार्मिक झगड़ों को लेकर गृह-युद्ध की आग भड़कने लगी । इन संकटों के बीच क्रोध में आकर सभा ने दो आज्ञप्तियाँ जारी कीं । एक के अनुसार सभी विद्रोही पादरी काले पानी को भेज दिये और दूसरी के अनुसार पैरिस की रक्षा के लिये २०,००० सैनिकों की व्यवस्था की गई ।

राजा द्वारा सभा की आज्ञप्तियों का निषेध

लुई सोलहवें ने इन दोनों आज्ञप्तियों को रद्द कर दिया । उसके बाद तुरन्त ही तूफान उमड़ पड़ा । जेकोबिन लोगों ने राजा के विरुद्ध एक भारी प्रदर्शन संगठित किया । वे राजा पर दबाव डालकर उन आज्ञप्तियों पर हस्ताक्षर करवाना चाहते थे । २० जून १७९२ को मजदूरों की खचाखच भरी हुई बस्तियों में से कई हजार आदमी टोपियाँ पहने हुए, भाले बाँधे हुए और झण्डे लिये हुए जिन पर मानव अधिकार लिखे हुए थे, निकल कर शहर की गलियों में आ गये । वे सब इकट्ठे होकर सभा-भवन की ओर गये, और उसके हाल में से उन्हें जाने दिया गया ।

२० जून, १७९२ का विद्रोह

वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जिसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ था कि एक आदमी २५,०००,००० लोगों की इच्छा का विरोध नहीं कर सकता । सभा का हॉल छोड़ कर भीड़ राज महलों (तुइलेरी) की ओर बढ़ी और फाटकों को जबरदस्ती खोल कर राजा के कमरों में जा धमकी । राजा एक खिड़की के बीच की थोड़ी सी जगह में तीन घण्टे तक उनके सामने खड़ा रहा; सभा के कुछ प्रतिनिधि उसकी रक्षा करते रहे । भीड़ ने चिल्ला कर कहा, "आज्ञप्तियों पर हस्ताक्षर कर दो ।" "पादरियों का नाश हो ।" प्रदर्शनकारियों का एक नेता लैजान्द्र जो जात का कसाई था, चिल्ला कर राजा से बोला, श्रीमानजी आप देशद्रोही हैं, आपने हमें सदा ही धोखा दिया है और आज भी आप हमें धोखा दे रहे हैं । याद रखिये आपके पाप का घड़ा भर गया है ।" इन शब्दों के कारण उस कसाई का नाम इतना फैल गया कि आज भी वह विस्मृति के गर्त में नहीं डूबा है ।

लुई सोलहवें का अपनी बात पर डटे रहना

किन्तु लुई ने इस सम्बन्ध में कोई वचन नहीं दिया । इस बार तो वह कम से कम अपनी इच्छा पर दृढ़ रहा । किन्तु भीड़ में से किसी ने उसे एक टोपी दी जो उसने पहन ली और एक आदमी ने शराब का प्याला दिया, उसे भी उसने पी लिया । अन्त में भीड़ किसी प्रकार की शक्ति का प्रयोग किये बिना किन्तु फ्रांस के राजा को अत्यधिक अपमानित करके वहाँ से चली गई ।

भीड़ के इस उद्दण्ड तथा अपमानजक व्यवहार से तुरन्त ही फ्रांस में क्रोध की एक लहर दौड़ गई और ऐसा लगने लगा कि अन्त में इससे राजा को लाभ होगा

ब्रंजविक के ड्यूक की घोषणा (जुलाई ११, १७९२)

और देश में उसकी लोकप्रियता बढ़ जायगी, किन्तु शीघ्र ही कुछ ऐसी घटनायें घटी जिनसे लुई की स्थिति पहले से भी अधिक जोखिमपूर्ण हो गई। प्रशिया भी आस्ट्रिया के साथ युद्ध में सम्मिलित हो गया। संयुक्त सेनाओं के सेनापति ब्रंजविक के ड्यूक ने फ्रांस की सीमाओं में घुस कर एक घोषणा प्रकाशित की जिससे जनता के क्रोध का पारावार न रहा। इस घोषणा को वास्तव में एक भगोड़े ने लिखा था, इसलिये उसमें उस वर्ग के अनुरूप कटुता और घृणा भरी हुई थी। घोषणा में फ्रांसीसियों को आदेश दिया गया कि लुई सोलहवें को पूर्णतया स्वतन्त्र कर दो जिससे वह इच्छानुसार कार्य कर सकें। बल्कि घोषणा इससे भी एक कदम आगे बढ़ गई और उसने एक प्रकार से फ्रांस की जनता को आस्ट्रिया और प्रशिया के राजाओं की आज्ञा मानने का आदेश दिया। उसमें आगे कहा गया कि यदि राष्ट्रीय रक्षकों ने आगे बढ़ती हुई मित्र सेनाओं का विरोध किया तो उन्हें विद्रोही समझकर दण्ड दिया जायगा। अन्त में धमकी दी गई कि यदि श्रीमान राजा तथा श्रीमती रानी और राजपरिवार के साथ किसी प्रकार की हिंसा अथवा अभद्र व्यवहार किया गया और यदि उनकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध न हुआ और उन्हें पुनः स्वतन्त्र न किया गया तो मित्र-राजा ऐसा भयंकर बदला लेंगे कि लोगों को सदैव उसकी याद रहेगी अर्थात् पेरिस के नगर को पूर्णरूप से धूल में मिला दिया जायगा।

आत्म सम्मान रखने वाली जनता ऐसी धमकी का एक ही उत्तर दे सकती थी। इससे उसके स्नायुओं में अपूर्व बल का संचार हो गया और अपमान का बदला चुकाने के लिये वह ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्य करने के लिये तैयार हो गई कि सुनकर विश्वास नहीं होता। देश-भक्ति के क्रोध में सब कुछ जलकर स्वाहा हो गया।

सबसे पहला व्यक्ति जिसको इस क्रोध का शिकार होना पड़ा, लुई सोलहवाँ था। घोषणा में उसी के लिये विशेषकर चिन्ता और सहानुभूति प्रकट की गई थी।

१०, अगस्त १७९२ का विद्रोह

अब लोगों को पहले से भी अधिक गहरा सन्देह हो गया और वे समझने लगे कि राजा इन आक्रमणकारियों का गुप्त मित्र है, जिन्होंने फ्रांस में इसलिये अग्निकाण्ड और विध्वंस मचा रखा है कि यहाँ की जनता ने अपने मामलों का प्रबन्ध अपने हाथों में लेने की धृष्टता की है। १०, अगस्त १७९२ के दिन पेरिस में दूसरा विद्रोह हुआ जो पहले से भी अधिक भयंकर था। ९ बजे प्रातःकाल भीड़ ने महलों पर आक्रमण कर दिया। १० बजे राजा और उसके परिवार के सदस्य महल छोड़ कर चले गये और सभा में शरण ली। वहाँ पर उन्हें सभापति की कुर्सी के ठीक पीछे एक छोटे से कमरे में रक्खा गया और वहाँ तीस घण्टे से वे अधिक रहे। जिस समय सभा में विवाद चल रहा था, महलों की रक्षा के लिये नियुक्त सैनिक दलों तथा भीड़ के बीच भयंकर संघर्ष होता रहा। पहली गोली की आवाज सुनते ही लुई ने रक्षकों को आदेश भेजा कि गोली चलाना बन्द कर दें किन्तु जो अधिकारी यह आदेश लेकर गया उसने उसकी जब तक घोषणा नहीं की जब तक कि उसे विजय की तनिक भी आशा रही। उस दिन महलों के बचाव का भार स्विस रक्षकों पर था, इसलिये उन्हीं को भीड़ के क्रोध का शिकार बनना पड़ा। उसके पास जब तक कारतूस रहे तब तक उन्होंने महल की रक्षा की और फिर पीछे हटने का आदेश पाकर धीरे-धीरे

हटने लगे, किन्तु भीड़ ने उन्हें दबोच लिया और उनमें से ८०० को मार गिराया। भीड़ की बदले की भावना पागल-पन का रूप धारण कर चुकी थी। उसके भी सैकड़ों आदमी खेत रहे थे। घायलों को भी शरण नहीं दी गई। उस दिन ५००० से भी अधिक व्यक्ति मारे गये। भीड़ ने महलों को लूटा और आग लगा दी। नैपोलियन बोनापार्ट नाम का पीले रंग का तोपखाने का एक जवान अधिकारी जो इस समय नौकरी से बाहर था, खड़ा-खड़ा इस दृश्य को देखता रहा। इससे उसने कई सबक सीखे, जो आगे चल कर उसके लिये मूल्यवान सिद्ध हुए।

राजमहल का घेरा और लूट

१० अगस्त के कारनामों के लिये पेरिस की **क्रान्तिकारी समिति** उत्तर-दायी थी। जेकोबिन लोगों ने पहली म्यूनिस्पल सरकार को उखाड़ फेंका था और उसके स्थान पर एक नई सरकार की स्थापना कर ली थी जिस पर उनका पूर्ण नियंत्रण था। पेरिस पर अधिकार स्थापित कर लेने के बाद जेकोबिनों ने बड़ी सावधानी से १० अगस्त के विद्रोह की तैयारियाँ की थीं जिसका उद्देश्य लुई सोलहवें को अपदस्थ करना था। ब्रुंजविक ड्यूक के कार्य तो केवल बहाना थे। अब इस समय से फ्रांस की राजनीति में पेरिस का प्रमुख स्थान हो गया, यद्यपि इसका यह प्रभुत्व अल्पकालीन सिद्ध हुआ। विद्रोह के समाप्त होने पर समिति ने **विधान सभा** को अपनी अँगुली पर नचाना शुरू किया। इस उदंडतापूर्ण और नितान्त अवैध दबाव में आकर **सभा** ने प्रस्ताव पास किया कि राजा का पद अस्थायी रूप से स्थगित कर दिया जाय। इस कारण अब एक नया संविधान बनाने की आवश्यकता हुई क्योंकि १७९१ का संविधान राजतंत्रीय था। वर्तमान सभा को केवल कानून बनाने का अधिकार था। वह संविधान के आधारभूत कानूनों को नहीं बदल सकती थी, इसलिये **विधान सभा** ने संविधान पर विचार करने के लिये एक सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया, यद्यपि अभी उसकी (सभा की) आधी अवधि भी समाप्त नहीं हुई थी। **पेरिस की समिति** (पेरिस कम्यून) के आदेश से उसने इस सम्बन्ध में एक आज्ञप्ति जारी की और और एक अन्य महत्त्वपूर्ण निर्णय किया। **सम्मेलन** के चुनाव के लिये सम्पत्ति पर आधारित मताधिकार का नियम जो १७९१ के संविधान के अनुसार बनाया गया था, हटा दिया गया और सार्वभौम मताधिकार की घोषणा कर दी गई। इस प्रकार १० अगस्त १७९२ को फ्रांस में लोकतन्त्र की स्थापना हुई।

पेरिस की क्रान्तिकारी समिति

राजा का स्थगन

एक संविधान सम्मेलन का आह्वान

सार्वभौम मताधिकार की घोषणा

इस प्रकार फ्रांस की कार्यपालिका को अपदस्थ कर दिया गया। सम्मेलन की बैठक आरम्भ होने से पहले के अल्पकाल में एक अस्थायी कार्यपालिका समिति ने जिसका प्रमुख दाँतो था, कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किया। कम्यून का उस पर नियंत्रण रहा। विधान सभा ने लुई को केवल स्थगित करने का प्रस्ताव पास किया था। **क्रान्तिकारी कम्यून** ने कानून और सभा के

कम्यून द्वारा राजा का बन्दीकरण

अधिकारों की अवहेलना करते हुए राजा और रानी को वन्दी वनाकर टेम्पिल नाम के पेरिस के पुराने किले में वन्द कर दिया। अनेक अन्य व्यक्ति जिन पर सन्देह था गिरफ्तार कर लिये गये।

इस समय से लेकर आगे फ्रांस की सरकार में क्रान्तिकारी कम्यून अथवा पेरिस की नगरपालिका का अत्यन्त प्रभावशाली स्थान रहा। १० अगस्त को राजा के स्थगन तथा २० सितम्बर को सम्मेलन की बैठक के बीच के समय में देश के शाशन की वागडोर सभा के नहीं वलिक कम्यून के हाथ में रही और सम्मेलन के वाद भी उसका प्रभाव वना रहा, और कभी कभी तो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण। अगस्त, १७९३ से लेकर २७ जुलाई, १७९४ तक, जिस दिन कि रोव्सपियरे का पतन हुआ फ्रांस की राजनीति में समिति ही प्रमुख शक्ति थी। शासन की वागडोर हाथ में लेते ही कम्यून ने प्रेस की स्वतन्त्रता को जो सुधार अन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण विजय थी, समाप्त कर दिया। उसने सभा की समितियों के निर्णयों का जब चाहा उल्लंघन किया, और सर्वविदित सितम्बर हत्याकाण्ड रचा जिसके कारण क्रान्ति के नाम पर एक राक्षसी और अमिट धव्वा लग गया। कम्यून निम्न वर्गों तथा जैकोबिन दल का प्रतिनिधित्व करता था, उसके सभी नेता अत्याधिक उग्र विचारों के थे और उनमें से कुछ ऐसे साहसी लोग थे जो अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कुछ भी करने में न हिचकते है।

कम्यून द्वारा प्रेस-स्वतंत्रता का हनन

सितम्बर के हत्याकाण्ड का मुख्य कारण यह था कि ब्रुजविक के ड्यूक की अधीनता में प्रुशिया और आस्ट्रिया की सेनाओं का आगमन सुनकर पेरिस की जनता में भारी घबराहट फैल गयी थी। सैंकड़ों व्यक्ति जिन पर आक्रमणकारियों को सहायता पहुँचाने का आक्षेप लगाया गया था अथवा सन्देह किया गया था कारागार में डाल दिये गये। अन्त में समाचार मिला कि आक्रमणकारियों ने वर्दूं को घेर लिया है। वर्दूं राजधानी को जाने वाली सड़क पर अन्तिम किला था। यह निश्चत था कि यदि उसका पतन हो गया तो शत्रु को पेरिस पर अधिकार करने में कुछ ही दिन लगेंगे। कम्यून और सभा ने सैनिकों को भरती करने और उन्हें अरक्षित स्थानों को भेजने के कार्य में महान् वीरता और पराक्रम का परिचय दिया। कम्यून ने घन्टा-घरों में संकट की घोषणा की और नगर के हॉल पर एक विशाल काला झंडा फहरा दिया जिस पर लिखा हुआ था, "देश संकट में है।" जो सदस्य अधिक हिंसावाद थे वे कहने लगे कि सैनिकों को मोर्चे पर भेजने से पहले नगर के भीतर जो देशद्रोही हैं उन्हें मार्ग से हटा दिया जाय। उन्होंने कहा, "क्या हम इन ३,००० बन्दियों को पीछे छोड़कर मोर्चे पर जायेंगे जिससे कि वे भाग निकलें और हमारी स्त्रियों और बच्चों की हत्या कर दे।" इन घृणित विचारों का प्रतिपादक और कुत्सित तथा कायरतापूर्ण हत्याकाण्ड को भड़काने वाला मारा था जो उस समय के लोगों में सबसे अधिक रक्त-पिपासु सिद्ध हुआ। परिणामस्वरूप यह हुआ कि २ सितम्बर से लेकर ६ सितम्बर तक वीभत्स रक्तपात होता रहा जिसमें विद्रोह पादरी, सन्देह के शिकार व्यक्ति तथा वे लोग जिन पर सामन्तीपन का आक्षेप लगाया गया था, निर्ममतापूर्वक मारे गये, न किसी पर मुकदमा चलाया गया, व निर्दोष और अपराधी

कम्यून द्वारा सितम्बर हत्याकाण्ड का संगठन

का अथवा पुरुष और स्त्री का ख्याल किया गया। हत्या का काम व्यवस्थापूर्वक और उन लोगों द्वारा किया गया, जिन्हें **कम्यून** के कुछ सदस्यों ने वेतन देकर किराये पर भरती कर लिया था।

सभा की नीति

विधान सभा इतनी आतंकित हो गयी थी कि उसे इस घृणित कांड को बन्द कराने का सहास नहीं हुआ और यदि वह प्रयत्न भी करती तो सफल नहीं होती। इस प्रकार उस समय के भयानक दैत्यों ने १,२०० लोगों की बर्बतापूर्वक बोटी काट डाली।

सितम्बर हत्याकांड के परिणाम

इन हत्याकांडों का एक परिणाम यह हुआ कि क्रान्ति वदनाम हो गई। दूसरा फल यह निकला कि जिरोन्दिस्त और जैकोबिन दलों के बीच खूनी संघर्ष आरम्भ हो गया। जिरोन्दिस्त लोग **सितम्बर हत्याकांड** के रचियताओं को, विशेषकर उनको उकसाने वाले मारा को, दंड देना चाहते थे। इसके विपरीत जैकोविन लोगों ने या तो उनका समर्थन किया अथवा इस विषय में उदासीनता अपनाली और कहा कि फ्रांस के सामने और वहुत-से महत्त्वपूर्ण काम हैं.अतः उसे उन लोगों की हत्या का, जो कि आखिकरकार सामन्त वर्ग के थे, वदला लेने में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए। **सम्मेलन** (कन्वेंशन) का चुनाव **सितम्बर हत्याकण्ड** के भयावह वातावरण में हुआ था। सितम्बर २०,१७९२ को उसकी वैठक प्रारम्भ हुई। **सम्मेलन** के प्रारम्भिक महीने जिरोंदिस्त और जैंकोविन दलों के पारस्परिक झगड़ों में ही वीत गये। **सम्मेलन** की पहली वैठक के दिन अर्थात् सितम्वर २० को ही प्रशिया की सेना को फ्रांसीसियों ने वीमा के स्थान पर रोक दिया। वह फिर कभी आगे न वढ़ सकी। तात्कालिक संकट टल गया। तनाव कुछ कम हुआ।

अध्याय ६

कन्वेंशन

तीसरी क्रांतिकारी सभा **राष्ट्रीय कन्वेंशन** थी जिसने २० सितम्बर, १७९२ से २६ अक्तूबर, १७९५ तक, तीन वर्ष कार्य किया। लुई १६वें को स्थगित करने के बाद एक नया संविधान बनाने की आवश्यकता पड़ी। इसी का प्रारूप तैयार करने के लिए इसे बुलाया गया था। राजतन्त्र को समाप्त करना इसका पहला काम था। अपनी तीन वर्ष की अवधि में उसने दो विभिन्न संविधान तैयार किये जिनमें से एक कभी भी क्रियान्वित नहीं किया गया, उसने एक गणराज्य की स्थापना की, देश के सामने उस ससय जो भयंकर समस्याएँ थीं उनका सामना करने के लिए उसने एक स्थायी सरकार का संगठन किया, उसने देश को छिन्न-भिन्न होने से बचाया तथा उसकी स्वाधीनता और अखण्डता को कायम रखा। और अन्त में उसने योरोपीय शक्तियों के एक विशाल संघ को निर्णायक रूप से परास्त किया। किन्तु इन महान सफलताओं को प्राप्त करने के लिये उसने अत्याचार और निर्दयता का एक ऐसा ताँडव रचा जिससे गणतन्त्र की बड़ी बदनामी हुई और असंख्य लोग क्रान्ति से घृणा करने लगे।

कन्वेंशन की सफलताएँ

२१ सितम्बर १७९२ की **कन्वेंशन** ने सर्व-सम्मति से पास किया कि "फ्रांस में राजतन्त्र समाप्त किया जाता है।" दूसरे दिन उसने पास किया कि आज से सभी सरकारी प्रलेखों पर पुराने सन् के स्थान पर फ्रांसीसी गणराज्य का प्रथम वर्ष लिखा जाय। इस प्रकार बिना किसी दिखावे और धूमधाम के गणतन्त्र का उदय हुआ। रोब्सपियेर के शब्दों में वह चुपचाप झगड़ालू गुटों के बीच में आकर जम गया। औपचारिक रूप से गणतन्त्र की घोषणा नहीं की गई, केवल परोक्ष रूप में उसका उल्लेख किया गया। जैसाकि ओलार ने कहा है, कन्वेंशन के हाव-भाव से ऐसा लगता था कि "वह राष्ट्र से कह रहा है कि इससे भिन्न और कुछ करने की सम्भावना ही नहीं है।" आगे चलकर अनेक वीर हुए जिन्होंने गणतन्त्र की रक्षा की, अनेक लोग उसके शिकार बने और कितने

फ्रांस में गणतन्त्र की घोषणा सितम्बर २२, १७९२

ही व्यक्ति उसके नाम पर शहीद हुए, किन्तु पहले पहल उसका निर्माण केवल इस लिए हुआ कि लोगों को और कोई मार्ग ही न दिखाई दिया। उस समय फ्रांस के पास और कोई चारा न था : उस परिस्थिति में अनिवार्य समझ कर उसे स्वीकार कर लिया गया। तुरन्त ही नया संविधान बनाने के लिए एक समिति नियुक्त की गई, किन्तु समिति का काम बहुत समय तक स्थगित रहा क्योंकि इसी बीच में जिरोंदीस्त और जैकोबिन दलों के बीच भयंकर संघर्ष आरम्भ हो गया जिससे कन्वेंशन का ध्यान बँट गया।

कन्वेंशन के भीतर दलगत संघर्ष

जैकोबिन दल **पर्वत** के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इसके सदस्य ऊँची उठी हुई सीटों पर बैठे। इन दोनों दलों में क्या भेद थे यह निश्चित करना सरल नहीं है। वास्तव में वे दोनों शक्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे। किन्तु दोनों ही पूर्ण रूप से गणतन्त्र के भक्त थे। इन दोनों गुटों के बीच सदस्यों का बड़ा समूह था जो कभी इस ओर झुक जाते और कभी उस ओर। और उन्हीं के वोटों से पक्षों की हारजीत का निर्णय होता। उनकी स्थिति केन्द्रीय थी और सभा-भवन में उनका जो स्थान था उसके कारण वे **मैदान** अथवा **दलदल** के नाम से प्रसिद्ध हुये।

जिरोंदीस्त

देश की सरकार में पेरिस का क्या भाग रहे, इस विषय को लेकर दोनों दलों के बीच गहरा मतभेद उठ खड़ा हुआ। जिरोंदीस्त लोग विभागों (जिलों) के प्रतिनिधि थे इसलिये उनका कहना था कि चूँकि पेरिस तिरासी विभागों में से एक है इसलिए शासन-व्यवस्था में उसका प्रभाव उसी अनुपात में होना चाहिए। वे राजधानी का अधिनायकत्त्व सहने के लिये तैयार न थे। इसके विपरीत जैकोविन लोगों की शक्ति का स्रोत पेरिस था। वे पेरिस को देश का मस्तिष्क और हृदय, तथा पिछड़े हुये प्रान्तों के लिये प्रकाश का केन्द्र मानते थे; उनका विश्वास था कि वही राष्ट्र का उचित नेता है, और नियति ने उसे इसके लिए चुना है, और बाकी देश की अपेक्षा वह घटनाओं और कार्यों के महत्त्व को समझने के अधिक योग्य है, और जैसा कि दाँतों ने कहा वह, 'राष्ट्र का मुख्य प्रहरी है।" जिरोंदीस्त लोग कानूनी तरीकों और प्रक्रियाओं के अनुसार व्यवहार करने के लिये इच्छुक थे; और वे इस बात को पसन्द न करते थे और न इसमें उनका विश्वास था कि बार-बार शक्ति का सहारा लिया जाय।

जैकोविन दल

इसके विपरीत जैकोविन दल के सदस्य ऐसे सिद्धान्तवादी नहीं थे। वे उद्दण्ड, क्रियाशील और शक्तिशाली थे, और यदि कानून उनके मार्ग में खड़ा होता तो वे उसकी भी उपेक्षा करने में न हिचकते। वे यथार्थवादी थे और उनका विश्वास था कि जब और जहाँ आवश्यकता हो शक्ति का प्रयोग करना उचित है। राज्य की आवश्यकताओं पर वे सदैव बहुत बल देते थे। उनकी निगाहों में हर चीज जिससे वह आवश्यकता पूरी होती ठीक थी। दूसरे शब्दों में वे उस हर चीज को वैध मानते थे जिससे गणतन्त्र की सुरक्षा अथवा महानता को योगदान मिलता, चाहे वह कानूनी होती अथवा न होती।

किन्तु इन दोनों दलों को विभक्त करने और उनके सम्बन्धों को कटु बनाने में वैयक्तिक तत्त्वों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। जिरोंदीस्त लोग जैकोविनों के तीन

दाँतों

नेताओं, रोब्सपियेर मारा और दाँतों से घृणा करते थे। बदले में मारा और रोब्सपियेर के हृदय में जिरोंदीस्त दल के प्रति गहरी घृणा थी जो सरलता से भड़क उठती। दाँतों के चरित्र में उजड्डता और गँवारूपन अधिक था, परन्तु उसका हृदय विशाल था और वह तुच्छ ईर्ष्या से परे था और हर समय केवल देश के हित की ही बात सोचता। उसके कोई सिद्धान्त न थे, भले-बुरे का वह अधिक ख्याल नहीं करता किन्तु जो चीज व्यावहारिक और लाभदायक होती उसे वह तुरन्त ही परख लेता। वह जिरोंदीस्त लोगों से मिलकर काम करने का इच्छुक था, पेचीदा परिस्थितियों को सुलझाने के लिये इच्छुक रहता, अतिवादी नीति से बचना चाहता, व्यक्तियों को नियमों के अधीन रखने का प्रयत्न करता, गुटबन्दी और कुचालों की उपेक्षा करता, और गणतन्त्र से भी सभी समर्थकों को फ्रांस की उन्नति और अभिवृद्धि के लिये एक ही गाड़ी में जोत कर चलाना चाहता। झंझट-रहित समझौते की भावना उसका मुख्य गुण थी। किन्तु जिरोंदीस्त उसके कट्टर शत्रु थे और तनिक भी झुकने को तैयार न थे। उसके साथ वे किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना चाहते और न किसी भी काम में सहयोग देने को तैयार थे वे उसे शत्रुओं की कोटि में रखते, इससे उनकी और उसकी, दोनों की ही, भारी हानि हुई।

दोनों दलों के बीच संघर्ष दिन-प्रति-दिन अधिक तीव्र और कटु होता गया और अन्त में जीवन और मृत्यु की लड़ाई का रूप धारण कर लिया। झगड़ा लुई सोलहवें को लेकर आरम्भ हुआ। राजतन्त्र समाप्त कर दिया गया और राजा राज्य के बन्दीगृह में पड़ा हुआ था।

लुई सोलहवाँ तथा क्रान्ति

इसमें सन्देह नहीं कि राजा ने क्रान्ति के साथ द्रोह किया था। उसने भगोड़ों को प्रोत्साहन दिया था और फ्रांस के शत्रुओं की योजनाओं में भाग लिया था। कन्वेंशन की बैठक के बाद महलों में एक लोहे का सन्दूक मिला था जिसे लुई ने अपने हाथों बनाया था। उसमें ऐसे कागज मिले जिनसे उसका देशद्रोह निर्विवाद सिद्ध हो गया। प्रश्न यह था कि क्या उसे एक देशद्रोही के अनुरूप पूरा दण्ड मिलना चाहिए अथवा उसका बार-बार जो अपमान हुआ है, उसे बन्दी बनाया गया है और सिंहासन से वंचित कर दिया गया है, यही दण्ड उसके लिये पर्याप्त है। क्या कन्वेंशन के लिये यह सम्भव न था कि वह अपना हाथ थोड़ा-सा खींच लेता और उसको समुचित दण्ड देने के हठ पर डटा रहता? वैसे ही उसको बहुत यातनायें मिल चुकी थीं, और फिर उसके चरित्र में इतनी सामान्य अच्छाईयाँ थीं कि उनके कारण उसे क्षमा किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त जिस स्थिति में वह था उसमें उसे असाधारण उलझनों का सामना करना पड़ा, ऐसी उलझनें जिनसे कहीं अधिक बुद्धिमान व्यक्ति भी घबड़ा जाता, और विशेषकर उस समय जब कि बड़े से बड़े स्पष्ट दर्शियों को भी चीजें और घटनायें धुँधली दिखाई देती थीं। किन्तु लोगों का हृदय दया से द्रवित न हुआ और विशेषकर जैकोबिनों का। वे लुई को मुख्य अपराधी मानते और किसी भी प्रकार की रियायत के अयोग्य समझते थे। पहले तो जैकोबिन लोग उस पर मुकद्दमा चलाने की भी बात सुनने को तैयार न थे। रोब्सपियेर ने कहा कि राजा को तुरन्त ही कन्वेंशन के वोट के आधार पर फाँसी दे दी जाय। रोब्सपियेर के एक पिछलगुये सेन्ट-

जैकोबिनों ने तुरन्त बिना मुकद्दमा चलाये वध की माँग की

जस्ट ने याद दिलाई कि "सीजर को कटार की बाईस चोटों के अतिरिक्त अन्य किसी औपचारिक कार्यवाही के बिना सीनेट के सामने ही समाप्त कर दिया गया था।" किन्तु लुई पर मुकद्दमा चलाया गया। मुकद्दमे की सुनवाई खचाखच भरी हुई जूरी के सामने हुई। जूरी में ऐसे सदस्य थे जो उसके प्रति पहले ही अपनी घृणा प्रकट कर चुके थे और जो आरोपकर्त्ता और न्यायाधीश दोनों ही थे। मुकद्दमा एक महीने से अधिक चला। लुई स्वयं न्यायालय के सामने उपस्थित हुआ। उसने तैंतीस प्रश्न पूछे गये जिनके अन्तर्गत क्रान्ति के काल के उसके समस्त कार्य आ जाते थे। उसने स्वयं उन प्रश्नों के उत्तर दिए, किन्तु उन्हें असन्तोषजनक समझा गया। राजा के वकील ने बड़ी चतुराई से उसके पक्ष का प्रतिपादन किया किन्तु इस सबके बावजूद १५ जनवरी, १७९३ को

लुई सोलहवें का मुकद्दमा

कन्वेंशन ने प्रस्ताव पास किया कि लुई ने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के विरुद्ध षडयन्त्र रचा है और राज्य की सुरक्षा पर नीचतापूर्ण आक्रमण किया है। प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। कुछ सदस्य ऐसे थे जिन्होंने वोट नहीं दिया किन्तु प्रस्ताव के विरुद्ध वोट देने वाला एक भी न निकला। जिरोंदीस्त दल के अनेक सदस्यों ने प्रस्ताव रक्खा कि अन्तिम कार्यवाही करने से पहले दण्ड के प्रस्ताव पर जनता का मत ले लिया जाय किन्तु रोब्सपियेर ने जोरदार शब्दों में प्रस्ताव का खण्डन किया। स्पष्ट है कि उसे इस बात का डर था कि शायद जनता इस सीमा तक जाने को तैयार न हों। प्रस्ताव के पक्ष में २८३ और विरुद्ध ४२४ वोट पड़े, अतः वह गिर गया।

अब प्रश्न यह था कि दण्ड दिया जाय। इस प्रश्न पर १६ जनवरी, १७९३ की सायंकाल को आठ बजे मतदान प्रारम्भ हुआ। अगले चौबीस घण्टे में ७२१ प्रतिनिधि एक के बाद एक मंच पर आये और कन्वेंशन के सामने अपने मत की घोषणा की। १७ तारीख को सायंकाल आठ बजे मतदान समाप्त हुआ। सभापति ने परिणाम की घोषणा की। कुल ७२१ वोट पड़े; इसमें बहुमत ३६१ का होता था। मृत्यु के पक्ष में ३८७, उसके विरुद्ध अथवा विलम्ब के पक्ष में ३३४।

रविवार जनवरी २१ को राजप्रसाद के सामने के चौक में गिलोटीन खड़ी की गई। १० बजे लुई साहस और धीरज के साथ उस पर चढ़ गया। सूली पर चढ़ते समय उसने जितनी महानता का परिचय दिया उतनी का सिंहासन पर कभी नहीं दिया था। उसने बोलने का प्रयत्न किया। "सज्जनवृन्द मैं निर्दोष हूँ। मुझ पर

राजा का वध

लगाये गये आरोप झूठे हैं। मेरा रक्त फ्रांस की जनता के लिये कल्याणकारी हो यह मेरी कामना है।" नगाड़ों की आवाज में उसकी आवाज सुनाई नहीं दी। उसने गम्भीर धार्मिक व्यक्ति की भाँति शान्ति और धीरज से मृत्यु का आलिंगन किया।

राजा के वध का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के शत्रुओं की संख्या बढ़ गई और उसके प्रति उनकी घृणा और भी अधिक गहरी हो गई। आस्ट्रिया और प्रुशिया पहले ही से फ्रांस के विरुद्ध लड़ाई में उतर

लुई सोलहवें के वध के परिणाम

चुके थे। अब इंगलैण्ड, रूस, स्पेन, हालैण्ड और जर्मनी के राज्य तथा इटली भी उसमें सम्मिमित हो गये। सबने राजा के वध को ही युद्ध का बहाना ठहराया। किन्तु वास्तव में उनके उद्देश्य कहीं अधिक व्यावहारिक थे, भावुकता तो केवल दिखाने के लिये थी। उनके विचार में फ्रांस का देश छिन्न-भिन्न हो रहा था इसलिये उसकी भूमि को हड़पने का यह सर्वोत्तम अवसर था। इसी बीच में गृहयुद्ध भी छिड़ गया। वाँदे के १००,००० किसानों ने गणतन्त्र के विरुद्ध, जिसे वे राजा का हत्यारा और चर्च का उत्पीड़नकर्त्ता समझते थे, विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया: दूमरिज जो फ्रांसीसी सेनाओं का एक योग्य सेनानायक था कन्वेंशन के विरुद्ध षडयंत्र रच रहा था और शीघ्र ही देशद्रोही होकर शत्रु से जा मिलने को था।

कन्वेंशन ने सुदृढ़ शासनतन्त्र का निर्माण किया

चारों ही ओर से विपत्तियों के बादल मँडरा रहे थे और सभी जगह जमीन धँस रही थी। कन्वेंशन ने संघर्ष के लिये कमर कस ली और करने अथवा मरने अथवा आवश्यकता पड़ने पर दोनों ही का संकल्प किया। किसी अन्य सरकार ने कभी इससे अधिक क्रियाशीलता, साहस और निर्भीक्ता का परिचय नहीं दिया। उसने तुरन्त ही ३००,००० सैनिक भरती करने का प्रस्ताव पास किया। साथ ही साथ एक **सामान्य सुरक्षा समिति**, एक **जनरक्षा समिति** और एक **क्रांतिकारी अधिकरण** की स्थापना की गई। ये सब उस शासन-व्यवस्था के ही अंग थे जिसका राष्ट्र की मुक्ति तथा गणतन्त्र के देशी और विदेशी शत्रुओं के नाश की समस्या हल करने के लिये निर्माण किया था।

गणतन्त्र के समर्थकों में फूट

एक ओर तो **कन्वेंशन** इन सब कामों में लगा हुआ था, किन्तु दूसरी ओर वह कटु राजनैतिक दलबन्दी के दलदल में फँसकर छिन्न-भिन्न हो रहा था। **गणतन्त्र** के समर्थकों में फूट डालने वाला विवाद आरम्भ हो गया जिसमें आगे चलकर वे स्वाहा हो गये। पहला संघर्ष जिरोंदीस्त और जैकोबिन दलों के बीच हुआ। जिरों-दीस्त लोग उन लोगों को दण्ड देना चाहते थे जिनके सिर पर **सितम्बर हत्याकाण्ड** का उत्तरदायित्व था। वे पेरिस की **क्रान्तिकारी समिति** को भी जिसने अनेक अवैध कार्य किये थे दण्ड देने को इच्छुक थे। वे मारा से घृणा करते थे। उन्होंने **कन्वेंशन** से एक प्रस्ताव पास करवा लिया जिसके द्वारा उसे **क्रान्तिकारी अधिकरण** के सामने भेज दिया गया। उनकी आशा थी कि इस प्रकार उससे उनका पिण्ड छूट जायगा। किन्तु **अधिकरण** ने उसको मुक्त कर दिया। अब तो वह पेरिस की जनता का बहुत ही प्रिय नायक बन गया। उसकी शक्ति और भी अधिक बढ़ गई, और शत्रुओं की निन्दा करने में वह पहले से भी ज्यादा कटु हो गया।

जिरोंदीस्त दल का नाश

रक्तपिपासु मारा तथा कुटिल रोब्सपियेर जिरोंदीस्त दल का नाश करने पर तुले हुए थे। दाँतो को फ्रांस के हित का अधिक ध्यान था, इसलिये वह इस कलह से, इस अतिरंजित आत्मप्रतिष्ठा और इन घृणित कुचक्रों के जाल से घृणा करता था। उसका विचार था कि इस समय राष्ट्र घोर संकट में है, और फ्रांसीसियों के लड़ने को शत्रु ही काफी है, आपस में कट मरने की उन्हें आवश्यकता नहीं। इसी विचार से उसने दलों के बीच शान्ति स्थापित करने का

प्रयत्न किया, किन्तु उसका भी 'वही भाग्य हुआ जो सब शान्ति के पुजारियों का होता है। फ्रांस के लिये तो वह कुछ न कर सका, उल्टे अनेक लोग उसके शत्रु हो गये।

पेरिस की **कम्यून** ने जो जैकोबिनों का समर्थन करता और मारा की पूजा और रोब्सपियेर का सम्मान करता, इस संघर्ष में हस्तक्षेप किया। अपनी पुरानी परिपाटी के अनुसार उसने स्थिति पर तुरन्त काबू करने के लिये शारीरिक शक्ति का प्रयोग किया। जिरोंदीस्त दल के खिलाफ उसने एक विद्रोह खड़ा कर दिया और ८०,००० आदमियों की छोटी मोटी सेना और साठ तोपें एकत्र करली। मारा जो स्वयं **कन्वेंशन** का सदस्य था नगर हॉल के घंटाघर पर चढ़ गया और स्वयं अपने हाथ से घंटा बजा दिया। उस दिन मारा ही सब कुछ था। उसी ने २ जून, १७९३ के इस विद्रोह का प्रारम्भ से अन्त तक नेतृत्व

२ जून १७९३ का विद्रोह

किया। प्रासादों को, जिसमें **कन्वेंशन** की बैठक हो रही थी, विद्रोही सैनिक ने घेर लिया। इस प्रकार **कन्वेंशन** **कम्यून** के हाथों में बन्दी बन गया और फ्रांस की सरकार पर पेरिस का अधिकार हो गया। **कम्यून** ने जिरोंदीस्त नेताओं को **कन्वेंशन** से निकाल बाहर करने की माँग की। **कन्वेंशन ने** क्रोधपूर्वक विद्रोहियों के इस आचरण का विरोध किया। उसके सदस्यों ने सामूहिक रूप से सभा-भवन छोड़ने का संकल्प कर लिया, किन्तु विद्रोहियों ने उपहासपूर्ण सम्मान के साथ उनका स्वागत किया। अध्यक्ष ने माँग की कि सैनिकों को तितर-वितर कर दिया जाय किन्तु यह माँग उदण्डतापूर्वक ठुकरा दी गई और कहा गया कि विद्रोही सैनिक तब तक नहीं हटेंगे जब तक कि निन्दित जिरोंदीस्त नेता निकाल नहीं

जिरोंदीस्त नेताओं का कन्वेशन से निकाला जाना

दिये जाते। **कन्वेंशन** को पराजित और अपमानित होकर फिर सभा-भवन में आना पड़ा और उन तीस जिरोंदीस्त नेताओं की गिरफ्तारी का प्रस्ताव पास करना पड़ा। क्रान्ति के दौरान में यह पहला अवसर था जब कि फ्रांस के मतदाताओं द्वारा निर्वाचित सभा को इस प्रकार अंग-भंग किया गया। एक दल के शासन के लिए फ्रांसीसी जनता के प्रभुत्व की हत्या कर दी गई। **कम्यून** की विजय जैकोबिन दल की विजय थी, और इस प्रकार देशद्रोह करके वे **कन्वेशन** के स्वामी बन गये।

किन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि देश का स्वामित्व उनके हाथों में आ गया था। वास्तव में २ जून के इस घोर अपराध के कारण फ्रांस के बड़े भाग मे क्रोध तथा प्रतिरोध की लहर दौड़ गई। क्या विभागों को कुछ भी अधिकार प्राप्त न थे जिनका पेरिस के कम्यून को सम्मान करना चाहिए था? जिरोंदीस्त लोगों ने विभागों की जनता को इस अत्याचारियों के विरुद्ध हथियार उठाने के लिये आह्वान किया। जनता भयभीत थी और धीरज खो बैठी थी इसलिये उसने तुरन्त उनकी बात सुनी। फ्रांस के सबसे बड़े चार नगरों, लियोंस, मारसलीज, बोडो और क्येन ने हथियार उठा लिये और गृहयुद्ध आरम्भ हो गया। इस गृहयुद्ध के कारण राजनीतिक थे। वाँदे में धर्म को लेकर गृहयुद्ध पहले से ही चल रहा था, उधर बाहरी आक्रमणकारियों ने देश घेर लिया था। इस सबने परिरिस्थिति को भयंकर और जटिल बना दिया। तिरासी विभाग में से साठ ने इस युद्ध में भाग

फ्रांस में गृहयुद्ध का डर

लिया। इस प्रकार देश का तीन चौथाई भाग इसमें फँस गया। इस संकट का सामना करने, पेरिस के विरुद्ध विभागों में जो भारी अविश्वास उत्पन्न हो गया था उसे दूर करने और उनको यह दिखाने के लिए कि कम्यून के अधिनायकत्व का कोई डर न था कन्वेंशन ने जल्दी में संविधान का प्रारूप तैयार किया। वास्तव में उनको संविधान बनाने के लिये बुलाया गया था किन्तु दलबन्दी के दल-दल में फँस जाने के कारण कई महीने तक वह इस ओर ध्यान ही न दे सका था। १७९३ का संविधान क्रांति के इतिहास में दूसरा संविधान था। उसमें विभागों के अधिकारों तथा जनता के अधिकारों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था इतनी सावधानी से की गई कि पेरिस के लिये अपना अधिनायकत्व स्थापित करना असंभव हो गया।

एक नया संविधान जल्दी से बनाया गया

१७९३ के संविधान द्वारा सर्वसाधारण को मतदान का अधिकार दिया गया। दूसरे, १७९१ के संविधान ने विकेन्द्रीकरण के जिस सिद्धान्त को अपनाया था उसको और भी अधिक विस्तृत कर दिया गया। व्यवस्थापिका की अवधि केवल एक वर्ष रक्खी गई, और यह विधान किया गया कि प्रत्येक कानून क्रियान्वित किये जाने से पहले जनता के सामने रखा जायगा; वह उसे स्वीकार करे अथवा रद्द कर दे। इस प्रकार व्यवस्थापिका द्वारा बनाये कानूनों पर जनता की अनुमति लेने के सिद्धान्त का श्रीगणेश हुआ। कार्यपालिका के सदस्यों की संख्या २४ नियत की गई। उनके चुनाव की प्रणाली इस प्रकार थी: निर्वाचक लोग एक सूची तैयार करेंगे जिसमें प्रत्येक विभाग का एक व्यक्ति होगा, उस सूची में से व्यवस्थापिका उक्त सरकार चुन लेगी।

१७९३ के संविधान की धारायें

इस संविधान ने विभागों के अविश्वास को दूर करने में जादू का काम किया। अधिकारों की सुरक्षा की इससे अच्छी अवस्था नहीं की जा सकती थी। संविधान को जनता के समक्ष रक्खा गया और उसे भारी बहुमत से स्वीकार किया। पक्ष में १,०००,००० और विरोध में १२,००० वोट पड़े। किन्तु यह संविधान बस इसी सीमा तक कार्यान्वित किया गया। उसने राज्य का इतना विकेन्द्रीकरण कर दिया था और केन्द्रीय सरकार को इतना दुर्बल बना दिया कि जिन्होंने सहर्ष स्वीकार किया था वे भी सोचने लगे कि इस समय जबकि विदेशी सेनायें हर दिशा से फ्रांस में उमड़ती आ रही हैं, तुरन्त ही इसे कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। उस संकट के समय में जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति को दिखाई देता था एक शक्तिशाली और सुदृढ़ सरकार की आवश्यकता थी। अतः संविधान बनने के बाद तुरन्त ही सामान्य सम्मति से स्थगित कर दिया गया। किन्तु यह स्थगन अस्थायी था। संकट के दूर होने पर उसे तुरन्त ही कार्यान्वित किया जायगा। तब तक के लिये इस बहुमूल्य प्रलेख को एक बक्स में बन्द करके सभा-कक्ष के बीच में रख दिया गया।

संविधान का जनता द्वारा अनुसमर्थन

इस संकट का सामना करने और फ्रांस को, विपत्तियों और उलझनों के उस जाल से जिसमें वह फँस गया था मुक्त करने के लिये एक अस्थायी सरकार का निर्माण किया गया। यह सरकार उतनी ही शक्तिशाली और सुयोग्य थी जितनी

कि संविधान के आधार पर निर्मित सरकार दुर्बल और अयोग्य होती। नई व्यवस स्पष्ट रूप से शक्ति पर आधारित थी और उसने आतंक के शासन का आरं किया जो उस समय से संसार में एक कहावत बन गया है। इस अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार की बागडोर **कन्वेंशन** के हाथ में थी।

एक अस्थायी सरकार की स्थापन

कन्वेंशन ही राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्र था; वहाँ जिन दृढ़ संकल्पों व जन्म होता वे तुरन्त देश के कौने-कौने में फैल जाते। उसके उन संकल्पों ने सम्पू विरोध को कुचल दिया और फ्रांस की जनता की सारी शक्तियाँ एक उद्देश्य पर केन्द्रित कर दीं। सही अर्थ में **कन्वेंशन** अधिनायक था, और जिस सरकार का उसने निर्माण किया वह इतनी निरंकुश, अत्याचारी और केन्द्रीयकृत थी जितनी कि बोर्बों सरकार अपने अच्छे से अच्छे दिनों में भी होने का स्व न देख पाई थी मोंतेस्क्यू के शक्तियों के प्रथक्करण के उस पवित्र सिद्धान्त क जिसको **संविधान सभा** ने इतना श्रेष्ठ ठहराया था; पूर्णतया उपेक्षा कर दी गई।

इस अस्थायी सरकार में दो महत्त्वपूर्ण समितियाँ थीं, एक **जनरक्षा समि** और दूसरी **सामान्य सुरक्षा समिति** कहलाती थी। इनकी नियुक्ति **कन्वेंशन** स्वयं की थी। इसके अतिरिक्त सरकार में **क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण** के त राजनैतिक गोष्ठियों और नगरों तथा गाँवों की समितियों के प्रतिनिधि भ सम्मिलित थे।

जनरक्षा समिति

जनरक्षा समिति में पहले नौ सदस्य थे, बाद में उनकी संख्या बाहर क दी गई। **कन्वेंशन** ने उनको केवल एक महीने की अवधि के लिए चुना था, कि वास्तव में हर महीने उनका पुर्निर्वाचन होता रहा; जब सभा के राजनैतिक दलों की स्थिति बदल जाती तो **समिति** के सदस्यों में भी हेर-फेर हो जाता। यही कारण था कि दाँतों जिसके सुझाव से मूल समिति बनी उस परिवर्धित समिति का सदस नहीं बनाया गया। जिसका संगठन जिरोंदीस्त लोगों को निकालने के बाद कि गया था। उसको इसलिये सम्मिलित नहीं किया गया कि उसने २ जून के कां की निन्दा की थी, और उसका शत्रु रोब्सपियेर प्रमुख सदस्य बन गया। प्रारम्भ समिति को केवल वैदेशिक मामलों और सेना का प्रबन्ध सौंपा गया था, अन्त वह व्यवहारिक दृष्टि से सर्वशक्तिमान बन गई, और राज्य का संचालन इस ढं से करने लगी जैसे कभी किसी एकाकी निरंकुश शासक ने भी नहीं किया था। व राष्ट्रीय मामलों के प्रत्येक विभाग में हस्तक्षेप करती, और यहाँ तक कि **कन्वेंश** को भी, जिसके द्वारा सिद्धान्त रूप में उसका निर्माण हुआ था, कठोरतापूर्वक अपन अधीनता और आतंक में रखती। तुइलेरी के महलों के उन कक्षों में जिनमें पह राजा रहा करता था उसने अपना कार्यालय स्थापित किया; धीरे-धीरे उसने अन्धाधु काम अपने हाथों में ले लिये; अगणित आज्ञप्तियाँ जारी कीं, हजारों आदमिय को गिलोटीन के हवाले कर दिया, हजारों की संख्या में लोगों को फ्रांस के शत्रु के विरुद्ध युद्ध में झौंक दिया, और फ्रांस की उस जनता को जिसने अपने को स्वतन घोषित करने के लिये इतने कष्ट उठाये थे निर्ममतापूर्वक संचालित और अनुप्राणि किया तथा उस पर अत्याचार किये; परिणाम यह हुआ कि उसकी यह स्वतन्त्रत जिसका प्रतिपादन प्रसिद्ध **घोषणा** में किया गया था उसके फौलादी पंजों म

पिसकर चूर्ण हो गई। **जनरक्षा समिति** के सदस्यों ने हर प्रकार के अपरिमित काम को पूरा करने के लिये जितना कठिन परिश्रम किया उतना कभी किन्हीं लोगों ने नहीं किया होगा। एक हरी मेज के चारों ओर बैठकर वे घण्टों रिपोर्टें सुनते, आज्ञप्तियाँ तैयार करते और अधिकारियों की नियुक्ति करते। कभी-कभी जब काम करते-करते वे बुरी तरह थक जाते तो कमरे के फर्श पर बिछी चटाई पर पड़ रहते और फिर उसी प्रकार चकनाचूर करने वाले काम के लग जाते।

सामान्य सुरक्षा समिति

उनके अधीन **सामान्य सुरक्षा समिति** कार्य करती थी; उसका वास्तविक काम पुलिस से सम्बन्धित था। वह सारे देश में व्यवस्था कायम रखती और अगणित संदिग्ध व्यक्तियों को कारागार में डालती, जहाँ से उन्हें मुकदमे के लिये सरकार के एक अन्य शक्तिशाली अंग **क्रान्तिकारी अधिकरण** के सामने भेज दिया जाता।

क्रान्तिकारी अधिकरण

इस **अधिकरण** का निर्माण दाँतों के सुझाव से हुआ था। यह एक असाधारण प्रकार का न्यायालय था। जहाँ पर देशद्रोहियों और षड्यन्त्रकारियों के मुकदमों को शीघ्रता से निर्णय किया जाता था। उसके फैसले के विरुद्ध कहीं अपील नहीं हो सकती थी। उसकी सजायें सदैव मृत्यु की सजायें हुआ करती थीं। आगे चलकर जब **जनरक्षा समिति** पर रोब्सपियेर का आधिपत्य हो गया तो उसके न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा दी गई और उन्हें चार संविभागों में बाँट दिया गया जिन सबकी बैठकें साथ-साथ हुआ करती थीं। **अधिकरण** की नियुक्ति **समिति** ने की थी। इसलिए वह बड़ी हीनता के साथ उसकी आज्ञाओं का पालन करता था। उसका काम इतनी जल्दी होता कि न्याय एक मजाक बन गया था। कभी-कभी ऐसा होता कि किसी व्यक्ति को दस बजे सूचना मिलती कि ग्यारह बजे तुम्हें **क्रान्तिकारी अधिकरण** के सामने प्रस्तुत होना है, दो बजे तक उससे मुकदमे का निर्णय हो जाता और दण्ड निर्धारित कर दिया जाता, चार बजे तक उसे गिलोटीन पर चढ़ा दिया जाता।

विशेष प्रतिनिधि

जनरक्षा समिति का एक और भी अंग था, जिसके सदस्य एक विशेष प्रकार के प्रतिनिधि थे। **कन्वेंशन** के दो-दो सदस्य प्रत्येक विभाग में और दो-दो प्रत्येक सेना में यह देखने के लिए भेजे जाते थे कि **कन्वेंशन** के आदर्शों का पालन किया जा रहा अथवा नहीं। उनकी शक्तियाँ वास्तव में अपरिमिति थीं। वे स्वयं किसी को मृत्यु का दण्ड न दे सकते थे, किन्तु यदि वे किसी से अप्रसन्न हो जाते अथवा किसी पर उन्हें सन्देह हो जाता, तो उनका एक शब्द उसे **क्रान्तिकारी अधिकरण** के सामने भेजने के लिए पर्याप्त होता।

सरकारी मशीन के अन्य भी अंग थे। उदाहरण के लिए क्रान्तिकारी गोष्ठियों, जो पैरिस के जेकोबिन क्लब से सम्बद्ध थीं, तथा क्रान्तिकारी नियन्त्रण समितियाँ। इसके द्वारा **जनरक्षा समिति** की इच्छा देश के दूरस्थ कोनों तक, यहाँ तक कि छोटे-छोटे नगलों तक पहुँच जाती। **गणतन्त्र** सरकारी नियन्त्रण के इस घने जाल में मजबूती से जकड़ा हुआ था।

इस मशीन का निर्माण तात्कालिक राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया गया था। देश भयंकर संकट में था। एक ओर तो विदेशी आक्रमण की बाढ़

सरकारी व्यवस्था का उद्देश्य

उसको निगलने के लिए उमड़ रही थी, और दूसरी ओर कुछ आन्तरिक शक्तियाँ उसे छिन्न-भिन्न करने में लगी हुई थीं। इस व्यवस्था के रचयिताओं ने परिस्थिति की भयंकरता को भलीभाँति परख लिया था; वस्तुस्थिति का उन्हें सचुचित ज्ञान था, वे आन्तरिक तथा वाह्य सभी शत्रुओं को कुचलने के लिए दृढ़संकल्प थे और उन्होंने जनता से देश के लिए अपरिमित बलिदान करने की अपील की और उसमें अपार स्फूर्ति तथा प्रेरणा भर दी। यदि इस व्यवस्था का प्रयोग उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए और सही तरीके से किया जाता तो आगे की पीढ़ियों की निगाह में वह इतनी हेय और कुत्सित न ठहरती जितनी वह सामान्यतया ठहरायी गई है। फ्रांस की जनता एक शक्तिशाली सरकार के निर्माण के लिए सहर्ष अनुमति दे देती और राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए वैयक्तिक सुख और सुरक्षा पर लगाये गये कठोर नियन्त्रण को भी प्रसन्नतापूर्वक सह लेती। इससे महान् और कोई उद्देश्य नहीं हो सकता था, और जनता पर इससे अधिक व्यापक और निश्चत प्रभाव अन्य किसी बात का नहीं पड़ता। किन्तु, उक्त व्यवस्था का प्रयोग केवल इसी उद्देश्य के लिए नहीं किया गया। लोगों ने उसका प्रयोग व्यक्तिगत तथा दलगत वैमनस्य निभाने तथा निजी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए किया और इस प्रकार उसको विकृत और अधोगत किया। यह व्यवस्था किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह के मस्तिष्क से एक साथ पूरी बनी-बनाई उत्पन्न नहीं हुई थी। उसका धीरे धीरे विकास हुआ था, कभी किसी एक अंग का निर्माण किया गया तो आवश्यकता पड़ने पर कभी दूसरे का।

भय पर आधारित व्यवस्था

जिन लोगों ने इनकी रचना की उनका विचार था कि सरकार के लिए जनता का पूर्ण तथा सक्रिय सहयोग केवल भय का सञ्चार करके प्राप्त किया जा सकता है। **क्रान्ति** की सफलता उसके सिद्धान्तों और कार्यों के प्रति प्रेम और सराहना से ही सुनिश्चित नहीं हो सकती, घटनाओं से भी यही बात सिद्ध हो चुकी थी, वल्कि कठिनाइयाँ वढ़ती ही हो गई थीं। **क्रान्ति** से घृणा करने वाले व्यक्तियों की संख्या काफी बड़ी थी। किन्तु उनमें भी एक दुर्बलता थी जिससे लाभ उठाया जा सकता था—डर अथवा आतंक की भावना। यह भी मनुष्य को कार्य में रत करने के लिए एक शक्तिशाली प्रेरणा का काम करती है। सरकार के निर्माताओं के सिद्धान्त को एक वाक्य में व्यक्त किया जा सकता है—"सर्वत्र आतंक का ही राज्य कायम होने दो।" इसी सिद्धान्त के आधार पर सरकार का नाम भी 'आतंक का शासन' पड़ गया। द्रोहियों को तुरन्त तथा निर्मम दण्ड दिया जाय तो उन्हें क्रान्ति के प्रति वफादार बनाया जा सकता है, उनकी भक्ति का आधार प्रेम न हो कर डर होगा, किन्तु सफलता के लिए यह भी बुरा नहीं—यह था सिद्धान्त जिस पर समस्त नीति अवलम्वित थी।

जनरक्षा समिति के कार्य

जनरक्षा समिति तथा **कन्वेंशन** ने थोड़ा भी समय नष्ट न करके तीव्र गति से कार्य आरम्भ किया। युद्ध की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सैनिकों की भर्ती के निमित्त एक सामान्य अपील जारी की गई। तुरन्त ही ५७ हजार आदमी झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। इतिहास के इस पहलू का सारांश इस वाक्यांश में निहित है; "इस समय हमें सवसे अधिक आवश्यकता दुर्धर्षता की है, और

भी अधिक दुर्धर्षता की, सदैव दुर्धर्षता की।" इस नारे का रचयिता दाँतों था, वह युद्ध का शंखनाद करने की कला में दक्ष था, साथ ही साथ वह यह भी भलीभाँति जानता था कि जनता के सामयिक भावावेश पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगाकर उसको स्थायी रूप कैसे दिया जाय। कार्नोट **जनरक्षा समिति** का एक अन्य प्रभावशाली सदस्य था।

महान् नागरिक सेना का निर्माण

उसने इन जनपुञ्ज को अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करने, अनुशासन में बाँधने और उसके लिए योग्य अधिकारियों की व्यवस्था करने के लिए भी कार्य किया। परिणाम-स्वरूप बाहर सेनाएँ तैयार हो गईं और उन्हें प्रत्येक दिशा में फ्रांस के शत्रुओं के विरुद्ध झोंक दिया गया। प्रत्येक सेनानायक के साथ **कन्वेंशन** के प्रतिनिधि जाते, उससे माँग करते कि विजय अवश्य प्राप्त करनी है, अन्यथा स्मरण रहे कि विफल होने पर तुम्हारा सर धड़ से उड़ा दिया जायगा। परन्तु इस भीष्म प्रेरणा के बावजूद कुछ असफल रहे, यद्यपि उनके सामने विजय अथवा मृत्यु एक ही मार्ग था। और उन्हें शूली पर चढ़ना पड़ा। और लोगों में उद्धत तथा साहसिक क्रियाशीलता का संचार हुआ सेनाओं ने अतिमानवीय प्रयत्न किए और उन्हें विस्मयकारी सफलता मिली। और शीघ्र ही साधारण सैनिकों में से निर्भीक, दुर्धर्ष और अत्यधिक कुशल सेनानायकों का एक जत्था तैयार हो गया। अब हमें देखना है कि इन विजय-अभियानों की देश की राजनैतिक स्थिति पर क्या प्रतिक्रिया हुई। जिस समय मोर्चों पर आक्रमणकारियों को खदेड़ने के लिए इस प्रकार के भीष्म प्रयत्न किए जा रहे थे, उस समय **जनरक्षा समिति** देश के आन्तरिक शत्रुओं के विरुद्ध व्यापक कार्यवाही में संलग्न थी।

संदिग्ध जन सम्बन्धी कानून

प्रसिद्ध "**संदिग्ध जन**" सम्बन्धी कानून के अनुसार फ्रांस का प्रत्येक व्यक्ति **समिति** के शिकंजे में फँस गया। इस कानून के शब्द इतने शिथिल और अनिश्चित थे और इसके अन्तर्गत इतने प्रकार के व्यक्तियों का उल्लेख था कि इसकी धाराओं के अनुसार फ्रांस का कोई भी व्यक्ति गिरफ्तार करके **क्रांतिकारी अधिकरण** के सामने भेजा जा सकता था। जिन लोगों ने स्वतन्त्रता के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया था, किन्तु यदि उन्होंने उसकी रक्षा में कोई योग नहीं दिया था तो वे भी देशद्रोही और मृत्यदण्ड के अधिकारी माने गये। जो कानून इतना लचीला था, उसके शिकंजे से कोई भी व्यक्ति अपराधी अथवा निर्दोष, बचकर न निकल सकता था और यदि कोई व्यक्ति गिरफ्तार कर लिया जाता तो वह उस न्यायालय से न्याय की आशा न कर सकता था—क्योंकि बन्दियों को वकील करने का अधिकार न था और न मुकद्दमा करने में किसी प्रकार की निश्चित प्रणाली का ही अनुसरण किया जा सकता था; इतना ही नहीं अनेक लोगों के मुकद्दमों की सुनवाई एक साथ होती और एक साथ उन्हें दण्ड दे दिया जाता। यह सब कुछ तब था जबकि **मानव अधिकारों की घोषणा** में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि किसी व्यक्ति को कानूनी फैसले के बिना और बिना कानूनी पद्धति का अनुसरण किये न तो गिरफ्तार किया जाये और न बन्दी बनाया जाय।

किसी वृक्ष की पहचान उसके फलों से होती है। इस व्यवस्था के परिणाम क्या हुए उन पर विचार कीजिए। फ्रांस के प्रत्येक शहर, कस्बे और गाँव में सामूहिक रूप से लोग गिरफ्तार किये जाते और उसी तरह सरसरे

ढंग से फैसला होता और मृत्यु-दण्ड दे दिया जाता। अपराधों की इस विशाल सूची में से हम कुछ उदाहरण ले लें तो स्थिति स्पष्ट हो जायगी। २ जून को जब जिरोंदीस्त दल के लोग कन्वेंशन से निकल दिए गए तो लियोंस नगर के निवासियों ने उनके बचाव के लिए विद्रोह किया। लियोंस फ्रांस का दूसरा महत्त्वपूर्ण नगर था, उसके इस विरोध का दमन करने में चार महीने लगे और एक बड़ी सेना का प्रयोग करना पड़ा। जब यह काम पूरा हो गया तो कन्वेंशन ने एक भयंकर आज्ञप्ति जारी की; "लियोंस नगर का विध्वंस कर दिया जाय, प्रत्येक मकान, जिसमें अमीरों का निवास था, ढहा दिया जाय। केवल वे मकान जिनमें गरीब लोग और देशभक्त रहते हैं, तथा वे इमारतें, जिनमें उद्योगधन्धे चलते हैं और जिनमें शिक्षा आदि का कार्य होता है, छोड़ दिए जायँ।" इस प्रसिद्ध नगर का नाम तक मिटाने का आदेश दिया गया और निश्चय किया गया कि इसके पश्चात् उसका नाम **विमुक्त नगर** रक्खा जाय। बर्बरता पूर्ण दण्ड को कार्यान्वित नहीं किया गया, इतने बड़े पैमाने पर विध्वंस-कार्य सरल भी न था। कुछ थोड़ी सी इमारतें अवश्य उड़ा दी गई। किन्तु, ३५०० से ऊपर व्यक्ति गिरफ्तार किए गए और उनमें से लगभग आधे कत्ल कर दिए गए। अधिकारियों ने एक-एक व्यक्ति को गोली से उड़ाना प्रारम्भ किया अन्त में जो बच रहे उनको इकट्ठा करके तोप अथवा तमंचों की आग में भून दिया गया। तूलों और मार्सलीज में भी इसी प्रकार के काण्ड रचे गए, यद्यपि इतने बड़े पैमाने पर नहीं।

आये दिन आतंक

लियोंस नगर के साथ व्यवहार

सबसे अधिक बर्बरतापूर्ण व्यवहार वाँदे नगर के साथ किया गया। वहाँ पर **गणतन्त्र** के विरुद्ध और प्रतिक्रान्ति के पक्ष में विद्रोह चल रहा था। पादरियों के विरुद्ध जो कानून बनाए गए थे उनसे लोग भड़क उठे थे। इसके अतिरिक्त उस क्षेत्र की जनता ने **गणतन्त्र** की सेनाओं में लड़ने से भी इनकार कर दिया था। इस विद्रोह को कुचलना सरकार के लिए पूर्णतया वैध था; और एक लम्बी तथा वर्णनातीत क्रूर लड़ाई के उपरान्त, जिसमें किसी पक्ष ने घायलों को भी नहीं छोड़ा, दमन करने में सफल हो सकी। कारियर नाम के एक प्रतिनिधि ने तो, जिसे **कन्वेंशन** ने भेजा था, वीभत्स बर्बरता का रेकार्ड कायम कर दिया। उसने क्रान्तिकारी **अधिकरण** की पद्धति का अनुसरण नहीं किया, उसके अनुसार अपराधियों को मृत्यु दण्ड देने से पहले कम से कम मुकद्दमा चलाने का बहाना तो किया जाता था। किन्तु कारियर के लिए यह प्रक्रिया बहुत धीमी थी। उसने बन्दियों को टोलियों में खड़ा करके गोलियों से उड़वा दिया लगभग दो हजार व्यक्तियों ने इस प्रकार अपने प्राण खोये। डुबाकर मार डालने का तरीका भी काम में लाया गया। अपराधियों को बाँध कर नावों में डाल दिया जाता और फिर उन नावों को लोएरे नदी में डुबा दिया जाता। इस तरह से मरने वालों में स्त्रियाँ तथा बच्चे भी सम्मिलित थे। कारियर के इस विचित्र राक्षसी ढंग को देखकर **जनरक्षा समिति** भी स्तब्ध रह गई और उससे इसका स्पष्टीकरण माँगा। वह इतना धृष्ट निकला कि उसने उन व्यक्तियों के डूबने को दुर्घटना के सिर मढ़ दिया। उसने कहा "क्या यह मेरा अपराध है कि नावें निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँचीं ?" नदी में मृतकों की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि पानी में विष फैल गया और इस कारण नान्ते की

वाँदे के साथ व्यवहार

नगर सरकार को मछली खाने पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा। आगे चलकर समिति ने कारियर को हटा दिया, किन्तु इसके अतिरिक्त उसे और कोई दण्ड नहीं दिया, यद्यपि अन्त में उसे भी गिलोटीन पर चढ़ना पड़ा।

क्रान्तिकारी अधिकरण की कार्यवाहियाँ

इधर पेरिस में **क्रान्तिकारी अधिकरण** अपने कार्य में संलग्न था, वहाँ प्रतिदिन अपराधियों पर मुकदमे चलाये जाते जिन्हें केवल न्याय का मजाक कहा जा सकता है, और अन्त में उन्हें गिलोटीन पर चढ़ा दिया जाता था। दो सार्वजनिक चौकों में गिलोटीन खड़े किए गए थे, जहाँ दिन प्रतिदिन हत्यकांड मचा रहता था एक के बाद एक, अनेक सप्ताह बीत गए, और उस कभी तृप्त न होने वाली टोकरी में एक-एक करके न जाने कितने सिरे कटकर गिर गए। इन अभागों में कितने ही भगोड़े थे और कितने ही विद्रोही पादरी जो लौट कर फ्रांस आ गए थे, कई सेनानायक भी थे जो विजय प्राप्त न कर सकने के कारण देश द्रोही ठहराए गए थे। ऐसे भी अनेक व्यक्ति थे जिन्होंने प्रारम्भ में क्रान्ति का पक्ष लिया था, किन्तु जो बाद में **कन्वेंशन** के भीतर चलने वाले दलगत संघर्ष में हार गए थे। आजकल के राजनैतिक संघर्षों में बहुधा मन्त्रियों को अपने पदों से हाथ धोना पड़ता है किन्तु उस समय के फ्रांस में पराजित दल को अथवा कम से कम उसके नेताओं को मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता। जब रक्त-पिपासा बहुत तीव्र हो गई तो **कन्वेंशन** से इस हत्याकाण्ड की रफ्तार को बढ़ाने के लिए प्रस्ताव पास किया कि यदि **क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण** तीन दिन तक किसी मुकद्दमे की सुनवाई करले और उसके अन्तःकरण को सन्तोष हो जाय तो उसको अधिकार है कि आगे जाँच किए बिना ही उसका फैसला कर दे।

जिरोंदीस्त नेताओं का बध

जिरोंदीस्त लोगों को विशेषकर इस काण्ड का शिकार बनना पड़ा। उनमें से इक्कीस को ३१ अक्तूबर, १७९३ को गिलोटीन पर चढ़ाया गया। उनमें मादाम रोलाँ भी थी, उसके एक मित्र ने जिसने उसे चढ़ते हुए देखा था, लिखा है कि वह मुस्कराती हुई और शान्त भाव से सूली पर चढ़ गई। बन्दीगृह में उसने अपने संस्मरण लिखे थे जिनके अन्तिम शब्द थे कि मुझे खेद है कि मैं स्पार्टा अथवा रोम में उत्पन्न नहीं हुई। किन्तु वीरों की भाँति जिस ढंग से उसे केवल उन्तालीस वर्ष की अवस्था में मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा उसको ध्यान में रखते हुए उसका यह खेद निरर्थक प्रतीत होता है। सूली पर चढ़ाते समय एक स्वतन्त्रता की प्रतिमा पर उसकी दृष्टि पड़ गई, जिसे देखकर वह चिल्ला उठी। "हे स्वाधीनते! तुम्हारे साथ इन्होंने कैसा खिलवाड़ किया है!"

मारी आन्त्वानेत का बध अक्तूबर, १६, १७९३

मादाम रोलाँ के बध से कुछ ही दिन पहले मारी आन्त्वानेत को, जो एक सम्राज्ञी की पुत्री, एक राजा की पत्नी तथा भाग्य और दुर्भाग्य दोनों की ही अनोखी लाड़ली थी, सूली पर चढ़ाया गया था। रानी पर एक अश्लील मुकद्दमा चलाया गया था। उन पर आरोप था कि उसने अपने पुत्र को भ्रष्ट किया है। आरोप का उत्तर देते हुए रानी ने कहा "यदि मैंने अपनी सफाई नहीं दी है, तो उसका एक मात्र कारण यह ... माँ के विरुद्ध

इस प्रकार का आरोप अप्राकृतिक है। यहाँ पर उपस्थित सभी से मैं अपील करती हूँ।" इस स्त्री के क्रन्दन से दर्शकों पर इतना प्रभाव पड़ा कि अधिकारियों ने मुकद्दमे की कार्यवाही को संक्षिप्त कर दिया और वकीलों को अपनी बात समाप्त करने के लिए केवल पन्द्रह मिनट दिए। रानी का आचरण साहसपूर्ण था, उसने धीरज नहीं खोया। अन्त तक उसने वीरता का परिचय दिया। मारी आन्तवानेत के साथ बाद की पीढ़ियों की सहानुभूति निरन्तर कायम रही है। उसके पतन का उत्तर-दायित्व कुछ अंशों तक उसकी भूलों पर था, इसके लिए लोगों को उस पर तरस आता है; किन्तु जिस वीरतापूर्ण साहस के साथ उसने नियति का सामना किया उसके लिए लोग सदैव उसका सम्मान करते आए हैं। उसका स्थान इतिहास के अत्यधिक दयनीय और करुण पात्रों में है।

आतंक का राज्य

चार्लोट कोर्दे नामक एक नोर्मन लड़की ने मारा के यह सोच कर कटारी भोंक दी थी कि इससे मेरा देश स्वतन्त्र हो जायगा, उसने भी धीरज और गम्भीरता के साथ मरकर इसका मूल्य चुकाया। इन सभी महीनों में निरन्तर सूली की सीढ़ियों पर उन लोगों का ताँता लगा रहा, जो कभी अपनी हैसियत, चरित्र, सेवा अथवा ख्याति के कारण महान् समझे जाते थे। उनमें निम्नलिखित व्यक्ति मुख्य थे; वेली जो एक ज्योतिषी था और क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में पैरिस का मेयर रह चुका था; ओर्लेआँ का ड्यूक, जिसका क्रान्ति में लज्जास्पद पार्ट रहा था, और जो इतना अवसरवादी था कि अपना असली नाम त्याग कर अपने को 'फ़िलिपसमता' कहने लगा था और जिसने **कन्वेंशन** के एक सदस्य के रूप में निर्लज्जता के साथ अपने चचेरे भाई लुई सोलहवें के वध के पक्ष में वोट दिया था; बर्नावे, जो **संविधान सभा** के नेताओं में मिराबू के बाद सबसे अधिक योग्य व्यक्ति था। इस प्रकार पैरिस में तथा प्रान्तों की राजधानियों में प्रतिदिन हत्याकाण्ड चलता रहा। कुछ लोगों ने दिन-रात के इस आतंक से घबड़ा कर आत्महत्या कर ली। उस युग का अन्तिम दार्शनिक और **गणतंत्र** के सिद्धान्तों का प्रतिभाशाली प्रतिपादक कोन्दरसे ऐसे ही व्यक्तियों में था। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग थे, जो जर्जरित और क्षीणकाय होकर देहात में घूमते फिरे, किन्तु अन्त में जंगली पशुओं की भाँति पकड़ कर गोली के शिकार बना दिए गए। किन्तु इस सबके लिए भी 'महान आतंक' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। वह तो इसके भी बाद आया।

अभी तक इन हत्याओं के पीछे कम से कम **गणतंत्र** और फ्रांस के शत्रुओं को दण्ड देने का बहाना था, किन्तु अब इन घृणित तरीकों का प्रकोप अपने राज-नीतिक और वैयक्तिक शत्रुओं को नष्ट करने के लिए किया गया। राजनीति ने युद्ध का रूप धारण कर लिया और उसी भाँति जोखिमपूर्ण बन गई।

कम्यून तथा कन्वेंशन का द्वन्द्व

हम देख चुके हैं कि १० अगस्त १७९२, के पश्चात् राज्य में दो शक्तियाँ उठ खड़ी हुई थीं, **कम्यून** अथवा **पैरिस की सरकार** और **कन्वेंशन** अथवा **फ्रांस की सरकार** जिनका संचालन **जनरक्षा-समिति** के हाथ में था। अब तक इन दोनों में प्राय: सहयोग रहा था। उन दोनों ने मिलकर, राजतन्त्र तथा जिरोंदीस्त दल का अन्त किया था। किन्तु अब उनमें फूट पड़ गई, और मेल-जोल समाप्त हो गया। **कम्यून** का क्रान्ति-युग के सर्वाधिक उग्र तथा हिंसावादी दल पर आधिपत्य था। इसके नेता हबर्ट

कम्यून की असीम उग्रता

तथा शोमेते थे। हर्बर्ट 'पीरीदूशेनी' नाम की एक पत्रिका चलाता था, जो अश्लील और अधार्मिक थी, और पेरिस के निम्न वर्गों में जिसका बहुत प्रचार था। हर्बर्ट और शोमेते पैरिस नगर के असली शासक थे, उनकी शक्ति शहर की बाजारू जनता पर अवलम्बित थी जिसे भड़काना और शत्रुओं के ऊपर झौंकना उन्हें खूब आता था। वे अतिशय उग्रवादी, दुर्धष तथा बर्बर थे। उनकी सदैव यही माँग रहती कि आतंक का निरन्तर नए तथा पहले से भी अधिक जोर से प्रयोग किया जाय। कुछ समय के लिए उनका **कन्वेंशन** पर भी अधिकार हो गया। कारियर जो **कन्वेंशन** का एक प्रतिनिधि था, कम्यून के हाथ में कठपुतली की तरह फैलता रहा।

फ्रांस को ईसाइयत के प्रभाव से मुक्त करने का प्रयत्न

कम्यून ने ही अब **कन्वेंशन** को बस बात के लिए बाध्य किया कि वह फ्रांस से ईसाइयत का प्रभाव हटाने का प्रयत्न करे। इस उद्देश्य के लिए एक नई जन्त्री की आवश्यकता हुई, ऐसी जन्त्री जिसमें रविवारों, सन्तों के दिनों, धार्मिक त्योहारों आदि का उल्लेख न हो और जिसमें समय का विभाजन नए तथा धर्मनिरपेक्ष आधार पर हो। महीनों को सप्ताहों में विभक्त न करके दर्शकों में बाँटा गया। हर दसवाँ दिन छुट्टी का दिन रक्खा गया। महीनों के नाम ऋतुओं के आधार पर रक्खे गए जैसे जुलाई का नाम 'थर्मीडोर' अथवा 'ग्रीष्मकाल', अप्रैल का 'जर्मिनल' अथवा 'प्रस्फुटन काल', नवम्बर का 'ब्रूमेयर' अथवा 'तुषार-काल'। अब से आदमियों का जन्म-दिन ईस्वी सन् के आधार पर न गिनकर **स्वतन्त्रता** के जन्म-दिन से गिना जाने लगा। **स्वतन्त्रता** का प्रथम वर्ष २१ सितम्बर, १७९२ से प्रारम्भ हुआ। दुनियाँ का फिर नया जन्म हुआ। दिन को चौबीस की अपेक्षा दस घंटों में बाँटा गया और दस को उससे और भी छोटी इकाइयों में। इस जन्त्री का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया। किन्तु नए तिथि-क्रम से भारी बवंडर खड़ा हो गया। माता-पिता के लिए आवश्यक था कि वे अपने बालकों को काल-गणना की नई पद्धति सिखाएँ किन्तु माता-पिता पुरानी पद्धति में पले थे, इसलिए उन्हें यह बतलाने में भारी कठिनाई होती कि नई शब्दावली के अनुसार इस समय दिन के कितने बजे है। घड़ी बनाने वालों को अपनी घड़ियों के अंक पटल पर एक नया वृत्त जोड़ना पड़ा। एक वृत्त पर पुराने परिचित अंक और दूसरे पर नए अंक लिखे जाते थे। इस प्रकार एक कठिनाई कुछ सीमा तक हल हो गई। नई जन्त्री का १२ वर्ष तक प्रयोग हुआ। इसको जानबूझ कर और कह-सुन कर ईसाई-विरोधी बनाया गया था। ईसाई सम्वत् का प्रयोग बन्द कर दिया गया।

गणतन्त्र की जन्त्री

अन्धविश्वास के विरुद्ध प्रचार

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण था एक नया धर्म चलाने का प्रयत्न। अब ईसाई ईश्वर के स्थान पर बुद्धि की पूजा का विधान किया गया। ईसाइयत का प्रभाव हटाने के लिए कुछ व्यावहारिक कदम भी उठाए गए। उदाहरण के लिए गिरजाघरों के घण्टे उतार लिए गए और उनसे तोपें और सिक्के ढाल लिए गए। मृत्यु के सम्बन्ध में घोषणा की गई कि वह एक अनन्त निद्रा की अवस्था है और इस प्रकार स्वर्ग और नरक भी समाप्त हो गए। यह भी माँग की गई कि गिरजाघरों के शिखर

तोड़ डालें जायें; "क्योंकि दूसरी इमारतों से अधिक ऊँचे होने के कारण वे समानता के सिद्धान्त की अवहेलना करते हैं," और बहुत से शिखर तोड़ भी डाले गए। यह दुःखद प्रयास उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जबकि पेरिस की कम्यून ने औपचारिक रूप से बुद्धि की पूजा की स्थापना करदी। १० नवम्बर, १७९३ के दिन नोत्रेदामे का गिरजाघर "बुद्धि के मन्दिर" में परिवर्तित कर दिया गया। उस दिन के अनुष्ठान की ख्याति सौ वर्ष से चली आ रही है और सम्भवतः अगले १०० वर्ष तक और कायम रहे गणतन्त्र के तीन रंगों से सुसज्जित एक नर्तकी को बुद्धि की देवी के रूप में स्वतन्त्रता की उस वेदी पर बिठलाया गया, जहाँ पहले 'पवित्र कुमारी' की प्रतिभा प्रतिष्ठित थी, और भक्तों ने उसकी स्तुति की। इसके बाद पेरिस में और यहाँ तक कि प्रान्तों में भी अनेक गिरजाघर बुद्धि के मन्दिरों में परिवर्तित कर दिए गए। कैथोलिकों के पूजा-पाठ में प्रयुक्त होने वाले बर्तनों को या तो जला दिया गया अथवा पिघला डाला गया। कई स्थानों पर लोगों ने सन्तों की उन प्रस्तर-मूर्तियों को जो गिरजाघरों के अग्र भागों को सुसज्जित करती थीं, फैंक दिया, तोड़ डाला अथवा जला दिया। पेरिस के नोत्रेदामे में गिरजाघर की मूर्तियों को ढक दिया गया और इस प्रकार उस समय के लिए उन्हें सुरक्षित कर लिया गया जब कि उनके प्रभाव पड़ने की सम्भावना नहीं रहेगी। हर दसवें दिन पूजा-पाठ होता था, उसमें या तो दार्शनिक अथवा राजनीतिक व्याख्यान होते अथवा लोकप्रिय ढंग से नाचगानों का आयोजन किया जाता।

बुद्धि की पूजा

बुद्धि की पूजा की घोषणा के समय पैरिस का कम्यून अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। कन्वेंशन को बाध्य होकर यह सब कुछ स्वीकार करना पड़ा था और जनरक्षा समिति ने भी अपनी इच्छा के विरुद्ध उसको अंगीकार कर लिया था। किन्तु रोब्सपियेर को अवश्य सन्तोष नहीं हुआ, कुछ तो इसलिए कि उसका अपना एक धर्म था जिसे वह पसन्द करता और समय आने पर फ्रांस पर उसे लादना चाहता था, और कुछ इसलिए कि महान् समिति का सदस्य होने के नाते वह कम्यून जैसी शक्तिशाली संस्था से द्वेष करता था। हर्बर्ट के अनुयायी अपना बाण छोड़ चुके थे, अब रोब्सपियेर ने अपना तीर चलाया। एक सावधानी से तैयार किए हुए भाषण में सार्वजनिक रूप से उसने घोषणा की कि "अनीश्वरवाद से कुलीनतन्त्रीय भावनाओं का पोषण होता है।" इसके विपरीत एक ऐसी उच्चतम सत्ता का सिद्धान्त, जो उत्पीड़ित निरपराधों की रक्षा करती और वास्तविक अपराधियों को दण्ड देती है, सर्वथा लोकतान्त्रिक है। अधार्मिक कम्यून पर उसने हर प्रकार के आक्रमणों को प्रोत्साहित किया, जैसा कि दाँतों ने अपने इन शब्दों द्वारा किया था कि "कन्वेंशन में ये धर्म-विरोधी स्वाँग बन्द होने चाहिए।"

रोब्सपियेर द्वारा हर्बर्ट में अनुयायियों का विरोध

किन्तु, रोब्सपियेर दाँतों का भी प्रच्छन्न शत्रु था, यद्यपि इसके कारण भिन्न थे। कम्यून आतंक के प्रत्येक रूप का समर्थक था और चाहता था कि इसको पूरे जोर के साथ कायम रक्खा जाय। इसके विपरीत दाँतों, केमिले देशमोलाँ और उनके मित्रों ने जब तक आवश्यकता हुई आतंक का समर्थन किया, किन्तु अब उनका विचार

रोब्स द्वारा दाँतों के अनुयायी का विरोध

था कि इसकी आवश्यकता नहीं रही। और इसलिए चाहते थे कि अब इस व्यवस्था की कठोरता कम कर दी जाय और धीरे-धीरे उसको त्याग दिया जाय। **गणतन्त्र** की सेनाओं को सर्वत्र सफलता मिली थी, आक्रमणकारियों को पीछे खदेड़ दिया गया था और आन्तरिक विद्रोह कुचल दिए गए थे। चूँकि अब रक्तपात की आश्यकता नहीं रही थी इसलिए वे अब उससे ऊब गये थे और **कन्वेंशन** से दयापूर्ण व्यवहार की सिफारिश करने लगे।

कम्यून का पतन

जनरक्षा समिति हर्बट तथा दाँतों दोनों के ही गुटों के विरुद्ध थी, और रोब्सपियेर उन दोनों का नाश करने के लिए कुचक्र चला रहा था। **कन्वेंशन** में जो कुटिल चालें चली जा रहीं थीं, उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। उनको स्पष्ट करने के लिए बहुत कुछ स्थान चाहिए। केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि **समिति** ने अपनी सारी शक्तियाँ **कम्यून** के विरुद्ध लगा दीं। और १३ मार्च, १७९४ को उसने हर्बट तथा उसके मित्रों को गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया। ग्यारह दिन बाद उनको गिलोटीन पर चढ़ा दिया गया। इस प्रकार **कम्यून** की प्रतिद्वन्द्विता का अन्त हो गया। अब सम्पूर्ण शक्ति **कन्वेंशन** के हाथ में आ गई। किन्तु **समिति** आतंक का अन्त करने के पक्ष में न थी। उनके अनेक सदस्य ऐसे थे, जिन्हें डर था कि उसकी कठोरता को कम करने से हमारा ही अन्त आ जाएगा। इसलिए अपनी गर्दन बचाने के लिए उन्होंने दाँतों का, जो उदारता की खतरनाक नीति का प्रतिनिधि था, बध करने का संकल्प किया। दाँतों वह व्यक्ति था जिसने आक्रमणकारी राजाओं के विरुद्ध लड़ाई में देश की भावनाओं और मनःस्थिति का सबसे अच्छा प्रतिनिधित्व किया था, जिसने उस संकट के समय राज्य की शक्ति के केन्द्रिय स्तम्भ का काम किया था, और जिसने फ्रांस में जब कि वह हतोत्साह हो रहा था, नई स्फूर्ति का संचार किया था और अपने इन शब्दों से राष्ट्र में बिजली दौड़ा दी थी, "हमें साहस से काम लेना चाहिए, साहस से और अनन्त साहस से।" वह व्यक्ति अब धूर्त राजनीतिज्ञों के उन्मादपूर्ण आन्तरिक संघर्षों का शिकार बन गया था, क्योंकि अब संकट समाप्त हो जाने के कारण उसने उदारता और समझौते की नीति का प्रतिपादन किया। उसका कहना था कि जब संकट टल चुका है

दाँतों द्वारा उदार नीति का प्रतिपादन

तो आतंक को अपने देश भाइयों को उत्पीड़ित करने का साधन बनाना बहुत अनुचित है। उसने उसको बन्द करने का भी प्रयत्न किया किन्तु विफल रहा। भाग्यचक्र इतनी तेजी से घूम रहा था कि उसको रोकने की किसी में सामर्थ्य न थी। वह आतंक के शिकार हुए उन व्यक्तियों में से था जो स्वयं बड़े साहसी और दुर्धर्ष थे। जब उसने शान्ति का पक्ष लिया और खूनी तथा भयानक राजनीतिक गुटबन्दी को बन्द करने के लिए कहा तो उसके प्रतिद्वन्द्वी विषैले हत्यारों की भाँति उस पर टूट पड़े। वह अपनी देशभक्ति को भली भाँति समझता था, इसलिए उसे विश्वास नहीं हुआ कि उसके शत्रुओं को उस पर प्रहार करने का साहस होगा। जिस समय वह अपने अध्ययन-कक्ष में आग के पास विचारमग्न बैठा हुआ था, उसके एक मित्र ने आकर कहा कि **जनरक्षा समिति** ने तुम्हारी गिरफ्तारी का आदेश जारी कर दिया है। इस पर दाँतों बोला, "अच्छा तो फिर क्या करूँ!" मित्र ने कहा, "तुम्हें प्रतिरोध करना चाहिए।" "इसका अर्थ होगा रक्त-पात और इससे मैं ऊब गया हूँ। मैं किसी को गिलोटीन पर चढ़ाऊँ इससे तो मैं स्वयं उस पर चढ़ना पसन्द करूँगा,"

उसने उत्तर दिया। मित्र ने उससे भाग जाने को कहा। उसने उत्तर दिया "भाग कर कहाँ जाऊँ? कोई व्यक्ति अपने जूते के तले पर देश को रख कर नही भाग सकता।" और फिर गुनगुनाया, "उनका ऐसा साहस नहीं होगा।"

दाँतों की गिरफ्तारी और वध

किन्तु, उन्होंने ऐसा ही साहस किया। दूसरे दिन वह कारगार में पहुँच गया। वहाँ उसको कहते हुए सुना गया, "एक वर्ष पहले मैंने **क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण** की स्थापना का प्रस्ताव किया था, मैं उसके लिए मनुष्य और ईश्वर से क्षमा चाहता हूँ।" और फिर ये शब्द कहे, "मैं हर चीज को भयावह अवस्था की स्थिति में छोड़े जा रहा हूँ। इनमें कोई भी सरकार के सम्बन्ध में कुछ नहीं समझता। रोब्सपियेर की वही गति होनी है जो कि मेरी हुई है। मैं रोब्सपियेर को घसीट कर नीचे गिरा रहा हूँ। मनुष्यों पर शासन करने के झंझट में पड़ने से तो एक गरीब मछुवा ही अच्छा है।" सूली पर चढ़ कर वह चिल्लाया "दाँतों! दुर्बलता न दिखाना।" अन्त में उसने जल्लाद से कहा, "मेरा सिर जनता को दिखाना; यह दिखाने योग्य है।"

रोब्सपियेर का अधिनायकत्व

दाँतों की मृत्यु के बाद रोब्सपियेर सबसे अधिक महत्वशाली व्यक्ति बच रहा। **कन्वेंशन** तथा **जनरक्षा समिति** के सदस्यों में उसी का सबसे अधिक प्रभाव था। जैकोबिन दल पर उसका आधिपत्य था। **कम्यून** में उसके मित्र भरे पड़े थे जो उसके आदेशों का पालन करने के लिए उत्सुक रहते थे। **क्रान्तिकारी न्यायाधिकरण** पर उसके अनुयायियों का नियंत्रण था और वे ही उसका संचालन करते थे। अप्रैल ५ से लेकर जुलाई २७ तक लगभग ४ महीने उसने वास्तविक अधिनायक के रूप में कार्य किया। फ्रांसीसी जनता के लिए वह एक विलक्षण अधिनायक सिद्ध हुआ। उसमें उन गुणों का अभाव था जो उस देश के नेताओं और जनता में सदैव रहे हैं। ओलार ने भी जो इस काल का सबसे अधिक प्रामाणिक फ्रांसीसी इतिहासकार माना जाता था, इस तथ्य को स्वीकार किया है। राजनीतिक के रूप में रोब्सपियेर "चतुर, रहस्यपूर्ण तथा गुह्य था। उसके अन्तःकरण का जो कुछ आभास हमें मिलता है उससे पता लगता है कि वह फ्रांसीसियों की भक्ति और स्पष्टता की प्रवृति के लिए अत्यन्त घृणास्पद था। रोब्सपियेर ढोंगी था और ढोंग को उसने एक व्यवस्था का रूप दे रक्खा था।"

रोब्सपियेर का चरित्र

उसने एक साधारण प्रान्तीय वकील के रूप में जीवन आरम्भ किया था। रूसो का उसने गहरा अध्ययन किया था और उसके विचारों की वह संकीर्ण और क्षीण प्रतिमूर्ति था। जेकोबिन क्लब में उसने ख्याति प्राप्त करली थी। वहाँ पर उसने सावधानी से संशोधित और परिष्कृत व्याख्यान दिये थे जिनमें सबको प्रसन्न करने वाली सामान्य बातें रहतीं और जिनमें आवेश, उत्तेजना, वेग का तथा मिराबू और दाँतों के से असावधानी के वाक्यों का सर्वथा अभाव पाया जाता था। उसकी शैली सही, साधारण, संक्षिप्त, औपचारिक तथा शास्त्रीय थी। वह सदैव नैतिकता का उपदेश दिया करता था। चूँकि वह निरन्तर नैतिकता की ही बात करता और अपने को नैतिक दृष्टि से दूसरों से ऊँचा समझता और यहाँ तक कि कभी-कभी तो अखण्ड सदाचारी होने का दावा करता इसलिए लोगों की दृष्टि में नैतिकता और सदाचार

के शब्द ही घृणा के पात्र बन गए। आत्मप्रशंसा के गीत गाते हुए वह कभी न थकता, और सबसे बुरी बात यह थी कि इस आत्मश्लाघा में परिहास और सुरुचि का नितान्त अभाव रहता। उसका कहना था; "मैंने नीचता और भ्रष्टता के जुए के नीचे कभी अपना सिर नहीं झुकाया है।" इसीलिए लोगों ने उसका नाम "अभृष्टनीय" रख दिया।

राजनीतिज्ञ के रूप में उसकी नीति यह थी कि ठीक अवसर देखकर अपने शत्रुओं पर—और सभी प्रतिद्वन्दी उसके शत्रु थे—अप्रत्यक्ष शब्दों में अपवित्र, भ्रष्ट और अनैतिक होने का आरोप लगाता जिससे वे भड़क उठते और कुछ न कुछ ऐसा आचरण कर बैठते जिससे उन्हें सूली पर चढ़ाने का बहाना मिल जाता। शक्ति की इस सीमा पर पहुँचने के लिए उसने स्वयं अपने कदम धीरे-धीरे, सोच समझ कर और बड़ी सावधानी से रक्खे थे और इसीलिए वह मार्ग की जोखिमों से बच कर निकल सका था। उसने यदि असावधानी और जल्दबाजी से काम लिया होता, तो सम्भवत: बीच में ही उसका अन्त हो गया होता। इसी नीति से वह अब तक बच सका था और अब समय उसके साथ था। जनता उससे अत्यधिक प्रेम करती और उससे घृणा करने वाले भयभीत रहते। प्रश्न यह था कि वह अपनी शक्ति, और अवसर का प्रयोग किस प्रकार करेगा।

उसने अपनी शक्ति का प्रयोग व्याकुल देश को शान्ति देने, घावों को भरने और क्रान्ति का काम पूरा करने के लिए नहीं किया। उसने अत्यधिक भावुक दार्शनिक रूसो के विचारों को कानून का रूप देने के लिये राष्ट्र को बाध्य करने की चेष्टा की। उसका प्रयत्न था नैतिकता के राज्य की स्थापना करना। नैतिकता को विजयी बनाना उसकी महत्वाकांक्षा थी। उद्देश्य श्लाघनीय था इसमें सन्देह नहीं, किन्तु शर्त यह थी कि नैतिकता की परिभाषा सन्तोषजनक और उसकी स्थापना के तरीके उचित और मानवीय होते। किन्तु ऐसा नहीं था।

नैतिकता का राज्य

उसने दो काम ऐसे किये जिससे उसकी तानाशाही का भण्डाफोड़ हो गया। एक तो नये धर्म की घोषणा, और दूसरा **क्रांतिकारी न्यायाधिकरण** के परिवर्तन, जिससे उसका रूप और भी अधिक बुरा हो गया। एक बार रोब्सपियेर ने जनता के सामने कहा था, "यदि ईश्वर नहीं भी होता तो हमें उसका आविष्कार करना पड़ता।" उस जैसे विचारों के दरिद्र व्यक्ति के लिये यह सौभाग्य की बात थी कि उसे आविष्कार करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ा बल्कि उसे एक ऐसा ईश्वर मिल गया जिसका आविष्कार रूसो ने कर दिया था। उसने इस बात का प्रयत्न किया कि कन्वेंशन ईश्वर के सम्बन्ध में रूसो के विचार को मान्यता दे दे। और अन्त में उसकी प्रेरणा से कन्वेंशन ने "उच्चतम सत्ता के अस्तित्व और आत्मा के सिद्धान्त" को औपचारिक मान्यता दे दी। ८ जून को नए धर्म के सम्मान में एक उत्सव मनाया गया, जो उतनी ही प्रसिद्ध है जितना कि कुछ महीने पहले बुद्धि की पूजा के लिए किया गया अनुष्ठान। उत्सव का दृश्य अत्यधिक विस्मयकारी था, उसका निर्देशन कलाकार डेविड ने किया। तुरलेरी के बागों में एक विशाल रंगशाला तैयार की गई। कन्वेंशन के सदस्य जुलूस बना कर और हाथों में पुष्प तथा अनाज की बालियों के गुच्छे लिये हुए वहाँ पहुँचे। उस दिन कन्वेंशन का

उच्चतम सत्ता की उपासना

अध्यक्ष होने के नाते रोब्सपियेर जुलूस के आगे-आगे चला और प्रधान पादरी का काम किया—यह काम उसके अनुरूप ही था। उसने नास्तिकता और अनैतिकता की प्रतीक विशाल प्रतिमाओं में आग लगाई और फिर अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अलंकृत भाषा में बोला, "यहाँ सारा विश्व एकत्रित है। हे प्रकृति देवि ! तेरी शक्ति कितनी महान् और कितनी सौन्दर्यमय है ! हमारे इस उत्सव के शुभ समाचार को सुनकर अत्याचारी किस प्रकार हतप्रभ हो उठेंगे !" इस अवसर के लिए एक पवित्र मन्त्र-गान की रचना की गई थी और एक सप्ताह तक लोगों को उसको गाने की शिक्षा दी गई थी। जैसे ही रोब्सपियेर ने अपने शब्द बन्द किए वैसे ही लाखों नर नारी उसको गा उठे। जिस समय रोब्सपियेर ने इस प्रकार **उच्चतम सत्ता** की पूजा का उद्घाटन किया और वहाँ पर उठ रही मादकतापूर्ण सुगन्ध का आनन्द लिया उस समय वह सबकी आँखों का तारा और अतुलित प्रशंसा का पात्र बना हुआ था और अपनी महत्वाकाँक्षा के चरम शिखर पर पहुँच चुका था। नियति का कैसा गम्भीर व्यंग्य था ! सन्देहवादी विचारधारा की एक शताब्दी की परिसमाप्ति इस अविश्वनीय दृश्य के रूप में हुई। कुछ अनीश्वरवादी व्यक्तियों को इस मखौल में खूब आनन्द आया और उन्होंने 'अभ्रष्टनीय' रोब्सपियेर का खुल कर मजाक उड़ाया फ्रांसवासियों की व्यंग्य शक्ति का अभी पूर्णतया ह्रास नहीं हुआ था, इस बात का पता उस व्यक्ति को जो कभी मुस्कराया भी न था, अब लगा।

रोब्सपियेर उच्चतम पादरी

दो दिन बाद रोब्सपियेर ने **कन्वेंशन** में एक विधेयक प्रस्तुत करवाया, जिससे स्पष्ट हो गया कि वह अपने हाथों में पुष्प और बालियों के गुच्छे ही नहीं कटारी भी धारण कर सकता था। उसने संकल्प किया कि अवांछनीय तथा खतरनाक व्यक्तियों को भूसे की भाँति जलती हुई भट्टी में झोंक दिया जाय। इस विधेयक के अनुसार जो २२ प्रेरियल की विधि के नाम से प्रसिद्ध हुआ **क्रांतिकारी न्यायाधिकरण** की कार्य-प्रणाली और भी अधिक हत्यारी हो गई। अभियुक्तों को वकीलों की सलाह लेने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। यदि अभियोक्ता किसी अभियोग में कोई नैतिक अथवा वस्तुगत साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता तो उस मामले में साक्षियों की भी आवश्यकता नहीं थी। सरकार का किसी भी प्रकार से विरोध करने के अपराध के लिए मृत्यु-दण्ड निश्चित किया गया। अभियुक्त का अपराध सिद्ध हुआ अथवा नहीं, इसका निर्णय जूरी के "प्रबुद्ध अन्तःकरण" पर छोड़ दिया गया। जूरी के वे सब सदस्य, जो रोब्सपियेर के प्रति उदासीन समझे गए, निकाल दिए गए। अभियुक्त को इस कठपुतली न्यायालय के सामने **कन्वेंशन, जन-रक्षा समिति तथा सामान्य सुरक्षा समिति** में से कोई अथवा अकेला सरकारी अभियोक्ता भेज सकता था। दूसरे शब्दों में रोब्सपियेर के इशारे पर नाचने वाले फोक्कियार-तिनविले नाम के अधिकारी की मुट्ठी में फ्रांस के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन आ गया। **कन्वेंशन** और **जनरक्षा समिति** के सदस्य भी अधिनायक का कोप-भाजन बन जाने पर दूसरों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित नहीं थे।

प्रेरियल महीने का कानून

इसके बाद जो कुछ घटित हुआ वह **महाआतंक** के नाम से प्रसिद्ध है। मानो पूर्व की घटनाओं से इसकी भिन्नता स्पष्ट करने के लिए इसको यह नाम दिया गया।

२२ प्रेरियल से पहले के तेरह महीनों में पेरिस में १२०० व्यक्तियों को गिलोटीन पर चढ़ाया गया था, किन्तु इस तिथि तथा रोब्सपियेर के पतन के दिन ९ थार्मिडोर के बीच १३७६ व्यक्तियों को मृत्यु-दण्ड मिला। केवल सात और आठ जुलाई के दो दिनों में १५० आदमी सूली पर चढ़ाए गए और प्रतिदिन यह हत्याकाण्ड जारी रहा।

महा आतंक

यह हत्याकाण्ड रोब्सपियेर के पतन के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुआ। इस वीभत्स काण्ड के परिणामस्वरूप उसके सभी शत्रु मिलकर एक हो गए, जिनमें कुछ तो ऐसे थे जो अपनी दयालुता की नीति के कारण उससे डरते थे और कुछ को स्वयं आँतक के समर्थक होने पर भी इस बात की आशंका थी कि वह हमारा भी नाश कर देगा। उनकी धारणा बन गई थी कि इसकी हाँ में हाँ मिलाने से हमारी जितनी हानि हो रही है उससे अधिक उसका विरोध करने से नहीं होगी और यदि हम उसके प्रभुत्व को उखाड़ फेंक सकें तो सम्भवत: हमारे सिरों की रक्षा हो जाएगी। इस प्रकार आतंक और निराशा से उत्पन्न दुस्साहस ने एक नए षड्यन्त्र को जन्म दिया जिसका उद्देश्य **आतंक** का नहीं, बल्कि रोब्सपियेर का अन्त करना था।

२७ जुलाई १७९४ (९ थर्मीडोर) की विद्रोह का तूफान उमड़ पड़ा। जिस समय रोब्सपियेर ने **कन्वेंशन** में, जिसने डर के मारे अपने को उसके पैरों पर गिरा रक्खा था और उसकी आज्ञा से **प्रेरियल** का घृणित कानून पास करके अपने माथे पथ कलंक का अमिट टीका लगा लिया था, बोलने का प्रयत्न किया तो लोगों ने उस पर आवाजें कसना आरम्भ किया। "अत्याचारी का नाश हो" के नारे लगने लगे। उसने गैलरियों में बैठे हुए दर्शकों को उभाड़ने का प्रयत्न किया किन्तु कोई उत्तर न मिला। अब उसके व्यक्तित्व का जादू समाप्त हो चुका था। कई घण्टे तक कोलाहलपूर्ण संघर्ष जारी रहा। रोब्सपियेर की आवाज ने भी उसका साथ नहीं दिया। इस पर एक षड्यन्त्र कारी चिल्लाया! "दाँतो का रक्त उसका गला घोंट रहा है"। अन्त में **कन्वेंशन** ने उसकी, उसके अनुयायियों तथा उसके भाई सेंटजस्ट, और कूथों, की गिरफ्तारी का प्रस्ताव पास कर दिया। फिर भी अभी तक सब कुछ हाथ से नहीं निकल गया था। **क्रांतिकारी न्यायाधिकरण** अभी तक रोब्सपियेर का भक्त था, इसलिए यदि उस पर मुकद्दमा चलाया जाता तो उसके मुक्त होने की पूरी संभावना थी। इसी प्रकार **कम्यून** भी उसी के पक्ष में था। उसने उसकी रक्षा के लिए पहला कदम उठाया और विद्रोह की घोषणा कर दी। उसके अनुयायियों ने कारागार तोड़ डाला, उसको मुक्त कर दिया और नगर-हॉल में ले गए। तब **कन्वेंशन** ने इस विद्रोह का समाचार सुन कर उसके तथा उसके साथियों को कानून का शत्रु घोषित कर दिया, इसलिए मुकद्दमा चलाने की आवश्यकता नहीं थी। पुन: गिरफ्तार किए जाने पर वह तुरन्त ही गिलोटीन पर चढ़ाया जा सकता था। उस दिन संध्या को तथा रात में कई घंटों तक **कन्वेंशन** के विरुद्ध आक्रमण संगठित करने के अव्यवस्थित प्रयत्न जारी रहे किन्तु आधी रात के कुछ समय पहले भारी तूफान आ गया और वर्षा होने लगी जिससे चौक में एकत्रित उसके समर्थक तितर बितर हो गए। इसके अतिरिक्त रोब्सपियर स्वयं हिचकिचाया और साहस तथा

रोब्सपियेर की गिरफ्तारी

निर्णय-शक्ति के अभाव का परिचय दिया। अन्त में कन्वेंशन ने कम्यून के विरुद्ध सेना भेज दी और मामला समाप्त हो गया। प्रातःकाल २ बजे सैनिकों ने होटेल दविले पर अधिकार कर लिया और रोब्सपियर तथा कम्यून के प्रमुख नेताओं को बंदी बना लिया। लड़ाई में रोब्सपियेर घायल हो गया था। गोली से उसका जबड़ा टूट गया था।

रोब्सपियेर का पतन तथा वध

उसे पकड़कर कन्वेंशन में ले जाया गया, किन्तु उसने अपने कक्ष में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी। कन्वेंशन के उस सूत्र की सरकारी रिपोर्ट में लिखा गया था, "कन्वेंशन ने सर्वसम्पति से उसको कानून के उस मन्दिर में प्रवेष्ट नहीं होने दिया जिसे उसने इतने समय से अपवित्र कर रखा था।" उस दिन रोब्सपियेर तथा २० अन्य आदमियों को गिलोटीन पर चढ़ाया गया। एक विशाल जनसमूह उस दृश्य को देखने के लिए एकत्रित हो गया और स्वच्छंदतापूर्वक हर्षध्वनि की। अगले दो दिनों में ८३ आदमियों का वध किया गया।

फ्रांस को अब कुछ अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक श्वास लेने का अवसर मिला। ऊपर से देखने पर सबसे बुरे संकट का अन्त हो गया था। आगामी महीनों में आतंक की व्यवस्था धीरे-धीरे त्याग दी गई। यह **थर्मीडोर महीने की प्रतिक्रिया** के नाम से प्रसिद्ध है। सरकार की भयावह मशीन की विभिन्न शाखाएँ या तो नष्ट करदी गईं अथवा उसमें समुचित होकर फेर कर दिया गया। पहले से नरम शासन-व्यवस्था का आरम्भ हुआ। तूफान एकदम शान्त नहीं हुआ किन्तु दृढ़ता के साथ धीरे-धीरे थमता गया। बीच बीच में एकाध बार जोर के झोंके भी आए। पतनोन्मुख जेकोबिन दल ने सड़कों की भीड़ को उभाड़ कर अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने के अनेक प्रयत्न किए **कन्वेंशन** ने अपनी नीति का सारांश इन शब्दों में व्यक्त किया, "आतंक तथा राजतन्त्र का नाश हो ?" अब **कन्वेंशन** उदार नीति के पक्षपातियों के नियन्त्रण में आ गया, किन्तु वे सब सर्वसम्मति से **गणतन्त्र** के समर्थक थे। राजतन्त्रीय दल के उदय होने के चिन्ह भी दिखाई देने लगे थे और बोर्बा राजतन्त्र की पुनः स्थापना की मांग भी उठने लगी थी, यद्यपि पुरातन व्यवस्था की पुनरावृत्ति कोई नहीं चाहता था। इस स्थिति का सामना करने और **गणतन्त्र** को स्थायी तथा सुदृढ़ बनाने के लिए **कन्वेंशन** को अनेक उपाय करने पड़े।

थर्मीडोम महीने की प्रतिक्रिया

इस कार्य को पूरा करने तथा राजतन्त्र की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए कन्वेंशन ने एक नए संविधान की रचना की।

छः वर्ष के भीतर यह तीसरा संविधान था। यद्यपि पेरिस के उग्रवादियों ने जोर से माँग उठाई कि १७९३ के स्थगित संविधान को क्रियान्वित किया जाय, किन्तु **कन्वेंशन** ने उस संविधान को "अराजकतापूर्ण" ठहराया और लागू करने से मना कर दिया। उसके स्थान पर उसने १७९५ का एक नया सविधान बनाया जो तीसरे **वर्ष के संविधान** के नाम से भी प्रसिद्ध है वयस्क मताधिकार त्याग दिया गया। ऐसा करने में **कन्वेंशन** का उद्देश्य पेरिस की जनता के राजनैतिक महत्त्व को कम

१७९५ का संविधान

करना था। १० अगस्त, १७९२ को स्थापित किए गये लोकतन्त्र के स्थान पर सम्पत्ति को मताधिकार का आधार बनाया गया। इसके विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। इस नियम के समर्थन में अमेरिका के राज्यों का उदाहरण प्रस्तुत किया गया; उस समय उनमें से किसी में वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त का प्रचलन न था। व्यावहारिक रूप से मताधिकार का वही सिद्धान्त अपनाया गया जो १७९१ के राजतंत्रीय संविधान के अन्तर्गत निश्चित किया गया था। राष्ट्रीय व्यवस्थापिका को द्विसदनात्मक बनाने का निश्चय किया गया; इससे पहले भी व्यवस्थापिकाएँ एकसदनात्मक थीं। इस सम्बन्ध में भी अमेरिका का हीं उदाहरण प्रस्तुत किया गया। एक सदस्य ने कहा, 'लगभग इन सभी राज्यों ने, जो स्वतन्त्रता के संघर्ष में हमारे अग्रज हैं, अपने संविधानों में द्विसनात्मक व्यवस्थापिका का विधान किया है; और परिणाम हुआ है सार्वजनिक शांति।" किन्तु वास्तव में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका को त्यागने का मुख्य कारण फ्रांस का पिछले वर्षों का अपना अनुभव था। सदनों में से एक नाम **वरिष्ठ परिषद्** रक्खा गया, उसके सदस्यों की संख्या २५० निश्चित की गई और नियम बनाया गया कि उनकी आयु कम से कम ४० वर्ष हो और वे विवाहित हों अथवा विधुर। दूसरे सदन का नाम **पाँच सौ की परिषद्** रक्खा गया और उसके सदस्यों की आयु कम से कम ३६ वर्ष निश्चित की गई। केवल इसी परिषद् को कानून प्रस्तावित करने का अधिकार था, किन्तु जब तक **वरिष्ठ परिषद्** उस कानून को स्वीकार न करती तब तक उसको क्रियान्वित नहीं किया जा सकता था।

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का विधान

कार्यपालिका शक्ति ३ सदस्यों के एक **संचालक मण्डल** में निहित की गई। उन सदस्यों के लिए भी कम से कम ४० वर्ष आयु का होना अनिवार्य था। उनके चुनाव परिषदें करतीं, और उनमें से एक प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करता। यहाँ पर भी उन्हें अमेरिका का उदाहरण याद आया किन्तु उसका अनुसरण नहीं किया गया। **कन्वेंशन** को भय था यदि कार्यपालिकाशक्ति को एक ही व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित रक्खा गया तो फ्रांसीसियों को राजतन्त्र का कटु स्मरण होता रहेगा अथवा यह भी सम्भव है कि वह व्यक्ति रोब्सपियेर बनने का प्रयत्न करे।

संचालक मण्डल

१७९५ का संविधान मुख्यतया अनुभव का परिणाम था, काल्पनिक सिद्धान्तों को नहीं। इसके अनुसार मध्यवर्गीय गणतन्त्र की स्थापना हुई जिस प्रकार कि १७९१ के संविधान ने मध्यवर्गीय राजतन्त्र की व्यवस्था की थी। इसलिए **गणतन्त्र** विशेषाधिकृत वर्ग के प्रभुत्व में आ गया, और सम्पत्ति विशेषाधिकार का आधार मानी गई।

गणतन्त्र का अलोकतन्त्रीय रूप

किन्तु **कन्वेंशन** को मतदाताओं का विश्वास नहीं था, इसलिए वह नहीं चाहता था कि वे अपनी इच्छानुसार जिसे चाहें, नई परिषदों के लिये चुनलें। क्या इस बात का डर नहीं था कि मतदाता राजतन्त्र के समर्थकों को चुन लें और इस प्रकार नये गणतन्त्रीय संविधान को उसके शत्रुओं के हाथों में सौंप दें? क्या चुनाव में **कन्वेंशन** के उन सदस्यों के जीतने की आशा हो

दो तिहाई, की आज्ञप्तियाँ

सकती थी, जिनके हाथ में शक्ति थी और जो उसे छोड़ना नहीं चाहते थे और साथ ही साथ यह भी समझते थे कि कन्वेंशन के कारनामों के कारण हम बहुत अप्रिय हैं ? ऐसी स्थिति में क्या गणतन्त्र सुरक्षित रह सकता था और क्या उनका यह कर्तव्य नहीं था कि उसको शत्रुओं के हाथों में जाने से रोकने का उपाय करें ? इस प्रकार के प्रश्नों को ध्यान में रखकर कन्वेंशन ने संविधान की पूरक के रूप में दो आज्ञप्तियाँ जारी कीं, जिनका आशय था कि प्रत्येक परिषद् के दो तिहाई सदस्य कन्वेंशन के वर्तमान सदस्यों में से चुने जायें।

नये संविधान को मतदाताओं के अनुसमर्थन के लिये प्रस्तुत किया गया और उन्होंने भारी बहुमत से उसे स्वीकार कर लिया। किन्तु दो आज्ञप्तियों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया गया। उनके सम्बन्ध में लोगों की धारणा थी कि यह एक निर्लज्जतापूर्ण चाल है, जिनके द्वारा वे लोग जो जानते हैं कि जनता हमें नहीं चाहती, कुछ अधिक समय तक शक्ति अपने हाथ में रखना चाहते हैं। यद्यपि अन्त में ये आज्ञप्तियाँ स्वीकृत हो गईं किन्तु उतने अधिक मतदाताओं ने उनके पक्ष में वोट नहीं दिया, जितनों ने संविधान का अनुसमर्थन किया था। पेरिस की जनता ने भारी संख्या में उनके विरुद्ध डाला।

आज्ञप्तियों का विरोध

पेरिस की जनता केवल विरुद्ध वोट डालकर ही सन्तुष्ट नहीं हुई, उसने आज्ञप्तियों को क्रियान्वित होने से रोकने का बीड़ा उठाया। कन्वेंशन के विरुद्ध विद्रोह का संगठन किया गया। इस बार विद्रोह के पीछे मध्यवर्ग तथा अन्य धनी लोगों का हाथ था, वलिक वास्तव में यह राजतन्त्र के समर्थकों की योजना थी। कन्वेंशन ने अपने बचाव के लिए वरा को प्रधान सेनापति कन्वेंशन ने अपने बचाव के लिए वरा को प्रधान सेनापति नियुक्त किया। वरा उतना अच्छा सेनानायक न था जितना कि राजनीतिज्ञ। उसने २५ वर्षीय एक कोर्सिकाई अधिकारी को, जिसने दो वर्ष पहले गणतन्त्र की ओर से तूलों पर अधिकार करने में सहायता दी थी, अपनी मदद के लिए बुलाया। यह छोटा बूना पार्ते—उस दिन की सरकारी रिपोर्ट में यह प्रसिद्ध नाम इसी रूप में लिखा हुआ मिलता है—तोपखाने का अधिकारी था और तोपों की उपयोगिता में उसे अधिक विश्वास था। बोनापार्ट ने सुना कि नगर से बाहर एक शिविर में ४० तोपें हैं और इस बात का डर है कि विद्रोही उन पर अधिकार करलें; उसने तुरन्त ही जोचिममुरात नाम के एक दुस्साहसी अश्वारोही को उन पर अधिकार करने के लिए भेजा। मुरात और उसके आदमियों ने पूरी रफ्तार से नगर में होकर धावा मारा, विद्रोहियों को पीछे खदेड़ दिया, तोपों पर अधिकार कर लिया और पूरी रफ्तार से उन्हें घसीट कर तुइलेरी को ले गये और प्रातःकाल ६ बजे वे वहाँ जा पहुँचे। एक लेखक का कथन है कि, "उस समय न तो उस छोटे सेनानायक ने और न उस श्रेष्ठ अश्वारोही ने स्वप्न में भी सोचा था कि वरा को राजतन्त्रियों के विरुद्ध प्रयोग के लिए इस प्रकार तोपों को देकर हम अपने लिये राजमुकुट पाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।"

तोपें तुइलेरी के आस पास रख दी गईं जहाँ पर कि कन्वेंशन की बैठक हो रही थी, इससे वह स्थान दुर्वेद्य हो गया। कन्वेंशन के प्रत्येक व्यक्ति को एक एक राइफल और कारतूस दे दिये गये। १३ वेंडेमियर

१३ वैंडीमेयर (५ अक्टूबर) का विद्रोह

(५ अक्टूबर को विद्रोही लोग दो दलों में सड़कों पर मार्च करते हुये सीन के दोनों किनारों पर आ धमके। दोपहर के बाद साढ़े चार बजे सहसा तोपों की भारी गड़गड़ाहट सुनाई दी। नेपोलियन बोनापार्ट का यह प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास था कन्वेंशन की रक्षा हो गई और एक विस्मयकारी जीवन का श्रीगणेश हुआ। कार्लाइल ने अपनी सुस्पष्ट शैली में कहा कि "यह छर्रों की फूँक थी जिसने उस चीज का जिसे हम विशेप रूप से फ्रांस की क्रान्ति कहते हैं, अन्त कर दिया।" वह वर्णन कल्पनात्मक और गलत है। इसने क्रान्ति का अन्त नहीं किया। हाँ, इसने उसके एक चरण का अन्त और दूसरे का सूत्रपात अवश्य किया।

कन्वेंशन का अन्त

तीन सप्ताह बाद, २६ अक्टूबर, १७९५ को कन्वेंशन ने अपने को भंग कर दिया। उसका एक असाधारण इतिहास था; इस संक्षिप्त विवरण में उसके कुछ पहलुओं पर ही प्रकाश डाला जा सका है। अपने तीन साल के अस्तित्व में उसने अनेक दिशाओं में विलक्षण और धुँआधार कार्यवाहियाँ की थीं। आन्तरिक कलह और विदेशी युद्धों से उत्पन्न भयंकर राष्ट्रीय कठिनाइयों के बीच उसने अपना कार्य आरम्भ किया और एक साथ उसे फ्रांस के ६० विभागों और

इसकी विजयों का लेखा

इंगलैण्ड, प्रुशिया, आस्ट्रिया, पीमोंट, हालैंड, स्पेन आदि विदेशी शक्तियों के विस्मयकारी संघ ने उस पर आक्रमण किया किन्तु उसको प्रत्येक दिशा में सफलता प्राप्त हुई। गृहयुद्ध कुचल दिया गया और १७९५ की ग्रीष्म ऋतु तक प्रुशिया, हालैण्ड और स्पेन तीन शत्रु-राज्यों ने फ्रांस के साथ सन्धि कर ली थी और युद्ध से अलग हो गए थे। वास्तव में फ्रांस का आस्ट्रियायी नीदरलैण्ड्स और राइन के पश्चिमी किनारे पर स्थित जर्मन प्रान्तों पर आधिपत्य था। व्यावहारिक रूप से उसने तथाकथित प्राकृतिक सीमाएँ प्राप्त कर ली थीं। आस्ट्रिया और इंगलैण्ड के साथ अब भी युद्ध चल रहा था। यह समस्या संचालक मण्डल को सुलझानी पड़ी।

कन्वेंशन तथा गणतन्त्र

इन तीन वर्षों में कन्वेंशन ने प्रमुख राजतन्त्रीय देश में गणतन्त्र की घोषणा की दो संविधानों का निर्माण किया, दो उपासना विधियाँ प्रचलित कीं और अन्त में राज्य और चर्च का पृथक्करण कर दिया, जो चीज योरोप के अन्य देशों में अत्यधिक कठिन सिद्ध हुई। उसने एक राजा को मौत के घाट उतारा, आतंक के राज्य का संगठन किया और उसे कायम रक्खा, जिसके कारण दीर्घकाल तक फ्रांस की बहुसंख्यक जनता में गणतन्त्र का विचार ही बदनाम रहा। इस आतंकपूर्ण शासन के कारण गणतन्त्र अत्यधिक दुर्बल हो गया, क्योंकि उसके ऐसे अनेक नेता काट डाले गये जो यदि जीवित रहते तो उसके स्वाभाविक और अनुभवी रक्षक सिद्ध होते, और पूरी एक पीढ़ी तक, क्योंकि उनमें से अधिकतर नवयुवक थे। गणतन्त्र ने अपने साधनों का प्रयोग अपव्ययता के साथ किया। परिणाम यह हुआ कि जिस समय बोनापार्ट आया और उसका अन्त करके अपना व्यक्तिगत शासन स्थापित करना चाहा तो उसका काम बहुत सरल हो गया क्योंकि उसके विरोधियों में कोई नेता न निकला, और जो थे भी, वे निम्नकोटि के थे। दूसरी ओर गणतन्त्र को रोमांचकारी विजयें उपलब्ध हुईं, उसने अनेक वीरों और

शहीदों को उत्पन्न किया जिनके जीवन-चरित्र और शिक्षाओं ने आगे की पूरी एक शताब्दी तक फ्रांस के इतिहास को प्रभावित और अनुप्रमाणित किया।

शान्तिमय विकास की दशा में भी कन्वेंशन ने अथक प्रयत्न किया और पर्याप्त सफलता पाई। उसने फ्रांस में माप-तौल की नई व्यवस्था प्रचलित की जो दशमलव प्रणाली कहलाती है, और जो संसार की अब तक की सबसे अधिक पूर्ण व्यवस्था मानी जाती है। और जिसका अन्य देशों में भी व्यापक प्रयोग हो रहा है। उसने विधि संग्रह के लिए नींव तैयार की और उस दिशा में कुछ प्रारम्भिक कार्य भी किया। आगे चलकर इस काम को नेपोलियन ने पूरा किया और स्वयं ही उसका सम्पूर्ण यश लूटा। उसने राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या की ओर भी समुचित ध्यान दिया। उसे दाँतों के इस कथन में विश्वास था, "भोजन के बाद मनुष्य की अन्य पहली आवश्यकता शिक्षा है," और इसलिए देश के लिए निःशुल्क, अनिवार्य तथा पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। जन-अधिकारों के उस योग्य समर्थक ने कहा था कि "बालक पहले **गणतन्त्र** के हैं और बाद में अपने माता-पिता के", इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने का समय आ गया है, किन्तु उसकी उपेक्षा हो रही है। प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा की एक विशद् योजना तैयार की गई किन्तु धनाभाव के कारण उसको व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका। कुछ विशिष्ट प्रकार के विद्यालयों के लिए बहुत कुछ कार्य किया गया। **कन्वेंशन** की अमूल्य कृतियों में कुछ संस्थाएँ हैं जिनकी ख्याति बहुत बढ़ गई है और जिनका गहरा प्रभाव पड़ा है—**दीक्षा विद्यालय, बहुकौशल शिक्षणालय, पेरिस के कानून तथा चिकित्सा विद्यालय, कलाकौशल संस्थान, राष्ट्रीय अभिलेखागार, लूव्रे का संग्रहालय, राष्ट्रीय पुस्तकालय और संस्थान**। इनमें से कुछ पुरानी चली आई संस्थाओं की बुनियाद पर बनी थीं, किन्तु उन सबका इस ढंग से पुनः संगठन, प्रसार तथा संवर्धन किया गया कि वे पूर्णतया नई लगने लगीं। **कन्वेंशन** के सम्बन्ध में निष्पक्ष निर्णय देने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि जो सभा अपने आतंक के राज्य के लिए इतनी बदनाम है उसी ने सभ्यता की ये अमर सेवाएँ कीं। **गणतन्त्र** के अनेक विजयोपहार इतने शानदार और उसकी सफलताओं का लेखा इतना आदरणीय था कि बाद में भी पीढ़ियों ने उनसे प्रेरणा और शिक्षा ग्रहण की।

कन्वेंशन की शान्तिमय सफलताएँ

दशमलव व्यवस्था

सार्वजनिक शिक्षा की समस्या

महत्त्वपूर्ण शिक्षा संस्थाओं की स्थापना

अध्याय ७

संचालक-मण्डल

संचालक-मण्डल ने २७ अक्टूबर, १७९५ से १९ नवम्बर, १७९९ तक शासन किया। १७९५ के संविधान के अनुसार **गणतन्त्र** की कार्य-पालिका शाखा का जो रूप निश्चित हुआ, उसी का नाम **संचालक-मण्डल** रक्खा गया। उसका चार वर्ष का इतिहास अनिश्चित तथा संकटपूर्ण रहा और अन्त में बलपूर्वक उसको उखाड़ फेंका गया।

संचालक-मण्डल (१७९५-१७९९)

सबसे पहली और गम्भीर समस्या, जिसका संचालक-मण्डल को सामना करना पड़ा, युद्ध को जारी रखने की थी। जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, प्रुशिया, स्पेन और हालैण्ड ने युद्ध बन्द कर दिया था और **कन्वेंशन** के साथ सन्धि कर ली थी। किन्तु इंगलैण्ड, आस्ट्रिया, पीमोंट तथा जर्मनी के छोटे-छोटे राज्य अभी तक **गणतन्त्र** के विरुद्ध मैदान में डटे हुए थे। इसलिए **संचालक-मण्डल** का पहला कर्त्तव्य था युद्ध जारी रखना और शत्रुओं को परास्त करना। फ्रांस ने अस्ट्रियायी नीदरलैण्ड्स अर्थात् आधुनिक बेल्जियम को पहले ही रौंद डाला था और अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था, किन्तु आस्ट्रिया युद्ध हारे बिना फ्रांस की विजय को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो सकता था। इसलिए **संचालक-मण्डल** ने इस ओर सबसे पहले ध्यान दिया और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मजबूती से कदम उठाए। चूंकि फ्रांस से आक्रमणकारियों को पीछे खदेड़ दिया था इसलिए उसे अपनी भूमि पर अब लड़ाई नहीं लड़नी थी, बल्कि अब वह स्वयं आक्रमणकारी बन गया, और आक्रामक फ्रांसीसी सेनाओं द्वारा योरोप के विभिन्न देशों की विजय आरम्भ हुई, जिसका अन्त में २५ वर्ष बाद आधुनिक युग के महानतम सेनानायक यदि उसे सम्पूर्ण इतिहास का महानतम सेनानायक न भी माना जाय—के पतन के साथ हुआ। **संचालक-मण्डल** ने आस्ट्रिया पर दो ओर से साथ-साथ आक्रमण करने की योजना बनाई। एक सेना को दक्षिणी जर्मनी में होकर डेन्यूब नदी की घाटी को

उसकी पहली समस्या युद्ध का संचालन

आस्ट्रिया के विरुद्ध अभियान

पार करके वीना पहुँचना था। इस लड़ाई का क्षेत्र आल्प्स के उत्तर में था। आल्प्स के दक्षिण में, अर्थात् उत्तरी इटली में फ्रांस के दो मुख्य शत्रु थे. पीमोण्ट अथवा सार्डीनियाँ और आस्ट्रिया। आस्ट्रिया का पो घाटी के केन्द्रीय तथा समुद्र भाग लोम्बार्डी पर आधित्य था और मिलान उसकी राजधानी थी। जर्मनी के आक्रमण का भार जोर्दा और मीरू को सौंपा गया; और इटली का नेपोलियन वोनापार्ट को, जिसने उसका प्रयोग अतुलनीय ख्याति और शक्ति के शिखर पर चढ़ने के लिए सीढ़ी के रूप में किया।

नेपोलियन वोनापार्ट; वंश से इतालवी, जन्म से कोर्सिकी और राष्ट्रीयता से फ्रांसीसी

नेपोलियन वोनापार्ट का जन्म १७६९ में कोर्सिका द्वीप में स्थित अजासिओ नामक स्थान पर हुआ था। इससे कुछ ही पहले उस द्वीप को जिनोआ ने फ्रांस के हाथों वेच दिया था। नेपोलियन का परिवार एक इतालवी वंश का था, किन्तु २५० वर्ष से इस द्वीप में निवास करता आया था। उसका पिता चार्ल्स वोनापार्ट सामन्ती घराने का था, किन्तु वकालत का पेशा करता, और दरिद्र, प्रमादी तथा विलासप्रिय था। उसकी माता लतीतिया रमोलिनो अत्यन्त सुन्दर स्त्री थी, उसकी निर्णय-बुद्धि अद्भुत तथा शक्ति असाधारण थी। "राजाओं की इस माता" की शिक्षा साधारण कोटि की हुई थी, इसलिए वह फ्रांसीसी भाषा बोलने में उपाहासास्पद भूलें करती। उसके १३ सन्तान थीं, जिनमें से आठ, पाँच पुत्र और तीन पुत्रियाँ, जीवित रहीं और बढ़ कर सयानी हुईं। सबसे छोटा वालक जरोम जिस समय तीन वर्ष का था, पिता की मृत्यु हो गई। नेपोलियन दूसरा पुत्र था। उसने पेरिस तथा ब्रीने के सैनिक विद्यालयों में निःशुल्क छात्र के रूप में शिक्षा पाई।

फ्रांस के सैनिक विद्यालयों में नेपोलियन की शिक्षा

वह अपने साथियों के बीच अत्यन्त दुःखी और उदास रहता, क्योंकि वे उसे तुच्छ समझते थे। कारण यह था कि वे अमीर थे और वह गरीव, वे फ्रांस के कुलीन परिवारों के थे और उसका पिता अत्यन्त साधारण स्थिति का व्यक्ति था; और चूँकि उसकी भाषा इतालवी थी इसलिए वह फ्रेन्च भाषा विदेशी की भाँति वोलता था। वास्तव में उसके साथी उसे वे सब कष्ट और यातनाएँ पहुँचाते जिनमें स्कूलों के विद्यार्थी दक्ष होते हैं। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया और वह अकेला तथा मौन रहने लगा, और अपने साथियों में अप्रिय बन गया। किन्तु, उसे इस वात की चेतना थी कि प्रतिभा और उत्साह में मैं किसी से कम नहीं हूँ इसलिए वह उनसे घृणा करता था। अपने घर को जो पत्र वह लिखता वे बहुत गम्भीर और स्पष्ट होते और उनसे उसकी चतुराई प्रकट होती। उसका गणित वहुत अच्छा था और इतिहास तथा भूगोल में उसकी रुचि थी। १६ वर्ष की अवस्था में उसने सैनिक स्कूल छोड़ दिया और तोपखाने में द्वितीय श्रेणी का लेफ्टीनेण्ट वन गया। इस समय उसके एक अध्यापक ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है, "वह बातचीत और व्यवहार में गम्भीर, और अध्ययनशील है। हर प्रकार के मनोविनोद की अपेक्षा उसे पढ़ना अधिक पसन्द है। सर्वश्रेष्ठ लेखकों की रचनाएँ पढ़ने में उसे वहुत आनन्द आता है। सूक्ष्म विज्ञानों के अध्ययन में वह परिश्रम से काम लेता है तथा अन्य चीजों की तनिक भी परवाह नहीं करता। वह अधिकतर मौन रहता और एकान्तप्रिय है। उसका स्वभाव अस्थिर, भावुक तथा अहंकारपूर्ण है और वह सदैव अपने में ही लीन रहता है। वह वातचीत कम करता किन्तु उत्तर शीघ्रता और स्फूर्ति के साथ देता है। उसके व्यंग्य अविलम्ब और तीक्ष्ण

होते हैं। अपने सम्बन्ध में उसके विचार बहुत ऊँचे हैं, और उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ तथा अभिलाशाएँ असीम हैं, वह सहानुभूति तथा संरक्षण के लिए योग्य पात्र है।"

नवयुवक बोनापार्ट ने १८ वीं शताब्दी के मादकतापूर्ण क्रान्तिकारी साहित्य का अध्ययन किया, वाल्तेयर, तुर्गो और विशेषकर रूसो की रचनाओं का। बाद में वह कहा करता, 'जब मेरे पास कुछ भी काम करने को न होता तब भी मैं सोचा करता कि मेरे पास खोने के लिए समय नहीं है। उप-लेफ्टीनेण्ट के पद पर उसका वेतन बहुत ही कम था। एक बार उसने अपनी माता को लिखा, "काम के अतिरिक्त यहाँ मेरे पास अन्य कोई साधन नहीं है। मैं बहुत कम सोता हूँ। १० बजे सोता और ४ बजे जग जाता हूँ। मैं दिन में केवल एक बार ३ बजे भोजन करता हूँ।" उसने इतिहास का विस्तृत अध्ययन किया, यह समझकर कि इतिहास सत्य की खोज में दीपक का काम देता और कुविचारों का नाश करता है। उसने लिखने का भी भी अभ्यास किया। निबन्ध और उपन्यासों के अतिरिक्त कोर्सिका का इतिहास लिखने में उसे विशेष रुचि थी, क्योंकि इस समय अपनी मातृभूमि का इतिहासकार बनने की उसकी सबसे बड़ी आकाँक्षा थी वह फ्रांस से घृणा करता और कोर्सिका के स्वतन्त्रता-संग्राम के स्वप्न देखा करता। उसने लम्बी-लम्बी छुट्टियाँ लेकर कोर्सिका में बहुत समय बिताया। किन्तु छुट्टियों से अधिक ठहरने के कारण उसे अन्त में सेना में अपने पद से हाथ धोने पड़े। उस पद का वेतन कम था, फिर भी खाने का काम तो चलता ही था। १७९२ में वह अपने पद को पुन: प्राप्त करने की आशा से फिर पेरिस लौट गया। परन्तु क्रान्ति से उत्पन्न अव्यवस्था के कारण उसका काम न बन सका। बेकार तथा साधनहीन होने से वह पैसे-पैसे के लिए मुहताज हो गया। सस्ते होटलों में वह कुछ खा पी लेता, अपनी घड़ी भी उसे बेचनी पड़ी। किन्तु इस बेकारी तथा निष्क्रियता की दशा में भी उसने क्रान्ति की कुछ घटनाओं को बड़े चाव से देखा, जैसे २० जून को भीड़ द्वारा तुइलेरी पर आक्रमण जब कि लुई सोलहवें को लाल टोपी पहनने के लिए वाध्य किया गया; १० अगस्त का धावा, जब कि उसे गद्दी से उतारा गया, सितम्बर के हत्याकाण्ड इत्यादि। बोनापार्ट की राय थी यदि सैनिकों ने सौ दोसौ आदमियों को गोली से भून दिया होता तो भीड़ भाग खड़ी होती अगस्त, १७९२ में उसे अपना पद फिर मिल गया। १७९३ में उसने तूलो पर पुन: अधिकार करने में गणतन्त्र की सहायता की और १७९५ में वेण्डेमेयर के विद्रोह से कन्वेंशन की रक्षा करके ख्याति प्राप्त की। दूसरी घटना उसके भाग्य के लिए बड़ी शुभ सिद्ध हुई। पेरिस की भीड़ पर उसने विजय प्राप्त की किन्तु एक स्त्री ने स्वयं उसे जीत लिया।

परवर्ती जीवन में नेपोलियन प्रियवास "जब तोपखाने का जवान लेफ्टीनेन्ट था"

क्रांति का दर्शक

उसने गणतन्त्र की उपयोगी सेवा की

जोजेफाइन ब्यूहारने नाम की एक विधवा पर वह पागल की भाँति आसक्त हो गया था। वह आयु में उससे छ: साल बड़ी थी। उसके पति को रोब्सपियेर के पतन के कुछ ही दिन पहले गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया था। उसके २ बच्चे थे, और आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। यद्यपि जोजेफाइन ने अपना हृदय काबू से बाहर नहीं होने दिया, फिर भी नेपोलियन की आसक्ति के उद्वेग और दृष्टि की तीव्रता का

बोनापार्ट का जोजेफाइन ब्यूहारने से विवाह

उस पर गहरा प्रभाव पड़ा, वल्कि सचमुच उससे आतंकित सी हो गई और अन्त में उसके उत्कट तथा आतुरतापूर्ण प्रणय-निवेदन के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उसे कुछ घवड़ाहट तो हुई किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट दिखाई दिया कि इस व्यक्ति का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। बोनापार्ट ने एक वार उससे कहा था, "क्या वे (संचालक-मंडल के सदस्य) यह समझते हैं कि मेरी उन्नति के लिए उनका संरक्षण आवश्यक है। एक दिन आयेगा जवकि वे मेरा संरक्षण प्राप्त करके अपने को धन्य समझेंगे। मेरी तलवार मेरी वगल में है और इसके सहारे मैं बहुत दूर तक जा सकता हूँ।" जोजेफाइन ने लिखा, "उसके इस अनर्गल आश्वासन का मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि मुझे विश्वास हो गया है कि इस आदमी के लिए सब कुछ सम्भव है और कल्पनाओं को देखते हुए कौन कह सकता है कि यह किस काम की ओर आकृष्ट हो जाय और क्या कर वैठे?

बोनापार्ट इटली की सेना का सेनापति नियुक्त

विवाह से दो दिन पहले वोनापार्ट को इटली की सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। उसकी तलवार उसके वगल में थी। अव उसको उसने म्यान से निकाला और स्मरणीय सफलताएँ प्राप्त कीं। विवाह के दो दिन वाद अपनी पत्नी को पेरिस में छोड़कर उसने मोर्चे के लिये प्रस्थान किया; उस समय विरह से उनका हृदय विह्वल आवश्य था, किन्तु साथ ही साथ उसमें उत्साह की उमंगें भी हिलोरें ले रहीं थीं, क्योंकि अव उसके हाथ में कुछ कर दिखाने का अवसर आ गया था। वह समझता था कि अव मैं महान् सफलता के किनारे आ खड़ा हुआ हूँ, इसलिये उसका शरीर तथा आत्मा दोनों ही प्रज्ज्वलित हो रहे थे। प्रत्येक पडाव से उसने पत्नी को भवुकतापूर्ण प्रेम-पत्र लिखे और शत्रु का सामना करने और कीर्ति का वलपूर्वक अपहरण करने के लिये तेजी से आगे वढ़ता गया। उसकी जन्मभूमि कोर्सिका की उग्रता उसके रक्त में थी; कोर्सिका योद्धाओं का देश था, प्रतिशोध, दुर्दमनीय क्रोध, अनियंत्रित शक्ति, और अपार शूरत्व की भूमि था। वीस वर्ष पहले उसके सम्वन्ध में रूसो ने भविष्यवाणी की थी, "मुझे कुछ ऐसा भास रहा है कि एक दिन यह छोटा सा द्वीप यूरोप को विस्मित कर देगा।" वह दिन अव आ गया था। जिस वाज को उसने पालापोपा था अव वह उड़ने की तैयारी कर रहा था, और विश्व को विस्मय में डालने जा रहा था।

कोर्सिका का सच्चा लाल

वोनापार्ट को अनेक उल्लेखनीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पहली कठिनाई यह थी कि वह युवक था, और दूसरी यह कि उसे वहुत कम लोग जानते थे। इटली में फ्रांस की सेना तीन वर्ष से मैदान में डटी हुई थी। उसके अधिकारी अपने नये सेनापति से अपरिचित थे। उनमें से कुछ तो आयु में उससे वड़े थे और काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे, जव कि नेपोलियन का मुख्य वीरतापूर्ण कार्य केवल पेरिस की सड़कों की लड़ाई था। इसलिये अपने से छोटे इस अधिकारी की नियुक्ति उन्हें वुरी लगी। फिर भी जैसे यह दुवला-पतला, छोटे कद का, गोल कन्धोंवाला और वीमार-सा नवयुवक पहुँचा वे तुरन्त ताड़ गये कि असली सेनापति आ गया है। उनके साथ वह कम मिलता-जुलता, और संक्षिप्त तथा अधिकारपूर्ण ढंग से वातचीत करता। वाद में एक वार उसने कहा कि "उन लोगों पर जो आयु में मुझसे इतने वड़े थे अधिकार

बोनापार्ट की कठिनाइयाँ

रखने के लिये इस प्रकार का व्यवहार आवश्यक था।"

सेनापतियों के साथ उसका व्यवहार

उसकी लम्बाई केवल पाँच फुट और दो इंच थी, किन्तु मसीना कहता है कि" जब वह अपनी सेनापति की टोपी पहिन लेता तो पहले से दो फुट अधिक लम्बा लगने लगता। उसने हम लोगों से हमारे दलों की स्थिति, प्रत्येक टुकड़ी के मनोबल और प्रभावकारी शक्ति के बारे में पूछ ताछ की, हमें क्या-क्या करना था यह निश्चय किया और कहा कि कल मैं सेना का निरीक्षण करूँगा और परसों शत्रु पर धावा बोल दिया जायगा।" औगेरू नाम का एक बूढ़ा सिपाही अपने गँवारपन के लिये बहुत प्रसिद्ध था, भाँति-भाँति की कसमें खाया करता था और अपनी लम्बाई का उसे बहुत घमंड था। नेपोलियन जब आया तो प्रारम्भ में उसने गालियाँ बकीं, घृणा प्रकट की और विद्रोह की प्रवृत्ति दिखलाई। उसे सेनापति के सन्मुख प्रस्तुत किया गया; वह क्षण काटना उसके लिये बहुत कठिन हो गया। औगेरू ने कहा, "उसे देख कर मैं आतंकित हो गया। उसकी पहिली ही दृष्टि ने मुझे कुचल दिया। मैं समझ नहीं सकता कि यह कैसे हुआ।"

इन अधिकारियों को यह समझने में देर नहीं लगी कि यह जवान सेनापति कुछ करने आया है और युद्ध की कला इसको भली भाँति आती है। वह जल्दी-जल्दी बोलता किन्तु उसकी बात संक्षिप्त और तीक्ष्ण होती। अपने आदेश वह संक्षेप में और बहुत ही स्पष्ट रूप से देता और यह भी जतला देता कि आज्ञा पालन करना आवश्यक है। प्रारम्भ में जिन लोगों ने उदासीनता दिखलाई थी वे अब बड़े उत्साह के साथ सहयोग देने के लिये तैयार हो गये।

सैनिकों पर भी बोनापार्ट ने उसी विद्युत गति से अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। लम्बे अर्से से वे निष्क्रिय पड़े हुये थे और व्यर्थ के दाव-पेच में समय नष्ट करते आये थे। उसने घोषणा की कि तुरन्त ही युद्ध

बोनापार्ट का सैनिक के साथ व्यवहार

प्रारम्भ करना है। तत्काल ही सिपाहियों ने सहयोग देने का वचन दिया। उनके हृदय विश्वास तथा उत्साह से उमंगें लेने लगे। जिस समय नेपोलियन ने भार सँभाला सेना की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। उसका उत्साह भंग हो चुका था, कपड़ों के नाम पर चिथड़े पहनने को थे, अधिकारियों तक पर जूते न थे, और भोजन भी आधा मिलता था। उसने एक बुलेटिन जारी किया और उसके द्वारा सैनिकों में अपना जैसा उल्लास भर दिया और विश्वास उत्पन्न कर दिया कि सम्भव की भी सीमाएँ पार की जा सकती हैं और सब कुछ इच्छा और मनोबल पर निर्भर रहता है। ऐसा लगता था कि मानो वह उनके रक्त में प्रवेश कर गया हो और वे अधैर्य तथा आशा से प्रज्जलित होने लगे। "उसमें भविष्य के लिए इतनी अधिक प्रेरणा है," इन शब्दों के मरमों ने उसके प्रभाव को व्यक्त किया।

बोनापार्ट का सेना के नाम बुलेटिन

बुलेटिन में कहा गया, "सैनिको, तुम्हें पर्याप्त भोजन नहीं मिलता और तुम लगभग नंगे हो; सरकार तुम्हारी बहुत ऋणी है, किन्तु वह तुम्हें कुछ दे नहीं सकती। तुम्हारा धीरज और तुम्हारा साहस जो तुमने इन ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियों में प्रदर्शित किया है सराहना के योग्य है, किन्तु इससे तुम्हें यश की छाया भी नहीं मिलती, एक भी किरण तुम पर प्रतिबिम्बित नहीं होती। मैं तुम्हें संसार के सबसे अधिक उर्वरा

मैदान में ले चलूँगा। धनी प्रान्त और बड़े-बड़े नगर तुम्हारे अधिकार में होंगे ; वहाँ तुम्हें सम्मान, यश और सम्पत्ति प्राप्त होगी। इटली के सैनिको ! क्या यह हो सकता है कि तुम में साहस और अध्यवसाय का अभाव पाया जाय ?"

उसके मानस-पटल पर लौकिक और भौतिक लाभ के रंगीन चित्र उभरने लगे, और अपने सैनिकों के सामने भी उसने वे चित्र यत्नपूर्वक प्रस्तुत किये। कई शताब्दियों पहले मुहम्मद ने सांसारिक लाभ और वैभव के चित्र खींच कर अपने अनुयायियों के उत्साह को उभाड़ा था जिससे वे विस्मयकारी कार्य सम्पादित कर सके थे और चकाचौंध करने वाली सफलताएँ प्राप्त की थीं ! बोनापार्ट ने अपने जीवन में अनेक बार मुहम्मद से प्रेरणा ग्रहण की।

बोनापार्ट का इटली का अभियान

बोनापार्ट का इटली का यह पहला युद्ध सैनिक विशेषज्ञों की दृष्टि में युद्ध की कला का अपने ढँग का एक अनूठा उदाहरण है और श्रेष्ठतम कोटि के रण-कौशल का परिचायक है। यह अभियान अप्रैल १७९६ से अप्रैल १७९७ तक चला। उसका सारांश इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, "वह आया, उसने देखा, और उसने जीत लिया।" उसे सार्डीनिया और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेवाओं का मुकाबला करना पड़ा। संख्या में उसकी सेना शत्रु सेना के मुकाबले बहुत कम थी, इसलिए उसकी मुख्य नीति थी कि शत्रु सेनाओं को आपस में मिलने न दिया जाय और फिर एक-एक करके उनको परास्त किया जाय। उसके शत्रुओं की सम्मिलित सेनाओं की संख्या ७०,००० थी और उसके पास इसके लगभग आधे सैनिक थे। आस्ट्रिया और सार्डीनिया की सेनाओं के बीच में घुस कर उसने पहले डोगी के स्थान पर आस्ट्रियाई सेना को परास्त किया और पूर्व की ओर खदेड़ दिया। फिर पश्चिम की ओर मुड़कर सार्डीनिया पर टूट पड़ा और मोंडवी नामक स्थान पर उसको हराकर उनकी राजधानी टूरिन के लिए मार्ग खोल दिया।

बोनापार्ट ने सार्डीनिया की सेना को संधि करने पर बाध्य किया मई (१७९६)

सार्डीनिया ने सन्धि की बातचीत की और अन्त में सेवाय और नाईस के प्रान्त फ्रांस को देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार नेपोलियन के उन वीरों ने, जिनके पास ठीक पोशाक भी न थी और जो चिथड़े पहने हुए थे, एक शत्रु को समाप्त कर दिया। बोनापार्ट ने इन सफलताओं का सारांश एक बुलेटिन में इस प्रकार व्यक्त किया, "सैनिकों ! १५ दिन में तुमने छः विजयें प्राप्त की हैं, २१ झण्डों, ५५ तोपों और अनेक किलों पर अधिकार कर लिया है और पीमोंट का सबसे अधिक समृद्धशाली भाग जीत लिया है। तुमने १५ सौ सैनिक वन्दी बनाए हैं और १० हजार मार डाले हैं अथवा घायल कर दिये है.........किन्तु सैनिको सचमुच अभी तक तुमने कुछ नहीं किया, अभी तुम्हें बहुत कुछ करना है, अभी तुम्हें युद्ध लड़ने हैं, नगरों पर अधिकार करना है, नदियाँ पार करनी हैं।"

आस्ट्रियायी सेना के विरुद्ध अभियान

अब बोनापार्ट ने अपना पूरा ध्यान आस्ट्रिया की सेना की ओर दिया। उसका लोम्बार्डी के प्रान्त पर अधिकार था। पो नदी के दक्षिणी किनारे के सहारे वह आगे बढ़ा और पिआसेंजा के स्थान पर उसको पार किया। आस्ट्रियायी सेनापति व्यूल्यू आद्दा नदी के उस पार चला गया। उस तक पहुँचने के लिए नेपोलियन के

पास लोदी के पुल को पार करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था। पुल की लम्बाई ३५० फुट थी और दूसरी ओर से तोपों की धुआँधार मार हो रही थी। उसको पार करना आवश्यक था, किन्तु गोलों की बौछार के बीच उसको लाँघना असम्भव प्रतीत होता था। बोनापार्ट ने अपने गोलन्दाजों को आगे बढ़ने का आदेश दिया। वे आधी दूर तक भी न पहुँच पाये थे कि आस्ट्रिया की तोपों ने उन्हें भून डाला, जो बच रहे वे पीछे लौटने लगे। बोनापार्ट तथा अन्य सेना नायक झपट कर टुकड़ी के आगे पहुँचे और अपने प्राणों को जोखिम में डालकर सैनिकों को प्रोत्साहित किया और परिणाम यह हुआ कि भयंकर गोलाबारी के बावजूद वे पुल को पार कर गये और आस्ट्रियायी तोपों पर अधिकार कर लिया। नेपोलियन ने इस घटना की रिपोर्ट में संचालक मंडल को लिखा, "मेरे अधीन सैनिकों ने जितने भी युद्ध अब तक लड़े हैं उनमें ऐसा कोई नहीं जिसकी तुलना लोदी के पुल की लड़ाई से की जा सके।"

लोदी का पुल

उस दिन से बोनापार्ट अपने सैनिकों का आराध्यदेव बन गया। उसने दुर्धर्ष साहस का परिचय तथा मृत्यु को चुनौती दी थी। उस समय से वे उसे स्नेहयुक्त शब्दों में "छोटा नायक" कह कर पुकारने लगे। आस्ट्रियायी सेनाओं ने मिसिओ से दूर चलकर मान्तुआ के दृढ़ दुर्ग में शरण ली। १६ मई को बोनापार्ट ने विजेता के रूप में मिलान में प्रवेश किया। मान्तुआ पर घेरा डालने के लिए उसने एक सैनिक दल भेज दिया। यह दुर्ग आगे की विजय की कुंजी था। इस पर अधिकार किए बिना वह आल्प्स में और वियाना की ओर नहीं बढ़ सकता था। इसके विपरीत यदि आस्ट्रिया के हाथ से मान्तुआ निकल जाता तो इटली पर से उसका अधिकार उठ जाना निश्चित था।

मान्तुआ के लिये संघर्ष

अगले आठ महीनों में, जून १७९६ से जनवरी १७९७ तक, आस्ट्रिया ने उस किले का घेरा तोड़ने के लिए आल्प्स से ४ बार सेनाएँ भेजी। किन्तु प्रत्येक बार उन्हें पराजय भुगतनी पड़ी। इसका श्रेय फांसीसी सेनापति की अथक क्रियाशीलता तथा उद्देश्य की स्पष्टता को था। उसने अपनी पहली नीति का ही अनुसरण किया। शत्रु दलों को उसने कभी संयुक्त नहीं होने दिया और उनको एक-एक करके परास्त किया। यद्यपि उसकी सेना शत्रु की सम्पूर्ण सेना की तुलना में बहुत कम थी, किन्तु वह आक्रमण तभी करता जबकि शत्रु सेना को विभक्त पाता और इस प्रकार युद्ध के मैदान में उसकी सेना की संख्या शत्रु दल से अधिक हो जाती। यह युद्ध वास्तव में यौवन और बुढ़ापे के बीच संघर्ष था। बोनापार्ट की अवस्था केवल २७ वर्ष की थी जबकि वुर्नजर तथा अन्य आस्ट्रियायी सेनापपि ७० से ऊपर पहुँच चुके थे। यह प्राचीन प्रणाली के विरुद्ध नवीन प्रयोग था, रुढ़िगत विचारों तथा मौलिकता के बीच टक्कर थी। आस्ट्रियायी सेनाएँ आल्प्स के दर्रों से दो दलों में आती थीं। इससे बोनापार्ट को अच्छा अवसर मिल जाता और आश्चर्यजनक ढंग से वह इसका प्रयोग करता। दो वर्ष बाद मोरू ने एक बार उससे कहा, "युद्ध में बड़ी संख्या की छोटी पर सदैव विजय होती है।" नेपोलियन ने उत्तर दिया, "तुम्हारी बात ठीक है। जब कभी मुझे थोड़ी सेना लेकर बड़ी शत्रु सेना का सामना

बोनापार्ट की युद्ध प्रणाली

करना पड़ता है तो मैं अपने दल को बड़ी शीघ्रता से व्यवस्थित करता और शत्रु सेना के एक पार्श्व पर वज्र की भाँति टूट पड़ता और उसको चकनाचूर कर देता, फिर तज्जनित अव्यवस्था से लाभ उठाकर अपनी पूरी सेना के साथ शत्रु को दूसरे स्थान पर घर दबाता। इस प्रकार मैं उसको थोड़ा-थोड़ा करके परास्त करता और इस लिए अन्त में बड़ी संख्या की सदैव छोटी संख्या पर विजय होती।" इन सफलताओं का श्रेय बोनापार्ट के सैनिकों की तीव्र गतिशीलता को था। उसके सैनिक कहा करते थे "वास्तव में हमारी टाँगें ही लड़ाइयों को जीतती हैं।" बोनापार्ट अपने सैनिकों को ढरकी की भाँति तेजी से आगे पीछे फेंकता रहता। इस प्रकार अपनी संख्यागत दुर्बलता को वह गति की तीव्रता से पूरा करता। किन्तु यह भी स्मरण रखने की बात है कि उसकी सफलताओं के लिए शत्रुओं की गलतियाँ भी जिम्मेदारी थीं। जब उन्हें अपने दलों को संयुक्त रखना चाहिए था तब वे उन्हें विभक्त कर देते।

इतने पर भी उसके रणकौशल तथा शत्रुओं की भूलों के बावजूद संघर्ष घमासान हुआ और अनेक बार वह हारने से बाल-बाल बचा। अरकोला की लड़ाई तीन दिन तक चली और लोदी की भाँति इस बार भी सफलता पुल को हस्तगत करने पर निर्भर थी। आस्ट्रियायी सेना के दो दल एक दूसरे के कुछ ही मील दूर पर थे। यदि आस्ट्रियायी सैनिक पुल पर अधिकार रख सकते तो दोनों दल आकर अवश्य मिल जाते। बोनापोर्ट ने एक झण्डा अपने हाथ में ले लिया और पुल पर झपटा। उसके अधिकारी भी उसके पीछे दौड़ पड़े आस्ट्रियायी सैनिकों ने उन पर भयंकर अग्निवर्षा की। अनेक अधिकारी मारे गए और टुकड़ियाँ पीछे हटने लगीं किन्तु उन्होंने अपने सेनापति को संकट में छोड़ा नहीं और उसकी बाँहें तथा कपड़े पकड़ कर उसे घसीट ले गए। वह दलदल में फँस गया और डूबने लगा। तुरन्त ही आवाज उठी, "सेनापति को बचाने के लिए आगे बढ़ो!" और तत्क्षण फ्रांसीसियों का क्रोध उमड़ पड़ा। उन्होंने आस्ट्रियायी सैनिकों को पीछे खदेड़ दिया और अपने सेनापति को बचा लिया। इतना स्मरण रखना चाहिए कि इस बार उसने लोदी के पुल के वीर कार्य को दुहराया नहीं। उसने पुल पार नहीं किया किन्तु दूसरे दिन उसकी सेना विजयी हुई और आस्ट्रियायी दलों को फिर एक बार पीछे लौटना पड़ा। तीन दिन का युद्ध समाप्त हो गया। (नवम्बर १५-१७, १७७६)।

अरकोला की लड़ाई (नवम्बर १५-१७, १७९६)

दो माह के उपरान्त मान्तुआ के बचाव के लिए एक आस्ट्रियायी सेना आल्प्स से उतर कर फिर नीचे आई और रिवोली के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। जनवरी १३-१४, १७९७ को बोनापार्ट ने आस्ट्रियायी सेना को धूल चटा दी और खदेड़ कर आल्प्स की ओर भगा दिया। दो महीने के बाद मान्तुआ के रक्षकों ने हथियार डाल दिए। अब बोनापार्ट ने आल्प्स की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। इस बार आस्ट्रियायी सेना का संचालन जवान अर्कड्यूक चार्ल्स कर रहा था। किन्तु रणनीति में नेपोलियन ने उस योग्य शत्रु को भी मात कर दिया और बराबर पीछे खदेड़ता गया। जब वह ७ अप्रैल को वीना से १०० मील दूर पर स्थित लिओवेन नामक

रिवोली का युद्ध (जनवरी १३-१४, १७९७)

बोनापार्ट ने आस्ट्रिया को सन्धि के लिए बाध्य किया। लिओबेन की विराम सन्धि (अप्रैल, १७९७)

नगर में पहुँच गया तो आस्ट्रिया ने सन्धि की प्रार्थना की। इस प्रकार अथक प्रयत्नों के स्मरणीय वर्ष की परिसमाप्ति हुई। १२ महीने के अभियान में उत्तरी इटली में फ्रांसीसी सेनाओं ने १८ बड़ी और ६५ छोटी लड़ाईयाँ लड़ीं। बोनापार्ट ने एक बुलेटिन निकाल कर अपनी सेना को बतलाया "इसके अतिरिक्त तुमने ३०,०००,००० फ्रैंक पेरिस को भेजे हैं। तुमने पेरिस के संग्रहालय को प्राचीन तथा आधुनिक इटली की ३०० सर्वश्रेष्ठ कृतियों द्वारा, जिनको उत्पन्न करने में ३० पीढ़ियाँ लगी हैं, सुसज्जित किया है। तुमने योरोप के सबसे अधिक सुदूर देश को जीत लिया है। प्रथम बार फ्रांसीसी झण्डे एड्रियाटिक के तट पर फहरा रहे हैं।" एक दूसरी घोषणा में उसने कहा कि तुमने सदैव के लिए अपने को यश से विभूषित कर लिया है और जब अपना काम पूरा करके तुम घर लौटोगे तो तुम्हारे साथी नागरिक तुम्हारी ओर इंगित करके कहेंगे, "वह इटली की सेना में लड़ा था।"

इस प्रकार उसका भाग्य सूर्य पूर्ण मध्यान्ह कालीन प्रकाश से देदीप्य मान हो उठा। और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसको भी यही विश्वास था।

संचालक-मण्डल की ओर बोनापार्ट का रुख

इटली के सम्पूर्ण अभियान में बोनापार्ट ने ऐसे व्यवहार किया मानो वह राज्य का प्रमुख था, उसका नौकर नहीं। कभी-कभी वह संचालकों की सलाह का अनुसरण करता किन्तु बहुधा उसकी उपेक्षा करता और अनेक बार तो उसने उसके विपरीत कार्य किया। उसने अपना सारा ध्यान केवल सैनिक मामलों में ही नहीं लगाया, वरन् राजनीतिक दाव-पेंच भी खेले और उसी विश्वास और सफलता के साथ जिसका परिचय उसने युद्ध-क्षेत्र में दिया था। अब वह राज्यों का रचयिता और ध्वंसकर्त्ता बन गया। इस समय इटली एक संयुक्त देश नहीं था, बल्कि अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों का जमघट मात्र था। बोनापार्ट ने इनमें से किसी को अपने पूर्व रूप में नहीं छोड़ा। जिनोआ के अभिजातंत्रीय गणतन्त्र को उसने लिगूरियन गणतन्त्र का नाम दिया और फ्रांस के सदृश उसका संविधान बना दिया। पार्मा, मोडेना आदि के राजाओं को उसने अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और उनसे भारी रकमें कर के रूप में वसूल कीं। पोप को भी उसने इसी प्रकार अपमानित किया। उसके कुछ राज्य हस्तगत कर लिए किन्तु अधिकतर छोड़ दिए और भारी कर वसूल किया।

जिनोआ के साथ वर्ताव

वेनिस पर आक्रमण और उसका जीतना

आस्ट्रिया की सेनाओं की पराजय के अतिरिक्त उसका दूसरा सबसे अधिक अकीर्तिकर कार्य वेनिस के पुराने और प्रसिद्ध गणतन्त्र की विजय था। उसको जीतने के लिए उसके पास कोई समुचित बहाना न था। फिर भी अपनी शैतानी चाल से उसको समाप्त कर दिया। अँग्रेज कवि वर्डसवर्थ ने जब वेनिस के साथ किए गए इस दुर्व्यवहार का चिन्तन किया तो उसके मन में विचार आया—"एक समय था जब कि पूर्वी जगत के शानदार देश तुमको कर दिया करते थे। पश्चिम की रक्षा का भार तुम पर था। तुम्हारे उदय के समय जो तुम्हारा

यश और मूल्य था वह कभी कम नहीं हुआ। स्वतन्त्रता के सबसे बड़े पुत्र वेनिस ?" घोर अनैतिकता भी दृष्टि से इस कुकृत्य की तुलना प्रुशिया, आस्ट्रिया तथा रूस के राजाओं द्वारा पोलैण्ड के विभाजन से की जा सकती हैं। किन्तु गणतन्त्र का यह चतुर प्रतिभाशाली सेनानायक यदि चाहता तो दावा कर सकता था कि मैं अपने समय के उन राजाओं से किसी प्रकार बुरा नहीं हूँ जो अपने शासन को ईश्वरीय बताते हैं। बोनापार्ट उनसे बुरा नहीं था; उनसे अच्छा भी नहीं था; किन्तु वह उनसे कहीं अधिक योग्य था। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद उसने कूट नीति के खेल में बड़े चाव और प्रतिभा के साथ भाग लेना आरम्भ किया और उस खेल में वेनिस के उस पुराने और गर्वीले राज्य का एक गोट की भाँति प्रयोग किया।

आस्ट्रिया ने अप्रैल १७९७ में लिओबेन की विराम सन्धि करली थी। अगली ग्रीष्म ऋतु में उस सन्धि को स्थायी रूप देने का कार्य किया गया और अन्त में १७ अक्टूबर १७९२ को **कैम्पोफोर्मियो की सन्धि** पर हस्ताक्षर हो गए। ये महीने बोनापार्ट ने मिलान के निकट मोंटीवेलो के शानदार महलों में बिताए और अपने सहसा प्राप्त तथा चकाचौंध कर देने वाले वैभव तथा धन दौलत का आनन्द उठाया।

बोनापार्ट तथा उसका दरबार

यहाँ पर उसने एक सचमुच का दरबार कायम कर लिया, राजदूतों से मुलाकात करता और कलाकारों तथा साहित्यकों से घनिष्टता पूर्वक वार्तालाप करता। उसकी सेना के जवान अधिकारी भी सदैव उसे घेरे रहते। उन पर भी उसके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा था और उसके साथ-साथ उनके भी यश तथा समृद्धि में भारी अभिवृद्धि हुई थी। मोण्टीवेलो में जोजेफाइन तथा बोनापार्ट के भाई, बहनें और माता भी पहुँच गई थी। उसकी माँ ने समृद्धि में भी उसी प्रकार अपने मस्तिष्क का सन्तुलन कायम रक्खा जैसा कि उसके विपत्ति के समय रक्खा था। जीवन की इस बदली हुई स्थिति की तड़क भड़क से बोनापार्ट के सभी सम्बन्धी जगमगा उठे! अब वह नवयुवक जिसे कुछ वर्ष पूर्व अपनी घड़ी वेचनी पड़ी थी और पेरिस के सस्ते भोजनालय में ६-६ सेंट का सड़ियल खाना खाना पड़ा था, फ्रांस के पुराने राजाओं के ढंग से खुले आम भोजन करता और उत्सुक लोगों को अपनी ओर टक-टकी लगा कर देखने देता। जहाँ कहीं वह जाता, वहाँ बर्छाधारी पोल (पोलैण्ड के निवासी) अंगरक्षकों का दल उसके साथ साथ चलता।

उसकी बातचीत सहज तथा भावों और विचारों से परिपूर्ण होने के कारण सबको चकाचौंध कर देती। सर्वत्र लोग उसकी चर्चा करते हुए नहीं अघाते। उसकी कुछ बातें तो उच्च अधिकारी वर्ग में चिन्ता उत्पन्न करने वाली होतीं। एक बार उसने कहा, "अब तक जो कुछ मैंने किया है वह कुछ भी नहीं है। अभी तो मैंने जीवन के उस मार्ग पर, जिस पर मुझे चलना है, कदम ही रक्खे हैं। क्या आप यह समझते हैं कि इटली में मैंने विजय इसलिए प्राप्त की है कि इससे संचालक-मण्डल के वकीलों की अभिवृद्धि हो·······संचालक-मण्डल मुझे मेरे इस पद से वंचित करके देख ले, उसे पता लग जायगा कि असली स्वामी कौन है। राष्ट्र का प्रमुख ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो यश और गौरव से देदीप्यमान हो।" और उसने ऐसा प्रयत्न किया कि दो वर्ष बाद फ्रांस को उसके रूप में ऐसा ही प्रमुख मिल गया।

बोनापार्ट की कल्पनाओं की उड़ान

केम्पोफोर्मियों की सन्धि से यूरोप के मानचित्र में परिवर्तन की वह प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो आगामी वर्षों में विस्मयकारी ढंग से जारी रही। इस अवसर पर नए राजनीतिक सिद्धान्तों के समर्थक फ्रांस और पुराने सिद्धान्तों के पोषक आस्ट्रिया ने एक ही प्रकार के तरीकों से काम लिया। दोनों ने ही डटकर सौदा किया और अपने अपने दाँव पेंच घाले। उसके परिणामस्वरूप जो समझौता हुआ, वह फ्रांसीसी क्रान्ति के सिद्धान्तों के पूर्णतया विरुद्ध थे। न तो राष्ट्रों के आत्म निर्णय के सिद्धान्त की ही चिन्ता की गई और न प्रभुत्व के सिद्धान्त पर ही अमल किया गया। समझौता स्पष्टतया शक्ति पर आधारित था, अन्य किसी चीज पर नहीं। उसके द्वारा केवल तलवार के निर्णय पर मुहर लगादी गई। फ्रांस की गृहनीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुके थे, किन्तु उसकी बाह्य नीति में कोई हेर फेर नहीं हुआ।

केम्पोफोर्मियो की सन्धि की शर्तें (अक्टूबर १७९७)

केम्पोफोर्मियों की सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया ने बेल्जियम में अपना अधिकार त्याग दिया और उसे फ्रांस को सौंप दिया। राइन नदी का पश्चिमी किनारा भी उसने फ्रांस के लिए छोड़ दिया और जर्मन राज्यों का एक सम्मेलन बुलाकर इस परिवर्तन को स्वीकार कराने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया ने लोम्बार्डी पर भी अपना अधिकार त्याग दिया और अवार आल्प्स गणतन्त्र की (सिस अल्पाइन रिपब्लिक) जिसे नेपोलियन ने लोम्बार्डी पारमा और मोडेना तथा पोप के राज्यों के कुछ भाग और वेनीशिया को मिलाकर बनाया था, मान्यता देदी। इसके बदले में वेनिस का नगर, द्वीप तथा उपान्त भूमि और डालमेशिया तथा इष्ट्रीया आस्ट्रिया के सुपुर्द कर दिए गए। इस प्रकार आस्ट्रिया का एड्रियांटिक सागर पर आधिपत्य हो गया। एड्रियांटिक अब वेनिस की झील नहीं रहा।

फ्रांस की जनता की अनुमति नहीं ली गई

फ्रांस की जनता ने वेल्जियम तथा राइन के पश्चिमी तट की प्राप्ति पर हर्ष और उत्साह प्रकट किया किन्तु वेनिश के प्रति किए गए व्यवहार से वे बड़े क्रुद्ध थे, क्योंकि यह एक गणतंत्र द्वारा दूसरे गणतंत्र का अपहरण था। किंतु उन्हें घी के साथ छाछ भी ग्रहण करनी पड़ी और अपने को स्थिति के अनुकूल बनाना पड़ा। इस प्रकार इटली के उस अभियान का अन्त हुआ जो नेपोलिन से लिये आगे को विजयों की भूमिका सिद्ध हुआ।

नेपोलियन ने इटली को केवल जीता ही नहीं था, उसने उसकी लूट भी की थी। इस अभियान को नेपोलियन ने इस सिद्धान्त पर चलाया था कि विजित देश से लड़ाई का खर्च वसूल किया जाय और साथ ही उमसे फ्रांस के कोप के लिए भी धन वसूल हो। विजित राजाओं से वोनापार्ट ने कर के रूप में भारी रकमें उगाहीं। मोडेना के ड्यूक को एक करोड़, जिनोआ गणतन्त्र को डेढ़ करोड़ और पोप को दो करोड़ फ़ेंक देने पड़े। मिलान से भी उसने भारी रकम वसूल की। इसी प्रकार उसने इटली से अपनी सेना का खर्च ही नहीं वसूल किया वल्कि फ्रांस के आए दिन के घाटे को पूरा करने के लिए संचालक मण्डल के पास भारी रकम भेजीं।

इतना ही नहीं, बोनापार्ट ने निर्लज्जता पूर्वक और व्यवस्थित ढंग से इटली की कलाकृतियों को लूटा। विजेता के रूप में उसने इस प्रकार की लूट को अपनी नीति बना लिया। इसमें तथा आगे की लड़ाइयों में जहाँ कहीं वह विजयी होता उसके आदमी कला-संग्रहालयों की तलाशी लेते और अच्छे चित्र चुन लेते और फिर उन्हें वह विजयोपहार के रूप में माँगता। इस प्रकार के आचरण से विजित देशों में कटुता फैली किन्तु फ्रांस की जनता प्रसन्न हुई।

बोनापार्ट कला-संग्रहालयों का लुटेरा

कलाकृत्तियों का पहला भण्डार जब पेरिस में पहुँचा तो जनता में भारी हर्ष और उत्साह फैल गया। बड़ी-बड़ी गाड़ियों में चित्र तथा मूर्तियाँ सावधानी से लपेट कर और बाहर लेबिल लगा कर रक्खे गए और सैनिक संगीत तथा झंडों की फहराहट के बीच उन्हें पेरिस की सड़कों पर होकर निकाला गया। जनता ने सराहना और सन्तोष के नारे लगाए। रेफिलकृत "रूपान्तर", टाइशियन कृत "ईसा", "अपोलो वेल्वीडेयर", "नव सरस्वतियाँ", "लाओकन", वीनस द मैडीसी आदि इस भण्डार की उल्लेखनीय कलाकृतियाँ थीं।

बोनापार्ट ने अपने जीवन में रेफिल, रेम्बाण्ट, रूवेन्स, टाइशियन, वानाडिक आदि प्रसिद्ध चित्रकारों के १५० से अधिक चित्रों से लूब्र के संग्रहालय को सुशोभित किया। उसके पतन के बाद इनमें से बहुत सी चीजें उनके पहले स्वामियों को लौटादी गईं, फिर भी बहुत सी फ्रांस में बनी रहीं। वेनिस के प्रसिद्ध काँसे के घोड़े जिन्हें शताब्दियों पहले वेनिस के लोगों ने कुस्तुन्तुनियाँ से लूटा था और उसी प्रकार जिन्हें कुस्तुन्तुनियाँ के लोग बहुत पहले रोम से लूट कर लाए थे, १७९७ में वेनिस की विजय के बाद पेरिस भेज दिए गए। नेपोलियन की पराजय के बाद उन्हें फिर वेनिस भेज दिया गया और पुराने स्थान पर रख दिया। १०० वर्ष तक वे वहाँ रक्खे रहे। १९१५ में वेनिसवासियों ने युद्ध में आस्ट्रिया से रक्षा करने के लिए उन्हें अन्यत्र भेज दिया।

इटली की लड़ाइयों में अपनी अद्वितीय सैनिक प्रतिभा का परिचय देकर जब बोनापार्ट पेरिस को लौटा तो वह सबकी आँखों का तारा और अपरिमित उत्सुकता का केन्द्र बन गया। वह भली-भाँति जानता था कि उत्सुकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि उसको पूर्णतया सन्तुष्ट न होने दिया जाय, क्योंकि सन्तुष्ट होने पर वह अन्य चीजों की ओर झुकने लगती है।

बोनापार्ट का पेरिस लौटना

उसका विश्वास था कि पुराने अथेंसवासियों की भाँति पेरिस की जनता भी अज्ञात देवताओं की पूजा करना अधिक पसन्द करती है इसलिए उसने अपने को जान बूझ कर पीछे रखने का प्रयत्न किया और व्यवहार तथा पोषाक में सादगी दिखलाई। परिणामस्वरूप वह नम्रता और सादगी के लिए जनता की प्रशंसा का पात्र बन गया। किन्तु वास्तव में विनम्रता उसके चरित्र का गुण नहीं था। वह बड़ी सावधानी से अपने भविष्य का अध्ययन कर रहा था और स्थिति को समझने में संलग्न था। वह संचालक मण्डल का सदस्य बनना भी पसन्द कर लेता, और एक बार वहाँ पहुँच शेष चार को निगल जाता किन्तु उसकी अवस्था केवल २८ वर्ष भी थी जबकि संचालक बनने के लिए ४८ वर्ष का होना आवश्यक था। वह किनकिनातुस की भाँति प्रतिष्ठापूर्वक पुनः अपनी पूर्व स्थिति पर लौट कर नहीं जाना चाहता था। उसने अपने यश को

अक्षुण्ण रखने का संकल्प किया। उसने यह भी भली भाँति, समझ लिया था कि समय अभी नहीं आया है—जैसा कि उसने कहा, "नासपाती अभी पकी नहीं है।" इसलिए वह स्थिति पर मनन करता रहा और उस मनन का परिणाम आश्चर्यजनक निकला।

इंगलैण्ड से अब भी युद्ध जारी

कैम्पोफोर्मियो की सन्धि के बाद फ्रांस को केवल एक देश इंगलैण्ड से लड़ना रह गया। किन्तु इंगलैण्ड अपने धन, उपनिवेशों और नौसेना के कारण फ्रांस का सबसे भयंकर शत्रु था। फ्रांस के विरुद्ध योरोपीय राष्ट्रों का जो गुट बना था उसका केन्द्र इङ्गलैण्ड ही था। उसी ने युद्ध संचालन के लिए धन से गुट के अन्य सदस्यों की भारी सहायता की थी और फ्रांस के लिए नित्य नई कठिनाइयाँ खड़ी की थीं। अपदस्थ बोर्बा वंश को भी उसने शरण दी थी। नेपोलियन ने इस समय कहा, "हमारी सरकार को सबसे पहले इङ्गलैण्ड के राजतन्त्र का नाश कर देना चाहिए नहीं तो किसी दिन उस द्वीप के निवासी हमें नष्ट कर देंगे। हमें चाहिए कि अपनी सारी शक्ति नौसेना पर केन्द्रित कर दें और इङ्गलैण्ड को बरबाद कर दें। इस कार्य में सफलता मिलने पर सारा यूरोप हमारे पैरों के नीचे आ जाएगा।" अपने सारे जीवन में वह निरन्तर इंगलैण्ड को नाश करने की बात सोचता रहा; किन्तु हर मंजिल पर उसे मुँह की खानी पड़ी। उसके नाश के निए उसने भीषण प्रयत्न किए जिनकी १८ वर्ष बाद वाटरलू के युद्ध में परिसमाप्ति हुई। अन्तिम पराजय के बाद जब वह सेंट हेलिना के टापू में बन्द कर दिया गया तो वहाँ भी यही विचार निरन्तर उसके मस्तिष्क में कार्य करता रहा।

बोनापार्ट "इंगलैण्ड की सेना" का सेनापति

संचालक मण्डल ने अब बोनापार्ट को इंगलैण्ड से लड़ने वाली सेना का सेनापति नियुक्त किया; और उसने "कर्मठ द्वीपवासियों" को नष्ट करने का पहला प्रयत्न किया। उसने तुरन्त समझ लिया कि इंगलैण्ड पर सीधा आक्रमण करना असम्भव है। इसलिए उसने एक ऐसा दुर्बल स्थान टटोल लिया जहाँ से शत्रु पर आक्रमण करना सरल था और जहाँ पर पहुँचना भी अधिक कठिन न था। वह स्थान मिस्र था, और उस पर उसने पहला आघात किया। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मिस्र अँग्रेजी साम्राज्य का अंग था; वह तो टर्की के सुलतान के अधीन था। लेकिन वह भारत के रास्ते में पड़ता था, और बोनापार्ट अपने अनेक समकालीन व्यक्तियों की भाँति समझता था कि इंगलैण्ड की शक्ति का स्रोत उसकी खानें और फैक्ट्रियाँ, उसके लोगों का मस्तिष्क और चरित्र नहीं बल्कि भारत की अतुलित सम्पत्ति है। एक बार उस नस को काट दिया जाय तो उसका विशाल ढाँचा लड़खड़ा कर धड़ाम से गिर पड़ेगा। इंगलैण्ड एक द्वीप नहीं था; एक विश्व साम्राज्य था। इसलिए वह विश्व साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले राष्ट्रों के मार्ग में एक बड़ा रोड़ा था और आज भी है। १९१४ में इंगलैण्ड के खिलाफ उसके शत्रुओं ने जो तर्क प्रस्तुत किए वे नए नहीं थे, १७९७ में खुलकर उनको व्यक्त किया जा चुका था। बोनापाट ने "समुद्रों का अत्याचारी" कह कर उसकी भर्त्सना की जैसा कि आजकल हमारे समय में कहा जाता है। यदि अत्याचार होना ही है तो यह असह्य है कि वह दूसरों के द्वारा हो। संचालकों ने उसकी मिस्र पर आक्रमण की योजना को स्वीकार कर लिया। आशा की जाती थी कि यदि एक बार मिस्र

बोनापार्ट की मिस्र पर आक्रमण की योजना

पर अधिकार हो गया तो फिर भविष्य में उसे आधार बना कर भारत पर चढ़ाई करना सरल हो जाएगा। इसके अतिरिक्त संचालकों को इस बात की भी प्रसन्नता थी कि वह पेरिस से दूर चला जाएगा; वहाँ पर उसकी लोकप्रियता उनके लिए एक भार बन गई थी, बल्कि उससे उनकी स्वयं की स्थिति संकट में थी। फिर स्वयं योजना भी फ्रांसीसी वैदेशिक नीति की परम्पराओं के अनुकूल थी। इसके अतिरिक्त यूरोप के कल्पनाप्रधान लोगों की भाँति नेपोलियन के लिए भी पूर्वी दुनियाँ में एक विशेष आकर्षण था और वह समझता था कि वहाँ चकाचौंध कर देने वाले कार्यों और सफलताओं के लिए विशेष क्षेत्र विद्यमान हैं। उसकी कल्पना थी कि पूर्व में सफलताओं के लिए अपार क्षेत्र है; वहाँ के साधन अतुल हैं और उनका अब तक कोई प्रयोग भी नहीं कर पाया है; किस भाग्य का वहाँ निर्माण नहीं हो सकता? कौन सी महत्वाकांक्षा वहाँ पूरी नहीं की जा सकती? सिकन्दर महान् को भी पूर्वी जगत ने तीव्र वेग से आकृष्ट किया था, वही दशा अब कोर्सिका के नवयुवक की हुई। उसके जटिल और सम्पन्न व्यक्तित्व की सारी शक्तियाँ उस आकर्षण से प्रज्वलित हो उठीं। एक दिन उसने स्कूल के साथी बोरीने से कहा, "इस छोटे से यूरोप में कुछ है नहीं, यहाँ महान् कार्यों और सफलताओं के लिए अधिक गुंजाइश नहीं है। ऐसी जगह तो पूर्व ही है और वहीं हमें चलना चाहिए। सभी महान् पुरुषों की प्रतिष्ठा और पौरुष का निर्माण वहीं हुआ है।" बाद में उसने एक बार कहा, "यदि मेरे मन में मिस्र जाने का सुन्दर विचार न उठा होता तो न जाने मेरा क्या होता।" उसका लालन पालन भूमध्य सागरीय वातावरण में हुआ था और इसी का वह पुत्र था। बाल्यकाल में उसने उसकी प्राचीन गाथाओं और काव्य रस का पान किया था। उसके चरित्र में अत्यधिक व्यावहारिकता और उच्छृङ्खल कल्पना का समन्वय था। इन दोनों ने ही उसे इस साहसिक कार्य के लिए प्रेरित किया।

मिस्र पर चढ़ाई की तैयारियाँ

जब एक बार निर्णय हो गया तो बड़ी तत्परता और गुप्त रूप से आक्रमण की तैयारियाँ होने लगीं। १९ मई १७९८ को बोनापार्ट ने ४०० धीमी गति वाले जलपोतों में ३८ हजार आदमी लेकर तूलों से प्रस्थान किया। उसके साथ प्रतिभाशाली युवक सेनानायकों का एकदल भी गया जिसमें बर्थियर, मुरा, डिसे, मरमों, लानेस, क्लीबर अधिक उल्लेखनीय थे। पिछले वर्ष इटली के अभियान में इन सब की योग्यता भी भली-भाँति परख ली गई थी। अपने साथ वह एक चलता फिरता पुस्तकालय भी ले गया था जिसमें प्लूटार्क कृत "जीवनियाँ", जेनाफन रचित "एनाबेसिस" और "कुरान" उल्लेखनीय ग्रंथ थे। यात्रा में १०० से अधिक प्रसिद्ध विद्वान, वैज्ञानिक, कलाकार इंजीनियर आदि भी गए क्योंकि इस अभियान का उद्देश्य केवल सैनिक विजय नहीं था, वह उस प्रसिद्ध किन्तु अपरिचित देश की उपज, रीति रिवाज, इतिहास और कला के अध्ययन को प्रोत्साहन देकर मानव ज्ञान की सीमाओं को विस्तृत करना चाहता था। इस अभियान का वास्तव में यही परिणाम सबसे अधिक स्थायी और मूल्यवान सिद्ध हुआ। उक्त विद्वानों ने मिस्र के सम्बन्ध में जो अनुसंधान और निरीक्षण किया उसको 'मिस्र का वर्णन' नामक ग्रंथ में लेखबद्ध कर दिया गया, इससे मिस्र की प्राचीन संस्कृति के अध्ययन की नींव

माल्टा पर अधिकार

पड़ी। इस अभियान में जोखिमें बड़ी भारी थीं प्रसिद्ध अंग्रेज नौ सेनापति नेलसन एक शक्तिशाली बेड़े के साथ भूमध्य सागर में पड़ा हुआ था। फ्रांसीसी बेड़ा किसी प्रकार उसकी आँख बचा कर निकल गया। मार्ग में रुक कर उसने माल्टा पर अधिकार कर लिया और उसके खजाने में उसे जो धन मिला उसे संचालकों के पास भेज दिया। जून के अन्त में वह अभीष्ट स्थान पर पहुँच कर सुरक्षापूर्वक उतर गया। नाममात्र के लिये मिस्र पर टर्की के सुल्तान का आधिपत्य था। किन्तु उसके वास्तविक शासक मामलूक थे जो एक प्रकार के सामन्ती सैनिक जाति के थे। वे बड़े कुशल और बहादुर घुड़सवार थे। किन्तु उसके पास पदाति सेना और तोपखाने का अभाव था और उनकी संख्या भी बहुत कम थी, इसलिये वे आक्रमणकारी का मुकाबला करने के योग्य न थे।

काहिरा को प्रस्थान

दो जुलाई को फ्रांसीसी सेना ने सिकन्दरिया को हस्तगत कर लिया और काहिरा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उसे भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि चढ़ाई की तैयारियाँ करते समय देश की जलवायु का ध्यान नहीं रक्खा गया था। सैनिक लोग यूरोप में प्रचलित भारी भरकम वर्दियाँ पहने हुए थे। तपते हुये रेत में चलते समय भूख, प्यास और गर्मी से उन्हें बहुत कष्ट हुआ। उनमें से अनेक तो प्यास से मर गये। भयंकर चौंध के कारण बहुतों की आँखें दुखने लगी। कुछ तो आत्म हत्या तक कर बैठे। अन्त में किसी प्रकार तीन सप्ताह के इस कष्ट और वेदना के उपरान्त काहिरा के ठीक बाहर पिरामिडों के दर्शन हुये। यहाँ पर बोनापार्ट ने मामलूकों को करारी हार दी। जिस रोमांचकारी वाक्य द्वारा उसने अपने सैनिकों को प्रोत्साहित किया वह स्मरणीय है, "सैनिको ! इन पिरामिडों के शिखरों से ४० शताब्दियाँ तुम्हें देख रही हैं।" २१ जुलाई १७९८ के इस पिरामडों के युद्ध ने काहिरा का स्वामित्व फ्रांसीसियों को सौंप दिया। मामलूक तितर बितर हो गये। उनके दो हजार आदमी खेत रहे। बोनापार्ट के बहुत कम सैनिक मारे गये।

पिरामिडों का युद्ध

नेलसन द्वारा फ्रांसीसी बेड़े का विध्वंस

फ्रांसीसियों ने देश तो जीत लिया किन्तु वे तुरन्त उसमें बन्दी बन गये। १ अगस्त को नेलसन ने फ्रांसीसी बेड़े पर जो सिकन्दरिया के पूर्व में स्थित अबूकर की खाड़ी में पड़ा हुआ था, सहसा आक्रमण कर दिया। उसने कुछ जहाज पकड़ लिये और शेष को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। केवल दो युद्ध पोत तथा एक जहाज भाग कर निकल सका। नील की इस लड़ाई का स्थान इस युग के उन युद्धों में है जो सबसे अधिक निर्णायक सिद्ध हुये हैं। नेपोलियन के लिये इंगलैण्ड की सामुद्रिक शक्ति का यह पहला स्वाद था, किन्तु यह अन्तिम नहीं था। भविष्य में भी उसे अनेक बार ऐसा ही स्वाद चखना पड़ा। इस भयंकर सर्वनाश ने बोनापार्ट की सेना का फ्रांस से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया और उसे एक गर्म तथा दरिद्र देश में फँसा दिया। किन्तु इस समाचार को सुन कर बोनापार्ट ने अपना धीरज नहीं खोया। उसने कहा, "अच्छा ! हमें चाहिये कि इसी देश में रहें और प्राचीन लोगों की भाँति महानता का परिचय दें। यह वही घड़ी है जब कि श्रेष्ठ चरित्र वाले व्यक्तियों को प्रगट होना चाहिए।" बाद में उसने एक बार फिर कहा, "कदाचित अंग्रेज लोग

हमसे उनसे भी अधिक महान् कार्य करना चाहते हैं जिनके करने का हमारा इरादा था।"

इस अवसर पर उसे भौतिक तथा नैतिक सभी प्रकार के साधनों की आवश्यकता थी। जब उसने सुना कि टर्की के सुल्तान ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी है तो जनवरी १७९९ में उसने सीरिया पर आक्रमण करने का संकल्प किया। सीरिया सुल्तान का एक प्रान्त था उनका विचार था कि नई विजयों से सैनिकों को आत्म-विश्वास पुनः जम जाएगा और सम्भवतः यूरोप को पीछे छोड़ कर भारत अथवा कुस्तुन्तुनियाँ पर आक्रमण करना भी सरल होगा। यदि उसकी यह आशा थी तो उसकी विफलता पहले से ही निश्चित थी। रेगिस्तान को पार करके सीरिया पहुँचने में उसके सैनिकों को अत्यधिक कष्ट भोगने पड़े। विशेषकर गर्मी और प्यास ने उन्हें बहुत सन्तप्त किया। आँधियों के कारण रेत के भयंकर उकूरे उठते और उनके मुकाबिले में सिपाहियों को आगे पढ़ना पड़ता मार्ग में उन्होंने किसी प्रकार गाजा और जाफा के किलों पर अधिकार कर लिया और नाजरथ के निकट टैबोर की पहाड़ी पर तुर्की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। किन्तु एकरे में उनकी प्रगति रुक गई। उन्होंने उसका घेरा डाला किन्तु वे उस पर अधिकार न कर सके क्योंकि वह समुद्र तट पर स्थित था और अंग्रेजी बेड़ा उसकी सहायता कर रहा था। अन्त में उन्होंने सहसा आक्रमण किया किन्तु भयंकर क्षति के कारण पीछे लौटना पड़ा। दो महीने तक एकरे के लिए संघर्ष चलता रहा। ताऊन फैल गया, गोला बारूद कम हो गई और बोनापार्ट को एक सामुद्रिक शक्ति द्वारा फिर हार खानी पड़ी। अपनी सेना को लेकर वह फिर काहिरा को वापस लौट गया। उसकी यह यात्रा स्मरणीय है। तपते हुए रेत और निराशा तथा विपत्तियों के भयंकर दृश्य के बीच उसने २६ दिन में ३०० मील की यात्रा पूरी की। वह ५ हजार आदमियों की बलि चढ़ा चुका था किन्तु हाथ कुछ नहीं लगा और जीवन में पहली बार उसे अवरुद्ध होना पड़ा। काहिरा पहुँच कर उसने ऐसा आचरण किया मानो स्वयं उसने विजय प्राप्त की हो; झूठे बुलेटिन भेजे और सच्चाई को प्रगट नहीं होने दिया।

सीरिया पर आक्रमण (१७९९)

एकोर का संघर्ष

कुछ सप्ताह उपरान्त उसने एक उल्लेखनीय विजय प्राप्त की। टर्की की एक सेना को जो हाल ही में आकर उतरी थी, उसने अबूकर के स्थान पर पीट दिया। इस लड़ाई का वर्णन उसने इन शब्दों में किया है, "मैंने अब तक जितनी लड़ाइयाँ देखी हैं, उनमें यह सबसे सुन्दर है। शत्रु ने जो सेना उतारी उसमें से एक भी आदमी बच कर नहीं भाग सका।" इस युद्ध में लगभग १० हजार तुर्क मारे गए। मिस्र में बोनापार्ट का यह अन्तिम वीरतापूर्ण कार्य था। अब उसने इस सम्पूर्ण कार्य को दूसरे के हाथ में छोड़ कर फ्रांस को लौटने का संकल्प किया। उसे विश्वास हो गया था कि इसका विफल होना निश्चित है। इसलिए उसने अन्यत्र अपने भाग्य की परीक्षा करने की सोची। फ्रांस से जो समाचार प्राप्त हुए उनके कारण वह लौटने के लिए और भी अधिक आतुर होने लगा। उनकी अनुपस्थिति में फ्रांस के विरुद्ध एक और नए गुट का निर्माण हो

अबूकर का युद्ध (जुलाई २५, १७९९)

बोनापार्ट का फ्रांस को लौटने का संकल्प

चुका था, फ्रांसीसी सेनाओं को इटली से निकाल दिया गया था और शत्रु स्वयं फ्रांस पर आक्रमण करने की तैयारियाँ कर रहे थे। संचालक-मण्डल अपनी अयोग्यता तथा भारी भूलों के कारण बदनाम और अप्रिय हो गया था। बोनापार्ट ने अपने सैनिकों को जिन्होंने इतने कष्ट उठाए थे, अपनी योजना बनाने का साहस नहीं किया। उसने क्लीवर को भी यह बात नहीं बतलाई, एक पत्र लिखकर उसको सेना का भार सौंप दिया। पत्र इतनी देर से पहुँचा कि क्लीवर को कुछ कहने सुनने का अवसर न मिला। बोनापार्ट ने २१ अगस्त १७९९ को बर्थियर, मुरा तथा अन्य ५ सैनिक अधिकारियों और दो तीन वैज्ञानिकों के साथ चुपचाप रात को प्रस्थान कर दिया। बाद में क्लीवर की एक धर्मान्ध मुसलमान ने हत्या कर दी और फ्रांसीसी सेना को हथियार डालने पड़े। अन्त में अगस्त १८०१ में उसे मिस्र छोड़ना पड़ा। इस प्रकार इस अभियान का अंत हुआ। बोनपार्ट के लिए मिस्र से फ्रांस पहुँचना सरल न था, क्योंकि इंगलैण्ड का जहाजी बेड़ा समुद्रों में चक्कर काट रहा था और हवाएँ खिलाफ थीं। जिस नाव में वह बैठा हुआ था, उसे कभी-कभी एकदिन में दस दस मील पीछे हटना पड़ जाता। रात को जब हवा का रुख बदलता तब कहीं वह आगे बढ़ पातीं। तीन सप्ताह तक वह भूमध्यसागर के दक्षिणी तट पर ही चक्कर काटती रहीं, तब कहीं अफ्रीका और सिसली के बीच के जलडमरूमध्य तक पहुँच पाई। उसकी रक्षा इंगलैण्ड का युद्ध पोत कर रहा था, किन्तु फ्रांसीसी रात के अँधेरे में बत्तियाँ बुझाकर चुपके से खिसक गए। कोर्सिका पहुँचकर उन्हें वहाँ कई दिन रुकना पड़ा, क्योंकि हवाएँ एकदम उनके खिलाफ थीं। द्वीप के प्रत्येक निवासी ने "यश से देदीप्यमान" अपने साथी बोनापार्ट से ऐसा व्यवहार किया मानो वह उनका सगा सम्बन्धी हो। बोनापार्ट ने जीवन में अन्तिम बार अपनी जन्मभूमि के दर्शन किए। अन्त में वह फिर फ्रांस की ओर चल पड़ा। अँग्रेजों ने किनारे तक उसका पीछा किया और वह उनके चंगुल में पड़ने से बाल-बाल बच गया। तट से पेरिस तक की यात्रा में उसका लगातार बड़ी धूम धाम से स्वागत हुआ। मार्ग में इतनी भीड़ें जमा हो जाती थीं कि उसकी गाड़ियाँ कठिनाई से आगे निकल पातीं। संध्या के समय जहाँ वह ठहरता, सर्वत्र खुशी के दीपक जलाए जाते। उसके पेरिस पहुँचने पर तो हर्षोन्माद की बाढ़ आ गई।

मिस्र से वापिस लौटना

जैसी कि उसकी आदत थी, वह ऐन वक्त पर ही पहुँचा। आखिरकार नासपाती पक चुकी थी। सरकार अप्रियता और बदनामी की अन्तिम सीमा पर पहुँच चुकी थी। अयोग्य तथा भ्रष्ट होने के साथ-साथ वह असफल भी सिद्ध हुई। संचालक मण्डल को काम करते हुए चार वर्ष हो गए थे (अक्टूबर १७९५ से नवम्बर १७९९ तक) उसका सम्पूर्ण कार्य-काल घोर विघ्नबाधाओं में बीता था। संविधान के दोषों, परिस्थितियों की जटिलताओं, निजी लाभ के इच्छुक और राज्य की तनिक भी चिन्ता न करने वाले व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षाओं और कुचक्रों के कारण देश की संस्थाएँ लगभग छिन्न-भिन्न हो चुकी थीं और चारों ओर लोग उकताकर धीरज खो बैठे थे। संचालकों तथा व्यवस्थापिका में निरन्तर कशम-कश चली आ रही थी और दो बार संचालक व्यवस्थापिका पर चोट भी कर चुके थे। एक बार, उन्होंने राजतन्त्र के समर्थक प्रतिनिधियों को गिरफ्तार करके उनके चुनाव को रद्द कर दिया था और दूसरी बार ऐसी ही कार्यवाही एक

संचालक मण्डल की अप्रियता

उस गणतन्त्रीय दल के साथ की थी। इस प्रकार उन्होंने संविधान को एक खिलौना बना रक्खा था और मतदाताओं के अधिकार कुचल दिए थे। बोनापार्ट के मिश्र चले जाने के बाद उनकी वैदेशिक नीति इतनी आक्रमक रही थी और उन्होंने इतनी भारी भूलें की थीं कि फ्रांस के विरुद्ध एक नए गुट का निर्माण हो गया जिसमें इंगलैण्ड और आस्ट्रिया के अतिरिक्त रूस भी आ मिला था। रूस ने अब अपनी एकाकीपन की नीति को छोड़ पश्चिमी योरोप के मामलों में सक्रिय हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। अबकी बार गुट को काफी सफलता मिली। उसने फ्रांस को जर्मनी के बाहर राइन के तट तक खदेड़ दिया और इटली से भी मार भगाया तथा फ्रांस पर आक्रमण की तैयारियाँ कर दीं। संचालकों की गृहनीति के कारण वांदे में एक बार फिर धार्मिक-युद्ध की आग धधक उठी थी। इन विषम परिस्थितियों में बोनापार्ट ने अपना जाल फैलाना आरम्भ किया।

फ्रांस के विरुद्ध नए गुट का निर्माण

उसने उन राजनीतिज्ञों से सम्पर्क स्थापित किया जो किसी न किसी कारण से संविधान का संशोधन वांछनीय समझते थे। इन लोगों का नेता सेज था; उसकी यह शेखी थी कि मैं प्रशासन सम्बन्धी सिद्धान्त और कला का पूर्ण पण्डित हूँ। अब वह फ्रांस में पूर्णतया निर्दोष संस्थाओं की स्थापना करने का इच्छुक था, जिनका रहस्य उसके मस्तिष्क में छिपा हुआ था। सेज का अहंकार पर्वत से भी ऊँचा था; बातचीत वह ऐसे करता था मानो देवता आकाशवाणी कर रहे हों; प्रभावोत्पादक नारे गढ़ने में वह दक्ष था और संविधान निर्माता के रूप में अत्यधिक विख्यात था। उसने कहा कि आवश्यक परिवर्तन के लिए इस समय मुझे "एक तलवार" की आवश्यकता है। लेखनी मेरी ही काम करेगी। सभी कहावतों के विपरीत घटनाचक्र ने सिद्ध किया कि तलवार के मुकाबले में लेखनी कमजोर होती है और विशेषकर जबकि तलवार को धारण करने वाला नेपोलियन बोनापार्ट जैसा कोई व्यक्ति हो। बोनापार्ट सेज को "धूर्त पुरोहित" कह कर पुकारता और उससे घृणा करता, किन्तु बावजूद इसके अपनी उन्नति के लिए साधन के रूप में उनका प्रयोग करने के लिए तैयार था। उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते हुए उसने कहा, "सही अर्थ में हमारे देश में कोई सरकार नहीं है, क्योंकि हमारा कोई संविधान नहीं है, और विशेषकर ऐसा संविधान जिसकी हमें आवश्यकता है। आपकी प्रतिभा हीं हमें वांछनीय संविधान दे सकती है।"

बोनापार्ट तथा एबे सेज

इन तथा अन्य षड्यन्त्रकारियों ने योजना बनाई कि किसी न किसी प्रकार संचालकों को अपने पद से त्यागपत्र देने को बाध्य कर दिया जाय। इस प्रकार देश में कोई कार्यपालिका न रहेगी। किन्तु, ऐसी स्थिति अधिक समय तक नहीं चल सकती, इसलिए वरिष्ठ परिषद् तथा ५०० की परिषद् को विवश होकर संविधान का संशोधन करने के लिए एक समिति की नियुक्ति करनी पड़ेगी। यह भी निश्चय किया गया कि सेज और बोनापार्ट उस समिति में घुसने का प्रयत्न करेंगे, उसके बाद फिर जैसी परिस्थिति होगी, उसके अनुसार कार्य किया जायगा। संचालकों में से दो षड्यन्त्रकारियों से मिले हुए थे और वरिष्ठ परिषद् के बहुसंख्यक सदस्य भी उनके साथ थे। इससे भी अधिक भाग्य की बात यह थी कि ५०० की परिषद् का अध्यक्ष लूसियन

शक्ति हस्तगत करने के लिए षड्यन्त्र कूप (दइतात)

बोनपार्ट, नेपोलियन का भाई था। यह व्यक्ति यद्यपि अधिक योग्य और गम्भीर न था, फिर भी शान्त मस्तिष्क का और अच्छा वक्ता था। संकट के समय षड्यन्त्रकारियों की उसने बहुत सहायता की। इस प्रकार ब्रूमेयर के महीने में कूप दा इतात के लिए षड्यन्त्र रचा गया, इससे नेपोलियन के हाथ में शक्ति आ गई और वह एक बड़े राज्य का शासक बन गया और इस प्रकार यूरोप के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। अँग्रेजी भाषा में कूप द इतात के लिए कोई शब्द नहीं है (और हिन्दी में भी उसके लिए कोई शब्द नहीं है अनु०) क्योंकि इस शब्द से जिस चीज का बोध होता है उनसे अँग्रेजी भाषी जातियाँ अपरिचित हैं। इसका अर्थ है राज्य पर अथवा शासन सत्ता पर शक्ति अथवा छल प्रपंच से अधिकार जमाना, दूसरे शब्दों में हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा सरकार को पलट देना। फ्रांस में इससे पहले भी अनेक कूप द इतात हुए थे और आगे चलकर १९ वीं शताब्दी में भी कई हुए, किन्तु १८ और १९ ब्रूमेयर (९ तथा १० नवम्बर १७९९) का कूप द इतात इस प्रणाली का एक अनूठा उदाहरण है, साथ ही साथ वह सबसे अधिक सफल और परिणामों की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

'कूप द इतात' क्या है?

किन्तु प्रश्न यह था कि इस कुटिलता पूर्ण योजना को क्रियान्वित कैसे किया जाय। संकट इस बात का था कि ५०० की **परिषद्** के सदस्य कहीं मार्ग में बाधा न डालें। यह भी हो सकता था कि **गणतन्त्र** संकट में है इस अफवाह से कहीं पेरिस में पहले की भाँति जनता विद्रोह न कर बैठे। इसलिए षड्यन्त्रकारियों को बड़ी सावधानी से कदम बढ़ाना था। उन्होंने किया भी ऐसा ही। किन्तु फिर भी उनकी योजना विफल होते-होते बची। यदि वे असफल रहे होते तो उनका भी वही भाग्य होता जो रोब्सपियेर का हुआ था।

षड्यन्त्रकारियों की जोखिमें

एक आरोप गढ़ लिया गया कि **गणतन्त्र** के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है, किन्तु इसका कोई सबूत नहीं प्रस्तुत किया गया। यह भी कहा गया कि यदि राज्य की रक्षा करनी है तो तत्काल ही कदम उठाना चाहिए एक भी क्षण खोने की गुंजाइश नहीं है। **वरिष्ठ परिषद्** को षड्यन्त्रकारियों ने पहले ही अपने पक्ष में कर लिया था। जब उसे इस बात की सूचना मिली, तो उसने १८ ब्रूमेयर को प्रस्ताव पास किया कि अगले दिन पेरिस के कुछ मील दूर पर स्थित से सेंट क्लाउड नामक स्थान पर दोनों परिषदों की बैठक हो और उनकी रक्षा के लिए जनरल बोनापार्ट सेना का भार सम्हाले।

१८ ब्रूमेयर का कार्य

दूसरे दिन रविवार को दोनों परिषदों की सेंट क्लाउड में बैठक हुई। इस असाधारण बैठक के लिए सभा-भवनों को व्यवस्थित करने में देर लगी। इसलिए जिन व्यवस्थापकों को सन्देह हो गया था, उन्हें परस्पर बातचीत करने और संयुक्त रूप से विरोध करने का अवसर मिल गया। परिषद का सत्र दो बजे प्रारम्भ हो गया। सदस्यों ने षड्यन्त्र के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना देने के लिए माँग की। बोनापार्ट ने इसी समय सभागृह में प्रवेश किया और एक उच्छृंखल

बोनापार्ट वरिष्ठ परिषद के समक्ष

तथा सम्बद्ध भाषण दिया । उसने कहा कि आप लोग एक ज्वालामुखी शिखर पर खड़े हुए हैं । मैं कोई "सीजर" अथवा क्रोम्वेल" नहीं हूँ जो देश की स्वतन्त्रता का नाश करने का इरादा करूँ । इस पर बोरीने ने धीरे से कहा "सेनापति तुम्हें होश नहीं कि तुम क्या कर रहे हो," इसलिए सभा-गृह छोड़कर चले जाओ । नेपोलियन ने तुरन्त ऐसा ही किया ।

इस प्रकार पहले ही ग्रास में मक्खी गिर पड़ी; किन्तु इससे भी बुरी स्थिति आगे आने को थी । बोनापार्ट चार बन्दूकचियों के साथ ५०० की परिषद् में गया ।

बोनापार्ट ५०० की परिषद् के समक्ष

वहाँ लोग बड़े क्रोध से उस पर उबल पड़े । "इसको विद्रोही घोषित करदो ।" "तानाशाह का नाश हो," अत्याचारी बोनापार्ट का नाश हो" आदि नारों से सभागृह गूँजने लगा । कोलाहल मच गया । उस पर तड़ातड़ घूँसे पढ़े और धक्के लगे यहाँ तक कि वह बेहोश हो गया, उसका कोट फट गया और चेहरे से खून बहने लगा । अन्त में बन्दूकची उसे घसीट कर सभागृह से बाहर ले गए । बाहर जाकर अपने सैनिकों के सामने वह घोड़े पर सवार हो गया ।

लूसियन द्वारा स्थिति को सम्हालना

किन्तु लूसियन ने इस बुरी तरह से बिगड़ी हुई स्थिति को सम्हाल लिया । उसके भाई को विद्रोही घोषित करने के लिये जो प्रस्ताव रखा गया, उसको उसने स्वीकार नहीं किया और कुर्सी छोड़कर प्रांगण को चला गया और घोड़े पर सवार होकर सैनिकों को संबोधित करते हुए बोला कि हत्यारों का एक गिरोह सभा को आतंकित कर रहा है और मेरा तथा नेपोलियन का जीवन सुरक्षित नहीं है । ५०० की परिषद् के अध्यक्ष के नाते में माँग करता हूँ कि सैनिक तुरन्त सभागृह में प्रवेश करें, लुटेरों को मार भगाएँ और परिषद् को स्वतन्त्र कर दें । सैनिक कुछ हिचकिचाए, तब लूसियन ने नेपोलियन के हाथ से तलवार छीन ली और उसकी नोक अपने भाई के सीने पर रख दी और बोला कि मैं शपथ खाता हूँ कि यदि इसने कभी गणतन्त्र पर हिंसात्मक हाथ डाला तो मैं इसका वध कर दूँगा । इस झूठ तथा अभिनय का सैनिकों पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा और मुरा के नेतृत्व में उन्होंने सभागृह में प्रवेश किया । व्यवस्थापिका के सदस्य खिड़कियों में होकर भाग गए ।

संचालक मंडल का अन्त (१९ ब्रूमेयर नवम्बर १०, १७९९)

उसी दिन संध्या के समय व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के उन सदस्यों की जो षड्यन्त्रकारियों के समर्थक थे, बैठक हुई । उन्होंने एक प्रस्ताव पास करके **संचालक मंडल** को समाप्त कर दिया और उसके स्थान पर ३ कोंसल नियुक्त किए—सेज़, डूको तथा सेनापति बोनापार्ट । इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ समितियों का भी निर्माण किया, जिनका काम था नए संविधान के बनाने में कोंसलों को सहयोग देना । तदुपरान्त ४ महीने के लिये बैठक भंग हो गयी ।

तीनों कोंसलों ने **गणतन्त्र**, स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्तों तथा प्रतिनिधि शासन प्रणाली के प्रति भक्ति की शपथ ली । सोमवार को प्रातःकाल ६ बजे प्रत्येक व्यक्ति पेरिस को वापिस चला गया । सैनिक लोग भी

कौंसल-व्यवस्था की स्थापना

क्रान्तिकारी गाने गाते हुये अपने स्थान को लौट गए। उस समय उनका बड़ा सच्चा विश्वास था कि हमने **गणतन्त्र** और क्रान्ति दोनों को बचा लिया है। पेरिस में कोई उपद्रव नहीं हुआ। कूप द इतात से लोग प्रसन्न हुए। सरकारी बौण्डों की संख्या तेजी से बढ़ गई और एक सप्ताह में लगभग दूनी हो गई।

इस प्रकार छोटे नायक ने राज्यशक्ति प्राप्त की। यह बड़े भाग्य की बात थी कि बोनापार्ट परिवार की असाधारण प्रतिभा पर नेपोलियन का एकाधिकार न था, उसका एक बड़ा भाग लूसियन को मिला था जिससे उसने अपने बन्धुबान्धवों की अच्छी सेवा की।

अध्याय ८

कौंसल-शासन व्यवस्था

इस प्रकार उस प्रसिद्ध युवक योद्धा ने राज्य-शक्ति हस्तगत करली और जल्दी उसे अपने हाथ से नहीं निकलने दिया। इस समय वह बाल-बाल बचा था। नवम्बर के उस रविवार के दिन उसका भाग्य बड़े खतरनाक ढंग से लड़खड़ाया था किन्तु अन्त में जुआरी की विजय हुई। उसकी क्षीण और पीत मुखाकृति, तीक्ष्ण स्वर, अधिकार-पूर्ण हावभाव, उसकी भयोत्पादक तथा आतंकपूर्ण दृष्टि, लम्बे तथा अव्यवस्थित केश और कोमल हाथ तत्कालीन बोनापार्ट का व्यक्तित्व इतिहास के अंग बन गए। उसने अपने युग पर जो प्रत्यक्ष प्रभाव डाला और आगे चलकर जिसे और भी अधिक गम्भीर किया, उसकी इनसे सबसे अच्छी अभिव्यक्ति होती थी। फ्रांस के जीवन और संस्थाओं पर उसने अपने विस्मयकारी व्यक्तित्व की गहरी और स्पष्ट छाप लगा दी। वास्तव में वह एक कठोर निरंकुश शासक था। सैनिक यश के लिए उसकी विशेष रुचि थी। बाद में उसने एक बार कहा, "मुझे शक्ति से प्रेम है, उसी प्रकार जैसे कि एक संगीतज्ञ को अपने वायलन से होता है। मैं एक कलाकार के रूप में उससे प्रेम करता हूँ।" अब वह ऐसी स्थिति में पहुँच गया था कि भरपूर अपनी रुचि की तुष्टि कर सकता था।

तीन कौंसलों के सामने, जिन्होंने पुराने पाँच संचालकों का स्थान ले लिया था, दो काम थे जिनकी ओर तत्काल ध्यान देना आवश्यक था। एक नए संविधान का निर्माण करना और शत्रु-संघ के विरुद्ध युद्ध जारी रखना।

सातवें वर्ष के संविधान का निर्माण

नया संविधान जो सातवें वर्ष (१७९९) के संविधान के नाम से प्रसिद्ध है, क्रान्ति प्रारम्भ होने के बाद चौथा संविधान था। इसकी रचना बड़ी जल्दी में की गई और कूप द इतात के एक महीने के भीतर ही इसे क्रियान्वित भी कर दिया गया। इसकी मुख्य रूपरेखा बनाने में बोनापार्ट का ही हाथ था। और उसे इस ढंग से बनाया गया था कि उच्चतम शक्ति उसी के अधिकार में आजाय। किन्तु सेज का यह उद्देश्य नहीं था और न उन समितियों का ही जो संविधान

का प्रारूप तैयार करने के लिए नियुक्त की गईं थीं। सेज़ ने जो योजना तैयार की वह अनेक बातों में अनिश्चित और उलझी हुई थी। बोनापार्ट ने उसके प्रति घृणा प्रगट की और उसे तुरन्त ठुकरा दिया। उस योजना के अनुसार एक महान् निर्वाचक होता जो वार्सेई में रहता और जिसकी आय ६० लाख फ्रेंक प्रतिवर्ष होती। यह स्थान स्पष्टतया बोनापार्ट के लिए रक्खा गया था किन्तु उसने उसे तुरन्त समाप्त कर दिया और कहा कि मैं एक "मोटा सुअर" बन कर नहीं रहना चाहता। समितियों ने जो अन्य योजनाएँ रक्खीं वे भी उसे पसन्द न आईं इसलिए उसने लगभग सारा संविधान स्वयं ही बोलकर लिखवा दिया। इतना अवश्य था कि उसने दूसरों के वे सुझाव ग्रहण कर लिए जो उसे अच्छे जँचे अथवा जिनसे किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं दिखाई दी। परिणाम-स्वरूप **गणतन्त्र** के इतिहास का वह चरण प्रारम्भ हुआ जो कौंसल-शासन व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध है और जो १७९९ से १८०४ तक चला।

बोनापार्ट संविधान निर्माता के रूप में

कार्यपालिका शक्ति तीन कौंसलों में निहित की गई, जिनके कार्य की अवधि १० वर्ष निश्चित की गई। उनका पुनः निर्वाचन भी हो सकता था। इनको निर्वाचित करने का अधिकार सीनेट को था। किन्तु व्यवस्था को प्रारम्भ करने के लिए पहले तीन कौंसलों का नाम संविधान में ही उल्लिखित कर दिया गया—बोनापार्ट प्रथम कौंसल, केम्बेसरी द्वितीय और लीब्रन तृतीय। राज्य की लगभग सभी शक्तियाँ प्रथम कौंसल के ही हाथ में थीं। मन्त्रियों, राजदूतों, स्थल तथा जल सेना के अधिकारियों अप्रमाणित असैनिक अधिकारियों, न्यायाधीशों आदि की नियुक्ति वही करता; वह युद्ध की घोषणा कर सकता, युद्ध बन्द कर सकता और दूसरे देशों से संधियाँ कर सकता। इन कामों में उसे व्यवस्थापिका की अनुमति अवश्य लेनी पड़ती।

बोनापार्ट प्रथम कौंसल

प्रथम कौंसल को सब प्रकार के विधि निर्माण में भी पहल का अधिकार था। एक **राज्य-परिषद्** विधेयकों का प्रारूप तैयार करती, तत्पश्चात् उनको ट्रिबुनेट नाम की संस्था के सामने प्रस्तुत किया जाता। उसको उन पर विवाद करने का अधिकार था, वोट देने का नहीं। इसके बाद विधेयक व्यवस्थापिका के सामने जाते, वह उन पर वोट दे सकती थी किन्तु विवाद न कर सकती थी। इस सभा में ३०० सदस्य थे। विशेष बात यह थी कि वोट देने का काम वह गुप्त रूप से करती। इन सबके ऊपर एक चौथी संस्था भी थी जो सीनेट कहलाती थी। उसके सुपुर्द संविधान की रक्षा करने का भार था। इसके अतिरिक्त वह कौंसलों तथा ट्रिबुनेट और व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को भी चुनती थी। किन्तु इस चुनाव में वह पूर्णतया स्वतन्त्र न थी कुछ सूचियाँ एक पेचीदा ढंग से तैयार की जातीं, इन्हीं में से वह इन सबका चुनाव करती। इस संविधान में भी प्रत्येक व्यक्ति को मतदान का अधिकार दिया गया था। किन्तु संविधान के इस पहलू पर समय व्यय करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह कोरा ढोंग और ढकोसला था।

विधायी शक्ति

सीनेट

इस विस्तृत तथा जटिल व्यवस्था का उद्देश्य था जनप्रभुत्व के ढकोसले को

लोकप्रिय सरकार का ढकोसला

प्रथम कौंसल की शक्तियाँ

कायम रखना जिसकी घोषणा क्रान्ति ने की थी। गणतन्त्र अब भी कायम रहा। जनता को वोट देने का अधिकार था और उसकी अनेक सभाएँ थीं, जिनको बड़ी चतुराई से निर्मित किया गया था। किन्तु जहाँ तक व्यवहार का सम्बन्ध था—और इस चीज में हमें विशेष प्रयोजन है—जनता का प्रभुत्व समाप्त हो गया था। बोनापार्ट प्रभु बन बैठा था। उसके हाथ में जितनी विस्तृत कार्य पालक-शक्तियाँ थीं, उतनी १७९१ के संविधान के अनुसार लुई सोलहवें को भी नहीं प्राप्त थीं। वास्तव में व्यवस्थापिका-शक्ति भी उसी के हाथ में थी। किसी भी विधेयक पर जो उसके आदेशों द्वार तैयार न होता, न तो विवाद ही हो सकता था और न वोट ही दिया जा सकता था। व्यवस्थापिका द्वारा पास होने पर भी तब तक उसको लागू न किया जा सकता जब तक प्रथम कौंसल उसका प्रवर्तन न करता। नाम के लिए फ्रांस अब भी गणराज्य था, किन्तु वास्तव में उसने एक प्रच्छन्न राजतन्त्र का रूप धारण कर लिया था। बोनापार्ट की स्थिति उतनी ही आकर्षक थी जितनी किसी दैवी अधिकार सम्पन्न राजा की हो सकती थी। अन्तर केवल इतना था कि उसका कार्य-काल केवल १० वर्ष था और वह अपनी शक्ति को विरासत में किसी उत्तराधिकारी को न सौंप सकता था। इन कमियों को उसने आगे चल कर पूरा कर लिया।

बोनापार्ट द्वारा एक केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना

संविधान का निर्माण करने के बाद बोनापार्ट ने एक कानून बनवा लिया जिससे स्थानीय प्रशासन पर उसका पूरा अधिकार स्थापित हो गया। प्रत्येक विभाग (जिला) का एक अधिकारी होता जो प्रीफेक्ट कहलाता, उपविभाग (एरोण्डिज्मेंट) का अधिकारी उपप्रीफेक्ट और प्रत्येक नगर अथवा कम्यून का प्रमुख मेयर कहलाता था। इस प्रकार नागरिकों को अपने स्थानीय मामलों का प्रबन्ध करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया और स्वशासन का जो अनुभव उन्हें प्राप्त होता था उसका अन्त हो गया। राष्ट्रीय तथा स्थानीय प्रशासन के सभी सूत्र पेरिस में केन्द्रित हो गये, इतनी दृढ़ता के साथ जितनी कि बोर्बां राज्यवंश के अच्छे से अच्छे दिनों में भी देखने को नहीं मिलती थी।

द्वितीय शत्रु-संघ के विरुद्ध युद्ध

घरेलू व्यवस्था को सुव्यवस्थित करके और शक्ति की बागडोर पूर्णतया अपने हाथ में लेकर बोनापार्ट से फ्रांस के विदेशी शत्रुओं की ओर ध्यान दिया। नए शत्रुसंघ में इंगलैण्ड, आस्ट्रिया तथा रूस सम्मिलित थे। इंगलैण्ड से निबटना कठिन था। रूसी लोग अपने मित्रों से असन्तुष्ट हो गए थे और संघ से अलग होने की तैयारियाँ कर रहे थे। रहा आस्ट्रिया, उससे बोनापार्ट से पहले भिड़ चुका था।

बोनापार्ट का इटली के विरुद्ध द्वितीय अभियान (१८००)

आस्ट्रिया की एक सेना राइन के तट पर पड़ी हुई थी। उस पर आक्रमण करने के लिए उसने मोरू को भेजा। दूसरी सेना इटली में थी, उसने टक्कर लेने के लिए वह स्वयं गया। जिस समय वह मिस्र में उलझा हुआ था, आस्ट्रियायी सेनाओं ने उत्तरी इटली पर पुनः अधिकार कर लिया था। उनके सेनापति मेलास ने मेसीना को भगा कर जिनोआ में शरण लेने पर बाध्य किया था, जहाँ पर

वह मृत्यु के मुँह में पड़ा हुआ था क्योंकि उसकी रसद समाप्त होने वाली थी। बोनापार्ट की योजना थी : आस्ट्रियायी सेनाओं तथा उनके देश के बीच में घुसकर पीछे से उन पर आक्रमण करना, जिससे उन्हें अपने यातायात के मार्ग को खुला रखने के लिए जिनोआ पर से अपना घेरा उठाना पड़े। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने एक अत्यधिक विख्यात वीर कार्य सम्पादित किया। आल्प्स में सन्त बर्नाई दर्रा है। उसको उसने ४० हजार सैनिकों के साथ ऊपर और नीचे छाई हुई बर्फ के बीच पार किया। तोपों को उसके सैनिक लकड़ी की खोखली पिंडियों में रखकर घसीट ले गए। यह सब काम एक सप्ताह में पूरा हो गया। इटली में पहुँचकर उसने तुरन्त आस्ट्रियायी सेना से सम्पर्क कायम किया और मोरेज्जो नामक स्थान पर उसे सहसा धर दबाया (१४ जून, १८००)। लड़ाई में वह हारते-हारते बचा। कारण यह था कि उसने स्वयं भारी भूल की थी। अपनी सेना को उसने विभक्त कर दिया था और दीसे की सेना कई मील पीछे रह गई थी। पौ फटते ही लड़ाई प्रारम्भ हो गई और फ्रांसीसियों के लिए बहुत घातक सिद्ध हुई। एक बजे आस्ट्रियायी सेनापति ने समझा कि हमारी जीत हो चुकी है और रहा सहा काम मेरे अधीन अधिकारी पूरा कर लेंगे। यह सोच कर वह घोड़े पर चढ़ कर अपने शिविर को चला गया। फ्रांसीसी सेनाएँ पीछे खदेड़ दी गई थीं और उनके पैर उखड़ने ही वाले थे, किन्तु ५ बजे के लगभग दीसे अपनी सेना लेकर आ पहुँचा और स्थिति सम्हल गई। लड़ाई पुनः पूरे वेग के साथ प्रारम्भ हो गई, दीसे स्वयं मारा गया किन्तु सैनिकों ने शानदार विजय प्राप्त की और उसकी गौरवपूर्ण मृत्यु का बदला ले लिया। ७ बजे विचित्र उतार-चढ़ाव के बाद युद्ध समाप्त हो गया। आस्ट्रियायी सेना ने विराम सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये और मिंसिओं तक का उत्तरी इटली का सम्पूर्ण भाग फ्रांसीसियों को सौंप दिया।

सन्त बर्नार्ड दर्रे को पार करना

६ माह के उपरान्त मोरू ने जर्मनी में स्थित होहेलिण्डन नामक स्थान पर आस्ट्रिया को करारी हार दी (३ दिसम्बर, १८००), और वीना का मार्ग खोल दिया। ९ फरवरी, १८०१ को लुनेविले की सन्धि हो गई। इसकी शर्तें वे ही थीं जो केम्पोफोर्मियो की सन्धि की थीं।

मोरू द्वारा होहेनलिण्डन के युद्ध में आस्ट्रिया की पराजय (३ दिसम्बर १८००)

दूसरे शत्रु-संघ के टूटने के बाद भी फ्रांस को केवल एक ही राष्ट्र, इंगलैंड, से लड़ना रह गया, जैसाकि केम्पोफोर्मियो की सन्धि के बाद हुआ था। इन दोनों राष्ट्रों में ८ वर्ष से निरन्तर युद्ध चला आ रहा था। इंगलैंड ने फ्रांसीसी बेड़े को परास्त किया था और उसके मित्रों तथा अधीन राज्यों के, जैसे हॉलैंड और स्पेन, अनेक उपनिवेश जीत लिए थे। अभी हाल ही में उसने बोनापार्ट द्वारा मिस्र में छोड़ी हुई सेना को वहाँ से हटने के लिए बाध्य किया था। किन्तु इंगलैण्ड पर ऋण का बोझ बहुत बढ़ गया था और जनता में युद्ध के विरुद्ध व्यापक असन्तोष फैला हुआ था। मन्त्रि-परिषद् में परिवर्तन हुआ और महान् युद्ध नेता विलियन पिट को हटना पड़ा। इंगलैंड ने सन्धि की बातचीत करना स्वीकार कर लिया। ५ महीने चलता रहा। और अन्त में मार्च १८०२ में अमिएँ तक विवाद के स्थान पर दोनों के बीच सन्धि हो गई। इंगलैण्ड ने फ्रांसीसी गणराज्य के अस्तित्व को स्वीकार कर

इंगलैण्ड के साथ अमिएँ की सन्धि

लिया। उसने फ्रांस के सब उपनिवेश लौटा दिए, साथ ही हालैण्ड और स्पेन के कुछ उपनिवेश भी वापिस दे दिए। केवल लंका और ट्रिनिडाड उसके पास रह गए। उसने माल्टा और मिस्र को भी खाली करने का वचन दिया; इन स्थानों पर फ्रांस ने १७९८ में अधिकार किया था किन्तु बाद में इंगलैंड ने वे उससे छीन लिए थे। फ्रांस के बेल्जियम और राइन के पश्चिमी तट पर जो अधिकार कर लिया था उसका संधि में कोई उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु इसका अभिप्राय यही था कि इंगलैंड ने फ्रांस की नई सीमाओं को, जो प्राचीन राजतन्त्र की सीमाओं से कहीं बढ़ गई थीं, स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार १० वर्ष के भीतर योरोप को पहली बार शान्ति से साँस लेने का अवसर मिला। इंगलैंड तथा फ्रांस दोनों ही देशों में महान् उत्साह था, किन्तु शान्ति स्थायी सिद्ध नहीं हुई। वह केवल एक वर्ष तक कायम रह सकी।

नेपोलियन तथा क्रान्ति

एक अवसर पर नेपोलियन ने कहा "मैं **क्रान्ति** हूँ।" दूसरे अवसर पर उसने कहा कि मैंने **क्रान्ति** को नष्ट कर दिया है। इन दोनों कथनों में बहुत कुछ झूठ और कुछ सत्य था। कौंसल व्यवस्था तथा उसके बाद बहुत साम्राज्ञीय व्यवस्था, दोनों के ही अन्तर्गत **क्रान्ति** का बहुत कुछ कार्य अक्षुण बना रहा; किंतु नए शासक के विचारों और उसके निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनेक चीजें नष्ट भी कर दी गई बोनापार्ट के क्रान्ति तथा फ्रांसीसी जनता और अपनी महत्त्वाकाँक्षा के सम्वन्ध में निश्चित विचार थे। १७९९ के बाद फ्रांस के जीवन में उसके इन विचारों का सबसे अधिक गहरा प्रभाव पड़ा। बोनापार्ट **क्रान्ति** के एक आदर्श अर्थात् समता से सहानुभूति रखता था अथवा यों कहिए कि उसे कम से कम सहन करने के लिए तैयार था। किन्तु दूसरे आदर्श, अर्थात् स्वतन्त्रता से वह घृणा करता था। युवावस्था में उस पर रूसो के विचारों का जादू जैसा प्रभाव हुआ था, किन्तु आगे चल कर वह मिट गया, इसलिए अब रूसो को विक्षिप्त कह कर उसने टाल दिया। उसने समता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसी के कारण उसे अपने जीवन में सफलता मिली थी, और दूसरी बात यह थी कि फ्रांस की जनता पर इस आदर्श का अब भी गहरा प्रभाव था। वह बोर्बों वंश और सामन्तीय व्यवस्था को, जो विषमता और विशेषाधिकार के सिद्धान्त का अवतार-स्वरूप थी, स्थापित करने का इच्छुक नहीं था। सम्बन्ध में वह किसी भी प्रकार से

नेपोलियन तथा पुरातन व्यवस्था

पीछे नहीं लौटना चाहता था। उसने तथा उसके द्वारा स्थापित व्यवस्था ने बोर्बों वंश को १५ वर्ष तक और निर्वासित रक्खा और अन्त में जब वे लौटकर आए तो अपने पुराने सड़े हुए विचारों के गट्ठर को साथ न ला सके। इस प्रकार बोनापार्ट ने पुरातन व्यवस्था के प्रत्यावर्त्तन को रोका। वह विदा ले गई, और सदैव के लिए १७८९ में जिन विशेषाधिकारों का उन्मूलन कर दिया गया उनकी जड़ें फिर न जम सकीं। पादरी वर्ग सामन्तवर्ग तथा तृतीय श्रेणी का सफाया हो गया। जहाँ तक राज्य का सम्वन्ध था, अब फ्रांसीसी नागरिकों का विशाल जनसमूह ही रह गया और सबके लिए एक ही कानून थे, सबको एक ही कर देने पड़ते और सब जीवन में समान अवसर का उपभोग करते। राज्य न किसी के साथ पक्षपात करता और न उसके कोई विशेष कृपा-पात्र ही थे। सभी लोग अपनी योग्यता और क्षमतानुसार राष्ट्र के भार का

अंश वहन करते। अब कोई वर्ग दूसरे वर्ग से कर वसूल न कर सकता था। धर्मांश तथा सामन्ती करों को फिर से लागू नहीं किया गया। अब किसी शिल्प अथवा व्यापार पर किसी एक वर्ग का एकाधिकार न रहा। शिल्पि-श्रेणियाँ तथा उनके प्रतिवन्ध नष्ट हो चुके थे। वे भी पुनर्जीवित न हो सके। इसके अतिरिक्त अब सबको राज्य की सैनिक और असैनिक नौकरियों में भर्ती होने का समान अवसर था। बोनापार्ट ने सरकारी नौकरियों के दरवाजे प्रतिभा के लिए खोल दिए यही उसकी नीति का सारांश था। यह उसका मौलिक विचार नहीं था, **मानव-अधिकार की घोषणा** में इसका उल्लेख हो चुका था। किन्तु वह उस पर डटा रहा। उसके शासन-काल में किसी के प्रगति के मार्ग में अस्वाभाविक रोड़े नहीं अटकाए गए। कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यता, परिश्रम और सेवा के बल पर अधिक से अधिक ऊँचा उठ सकता था। सबके लिए एक ही शर्त थी, सम्राट् के प्रति भक्ति। नेपोलियन के बड़े-बड़े मार्शल, जिन्होंने उसकी सेना में ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त किए, साधारण परिवारों में उत्पन्न हुए थे। मसीना एक कलार का पुत्र था। ओगेरयू एक राज का, ने एक पीपे बनाने वाले का और मुरा एक भटियारे का पुत्र था। पुरातन व्यवस्था के अन्तर्गत इनमें से किसी व्यक्ति के लिए मार्शल के पद पर पहुँचना सम्भव नहीं था और न बोनापार्ट ही शायद कभी कर्नल के पद से ऊँचा उठ पाता, और यह पद भी उसे कहीं बुढ़ापे में जाकर मिलता। बोनापार्ट की यह धारणा नहीं थी कि सब व्यक्ति स्वाभाविक प्रतिभा अथवा सामाजिक स्थिति की दृष्टि से समान हैं, फिर भी उसने कानून के सामने समता के सिद्धान्त को, जो क्रान्ति की एक अमूल्य देन थी, कायम रक्खा।

स्वतन्त्रता में उसका विश्वास नहीं था और न वह यही समझता था कि फ्रांसीसी जनता का इसमें विश्वास है। उसका स्वयं का जीवन इस सिद्धान्त का घोर निषेध था। उसके शासन-काल में भाषण अथवा प्रेस की।
स्वतन्त्रता को, बौद्धिक अथवा राजनीतिक स्वतन्त्रता को　नेपोलियन, **स्वतन्त्रता**
किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिला, बल्कि उस पर　के **प्रत्येक रूप का शत्रु**
बराबर आघात हुए। इस दृष्टि से उसका शासन प्रतिक्रिया-
पूर्ण और पुरातन व्यवस्था की भावनाओं से ओतप्रोत था। यह बिल्कुल सत्य है कि **कन्वेंशन** और **संचालक मंडल** ने भी स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को निर्ममतापूर्वक कुचला था किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि न तो बोनापार्ट ही और न वे ही आधुनिक युग की इस गहरी आकांक्षा को सफलतापूर्वक चुनौती दे सके। पिछले १०० वर्षों में कितने ही लोग ऐसे हुए जिन्होंने सोचा था कि हम इस उत्कट स्वतन्त्रता प्रेम को कुचल देंगे, किन्तु अन्त में उन्हें भी ज्ञात हो गया कि मनुष्य की आत्मा को बन्दी बनाने के प्रयत्न व्यर्थ हैं। साथ ही साथ ऐसे लोगों को अपने इस भ्रम का भारी मूल्य भी चुकाना पड़ा। कुछ देशों में इस प्रकार के व्यक्ति अपने को तथा अपने शासन के तरीकों को सुरक्षित रखने में सफल हुए हैं। किन्तु यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऐसे लोगों के दिन निकट आ गए हैं और उनकी भी वही दशा होने वाली है जो नेपोलियन की हुई थी। जैसे कि आधुनिक विश्व-इतिहास से स्पष्ट है कि जिन सिद्धान्तों के लिए वे लड़ रहे हैं उनकी पराजय अवश्यम्भावी है।

मोरिंगो के युद्ध तथा शान्ति के बीच के अल्पकाल में प्रथम कौंसल बोनापार्ट

ने घोर परिश्रम किया, और उसके कार्यों के परिणाम दूरगामी हुए। इस काल में ही उसने अपनी प्रशासन-प्रतिभा का पूरा परिचय दिया।

बोनापार्ट शासक के रूप में

उसके सामने कई महत्त्वपूर्ण कार्य थे; राष्ट्र के घावों को भरना, राष्ट्रीय संस्थाओं का सभी रूप निर्धारित करना, ऐसा ढाँचा तैयार करना जिसमें राष्ट्रीय जीवन भविष्य में दीर्घ काल तक ढाला जा सके, और अपनी शक्ति की नींव सुदृढ़ बनाना। उसकी इस युग की कार्यवाहियों को संक्षेप में विवेचना करना अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना हम फ्रांस के परवर्ती इतिहास को नहीं समझ सकते; और न उसकी उस अद्वितीय और बहुमुखी प्रतिभा का और मस्तिष्क तथा इच्छा-शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकते हैं जिसके द्वारा उसने एक परिवर्तनशील समाज की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया।

उसकी प्रसन्न करने की नीति

सबसे पहली समस्या यह थी कि उस दलगत विद्वेष और ईर्ष्या को शान्त किया जाय जिसने १० वर्ष से राष्ट्रीय जीवन में विष घोल रक्खा था। राजनैतिक गुटों के सम्बन्ध में उसने शान्ति और प्रसन्न करने की नीति अपनाई। किन्तु जो लोग इस नीति से भी सन्तुष्ट नहीं हुए उनको उसने कठोरता और बर्बरता के साथ कुचल दिया। फ्रांस में सभी के लिए स्थान था। शर्त केवल यह थी कि वे वर्तमान शासकों के प्रति वफादार रहें और देश के प्रचलित कानूनों और संस्थाओं को अंगीकार करलें। राजतन्त्र के पुराने समर्थकों, जेकोबिनों और जिरोदीस्तों सभी के लिए समान शर्तों पर सरकारी पदों का द्वार खुला हुआ था। भक्ति के अतिरिक्त और उनसे किसी प्रकार की माँग न की जाती थी। वास्तव में बोनापार्ट ने अपनी विशद नियुक्ति-शक्ति का प्रयोग इस ढंग से किया कि हर प्रकार के भेद-भाव दूर हो जायँ और अतीत की कटु स्मृतियाँ भुला दी जायँ।

भगोड़ों तथा विद्रोही पादरियों के साथ उदार वर्ताव

भगोड़ों तथा विद्रोही पादरियों के विरुद्ध जो कानून प्रचलित थे, उन्हें नरम कर दिया गया। भगोड़ों की संख्या एक लाख से कुछ अधिक थी, उनमें से करीब १ हजार ऐसे थे जो किसी भी प्रकार झुकने को तैयार न थे। उनको छोड़कर शेष सबको वापिस लौटने और अपनी जागीरें पुनः प्राप्त करने का अधिकार दे दिया गया। इतना अवश्य था कि जिनकी जागीरें बिक चुकी थीं उन्हें वापिस दिलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। परन्तु जो लोग इस स्थिति में भी बोर्बां वंश के भक्त बने रहे उनके लिए द्वार दृढ़ता से बन्द कर दिये गए।

बोनापार्ट ने शीघ्र ही समझ लिया कि बोर्बां पक्ष की शक्ति, शाही परिवार के गुणों अथवा प्रतिभा पर निर्भर नहीं है और न सामन्त वर्ग के समर्थन पर ही उसकी शक्ति का मुख्य आधार है रोमन केथोलिक चर्च से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध। क्रांति-युग के भयंकर धार्मिक युद्धों के बावजूद देश की बहुसंख्यक जनता पादरियों के प्रति वफादार बनी रही थी और पादरी विशपों के नियन्त्रण में थे। विशपों ने अपने से सम्बन्धित क्रांति के विभिन्न कानूनों को स्वीकार करने से इन्कार किया था, इसलिए उन्हें देश से निकाल दिया गया था। उनमें से अधिकतर इंगलैण्ड और जर्मनी में जाकर बस गए थे और पोप की आज्ञानुसार कार्य करते थे। पोप ने लुई सोलहवें के भाई लुई १८ वें को फ्रांस का वैध शासक स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार धार्मिक और राजनैतिक विद्रोह दोनों मिलकर एक हो गए

और राजतन्त्र के समर्थक तथा विशप लोग एक ही नाव में जा बैठे । बोनापार्ट ने दोनों के इस गठबन्धन को तोड़ने का संकल्प किया जिससे कि राजतन्त्र के समर्थक बिना सेना के सेनानायकों की भाँति अकेले ही रह जायँ । मोरिंगों से लौटने के उपरान्त उसने तुरन्त ही ऐसे कार्य के किए जिससे कैथोलिक लोगों को विश्वास हो जाय कि उनके डरने का कोई कारण नहीं है और वे निर्विघ्न अपने धर्म का आचरण कर सकते हैं, शर्त केवल यह है कि वे धर्म की आड़ में अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग नए शासक तथा क्रान्ति द्वारा स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के लिए न करें । इस सम्बन्ध में उसे धार्मिक भावनाओं से किसी प्रकार प्रेरणा नहीं मिली थी । उसका उद्देश्य शुद्ध राजनीतिक था । उसने स्वयं ही एक बार कहा था, "मैं मिस्र में मुसलमान हूँ और फ्रांस में कैथोलिक ।" वह यह नहीं समझता था कि किसी विशेष धर्म के पास सत्य का अधिकार है । किन्तु वह इतना चतुर अवश्य था कि एक धर्म के लोगों को बलपूर्वक दूसरे धर्म में घसीटने के प्रयत्न को व्यर्थ समझता था । धर्म के सम्बन्ध में उसकी धारणा थी कि राजनीतिक मामलों में वह एक शक्तिशाली तत्व का कार्य करता है, इससे अधिक और कुछ नहीं । शुद्ध राजनैतिक उद्देश्य से उसने पोप के प्रति एक नई नीति का अनुसरण किया और उससे एक सन्धि करली, जिसके अनुसार क्रान्तिकारी सभाओं द्वारा किए गए बहुत से काम को समाप्त कर दिया गया और फ्रांस में चर्च तथा राज्य के बीच निश्चित सम्बन्ध स्थापित कर दिए जो पूरी १९ वीं शताब्दी भर चलते रहे । १८०२ का यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कानून १३० वर्ष तक कायम रहा । १९०५ में तीसरे गणतंत्र ने उसको समाप्त किया ।

बोनापार्ट का राजतंत्र के समर्थकों को समाप्त करने का सङ्कल्प

बोनापार्ट धर्म को केवल राजनैतिक शक्ति समझता था

बोनापार्ट का विचार था कि रोमन कैथोलिक चर्च की पूर्व प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना करने से राजतन्त्र के समर्थकों का पक्ष दुर्बल पड़ जाएगा । उसका कहना था कि जनता का एक धर्म अवश्य होना चाहिए और वह धर्म राज्य के नियन्त्रण में हो । उसके अनेक अनुयायी इस नीति से सहमत न थे । उनका विचार था कि चर्च और राज्य को पृथक रखने में ही बुद्धिमानी है । क्रान्ति युगीन कानूनों द्वारा दोनों का सम्बन्ध विच्छेद किया जा चुका था । बोनापार्ट ने इस विषय पर प्रसिद्ध दार्शनिक वोनी से बातचीत की । वोनी को उसने हाल ही में सीनेट का सदस्य नियुक्त किया था । उसने कहा, "फ्रांस को एक धर्म की आकांक्षा है ।" वोनी ने उत्तर दिया कि फ्रांस तो वोर्बा वंश को भी चाहता है । इस पर बोनापार्ट ने दार्शनिक पर प्रहार कर दिया और ऐसी लात मारी कि बेचारा अचेत होकर गिर पड़ा । सेना के अधिकारियों ने, जो चर्च के विरुद्ध थे, इस योजना का घोर विरोध किया और मखौल उड़ाया, किन्तु बोनापार्ट ने एक न सुनी और दृढ़ता से आगे बढ़ता गया । पादरियों का अपने भक्तों पर जो प्रभाव था उसको वह भली-भाँति जानता था और चाहता था कि उस प्रस्ताव का प्रयोग नए शासन के हित में किया जाय । जिस प्रकार उसने सेना तथा राज्य के हजारों अधिकारियों

चर्च का समर्थन प्राप्त करने के लिए बोनापार्ट का सङ्कल्प

गणतन्त्रवादियों द्वारा योजना का विरोध

पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया था वैसे ही वह इनको भी अधिकार में लाना चाहता था। उसका विचार था कि धर्म की वागडोर भी शासक के ही हाथ में होनी चाहिए। एक बार उसने कहा था, "विना इसके शासन करना असम्भव है।" इसीलिए उसने पोप के साथ सन्धि करली। उसका कहना था, "यदि पोप पहले से न होता तो इस अवसर के लिए मुझे एक पोप बनाना पड़ता।"

सन्धि के अनुसार राज्य ने कैथोलिक धर्म को बहुसंख्यक फ्रांसीसी जनता का धर्म मान लिया और स्वतन्त्रतापूर्वक उसका आचरण करने की आज्ञा दे दी। पोप ने चर्च की व्यवस्था को नए ढंग से संगठित करना स्वीकार कर लिया और विशपों के कई पद समाप्त कर दिए। क्रान्ति के समय में चर्च की जो सम्पत्ति बेच दी गई थी उसको भी उसने मान लिया। यह भी निश्चित हुआ कि इसके वाद विशपों की नियुक्ति प्रथम कौंसल करेगा किन्तु औपचारिक रूप से उनका पदारोहण संस्कार पोप ही करेगा। फिर विशप सरकार की अनुमति से पदारियों की नियुक्ति करेंगे। यह भी मान लिया गया कि विशप लोग राज्य के प्रमुख के प्रति भक्ति की शपथ ग्रहण करेंगे। विशपों और पादरियों दोनों को राज्य-कोष से वेतन मिलेगा। वास्तव में अब वे राज्य के पदाधिकारी बन गए।

चर्च पर राज्य का नियन्त्रण

इस सन्धि से बहुसंख्यक जनता को बहुत सन्तोष हुआ। इसके दो मुख्य कारण थे। एक तो लोगों को अपने धर्म पर निर्विघ्न आचरण करने का अधिकार मिल गया और दूसरे क्रान्ति के दिनों में चर्च की जो भूमि उन्होंने खरीद ली थी उस पर उनका अधिकार विधिवत स्वीकार कर लिया गया। किन्तु चर्च को शीघ्र ही पता चल गया कि बोनापार्ट इस सन्धि को अपने शासन को सुदृढ़ बनाने और प्रभाव को बढ़ाने का एक साधन मात्र समझता है। पादरी लोग अब उसके समर्थक बन गए और अधिकांशत: राजतन्त्र का पक्ष छोड़ बैठे। इसके अतिरिक्त बोनापार्ट ने अपनी इच्छा से और पोप की अनुमति लिए बिना कुछ और भी नियम बना दिए जिनसे पादरियों के हाथ-पाँव पूर्णतया बँध गए।

सन्धि का प्रभाव

फिर भी इस सन्धि को बोनापार्ट की एक महान् भूल समझना चाहिए। फ्रांस ने चर्च और राज्य के पूर्ण पृथक्करण की नीति अपना ली थी और यदि उसको जारी रहने दिया जाता तो इससे देश का बड़ा कल्याण होता। जनता को धीरे-धीरे सहिष्णुता के सिद्धान्त पर चलने का अभ्यास हो जाता। किन्तु सन्धि ने इस आशा पर पानी फेर दिया और चर्च तथा राज्य का पुन: गठबन्धन करके एक खतरनाक समस्या उत्पन्न करदी जो १९ वीं शताब्दी भर विक्षोभ का कारण बनी रही। शीघ्र ही दोनों सन्धि से उकता भी गए। नेपोलियन तथा पोप के बीच भी बहुत दिनों तक अच्छे सम्बन्ध न रह सके। कुछ ही वर्षों बाद दोनों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ और अन्त में इतना बढ़ गया कि पोप ने नेपोलियन को धर्म बहिष्कृत कर दिया और नेपोलियन ने पोप को गिरफ्तार करके बन्दी बना लिया। नेपोलियन स्वयं अनुभव करने लगा कि यह सन्धि करके मैंने भारी भूल की है। फिर भी इससे तत्कालिक लाभ बहुत हुए।

सेंट हेलीना में एक बार नेपोलियन ने कहा था, "मेरा वास्तविक गौरव

नेपोलियन की विधि-संहिता

मेरी ४० युद्धों की विजयों में नहीं है। मेरी **विधि-संहिता** ही ऐसी है जो कभी न मिट सकेगी, और जो चिरस्थायी सिद्ध होगी।" सफलता के स्थायित्व के सम्बन्ध में उसकी धारणा निश्चय ही भ्रमपूर्ण थी। किन्तु, उसको उसने अपनी उन कार्यवाहियों से ऊँचा स्थान दिया, जिनमें उसका कहीं अधिक समय व्यतीत हुआ, यह उचित ही था। नेपोलियन को **विधि-संहिता** फ्रांस के कानूनों का एक सुसम्वद्ध, व्यवस्थित और सुगठित एकत्रीकरण थी। क्रान्ति से पहले फ्रांस में कानून की अनेक व्यवस्थाएँ प्रचलित थीं जो विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों में उत्पन्न हुई थीं। क्रान्ति के साथ नए कानूनों की बाढ़ आगई जो भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित थे। इससे कुल मिलाकर कानूनों की संख्या और भी अधिक बढ़ गई। इसलिए इस बात की आवश्यकता थी कि विभिन्न कानूनों की पारस्परिक असंगतियों को दूर करके उन्हें क्रमबद्ध किया जाय और जनता के सामने स्पष्ट, युक्तिसंगत तथा तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाय जिससे न्यायव्यवस्था के सम्बन्ध में अब तक जो सन्देह, अनिश्चितता और भ्रम फैला हुआ था वह दूर हो जाय और प्रत्येक नागरिक को सरलता से पता चल जाय कि राज्य तथा अन्य नागरिकों के सम्बन्ध में उसके कानूनी अधिकार क्या हैं।

विधि संहिता विभिन्न क्रान्तिकारी सभाओं द्वारा डाली हुई विभिन्न बुनियादों पर आधारित

संविधान सभा, कन्वेंशन, तथा **संचालक मण्डल** सभी ने इसके विधि-संग्रह की आवश्यकता का अनुभव किया था और उसके लिए समतियाँ भी नियुक्त की थीं, किन्तु काम पूरा न हो पाया था। अब बोनापार्ट ने इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अपने व्यक्तित्व की पूरी शक्ति लगादी और अपेक्षाकृत अल्पकाल में वकीलों तथा **राज्य-परिषद्** ने, जिन्हें यह कार्य सौंपा गया था, उसको पूरा कर दिया। इस विधि संहिता में समता के सिद्धान्त को जिसकी स्थापना **क्रान्ति** के युग में हो चुकी थी, अक्षुण्ण रक्खा गया। नेपोलियन ने उसके साथ अपना नाम भी जोड़ दिया। फ्रांस में उसे तुरन्त ही लागू कर दिया गया और बाद में उन देशों में भी प्रचलित किया गया जिन्हें फ्रांस ने जीत लिया था अथवा जो उसके प्रभाव में थे जैसे बेल्जियम, राइन के पश्चिम के जर्मन राज्य और इटली।

विधि संहिता के निर्माण में बोनापार्ट का हाथ

इस स्मरणीय तथा महत्त्वपूर्ण कार्य में बोनापार्ट का निजी हाथ भी बहुत अधिक था। वह स्वयं विधिविज्ञ नहीं था, और न उसे कानून का विशेष ज्ञान ही था, किन्तु उसकी बौद्धिक प्रतिभा अत्यन्त प्रखर सूझ-बूझ सूक्ष्म और विचारशक्ति तथ्यगम्य थी। इसलिए उसने जो अनेक सुझाव, आलोचनाएँ और प्रश्न प्रस्तुत किए, उससे पूरी संहिता का रूप और भी अधिक परिष्कृत हो गया और निखर उठा। इस कार्य के लिए **राज्य परिषद्** की जो बैठकें हुई, उनमें से बहुत-सों में उसने सभापति का कार्य किया। एक दर्शक ने लिखा है, "वह बिना किसी हिचकिचाहट, उलझन और कृत्रिमता के अपने विचार प्रगट करता। वह कभी भी परिषद् के किसी सदस्य से कम योग्य नहीं सिद्ध हुआ। कैसा ही प्रश्न क्यों न होता, उसके सार को वह तुरन्त ग्रहण कर लेता। और उसका तर्क सशक्त तथा विचार परिशुद्ध होते। इस दृष्टि से वह बहुधा योग्यतम सदस्यों के समकक्ष ठहरता। वह अपनी शब्दावली और अभिव्यंजना शैली से प्रायः उनको

चकित कर देता।" धर्म सम्बन्धी नई नीति के कारण पादरियों ने उसे कान्स्टेन्टाइन की उपाधि दी और विधिविज्ञों ने उसे नया जस्टीनियन कहा। किन्तु, सत्य यह है कि अनेक बातों में वह दोनों से ही बढ़कर था।

कौंसल व्यवस्था के इस काल में बोनापार्ट ने पूर्वोक्त कार्यों के अतिरिक्त अन्य कई क्षेत्रों में भी विशेष सफलताएँ प्राप्त कीं। कर-व्यवस्था में उसने अनेक सुधार किए और राष्ट्र वित्त को उसने सुव्यवस्थित किया।

फ्रांस का बैंक

उसने फ्रांस के बैंक की स्थापना की, जो आज भी विद्यमान है। उसने राज्य की विशिष्ट सेवा करने वाले व्यक्तियों को सम्मानित तथा पुरष्कृत करने के लिए एक उपाधि कायम की जो "लीजियन ऑव ऑनर" कहलाती है और आज तक प्रचलित है। उस समय

लीजियन ऑव ऑनर

लोगों ने इसको लोकतन्त्र की भावना और समता के सिद्धान्त के विरुद्ध कहकर इसको आलोचना की, फिर भी उसकी स्थापना हो गई। यद्यपि यह उपाधि सैनिक तथा असैनिक दोनों ही प्रकार की सेवा करने वाले व्यक्तियों को दी जा सकती थी, किन्तु व्यवहार में नेपोलियन ने ४८ हजार उपाधियों में से असैनिक अधिकारियों को केवल १४०० उपाधियाँ प्रदान कीं।

इस काल के स्थायी कार्यों की सूची यहीं समाप्त नहीं हो जाती। राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था का भी आंशिक रूप में पुनः संगठन किया गया। महात्वाकांक्षी बोनापार्ट ने उद्योग तथा वाणिज्य की ओर विशेष ध्यान

राष्ट्रीय शिक्षा

दिया। सड़कों का सुधार किया गया, नहरें खोदी गईं और बन्दरगाहों का उद्धार किया गया। देश का आर्थिक विकास इतनी तेजी से हुआ कि इंगलैण्ड भी चिन्तित हो उठा।

इस प्रकार राष्ट्रीय जीवन का गम्भीर तथा विस्तृत पैमाने पर जीर्णोद्धार किया गया। नेपोलियन के जीवन का यह काल फ्रांस की जनता के लिए सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ और देश की समृद्धि को इससे अत्यधिक

बोनापार्ट तथा राजतंत्र के समर्थक

योग मिला। इस कार्य में उसे जोखिम भी कम नहीं उठानी पड़ी। उसकी ख्याति और सत्ता की वृद्धि के साथ-साथ उन लोगों का क्रोध भी बढ़ने लगा जिनका उसके प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के कारण शक्ति प्राप्त करने का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। प्रारम्भ में राजतन्त्रवादियों ने समझा कि जैसे इंगलैण्ड के जनरल मौंक ने चार्ल्स द्वितीय को पुनः सिंहासन पर बिठलाने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया था, वैसे ही शायद वह भी बोर्बां वंश को पुनः प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करेगा किन्तु बोनापार्ट इस प्रकार का परोपकार और निःस्वार्थ सेवा करने के लिए तैयार न था। जब यह बात स्पष्ट हो गई तो कुछ साहसी राजतन्त्रवादियों ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया और सोचने लगे कि इसका वध किया जा सकता है। मारेंगो के युद्ध के थोड़े ही समय बाद उस पर आक्रमण किया गया, जिसमें अनेक लोगों के प्राण गए, किन्तु वह स्वयं बाल-बाल बच गया।

इससे भी अधिक गम्भीर षड्यन्त्र लन्दन में रचा गया, जिसका केन्द्र बिन्दु

कादूदाल षड्यन्त्र

लुई सोलहवें का भाई आर्त्वा का काउण्ट था। प्रमुख षड्यन्त्रकारी जार्ज कादूदाल और पीशेग्र थे। बोनापार्ट को अपनी पुलिस द्वारा इस षड़यन्त्र का पता चल गया, किन्तु उसको उसने चलने दिया। वह समझता था कि इस प्रकार मुझे आर्त्वा के काउण्ट पर हाथ साफ करने का अवसर मिल जाएगा। किन्तु काउण्ट ने फ्रांस की भूमि पर उतरने का प्रयत्न नहीं किया। कादूदाल और उसके साथी गिरफ्तार करके गोली से उड़ा दिए गए। पीशेग्र कारागार में मरा हुआ पाया गया। बोनापार्ट बोर्बां वंश को एक सबक सिखाना चाहता था जिसको वह आगे याद रखता। इस उद्देश्य से वह एक जघन्य अपराध कर बैठा। उसने जर्मनी की भूमि पर ड्यूक दाँगेयँ को जो बोर्बां वंश की एक शाखा का था, गिरफ्तार करने की आज्ञा देदी। राजकुमार का षडयन्त्र में किसी प्रकार का हाथ नहीं था। फिर भी उसे पकड़

ड्युक दाँगेयँ का बध

लिया गया और २० मार्च, १८०४ को संध्या के समय ५ बजे विन्सीने लाया गया। ११ बजे उसे सैनिक न्यायालय के सामने प्रस्तुत किया और रात में ढाई बजे बाहर ले जाकर उसे गोली से उड़ा दिया दिया गया। खुले रूप में यह सिर्फ एक हत्या थी और बोनापार्ट स्वयं इसके लिए उत्तरादायी था। उसके नाम पर यह एक अमिट कालिख है, जिसको विशाल समुद्र भी नहीं धो सकते। किन्तु इसका तात्कालिक परिणाम लाभदायक सिद्ध हुआ। राजतन्त्र के समर्थकों ने बोनापार्ट की हत्या के लिए षड्यन्त्र रचना बन्द कर दिया।

जनरल बोनापार्ट का फ्रेञ्च सम्राट नेपोलियन प्रथम होना

कुछ दिनों बाद अपनी शक्ति को सुगठित करने के लिए उसने एक नया कदम उठाया। १८०२ में अमियें की सन्धि हो चुकी थी। उसके बाद उसने अपने प्रथम कोंसल के पद को जो १० वर्ष के लिए था चतुराई के साथ जीवन-भर के लिए करा लिया और अपने उत्तराधिकारी का नाम निर्देशित करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। अब एक ही मंजिल बाकी रह गई थी, वह भी १८०४ में पूरी हो गई। सीनेट ने, जो कि बोनापार्ट की मुट्ठी में थी, एक नया संविधान स्वीकृत किया, जिसके अनुसार उसे सम्राट घोषित कर दिया गया। कहा यह गया कि "यह परिवर्तन फ्रांसीसी जनता के हितों को ध्यान में रख कर किया गया है"। यह ठीक भी है कि फ्रांसीसियों को यह चीज किसी हद तक पसन्द थी। जब जनमत लिया गया तो भारी संख्या में लोगों ने इस परिवर्तन के पक्ष में वोट दिया। इसके बाद वह सम्राटों की परिपाटी के अनुसार अपने नाम के आदि शब्द से विख्यात हुआ। उसका यह नाम सुनने में अन्य बहुत से सम्राटों के नामों से कहीं अधिक संगीतमय और कर्णप्रिय है।

एक बार नेपोलियन ने कहा "मुझे फ्रांस का राजमुकुट धरती पर पड़ा मिला और तलवार की नोंक से मैंने उसे उठा लिया," इन शब्दों में उसके जीवन के एक महत्त्वपूर्ण अध्याय का सारांश निहित है।

अध्याय ९

साम्राज्य के प्रारम्भिक वर्ष

साम्राज्य दस वर्ष कायम रहा, १८०४ से १८१४ तक। इस काल में निरन्तर युद्ध चलते रहे जिनमें नेपोलियन को विस्मयकारी सफलताएँ मिलीं, किन्तु अन्त में वे सब भारी पराजय में विलीन होगईं। इस पूरे इतिहास का केन्द्रबिन्दु नेपोलियन था, जिसकी महत्वाकांक्षाए उतनी ही ऊँची थीं जितने की आकाश के तारे। उस दशक में उसका व्यक्तित्व सारे यूरोप पर इतनी पूर्णता के साथ छाया रहा कि उसका नाम ही नेपोलियन का युग पड़ गया है। इतिहास के एक अत्यधिक शक्तिशाली विजेता और शासक के नाते नेपोलियन का स्थान सिकन्दर, सीजर और शार्लमेन के समकक्ष है। इन चारों की तुलना करना बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद होगा। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह उन सबसे महान नहीं था। इतना अवश्य है कि उसके सम्बन्ध में हमें जितनी जानकारी उपलब्ध है उतनी उन तीनों के सम्बन्ध में नहीं है।

नेपोलियन का युग

जिस समय वह सम्राट हुआ, उसकी अवस्था केवल ३५ वर्ष की थी और उसकी आश्चर्यजनक शक्तियों में किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी। उसकी प्रतिभा सचमुच अद्भुत थी, उसके मस्तिक की गति और प्रक्रिया अत्यन्त तीव्र थी; ग्राहिका शक्ति इतनी प्रबल थी कि एक बार जिस समस्या पर जुट जाता उसको सुलझाए बिना न छोड़ता; विचारशक्ति स्पष्ट, सुतथ्यतासम्पन्न तथा नित नूतन थी। और स्मरणशक्ति इतनी विस्तृत और परिशुद्ध थी कि देखकर विश्वास न होता। वास्तव में उसका मस्तिष्क एक विस्मयकारी अवयव था। इमर्सन का कहना है, "ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने भारी भूलें की हों और फिर दैवयोग से उसे विजय प्राप्त होगई हो। किसी युद्ध को रणक्षेत्र में जीतने से पहले वह उसे अपने मस्तिष्क में जीत लेता था।" मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियों को किसी भी क्षण और किसी भी समस्या पर केन्द्रित करने की उसमें अद्भुत क्षमता थी; सही अर्थ में उसका मस्तिष्क उसका वशवर्ती था।

चारित्रिक विशेषताएं

अपने सम्बन्ध में वह कहा करता था "विभिन्न वस्तुएँ मेरे मस्तिष्क के विभिन्न भागों में उसी प्रकार रक्खी रहती हैं जैसे कि मेज की दराजों में। जब मैं किसी काम को कुछ समय के लिए स्थगित करना चाहता हूँ तो मैं एक दराज को बन्द कर देता हूँ और दूसरे को खोल लेता हूँ। कभी वे एक दूसरे से उलझने नहीं पातीं। और न उस ढंग से काम करने में मुझे असुविधा अथवा थकान होती है। जब मुझे नींद आती है तो मैं सब दराजों को बन्द करके सो जाता हूँ।"

उसकी कल्पना शक्ति स्पष्ट और बहुमुखी थी, और जैसा कि वह स्वयं कहता था, वह सदैव दो वर्ष आगे की सोचा करता। भविष्य की योजनाएँ बनाता और उनके क्रियान्वित करने के तरीकों पर शान्त मस्तिष्क से विचार करता रहता। इस प्रकार उसके चरित्र में व्यावहारिकता, और काव्यत्व, यथार्थता और कल्पना शक्ति का विचित्र सम्मिश्रण था; और आश्चर्य की बात यह थी कि उसकी ये दोनों ही शक्तियाँ विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुकी थीं। इन सबके ऊपर उसकी इच्छा-शक्ति इतनी प्रबल थी कि किसी भी बाधा को स्वीकार ही नहीं करती, और उसकी क्रियाशक्ति लगभग अतिमानवीय थी। नेपोलियन को परिश्रम करने में विशेष आनन्द आता था। योरोप में तो इतना कठिन परिश्रम करने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ है और विश्व के सम्पूर्ण इतिहास में भी बहुत ही कम ऐसे पुरुष हुए हैं। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह कहा करता था "मेरे जीवन का वास्तविक तत्व परिश्रम है, इसी के लिए मैं उत्पन्न हुआ था और इसी के योग्य था।

उसकी असाधारण कार्य क्षमता

कभी-कभी ऐसा तो हुआ है कि मेरे हाथ-पैरों की शक्ति की सीमा आगई, किन्तु ऐसा कभी नहीं लगा कि मेरी परिश्रम करने की शक्ति की सीमा आगई हो।" वह दिन में १२ से १६ घंटे तक काम करता और आवश्यकता पड़ने पर २० घंटे तक। भोजन में वह १५-२० मिनट से अधिक शायद ही कभी लगाता हो। जब वह चाहता, उसी समय तुरन्त उसे नींद आजाती, और जब जागता तो उसका मस्तिष्क तत्काल ही तत्परता के साथ कार्य करने के लिए उद्यत रहता। वह एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देता और अपने साथियों तथा अधीन अधिकारियों को पूरे वेग के साथ कार्य में जुटाए रहता। उसके अतिमानवीय परिश्रम का कुछ अनुमान हमें इस बात से लग सकता है कि उसका प्रकाशित पत्र व्यवहार जिसमें २३ हजार पत्र हैं, ३२ जिल्दों में छपा है। और यह भी ज्ञात हुआ है कि ५० हजार पत्र और विद्यमान हैं जिनको उसने स्वयं बोलकर लिखाया था; किन्तु वे अभी छपे नहीं हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नैपोलियन विलासी और निठल्लू शासक न था, बल्कि उस समय योरोप में उससे अधिक परिश्रमी दूसरा व्यक्ति न था। सच्चा सुख भी उसे काम ही में मिलता। जीवन के साधारण आमोद-प्रमोद से वह उकता जाता और उनमें लिप्त भी तभी होता जब कि अपनी स्थिति को ध्यान में रखते

समाज में उसका व्यवहार

हुए ऐसा करना आवश्यक समझता। वह शायद ही कभी मुस्कराता, और हँसता तो कभी नहीं। उसकी बातचीत एक व्याख्यान की तरह होती, जिसमें स्वयं बोलता रहता और दूसरों को कहने का अवसर न देता, किन्तु फिर भी उसमें चतुराई, उत्साह, तीक्ष्णता, वेग और बहुधा अभद्रतः देखने को मिलती। न तो उसके कोई सिद्धान्त थे और न शिष्टाचार के नियम। उसकी शिक्षा-दीक्षा सभ्य और शिष्ट ढँग की नहीं हुई थी। स्त्रियों से उसके जो सम्बन्ध रहे उनसे यह बात भली भाँति प्रकट होती।

उनके सम्बन्ध में उसकी राय भी अच्छी न थी। उसकी भाषा में, चाहे वह इतालवी बोलता चाहे फ्रेन्च, किसी प्रकार की विशेषता न थी और न सौकर्य और शुद्धता ही देखने को मिलती। किन्तु फिर भी उसमें रोचकता और वैयक्तिकता का अभाव नहीं था। उसके जन्म पर लावण्यता, शिष्टता आदि गुणों की छाप न पड़ी थी, किन्तु भाग्य का वरद हस्त रहा। उसमें सूत्रधार तथा अभिनेता के गुण विद्यमान थे। राजकीय उत्सवों और समारोहों आदि के अवसर पर वह सुन्दर व्यवस्था करवाता और विभिन्न अवसरों पर उसे जो पार्ट अदा करना पड़ता उसको वह बड़ी दक्षता के साथ करता। उदाहरण स्वरूप, राज्यभिषेक, सैनिक पर्यवेक्षण, राजनयिक सम्मेलन अन्य सम्राटों से भेंट आदि के अवसर पर उसके व्यवहार अथवा आचरण में कोई त्रुटि न दिखाई पड़ती। उसकी घोषणा और सेना के लिए जारी किये गये आदेश अद्वितीय थे। वह जब किसी को फुसलाता अथवा प्रसन्न करता तो कोमलतम शब्दों का प्रयोग करता, और जब किसी को धमकाता तो अत्यन्त कठोर और तीक्ष्ण शब्द उसके मुँह से निकलते। वह आँसू बहा सकता अथवा क्रोध से उबल पड़ता और यहाँ तक कि फर्नीचर भी तोड़ताड़ डालता, यदि वह समझता कि ऐसा करने से वांछित प्रभाव पड़ेगा। पोप पायस सप्तम ने एक बार जब उसको इसी प्रकार का नाटकीय प्रदर्शन करते देखा तो कहने लगा "दुःखान्त तथा सुखान्त, दोनों प्रकार का अभिनेता।"

दूसरों पर उसका आधिपत्य

उसका कोई मित्र न था, वह उन सब सिद्धान्तवादियों से घृणा करता जिन्होंने क्रान्ति के प्रभावोत्पादक विचारों को चारों ओर फैलाया था। अपने विरोधियों को उसने इतना तंग किया कि या तो वे देश छोड़ कर चले गए अथवा चुप हो गये। उसके मन्त्री परिश्रमी सेवकों की भाँति थे, किन्तु अपनी चकाचौंध कर देने वाली विजयों के कारण वह अपने सैनिकों की भक्ति तथा प्रशंसा का पात्र बन गया था। देश के कृषक उसकी मुट्ठी में थे, क्योंकि उसने उनकी भूमि तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा की, किसानों की राय में क्रान्ति की यही दो चीजें ऐसी थीं जिनका कि कोई महत्त्व था। वह जितना महान था उतना ही तुच्छ भी। वह निर्लज्जतापूर्वक झूठ बोल लेता, ताश के खेल में ठग लेता तथा अनेक विषयों में अन्धविश्वासी था। वह ऐसा व्यक्ति था जिसके सम्बन्ध में अन्य ऐतिहासिक पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी या बुरी बातें कही जा सकती हैं उसके चरित्र का वर्णन करना सरल नहीं है और संक्षेप में करना तो किसी भी प्रकार सम्भव नहीं।

नेपोलियन द्वारा दरबार का संगठन

अब नेपोलियन सम्राट बन गया था। इसलिए उसने राज्य को शाही ढंग से संगठित करना प्रारम्भ किया। ऐसे अनेक पद स्थापित किये गये जिनके नाम पुराने ढंग के और ऊँचे-ऊँचे थे, और उनके लिए नियुक्तियाँ की गईं। उदाहरण के लिये महा गृह-प्रबन्धक, उत्सव-महाप्रबन्धक आदि। एक दरबार का निर्माण किया गया जो इतना शानदार और खर्चीला था जितना कि उस जैसे सैनिक की आज्ञा से ही बन सकता था। सम्राट के परिवार के सदस्यों को नवीन उपाधियों से विभूषित किया गया। वे लोग सदैव उन सम्मानों और पुरस्कारों को धारण करने के लिये तैयार रहते जो सम्राट की कृपा से उन्हें प्राप्त

होते। दरबार में शिष्टाचार के उन तरीकों और रीति-रिवाजों को फिर प्रचलित किया गया जो क्रान्ति से पहिले प्रचलित थे। गणतन्त्रीय सादगी जाती रही और उसका स्थान शाही ढंग के ठाट-बाट, रोबदाब, अपव्ययता आदि ने ले लिया। नई स्थिति के अनुरूप संविधान में भी संशोधन कर दिया गया। नोत्रे दामे में बड़े समारोह के साथ नेपोलियन का राज्यभिषेक हुआ। उत्सव में सहायता देने के लिए पोप रोम से चल कर आया, किन्तु नेपोलियन ने राजमुकुट उसके हाथ से अपने सिर पर नहीं रखवाया। उस महान् समारोह में ठीक मुहूर्त पर नेपोलियन ने राजमुकुट अपने सिर पर रख लिया और फिर साम्राज्ञी के सिर पर रक्खा। पोप ने नेपोलियन के सिर पर पवित्र तेल छोड़ा इस प्रकार जो व्यक्ति कभी तोपखाने का लेफ्टीनेंट रह चुका था "ईश्वर द्वारा अभिषिक्त" हो गया। कुछ समय बाद १८०५ में जब उसने अवार आल्प्स गणराज्य (सिस-एल्पाइन गणराज्य) को इटली के राज्य का नाम दिया, तब अपने को इटली के राजा के रूप में भी अभिषिक्त कर लिया।

नोत्रे दामे में नेपोलियन का राज्यभिषेक

साम्राज्य का इतिहास दस वर्ष के निरन्तर युद्धों का इतिहास है। फ्रांस के बढ़ते हुए और अहंकारपूर्ण उत्कर्ष के कारण योरोप के सभी राज्यों की स्वतन्त्रता के लिए संकट उठ खड़ा हुआ था। फ्रांस का यह उत्कर्ष इसलिए और भी अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ कि उसके कारण शासन की बागडोर एक स्वेच्छाचारी के हाथ में थी और वह भी ऐसे स्वेच्छाचारी के जिसकी शक्ति युद्ध के कारण बढ़ गई थी और जिसे अब अपनी सैनिक रुचि और प्रतिभा का खुल कर प्रदर्शन करने का अवसर मिल गया था। नेपोलियन प्रत्येक अवसर पर जान-बूझ कर और खुले रूप से जूलियस सीजर और शार्लमेन की विजयों का स्मरण दिलाता। इसका अर्थ इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता था कि वह केवल फ्रांस पर ही नहीं, बल्कि समस्त योरोप पर और अन्त में सम्पूर्ण विश्व पर शासन करने की योजना बना रहा था। उन राष्ट्रों के सामने जो आधीनता की स्थिति स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे और राष्ट्रों के परिवार में अपना समानता का पद नहीं त्यागना चाहते थे, इस अधिनायकत्व से लड़ने के सिवाय और कोई चारा न था। मूलतः इस दसवर्षीय युद्ध का यही अर्थ था। दूसरे शब्दों में अन्य राष्ट्र इस लड़ाई में इसलिए संलग्न हुए कि नेपोलियन की अनुकम्पा पर नहीं, बल्कि अपने अधिकार के आधार पर जीवित रहना और उन्नति करना चाहते थे। दूसरे उनका विश्वास था कि एक राज्य का सार्वभौम प्रभुत्व और अनुचित उत्कर्ष अन्य राज्यों के लिए और उनकी सभ्यता के लिए घातक सिद्ध होगा। १८०४ में फ्रांस इस प्रकार का प्रभुत्व प्राप्त कर चुका था। नेपोलियन की अधीनता में उसने अपनी इस शक्ति को निरंकुश और सार्वभौम आधिपत्य में परिणत करने का विकट प्रयत्य किया। इसमें वह सम्भवतः सफल हो जाता, किन्तु उसकी विफलता का मुख्य कारण इंगलैण्ड का अनवरत और अडिग विरोध था। उसने फ्रांस के दावों को कभी स्वीकार नहीं किया और प्रत्येक मंजिल पर उसने लोहा लिया, जहाँ कहीं और जैसे बना, उसके खिलाफ विद्रोह का संगठन किया, एक के बाद एक संघ बनाए और इस अथक प्रयत्न में

साम्राज्य के युग में निरन्तर युद्ध

फ्रांस का चिर शत्रु, इङ्गलैण्ड

अपने धन और नौ सेना का खुल कर प्रयोग किया। वास्तव में यह दो महाशक्तियों के बीच संघर्ष था। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें एक ओर सामुद्रिक शक्ति और दूसरी ओर स्थल-शक्ति का मुकाबला था, उनमें से पहले का संचालन इंगलैण्ड ने किया और दूसरे का नेपोलियन ने।

जल-शक्ति और स्थल-शक्ति में मुठभेड़

१८०४ में जिस समय नेपोलियन साम्राज्य का संगठन कर रहा था, उसी समय फ्रांस के विरुद्ध एक नये गुट का निर्माण हो रहा था। यह इस प्रकार का तीसरा गुट था। इंगलैण्ड और फ्रांस के बीच १८०२ में अमिएँ की सन्धि हो चुकी थी। यह संधि केवल एक वर्ष (१७ मई, १८०३ तक) कायम रही। उसके बाद दोनों राज्यों के बीच फिर मुठभेड़ हो गई। इसके कारण अनेक थे। केम्पोफोर्मियो और लुनेविले की सन्धियों से फ्रांस के साम्राज्य का बहुत विस्तार हो चुका था। राइन का पश्चिमी तट उसके अधिकार में आ गया था। इतालवी प्रायद्वीप का अधिकाँश भाग भी उसने हस्तगत कर लिया था और एण्टवर्प के सुन्दर बन्दरगाह सहित बेल्जियम को उसने जीत लिया था। इंगलैण्ड की ईर्ष्या का सबसे बड़ा कारण यही था। उसने फ्रांसीसी प्रसार का सदैव विरोध किया था और विशेष कर उत्तर की ओर इंगलिश जल मार्ग (इंगलिश चैनल) के सहारे-सहारे। इस जल मार्ग को इंगलैण्ड के लोग अपना निजी समझते थे इसलिए उन्होंने इसका यह नाम रक्खा था। इस क्षेत्र में वे किसी राष्ट्र की प्रतिस्पर्धा सहन नहीं कर सकते थे। इस सब के बावजूद उन्होंने अमिएँ की सन्धि पर हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिया था। कारण यह था कि उन्हें अपने उद्योगों की दशा का विशेष ध्यान था। लम्बी लड़ाई ने, जो कि १७९३ से चली आ रही थी, उनके व्यापार को भारी क्षति पहुँचाई थी। उन्हें आशा थी कि फ्रांस से सन्धि हो जाने पर योरोपीय महाद्वीप के बाजार हमारे लिए खुल जायेंगे और इस प्रकार हम अपने व्यापार को पुनः जीवित कर सकेंगे। किन्तु उन्हें तुरन्त ही पता चल गया कि फ्रांस उनकी इस आशा को पूरा नहीं होने देगा। नेपोलियन फ्रांस के उद्योगों का विकास करना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि फ्रांस उद्योग फ्रांस के ही बाजार की माँग पूरी न करे, बल्कि योरोप के अन्य देशों के बाजारों पर भी अधिकार करलें। इस उद्देश्य से उसने आयत पर भारी कर लगाए। परिणाम यह हुआ कि इंगलैण्ड की व्यापारिक होड़ का डर जाता रहा अथवा बहुत कम हो गया। इससे अंग्रेज बड़े क्रुद्ध हुए। बिना युद्ध में हारे हुए वे इस प्रकार की स्थिति को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। उनकी ऐसी परिपाटी कभी नहीं रही थी। उनके व्यवसायियों ने कहा कि उसकी तुलना में तो लड़ाई का भार ही हल्का बैठेगा। इंगलैण्ड के लिए व्यापार तो जीवन-मरण का प्रश्न था। उसके बिना तो उसका अस्तित्व ही कायम नहीं रह सकता था। यही कारण था कि जब एक बार उसने अपने व्यापार की रक्षा के लिए युद्ध आरम्भ कर दिया तो उसने तब तक हथियार नहीं डाले जब तक अपने प्रतिद्वन्द्वी को सेण्ट हेलीना के टापू में मजबूती से बन्द नहीं कर दिया।

इंगलैण्ड की शत्रुता के कारण

अमिएँ की संधि का खोखलापन

दोनों देशों के बीच मनमुटाव के अन्य कारण भी थे, जिन्होंने सन्धि को और

भी अधिक अस्थायी बना दिया। यद्यपि दोनों देशों में से कोई भी युद्ध के लिए इच्छुक नहीं था, फिर भी वे तैयार थे। इसलिए युद्ध का बहाना ढूँढना कठिन न था। मई १८०३ में दोनों के बीच युद्ध छिड़ गया नेपोलियन ने तुरन्त हनोवर पर जो कि जर्मनी का एक राज्य था और इंगलैण्ड के राजा के अधीन था, अधिकार कर लिया। उसने हनोवर से लेकर दक्षिण की ओर और पूर्व में इटली में स्थित तराँतो तक समस्त समुद्रतट समवरुद्ध घोषित कर दिया। दूसरे शब्दों में अब इंगलैण्ड इस ओर से योरोपीय देशों के साथ अपना व्यापार न चला सकता था। साथ ही साथ नेपोलियन ने इंगलैण्ड पर आक्रमण की तैयारियाँ भी आरम्भ कर दीं। यह कार्य कठिन था। इसके लिये बहुत समय चाहिये था, क्योंकि इंगलैण्ड की तुलना में फ्रांस की सामुद्रिक शक्ति बहुत न्यून थी। इंगलिश जलमार्ग पर अधिकार किये बिना आक्रमणकारी फौज को उस देश में उतरना कठिन था। नेपोलियन ने बूलोञ्ञ के बन्दर-गाह पर १ लाख ५० हजार सैनिकों को एकत्रित किया और उन्हें आक्रमण के लिये तैयार रहने का आदेश दिया। आदमियों को उस पार ले जाने के लिए उसने सैकड़ों चौड़ी नावें बनवाई। हमारे पास यह निश्चयपूर्वक जानने का साधन नहीं है कि वह सचमुच इंगलैण्ड पर आक्रमण करना चाहता था अथवा उसने यह कार्यवाहियाँ इंगलैण्ड को केवल डराने धमकाने के लिए की थीं और वह यह समझता था कि आखिर इस प्रकार की योजनाओं के सफल होने की आशा नहीं, अतः यह प्रदर्शन इसलिए कर रहा था कि इंगलैण्ड लड़ाई की जोखिम उठाने की अपेक्षा शांति कायम रखने को अधिक बुद्धिमानी का काम समझने लगे।

फ्रांस और इंगलैण्ड के बीच युद्ध पुनः आरम्भ

नेपोलियन की इंगलैण्ड पर आक्रमण की धमकी

परन्तु इंगलैण्ड किसी भी प्रकार उसकी धमकी में नहीं आया। उसने प्रतिरक्षा तथा आक्रमण दोनों की तैयारियाँ जारी रक्खीं। योरोपीय देशों के साथ उसने मित्रता कायम की और नेपोलियन के विरुद्ध एक नये गुट का निर्माण किया। उसकी आशा थी कि इस गुट की सहायता से फ्रांस को खदेड़ कर उसकी मूल सीमाओं के भीतर कर देना संभव हो सकेगा और उससे वेल्जियम, राइन का पश्चिमी तट तथा इटली के प्रदेश छीने जा सकेंगे। इस उद्देश्य से इंगलैण्ड ने रूस से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिया। रूस अपने निजी कारणों से फ्रांस के विरुद्ध था। नेपोलियन पूर्वी भूमध्यसागर में टर्की की शक्ति को कम करके अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था इससे रूस को बहुत डर था। उसकी इच्छा थी कि यदि टर्की साम्राज्य पर किसी दूसरे का अधिकार हो तो सर्वप्रथम मेरा हो। अँग्रेजों ने जार को आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। निश्चय हुआ कि जार युद्ध के लिए जितने सैनिक देगा उनमें से प्रति एक लाख के लिए इंगलैण्ड उसे एक निश्चित रकम देगा।

इंगलैण्ड द्वारा नये गुट का निर्माण

उधर आस्ट्रिया को इस बात से ईर्ष्या थी कि नेपोलियन का इटली पर आधिपत्य हो गया था। इसके अतिरिक्त वह १७९६ और १८०० की लड़ाइयों की पराजय के कलंक को धोने का इच्छुक था और इटली में अपने खोए हुए प्रभुत्व को पुनः स्थापित करना चाहता था। इसलिए १८०५ में वह भी इस गुट में सम्मिलित हो गया।

आस्ट्रिया के गुट में सम्मिलित होना

नेपोलियन की आस्ट्रिया पर तीसरी चढ़ाई

संक्षेप में १८०५ की स्थिति इस प्रकार थी। जैसे ही नेपोलियन की तैयारियाँ पूरी हो गईं वैसे ही उसने जोश का प्रहार किया इंगलैण्ड पर नहीं, क्योंकि जलमार्ग के कारण वहाँ तक पहुँचना उसके लिये सम्भव न था। रूस पर भी नहीं, क्योंकि वह इतना दूर था कि तत्काल उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जा सकता था। उसका आघात पुराने शत्रु आस्ट्रिया पर ही हुआ और उसको उसने पहिले से भी अधिक सरलता से धूल चटा दी और उसकी प्रतिष्ठा को कहीं अधिक धक्का पहुँचाया।

१८०५ का अभियान नेपोलियन के रण-कौशल का एक अन्य उदाहरण था। आस्ट्रिया ने अपने मित्र रूस की सेनाओं के आगमन की प्रतीक्षा नहीं की और जनरल माक की अधीनता में ८०,००० की एक सेना को डेन्यूब के ऊपर की ओर बवारिया में भेज दी। माक ने उल्म के स्थान पर मोर्चा बनाया। उसका विश्वास था कि नेपोलियन **काले जंगल** के मार्ग से आयेगा; दक्षिणी जर्मनी पर आक्रमण करने के लिए आने वाली फ्रांसीसी सेना के लिये वही सबसे सीधा और सुपरिचित मार्ग था। किन्तु ऐसा बिल्कुल नहीं हुआ। नेपोलियन की योजना दूसरी ही थी। उसने **काले जंगल** के प्रदेश में कई सैनिक टुकड़ियाँ भेज दीं जिससे कि माक को विश्वास हो जाय कि यही अंचल सामरिक महत्त्व का है और इसलिए यहीं डटना चाहिए। यही हुआ, वह वहीं मजबूती से जमा रहा। उधर नेपोलियन ने अपनी **महान सेना** को जो पिछले दो वर्ष से बूलोञ्ज पर और इंगलिश जल मार्ग के किनारे प्रशिक्षण पा रही थी, जर्मनी को पार करके उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ने का आदेश दिया। यह मार्ग लगभग ५०० मील लम्बा था। तेईस दिन तक निरन्तर चलकर उसको पार किया गया, और विशेष बात यह भी थी कि यह सारा काम उसी नाप-तौल के साथ हुआ जैसे कि गणित के प्रश्न हुआ करते हैं, और शत्रु को इस समस्त कार्यवाही का कुछ भी पता न लग सका। इस प्रकार उसकी सेना ने माक के पिछावे को जा दबाया। फल यह हुआ कि वीना से माक की सेना का सम्बन्ध टूट गया और यातायात के मार्ग विच्छिन्न हो गये। इस भाँति इस बार भी नेपोलियन ने उसी सामरिक चाल से काम लिया जिसके द्वारा उसने १८०० में महान सन्त बर्नाड को दर्रे के पार करके मारिंगों के युद्ध में विजय प्राप्त की थी।

नेपोलियन का उल्म के स्थान पर माक पर हमला

माक की आशा थी कि नेपोलियन पश्चिम के मार्ग से **काले जंगल** में होकर आयेगा। किन्तु उसने उसे पूर्व की ओर से उल्म की दिशा में बढ़ते देखा। लेकिन अब समय निकल चुका था, इतनी जल्दी मोर्चा नहीं घुमाया जा सकता था। नेपोलियन ने माक की सेना का काम तमाम कर दिया और २० अक्टूबर को उल्म के स्थान पर उसे हथियार डालने पर बाध्य कर दिया। उसने जोजेफाइन को लिखा, "जिस काम को मैंने आरम्भ किया था वह पूरा हो गया है। आस्ट्रिया की सेना को मैंने केवल चल-चल कर ही नष्ट कर दिया है।" यह विजय टाँगों के बल पर ही प्राप्त हो गई थी। शत्रु के ६०,००० सैनिक और ३० जनरल बन्दी बना लिये गये और १२० तोपों पर अधिकार कर लिया गया। नेपोलियन को केवल १५०० आदमियों की क्षति उठानी पड़ी।

अब नेपोलियन के लिये डेन्यूब के मार्ग से वीना के लिये मार्ग खुल गया था। उस ओर उसने बढ़ना आरम्भ किया। वर्षा हो रही थी, बर्फ पड़ रही थी और सड़कें

बहुत खराब थीं, फिर भी वह तेजी से आगे बढ़ता गया और तीन सप्ताह में दूरी तै कर ली। उसने विजेता के रूप में वीना में प्रवेश किया। साम्राट फ्रांसिस राजधानी छोड़कर उत्तर की ओर चला गया था ताकि उधर से आ रही रूसी सेनाओं के साथ सम्पर्क कायम कर सके, अतः वीना में नेपोलियन को किसी प्रकार के प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा। वीना से चलकर नेपोलियन ने आस्ट्रियन सम्राट का पीछा किया और दिसम्बर २, १८०५ को आस्टरलित्स के युद्ध में अपने जीवन की कदाचित महानतम विजय प्राप्त की। उसी दिन एक वर्ष पूर्व सम्राट के रूप में उसका अभिषेक हुआ था। युद्ध दिन भर चलता रहा। सूर्य की किरणें कोहरे को भेद कर युद्ध-क्षेत्र में पड़ रही थीं। इसको फ्रांसीसियों ने एक शुभ शकुन माना और उसके बाद वह विजय का प्रतीक बन गया। युद्ध अत्यन्त भयंकर हुआ। दोनों ही ओर के सैनिकों ने असीम शूरत्व का परिचय दिया, किन्तु नेपोलियन का सैन्य-संचालन जितना उच्चकोटि का था उतना ही रूसी तथा आस्ट्रिया की सेनाओं का घटिया था। परिणाम निर्णायक और भयावह हुआ। मित्रों की सेनाएँ बुरी तरह खदेड़ दी गईं और वे तितर-बितर होकर चारों दिशाओं में भाग खड़ी हुईं। बड़ी संख्या में उनके सैनिक खेत रहे, और तोपखाना पूर्ण रूप से नष्ट-भ्रष्ट हो गया। नेपोलियन की सेना की संख्या कम थी, फिर भी उसने पूरी सेना का प्रयोग नहीं किया, अपने संरक्षित दलों को उसने युद्ध में नहीं झोंका। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि उसने बड़े उल्लास के साथ अपने सैनिकों को सम्बोधित किया—

आस्टरलित्स का युद्ध (दिसम्बर २, १८०५)

'आस्टरलित्स का सूर्य'

"योद्धाओ, मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। आस्टरलित्स के युद्ध में मैंने तुमसे जो आशाएँ लगाई थीं वे तुमने अपनी दुधर्षता से पूर्ण कर दी हैं; अपने ध्वज को तुमने अमर यश से विभूषित कर दिया।" इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं कि उसने अपने सैनिकों से कहा कि तुम विशिष्ट व्यक्ति हो, फ्रांस पहुँच कर प्रतिष्ठा और प्रशंसा पाने के लिए तुम्हें केवल इतना कहना पड़ेगा कि "मैं आस्टरलित्स के युद्ध में उपस्थित था।"

इस संक्षिप्त और यशस्वी अभियान का परिणाम विविध और आश्चर्यजनक हुए। रूसियों ने नेपोलियन से सन्धि नहीं की बल्कि अव्यवस्थित ढँग से जितनी तेजी से हो सका अपने देश को लौट गए। किन्तु आस्ट्रिया ने तुरन्त ही एक सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए, जिसके अनुसार उसे बहुत कुछ खोना पड़ा। नेपोलियन ने आस्ट्रिया को तीसरी बार यह भयंकर पराजय दी थी, अतः प्रेसबुर्ग की सन्धि में जो शर्तें उसने रखीं उन्हें आस्ट्रिया के सम्राट को स्वीकार करना पड़ा। इस सन्धि से उसे भारी क्षति तो उठानी ही पड़ी, साथ ही साथ अपमान भी बहुत सहना पड़ा। उसने वेनीशिया का प्रदेश जिस पर आठ वर्ष से अर्थात् कैम्पोफोर्मियो की सन्धि के समय से उसका अधिकार चला आया था इटली के राज्य को, जिसका राजा नेपोलियन था, सौंप दिया। इसके अतिरिक्त उसे इस्टीरिया और दालमाशिया भी नेपोलियन के हवाले करने पड़े। ऊपरी एड्रियाटिक के तट पर आस्ट्रिया के पास केवल त्रीस्त का एक बन्दरगाह रह गया। अब एड्रियाटिक का आधिपत्य आस्ट्रिया के हाथ से निकल कर फ्रांस के हाथों में आ गया। जर्मनी की बवारिया और बाडेन रियासतों ने इस अभियान ने नेपोलियन का साथ दिया था, अतः आस्ट्रिया को अपने दक्षिणी जर्मनी के बहुमूल्य क्षेत्रों का कुछ भाग इन रियासतों को भी देना पड़ा। इस प्रकार

प्रेसबुर्ग की सन्धि (दिसम्बर २६, १८०५)

आस्ट्रिया का इटली और एड्रियाटिक से सम्बन्ध टूट गया और उसे अपने ३,०००,००० प्रजाजनों से हाथ धोने पड़े। अब वह लगभग एक भूमि-बद्ध देश रह गया। इसके अतिरिक्त उसे वे अन्य परिवर्तन, जो नेपोलियन कर चुका था अथवा करने वाला था स्वीकार करने पड़े।

अब नेपोलियन बड़े चाव से शार्लमैन की भूमिका अदा करने लगा; शार्लमैन के विषय में वह प्राय: बड़े उत्साह के साथ और अतिरंजित भाषा में बात किया करता था। पहले उसने अपने को चमत्कारिक ढंग से सम्राट बना लिया और अब दूसरों को राजा बनाने लगा। जिस प्रकार उसने पर्वतों को नीचे दिखाया वैसे ही अब वह घाटियों को ऊँचा उठाने लगा। १८०६ के प्रारम्भिक महीनों में उसने चार राजाओं की सृष्टि की। बवारिया और वूर्टेम्बेर्ग उस समय तक ठिकाने[1] मात्र थे; नेपोलियन ने उन्हें राज्यों का पद प्रदान कर दिया और तब से वे इस पद को धारण किये हुए हैं। उनके सम्बन्ध में उसने एक बार कहा कि "उन्होंने सम्राट के प्रति जो अनुराग प्रकट किया उसके लिए कृतज्ञता के प्रतीक के रूप में उन्हें यह पद दिया गया था।" उस अभियान के दौरान में नेपल्स के राजा ने एक संकट के क्षण में नेपोलियन के शत्रु का साथ दिया था। अत: नेपोलियन ने एक सरल आज्ञप्ति जारी कर दी जिसमें कहा गया कि अब नेपल्स पर बोर्बां वंश का शासन समाप्त हो गया है। रिक्त सिंहासन उसने अपने भाई जोज़फ को, जो उससे दो वर्ष बड़ा था, दे दिया। जोज़फ ने पहले पादरी बनने के लिए शिक्षा-दीक्षा पाई थी, बाद में सैनिक अधिकारी बनने की तैयारियाँ कीं और फिर वकील बनने के लिए। किन्तु अब वह राजा बन गया, ईश्वर की कृपा से नहीं अपने छोटे भाई की अनुकम्पा से।

राजाओं का निर्माता नेपोलियन

नेपोलियन की दानशीलता यहीं समाप्त नहीं हो गई। आस्टरलित्स के युद्ध के उपरान्त उसने बटाविया के गणतंत्र अर्थात् हालैण्ड को राजतंत्र में परिवर्तित कर दिया और अपने भाई लुई को जिसकी आयु उस समय बत्तीस वर्ष की थी उसका राजा बना दिया। लुई का स्वभाव उतना ही कोमल था जितना कि नेपोलियन का कठोर, इसलिये सिंहासन पर बैठने के उपरान्त उसने सोचा कि शासन करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि प्रजा के हितों का ध्यान रक्खा जाय और उसका स्नेह-भाजन बनने का प्रयत्न किया जाय। किन्तु नेपोलियन इस विचार से सहमत नहीं था इसलिये लुई को कठिनाइयों और दु:खों का सामना करना पड़ा, और उसका राज्य-काल भी संक्षिप्त ही सिद्ध हुआ। नेपोलियन ने लुई को अनुदेश के रूप में कहला भेजा "जब किसी राजा के सम्बन्ध में लोग कहें कि वह भला आदमी है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह असफल सिद्ध हुआ है।"

नेपोलियन के पास देने के लिये राज्य कम थे, कम से कम फिलहाल तो ऐसा ही था। किन्तु उसके पास अन्य अनेक चीजें थीं जिन्हें देकर वह दूसरों को अनुग्रहीत कर सकता था और यह भी चाहता था कि पाने वाले उन्हें तुच्छ न समझें। और न उन्हें तुच्छ समझा गया। अपनी बहिन एलीभ को उसने लूटा और करारा की राजकुमारी बना दिया; उसकी दूसरी बहिन पोलीन ने जो एक सुन्दर और

---

1. Duchies

नेपोलियन का परिवार

विलासप्रिय युवती जी राजकुमार वोर्गीज से विवाह करलिया और गास्ताला की डचेस बन गई उसकी सबसे छोटी वहिन कैरोलीन थी; चारित्रिक बल में वह उससे मिलती-जुलती थी; उसने अश्वारोही दल के दुर्धर्ष अधिकारी म्युरा से विवाह कर लिया और म्युरा के लिये नेपोलियन ने निचले राइन प्रदेश में बेर्ग के राज्य का निर्माण करके उसे उसका ड्यूक बना दिया।

ल्युसियँ और जेरोम

नेपोलियन के दो भाई ल्युसियँ और जेरोम और रह गये थे जिन्हें अभी तक कुछ नहीं मिला था, और उन दोनों की दिलचस्प कहानी है। उन दोनों ने नेपोलिन की अनुमति के बिना प्रेम-विवाह कर लिये थे; अतः वह उनसे अप्रसन्न हो गया था उसके दिमाग में उनके लिये कुछ और ही योजनाएँ थीं किन्तु उनके स्वतन्त्र आचरण से उसका क्रोध उबल पड़ा। दोनों को ही उस जादू की कुड़रिया के बाहर निकाल दिया गया था और कहला दिया था कि जब तक वे अपनी पत्नियों को हटाकर नेपोलियन के इच्छानुसार विवाह नहीं करते तब तक वे अनुग्रह के पात्र नहीं बन सकते। ल्युसियँ ने दृढ़ता के साथ ऐसा करने से मना कर दिया। अतः वह व्यक्ति जिसने अपनी प्रत्युत्पन्न मति से १९ ब्रूमेयर के दिन नेपोलियन की रक्षा की थी और इस सम्पूर्ण कहानी को सम्भव बनाया था, सम्राट के अनुग्रह से वंचित रहा; और उस समय के इतिहास में उसकी कोई गणना नहीं है। जेरोम इस विस्मयकारी परिवार का सबसे छोटा सदस्य था। वह ल्युसियँ की अपेक्षा अधिक नमनीय तत्व का बना हुआ था, अतः जब वह प्रेम के स्वप्न से जागा और नेपोलियन के तीव्र आग्रह के सामने झुक कर अपनी पत्नी एलिजावेथ पेटरसन को जो बाल्टीमोर की एक सुन्दरी थी त्याग दिया तो उसे भी राजा बना दिया गया। उन उत्तेजक दिनों में जिस किसी ने भी धनदेवता की पूजा की उसे समुचित पुरस्कार मिला।

जो व्यक्ति अल्प काल में ही इतना महान् बन गया था उसके द्वारा सम्मान, प्रतिष्ठा और अनुग्रह की जो चारों और वखेर की गई उसका विवतरण देना सचमुच वड़ा मनोरंजक होगा। राज्य के अधिकारियों, सेना के सेनानायकों और दूर के सम्वन्धियों को जगमगाते हुये पुरस्कार दिये गये; वे सब आनन्द मनाते रहे और अधिक पुरस्करों की कामना करते रहे।

जर्मनी का रूपान्तर

आस्टरलित्स के युद्ध का नेपोलियन के परिवार के भाग्योदय से भी अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि फ्रांस ने लोलुप और स्वार्थी जर्मन राजाओं के सहयोग से ही जर्मनी का रूपान्तर कर दिया। रूपान्तर की यह प्रक्रिया, जिसमें कुछ राज्यों ने दूसरों को हड़प कर जर्मन रियासतों की संख्या वहुत कम कर दी थी, कई वर्ष पहले से चली आ रही थी। जब केम्पोफोर्मियो और लुनविले की सन्धियों के अनुसार फ्रांस को राइन नदी के पश्चिम का जर्मन प्रदेश मिल गया तो उस समय यह निश्चय हुआ था कि इससे जिन राजाओं की भूमि छिन गई है उन्हें राइन के पूर्व में उसके मुआवजे के रूप में दूसरी भूमि दे दी जायगी। किन्तु सन्धियों की इस शर्त का अक्षरशः और सबके सम्बन्ध में पालन न किया जा सका, क्योंकि राइन के पूर्व ही प्रत्येक इंच भूमि पर किसी न किसी राजा का स्वामित्व था। वास्तव में पितागत

राजाओं को ही मुआवजा देकर परिवर्तन संपादित किया गया राइन के दाएँ तथा बाएँ दोनों किनारों पर और समस्त जर्मनी में अनेक ऐसी रियासतें थीं जिनके शासक पित्रागत न थे। उदाहरण के लिए चर्च की रियासतें और स्वतन्त्र साम्राज्यीय नगर। ये रियासतें पित्रागत अधिकार से शासन करने वाले राजाओं को उस भूमि के मुआवजे के रूप में दे दी गईं जो उन्हें राइन के पश्चिम में त्यागनी पड़ी थीं कुछ भाग्यशाली जर्मन राज्यों के लाभ के लिये छोटी-छोटी जर्मन रियासतों का यह जो सर्वनाश किया गया उसका उत्तरदायित्व स्वयं जर्मन लोगों पर न था। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो भी यह बड़ी लज्जा का काम मान जाता; किन्तु इसका सम्पादन तो पेरिस में हुआ था, प्रथम कौंसल के कार्यालय में विशेष कर तालेराँ के विभाग में धन-सम्पत्ति की भीख माँगने का यह लज्जास्पद कार्य चलता रहा। जर्मन राजाओं ने अपने जर्मन भाई-बन्दों को लूटने में तालेराँ का समर्थन प्राप्त करने के लिये उसे इतने "उपहार" दिये कि वह शीघ्र ही धनी हो गया। यह घृणास्पद व्यापार कई महीने तक चलता रहा और जब मार्च १८०३ में नेपोलिन के आदेशानुकूल उसकी समाप्ति हुई तो उस समय जर्मन राज्यों की संख्या काफी कम हो गई थी। एक को छोड़ कर चर्च की सभी रियासतें विलुप्त हो गईं और पचास स्वतन्त्र नगरों में से केवल छः बच रहे। उन सब का नाश बड़े राज्यों के कलेवर को बढ़ाने के लिए ही किया गया। इससे जर्मनी का मानचित्र तो अवश्य सरल हो गया, किन्तु चर्च तथा साम्राज्य की स्थिति में गम्भीर परिवर्तन हो गया। १७९२ में **पवित्र रोमन** अथवा **जर्मन साम्राज्य** के अन्तर्गत ३६० राज्य थे, १८०२ में उसमें से केवल ८२ बच रहे।

जर्मनी की भूमि के क्रय-विक्रय का केन्द्र पेरिस

यह सब कुछ आस्टरलित्स से पहले ही हो चुका था। आस्टरलित्स के उपरान्त रफ्तार तेज हो गई अन्त में साम्राज्य का सर्वनाश हो गया। पेरिस पुनः जर्मन राजनीति और कुचक्रों का केन्द्र बन गया, जैसा कि १८०३ में हुआ था। परिणाम यह हुआ कि १८०६ में बवारिया तथा बूर्टेम्बुर्ग के राजाओं तथा चौदह अन्य जर्मन शासकों ने जर्मन सम्राट के प्रति अपनी भक्ति को त्याग दिया, राइन का एक नया **परिसंघ** स्थापित कर लिया, (जुलाई १२, १८०६), नेपोलियन को अपना '**संरक्षक**' मान लिया, उसके साथ आक्रामक और प्रतिरक्षात्मक सन्धि कर ली, उसे अपनी वैदेशिक नीति का संचालन तथा युद्ध और शान्ति के प्रश्नों का निर्णय करने का अधिकार दे दिया और युद्धों में उसे ६३,००० जर्मन सैनिकों की सहायता देने का वचन दिया। कुछ और भी क्षेत्र इन राज्यों में मिला दिए गये। इस प्रकार अनेक और जर्मन रियासतों का नाश हो गया और उन्हें सोलह भाग्यशाली राज्यों ने लोलुपतापूर्वक आत्मसात कर लिया।

आस्टरलित्स के अभियान का प्रभाव

राइन के परिसंघ की रचना

इन छोटी-छोटी रियासतों के साथ **पवित्र रोमन साम्राज्य** भी, जो वास्तव में अथवा छाया के रूप में लगभग एक हजार वर्ष से चला आया था, नष्ट हो गया। सोलह राज्यों ने उससे पृथक होकर और **राइन का परिसंघ** बनाकर उसकी हत्या कर दी। अतः जब आस्टरलित्स की विजय के उपरान्त नेपोलियन ने

पवित्र रोमन साम्राज्य का नाश

साम्राट फ्रांसिस से **पवित्र रोमन सम्राट** का पद त्याग देने को कहा, तो उस समय साम्राज्य का औपचारिक रूप से दफन कर दिया गया। फ्रांसिस ने शीघ्र ही नेपोलियन के आदेश का पालन किया, और अपनी नई उपाधि से जिसे उसने दो वर्ष पहले धारण किया था सन्तोष कर लिया। पहले उसकी उपाधि थी **पवित्र रोमन साम्राज्य का फांसिस द्वितीय,** अब वह केवल **आस्ट्रिया का पित्रागत सम्राट** फ्रांसिस प्रथम रह गया।

जर्मनी में फ्रांस का प्रभाव

नेपोलियन, जो जर्मन भाषा का न एक शब्द पढ़ सकता और न बोल सकता था, जर्मनी के एक बड़े भाग का वास्तविक शासन बन गया और जर्मनी की राजनीति में सबसे शक्तिशाली तत्व हो गया। पश्चिमी जर्मनी पर फ्रांस का जो आधिपत्य स्थापित हो चुका था उसके अतिरिक्त उसके प्रभाव में एक और भी वृद्धि हो गई। अब, फ्रांस के विचार एक परिवर्तित रूप में दक्षिणी जर्मनी में पहुँचे और उसके राजनीतिक जीवन को नये ढाँचे में ढालने लगे। धर्मांश[1] हटा दिए गए, विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच चली आ रही विधिक विषमता नष्ट न सही तो कम से कम न्यून अवश्य कर दी गई, धार्मिक स्वतन्त्रता की स्थापना की गई और यहूदियों की स्थिति में सुधार किया गया। फ्रांस के इस आधिपत्य से जर्मन लोगों के आत्म-सम्मान का लोप हो गया; जो देशभक्त थे उनकी देशभक्ति को इस विदेशी शासन से भारी धक्का लगा, किन्तु **फ्रांस की क्रांति** ने आधुनिक सामाजिक जीवन की जो सुविधाएँ उत्पन्न कर दी थीं उनका जर्मन लोगों में भी प्रचार होने लगा, और उन्होंने जो कुछ खोया था उसका यह समुचित मुआवजा था।

फ्रांस तथा प्रुशिया के सम्बन्ध बिगड़ने लगे

अव नाटक के दृश्यों की भाँति ये सब घटनाएँ घट रहीं थी। उस समय नेपोलियन ने एक विशाल सेना दक्षिणी जर्मनी में छोड़ रक्खी थी। प्रुशिया के साथ फ्रांस के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। १७९५ **की बेसल की सन्धि** के बाद लगभग दस वर्ष से प्रुशिया तटस्थता की नीति बरतता आया था, किन्तु अब दोनों देशों के बीच तेजी से कटुता बढ़ने लगी। प्रुशिया के राजा फ्रैडरिख विलियम तृतीय की नीति दुर्बल, अस्थिर और लोलुपतापूर्ण थी। एक ओर तो वह तटस्थता से उत्पन्न अधिबन्धनों का पालन करना चाहता और दूसरी ओर अपने राज्यक्षेत्र को बढ़ाने के लिये भी लोलुप था। प्रुशिया की राजनय इन दोनों उद्देश्यों के बीच उलझी हुई थी। नेपोलियन का वर्ताव धृष्टतापूर्ण तथा घृणा का था। दोनों ही पक्षों ने कुटिलता और दुरंगी चाल चलने में कमाल कर दिखाया। यहाँ पर व्योरे की उन कुत्सित चीजों का, जो दोनों ही पक्षों के लिये आशोभनीय थीं, वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्त में बर्लिन में युद्ध चाहने वाले गुट का प्रभाव बढ़ गया। इस गुट का नेतृत्व सुन्दर रानी लुइझ तथा उन सैनिक नेताओं के हाथों में था जो फ्रैडरिख महान् के वैभवशाली युग के अवशेष थे और समझते थे कि फ्रैडरिख की भाँति हम भी फ्रांस को सरलता से धूल चटा सकते हैं। वे बर्लिन में स्थित फ्रेंच दूतावास में गये और उसकी सीढ़ियों के पत्थरों पर अपनी तलवारों को पैना किया, मानों वे संसार को अपनी अप्रसन्नता के भयंकर परिणाम की सूचना देना चाहते

---

1. Tithes

थे। इस समय प्रुशिया की सैनिक जाति ने अग्नि से खिलवाड़ करने में जिस मूर्खता का परिचय दिया उससे अधिक मूर्खता क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में वार्सेई में स्थित राजा के भक्त अधिकारियों ने भी नहीं दिखलाई थी। फ्रांस के राज-भक्तों को तो सबक मिल चुका था। अब प्रुशिया के इन युद्ध-प्रिय नेताओं को अनुभव की निर्मम पाठशाला में से गुजरना था।

फ्रांस तथा प्रुशिया के बीच युद्ध (१८०६)

प्रुशिया के युद्ध चाहने वाले गुट को फ्रांस से असीम घृणा थी और अपनी उच्चता में अगाध विश्वास था। उसने अपने सम्राट पर प्रभाव डालकर फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन के नाम एक अल्टीमेटम जारी करवा दिया जिसमें माँग की गई कि फ्रांसीसी सेनाएँ हटकर राइन के उस पार चली जायँ। नेपोलियम को अल्टीमेटम पाने से अल्टीमेटम देना अधिक अच्छा आता था। उसने प्रुशिया के शासक-वर्ग की कुचालों पर बड़े ध्यान से निगाह रखी थी। जब झगड़ा आरम्भ हुआ तो उस समय वह पूरी तरह से तैयार था। वह उन पर वज्र की भाँति टूट पड़ा और येना तथा ऑयर्स्टात के युद्धों में उन्हें भयंकर पराजय दी और कुचल दिया। दोनों युद्ध एक ही दिन (१४ अक्टूबर, १८०६) एक दूसरे से कुछ मील के फासले पर लड़ गये। येना के युद्ध में सेना का संचालन उसने स्वयं किया और ऑयर्स्टात में उसके सेनापति दाव्हू ने। प्रुशिया के सैनिकों ने वीरता से युद्ध किया किन्तु उनके सेनापतियों की युद्ध-नीति घटिया किस्म की थी। उनकी समस्त सेना छिन्न-भिन्न हो गई, और आतंकित होकर युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़ी हुई; न उसे आदेश देने वाला कोई था और न उसने किसी के आदेशों का पालन ही किया; बहुतों ने अपने हथियार फेंक दिये और अगले कई दिन तक फ्रांसीसी सैनिकों ने देश भर में भगोड़ों का पीछा किया और कई हजार की संख्या में और बन्दी बना लिए गए। पराजय पूर्ण हुई। प्रुशिया की सेना नाम की चीज का अस्तित्व ही न रहा। एक के बाद एक सभी दुर्ग शत्रु के अधिकार में आ गये।

प्रुशिया की सेना तथा आरस्टाड के युद्ध में करारी पराजय

नेपोलियन का बर्लिन में प्रवेश (अक्टूबर, २५ १८०६)

२५ अक्टूबर को नेपोलियन ने विजेता के रूप में बर्लिन में प्रवेश किया। इससे पहले वह फ्रेडरिख महान् की प्रतिभा के प्रति अपनी सराहना प्रकट करने के लिए उसकी प्रोत्सदाम में स्थित समाधि के दर्शन कर चुका था। किन्तु उसकी रुचि इतनी कुत्सित थी कि उसने स्वर्गीय फ्रेडरिख की तलवार और पोशाक का कुछ अंश लेकर विजयोपहार के रूप में पेरिस भिजवा दिया। उसने घोषणा की कि "प्रुशिया का सम्पूर्ण राज्य मेरे हाथों में आ गया है।' उसने प्रुशिया के शासकवर्ग को अपने क्रोध के अनुरूप ही दंड देने की योजना बनाई। उसने होहित्सोलर्न वंश को अपदस्थ करने के लिये एक आज्ञप्ति तैयार करली, किन्तु उसे तत्काल जारी नहीं किया गया और इसके लिए किसी अधिक विशिष्ट अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। प्रुशिया पर उसने युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए भारी कर लगाया।

नेपोलियन ने प्रुशिया के सर्वनाश की घोषणा कुछ समय के लिए स्थगित कर दी और संकल्प किया कि जब अपने अन्य शत्रु रूस को भी समाप्त कर लूंगा

इंगलैंड के विरुद्ध बर्लिन की अज्ञप्तियाँ

तभी ऐसा करूँगा। नए अभियान के लिए बर्लिन से प्रस्थान करने से पहले उसने वे प्रसिद्ध आज्ञप्तियाँ जारी कीं जिनके अनुसार घोषणा की गई कि ब्रिटिश द्वीप समूह घेरे की स्थिति में है और फ्रांस तथा उसके मित्रों के लिए उनके साथ व्यापार करना वर्जित है।

रूस के विरुद्ध अभियान

१८०६ के अभियान में रूस प्रशिया का मित्र था, किन्तु उसने युद्ध में भाग नहीं लिया था, कारण यह था कि प्रशिया ने रूसी सेनाओं के आगमन की प्रतीक्षा ही नहीं की थी। अब नेपोलियन ने रूस की ओर ध्यान दिया। वह आगे बढ़ा और वारसा में डेरा डाला—वारसा पोलेंड के उस भाग का प्रमुख नगर था जिस पर उस देश के विभाजन के फलस्वरूप रूस ने अधिकार कर लिया था। वहाँ पहुँच कर उसने अभियान की योजना बनाई जिसका प्रारम्भ एलाउ और फ्रीडलेंड के युद्धों के साथ हुआ। एलाउ के युद्ध में जितना भयंकर रक्तपात हुआ उतना नेपोलियन के सम्पूर्ण जीवन की किसी भी लड़ाई में नहीं हुआ था। ८ फरवरी १८०७ के दिन संग्राम हुआ जिसमें नेपोलियन हारने से बालाबाल बच गया। संहार अत्यधिक भयानक हुआ। बाद में नेपोलियन ने उसके सम्बन्ध में कहा "कोरा हत्याकांड"। ने नाम के सेनानायक ने इन शब्दों में युद्ध का सही वर्णन किया "कैसा भयंकर नर संहार! और कुछ भी परिणाम नहीं।" अन्त में मैदान किसी न किसी प्रकार नेपोलियन के ही हाथों में रहा और उसने अपने सदैव के ढँग से युद्ध को अपनी विजय बतलाया। किन्तु वास्तव में संग्राम अनिर्णीत रहा था। यूरोप में वह पहली बार विजय प्राप्त करने में विफल रहा था। रूसी सैनिकों ने दुःस्साहसपूर्ण वीरता से युद्ध किया! "उन्हें दो-दो बार मारना आवश्यक हो गया था," इन शब्दों में फ्रांसीसी सैनिकों ने युद्ध की भयंकरता को व्यक्त किया।

फ्रीडलैण्ड का संग्राम (जून १४, १८०७)

किन्तु चार महीने के उपरान्त, जून १४, १८०७ को जो कि मोरिंगो की विजय का दिन था नेपोलियन का भाग्य-नक्षत्र मेघान्धकार को छिन्न-भिन्न कर पुनः जगमगाने लगा। फ्रीडलेंड के युद्ध में उसको जो विजय प्राप्त हुई जिसके सम्बन्ध में उसने जोजफाइन को लिखा कि "यह मारिंगो, आस्टरलित्स और येना की विजयों की योग्य सहोदरा है।" विजय इतनी निर्णायक सिद्ध हुई कि जार अलेक्जांडर प्रथम ने शान्ति-वार्ता की अनुमति देदी। वार्ता के दौरान में दोनों सम्राट स्वयं कई बार मिले; उनकी पहली भेंट नीमेन नदी के बीच में एक नाव पर हुई। अन्त में दोनों ने तिल्सित की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये। उन्होंने शान्ति ही स्थापित नहीं की बल्कि एक आक्रामक तथा प्रतिरक्षात्मक मैत्री सन्धि भी कर ली। नेपोलियन की यह एक महान राजनयिक विजय थी। इससे यूरोप की पहले से चली आई राजनयिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो गया। नेपोलियन ने तीन वर्ष तक युद्ध क्षेत्र में महान् सफलताएँ प्राप्त की थी उनकी सुन्दर परिणति इस विजय में हुई। उसने अपनी सम्मोहन की, चाटुकारिता और कल्पना की तथा तीव्र एवं सहानुभूतिपूर्ण समझ-बूझ की शक्तियों का पूरा-पूरा प्रयोग करके जार को पूर्णतया अपना वशवर्ती बना लिया। दोनों सम्राटों ने बहुत ही गदगद और

तिल्सित की सन्धियाँ

फ्रांस तथा रूस का गठबन्धन

आनन्दविभोर होकर बातचीत की। उमंग में आकर सम्पूर्ण रूस का जार बोल पड़ा "हमारी पहले कभी भेंट क्यों नहीं हुई ?" दोनों सम्राटों ने साथ-साथ यूरोप के मानचित्र का अवलोकन किया और उसको आपस में बाँट लेने का निश्चय किया। नेपोलियन ने अलेक्जांडर को छूट दे दी कि वह चाहे तो फिनलेंड को हड़प ले फिनलेंड स्वीडन का था और जार उस पर पहले से ताक लगाये बैठा था। इसके अतिरिक्त जार को यह भी प्रलोभन दिया गया कि विस्तृत तुर्की साम्राज्य के कुछ भाग उसे मिल सकते हैं। इसके बदले में उसने उन परिवर्तनों को स्वीकार कर लिया जो नेपोलियन ने पश्चिमी यूरोप, इटली और जर्मनी में कर दिये थे अथवा जिन्हें वह करने वाला था। अलेक्जांडर ने इंगलैंड और फ्रांस के बीच जो एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे मध्यस्थता करने का वचन दिया और वायदा किया कि यदि इंगलैंड शान्ति स्थापित करने के लिए तैयार नहीं हुआ तो रूस इंगलैंड की व्यापारिक नाकेबन्दी में फ्रांस का साथ देगा और इस प्रकार उसे संधि के लिए बाध्य करेगा।

प्रुशिया का विखंडन

अपने नये मित्र की भावनाओं के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए नेपोलियन ने वचन दिया कि प्रुशिया के अस्तित्व को कायम रहने दिया जायगा। होहेनत्सोलर्न वंश को अपदस्थ करने के लिए जो आज्ञप्ति तैयार कर ली गई थी उसे जारी नहीं किया गया। किन्तु नेपोलियन ने प्रुशिया को बड़ी ही कठोर शर्तें स्वीकार करने पर बाध्य किया। प्रुशिया ने एल्व नदी के पश्चिम का अपना समस्त प्रदेश त्याग दिया। इस प्रदेश को तथा अन्य जर्मन क्षेत्रों को मिला कर नेपोलियन ने वेस्टफेलिया के राज्य का निर्माण किया और उसे अपने भाई जेरोम को, जिसने इस समय तक अपनी अमरीकी पत्नी को त्याग दिया था, सौंप दिया। प्रुशिया के पूर्वी क्षेत्रों का विस्तार भी बहुत कम कर दिया गया। पोलेंड के विभाजन में उसे जो कुछ मिला था उसका अधिकांश उससे छीन लिया गया और उसे ग्रांड डची ऑव वॉरसा का नाम देकर सेक्सनी के शासक के सुपुर्द कर दिया गया और उसे राजा की उपाधि प्रदान कर दी गई—इससे पहले वह एलेक्टर नेपोलियन कहलाता था। वेस्टफेलिया, सेक्सनी और वारसा

रायन के संघ के विस्तार में वृद्धि

डची इन तीन राज्यों से मिलकर रायन का संघ बना लिया। यह नाम वास्तव में सार्थक नहीं था क्योंकि इसमें रायन का प्रदेश और दक्षिणी जर्मनी के राज्य ही सम्मिलित नहीं थे, बल्कि वह फ्रांस से विस्चुला तक फैला हुआ था और उसमें प्रुशिया, जिसका आकार अब आधा रह गया था, और आस्ट्रिया को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण जर्मनी शामिल था।

अब नेपोलियन ने घर की ओर प्रस्थान किया। स्वाभाविक ही था कि इस समय उसका मन उल्लास से भरा हुआ था और यह भी स्वाभाविक था कि वह जार से प्रसन्न था। "वह सुन्दर तथा भद्र युवक सम्राट है और उसमें जितनी लोग प्रायः समझते है उससे कहीं अधिक बुद्धि है," उन शब्दों में उसने जार की प्रशंसा की। अब नेपोलियन सम्पूर्ण यूरोप का स्वामी था, इस स्वामित्व में केवल एक व्यक्ति उसका साझीदार था। कुछ महीने उपरान्त उसने नये मित्र को लिखा

कि "तिल्झित में सम्पन्न हुआ काम मनुष्य जाति के भाग्य का नियमन करेगा।" अब केवल अँग्रेज रह गये थे। उन पर न तो उसकी मोहिनी विद्या ने ही काम किया और न उन्हें वह जीत ही पाया था। उसी पत्र में नेपोलियन ने जार को लिखा कि अँग्रेज "संसार के शत्रु" हैं, और यह भी बतालाया कि उन्हें सरलता से कैसे धूल चटाई जा सकती है। किन्तु वह एक बात भूल गया था अथवा चाहता था कि दुनियाँ उसे भूल जाय। उसे जो विस्मयकारी सफलता मिली थी। उसमें एक भयंकर दोष था। दो वर्ष पूर्व ठीक उसी दिन जब कि उलम के युद्ध में उसकी विजय हुई थी, एडमिरल नेल्सन ने ट्राफलगार के युद्ध में (अक्टूबर २१, १८०५) फ्रांसीसी बेड़े को पूर्णतया नष्ट कर दिया था। नेलसन ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया था ताकि इंगलैंड जीवित रह सके और अपने युग को तथा आने वाली पीढ़ियों को इस घोष से अनुप्राणित किया था "इंगलैण्ड को आशा है कि हर व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करेगा।"

ट्राफिलवार का युद्ध
अक्टूबर २१, १८०५

फ्रांस समाचारपत्रों ने ट्राफलगार के युद्ध का उल्लेख नहीं किया, फिर भी इतिहास में उसका बड़ा महत्त्व है। यह दूसरा अवसर था कि नेपोलियन को सामुद्रिक शक्ति का स्वाद चखना पड़ा था, पहला स्वाद उसे अनेक वर्ष पहले मिस्र में मिला था और वह भी नेल्सन के ही हाथों।

महान् शक्ति और उच्चतम सफलताओं के अहंकार में चूर नेपोलियन पेरिस को लौटा, किन्तु कहा जाता है कि अहंकार पराभव का पूर्वगामी होता है। क्या अँग्रेज जाति ने इस बुद्धिमत्तापूर्ण कहावत की रचना करके भूल की थी? यही अब देखना था।

अध्याय १०

साम्राज्य का चरमोत्कर्ष

तिल्सित के उपरान्त केवल इंगलैण्ड फ्रांस का शत्रु बच रहा। नेपोलियन ने १८०५ में आस्ट्रिया को, १८०६ में प्रुशिया को और १८०७ में रूस को परास्त कर दिया था। पराजय के बाद रूस ने अपनी नीति पूर्ण रूप से बदल दी थी और पुराने मित्रों को छोड़ कर पुराने शत्रुओं से मित्रता कर ली थी।

अब नेपोलियन इंगलैण्ड से निबटने के लिये स्वतन्त्र

अब नेपोलियन की स्थिति ऐसी हो गई थी कि वह इंगलैण्ड की ओर ध्यान दे सकता था। चूँकि इंगलैण्ड का समुद्रों पर आधिपत्य था और १८०५ में ट्राफलगार के युद्ध में उसने फ्रांसीसी बेड़े को नष्ट कर दिया था, इसलिए सम्राट को उसे नीचा दिखाने से लिये अन्य उपाय सोचने पड़े। उसके लिये यह आवश्यक था कि इंगलैण्ड को परास्त किया जाय, किन्तु प्रश्न यह था कि यह हो कैसे। अत: अब नेपोलियन ने उस नीति को अपनाया जिसका सूत्रपात्र **कन्वेंशन** और **संचालक-मंडल** कर चुके थे। उसने उस नीति को विकसित किया और बहुत ही विशाल पैमाने पर उसका प्रयोग किया। इसे **महाद्वीपीय व्यवस्था** अथवा **महाद्वीपीय नाकेबन्दी** कहते थे। यद्यपि फ्रांसीसी बेड़े और सेनाओं द्वारा इंगलैण्ड को नहीं हराया जा सका था, किन्तु नेपोलियन का विश्वास था कि अप्रत्यक्ष रूप से उसे परास्त करना अवश्य सम्भव हो सकेगा।

इंगलैण्ड की शक्ति का स्रोत

इंगलैण्ड की शक्ति का स्रोत उसकी सम्पत्ति थी, और सम्पत्ति का स्रोत थीं उसकी निर्माणशालाएँ और उसका वाणिज्य जिसके द्वारा उन निर्माणशालाओं के उत्पाद विश्व के बाजारों में पहुँचते, जिनके जरिए उसे आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध होता और दूर-दूर बिखरे हुए उपनिवेशों के साथ लाभदायक सम्बन्ध कायम रहता। यदि इस सम्बन्ध का विच्छेद कर दिया जाय, इस वाणिज्य पर रोक लगा दी जाय और बाजार बन्द कर दिए जायँ तो उसकी समृद्धि का भी नाश हो जायगा। उत्पादकों को अपनी

निर्माणशालाएँ बन्द करनी पड़ेंगी। उनके मजदूर बेकार हो जायँगे और भूखों मरने लगेंगे। इस महानाश की सम्भावना से आतंकित होकर श्रमिक वर्ग तथा औद्योगिक और व्यावसायिक वर्ग इंगलैण्ड की सरकार पर भारी दवाव डालेंगे और आवश्यकता पड़ने पर विद्रोह करने पर उतारू हो जायँगे और अन्त में उसे शान्ति भी याचना करने के लिए वाध्य कर देंगे। अतः नेपोलियन ने विशाल पैमाने पर आर्थिक संघर्ष चलाने का संकल्प किया। उसे आशा थी कि यदि इंगलैंड के साधनों को समाप्त कर दिया गया तो वह थक कर घुटने टेक देगा।

नेपोलियन के द्वारा इंगलैण्ड के नाकेबन्दी की घोषणा

बर्लिन की आज्ञप्तियों—(नवम्बर, १८०६) के द्वारा नेपोलियन ने ब्रिटिश द्वीप समूह के खिलाफ नाकेबन्दी की घोषणा करदी, उसके साथ हर प्रकार का वाणिज्य एवं हर प्रकार का व्यावसायिक सम्पर्क वर्जित कर दिया, और उससे तथा उसके उपनिवेशों से आने वाले माल के व्यापार पर रोक लगा दी, और आदेश दिया कि फ्रांस अथवा उससे मित्रता रखने वाले किसी देश में इंगलैण्ड का जो माल मिले उसे जप्त करके नष्ट कर दिया जाय। इंगलैंड अथवा इंगलैंड के उपनिवेशों से आने वाला कोई जहाज इनके बन्दरगाहों में प्रविष्ट न होने दिया जाय। इंगलैंड ने **आर्डर्स इन काउंसिल** (मंत्रिमंडलीय आदेश) जारी करके नेपोलियन की इन आज्ञप्तियों का उत्तर दिया। प्रत्युत्तर में नेपोलियन ने मिलान से पुनः **नई** आज्ञप्तियाँ जारी कीं और इंगलैंड के विरुद्ध नाकेबन्दी को और भी अधिक कठोर बनाने का प्रयत्न किया।

इस संघर्ष का काल इतिहास का एक विशेष युग सिद्ध हुआ

संघर्ष की इस नई प्रणाली के महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए। १८०७ और १८१४ के बीच के काल पर इसी संघर्ष का आधिपत्य रहा। इन वर्षों के उलझे हुए और कोलाहलपूर्ण इतिहास के ताने-वाने में यह संघर्ष ही मुख्य सूत्र था। मुख्य घटनाक्रम के अन्तर्गत अनेक इधर-उधर की छोटी-मोटी घटनाएँ भी घटीं, अन्य देशों के साथ उलझनें उत्पन्न हुईं और संघर्ष हुए जिन्होंने फ्रांस की स्थल-शक्ति और इंगलैंड की सामुद्रिक शक्ति के बीच विकराल संघर्ष को अल्पकाल के लिए आछन्न कर लिया। किन्तु आधारभूत और सर्वव्यापी संघर्ष इंगलैंड और फ्रांस के बीच ही हुआ। सर्वत्र इसी का प्रभाव था, स्पेन हो, चाहे रूस, रोम हो चाहे कोपेनहेगन, डेन्यूब का तट हो, चाहे तागुस का किनारा।

महाद्वीपीय व्यवस्था

महाद्वीपीय व्यवस्था की विशेषता यह थी कि इंगलैंड की समृद्धि और शक्ति का नाश करने के लिये उसे सर्वत्र और निरन्तर लागू करना आवश्यक था। इस बात की जरूरत थी कि **महाद्वीप** में इंगलैंड के माल का आना पूर्ण रूप से रोक दिया जाय, कोई ऐसा मार्ग न रहे जहाँ होकर यूरोप में उसका प्रवेश हो सके। इंगलैंड तभी हथियार डाल सकता था जबकि उसके लिए सभी वाजार बन्द हो जायँ। किन्तु यदि कहीं छोटा-सा भी छिद्र रह गया, पुर्तगाल, स्पेन अथवा इटली में कहीं समुद्रतट की तनिक-सी भी पट्टी मिल गई जहाँ उसके जहाज अपना माल उतार सकें तो वहाँ से इंगलैण्ड प्रवेश कर सकेगा और करेगा, लालायित ग्राहकों

को अपना माल बेचेगा और इस प्रकार फ्रेंच सम्राट उसके उद्योग-धन्धों का गला घोंटने का जो प्रयत्न कर रहा था उससे बच निकलेगा। इस चीज को नेपोलियन भली भाँति समझता था। इसे उसने अपने दिमाग से कभी अलग नहीं होने दिया। इस चीज ने कदम कदम पर उसकी नीति और कार्यों को प्रभावित किया। अन्त में इस चीज ने उसे अनिवार्य रूप से आक्रामक युद्धों की नीति में उलझा दिया और उसने व्यवस्थित और व्यापक ढंग से अन्य देशों को पादाक्रांत करने का प्रयत्न किया, जिसके परिणाम नाशकारी हुए और उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी।

केवल फ्रांस तथा फ्रांस द्वारा अधिकृत देशों के बन्दरगाहों को बन्द करने से नेपोलियन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था। अतः आवश्यक था कि उसे यूरोप के प्रत्येक तटवर्ती देश का समर्थन प्राप्त हो।

नाकेबन्दी को सफल बनाने के लिए नेपोलियन को बार बार आक्रमण करने पड़े

इसे प्राप्त करने का उसने प्रयत्न किया। इसके लिए वह शान्तिमय तरीकों का प्रयोग करने के लिए तैयार था, किन्तु यदि शान्ति से काम न चलता तो वह बल-प्रयोग करने के लिए भी उद्यत था। रूस का समर्थन और सहयोग उसने **तिल्सित की संधि** के द्वारा प्राप्त कर लिया था। आस्ट्रिया और प्रुशिया की ऐसी निर्णायक हार हुई थी कि उन्हें अपने राज्य-क्षेत्रों में **महाद्वीपीय व्यवस्था** को लागू करने की अनुमति देनी पड़ी थी। डेनमार्क के छोटे-से देश से जब इस प्रकार की माँग की गई तो विवश होकर उसने भी ऐसा ही किया। किन्तु स्वीडन ने इंग्लैंड के साथ मैत्री-सम्बन्ध कायम रक्खा। अतः नेपोलियन ने रूस पर दबाव डाला कि वह फिनलैंड को जोकि स्वीडन का था, हड़प ले और उसके समुद्र-तट तथा उत्कृष्ट बन्दरगाहों पर अधिकार करले। हालैण्ड के राजा, नेपोलियन के भाई लुई, ने अपने राज्य में नाकेबन्दी के नियमों का परिपालन नहीं किया क्योंकि ऐसा करने से हालैंड का सत्यानाश हो जाता। फलतः अन्त में उसे सिंहासन त्यागने पर बाध्य किया गया और हालैण्ड को फ्रांस में सम्मिलित कर लिया गया (१८१०)। नेपोलियन ने लूबेक पर्यन्त जर्मनी के उत्तरी तट को भी, जिसमें ब्रेमेन तथा हामबुर्ग के बढ़िया बन्दरगाह तथा केन्द्रीय जर्मनी की ओर बहने वाले नदियों के मुहाने स्थित थे, फ्रांस में शामिल कर लिया (१८१०)। इटली में पोप तटस्थ रहना चाहता था, किन्तु नेपोलियन और इंगलैंड दोनों ही चाहते थे कि जहाँ तक हो सके कोई देश तटस्थ न रहे। किन्तु पोप अपनी तटस्थता को बनाये रखने में समर्थ रहा। अतः नेपोलियन ने पोप के **राज्यों** का कुछ भाग तथा-कथित **इटली के राज्य** में जिसका वह स्वयं राजा था, सम्मिलित कर दिया और कुछ अंश को सीधा फ्रांसीसी साम्राज्य में मिला लिया (१८०९)। पोप ने उसे तुरन्त ही ईसाई समाज से बहिष्कृत कर दिया और ईसाइयों को उस अधर्मी विजेता के विरुद्ध धर्म युद्ध के लिए उभाड़ा। बदले में नेपोलियन ने पोप को बन्दी बना लिया और कई वर्ष तक उसी रूप में रक्खा। इससे राजनीति में पुनः धर्म का पुट लग गया जैसा कि **क्रान्ति** के प्रारम्भिक दिनों में हुआ था, और इसके परिणाम उस काल के लिये बड़े ही कड़ुए हुए। इसमें कुछ घटनाएँ तो ऐसी थीं जो तिल्सित के बाद तुरन्त ही नहीं घटीं बल्कि १८०९ और १८११ के काल में हुईं।

पोप से झगड़ा

तिल्सित के तुरन्त बाद की घटनाओं में नेपोलियन का स्पेन और पुर्तगाल पर

आक्रमण सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। पुर्तगाल के इंगलैंड केसाथ घनिष्ट आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्ध थे, अतः वह महाद्वीपीय नाकेबन्दी के प्रतिबन्धों को मानने के लिए तैयार न था। किन्तु उनका समुद्रतट इतना महत्त्वपूर्ण था कि नेपोलियन के लिए उसको खुला छोड़ना घातक सिद्ध होता। इसलिए उसने स्पेन से मिलकर पुर्तगाल को जीतने और आपस में बाँट लेने की योजना बनाई। फ्रांस तथा स्पेन की सेनाओं ने उस देश पर आक्रमण किया और लिस्बन की ओर बढ़ने लगीं। उनके पहुँचने से पहले ही नेपोलियन ने अपने अनुरूप प्रभावकारी और संक्षिप्त ढंग से घोषणा करदी कि "ब्रगांजा के वंश का पतन इस बात का एक और सबूत है कि जो कोई भी अंग्रेजों का दामन पकड़ता है उसका नाश अनिवार्य है।" शाही परिवार के लोग इसलिए गिरफ्तार होने से बच गये कि वे अपनी सुरक्षा के लिये महासागर को पार करके अपने उपनिवेश ब्राजील को प्रस्थान कर गये। और जब तक नेपोलियन का पतन नहीं हो गया तब तक वहीं बने रहे।

पुर्तगाल पर आक्रमण (१८०७)

"ब्रगांजा के वंश का शासन समाप्त होता है"

इस संयुक्त अभियान से नेपोलियन को अपने मित्र देश स्पेन में बड़ी संख्या में सेनाएँ पहुँचाने का अवसर मिल गया। म्युरा के नेतृत्व में वे वहीं डट गईं, किसी को यह पता नहीं था कि उनके यहाँ डट जाने का उद्देश्य क्या है। नेपोलियन को छोड़ कर, जिसके दिमाग में काली और शैतानी योजना परिपक्व हो रहीं थीं, इस रहस्य को कोई नहीं समझता था। फ्रांसीसियों ने क्रान्ति के दौरान में बोर्बां वंश को अपदस्थ कर दिया था। नेपोलियन ने स्वयं ऑस्टरलित्स के युद्ध के बाद बोर्बां वंश को नेपल्स से मार भगाया था और अपने भाई जौजफ को वहाँ के सिंहासन पर बिठला दिया था। उस वंश की एक शाखा स्पेन में शेष रह गई थी और वह शाखा विशेष रूप से भ्रष्ट तथा पतन की अवस्था में थी। चार्ल्स चतुर्थ नितान्त अयोग्य था; रानी घोर अनैतिकता में डूबी हुई, और कुँजड़ियों की तरह बदजुबान थी; वास्तविक शक्ति उसके कृपापात्र तथा प्रेमी गोद्धा के हाथों में थी। यह पूरा गुट स्पेन में अत्यधिक अप्रिय था। दूसरी ओर राजा का पुत्र फर्डीनेंड स्पेन की जनता की आँखों का तारा बना हुआ था। इसका कारण यह नहीं था कि उसके चरित्र में कोई सराहनीय गुण थे, बल्कि उसका चरित्र भी पूर्णतया घृणास्पद था। उसकी लोकप्रियता की वजह केवल यह थी कि वह राजा, रानी तथा गोद्धा का विरोधी था। नेपोलियन ने परिस्थिति को अपनी योजना के लिए अनुकूल समझा। योजना यह थी कि बोर्बां वंश को, जो अपने चरित्र के कारण घृणा का पात्र और आपसी फूट की वजह से निकम्मा बन गया था, हटाकर सिंहासन पर अधिकार कर लिया जाय। उसने छल-कपट तथा आडम्बरपूर्ण कूटनीति के द्वारा चार्ल्स चतुर्थ, रानी गोद्धा और फर्डीनेंड को दक्षिणी फ्रांस में स्थित बेयोन्न नामक स्थान पर बुला लिया। कभी किसी मकड़े ने भी जाल में फँसे हुए विवश शिकार के साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार नहीं किया होगा जैसा कि नेपोलियन ने स्पेन के असहाय राजवंश के साथ किया। ढोंग, गाली-गलोज़ और धमकाने की कुत्सित कला का प्रयोग करके उसने सम्पूर्ण राजवंश को उठाकर एक ओर फेंक दिया। चार्ल्स ने अपदस्थ होना स्वीकार कर लिया और सिंहासन नेपोलियन के हाथों में सौंप दिया तब नेपोलियन ने फर्डीनेंड को अपने अधिकारों को त्याग देने के

स्पेन की स्थिति

लिए बाध्य किया; उसे धमकी दी कि यदि तुमने मेरी बात न मानी तो तुम्हारा भी वही भाग्य होगा जो बोर्दा वंश के अन्य सदस्य ड्यू कदाँगेयँ का हुआ था। फर्डीनेंड तथा उसके भाइयों को व्हालाँसे में स्थित एक गढ़ में बन्दी बनाकर रख दिया गया। तब नेपोलियन ने रिक्त सिंहासन अपने भाई जोजफ को दे दिया। जोजफ ने अपना नेपिल्स का राज्य त्याग दिया और वह नेपोलियन के बहनोई म्युरा को दे दिया गया।

नेपोलियन ने अपने भाई जोजफ को स्पेन का राजा बना दिया (१८०८)

बाद में नेपोलियन ने स्वीकार किया कि "स्पेन का मामला ही मेरे नाश का मुख्य कारण था। मैं मानता हूँ कि स्पेन के सम्बन्ध में मैंने बहुत ही बुरे ढंग से आचरण किया; मेरे कार्य की अनैतिकता एकदम स्पष्ट और अन्याय अविश्वसनीय था।" किन्तु यह निर्णय तो बाद का था जब कि उसने पीछे की घटनाओं को मुड़कर देखा। उस समय तो उसने आश्वस्त होकर कार्य आरम्भ किया। उसे विश्वास था कि यदि विरोध हुआ भी तो बहुत ही क्षीण होगा। उसने फर्डीनेंड से कहा "तुम्हारे देश को जहाँ कि भिक्षुओं की भरमार है जीतना सरल है। हो सकता है कि कुछ दंगे हों, किन्तु जब स्पेनवासी देखेंगे कि मैं उनके राज्य की सीमाओं को पूर्ववत् बनाए रखने को तैयार हूँ, उन्हें एक उदार संविधान दे रहा हूँ और उनके धर्म तथा राष्ट्रीय परम्पराओं की रक्षा कर रहा हूँ तो वे शान्त हो जायेंगे।"

स्पेनवासियों ने विद्रोह का झण्डा उठाया

किन्तु स्पेनवासियों ने उसकी इन आशाओं के एकदम विपरीत आचरण किया। इसमें सन्देह नहीं कि उसने उन्हें जो शासन-व्यवस्था प्रदान की वह उनकी पहली सरकार के मुकाबिले में कहीं अच्छी थी। किन्तु उनकी निगाह में वह एक चोर और ठग था; ऐसा व्यक्ति था, जिसकी नीति और विचार धर्म तथा नैतिकता के विरुद्ध थे। इसलिए उन्हें उससे घृणा थी। नेपोलियन ने उनके विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ किया जो पाँच वर्ष तक चलता रहा, जिसमें उसे कदम-कदम पर मुँह की खानी पड़ी और जिसमें उसके अपरिमित साधन स्वाहा हो गये। यह संघर्ष उसके लिए कलंक का टीका सिद्ध हुआ, और जो साधन नष्ट हुए उनको यदि वह सम्हाल कर रखता तो वे किसी अन्य अवसर पर इससे अच्छे उद्देश्यों को पूरा करने में काम आते। युद्ध के प्रारम्भ में उसने कहा "यदि स्पेन को जीतने में ८०,००० आदमी काम आएँ तो मैं इस झगड़े में नहीं फसूँगा, किन्तु मेरा विश्वास है कि इसमें १२००० अधिक आदमियों का नुकसान नहीं होगा।" किन्तु उसका यह अनुमान गलत निकला और इसके भयंकर परिणाम हुए। युद्ध में ३००,००० आदमी काम आए और फिर भी सफलता हाथ न लगी।

स्पेन में नेपोलियन को जिस प्रकार के विरोध का सामना करना पड़ा वह उस विरोध से हर बात में भिन्न था जिसका मुकाबिला उसे इटली अथवा जर्मनी में करना पड़ा था इसमें उसे कदम-कदम पर ठोकर लगी, शत्रु उसकी पकड़ में न आया, और अन्त में उसकी शक्ति और साधन छिन्न-भिन्न हो गए। पहले उसे सरकारों और उनकी सेनाओं से युद्ध करना पड़ा था; उसके विपरीत अब उसे जनता से लड़ना था जो एक होकर उठ खड़ी हुई थी और उसने इस बात का संकल्प कर लिया था कि मर भले ही जायँ किन्तु राष्ट्रीय

नेपोलियन के कार्य से राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहन मिला

स्वतंत्रता को नष्ट न होने देंगे। इटली, आस्ट्रिया और जर्मनी में जनता ने आक्रमणकारी का मुकाविला नहीं किया था। उन देशों की सरकारों ने अपनी-अपनी जनता से सहायता की अपील भी नहीं की थी, अपनी पेशेवर सेनाओं पर ही भरोसा किया था। उन्हें नेपोलियन ने सरलता से परास्त कर दिया, और फलस्वरूप सरकारों ने शान्ति की याचना की और जो शर्तें उसने रक्खीं वे मानलीं। जिन देशों में इससे पहले नेपोलियन गया था वहाँ जनता में राष्ट्रीयता की ऐसी लहर नहीं फैली थी कि लोग अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए सब कुछ जोखिम में डाल देते और सब कुछ करने को तैयार हो जाते। फ्रांस स्वयं इस प्रकार की राष्ट्रीय चेतना का अनुभव कर चुका था और उसकी सेनाओं को शत्रुओं के विरुद्ध इसलिए विजय प्राप्त हुई थी कि उनके हृदय में राष्ट्रीयता की वह ज्योति प्रज्वलित हो रही थी जिसे क्रान्ति ने उभाड़ा और फलीभूत किया था। अब अन्य राष्ट्रों ने उसी के जीवन से सबक लेना आरम्भ कर दिया, और ठीक उस समय जब कि वह देश स्वयं उस सबक को भूलने लग गया था। स्पेन का विद्रोह उन लोकप्रिय, राष्ट्रीय और प्रवृत्यात्मक आन्दोलनों में पहला था जिन्होंने अन्त में नेपोलियन के किए कराए पर पानी फेर दिया।

स्पेनवासियों ने जिस प्रकार का संघर्ष चलाया वह हर दृष्टि से विचित्र था, और देश की भौगोलिक दशा एवं उस समय की परिस्थितियों के अनुरूप ही था।

स्पेन के युद्ध की विशेषताएँ

उनके राजपरिवार के लोग फ्रांस में कैद थे, अतः कोई सरकार न थी जो उनका नेतृत्व कर सकती। उनके पास न धन था और न विशाल सेनाएँ, इसलिए उन्होंने छापामार युद्ध प्रणाली अपनाई। अपने को छोटे-छोटे जत्थों से संगठित किया। स्वयं वैयक्तिक दृष्टि से ये जत्थे अधिक शक्तिशाली न थे; किन्तु वे कभी यहाँ प्रकट होते, कभी वहाँ और कभी-कभी एक साथ सर्वत्र, और शत्रु की छोटी-छोटी टुकड़ियों को घर दबोचते और फिर अपने पर्वतीय दुर्गों में विलुप्त हो जाते। इस प्रकार उन्होंने उन संघर्षों के इतिहास की पुनरावृत्ति की जिन्हें उनके पूर्वजों ने दीर्घकाल तक मूर लोगों के विरुद्ध चलाया था।

नेपोलियन के विरुद्ध पादरियों का प्रभाव

हर किसान के पास अपनी बन्दूक थी और हर किसान देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित था, और साथ ही साथ वांदे के किसानों की भाँति धार्मिक उत्साह से भी उत्तेजित था। कैथोलिक पादरी पुनः मैदान में आ गए, उन्होंने पोप को लूटने वाले के विरुद्ध, और फ्रांस के स्वतन्त्र विचारकों के खिलाफ जनता की घृणा और शत्रुता को भड़काया। नेपोलियन ने दो शक्तिशाली तत्वों को उत्पन्न कर दिया था, धार्मिक उत्साह और राष्ट्रीयता की भावना। इन दोनों में अपने-अपने ढंग की कट्टरता विद्यमान थी। इसके वाद आगे इन दोनों तत्वों ने पग-पग पर नेपोलियन को हैरान किया और आगे वढ़ने से रोका।

भौगोलिक परिस्थितियाँ भी जिन्हें पहले नेपोलियन ने अपनी सफलता का साधन बनाया था अब उसके विरुद्ध हो गईं। देश गरीब था, सड़कें वहुत ही खराब थीं, और पहाड़ उसके मार्ग को काटते हुए विपरीत

भौगोलिक परिस्थितियाँ उसके विरुद्ध

दिशा में फैले हुए थे और नदियों के सम्वन्ध में भी यह बात थी। नेपोलियन की विशाल सेनाओं के लिये इन पर्वत

शृंखलाओं, इन दर्रों और घाटियों में कार्य करना कठिन था। इन परिस्थितियों में दुर्घटनाओं का घटना सरल था। छापामार टुकड़ियों अथवा छोटी सेनाओं के लिये परिवहन और संचार के मार्गों को काट देना और मोर्चे के आगे तथा पीछे एक ही साथ प्रहार करना आसान था। प्रतिरक्षा के लिए देश की परिस्थितियाँ वहुत ही अच्छी थीं, और आक्रमणकारी के लिए वहुत कठिन था। इस वात का युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में ही पता लग गया जवकि जनरल द्युपों घेरे में फँस गया और अपनी २९,००० सेना के साथ वेलेन नामक स्थान पर हथियार डालने के लिये वाध्य हुआ (जुलाई, १८०८)। इस समर्पण का समस्त यूरोप में जवरदस्त प्रभाव पड़ा। यह पहला अवसर था जव कि पूर्ण अभियान में फ्रांसीसी सेना को हथियार डालने पड़े थे। नेपोलियन को अपने अव तक के जीवन में इतना भयंकर आघात कभी नहीं सहना पड़ा था। इससे स्पेनवासियों को वड़ा प्रोत्साहन मिला। अन्य राष्ट्रों में भी, जो इस वात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि नेपोलियन कव उलझ कर गिरे, आशा का संचार हुआ और वे सोचने लगे कि जो कुछ स्पेन में हुआ है वह फिर अन्यत्र भी हो सकता है। नेपोलियन क्रोध से आगवबूला हो गया और अभागी सेना के खिलाफ उबल पड़ा और वोला कि दुनियाँ के आदि से अव तक कभी किसी ने ऐसी अकर्मण्यता, ऐसी नासमझी, मूर्खता, और ऐसी कायरता का परिचय नहीं दिया है। उन्हें यश प्राप्त करने का अवसर मिला था, "उन्हें मर जाना चाहिए था।" किन्तु इसके विपरीत उन्होंने हथियार डाल दिए थे।

बेलेन में द्युपों का आत्मसमर्पण (जुलाई, १८०८)

नये राजा जोज़फ ने, जिसे अपनी राजधानी में आए अभी एक सप्ताह ही हुआ था, जल्दी ही देश छोड़ दिया और पीरेने के उस पार चला गया। अपने भाई को लिखा कि स्पेन अन्य देशों की भाँति नहीं है, यहाँ युद्ध चलाने के लिए ५०,००० सैनिक चाहिए, और ५०,००० संचार के मार्गों को खुला रखने के लिए; इसके अतिरिक्त गद्दारों गुंडों के लिए १००,००० सूलियाँ चाहिए।

राजा जोज़फ ने भाग कर अपने प्राणों की रक्षा की

इस प्रायद्वीप के युद्ध की एक और विशेपता यह थी कि इंगलैण्ड ने इसमें सक्रिय भाग लिया। एक सेना सर आर्थर वेलेज़ली की, जो आगे चलकर ड्यूक आव वैलिंगटन के नाम से विख्यात हुआ, अधीनता में पुर्तगालियों और स्पेनवासियों की सहायता के लिए भेजी गई। वेलेज़ली पहले भारत में ख्याति पा चुका था; अव वह यूरोप में भी एक सावधान, मौलिक और साधन सम्पन्न सेनानायक के रूप में प्रसिद्ध होने लगा। उसने लिस्वन में अपनी सेना उतारी और फ्रांसीसी सेनानायक जूनो सिन्त्रा नामक स्थान पर हथियार डालने के लिए वाध्य किया (अगस्त, १८०८), जैसा कि पिछले महीने स्पेनवासियों ने वेलेन में द्युपों को किया था।

इंगलैण्ड प्रायद्वीपी युद्ध में सम्मिलित

नेपोलियन इन भयंकर पराजयों का वदला लिए विना नहीं रह सकता था। उसकी प्रतिष्ठा, और उसकी अजेयता की ख्याति अक्षुण्ण रहनी चाहिए, नहीं तो समस्त यूरोप में हलचल उत्पन्न हो जायगी और उनका

शानदार सेना एकत्र की, पीरेने को पार किया और एक महीने के संक्षिप्त अभियान में अपेक्षाकृत सरलता से सब बाधाओं को कुचलता हुआ मेड्रिड में जा धमका (दिसम्बर, १८०८)। वहाँ उसने कुछ सप्ताह तक निवास किया और अपनी आकांक्षा के अनुसार स्पेन के नव निर्माण के लिये नई संस्थाओं की रूपरेखा तैयार की। इसमें संदेह नहीं कि यदि उसके सुधारों को व्यावहारिक रूप दिया जाता तो स्पेन एक ऐसा प्रवुद्ध, और प्रगतिशील राज्य बन जाता जैसा कि वह पहले कभी नहीं रहा था। उसने इनक्विजिशन (धर्मद्रोह का दमन करने के लिए स्थापित किया गया धार्मिक न्यायाधिकरण) का जो अभी तक विद्यमान था उन्मूलन कर दिया, सामन्ती व्यवस्था के अवशेषों को उखाड़ फेंका और प्रशुल्क की उन दीवालों को जिन्होंने प्रान्तों को एक दूसरे से पृथक कर रक्खा था और देश के वाणिज्य को भारी क्षति पहुँचाई थी ढाह दिया। उसने दो-तिहाई मठों को बन्द कर दिया, क्योंकि देश में उनकी संख्या आवश्यकता से अधिक थी। किन्तु जैसे कोई व्यक्ति दवाव से अपने को नहीं सुधारना चाहता वैसे ही स्पेनवासियों ने नेपोलियन के इन आधुनिक ढंग के सामाजिक सुधारों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उनकी निगाह में इन सुधारों का जन्मदाता एक धर्मद्रोही अत्याचारी था जिसने अन्यायपूर्वक उनके सिंहासन को हड़प लिया था और उनके देश को पदाक्रान्त कर दिया था। कदाचित नेपोलियन स्पेन में अपना नियंत्रण इतनी दृढ़ता से स्थापित कर लेता कि सब प्रकार के विरोध के बावजूद इन संस्थाओं की जड़ें जम जातीं। किन्तु इसके लिए समय चाहिए था और समय पर उसका आधिपत्य नहीं था। मेड्रिड में वह केवल एक महीने ठहर सका फिर शीघ्र ही उसे फ्रांस लौटना पड़ा क्योंकि उधर से बड़े चिन्ताजनक समाचार आ रहे थे। इसके बाद वह फिर कभी लौटकर स्पेन न जा सका।

नेपोलियन ने स्पेन को जीत लिया

नेपोलियन शीघ्र ही पैरिस लौट गया

आस्ट्रिया ने पुनः चिनौती दे दी थी। उसके लिए यह स्वाभाविक ही था कि फ्रांस के हाथों उसे जो बार-बार अपमान सहना पड़ा था उसका बदला लेने और अपनी खोई हुई स्थिति को पुनः प्राप्त करने के लिए सुअवसर की ताक में रहता। इसके अतिरिक्त रूस और फ्रांस की मित्रता ने तथा नेपोलियन द्वारा स्पेन के सिंहासन के अपहरण ने उसे आतंकित कर दिया था। जब नेपोलियन ने स्पेन जैसे विनम्र मित्र के साथ ऐसा बर्ताव किया था तो इस बात की क्या गारंटी थी कि वह आस्ट्रिया के साथ जिसकी फ्रांस के साथ पुरानी शत्रुता चली आई थी और जो अब केवल तटस्थ था मित्र नहीं, ऐसा ही अथवा इससे बुरा व्यवहार न करेगा, विशेषकर जबकि उसका मित्र रूस उसे छोड़कर फ्रांस से जा मिला था। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया ने अपने विनाशकारी अनुभवों से भी कुछ सीख लिया था, अन्य चीजों के साथ-साथ उसने सबसे बड़ी चीज यह सीखी कि उसकी सैनिक व्यवस्था दोषपूर्ण थी क्योंकि वह जनता की देशभक्ति को, उसकी राष्ट्रीय भावनाओं को सन्तुष्ट नहीं करती थी। आस्टरलित्स के युद्ध के उपरांत सेना का पुनः संगठन किया गया और एक लोक सेना तैयार की गई जिसमें अठारह तथा पच्चीस के बीच की आयु के सभी नागरिक सम्मिलित किए गये। राष्ट्रीय चेतना में नई स्फूर्ति का संचार हुआ जो भविष्य के

आस्ट्रिया ने फ्रांस के विरुद्ध नया युद्ध प्रारम्भ कर दिया (अप्रैल, १८०९)

आस्ट्रिया की सैनिक व्यवस्था में सुधार

लिए कल्याणकारी सिद्ध हुई। शत्रु से बदला लेने और अपनी खोई हुई स्थिति को पुनः प्राप्त करने का इससे अधिक सुविधाजनक अवसर और क्या हो सकता था—इस समय नेपोलियन स्पेन जैसे उत्साही और क्रोध से बौखलाए हुए राष्ट्र को नियंत्रण में रखने और पुर्तगाल में अँग्रेजों को रोकने और कुचलने की आवश्यकता से बहुत कुछ दुर्बल हो चुका था।

इन विचारों और भावनाओं के प्रस्ताव का परिणाम यह हुआ कि युद्ध चाहने वाले दल के हाथ में प्रमुखता आ गई और आस्ट्रिया ने सम्राट के भाई आर्कड्यूक चार्ल्स के नेतृत्व में, जो एक योग्य सेनानायक था, १८०९ की वसन्त ऋतु में युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस लड़ाई का दोष नेपोलियन के सिर पर नहीं था, और न उसमें कुछ लाभ ही होने की सम्भावना थी। वास्तव में इस अवसर पर संघर्ष प्रारम्भ करके आस्ट्रिया ने फिर एक भारी भूल की। आस्ट्रिया को कुछ समय तक और प्रतीक्षा करनी चाहिए थी जिससे कि उसकी नई सैनिक व्यवस्था का पूरा विकास हो जाता, तब उसे ऐसी जोखिम में पड़ना चाहिए था।

आस्ट्रियावासियों को अपनी इस जल्दबाजी का मूल्य चुकाना पड़ा। नेपोलियन ने उन्हें अपनी गति की तीव्रता से पुनः विस्मित कर दिया। अप्रैल, १८०९ में उसने बवारिया में उनसे युद्ध किया। पाँच दिन में पाँच लड़ाइयाँ लड़ी गईं और आस्ट्रियायी सेनाएँ पीछे धकेल दी गईं। तत्पश्चात् नेपोलियन डेन्यूब नदी के नीचे की ओर बढ़ा, बिना किसी कठिनाई के वीना में प्रवेश किया और फिर नदी को पार करके उत्तरी किनारे पर जा पहुँचा जिधर आर्कड्यूक भाग कर चला गया था। वहाँ उसने एसलिंग के स्थान पर युद्ध लड़ा जो दो दिन तक चला (मई, ११-१२) लड़ाई भयंकर हुई और एसलिंग का गाँव नौ बार उभय पक्ष के हाथों में आया गया। नेपोलियन को गम्भीर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। उसे छः सप्ताह तक डेन्यूब में स्थित लोबाउ द्वीप पर प्रतीक्षा करनी पड़ी और जब तक इटली और जर्मनी से कुमुक नहीं आगई तब तक वह आगे न बढ़ सका। जब उसकी सेना की संख्या पर्याप्त हो गई तब उसने नदी को पुनः पार किया और उत्तरी किनारे पर जा पहुँचा। वाग्राम के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। उसकी विजय हुई किन्तु यह उतनी उच्चकोटि की नहीं थी जितनी कि आस्टलित्स की विजय थी। आर्कड्यूक की सेना सुव्यवस्थित ढंग से युद्ध क्षेत्र से पीछे हट गई। क्षति तो भारी हुई, किन्तु सेना का कोई अंग पकड़ा नहीं गया और न झंडे ही शत्रु के हाथ लगे। नेपोलियन का यह अन्तिम विजय अभियान था। इनमें भी विजय के लिए उसे ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था जैसी उसने अपने जीवन में पहले कभी न देखी थीं। उसकी सेना पहले के मुकाबले में घटिया किस्म की थी, उसके सर्वश्रेष्ठ सैनिकों में से बहुत से स्पेन के अकीर्तिकर झगड़ों में फँसे हुए थे और जो नये थे वे पुराने अनुभवी योद्धाओं के मुकाबले में घटिया सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त इस बार उसके शत्रु की सेना की संख्या भी उसकी सेना से अधिक थी, पूर्वोक्त सैनिक सुधारों के कारण आस्ट्रिया की सेना बहुत बड़ी हो गई थी। उधर विरोधी सेनानायक उसकी रणपद्धति का अध्ययन करके सबक सीख रहे थे और उनका उसी के विरुद्ध प्रयोग करने लगे थे। उदाहरण के लिए आर्कड्यूक चार्ल्स नेपोलियन की

आस्ट्रिया पर नेपोलियन की चौथी बार विजय

वाग्राम का युद्ध (जुलाई, ५-६,१८०९)

प्रतिभा का बड़ा सम्मान करता था, किन्तु अब उसने योग्यता के साथ और डट कर युद्ध किया।

वीना की सन्धि (अक्टूबर १८०९)

वाग्राम के युद्ध के उपरान्त आस्ट्रिया ने नेपोलियन से वीना की सन्धि कर ली। आस्ट्रिया को अपना विशाल राज्यक्षेत्र त्यागना पड़ा। पोलैण्ड के तृतीय विभाजन में उसने जो क्षेत्र हथिया लिया था उसका एक भाग उसे ग्रैंड डची आव वारसा को और एक रूस को देना पड़ा। इसके अतिरिक्त उसे त्रीस्त, कार्नीओला, कारिंथिया का कुछ भाग और क्रोशिया फ्रांस के हवाले करने पड़े। इन प्रदेशों को मिला कर इलीरियन प्रान्तों की रचना की गई और उन्हें शाही क्षेत्र घोषित कर दिया गया, यद्यपि उन्हें औपचारिक रूप से फ्रांस में सम्मिलित नहीं किया गया। आस्ट्रिया को अपने ४०००,००० प्रजाजनों से हाथ धोने पड़े, यह संख्या उसके साम्राज्य की कुल जनसंख्या का छटा भाग थी। साथ ही साथ उसका एकमात्र बन्दरगाह भी उसके हाथ से निकल गया और वह पूर्णतया भूमिबद्ध बन गया।

आस्ट्रिया को चौथी बार हरा कर नेपोलियन ने यूरोप के समक्ष रूपान्तर के ऐसे दृश्य प्रस्तुत किए जिन्हें दिखाने का उसे बड़ा शौक था ताकि लोग समझें कि परिस्थितियों पर उसका अपरिमित आधिपत्य है। उसके हैप्सबर्ग वंश के साथ, जिसे उसने बार-बार नीचा दिखाया था और जो यूरोप का एक अत्यन्त गर्वीला राजवंश था, विवाह सम्बन्ध स्थापित किया। उसकी पत्नी जोजेफाइन के कोई पुत्र नहीं हुआ था जो कि उत्तराधिकारी बन सकता और जिस व्यवस्था का उसने निर्माण किया था उसकी स्थिरता के लिए एक उत्ताधिकारी की आवश्यकता थी। अतः वह बहुत पहले से जोजेफाइन को तलाक देने के विषय में सोच विचार कर रहा था। उसके आदेश से सीनेट ने जोजेफाइन के साथ उसके विवाह-सम्बन्ध को विच्छेद कर दिया। पेरिस में स्थित धार्मिक न्यायलय इस विषय में उसकी और भी अधिक सहायता करने को तैयार था।

नेपोलियन का मारी लुईजी के साथ विवाह (अप्रैल, १८१०)

उसने घोषित कर दिया कि विवाह में कुछ अनियमितता हो गई थी जिससे यह माना जायगा कि विवाह कभी हुआ ही नहीं था। इस प्रकार राज्य तथा चर्च दोनों की सहायता से विवाह-बन्धन से मुक्त होकर नेपोलियन ने आस्ट्रिया के सम्राट से कहा कि अपनी पुत्री मारी लुईजी का विवाह मेरे साथ करो। सम्राट ने उसकी माँग स्वीकार कर ली। इस राजनीतिक विवाह को दोनों ही पक्षों ने अपने-अपने लिए लाभदायक समझा। उस समय ऐसा लगता था कि इस सम्बन्ध से भविष्य में दोनों देशों के बीच झगड़ों को रोकने में मदद मिलेगी, आस्ट्रिया की रक्षा होती रहेगी, यूरोप के एक सबसे पुराने और गर्वीले राजवंश के साथ सम्बन्ध कायम हो जाने से नेपोलियन की प्रतिष्ठा बढ़ जायगी और जिस व्यवस्था की उसने अपनी प्रतिभा से रचना की थी स्थाई बनाना सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार मारी अान्त्वानेत के वध के सत्रह वर्ष बाद ही आस्ट्रिया की एक अन्य राजकुमारी फ्रांस के सिंहासन पर बैठी। विवाह १८१० में सम्पन्न हुआ और दूसरे वर्ष पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके लिए "रोम का राजा" की उपाधि पहले से तैयार थी।

अध्याय ११

नेपोलियन की अधोगति तथा पतन

नेपोलियन अपनी शक्ति के चरम शिखर पर

अब नेपोलियन अपनी शक्ति के चरम शिखर पर पहुँच चुका था। उसका एक विशाल साम्राज्य पर प्रत्यक्ष शासन था जिसका क्षेत्रफल पुराने फ्रांस के राज्य से कहीं अधिक था। १८०९ में उसने इटली में पोप के राज्यों का जो कुछ अंश बच रहा था उसको भी अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया और रोम के अद्वितीय नगर को भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार कम से कम कुछ समय के लिए पोप की लौकिक शक्ति का अन्त हो गया। १८१० में उसने अपने भाई लुई को हालैण्ड का सिंहासन त्यागने पर बाध्य किया और उस देश को फ्रांस में शामिल कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, अपने साम्राज्य को जर्मनी के उत्तरी तटों के सहारे सहारे हालैण्ड से लूबेख तक बढ़ा लिया था और इस प्रकार हामबुर्ग, ब्रेमेन तथा महत्त्वपूर्ण जर्मन नदियों के मुहानों पर उसका नियंत्रण स्थापित हो गया था। इन सब क्षेत्रों में अधिकार उसने अपनी **महाद्वीपीय नाकेबन्दी** की नीति को सफल बनाने के लिए ही किया था, जितने प्रदेश उसके हाथों में आ गए उतना ही अधिक समुद्रतट इंगलैंड के व्यापार के लिए बन्द हो गया, और इस प्रकार उसे आशा थी वह अपने एक मात्र बचे हुए शत्रु को भी घुटने टिका सकेगा। वह एक ऐसे राज्य का सम्राट था जिसमें १५० विभाग (जिले) थे। वह इतालवी प्रायद्वीप के पूर्वोत्तरी भाग में स्थित इटली के राज्य का भी स्वामी था। वह **राइन के परिसंघ** का **रक्षक** था; इस परिसंघ में प्रशिया और आस्ट्रिया को छोड़कर सम्पूर्ण जर्मनी सम्मिलित था, और जब वह बना था तब से वेस्टफेलिया, सेक्सनी और **ग्रांड डची आव वारसा** के शामिल हो जाने में उसका विस्तार बहुत बढ़ गया था और अब स्पष्ट रूप से उसका प्रचार रूस तक हो गया था, उसका भाई जोजफ स्पेन का राजा था, उसका भाई जेरोम वेस्टफेलिया के सिंहसन पर विराजमान था और बहनोई म्युरा नेपिल्स में शासन करता था। वे सब उसी के पिछलगुए थे, उसी से आदेश पाते और उन्हें कार्य रूप देते।

फ्रांस के बाहर नेपोलियन की शक्ति

रूस अपनी इच्छा से उसका मित्र था। प्रुशिया और आस्ट्रिया उससे मित्र थे, प्रुशिया विवशता के कारण, और आस्ट्रिया प्रारम्भ में विवशता की वजह से किन्तु बाद में इसलिए कि इसमें उसने अपना लाभ देखा। इससे पहले इतिहास में कोई शासक नहीं हुआ जिसका यूरोप के इतने बड़े भाग पर आधिपत्य होता। सर्वोच्चता की इस अद्वितीय स्थिति को उसने अपनी तलवार, तथा अपनी अद्भुत राजनीतिज्ञता और राजनय के बल पर प्राप्त किया था।

इगलैंड भी थकान का अनुभव करने लगा

केवल इंगलैंड इस साम्राज्य-मण्डल से अलग रहा; वही देश केवल ऐसा था जिसने विजेता के सामने घुटने नहीं टेके थे। लेकिन **महाद्वीपीय व्यवस्था** से उसे इतनी भयंकर क्षति पहुँची थी कि उसका भी दम घुट रहा था। निर्माणशालाएँ बन्द करनी पड़ रही थीं, बड़ी संख्या में मजदूर बेकार रहे थे अथवा उन्हें इतनी कम मजदूरी मिलती थी कि पेट भी न भर पाता, दंगे होने लगे थे और सर्वत्र बेचैनी तथा निराशा छा रही थी। इस सबसे ऐसा लगता था कि उसे भी बाध्य होकर नेपोलियन से शान्ति के लिए याचना करनी पड़ेगी।

नेपोलियन की व्यवस्था की दुर्बलताएँ

किन्तु जिस नींव पर शक्ति का यह विशाल तथा शानदार ढाँचा खड़ा हुआ था वह अनिश्चित थी। नेपोलियन के अत्यधिक कल्पनायुक्त और योग्य मस्तिष्क ने एक-एक मंजिल करके इस ढाँचे का निर्माण किया था, किन्तु उसने उस दबाव और उन आघातों का ध्यान नहीं रक्खा था जो उस पर निरन्तर पड़ रहे थे। जिस शीघ्रता से यह विशाल साम्राज्यीय ढाँचा कुछ ही वर्ष में गिरकर चकनाचूर हो गया उससे स्पष्ट है कि उसका संगठन ठीक तरह से न हो पाया था और उसकी बुनियादें दुर्बल और अनिश्चित थीं। थोड़ा-सा विश्लेषण करने से ही पता चल जायगा कि शक्ति की इस तड़क-भड़क और प्रदर्शन के पीछे दुर्बलता के अनेक तत्व छिपे हुए थे। उसका निर्माण एक व्यक्ति की प्रतिभा से हुआ था और यह पूर्णतया उसी के जीवन और भाग्य पर निर्भर था—और भाग्य लक्ष्मी अपनी चंचलता के लिए बदनाम है। चूँकि उसकी रचना युद्ध और विजय के द्वारा हुई थी, इसलिए उसके चारों ओर विजितों की घृणा का वातावरण छाया हुआ था, और ऐसा होना आवश्यक ही था। उसके निर्माण में जैसे-जैसे प्रगति होती गई, और नए प्रदेश उसमें सम्मिलित होते गए वैसे ही उसके प्रति घृणा और असन्तोष के स्रोतों की संख्या भी बढ़ती गई। उसका आधार शक्ति था, इसलिए शक्ति के द्वारा ही उसे कायम रक्खा जा सकता था। उस विशाल साम्राज्य में सम्राट के प्रति भक्ति का कोई सार्वभौम आधार न था, और न हो ही सकता था। निरंकुशता से भक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती थी, केवल भय के बल पर आज्ञा-पालन करवाया जा सकता था—और नेपोलियन की व्यवस्था अत्यधिक क्रूर निरंकुशता पर आधारित थी। यूरोप ने कभी किसी एक राष्ट्र अथवा एक व्यक्ति का आधिपत्य नहीं स्वीकार किया है। इतिहास में अनेक ऐसे अवसर आए जबकि उसके लिए एक राष्ट्र अथवा एक व्यक्ति के जुए के नीचे आ जाने का खतरा उठ खड़ा हुआ, किन्तु अन्त में वह सदैव बच निकलने में सफल हुआ। सार्वभौम आधिपत्य एक ऐसी चीज है जिसका समय के साथ मेल नहीं बैठता। ग्रेट ब्रिटेन का उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों पर

नेपोलियन की व्यवस्था का आधार निरंकुशता

जो अधिकार कायम है उसका रहस्य यह है कि वह उन अंगों को अपनी प्रणाली से अपने जीवन का विकास करने की स्वतन्त्रता देता है। किन्तु इस प्रकार की धारणा से नेपोलियन पूर्णतया अपरिचित था, यह चीज उसकी मूल प्रवृतियों और विश्वासों के ही प्रतिकूल थी। जिन विभिन्न देशों पर उसका आधिपत्य था उनमें उसके साम्राज्य का अर्थ था स्वतन्त्रता का निषेध, और फ्रांस भी इस नियम का अपवाद न था। नेपोलियन की विजयों का परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्रता की यह बलवती और दुर्दमनीय भावना सर्वत्र उसके विरुद्ध अजेय दुर्ग-

सम्पूर्ण यूरोप मुक्ति की घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा

श्रृंखला बन कर खड़ी हो गई। उसने जितने ही अधिक देश जीते उतनी ही अधिक उसके शत्रुओं की संख्या हो गई, वे सब उत्कंठा के साथ मुक्ति की घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे, और क्षितिज को चारों ओर टकटकी लगा कर निहारने लगे की कहीं दुर्बलता का चिन्ह दिखाई दे जो आशा का सन्देश दे सके। स्पेन में, और १८०९ के आस्ट्रिया के अभियानों में उन्हें आशा का यह चिन्ह दिखाई दिया—इन अभियानों में नेपोलियन की सैनिक विजय की मशीनरी खड़खड़ाने लगी थी, भद्दे-भोंड़े ढंग से उसने काम दिया था, और एक समय तो ऐसा लगा था कि वह टूट कर गिर जायगी।

उस समय तक संसार में एक ऐसे तत्व का प्रादुर्भाव हो चुका था जो नेपोलियन की योजनाओं के सर्वथा विपरीत था—यह राष्ट्रीयता का सिद्धान्त। नेपोलियन ने इस भावना का तिरस्कार किया और घृणा

नेपोलियन ने राष्ट्रीयता की भावना का तिरस्कार किया

की दृष्टि से देखा और अन्त में इसी ने उसका सर्वनाश कर दिया। इस चीज को वह देख सकता था कि कुछ वर्ष पूर्व इसी भावना से फ्रांस को बल और स्फूर्ति मिली थी, अब यह भावना फ्रांस की प्राकृतिक सीमाओं को पार कर चुकी थी और स्पेन जैसे देशों में, यहाँ तक कि आस्ट्रिया में भी सबसे अधिक प्रुशिया में, एक नये जीवन का संचार कर रही थी, एक नई शक्ति प्रदान कर रही थी।

येना के बाद प्रुशिया को घोर अपमान सहना पड़ा था, जैसा कि कभी किसी राष्ट्र को सहना पड़ा होगा। अनेक वर्षों तक वह देश नेपोलियन के बूटों के नीचे पड़ा कराहता था फ्रांसीसी सम्राट ने अपनी विशाल सेनाएँ उसकी भूमि पर रखीं, उसके साधनों को भरपूर लूटा, उसके शासन में हस्तक्षेप किया और उसे ४२,००० से अधिक सेना रखने की अनुज्ञा नहीं दी।

येना के बाद प्रुशिया की स्थिति

किन्तु इस राष्ट्रीय अधःपतन की गहराई में से ही उसकी मुक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उसकी श्रेष्ठतम आत्माएँ जाग उठीं और उन्होंने इस अप्रत्याशित और अपरिमित राष्ट्रीय विपदा के कारणों को ढूँढ निकालने और उनका निराकरण करने का प्रयत्न किया। १८०८ से १८१२ तक प्रुशिया के लोगों ने राष्ट्रीय पुनरुत्थान की समस्या को सुलझाने के लिए उन्मत होकर कार्य किया, और यह सब कुछ हुआ नेपोलियन की निगाहों के सामने—जो आँखें होने पर भी देखने में असमर्थ था। उस सबका जो फल हुआ उस पर विश्वास करना कठिन था। कवियों और विचारकों, दार्शनिकों और अध्यापकों ने जबरदस्त देशभक्ति को उभाड़ा, और युवकों में मातृभूमि के प्रति निस्वार्थ भक्ति की भावना प्रज्ज्वलित करने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा दीं। विद्युत तरंगों की भाँति

उत्साह और आदर्शवाद की लहर समस्त शिक्षा केन्द्रों और विशाल जन समुदाय में फैल गई। वर्लिन के विश्वविद्यालय ने, जिसकी स्थापना प्रशिया के सर्वाधिक अन्धकार की घड़ी १८०९ में हुई थी, प्रारम्भ से ही एक उत्तेजक तत्व का काम किया। वह तथा अन्य विश्वविद्यालय देशभक्ति की रोपणियाँ (पोपणागार) वन गये।

प्रशिया में अर्धदासता का अन्त (१८०७)

अन्य क्षेत्रों में भी प्रशिया का पुनर्जनन हुआ। स्टाइन और हार्डेनवेर्ग नाम के दो राजनीतिज्ञों का काम विशेषकर उल्लेखनीय था। स्टाइन ने प्रशिया की अभूतपूर्व विपदाओं के कारणों की समीक्षा की और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसकी दोषयुक्त अथवा हानिकारक सामाजिक और विधिक संस्थाएँ ही इसकी जड़ हैं। प्रशिया के वहुसंख्यक नागरिक अर्धदास (सर्फ) थे, भूमि से वँधे हुए थे, उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता पर प्रतिवन्ध लगे हुए थे, और जैसा कि स्टाइन ने कहा "अर्धदासों में से देशभक्त नहीं उत्पन्न हो सकते।" उसने राजा को अर्धदासता के उन्मूलन करने के लिए एक आज्ञप्ति जारी करने पर राजी कर लिया। उसने कहा कि प्रशिया का राजा अव "दासों का नहीं, अपितु स्वतंत्र नागरिकों का राजा है।" और भी अनेक सुधार किए गये जिनसे वर्ग-भेद और विशेषाधिकारों में कमी हुई। इस भाव में स्टाइन ने वहुत कुछ फ्रांसीसी क्रान्तिकारियों का ही अनुसरण किया था, जिन्होंने अपने युगनिर्माण करने वाले सुधारों के द्वारा फ्रांसीसी जनता की शक्तियों को मुक्त कर दिया था जिससे उनके बल में अपार वृद्धि हो गई थी।

स्टाइन के सुधारों पर फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव

सेना का भी पुनःसंगठन किया गया। प्रतिभा और योग्यता के लिए अवसर के द्वार खोल दिए जैसा कि फ्रांस में किया गया था और उसके कैसे विस्मयकारी परिणाम हुए थे यह हम देख चुके हैं। चूँकि नेपोलियन ने ४२,००० से अधिक सैनिक रखने की अनुज्ञा नहीं दी थी, इसलिए एक चतुराईपूर्ण युक्ति निकाल ली गई। लोगों को स्वल्प काल के लिए सेना में काम करने के लिए भर्ती किया जाता और उतने समय में उन्हें सैनिक जीवन के लिए तत्व की सभी चीजें सिखा दी जातीं। उसके वाद उन्हें पश्चाद्धृत (रिजर्व) सेना में,भेज दिया जाता और उनके स्थान पर दूसरों को बुलाकर तेजी से उसी प्रकार का प्रशिक्षण दे दिया जाता। इस पद्धति से ४२,००० के कई गुने लोगों को सैनिक शिक्षा मिल गई; जिसकी प्रभावकारिता वाद में सिद्ध हुई।

प्रशिया में सैनिक सुधार

इस प्रकार प्रशिया के पुनर्जनन का कार्य चलता रहा। नई राष्ट्रीय भावना, जिसका आश्चर्यजनक उद्दीपन हो चुका था, अधैर्य के साथ उस घड़ी की प्रतिक्षा करने लगी जबकि उसे कार्यान्वित होने का अवसर मिल सके। किन्तु यह वात ध्यान में रखने की है कि यद्यपि ये सुधार फ्रांस की **संविधान सभा** और **कन्वेंशन** द्वारा संपादित सुधारों से वहुत कुछ मिलते जुलते थे और उनकी प्रेरणा भी फ्रांस से ही मिली थी, फिर भी जिन सिद्धान्तों पर वे आधारित थे वे फ्रांसीसी सिद्धान्तों से भिन्न थे। प्रशिया में न तो **मानव अधिकारों** का उपोदवलन ही दिया गया और न जनता को प्रभु घोषित किया गया। प्रशिया में जो सुधार हुए उनका श्रेय राजा को था, उनके सम्पादन में प्रजा का कोई हाथ नहीं था। राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त पर आघात नहीं किया गया, वल्कि उसको पूर्ववत् पवित्र मान कर कायम रक्खा

गया। प्रुशिया में सुधार हुआ, क्रान्ति नहीं। प्रुशिया ने लोकतन्त्र की दिशा में कदम नहीं बढ़ाया। इस विशिष्टता का उस देश के सम्पूर्ण परवर्ती इतिहास पर प्रभाव रहा है—और आज भी है। "सब कुछ जनता के लिए, किन्तु जनता द्वारा कुछ नहीं," यह सिद्धान्त था जो राष्ट्रीय पुन:संगठन के मूल में स्पष्टत: काम कर रहा था। राज्य के भीतर और उसके बाहर जो विरोध हुआ उसके कारण इन सुधारों को भी पूर्णरूप से क्रियान्वित नहीं किया गया। किन्तु अपूर्ण होने पर भी उन्होंने देश को बहुत बल और स्फूर्ति प्रदान की।

प्रुशिया ने लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों का अनुकरण नहीं किया

अपनी नीति के द्वारा नेपोलियन ने अन्य क्षेत्रों में भी अपने अगणित शत्रु उत्पन्न कर लिए थे जो उसके नीचे की जमीन को खोखला करने में लगे हुए थे। उसने पोप को वन्दी बना कर रक्खा था, उसके राज्यों के कुछ भाग को फ्रांसीसी साम्राज्य में और कुछ को इटली के राज्य में सम्मिलित करके उसकी लौकिक शक्ति का अन्त कर दिया था और फिर उसके साथ दुर्व्यवहार किया था। इस सबसे केथोलिक पादरी सर्वत्र उसके शत्रु हो गये और भक्त लोगों को भी बहुत बुरा लगा। रोम का नगर जो अब तक पोप की राजधानी था अब साम्राज्य का द्वितीय नगर घोषित कर दिया गया, और नेपोलियन के पुत्र की उपाधि बन गया। इस प्रकार पोप के सब अधिकारों की उपेक्षा और तिरस्कार किया गया। फलत: अब चर्च ने व्यापक और सूक्ष्म प्रभाव का प्रयोग उस व्यक्ति को नीचा दिखाने के लिए किया जिसको पहले उसने इतना अनुग्रह और प्रतिष्ठा प्रदान की थी। इस प्रकार नेपोलियन को राष्ट्रीयता के उमड़ते हुए ज्वार का मुकाबला करने के साथ-साथ पोप से भी उलझना पड़ा।

नेपोलियन के प्रति चर्च की शत्रुता

नेपोलियन को महाद्वीपीय नाकेबन्दी की योजना को सफल बनाने और इंगलैंड को नीचा दिखाने की आवश्यकता के कारण ही इन सब झगड़ों और उलझनों में फँसना पड़ा था। इस व्यवस्था ने ही उसे एक के बाद एक आक्रमण करने, और एक के बाद एक देश को हस्तगत करने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था के फलस्वरूप यूरोप के समस्त देशों में उसके विरुद्ध असन्तोष का ज्वालामुखी धधक उठा, यहाँ तक फ्रांस में भी। इससे कपास, शक्कर, कहवा चाय आदि की, इंगलैण्ड के उपनिवेशों अथवा उन देशों की उपज थी जिनसे इंगलैण्ड का व्यापार सम्बन्ध था, कीमतें बढ़ गईं, जिससे कि हर घर में कठिनाइयाँ और झुंझलाहट उत्पन्न हो गईं। वाणिज्य और व्यवसाय का सामान्य क्रम छिन्न-भिन्न हो गया और लोगों की जीविका सहसा जाती रही और बरबादी और तबाही ने उन्हें आ घेरा। जिन चीजों की उन्हें आदत पड़ी हुई थी उन्हें पाने के लिए वे बड़े पैमाने पर और भारी जोखिम उठाकर तस्कर व्यापार करने लगे। इसे रोकने के लिए नये तथा पहले से भी अधिक कठोर नियम बनाए गये और दण्ड निश्चित किये गए। इस प्रकार नागरिकों के निजी जीवन में जो अत्याचारपूर्ण हस्तक्षेप हुआ उससे हर देश के बहुसंख्यक लोग अत्याचारी शासन से घृणा करने और उनको उखाड़ फेंकने की कामना करने लगे। व्यापक आर्थिक

महाद्वीपीय व्यवस्था के विनाशकारी परिणाम

व्यापक आर्थिक कठिनाइयाँ

कष्ट **महाद्वीपीय व्यवस्था** का अनिवार्य परिणाम था। इसने नेपोलियन के शासन को जितना अप्रिय बनाया उतना अन्य किसी चीज ने नहीं बनाया। निरन्तर चलने वाले युद्धों से जो भयंकर नरसंहार हुआ उसने अवश्य उसके प्रति घृणा उत्पन्न करने में इसके अधिक काम किया था। **महाद्वीपीय व्यवस्था** के कारण ही १८१२ में रूस तथा फ्रांस के सम्बन्ध बिगड़ गए जिसके परिणाम नेपोलियन के लिए बहुत घातक हुए और उसके पराभव का आरम्भ हुआ। १८१२, १८१३, और १८१४ के तीन वर्षों में नेपोलियन की राजनीति और राजनय का भारी भरकम ढाँचा बालू की दीवाल की भाँति गिरकर बिखर गया।

फ्रांस और रूस की मैत्री

रूस में इसकी अप्रियता

फ्रांस और रूस की मैत्री, जो १८०७ में तिल्झित के स्थान पर जल्दी में और अप्रत्याशित रूप से स्थापित हुई थी, केवल पाँच वर्ष तक कायम रह सकी। किन्तु रूस के कुछ प्रभावशाली वर्गों को यह सम्बन्ध प्रारम्भ से ही बुरा लगा था और इससे उत्पन्न असुविधाएँ शीघ्र ही प्रकट होने लगीं। रूस का अभिजातवर्ग बड़ा शक्तिशाली था; उसे इस मैत्री से इसलिए घृणा थी कि फ्रांस ने अपने यहाँ अभिजात वर्ग का उन्मूलन कर दिया था और उसके सदस्यों को उनकी भूमि और अधिकारों से वंचित करके अकिंचन बना दिया था। रूसी अभिजात वर्ग को फ्रांस के साथ सहानुभूति हो भी न सकती थी, क्योंकि वह अर्धदासत्व की व्यवस्था पर टिका हुआ था जिसके अन्तर्गत बहुसंख्यक जनता पिस रही थी, जबकि फ्रांस ने सामन्ती व्यवस्था का पूर्ण उन्मूलन करके मानव समता की घोषणा कर दी थी। इसके अतिरिक्त रूस का सामन्तवर्ग **महाद्वीपीय व्यवस्था** से घृणा करता था, क्योंकि उसके कारण इंगलैण्ड के साथ गेहूँ, फ्लेक्स और लकड़ी का जो व्यापार चलता था और जिस पर उस वर्ग की समृद्धि निर्भर थी, नष्ट हो गया था। उधर जार अलेक्जांडर प्रथम भी फ्रांस से चिढ़ने लगा था, क्योंकि उसकी मैत्री से जो लाभ उसे मिल सकते थे वे मिल चुके थे और अब अधिक लाभों की, जिनकी वह आशा करता था, प्राप्त होने की गुंजाइश नहीं थी।

नेपोलियन तथा अलेक्जांडर प्रथम के बीच सम्बन्ध

उसने स्वीडन से फिनलैंड और टर्की से डेन्यूब के प्रदेश ले लिए थे, किन्तु टर्की के साम्राज्य के विभाजन की अस्पष्ट किन्तु लुभावनी आशा भरी पूरी नहीं हुई थी, और अब उसके पूरे होने के आसार भी नहीं दिखाई देते थे। वह कुस्तुन्तुनियाँ पर अधिकार करना चाहता था किन्तु नेपोलियन ने स्पष्ट रूप से बतला दिया था कि वह उसे ऐसा कभी न करने देगा। इसके अतिरिक्त नेपोलियन की **ग्रांड डची आव वारसा** के सम्बन्ध में जो योजनाएँ थी उनके कारण भी अलेक्जांडर चिन्तित था—इस राज्य को पोलैंड के उन प्रान्तों को मिलाकर बनाया गया था जिन्हें प्रुशिया और आस्ट्रिया ने अधिकृत कर लिया था। प्रुशिया और आस्ट्रिया के हाथ से पोलैंड के प्रान्त निकल जायँ, इस बात में अलेक्जांडर को कोई आपत्ति नहीं थी। किन्तु उसके कब्जे में भी पोलैंड के प्रान्त थे; अतः उसे नेपोलियन की उन चालों से डर था जिनसे पोलैंड के राज्य के पुनरुद्धार की सम्भावना हो, क्योंकि इससे पोलैंडवासियों में राष्ट्रीयता की भावना का उदय होगा जिससे उसके अधीन प्रान्तों के लिए भी खतरा उत्पन्न हो सकता था।

किन्तु अलेक्जांडर और नेपोलियन के बीच कटुता तथा तनाव का सबसे बड़ा कारण महाद्वीपीय व्यवस्था थी। इससे रूस को भारी आर्थिक हानि हो रही थी। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी उसे इससे उत्पन्न असुविधाएँ दिखाई देने लगीं थीं। जर्मनी में इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से लागू करने के लिए नेपोलियन ने १८११ ग्रांड डची आव ओल्डेनवुर्ग पर भी अधिकार कर लिया था, और यह राज्य अलेक्जांडर के बहनोई (अथवा साले) का था।

महाद्वीपीय व्यवस्था ने मैत्री की जड़ें खोखली करदीं

इस प्रकार इस मैत्री पर जो आघात होने लग गए थे उन्हें वह सहन नहीं कर सकती थी। नेपोलियन अपने वश भर महाद्वीपीय व्यवस्था को कहीं से भी टूटने देने के लिये तैयार नहीं था। उसने रूस को अपने आदेशानुसार चलने के लिये बाध्य करने का संकल्प किया, जैसा कि वह अन्य देशों को कर चुका था। उसने माँग की कि रूस अपने वायदों का पालन करे और इंगलैंड के वाणिज्य का बहिष्कार करे। अलेक्जांडर ने जो उत्तर दिए वे असन्तोषजनक और टालू थे। अतः जून १८१२ में नेपोलियन ने एक विशाल सेना लेकर नीमेन नदी को पार किया। इतनी बड़ी सेना का नेतृत्व इससे पहले उसने कभी नहीं किया था; उसमें पाँच लाख से अधिक सैनिक थे और रूसी उसे "बीस राष्ट्रों की सेना", कह कर पुकारते थे। उसमें लगभग आधे फ्रांसीसी थे, और शेष में इटली, डेनमार्क, क्रोशिया, दालमाशिया, पोलैंड, हॉलैंड, वेस्टफेलिया, सैक्सनी, बवारिया वूर्टेम्बर्ग आदि देशों के सैनिक सम्मिलित थे। अपने सैनिक जीवन में पहली बार नेपोलियन को प्रुशिया और आस्ट्रिया का सहयोग प्राप्त हुआ, दोनों को ही उसने अपनी-अपनी सेनाएँ भेजने के लिये बाध्य किया। सेना में १००,००० अश्वारोही और शक्तिशाली तोपखाना था। उसके साथ म्युरा, ने, अजेडन और बोआर्ने आदि प्रतिभाशाली सेनानायक थे ऐसा लगता था कि संसार की कोई भी शक्ति विनाश के इस यन्त्र का प्रतिरोध करने में समर्थ न होगी। नेपोलियन ने इस अभिमान के सम्बन्ध में स्वयं कहा कि यह नाटक का "अन्तिम अंक" है।

फ्रांस और रूस का सम्बन्ध भंग (१८१२)

नेपोलियन का रूस पर आक्रमण

यह नाटक का अन्तिम अंक तो नहीं सिद्ध हुआ, किन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और आश्चर्यों से परिपूर्ण अवश्य था प्रारम्भ से ही स्पष्ट हो गया था कि संख्या में सदैव ही शक्ति निवास नहीं करती, बल्कि कभी कभी वह दुर्बलता का भी कारण बन जाती है। यह विशाल मशीन अपने ही भार से नीचे दबकर टूटने लगी। सेना पाँच दिन भी न चलने पाई थी कि रसद विभाग भिन्न-भिन्न होने लगा और रोटी की कमी पड़ गई। घोड़ों को समुचित दाना-चारा न मिल सका अतः वे हजारों की संख्या में मरने लगे, इससे रसद-विभाग का मनोबल और भी टूटने लगा और तोपखाने के लिए खतरा उत्पन्न हो गया। रूसियों ने न लड़ने की नीति अपनाई, और निरन्तर पीछे हटते गए। शत्रु की सेना झाँसे में आकर देश के भीतर अधिकाधिक आगे बढ़ती गई। उधर रूसियों ने पीछे हटने से पहले सम्पूर्ण प्रदेश को उजाड़ दिया और गाँवों को छोड़ने से पहले उन्हें जलाकर खाक कर दिया। फलस्वरूप आक्रमणकारी को न रसद मोहय्या हो सकी और

रसद विभाग का संगठन छिन्न-भिन्न

रूसी निरन्तर पीछे हटते गए

न घायलों को टिकाने के लिए स्थान ही मिला। नेपोलियन को सबसे अधिक युद्ध की चाह थी, क्योंकि उसे आशा थी कि शत्रु को कुचल दूँगा, किन्तु रूसियों ने उसे युद्ध का अवसर ही नहीं दिया। रूसियों ने ड्यूक आव वेलिंगटन के उन तरीकों का अध्ययन किया था जिनका प्रयोग उसने पुर्तगाल में किया था, और इससे उन्हें बड़ा लाभ हुआ। नीमेन से मास्को ७०० मील दूर था। नेपोलियन का इतनी दूर आगे बढ़ने का इरादा नहीं था, किन्तु उसके शत्रु की चालों ने उसे लगातार आगे बढ़ने के लिए बाध्य किया। जार ने घोषणा की कि यदि आवश्यक हुआ तो मैं पीछे हटकर एशिया में चला जाऊँगा किन्तु रूस की पवित्र भूमि पर शत्रु के साथ सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं करूँगा। नेपोलियन को आशा थी कि स्मोलेंस्क में युद्ध अवश्य होगा, किन्तु वहाँ पर पहुँचने पर देखा कि नगर में आग की लपटें उठ रही हैं और शत्रु बचाऊ युद्ध करता हुआ पीछे को लौट रहा है।

बोरोडिनो का युद्ध

इस निरन्तर पीछे हटने की नीति से फ्रांसीसी सम्राट ही नहीं चिढ़ रहा था, रूसी जनता भी असन्तुष्ट थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर इसका अभिप्राय क्या है, और नीति में परिवर्तन करने के लिए चीख पुकार करने लगी थी। इसलिए रूसियों ने मास्को के मार्ग में स्थित बोरोडिनो पर दृढ मोर्चा बना लिया और वहीं डट गए। उस स्थान पर ७ सितम्बर, १८१२ के दिन युद्ध हुआ। फ्रांसीसी सेना की संख्या १२५,००० और रूसियों की १००,००० थी। इस लड़ाई की गणना उस युग के सर्वाधिक संहारकारी युद्धों में है। फ्रांसीसियों को ३०,००० और रूसियों को ४०,००० सैनिकों की हानि उठानी पड़ी। नेपोलियन की विजय तो हुई किन्तु वह शत्रु सेना को पूर्णतया कुचल नहीं सका, इसका कारण सम्भवतः यह था कि वह अपने पुराने अनुभवी योद्धाओं को संग्राम में नहीं झोंक पाया था। रूसी सेनाएँ व्यवस्थित ढंग में पीछे हट गईं और मास्को की सड़क को खुला छोड़ गईं, नेपोलियन ने १४ सितम्बर को नगर में प्रवेश किया। उसकी सेना को पूरे मार्ग में भयंकर कष्ट उठाने पड़े थे। पहले तो उसे वर्षा के जल से लथपथ सड़कों सर चलना पड़ा; उसके बाद जुलाई की भयंकर गर्मी आ गई और सड़कें धूप से जलने लगीं और धूल के दम घुटाने वाले डंडूरे उठने लगे। इन परिस्थितियों में उसे आगे बढ़ना पड़ा। नीमेन से मास्को तक के ७०० मील के मार्ग में भयंकर हानि हुई, प्रतिदिन हजारों ही सैनिक मृत्यु के मुँह में चले गए।

नेपोलियन का मास्को में प्रवेश (सितम्बर १४, १८१२)

नेपोलियन ने मास्को तक पहुँचने का संकल्प इस आशा से किया था कि इस प्राचीन राजधानी के लिए संकट उत्पन्न होते ही रूसी लोग शान्ति के लिए राजी हो जायेंगे। किन्तु इसके लिए कोई तैयार नहीं हुआ। मास्को पहुँच कर उसने नगर को लगभग उजड़ा हुआ पाया, २५०,००० की आबादी में से केवल १५००० व्यक्ति वहाँ रह गए थे। इसके अतिरिक्त उसके वहाँ पहुँचने के दूसरे दिन ही शहर के विभिन्न भाग की लपटें उठने लगीं, कदाचित रूसियों ने जानबूझकर आग लगा दी थी। चार दिन तक भयावह ज्वालाएँ धधकती रहीं और नगर का बड़ा भाग भस्म हो गया। फिर भी नेपोलियन वहाँ हफ्तों डटा रहा, एक तो इस डर से कि उसके पीछे लौटने के समाचार का लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, और दूसरे उसे आशा थी कि

मास्को का जलना

अन्त में जार शान्ति की याचना करेगा। किन्तु यह आशा दुराशा सिद्ध हुई। अन्त में एक माह का बहुमूल्य समय नष्ट करने के बाद उसकी समझ में आ गया कि पीछे लौटने की आज्ञा देने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है। यह एक घोर और लम्बी यातना की कहानी है। इसके दौरान में १००,००० की सेना में से कुछ ही हजार आदमी बच सके। पूरे रास्ते में रूसी सेनाओं और कज्जा की छापामार टुकड़ियों ने उसकी नाक में दम कर दिया। बोरेडिनो के युद्धक्षेत्र में अभी तक उसके कई हजार साथी बिना दफनाए हुए पड़े थे जिन्हें देखकर उसके हृदय काँप उठे, भूख और थकान से उन्हें जो कष्ट हुए उनका वर्णन करना असम्भव है, और अन्त में उन्हें रूस के भयंकर जाड़े ने धर दबाया। उनमें से बहुत से तो गर्मी की ऋतु के हल्के कपड़े पहने हुए थे। इस पलायन और भगदड़ के दौरान में कष्ट और त्रास की जो घटनाएँ घटीं उनका वर्णन करना नितान्त असम्भव है, और उन सब की परिणति बर्सीना को पार करते समय हुई। आदमियों में भगदड़ मच गई, वे पुल पार करने के लिये आपस में लड़ने लगे, घोड़े बिदक गये, गाड़ियों और भारवाहकों की वजह से रास्ता रुक गया, और पुल रूसी तोपखाने की मार से जल उठे। इस सब का परिणाम यह हुआ कि मुख्य पुल टूट गया। हजारों लोग पीछे हट गये, कितने ही उस बर्फीली नदी में दुर्घटनावश अथवा जानबूझकर गिर गए और शीत से ठिठुर कर मर गए। एक लेखक ने लिखा है कि बाद में जब रूसी लोग वहाँ आए तो उन्होंने उन डूबे हुए सैनिकों, स्त्रियों और बच्चों के पुञ्ज के पुञ्ज देखे जो अब उछर कर पानी के ऊपर आ गये थे, अनेक तो अपने बर्फ से जमे हुए घोड़ों पर अकड़कर बैठे हुए मूर्तिवत् दिखाई दे रहे थे। पूरी सेना में से कुछ हजार अन्त में रूस के बाहर निकले और नीमेन को पार किया। अनेक तो केवल रेंग कर अस्पतालों में पहुँचे और कहा कि हमें "उन कमरों में भेज दीजिए जहाँ कि लोग मरते हैं।" इतिहास में इससे अधिक वीभत्स और भयावह दृश्य बहुत कम देखने को मिलेंगे।

मास्को से वापिस लौटना

बर्सीना को पार करना

नेपोलियन ने स्वयं दिसम्बर के महीने में सेना का साथ छोड़ दिया और भेष बदलकर शीघ्रता से रास्ता तै करता हुआ १८ तारीख को पेरिस पहुँच गया। उसने घोषणा की कि "वसन्त ऋतु में पुनः नीमेन पर जा पहुचूँगा।" इससे लोगों को ऐसा लगा कि बिगड़ी हुई स्थिति पुनः शीघ्र ही सम्हल जायेगी।

नेपोलियन ने एक नये आक्रमण की योजना बनायी

किन्तु नेपोलियन अपना वचन पूरा न कर सका। फिर वह लौटकर नीमेन तक कभी न पहुँच सका। १८१३ में उसे जर्मनी में अपनी सर्वोच्चता कायम रखने लिए संघर्ष करना पड़ा जैसा कि १८१२ में उसे रूस पर आधिपत्य जमाने के लिए करना पड़ा था। रूस में उस पर जो वज्रपात हुआ था उससे उसके शत्रुओं में सर्वत्र आशा की लहर दौड़ गई थी। सचमुच ऐसा लगने लगा था कि शक्ति का यह विशाल पुञ्ज गिरने वाला है। लोग पूछने लगे थे कि क्या उसको नष्ट करने की शुभ घड़ी अभी नहीं आ पहुँची है। प्रुशियावासियों की घृणा विशेषकर बड़ी उग्र थी, क्योंकि पिछले छः वर्षों में उसे निर्मम अत्याचारों का जितना अनुभव हुआ था उतना अन्य किसी जाति को नहीं हुआ था। वे शत्रु पर टूट पड़ने के लिये उत्सुकतापूर्वक काँप रहे थे। जब उनके राजा ने रूस से मैत्री करली और फिर अपनी जनता से सहयोग की

सीधी और निजी तौर पर अपील की, जैसा कि प्रुशिया के किसी राजा ने पहले नहीं किया था, तो उन्होंने उसे सहायता देने का उत्साहपूर्वक आश्वासन दिया। रूस के साथ हुई कालिश की इस सन्धि की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। एक शर्त यह थी कि रूस नेपोलियन के विरुद्ध तब तक युद्ध बन्द नहीं करेगा जब तक प्रुशिया इतने बड़े क्षेत्र को पुनः प्राप्त नहीं कर लेता जितना कि येना के पहले उसके अधिकार में था; किन्तु प्रुशिया को अपना ही पुराना सम्पूर्ण क्षेत्र फिर से नहीं मिलेगा; प्रुशिया के पोलैंड वाले प्रान्तों पर, जिनमें अब **ग्रांड डची आव वारसा भी** सम्मिलित थी, रूस अधिकार करेगा और इसके बदले में प्रुशिया उत्तरी जर्मनी के क्षेत्रों को हड़प कर अपना घाटा पूरा करेगा।

प्रुशिया ने नेपोलियन के विरुद्ध रूस से सन्धि करली

अब प्रश्न यह था कि क्या नेपोलियन **राइन परिसंघ** और अपने मित्र आस्ट्रिया का भरोसा कर सकता है। यही देखना शेष था। इतना निश्चित था कि यदि उसकी पराजय हुई तो उसे पहले की मित्रता और दूसरे की तटस्थता दोनों से वंचित होना पड़ेगा। उनकी भक्ति उसकी सफलता के अनुपात में ही होगी। इन राज्यों की जनता में नेपोलियन के विरुद्ध क्रोध और घृणा नहीं थी, जैसा कि प्रुशिया में था। किन्तु उनके राजा अवसर की ताक में बैठे थे आस्ट्रिया अवश्य ही नेपोलियन की आवश्यकताओं से लाभ उठाने का प्रयत्न करेगा। **राइन परिसंघ** के राजा लोग अपने उन लाभों को कायम रखने के इच्छुक थे। जो उन्हें पिछले वर्षों में नेपोलियन को सहयोग देने से प्राप्त हुए थे। आस्ट्रिया को अपने खोये हुए लाभों को पुनः प्राप्त करप्र की तीव्र अभिलाषा थी—विशेषकर अपनी भूमि, और अपनी प्रतिष्ठा जो चार असफल अभियानों के फलस्वरूप धूल में मिल चुकी थी।

नेपोलियन के संदिग्ध मित्र

रूस से लौटने के बाद नेपोलियन ने अथक परिश्रम किया और अन्त में २००,००० सैनिक एकत्र करने में सफल हुआ। किन्तु इसके लिए उसे फ्रांस के नवयुवकों का सहारा लेना पड़ा, जैसा कि पहले कभी नहीं करना पड़ा था। रंगरूटों को सेवा का समय आने से पहले ही झंडे के नीचे बुला लिया गया। उनमें से बहुत-से अप्रशिक्षत ही थे, और जर्मनी को जाते समय मार्ग में उन्हें ट्रेनिंग दी गई। सेना का अश्वारोही अंग दुर्बल था, जबकि मैदान में प्राप्त विजय के तुरन्त पश्चात् की आवश्यक कार्यवाहियों को पूरा करने और विजय को वास्तविक अर्थ में सफल बनाने में अश्वारोहियों की निर्णायक भूमिका रहा करती थी।

जर्मनी में १८१३ का अभियान

रूस और प्रुशिया अपनी तैयारी पूरी भी न कर पाये थे कि नेपोलियन केन्द्रीय जर्मनी में जा धमका। मई, १८१३ में उसने उन्हें ल्यूट्ज़ेन और बाउट्ज़ेन के युद्धों में परास्त किया, किन्तु पर्याप्त अश्वारोहियों के अभाव के कारण विजय के उपरान्त शत्रु का पीछा न कर सका; साथ ही साथ इस अभियान से उसे यह निश्चय हो गया कि कुमुक के बिना निर्णायक सफलता मिलना असम्भव है। इसलिये वह छः सप्ताह की विराम सन्धि

अभियान के बीच ही में घातक विराम-सन्धि

के लिए राजी हो गया। जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट हुआ, यह सन्धि उसके लिए बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुई। इस काल में उसे विशाल कुमुक तो प्राप्त हो गई, किन्तु उसके शत्रुओं ने उससे भी बड़ी कुमुक एकत्र करली। साथ ही साथ इस बीच में राजनयिक कुचक्रों में भी उसे मात खानी पड़ी, और जब विराम सन्धि समाप्त हुई तो आस्ट्रिया उसके विरुद्ध रूस, प्रुशिया और इंगलैण्ड से जा मिला। उसने आस्ट्रियायी सेना को ड्रेस्डेन के युद्ध से परास्त किया (अगस्त २६,२७) यह उसकी अन्तिम महान् विजय थी।

आस्टिया नेपोलियन के विरुद्ध गुट में सम्मलित हो गया

किन्तु उसके आधीन सेनापतियों को विभिन्न छोटे मोटे युद्धों में हार खानी पड़ी और शत्रुओं ने उसे पीछे लाइप्सिक तक खदेड़ दिया। उस स्थान पर तीन दिन का निर्णायक युद्ध हुआ जिसे जर्मन लोग "राष्ट्रों का युद्ध" के नाम से पुकारते हैं। (अक्टूबर १६-१८)। युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों की संख्या की दृष्टि से यह नेपोलियन युग का सबसे बड़ा युद्ध था: पाँच लाख से अधिक आदमियों ने लड़ाई में भाग लिया, जिनमें से २००,००० के लगभग नेपोलियन के ओर ३००,००० मित्र राष्ट्रों के झंडे के नीचे लड़े। नेपोलियन की भयंकार पराजय हुई और उसे अपनी थोड़ी-सी बची हुई सेना के साथ पीछे की ओर राइन के

लाइपसिक का युद्ध (अक्टूबर १६-१८, १८१३)

उस पार खदेड़ दिया गया। उसने जर्मनी में जो राजनीतिक ढाँचा बनाकर खड़ा किया था वह पूरा का पूरा धड़ाम से गिर पड़ा। राइन परिसंघ के सदस्य डूबते हुए नक्षत्र का साथ छोड़ गए और उसके विरुद्ध गुट मे सम्मिलित हो गए। मित्र राष्ट्रों ने उन्हें इस बात का आश्वासन दिया कि जो क्षेत्र उनके अधिकार में थे वे उन्हीं के पास रहने दिए जायेंगे। जेरोम वेस्टफेलिया से भाग गया और उसका छोटा-सा राज्य लुप्त हो गया। उधर वेलिंगटन को, जो कई वर्षों से स्पेनवासियों की सहायता करता आया था, सफलता मिल चुकी थी और वह अब पिरीन को पार करके दक्षिण फ्रांस में प्रवेश कर रहा था। अब सिंह चारों ओर से जाल में फँस रहा था।

नेपोलियन की व्यवस्था का विध्वंस

मित्र सेनाएँ भागती हुई फ्रांसीसी सेना का पीछा करती हुई राइन की ओर बढ़ीं। प्रारम्भ में उनकी ऐसी योजना नहीं थी कि नेपोलियन से सिंहासन त्यागने को कहा जाय। नवम्बर १८१३ में उन्होंने उसके सामने फ्रांस की प्राकृतिक सीमाओं—राइन, आल्पस और पीरेन के आधार पर शान्ति का प्रस्ताव रक्खा। उसने उसे स्वीकार नहीं किया, टालमटूल की और अपनी ओर से नये प्रस्ताव रक्खे। फरवरी १८१४ तक ऐसी स्थिति थी कि यदि वह फ्रांस के बाहर के विजित प्रदेशों को त्यागने के लिए तैयार हो जाता तो फ्रांस का सिंहासन और पुराने बोर्बों राज्य की ऐतिहासिक सीमाएँ उसके अधिकार में बनी रहतीं। किन्तु वह इन

हथियार डाले जाएँ अथवा नहीं ?

सुझावों को टालता रहा। उसे आशा थी कि अन्त में भाग्य मेरा साथ देगा, शत्रुओं का गुट टूट जाएगा और मैं अपनी खोई हुई स्थिति को पुनः प्राप्त कर सकूँगा। इस प्रकार हार मानने से इन्कार करके और बदली हुई स्थिति को स्वीकार न करके उसने फ्रांस को भारी हानि पहुँचाई और अपने पतन का मार्ग प्रशस्त किया। उसके कठोर स्वभाव ने, जिसमें झुकने और समझौता करने की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव

था, उसके भाग्य को डुबा दिया। इस अवसर पर उसने राजनीतिक बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया और न उसने जनता के कल्याण का ही ध्यान रक्खा जिसने अपने निःस्वार्थ बलिदान से उस पर एहसानों का भारी बोझ लाद दिया था। उसकी प्रवृत्ति जुआरी की सी थी; वह समझता था कि अन्त में पासे ऐसे पड़ेंगे कि जीत मेरी ही होगी। साथ ही साथ वह इच्छाशक्ति का अवतार था। उसे आशा थी कि प्रवल इच्छाशक्ति और भाग्य के द्वारा अब भी बिगड़ा हुआ सब कुछ ठीक किया जा सकता था।

फ्रांस का अभियान (१८१४)

जर्मनी को छोड़ते समय उसने कहा था कि "मैं मई में २५०,००० सैनिकों को लेकर वापिस लौट आऊँगा। उसे आशा थी कि जाड़े के महीने में युद्ध नहीं होगा, और मई तक मैं नई सेना खड़ी कर लूँगा। किन्तु मित्र सेनाओं ने मई तक प्रतीक्षा नहीं की और राइन को पार करके विभिन्न दिशाओं से फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। फ्रांस अठारह वर्ष से विजयी होता आया था, अब उसे भी वैसे ही दुर्दिन देखने पड़े जैसे कि अन्य देशों को उसके कारण देखने पड़े थे। अभियान संक्षिप्त सिद्ध हुआ; केवल दो महीने चला—फरवरी और मार्च १८१४। आक्रमण-कारी सेनाओं के मुकाबले में नेपोलियन की फौज की संख्या बहुत ही कम थी। फिर भी कहा जाता है कि इस अभियान में उसने सबसे अधिक प्रतिभा का परिचय दिया। मोर्चे के भीतर ही पाँतों से प्रतिरक्षात्मक युद्ध करते हुए उसने दिखा दिया कि युद्ध की कला पर उसका आश्चर्यजनक आधिपत्य था। दुर्दमनीय साहस और साधनसम्पन्नता का परिचय देते हुए और बिना किसी प्रकार की थकान अनुभव किए उसने विद्युत गति से और सुतत्परता के साथ कभी यहाँ प्रहार किया और कभी वहाँ। वह चारों ओर से घिर चुका था और बचने का कोई मार्ग न था, फिर भी उसका मस्तिष्क अद्वितीय स्पष्टता और विद्युत गति से काम करता रहा। मित्रों को अपने दुधर्ष शत्रु को घेरने के लिए अपनी विशाल संख्या के तिल तिल का प्रयोग करना पड़ा। उनका विश्वास था कि हम दो सप्ताह में राजधानी पहुँच जायेंगे; किन्तु उन्हें दो महीने लगे। फिर भी यदि मित्रों में एकता कायम रहती तो इस प्रकार के अभियान का परिणाम निश्चित था, और सौभाग्य से उनकी एकता कायम रही। ३० मार्च को पेरिस का पतन हो गया और जार अलेक्जांडर तथा प्रुशिया के राजा फ्रेडरिख विलियम तृतीय ने औपचारिक रूप से नगर में प्रवेश किया—उसी नगर में जिसको बाईस वर्ष पहले ब्रुंजविक के ड्यूक ने नष्ट भ्रष्ट कर देने की धमकी दी थी, यदि राजा अथवा रानी पर अपवित्र हाथ डाला गया। उस दिन से अब तक बहुत समय बीत चुका था और यूरोप को विचित्र तथा घटनासंकुल इतिहास में होकर गुजरना पड़ा था, जिसका विशेष महत्त्व था।

मित्र सेनाओं का पेरिस में प्रवेश (मार्च ३१, १८१४)

विजेता लोग अब नेपोलियन को फ्रांस के सिंहासन पर देखना सहन न कर सकते थे। उसे बिना किसी शर्त के सिंहासन त्यागने के लिए बाध्य किया गया। उसकी सम्राट की उपाधि कायम रहने दी गई, किन्तु निश्चय किया गया कि अब वह केवल एल्बा पर शासन करेगा—एल्बा एक उन्नीस मील लम्बा और छः मील चौड़ा द्वीप है और तुस्कानी के तट के निकट स्थित है जहाँ से उनके इटलीवासी

पूर्वजों ने उसके जन्म से ढाई सौ वर्ष पहले कोर्सिका द्वीप के लिए प्रस्थान किया था। एल्बा को जाते समय नेपोलियन ने फ्रोन्तेऽनव्लो के महलों के प्राँगण में अपनी सेना से विदाई ली, और फ्रांस के उस झंडे का चुम्बन किया जो सैकड़ों युद्धों में विजयी बनकर तेजोमय हो चुका था। इस दृश्य को देखने वाले एक सैनिक ने लिखा है "सभी पाँतों में सिसकने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनाई दिया, और मैं कह सकता हूँ कि अपने सम्राट को विदा होते देख मेरी आँखों में आँसू भर आए।"

लुई, अठारहवाँ फ्रांस का राजा बना

जिस दिन नेपोलियन ने सिंहासन छोड़ा उसी दिन सीनेट ने, जो संविधान की संरक्षक थी किन्तु जो साम्राट के सौभाग्य के दिनों में उसके आज्ञाकारी दास की भाँति आचरण करती रही थी, उदीयमान सूर्य का अभिनन्दन किया और लुई अठारहवें को **फ्रांस का राजा** घोषित कर दिया। मित्रगण जिन्होंने नेपोलियन को हरा दिया था और भूमध्य सागर में स्थित एक टापू में निर्वासित कर दिया था सब समझने लगे कि हमने सदैव के लिए उससे पिंड छुड़ा लिया है। किन्तु उनके इस आत्मविश्वास को शीघ्र ही भारी धक्का लगने को था। युद्ध की समाप्ति पर, सितम्बर १८१४ में वे **वीना के सम्मेलन** में एकत्र हुए। वहाँ उन्होंने भारी भूलें कीं और लूट के माल का बँटवारा करने तथा यूरोप के भावी संगठन के सम्बन्ध में परस्पर झगड़ने लगे। उधर बोर्बां वंश ने, जिसे उन्होंने फ्रांस पर शासन करने के लिए पुनः स्थापित कर दिया था, विवेकहीनता का परिचय दिया और गलतियाँ कीं। इस सब का फल यह हुआ कि नेपोलियन को अपने जीवन का सबसे अधिक दुःसाहसपूर्ण और आश्चर्यजनक कार्य करने का अवसर मिल गया।

नया राजा लुई अठारहवाँ बाईस वर्ष बाहर रहने के बाद विदेशी सेनाओं के साथ-साथ देश में लौटकर आया। उसने अपने को राष्ट्र की बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। उसने समझ लिया कि मैं अपने पूर्वजों की भाँति निरंकुश राजा के रूप में शासन नहीं कर सकता, इसलिए उसने फ्रांसीसी जनता को एक अधिकार-पत्र प्रदान किया जिसके अनुसार एक व्यवस्थापिका की स्थापना की गई और नागरिकों के कुछ अधिकार गारंटी कर दिए, विशेषकर वे अधिकार जिन्हे वे पहले प्राप्त कर चुके थे और जिन्हें वापिस लेने से स्वयं राजा के लिए संकट उठ खड़ा हो सकता था।

बोर्बां लोगों की भूलें

नेपोलियन के समय में फ्रांस को कभी भी जितनी स्वतंत्रता मिली होगी उससे कहीं अधिक उसे लुई के शासन-काल में उपलब्ध हुई। फिर भी उसके व्यवहार के कुछ तरीकों और बोलने के ढँग, और उसको घेरे रहने वाले राजतंत्रवादियों के कार्यों तथा सरकार के कुछ बुद्धिहीन कामों के कारण वह शीघ्र ही अप्रिय बन गया तथा जनता उससे चिढ़ने और घबड़ाने लगी। वह कहा करता था कि मैं ईश्वर की कृपा से राजा हूँ, इसका अभिप्राय निकलता था कि उसे जनता के प्रभुत्व में विश्वास नहीं था; उसने अपने प्रथम लेख्य **सांविधानिक अधिकार-पत्र** को अपने शासन के उन्नीसवें वर्ष से प्रारम्भ हुआ घोषित किया, मानो देश में न कभी **गणतंत्र** की स्थापना हुई थी और न **नेपोलियन का साम्राज्य** भी कभी अस्तित्व में आया था; उसने सफेद झंडे को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया और गौरवशाली तिरंगे की जिसे विजयी फ्रांसीसियों ने समस्त यूरोप में फहराया था, हटा दिया। सबसे

अधिक गम्भीर बात यह थी कि उसने नेपोलियन के समय के हजारों सैनिक अधिकारियों को या तो नौकरी से मुक्त कर दिया अथवा उनका वेतन घटाकर आधा कर दिया, इससे वे आर्थिक कठिनाइयों में फँस गए और उनके सम्मान को ठेस लगी। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे सामन्तों को, जो क्रान्ति के काल में देश छोड़कर चले गये थे और जिन्होंने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया था, सम्मानित और पुरस्कृत किया गया। रोमन केथोलिक पादरी तथा दरबारी सामन्त खुले रूप से तथा मूर्खतापूर्वक अपनी उस भूमि को वापिस पाने की चर्चा करने लगे जिसे जप्त करके किसानों को बेच दिया गया था, यद्यपि १८०२ के समझौते और १८१४ के अधिकार-पत्र में इन परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया गया था और वचन दिया गया था कि जो कुछ हो चुका है उसमें हेर-फेर न किया जायगा। फ्रांस में किसानों की ही संख्या सबसे अधिक थी। जब उनके सम्पत्ति विषयक अधिकारों के सम्बन्ध में, जिनकी नेपोलियन ने दृढ़ता से रक्षा की थी, इस प्रकार की धमकियाँ दी गईं तो वे बोर्बों वंश से अप्रसन्न हो गए और उसके प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं रही। नेपोलियन के सिंहासन छोड़ने के कुछ ही महीने के भीतर लोग उसके शासन की बुराइयों को, जैसे मानव जीवन की अपार क्षति, करों का भारी बोझ तथा अन्य अनेक प्रकार के अत्याचार, भूल गए और एक यशस्वी वीर के रूप में, जिसने सैनिकों को गौरव और ख्याति तथा किसानों को भूमि का अधिकार प्रदान किया था उसकी सराहना करने लगे। इस प्रकार बोर्बों शासन कुछ ही महीनों में लुई अठारहवें के विरुद्ध और नेपोलियन के पक्ष में वातावरण बन गया।

किसान भयभीत

नेपोलियन ने अपने भाग्य की परीक्षा करने का पुनः प्रयत्न किया

नेपोलियन को अपने छोटे-से राज्य में शासन करते हुए दस महीने बीत चुके थे। अब उसके लिए अपने जीवन का सबसे अधिक नाटकीय कार्य करने का क्षण आ पहुँचा था। बारह सौ सैनिकों के साथ उसने द्वीप छोड़ दिया और पहरा देने वाले ब्रिटिश जहाजों की दृष्टि से बचता हुआ १ मार्च को कान नामक स्थान पर जा पहुँचा। उसी रात को उसने पेरिस के लिए प्रस्थान किया और २० मार्च को तुइलेरी पहुँच गया और पुनः फ्रांस का शासक बन गया। एल्बा से उसका प्रत्यावर्तन इतिहास की एक अत्यधिक रोमांटिक घटना है। उसका सैनिक दल इतना छोटा था कि उसे सरलता से गिरफ्तार किया जा सकता था। अतः उसके सामने सीधे जनता से अपील करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न था। ऐसा शानदार समर्थन शायद ही कभी किसी को मिला हो। पूरे मार्ग में किसानों ने उत्साह के साथ उसका स्वागत किया। किन्तु विशेषरूप से उसने सेना से अपील की उसके नाम एक अत्यधिक उत्तेजक बुलेटिन जारी किया। उसने कहा, "सैनिको! हमारी पराजय नहीं हुई है। हमें धोखा दिया गया है। सैनिको! आओ और अपने प्रमुख झंडे के नीचे एकत्र हो जाओ: उसका अस्तित्व पूर्णतः तुम्हारे अस्तित्व पर निर्भर है: उसका हित, उसका सम्मान और उसका गौरव तुम्हारा हित, तुम्हारा सम्मान और तुम्हारा गौरव है। आओ! विजय दुगने वेग से तुम्हारे पीछे दौड़ेगी। हमारा राष्ट्रीय ध्वज मीनार-मीनार पर फहराता हुआ नोत्रे दामे के शिखरों तक जा पहुँचेगा। तब तुम अपने घावों के चिन्ह सम्मानपूर्वक दिखला

एल्बा से लौटना

सकोगे : तब तुम अपने कृत्यों का गौरव के साथ बखान कर सकोगे : तुम अपने देश के मुक्तिदाता बनोगे।"

एक के बाद एक सैनिक दल जाकर उससे मिल गए। बोर्बां वंश के समर्थकों का खयाल था कि वह ग्रनोव्ल में गिरफ्तार कर लिया जायगा, क्योंकि वहाँ एक राजभक्त सेनानायक की अधीनता में एक सैनिक दल डटा हुआ था। नेपोलियन सीधा उनके पास पहुँचा और अपने धूसर कोट को खोल कर खड़ा हो गया और बोला, "मैं यहाँ हूँ, और तुम मुझे जानते हो। यदि तुममें से कोई ऐसा सैनिक हो जो अपने सम्राट को गोली से मार देना चाहता हो तो वह मार दे।" सैनिकगण दौड़ दौड़ कर उसके पास एकत्र हो गए, सफेद बिल्लों को फाड़ कर फेंक दिया और तिरंगे झंडे जिन्हें वे अपनी तौलियों में छिपाए हुए थे, धारण कर लिए। पूरे मार्ग में विरोध करने वाला कोई न मिला। वह आगे बढ़ता गया, मानो किसी विजेता का जुलूस जारहा हो। जब झूठ से सहायता मिलती दिखाई दी तो उसने झूठ भी बोला। उदाहरण के लिए उसने कहा कि मेरी महत्त्वाकांक्षा मुझे वापिस नहीं लाई है, पेरिस सरकार के पैंतालीस सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों ने मुझे एल्बा से बुलाया है और यूरोप के तीन प्रथम श्रेणी के राष्ट्र मेरे लौटने के पक्ष में हैं। उसने स्वीकार किया कि मैंने भूलें की हैं, और जनता को आश्वासन दिया कि मैं शान्ति और स्वतन्त्रता के मार्ग का अनुसरण करने का इच्छुक हूँ। क्रान्ति की उपलब्धियों के लिए संकट उत्पन्न हो गया है, मैं उनकी रक्षा करने के लिए वापिस आया हूँ। अपनी इस मादकतापूर्ण यात्रा की अन्तिम मंजिल उसने एक बग्घी में केवल आधे दर्जन पोल (पोलैण्ड निवासी) बर्छाधारियों के साथ पूरी की। २० मार्च को लुई अठारहवाँ तुइलेरी छोड़कर भाग गया। उसी दिन सन्ध्या के समय नेपोलियन ने उसमें प्रवेश किया।

सैनिक नेपोलियन के झंडे के नीचे एकत्र हो गए

नेपोलियन का तुइलेरी में प्रवेश (मार्च २०, १८१५)

सेंट हेलीना में किसी ने उनसे पूछा "आपके सम्राट-जीवन का सबसे सुखमय काल कौन सा था ?" उसने तुरन्त उत्तर दिया, कान से पेरिस तक की यात्रा।"

"सौ दिन"

उसके सुख का समय केवल सौ दिन तक सीमित रहा, इसलिए उसके शासन का यह काल "सौ दिन" के नाम से ही विख्यात है। उसने फ्रांस और यूरोप को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया। चूँकि फ्रांस युद्ध से थक चुका था इसलिए उसने आधे मन से उसका साथ दिया, और मित्रों ने उसका निर्मम विरोध किया। जब 'वीना सम्मेलन' में राजनयिकों ने उसका एल्बा से भाग निकलने का समाचार सुना तो उन्होंने आपसी झगड़े तुरन्त बन्द कर दिए और 'यूरोप की शान्ति भंग करने वाले" के विरुद्ध पुनः एक हो गए। उन्होंने उसे अपराधी घोषित कर दिया और अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर चल पड़े। नेपोलियन ने समझ लिया कि अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए लड़ना आवश्यक है। उसने संकल्प किया कि शत्रु की सेनाएँ मिलकर एक हो सकें उससे पहले ही उन पर आक्रमण कर

बेल्जियम में अभियान

दिया जाय। बेल्जियम युद्ध का क्षेत्र था, क्योंकि वेलिंगटनो वहाँ अंग्रेजों, डचों, बेल्जियनों और जर्मनी की एक विशाल सेना लिए हुए पड़ा था, और उससे थोड़ी दूर पर ब्लूखर प्रुशिया की बड़ी सेना के साथ डटा हुआ था। यदि नेपोलियन उन दोनों सेनाओं को मिलने से रोक सकता, तो फिर उनको एक-एक करके हरा सकता था, और फिर जब रूस और प्रुशिया की सेनाएँ आतीं तो उनके मुकाबिले में उसकी स्थिति बहुत मज़बूत होती। तब शायद वे न आने में भी बुद्धिमानी समझतीं और शान्ति के लिए तैयार हो जातीं। फलस्वरूप बेल्जियम में चार दिन का अभियान चला जिसकी परिणति वाटरलू के प्रसिद्ध रणक्षेत्र हुई. जो ब्रुसल्स से १२ मील दक्षिण की ओर स्थित है।

वाटरलू का युद्ध

वहाँ १८ जून, १८१५ को रविवार के दिन नेपोलियन की विनाशकारी पराजय हुई। आस्टरलित्स का सूर्य सदैव के लिए डूब गया। युद्ध प्रातःकाल साढ़े ग्यारह बजे आरम्भ हुआ, योद्धाओं ने अतुल पराक्रम का परिचय दिया और अश्वारोही तथा पदाति दलों ने आगे-पीछे भयंकर प्रहार किए। फ्रांसीसी दलों ने उफनती हुई लहरों की भाँति बार-बार पहाड़ी पर झपट्टे मारे, चट्टान की तरह अडिग अँग्रेजी सेना पर और उसके आस-पास उफन-उफन कर आक्रमण किए, और उसे तोड़ने में असफल होने पर फिर उफन-उफन कर पीछे को हटे। वेलिंगटन एक के बाद एक कई घन्टों तक इन प्रहारों को भेलता हुआ अपनी जगह पर डटा रहा। उसे आशा थी ब्लूखर के नेतृत्व में प्रुशिया की सेनाएँ, जो युद्ध आरम्भ होने के समय ग्यारह मील दूर थी, अवश्य आ पहुँचेगी। ब्लूखर ने उसको वचन दिया कि यदि तुम इस स्थान पर युद्ध लड़ना स्वीकार करो तो मैं तुम्हारी सहायता के लिए आ-जाऊँगा, और तीसरे पहर उसने अपना वचन पूरा किया। प्रुशियायी सेनाओं का आ पहुँचना निर्णायक सिद्ध हुआ, क्योंकि अब नेपोलियन के मुकाबिले में मित्र सेनाओं की संख्या कहीं अधिक हो गई। सन्ध्या के समय जबकि सूर्य डूब रहा था, फ्रांसीसियों का अन्तिम प्रहार विफल कर दिया गया। फिर मित्र सेनाएँ उलटे शत्रुओं पर टूट पड़ीं और उन्हें खदेड़ दिया। फ्रांसीसी सेना का मनोबल टूट गया और घबड़ाकर वह मैदान से भाग खड़ी हुई और प्रुशियायी दलों ने भयंकर रूप से उनका पीछा किया। जब सम्राट ने इस प्रकार अपनी सेना का सत्यानाश होते देखा तो उसने स्वयं मृत्यु का आह्वान किया, किन्तु विफल रहा। बाद में एक बार उसने कहा कि "वाटरलू के मैदान में मुझे मर जाना चाहिए था, किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि जब आदमी मृत्यु की सब से अधिक कामना करता है तब वह उसे नहीं मिल पाती। मेरे आसपास, आगे, पीछे और सर्वत्र सैनिक मर रहे थे। किन्तु मेरे गोली न लग सकी।" वह भाग कर पेरिस पहुँचा और फिर वहाँ से फ्रांस के पश्चिमी तट की ओर बढ़ा। वह भाग कर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका पहुँचना चाहता था किन्तु तट का पहरा देने वाले अँग्रेजी जहाजों के कारण उसके लिए यह असम्भव हो गया। अन्त में उसने अपने को अंग्रेजों की

नेपोलियन सेन्ट हेलीना में निर्वासित

दयालुता के अर्पण कर दिया, उस स्थिति में उसे यही मार्ग सबसे अच्छा समझ में आया। उसने घोषणा की कि "मैं, थेमिस्टोक्लेस की भाँति, ब्रिटिश राष्ट्र का आतिथ्य प्राप्त करने आया हूँ।" किन्तु अँग्रेजों ने उसे, आतिथ्य नहीं प्रदान किया, बल्कि दक्षिणी अटलांटिक में स्थित सेन्ट हेलीना नामक द्वीप में भेज दिया और वहाँ जिस

ढँग से उसे वन्धन में रक्खा उससे उनकी तुच्छता और संकीर्ण हृदयता का पता लगता है। छः वर्ष उपरान्त बावन वर्ष की आयु में उदर के कैंसर से उसका देहान्त हो गया। अपने पीछे वह एक ऐसी कहानी छोड़ गया जिसने यूरोप की शान्ति को बार-बार भंग किया। उसे पत्थर को एक पटिया के नीचे दफना दिया गया, जिस पर न उसका नाम अंकित था और न तिथि। बीस वर्ष तक उसे उसके अन्तिम विश्राम-स्थान पेरिस में स्थित अँव्हालीद के गुम्बद के नीचे ले जाकर रक्खा गया, यद्यपि उसने अपने अन्तिम इच्छापत्र में लिखा था, "मेरी इच्छा यह है कि मुझे सीन के किनारे फ्रांसीसी जनता के मध्य में, जिसे मैंने इतना प्यार किया है, दफनाया जाय।"

अध्याय १२

सम्मेलन

नेपोलियन के पतन से राजनीतिज्ञों और राजनयिकों के सामने एक अत्यधिक जटिल और कठिन समस्या उठ खड़ी हुई। जिस प्रकार उसके कार्यों का यूरोप के सभी राष्ट्रों पर गम्भीर प्रभाव पड़ा था, वैसे ही उसके पतन का उन सब पर गहरा असर हुआ। नेपोलियन के शासन के नाश के उपरान्त यूरोप का पुर्ननिमाण आवश्यक था।

नेपोलियन की पराजय के परिणाम

वीना के सम्मेलन ने (सितम्बर १८१४—जून १८१५), जो यूरोप के इतिहास का एक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अधिवेशन था, पुर्ननिमाण के कार्य को अपने हाथों में लिया। इतिहास में इससे पहले कभी प्रसिद्ध पुरुषों का इतना बड़ा सम्मेलन नहीं हुआ था। उसमें भाग लेने वालों में से एक ने लिखा है—"इस समय वीना के नगर का दृश्य अत्यधिक आकर्षक और प्रभावकारी है, यूरोप के सभी विशिष्ट पुरुषों का बड़े शानदार ढँग से प्रतिनिधित्व हो रहा है।" आस्ट्रिया और रूस के सम्राट, प्रुशिया, बवारिया, वूर्टेम्बुर्ग और डेनमार्क के राजा, अनेक छोटे-छोटे राजे तथा यूरोप के सभी राजनयिक जिनमें तालेराँ और मेटरनिरख सर्वाधिक प्रसिद्ध थे, सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्रस्तुत हुए। टर्की को छोड़कर सभी शक्तियों के प्रतिनिधित्व उपस्थित थे। यूरोप के बड़े-बड़े साहूकारी संस्थानों के प्रतिनिधि भी सम्मेलन में आए और इनके अतिरिक्त अगणित साहसिक तथा पिछलगुए भी जमा हुए।

सम्मेलन का मुख्य काम उन प्रदेशों का बटवारा करना था जो फ्रांस से छीन लिए गये थे। **मित्रों** ने वीना पहुँचने से पहले ही मई ३०, १८१४ की **पेरिस की सन्धि** के अनुसार कुछ निर्णय कर लिये थे, उन्हें अब कार्यान्वित करना था। पीमोंट के राजा ने नेपोलियन के शासनकाल में सार्डीनियां के द्वीप में शरणार्थी के रूप में अपना जीवन बिताया था, अब उसका सिंहासन उसे वापिस दे दिया गया और जिनोआ भी उसके राज्य में सम्मिलित कर दिया गया ताकि फ्रांस की दक्षिणी सीमा पर स्थिति यह राज्य आक्रमणकारी का मुकाबिला करने के लिए पहले से अधिक शक्तिशाली हो जाय। बेल्जियम का देश पहले आस्ट्रिया के अधिकार

में था, अब उसे हालैण्ड में मिला दिया गया और उसका शासन पुनः ओरेंज के राजवंश को सौंप दिया गया जिससे उत्तर में यह यह राज्य फ्रांस के विरुद्ध रोक का काम कर सके।

वैधता का सिद्धान्त

सामान्य तौर पर सम्मेलन में भाग लेने वालों की इच्छा यह थी कि यूरोप की पुनर्व्यवस्था करने में वैधता के सिद्धान्त का अनुसरण किया जाय। उसका अभिप्राय यह था कि जिन शासकों को नेपोलियन ने उनके राज्यों से वंचित करके भगा दिया था उन्हें उनके राज्य पुनः लौटा दिये जायें, किन्तु जहाँ कहीं बड़ी शक्तियों ने देखा कि यह सिद्धान्त उनके हितों के प्रतिकूल है वहाँ उन्होंने इसकी उपेक्षा की।

मित्रों ने महान् प्रयत्न और बलिदान के बाद नेपोलियन को परास्त किया था, अतः वे सोचते थे कि हमें इसका समुचित पुरस्कार मिलना चाहिए। वीना में सबसे अधिक शक्तिशाली शासक रूस का सम्राट अलेक्जांडर प्रथम था। रूस के आक्रमण में नेपोलियन का विनाश हुआ था तब से जार यूरोप के मुक्तिकर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था।

रूस की माँगें

अब उसने माँग की कि ग्रांड डची आव वारसा मुझे दे दी जाय—उसकी सरकार का पतन नेपोलियन के साथ साथ हो चुका था। इस राज्य का निर्माण पोलैण्ड के उन क्षेत्रों को मिलाकर किया गया था जिन्हें अठारहवीं शताब्दी के अन्त में प्रशिया और आस्ट्रिया ने विभाजनों में छीन लिया था। अलेक्जांडर उन्हें उस प्रदेश के साथ संयुक्त करना चाहता था जिस पर रूस का अधिकार था, और इस प्रकार वह पोलैण्ड के पुराने राज्य और राष्ट्रीयता की पुनः स्थापना करके उसे एक संसद और संविधान प्रदान करने की योजना बना रहा था। नव स्थापित राज्य को रूस में नहीं मिलाया जायगा, किन्तु रूस का सम्राट पोलैंड का राजा होगा। इस तरह जार का पोलैण्ड के के साथ केवल वैयक्तिक सम्बन्ध रहेगा।

प्रशिया अपने पोलैण्ड वाले प्रान्तों को त्यागने के लिए तैयार था, शर्त यह थी कि इसके बदले में उसे अन्यत्र कुछ मिल जाय। इसलिए उसने दक्षिण की ओर स्थित सेक्सनी के राज्य पर, जिसमें ड्रैसडन और लाइप्सिक के नगर सम्मिलित थे, अपनी निगाह लगाई और मुआवजे के रूप में माँगा।

प्रशिया की माँग

यह ठीक था कि सेक्सनी का पृथक राज्य था और वैधता का सिद्धान्त उसके सम्बन्ध में भी लागू होना चाहिए था किन्तु उसने नेपोलियन के साथ हुई अपनी सन्धि का लाइप्सिक के युद्ध के समय तक वफादारी के साथ पालन किया था, इसलिये प्रशिया ने कहा कि उसने जर्मनी के साथ गद्दारी की है अतः उसका राज्य हड़प लेना वैध है।

रूस और प्रशिया ने एक दूसरे के दावों का समर्थन किया, किन्तु आस्ट्रिया, फ्रांस और इंगलैण्ड ने उनका तीव्र विरोध किया और अन्त में उत्तर के इन दो राष्ट्रों की महत्त्वकांक्षा को रोकने के लिये युद्ध लड़ने के लिये भी तैयार हो गये। विजेताओं की इस फूट ने ही नेपोलियन को एल्बा से वापिस लौटने का सुअवसर प्रदान किया था। किन्तु आपस में मित्र एक दूसरे से कितनी ही ईर्ष्या करते हों, वे सब नेपोलियन के कट्टर शत्रु थे और उससे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिये सब के सब दृढ़संकल्प थे। वे आगे युद्ध जारी रखने के इच्छुक नहीं थे, इसलिये उन्होंने शीघ्र ही आपसी मतभेद मिटा कर समझौता कर लिया। अन्तिम निर्णय यह हुआ कि

वारसा की डची का अधिकांश रूस को दे दिया जाय, प्रशिया के पास केवल पोजन का प्रांत रहने दिया जाय और क्राको को स्वतन्त्र नगर वना दिया जाय; सेक्सनी के राजा को उसको सिंहासन वापिस दे दिया जाय; ड्रेस्डन और लाइप्सिक के नगर उसके अधिकार में बने रहें, किन्तु वह अपने राज्य का $\frac{2}{5}$ भाग प्रशिया को दे दे, और इसके अतिरिक्त प्रशिया को मुआवजे के रूप में राइन के दोनों किनारों पर विस्तृत क्षेत्र प्रदान कर दिये जायँ। प्रशिया को स्वीडन से पोमेनेनिमा का प्रान्त भी मिल गया, और इस प्रकार वाल्टिक के तट पर उसकी स्थिति सुदृढ़ हो गई।

रूस की उपलब्धियाँ

सम्मेलन से रूस को पर्याप्त लाभ हुआ और अनेक प्रदेश उसे मिल गये। पिछले युद्धों के दौरान में उसने स्वीडन से फिनलैण्ड और टर्की से वसराविया जीत लिया था, उन दोनों पर उसका अधिकार वना पहा; इसके अतिरिक्त दक्षिण पूर्व की ओर टर्की के क्षेत्रों पर भी उसका कब्जा कायम रहा। किन्तु उसका सवसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह था कि **ग्रांड डची आव वारसा** का अधिकांश उसे मिल गया। अव रूस की सीमाएँ यूरोप में पश्चिम की ओर काफी दूर तक फैल गई; और अव वह यूरोप के मामलों में अधिक महत्त्व के साथ वोल सकता था।

आस्ट्रिया की उपलब्धि

आस्ट्रिया को पोलैंड के कुछ क्षेत्र पुनः मिल गये, और वेल्जियम के चले जाने से उसे जो हानि हुई थी उसके मुआवजे के रूप में उसे उत्तरी इटली का प्रदेश प्राप्त हो गया, जिसमें पो नदी की घाटी का अधिकांश और समृद्ध भाग सम्मिलित था; इस समय से यह प्रदेश लोम्वार्डी-वेनीशिया के राज्य के नाम से विख्यात हुआ। इसके अतिरिक्त उसे एड्रियाटिक के पूर्वी तट पर स्थिति इलीरियन प्रांत भी मिल गए। इस प्रकार वीस वर्ष के युद्ध के उपरान्त जिसमें उसे निरन्तर विनाशकारी पराजय भुगतनी पड़ी थी, वह काफी शक्तिशाली राज्य वन कर प्रकट हुआ, और अव उसकी जन-संख्या १७९२ के मुकाविले में चालीस-पचास लाख अधिक थी। उसे दूरस्थ तथा लाभहीन प्रांतों के वदले में ऐसे क्षेत्र प्राप्त हो गये जिनसे केन्द्रीय यूरोप में उसकी शक्ति वढ़ गई, इटली के कुछ भाग पर तो उसका सीधा अधिकार हो गया और इटली के शेप राज्यों पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण कायम रखने का अवसर मिल गया।

इंगलैण्ड की उपलब्धि

इंगलैण्ड को, जो नेपोलियन का सवसे कट्टर शत्रु था, जिसने उसके विरुद्ध वार-वार गुटों का निर्माण किया था और अनेक वर्षों तक मित्रों को आर्थिक सहायता दी थी, यूरोप के वाहर अनेक क्षेत्र प्राप्त हुए जिससे उसके औपनिवेशिक साम्राज्य में पर्याप्त वृद्धि हो गई। उसने फ्रांस से अथवा उसके मित्रों अथवा अधीन देशों से जो प्रदेश जीत लिये थे वे उसके अधिकार में रहे, विशेपकर हॉलैण्ड से जीते हुए क्षेत्र। उसने **उत्तरसागर** में स्थित हेलीगोलैन्ड, भूमध्यसागर में स्थिति माल्टा और आयोनी द्वीप समूह, दक्षिणी अफ्रीका में केप कोलोनी तथा लंका एवं अन्य द्वीपों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। चूँकि हॉलैण्ड को अपने औपनिवेशिक साम्राज्य का वहुत कुछ अंश खोना पड़ा था इसीलिये, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, वेल्जियम को उसके साथ संयुक्त कर दिया गया था।

अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न जिसका वीना में निर्णय किया गया इटली का

निपटारा था। सामान्य सिद्धान्त जिसके आधार पर निपटारा किया गया पहले ही निश्चित कर लिया गया था, अर्थात् आस्ट्रिया को इस देश में नैदरलैण्ड्स में हुई हानि का मुआवजा दिया जाय और पुराने राजवंशों की पुनः स्थापना कर दी जाय।

इटली का भविष्य

आस्ट्रिया के हितों को ध्यान में रख कर ही प्रादेशिक पुनर्व्यवस्था की गई। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आस्ट्रिया ने लोम्बार्डी और वेनीशिया पर, जो सबसे अधिक समृद्ध और सैनिक दृष्टि से सर्वाधिक शक्तिशाली प्रान्त थे, अधिकार कर लिया, वहाँ से उसके लिए सम्पूर्ण प्रायद्वीप पर आधिपत्य कायम रखना सरल था; विशेष कर जब कि पार्मा नेपोलियन की पत्नी मेरी लुईज़ को दे दिया गया था और मोडेना तथा तुस्कानी में आस्ट्रिया के शाहीवंश से सम्बद्ध राजकुमारों को पुनः स्थापित कर दिया गया था। पोप के राज्यों की भी पुनः स्थापना कर दी गई।

इन राज्यों को मिला कर कोई संघ नहीं बनाया गया। मैटरनिख की इच्छा थी कि इटली स्वतन्त्र राज्यों का पुन्ज मात्र बना रहे, केवल एक "भौगोलिक नाम" रह जाय। वैधता का सिद्धान्त केवल राजवंश की पुनः स्थापना के लिए लागू किया गया, किन्तु राजाओं के इस सम्मेलन ने गणराज्यों के सम्बन्ध में उस सिद्धान्त की उपेक्षा की। जब जिनोआ के एक प्रतिनिधि ने इस व्यवस्था का विरोध किया तो जार ने कहा कि "अब गणराज्यों का फेशन नहीं रहा है।" जिनोआ तथा वेनिस अन्य राज्यों में सम्मिलित कर दिये गये। इस विषय की चर्चा करते हुए रोनोली ने इंगलैण्ड की संसद में कहा कि नेपोलियन जिन कोरिंथियायी घोड़ों को सेंट मार्क के स्थान से पेरिस उठा ले गया था वे तो वेनिवासियों को लौटा दिए गए हैं किन्तु यह विचित्र न्याय है कि "उन्हें उनकी मूर्तियाँ तो वापिस दे दी गई हैं, किन्तु उनकी जो अधिक मूल्यवान चीज अर्थात् उनकी भूमि और उनका गणतन्त्र जो उनसे छीन लिया गया था उन्हें नहीं लौटाया गया है।"

इटली "एक भौगोलिक नाम"

यूरोप के मानचित्र में जो अन्य परिवर्तन किए गए वे इस प्रकार थे: नॉर्वे को डेनमार्क से पृथक करके स्वीडन से जोड़ दिया गया; स्विट्जरलैण्ड के क्षेत्र में उन तीनों जिलों (कैंटनों) को जोड़कर, जिन्हें कुछ समय पहले फ्रांस में मिला लिया गया था, वृद्धि कर दी गई। स्पेन तथा पुर्तगाल की सीमाओं में कोई हेर-फेर नहीं किया गया।

ये मुख्य प्रादेशिक हेर-फेर थे जो वीना के सम्मेलन ने सम्पादित किए और जो लगभग ९० वर्ष तक कायम रहे। सम्मेलन के इन कार्यों के पीछे किन्हीं ऊँचे सिद्धान्तों को ढूँढ निकालना असम्भव है। केवल स्वार्थ की भावना से प्रेरित होकर सब सौदे और समझौते किए गए। ऐसी बात नहीं है कि इन उपाधिकारी दलालों ने यूरोप को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न न किया हो कि उनके प्रयत्नों के पीछे उच्च आदर्श निहित थे। वीना के राजनायिकों ने यूरोप की जनता को प्रभावित करने और अपने महान् सम्मेलन को प्रतिष्ठा तथा उच्चता का जामा पहनाने के लिये शानदार शब्दों का प्रयोग किया जैसे "सामाजिक व्यवस्था की पुनर्रचना", "यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था का पुनर्जनन", "शक्ति के न्यायोचित विभाजन पर आधारिक स्थाई शान्ति", इत्यादि। किन्तु उनके इन सुन्दर

सम्मेलन के कार्य की आलोचना

शब्दों से जनता ने धोखा नहीं खाया। उसने विजेताओं के बीच लूट के
माल के बँटवारे के लिए जो अपमानजनक झगड़े और सौदेबाजी हुई थी उसे अच्छी
तरह देखा था। उसने देखा कि जो राष्ट्र अनेक वर्षों से नेपोलियन की इसलिए
निन्दा करते आये थे कि उसने राष्ट्रों के अधिकारों का सम्मान नहीं किया था, वे
अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ठीक उसी की भाँति आचरण कर रहे थे।

वीना सम्मेलन की विशेषताएँ

वीना का सम्मेलन अभिजातवर्गीय लोगों का सम्मेलन था; वे लोग राष्ट्रीयता
और लोकतन्त्र के उन आदर्शों को, जिनकी **फ्रांसीसी क्रान्ति** ने घोषणा की थी,
समझने में असमर्थ थे अथवा उनसे घृणा करते थे। शासकों
ने अपने इच्छानुसार यूरोप की पुनर्व्यवस्था की मानो वह
उनकी निजी सम्पत्ति हो, न तो उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना
का जो हाल ही में आश्चर्यजनक रूप से प्रज्वलित हो
उठी थी, ध्यान रक्खा और न जनता की इच्छाओं। जनता के साथ उन्होंने बालकों
जैसा व्यवहार किया, जो अपने भाग्य का निर्णय करने के अयोग्य होते है और
जिन्हें अनुभवहीनता तथा अपरिपक्वता के कारण अपनी बात कहने का अधिकार
नहीं होता। उनका विचार था कि ईश्वर ने हमको
इसलिए नियुक्त और अभिषिक्त किया है कि हम दुनियाँ
को अपने संरक्षण में रक्खें और अपनी बुद्धि और अनुभव के
अनुसार उसके जीवन का संचालन करें; अतः उन्होंने ऐसा
ही करने का संकल्प किया। उन्होंने राज्यों की सीमाओं को इस ढंग से निर्धारित
करने का प्रयत्न नहीं किया कि विभिन्न जातियों की आकांक्षाएँ पूरी होतीं और
स्थाई शान्ति की नींव पड़ती। उन्होंने जो प्रादेशिक हेर-फेर किये उनमें उनका
एक ही उद्देश्य था अर्थात् तथाकथित शक्तिसन्तुलन कायम रखना। उनकी
व्यवस्था वास्तव में कोई "व्यवस्था" नहीं थी क्योंकि उन्होंने उन्हीं तत्वों की उपेक्षा
की थी जिनसे व्यवस्था स्थाई हो सकती थी। अतः १८१५ से अब तक का यूरोप
का इतिहास **वीना सम्मेलन** की भारी भूलों को अकृत करने का इतिहास है।

राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की उपेक्षा

पवित्र संघ

मित्र देशों ने **वीना की सन्धियों** के अतिरिक्त १८१५ में दो अन्य लेख्यों पर
हस्ताक्षर किए जो यूरोप के भावी इतिहास में अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध है। उनमें
से एक के द्वारा तथाकथित **पवित्र संघ** की स्थापना हुई
और दूसरे के द्वारा **चतुस्संघ** की। **पवित्र संघ** के
निर्माण में रूस के जार अलेक्जांडर ने विशेष रूप से पहल
की थी। पिछले वर्षों की घटनाओं और नेपोलियन के पतन का उस पर गम्भीर
प्रभाव पड़ा था और वह वह समझने लगा था कि मनुष्य जीवन को नियंत्रित और
संचालित करने वाली कोई उच्चसत्ता है और उसी के निर्णय से यह सब कुछ हुआ
है, इसीलिए धर्म की ओर उसका विशेष झुकाव हो गया था। लोगों ने स्वयं उसकी
मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी, और नेपोलियन का **काला फरिश्ता** तथा उसके मुकाबिले
में उसे **सफेद फरिश्ता** बतलाया और विश्व का मुक्तिदाता कहकर उसका अभिनन्दन
किया था। अब उसने अपने निकट मित्र आस्ट्रिया और प्रशिया के सामने एक लेख्य
प्रस्तुत किया जिसकी एक पीढ़ी तक बड़ी ख्याति रही और जिसके कारण दमन
और उत्पीड़न की उस व्यवस्था का, जिसका विजित राष्ट्रों ने अनेक वर्षों तक
अनुसरण किया, नाम पड़ गया। उस लेख्य में ...... गया कि इसको स्वीकार करने

वाली शक्तियों का संकल्प है भविष्य में वे अपनी स्वराष्ट्र तथा पराष्ट्र नीति में ईसाई धर्म के उपदेशों का अनुसरण करेंगीं। शासकों ने घोषणा की कि हम एक दूसरे को भाई और अपनी प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझेंगे, और एक दूसरे को हर समय और हर स्थान पर सहायता देंगे। जो भी शक्तियाँ इन पवित्र सिद्धान्तों को मानने के लिए तैयार होंगी उनको **पवित्र संघ** में हार्दिक प्रेम से अंगीकार किया जायगा। जिन शासकों से रूस के सम्राट ने ईसाई सिद्धान्तों को स्वीकार करने के लिए कहा उन्होंने उसकी बात मान ली, किन्तु वे इसको एक प्रहसन मात्र समझते थे। अतः उन्होंने जहाँ तक बन पड़ा अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखकर ही इसमें अपना पार्ट अदा करने का प्रयत्न किया। चूँकि वे उन सिद्धान्तों को भली भाँति समझते थे जिनके आधार पर **वीना सम्मेलन** में जार तथा अन्य शासकों ने आचरण किया था, इसलिए उन्हें इनमें **बाइबिल** की कोई विशेष झलक नहीं दिखाई देती थी और न उन्हें यही आशा थी कि इनसे यूरोप में आदर्श राजनय के युग का सूत्रपात होगा। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी राज्य ने इन सिद्धान्तों के अनुसार जिनकी इतनी प्रशंसा की गई थी, चलने का प्रयत्न नहीं किया। **पवित्र संघ** के सम्बन्ध में केवल उसका नाम ही महत्व की चीज था, और सब उदारवासियों की राय थी कि यह नाम इतना अच्छा है और रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के शासकों-पवित्र-मित्रों के चरित्र और नीति का इस नाम के इतनी विपरीत है कि इसको भूलना नहीं चाहिए।

१८१५ में रूस, प्रुशिया, आस्ट्रिया और इंगलैंड ने एक और लेख्य पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार **चतुस्संघ** की स्थापना हुई। इसमें कहा गया कि ये शत्तियाँ अपने सामान्य हितों तथा यूरोप की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समय-समय पर अपने सम्मेलन करें। इस समझौते के अनुसार अगले कुछ वर्षों में जो सम्मेलन बुलाए गए वे सर्वत्र दमन और उत्पीडन के साधन बन गए, विशेषकर आस्ट्रियो साम्राज्य के प्रधान मंत्री मैटरनिख के प्रभाव के कारण जिसका इन सम्मेलनों की कार्रवाई और नीति पर निर्णायक आधिपत्य रहा।

चतुस्संघ (नवम्बर २०, १८१५)

१८१५ और १८४८ के बीच की पीढ़ी निगाह में मैटरिख यूरोप का सबसे अधिक प्रभावशाली और शक्तिसम्पन्न व्यक्ति था। "मैटरनिख का युग" "मैटरनिख की व्यवस्था" आदि पदों से उसका महत्व प्रकट होता है। उसका आस्ट्रिया और जर्मनी की राजनीति में ही नहीं बल्कि समस्त यूरोप के राजनय में केन्द्रीय स्थान था। वह उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया का महानतम राजनीतिज्ञ हुआ। वह उच्च पद पर आसीन, धनी, सुसंस्कृत और समाजिक गुणों से सम्पन्न तो था ही, साथ-साथ विज्ञान की भी कुछ जानकारी रखता था, इसलिए अपने को सर्वज्ञ समझता और यही उसकी कमजोरी थी। वह राजनयिकों का सिरमौर और यूरोपीय राजनीति के कुचक्रों में भली भाँति सुलझा हुआ था उसका अहंकार हिमालय के समान ऊँचा था। वह कहा करता था कि मैं "यूरोपीय समाज के पतनशील ढांचे को सहारा देने के लिए" उत्पन्न हुआ हूँ। वह कुछ ऐसा अनुभव करता था मानो संसार उसके कँधों पर सदा हुआ हो। उसका कहना था "मेरी स्थिति की

मैटरनिख १७७०-१८५९

मैटरनिख का अहंकार

विचित्रता यह है कि सब लोगों की आँखें और आशाएं ठीक उसी स्थान पर केन्द्रित हो जाती है जहाँ मैं होता हूँ।" वह पूछा करता था : "क्या कारण है कि करोड़ों लोगों में मैं ही अकेला ऐसा हूँ जो सोचा करता हूँ, जबकि अन्य लोग नहीं सोचते, मैं ही काम करता हूँ जबकि दूसरे कुछ नहीं करते, मैं ही लिखता हूँ क्योंकि दूसरे लिखना नहीं जानते।" अपने दीर्घकालीन सक्रिय जीवन के अन्त में उसने स्वयं स्वीकार किया कि मैं "शास्वत नियमों के मार्ग से कभी विचलित नहीं हुआ," मैंने असत्य को कभी अपने मस्तिष्क में स्थान नहीं दिया।" वह कुछ ऐसा अनुभव करता था मानों उसके उठ जाने के बाद सब कुछ सूना हो जायगा।

किन्तु सूक्ष्म रूप से विश्लेषण करने पर पता लगेगा कि उसका चिन्तन विशेषतौर पर निषेधात्मक था। फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रति घृणा प्रकट करना ही उसका सार था। "फ्रांसीसी क्रान्ति" इन शब्दों से जिस चीज का भी बोध होता उसका विरोध करना उसके जीवन का मुख्य काम था। उसने उसकी अनियंत्रित और वीभत्स शब्दों में निन्दा की। उदाहरण के लिये, उसने कहा कि

मैटरनिख का ऐतिहासिक महत्त्व

यह एक रोग है जिसका उपचार होना चाहिए, एक ज्वालामुखी है जिसको बुझाना आवश्यक है,एक प्रकार का गलाव है जिसे लोहे की गर्म शलाखों से जला दिया जाय, एक अनेक फनों वाला सर्प है जो समाजिक व्यवस्था को निगल जाने के लिये मुँह फैलाएं हुए हैं।" उसकी निरंकुश राजतंत्र में आस्था थी और समझता था कि मैं ईश्वर का सेवक हूँ जिसे इसकी रक्षा करने के लिए नियुक्त किया गया है। उसे संसदों और प्रतिनिधि शासन-प्रणाली से घृणा थी। उसका विचार था कि स्वतंत्रता, समानता और संविधानों की यह एक बात महामारी है और फ्रांस के क्रान्तिकारी मस्तिष्कों की घृणित बकवास है। विद्यमान व्यवस्था को कायम रखना ही उसके जीवन का उद्देश्य था। वह निरन्तर एक ही राग अलापा करता था अर्थात् जो कुछ है उसको वैसा ही रहने दो, नई चीजों का लाना पागलपन है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्षों और स्वशासन की आकाँक्षाओं का वह कट्टर और साधनसम्पन्न शत्रु था उसका विश्वास था कि लोकतंत्र केवल दिन के प्रकाश को रात्रि के अँधेरे में बदल सकता है।

नेपोलियन ने एक बार मैटरनिख के सम्बन्ध में कहा था कि वह "भ्रमवश कुचक्रों को ही राजनीतिज्ञता समझता है।" यह विश्लेषण कितना सूक्ष्म और सुतथ्यतापूर्ण है, इसका पता हमें तब लगेगा जबकि हम उस व्यवस्था का अवलोकन करेंगे जिसकी स्थापना मैंटरनिख ने आस्ट्रिया, जर्मनी, इटली और स्पेन में नेपोलियन के पतन के बाद के दशक में की।

१८१५ के बाद यूरोप में प्रतिक्रिया

आस्ट्रिया

सेंट हेलीना में नेपोलियन ने एक बार कहा था कि वाटरलू का युद्ध यूरोपीय लोगों की स्वतन्त्रता के लिए उतना ही खतरनाक सिद्ध होगा जितना कि फिलिप्पी का युद्ध रोम की स्वतन्त्रता के लिये हुआ था। यद्यपि स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में नेपोलियन को प्रमाण नहीं माना जा सकता, फिर भी वह प्रबुद्ध निरंकुशता और अप्रबुद्ध स्वेच्छाचारिता के बीच भेद को समझता था। उसका शासन इन दोनों में से पहले प्रकार

आस्ट्रियायी साम्राज्य में एकता का अभाव

का था, और उसके बाद यूरोप में जो व्यवस्था स्थापित की गई उसके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। नई व्यवस्था का आदर्श आस्ट्रिया ने प्रस्तुत किया जो १८१५ से १८४८ तक यूरोप का प्रमुख राज्य था। आस्ट्रिया फ्रांस की भाँति एक राष्ट्र नहीं था, बल्कि अनेक नस्लों के संयोग से बना था। पश्चिम की ओर आस्ट्रियाई ठिकाने (जागीरें) थे[1] जिनमें मुख्यत: जर्मन जाति के लोग बसे हुए थे, और उन पर हैप्सबर्ग वंश का पुरातन काल से अधिकार चला आया था; उत्तर में बोहेमिया का पुराना राज्य स्थित था जिस पर हैप्सबर्ग वंश ने १५२६ में आधिपत्य स्थापित कर लिया था; पूर्व की ओर हंगेरी का राज्य था जो मध्य डेन्यूब के विशाल मैदान पर फैला हुआ था; दक्षिण की ओर लोम्बार्डी-वेनेशिया का राज्य था जिसमें शुद्ध इतालवी जाति के लोग बसे हुये थे। साम्राज्य में दो प्रमुख नस्लें थीं: जर्मन लोग जिनका ठिकानों की जनसंख्या में प्राधान्य था, और मगयार जिनकी हंगेरी के राज्य में प्रमुखता थी—मगयार लोग मूलत: एशिया के निवासी थे किन्तु नवीं शताब्दी से उन्होंने डेन्यूब की घाटी में डेरा डाल रक्खा था। आस्ट्रिया और हंगेरी दोनों में ही स्लाव नस्ल की अनेक शाखाएँ थीं। पूर्वी हंगेरी में रूमानी लोग भी थे जो एक भिन्न जाति के थे।

आस्ट्रिया-पुरातन व्यवस्था का देश

दो करोड़ और उन्तीस अथवा तीस लाख की जनसंख्या के ऐसे बहुजातीय साम्राज्य पर शासन करना बड़ा ही कठिन काम था। फ्रांसिस प्रथम (१७९२-१८३५) और मैटरनिख के सामने यह पहली समस्या थी। उनकी नीति यह थी कि सुधार की सभी माँगों का विरोध किया जाय, जो स्थति थी उसे कायम रक्खा जाय और संसार की गति पर रोक लगादी जाय। जनता विभिन्न वर्गों में विभक्त थी, और हर वर्ग का अपना-अपना पृथक आधार था। इनमें से सामन्त वर्ग की स्थिति अत्यधिक विशेषाधिकृत थी! वे अनिवार्य सैनिक सेवा से मुक्त थे, करों में उन्हें भारी छूट मिली हुई थी, और राज्य के उच्चतम पदों पर उनका एकाधिकार था। भूमि का बड़ा भाग उनके अधिकार में था, जिससे उन्हें अपार आमदनी होती थी। इसके विपरीत किसानों की दशा अत्यधिक शोचनीय थी, और देश की जनता में उन्हीं की संख्या सबसे अधिक थी उन्हें इस बात का भी अधिकार नहीं था कि मूल्य चुकाकर भारी बोझों से मुक्ति खरीद सकते। शासन में निरंकुशता, समाज में सामन्ती व्यवस्था, कुछ थोड़े से लोगों के लिये विशेषाधिकार और बहुसंख्यक जनता के लिए उत्पीड़न और कष्ट—१८१५ में आस्ट्रिया की यह स्थिति थी।

पुलिस व्यवस्था

जो स्थिति थी उसको ज्यों का त्यों बनाये रखना सरकार का मुख्य उद्देश्य था, और इसमें वह फ्रांसिस प्रथम (१८३५ तक) तथा उसके उत्तराधिकारी फर्डीनेंड प्रथम (१८३५-४८) के शासन के तेतीस वर्षों में सफल रही। इस पूरे काल में मैटरनिख प्रधान मंत्री था। उसकी व्यवस्था, जिसका मानव स्वभाव से विरोध था, जो आधुनिक भावना के विरुद्ध थी, हस्तक्षेपकारी पुलिस, विस्तृत गुप्तचर व्यवस्था

1. Duchies

और विचारों के दमन तथा नियंत्रण पर आधारित थी। नाट्यशालाओं, समाचार पत्रों और पुस्तकों पर प्रतिबन्ध और नियंत्रण लगाया गया। सीमाओं पर निरीक्षक नियुक्त किये गये जिससे उदार विचारों की पुस्तकें देश में प्रवेश करके जनता को भ्रष्ट न कर सकें। राजनीति शास्त्र और इतिहास का गम्भीर अध्ययन लगभग समाप्त हो गया। सर्वत्र भेदियों का जाल बिछा दिया गया, सरकारी कार्यालयों में, आमोद-प्रमोद के स्थानों में और यहाँ तक कि शिक्षा संस्थाओं में भी। सरकार को विश्वविद्यालयों से विशेष भय था क्योंकि वह विचारों से डरती थीं। अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को अपमानजनक नियमों के नियंत्रण में रहकर काम करना पड़ता था। भेदिये प्रोफेसरों के व्याख्यान सुनते जाते थे। सरकार का आग्रह था कि प्रोफेसर लोग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से जो पुस्तकें ले जायें उनकी पूरी सूची तैयार रक्खी जाय। पाठ्य पुस्तकें निर्धारित थीं। विद्यार्थियों को अध्ययन के लिए बाहर जाने की अनुज्ञा नहीं थी, और न वे अपने संघ अथवा सोसाइटियाँ ही बना सकते थे। आस्ट्रियावासी सरकार के अनुज्ञा के बिना विदेशों में पर्यटन के लिए न जा सकते थे, और अनुज्ञा शायद ही कभी-किसी को दी जाती हो। आस्ट्रिया के द्वार यूरोप के उदार विचारों के लिए यथासम्भव पूर्णतया बन्द कर दिये गये थे। देश को इस सबका मूल्य इस रूप में चुकाना पड़ा कि बौद्धिक प्रगति रुक गई। इस प्रकार की व्यवस्था तभी कायम रह सकती थी जब कि उसे हर क्षण और हर स्थान पर सहारा मिलता रहता। आस्ट्रियाई व्यवस्था की

मैटरनिख की व्यवस्था का अन्य देशों पर प्रचार

रक्षा करने का सर्वोत्तम उपाय यह था कि उसे अन्य देशों में भी फैला दिया जाय। अपने देश में दृढ़ता से स्थापित करके मैटरनिख ने अपनी व्यवस्था को पड़ौसी राज्यों पर लादने का बड़ी कुशलता से प्रयत्न किया और इसमें उसे अस्थाई सफलता भी मिली। जर्मनी में उसने यह काम संसद और राज्यीय सरकारों के द्वारा और इटली में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप और सन्धियों के द्वारा पूरा किया—इटली के शासकों को यह शर्त मानने पर बाध्य किया गया कि वे अपने-अपने राज्यों में वे आस्ट्रिया विरोधी नीति का अनुसरण न करेंगे। और अन्त में मैटरनिख ने इस अनुदार नीति के आधार पर **बड़ी शक्तियों** को एक सूत्र में दृढ़ता से बाँधने का भी प्रयत्न किया जिससे उसे अपने कार्य में और भी अधिक सफलता मिली।

अब हम देखेंगे कि शासन सम्बन्धी इस धारणा को अन्य देशों में किस प्रकार लागू किया गया। इससे यह भी स्पष्ट हो जायगा कि १८१५—१८४८ के युग में यूरोप में आस्ट्रियायी साम्राज्य का प्रमुख ध्यान था। कट्टर अनुदारवाद का निवास-स्थान वीना अब यूरोपीय राजनीति का केन्द्र बन गया, जैसा कि क्रान्ति की भूमि पैरिस इतने लम्बे समय तक बना हुआ था।

जर्मनी

वीना सम्मेलन के सामने एक महत्वपूर्ण समस्या यह थी कि जर्मनी का भावी संगठन किस प्रकार हो। **पवित्र रोमन साम्राज्य** का नेपोलियन ने १८०६ में अन्त कर दिया था। उसके स्थान पर, जिस **राइन परिसंघ** की रचना की गई थी वह अपने निर्माता के साथ साथ विलुप्त हो गया। उसके स्थान की पूर्ति के लिए कोई चीज चाहिए थी। बहुत कुछ विचार-विनिमय के उपरान्त

जर्मन परिसंघ की स्थापना की गई, और १८१५ से १८६६ तक जर्मनी का शासन उसी के हाथों रहा। **परिसंघ** में अड़-तीस राज्य सम्मिलित थे। सरकार का केन्द्रीय अंग एक **संसद** थी जिसकी राजधानी फ्राँकफर्ट निश्चित की गई। **संसद** के सदस्य जनता के प्रतिनिधि नहीं हुआ करते थे, उनकी नियुक्ति विभिन्न शासक किया करते थे और उन्हीं के प्रसादपर्यन्त वे अपने-अपने पदों पर काम करते थे। उनकी स्थिति प्रतिनिधियों की सी नहीं होती थी, अतः के स्वयं अपने विवेक के प्रश्नों का निर्णय नहीं कर सकते थे, वे तो केवल राजनयिक अभिकर्त्ताओं के रूप में कार्य करते और अपने राजाओं के इच्छा अनुसार वोट देते। आस्ट्रिया सदैव के लिए इस संस्था का अध्यक्ष था। संसद की कार्यप्रणाली बड़ी ही पेचीदा और भद्दीभोंड़ी थी, जिससे काम करना कठिन होता और विलम्ब करने तथा अडंगे डालने में सरलता रहती। **परिसंघ** वास्तविक अर्थ में राष्ट्र नहीं था, बल्कि स्वतंत्र राज्यों का एक ढीला ढाला मंडल था। सब राज्य इस बात पर सहमत थे कि वे एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध नहीं छेड़ेंगे, और केवल यह अधि-बन्धन ऐसा था जिसका वे गम्भीरता से पालन करते। संघ सरकार अपने दोषों के लिए ही प्रसिद्ध थी। व्यवस्थापिका अथवा फ्रांकफर्ट की **मदद** सबसे अधिक निकम्मी निकली थी। हर महत्त्वपूर्ण कानून के सम्बन्ध में प्रत्येक राज्य को निषेधाधिकार प्राप्त था। इसके अतिरिक्त, कार्यपालिका नाम की वास्तव में कोई चीज न थी और न्यायिक व्यवस्था नितान्त आदिम ढँग की थी। **संसद** के निर्णय को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व शासकों पर छोड़ दिया गया था। और वास्तविकता यह थी कि वे उनको कार्यान्वित तभी करते जबकि ऐसा करने की उनकी इच्छा होती।

जर्मनी एक शिथिल परिसंघ

संसद (डाइट)

परिसंघ जातियों का नहीं, राजाओं का संघ था उसकी स्थापना इसलिए की गई थी कि राजा लोग एक दूसरे से ईष्या करते और जर्मनी की समृद्धि की ओर ध्यान न देकर अपनी-अपनी निजी शक्ति को बनाये रखने की फिक्र में रहते थे। किन्तु अब नेपोलियन के विरुद्ध संघर्षों के कारण राष्ट्रीयता की भावना को भारी उत्तेजना मिल चुकी। सभी प्रगतिशील आत्माएँ यह अनुभव करती थीं कि जर्मनी की पहली आवश्यकता एकता और मजबूत राष्ट्रीय सरकार है। किन्तु मेटरनिख की निगाह में जर्मन एकता का आदर्श एक "कुत्सित आदर्श" था और इस विषय में स्वार्थी जर्मन राजा उसके साथ थे, उनमें से एक भी ऐसा न था जो अपनी सत्ता का कण मात्र भी त्यागने को राजी होता उदार विचारों के जितने व्यक्ति थे वे वीना के इस 'महान धोखे' से अत्यधिक क्रुद्ध थे।

परिसंघ राजाओं का संघ

उदारवादियों को एक और निराशा का अनुभव हुआ। जिस प्रकार वे राष्ट्रीय एकता के इच्छुक थे, उसी तरह उनके मन में स्वतन्त्रता की भी उत्कट अभिलाषा थी। उनकी इच्छा थी कि अड़तीस राज्यों में से प्रत्येक में संविधान की स्थापना हो, हर राज्य में संसद हो और निरंकुश शासनप्रणाली का अन्त कर दिया जाय। एक बार ऐसा लगा था कि शायद उनकी यह इच्छा पूरी हो जायगी। जब कुछ समय पहले प्रुशिया के राजा ने अपनी जनता से अपील की थी कि नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध में वह उसका साथ दे उस समय उसने एक संविधान स्थापित करने का वचन दिया था,

संविधानों की माँग

मैटरनिख का सफल विरोध

और **वीना सम्मेलन** से उसने अनुरोध किया था कि **संघ अधिनियम** के द्वारा **परिसंघ** के प्रत्येक सदस्य को बाध्य किया जाय कि वह एक वर्ष के भीतर अपनी जनता को प्रतिनिधिमूलक संविधान प्रदान करे। किन्तु मैटरनिख सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना के जितना विरुद्ध था उससे से अधिक खिलाफ स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण से था। इसलिए उसने इस चीज का विरोध किया और सुधारकों की इच्छा को भी विफल बनाने में सफल रहा। अतः वीना में इस विषय में जो घोषणा की गई वह निर्जीव तथा अस्पष्ट थी। जिस **संघ अधिनियम** के अनुसार **परिसंघ** की स्थापना की गई उसकी १३ वीं धारा में कहा गया "संघ के सभी राज्यों में वर्ग-व्यवस्था पर आधारित संविधान की स्थापना की जायगी।" इस प्रकार जिस संविधान की स्थापना का वचन दिया गया उसका स्वभाव निरूपित नहीं किया गया और समय की अवधि ही निश्चित की गई। एक पत्रकार का यह कथन सर्वथा उचित था कि जर्मन जाति को केवल एक ही चीज की गारण्टी दी गई अर्थात् "आशा करते रहने का असीम अधिकार।" भविष्य ने सिद्ध कर दिया कि आशा करना भी व्यर्थ था, नर्म किस्म का जो वायदा किया गया था वह भी खोखला था। **उदारवादियों** ने आशा से कुछ अधिक सारवान वस्तु की इच्छा की थी। जर्मनी की बहुसंख्यक जनता पर शासन करने वाले प्रमुख राज्यों, आस्ट्रिया और प्रुशिया, ने **संघ अधिनियम** की इस धारा को कभी कार्य रूप देने का प्रयत्न नहीं किया। और अनेक छोटे राज्यों ने ही इस दिशा में कोई कदम उठाया। किन्तु कुछ राजाओं ने उसे अवश्य पूरा कर दिया, उनमें गअट और शिलर का प्रश्रयदाता सेक्सवाइमर का **ग्रॅांड ड्यूक** मुख्य था।

मैटरनिख का कार्यक्रम यह था कि जो सिद्धान्त आस्ट्रिया में प्रचलित थे उनको जर्मनी में भी लागू किया जाय। उसका विश्वास था कि जनता को शासन के कामों में भाग लेने दिया गया तो उसका फल यह होगा कि राज्य में अज्ञान, उत्तेजना और निर्दयता की बाढ़ आ जायगी; लोकतन्त्र को तनिक भी प्रोत्साहन देने का अर्थ होगा अराजकता का मार्ग प्रशस्त करना। उसका उद्देश्य था कि जो शासन इस चीज को नहीं समझते थे उनके मस्तिष्क में इसे भरा जाय, और जो डरपोक शासक थे, जैसे प्रुशिया का राजा, उनके भय को इतना उभाड़ा जाय कि वे उदार विचारों के कुचलने में उसे हर प्रकार का सहयोग देने के लिए तैयार हो जायें। कुछ ऐसी घटनाएँ हो गईं जिनसे उसे अपनी दमनकारी व्यवस्था को, जिसे वह संसार की सब बुराइयों की रामबाण औषधि समझता था, लागू करने का अनुकूल अवसर मिल गया।

जर्मन उदारवादियों की निराशा

१८१५ के तुरन्त बाद के वर्ष असन्तोष तथा बेचैनी के वर्ष थे। जब उदारवादियों ने देखा कि उनकी आशाएँ धूल में मिल गई हैं तो उन्हें घोर निराशा हुई है और वे कटु आलोचना करने लगे। विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालयों के लोगों द्वारा सम्पादित समाचार-पत्र असन्तोष और घृणा का मुख्य केन्द्र थे। विद्यार्थियों के संघों ने एकता की उन उदात्त भावनाओं को प्रज्वलित रक्खा, जिन्हें नेपोलियन के विरुद्ध युद्धों के दौरान में उभाड़ा गया था; और उनकी भाववृत्तियाँ अत्यधिक देशभक्तिपूर्ण तथा लोकतांत्रिक थीं। १८१७ में विभिन्न विश्व-

विद्यालयों के विद्यार्थी-संघों के प्रतिनिधियों ने वार्टबुर्ग में एक देशभक्तिपूर्ण समारोह का आयोजन किया, वार्टबुर्ग का दुर्ग मार्टिन लूथर के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण प्रसिद्ध था। समारोह लाइप्सिक के युद्ध और धर्मसुधार

वार्टबुर्ग का समारोह

दोनों की स्मृति के उपलक्ष में मनाया गया था, अतः उसका महत्त्व धार्मिक भी था और राष्ट्रीय भी। इसके सदस्यों ने प्रभु की व्यालू (लार्ड्स सपर) नामक अनुष्ठान में एक साथ भाग लिया और जर्मन इतिहास की इन दो महान् घटनाओं के उपलक्ष में दिए गए आवेशपूर्ण भाषणों को सुना। उन्होंने वाइमर के ड्यूक की उत्साहपूर्वक सराहना की। सन्ध्या समय उन्होंने एक होली जलाई और उसमें घृणित प्रतिक्रियावादी शासन के प्रतीकों को डाल कर भस्म किया, विशेषकर एक अनुदार विचारों की एक पुस्तिका को, जिसके लिए प्रुशिया के राजा ने अपनी स्वीकृति दे दी थी। यह

कोत्सेब्यु की हत्या

था वार्टबुर्ग के समारोह का रूप जिसका भयावह वर्णन मैटरनिख ने जर्मनी के शासकों को लिखकर भेजा। कुछ समय उपरान्त एक विद्यार्थी ने कोत्सेब्यु नाम के एक पत्रकार का, जिसे लोग रूसी भेदिया समझकर घृणा करते थे, मार डाला। इन तथा अन्य घटनाओं से मैटरनिख को, जो जर्मनी में भी आस्ट्रिया की तरह का प्रतिक्रियावादी शासन स्थापित करने के साधन ढूँढ़ रहा था, अपने उद्देश्य को पूरा करने का बहाना मिल गया। १८१९ में उसने भयभीत राजाओं से **कार्ल्सबाड की आज्ञप्तियाँ** पास

कार्ल्सबाड की आज्ञप्तियाँ

करवालीं। इन आज्ञप्तियों को अवैध और हिंसात्मक तरीकों से शीघ्रतापूर्वक **संसद** द्वारा पारित करवा लिया गया। उनके द्वारा मैटरनिख ने **परिसंघ** को जीत लिया। वे आस्ट्रिया की कृति थीं और प्रुशिया ने उनका अनुमोदन किया था। उनका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी के इतिहास में स्वतन्त्रा एक पीढ़ी तक के लिए दफ़ना दी गई। वास्तव में उन्होंने ही १८४८ तक जर्मनी की राजनीतिक व्यवस्था को निर्धारित किया। उनके द्वारा प्रेस पर कठोर नियन्त्रण लगाया गया, और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को सरकारी निरीक्षण में रक्खा गया। जो अध्यापक "हानिकारक सिद्धान्तों" का प्रचार करते अर्थात् मैटरनिख के शासन सम्बन्धी विचारों की आलोचना करते उन्हें उनके पदों से हटा दिया जाता और जो एक बार पदच्युत हो जाते उन्हें फिर जर्मनी में कहीं किसी पद नियुक्त न किया जा सकता। विद्यार्थी संघों को कुचल दिया गया। यदि कोई विद्यार्थी एक विश्वविद्यालय से निकाल दिया जाता हो अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में उसे प्रवेश न मिल सकता। आशा यह थी कि इस प्रकार के कठोर नियन्त्रणों से अध्यापकों और विद्यार्थियों के सम्पूर्ण समाज का मुँह बन्द हो जायगा। आज्ञप्तियों में एक अन्य धारा थी जिससे लोकतांत्रिक ढंग के नये संविधानों की स्थापना पर रोक लगा दी गई। इस तरह स्वतन्त्र संसदे, प्रेस की स्वतन्त्रता, अध्यापन और भाषण आदि की स्वतन्त्रता अवैध कर दी गई।

कार्ल्सबाड की **प्राज्ञप्तियाँ** केन्द्रीय यूरोप के इतिहास में एक नई मोड़ का प्रतीक थीं। उनके द्वारा मैटरनिख ने जर्मनी पर भी अपना वैसा ही आधिपत्य कायम कर लिया जैसा कि आस्ट्रिया पर था। प्रुशिया अब

जर्मनी में प्रतिक्रिया का बोलबाला

हर प्रकार की उदार नीति को त्यागकर विनम्रतापूर्वक आस्ट्रिया का अनुगमन करने लगा। एक बार संकट के समय

में फ्रैडरिख विलियम तृतीया ने प्रुशिया को संविधान देने का वचन दिया था। उस वचन का उसने कभी पालन नहीं किया, वल्कि इसके विपरीत उसने **उदारवादियों** का विशेषत: घृणास्पद उत्पीड़न आरम्भ किया, जिसके दौरान में अनेक ऐसे कार्य किए गए जो क्रूर होने के साथ मूर्खतापूर्ण और निस्सार भी थे।

अव हमें यह देखना है कि इन्हीं विचारों को अन्य देशों में किस प्रकार लागू किया गया।

स्पेन

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, नेपोलियन ने १८०८ में स्पेन का मुकुट छीन लिया था, राजा फार्डीनेंड सप्तम को १८१४ तक फ्रांस में बन्दी वना कर रक्खा था और रिक्त सिंहासन अपने भाई जोज़फ को दे दिया था। स्पेनवासियों ने अपहरण-कर्ता के विरुद्ध विद्रोह किया और अँग्रेजों की सहायता से कई वर्ष तक छापामार युद्ध चलाते रहे और अन्त में उसको सफलता मिली। चूँकि उनका राजा शत्रु के हाथों में था, इसलिए उन्होंने उसके नाम से एक सरकार की रचना आरम्भ कर दी। उदार विचारों का उन पर प्रभाव था, अत: उन्होंने एक संविधान वना डाला जो १८१२ के **संविधान** के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जो वहुत कुछ १७९१ के **फ्रांसीसी** संविधान के नमूने पर वनाया गया था। इसमें जनता के प्रभुत्व की घोषणा की गई और इस प्रकार दैवी अधिकार पर आधारित राजतन्त्र के प्रतिद्वन्द्वी सिद्धान्त को, जो अब तक स्पेन के राज्य का स्वीकृत आधार वना हुआ था, त्याग दिया गया। यह लोकतांत्रिक संविधान अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा, क्योंकि नेपोलियन की पराजय के उपरांत वापिस लौटने पर फर्नीनेंड ने उसे तुरन्त समाप्त कर दिया और उग्र प्रतिक्रिया की नीति आरम्भ कर दी। प्रेस का मुँह वन्द कर दिया गया। उदार विचारों की पुस्तकें जहाँ कहीं मिलीं नष्ट कर दी गई, विशेष्कर संविधान की प्रतियाँ। हजारों राजनीतिक वन्दियों को कठोर दण्ड दिया गया।

फर्नीनेंड सप्तम (१८१४—१८३३)

फर्नीनेंड की सरकार ने स्थिति को सुधारने का दमन करने में तो वड़ी योग्यता और शक्ति का परिचय दिया, किन्तु अन्य सव मामलों में यह प्रमादी और निकम्मी सिद्ध हुई। एक करोड़ दस लाख की जनसंख्या का देश स्पेन दरिद्रता और अज्ञान में डूवा हुआ था। किन्तु सरकार ने सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया। यही नहीं, वह सरकार के सवसे वुनियादी कर्तव्य को पूरा करने में ही असफल रही अर्थात् वह साम्राज्य की एकता को अक्षुण्ण न रख सकी। स्पेन के अमरीकी उपनिवेश कई वर्ष से मातृदेय के विरुद्ध विद्रोह करते आए थे, किन्तु सरकार ने उसका दमन करने के लिये कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किया।

सरकार की अयोग्यता

इन परिस्थितियों ने स्वभावत: गम्भीर असन्तोष को जन्म दिया। सेना के प्रति जो व्यवहार किया गया था उससे वह विशेप रूप से अप्रसन्न थी, और षड्यन्त्रों का अड्डा वन गई थी। एक सैनिक विद्रोह उमड़ पड़ा। सरकार ने उसे दवाने के जो प्रयत्न किये वे विफल रहे। अन्त में राजा को वाध्य होकर १८१२ के **संविधान** की पुन:

१८२० का विद्रोह

स्थापना करनी पड़ी और उसकी धाराओं के अनुसार शासन चलाने का वचन देना पड़ा। संविधान की प्रतियाँ प्रत्येक नगर में चिपका दी गईं और पुरोहितों को आदेश दिया गया कि अपनी-अपनी धार्मिक सभाओं में वे उसकी व्याख्या करके लोगों को समझाएँ।

इस प्रकार वाटरलू के युद्ध के पाँच वर्ष बाद ही विद्रोह पुनः सफल हुआ। दैवी अधिकार पर आधारित निरंकुश राजतन्त्र का स्थान लोक प्रभुत्व पर आधारित सांविधानिक राजतन्त्र ने ले लिया। अब प्रश्न यह था कि क्या अन्य देश भी स्पेन का अनुगमन करेंगे। क्या **पवित्र संघ** चुपचाप देखता रहेगा? क्या आस्ट्रिया, जर्मनी और फ्रांस में क्रान्तिकारी भावना पूर्णतया कुचली जा चुकी थी और वह केवल यूरोप के सीमावर्ती प्रदेशों में ही प्रज्जवलित हो सकती थी? इन प्रश्नों के उत्तर भी शीघ्र ही मिल गए।

इटली

अन्य देशों की भाँति इटली पर भी **फ्रांसीसी क्रांति** के उदार विचारों का गम्भीर प्रभाव पड़ा था और विशेषकर नेपोलियन की अनवरत कारंवाहियों का, जिसने अपने सैनिक जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक उस देश को अपनी नीति और कुचक्रों के जाल में फाँस कर रक्खा था। आरम्भ में इटलीवासियों ने उसका स्वागत किया, क्योंकि वे समझते थे कि हम उत्पीड़न से उद्धार करने वाले जिस व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहे थे वह आ पहुँचा है किन्तु युवक विजेता ने पराजित निरंकुशतन्त्र के स्थान पर उससे भी अधिक कठोर, यद्यपि उससे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण, निरंकुशतन्त्र की स्थापना करली, फलतः उस देश की जनता की उक्त भावना घृणा में परिवर्तित हो गई। अनेक वर्षों तक नेपोलियन की इच्छा ही इटली के भाग्य का निर्णय करती रही। उसने कानूनों को सुधारने, उद्योगों को प्रोत्साहन देने तथा पुरानी आदतों और रूढ़ियों को समाप्त करने के लिए बहुत कुछ किया।

इटली में नेपोलियन का कार्य

उसके साथ नए राजनीतिक और सामाजिक विचारों ने प्रायद्वीप में प्रवेश किया। उसने इटलीवासियों को झकझोर कर तन्द्रा से जगा दिया, और उन्हें ऐसी स्फूर्ति प्रदान की जैसी कि उन्होंने शताब्दियों से अनुभव नहीं की थी। किन्तु उसने अपने अनवरत युद्धों के लिए उस देश से अपार धन लूटा और सैनिक भर्ती किए, निर्लज्जतापूर्वक कलाकृतियों का अपहरण किया और पोप के साथ दुर्व्यवहार किया; फलस्वरूप वहाँ के निवासी उससे अप्रसन्न हो गए।

इटली में जागृति

अन्त में उसका पराभव हुआ, और **वीना सम्मेलन** ने लगभग उन सभी पुराने राज्यों को पुनः स्थापित कर दिया, जो उसके वहाँ प्रथम बार कदम रखने से पहले विद्यमान थे। इस समय उस देश में दस राज्य थे:
पीडमोंट, लोम्बार्डी-वेनीशिया, नेपिल्स, पार्मा, मोडेना, लूका, टुस्कानी, पोप के राज्य, मोनाको और सेन मेरीनो।

इटली के दस राज्य

जिनोआ और वेनिस को, जो कुछ समय पहले तक स्वतन्त्र गणराज्य थे, पुनः स्थापित्त नहीं किया गया क्योंकि गणराज्यों का "फैशन अब उठ चुका था"। उनमें से एक पीडमोंट और दूसरा आस्ट्रिया को दे दिया गया।

ये राज्य इतने छोटे थे कि स्वावलम्बी नहीं हो सकते थे; अतः इटली लगभग

इसके अतिरिक्त अधिकतर शासक आस्ट्रिया का अनुकरण करते, जिनकी नीति की व्याख्या हम पहले ही कर चुके हैं। जनता के सभी प्रगतिशील तत्त्व, जो शिक्षा, धर्म, व्यवसाय आदि की स्वतन्त्रता में विश्वास करते, असन्तुष्ट थे, जैसे कि वे लोग थे जिन्हें इस आधार पर सरकारी नौकरियों से निकाल दिया गया था उनके मस्तिष्क पहले के फ्रांसीसी शासन से दूषित हो चुके थे। असन्तुष्ट व्यक्ति कारबोनारी नाम की गुप्त संस्था में सम्मिलित हो गए और समय की प्रतीक्षा करने लगे।

व्यापक असन्तोष

उसी समय इटली में स्पेन की १८२० की सफल और रक्तहीन क्रान्ति का समाचार पहुँचा। नेपिल्स में एक सैनिक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। क्रान्तिकारियों ने माँग की स्पेन का १८१२ का संविधान यहाँ भी लागू किया जाय, इसलिये नहीं कि वे उसके बारे में कुछ जानते थे, वल्कि केवल इसलिए कि वह लोकतांत्रिक था और बना बनाया था। राजा ने तुरन्त ही उसकी माँग स्वीकार करली और संविधान की घोषणा कर दी गई।

१८२० में नेपिल्स में क्रान्ति

सम्मेलनों की कार्यवाही

इस प्रकार १८२० में क्रान्ति ने, जिससे १८१५ के राजनयिक घृणा करते थे, पुनः आक्रामक रूप धारण कर लिया। स्पेन और नेपिल्स ने उस शासन-व्यवस्था को उखाड़ फेंका जिसकी स्थापना पाँच वर्ष पूर्व हुई थी, और ऐसे संविधानों को अंगीकार कर लिया जो क्रान्तिकारी फ्रांस के सिद्धान्तों से ओतप्रोत थे। इसी प्रकार पुर्तगाल में भी स्थापित शासन के विरुद्ध विद्रोह हो चुका था। और शीघ्र ही पीडमोंट में भी ऐसा ही विद्रोह होने वाला था।

इस नई परिस्थिति में क्या करना आवश्यक हैं, इस सम्बन्ध में मैटरनिख के, जो उस समय यूरोप का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था और अनुभव करता था कि संसार मेरे कन्धों पर टिका हुआ है, विचार स्पष्ट थे। उसका कहना था कि जिस चीज से भी यूरोप की शान्ति भंग होने की आशंका हो उस पर विचार करने के लिए यूरोपीय शक्तियों का सम्मेलन बुलाना सर्वथा उचित है। एक देश की क्रान्ति से दूसरे देशों में क्रान्ति को प्रोत्साहन मिल सकता है, वीना सम्मेलन द्वारा व्यवस्थित की गई दुनियाँ में पुनः विप्लव की आग लग सकती है और स्थापित व्यवस्था सर्वत्र संकट में पड़ सकती है। मैटरनिख का सुझाव था कि "हस्तक्षेप करने के अधिकार" का सिद्धान्त इन सब रोगों की रामबाण औषधि है—यद्यपि यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र में एक नई चीज था, फिर भी वह उसे कई वर्ष तक क्रियान्वित करने में सफल रहा। सिद्धान्त संक्षेप में यह था कि चूँकि क्रान्ति-विरोधी आदर्शों पर आधारित है इसलिए शक्तियों को क्रान्ति का दमन करने के हेतु हस्तक्षेप करने का अधिकार ही नहीं है बल्कि उनका पुनीत कर्त्तव्य है; उन्हें अपने-अपने राज्यों में ही नहीं, बल्कि यूरोप के किसी भी राज्य में, और उस राज्य की जनता की इच्छा के विरुद्ध ही नहीं, अपितु उसके शासक की इच्छा के खिलाफ भी राजतंत्रीय व्यवस्था को कायम

शक्तियाँ इन विद्रोहों को कुचलने की तैयारियाँ करने लगीं

हस्तक्षेप करने के अधिकार का सिद्धान्त

रखने के लिए हस्तक्षेप करना चाहिए। किसी राज्य में सरकार का परिवर्तन उस राज्य का आन्तरिक मामला है, बल्कि एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है।

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी राज्य को स्वाधीनता का अधिकार नहीं रहा, और न किसी राज्य की जनता को यह अधिकार रहा कि वह निरंकुश राजतंत्र को छोड़कर अन्य किसी प्रकार की सरकार की स्थापना कर सके। मैटरनिख ने रूस, आस्ट्रिया और प्रुशिया को इस सिद्धान्त के पक्ष में कर लिया। ये देश ही मूलतः पवित्र मित्र थे और इनके शासक निरंकुश राजा थे। चूँकि उन्होंने दृढ़ता के साथ और अविचल भाव से इस सिद्धान्त का समर्थन किया, इसीलिए पवित्र संघ सर्वत्र अत्याचार का पर्यायवाची बन गया, और यूरोप तथा अमेरिका के सभी उदारवादी उससे घृणा करने लगे।

ट्रोपो का सम्मेलन (१८२०)

नेपिल्स के प्रश्न पर विचार करने के लिए ट्रोपो में १८२० में और लाइबाख नामक स्थान पर १८२१ में एक सम्मेलन हुआ। इसमें पूर्वोक्त तीन शक्तियों के अतिरिक्त इंगलैंड और फ्रांस ने भाग लिया। ये दो राष्ट्र नए सिद्धान्त की घोषणा में सम्मिलित नहीं हुए, किन्तु निष्क्रिय भाव से सम्मेलन की कार्यवाही देखते रहे, और आस्ट्रिया, प्रुशिया और रूस ने मनमाने ढंग से काम किया। उन्होंने आस्ट्रिया से नेपिल्स के राज्य में संविधान को समाप्त करने और निरंकुशतंत्र की स्थापना करने के हेतु एक सेना भेजने को कहा। आस्ट्रिया ने ऐसा ही किया। और नेपिल्सवासियों के लिए इसके परिणाम बड़े ही घातक सिद्ध हुए। आस्ट्रियाई हस्तक्षेप के उपरान्त जो प्रतिक्रिया हुई उसकी कोई सीमा न थी। सैकड़ों लोगों को कारागार में डाल दिया गया, निर्वासित कर दिया गया अथवा फाँसी दे दी गई। राज्य की अभागी जनता पर निकृष्ट कोटि की स्वेच्छाचारी सरकार लाद दी गई।

पीमोंट में विद्रोह

जब कि नेपिल्स का यह विद्रोह कुचला जा रहा था, उसी समय वैसा ही विद्रोह प्रायद्वीप के दूसरे छोर पर पीडमोंट मे धधक उठा। क्रान्तिकारियों ने १८१२ के स्पेन के संविधान को लागू करने की माँग की, क्योंकि उनकी निगाह में वही सबसे उदार संविधान था; साथ ही साथ उन्होंने यह भी आग्रह किया कि पीडमोंट तथा इटली के शत्रु आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय। राजा विक्टर इमेन्युअल प्रथम ने विद्रोहियों के सामने झुकना पसन्द नहीं किया और सिंहासन त्याग दिया। उसका भाई चार्ल्स फेलिक्स राजा बना (मार्च १३, १८२१)। नया राजा स्वभाव से ही स्वेच्छाचारी था और अब उसे उन्हीं शक्तियों का समर्थन प्राप्त था जो क्रान्तियों के सम्बन्ध में अपने इरादे प्रकट कर चुकी थीं। आस्ट्रिया की सहायता से चार्ल्स फेलिक्स ने नोवारा के युद्ध में क्रान्तिकारियों को खदेड़ दिया। क्रान्ति समाप्त होगई। एक बार पुन: सांविधानिक स्वतंत्रता की माँग दबा दी गई, और मैटरनिख की एक बार फिर जीत हुई। कहना न होगा कि वह अपनी सफलता से पूर्णतया प्रसन्न था। उसने लिखा : "मुझे पहले से ही अच्छे दिन का उदय दिखाई दे रहा है; ईश्वर की ऐसी इच्छा प्रतीत होती है कि संसार का विनाश न हो।"

इटली की दो क्रान्तियाँ कुचल दी गईं। हस्तक्षेप का सिद्धान्त अपने

रचयिताओं के इच्छानुसार ही काम कर रहा था। अब उसे दूसरी बार स्पेन में लागू किया गया, जिस देश में, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, इस काल के क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। चूँकि इटली की समस्या अधिक तात्कालिक थी, इसलिए उसकी वजह से स्पेन के मामले पर विचार स्थगित करना पड़ा था। किन्तु अब मित्र राज्यों ने उसी सिद्धान्त को स्पेन में भी लागू करने की तैयारी की। विरोना के सम्मेलन ने यह काम पूरा किया (१८२८)। आस्ट्रिया, रूस और प्रुशिया स्पेन की सांविधानिक सरकार को अपनी निरंकुश व्यवस्था के लिए घातक समझते थे। अतः उन्होंने फ्रांस से, जोकि अब पूर्णतया प्रतिक्रियावादी देश था फर्डीनेंड की शक्ति की पुनः स्थापना करने को कहा। इंगलैंड ने इस नीति का विरोध किया और इसके प्रति महान् क्रोध प्रकट किया, किन्तु कुछ कर न सका। फ्रांस ने एक लाख सेना स्पेन में भेज दी जो सरलता से विजयी हुई। युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो गया और फर्डीनेंड फ्रांस की सहायता और पवित्र संघ के समर्थन से पुनः निरंकुश शासक के रूप में अपने सिंहासन पर बैठ गया।

वेरोना का सम्मेलन

इस प्रकार अब घृणित प्रतिक्रिया का युग आरम्भ हुआ। १८२० से अब तक संसद ने जितने अधिनियम पास किए थे वे सब रद्द कर दिए गए। "सत्यानाशी फरिश्ते का समाज" नामक एक संगठन ने उदारवादियों का शिकार करना आरम्भ किया, उनको कारागार में डाला और बहुत-सों को गोली से उड़ा दिया। प्रतिशोध के इस युद्ध की कोई सीमा न रही। "शुद्धिकरण परिषदों" ने युद्ध को निरन्तर भड़काया। हजारों लोग देश से निकाल दिए गए और सैकड़ों को फाँसी लगा दी गई। फ्रांसीसी सरकार अपने आश्रित की इस बर्बरता से लज्जित होने लगी और उसे रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु इसमें उसे बहुत कम सफलता मिली। यह स्पेन के इतिहास का एक अत्यन्त घृणास्पद अध्याय है।

स्पेन में प्रतिक्रिया

पवित्र संघ को नेपिल्स, पीडमोंड और इटली में जो सफलताएँ मिलीं उससे स्पष्ट हो गया कि यूरोपीय राजनीति में अभी उसका आधिपत्य था। जिस व्यवस्था का नाम मैटरनिख के नाम पर पड़ा था वह एक यूरोपीय व्यवस्था के रूप में दृढ़ता से स्थापित हो गई। किन्तु उसकी अन्तिम महत्त्वपूर्ण विजय हो चुकी थी। अब उसे एक के बाद एक विफलता का सामना करना पड़ा, जिससे उसकी शक्ति सदैव के लिए सीमित हो गई।

पवित्र संघ की विजय

स्पेन में निरंकुशता की पुनः स्थापना करके पवित्र मित्रों ने स्पेन के विद्रोही उपनिवेशों में पुनः उस देश का आधिपत्य स्थापित करने को प्रयत्न किया। किन्तु इस उद्देश्य में उसे इंगलैंड और अमेरिका के विरोध का सामना करना पड़ा; वे दोनों देश इसके लिए तो तैयार थे कि स्पेन स्वयं उन्हें पुनः जीतने का प्रयत्न करे, किन्तु वे यह नहीं चाहते थे कि पवित्र संघ उन्हें स्पेन के लिए जीतने का प्रयत्न करे। चूँकि इंगलैंड का समुद्रों पर नियंत्रण था, अतः वह संघ को विद्रोही उपनिवेशों में सेवाएँ भेजने से रोक सकता था। संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति

पवित्र, संघ तथा मनरो सिद्धान्त

अध्याय १३

पुनः स्थापना के युग में फ्रांस
लुई अठारहवें का शासनकाल

बोर्बां वंश की पुनः-स्थापना से पुरातन व्यवस्था की पुनः-स्थापना नहीं हुई

१८१४ में नेपोलियन पर विजय प्राप्त करने वाले **मित्रों** ने बोर्बां वंश को पुनः फ्रांस के सिंहासन पर बिठला दिया था। वाटरलू के उपरान्त उसे दूसरी बार फिर बिठलाया गया। किन्तु नया रोजा लुई अठारहवाँ और उसके **मित्र** भली-भाँति समझते थे कि राजवंश की **पुनःस्थापना** का अर्थ **पुरातन व्यवस्था** की पुनःस्थापना करना नहीं है। उसने देख लिया कि निरंकुश राजतंत्र का युग समाप्त हो चुका है, इसलिए राजतंत्र को सांविधानिक ढँग से कार्य करना और **क्रान्ति** की अनेक उपलब्धियों की रक्षा करना चाहिए, नहीं तो उसका जीवन निश्चय ही संक्षिप्त होगा। राजा ने अनुभव किया कि समय की भावना के साथ समझौता करना आवश्यक है, अतः

१८१४ का सांविधानिक अधिकार-पत्र

१८१४ में उसने एक **सांविधानिक अधिकार-पत्र** जारी किया। उसके अनुसार एक द्विसदनात्मक संसद की स्थापना हुई। पहला **अमीर सदन** का जिसके सदस्य सम्पूर्ण जीवन-काल के लिए नियुक्त किए जाते, और दूसरा **प्रतिनिधि सदन** या जिसका पाँच वर्ष के लिए चुनाव होता था। किन्तु मतदाताओं की संख्या सीमित थी; आयु तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अर्हताओं के आधार पर मताधिकार इतना सीमित कर दिया गया था कि २९०००,००० की जनसंख्या में से १००,००० से भी कम मतदाता थे और १२००० से अधिक ऐसे नहीं थे जो प्रतिनिधि बनने के योग्य होते। **अधिकार-पत्र** में घोषणा की गई कि सभी फ्रांसीसी नागरिक समान हैं, किन्तु एक छोटे से अल्पसंख्यक वर्ग को ही शासन में भाग लेने का अधिकार दिया गया। राजनीतिक अर्थ में फ्रांस अब भी विशेषाधिकारों का देश था, अन्तर केवल इतना था कि अब विशेषाधिकारियों का आधार जन्म नहीं सम्पत्ति थी। फिर भी सरकार का यह रूप जितना उदार था उतना

नेपोलियन के काल में कभी देखने को नहीं मिला था, और इंगलैंड को छोड़कर यूरोप में सबसे उदार था।

इस अधिकार-पत्र में कुछ ऐसी धाराएँ थीं जो सरकार के भावी रूप को निर्धारित करने वाली इन धाराओं से भी अधिक महत्त्वपूर्ण थीं अर्थात् फ्रांसीसियों के नागरिक अधिकारों का उल्लेख करने वाली धाराएँ।

नागरिक अधिकारों से सम्बन्धित धाराएँ

इनसे प्रकट होता था कि किस सीमा तक बोर्वा लोग क्रान्ति तथा नेपोलियन के काम को बनाए रखने के लिए तैयार थे। उनका उद्देश्य फ्रांस की जनता को आश्वस्त करना था, जिसे डर हो गया था कि पुनःस्थापना से हमारी स्वतंत्रता और अधिकार नष्ट हो जायेंगे : घोषणा की गई कि सभी फ्रांसीसी विधि के समक्ष समान हैं, और इस प्रकार क्रान्ति के मूल सिद्धान्त को कायम रखा गया;

क्रान्ति के काम को मान्यता

सभी लोगों के लिए सैनिक तथा असैनिक नौकरियों के द्वार खुले हुए हैं, इस प्रकार अब कोई वर्ग लोक सेवाओं पर एकाधिकार न जमा सकता था जैसाकि क्रान्ति से पहले हुआ करता था; किसी व्यक्ति की विधि की उचित प्रक्रिया के बिना न तो गिरफ्तार किया जायगा और न उन पर मुकद्दमा चलाया जायगा, इस प्रकार लोगों को मनमाने ढंग से बन्दी बनाने की प्रथा के दिन सदैव के लिए उठ गए; सभी सम्प्रदायों के लिए पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता की घोषणा कर दी गई, यद्यपि रोमन कैथोलिक धर्म अब भी राजधर्म बना रहा; और प्रेस को स्वतंत्र कर दिया गया। जिन लोगों ने क्रान्ति के काल में ताज, चर्च अथवा सामन्तों की जब्त की हुई सम्पत्ति खरीद ली थी उन्हें विश्वास दिलाया गया कि तुम्हारा अधिकार अलंघनीय माना जायगा।

लुई अठारहवाँ (१८१४-१८२४)

लुई अठारहवें का व्यक्तित्व फ्रान्स की तत्कालीन परिस्थितियों के लिए विशिष्ट रूप से अनुकूल जान पड़ता था। उसके विचार नरम, स्वभाव शान्त बुद्धि संशयात्मक, मस्तिष्क भ्रान्तियों से मुक्त और हृदय प्रतिशोध की भावना से शून्य था। प्रकृति से ही वह प्रमादी था और सब प्रकार के संघर्षों से बचना तथा शान्तिपूर्वक अपनी शक्ति का उपभोग करना चाहता था, किन्तु उसके मार्ग में कठिनाइयाँ थीं। उसे विदेशी सेनाओं की सहायता से अपना सिंहासन मिला था। सिंहासन पर उसकी उपस्थिति फ्रांसवासियों को निरन्तर उनके राष्ट्रीय अपमान का स्मरण दिलाती रहती। किन्तु इससे भी अधिक गम्भीर चीज, उन लोगों का चरित्र था जिनके सम्पर्क में उसे निरन्तर रहना पड़ता था। दरबार में अब उन सामन्तों का प्रभाव था जिन्हें क्रान्ति के काल में घोर कष्ट उठाने पड़े थे, जिनकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया था और जिनके अनेक सम्बन्धी गिलोटीन पर चढ़ा दिए गए थे। यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने हृदय में उन लोगों के लिए घृणा लेकर लौटे जो उनके दुःखों के लिए जिम्मेदार थे अर्थात् वे क्रान्ति के विचारों तथा उससे सम्बद्ध सभी व्यक्तियों से नफरत करते थे। ये लोग क्रोध तथा प्रतिशोध की भावना से मुक्त नहीं थे जैसाकि लुई था। वे ताज की भूतपूर्व प्रतिष्ठा और गौरव तथा सामन्तों और पादरियों की भूतपूर्व स्थिति की पुनः स्थापना करने के लिये राजा से भी अधिक उत्सुक थे और नए विचारों के प्रति उन्हें राजा से भी अधिक घृणा थी। संक्षेप में वे राजा से भी

अध्याय १३

पुनः स्थापना के युग में फ्रांस
लुई अठारहवें का शासनकाल

१८१४ में नेपोलियन पर विजय प्राप्त करने वाले **मित्रों** ने बोर्बां वंश को पुनः फ्रांस के सिंहासन पर बिठला दिया था। वाटरलू के उपरान्त उसे दूसरी वार फिर बिठलाया गया। किन्तु नया रोजा लुई अठारहवाँ

बोर्बां वंश की पुनः-स्थापना से पुरातन व्यवस्था की पुनः-स्थापना नहीं हुई

और उसके **मित्र** भली-भाँति समझते थे कि राजवंश की **पुनःस्थापना** का अर्थ **पुरातन व्यवस्था** की पुनःस्थापना करना नहीं है। उसने देख लिया कि निरंकुश राजतंत्र का युग समाप्त हो चुका है, इसलिए राजतंत्र को सांविधानिक ढंग से कार्य करना और **क्रान्ति** की अनेक उपलब्धियों की रक्षा करना चाहिए, नहीं तो उसका जीवन निश्चय ही संक्षिप्त होगा। राजा ने अनुभव किया कि समय की भावना के साथ समझौता करना आवश्यक है, अतः १८१४ में उसने एक **सांविधानिक अधिकार-पत्र** जारी

१८१४ का सांविधानिक अधिकार-पत्र

किया। उसके अनुसार एक द्विसदनात्मक संसद की स्थापना हुई। पहला **अमीर सदन** का जिसके सदस्य सम्पूर्ण जीवन-काल के लिए नियुक्त किए जाते, और दूसरा **प्रतिनिधि सदन** या जिसका पाँच वर्ष के लिए चुनाव होता था। किन्तु मतदाताओं की संख्या सीमित थी; आयु तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अर्हताओं के आधार पर मताधिकार इतना सीमित कर दिया गया था कि २९०००,००० की जनसंख्या में से १००,००० से भी कम मतदाता थे और १२००० से अधिक ऐसे नहीं थे जो प्रतिनिधि बनने के योग्य होते। अधिकार-पत्र में घोषणा की गई कि सभी फ्रांसीसी नागरिक समान हैं, किन्तु एक छोटे से अल्पसंख्यक वर्ग को ही शासन में भाग लेने का अधिकार दिया गया। राजनीतिक अर्थ में फ्रांस अब भी विशेपाधिकारों का देश था, अन्तर केवल इतना था कि अब विशेपाधिकारियों का आधार जन्म नहीं सम्पत्ति थी। फिर भी सरकार का यह रूप जितना उदार था उतना

नेपोलियन के काल में कभी देखने को नहीं मिला था, और इंगलैंड को छोड़कर यूरोप में सबसे उदार था।

इस अधिकार-पत्र में कुछ ऐसी धाराएँ थीं जो सरकार के भावी रूप को निर्धारित करने वाली इन धाराओं से भी अधिक महत्त्वपूर्ण थीं अर्थात् फ्रांसीसियों के नागरिक अधिकारों का उल्लेख करने वाली धाराएँ।

नागरिक अधिकारों से सम्बन्धित धाराएँ

इनसे प्रकट होता था कि किस सीमा तक बोर्वो लोग क्रान्ति तथा नेपोलियन के काम को बनाए रखने के लिए तैयार थे। उनका उद्देश्य फ्रांस की जनता को आश्वस्त करना था, जिसे डर हो गया था कि **पुनःस्थापना** से हमारी स्वतंत्रता और अधिकार नष्ट हो जायेंगे : घोषणा की गई कि सभी फ्रांसीसी विधि के समक्ष समान हैं, और इस प्रकार **क्रान्ति** के मूल सिद्धान्त को कायम रक्खा गया;

क्रान्ति के काम को मान्यता

सभी लोगों के लिए सैनिक तथा असैनिक नौकरियों के द्वार खुले हुए हैं, इस प्रकार अब कोई वर्ग लोक सेवाओं पर एकाधिकार न जमा सकता था जैसाकि **क्रान्ति** से पहले हुआ करता था; किसी व्यक्ति की विधि की उचित प्रक्रिया के बिना न तो गिरफ्तार किया जायगा और न उन पर मुकद्दमा चलाया जायगा, इस प्रकार लोगों को मनमाने ढंग से बन्दी बनाने की प्रथा के दिन सदैव के लिए उठ गए; सभी सम्प्रदायों के लिए पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता की घोषणा कर दी गई, यद्यपि रोमन कैथोलिक धर्म अब भी राजधर्म बना रहा; और प्रेस को स्वतंत्र कर दिया गया। जिन लोगों ने **क्रान्ति** के काल में ताज, चर्च अथवा सामन्तों की जब्त की हुई सम्पत्ति खरीद ली थी उन्हें विश्वास दिलाया गया कि तुम्हारा अधिकार अलंघनीय माना जायगा।

लुई अठारहवाँ (१८१४ १८२४)

लुई अठारहवें का व्यक्तित्व फ्रान्स की तत्कालीन परिस्थितियों के लिए विशिष्ट रूप से अनुकूल जान पड़ता था। उसके विचार नरम, स्वभाव शान्त बुद्धि संशयात्मक, मस्तिष्क भ्रान्तियों से मुक्त और हृदय प्रतिशोध की भावना से शून्य था। प्रकृति से ही वह प्रमादी था और सब प्रकार के संघर्षों से बचना तथा शान्तिपूर्वक अपनी शक्ति का उपभोग करना चाहता था, किन्तु उसके मार्ग में कठिनाइयाँ थीं। उसे विदेशी सेनाओं की सहायता से अपना सिंहासन मिला था। सिंहासन पर उसकी उपस्थिति फ्रांसवासियों को निरन्तर उनके राष्ट्रीय अपमान का स्मरण दिलाती रहती। किन्तु इससे भी अधिक गम्भीर चीज, उन लोगों का चरित्र था जिनके सम्पर्क में उसे निरन्तर रहना पड़ता था। दरबार में अब उन सामन्तों का प्रभाव था जिन्हें **क्रान्ति** के काल में घोर कष्ट उठाने पड़े थे, जिनकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया था और जिनके अनेक सम्बन्धी गिलोटीन पर चढ़ा दिए गए थे। यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने हृदय में उन लोगों के लिए घृणा लेकर लौटे जो उनके दुःखों के लिए जिम्मेदार थे अर्थात् वे **क्रान्ति** के विचारों तथा उससे सम्बद्ध सभी व्यक्तियों से नफरत करते थे। ये लोग क्रोध तथा प्रतिशोध की भावना से मुक्त नहीं थे जैसाकि लुई था। वे ताज की भूतपूर्व प्रतिष्ठा और गौरव तथा सामन्तों और पादरियों की भूतपूर्व स्थिति की पुनः स्थापना करने के लिये राजा से भी अधिक उत्सुक थे और नए विचारों के प्रति उन्हें राजा से भी अधिक घृणा थी। संक्षेप में वे राजा से भी

अति राजभक्त

अधिक राजभक्त थे। इसलिए प्रायः उन्हें **अति राजभक्त** भी कहा जाता है। उनकी निगाह में क्रान्ति लूट, धर्मद्रोह और अन्याय के अतिरिक्त कुछ नहीं थी। लुई ने जो **अधिकार-पत्र** प्रदान किया था उसके लिए उन्होंने उसकी कटु आलोचना की और कहा कि यह लेख्य **क्रान्ति** के साथ एक खतरनाक रियायत है। मन ही मन वे चाहते थे कि इसको समाप्त कर दिया जाय, और तब तक के लिए उनकी इच्छा थी कि इसकी उदार धाराओं को यथासम्भव निष्फल बना दिया जाय। उन लोगों का नेता लुई अठारवें का भाई **आर्त्वा का सरदार**[1] था जो राजा के सन्तानहीन होने के कारण उसके बाद सिंहासन का हकदार था।

पुनर्संगठन का कार्य

कुछ दिनों तक लुई अठारवाँ इस अतिवादी दल को नियंत्रण में रखने और नरम नीती का अनुसरण करने में सफल रहा। इस नीति में अधिकतर उदारवादियों ने, जो उसी की भाँति नरम विचारों के थे और जिनका १८२० तक **संसद** पर अधिकार कायम रहा, उसका समर्थन किया। अतः बहुत-सा लाभप्रद काम पूरा हो गया। १८१५ में **मित्रों** ने फ्रांस पर युद्ध-क्षति की पूर्ति के लिये भारी जुर्माना लगाया था, वह सब चुका दिया गया जिससे विजेताओं की सेनाएँ हटा ली गईं और देश मुक्त हो गया। फ्रांस की सैनिक व्यवस्था का पुनर्संगठन किया गया और २४०,००० की सेना तैयार करने की योजना बनाई गई। पदवृत्ति के लिये सेवा और योग्यता को ही कसौटी निश्चित किया गया, किन्तु इस सिद्धान्त का **अतिराजभक्तों** ने घोर विरोध किया क्योंकि इससे सामन्तों के लिए उच्चतम पदों पर एकाधिकार कायम रखने की गुंजाइश ही न रह जाती थी। इस समय प्रेस तथा निर्वाचन प्रणाली के सम्बन्ध में जो कानून बनाए गए वे भी बहुत कुछ उदार भावनाओं से प्रभावित थे।

अति राजभक्तों के काम

अतिराजभक्त राजा की नरम नीति पर बहुत क्रुद्ध थे, और उसको समाप्त करने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। वे सदैव इस बात के लिए सावधान रहते कि कोई ऐसा अवसर मिल जाय जिससे शासन चलाने वाले दल को बदनाम किया जा सके। **प्रतिनिधि सदन** में अनेक उग्रवादी चुनकर आ गये थे। **अति राजभक्तों** ने उनके विरुद्ध विष वमन किया और भविष्य का बहुत ही अन्धकार-मय चित्र प्रस्तुत किया। १८२० में बेरी ड्यूक का, जो सिंहासन के हकदारों में से था, बधकर दिया गया, जिससे उन्हें अवसर मिल गया। इस अपराध से राजा तथा संसद के नरम विचारों के सदस्य बहुत भयभीत हुए; परिणामस्वरूप राजा ने अतिराज भक्तों का प्रतिरोध करना धीरे-धीरे कम कर दिया। शासन के अन्तिम वर्षों में उसने उतनी उदारता नहीं दिखलाई जितनी कि प्रारम्भिक वर्षों में दिखलाई थी। १८२४ में लुई का देहान्त हो गया और उसका भाई आर्त्वा का सरदार चार्ल्स दशम के नाम से सिंहासन पर बैठा।

लुई अठारवें की मृत्यु (१८२४)

चार्ल्स दशम का शासन-काल

नए राजा के गुण पहले से ही सर्वविदित थे। उसने १८१४ से

---

1 Count of Artoi

चार्ल्स दशम (१८२१-१८३०)

१८३० तक फ्रांस के प्रतिक्रियावादियों का विश्वास के साथ नेतृत्व किया उसने अपने भाई की उदार नीति का निरन्तर और डटकर विरोध किया था, और अन्त में उस नीति को अपने दल की बढ़ती हुई शक्ति के सामने झुकने पर बाध्य किया था। सरसठ वर्ष की आयु में उसके लिए अपने जीवन भर के सिद्धान्तों को त्याग देना सम्भव नहीं था, और विशेषकर उस समय जबकि उसे उन सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने का सबसे अच्छा अवसर दिखाई देने लगा था।

राजा के राज्यभिषेक से ही उसके शासन की भावना का परिचय मिल गया। फ्रांसवासियों को मध्ययुगीन स्वाँग दिखलाये गए, जिनसे उनका मनोरंजन तो हुआ, किन्तु साथ ही साथ वे उनसे ऊब भी गए, क्योंकि उपहासास्पद चीजों का मखौल उड़ाने की क्षमता का उनमें कभी अभाव नहीं रहा था। चार्ल्स के शरीर के सात स्थानों पर पवित्र तेल का अभिषेक किया गया, और बतलाया गया कि यह तेल क्लोविश के समय से चमत्कार के प्रभाव से सुरक्षित चला आया है।

चार्ल्स की प्रेरणा से जो कानून बनाए गए उनसे उसकी सरकार के राजनीतिक और सामाजिक विचारों का परिचय मिला।

सामन्तों को क्रांतिकाल में जब्त की गई सम्पत्ति का मुआवजा दिया गया

क्रान्ति के काल में राज्य ने सामन्तों की जो भूमि जप्त करके बेचदी थी उसके मुआवजे के रूप में लगभग एक अरब फ्रैंक उनमें बाँट दिये गये। बहुत से फ्रांसीसियों का कहना था कि जो लोग देश छोड़ कर भाग गये थे और उसके विरुद्ध लड़े थे उनको धन बाँटना इस समय इतना आवश्यक नहीं था जितना कि देश की अन्य तात्कालिक जरूरतों की पूर्ति करना। किन्तु राजा भगोड़ों का नेता रह चुका था, अतः उसे उनके दृष्टिकोण से पूर्ण सहानुभूति थी।

धार्मिक स्थानों और वस्तुओं को अपवित्र करने के विषय में कानून

एक और भी कानून बनाया गया जिसने इस शासन को बदनाम किया और उसके प्रति बहुसंख्यक फ्रांसीसी जनता की भक्ति खोखली करदी—वह था धार्मिक स्थानों और वस्तुओं को अपवित्र करने के सम्बन्ध में कानून। इस अधिनियम के अनुसार चर्च की इमारतों में चोरी करने और पवित्र बर्तनों को अपवित्र करने के लिए, कुछ परिस्थितियों में, मृत्युदंड निर्धारित किया गया। वास्तव में इस कानून को कभी व्यवहार में नहीं लाया गया, किन्तु इससे शासन की बागडोर सँभालने वाले दल भी भावना का पता अवश्य लग गया, और तब से वह बोर्बों राजवंश के माथे पर कलंक का टीका बना हुआ है। इससे समाज के मध्य और निम्न वर्गों में, जिन पर अभी तक अठारवीं शताब्दी के बुद्धिवाद का गहरा प्रभाव था; भार कटुता उत्पन्न हो गई। ये वर्ग राजनीतिक और सामाजिक प्रतिक्रिया से भी अधिक धार्मिक प्रतिक्रिया से भयभीत होने लगे। कुछ दिनों बाद चार्ल्स ने पादरियों की-सी पोशाक पहन कर, जलता हुआ दीपक हाथ में लेकर अपने दरबारियों के साथ एक धार्मिक जुलूस में भाग लिया और पेरिस की सड़कों का चक्कर लगाया।

पादरियों की प्रतिक्रिया

इससे लोगों का भय और भी बढ़ गया। लोग पूछने लगे कि क्या अभिजातवर्ग और पादरियों के इस दल का उद्देश्य सामन्तों तथा चर्च की उस गौरवशाली स्थिति की पुनः स्थापना करना है जोकि क्रान्ति से पहले थी।

पोलीन्याक का मंत्रिमंडल

पोलीन्याक ने, जो कि इस शासन का सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी मंत्री था, अपनी घोषणा द्वारा स्पष्ट कर दिया कि सरकार का वास्तव में यही उद्देश्य था। १८२९ में अपने पद का भार सँभालते समय उसने कहा कि मेरा उद्देश्य है "समाज का पुनर्संगठन करना, पादरी वर्ग को राज्य में वही प्रमुख स्थान प्रदान करना जो कि पहले था, एक शक्तिशाली अभिजातवर्ग का निर्माण करना और उसे विशेषाधिकारों से विभूषित करना।"

इस मंत्रिमंडल की नियुक्ति से जनता के वैरभाव की अद्भुत जागृति हुई और पूर्वोक्त घोषणा से, जो सभी प्रकार के **उदारवादियों** के लिए एक चुनौती थी, वह और भी घनीभूत हो गई, क्योंकि उसमें स्पष्ट रूप से कह दिया गया था कि **फ्रांसीसी क्रान्ति** का जो भी विशिष्ट कार्य है वह समाप्त कर दिया जायगा, क्रान्ति से पूर्व की सामाजिक व्यवस्था की पुनः स्थापना की जाएगी, उस महत्त्वपूर्ण युग में जो सांविधानिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पुनर्संगठन हुआ था और नागरिकों को जो कुछ स्वतंत्रता मिल चुकी थी वह सब नष्ट कर दी जायगी और उससे पहले के विचार और आदर्श पुनः प्रतिष्ठित किये जाएँगे।

पोलीन्याक मंत्रिमंडल तथा उसकी दुःसाहसपूर्ण घोषणा ने एक संकट उत्पन्न कर दिया जो शीघ्र ही क्रान्ति के रूप में फूट पड़ा। **प्रतिनिधि सदन** ने माँग की कि इस अप्रिय मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर दिया जाय।

चार्ल्स दशम तथा प्रतिनिधि सदन के बीच संघर्ष

इसके उत्तर में राजा ने घोषणा की कि "मेरे निर्णय अपरिवर्तनीय हैं" और **सदन** को इस आशा से भंग करा दिया कि नए चुनाव के द्वारा मैं एक ऐसा सदन प्राप्त कर लूँगा जो मेरी इच्छा का वशवर्ती रहेगा। किन्तु मतदताओं का विचार इससे भिन्न था। चुनावों में राजा तथा मंत्रिमण्डल की करारी हार हुई। चार्ल्स के लिए झुकना कठिन था। उसने कहा कि मेरे भाई लुई सोलहवें का दुःखद अन्त इसलिए हुआ था कि उसने रियायतें देदीं थीं। चार्ल्स समझता था कि मैंने स्वयं इतिहास से कुछ सीख लिया है, किन्तु वास्तविकता यह थी कि उसने गलत सबक सीखा था।

जुलाई के अध्यादेश

जब राजा अन्य तरीकों से अपने उद्देश्यों को पूरा करने में असफल हुआ तो उसने शक्ति से काम लेने का संकल्प किया। २६ जुलाई, १८३९ को उसने अनेक अध्यादेश जारी किए जिनसे प्रेस की स्वतन्त्रता स्थगित करदी गई, **प्रतिनिधि सदन** भंग कर दिया गया, निर्वाचन प्रणाली बदल दी गई, मतदाताओं की संख्या १००,००० से घटाकर २५,००० करदी गई और नए चुनावों के लिए आदेश जारी कर दिए। संक्षेप में इसका अर्थ यह था कि राजा ही सर्वोच्च विधिकर्ता है, और अधिकार-पत्र का उस पर कोई अंकुश नहीं है। यदि ये अध्यादेश कायम रहते तो नागरिकों की स्वतन्त्रता पूर्णतया राजा की इच्छा पर निर्भर रहती। उनका

विरोध न करने का अर्थ होता सरकार के निरंकुश राजतन्त्रीय रूप को चुपचाप स्वीकार कर लेना।

किन्तु पेरिस की जनता इस प्रकार झुकने के लिए तैयार न थी। जैसे-जैसे अध्यादेशों का अर्थ स्पष्ट होता गया वैसे ही जनता का क्रोध भी भड़कता गया। सड़कों पर भीड़ें जमा होने लगीं और "मंत्रिमण्डल का नाश हो," "अधिकार-पत्र चिरजीवी हो" के नारे सुनाई देने लगे। बुधवार, जुलाई २८ को गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। विद्रोहियों में अधिकतर बूढ़े सैनिक, गणतन्त्रवादी और मजदूर लोग सम्मिलित थे, जो वोर्बा वंश से घृणा करते, और राजवंश के सफेद झण्डे के स्थान पर तिरंगे झण्डे को सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय ध्वज मानते थे। युद्ध तीन दिन तक चला। यही जुलाई क्रांति थी—**गौरवशाली तीन दिन**। यह सड़कों की लड़ाई थी और केवल पेरिस तक सीमित रही। विद्रोहियों की संख्या अधिक न थीं, सम्भवतः दस हजार के लगभग रही होगी। किन्तु सरकार के पास भी पेरिस में चौदह हजार से अधिक सैनिक न रहे होंगे विद्रोह का संगठन करना कठिन नहीं था। पेरिस की सड़कें सकरीं और टेड़ी-मेढ़ी थीं। इन सर्पिल गलियों में से तोपखानों को मोर्चों पर भेजना असम्भव था, और सरकार के पास वास्तव में यही एक हथियार था। सड़कें बड़े-बड़े पत्थरों को बिछाकर बनाई गई थीं। इन पत्थरों को उखाड़ कर ऐसे ढेर बनाये जा सकते थे जोकि विद्रोहियों के लिए किले का काम देते। जुलाई २७-२८ की रात में पत्थरों, उलटी हुई गाड़ियों, पीपों, सन्दूकों, फर्नीचर, पेड़ों तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं के ढेर सड़कों पर जमा कर लिये गये। इन बाधाओं के मुकाबिले में सैनिकों के लिए आगे बढ़ना कठिन हो गया। यदि वे एक ढेर को उलट उलटा कर आगे बढ़ते तो तुरन्त ही एक नया ढेर उनके पीछे बना लिया जाता जो उनके लिए और भी खतरनाक सिद्ध होता क्योंकि इससे कुमुक लाने और पीछे लौटने का मार्ग ही कट जाता। इसके अतिरिक्त सैनिकों के पास जो बन्दूकें थीं वे पुराने ढंग की थीं और विद्रोहियों के हथियारों से किसी प्रकार अच्छी न थीं। फिर अफसरों को सड़कों की लड़ाई का कोई ज्ञान नहीं था, जबकि विद्रोही लोग शहर, उसकी सड़कों और गलियों से भली-भाँति परिचित थे। एक विशेष बात यह थी कि सैनिक जनता से लड़ने के इच्छुक न थे। जुलाई की भयंकर गर्मी में युद्ध जारी रहा। जब चार्ल्स ने देखा कि सब कुछ हाथ से निकल चुका है तो उसने ३१ जुलाई को अपने नौ वर्ष के नाती **बोर्दो के ड्यूक** के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया; यह ड्यूक **बेरी के ड्यूक** का, जिसका पहले ही बध किया जा चुका था, पुत्र था। पेरिस से भाग कर चार्ल्स अपने परिवार के साथ इंगलैंड पहुँचा। दो वर्ष तक वह ग्रेट ब्रिटेन में ही रहा और एडिनबरा के **होलीरुड महल** में, जिसका **स्काटवासियों की रानी मेरी** (मेरी क्वीन आव स्काट्स) के जीवन से सम्बन्ध था, अपना दरबार चलाता रहा। बाद में वह आस्ट्रिया चला गया और वहाँ १८३६ में इस संसार से चल बसा।

जुलाई क्रान्ति (१८३०)

युद्ध की विशेषता

चार्ल्स दशम ने सिंहासन त्याग दिया

इस प्रकार सफल क्रांति ने दुबारा वोर्बा वंश के एक राजा को सिंहासन से

बोर्बां वंश अथवा औलिया वंश

मार भगाया। अब प्रश्न यह था कि सरकार की बागडोर कौन सँभाले। लोगों ने **बोर्दो के ड्यूक** के हक पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया यद्यपि राजतन्त्रीय सिद्धान्त और व्यवहार की दृष्टि से उसका हक सर्वथा सच्चा था और उसमें कोई खोट नहीं दिखाई देती थी। वही फ्रांस का वैध शासक था किन्तु जनता ने, जोकि वैध राजतन्त्र से तंग आ चुकी थी, उसके अधिकार की चुपचाप उपेक्षा कर दी। जिन लोगों ने लड़ाई में सचमुच भाग लिया था वे निस्सन्देह गणतन्त्रीय व्यवस्था के पक्षपाती थे। किन्तु पत्रकार, प्रतिनिधि और बहुसंख्यक पेरिसवासी इसके विरुद्ध थे। एक तो इसलिए कि उनके मस्तिष्क में अभी तक पुराने गणराज्य की स्मृतियाँ ताज़ी थी, और दूसरे उनका विश्वास था कि इससे फ्रांस को पुनः राजतन्त्रीय यूरोप के साथ उलझना पड़ जायगा। वे **ओलिया के ड्यूक** (ड्यु क दोर्लेअँ) लुई फीलीप के समर्थक थे, जो राजवंश की एक कनिष्ठ शाखा का प्रतिनिधि था और जिसकी उदार विचारों से सदैव सहानुभूति रही थी। कहा गया कि यदि ऐसा व्यक्ति राजा बन गया तो फिर सामन्त तथा पादरी वर्गों को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न न होगा, सरकार उदार नीति पर चलेगी और मध्य वर्ग पर आश्रित रहेगी तथा **अधिकार-पत्र** के सिद्धान्तों का सच्चाई के साथ अनुसरण किया जायगा।

लुई फीलीप राजा बना

राजतन्त्र और गणतन्त्र के बीच अन्तिम निर्णय गणतन्त्रवादियों के नेता लाफायेत के हाथों में था। उसने अन्त में लुई फीलीप का ही समर्थन किया, और कहा कि ऐसे उदार तथा लोकतन्त्रवादी राजा के अधीन राजतन्त्र अन्ततोगत्वा "सबसे अच्छा गणतन्त्र" सिद्ध होगा, अगस्त को **प्रतिनिधि सदन** ने वैध शासक के अधिकार को ठुकरा कर लुई फीलीप को सिंहासन पर बिठला दिया।

ऐसी थी जुलाई क्रान्ति जो अप्रत्याशित रूप से और बिना तैयारी के ही सम्पादित हो गई। २५ जुलाई को किसी ने उसका स्वप्न भी न देखा था और एक सप्ताह उपरान्त वह पूर्ण भी हो गई। एक राजा को अपदस्थ किया गया, दूसरे को सिंहासन पर बिठलाया गया और **अधिकार-पत्र** में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया। संसदीय शासन व्यवस्था कायम रही, और अभिजाततन्त्र की पुनरावृत्ति रोक दी गई।

पुनःस्थापना का अन्त

इस प्रकार **पुनःस्थापना** का अन्त और लुई फीलीप के शासन का आरम्भ हुआ। जिन लोगों को बोर्बां वंश की वरिष्ठ शाखा को उखाड़ फेंकने का श्रेय था उन्हें कोई पुरस्कार नहीं मिला। उन्हें तिरंगा झण्डा तो पुनः मिल गया किन्तु सरकार धनी मध्य वर्ग (बुर्जुआज़ी) के हाथों में पहुँच गयी। गणतन्त्रवादियों को झुकना पड़ा, किन्तु उन्होंने न तो अपने सिद्धान्त ही छोड़े और न आशाएँ। उनके एक नेता कावेञ्ञाक् को जब उसके दल के इस त्याग के लिए धन्यवाद दिया गया तो उसने उत्तर दिया—"हमें धन्यवाद देना तुम्हारी भूल है; हम इसलिए झुक गए हैं कि हममें पर्याप्त शक्ति नहीं थी। बाद में स्थिति इससे भिन्न होगी।" वास्तव में **क्रान्ति** ने लोकप्रभुत्व के सिद्धान्त को महान् प्रोत्साहन दिया।

अध्याय १४

फ्रांस के बाहर क्रान्तियाँ

१८३० की क्रान्ति का समस्त यूरोप पर प्रभाव पड़ा—पोलैंड, जर्मनी, इटली, स्विट्जरलैंड, इंगलैंड, और नेदरलैंड्स पर। उससे व्यापक लोकतान्त्रिक आन्दोलनों को प्रोत्साहन और संकेत मिला, और कुछ समय के लिए तो ऐसा लगा कि १८१४ में वीना में जिस व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह गिर कर चकनाचूर होने वाली है। इससे यूरोप के शासकों के लिए एक तात्कालिक समस्या उठ खड़ी हुई। १८१५ में उन्होंने अपने ऊपर उत्तरदायित्व लिया था कि हम "क्रान्ति" के विस्फोट को रोकेंगे, यूरोप की "सामान्य शान्ति" के सम्बन्ध में सदैव सावधान रहेंगे और उसको निश्चय ही कायम रक्खेंगे। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, उन्होंने क्रान्ति के ज्वर से पीड़ित देशों में हस्तक्षेप करने के सिद्धान्त का अनुसरण किया था, क्योंकि उनका विश्वास था कि लोकव्यवस्था की सुरक्षा का यही सर्वोत्तम उपाय है। अब प्रश्न यह था कि क्या वह स्वनिर्मित अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस पेरिस की भीड़ द्वारा फ्रांस के वैध राजा को हटाए जाने को चुपचाप सहन कर लेगी। उस अशान्त देश में क्रान्ति पुन: उमड़ पड़ी थी, क्या अब वे वहाँ भी उसी भाँति हस्तक्षेप करेंगे जैसा वे स्पेन और इटली में कर चुके थे? प्रारम्भ में तो उन्होंने ऐसा ही करने की इच्छा प्रकट की। मैटरनिख के मन में तत्काल तो यही आया कि विद्रोह द्वारा स्थापित इस राजा के विरुद्ध यूरोपीय शक्तियों का एक गुट संगठित किया जाय। किन्तु जब समय आया तो उसे ऐसा करना अव्यावहारिक जान पड़ा, क्योंकि रूस पोलैण्ड के विद्रोह में उलझा हुआ था, आस्ट्रिया इटली की क्रान्तियों में, प्रशिया जर्मनी के इसी प्रकार के आन्दोलनों में और इंगलैंड ऐसी घरेलू समस्याओं के विवाद में फँसा हुआ था जैसी कि उसके सामने कई दशकों से नहीं आई थीं। इसके अतिरिक्त इंगलैंड ने क्रान्तियों का समर्थन किया। अत: सभी शक्तियों ने लुई फीलीप को मान्यता दे दी यद्यपि भिन्न-भिन्न मात्रा में क्रोध सभी ने प्रकट किया। फलस्वरूप कम से कम एक चीज में तो १८१५

जुलाई क्रान्ति का व्यापक प्रभाव

पवित्र संघ की असमर्थता

की व्यवस्था भंग ही हो गई। क्रान्ति ने, जिससे कि ये शक्तियाँ घृणा करती थी, बोर्वां वंश की उस वरिष्ठ शाखा को अब मार भगाया था जिसे मित्रों ने फ्रांस के सिंहासन पर १८१५ में बिठलाया था।

अब १८१५ की राजनैतिक व्यवस्था का एक अन्य भाग टूट कर गिर गया। **वीना सम्मेलन** ने फ्रांस के उत्तर में नेदरलैंड्स के रूप में एक अन्य अप्राकृतिक राज्य बना कर खड़ा कर दिया था। इस राज्य की रचना का स्पष्ट उद्देश्य फ्रांस के विरुद्ध एक बाँध खड़ा करना था। वीना सम्मेलन से पहले बेल्जियम के प्रान्त आस्ट्रिया के थे, अब उन्हें हालैंड में मिला दिया गया जिससे कि वह राज्य इतना शक्तिशाली हो जाय कि यदि फ्रांस उस पर आक्रमण करे तो अन्य शक्तियों के सहायतार्थ आने तक वह उसका प्रतिरोध कर सके।

वीना सम्मेलन तथा नेदरलैंडस का राज्य

इन दो जातियों को एक शासक की अधीनता में औपचारिक रूप से एकीकृत घोषित कर देना सरल था, किन्तु उन्हें वास्तविक अर्थ में एक राष्ट्र बना देना कठिन था। यद्यपि मानचित्र पर दृष्टिपात करने से शायद ऐसा लगे कि यूरोप के इस छोटे-से कोने में बसी हुई जातियों में सारूप्य होगा, किन्तु बात ऐसी नहीं थी। उसमें सादृश्य की चीजें उतनी न थीं जितनी कि भिन्नता की। उनकी भाषाएँ एक दूसरे से भिन्न थीं। उनके धर्म भिन्न थे, डच लोग प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के अनुयायी, थे और बेल्जियमवासी कैथोलिक। उसके आर्थिक जीवन और सिद्धान्तों में भेद था। हालैंड कृषिप्रधान और व्यावसायिक देश था और वहाँ के निवासी मुक्त व्यापार के पक्षपाती थे, जबकि बेल्जियम के लोग उत्पादक थे और संरक्षण की ओर झुके हुए थे।

दो भिन्न जातियों की एकता

बेल्जियम के लोगों के लिए यह एकता प्रारम्भ से ही दुखदाई सिद्ध हुई। उन्हें एक ऐसी जाति के आधीन कर दिया गया था जो संख्या में उनसे छोटी थी। **फ्रांसीसी क्रान्ति** की भावना और उदाहरण ने अन्य जातियों की भाँति उनके अन्दर भी राष्ट्रीय भावना जागृत कर दी थी और वे भी पहले से अधिक व्यापक और स्वतन्त्र जीवन की आशा करने लगे थे।

जिस एकता का सूत्रपात्र इस मनोमालिन्य और अनिच्छा से हुआ उससे बेल्जियमवासियों को सन्तोष नहीं हो सकता था। निरन्तर झगड़े चलते रहे। बेल्जियमवासी इस बात से अप्रसन्न थे कि राज्य तथा सेना के लगभग सभी अधिकारी डच्च थे। जब राजा ने डच भाषा को विशिष्ट पद प्रधान करने का प्रयत्न किया, जिसके कि वह योग्य नहीं था, तो उन्होंने उसका विरोध किया। राजा अपने राज्य की दोनों जातियों को मिलाकर एक करना चाहता था, इससे मनोमालिन्य निरन्तर बढ़ता गया। जैसे-जैसे समय बीतता गया इस अवस्था के प्रति बेल्जियमवासियों की घृणा गहरी होती गई।

डचों तथा बेल्जियम-वासियों के बीच झगड़े

जुलाई क्रान्ति ने इस ज्वलनशील सामग्री में चिनगारी का काम किया। पेरिस की भाँति ब्रुसल्स में भी सड़कों पर युद्ध हुआ। क्रान्ति शीघ्रता से फैलने लगी। अक्टूबर ४, १८३० को सरकारी सेनाएँ मार कर भगा दी गई और बेल्जियम

ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। सरकार के भावी स्वरूप को निर्धारित करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया गया। उसने राजतन्त्र के पक्ष में निर्णय किया, एक उदार ढँग का संविधान अंगीकार कर लिया और कोवुर्ग के लियोपोल्ड को राजा चुन लिया, जिसका जुलाई, १८३१ में राज्याभिषक कर दिया गया।

अव प्रश्न यह था कि क्या **बड़ी शक्तियाँ**, जिन्होंने १८१५ में वेल्जियम को हॉलेंड से जोड़ दिया था, इस वात को सहन करेंगी कि उनकी सम्मति के विना उनके किये हुए पर पानी फेर दिया जाय। क्या वे नये राज्य को मान्यता देने को तैयार होंगी ? हम पहले ही देख चुके हैं। कि उन्होंने स्पेन और इटली के विद्रोहों को कुचल दिया था। क्या वे अपने काम अर्थात् वीना की सन्धियों को कायम रखने के लिए फिर यही करेंगी ? किन्तु इस समय उनमें फूट थी और उनकी इस फूट पर ही नए राज्य की मुक्ति निर्भर थी। जार तो हस्तक्षेप करने के पक्ष में था, और प्रुशिया का झुकाव भी कुछ इसी ओर मालूम होता था, किन्तु लुई फीलीप ने इससे भिन्न रवैया अपनाया। उसे डर था कि यदि मैंने निरंकुश राजाओं को वेल्जियम की नवार्जित स्वतंत्रा को कुचल लेने दिया तो पेरिस की जनता मेरे ही सिंहासन को उलट देगी। अतः उसने स्पष्ट चेतावनी दे दी कि यदि अन्य शक्तियों ने वेल्जियम में हस्तक्षेप किया तो मैं भी "सन्तुलत को कायम रखनें के लिए" हस्तक्षेप करूँगा।

वेल्जियम के राज्य को मान्यता

इसलिए शक्तियों ने उस स्थिति में जो अधिक से अधिक किया जा सकता था किया। लन्दन में एक सम्मेलन हुआ जिसमें रूस, प्रुशिया आस्ट्रिया, फ्रांस और इंगलैंड ने वेल्जियम की स्वाधीनता स्वीकार कर ली। उन्होंने इससे भी आगे कदम बढ़ाया और उसकी तटस्थता का सम्मान करने का का सदैव के लिए वचन दे दिया।

वेल्जियम की क्रान्ति की सफलता का श्रेय वहुत कुछ पोलेंड की क्रान्ति को था, जिनका विनाशकारी विफलता में अन्त हुआ। रूस, प्रुशिया तथा आस्ट्रिया में से कोई भी शक्ति नेदरलेंड्स के राज्य का इस प्रकार से छिन्न-भिन्न होना सहन न करती, यदि उसे इस वात का डर न होता कि यदि इस सम्वन्ध में हमने फ्रांस से युद्ध किया तो फ्रांस वदले में पोलेंड की सहायता करेगी, और यह स्पष्ट है कि उनके लिए पोलैण्ड का भविष्य नेदरलेंड्स के भविष्य से अधिक महत्त्वपूर्ण था। १८३० की **फ्रांसीसी क्रान्ति** ने वेल्जियम के राज्य को जन्म दिया किन्तु उसी समय पोलेंड के राज्य का अस्तित्व विलुप्त हो गया।

पोलैण्ड में क्रान्ति

पोलैण्ड का विनाश

मध्य युग में पोलेंड रूस से भी अधिक शक्तिशाली राज्य था। उसमें वाल्टिक से काले सागर तक और ओडर से नीपर तक की भूमि सम्मिलित थी। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक वह स्वाधीन राज्य वना रहा था। उन पच्चीस वर्षों के अन्दर उसके पड़ौसी रूस, प्रुशिया और आस्ट्रिया ने १७७२, १७९३ और १७९५ के प्रसिद्ध अथवा कुख्यात वटवारों के द्वारा उसकी स्वाधीनता का अन्त कर दिया और उसकी भूमि हड़प ली। मानचित्र पर पोलेंड का कोई चिन्ह भी शेष न रहा।

पोप लोगों ने प्राणों की वाजी लगाकर प्रतिरोध किया किन्तु "जब कोसिउस्को का पराभव हुआ तो स्वाधीनता चीख पड़ी।" एक अर्वाचीन इतिहासकार लिखता है, "कितना ही चतुराई पूर्ण तर्क वितर्क क्यों न किया जाय **द्वितीय विभाजन** को क्षम्य नहीं ठहराया जा सकता।" और यही विभाजन सबसे अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ। "इस प्रसंग में भूमि का अपहरण सबसे छोटा अपराध था। इस भयंकर राजनीतिक अपराध का सबसे कुत्सित पहलू यह था कि एक ऐसी जाति के राष्ट्रीय सुधार आन्दोलन को बलपूर्वक कुचला गया और उसे फिर से अराजकता और भ्रष्टाचार के गहरे खड्ड में ढकेल दिया गया, जिसने अद्वितीय प्रयत्न और बलिदान करके स्वतन्त्रा और व्यवस्था के पुन: दर्शन किए थे। यहाँ भी रूस की साम्राज्ञी के तरीके उतने धूर्ततापूर्ण नहीं थे जितने कि प्रुशिया के राजा के। कैथराइन ने खुले रूप से एक ऐसे डाकू ऐसा आचरण किया जो कि अपने ऐसे शत्रु पर आक्रमण करता है जिससे उसकी रंजिस है; किन्तु फ्रेडरिक विलियम द्वितीय उस समय आया जब कि युद्ध समाप्त हो चुका था और एक ऐसे मित्र की लूट करने में सहायता पहुँचाई, जिसकी रक्षा करने का वह पहले वचन दे चुका था।"[1]

१७९३ का अपराध

पूर्वी यूरोप के तीन निरंकुश शासकों ने एक स्वतंत्र राज्य का इस प्रकार जो वध किया उसके परिणाय महत्त्वपूर्ण और दूरगामी हुए। पोलेंड की समस्या तब से यूरोप के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण तत्व बनी हुई है। और आज भी उसका महत्त्व है। अन्य स्वाधीनता प्रेमी जातियों की भाँति पोल लोगों ने अपने इस क्रूर दुर्भाग्य के सामने घुटने नहीं टेके। किन्तु उस समय आशा और प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त उनके सामने कोई चारा न था।

पोलैण्ड की स्थायी समस्या

एक बार एडमंड बर्क ने लिखा था: कोई बुद्धिमान और ईमानदार व्यक्ति इस विभाजन का समर्थन नहीं कर सकता, और न इसका चिन्तन करते समय यह भविष्यवाणी किए बिना रह सकता है कि भविष्य में किसी समय सभी देशों के लिए इस कुकर्म के भयंकर परिणाम होंगे।" मुकुटधारी लुटेरों के इस घृणित कार्य का एक विशिष्ट फल यह हुआ कि इससे राष्ट्रीयता की भावना को जो कि आधुनिक इतिहास की एक अत्यधिक कष्टदायक प्रवृति सिद्ध हुई है, आश्चर्यजनक उत्तेजना मिली। जैसा कि लार्ड एक्टन ने लिखा है: "पुराने निरंकुशतंत्र के इस विश्वविदित तथा अत्यधिक क्रान्तिकारी कार्य ने यूरोप में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को जाग्रत किया, और इस प्रकार एक प्रसुप्त अधिकार को बलवती आकांक्षा में और एक भावना को राजनीतिक दावे में परिवर्तित कर दिया।"

पोलैण्ड के विनाश ने राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहन दिया

पोल जाति की उत्कट देशभक्ति ने एक अविनाशी आदर्श का रूप धारण कर लिया, जिसने दिन में मेघपुंज का और रात में प्रकाश स्तम्भ का काम दिया, उस राष्ट्र के ध्यान को, जिसका क्रूर ढंग से नाश कर दिया गया था, केन्द्रित किया

---

1. Nisbet Bain *Slavonic Europe*. p. 404.

और उस मार्ग की ओर इंगित किया जिसे अभी तै नहीं किया जा सका था, किन्तु जिस पर चलकर उसके दुखों की परिसमाप्ति एक सुखी और सम्पन्न जीवन में हो सकती थी।

१८१५ में पोलैण्ड के राज्य की पुनः स्थापना

पोल लोगों को आशा थी कि शायद फ्रांस की क्रान्ति से हमारी राष्ट्रीयता की पुनः स्थापना हो सकेगी, और बाद में ऐसी ही आशा उन्होंने नेपोलियन से भी की थी। उनको उधर से निराश होना पड़ा था; किन्तु १८१५ में वीना सम्मेलन में उन्हें अप्रत्याशित सहायता मिली, यद्यपि अन्त में वह भी मृगमरीचिका ही सिद्ध हुई। रूस का ज़ार अलेक्जांडर प्रथम उस समय उदार तथा रोमांटिक भावनाओं से देदीप्यमान हो रहा था, और कुछ वर्षों तक उसने विभिन्न देशों में उदारवादी सिद्धान्तों को आश्रय भी दिया। इन्हीं विचारों के प्रभाव में आकर उसने पोलैण्ड के राज्य की पुनः स्थापना करने का संकल्प किया। उसकी योजना थी कि पोलैण्ड रूसी साम्राज्य से पृथक् राज्य होगा। वह स्वयं रूस का सम्राट और पोलैण्ड का राजा होगा। दोनों राज्यों की एकता केवल वैयक्तिक होगी।

अलेक्जांडर चाहता था कि पोलैण्ड का अठारहवीं शताब्दी में जितना क्षेत्र था, वह सब उसे वापस देकर उसकी पुनःस्थापना की जाय। यह तभी सम्भव हो सकता था जब कि आस्ट्रिया और प्रुशिया अपने-अपने प्रान्तों को, जो उन्होंने तीन विभाजनों में हड़प लिये थे, लौटा दें। किन्तु वीना सम्मेलन में यह चीज पूरी न हो सकी। यद्यपि प्रुशिया और आस्ट्रिया ने अपने पोलैण्ड वाले क्षेत्रों का कुछ भाग दे दिया, किन्तु कुछ फिर भी उनके अधिकार में बना रहा। पोलैण्ड के सम्बन्ध में सबसे दुःखद बात यह थी कि भावना की दृष्टि से उसके निवासी एक राष्ट्र थे, किन्तु इस समय वे तीन भिन्न राज्यों की प्रजा थे, और इसलिये उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध लड़ने के लिए भी बाध्य किया जा सकता था अर्थात् भाई को भाई से लड़ाया जा सकता था।

अलेक्जांडर ने पोलैण्ड को एक संविधान प्रदान किया

अतः १८१५ में पोलैण्ड के जिस नये राज्य का निर्माण किया गया वह ऐतिहासिक पोलैण्ड का खंड था, और न उसमें वे सब पोप क्षेत्र ही सम्मिलित थे जिन पर रूस ने अधिकार कर लिया था। अलेक्जांडर इस नए राज्य का राजा बना। उसे उसने एक संविधान प्रदान किया, एक द्विसदनात्मक संसद स्थापित की और उसे बहुत कुछ शक्ति भी दे दी। रोमन कैथोलिक धर्म को राजधर्म माना गया, किन्तु अन्य पन्थों को पर्याप्त स्वतन्त्रता दे दी गई। प्रेस की स्वतन्त्रता की गारंटी कर दी गई, यद्यपि उसके दुरुपयोग को रोकने के लिए कुछ कानून भी बना दिए गए। पोल भाषा को राज्य भाषा बनाया गया। यह नियम रक्खा गया कि सभी सरकारी पदों पर पोल लोग नियुक्त किए जायेंगे, रूसी नहीं। इस प्रकार पोलैण्ड में जैसी उदार संस्थाएँ स्थापित की गईं वैसी संस्थाएँ केन्द्रीय योरोप के किसी देश में उस समय देखने को न मिलती थीं। ऐसा लगता था कि अब सांविधानिक राजतन्त्र के अन्तर्गत समृद्धिशाली युग आरम्भ होने को है। पोलैण्डवासियों को इतनी नागरिक स्वतन्त्रता पहले कभी उपलब्ध नहीं हुई थी, और अब उन्हें पर्याप्त मात्रा में स्वशासन प्राप्त होने जा रहा था। किन्तु इस सद्भावनापूर्ण व्यवस्था को आरम्भ से ही बाधाओं का

पोलों तथा रूसियों के बीच संघर्ष

सामना करना पड़ा। रूसी लोग पोलैण्ड की पुनः स्थापना के विचार को ही सहन न कर सकते थे, और इस चीज को तो वे फूटी आँखों भी नहीं देख सकते थे कि उस देश में संविधान की स्थापना की जाय, जबकि स्वयं उन्हें किसी प्रकार का संविधान नहीं मिला हुआ था। उनका कहना था, कि जब हमारे साथ, जो जार के सच्चे समर्थक हैं, कोई रियासत नहीं की जाती तो हमारे इन पुराने शत्रुओं पर सम्राट का इतना अनुग्रह क्यों हैं? रूसियों और पोलों की शत्रुता शताब्दियों पुरानी थीं; पोलैण्ड के रूसी साम्राज्य के अन्तर्गत आजाने से भी इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी। इसके अतिरिक्त पोलों का प्रमुख वर्ग उदार शासन से भी अधिक स्वाधीनता की कामना करता था। वे अपनी समृद्धि के दिनों को कभी नहीं भूल सकते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश उनमें न तो इतनी बुद्धि थी और न संयम कि वे अपनी इस स्वतन्त्रता का प्रयोग देश की एकता और सुदृढ़ता का निर्माण करने के लिए कर सकते, जिनकी कि पोलैण्ड में सदैव कमी रही थी। यह तभी हो सकता था जब कि सामन्तों के विरुद्ध किसानों की शिकायतों को दूर किया जाता और सभी देशवासियों को यह अनुभव करने का अवसर दिया जाता कि हम सब एक संयुक्त जाति हैं न कि उत्पीडितों और उत्पीड़कों के दो पृथक् वर्ग। उन्होंने नए संविधान के संरक्षण में धीरे-धीरे शक्तिशाली राष्ट्रीयता का परिवर्धन करने का प्रयत्न नहीं किया, जिससे कि राष्ट्र इतना प्रबल हो जाता कि भविष्य में कभी स्वाधीनता प्राप्त करने में सफल होता; उन्होंने अलेक्जांडर द्वारा प्रदान की गई सीमित शक्तियों के विरुद्ध अपना असन्तोष व्यक्त किया; वे अनेक चीजों के लिए जार की सरकार की आलोचना करने लगे, और इसके लिए जार ने उन्हें तुरन्त ही चेतावनी भी दे दी। इस प्रकार दोनों पक्षों के बीच मनमुटाव ठीक उस समय गम्भीर हो गया जबकि अलेक्जांडर की प्रारम्भिक दिनों की उदारता फीकी पड़ने लग गई थी।

पोल लोग दो वर्गों में विभक्त

अलेक्जांडर का उत्तराधिकारी निकोलस प्रथम १८२५ में सिंहासन पर बैठा। वह पक्का निरंकुशवादी था, और उसकी भावनाएँ पूर्णतया भिन्न थीं। पोलैण्ड के छोटे सामंतों में, जिन्हें आत्मसंयम का कभी अभ्यास नहीं रहा था और जिन पर पश्चिमी यूरोप के लोकतांत्रिक विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था, असन्तोष की भावना बड़ी प्रबल थी। फ्रांस की सफल क्रान्ति के समाचार को सुनकर इन लोगों के दिलों में आग भड़क उठी, उन्हें विश्वास था कि यदि हमने फ्रांसीसियों का अनुसरण किया तो वे हमारी सहायता अवश्य करेंगे। अतः जब जार ने पोलैण्ड की सेना से बेल्जियम की क्रान्ति का दमन करने के लिए प्रस्थान करने को कहा तो **उदारवादियों** का संकल्प तुरन्त ही पक्का हो गया। १८३० के अन्त में उन्होंने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया, घोषणा कर दी कि पोलैण्ड में रोमानोफ वंश का शासन समाप्त हो गया है, और वे जीवन-मरण के संघर्ष की तैयारियाँ करने लगे।

जुलाई क्रान्ति का प्रभाव

किन्तु रूस के सैनिक साधन इतने प्रचुर थे कि पोलैण्ड अकेला अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता था। पोलों को विदेशी

हस्तक्षेप की आशा थी, किन्तु किसी विदेशी शक्ति ने हस्तक्षेप नहीं किया। इसमें सन्देह नहीं, कि फ्रांस, इंगलैंड और जर्मनी की जनता में पोलैण्ड के लिए बड़ी सहानुभूति और उत्साह था। किन्तु सरकारों ने कोई कदम नहीं उठाया, कारण यह था कि किसी भी सरकार पर जनमत का कोई प्रभाव न नहीं था।

पोलैण्ड की विदेशी सहायता की आशा दुराशा सिद्ध हुई

इस प्रकार पोलैण्ड को रूस के विरुद्ध अकेले ही जूझना पड़ा; अतः परिणाम के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं हो सकता था। पोल लोगों ने वीरतापूर्वक युद्ध किया, किन्तु न तो उन्हें अच्छा नेतृत्व उपलब्ध था, न उन्होंने सावधानी से अपना संगठन किया था और उनमें सैनिक अधिकारियों की अधीनता में काम करने की भावना ही थी

विद्रोह की सफलता

युद्ध जनवरी १८३१ में प्रारम्भ हुआ और उसी वर्ष के सितम्बर मास तक चलता रहा अन्त में वारसा पर रूसियों का अधिकार हो गया। विद्रोह के परिणाम अत्यधिक घातक हुए। पहले तो इन परिस्थितियों में विद्रोह करना ही बुद्धिमानी का काम नहीं था, फिर उसका संचालन भी कुशलता के साथ नहीं किया गया। एक पृथक् राज्य के रूप में पोलैंड का अस्तित्व समाप्त हो गया, और अब वह रूसी साम्राज्य का एक प्रान्त मात्र रह गया। उसका संविधान रद्द कर दिया गया, और इसके बाद फिर उस पर अत्यधिक क्रूरता और मनमाने ढँग से शासन किया गया। विद्रोहियों को बर्बरतापूर्ण दंड दिए गए। अनेक लोग फाँसी पर चढ़ा दिए गये और बहुतों को साइबेरिया भेज दिया गया। हजारों पोल अधिकारी और सैनिक भागकर पश्चिमी यूरोप के देशों में पहुँच गए और पेरिस, वीना तथा बर्लिन के क्रान्तिकारी तत्त्वों में सम्मिलित हो गए और स्वतन्त्रता के लिए जहाँ कहीं संघर्ष हुआ उसमें उन्होंने सदैव सहयोग दिया। वे सर्वत्र अत्याचार के शत्रु थे, क्योंकि उन्हें स्वयं उसका भयंकर शिकार होना पड़ा था। अब रूस ने ऐसी दमनकारी नीति का अनुसरण किया कि पोल भाषा तक का भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। पोल लोगों को इस बात का अवश्य भारी सन्तोष था कि अपने विद्रोह के द्वारा उन्होंने फ्रांस और बेल्जियम की क्रान्तियों की सफलता में महान योग देकर बड़ा उपकार किया था। उन्होंने **पवित्र संघ** को १८३० की क्रान्तियों का दमन करने से रोक दिया था, अन्यथा १८२० के इतिहास की पुनरावृत्ति होने से न बचती।

इटली में क्रान्ति

इटली एक अन्य देश था जहाँ १८३० की क्रान्तिकारी लहर का प्रभाव पड़ा। मोडेना और पार्मा की रियासतों में विद्रोह उठ खड़े हुए और वहाँ के शासकों को बाध्य होकर भागना पड़ा। पोप के राज्यों में कुछ भी लपटें उठीं। आस्ट्रिया के प्रति घृणा और स्थानीय शासकों का मनमाना तथा अन्यायपूर्ण शासन ही विद्रोहों के मुख्य कारण थे। क्रान्तिकारी यह तो जानते थे कि आस्ट्रिया का रुख शत्रुतापूर्ण होगा, किन्तु उन्हें फ्रांस तथा इटली के अन्य राज्यों की जनता से सहायता की आशा थी। किन्तु कहीं से मदद न मिली, लुई फीलीप की अपने घर में ही स्थिति इतनी डावाँडोल थी कि वह बाहर हस्तक्षेप करने की बात सोच भी नहीं सकता था। फल यह हुआ कि आस्ट्रिया सेना तुरन्त

१८३१ में इटली की क्रान्तियों को सरलता से दबा दिया गया

आ धमकी और निर्वासित शासकों को पुनः सिंहासन पर बिठला दिया। पोप को अपने प्रान्त पुनः वापिस मिल गये। नाटक का क्षणिक दृश्य समाप्त हो गया। इटली में पुनः प्रतिक्रिया का आधिपत्य कायम होगया था।

जर्मनी में क्रान्ति

इस प्रकार १८३० में जर्मनी के पड़ौसी देशों—फ्रांस, वेल्जियम, पोलैंड और इटली—में क्रान्ति की ज्वाला धधकी, यद्यपि हर देश में उसका जोर एकसा न था। स्वयं जर्मनी भी आन्दोलन की लपटों से अछूता न बचा। ब्र ुंजविक, सैक्सनी, हेसे, का कासेल, तथा सेक्सनी के दो ठिकानों में क्रान्तिकारी आन्दोलन फूट पड़े, जिसका फल यह हुआ कि उन राज्यों की जनता को भी संविधान मिल गए, जर्मनी के कुछ राज्यों में संविधानों की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। नए संविधानों की स्थापना मुख्यत: उत्तरी जर्मनी में हुई, जबकि पुरानों की प्रधानतया दक्षिणी जर्मनी में हुई थी। किन्तु प्रुशिया और आस्ट्रिया के दो बड़े राज्य अछूते बच गए और जैसे ही पोलैण्ड, इटली और फ्रांस के अधिक गम्भीर संकट टल गए और उन्होंने अपने को सुरक्षित समझा वैसे ही वे प्रतिक्रिया को पुनः स्थापना करने के काम में जुट गए। मैटरनिख ने जिस प्रकार पहले वार्टबुर्ग के समारोह का प्रयोग किया था वैसे ही इस बार उसने जनता के कुछ प्रदर्शनों का, जो तत्त्वतः महत्त्वहीन थे, प्रभावकारी ढँग प्रयोग किया और उनके वहाने प्रतिक्रिया की दिशा में १८१९ की **कार्ल्सबाड आज्ञप्तियों** से भी अधिक आगे बढ़ गया। उन आज्ञप्तियों का मुख्य उद्देश्य प्रेस तथा विश्वविद्यालयों का दमन करना था। १८३२ तथा १८३४ में जो नए विनिमय वनाए गये उनके अनुसार पुरानी आज्ञप्तियों के नियमों को हो नहीं दुहराया गया वल्कि उनके अतिरिक्त कुछ और दमनकारी कानून पास किए गये जिसके द्वारा विभिन्न राज्यों में जो संसदें विद्यमान थीं उनके अधिकारों को सीमित कर दिया। गया और प्रेस तथा विश्वविद्यालयों का और भी अधिक गला घोंट दिया गया। थोड़ीसी रियासतों में जो कुछ संविधानिक जीवन था वह भी लगभग नहीं के वरावर रह गया। जर्मनी के राजनीतिक इतिहास में १८४७ तक कोई रोचकता नहीं दिखाई देती; उस वर्ष की क्रान्तियों ने जब निषेध तथा दमन की सम्पूर्ण पुरानी व्यवस्था को झकझोर कर धराशायी कर दिया तब इतिहास में कुछ नवीनता आई।

जर्मनी में क्रान्ति

अध्याय १५

लुई फीलीप का शासन-काल

लुई फीलीप का जीवन वृतान्त (१७७३-१८५०)

फ्रांसीसियों का नया राजा लुई फीलीप सिंहासन पर बैठने के समय अपनी आयु के सत्तावनवें वर्ष में चल रहा था। वह कुख्यात फिलिप एगालीते का पुत्र था, जिसने क्रान्ति के काल में अपने चचेरे भाई लुई सोलहवें से सिंहासन छीनने के लिए षड्यन्त्र रचा था, और जिसे वाद में स्वयं दयनीय स्थिति में सूली पर चढ़ कर अपने प्राण गँवाने पडे थे। १७८९ में लुई फीलीप की आयु केवल सोलह वर्ष की थी, अत: वह राजनीति में भाग लेने के योग्य न था, यद्यपि वह जेकोबिन क्लव का सदस्य वन गया था। वाद में वह सेना में भर्ती हो गया और वामी तथा जेमाप्प के युद्धों में गणतन्त्र की ओर से वीरतापूर्वक लड़ा। किन्तु जव उस पर देशद्रोही होने का सन्देह किया जाने लगा, तो वह १७९३ में फ्रांस से भाग गया, और जीवन के इक्कीस वर्ष निर्वासन में विताए। वह स्विट्जरलैंड गया, कुछ दिनों वहाँ रहा और राइखेनाउ के एक स्कूल में भूगोल और गणित पढ़ाता रहा। जव लोगों को उसका रहस्य मालूम हो गया तो स्विट्जरलैंड छोड़ कर चला गया और उत्तर में उत्तरीय अन्तरीप (नार्थ केप) और पश्चिम में संयुक्त राज्य तक की यात्रा की। अन्त में वह इंगलैंड में वस गया और ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई पेंशन के सहारे जीवन निर्वाह करने लगा। नेपोलियन के पतन के वाद वह फ्रांस लौटा और अपनी पारिवारिक सम्पत्ति का वड़ा अंश पुनः प्राप्त कर लिया—उसके परिवार की सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई थी किन्तु अभी तक वेची नहीं गई थी। पुनः स्थापना के काल में उसने पेरिस के केन्द्र में स्थिति प्रसिद्ध राजमहल में निवास किया और ऐसे लोगों से सम्वन्ध स्थापित किए जिनसे कि भविष्य में लाभ होने की आशा हो सकती थी; विशेषकर उसने मध्यवर्ग के धनी लोगों से घनिष्टता वढ़ाई और इसके लिए उदार भावनाओं का प्रदर्शन किया और रूढ़ियों से मुक्त मौज और मस्ती का जीवन विताया। वह पेरिस की सड़कों पर अकेला घूमता, मजदूरों से आकर्षक ढंग की वेतकुल्लफी के साथ वात करता और कभी-कभी उनके साथ पीने-पिलाने में भी

उसकी उदारता

सम्मिलित हो जाता । अपने पुत्रों को उसने सार्वजनिक पाठशालाओं में भेजा जिससे कि वहाँ वे मध्य वर्ग के लोगों के लड़कों के सम्पर्क में आ सकें । उसकी इस भावना की मध्यवर्गीय मित्रों ने बड़ी सराहना की। किन्तु इस गणतन्त्रीय सरलता के वाह्याडम्बर के पीछे वैयक्तिक शक्ति की उत्कट अभिलाषा छिपी हुई थी, और उसका स्वभाव तत्वतः अभिजातीय था ।

सिंहासन पर उसका कानूनी अधिकार

विधिक दृष्टि से सिंहासन पर उसका हक बहुत ही कमजोर था । **प्रतिनिधि सदन** के ४३० सदस्यों में से केवल २१९ ने उसे सिंहासन पर विठलाने के पक्ष में वोट दिया था । यह तो नाम मात्र का वहुमत था । किन्तु उसके पक्ष में यह कहा जा सकता है कि **सदन** को राजा का चुनाव करने का अधिकार ही कव दिया गया था । उसके शासन का प्रथम भाग उपद्रवग्रस्त रहा । लोगों को इस वात में सन्देह होने लगा था कि यह बहुत दिन तक चल सकेगा । जनता से यह कभी नहीं पूछा गया था कि लुई फीलीप को वह राजा बनाना चाहती है अथवा नहीं, इसलिए उसने शासन के पीछे प्रजा का अनुसमर्थन नहीं था, जैसा कि नेपोलियन के शासन के मूल में सदैव रहा था । उसके अनेक शत्रु थे जो उसके अधिकार को मानने के लिए तैयार नहीं थे, उदाहरण के लिए **वैधतावादी**, वौनापार्ट के समर्थक और **गणतन्त्रवादी** । **वैधतावादी** चार्ल्स दशम और उनके वंशजों के अधिकारों का समर्थन करते थे । वे लुई फीलीप को अपहरणकर्त्ता अथवा चोर मानते थे, जिसने छल कपट से और निर्लज्जतापूर्वक वोर्दो के युवा ड्यूक का मुकुट चुरा लिया था । इस दल की संख्या बहुत कम थी । कारण यह था कि चार्ल्स दशम ने जनता को अप्रसन्न करने और उसकी सहानुभूति खो देने के लिए कुछ उठा नहीं रक्खा था । इसने लुई फीलीप को अधिक कष्ट नहीं दिया, सिवाय इसके कि अभिजातवर्गीय लोग उसके सम्मान, शूरत्व और वैयक्तिक आकृति और चाल-ढाल के सम्वन्ध में कटु व्यंग करते और आनन्द लेते रहे । इस दल ने केवल एक वार विद्रोह करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे सरलता से दवा दिया गया ।

वैधतावादियों का विरोध

गणतन्त्रवादियों का विरोध

किन्तु **गणतन्त्रवादियों** के विरुद्ध लुई फीलीप को कठोर संघर्ष करना पड़ा । उन्होंने लाफायेत के आश्वासन पर उसके शासन को स्वीकार कर लिया था । लाफायेत के लिए उनके मन में गहरी श्रद्धा थी और उसने उसको विश्वास दिलाया था कि लुई फीलीप का शासन सबसे अच्छा गणतन्त्र सिद्ध होगा, राजा तत्वतः लोकतांत्रिक प्रकृति का व्यक्ति है और लोकप्रिय सिंहासन सदैव गणतन्त्रीय संस्थाओं से घिरा रहेगा । किन्तु उनका और लाफायेत का भ्रम शीघ्र ही दूर हो गया । उन्हें आशा थी कि नई सरकार व्यापक, उदार और राष्ट्रीय नीति का अनुसरण करेगी, जनता के सभी वर्गों के हितों की ओर ध्यान देगी और देश के लोकतान्त्रिक विकास में सहायता पहुँचायेगी । किन्तु उन्हें इसका उल्टा देखने को मिला । तेजी से एक संकीर्ण वर्ग-व्यवस्था स्थापित हो गई जिसने लोकतन्त्र का भी उसी प्रकार विरोध किया जिस प्रकार अभिजाततन्त्र का । प्रारम्भिक दिनों में ही जुलाई राजतन्त्र की ओर से घोषणा कर दी गई थी कि सरकार अनुसार और उग्र दोनों ही मार्गों को जोड़ कर वीच के आदर्श मार्ग का अनुसरण करेगी । प्रारम्भ में

बीच के आदर्श मार्ग की नीति

आयु तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अर्हताओं को घटा कर मताधिकार को अधिक व्यापक बनाया गया जिससे मतदाताओं की संख्या दूनी हो गई। जहाँ पहले केवल १००,००० मतदाता थे वहाँ अब उनकी संख्या लगभग २००,००० हो गई। लोग इस चीज को उचित दिशा में पहला कदम समझ कर सहन कर सकते थे। किन्तु सरकार ने शीघ्र ही स्पष्ट कर दिया कि यह आरम्भ ही नहीं, अन्त भी है : अब मतदाताओं की संख्या में आगे किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होगी। वास्तव के इसका अर्थ यह निकलता था कि देश का शासन मध्यम वर्ग (बुर्जुआ वर्ग) अर्थात् धनी और समृद्ध साहूकारों, उत्पादकों और व्यापारियों के हाथों में होगा। बहुसंख्यक जनता को शासन में कोई साझा न मिलेगा। इस सम्बन्ध में तर्क यह दिया गया कि केवल सम्पत्तिजीवी और शिक्षित लोगों में ही शासन करने की क्षमता है; जो कानून उनके लिये अच्छे हैं वे सबके लिए सर्वाधिक कल्याणकारी सिद्ध होंगे, क्योंकि इससे जो लाभ होंगे वे स्वाभाविक रूप से सर्व वर्गों में वितरित हो जायेंगे। यह वास्तव में मालिक का तर्क था जो कि मेरे लिए अच्छा है वह मेरे आधीन काम करने वालों के लिए भी हितकर है।

धनिकों का शासन

एक दृष्टि से **जुलाई राजतन्त्र** उदार था। इस बात का आश्वासन था कि **पुरातन व्यवस्था** पुन: लौट कर नहीं आयेगी, सामन्त तथा सादरी वर्गों को उनके पुराने पद पर पुन: प्रतिष्ठित करने का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रयत्न नहीं किया जायगा। यह सदैव के लिए निश्चित रूप से तै हो गया था। किन्तु दूसरी ओर यह भी स्पष्ट था कि **जुलाई राजतन्त्र** का लोकतन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं था, दूर के आदर्श के रूप में भी नहीं। उसका कहना था कि लोकतन्त्र का अर्थ अराजकता, अव्यवस्था और हिंसा है, जैसा कि १७८९ की **क्रान्ति** ने स्पष्ट कर दिया है। अत: नरम नीति और बीच के मार्ग की आवश्यकता है। **जुलाई राजतन्त्र** के अन्तर्गत शासन वास्तव में उच्च मध्य वर्ग के हाथों में था, जो अब यह समझने लग गया था कि शक्ति हमारे ही हाथों में रह कर सुरक्षित रह सकती हैं। संक्षेप में **जुलाई राजतन्त्र** की नीति यह थी कि पुराने, सड़े-गले अभिजातवर्गीय आदर्शों की ओर लौट कर नहीं जाना है, और न धीरे-धीरे लोकतन्त्र की ओर ही बढ़ना है, बल्कि बिना किसी परिवर्तन के और दृढ़ता के साथ उस व्यवस्था को कायम रखना है जिसकी स्थापना १८३० में संशोधित **अधिकार-पत्र** द्वारा हो गई थी। इस नीति से वह कभी विचलित नहीं हुआ।

पुरातन व्यवस्था की ओर लौट कर न जाना निश्चित

लोकतन्त्र की ओर कोई प्रगति नहीं

गणतन्त्रवादी इस विचार से सहमत नहीं थे कि सम्पूर्ण बुद्धि मध्य वर्ग तक ही सीमित है। वे चाहते थे कि विद्यमान स्वतन्त्रता का अधिकाधिक विस्तार किया जाय, जनता को स्वशासन की दिशा में अधिक से अधिक शिक्षित किया जाय और राष्ट्र के सभी वर्गों और सभी परिस्थितियों के लोगों के हितों को ध्यान में रख कर कानून बनाए जायँ। उन्हें ऐसा लगता था कि **जुलाई राजतन्त्र** समृद्ध तथा शिक्षित वर्गों के हितों को ही सम्पूर्ण फ्रांस का हित मानकर एक जटिल तथा गम्भीर समस्या को मूर्खतापूर्वक सरल रूप में देने का प्रयत्न कर रहा है

गणतन्त्रवादियों के विद्रोह

अत: वे जुलाई राजतंत्र के शत्रु हो गए। उन्होंने विद्रोह किए जो काफी गम्भीर थे, किन्तु अन्त में कुचल दिए गए। सरकार ने उनका दमन करने के लिए अनेक उपाय किए। उनके समाज भंग कर दिए गए, समुदाय बनाने के अधिकार को सीमित कर दिया गया, उनके सम्पादकों पर मुकद्दमें चलाए गये, उनके समाचार पत्रों को भारी जुर्माने करके कुचल दिया गया, और अन्त में कानून के द्वारा विद्यमान राजतंत्र के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की सरकार के पक्ष में तर्क देना और उसका समर्थन करना निसिद्ध कर दिया और साथ ही साथ यह भी कानून वना दिया गया जो व्यक्ति अपने को अपदस्थ राजवंशों में से किसी का अनुयायी घोषित करेगा वह दण्डनीय होगा।

सितम्बर के कानून (१८३५)

इन कानूनों ने जुलाई **राजतंत्र** की नैतिक स्थिति दुर्बल कर दी, क्योंकि इन्होंने वैयक्तिक स्वतंत्रता को एक खोखला शब्द बना दिया था। किन्तु तात्कालिक उद्देश्यों को पूरा करने में सफल रहे। **गणतंत्रवादियों** सहित सभी प्रतिद्वन्दी दल गुप्त रूप से काम करने पर बाध्य हुए, और अठारह वर्ष तक फ्रांस पर सम्पत्तियोगी वर्गो का शासन रहा। **गणतन्त्रवादी** पहले तो धोखे में आगए; बाद में जव उन्होंने देखा कि इस शासन के अन्तर्गत स्वतंत्रता का विकास असम्भव है तो वे उसके कट्टर शत्रु हो गए, किन्तु कई वर्षों के लिए उन्हें शान्त कर दिया। लेकिन अन्ततोगत्वा इस व्यवस्था के उखाड़ फेंकने में उनकी शत्रुता का महत्त्वपर्ण योग था।

गीझो का मंत्रिमंडल (१८४०—१८४८)

१८३० से १८४० तक के दस वर्षों में फ्रांस की संसदीय व्यवस्था डाँवाडोल रही थी। दस वर्ष में दस मंत्रिमंडल बने थे। किन्तु १८४० से १८४८ तक एक ही मंत्रिमंडल ने शासन चलाया और उसका प्रधान गीझो था। सिंहासन पर बैठने के बाद कई वर्ष तक लुई फीलीप ने बड़ी सावधानी से व्यवहार किया ताकि लोगों को इस बात का सन्देह न हो कि राजा शक्ति को अपने हाथों में रखना चाहता है। किन्तु अव उसके शत्रुओं का तख्ता उलट गया था और वे पूर्णतया कुचल दिए गए थे, अत: अब वह अपने वास्तव में राजा बनने के उद्देश्य को प्रकट करने लगा। उनका इंगलैण्ड के इस सिद्धान्त का अनुसरण करने का इरादा नहीं था कि निरंकुश राजतंत्र के विपरीत सांविधानिक राजतंत्र के अन्तर्गत राजा राज्य करता है, शासन नहीं करता। गीझो उसे एक ऐसा व्यक्ति मिल गया जिसे उसके राज्य सम्बन्धी सिद्धान्तों से सहानुभूति थी, और जो यह नहीं मानता था, कि राजा राज्य का केवल आलंकारिक प्रमुख होता है। उसके रूप में लुई फीलीप को मनचाहा प्रधानमंत्री मिल गया। गीझो एक उच्च कोटि का अध्यापक, इतिहासकार और वक्ता था; उसके कुछ राजनीतिक सिद्धान्त थे जिनमें उसका उतना ही दृढ़ विश्वास था जितना कि गणितज्ञ को अपने सिद्धान्तों में हुआ करता है वह इस चीज को मानने के लिए तैयार नहीं था कि किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है। उसका १८१४ के अधिकार-**पत्र** के उस रूप में, जो १८३० के संशोधन के उपरान्त निश्चित हो गया था,

गीझो के राजनीतिक सिद्धान्त

विश्वास था। उसका कहना था कि इससे अधिक सुधार अनावश्यक और घातक सिद्ध होगा। अनमनीय अनुदारवाद गीज़ो की नीति का सारांश था। वह मताधिकार के प्रसार के विरुद्ध था; और इस चीज का भी विरोधी था, कि श्रमिक वर्गों की दशा सुधारने के लिए कोई कानून बनाए जायें। संक्षेप में वह सभी परिवर्तनों से घृणा करता था। वह कहा करता था कि सभी असन्तोष मूर्खतापूर्ण और बनावटी है, और उन गुन्ताड़ेबाजों का रचा हुआ है जो अपना स्वार्थ सिद्ध करने पर तुले हुए हैं।

गीज़ो की अनमनीय अनुदारवाद की नीति

वर्ष प्रति वर्ष इसी निषेधात्मक और निष्क्रियता की नीति का अनुसरण किया गया, फलस्वरूप जनता का असन्तोष और घृणा बढ़ती गई। १८४७ में एक प्रतिनिधि ने कहा, "पिछले दस वर्षों में उन्होंने क्या किया है ? कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं।" लामार्तेन का कहना था कि "फ्रांस ऊब गया है।" फिर भी यह निश्चल सरकार एक ऐसी दुनियाँ में बह रही थी जिसे विचारों ने आन्दोलित कर रक्खा था, किन्तु उसने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया।

जुलाई राजतंत्र

बुर्जुआ वर्ग का अर्थात् धनी पूँजीपतियों का शासन था। केवल उन्हीं को वोट देने का अधिकार था। फलस्वरूप, शेष जनता का राजनीतिक जीवन में कोई महत्त्व नहीं था। इन अठारह वर्षों में जो कानून बनाए गए उनसे पूँजीपति वर्ग का ही भला हुआ, जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया; जबकि वास्तव में साधारण जनता की तंगी अत्यधिक व्यापक थी और सरकार को सहानुभूति और सावधानी से उनकी ओर ध्यान देना चाहिए था।

जनसाधारण की स्थिति ने विचारों को उभाड़ा और लेखक गण उद्योग के संगठन तथा पूँजीपतियों और श्रमिकों के सम्बन्ध में नए सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। ये सिद्धान्त आगे चलकर समाजवाद के नाम से विख्यात हुए। उनका दसियों लाख मजदूरों पर दिन दूना, रात चौगुना प्रभाव पड़ा और वे विश्वास करने लगे कि हमारे साथ समाज का व्यवहार अत्यन्त कठोर और अनुचित है और हमें हमारे श्रम का समुचित प्रतिफल नहीं मिल सकता। सेंट साइमन पहला व्यक्ति था जिसने बहुसंख्यक वर्गों के कल्याण के लिए समाज के पुन:संगठन की एक समाजवादी योजना प्रस्तुत: की। उसका सिद्धान्त था कि उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व हो और

समाजवाद का विकास

वह उद्योग-धन्धों का संगठन इस ढँग से करे कि हर व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार काम कर सके और सेवाओं के अनुसार उसे प्रतिफल मिले। सेंट साइमन कल्पनाशील विचारक था, व्यावहारिक जगत का प्राणी नहीं था। उसके सिद्धान्तों का महत्त्व उस समय सहसा बढ़ गया जबकि उनको एक ऐसे व्यक्ति ने अंगीकार कर लिया जो, राजनीतिज्ञ था जिसमें एक दल का निर्माण और नेतृत्व करने और जन साधारण को आकृष्ट करने वाले निश्चित कार्यक्रम, का निरूपण करने की योग्यता थी। लुई ब्लाँ ऐसा व्यक्ति था, जिसने आगे चलकर जुलाई राजतंत्र को उखाड़ फेंकने में महत्त्वपूर्ण योग दिया और उसके उपरान्त स्थापित गणतंत्र के अन्तर्गत विशिष्ट भूमिका अदा की। अपनी रचनाओं के द्वारा उसने फ्रांस के श्रमिकों के मन में यह बातें बिठला दी कि विद्यमान अर्थव्यवस्था दोषपूर्ण है—और उन परिस्थितियों में यह काम कठिन

लुई ब्लाँ (१८११—१८८२)

भी नहीं था। उसने अत्यन्त कटु शब्दों में मध्यवर्गीय सरकार की भर्त्सना की और कहा कि यह धनिकों की सरकार है, धनिकों के द्वारा और धनिकों के लिए है। इसको उखाड़ फेंकना ही उचित है, और राज्य को पूर्णतया लोकतांत्रिक आधार पर संगठित करना चाहिए। लुई ब्लाँ ने घोषणा की कि हर व्यक्ति को काम पाने का अधिकार है, और राज्य का कर्तव्य है कि उसे काम दे। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि उद्योग धन्धों का संगठन वह स्वयं अपने हाथों में ले ले। राज्य को चाहिए कि अपनी पूंजी लगाकर राष्ट्रीय कर्मशालाओं की स्थापना करे, मजदूर लोग उनका प्रबन्ध करें और लाभ को आपस में बाँट लें। इस प्रकार मालिकों का वर्ग समाप्त हो जायगा और श्रमिकों को उनकी मेहनत का पूरा-पूरा फल मिल सकेगा। लुई ब्लाँ ने अपने सिद्धान्तों का एक दम स्पष्ट और विशद शैली में प्रतिपादन किया, अतः बहुसंख्यक मजदूरों ने उन्हें अंगीकार लिया। इस प्रकार एक समाजवादी दल की रचना हुई। उसका गणतंत्र में विश्वास था किन्तु उसमें तथा दूसरे गणतंत्रवादियों में अन्तर यह था कि वे केवल शासनप्रणाली में परिवर्तन चाहते थे जब कि यह दल समाज में आमूल परिवर्तन करना चाहता था।

फ्रांस की सरकार के विरुद्ध असन्तोष भारी था, और वह निरन्तर बढ़ता गया। फिर भी उसने कुछ किया नहीं, क्योंकि मंत्रिमंडल को **प्रतिनिधि सदन** का समर्थन प्राप्त था और **सदन** का चुनाव दो लाख मतदाताओं ने किया था। जाँच करने पर पता चला कि गीझो ने भ्रष्ट तरीकों से बहुमत को अपने पक्ष में कर लिया था। प्रतिनिधियों को चुननेवाली निर्वाचक सभाएँ बहुत छोटी थीं; उनमें से किसी में भी दो सौ से अधिक सदस्य नहीं थे, और वे भी अधिकतर पदाधिकारी थे। जिन्हें किसी न किसी प्रकार से रिश्वत देकर ऐसे प्रतिनिधियों को चुनवाया जा सकता था जो मंत्रिमंडल के पक्ष में होते। फिर **सदन** के अन्दर भी इसी तरीके का प्रयोग किया जाता। चार सौ तीस प्रतिनिधियों में से दो सौ पदाधिकारी थे। मंत्रिमंडल का उन पर नियंत्रण था, क्योंकि पद और वेतन की वृद्धि उससे अनुग्रह पर निर्भर थी। बहुमत के लिए उसे थोड़े-से और वोटों की आवश्यकता पड़ती थी, और चूँकि उसके पास बाँटने को इतनी चीजें थीं, अतः उसे कभी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा।

गीझो का मंत्रिमंडल तथा संसदीय भ्रष्टाचार

अतः एक सुधारवादी दल उठ खड़ा हुआ जिसका राजतंत्र को उलट देने का कतई इरादा नहीं था, किन्तु जो **प्रतिनिधि सदन** की रचना और उसके चुनाव की पद्धति में परिवर्तन चाहता था। उसकी माँग थी कि प्रतिनिधियों को साथ-साथ पद धारण करने का अधिकार न हो और मतदाताओं की संख्या इतनी बढ़ा दी जाय कि उन्हें भ्रष्ट करना असम्भव हो जाय। इन माँगों की गीझो मंत्रिमंडल के सम्पूर्ण कार्यकाल में प्रतिवर्ष दुहराया गया, किन्तु उसने दृढ़ संकल्प के साथ इनका विरोध किया। उसका कहना था कि यह सुधार आन्दोलन थोड़े-से लोगों का काम है, बहुसंख्यक जनता इसके प्रति उदासीन है। इस कथन की असत्यता को सिद्ध करने के लिए विरोधी दल ने १८४७ में अनेक "सुधार समारोह" किए जिनमें जनता सम्मिलित हुई और सुधारकों ने भाषण दिए। इन समारोहों का अयोजन उन लोगों ने किया जो राजतंत्र के

संसदीय तथा निर्वाचन सम्बन्धी सुधारों की माँग

सुधार समारोह

भक्त थे किन्तु उसकी नीति का विरोध करते थे। गणतंत्रवादियों ने भी, जो राज-तंत्र के अस्तित्व को ही मिटा देना चाहते थे, ऐसी सभाएँ कीं।

इन समारोहों से सारे देश में बड़ा उत्साह फैला और यह निर्णायक रूप से सिद्ध हो गया कि जनता सुधारों की माँगों के पीछे थी। किन्तु मंत्रिमंडल के कान पर जूँ तक न रेंगी, और राजा ने इस आन्दोलन को घातक बतलाया तथा उसकी कटु आलोचना की। उसने तो यहाँ तक घोषणा करदी कि जनता को इस प्रकार की सभाएँ करने का विधिक अधिकार ही नहीं हैं। विरोधी दल ने न्यायलय में जनता के इस अधिकार की परीक्षा करने के उद्देश्य से २२ फरवरी, १८४८ को पेरिस में एक समारोह का आयोजन किया। सतासी प्रमुख प्रतिनिधियों ने सम्मलित होने का वचन दिया। निश्चत किया गया कि सब के सब मैदलीन के गिरजाघर के सामने जमा होंगे और वहाँ से समारोह-भवन तक एक साथ जायेंगे। फरवरी २१-२२ की रात को सरकार ने आदेश जारी करके इस जुलूस तथा इसी प्रकार के अन्य समारोहों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जो प्रतिनिधि सम्मिलित होने को राजी हो गए थे उन्होंने इस अवसर पर मामले को अधिक बढ़ाना उचित नहीं समझा। अतः उन्होंने आदेश को मान लिया, किन्तु यह स्पष्ट कर दिया कि वे इस चीज को बुरा समझते थे और इससे बहुत अप्रसन्न थे। किन्तु विद्यार्थियों, मजदूरों तथा अन्य लोगों की एक भीड़ जमा हो गई थी उनका न तो कोई नेता था, और न कोई निश्चित उद्देश्य। भीड़ ने थोड़ा-सा उत्पात किया, किन्तु उस दिन कोई गम्भीर घटना नहीं हुई। किन्तु रात को मजदूरों ने अपनी बस्तियों में अवरोधक खड़े कर लिए। कुछ गोलियाँ चलीं। सरकार ने **राष्ट्रीय रक्षा दल** को बुला लिया। किन्तु उसने विद्रो-हियों के विरुद्ध आक्रमण करने से इन्कार कर दिया। उनमें

गीज़ो का त्याग-पत्र

से कुछ नारे लगाने लगे, "सुधार जिन्दाबाद !" "गीज़ो का नाश हो" इस स्थिति को देख कर राजा घबड़ा गया और कुछ सुधार भी करने को तैयार हो गया। किन्तु गीज़ो सहमत नहीं हुआ और अपना पद त्याग कर चला गया। इस समाचार का भीड़ ने बड़े हर्ष और उत्साह से स्वागत किया। २३ फरवरी की रात को पेरिस में दिये जलाये गये और ऐसा लगा कि सब संकट टल गया है। अभी तक संघर्ष दो पक्षों के बीच में चला—राजभक्तों, जोकि गीज़ो मन्त्रिमण्डल के समर्थक थे, और सुधारकों के मध्य। और गीज़ो का पतन सुधारकों की विजय का प्रतीक था। किन्तु आन्दोलन यहीं तक सीमित नहीं रहा। अब गणतन्त्रवादी भी मैदान में उतर आए, और लुई फीलिप तथा राजतन्त्र के विरुद्ध जनता को उभाड़ना आरम्भ कर दिया। उन्होंने एक जुलूस निकाला और गीज़ो के निवास-स्थान के सामने शत्रुतापूर्ण प्रदर्शन किया। किसी अज्ञात व्यक्ति ने रक्षकों के दल पर गोली चला दी। रक्षकों ने तुरन्त ही जवाबी कार्यवाही की, पचास आदमी धराशायी हुए और बीस से अधिक मारे गए। इस घटना ने राजतन्त्र का सितारा डुबा दिया। गणतन्त्रवादियों ने अवसर से लाभ उठाया और जनता को और भी अधिक उत्तेजित किया। बहुत-सी लाशों को एक गाड़ी पर रख लिया और उस पर एक जलती हुई मशाल लगा दी। फिर उस गाड़ी को उन्होंने गलियों में घुमाया। इस भयावह दृश्य से सर्वत्र उत्तेजना फैल गई और मार्ग में लगातार "बदला लो"। के नारे लगने लगे। मीनारों पर से घण्टे और बिगुल बजाए गए जिससे उत्तेजित जनता और भी अधिक उन्मत्त हो गई।

लुई फीलीप का तख्ता उलट दिया गया

इस प्रकार उपद्रव आरम्भ हो गया, और वह हर घड़ी अधिकाधिक उग्र होता गया। उसके सामने जो भी आया वह तिनके की भाँति उड़ गया। एक दिन पहले "सुधार जिन्दाबाद" के जो नारे लगाये गए थे, उनके स्थान पर अब "गणतन्त्र जिन्दाबाद !" के नारे सुनाई देने लगे। अन्त में २४ फरवरी को राजा ने अपने नाती पेरिस के काउन्ट के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया और वेश बदल कर "स्मिथ" नाम धारण करके भाग गया और इङ्गलैंड जा पहुँचा। गीज़ों ने भी उसका अनुगमन किया, जैसा कि कुछ दिनों बाद मैटरनिख ने किया दो वर्ष उपरान्त क्लेयरमोंट में लुई फीलीप का देहान्त हो गया और इस प्रकार उसे अपने निर्वासन के जीवन से मुक्ति मिली।

द्वितीय गणतन्त्र की स्थापना

राजा ने अपने नाती के पक्ष में सिंहासन छोड़ा था, किन्तु गणतन्त्रवादी और समाजवादी, जिन्होंने उसे हटाने पर बाध्य किया था, राजतन्त्र को बनाये रखने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने एक **अस्थायी सरकार** स्थापित करवा ली जिसमें दोनों दलों के सदस्य सम्मिलित थे। लामार्तेन उसका प्रमुख बना और लुई ब्लाँ एक सदस्य के रूप में उसमें शामिल हो गया। **अस्थायी सरकार** ने तुरन्त **गणतन्त्र** की घोषणा कर दी, किन्तु शर्त यह रक्खी कि जनता का अनुसमर्थन प्राप्त होने पर ही इस चीज को स्थायी रूप दिया जायेगा।

अध्याय १६

मध्य यूरोप में विद्रोह

मध्य-शताब्दी का महान् विद्रोह

१८४८ के आरम्भिक दिनों में मध्य यूरोप बेचैनी और अशान्ति की अवस्था में था। सर्वत्र लोग पुरानी व्यवस्था से तंग आ गये थे और परिवर्तन की माँग करने लगे थे। क्रान्तिकारी भावना सक्रिय हो उठी थी। इटली, जर्मनी और आस्ट्रिया में जनता का मस्तिष्क उद्वेलित हो रहा था। ऐसी उत्तेजित और विक्षुब्ध स्थिति में लुई फीलीप के पराभव का समाचार पहुँचा। उसने चिनगारी का काम किया और सर्वत्र ज्वाला की लपटें फूट पड़ीं। शताब्दी के इस सर्वाधिक व्यापक उपद्रव के लिए १८४८ की फ्रांसीसी क्रान्ति एक सिगनल सिद्ध हुई। बाल्टिक से लेकर भूमध्य सागर तक और फ्रांस से रूस की सीमा तक सभी देशों में विद्रोह उठ खड़े हुए। प्रतिक्रिया की वह सम्पूर्ण व्यवस्था, जिसकी स्थापना वाटरलू के उपरान्त हुई थी, और जो मैटरनिख के अविचल व्यक्तित्व के रूप में साकार हुई थी, गिर कर चकनाचूर हो गई और सर्वत्र गड़बड़ी फैल गई। इस प्रकार मध्य-शताब्दी का महान् विप्लव आरम्भ हुआ। १९१४ से पहले यूरोप ने ऐसा व्यापक उत्पात कभी नहीं देखा। इस उथल पुथल का केन्द्र वीना था, जो उस समय तक प्रतिक्रिया के गर्वीले गढ़ का काम करता आया था। आस्ट्रियाई साम्राज्य के इस स्थल में यूरोपीय इतिहास का एक सबसे अधिक गड़बड़ीपूर्ण अध्याय आरम्भ हुआ। कुछ समय तक तो ऐसा लगा कि आस्ट्रिया पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न होने को है, और एक राज्य के रूप में उसका अस्तित्व ही विलुप्त होने वाला है।

वीना विप्लव का केन्द्र

लुई कौसूथ (१८०२-१८९४)

इस विप्लव की तात्कालिक प्रेरणा हंगेरी से मिली, जहाँ कई वर्षों से राष्ट्रीय आन्दोलन प्रगति कर रहा था। राष्ट्रीय भावना की इस तीक्ष्ण प्रवृत्ति के साथ निरन्तर आक्रामक रूप धारण करने वाले सुधार आन्दोलन का संयोग हुआ। हंगेरी की राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ नितान्त मध्ययुगीन थीं। केवल

सामन्त वर्ग को राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे, और साथ ही साथ वह करों से पूर्णतया मुक्त था। एक उदार तथा लोकतान्त्रिक दल उठ खड़ा हुआ था, जिसे पश्चिमी यूरोप के विचारों से जीवन और प्रेरणा मिली थी। उनके नेता लुई कौसूथ और फ्रांसिस डीक थे। कौसूथ की गणना हंगेरी के महान्‌तम वीरों में है। डीक का व्यक्तित्व उतना आकर्षक नहीं था, किन्तु अपने देश की उसने जो सेवाएँ कीं वे अधिक ठोस और टिकाऊ सिद्ध हुईं। कौसूथ ने सर्वप्रथम एक समाचार पत्र के सम्पादक के रूप में जनता का ध्यान आकृष्ट किया। अपने पत्र में वह उदारवादी शैली में हंगेरी की संसद के वादविवाद का वर्णन किया करता था। जब उसके मुद्रण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तो उसने उन्हें लीथो से छपवाना आरम्भ कर दिया। जब सरकार ने इस पर भी रोक लगा दी तो उसने इम्ला लिखने वालों का एक समूह इकट्ठा किया और उनसे लिखवा कर प्रतियों को नौकरों के द्वारा बँटवाने लगा। अन्त में उसे गिरफ्तार करके कारावास का दण्ड दे दिया गया। कारावास का समय कौसूथ ने गम्भीर अध्ययन में बिताया, विशेषकर अँग्रेजी भाषा के पढ़ने में, और उसमें इतनी सफलता प्राप्त कर ली कि आगे चल कर उसने इंगलैण्ड और अमेरिका में बड़ी-बड़ी सभाओं के समक्ष प्रभावशाली भाषण किए। १८४० में वह मुक्त कर दिया गया और उसे एक दैनिक पत्र का सम्पादन करने की अनुज्ञा मिल गई।

कौसूथ अपने युग के महान् लोकतांत्रिक विचारों का अवतार था। उसकी इच्छा थी कि सामन्तों और गैर सामन्तों के पारस्परिक भेदभाव पूर्णतया नष्ट कर दिये जायँ और सब को मिला कर एक सामान्य समाज की रचना की जाय। उसने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार की माँग की; सामन्तों के विशेषाधिकारों और करों से छूट का अन्त; सब नागरिकों के लिए समान अधिकार और समान उत्तरदायित्व; जूरी द्वारा अपराधियों के मुकदमों का निर्णय; दण्ड व्यवस्था का सुधार इत्यादि। कौसूथ ने सीधे जनता से अपील की। उसने परिवर्तन के पक्ष में शक्तिशाली लोकमत तैयार करने का प्रयत्न किया और इसमें उसे पर्याप्त सफलता मिली। स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध उदारवादियों का यह सबल आन्दोलन तेजी से बढ़ता गया, विशेषकर इसलिए कि उसके नेता बड़े योग्य और उत्साही थे। १८४७ में एक कार्यक्रम प्रकाशित किया गया, जिसकी रचना डीक ने की थी

१८४७ में हंगेरीवासियों की माँगें

इसमें माँग की गई कि सामन्तों पर कर लगाया जाय, सम्पूर्ण राष्ट्रीय व्यय पर संसद का नियन्त्रण हो, प्रेस की स्वतन्त्रता का प्रसार किया जाय और जनता को सार्वजनिक सभाएँ करने और समुदाय बनाने का पूर्ण अधिकार हो। साथ ही साथ यह भी माँग की गई कि हंगेरी पर आस्ट्रियाई प्रान्तों का नियन्त्रण न हो और न उस पर आस्ट्रिया की नीति थोपी जाय। १८४८ में जब सुधार की प्रबल लहर यूरोप में फैली उस समय हंगेरी की उक्त स्थिति थी।

लुई फीलिप के पतन के समाचार से हंगेरी में बिजली की-सी लहर दौड़ गई। कौसूथ ने अपने एक ज्वलन्त भाषण में उस समय के आवेश और उग्रता की अभिव्यक्ति की, और अपने को विद्रोही राष्ट्र का कुशल नेता सिद्ध कर दिया। उसकी चाल-ढाल प्रभावोत्पादक और आवाज आश्चर्यजनक थी; सचमुच वह क्रान्तिकारी वक्तृता का अवतार था। ३ मार्च, १८४८ को संसद में उसने

हंगेरी में निर्णायक हस्तक्षेप

मैटरनिख का तख्ता उलट दिया गया

आस्ट्रियाई सरकार की सम्पूर्ण व्यवस्था की घोर भर्त्सना की और इस प्रकार समय की भावनाओं को मुखरित किया। उसके भाषण का हंगेरी में नहीं आस्ट्रिया में भी तात्कालिक और गम्भीर प्रभाव पड़ा। जब उसका जर्मन रूपान्तर वीना में प्रकाशित हुआ तो लोगों में क्रोध और आवेश की लपटें फूट पड़ीं। दस दिन उपरान्त स्वयं वीना में उपद्रव उठ खड़ा हुआ, जिसका संगठन विशेषकर विद्यार्थियों और मजदूरों ने किया। सैनिकों ने गोली चला दी और रक्तपात हुआ। सड़कों और गलियों में अवरोधक खड़े करके मोर्चे बना लिए गए और जनता तथा सैनिकों में आमने-सामने झपटें हुईं। भीड़ राजकीय प्रासाद में घुस गई और उस भवन पर आक्रमण कर दिया जिसमें संसद की बैठक हो रही थी। चारों ओर से "मैटरनिख का पतन हो" के नारे गूँजने लगे। मैटरनिख उन्तालीस वर्ष से आस्ट्रियाई राज्यों पर शासन करता आया था, प्रतिक्रिया का मूल स्रोत था, अविचल और निर्मम भाव से अब तक डटा रहा था, किन्तु अब उसे भी बाध्य होकर त्यागपत्र देना पड़ा। अन्त में वह वेश बदल कर आस्ट्रिया से भाग गया और इंगलैंड जा पहुँचा। अपनी आँखों से उसने अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था को गिरकर चकनाचूर होते देखा, और उन्हीं शक्तियों के प्रहार से जिनके प्रति एक पीढ़ी से वह घृणा करता था।

मैटरनिख के पतन की घोषणा का आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ। वाटरलू के उपरान्त यूरोप के लोगों के लिए यह सबसे अधिक विस्मयकारी समाचार था। उसके पराभव के साथ-साथ एक ऐसी व्यवस्था का पतन हो गया जिसे उस समय तक अभेद्य समझा जाता था, और इसी रूप में लोगों ने इस चीज का स्वागत किया।

मार्च महीने के कानून

जिस प्रकार कौसूथ की वक्तृता से चमत्कृत हंगेरी ने वीना पर प्रभाव डाला वैसे ही वीनावासियों के कार्यों का हंगेरी पर प्रभाव पड़ा। कौसूथ ने सुधार तथा राष्ट्रीयता की जिस प्रबल भावना को जन्म दिया और जिसको उसने निरन्तर प्रज्वलित किया, उसका हंगेरी की संसद पर जादू जैसा असर हुआ। अतः १५ मार्च को तथा उसके तुरन्त बाद ही तारीखों में उसने प्रसिद्ध **मार्च के कानून** पास किए जिन्होंने हंगेरी को सुधारने तथा उसको आधुनिक राष्ट्र बनाने की उस प्रक्रिया को पूरा कर दिया जो कई वर्षों से चली आरही थी। ये प्रसिद्ध कानून हंगरी के उस राष्ट्रीय दल की माँगों के अनुरूप थे जिसका नेतृत्व कौसूथ कर रहा था। इन कानूनों ने पुरानी अभिजाततंत्रीय शासन-व्यवस्था को समाप्त कर दिया और उसके स्थान पर एक **आधुनिक** लोकतांत्रिक संविधान की नींव डाली। सामन्ती कर हटा दिए गए और प्रेस की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, तथा जूरी द्वारा परीक्षण की प्रथा की स्थापना की गई। **मार्च के कानूनों** में इस बात की भी माँग की गई कि हंगरी के लिए एक स्वतंत्र मंत्रिपरिषद् हो और उसमें केवल हंगरीवासी ही सम्मलित हों। परिस्थितियों की आवश्यकता से विवश होकर आस्ट्रिया ने ३१ मार्च को ये सब माँगे स्वीकार कर लीं।

हंगेरी के उदाहरण का तुरन्त बोहिमियाँ ने अनुसरण किया। इस प्रान्त

में दो मुख्य नस्लें थीं : जर्मन, और चैक। जर्मन लोग धनी और शिक्षिति थे किन्तु प्रान्त में उनका अल्पमत था। चैक लोग महान् स्लाव नस्ल के थे। वे दरिद्र थे किन्तु उनका बहुमत था और उनकी अभिलाषा थी कि बोहिमियाँ को एक पृथक् राज्य बनाया जाय जो केवल सम्राट् के अधीन हो। बोहिमियाँवासियों ने भी वे ही सब चीजें माँगी जो हंगरीवासियों ने माँगी थी। सम्राट् ने उनकी सब माँगे स्वीकार कर लीं।

बोहिमियाँ में क्रान्ति

वीना के पश्चिम में स्थित आस्ट्रियाई प्रान्तों ने भी कुछ इसी प्रकार की माँगें प्रस्तुत कीं। विवश होकर सरकार ने उन्हें भी स्वीकार कर लिया। सरकार की विवशता का मुख्य कारण इटली की गम्भीर स्थिति थी। इटली-वासियों ने इस शुभ अवसर से लाभ उठाकर अपने देश से आस्ट्रिया के प्रभुत्व को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। लोम्बार्डी-वेनिशिया ने घृणित विदेशियों के विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। वेनिस ने भी दानियल मानिन के उत्साहवर्धक नेतृत्व में विद्रोह किया और गणतन्त्र को, जिसे नेपोलियन ने अपने प्रथम अभियान के बाद कुचल दिया था, पुनः प्राप्त कर लिया। पीडमोंट ने इन विद्रोहियों का साथ दिया और इस मुक्ति-संग्राम में सहायता पहुँचाने के लिए अपनी सेना भेज दी। जनता के दबाव के कारण तुस्कानी, पोप के राज्यों और नेपिल्स ने भी यही किया। साथ ही साथ इनमें से अनेक राज्यों ने अपनी जनता को उदार संविधान भी प्रदान कर दिये। इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से इटली ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी।

आस्ट्रियाई प्रान्तों में विद्रोह

इटली के प्रान्त आस्ट्रियाई नियंत्रण से मुक्त

जर्मनी में भी मार्च की इन घटनाओं का प्रभाव पड़ा। बर्लिन में जनता ने विद्रोह किया; सड़कों और गलियों में अवरोधक खड़े किये गये, महान् उपद्रव हुआ और कुछ लोग मारे भी गये। इस सबसे घबड़ाकर प्रुशिया के राजा ने संविधान स्थापित करने का वचन दिया। उसने यह भी वायदा किया कि मैं जर्मनी के एकीकरण के आन्दोलन का नेतृत्व करूँगा। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक **जर्मन राष्ट्रीय सभा** अथवा **संसद** का चुनाव किया गया। उसने राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में तुरन्त ही प्रारम्भिक कार्यवाही की। दो महीने उपरान्त फ्रांकफर्ट में जनता के महान् उत्साह और आशा के बीच इस **सभा** का उद्घाटन हुआ। अनेक जर्मन राजाओं ने अपने अपने राज्यों में संविधान स्थापित कर दिये।

जर्मनी में विद्रोह

इस प्रकार मार्च १८४८ के अन्त तक क्रान्ति की सर्वत्र विजय हुई। मार्च के इन प्रसिद्ध दिनों में वह शासन-प्रणाली जिसका यूरोप में एक पीढ़ी से आधिपत्य चला आया था ध्वस्त हो गई। सम्पूर्ण आस्ट्रियाई साम्राज्य, जर्मनी और इटली में क्रान्ति सफल हुई। हंगरी और बोहिमियाँ को महत्त्वपूर्ण रियायतें मिल गईं; आस्ट्रियाई प्रान्तों में संविधान स्थापित करने का वचन दिया गया। इटली के अनेक राज्यों में संविधान स्थापित हो गये, लोम्बार्डी-वेनीशिया के राज्य ने आस्ट्रिया का जुआ उतार फेंका और अपने को स्वतंत्र घोषित

मार्च की क्रान्तियाँ सर्वत्र सफल

कर दिया और शेष इटली ने विद्रोहियों की सहायता के लिए कदम उठाया; प्रशिया में संविधान स्थापित करने का वचन दिया गया और जर्मनी में स्वतंत्रता और एकता स्थापित करने के लिए एक सम्मेलन की तैयारियाँ होने लगीं।

आस्ट्रिया ने पुनः स्थापना का कार्य प्रारम्भ किया

किन्तु यह विजय क्षणिक सिद्ध हुई। घोरतम अपमान और पराजय के क्षणों में आस्ट्रिया ने पुनर्जीवन प्राप्त करने की अद्‌भुत शक्ति का परिचय दिया। साम्राज्य के अन्तर्गत बसी हुई नस्लों की पारस्पारिक स्पर्धा और उसकी अपनी सेना—इन दो चीजों पर ही उसके उद्धार की आशा टिकी हुई थी। सरकार को पहली विजय इटली में नहीं बल्कि बोहिमियाँ में प्राप्त हुई, यद्यपि इटली की स्थिति बहुत गम्भीर थी। जैसा कि पहले देख चुके हैं मार्च महीने में बोहिमियाँ की जर्मन और चैक दोनों जातियों ने मिलकर पूर्वोक्त सुधारों को प्राप्त करने के लिए कार्य किया था, किन्तु शीघ्र ही उन दोनों जातियों में फूट पड़ गई। गुन्ताड़े-बाज व्यक्तियों ने इस नस्लगत विद्वेष को भड़काने का प्रयत्न किया जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राग की सड़कों में जर्मनों और चैकों के बीच भिड़न्त हो गई।

बोहिमियाँ की पुनः विजय

प्राग में स्थित शाही सेना के सेनापति विंडिशग्राट्त्स ने इस अवसर से लाभ उठाकर नगर पर गोलाबारी कर दी (जून, १८४८)। नगर पर अधिकार करके वह अधिनायक बन बैठा इस प्रकार आस्ट्रिया साम्राज्य के अन्तर्गत विद्यमान कटु नस्लगत विद्वेष और स्पर्धा से लाभ उठाकर सेना ने पहली विजय प्राप्त की।

इटली की आंशिक पुनर्विजय

इटली में भी सेना की जीत हुई। उत्साह की पहली हिलोर के बाद इटली-वासियों में भी ईर्ष्या और कलह की आग धधकने लगी। तुस्कानी और नेपिल्स के शासकों तथा पोप ने राष्ट्रीय आन्दोलन का पक्ष त्याग दिया। परिणाम यह हुआ कि पीडमोंट का शासक चार्ल्स अल्बर्ट और लोम्बार्डी के विद्रोही आस्ट्रिया का मुकाबला करने के लिये अकेले रह गये। इस समय आस्ट्रियाई सेना का नेतृत्व रेडेट्स्की नामक सेनापति के हाथों में था। उसने ६० वर्ष तक आस्ट्रिया के हर युद्ध में यश प्राप्त किया था, और अब ८२ वर्ष की आयु में पुनः एक बार अपनी कीर्ति पताका फहराई। उसने २५ जुलाई, १८४८ के दिन कुस्तोत्सा के युद्ध में चार्ल्स अलबर्ट को परास्त किया और फिर इस आशा से कि मैं अपना काम आगे चलकर पूरा कर लूँगा एक विराम-संधि करली। इस प्रकार १८४८ के ग्रीष्म के मध्य तक आस्ट्रियाई सरकार ने बोहिमियाँ में पुनः अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और इटली में भी अपनी खोई हुई शक्ति को आंशिक रूप में प्राप्त कर लिया।

हंगेरी में गृह-कलह

अब वह ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थी जिससे उसे हंगेरी में भी अपनी खोई हुई स्थिति को फिर से कायम करने में सफलता मिल सके। जब उस देश में भी पारस्परिक कलह की आग धधकने लगी तो उसे वांछित अवसर मिल गया। नस्लगत और राष्ट्रीय स्पर्धा ने अत्यन्त उग्ररूप धारण कर लिया। यद्यपि मगयार लोग संख्या में कम थे, किन्तु बोहिमियाँ में उन्हीं का अधिपत्य चला आया था, और मार्च महीने की विजय वास्तव में उन्हीं की विजय थी। किन्तु अब सर्ब, क्रोट और रोमानी जातियों में भी राष्ट्रीय भावना प्रबल होने लगी थी। १८४८ के ग्रीष्म के

दिनों में इन जातियों ने हंगेरी की संसद से माँग की कि हमें भी वे अधिकार मिलने चाहिये जो मगयारों ने अपने लिये वीना सरकार से प्राप्त कर लिये हैं। वे स्थानीय स्वराज्य और अपनी भाषाओं और विशिष्ट रूढ़ियों के लिए मान्यता चाहते थे। इस चीज के लिये मगयार लोग क्षण भर के लिये भी तैयार नहीं थे। उनका इरादा था कि हंगेरी में केवल मगयारों की जाति को ही राष्ट्रीय मान्यता दी जाय। व्यक्तिगत नागरिक समानता सभी निवासियों को उपलब्ध होगी, चाहे वे किसी भी नस्ल के हों। किन्तु किसी जाति को पृथक् अथवा आंशिक रूप से पृथक् राष्ट्र नहीं माना जायगा और न मगयारों की भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी को राजभाषा स्वीकार किया जायगा। अतः उन्होंने इन माँगों को एकदम ठुकरा दिया। फल यह हुआ कि हंगेरी के राज्य में, जिसकी शक्ति की स्थापना अभी हाल में हुई थी और जिसकी नींव इतनी दुर्बल थी, अत्यधिक कटु नस्लगत घृणा फूट पड़ी।

मगयार लोगों ने राष्ट्रीयता के मूल अधिकार के लिये दीर्घ काल तक विकट संघर्ष किया था और अन्त में उसे प्राप्त करने में सफल हुए थे, किन्तु अब वे वही अधिकार अन्य जातियों को नहीं देना चाहते थे। सच तो यह है कि उन्होंने उत्पीड़न की नीति प्रारम्भ कर दी और इस बात का प्रयत्न किया कि इन सब विभिन्न जातियों को बलपूर्वक आत्मसात करके एक ढाँचे में ढाल दिया जाय, अर्थात सब को मगयार बना लिया जाय। तभी से यह नीति हंगेरी की राजनीति में एक चुचियाते फोड़े का काम करती आई है।

मगयारों का आग्रह था कि क्रोशिया के सभी स्कूलों में मगयार भाषा पढ़ाई जाय और उस प्रान्त तथा बुडापेस्ट की केन्द्रीय सरकार के बीच होने वाले सभी पत्र-व्यवहार में उसी का प्रयोग किया जाय। क्रोश लोगों ने इस अनमनीय तथा अनुदार नीति पर रोष प्रकट किया, और उनके रोष ने शीघ्र ही विरोध का रूप धारण कर लिया। आस्ट्रियाई सरकार ने इस कलह से लाभ उठा कर पुनः अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। अप्रत्यक्ष तरीकों तथा कुचालों के द्वारा उसने इस नस्लगत घृणा को प्रज्वलित किया। उसे आशा थी कि मगयारों और स्लावों के एक दूसरे के प्रति असंतोष और क्रोध से हमें लाभ होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि हंगेरी और आस्ट्रिया के बीच दिनों-दिन तनाव बढ़ता गया।

आस्ट्रिया ने स्थिति से लाभ उठाया

अन्त में सितम्बर, १८४८ में येलाखिश नाम के एक व्यक्ति ने जो हंगेरीवासियों से बहुत घृणा करता था और जिसे आस्ट्रिया के सम्राट् ने क्रोशिया का राज्यपाल नियुक्त कर दिया था, क्रोशों और सर्वों की एक सेना एकत्र करके मगयारों पर आक्रमण कर दिया और इस प्रकार एक गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। मगयारों का हंगेरी में अधिपत्य था, और वे विद्रोही स्लावों को कुचल कर अपनी इस स्थिति को कायम रखना चाहते थे, और यदि आस्ट्रिया उनके मार्ग में आता तो उससे भी भिड़ने को तैयार थे।

उधर बोहिमियाँ और इटली में सेना की जो जीत हुई उससे प्रोत्साहित होकर आस्ट्रिया में प्रतिक्रियावादी दल ने राज्य पर अपना सिकंजा मजबूती से कसने का संकल्प किया, पहले उसने सम्राट् फर्नीनेण्ड को सिंहासन त्यागने पर वाध्य किया। २ दिसम्बर, १८४८ को सम्राट का भतीजा जोजफ फ्रांसिस प्रथम सिंहासन पर बैठा। उस

फ्रांसिस जोजफ प्रथम का 'सिंहासनारोहण'

समय वह केवल अठारह वर्ष का छोकरा था, किन्तु उसका शासनकाल दीर्घ और घटनासंकुल सिद्ध हुआ। इस चाल का उद्देश्य यह था कि वैधता की आड़ लेकर हंगेरी के मार्च महीने के कानून रद्द कर दिये जायँ। कहा गया कि नया सम्राट फर्डीनेण्ड के वचनों का पालन करने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता, अतः मार्च में किए गये वायदे रद्द हो जाने चाहिये। स्थिति दिन पर दिन विगड़ती गई। आस्ट्रिया ने वोहिमियाँ की भाँति हंगेरी को भी कुचलने के लिए तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। उधर हंगेरी ने भी संघर्ष के लिए कमर कस ली।

इस प्रकार १८४९ में हंगेरी में एक महान् युद्ध छिड़ गया। कौसूथ ने हंगेरी-वासियों का नेतृत्व किया। उत्तेजना के उन्माद में उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया और घोषणा कर दी कि हैप्सवर्ग का राजवंश झूठा और धर्मद्रोही सिद्ध हुआ है अतः उसका शासन समाप्त होता है और अव हंगेरी एक स्वाधीन राष्ट्र है। कौसूथ को हंगेरी के अखण्ड राज्य का राष्ट्रपति नियुक्त किया गया, गणराज्य शब्द का प्रयोग नहीं किया गया, किन्तु हंगेरी-वासियों का संकल्प शायद यही था कि यदि देश स्वाधीनता प्राप्त करने में सफल रहा तो गणतन्त्रीय शासन-व्यवस्था की स्थापना की जायगी।

हंगेरी की स्वाधीनता की घोषणा (अप्रैल १४, १८४९)

किन्तु ऐसा होने को नहीं था। मगयारों ने हंगेरी की अन्य जातियों के साथ जो अनुदार व्यवहार किया उसका स्वाभाविक प्रतिफल उन्हें मिल गया। हंगेरी की सेनाओं को आस्ट्रियाई सेनाओं का ही सामना नहीं करना पड़ा वल्कि उन्हें हंगेरी के उन स्लावों से भी लड़ना पड़ा जो मगयारों से वदला लेने के इच्छुक थे और जिनकी सहायता आस्ट्रिया कर रहा था। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी हंगेरीवासियों को कुछ सफलता मिली. किन्तु उन्होंने अपने देश को स्वाधीन घोषित करके स्थिति को जटिल वना दिया था, जिसके परिणाम उनके लिये घातक सिद्ध हुए। समस्या ने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। अन्त में विदेशी हस्तक्षेप ने इस उपद्रवग्रस्त अध्याय को सहसा समाप्त कर दिया। फ्रांसिस जोज़फ ने रूस के जार से सहायता के लिए अपील की। निकोलस प्रथम ने वड़ी तत्परता से इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। अनेक कारण थे जिन्होंने उसे ऐसा करने की प्रेरणा दी। अपने स्वभाव तथा राजनीतिक विश्वासों के कारण वह क्रान्तिकारी आन्दोलन के विरुद्ध अपने साथी सम्राटों की सहायता करने के लिए सदैव उद्यम रहता था। वह स्वयं स्वेच्छा-चारी शासक था; अतः उसकी इच्छा थी कि जहाँ कहीं भी स्वेच्छाचारी शासन हो उसको सुरक्षित रक्खा जाय। दूसरे, वह यह नहीं चाहता था कि उसकी सीमाओं पर ही एक गणराज्य स्थापित हो जाय। इसके अतिरिक्त उसे डर था कि यदि हंगेरी सफल हो गया तो पोलैण्ड में भी उपद्रव उठ खड़े होंगे। अनेक पोल लोग हंगेरी की सेना में लड़ रहे थे।

हंगेरी में युद्ध

रूस की सेनायें पूर्व तथा उत्तर की ओर से हंगेरी पर चढ़ गईं। विभिन्न लोगों के अनुमान के अनुसार उनकी संख्या एक और दो लाख के वीच रही होगी। आस्ट्रियाई सेना ने पुनः पश्चिम की ओर से वढ़ना आरम्भ

किया। कोसूथ की वक्तृता से अनुप्राणित हंगेरीवासियों ने योग्यता से और जान हथेली पर रख कर युद्ध किया। उन्होंने तुर्कों से भी सहायता माँगी, किन्तु विफल रहे। अन्त में उन्होंने स्लावों से भी अपील की और आपत्ति के इस क्षण में उनको वे सब अधिकार देने के लिये तैयार हो गये जिन्हें उन्होंने अपनी समृद्धि के समय में देने से इन्कार कर दिया था, किन्तु इसमें भी उन्हें सफलता न मिली। शत्रुओं की संख्या इतनी अधिक थी कि विजय की आशा करना व्यर्थ था। कौसूथ ने जौर्जी नामक प्रधान सेनापति के पक्ष में अपना पद त्याग दिया। १३ अगस्त, १८४९ को जौर्जी बिलागौस नामक स्थान पर परास्त हुआ और विवश होकर हथियार डाल दिये। हंगेरी की स्वाधीनता का संग्राम समाप्त हो गया। कौसूथ तथा अन्य लोग भाग कर टर्की पहुँचे, जहाँ उन्हें शरण मिल गई। जार निकोलस ने गर्व के साथ उपद्रवकारी हंगेरी को जोजफ फ्रांसिस के सुपुर्द कर दिया। यदि आस्ट्रिया को केवल अपने ही साधनों पर निर्भर रहना पड़ता तो सम्भवतः वह उस देश को जीतने में असमर्थ रहता। हंगेरीवासियों को जो दण्ड दिया गया उसमें दया का तनिक भी पुट नहीं था। अनेक सेनापतियों तथा असैनिक लोगों को फाँसी दे दी गई। सांविधानिक अधिकार पूर्णतया समाप्त कर दिये गये। हंगेरी आस्ट्रिया का एक प्रान्तमात्र रह गया और उसे बूटों की ठोकरों से कुचल दिया गया। ऐसा लगा कि १८४९ की यह दारुण विपत्ति हंगेरी का सत्यानाश कर देगी।

हंगेरी को जीत लिया गया

इस बीच में आस्ट्रिया ने अपने पुनः प्राप्त सैनिक बल से इटली को भी जीत लिया। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, १८४८ में आस्ट्रिया के विरुद्ध इटली के अभियान का नेतृत्व सार्डीनियाँ के राजा चार्ल्स अलबर्ट ने किया था। उसे सफलता नहीं मिली थी और अगस्त में कुस्तोत्सा के स्थान पर उसे विवश होकर विराम-सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े थे। किन्तु इटली में अनेक गणतंत्रवादी थे जिनका विश्वास था कि अलबर्ट ने पूरे मन से संघर्ष नहीं चलाया है, और सांविधानिक राजतंत्रवादी कभी इटली का उद्धार नहीं कर सकते। इन लोगों ने अब अपने विचारों को क्रियान्वित करने का संकल्प किया। उन्होंने फ्लोरेंस तथा रोम में विद्रोह खड़े किए और उन राज्यों को गणराज्य घोषित कर दिया। तुस्कानी का महान् ड्यूक तथा पोप ने भाग कर नेपिल्स के राज्य में शरण ली। पोप की ऐहिक शक्ति का अन्त हो गया।

इटली को जीतने का कार्य पूर्ण हुआ

इन सब परिवर्तनों का फल यह हुआ कि विराम-सन्धि के समाप्त होने पर १८४९ में जब चार्ल्स अलबर्ट आस्ट्रिया के विरुद्ध पुनः मैदान में उतरा तो उस समय वह अकेला था। गणतंत्रवादियों में न तो उसकी सहायता करने की सामर्थ्य थी और न इच्छा। इस संकट के क्षण में इटलीवासियों में परस्पर फूट थी। यदि उनमें एकता होती तो भी उन्हें अपना स्वाधीनतता संग्राम चलाने में पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। अब इस स्थिति में तो सफलता की तनिक भी आशा नहीं थी। पीडमोंट के दक्षिण में स्थित राज्यों ने चालर्स अलबर्ट को कोई सहायता नहीं दी। २३ मार्च, १८४९ के दिन नोवारा के स्थान पर सार्डीनिया की सेना को धूल चटा दी गई। राजा ने स्वयं युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु का आह्वान किया किन्तु विफल रहा।

चार्ल्स अलबर्ट ने सिंहासन त्याग दिया

उसने कहा "मृत्यु ने भी मुझे दुतकार दिया है।" यह सोचकर कि किसी अन्य व्यक्ति के सिंहासन पर आसीन होने से शत्रु शायद मेरे देश के साथ कुछ अधिक अच्छा बर्ताव हो, उसने अपने पुत्र विक्टर इमानुअल के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। नये राजा का शासन विपत्तियों के घोरतम अन्धकार में प्रारम्भ हुआ, किन्तु भाग्य ने उसका साथ दिया और आगे चलकर उसका राज्यकाल अत्यन्त गौरवमय सिद्ध हुआ। चार्ल्स अलबर्ट देश छोड़कर चला गया और कुछ महीने उपरान्त ही इहिलीला समाप्त कर दी। कुछ भी हो, उसने अपने वंश और इटली की बड़ी सेवा की; अपने आचरण से उसने सिद्ध कर दिया कि इटली का कम से कम एक राजा ऐसा है जो राष्ट्रीय अभ्युत्थान के हेतु अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार है। उसने इटलीवासियों के हृदय में सेवोय के राजवंश तथा पीडमोंट की सरकार के प्रति विश्वास उत्पन्न कर दिया। लोग उसे राष्ट्र का शहीद मानते थे।

गणराज्यों का उन्मूलन

अगले महीनों में फ्लोरेंस, रोम और वेनिस के गणराज्यों को एक-एक करके समाप्त कर दिया गया। १८४८ की ज्वलन्त आशाएँ बुझ गईं। शीघ्र ही सारे प्रायद्वीप में क्रूर प्रतिक्रिया का अधिपत्य कायम हो गया। आस्ट्रिया की शक्ति की पुनः स्थापना होगई। देखने में अब आस्ट्रिया पहले से भी अधिक सामर्थ्यवान प्रतीत होता था। केवल पीडमोंट अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने में समर्थ रहा, किन्तु कुछ समय तक तो वह युद्ध के विनाशकारी भार और अपमानजनक सन्धि के बीच पड़ा कराहता रहा।

फ्रांकफर्ट की संसद

इसी बीच में जर्मनी के उदारवादियों की विजय पराजय में बदलने लगी। उनकी आशाएँ फ्रांकफर्ट की संसद के वादविवाद पर टिकी हुई थीं। उस संसद में सार्वभौम मताधिकार के आधार पर निर्वाचित छः सौ प्रतिनिधि सम्मिलित थे। उनमें से अनेक बड़े योग्य थे, किन्तु उनकी सत्ता का आधार केवल नैतिक था। यद्यपि विभिन्न राज्यों के शासकों ने इस संसद के सत्र को रोकने का प्रयत्न नहीं किया, क्योंकि जनता की इच्छा का विरोध करने का उनमें साहस नहीं था, किन्तु इन राजाओं ने उसे अस्तिमूलक सहायता नहीं दी और इन आशा से टालू खेल खेलते रहे कि इसके जो निर्णय हमारे प्रतिकूल दिखाई देंगे उन्हें हम कार्यान्वित नहीं होने देंगे। फ्रांकफर्ट का सम्मेलन इसलिए बुलाया गया था कि देश की जनता १८१५ में वीना में स्थापित खोखले परिसंघ के स्थान पर एक सच्चे जर्मन राष्ट्र की रचना की जोरदार माँग कर रही थी। लोगों को आशा थी कि संसद एक संविधान की रचना करेगी, और वह संविधान लोकतांत्रिक होगा। इसका उद्देश्य केवल जर्मनी की एकता स्थापित करना नहीं था, अपितु लोग यह चाहते थे कि निरंकुश राजाओं और विशेषाधिकृत वर्गों के शासन के स्थान पर लोकप्रिय शासन की स्थापना हो, अर्थात् जर्मन जाति को राजनीतिक स्वतन्त्रता भी उपलब्ध हो। जनता को आशा थी कि संसद एक महान् स्वतंत्र जर्मन राष्ट्र को जन्म देगी, और राष्ट्र की एकता का आधार लोकतंत्र होगा। यह काम बड़ा कठिन था, और उसके कई कारण थे। राष्ट्र का एकीकरण एक संघव्यवस्था के आधार पर ही हो सकता था; क्योंकि उस समय जर्मनी में लगभग चालीस राज्य थे, जिनमें से प्रत्येक का

जर्मनी की एकता की समस्या इतनी कठिन क्यों सिद्ध हुई ?

अपना इतिहास, अपनी परम्पराएँ और अपना राजवंश तथा दूसरों से डरने के अपने कारण थे। किन्तु संघ तो प्रायः उन राज्यों के वीच भी कठिन होता है जो राजनीतिक विकास की दृष्टि से समान होते हैं, जबकि जर्मन राज्यों का राजनीतिक विकास असमान था। कुछ राज्यों में संविधान और संसदें थीं और जनता को स्वशासन का कुछ अनुभव था। किन्तु आस्ट्रिया और प्रुशिया के प्रमुख राज्यों में इन चीजों का अभाव था, और राजनीतिक विकास की दृष्टि से वे पिछड़े हुये थे। इसके अतिरिक्त ये दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे और कोई भी सार्वजनिक जर्मन पितृभूमि के लिए अपना स्वतंत्र अस्तित्व और शक्ति खोने के लिए तैयार नहीं था। जब तक संघ में प्रविष्ट होने वाले राज्य अपनी शक्ति का उत्सर्ग करने के लिए तैयार नहीं होते तब तक कोई संघ नहीं बन सकता। इसके अतिरिक्त इन दोनों राज्यों के शासकवर्ग ऐसी हर चीज से घृणा करते थे जिसमें लोकतंत्र की गंध आती हो।

फ्रांकफर्ट की संसद निष्फल सिद्ध हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी में शताब्दी की दो विशिष्ट प्रवृत्तियों—एकता की प्रवृत्ति और लोकतंत्र की प्रवृत्ति—की धारा कुछ समय के लिए अवरुद्ध हो गई। सच तो यह है कि लोकतंत्र की प्रवृत्ति की धारा अब तक अवरुद्ध है। राष्ट्रीय एकता तो एक पीढ़ी के उपरान्त स्थापित हो गई, किन्तु लोकप्रिय स्वराज्य अब तक कायम नहीं हो सका है।

जर्मन राजाओं की एकता तथा लोकतंत्र के प्रति शत्रुता

संसद की विफलता का कुछ उत्तरदायित्व तो उसके सदस्यों पर ही था, जिन्होंने अनेक भूलें की थीं, किन्तु मुख्य कारण जर्मनी के राजाओं का विरोध था, विशेषकर प्रुशिया और आस्ट्रिया का। फिर भी संसद एक संविधान की रचना करने में सफल रही, जिसमें अनेक गुण थे। उसमें प्रत्येक जर्मन को नागरिक स्वतंत्रता और विधि के समक्ष समानता की गारंटी दी गई और केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों की सरकारों पर संसदीय नियंत्रण स्थापित करने की व्यवस्था की गई। यह निश्चय किया गया कि जर्मन राष्ट्र की सीमाएँ वे ही हों जो पुराने **परिसंघ** की थीं। किन्तु इस निर्णय से आस्ट्रिया अप्रसन्न हो गया, क्योंकि वह अपने सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र के सहित जर्मनी में सम्मिलित होना चाहता था, उसके एक भाग के साथ नहीं। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि नई सरकार का रूप क्या हो और कार्यपालक शक्ति किसके हाथों में हो। सम्राट् हो अथवा राष्ट्रपति अथवा एक शासक मंडल ? और यदि किसी को सम्राट् बनाया जाय तो उसका पद पित्रागत हो, अथवा जीवन-काल के लिए अथवा एक निश्चित अवधि के लिए ? क्या प्रुशिया के राजा को सम्राट् बनाया जाय, अथवा आस्ट्रिया के राजा को अथवा पहले एक को और फिर दूसरे को ? अन्तिम निर्णय यह हुआ कि जर्मनी एक पित्रागत साम्राज्य हो, और २८ मार्च १८४६ को प्रुशिया के राजा को उसका प्रमुख चुन लिया गया। आस्ट्रिया ने तुरन्त घोषणा करदी कि न तो हम यही सहन करेंगे कि हमें **जर्मन परिसंघ** से निकाल दिया जाय, और न हम अपने जर्मन प्रान्तों को ही अपने साम्राज्य से पृथक् होने देंगे।

अब बर्लिन आकर्षण का केन्द्र बन गया, और एक प्रतिनिधि मंडल फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को संयुक्त जर्मनी का साम्राज्यीय मुकुट भेंट करने के लिए वहाँ

गया। प्रश्न यह था कि क्या वह इस मुकुट को स्वीकार करेगा। यदि वह इसके लिए राजी हो गया तो नई योजना, जिसमें छोटी-छोटी अट्ठाईस जर्मन रियासतें सम्मिलित हो गई थीं, तुरन्त लागू हो जायगी, यद्यपि इसमें आस्ट्रिया से जोकि उस समय तक अपनी बहुत-सी कठिनाइयों से मुक्त हो चुका था, युद्ध हो जाने का डर था। १८४७ में फ्रेडरिख विलियम चतुर्थ ने घोषणा की थी कि मैं जर्मनी की समस्या को हर प्रकार से सुलझाने के लिए तैयार हूँ—"आस्ट्रिया के सहयोग से, बिना आस्ट्रिया के और यदि आवश्यक हुआ तो आस्ट्रिया के विरुद्ध भी।" किन्तु अब उसकी मनस्थिति बिलकुल भिन्न थी। उसने **फ्रांकफर्ट की संसद** का प्रस्ताव स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इसके अनेक कारण थे। आस्ट्रिया ने घोषणा की कि हम अधीनता की स्थिति को कभी स्वीकार नहीं करेंगे, और इससे वह घबड़ा गया। इसके अतिरिक्त उसे क्रान्तिकारी सभा के हाथों से मुकुट ग्रहण करने का विचार ही पसन्द न था, उसका विचार यह था कि यह उपहार मेरे बराबर वालों अर्थात् जर्मनी के राजाओं की ओर से आए तो अच्छा हो।

फ्रांकफर्ट की संसद का काम रद्द कर दिया गया

इस प्रकार जर्मनी की दो शक्तियों, प्रुशिया और आस्ट्रिया ने, **फ्रांकफर्ट की संसद** के काम को रद्द कर दिया। जब इन महान् शक्तियों ने ही उसकी आशाओं पर इस प्रकार पानी फेर दिया, तो फिर वह जर्मनी पर अपना संविधान कैसे थोप सकती थी? आखिरकार बड़ी दयनीय स्थिति में उस संसद का अस्तित्व समाप्त हो गया, एक वर्ष से भी अधिक लम्बे काल में वह कुछ न कर सकी। किन्तु १८४८ और १८४९ में जर्मन लोग वास्तविक राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में असफल रहे इसका उत्तरदायित्व उस पर नहीं, बल्कि प्रुशिया और आस्ट्रिया के शासकों पर था।

फ्रांकफर्ट की संसद की विफलता से जर्मनी में घोर निराशा छा गई। चूँकि जर्मन के इन शासकों ने संसद के काम को धूल में मिला दिया था, इसलिए अनेक उग्र विचारों के जर्मनों ने तलवार के बल पर गणतन्त्र स्थापित करने का दुःसाहस-पूर्ण प्रयत्न किया।

गणतन्त्रीय विद्रोह

दक्षिण पूर्वी जर्मन में, जहाँ की जनता को स्वतन्त्रता से विशेष अनुराग था, एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। बाडेन की सैनिक टुकड़ियाँ विद्रोह में सम्मिलित हो गईं। और आन्दोलन राइन तक फैल गया। "जर्मनी के राजाओं के इस कुत्सित विद्रोह के मुकाबिले में राष्ट्र की उदारवादी एकता को कायम रखने के इस अन्तिम और दुःसाहसपूर्ण प्रयत्न में जर्मनी के अनेक महान् और उदारमना व्यक्तियों ने योग दिया, किन्तु सब कुछ विफल सिद्ध हुआ, प्रुशिया की प्रशिक्षित वाहिनियों के सामने लोकतांत्रिक आदर्शवाद को घुटने टेकने पड़े, और स्मरण रखने की बात यह है कि इस प्रकार का अवसर न तो यह पहला ही था और न अन्तिम।"[1] मई, १८४९ में गणतन्त्रवादियों को प्रुशिया के सैनिकों ने गोली से भून दिया अथवा तितर-बितर कर दिया जर्मनी का गणतन्त्रवादी दल इस प्रहार से फिर कभी सँभल नहीं पाया।

1. Fisher, *The Republican Tradition in Europe*, p. 265.

अब जर्मनी में उन लोगों के लिये कोई आशा नहीं थी जिन्हें लोकतांत्रिक और गणतन्त्रीय विचारों तथा आदर्शों में गहरी आस्था थी उनमें से अनेक ऐसे थे जो अपने विश्वासों और विचारों की स्वतन्त्रता को त्यागने के लिये तैयार न थे, ऐसे राज्य में नहीं रहना चाहते थे जिसमें व्यक्तियों को अत्यन्त प्रारम्भिक अधिकार भी उपलब्ध न थे, इसके अतिरिक्त जर्मनी के राज्यों में उनका जीवन भी सुरक्षित न था और न वहाँ उन्हें कोई चाहता था। ऐसे लोगों के सामने अपनी जन्मभूमि को छोड़कर अन्यत्र चले जाने के अतिरिक्त कोई चारा ही न था। ऐसे व्यक्तियों में एक कार्ल शूर्त्स नाम का प्रुशियावासी था जिसने १८४८ के विद्रोह में सराहनीय कार्य किया। अन्य अनेक लोगों की भाँति वह भी संतप्त हृदय लेकर अमेरिका चला गया क्योंकि उसको विश्वास हो गया था कि जर्मनी और यूरोप में स्वतन्त्रता का पक्ष हार चुका है, अतः जन्मभूमि और स्वतन्त्रता इनमें से एक चीज का वरण करना है। अमेरिका को इससे बड़ा लाभ हुआ। जिन लोगों को अपने देश में लोकतांत्रिक संस्थाएँ उपलब्ध न हो सकीं वे उन्हें **नई दुनिया** में पा सकते थे और साथ ही साथ उन सुविधाओं का भी उपभोग कर सकते थे जो नागरिकों को लोकतन्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत उपलब्ध हुआ करती हैं।

जर्मन उदारवादियों का अमेरिका के लिए प्रस्थान

फ्रांकफर्ट की संसद ने प्रुशिया के राजा को संयुक्त जर्मनी का मुकुट देने का जो प्रस्ताव किया था उसको अस्वीकार करके उसने उस संसद के परिश्रम को निष्फल कर दिया था। किन्तु अब उसने अन्य तरीके से जर्मनी का प्रमुख बनने का प्रयत्न किया। उसका प्रस्ताव था कि जो राज्य शुद्ध रूप से जर्मन हैं उन्हें मेरी अधीनता में संयुक्त कर दिया जाय। इसका अर्थ यह था कि आस्ट्रिया को, जिसमें अनेक गैर-जर्मन जातियाँ सम्मिलित थीं, जर्मन साम्राज्य से निकाल दिया जाय। अनेक छोटी-छोटी रियासतें इस **प्रुशियाई संघ** में सम्मिलित हो गईं (१८४९)। इससे प्रुशिया और आस्ट्रिया के बीच तीव्र संघर्ष उठ खड़ा हुआ। कारण यह था कि आस्ट्रिया यह नहीं चाहता था कि उसे जर्मनी से खदेड़ दिया जाय। अतः उसके लिये इस बात से अप्रसन्न होना स्वाभाविक था कि प्रुशिया उसका नेतृत्व छीनने का प्रयत्न करे। इसलिए हंगेरी के उपद्रवों को अन्तिम रूप से शांत करने के उपरांत आस्ट्रिया ने प्रुशिया के राजा को अपनी योजनाओं को तत्काल त्याग देने का आदेश दिया, जिसे उसने तुरन्त मान लिया। यह घटना, जिसमें प्रुशिया के राजा को इस प्रकार नीचा देखना पड़ा इतिहास में "ओलमुट्त्स के अपमान" के नाम से प्रसिद्ध है। अब आस्ट्रिया ने माँग की कि १८१५ का **जर्मन परिसंघ** जिसे १८४८ में स्थगित कर दिया गया था, पुनः स्थापित किया जाय और फ्रांकफर्ट में उसकी **संसद** पूर्ववत कायम की जाय। १८५१ में यह काम सम्पन्न हो गया। संसद में आस्ट्रिया की स्थिति पहले से कहीं अधिक मजबूत हो गई। अल्पकालीन **प्रुशियाई संघ** भंग कर दिया गया।

"ओलमुट्त्स का अपमान"

मध्य यूरोप के इस मध्य-शताब्दीय विद्रोह के स्थायी परिणाम बहुत कम हुए। सर्वत्र पुरानी सरकारें अपनी अपनी जगह पर आसीन हो गईं और पुरानी परम्पराओं का पुनः अनुसरण करने लगीं। किन्तु दो

१८४८ के विद्रोह के परिणाम

राज्य ऐसे थे जिन्होंने इस क्रांति के काल में स्थापित संविधानों को कायम रक्खा। सार्डीनिया में चार्ल्स अलवर्ट ने ४ मार्च १८४८ को **सांविधानिक परिनियम** की घोषणा की थी, जिसके आधार पर वहाँ एक वास्तविक संविधान और संसदीय सरकार की स्थापना हुई। इटली में इस ढँग की यही एक सरकार थी। प्रुशिया के राजा ने १८५० में जो संविधान स्थापित किया था वह सार्डीनिया के संविधान की तुलना में बहुत कम उदार था, फिर भी इतना उदार तो था ही कि इससे प्रुशिया की यूरोप के सांविधानिक राज्यों में गणना होने लगी। इसने राज्य के पुराने निरंकुश-तन्त्रीय ढाँचे में कम से कम बाह्य परिवर्तन तो कर ही दिया। एक द्विसदनात्मक संसद की स्थापना हुई। एक दृष्टि से यह संविधान सभी उदारवादियों के लिये घोर निराशा का कारण सिद्ध हुआ। १८४८ के मार्च के दिनों में राजा ने सार्वभौम मताधिकार का वचन दिया था, किन्तु संविधान का जो अन्तिम रूप सामने आया उससे यह आशा पूरी नहीं हुई। जो व्यवस्था कायम हुई वह विश्व में अपने ढँग की अनोखी थी। सैद्धान्तिक दृष्टि से सार्वभौम मताधिकार कायम रहा, किन्तु उसका ऐसे आश्चर्यजनक ढँग से प्रयोग किया गया कि व्यवहार में

प्रुशिया की त्रिवर्गीय निर्वाचन व्यवस्था

वह निरर्थक सिद्ध हुआ। सम्पूर्ण प्रुशिया में हर निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं को सम्पत्ति के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त कर दिया गया। एक क्षेत्र से करों के रूप में जो रकम वसूल की जाती उसे तीन समान भागों में बाँटा गया, पहला तिहाई चुकाने वाले मतदाता पहले वर्ग में रखे गये, दूसरा तिहाई चुकाने वाले दूसरे वर्ग में, और तीसरा तिहाई देने वाले तीसरे में। इस प्रकार थोड़े से धनी, उनसे कम धनी और गरीब लोगों के पृथक समूह बन गये। तीनों वर्ग अलग अलग वोट देकर एक सम्मेलन के लिये समान संख्या में प्रतिनिधि चुनते और वह सम्मेलन उस क्षेत्र से प्रुशिया की संसद के निम्न सदन के लिये प्रतिनिधियों को चुनता। इस प्रकार हर निर्वाचक मण्डल के दो तिहाई सदस्य धनी वर्ग के हुआ करते थे। अतः इस व्यवस्था के अन्तर्गत गरीबों अर्थात् बहुसंख्यक सामान्य जनता के लिये कोई स्थान नहीं था। १८५० के संविधान द्वारा स्थापित यह व्यवस्था प्रुशिया में दीर्घकाल तक विद्यमान रही। इसने राजनीतिक क्षेत्र में सारी शक्ति अमीरों के हाथों में दे दी। प्रथम वर्ग के सदस्यों की संख्या बहुत कम थी, किसी किसी जिले में तो केवल एक सदस्य होता था, दूसरे वर्ग में कभी कभी पहले से बीस गुने सदस्य होते थे, और तीसरे में सौगुने और कहीं कहीं हजार गुने तक। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि पच्चीस वर्ष की आयु के हर व्यक्ति को मतदान का अधिकार मिला हुआ था, किन्तु एक अमीर आदमी के वोट का वही महत्त्व हो सकता था जो हजार श्रमिकों के वोट का। इस तरह सार्वभौम मताधिकार का इस ढँग से प्रयोग किया जाता कि लोकतन्त्र कभी पनप ही न सके और विशेषाधिकृत वर्गों की स्थिति सदैव सुदृढ़ बनी रहे। शासन का केवल एक ही अंग ऐसा था जो देखने में कुछ उदार लगता था, उसकी भी वास्तविक स्थिति यह थी, अन्य अंगों का तो कहना ही क्या। बिस्मार्क को उदारवाद से कोई सहानुभूति नहीं थी, किन्तु उसने भी एक बार कहा था कि इससे बुरी निर्वाचन व्यवस्था और कोई नहीं हो सकती। व्यवस्था कितनी अन्यायपूर्ण थी इसका ज्वलन्त उदाहरण १९०० का चुनाव है, जिसमें बहुसंख्यक मतदाताओं ने **सामाजिक लोकतन्त्रवादियों** के पक्ष में वोट डाले, किन्तु उन्हें चार सौ पचास में से केवल सात सीटें उपलब्ध हो सकीं।

अध्याय १७

द्वितीय फ्रांसीसी गणतंत्र तथा द्वितीय साम्राज्य की स्थापना

द्वितीय गणतंत्र

दूसरा गणतंत्र नाममात्र के लिए पाँच वर्ष तक जीवित रहा, २४ फरवरी, १८४८ से २ दिसम्बर १८५२ तक। उसके समाप्त होने पर **द्वितीय साम्राज्य** की घोषणा कर दी गई। किन्तु, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, व्यावहारिक दृष्टि से **द्वितीय गणतंत्र** एक वर्ष पहले ही, अर्थात् २ दिसम्बर, १८५१ को समाप्त हो गया। इस काल में फ्रांस पर एक के बाद तीन सरकारों ने शासन किया। २४ फरवरी को **अस्थायी सरकार** की स्थापना हुई और उसने लगभग दस सप्ताह तक राज्य का संचालन किया। उसके बाद **राष्ट्रीय संविधान सभा** का निर्माण हुआ जिसने गणतंत्र के संविधान की रचना की। तत्पश्चात् इस संविधान के आधार पर **राष्ट्रपति और विधान सभा** का चुनाव हुआ और उन्होंने शासन की बागडोर सँभाली। इस **गणतंत्र** का जीवन निरंतर उपद्रवग्रस्त रहा।

द्वितीय गणतंत्र के इतिहास की अवस्थाएँ

अस्थायी सरकार में प्रारम्भ से ही दो तत्त्व सम्मिलित थे। एक बहुमत गणतंत्रवादियों का था, जिनका नेता लामार्तेन था। ये लोग राजतंत्रीय व्यवस्था के स्थान पर गणतंत्रीय शासन की स्थापना करना चाहते थे। अन्य लोगों का नेता लुई ब्लाँ था। उसे गणतंत्र में विश्वास था। किन्तु वह गणतंत्र को सामाजिक और आर्थिक क्रांति का साधन मात्र मानता था। मजदूर वर्ग की दशा में सुधार करना उसका मुख्य उद्देश्य था। वह उन समाजवादी सिद्धांतों को कानूनों और संस्थाओं के रूप में साकार करना चाहता था जिनका लुई फीलीप के शासन-काल के अंतिम वर्षों में जोरदार ढँग से प्रतिपादन किया गया था। इन समाजवादी सिद्धांतों में "काम पाने का अधिकार" सबसे महत्त्वपूर्ण था। लुई ब्लाँ केवल राजनीतिक परिवर्तनों से सन्तुष्ट नहीं था; अपितु देश के सबसे दुर्बल और दरिद्र वर्ग अर्थात् मजदूरों के हित में समाज का आमूल पुनर्संगठन करने का इच्छुक था।

अस्थायी सरकार के दो तत्व

इस प्रकार **अस्थायी सरकार** दो गुटों में विभक्त थी—समाजवादी और समाजवाद के विरोधी। अतः वह भी उसी दुर्बलता का शिकार थी। जिसका कि सभी मिली जुली सरकारें हुआ करती हैं, अर्थात् आन्तरिक कलह के कारण वह भी निकम्मी सिद्ध हुई। **गणतंत्र** की घोषणा के दिन ही दो विरोधी विचारधाराओं में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। शस्त्रधारी मजदूर बड़ी संख्या में ओतेल द विल में एकत्र हो गये और माँग की कि आज से लाल झंडा, जोकि समाजवाद का प्रतीक है, फ्रांस का राष्ट्रीय ध्वज माना जाय। लामार्तेन ने इस माँग का विरोध करते हुए ऐसा आकर्षक और प्रभावकारी भाषण दिया कि स्वयं मजदूरों ने लाल झंडे को अपने पैरों से कुचल दिया।

झंडे का प्रश्न

किन्तु **भाषण** की कला की इस विजय से सरकार का काम न बना और दो महत्त्वपूर्ण विषयों में उसे समाजवादी दल के सामने झुकना पड़ा। लुई ब्लाँ के प्रस्ताव पर उसने तथाकथित "काम पाने के अधिकार" को स्वीकार कर लिया। उसने सभी नागरिकों को काम देने का वचन दिया और इसके लिए अपनी इच्छा के विरुद्ध "**राष्ट्रीय कर्मशालाओं**" की स्थापना की। उसने लुई ब्लाँ की अध्यक्षता में एक **श्रम आयोग** स्थापित किया, और लक्जमवर्ग के महत्त्व में उसका कार्यालय कायम कर दिया। यह आयोग एक विवाद-सभा मात्र था; उसका काम आर्थिक प्रश्नों की जाँच करना और तत्सम्बन्धी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना था। उसके हाथ में अपने निर्णयों को क्रियान्वित करने की शक्ति नहीं थी। इसके अतिरिक्त सरकार ने लुई ब्लाँ को ओतेल द विल से पेरिस के अन्य **भाग** में भेजकर उसके तथा उसके दल के प्रभाव को बहुत कम कर दिया। अतः समाजवादियों का अप्रसन्न हो जाना स्वाभाविक था।

श्रम आयोग

राष्ट्रीय कर्मशालाओं से भी उन लोगों को घोर निराशा हुई जो समझते थे कि इनसे आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था की जटिल श्रमिक समस्या हल हो जायगी। **अस्थायी सरकार** ने अपनी इच्छा के विरुद्ध इनकी स्थापना की थी, अतः वह नहीं चाहती थी कि ये सफल हों। उनकी रचना का काम वाणिज्य मंत्री मारे को सौंपा गया था, जो लुई ब्लाँ का व्यक्तिगत शत्रु था। उसने स्वयं स्वीकार किया कि मैं इस प्रयोग को करने के लिए इसलिए तैयार हूँ कि लुई ब्लाँ जनता में अप्रिय हो जाय, मजदूर लोग उसके उत्पादन सम्बन्धी सिद्धान्तों की भ्रान्ति को समझने लगें और जान जायें कि ये सिद्धान्त स्वयं उसके लिए भी खतरनाक हैं। जनता को बतलाया गया कि यह योजना लुई ब्लाँ की है, यद्यपि उसने इसकी आलोचना की थी। वास्तव में वह उसके विचारों का मखौल थी, और उसे बदनाम करने के लिए चालू की गई थी। ब्लाँ चाहता था कि राज्य की सहायता से वास्तविक ढँग की निर्माणशालाएँ स्थापित की जायें और उनमें हर आदमी अपना अपना काम करे। लोगों को केवल उत्पादन के काम में लगाया जाय और सिर्फ अच्छे आचरण के व्यक्तियों को उनमें सम्मिलित होने दिया जाय। किन्तु इसके विपरीत सरकार ने मोची, बढ़ई, लुहार, राज आदि विभिन्न प्रकार के लोगों को अनुत्पादक कार्यों में लगा दिया, उदाहरण के लिए सार्वजनिक निर्माण के हेतु खुदाई का काम।

राष्ट्रीय कर्मशालाएँ

उनको सैनिक ढँग से संगठित किया, और सबके लिए समान मजदूरी—दो फ्रैंक प्रतिदिन—रक्खी गई।

उनकी संख्या में तेजी से वृद्धि

वास्तव में इस प्रयोग का उत्पादन की व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं था; यह तो बेकार लोगों को सहायता देने का एक तरीका था; और चूँकि अशान्ति की स्थिति के कारण अनेक निर्माणशालाएँ बन्द कर दी गई थीं, इसलिए बेकारों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। **राष्ट्रीय कर्मशालाओं** में काम पाने के लिए आने वालों की संख्या में चिन्ताजनक वृद्धि होने लगी; मार्च के मध्य में २५,००० अप्रैल के मध्य में ६६,००० और मई में १००,००० तक पहुँच गई। चूँकि सब लोगों को पर्याप्त काम देना सम्भव नहीं था, अतः हर व्यक्ति के लिए काम के दिन घटा कर सप्ताह में दो कर दिए गए, और सप्ताह भर के लिए पूरा वेतन आठ फ्रैंक निश्चित किया गया। परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोगों का अधिकांश समय बेकारी में बीतने लगने लगा, और चूँकि उनका वेतन तो कम था ही, इसलिए वे अपनी कठिनाइयों के सम्बन्ध में वादविवाद और विचार विनिमय करने लगे। इसके लिए उनके पास समय पर्याप्त था। समाजवादी प्रचारकों के लिए ऐसे लोगों में अपने विचारों को फैलाना बहुत ही सरल था। इस प्रयोग से जनता के धन का अपव्यय हुआ, किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं हुआ, और अन्त में एक भयंकर संघर्ष उठ खड़ा हुआ।

राष्ट्रीय संविधान सभा

अस्थायी सरकार, जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है, एक अस्थायी संगठन थी और उसका काम तब तक राज्य का शासन सम्भालना था जब तक कि संविधान बनाने के लिए सभा का चुनाव न हो जाय। **अस्थायी सरकार** ने सार्वभौम मताधिकार की स्थापना कर दी, और इस प्रकार राजनीतिक शक्ति सहसा दो लाख विशेषाधिकृत धनी व्यक्तियों के हाथ से निकल कर नब्बे लाख निर्वाचकों के हाथ में आगई। २३ अप्रैल को चुनाव हुआ और ४ मई १८४८ को **राष्ट्रीय संविधान सभा** की बैठक प्रारम्भ हुई। **सभा** में ९०० सदस्य थे जिनमें से लगभग ८०० नरम किस्म के गणतंत्रवादी थे। **समाजवादी** लगभग पूर्णतया विलुप्त होगए।

सभा समाजवादियों के विरुद्ध

सभा ने तुरन्त ही स्पष्ट कर दिया कि वह पेरिस के **समाजवादियों** के विचारों की कट्टर विरोधी थी। **अस्थायी** सरकार ने अब अपनी शक्ति त्याग दी, और **सभा** ने अपने में से पाँच समाजवाद-विरोधी सदस्यों को चुनकर जब तक संविधान न बन जाय तब तक के लिए कार्यपालिका की शक्ति उनके हाथों में सौंप दी। लामार्तेन उनका प्रमुख नियुक्त किया गया; और वे सब लुई ब्लाँ के विरोधी रह चुके थे। सरकार का विश्वास था कि **राष्ट्रीय कर्मशालाएँ** समाजवाद और खतरनाक अशान्ति को जन्म देने वाली हैं, अतः उसने उनका मूलोच्छेद करने का संकल्प कर लिया। उसने उनको तुरन्त समाप्त कर देने की घोषणा कर दी और मजदूरों से कह दिया कि या तो तुम सेना में भर्ती हो जाओ, या सार्वजनिक निर्माण कार्यों में मजदूरी करने के लिए देहात में चले

राष्ट्रीय कर्मशालाओं का अन्त

जाओ। यदि तुम अपनी इच्छा से नहीं जाओगे तो तुम्हें यहाँ से बलपूर्वक खदेड़ दिया जायगा। हताश मजदूरों के सामने कोई चारा न रह गया था। उन्होंने उस सरकार को उखाड़ फेंकने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं, जिसकी स्थापना में स्वयं उन्होंने सहायता की थी, किन्तु जिसने उनके साथ ऐसा क्रूरता का वर्ताव किया था। मध्यमवर्ग ने उन सब सामाजिक सुधारों का विरोध किया था जिनसे मजदूरों का जीवन कुछ सह्य हो सकता था। अतः क्रोध से आग बबूला होकर उन्होंने अपने को अर्ध सैनिक ढंग से संगठित किया और तीव्र संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। सभा ने आने वाले युद्ध की गम्भीरता को समझ लिया। उसने जनरल कवाञ्जक को अधिनायक की शक्तियाँ दे दीं, और पाँच आदमियों के कार्यपालक आयोग ने त्यागपत्र दे दिया। पेरिस की सड़कों और गलियों में मजदूरों ने अवरोधकों का जाल बिछा दिया और चार दिन तक (जून २३-२६, १८४८) ऐसा भयंकर संग्राम हुआ जैसा कि पेरिस ने पहले कभी शायद ही देखा हो। किस पक्ष की विजय होगी, यह चीज बहुत समय तक अनिश्चित रही, किन्तु अन्त में विद्रोही कुचल दिए गए। उन्हें भयंकर कीमत चुकानी पड़ी। दस हजार हताहत हुए। ग्यारह हजार बन्दी बनाए गए, और सभा ने तुरन्त ही उनके निर्वासन की आज्ञप्ति जारी कर दी। जून के ये दिन विरासत के रूप में गरीबों के हृदय में मध्यवर्ग के लिए कटु घृणा छोड़ गए।

जून के दिन

इस प्रकार नरम गणतंत्रवादियों की समाजवादी गणतंत्रवादियों के विरुद्ध निश्चित जीत हो गई। किन्तु वे इतने बालबाल बच गये थे और भविष्य के बारे में इतने संशक थे कि उन्होंने कवाञ्जक के अधिकनायकत्व को अक्टूबर के अन्त तक चलने दिया। द्वितीय गणतंत्र की स्थापना फरवरी, १८४८ में हुई थी, दस सप्ताह तक उस पर स्थायी सरकार ने शासन किया, किन्तु यह पूरा काल उपद्रवग्रस्त रहा, और अन्त में चार महीने के लिए सैनिक अधिनायकत्व कायम हो गया। एकतंत्रीय शक्ति का तेजी से विकास हो रहा था।

सैनिक अधिनायकत्व

इस समाजवादी उपद्रव और जून के इन रक्तरंजित दिनों के परिणाम अत्यन्त शोचनीय और दूरगामी हुए। गणतंत्र इस भयावह गृह-कलह से बहुत दुर्बल हो गया। अपने मित्रों के ही घर में उसे भयंकर चोट खानी पड़ी।

जून में समाजवादियों का दमन करके सभा ने संविधान बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया, जिसके लिए उसे वास्तव में चुना गया था। उसने गणतंत्र को निश्चित रूप से फ्रांस की सरकार घोषित कर दिया, सार्वभौम मताधिकार की स्थापना की और विधान किया कि ७५० सदस्यों की एक एकसदनात्मक व्यवस्थापिका हो जिसका तीन वर्ष के लिए चुनाव हो और उस अवधि के अन्त में उसके सब सदस्य नये सिरे से चुने जायें।

संविधान की रचना

कार्यपालक शक्ति एक राष्ट्रपति में निहित होगी; उसका चुनाव चार वर्ष के लिए होगा और चार वर्ष के अन्तर्विराम से पहले उसका पुनः निर्वाचन न हो सकेगा। उसकी शक्तियाँ बहुत थीं। सभा का विचार था कि चूँकि उसका कार्यकाल अल्प है और तुरन्त ही उसका पुनः निर्वाचन नहीं हो सकता, इसलिये उसको इतनी

कार्यपालिका की शक्तियाँ

शक्तियाँ देने से संकट की सम्भावना नहीं है। **संविधान सभा** के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि राष्ट्रपति के चुनाव की प्रणाली क्या हो, और इस विषय में लम्बा वाद-विवाद चला। चूँकि सभा पर सार्वभौम मताधिकार तथा लोकप्रभुत्व आधारभूत सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव था, अतः वह चाहती थी कि राष्ट्रपति का चुनाव सभी मतदाताओं के द्वारा किया जाय। किन्तु इस प्रणाली में खतरा यह था कि फ्रांसीसी जनता में राजनीतिक अनुभव की कमी थी, अतः यह हो सकता था कि निर्वाचकगण किसी विशिष्ट अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति के नाम से प्रभावित होकर वोट देदें और ऐसे उच्च पद के लिए आवश्यक चरित्र और योग्यता की परवाह न करें। अन्त में यही निश्चय हुआ कि जनता ही राष्ट्रपति को चुने और इस विषय में उसकी इच्छा पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जाय। इस प्रकार राष्ट्रपति का चुनाव सार्वभौम मताधिकार पर छोड़कर यह गणतन्त्रीय सभा एक ऐसे व्यक्ति के चंगुल में फँसने जा रही थी जो फ्रांस पर शासन करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता और सिंहासन को हथियाने की फिक्र में था। यह व्यक्ति **महान् नेपोलियन** का भतीजा लुई नेपोलियन बोनापार्ट था; और फ्रांस के सिंहासन पर उसका वैध अधिकार भी था। **फरवरी** क्रान्ति के समय इस व्यक्ति का न कोई प्रभाव था और न महत्त्व, किन्तु १८४८ के उस वर्ष में घटनाचक्र इतनी तेजी से बदला और लोगों की राय में इतना परिवर्तन हुआ कि जिस समय राष्ट्रपति के चुनाव की प्रणाली के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय हुआ उस समय तक सबको विदित हो गया था कि उस पद के लिए वह एक प्रमुख उम्मीदवार होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए सभा का निर्णय और भी अधिक मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता है।

राष्ट्रपति के सम्बन्ध में विवाद

१८३२ में जब नेपोलियन के पुत्र की, जो कि रोम के राजा के नाम से विख्यात था, चौबीस वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई तो उसी समय लुई नेपोलियन बोनापार्ट अपने वंश का प्रमुख बन गया। वह हालैण्ड के भूतपूर्व राजा लुई का पुत्र था। अपनी स्थिति के सम्बन्ध में उसकी अत्यधिक गम्भीर धारणा थी। उसका विश्वास था कि फ्रांस पर शासन करना मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और एक दिन अवश्य आयेगा जबकि मैं इस राज्य के सिंहासन पर बैठूँगा। सोलह वर्ष तक उसका यह विश्वास अटल रहा, यद्यपि इन वर्षों में उसे कोई प्रोत्साहन नहीं मिला, बल्कि निराशा ही निराशा रही। अपने साथ कुछ साहसिकों को एकत्र करके उसने पहले १८३६ में स्ट्रासबर्ग में, और फिर १८४० में बूलों में शक्ति हस्त-गत करने का प्रयत्न किया। किन्तु योजना की दृष्टि से उसके ये प्रयत्न बालकों के खेल के सदृश थे, और इनको कार्यान्वित करने में उसने और भी अधिक अनाड़ीपन का परिचय दिया। दोनों ही पूर्णतया विफल रहे। वह एक हास्यास्पद व्यक्ति के रूप में विख्यात हो गया, और यह एक ऐसी चीज थी जिसे फ्रांसीसी लोग न तो भूल सकते थे और न क्षमा कर सकते थे। पहले प्रयत्न का फल यह हुआ कि वह निर्वासित करके संयुक्त राज्य अमेरिका भेज दिया गया किन्तु वहाँ से वह शीघ्र ही वापस लौट आया। दूसरे प्रयत्न के फलस्वरूप उसे उत्तरी फ्रांस में स्थित हेम के दुर्ग में बन्दी बनाकर रख दिया गया। वहाँ से वह १८४६ में एक साधारण राज्य का वेश बनाकर और बादिग्वे नाम धारण करके निकल भागा। फिर इंगलैण्ड चला

लुई नेपोलियन बोनापार्ट

गया और १८४८ में **चार्टिस्ट** विद्रोह के समय ट्राफलगार के चौक में एक विशेष कांस्टेबिल के रूप में तैनात था। यह कोई सफल जीवन का लेखा नहीं था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नक्षत्र उसके पक्ष में संघर्ष कर रहे थे। १८४८ की क्रान्ति के आने पर उसे अवसर मिल गया, जैसा कि प्रथम नेपोलियन को १७८९ की क्रान्ति से मिला था। उसने भी अपने महान् चाचा का अनुकरण किया और अपनी सेवाएँ **गणतन्त्र** को अर्पित करदीं। बाद में वह **संविधान सभा** का सदस्य चुन लिया गया। वहाँ अपने आचरण से उसने लोगों को प्रभावित नहीं किया, बल्कि उनकी निगाह में वह एक साधारण योग्यता का व्यक्ति निकला, जिसके अपने विचार बहुत कम थे और जिसे दूसरे लोग अपना वशवर्ती बना सकते थे। किन्तु उसके **नाम में** जादू का सा असर था। यही उसकी एकमात्र पूँजी थी किन्तु यह पर्याप्त थी। सार्वभौम मताधिकार की स्थापना से किसानों का बहुमत हो गया था। उनके वोट पाने में उसे **नेपोलियन** शब्द से विस्मयकारी सहायता मिली। मोंतालेम्बेर नाम के एक किसान ने कहा, "यह कैसे हो सकता है कि मैं, जिसकी नाक मास्को में बर्फ से गल गई थी, इस भद्र पुरुष को वोट न दूँ?" लुई नेपोलियन खुले रूप से राष्ट्रपति पद के लिये उम्मीदवार था, और चूँकि उसके चरित्र में कोई विशेषता नहीं थी इसलिए वह सबसे शक्तिशाली उम्मीदवार भी था। कवाञ्ोक लोकतांन्त्रिक **गणतन्त्रवादियों** की ओर से खड़ा किया गया था, जो फरवरी के महीने से फ्रांस पर शासन करते आये थे, किन्तु जून के दिनों में उसने जो पार्ट अदा किया था, उसकी वजह से मजदूर लोग उससे घृणा करने लगे थे। इसलिए जब दिसम्बर १८४८ में राष्ट्रपति का चुनाव हुआ तो लुई नेपोलियन भारी बहुमत से चुन लिया गया—उसे पचास लाख से भी अधिक वोट मिले, जब कि कवाञ्ोक केवल साढ़े सात लाख मत प्राप्त कर सका। नए **राष्ट्रपति** ने २० दिसम्बर, १८४८ को कार्यभार सँभाला। उस दिन **सभा** के समक्ष उसने "लोकतान्त्रिक गणतन्त्र के प्रति वफादार रहने" की शपथ ली और कहा, "मेरे कर्तव्य स्पष्ट हैं। एक निष्ठावान व्यक्ति की भाँति मैं उसका पालन करूँगा। उन लोगों को मैं अपना शत्रु समझूँगा जो अवैध तरीकों से फ्रांस की स्थापित व्यवस्था को परिवर्तित करने का प्रयत्न करेंगे।" उसने लगभग तीन वर्ष तक इस शपथ का पालन किया, उसके बाद उसे भंग कर दिया। कारण यह था कि वह सत्तारूढ़ रहना चाहता था; पद से निवृत्त होकर साधारण नागरिक की भाँति जीवन बिताने की उसकी इच्छा नहीं थी, किन्तु संविधान के अनुसार वह चार वर्ष की अवधि के उपरान्त पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित हो नहीं सकता था। अतः लुई नेपोलियन ने भी नेपोलियन प्रथम के चरण चिन्हों पर चलने का प्रयत्न किया और षड्यंत्र के द्वारा शक्ति के शिखर पर चढ़ गया। उसके चाचा ने १९ ब्रूमेयर के षड्यंत्र को जिस चतुराई से पूरा किया था उससे भी अधिक कुशलता से उसने अपना षड्यंत्र सफल बनाया।

संविधान सभा सदस्य के रूप में

राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार

२ दिसम्बर, १८५१ को नेपोलियन प्रथम के राज्याभिषेक और आस्टरलित्स के युद्ध की वर्षगाँठ थी। उसी दिन लुई नेपोलियन ने अपने भाग्य की परीक्षा की। प्रातःकाल से पहले ही फ्रांस के गणतन्त्रवादी और राजतन्त्रवादी सैनिक तथा असैनिक नेता शैया में ही गिरफ्तार कर लिए गये और कारागार में डाल दिये गये। पैदल सेना की

षड्यंत्र

एक बटालियन को **विधान भवन** पर अधिकार करने के लिए भेज दिया गया। राष्ट्रपति के उद्देश्य को स्पष्ट करने के बहाने पेरिस की सभी दीवालों पर विज्ञापन चिपका दिये गये, जिनमें कहा गया कि कौंसल-व्यवस्था के काल में नेपोलियन प्रथम ने जो प्रणाली स्थापित की थी उसकी दिशा में देश को ले जाने के लिए संविधान में संशोधन करना आवश्यक है। "शताब्दी के प्रारम्भ में **प्रथम कौंसिल** द्वारा रचित इस व्यवस्था ने फ्रांस को शान्ति और समृद्धि प्रदान की है; वह उसे इन्हीं चीजों की पुनः गारंटी देगी।" जनता से इस सुझाव को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने को कहा गया।

२ दिसम्बर की घटनाएँ

प्रारम्भ में जिन्होंने विज्ञापन पढ़े उन्हें इसका अर्थ कुछ समझ में नहीं आया। किन्तु जैसे ही उनका अर्थ स्पष्ट हुआ, वैसे ही विरोध के चिन्ह प्रकट होने लगे। कुछ प्रतिनिधिगण **सभाभवन** की ओर जा रहे थे, उन्होंने देखा कि सेना ने द्वार रोक रक्खा है। तब वे दूसरे स्थान पर चले गये और राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की तैयारियाँ करने लगे। सैनिकों ने उन पर आक्रमण कर दिया और बहुत-सों को गिरफ्तार करके कारागार को ले गये। इस प्रकार फ्रांस के सैनिक तथा असैनिक सभी नेता वन्दीगृह में पहुँच गये और राष्ट्रपति ने देखा कि कोई संगठित शक्ति उसके सामने खड़े होने के योग्य नहीं है। यह थी २ दिसम्बर की कार्यवाही। प्रश्न यह था कि क्या जनता अपहरणकर्त्ता के इस अन्यायपूर्ण कार्य का विरोध करेगी।

४ दिसम्बर का हत्याकांड

इस प्रकार के संकट का सामना करने के लिए भी राष्ट्रपति ने अभूतपूर्व तैयारियाँ कर ली थीं। छापेखानों से संकट के समय में क्रान्ति को उभाड़ने के लिये गरमागरम अपीलें निकला करती थीं और घण्टाघरों से विद्रोह को उत्तेजना देने के लिए घण्टे बजाए जाया करते थे। लुई नेपोलियन की पुलिस ने इन सबको पहले से ही अपने नियंत्रण में कर लिया था। फिर भी ३ दिसम्बर को सड़कों और गलियों में अवरोधक खड़े कर लिये गये और विद्रोह हुआ। ४ तारीख को बोलवार्द का प्रसिद्ध हत्याकांड हुआ, डेढ़ सौ से अधिक व्यक्ति मारे गये और बड़ी संख्या में लोग घायल हुये। पेरिस ने घुटने टेक दिये। षडयंत्र सफल हुआ। प्रान्तों में विद्रोह की सम्भावना हो सकती थी। अतः बत्तीस जिलों में सैनिक कानून लागू कर दिया गया। हजारों व्यक्ति मनमाने ढंग से गिरफ्तार कर लिये गये और इसी प्रकार राष्ट्रपति का वह काम पूरा हो गया जो उसने २ दिसम्बर की रात को प्रारम्भ किया था। सम्पूर्ण फ्रांस में लगभग एक लाख आदमी वन्दी बना लिये गये थे। जिन्हें लुई नेपोलियन ने खतरनाक समझा उन्हें उसने या तो निर्वासित कर दिया या कारागार में डलवा दिया। इस जोरदार नीति का प्रयोग विशेषकर गणतन्त्रवादियों के विरुद्ध किया गया; फलतः अनेक वर्षों के लिये वे पूर्णतया शान्त हो गये।

लोकमत-संग्रह

इस प्रकार विरोध करने वाले सब नेताओं को कुचल कर लुई नेपोलियन ने जनता से पूछा कि वह उसे २ दिसम्बर की घोषणा के आधार पर संविधान में संशोधन करने का अधिकार देने को तैयार है अथवा नहीं। २० दिसम्बर को वोट लिए गए। ७,४३९,२१६ लोगों ने पक्ष में और ६४०,७३७ ने विपक्ष में मत दिया। यद्यपि चुनाव किसी भी अर्थ में न्यायपूर्ण नहीं था, जनता के सामने जो समस्या रक्खी गयी थी वह

न स्पष्ट थी और न सरल और बल तथा धमकी से भी काम लिया गया था, फिर भी यह स्पष्ट था कि बहुसंख्यक फ्रांसीसी नेपोलियन के प्रयोग की एक बार पुनः परीक्षा करने के लिये तैयार थे।

यद्यपि गणतन्त्र नाम के लिये एक वर्ष तक और चलता रहा, किन्तु वास्तव में उसका अवसान हो चुका था। कहने के लिए लुई नेपोलियन अब भी राष्ट्रपति था किन्तु सच्चे अर्थ में वह निरंकुश शासक था। यह तो एक ब्यौरे की चीज थी कि एक वर्ष उपरान्त (नवम्बर २१,१८५२) फ्रांस की जनता को साम्राज्यीय प्रतिष्ठा स्थापित करने और लुई नेपोलियन बोनापार्ट को नेपोलियन तृतीय के नाम से सम्राट घोषित करने के प्रश्न पर औपचारिक रूप से मत प्रकट करने का अवसर दिया गया। ७,८२४,१८९ लोगों ने पक्ष में और २५३,१४५ ने विपक्ष में मत दिया। षडयन्त्र की वर्षगाँठ के दिन अर्थात् २ दिसम्बर को, जो कि बोनापार्ट वंश के लिए बहुत ही शुभ दिन सिद्ध हुआ था, नेपोलियन तृतीय को फ्रांसीसियों का सम्राट घोषित कर दिया गया, और द्वितीय साम्राज्य की स्थापना हुई।

नेपोलियन तृतीय सम्राट् घोषित दिसम्बर २,१८५२

द्वितीय साम्राज्य

जिस राष्ट्रपति ने अपने नाम के जादू से, नैतिक चेतना के पूर्णाभाव और परिस्थितियों की अनुकूलता के बल पर अपने को सम्राट बना लिया था उसने १८ वर्ष तक फ्रांस पर शासन किया और यूरोपीय राजनीति में एक प्रमुख नायक रहा। उसने प्रारम्भ में ही घोषणा करदी कि ऐसे उपद्रवग्रस्त इतिहास के बाद फ्रांस को इस समय एक प्रबुद्ध निरंकुशतन्त्रीय सरकार की आवश्यकता है। जब पुनर्संगठन का आवश्यक कार्य पूरा हो जाएगा और राष्ट्रीय जीवन पुनः स्वस्थ स्थिति में पहुँच जायगा तो उस समय स्वेच्छाचारी सरकार हट जायेगी और उसके स्थान पर ऐसी उदार शासन-प्रणाली स्थापित करदी जाएगी जिसको देश सम्हाल सकेगा और जिसका आनन्द ले सकेगा। द्वितीय साम्राज्य का इतिहास वास्तव में दो कालों में विभक्त किया जा सकता है—१८५२ से १८६० तक का असीमित स्वेच्छाचारिता का काल और १८६० से १८७० तक बुद्धिमान उदारता का युग। १८७० में साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, और उसका कार्यक्रम अधूरा ही रह गया।

नये सम्राट् का कार्यक्रम

साम्राज्य की राजनैतिक संस्थाएँ बहुत कुछ कौंसल व्यवस्था की संस्थाओं पर आधारित थीं। शासन का ढाँचा लम्बा चौड़ा था, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य फ्रांसीसी जनता को इस भ्रम में डालना था कि देश वास्तविक स्वराज्य का उपभोग कर रहा है। सार्वभौम मताधिकार का सिद्धान्त सुरक्षित रखा गया, किन्तु उसे ऐसी चतुराई के साथ काम में लाया गया कि उससे सम्राट की निरंकुशता में कोई बाधा नहीं पड़ी। एक विधान सभा और एक सीनेट की भी रचना की गई, किन्तु उनकी शक्तियाँ बहुत ही न्यून थीं। वास्तविकता यह थी कि इन विभिन्न संस्थाओं का कार्य इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितना कि अकेले सम्राट का। फ्रांस अब स्वतन्त्रता की भूमि नहीं रह गया था। १८१५ के बाद जिन विभिन्न सरकारों ने

साम्राज्य की राजनैतिक संस्थाएँ

देश में शासन का संचालन किया था उनके अन्तर्गत संसद राष्ट्रीय जीवन का एक महत्त्वपूर्ण तत्व बन गई थी और लोगों को राजनीतिक विषयों का प्रशिक्षण मिल गया था। किन्तु विकास की यह आशाजनक प्रक्रिया सहसा रुक गई। चारों ओर दमन और दौर कायम हो गया। गणतन्त्रवादियों को कुचलने के लिये विशेष क्रूरता से काम लिया गया, क्योंकि नेपोलियन तृतीय भली-भाँति समझता था कि मैंने हिंसा द्वारा उस गणतन्त्र को उखाड़ फेंका है जिसने मुझे सबसे ऊँचा पद देकर सम्मानित किया था, और जिसकी मैंने शस्त्रों से रक्षा करने की शपथ ली थी, इस अपराध के लिये ये लोग मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे।

साम्राज्य की नीति में दमनकारी और प्रगतिशील दोनों ही तत्व

यद्यपि राजनीति में नेपोलियन निरंकुश और प्रतिक्रियावादी था और स्वतन्त्रता की हर चिनगारी को उसने कुचल दिया था, फिर भी अन्य कई देशों में उसकी नीति प्रगतिशील थी। उसने देश की सम्पत्ति की वृद्धि के लिये विशेष प्रयत्न किया और उसके शासन-काल में आर्थिक संवृद्धि का उत्तरोत्तर विकास होता गया; उत्पादन, वाणिज्य, साहूकारी आदि सभी को प्रोत्साहन मिला। इस काल में व्यवसाय की महान् उन्नति हुई और लोगों ने शीघ्र ही इतना धन कमा लिया जितना कि उस समय तक फ्रांस में कभी सम्भव नहीं हो सका था। पेरिस को आधुनिक रूप दिया गया और उसे विशाल पैमाने पर सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया। फलस्वरूप यूरोप की राजधानियों में में वह सबसे अधिक आकर्षक और आरामदेह बन गया। १८५३ में नेपोलियन तृतीय ने स्पेन की एक उच्च कुलीन तथा अत्यन्त सुन्दर महिला कुमारी यूजेनी द मोतीजी से विवाह कर लिया। सम्राट ने फ्रांसीसी जनता को बतलाया कि मेरा यह विवाह प्रेम विवाह है। शीघ्र ही तुईलेरी के राज प्रासाद अत्याधिक शानदार और विलासतापूर्ण दरबारी जीवन का केन्द्र बन गये; उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के किसी भी राजदरबार में इतनी तड़क-भड़क और वैभव देखने को नहीं मिलता था।

पेरिस का सम्मेलन, १८५६

१८५६ में नेपोलियन तृतीय शक्ति के चरम शिखर पर पहुँच गया था। साम्राज्य को योरोप के सभी राज्यों ने मान्यता दे दी थी। इंगलैण्ड और पीडमोंट की सहायता से सम्राट ने क्रीमियाँ में रूस के विरुद्ध सफल युद्ध चलाया। उसकी सेना यूरोप में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। युद्ध के उपरान्त सन्धियों की व्यवस्था करने के लिये उसने पेरिस में सम्मेलन बुलाया जिससे सारे संसार की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और अब उसके एक पुत्र का जन्म हुआ जो कि उसका उत्तराधिकारी बन सकता था—यह राजकुमार भी उतना ही अभागा निकला जितना कि नेपोलियन प्रथम का पुत्र **रोम का राजा** सिद्ध हुआ था। ऐसा लगता था कि भाग्य लक्ष्मी ने नेपोलियन तृतीय के सामने अपनी पूरी झोली खाली कर दी थी।

नेपोलियन तृतीय की विदेश नीति

किन्तु अब साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था, यद्यपि उस समय यह चीज स्पष्ट नहीं थी। यदि नेपोलियन अपनी सारी शक्ति देश के आन्तरिक सुधार और विकास में लगा देता और अपने कार्यकलाप को वहीं तक सीमित रखता तो उसका शासन आगे भी चलता रहता और सफल तथा लाभदायक सिद्ध होता। किन्तु

उसने एक दिखावटी तथा जोखिमपूर्ण विदेश नीति का अनुसरण किया, जिसके परिणामों को वह पहले से नहीं देख पाया किन्तु जिसके कारण वह भारी उलझनों में पड़ गया और फिर जिसकी वजह से उसके साम्राज्य का दुःखद अन्त हुआ और फ्रांस को घोर अपमान और वेदना सहनी पड़ी। १८६० के बाद विदेश-नीति का उसकी गृह नीति पर भी निश्चयात्मक रूप ने प्रभाव पड़ने लगा। १८५९ में नेपोलियन ने इटली के युद्ध में भाग लिया और उसी समय से उसकी आपत्तियों का आरम्भ हुआ। १८६० तथा १८७० के बीच साम्राज्य के इतिहास को समझने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि आधुनिक इटली के निर्माण में नेपोलियन तृतीय का क्या योग था, क्योंकि उसके परिणाम अप्रत्याशित और दूरगामी एवं विनाशकारी सिद्ध हुए। नेपोलियन की इस नीति को समझने के लिये इटली के उत्थान की कहानी का वर्णन करना आवश्यक है।

अध्याय १८

इटली के राज्य का निर्माण

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं इटली अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, उनकी सरकारें स्वेच्छाचारी थीं और देश पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था। राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावनाओं को कहीं भी मान्यता नहीं दी गई थी। बल्कि जब कभी ये भावनाएँ प्रकट हुईं तभी उन्हें कुचलने का प्रयत्न किया गया। तब तक ये प्रयत्न सफल रहे थे, किन्तु अब इनके पूर्णतया विफल होने का समय आ गया था, और सम्पूर्ण प्रायद्वीप में सुधार आंदोलन की एक व्यापक और उत्तेजक लहर दौड़ने वाली थी, जिसने उस अत्यधिक समृद्ध देश का, जिस पर प्रकृति की महती कृपा थी, किन्तु जिसके साथ मनुष्य ने दुःखद व्यवहार किया था, पूर्ण रूपान्तर कर दिया।

इटली में एकता और स्वतन्त्रता का अभाव

अन्त में इटली की जनता को जोजफ मत्सीनी नाम का नेता मिल गया जिसने उसकी गहरी से गहरी आकांक्षाओं को स्पष्ट और निर्भीक, उत्तेजक एवं रोमांचकारी स्वर में मुखरित किया। मत्सीनी इस राष्ट्रीय आंदोलन का, जो कि इटली के पुनर्जीवन के नाम से प्रसिद्ध है, आध्यात्मिक बल था, उस स्थिति का पैगम्बर था जोकि अभी तक नहीं थी, किन्तु आगे आने वाली थी, और अपनी युवावस्था से ही उसे इस बात की गहरी चेतना थी कि ईश्वर ने मुझे एक पवित्र कार्य सम्पन्न करने को भेजा है। उसका जन्म १८०५ में जिनोआ में हुआ था। उसका पिता चिकित्सक था और विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का कार्य भी करता था। अपने बाल्यकाल में ही मत्सीनी ने देश की दुर्दशा और विपदाओं का अनुभव किया। अपनी मनोरंजक किन्तु अपूर्ण आत्मकथा में उसने एक स्थल पर लिखा है, "मेरे चारों ओर विद्यार्थियों के जीवन का शोरगुल और कोलाहल था, किन्तु उसके मध्य भी मैं सदैव गम्भीर और आत्मलीन दिखाई देता और ऐसा लगता कि मैं सहसा बूढ़ा हो गया हूँ। बालकों की भाँति मैंने संकल्प किया था कि मैं सदैव काले वस्त्र

जोजफ मत्सीनी (१८०५-१८७२)

पहनूँगा, क्योंकि मुझे ऐसा लगता था कि मैं अपने देश की दुर्दशा पर विलाप कर रहा हूँ।"

जब मत्सीनी सयाना हुआ तो उसकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ साहित्यिक जीवन की ओर झुक गईं। उसने लिखा है, "ऐतिहासिक उपन्यासों और नाटकों के हजारों दृश्य मेरे अन्तःचक्षुओं के सामने नाचा करते थे।" किन्तु इस स्वप्न को उसने त्याग दिया, और जैसाकि उसने लिखा है, राजनीतिक आंदोलन के लिये यह उसका पहला उत्सर्ग था। वह **कार्बोनारी** नाम की संस्था में सम्मिलित हो गया, इसलिये नहीं कि वह उसके तरीकों से सहमत था, बल्कि इसलिये वह कम से कम एक क्रांतिकारी संस्था थी। उसका सदस्य होने के कारण वह १८३० में गिरफ्तार कर लिया गया। जिनोआ के राज्यपाल ने मत्सीनी के पिता से कहा कि तुम्हारे पुत्र में कुछ जन्मजात प्रतिभा है, किंतु उसे रात में विचारमग्न होकर अकेले घूमने का बड़ा शौक है। दुनिया में ऐसी क्या चीज है जिसके सम्बन्ध में वह इस आयु में इतना गम्भीर चिन्तन किया करता है? हम नहीं चाहते कि जवान लोग सोचा करें और हमें पता न लग सके कि उनके चिंतन का विषय क्या है? मत्सीनी को सावोना के दुर्ग में बन्दी बनाकर रखा गया। यहाँ उसे केवल दो ही चीजें देखने को मिलती थीं—आकाश और समुद्र। वह कहा करता था कि "आल्पस के अतिरिक्त प्रकृति में यही दो चीजें सबसे अधिक भव्य हैं।" छः महीने उपरान्त उसे मुक्त कर दिया, किंतु साथ ही देश छोड़कर चले जाने को भी बाध्य किया गया। इसके बाद उसके जीवन के लगभग चालीस वर्ष फ्रांस, स्विटजरलैंड किन्तु मुख्यतः इंग्लैंड में निर्वासन की अवस्था में बीते; इंगलैंड तो उसका दूसरा घर बन गया था।

मत्सीनी बंदीगृह में

कारागार से मुक्त होने के उपरान्त १८३१ में मत्सीनी ने "तरुण इटली" नाम की संस्था की स्थापना की, जिसने आधुनिक इटली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया। **कार्बोनारी** ने दो क्रान्तियाँ करवाईं थीं, किन्तु दोनों ही असफल रहीं थीं इसके अतिरिक्त उसे उस संस्था से घृणा भी थी, क्योंकि उसका उद्देश्य केवल ध्वंसात्मक था; उसके सामने पुनर्निर्माण की कोई योजना नहीं थी। वह कहा करता था कि क्रान्तियाँ जनता के द्वारा और जनता के लिये की जानी चाहिये। अपनी संस्था के सम्बन्ध में उसका कहना था कि इसका संगठन गुप्त रक्खा जाय नहीं तो उसे कुचल दिया जायगा। किन्तु वह केवल षड्यंत्र-कारियों की जमात न हो; उसे चाहिये कि इटलीवासियों को शिक्षा दे, उनका दृष्टि-कोण बदले और अपने नैतिक तथा बौद्धिक उत्साह के द्वारा उन्हें जीवन के आदर्शवादी दृष्टिकोण की ओर प्रेरित करे और उनमें आत्मोत्सर्ग तथा कर्तव्य की भावना जाग्रत करे। केवल ४० वर्ष से कम आयु के लोग ही तरुण इटली के सदस्य हो सकते थे, क्योंकि उसका ध्यान विशेषकर युवकों की ओर ही था। मत्सीनी कहा करता था कि, "विद्रोही जनता का नेतृत्व युवकों के हाथ में होना चाहिये; तुम इन तरुण हृदयों में छिपी हुई शक्ति का रहस्य नहीं जानते, और न तुम्हें यही मालूम है कि युवकों की आवाज का जनता पर जादू का-सा प्रभाव होता है।

"तरुण इटली" का संस्थापक

अध्याय १८

इटली के राज्य का निर्माण

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं इटली अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, उनकी सरकारें स्वेच्छाचारी थीं और देश पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था। राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावनाओं को कहीं भी मान्यता नहीं दी गई थी। बल्कि जब कभी ये भावनाएँ प्रकट हुईं तभी उन्हें कुचलने का प्रयत्न किया गया। तब तक ये प्रयत्न सफल रहे थे, किन्तु अब इनके पूर्णतया विफल होने का समय आ गया था, और सम्पूर्ण प्रायद्वीप में सुधार आंदोलन की एक व्यापक और उत्तेजक लहर दौड़ने वाली थी, जिसने उस अत्यधिक समृद्ध देश का, जिस पर प्रकृति की महती कृपा थी, किन्तु जिसके साथ मनुष्य ने दुःखद व्यवहार किया था, पूर्ण रूपान्तर कर दिया।

इटली में एकता और स्वतन्त्रता का अभाव

अन्त में इटली की जनता को जोज़फ मत्सीनी नाम का नेता मिल गया जिसने उसकी गहरी से गहरी आकांक्षाओं को स्पष्ट और निर्भीक, उत्तेजक एवं रोमांचकारी स्वर में मुखरित किया। मत्सीनी इस राष्ट्रीय आंदोलन का, जो कि इटली के पुनर्जीवन के नाम से प्रसिद्ध है, आध्यात्मिक बल था, उस स्थिति का पैगम्बर था जोकि अभी तक नहीं थी, किन्तु आगे आने वाली थी, और अपनी युवावस्था से ही उसे इस बात की गहरी चेतना थी कि ईश्वर ने मुझे एक पवित्र कार्य सम्पन्न करने को भेजा है। उसका जन्म १८०५ में जिनोआ में हुआ था। उसका पिता चिकित्सक था और विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का कार्य भी करता था। अपने बाल्यकाल में ही मत्सीनी ने देश की दुर्दशा और विपदाओं का अनुभव किया। अपनी मनोरंजक किन्तु अपूर्ण आत्मकथा में उसने एक स्थल पर लिखा है, "मेरे चारों ओर विद्यार्थियों के जीवन का शोरगुल और कोलाहल था, किन्तु उसके मध्य भी मैं सदैव गम्भीर और आत्मलीन दिखाई देता और ऐसा लगता कि मैं सहसा बूढ़ा हो गया हूं। बालकों की भांति मैंने संकल्प किया था कि मैं सदैव काले वस्त्र

जोजफ मत्सीनी (१८०५-१८७२)

पहनूँगा, क्योंकि मुझे ऐसा लगता था कि मैं अपने देश की दुर्दशा पर विलाप कर रहा हूँ।"

जब मत्सीनी सयाना हुआ तो उसकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ साहित्यिक जीवन की ओर झुक गईं। उसने लिखा है, "ऐतिहासिक उपन्यासों और नाटकों के हजारों दृश्य मेरे अन्तःचक्षुओं के सामने नाचा करते थे।" किन्तु इस स्वप्न को उसने त्याग दिया, और जैसाकि उसने लिखा है, राजनीतिक आंदोलन के लिये यह उसका पहला उत्सर्ग था। वह **कार्बोनारी** नाम की संस्था में सम्मिलित हो गया, इसलिये नहीं कि वह उसके तरीकों से सहमत था, बल्कि इसलिये वह कम से कम एक क्रांतिकारी संस्था थी। उसका सदस्य होने के कारण वह १८३० में गिरफ्तार कर लिया गया। जिनोआ के राज्यपाल ने मत्सीनी के पिता से कहा कि तुम्हारे पुत्र में कुछ जन्मजात प्रतिभा है, किंतु उसे रात में विचारमग्न होकर अकेले घूमने का बड़ा शौक है। दुनिया में ऐसी क्या चीज है जिसके सम्बन्ध में वह इस आयु में इतना गम्भीर चिन्तन किया करता है? हम नहीं चाहते कि जवान लोग सोचा करें और हमें पता न लग सके कि उनके चिंतन का विषय क्या है? मत्सीनी को सावोना के दुर्ग में बन्दी बनाकर रखा गया। यहाँ उसे केवल दो ही चीजें देखने को मिलती थीं—आकाश और समुद्र। वह कहा करता था कि "आलपस के अतिरिक्त प्रकृति में यही दो चीजें सबसे अधिक भव्य हैं।" छः महीने उपरान्त उसे मुक्त कर दिया, किंतु साथ ही देश छोड़कर चले जाने को भी बाध्य किया गया। इसके बाद उसके जीवन के लगभग चालीस वर्ष फ्रांस, स्विटजरलैंड किन्तु मुख्यतः इंग्लैंड में निर्वासन की अवस्था में बीते; इंगलैंड तो उसका दूसरा घर बन गया था।

मत्सीनी बंदीगृह में

कारागार से मुक्त होने के उपरान्त १८३१ में मत्सीनी ने "तरुण इटली" नाम की संस्था की स्थापना की, जिसने आधुनिक इटली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया। **कार्बोनारी** ने दो क्रान्तियाँ करवाई थीं, किन्तु दोनों ही असफल रहीं थीं इसके अतिरिक्त उसे उस संस्था से घृणा भी थी, क्योंकि उसका उद्देश्य केवल ध्वंसात्मक था; उसके सामने पुनर्निर्माण की कोई योजना नहीं थी। वह कहा करता था कि क्रान्तियाँ जनता के द्वारा और जनता के लिये की जानी चाहिये। अपनी संस्था के सम्बन्ध में उसका कहना था कि इसका संगठन गुप्त रक्खा जाय नहीं तो उसे कुचल दिया जायगा। किन्तु वह केवल षडयंत्रकारियों की जमाव न हो; उसे चाहिये कि इटलीवासियों को शिक्षा दे, उनका दृष्टिकोण बदले और अपने नैतिक तथा बौद्धिक उत्साह के द्वारा उन्हें जीवन के आदर्शवादी दृष्टिकोण की ओर प्रेरित करे और उनमें आत्मोत्सर्ग तथा कर्तव्य की भावना जाग्रत करे। केवल ४० वर्ष से कम आयु के लोग ही तरुण इटली के सदस्य हो सकते थे, क्योंकि उसका ध्यान विशेषकर युवकों की ओर ही था। मत्सीनी कहा करता था कि, "विद्रोही जनता का नेतृत्व युवकों के हाथ में होना चाहिये; तुम इन तरुण हृदयों में छिपी हुई शक्ति का रहस्य नहीं जानते, और न तुम्हें यही मालूम है कि युवकों की आवाज का जनता पर जादू का-सा प्रभाव होता है।

"तरुण इटली" का संस्थापक

युवकों में तुम्हें इस धर्म के अनेक सन्देशवाहक मिल जायेंगे"।

तरुण इटली की कार्यप्रणाली

मत्सीनी इटली की मुक्ति तथा एकीकरण के कार्य को सचमुच एक नया धर्म मानता था, और कहा करता था कि यह धर्म मनुष्य की उच्चतम भावनाओं को स्पंदित करता है, इसके लिये पूर्ण आत्मोत्सर्ग और तल्लीनता की आवश्यकता है, और युवक ही इसके संदेशवाहक हो सकते हैं। उसका जीवन मिशनरियों का-सा होना चाहिये। उनसे उसने कहा कि तुम देश देश और गाँव गाँव में स्वतंत्रता की मसाल ले जाओ, जनता को स्वतंत्रता के लाभ समझाओ और एक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करो, जिससे लोग उसकी पूजा करने लगें। उनके हृदय में इतना साहस और सहन-शक्ति भर दो कि स्वतन्त्रता देवी की आराधना के लिये उन्हें जो यातनायें और कारागार के कष्ट भोगने पड़ें उनसे वे घबड़ाएँ न। "विचार रूपी पौधे शहीदों के रक्त से सिंचित होकर ही बढ़ते और पनपते हैं।" इससे पहले कभी कोई ऐसा आदर्श नहीं हुआ था जिसका नेता मत्सीनी से अधिक निर्भीक, चरित्रवान, कल्पनाशील, कवित्वसम्पन्न, दुर्धर्ष और प्रतिभावान रहा हो और जिसकी वाणी में इतना आश्चर्यजनक प्रभाव और जिसके हृदय में ऐसा ज्वलन्त उत्साह रहा हो। अगणित लोगों ने उत्साह के साथ मत्सीनी का साथ दिया। १८३३ तक **तरुण इटली** के सदस्यों की संख्या ६०,००० तक पहुँच गई। उसकी शाखाएँ सर्वत्र फैल गईं। **काला सागर** के तट पर गेरीबाल्डी, जिसके नाम ने आगे चलकर जादू का-सा प्रभाव डाला, इस संस्था में सम्मिलित हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी का यह परिवर्तनकारी आन्दोलन बहुत ही रोमान्टिक सिद्ध हुआ। इसकी सबसे बड़ी विचित्रता यह थी कि इसके बहु-संख्यक सदस्य अज्ञात लोग थे, जिसके पीछे न धन की शक्ति थी और न सामाजिक प्रतिष्ठा की। किन्तु, जैसा कि उनके नेता ने बाद में एक बार कहा, "सभी महान् राष्ट्रीय आन्दोलन जनता के उन अज्ञात और महत्त्वहीन लोगों से प्रारम्भ होते हैं जिनके पास समय और कठिनाइयों की परवाह न करने वाली निष्ठा और इच्छा शक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई बल अथवा प्रभाव नहीं होता।"

संस्था के उद्देश्य

इस संस्था का कार्यक्रम स्पष्ट और निश्चित था। प्रथम, आस्ट्रिया को अपने देश से मार भगाया जाय। इस शर्त की पूर्णता पर ही सारी सफलता निर्भर थी। मत्सीनी और उसके अनुयायियों का विश्वास था कि युद्ध अनिवार्य है, अतः जितनी जल्दी आए उतना ही अच्छा है। उसका यह भी कहना था कि इटलीवासियों को विदेशी सरकारों की सहायता और राजनय का भरोसा नहीं करना चाहिये, बल्कि केवल अपनी शक्ति पर निर्भर रहना चाहिए। जब दो करोड़ जनसंख्या का राष्ट्र अपने अधिकारों के लिये लड़ने खड़ा हो जाएगा तो आस्ट्रिया उसके सामने न टिक सकेगा। अपने को स्वाधीन करने की इच्छा रखने वाले दो करोड़ इटलीवासियों को एक ही चीज की आवश्यकता है निष्ठा की, शक्ति की नहीं।

एकता, एक व्यावहारिक आदर्श

वह ऐसा समय था जबकि इटली की राष्ट्रीय एकता का मार्ग अवरुद्ध करने वाली बाधाएँ अजेय प्रतीत होती थीं और एकता के आदर्श का स्वप्न देखने वाले इटलीवासियों की संख्या बहुत कम थी। किन्तु उस समय मत्सीनी ने घोषणा की कि यह आदर्श व्यवहारिक है; यदि इटलीवासियों में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने का साहस

हो तो असम्भव प्रतीत होने वाला कार्य भी सरलता से सम्भव हो सकता है। इटली के इतिहास में मत्सीनी का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उसने बहुसंख्या इटलीवासियों के हृदय में भी वही ज्वलन्त विश्वास बिठला दिया जो कि स्वयं उसके हृदय में धधक रहा था। वह गणतन्त्रवादी था और चाहता था कि एकता स्थापित होने के बाद देश की सरकार गणतन्त्रीय हो। वह एक क्षण के लिये भी यह विश्वास करने के लिये तैयार नहीं था कि विद्यमान राज्यों को मिलाकर एक संघ बनाने से इटली की समस्या हल हो जायेगी। उसका कहना था कि संघ के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं उनसे एकता के पक्ष की और भी अधिक पुष्टि होती है "संयुक्त इटली के आदर्श को छोड़कर अन्य किसी चीज के पीछे मत दौड़ो।"

मत्सीनी के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ थीं। उसे अपने देश से निकाल दिया गया था और अपना लगभग सम्पूर्ण जीवन निर्वासित के रूप में लंदन में बिताना पड़ा था। उसके साधन बहुत ही न्यून थे। और सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि अपनी जनता से उसका निकट सम्पर्क नहीं था, जबकि प्रभावकारी नेतृत्व के लिए यह चीज बहुत आवश्यक होती है।

जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे इटली का निर्माण मत्सीनी की इच्छा के अनुसार नहीं हुआ; फिर भी इटली के निर्माताओं में उसका मुख्य स्थान है। उसने तथा उसके द्वारा स्थापित संस्था ने विचारों के क्षेत्र में एक तीव्र आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। उन्हीं विचारों के चतुर्दिक इटलीवासियों की देशभक्ति का उदय और उत्थान हुआ; इससे पहले इटली का अस्तित्व केवल लोगों की कल्पना में ही था।

विभिन्न मत तथा प्रस्ताव

किन्तु इटली की समस्या के विषय में गम्भीर चिन्तन करने वाले व्यक्तियों में से अनेक ऐसे थे जिन्हें मत्सीनी आवश्यकता से अधिक उग्र और क्रान्तिकारी प्रतीत होता था; उनकी निगाह में यह रहस्यवादी था और उसकी वाणी ओज, प्रेरणा और स्फूर्ति से ओतप्रोत थी, किन्तु उसमें व्यवहारिक सूझबूझ की कमी थी। रूढ़िवादी स्वभाव के लोग उसका अनुगमन नहीं कर सकते थे। इटली की समस्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत थे। कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें इटली की स्वाधीनता में उतना ही उत्कट विश्वास था जितना कि मत्सीनी को, किन्तु उन्हें देश की एकता का आदर्श असम्भव प्रतीत होता था, क्योंकि इटली दीर्घकाल से विभाजित चला आया था और विभाजन की रेखायें बहुत गहरी हो चुकी थीं। कुछ लोग इटली को एक राज्य बनाने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि विभिन्न राज्यों को मिलाकर एक संघ की रचना करना चाहते थे और पोप को उसका अध्यक्ष अथवा नेता बनाना चाहते थे। अन्य लोग इस प्रस्ताव के कटु विरोधी थे और पोप के राज्यों की शासन-व्यवस्था की तीव्र निन्दा किया करते थे। कुछ ऐसे भी लोग थे जिनकी धारणा थी कि इटलीवासियों में गणतन्त्रीय भावना का सर्वथा अभाव है और उनका दृष्टिकोण पूर्णतया राजतन्त्रीय है, अतः राजतन्त्र देशवासियों के स्वभाव और परम्परा के अनुकूल सिद्ध होगा। कुछ लोगों का तर्क था कि चूँकि आस्ट्रिया वालों को मार भगाना असम्भव है, इसलिए उसे भी संघ में सम्मिलित कर लिया जाय; कुछ अन्य लोगों का कहना था कि आस्ट्रिया वालों को भगाया तो नहीं जा सकता किन्तु उन्हें घूस देकर देश छोड़ने के लिये राजी किया जा सकता है;

तरुण इटली की कार्यप्रणाली

युवकों में तुम्हें इस धर्म के अनेक सन्देशवाहक मिल जायेंगे"। मत्सीनी इटली की मुक्ति तथा एकीकरण के कार्य को सचमुच एक नया धर्म मानता था, और कहा करता था कि यह धर्म मनुष्य की उच्चतम भावनाओं को स्पंदित करता है, इसके लिये पूर्ण आत्मोत्सर्ग और तल्लीनता की आवश्यकता है, और युवक ही इसके संदेशवाहक हो सकते हैं। उसका जीवन मिशनरियों का-सा होना चाहिये। उनसे उसने कहा कि तुम देश देश और गाँव गाँव में स्वतंत्रता की मसाल ले जाओ, जनता को स्वतंत्रता के लाभ समझाओ और एक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करो, जिससे लोग उसकी पूजा करने लगें। उनके हृदय में इतना साहस और सहन-शक्ति भर दो कि स्वतन्त्रता देवी की आराधना के लिये उन्हें जो यातनायें और कारागार के कष्ट भोगने पड़ें उनसे वे घबड़ाएँ न। "विचार रूपी पौधे शहीदों के रक्त से सिंचित होकर ही बढ़ते और पनपते हैं।" इससे पहले कभी कोई ऐसा आदर्श नहीं हुआ था जिसका नेता मत्सीनी से अधिक निर्भीक, चरित्रवान, कल्पनाशील, कवित्वसम्पन्न, दुर्धंश और प्रतिभावान रहा हो और जिसकी वाणी में इतना आश्चर्यजनक प्रभाव और जिसके हृदय में ऐसा ज्वलन्त उत्साह रहा हो। अगणित लोगों ने उत्साह के साथ मत्सीनी का साथ दिया। १८३३ तक **तरुण इटली** के सदस्यों की संख्या ६०,००० तक पहुँच गई। उसकी शाखाएँ सर्वत्र फैल गईं। **काला सागर** के तट पर गेरीबाल्डी, जिसके नाम ने आगे चलकर जादू का-सा प्रभाव डाला, इस संस्था में सम्मिलित हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी का यह परिवर्तनकारी आन्दोलन बहुत ही रोमान्टिक सिद्ध हुआ। इसकी सबसे बड़ी विचित्रता यह थी कि इसके बहुसंख्यक सदस्य अज्ञात लोग थे, जिसके पीछे न धन की शक्ति थी और न सामाजिक प्रतिष्ठा की। किन्तु, जैसा कि उनके नेता ने बाद में एक बार कहा, "सभी महान् राष्ट्रीय आन्दोलन जनता के उन अज्ञात और महत्त्वहीन लोगों से प्रारम्भ होते हैं जिनके पास समय और कठिनाइयों की परवाह न करने वाली निष्ठा और इच्छा शक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई बल अथवा प्रभाव नहीं होता।"

संस्था के उद्देश्य

इस संस्था का कार्यक्रम स्पष्ट और निश्चित था। प्रथम, आस्ट्रिया को अपने देश से मार भगाया जाय। इस शर्त की पूर्णता पर ही सारी सफलता निर्भर थी। मत्सीनी और उसके अनुयायियों का विश्वास था कि युद्ध अनिवार्य है, अतः जितनी जल्दी आए उतना ही अच्छा है। उसका यह भी कहना था कि इटलीवासियों को विदेशी सरकारों की सहायता और राजनय का भरोसा नहीं करना चाहिये, बल्कि केवल अपनी शक्ति पर निर्भर रहना चाहिए। जब दो करोड़ जनसंख्या का राष्ट्र अपने अधिकारों के लिये लड़ने खड़ा हो जाएगा तो आस्ट्रिया उसके सामने न टिक सकेगा। अपने को स्वाधीन करने की इच्छा रखने वाले दो करोड़ इटलीवासियों को एक ही चीज की आवश्यकता है निष्ठा की, शक्ति की नहीं।

एकता, एक व्यावहारिक आदर्श

वह ऐसा समय था जबकि इटली की राष्ट्रीय एकता का मार्ग अवरुद्ध करने वाली बाधाएँ अजेय प्रतीत होती थीं और एकता के आदर्श का स्वप्न देखने वाले इटलीवासियों की संख्या बहुत कम थी। किन्तु उस समय मत्सीनी ने घोषणा की कि यह आदर्श व्यवहारिक है; यदि इटलीवासियों में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने का साहस

हो तो असम्भव प्रतीत होने वाला कार्य भी सरलता से सम्भव हो सकता है। इटली के इतिहास में मत्सीनी का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उसने बहुसंख्या इटलीवासियों के हृदय में भी वही ज्वलन्त विश्वास बिठला दिया जो कि स्वयं उसके हृदय में धधक रहा था। वह गणतन्त्रवादी था और चाहता था कि एकता स्थापित होने के बाद देश की सरकार गणतन्त्रीय हो। वह एक क्षण के लिये भी यह विश्वास करने के लिये तैयार नहीं था कि विद्यमान राज्यों को मिलाकर एक संघ बनाने से इटली की समस्या हल हो जायेगी। उसका कहना था कि संघ के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं उनसे एकता के पक्ष की और भी अधिक पुष्टि होती है "संयुक्त इटली के आदर्श को छोड़कर अन्य किसी चीज के पीछे मत दौड़ो।"

मत्सीनी के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ थीं। उसे अपने देश से निकाल दिया गया था और अपना लगभग सम्पूर्ण जीवन निर्वासित के रूप में लंदन में बिताना पड़ा था। उसके साधन बहुत ही न्यून थे। और सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि अपनी जनता से उसका निकट सम्पर्क नहीं था, जबकि प्रभावकारी नेतृत्व के लिए यह चीज बहुत आवश्यक होती है।

जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे इटली का निर्माण मत्सीनी की इच्छा के अनुसार नहीं हुआ; फिर भी इटली के निर्माताओं में उसका मुख्य स्थान है। उसने तथा उसके द्वारा स्थापित संस्था ने विचारों के क्षेत्र में एक तीव्र आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। उन्हीं विचारों के चतुर्दिक इटलीवासियों की देशभक्ति का उदय और उत्थान हुआ; इससे पहले इटली का अस्तित्व केवल लोगों की कल्पना में ही था।

विभिन्न मत तथा प्रस्ताव

किन्तु इटली की समस्या के विषय में गम्भीर चिन्तन करने वाले व्यक्तियों में से अनेक ऐसे थे जिन्हें मत्सीनी आवश्यकता से अधिक उग्र और क्रान्तिकारी प्रतीत होता था; उनकी निगाह में यह रहस्यवादी था और उसकी वाणी ओज, प्रेरणा और स्फूर्ति से ओतप्रोत थी, किन्तु उसमें व्यवहारिक सूझबूझ की कमी थी। रूढ़िवादी स्वभाव के लोग उसका अनुगमन नहीं कर सकते थे। इटली की समस्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत थे। कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें इटली की स्वाधीनता में उतना ही उत्कट विश्वास था जितना कि मत्सीनी को, किन्तु उन्हें देश की एकता का आदर्श असम्भव प्रतीत होता था, क्योंकि इटली दीर्घकाल से विभाजित चला आया था और विभाजन की रेखायें बहुत गहरी हो चुकी थीं। कुछ लोग इटली को एक राज्य बनाने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि विभिन्न राज्यों को मिलाकर एक संघ की रचना करना चाहते थे और पोप को उसका अध्यक्ष अथवा नेता बनाना चाहते थे। अन्य लोग इस प्रस्ताव के कटु विरोधी थे और पोप के राज्यों की शासन-व्यवस्था की तीव्र निन्दा किया करते थे। कुछ ऐसे भी लोग थे जिनकी धारणा थी कि इटलीवासियों में गणतन्त्रीय भावना का सर्वथा अभाव है और उनका दृष्टिकोण पूर्णतया राजतन्त्रीय है, अतः राजतन्त्र देशवासियों के स्वभाव और परम्परा के अनुकूल सिद्ध होगा। कुछ लोगों का तर्क था कि चूँकि आस्ट्रिया वालों को मार भगाना असम्भव है, इसलिए उसे भी संघ में सम्मिलित कर लिया जाय; कुछ अन्य लोगों का कहना था कि आस्ट्रिया वालों को भगाया तो नहीं जा सकता किन्तु उन्हें घूस देकर देश छोड़ने के लिये राजी किया जा सकता है;

इसके लिये इटली के बाल्कन क्षेत्रों में से कुछ भाग छीन कर उन्हें दे दिये जायें, इस तरह सम्भवतः घूस लेकर आस्ट्रिया इटली को उसकी स्वाधीनता भेंट स्वरूप देकर चला जाय। किन्तु यह विचार नितान्त काल्पनिक था। विचारों को इस संघर्ष ने असन्तोष और आकांक्षाओं की भावनाओं को और भी अधिक सबल और प्रज्ज्वलित किया।

१८१८ के बाद इटली में प्रतिक्रिया

१८४८ और १८४९ की घटनाओं के फलस्वरूप इटली के विकास ने एक नया मोड़ लिया। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा था कि इटली की स्वाधीनता और एकता सन्निकट है, किन्तु फिर पराज्य हुई और देश पहले की स्थिति में पुनः जा गिरा। ऐसा लगने लगा कि सब कुछ पहले जैसा ही फिर होने वाला है, बल्कि कुचली हुई आशाएँ और निष्फल संघर्षों के कारण स्थिति पहले से भी अधिक बुरी दिखाई देने लगी। किन्तु वास्तव में स्थिति पहले जैसी नहीं थी। एक क्षेत्र में परिवर्तन हो चुका था जो कि निश्चय ही अच्छे के लिये था। पीडमोंट ही प्रायद्वीप का एक ऐसा राज्य था जो कि इस दुःखद प्रक्रिया से बच सका। यद्यपि उसकी १८४८ में कुस्तोत्सा और १८४९ में नोवारा के युद्ध में पराजय हुई थी, फिर भी नैतिक दृष्टि से उसको महान् विजय प्राप्त हुई थी। इटली के एक राजा ने देश की स्वाधीनता के लिये दो बार अपने सिंहासन को जोखिम में डाला था; इसका फल यह हुआ कि बहुसंख्यक देशवासियों की निगाह में सेवोय का राजवंश राष्ट्र का असली नेता बन गया। इसके अतिरिक्त जिस राजा—चार्ल्स अलबर्ट—ने ऐसा किया था उसने अपनी जनता को एक संविधान भी प्रदान कर दिया था। नोवारा के युद्ध के बाद उसने सिंहासन त्याग दिया था, और उसका पुत्र विक्टर इमानुअल, जिसकी आयु २९ वर्ष की थी, सिंहासन पर बैठा था।

विक्टर इमानुअल द्वितीय (१८२०-७०)

आस्ट्रिया विक्टर इमानुअल के साथ सरल शर्तों पर संधि करने के लिये तैयार था शर्त यह थी कि वह नये संविधान को रद्द कर दे। आस्ट्रिया को कहीं भी संविधान पसन्द नहीं थे, एक पड़ौसी देश में तो उसे यह चीज विशेष रूप से असह्य थी। विक्टर इमानुअल को इस बात का भी प्रलोभन दिया गया कि यदि वह किसी पड़ौसी देश पर आक्रमण करेगा तो आस्ट्रिया उसका साथ देगा। किन्तु उसने इस चीज को मानने से पूर्णतया इन्कार कर दिया। यह घटना उसके जीवन और पीडमोंट एवं इटली के इतिहास में महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुई लोगों ने प्रसन्न होकर उसे ईमानदार राजा की उपाधि दे दी। इससे पीडमोंट इटली के उदारवादियों की आशाओं का केन्द्र बन गया।

पीडमोंट, एक संविधानिक राज्य

पीडमोंट की सरकार राष्ट्रीय और संविधानिक थी, अतः यह निश्चित था कि इटली का नेतृत्व उसी के हाथों में होगा। अगले दस वर्षों में उसका इतिहास इटली के राज्य के निर्माण का इतिहास था। जिन उदारवादियों को अन्य राज्यों से निकाल दिया गया उन लोगों ने पीडमोंट में शरण ली, और ऐसे लोगों की संख्या काफी थी।

विक्टर इमानुअल वीर सैनिक था। यद्यपि उसमें उच्चकोटि की बौद्धिक प्रतिभा नहीं थी, फिर भी उसकी निर्णय-शक्ति स्वतन्त्र और दृढ़ थी, वह अपने वचन का पूर्णतया पक्का था और उसकी देशभक्ति अगाध थी। सौभाग्य से १८५० के

बाद उसे कावूर नाम का मुख्यमंत्री मिल गया जिसकी गणना १९ वीं शताब्दी के महानतम् राजनीतिज्ञों और राजनायिकों में है।

कावूर का जन्म १८१० में हुआ था। उसका परिवार पीडमोंट के सामन्त वर्ग का था। उसने सैनिक शिक्षा पाई और इंजीनियर के रूप में सेना में भर्ती हो गया। किन्तु उसके विचार उदार थे और उनको वह निःसंकोच होकर व्यक्त किया करता था, उसके वरिष्ठ अधिकारी उससे अप्रसन्न हो गये और कुछ समय के लिये उसे अर्द्ध कारावास में रखा गया। १८३१ में उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और १५ वर्ष देहात में रहकर जमींदार का जीवन बिताया और अपनी जायदाद की उन्नति में लगा रहा। चूँकि उसकी राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं में रुचि थी, इसलिये जीवन की नीरसता को कम करने के लिये इन वर्षों में उसने फ्रांस और इंगलैण्ड का अनेक बार पर्यटन किया। वह स्वयं राजनीति में भाग लेने का इच्छुक था, किन्तु देश में प्रतिनिधि संस्थाओं के न होने से उसे इस चीज का कोई अवसर नहीं दिखाई दिया। वह कहा करता था, "काश ! मैं अँग्रेज होता, तो इस समय तक मैं कुछ बन गया होता और मेरा नाम पूर्ण अज्ञात न रहता।" इसी बीच में उसने विदेशों में रहकर उन संस्थाओं का अध्ययन किया जिन्हें वह स्वयं अपने देश में स्थापित करना चाहता था, विशेषकर इंगलैण्ड की संसदीय प्रणाली का। रात रात भर वह **लोकसभा** (हाउस ऑव कॉमन्स) के दर्शक-कक्ष में बैठा रहता था, जिससे कि उसकी कार्य-प्रणाली को पूर्णतया हृदयंगम कर सके। १८४८ में जब पीडमोंट में संसद और संविधान की रचना हुई तो उसने उत्साह के साथ उसका स्वागत किया, क्योंकि इन चीजों के लिये स्वयं उसने जोरदार शब्दों में माँग की थी। उसका कहना था, "इटली का निर्माण स्वतन्त्रता के द्वारा ही हो सकता है, अन्यथा हमें उसके निर्माण का प्रयत्न ही छोड़ देना चाहिये।" संसदीय संस्थाओं में कावूर का यह विश्वास जीवन भर अटल रहा, कभी-कभी ऐसा समय भी आया जबकि इस विश्वास से उसकी नीति के कार्यान्वित करने में बाधा भी पड़ी, फिर भी वह अडिग रहा। उसका विश्वास था कि अन्त में जनता, शीघ्र अथवा देर से, किसी चीज की सचाई को अवश्य समझ लेती है। पीडमोंट की प्रथम संसद के चुनाव में वह खड़ा हुआ और जीत गया। १८५० में मन्त्रिमंडल में सम्मिलित हुआ और १८५२ में प्रधानमन्त्री बना। कुछ सप्ताहों को छोड़कर अपने शेष जीवन भर वह इस पद पर आरूढ़ रहा और एक महान् राजनीतिज्ञ और अद्वितीय राजनयिक होने का परिचय दिया। कावूर के मानसिक गुण मत्सीनी से एक दम विपरीत थे। मत्सीनी का मस्तिष्क काव्यात्मक और कल्पनाशील, कावूर का व्यावहारिक और निश्चयात्मक था। वह इटली की एकता और स्वाधीनता का इच्छुक था, उसे आस्ट्रिया से घृणा थी, क्योंकि उसने उसके देश का ही नहीं बल्कि अन्य देशों का भी उत्पीड़न किया था। किन्तु मत्सीनी के विपरीत वह आस्ट्रिया की शक्ति को कम नहीं समझता था और न अपने देशवासियों की शक्ति को ही बढ़ा चढ़ाकर आँकता था। अन्य देशभक्तों की भाँति कावूर का भी विश्वास था कि आस्ट्रिया को बाहर निकाले बिना इटली का पुनरुत्थान नहीं हो सकता, किन्तु मत्सीनी तथा अन्य लोगों ने वह

काउंट कावूर (१८१०-६१)

राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं में उसकी रुचि

कावूर प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त (१८५२)

इस बात में सहमत नहीं था कि इटलीवासी अकेले इस काम को पूरा कर लेंगे। उसकी राय में पिछले ४० वर्ष के इतिहास ने सिद्ध कर दिया था कि विद्रोह तथा क्रान्तियों से सफलता नहीं मिल सकती। किसी ऐसी बड़ी सैनिक शक्ति की सहायता की आवश्यकता थी जो बल तथा अनुशासन में आस्ट्रिया की सेना का मुकाबला कर सके। काबूर का विचार था कि इटली की स्वाधीनता और एकता के कार्य में सेवोय का वंश और पीडमोंट का राजतन्त्र ही देश का नेतृत्व कर सकता है। उसकी यह भी धारणा थी कि यदि नये राज्य का कभी निर्माण हो सके तो उसकी शासन प्रणाली सांविधानिक राजतंत्रीय ढँग की होनी चाहिए। वह पीडमोंट को एक आदर्श राज्य का रूप देना चाहता था, जिससे कि समय आने पर इटली के अन्य राज्य उसे अपना नेता स्वीकार कर लें और उसे अपने सब के लिये सर्वोत्तम समझकर उसमें सम्मिलित हो जाएँ। पीडमोंट का एक संविधान था, किन्तु अन्य राज्यों में ऐसी कोई चीज नहीं थी। काबूर ने अपने राज्य में स्वतन्त्र राजनीतिक जीवन की स्थापना की, जिससे कि लोगों को स्वशासन की सच्ची शिक्षा मिल गई। उसने राज्य के आर्थिक साधनों के विकास में भी अपनी सारी शक्ति लगादी, उत्पादन और वाणिज्य को प्रोत्साहन दिया, कृषि को आधुनिक ढाँचे में ढाला और रेल-मार्गों का निर्माण किया। संक्षेप में, उसने पीडमोंट को एक उदार और प्रगतिशील राज्य बनाने का प्रयत्न किया, जिससे कि वह इटली के अन्य राज्यों के लिए एक आदर्श बन सके और वे उसके समर्थक तथा पक्षपोषक बन जाएँ, और पश्चिमी योरोप के देश तथा शासक उसकी सराहना करने तथा उसके मामलों में दिलचस्पी लेने लगें।

काबूर ने पीडमोंट को आदर्श राज्य बनाने का प्रयत्न किया

इस व्यक्ति का मूल उद्देश्य और जीवन की निरन्तर साधना यह थी कि किसी **महान् शक्ति** को इटली का मित्र बना लिया जाय। इसी एक चीज ने उसके सारे कार्यों और इच्छाओं को अनुप्राणित किया। इस कठिन उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वह वर्ष प्रति वर्ष प्रयत्न करता रहा और ऐसी राजनयिक प्रतिभा का परिचय दिया कि अन्त में वह अपने समय का अद्वितीय राजनयिक सिद्ध हुआ। उसकी यह कहानी अत्यधिक आश्चर्यजनक और चित्ताकर्षक है, किन्तु यहाँ स्थानाभाव के कारण उसका वर्णन नहीं किया जा सकता इसके ब्यौरे को जानने के लिए पाठकों को अन्य ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ेगा। उनके अवलोकन से उन्हें पता लगेगा कि काबूर के चरित्र में विभिन्न और कभी-कभी तो परस्पर विरोधी गुणों का दुर्लभ समन्वय था। एक ओर तो उसकी निर्णय-शक्ति, व्यवहारिक सूझ-बूझ, स्पष्ट सूक्ष्म और तीव्र विचार-शक्ति, ब्यौरे की अरुचिकर चीजों में ध्यान देने की क्षमता अद्भुत थी, दूसरी ओर उसमें कल्पना शक्ति, दुर्धर्षता, साहस और लौह-वत सुदृढ़ता देखने को मिलती थी। शासन-कला और राजनय के इस महान् आचार्य के चरित्र की कुछ और भी विशेषताएँ थीं। इटली और यूरोप के राजनीतिक जीवन से संबद्ध तत्वों और व्यक्तियों की उसे सही और गम्भीर जानकारी थी, अंतर्राष्ट्रीय मंच के तेजी से बदलने वाले दृश्यों को समझने की उसमें अद्भुत क्षमता थी, और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये साधनों को जुटाने में वह कभी असफल नहीं हुआ। यद्यपि वह ५० लाख की जनसंख्या के छोटे-से राज्य का मंत्री था, किन्तु उसका व्यक्तित्व यूरोप में सर्वाधिक गतिशील, सक्रिय और शक्तिशाली था।

काबूर एक अद्वितीय राजनयिक

काबूर एक सैनिक मित्र की खोज में

क्रीमिया के युद्ध में पीडमोंट ने भाग लिया

काबूर को एक मित्र की तलाश थी। उसने देखा कि क्षेत्र बहुत सीमित है। इंगलैंड और फ्रांस, इन्हीं दो में से कोई एक इटली का मित्र बन सकता था। इंगलैंड के पास बड़ी सेना नहीं थी और वह अपने को यूरोप की उलझनों से यथासम्भव दूर रखना चाहता था। इसके विपरीत फ्रांस की सेना यूरोप में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी और उसका शासक नेपोलियन तृतीय महत्त्वाकांक्षी और साहसिक था। काबूर कहा करता था कि "हम चाहें अथवा न चाहें हमारा भाग्य फ्रांस पर निर्भर है।" उसने नेपोलियन का अनुग्रह प्राप्त करने का प्रयत्न किया। क्रीमिया के युद्ध ने उसे अवसर दे दिया। १८५५ में इसने बिना किसी शर्त के इंगलैंड और फ्रांस से जो कि उस समय रूस के विरुद्ध युद्ध में संलग्न थे, मित्रता कर ली, और युद्ध में उन्हें विशेष सहायता दी। युद्ध के समाप्त होने पर उन्होंने सहायता का बदला चुका दिया। पेरिस के शान्ति सम्मेलन में पीडमोंट को भी सम्मिलित कर लिया गया और इस प्रकार उसको यूरोप की अन्य शक्तियों के समकक्ष स्थान मिल गया। उन्होंने काबूर को उस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में, जिसमें कि आस्ट्रिया भी सम्मलित था, इटली के प्रश्न पर विवाद उठाने का भी अवसर दिया।

प्लोम्बियेर की मुलाकात

दो वर्ष उपरान्त काबूर को अपनी उक्त सेवाओं का महान् पुरस्कार मिला। जुलाई १८५८ में सम्राट नेपोलियन तृतीय वोज पर्वतमाला में स्थित प्लोम्बियेर नामक स्थान पर जल चिकित्सा के लिये ठहरा हुआ था। काबूर को भी उसने वहीं बुला लिया। वहाँ एक दिन दोनों ने बग्घी में बैठ कर वोज के वनों का भ्रमण किया; उस समय नेपोलियन घोड़ों की बागें थामे हुए था। उसके बाद भी कई मुलाकातें हुईं। इन मुलाकातों में उन्होंने एक युद्ध का षड़यंत्र रचा, जिसका उद्देश्य आस्ट्रिया को इटली से मार भगाना था। इटली को "आल्पस से एड्रियाटिक तक" मुक्त करने का निश्चय किया गया। पीडमोंट को लोम्बार्डी, वेनीशिया और पोप के राज्यों के कुछ भाग मिलेंगे; तत्तपश्चात् इटली के राज्यों को मिला कर एक परिसंघ बनाया जाएगा और पोप को उसका अध्यक्ष नियुक्त किया जायगा। फ्रांस को सेवोय और यथासम्भव नीस के प्रदेश दे दिये जायेंगे।

नेपोलियन तृतीय तथा राष्ट्रीयता का सिद्धान्त

प्लोम्बियेर के समझौते की ये मुख्य शर्तें थीं। नेपोलियन के इस निश्चय के परिणाम स्वयं उसके तथा इटली के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। अनेक कारण थे जिनसे प्रेरित होकर सम्राट ने यह कदम उठाया। सबसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीयता का सिद्धान्त था, जिसका अभिप्राय था कि एक ही नस्ल और भाषा के लोगों को अधिकार होना चाहिए कि यदि वे चाहें तो अपना एक पृथक् राजनीतिक संगठन बना कर रहें। नेपोलियन का इस सिद्धान्त में अटल विश्वास था और उनकी सम्पूर्ण वैदेशिक नीति इससे बहुत कुछ प्रभावित हुई। दूसरे, नेपोलियन को बहुत पहले से इटली के मामलों में दिलचस्पी रही थी; उसने १८३१ के क्रान्तिकारी आन्दोलनों में स्वयं भाग लिया और सम्भवतः कार्बोनारी का सदस्य भी रहा था। इसके अतिरिक्त उसकी यह उत्कट आकांक्षा थी कि १८१५ की सन्धियों को, जिन्होंने नेपो-

लियन वंश को इतना अपमानित किया था, फाड़ फेंका जाय। ये संधियाँ अव तक इटली की राजनीतिक व्यवस्था का आधार बनी हुई थीं। अन्त में सम्भवतः अपने सिंहासन पर यश को गौरवान्वित कराने की इच्छा भी उसके हृदय में कार्य कर रही थी, और राज्य क्षेत्र-बढ़ाने का अवसर तो सदैव था ही।

१८५९ का युद्ध

अतः १८५९ में युद्ध छिड़ गया जिसमें एक ओर आस्ट्रिया तथा दूसरी ओर फ्रांस तथा पीडमोंट थे। मागेन्टा (४ जून) और सोल्फेरीनो (१४ जून को दो बड़ी लड़ाइयों में पीडमोंट और फ्रांस की विजय हुई। सोल्फेरीनो की लड़ाई की गणना उन्नीसवीं शताब्दी के महानतम् युद्धों में है। वह ११ घण्टे तक चली और १,६०,००० सैनिकों ने उसमें भाग लिया तथा ८०० तोपें काम में लाई गईं मित्र देशों को १७,००० और आस्ट्रिया को २,२००० सैनिकों को क्षति उठानी पड़ी। मित्रों ने सम्पूर्ण लोम्बर्डी को जीत लिया और मिलान पर अधिकार कर लिया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि वेनीशिया को भी सरलता से अधिकृत कर लिया जायगा तथा इटली में आस्ट्रिया के शासन का अन्त होने वाला है और नेपोलियन का इटली को आल्प्स से एड्रियाटिक तक मुक्त करने का वचन पूरा होने को है किन्तु नेपोलियन सफलता के पूर्ण वेग के दौरान में ही सहसा रुक गया, बिलाफ्रांका के स्थान पर आस्ट्रिया के सम्राट से भेंट की और अपने मित्र से पूछे बिना ११ जुलाई को प्रसिद्ध विराम संधि कर ली। उसकी शर्तें इस प्रकार थीं; लोम्बार्डी पीडमोंट को दे दिया जाय, वेनीशिया पर आस्ट्रिया का अधिकार रहे, इटली के राज्य मिल कर एक परिसंघ बनालें, तुस्कानी और मोडेना उनके पुराने शासकों को, जिन्हें विद्रोही जनता ने हाल ही में मार भगाया था, वापस कर दिए जाएँ।

बिलाफ्रांका की सन्धि की प्रारम्भिक शर्तें

नेपोलियन ने ऐसा क्यों किया ?

प्रश्न यह था कि नेपोलियन जिस उद्देश्य को लेकर इटली में आया था उसको पूरा किये बिना सफल अभियान के बीच में ही क्यों रुक गया ? अनेक कारण बतलाये गये हैं। युद्ध-क्षेत्र की विभीषिका से उसके हृदय को गहरा आघात पहुँचा था, उसने देखा कि आस्ट्रिया को पूरी तरह पराजित करने में कहीं अधिक बलिदान करना पड़ेगा उधर प्रुशिया हस्तक्षेप करने की तैयारियाँ कर रहा था। इसके अतिरिक्त नेपोलियन अपनी नीति के परिणामों के विषय में भी शंकित होने लगा था। वह सोचने लगा कि युद्ध के अन्त में इटली के शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्य की स्थापना हो गई, जैसा कि वहुत सम्भव है, तो क्या इससे फ्रांस को खतरा न उठ खड़ा होगा। पीडमोंट के राज्य-क्षेत्र में यदि थोड़ा-सा विस्तार हो जाय तो हानि नहीं, किन्तु फ्रांस के पड़ौस में संयुक्त इटली के राज्य का निर्माण खतरे से खाली नहीं हो सकता।

काबूर का पद-त्याग

सन्धि का समाचार सुनकर इटली वासियों को घोर सन्ताप हुआ। जव उनकी आशाएँ पूरी होने को थीं उसी समय ही उन पर तुषारापात हो गया। नेपोलियन ने विक्टर इमानुअल की सरकार को पूछा भी नहीं था। फ्रांसीसी सम्राट् के इस विश्वासघात से काबूर आग वबूला हो गया; उधर वह कई वर्षों के भारी परिश्रम की थकान से चकनाचूर था, अतः आत्मसंयम खो वैठा और राजा पर उग्र कार्यवाही

करने के लिये दबाव डाला, किन्तु राजा ने मना कर दिया तब क्रोध के आवेश में आकर उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। राजा ने कावूर की बात न मान कर दिखा दिया कि वह अपने प्रतिभाशाली मन्त्री से भी अधिक बुद्धिमान था। उसे भी उतनी ही निराशा हुई थी जितनी कि कावूर को; किन्तु अपने मन्त्री की अपेक्षा वह इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से देख सका कि यद्यपि पीडमोंट की सब आशायें पूरी नहीं हुई हैं फिर भी उसे बहुत कुछ लाभ हो गया है। क्रोध के उन्माद में आकर सब कुछ जोखिम में डालने से तो अच्छा यह है कि जो कुछ मिल गया है उसे ले लिया जाय और भविष्य की प्रतीक्षा की जाय। इतिहास का यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण क्षण था जबकि विक्टर इमानुअल की स्वतन्त्र निर्णय-शक्ति और सामान्य सूझ बूझ से स्थाई और महान् लाभ हुआ।

लोम्बार्डी पर पीडमोंट का अधिकार

यद्यपि नेपोलियन ने इटली के लिए जो योजना बनाई थी। उसे पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं किया था, फिर भी उसने उस देश की महत्त्वपूर्ण सेवा की। उसने पीडमोंट को लोम्बार्डी का प्रदेश दिलवा दिया था। यह भी उल्लेखनीय है कि उसने स्वयं इस बात को स्वीकार किया था कि चूँकि इटली के सम्बन्ध में मैंने अपना सम्पूर्ण कार्यक्रम पूरा नहीं किया है अतः सेवोय और नीस पर मेरा जो हक है वह भी रद्द हो गया है।

विलाफ्रांका के बाद केन्द्रीय इटली की स्थिति

किन्तु केवल फ्रांस और आस्ट्रिया के सम्राट् इटली के भविष्य का निवटारा नहीं कर सकते थे, इटली की जनता के अपने विचार थे और वह इस बात के लिए दृढ़ संकल्प थी कि उसकी बात भी सुनी जाय। युद्ध के दौरान में मोडेना, पार्मा और तुस्कानी के राजाओं को विद्रोही जनता ने मार भगाया था और रोमेग्ना में, जोकि पोप के राजा का उत्तरी भाग था, पोप की सत्ता समाप्त करदी थी। जिन लोगों ने यह कार्य सम्पादित किया था वे निकाले हुए राजाओं को पुनः सिंहासन पर बिठलाने के लिये तैयार न थे। उन्होंने फ्रांस और आस्ट्रिया के सम्राटों के इस निर्णय को मानने से इन्कार किया कि इन शासकों को उनके राज्य वापिस लौटा दिये जाएँ।

इंगलैंड का हस्तक्षेप

इस चीज में इंगलैंड की सरकार ने उसका राजनयिक समर्थन किया। इंगलैंड की इटलीवासियों के प्रति यह महान् सेवा थी। लॉर्ड पामर्स्टन ने कहा, "इन रियासतों की जनता को भी अपने शासकों को बदलने का उतना ही अधिकार है जितना कि इंगलैंड, फ्रांस, बेल्जियम अथवा स्वीडन की जनता को है। इन ठिकानों के पीडमोंट में सम्मिलित हो जाने से इटली को अपार लाभ होगा।"

इन ठिकानों का पीडमोंट में सम्मिलित किया जाना

इन रियासतों की जनता ने लगभग सर्व सम्मति से पीडमोंट में सम्मिलित होने का निर्णय किया (मार्च ११-१२, १८६०)। विक्टर इमानुअल को इस प्रकार जो प्रभुत्व सौंपा गया उसको उसने स्वीकार कर लिया, और २ अप्रैल १८६० को तूरिन में पीडामोंट के परिवर्तित राज्य की पहली संसद की बैठक हुई। इस छोटे से राज्य की जनसंख्या १ वर्ष से कम में ही ५,०००,००० से बढ़ कर ११,०००,००० तक पहुँच गई थी। यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था में १८१५ के बाद यह सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था। जहाँ तक इटली का सम्बन्ध था, उसने

१८१५ की संधियों को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था। **वीना सम्मेलन** ने जिस व्यवस्था की स्थापना की थी उस पर यह अब तक का सबसे बड़ा आघात था। जिस देश को सम्मेलन ने केवल एक भौगोलिक नाम घोषित किया था वह एक राष्ट्र बनने जा रहा था और इस चीज के पीछे उन दो सिद्धान्तों की विजय छिपी हुई थी जिनसे **वीना सम्मेलन** के शासकों को सबसे अधिक घृणा थी, अर्थात् क्रान्ति का अधिकार और जनता का आत्मनिर्णय का अधिकार, क्योंकि यह काम युद्ध तथा लोकमत के आधार पर हुआ था।

सेवोय और नीस पर फ्रांस का अधिकार

नेपोलियन तृतीय ने इस सबको स्वीकार कर लिया और अपनी सेवाओं के बदले में सेवोय एवं नीस को हस्तगत कर लिया; विलाफ्रांका की संधि को कभी कार्यान्वित नहीं किया गया।

नेपिल्स के राज्य की विजय

इस एक घटनासंकुल वर्ष के भीतर बहुत कुछ सफलता मिल चुकी थी, किन्तु इटली के एकीकरण को पूरा करने के लिये अभी बहुत कुछ करना शेष था। वेनीशिया, पोप के राज्यों का अधिकांश और नेपिल्स के राज्य अभी तक इटली के संयुक्त राज्य में सम्मिलित नहीं हुए थे। अन्त में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे एकीकरण की यह प्रक्रिया कई कदम आगे बढ़ गई। १८६० के प्रारम्भ में सिसली की जनता ने अपने नये राजा फ्रांसिस द्वितीय के निरंकुश शासन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। इस विद्रोह गेरीबाल्डी नामक देशभक्त को एक सुअवर प्रदान किया। वैसे तो वह पहले से ही ख्याति प्राप्त कर चुका था; किन्तु नियति ने उसे भविष्य में एक महान् वीरतापूर्ण कार्य सम्पादित करने तथा अपने देश की स्मरणीय सेवा करने के लिये नियुक्त कर रखा था। उस समय गेरीबाल्डी इटली का सर्वाधिक लोकप्रिय नेता था और अपने चमत्कारपूर्ण तथा "रोमांटिक" कार्यकलाप के कारण, साहस और अजेयता का अवतार माना जाता था।

सिसली का विद्रोह

गेरीबाल्डी (१८०७-१८८२)

गेरीबाल्डी का जन्म १८०७ में नीस में हुआ था। अतः वह मत्सीनी से दो वर्ष छोटा और काबूर से तीन वर्ष बड़ा था। उसके माता पिता उसे पादरी बनाना चाहते थे, किन्तु उसने समुद्र का जीवन पसन्द किया और अनेक वर्ष तक एक साहसिक और घुमक्कड़ मल्लाह का जीवन बिताया। प्रारम्भ में ही वह "तरुण इटली" का सदस्य हो गया। उसे मुख्यतः अनियमित छापामार लड़ाई का अनुभव था। १८३४ में उसने मत्सीनी द्वारा संगठित असफल विद्रोह में भाग लिया, जिसके फलस्वरूप उसे मृत्यु दण्ड दिया गया, किन्तु वह निकल भागा और दक्षिणी अमेरिका जा पहुँचा। वहाँ उसने निर्वासित के रूप में १४ वर्ष बिताए। उसने "**इतावली सेना**" नाम का एक सैन्य दल संगठित किया और उसको लेकर दक्षिणी अमेरिका के अनेक युद्धों में भाग लिया। १८४८ की क्रांति का समाचार सुनकर वह इटली लौट गया, यद्यपि अभी तक उसकी मृत्यु की सजा कायम थी। उस "**मांटीवीडो के वीर**" के झण्डे के नीचे हजारों लोग आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिये इकट्ठे हो गए। इस अभियान की विफलता के बाद वह

रोम की प्रतिरक्षा

रोम को चला गया और वहाँ के गणराज्य की सैनिक प्रतिरक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। जब नगर का पतन सन्निकट दिखाई दिया तो वह ४००० सैनिकों के साथ निकल कर भाग गया और वेनीशिया में आस्ट्रिया की शक्ति पर आक्रमण करने का संकल्प किया। फ्रांस तथा आस्ट्रिया की सेनाओं ने उनका पीछा किया। उनसे बच निकलने में तो वह सफल रहा, किन्तु उसकी सेना तेजी से क्षीण होती गई और पीछा करने वालों ने इतनी सरगर्मी दिखलाई कि उसे बाध्य होकर एड्रियाटिक में भाग जाना पड़ा। बाद में वह जब तट पर उतरा, तो उसके शत्रु फिर पूरे जोर से टूट पड़े और वनों तथा पर्वतों में उसका ऐसा पीछा किया मानो वह कोई खतरनाक शिकार हो। गेरीवाल्डी का यह वीर कार्य अत्यन्त विस्मयकारी था, किन्तु रेवेना के निकट एक किसान की मड़ैया में उसकी पत्नी अनीता की मृत्यु हो गई। अनीता एक अत्यधिक साहसी और महान् आत्मा थी और उसने घर की भाँति शिविर में भी अपने पति का साथ दिया था। अब में गेरीवल्डी भागकर अमेरिका पहुँचा और फिर निर्वास का जीवन व्यतीत करने लगा, किन्तु उसकी वीरता, शूरत्व और रोमांस से ओतप्रोत कहानी ने इटली की जनता में अगाध उत्साह भर दिया।

काप्रीरा के "आल्पस के शिकारियों" का नेता

अनेक वर्ष तक गेरीवाल्डी एक नाव में बैठकर समुद्रों में घूमता फिरा। कुछ महीने तक उसने **स्टेशन** द्वीप में मोमबत्ती बनाने का कार्य किया, किन्तु १८५४ में लौटकर फिर इटली पहुँचा, और काप्रीरा के छोटे से दीप में एक किसान के रूप में जीवन बिताने लगा। १८५९ की घटनाओं ने पुनः उसे शांति का जीवन त्याग कर मैदान में उतरने को बाध्य किया। वह स्वयं सेवकों के एक दल को लेकर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में कूद पड़ा और महान् यश प्राप्त किया। वह इटली भर के साहसिकों और सैनिकों के लिये पूजा की प्रतिमा था। अगणित लोग जहाँ कहीं वह चाहता उसका अनुगमन करने के लिये तैयार थे। उसका नाम भी देवताओं के समान स्तुत्य बन गया था। १८६० में उसने सिसली और नेपिल्स पर आक्रमण किया—यह उसके जीवन की सबसे अधिक शानदार घटना थी। सिसली की जनता ने अपने राजा नेपिल्स के

गेरीवाल्डी का सिसली जाने का संकल्प

फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था गेरीवाल्डी ने, जो इटली का सबसे प्रतापी योद्धा था और जिसके नाम में एक सेना जितनी शक्ति थी, अपने बलबूते पर सिसलीवासियों की सहायता करने का संकल्प किया।

"दस हजार" का अभियान

५ मई, १८६० को गेरीवाल्डी के स्वयंसेवकों ने जो "दस हजार" और "**लाल कुर्त्ती वालों**" के नाम से प्रसिद्ध थे दो स्टीमरों में बैठ कर जिनोआ से प्रस्थान किया। गेरीवाल्डी के यश की गाथाएँ सुनकर ये लोग एक नये साहसिक कार्य के लिये उसके झंडे के नीचे एकत्रित हो गये थे। उस समय उनका यह कार्य नितांत मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता था। नेपिल्स के राजा के पास २४००० सेना सिसली में और १,०००० सेना मुख्य भूमि पर थी। सफलता के मार्ग में अगणित बाधाएँ थीं, किन्तु भाग्य लक्ष्मी ने वीरों का

साथ दिया। अभियान कुछ हफ्ते तक चला। अनेक बार गेरीबाल्डी घोर संकट में फँस गया और अत्यधिक दुस्साहसपूर्ण युद्ध करके ही अपने प्राण बचा सका, किन्तु अन्त में द्वीप पर उसका अधिकार हो गया। सिसली के विद्रोहियों से उसे बहुत सहायता मिली; मुख्य भूमि से भी स्वयंसेवकों की एक बड़ी संख्या उसके झंडे के नीचे एकत्र हो गई थी, उनकी सहायता भी बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त नेपिल्स के सेनानायकों का निकम्मापन भी गेरीबाल्डी की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण था। किन्तु सबसे बड़ा कारण था गेरीबाल्डी और उसके स्वयंसेवकों की दुधर्षता। ५ अगस्त, १८६० को विक्टर इमानुअल द्वितीय के नाम पर गेरीबाल्डी ने अपने को सिसली का अधिनायक घोषित कर दिया।

तत्पश्चात १९ अगस्त, १८६० को गेरीबाल्डी ने नेपिल्स के समस्त राज्य को जीतने के इरादे से जलडमरूमध्य को पार किया। राजा के पास अब भी एक लाख सेना थी, किंतु उसमें एक दुर्बल नरकुल कितनी भी शक्ति नहीं थी। रक्तपात लगभग बिल्कुल नहीं हुआ। नेपिल्स का राज्य जीता नहीं गया, बल्कि उसका पतन स्वतः हो गया। लोगों का विश्वासघात, भ्रष्टाचार और एन वक्त पर आक्रमणकारी से जा मिलना इस पराभव के मुख्य कारण थे। ६ सितम्बर के फ्रांसिस द्वितीय नेपिल्स छोड़कर भाग गया और गेरीबाल्डी ने थोड़े से अनुयायियों के साथ रेल द्वारा नगर में प्रवेश किया। उत्साहपूर्ण कोलाहल के बीच वह घोड़े पर बैठकर सड़कों पर निकला। ५ महीने से कम में ही उसने ११,०००,००० जनसंख्या के राज्य को जीत लिया था—आधुनिक इतिहास में यह एक अद्भुत सफलता थी।

गेरीबाल्डी की रोम पर आक्रमण करने की योजना

अब गेरीबाल्डी रोम पर चढ़ाई करने की बात करने लगा। काबूर को स्थिति बहुत ही संकटपूर्ण दिखाई पड़ी। उस समय रोम पर फ्रांसीसी सेना का अधिकार था। उस पर आक्रमण का अर्थ होता फ्रांस पर आक्रमण करना, अतः काबूर ने हस्तक्षेप करने और स्थिति को अपने हाथ में लेकर भविष्य की प्रगति को स्वयं नियंत्रित और संचालित करने का निश्चय किया। उसकी सलाह से विक्टर इमानुअल ने एक सेना लेकर पोप के राज्यों पर चढ़ाई कर दी, किन्तु उसने रोम पर आक्रमण नहीं किया, क्योंकि वह जानता था कि फ्रांस के केथोलिक लोगों की भावनाओं के कारण नेपोलियन तृतीय उसे पोप की राजधानी पर अधिकार नहीं करने देगा। किंतु नेपोलिनन इस बात के लिये तैयार था कि वह मार्श और उम्ब्रिया पर, जोकि पोप के राज्य के अंग थे, अधिकार कर ले; केवल रोम का नगर और उसके आसपास के क्षेत्र को न छुआ जाय।

पीडमोंट का हस्तक्षेप

विक्टर इमानुअल की सेना ने १८६० को कास्तेलफिदारदो के स्थान पर पोप की सेना को परास्त किया। तत्पश्चात् उसने नेपिल्स के राज्य में प्रवेश किया। ७ नवम्बर को विक्टर इमानुअल और गेरीबाल्डी की सवारी नेपिल्स की सड़कों में साथ-साथ निकली। गेरीबाल्डी ने कोई पुरस्कार एवं सम्मान स्वीकार नहीं

किया और थोड़े-से पैसे तथा बसंत में बोने के लिए एक थैला सेम के बीज लेकर काप्रीरा के द्वीप में स्थित अपने खेत को चला गया।

उम्ब्रिया और मार्श का इटली के राज्य में सम्मानित होना

विजय के जिस कार्य को गेरीबाल्डी अकेला करता आया था उसे विक्टर इमानुअल ने पूरा किया। मार्श, उम्ब्रिया और नेपिल्स राज्य की जनता ने भारी बहुमत से इटली के राज्य में, जिसकी इस आश्चर्यजनक ढँग से रचना हुई थी, सम्मिलित होने के पक्ष में वोट दिया।

इटली के राज्य की घोषणा

१८ फरवरी, १८६१ के दिन तूरिन में एक नई संसद का उद्घाटन हुआ जिसमें वेनीशिया और रोम को छोड़कर शेष सभी इटली के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। अब सार्डीनिया के राज्य का नाम बदल कर इटली का राज्य रख दिया गया और १ मार्च जो इस चीज की घोषणा कर दी गई। साथ ही साथ विक्टर इमानुअल द्वितीय को "ईश्वर की अनुकम्पा और राष्ट्र की इच्छा से इटली का राज" घोषित कर दिया गया।

इस प्रकार १८ महीने के भीतर दो करोड़ बीस लाख की जनसंख्या के एक नये राज्य का उदय हो गया था, और अब उसने यूरोप की शक्तियों के समकक्ष स्थान ग्रहण किया। किन्तु इटली का राज्य अभी तक अधूरा ही था, वेनीशिया पर अभी तक आस्ट्रिया का अधिकार था और रोम पर पोप का; इनको अधिकृत करने का काम स्थापित करना पड़ा।

कावूर की मृत्यु

किन्तु कावूर की भावना थी कि "विना रोम के इटली का कोई अस्तित्व नहीं है। वह एक ऐसी योजना वनाने में संलग्न था जिसके आधार पर पोप तथा सारे संसार के कैथोलिक रोम को नये राज्य की राजधानी स्वीकार करने पर राजी हो जाएँ, किन्तु इसी वीच में वह सहसा बीमार पड़ गया। अतिशय परिश्रम तथा जिन परिस्थितियों के अधीन वह कई महीने से कार्य करता आया था उनके भार के कारण उसे "अनिद्रा" का रोग हो गया। अंत में बुखार वन बैठा और ६ जून १८६१ के दिन प्रातः काल भरी जवानी में ही उसका देहावसान हो गया—उस समय उसकी आयु केवल ५१ वर्ष थी।

इंगलैंड की लोकसभा में चर्चा करते हुए लॉर्ड पामर्स्टन ने कहा, "कावूर एक ऐसा नाम छोड़ गया है जिससे हमें महत्त्वपूर्ण सबक मिलता है और जो इतिहास की एक कहानी की शोभा बढ़ाता है। सबक यह है कि यदि किसी व्यक्ति में अलौकिक प्रतिभा, दुर्दनीय कार्यक्षमता और कभी शांत न होने वाली देश-भक्ति की ज्वाला हो तो वह अजेय प्रतीत होने वाली कठिनाइयों पर भी विजय प्राप्त कर सकता है और अपने देश को बड़े से बड़ा और अधिक से अधिक मूल्यवान लाभ पहुँचा सकता है। और जिस कहानी के साथ उसकी स्मृति का सम्बन्ध है वह विश्व इतिहास की सबसे असाधारण और सबसे रोमांटिक कहानी है। जो जनता मरी हुई प्रतीत होती थी वह एक नई शक्ति और स्फूर्ति लेकर जीवित हो उठी। उसने उन बंधनों को तोड़ फेंका जो उसे जकड़े हुए थे और अपने को एक नये एवं गौरवशाली भाग्य का पात्र सिद्ध कर दिया।"

काबूर जीवन भर अपने इस आधारभूत राजनीतिक सिद्धान्त पर अटल रहा कि सरकार संसद के द्वारा और वैधानिक प्रणाली से चलाई जाय। अनेक वार उसने अधिनायकत्व ग्रहण करने को कहा गया पर उसने उत्तर दिया कि मुझे अधिनायकतंत्र में विश्वास नहीं है। वह कहा करता था कि, "मुझे सबसे अधिक शक्ति का अनुभव तब होता है जब कि संसद की बैठक चल रही होती है।" एक व्यक्तिगत पत्र में जो कि जनता के समकक्ष रखने के लिये नहीं लिखा गया था उसने लिखा, "मैं अपनी जन्मदात्री को धोखा नहीं दे सकता, अपने जीवन भर के सिद्धान्तों से विमुख नहीं हो सकता। मैं स्वतंत्रता का पुत्र हूँ, और जो कुछ हूँ उसी की कृपा से हूँ। यदि उसकी प्रतिमा पर आवरण डालना ही हो तो यह काम मेरे करने का नहीं है।"

अध्याय १९

जर्मनी का एकीकरण

१८४९ के बाद जर्मनी में प्रतिक्रिया

१८४८ और १८४९ में जर्मनी के उदारवादी तत्वों ने राष्ट्रीय एकता के लिये वड़ी लगन से प्रयत्न किया था, किन्तु प्रमुख राज्यों के शासकों ने **फ्रांकफर्ट की संसद** के कार्य को स्वीकार नहीं किया था और सब करे कराये पर पानी फेर दिया था। पुराना **परिसंघ** पुनः स्थापित हो गया था, और मई १८५१ में उसका सत्र फिरसे चलने लगा था। जर्मनी में प्रतिक्रिया का युग पुनः आरम्भ हो गया जो कि व्यापकता की दृष्टि से **वीना सम्मेलन** के बाद के युग से भी अधिक दूरगामी सिद्ध हुआ। दमन और उत्पीड़न के इस कार्य में आस्ट्रिया तथा प्रुशिया ने नेतृत्व किया।

प्रुशिया में संविधान की स्थापना

किन्तु उस उपद्रवग्रस्त वर्ष से एक लाभकारी कार्य अवश्य हो गया था। प्रुशिया के राजा ने अपनी जनता को एक संविधान प्रदान कर दिया था और एक संसद की रचना कर दी थी। पीडमोंट के राजा की भाँति उसने भी संविधान को रद्द करने से इन्कार कर दिया था, किन्तु पीडमोंट के राजा की भाँति उसका यह इरादा नहीं था कि संसद के निर्माण के परिणामस्वरूप राज्य में इंगलैंड के ढँग की संसदीय प्रणाली कायम हो जाय, अर्थात राज्य की प्रमुख सत्ता जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संसद के हाथ में चली जाय। पीडमोंट और प्रुशिया का सांविधानिक विकास साथ साथ प्रारम्भ हुआ, किन्तु दोनों एक दूसरे से नितांत भिन्न थे इटली को छोड़ कर जब हम जर्मनी में आते हैं तो अपने को भिन्न वातावरण में पाते हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं, पीडमोंट में संविधान को ईमानदारी और उत्साह के साथ कार्यान्वित किया गया और जनता की राजनीतिक शिक्षा के रूप में उसका उपयुक्त फल भी हुआ। कावूर का विश्वास था कि स्वेच्छाचारी राजा के निर्णय से संसद का स्वतंत्र वाद विवाद कहीं अधिक अच्छा पथप्रदर्शक सिद्ध होता है। स्वतंत्रता उसका आदर्श थी, और वह

उससे कभी विचलित नहीं हुआ, यद्यपि ऐसा करना उसके लिये प्रायः सुविधाजनक सिद्ध होता। इसके विपरीत प्रुशिया का राजा यह नहीं चाहता था कि कोई सभा उसकी शक्ति में साझीदार बने, अतः सभा का मंत्रि-परिषद् पर कोई नियंत्रण नहीं था।

प्रुशिया में संसदीय प्रणाली का अभाव

यद्यपि प्रुशिया में नाम के लिये संविधान कायम रहा, किन्तु मंत्रियों ने ऐसी चतुराई से काम लिया कि व्यवहार में उसे निष्फल बना दिया, हालांकि वे ऊपर से उसे बनाये रखने का बहाना करते रहे। प्रुशिया की सरकार १८४८ के बाद भी वैसी ही निरंकुश बनी रही जैसी कि पहले थी। पुरानी विशिष्ट ढंग की प्रतिक्रिया का सर्वत्र बोलबाला था। प्रेस स्वतंत्र नहीं था। सरकार का समर्थन करने वाले लोग ही केवल सार्वजनिक सभाएँ कर सकते थे। पुलिस सक्रिय और सिद्धान्तहीन थी।

विलियम प्रथम के सिंहासनारोहण के समय से प्रुशिया में भी परिवर्तन आरम्भ हुआ, किन्तु स्वतंत्र संस्थाओं और स्वतंत्र सार्वजनिक जीवन की दिशा में नहीं। अन्य क्षेत्रों में विलियम का शासन-काल निस्सन्देह अत्यधिक गौरवशाली सिद्ध हुआ।

विलियम १८६१ में प्रुशिया के सिंहासह पर बैठा। वह प्रसिद्ध रानी लुईसी का पुत्र था और १७९७ में उसका जन्म हुआ था। १८१४ में उसने नेपोलियन के विरुद्ध अभियान में भाग लिया। इस समय उसकी आयु ६४ वर्ष की थी। उसकी बुद्धि किसी भी दृष्टि से कुशाग्र नहीं थी, बल्कि उसकी विचारशक्ति, धीमी, ठोस और सही थी। उसका सम्पूर्ण जीवन सेना में बीता था, जिससे उसे उत्कट प्रेम था। सैनिक मामलों में उसके पूर्ण ज्ञान और योग्यता को सभी स्वीकार करते थे। उसका विश्वास था कि प्रुशिया का भाग्य उसका सेना पर निर्भर है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह सेना को आवश्यक समझता और कहा करता था कि वही प्रुशिया को जर्मनों की प्रमुखता प्रदान कर सकती है। १८४९ में उसने एक बार लिखा था, "जो जर्मनी का शासक बनना चाहता है वह उसे जीत कर ही बन सकता है, और यह काम केवल बातों से पूरा नहीं हो सकता।"

विलियम प्रथम (१७९७-१८८८)

विलियम का विश्वास था कि प्रुशिया की सेना को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। सेना की संख्या को दूना करने की उसने एक योजना प्रस्तुत की और संसद से उसके लिये आवश्यक धन के अनुदान की माँग की, किन्तु संसद ने उसकी माँग स्वीकार नहीं की। फलतः राजा और **प्रतिनिधि सदन** के बीच, एक लम्बा विवाद छिड़ गया और जैसे-जैसे संघर्ष बढ़ता गया वैसे ही दोनों पक्षों का रुख कड़ा होता गया। राजा दृढ़संकल्प था और अपनी माँगों को तृण भर भी कम करने को तैयार न था; दूसरी ओर सदन राजकीय कोष पर अपना नियंत्रण रखने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ था, क्योंकि उसका कहना था कि जो भी संसद राज्य में अपना

सैन्य सुधार

महत्त्व बनाये रखना चाहती है उसके लिये वित्तीय शक्ति को अपने हाथ में रखना अनिवार्य है। परिणामस्वरूप एक अड़ंगा खड़ा हो गया।

सदन द्वारा विरोध

राजा से संसद को पूर्णतया समाप्त कर देने को कहा गया। इसके लिये वह राजी नहीं हुआ, क्योंकि उसने संविधान को, जिसके द्वारा संसद की स्थापना हुई थी, कायम रखने की शपथ ली थी। उसने सिंहासन छोड़ने का निश्चय किया; सुधार की योजना को त्यागने का विचार उसके मन में कभी नहीं आया। उसने अपना त्यागपत्र लिख लिया और हस्ताक्षर करके अपनी मेज पर रख दिया, किन्तु उसी समय उसको अंतिम प्रयास के रूप में औटोफोन विस्मार्क नाम के एक नये व्यक्ति को, जो कि अपनी निर्भीकता, स्वतंत्रता और राजभक्ति के लिये प्रसिद्ध था, मंत्रिमंडल में सम्मलित करने की सलाह दी गई। २३ सितम्बर, १८६२ के दिन विस्मार्क को मंत्रि-परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया; उसी दिन सदन ने राजा द्वारा नये सैन्य दलों के लिये प्रस्तावित माँगों को नये सिरे से पुनः अस्वीकृत कर दिया। इस प्रकार संघर्ष का अत्यधिक गम्भीर दौर प्रारम्भ हुआ, जिसने प्रुशिया तथा विश्व दोनों के लिये एक नये युग का सूत्रपात किया। अपनी इस मुलाकात में विस्मार्क ने राजा से स्पष्ट कह दिया कि "मैं आपकी नीति को कार्यान्वित करने को तैयार हूँ, इसके लिए संसद तैयार हो अथवा न हो। मैं आपके साथ साथ नष्ट हो जाना पसंद करूँगा, किंतु संसदीय सरकार के विरुद्ध इस संघर्प में श्रीमान् का साथ कभी नहीं छोड़ूँगा।" उसकी निर्भीकता से प्रभावित होकर राजा ने त्यागपत्र को फाड़ कर फेंक दिया और **प्रतिनिधि सदन** के विरुद्ध संघर्प जारी रखने का संकल्प कर लिया।

औटो फोन बिस्मार्क शोन-हाउजेन (१८१५-१८९८)

जिस व्यक्ति ने अब यूरोपीय राजनीति के मंच पर प्रवेश किया वह एक सर्वाधिक अद्भुत और मौलिक नायक था। उसका जन्म १८१५ में ब्रांडेनबुर्ग के एक अभिजात परिवार में हुआ था, आभिजात्य उसकी नस-नस में भरा हुआ था। विश्वविद्यालय में शिक्षा पाकर उसने प्रुशिया की असैनिक सेवा में प्रवेश किया, किन्तु उसकी नीरसता से ऊब कर शीघ्र ही छोड़ दिया। अब वह अपने पिता की जागीर में जाकर बस गया। १८५० में राजा ने जब प्रुशिया को संविधान प्रदान किया तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ। इस विषय में उसका दृष्टिकोण इटली के कावूर से बिल्कुल भिन्न था। कावूर इंगलैंड को आदर्श मानता और अपने देश को उसी नमूने पर ढालना चाहता था; इसके विपरीत बिस्मार्क कहा करता था कि, "इंगलैंड का दृष्टांत हमारे लिये दुर्भाग्यपूर्ण है।"

विस्मार्क का इससे पहले का जीवन

विस्मार्क के राजनीतिक विचार

प्रुशिया के राजतन्त्र में अगाध विश्वास ही बिस्मार्क के राजनीतिक विचारों का आधार था। प्रुशिया को उसके राजाओं ने महान् बनाया था, न कि उसकी जनता ने। इस महान् ऐतिहासिक तथ्य को सुरक्षित रखना बिस्मार्क का उद्देश्य था। प्रुशिया के राजाओं ने जो कुछ पहले किया था उसे वे अब भी कर सकते थे। राजा की शक्ति को कम करना राज्य के लिये बहुत घातक होगा। १८४८ में जर्मनी की एकता के लिये

जो प्रयत्न किये गये थे उनका बिस्मार्क कट्टर शत्रु था, क्योंकि उसका विचार था कि जर्मनी के भाग्य और संस्थाओं का निर्माण उसके राजा कर सकते हैं न कि जनता। जिस प्रकार उसे संसदों और संविधानों से घृणा थी, वैसे ही वह लोकतन्त्र के आदर्शों से घृणा करता था। उसका कहना था कि, "मेरा विचार है कि प्रुशिया के सम्मान के लिये अन्य सभी चीजों से अधिक आवश्यक लोकतन्त्र से बचना है, लोकतन्त्र के साथ सम्पर्क वास्तव में लज्जास्पद है।" १८५१ में बिस्मार्क **फ्रांकफर्ट की संसद** के लिये प्रुशिया की ओर से प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। वहाँ आठ वर्ष तक उसने राजनय की कला का अध्ययन और अभ्यास किया, जिसमें कि उसने आगे चलकर महान् सफलतायें प्राप्त कीं। उसने जर्मनी के सभी महत्त्वशाली राजनीतिज्ञों और राजनीतिकों से सम्पर्क कायम किया और उनके चरित्र तथा महत्त्वाकांक्षाओं को समझने की चेष्टा की। भावनाओं की दृष्टि से वह आस्ट्रिया का कट्टर विरोधी बन गया। १८५३ में उसने अपनी सरकार से कहा कि जर्मनी में प्रुशिया और आस्ट्रिया दोनों के लिये स्थान नहीं है, उनमें से किसी एक को अवश्य झुकना पड़ेगा। उसके रवैये और शब्दों से आस्ट्रिया दिन पर दिन चिढ़ता गया। राजा विलियम आस्ट्रिया के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने का इच्छुक था, अतः १८५९ में उसने बिस्मार्क को सेंटपीटर्सबर्ग में अपना राजदूत नियुक्त किया, अथवा जैसा कि बिस्मार्क ने इसे समझा, उसे "नीवा के किनारे ठंडा होने के लिये भेज दिया।" बाद में वह थोड़े समय के लिये फ्रांस में भी राजदूत बन कर रहा।

उसे लोकतन्त्र से घृणा

ऐसा था वह व्यक्ति जिसने १८६२ में, ४७ वर्ष की अवस्था में उस समय प्रुशिया के मन्त्रि-परिषद् की अध्यक्षता स्वीकार की जबकि राजा और संसद दोनों एक दूसरे के विरुद्ध कटु विवाद में उलझे हुए थे और जबकि अन्य कोई राजनीतिक नेतृत्व अंगीकार करने को तैयार न था। ४ वर्ष, १८६२ से १८६६ तक, संघर्ष चलता रहा। संविधान रद्द नहीं किया गया, संसद बार-बार बुलाई गई. **निम्न सदन** ने वर्ष प्रति वर्ष बजट के विरुद्ध वोट दिया, किन्तु उच्च सदन उसके पक्ष में वोट देता रहा और राजा इसी को वैध मान कर कार्य करता रहा। वास्तव में यह काल अधिनाकत्व का था, इसमें संसदीय जीवन पूर्णतया स्थगित रहा। राजा कर वसूल करता रहा; सेना को पूर्णरूपेण पुनः संगठित किया गया और उस पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण रहा। **निम्न सदन** के पास मौखिक आलोचना के अतिरिक्त विरोध का और कोई तरीका न था, किन्तु मौखिक आलोचना नितांत प्रभावहीन सिद्ध हुई।

संघर्ष का काल

इस पर सरकार ने सेना में वृद्धि करली। किन्तु सेना तो एक साधनमात्र होती है। बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य तो प्रुशिया के द्वारा और प्रुशिया के लाभ के लिये जर्मनी की एकता स्थापित करना था। बिस्मार्क नहीं चाहता था कि जिस प्रकार पीडमोंट इटली में विलीन हो गया था और अपना पृथक् अस्तित्व पूर्णतया खो बैठा था, वैसे ही प्रुशिया अपने अस्तित्व को जर्मनी में विलीन कर दे। इसके अतिरिक्त बिस्मार्क की राय में युद्ध द्वारा ही एकता प्राप्त की जा सकती थी।

सैन्य सुधार की योजना का पूरा होना

जर्मनी के **उदारवादियों** का कहना था कि प्रुशिया भी उदार तथा स्वतन्त्र

संसदीय शासन प्रणाली द्वारा महान् बन सकता है; उसे भी पीडमोंट की तरह से जर्मनी की जनता के समक्ष प्रगतिशीलता का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये, जिससे कि अन्य राज्यों के जर्मन अपनी सरकारों से विमुख होकर प्रशिया के झण्डे के नीचे एकत्रित होने लगें। बिस्मार्क ने संसद में इस सिद्धान्त का निर्भीकता से खण्डन किया। १८६३ में एक भाषण में, जो कि उसके जीवन का सर्वाधिक प्रसिद्ध भाषण सिद्ध हुआ, उसने कहा कि जर्मन लोग प्रशिया के उदारवाद के भूखे नहीं हैं, बल्कि वे उसे शक्तिशाली बनाने के इच्छुक हैं। प्रशिया को चाहिये कि अपनी सेनाओं को केन्द्रित करे और अनुकूल अवसर के लिये तैयार रहे। "किसी भी काल की महान् समस्याओं का निर्णय भाषणों और बहुमत से नहीं, बल्कि रक्त और तलवार से होता है। १८४८ और ४९ की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उस समय लोगों ने भाषणों और वोटों का भरोसा किया"। इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि प्रशिया के भविष्य का निर्णय सेना करेगी, न कि संसद।

"रक्त तथा तलवार" की नीति

उदारवादियों ने "रक्त और तलवार" की इस नीति की कटु आलोचना की, किन्तु बिस्मार्क ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया और शीघ्र ही उसे अपनी नीति को क्रियान्वित करने का अवसर मिल गया।

प्रशिया के तीन युद्ध

जर्मन साम्राज्य रक्त और तलवार की इस नीति का ही परिणाम था। प्रशिया ने ६ वर्ष के अल्प काल में तीन युद्ध लड़ कर इस नीति को व्यावहारिक रूप दिया, १८६४ में डेनमार्क से युद्ध १८६६ में आस्ट्रिया से, और १८७० में फ्रांस से। इनमें से अन्तिम दो युद्ध बिस्मार्क की इच्छा और राजनयिक चतुराई एवं सिद्धान्त-हीनता के परिणाम थे, इनमें से पहले का उसने बड़ी कुशलता के साथ प्रशिया के लाभ के लिये प्रयोग किया।

श्लैशविग और होल्स्टाइन का प्रश्न

इनमें से पहला युद्ध इतिहास की एक सर्वाधिक पेचीदा और राजनयिकों एवं राजनीतिज्ञों के लिए सिरदर्द बनने वाली समस्या से उत्पन्न हुआ था। यह थी श्लैशविग और होल्स्टाइन के भविष्य की समस्या। ये दोनों ठिकाने डेनमार्क के प्रायद्वीप में, जो कि उत्तरी जर्मनी के मैदान का ही एक प्रसार है, स्थित थे। होल्स्टाइन के निवासियों की संख्या ६००,००० थी, और वे सभी जर्मन जाति के थे। श्लैशविग में ढाई-तीन लाख जर्मन और डेढ़ लाख डेन बसते थे। इन दोनों ठिकानों का शताब्दियों से डेनमार्क के साथ संयोग चला आया था, किन्तु वे डेनमार्क के राज्य के अभिन्न अङ्ग नहीं बन पाये थे। डेनमार्क के साथ उनका सम्बन्ध वैयक्तिक था, क्योंकि श्लैशविग और होल्स्टाइन का एक ड्यूक, डेनमार्क का राजा बन गया था जिस प्रकार कि हनोवर का निर्वाचक (इलेक्टर ऑव हनोवर) इंगलैंड का राजा बन गया था। होल्स्टाइन जर्मन परिसंघ का सदस्य था, श्लैशविग नहीं था। श्लेशविग के जर्मन लोग परिसंघ में सम्मिलित होना चाहते थे, पर डेन लोग इसके विरुद्ध थे और १८६३ में उन्होंने श्लैशविग को डेनमार्क में सम्मिलित घोषित कर दिया।

इस समस्या में कुछ अन्य उलझने भी थीं, जिनकी व्याख्या करना यहाँ

आवश्यक नहीं है क्योंकि श्लैशविग और होल्स्टाइन के प्रश्न को केवल समस्या के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर और डेनमार्क तथा जर्मनी की जनता के इच्छानुसार नहीं सुलझाया गया।

प्रशिया और आस्ट्रिया का डेनमार्क से युद्ध

बिस्मार्क ने देखा कि इस स्थिति से प्रशिया के राज्यक्षेत्र का विस्तार करने और आस्ट्रिया से झगड़ा मोल लेने का अच्छा अवसर मिल गया है,—अपने देश की शक्ति और यश की वृद्धि के लिऐ वह इन दोनों ही चीजों का इच्छुक था। उसने आस्ट्रिया को श्लैशविग-होल्स्टाइन के प्रश्न को हल करने में प्रशिया से सहयोग करने को फुसलाया। दोनों शक्तियों ने डेनमार्क को अपनी माँगें मनवाने के लिये ४८ घंटे का अल्टीमेटम दे दिया। डेनमार्क ने उनकी माँगों को पूरा नहीं किया, और प्रशिया तथा आस्ट्रिया ने तत्काल युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध में एक ओर एक छोटा-सा राज्य और दूसरी ओर दो बड़े राज्य थे, अतः उसके परिणाम के विषय में कोई सन्देह नहीं हो सकता था। फरवरी, १८६४ में प्रशिया और आस्ट्रिया की ६०,००० संयुक्त सेना ने डेनमार्क पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि युद्ध में उन्होंने विशेष प्रतिभा का परिचय नहीं दिया, फिर भी उन्हें सरलता से विजय प्राप्त हो गई और डेनमार्क ने विवश होकर दोनों ठिकाने इन दोनों को संयुक्त रूप से अर्पित कर दिये (अक्टूबर १८६४)। अब उनके ऊपर था कि वे जैसा चाहते उनके सम्बन्ध में निर्णय कर सकते थे।

किन्तु वे दोनों एकमत न हो सके। आस्ट्रिया की इच्छा थी कि इन दोनों ठिकानों को एक अतिरिक्त राज्य के रूप में जर्मन परिसंघ में सम्मलित कर दिया जाय, और जर्मनी की जनता भी भारी बहुमत से इस व्यवस्था के पक्ष में थी।

आस्ट्रिया तथा प्रशिया के बीच झगड़ा

किन्तु बिस्मार्क के विचार इससे भिन्न थे, उसे एक अन्य जर्मन राज्य स्थापित करने की चिन्ता नहीं थी। वैसे ही जर्मनी में आवश्यकता से अधिक राज्य थे, और यह नया राज्य प्रशिया का एक नया शत्रु और आस्ट्रिया का मित्र सिद्ध होगा। बिस्मार्क वास्तव में इन ठिकानों को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से प्रशिया में सम्मलित करने का इच्छुक था। वैसे तो वह प्रशिया के राज्यक्षेत्र का विस्तार करने के लिए सामान्त तौर पर उत्सुक था, किन्तु, इन ठिकानों को हड़पने से विशेष लाभ की आशा थी, क्योंकि इससे प्रशिया का समुद्रतट अधिक लम्बा हो जायगा, अनेक बढ़िया बन्दरगाह विशेषकर कील उसके अधिकार में आ जाएँगे और प्रशिया के व्यापार एवं वाणिज्य का प्रसार होगा।

इस प्रकार लूट के माल के बँटवारे के सम्बन्ध में दोनों शक्तियों में मतभेद था, परिस्थिति पूर्णतया बिस्मार्क के अनुकूल थी। इस स्थिति का वह आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करने के लिए प्रयोग करना चाहता था। उसका विचार था कि आस्ट्रिया से लड़ाई लड़कर ही प्रशिया अपने लाभ के लिए जर्मनी की एकता स्थापित कर सकता है। अतः दस वर्ष से वह युद्ध की फिराक में था। उसका विश्वास था कि जर्मनी में दोनों शक्तियों के लिये पर्याप्त स्थान नहीं है। ऐसी स्थिति में वह प्रशिया के लिए स्थान चाहता था। उसको प्राप्त करने का एक ही तरीका था, अर्थात् बलपूर्वक उसे हस्तगत कर लेना। चूँकि आस्ट्रिया स्वेच्छा से झुकने के लिये तैयार न था, अतः युद्ध अनिवार्य हो गया। दोनों पक्ष अपने को अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करने लगे।

अन्त में जून, १८६६ में युद्ध छिड़ गया। बिस्मार्क जर्मनी की प्रमुखता के प्रश्न को हल करने के लिए एक ही नस्ल की इन दो जातियों के बीच संघर्ष खड़ा करने का स्वप्न देखा करता था। उसका वह स्वप्न अब पूरा हो गया। यह इतिहास की एक सबसे संक्षिप्त और सर्वाधिक निर्णायक लड़ाई सिद्ध हुई, और इसके परिणाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण हुए। इतिहास में यह सप्त साप्ताहिक युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रारम्भ १६ जून, १८६६ को हुआ और ३ जुलाई को लगभग उसका निर्णय हो गया। २६ जुलाई को निकोल्सबुर्ग की प्रारम्भिक संधि हो गई और एक महीने उपरान्त २३ अगस्त को प्राग की निश्चित और स्थाई संधि पर हस्ताक्षर कर दिये गये। युद्ध में जर्मनो के किसी भी महत्त्वशाली राज्य ने प्रशिया का साथ नहीं दिया था। उत्तर जर्मनी के अनेक राज्य उसके साथ थे, किन्तु वे छोटे थे और उनकी सेनायें महत्त्वहीन थीं। इसके विपरीत आस्ट्रिया के पक्ष में बवारिया, वूर्टेम्बुर्ग, सेक्सनी, और हनोवर चार बड़े राज्य थे। इनके अतिरिक्त हेसे कासेल हेसे-डार्मस्टाट, नासाउ, और बाडेन ने भी उसका साथ दिया। किन्तु प्रशिया का एक महत्त्वशाली मित्र इटली था, जिसकी सहायता के बिना उसकी विजय कदाचित असम्भव हो जाती। शर्त यह ठहरी थी कि यदि आस्ट्रिया हार गया तो इटली को वेनीशिया मिल जायगा। प्रशिया की सेना की तैयारियाँ आस्ट्रिया के मुकाबले में कहीं अच्छी थीं। प्रशिया के शासक अनेक वर्षों से युद्ध की तैयारी कर रहे थे, उन्होंने सेना के संगठन और साज-सज्जा को ब्यौरे की छोटी से छोटी चीजों तक में वैज्ञानिक कुशलता के साथ पूर्ण कर दिया था और जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तो वह पूरी तरह से तैयार थी। इसके अतिरिक्त उसका संचालन जनरल फोन मोल्टके नामक एक अत्याधिक योग्य नेता के हाथों में था।

आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध १८६६

प्रशिया के अनेक शत्रु थे। चूँकि वह पूर्णरूप से तैयार था और उसके शत्रु तैयार नहीं थे, इसलिये वह पहले आक्रमण कर सका और यही उसकी प्रारम्भिक विजयों का मुख्य कारण था। लड़ाई १६ जून को प्रारम्भ हुई। तीन दिन के भीतर प्रशिया की सेनाओं ने उत्तरी जर्मनी के तीन शत्रु राज्यों की राजधानियों हनोवर, ड्रेसडेन और कासेल पर अधिकार कर लिया। कुछ दिन पश्चात् हेनोवर की सेना ने विवश होकर हथियार डाल दिये। हनोवर का राजा और हेसे का निर्वाचक युद्ध बन्दी बना लिये गये। सम्पूर्ण उत्तरी जर्मनी पर प्रशिया का आधिपत्य कायम हो गया और अब वह मोल्टके की बोहेमिया पर आक्रमण करने की योजना को व्यवहार में लाने के लिये तैयार था। अभियान के वेग और तीव्रता ने यूरोप को विस्मय में डाल दिया। मोल्टके ने तीन भिन्न मार्गों से तीन सेनायें बोहेमिया में भेजीं और ३ जुलाई, १८६६ को इतिहास का एक प्रसिद्ध और महान् युद्ध हुआ जो कोनिगग्राटत्स अथवा सॅडोवा के युद्ध के नाम से विख्यात है। प्रत्येक सेना की संख्या दो लाख से ऊपर थी। प्रारम्भ में तो नहीं, किन्तु बाद में प्रशिया की सेना आस्ट्रिया के मुकाबले में कुछ अधिक थी। लाइप्सिक (१८१३) के युद्ध के बाद अन्य किसी एक लड़ाई में इतने सैनिकों ने भाग नहीं लिया था। राजा विलियम, बिस्मार्क और मोल्टके ने एक

प्रशिया द्वारा उत्तरी जर्मनी की विजय

कोनिगग्राट्त्स अथवा सॅडोवा का युद्ध

पहाड़ी पर चढ़कर युद्ध के दृश्य को देखा। संघर्ष देर तक चला और अन्त तक परिणाम अनिश्चित-सा रहा। लड़ाई प्रातःकाल आरम्भ हुई और कई घंटे तक चलती रही। दोनों ही पक्ष के सैनिकों ने भयंकर आवेश व क्रोध से संग्राम किया। आस्ट्रिया के तोपखाने के मुकाबले में प्रुशिया की सेना आगे बढ़ने में विफल रही। दो बजे तक ऐसा प्रतीत होता रहा कि आस्ट्रिया की जीत होगी, किन्तु अब तक प्रुशिया का राजकुमार अपनी सेना लेकर आ पहुँचा और पाँसा पलट गया। साढ़े तीन बजे आस्ट्रियाई सेना पराजित हुई और पीछे लौटना आरम्भ कर दिया। उसे ४० हजार से भी अधिक सैनिकों की क्षति उठानी पड़ी जबकि प्रुशिया की लगभग १०,००० की हानि हुई। अगले तीन सप्ताह के भीतर प्रुशिया सेना वीना के सन्निकट जा पहुँची, जहाँ से नगर की मीनारें दिखाई देती थीं।

२४ जून को आस्ट्रिया ने कुस्तोत्सा के युद्ध में इटली की सेना को परास्त किया। फिर भी प्रुशिया के लिए इटली की सहायता महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। वह आस्ट्रिया की ८०,००० सेना को रोके रहा। यदि वे सैनिक कहीं कोनिगग्राट्त्स में पहुँच जाते तो सम्भवतः मैदान आस्ट्रिया के ही हाथ रहता। २० जुलाई को आस्ट्रिया ने इटली के नाविक बेड़े को भी परास्त किया।

आस्ट्रिया-प्रुशिया के युद्ध के परिणाम

सप्त साप्ताहिक युद्ध के परिणाम महत्त्वपूर्ण हुए। बिस्मार्क को यूरोप और विशेषकर फ्रांस के हस्तक्षेप का डर था। प्रुशिया की जीत फ्रांस के लिये खतरनाक थी, अतः सम्भव था कि फ्रांसीसी सम्राट् इस विजय को निष्फल बनाने का प्रयत्न करता। इसलिये बिस्मार्क आस्ट्रिया से शीघ्र ही संधि करने का इच्छुक था। उसने शत्रु के समक्ष बहुत ही उदार शर्तें रखीं। वह इटली को वेनीशिया दे दे, इसके अतिरिक्त उसे अपनी कोई भूमि नहीं छोड़नी पड़ेगी। उसे **जर्मन परिसंघ** से, जिसका कि वास्तव में अस्तित्व समाप्त हो गया था, हटना पड़ेगा। उसे इस बात के लिये भी राजी होना पड़ेगा कि प्रुशिया मैन नदी के उत्तर में स्थित राज्यों का एक संघ बना ले और उसका नेतृत्व अपने हाथ में ले ले। **दक्षिणी जर्मनी** के राज्य स्वतन्त्र छोड़ दिये जायेंगे और उन्हें अपने इच्छानुसार आचरण करने की छूट होगी। इस प्रकार मैन के उत्तर में स्थित अपने राज्यों का एकीकरण सम्पादित हो सकेगा।

प्रुशिया में राज्यों का सम्मिलित किया जाना

इस कार्य को पूरा करके प्रुशिया ने अपने राज्य-क्षेत्र का विस्तार करने का कार्य प्रारम्भ किया। हनोवर का राज्य, नासाउ और हेसे कासेल के ठिकाने, फ्रांकफर्ट का स्वतन्त्र नगर, तथा श्लैशविग और होल्स्टाइन के ठिकाने प्रुशिया के राज्य में सम्मिलित कर लिये गये। इस प्रकार उसकी जनसंख्या में ४५ लाख की वृद्धि हो गई और वह कुल मिलाकर २ करोड़ ४० लाख हो गई। इस बात का तो किसी के मन में विचार ही नहीं आया कि इन राज्यों की जनता को प्रुशिया में सम्मिलित होने के प्रश्न पर मत प्रकट करने का अधिकार दिया जाय, जैसा कि इटली, सेवोय तथा नीस में किया गया था। उन्हें तो विजय के अधिकार से सीधा सम्मिलित कर लिया गया। प्रुशिया की सरकार के आदेश से पुराने राजवंशों का शासन समाप्त कर दिया गया। यूरोप के राष्ट्रों की यह बड़ी अदूरदर्शिता थी कि

उन्होंने इन परिवर्तनों को इतनी तेजी से पूर्ण होने दिया। इनसे महाद्वीप का शक्ति-संतुलन समाप्त हो गया और मानचित्र बहुत कुछ बदल गया। इस भूल के लिये फ्रांस को विशिष्ट रूप से घोर पश्चाताप करना पड़ा। जार ने कहा—"राजवंशों का इस प्रकार अपदस्थ किया जाना मुझे पसन्द नहीं है", किन्तु इसको रोकने के लिये उसने कोई व्यावहारिक कदम नहीं उठाया।

अब जिस **उत्तरी जर्मन परिसंघ** की रचना हुई उसमें मैन नदी के उत्तर में स्थित जर्मनी का सम्पूर्ण भाग सम्मलित था। उसमें कुल मिला कर २२ राज्य थे। इसका संविधान बिस्मार्क ने बनाया। प्रुशिया का राजा **परिसंघ** का अध्यक्ष होगा। एक **संघीय परिषद्** (बुंडेसराट) होगी। उसमें विभिन्न राजाओं द्वारा नामनिर्देशित प्रतिनिधि सम्मलित होंगे, जिन्हें राजा लोग अपनी इच्छानुसार वापस बुला सकेंगे और जो उनके आदेशानुसार ही वोट देंगे। प्रुशिया के हाथ में सदैव ४३ में से १७ वोट रहेंगे। बहुमत के लिये उसे थोड़े से वोटों की और आवश्यकता होगी, जिन्हें प्राप्त करना उसके लिये सरल था।

उत्तरी जर्मन परिसंघ
(१८६७-१८७१)

राइखटाग नाम का एक अन्य सदन होगा, जिसका चुनाव जनता करेगी। यह वास्तव में बिस्मार्क की उदारवादियों के प्रति एक रियायत थी। दोनों सदनों में **राइखटाग** का महत्त्व कम था। जनता को शासन-व्यवस्था में स्थान तो दिया गया, किन्तु निम्न कोटि का।

१ जुलाई, १८६७ को नया संविधान लागू हो गया। इस **उत्तरी जर्मन परिसंघ** का अस्तित्व लगभग ४ वर्ष रहा। १८७० में जब **फ्रांस प्रुशिया युद्ध** के परिणामस्वरूप **जर्मन साम्राज्य** की स्थापना हुई तो वह उसी में विलीन हो गया।

अध्याय २०

द्वितीय साम्राज्य तथा फ्रांस-प्रुशिया युद्ध

१८६६ का वर्ष प्रुशिया, आस्ट्रिया, फ्रांस तथा आधुनिक यूरोप के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है। उसने ऐतिहासिक शक्ति-संतुलन में महान् परिवर्तन कर दिया। अब तक यूरोप की बड़ी शक्तियों में प्रुशिया का

१८६६ का वर्ष आधुनिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण मोड़

सबसे कम महत्व था; किन्तु युद्ध इतना निर्णायिक सिद्ध हुआ और उनके परिणाम इतने गम्भीर हुए कि उसकी शक्ति को देखकर यूरोप स्तब्ध रह गया। उसके पास एक आश्चर्यजनक सेना और एक अद्भुत् राजनीतिज्ञ था। यह तो पूर्णतया सिद्ध नहीं हुआ था कि ये दोनों यूरोप में सर्वाधिक शक्तिशाली थे, किन्तु उस समय लोगों की सामान्यता यही धारणा थी। अब मध्ययूरोपीय राजनीति का केन्द्र वीना से हट कर बर्लिन पहुँच गया। नेपोलियन तृतीय की प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। उसने परिस्थिति को पूर्णतया गलत समझा था और गलत तथा दुर्बल नीति अपनाई थी, जबकि अवसर ऐसा था कि वह अपने देश के लिये अत्यधिक लाभदायक नीति का अनुसरण कर सकता था। बल्कि उसने आस्ट्रिया और प्रुशिया के युद्ध का स्वागत किया था। उसका विचार था कि लड़ाई लम्बी चलेगी और अन्त में दोनों पक्ष थक कर चकनाचूर हो जाएँगे। तब उचित अवसर पर मैं हस्तक्षेप करूँगा और प्रतिद्वन्द्वियों की कठिनाइयों से लाभ उठा कर फ्रांस के लिये कुछ खसोट लूँगा, हो सकता है राइन का पश्चिमी किनारा हाथ लग जाय जिसे प्रुशिया सहायता के बदले में छोड़ने को तैयार हो जाय। उसका विश्वास था कि सैनिक दृष्टि से प्रुशिया ने मुकाबले में आस्ट्रिया कहीं अधिक शक्तिशाली है; और यही विश्वास उसके उक्त गुनताड़े का आधार था। लड़ाई आरम्भ हो गई, किन्तु उसकी आशा के विपरीत तेज और संक्षिप्त सिद्ध हुई। जीत प्रुशिया की हुई, आस्ट्रिया की नहीं। ३ जुलाई, १८६६ का सैडोवा का युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ।

नेपोलियन अवसर का लाभ उठाने में असफल

किन्तु हस्तक्षेप करने के लिये उस समय भी अधिक विलम्ब नहीं हुआ था। यदि नेपोलियन आस्ट्रिया की सहायता करने की धमकी देता, जैसा कि आस्ट्रिया चाहता

था, तो वह संधि की शर्तों को निश्चित करने में प्रमुख भूमिका अदा कर सकता था। यदि वह प्रुशिया द्वारा हस्तगत क्षेत्रों को बिना कुछ मुआवजा लिये मान्यता देने से इन्कार कर देता तो उसे फ्रांस के लिये महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त हो जाते, किन्तु उसकी नीति दुर्बल और ढिलमिल थी। फ्रांस के लिये तो उसने कुछ नहीं किया, किन्तु इस बात पर आग्रह करके कि नये परिसंघ का मैन नदी के दक्षिण में विस्तार नहीं होगा उसने प्रुशिया को व्यर्थ ही चिढ़ा दिया।

मेक्सिको पर चढ़ाई

इसी समय नेपोलियन ने एक अन्य भारी भूल की, मेक्सिको के प्रति उसने जो नीति अपनाई वह नितांत आवश्यक, दूस्साहसपूर्ण और घातक सिद्ध हुई। फ्रांस, इंगलैंड और स्पेन के नागरिकों ने मेक्सिको को धन उधार दे रखा था जिसका ब्याज अब मेक्सिको ने चुकाने से इन्कार कर दिया था। अतः इन देशों ने हस्तक्षेप किया और इस प्रकार इस दुर्भाग्यपूर्ण कार्य का आरम्भ हुआ। ये देश चाहते थे कि मेक्सिको ने संधियों के अन्तर्गत जो आर्थिक अधिबन्धन स्वीकार कर लिये थे उन्हें वह पूरा करे। इसके लिये उसे बाध्य करने के लिये उन्होंने दिसम्बर, १८६१ में उस पर मिल कर चढ़ाई करदी। अप्रैल, १८६२ तक स्पेन और इंगलैंड को स्पष्ट हो गया कि नेपोलियन का उद्देश्य मैत्री संधि में उल्लिखित उद्देश्यों से बिलकुल भिन्न है। वास्तव में वह मेक्सिको के गणतन्त्र को समाप्त करके उस देश में किसी यूरोपीय राजकुमार की अधीनता में राजतन्त्र की स्थापना करना चाहता था। इंगलैंड और स्पेन इस योजना का समर्थन करने के लिये तैयार न थे। अत; १८६२ में उन्होंने अपनी-अपनी सेनाओं को वापस बुला लिया। अब अभियान केवल फ्रांसीसियों तक सीमित रह गया। मेक्सिको की वित्तीय ईमानदारी का प्रश्न तो अब महत्त्वहीन हो गया और एक आक्रामक लड़ाई आरम्भ हो गई, जिसका कोई उचित बहाना नहीं था। किन्तु अन्त में इस युद्ध से मेक्सिको से भी कहीं अधिक हानि उसके रचियता नेपोलियन को हुई। द्वितीय साम्राज्य की प्रतिष्ठा को उससे भारी धक्का लगा। उसका धन अनापशनाप खर्च हुआ और अन्त में उसी से उसके विनाश का मार्ग प्रशस्त हुआ।

नेपोलियन के उद्देश्य

नेपोलियन विचारवान तथा कल्पनाशील व्यक्ति था, किन्तु, दुर्भाग्य से उसके विचार प्रायः विशद होने पर भी अस्पष्ट और उसकी कल्पना खोखली तथा भ्रमोत्पादक होती। वह नई दुनियाँ में अपने संरक्षण में एक लेटिन साम्राज्य का निर्माण करना चाहता था, जोकि आंग्ल-सेक्सन जाति के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिये लेटिन जाति के एक बाँध और रक्षा-चौकी का काम दे सकता। इससे उसके राष्ट्रीयता के प्रिय सिद्धान्त की नई विजय होगी, फ्रांस और स्पेन के उपनिवेश अधिक सुरक्षित रहेंगे, फ्रांस के व्यापार के लिये नये क्षेत्र खुल जायेंगे और फ्रांस के उद्योगों के लिये कच्चा माल सरलता से उपलब्ध हो सकेगा। और नेपोलियन के शब्दों में, "हम मध्य अमेरिका में अपना लाभकारी प्रभाव स्थापित कर सकेंगे।"

नेपोलियन द्वारा मेक्सिको गणतन्त्र के उन्मूलन

मेक्सिको गणराज्य था, किन्तु वहाँ एक ऐसा गुट था जो उसे उखाड़ फेंकना चाहता था। इस गुट के लोगों ने फ्राँसीसियों की प्रेरणा से तथा उन्हीं के निर्देशन में एक सभा की और आज्ञप्ति जारी की कि अबसे मेक्सिको एक साम्राज्य होगा, और साम्राज्यीय मुकुट आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस जोज़फ के भाई आर्च ड्यूक मेक्सीमिलयन को

अर्पित कर दिया जाय। इस सभा में ३५०,००० लोगों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे, जबकि कुल जनसंख्या ७,०००,००० थी। सभा की यह भेंट पाने वाले के लिये घातक सिद्ध हुई। ३१ वर्ष के इस तरुण राजकुमार की चाल-ढाल आकर्षक और विचार उदार थे। तरुण, सुन्दर बहुमुखी प्रतिभावान, अर्द्ध कवि अर्द्ध वैज्ञानिक, यह राजकुमार एड्रियाटिक के तट पर स्थित मिरमार नामक एक भव्य प्रासाद में अपने कलाकृतियों के संग्रह के बीच आनन्द का जीवन बिताता और समुद्र, जिसके लिये उसके हृदय में उत्कट प्रेम था, उसके नेत्रों के सामने हिलोरें लिया करता। ऐसे मोहक निवास स्थान से निकल कर वह एक संक्षिप्त और भयावह नाटक का मुख्य पात्र बन गया। मेक्सिको ने अपनी मोहिनी डालकर उसे विनाश के गर्त में ढकेल दिया। अपनी महत्त्वाकांक्षा और अपनी उत्साही पत्नी कारलोटा से जो कि बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड प्रथम की पुत्री थी, प्रभावित होकर तथा फ्रांस की सहायता का निश्चित आश्वासन मिलने पर उसने साम्राज्यीय मुकुट स्वीकार कर लिया, और मई १८६४ में मेक्सिको जा पहुँचा।

योजना का विनाशकारी परिणाम

नेपोलियन तृतीय के मस्तिष्क में उत्पन्न यह योजना प्रारम्भ से ही निराशाजनक और जिन्होंने उसमें भाग लिया उनके लिये विनाशकारी सिद्ध हुयी। नये सम्राट् और साम्राज्ञी तथा नेपोलियन तीनों को ही उसके कड़ुए फल चखने पड़े। नये शासक के मार्ग में ऐसी बाधाएँ आ खड़ी हुईं जिन पर अधिकार पाना असम्भव था। युआरेत्स ने बड़ी सफलता पूर्वक छापामार युद्ध चलाया, जिसके फलस्वरूप फ्रांसीसी सेना को आक्रमण की योजना छोड़कर अपने बचाव में सम्पूर्ण शक्ति लगानी पड़ी। यहाँ तक कि फ्रांसीसी सेना के लिये समुद्र से सम्पर्क बनाये रखना भी कठिन हो गया। अन्त में मेक्सीमिलियन ने एक आज्ञप्ति जारी की कि जो भी शत्रु हथियारों के साथ पकड़ा जाय उसे तुरन्त गोली से उड़ा दिया जाय। इस आज्ञप्ति के कारण सभी मेक्सिकोवासी नये सम्राट् से घृणा करने लगे और युद्ध ने अत्याचारपूर्ण रूप धारण कर लिया। जब एपोमाटोस्क के स्थान पर जनरल ली ने हथियार डाल दिये तब नये साम्राज्य के लिये और भी भारी खतरा उत्पन्न हो गया। संयुक्त राज्य अमेरिका, पहले से ही नेपोलियन की इस योजना के विरुद्ध था। अब गृह-युद्ध के समाप्त हो जाने पर उसने हस्तक्षेप की धमकी दी. उस देश से नेपोलियन लड़ाई मोल लेने को तैयार न था, इसलिये उसने अपनी सेना को मेक्सिको से तुरन्त वापस बुलाने का वचन दिया। मेक्सीमिलियन नेपोलियन की सहायता के बिना अधिक दिनों तक सम्राट् के पद पर आसीन नहीं रह सकता था। उसकी पत्नी कारलोटा यूरोप लौट गयी और नेपोलियन से स्वयं मिली तथा बड़े आतुर भाव से प्रार्थना की कि हम लोगों को मँझधार में न छोड़िये। किन्तु जिस व्यक्ति ने सम्पूर्ण योजना बनायी थी उसने सहायता का कोई वचन नहीं दिया। अतः अपने पति के भावी विनाश की आशंका से वह पागल हो गयी। मेक्सीमिलियन को मेक्सिकोवासियों ने १९ जून, १८६७ के दिन पकड़कर गोली से उड़ा दिया। इस प्रकार वह मायावी साम्राज्य अन्तर्धान हो गया।

संयुक्त राज्य का हस्तक्षेप

इस योजना में फ्रांसीसी सम्राट् का बहुत धन व्यय हुआ। राज्य की वित्तीय

व्यवस्था जो पहले से ही है अस्त-व्यस्त थी अब और भी अधिक जर्जरित हो गई। इस योजना का कारण नेपोलियन मध्य यूरोप की १८६४-६६ की घटनाओं—डेनमार्क का युद्ध और आस्ट्रिया-प्रुशिया की लड़ाई—में भाग नहीं ले सका। फलतः इन घटनाओं ने यूरोप की फ्रांस मैं स्थिति में गम्भीर परिवर्तन कर दिया और प्रुशिया के महत्त्वाकांक्षी, आक्रमक और शक्तिशाली राज्य को बढ़ावा दिया। चूँकि नेपोलियन ने संयुक्त राज्य की धमकी के डर से अपने आश्रित को अत्यंत भयावह स्थिति में छोड़ दिया था, इसलिये यूरोपीय राष्ट्रों की दृष्टि में उसकी नैतिक प्रतिष्ठा बहुत गिर गई। उसने अपने सैनिक साधनों को व्यर्थ ही बर्बाद किया था और राष्ट्रीय ऋण में अनापशनाप वृद्धि कर ली। कहा गया है कि मेक्सिको की लड़ाई नेपोलियन तृतीय के लिये वैसी ही विनाशकारी सिद्ध हुई जैसी कि स्पेन की लड़ाई नेपोलियन प्रथम के लिये हुई थी।

नेपोलियन तृतीय की पराजय

अपनी लोकप्रियता को क्षीण होते देखकर नेपोलियन ने **उदारवादियों** को, जोकि अब तक उसके शत्रु थे, प्रसन्न करने के लिये १८६८ में कुछ सुधार किये जिनको वे निरंतर माँग करते आये थे। उसने **विधान-सदन** के अधिकारों में वृद्धि की, प्रेस को पहले से अधिक स्वतंत्रता और नागरिकों की कुछ शर्तों के अधीन सार्वजनिक सभाएँ करने का अधिकार दिया। इस प्रकार **साम्राज्य** ने स्पष्ट रूप से उदारवाद के पथ पर कदम बढ़ाया। किंतु इसका परिणाम उलटा हुआ; उसकी शक्ति बढ़ी नहीं बल्कि पहले से अधिक दुर्बल हो गई। अनेक पत्रिकाओं की स्थापना हुई, जिन्होंने उसकी ऐसी कटु आलोचना की कि देखकर लोग चकित रह गये। नेपोलियन के शासन के अंतिम दो वर्षों में राज्य में वाक् स्वतंत्रता की उल्लेखनीय प्रगति हुई। कुछ लोगों ने बौदँ नाम के एक गणतंत्रवादी प्रतिनिधि की स्मृति में, जिसे १८५१ में षड्यंत्र के समय गोली से उड़ा दिया गया था, एक स्मारक स्थापित करने के लिये आंदोलन चलाया, जिसे सरकार ने अपने लिये बहुत अपमानजनक समझा। जो लोग इस कार्य के लिये चंदा एकत्र कर रहे थे उन पर मुकद्दमा चलाया गया। उनमें से एक अभियुक्त की पैरवी गाम्वेता नामक एक तरुण वकील ने की। उस समय गाम्वेता की आयु केवल ३० वर्ष की थी; वह दक्षिणी फ्रांस का रहने वाला एक महान् वक्ता था; आगे चलकर उसने राजनीति में महान ख्याति प्राप्त की और **तृतीय गणतन्त्र** का संस्थापक बना। उसने न्यायालय में उस ढंग से आचरण नहीं किया जैसे कि कोई वकील अपने मुवक्किलों को बचाने के लिये करता है, बल्कि उसने नेपोलियन तृतीय के सम्पूर्ण शासन-काल की कटु निन्दा की और पिछले सत्रह वर्ष में फ्रांस के साथ जो अन्याय किया गया था उसका बदला लेने का प्रयत्न किया। **२ दिसम्बर** की घटनाओं की उसने विशेष रूप से चर्चा की। उसने कहा कि यह षडयन्त्र उन अज्ञात लोगों का कार्य था "जिनमें न प्रतिभा थी, न जिनकी कोई प्रतिष्ठा थी और जो बुरी तरह से ऋण और अपराधों में ग्रस्त थे"। "इन लोगों का दावा है कि हमने समाज की रक्षा की है। क्या कोई व्यक्ति अपने पिता आदि निकट सम्बन्धियों की हत्या करके देश की रक्षा करता है?" इस अद्भुत भाषण का अन्तिम अंश अब तक प्रसिद्ध है "तुम जो कि १७ वर्ष से फ्रांस के निरंकुश शासक बने हुए

नेपोलियन की उदारवादियों को रियायतें

लियोगाम्वेता का नाटकीय ढंग से प्रकट होना

हो सुनो ! तुम्हारे चरित्र की सबसे अच्छी पहचान यही है कि तुमने कभी यह कहने का साहस नहीं किया कि "हम **दूसरी दिसम्बर** को फ्रांस के पवित्र त्यौहारों में स्थान देंगे और उसकी वर्षगाँठ को एक राष्ट्रीय त्यौहार के रूप में मनाएँगे।"···· अच्छा ! इस वर्षगाँठ को हम बिना चूके सदैव मनाएँगे। प्रतिवर्ष यह मृतकों की स्मृति का दिन होगा और इसे हम तब तक मनाते रहेंगे जब तक कि देश एक बार पुनः स्वयं अपना स्वामी बनकर स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के नाम पर तुमसे महान् राष्ट्रीय प्रायश्चित् नहीं करवा लेता"।

नेपोलियन तृतीय की कटु आलोचना

इस भाषण का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। १८५१ के बाद फ्रांस में सरकार को ऐसी चुनौती देने वाला और उसका ऐसा तिरस्कार करने वाला भाषण कभी सुनने को नहीं मिला था। यद्यपि गाम्बेता का मुवक्किल मुकद्दमा हार गया, किन्तु सामान्य लोगों की धारणा थी कि इस मुकद्दमे से साम्राज्य की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई है। यह भी स्पष्ट हो गया था कि देश में एक गणतन्त्रवादी दल था, जो बदला लेने का इच्छुक था, जो अब उदारता की ओर प्रवृत्त सम्राट् द्वारा किये गये अधिकारों का प्रयोग कृतज्ञतापूर्वक नहीं बल्कि साम्राज्य के ही नाश के लिये करने को तैयार था, जिसकी नीति अक्रामक थी, शक्ति दिन पर दिन बढ़ रही थी, जिसका पेरिस पर प्रभुत्व था और जो प्रान्तों में अपने को संगठित कर रहा था।

"सैडोवा का बदला"

इस प्रकार नेपोलियन तृतीय के सिंहासन के चतुर्दिक संकट के काले और घने बादल घुमड़ रहे थे। आंतरिक कठिनाइयाँ तो थीं ही, किन्तु मुख्यतः वैदेशिक संबन्धों ने लोगों को आतंकित कर दिया था, और वास्तव में यह विषय ऐसा था जिसमें सम्राट् को सावधानी से काम लेना चाहिये था। पिछले वर्षों में जर्मनी की ओर से विशेष खतरा उत्पन्न हो गया था; प्रुशिया की आक्रामक नीति और आश्चर्यजनक सफलता फ्रांसीसी साम्राज्य के लिये एक स्पष्ट चुनौती थी। यही सबसे अधिक कष्टदायक चीज थी। यद्यपि सैडोवा का युद्ध प्रुशिया और आस्ट्रिया के बीच लड़ा गया था और फ्रांस ने उसमें किसी भी पक्ष का साथ नहीं दिया था, फिर भी फ्रांसीसीयों की अन्तरात्मा में यह चीज स्पष्टरूप से समा गई थी कि यह लड़ाई फ्रांस के लिए अपमानजनक पराजय है। प्राग की सन्धि से फ्रांस की सत्ता और महत्त्व को भारी धक्का पहुँचा। मध्य यूरोप के ऐसे क्रान्तिकारी पुनर्संगठन ने, जिसके फलस्वरूप आस्ट्रिया को परास्त करके जर्मनी से खदेड़ दिया गया गया और प्रुशिया का एक आक्रामक और शक्तिशाली सैनिक राज्य के रूप में संगठन हुआ, यूरोप के शक्ति-सन्तुलन को गड़बड़ कर दिया। फ्रांस में सर्वत्र भय छा गया।" "सैडोव का बदला लेंगे" के नारे सुनाई देने लगे। इसका अभिप्राय यह था कि यदि प्रुशिया जैसे राज्य के क्षेत्र और शक्ति का विस्तार हो तो उसका अनुसमर्थन करने के एवज में फ्रांस को भी उसी अनुपात में अपने क्षेत्र और शक्ति का विस्तार करने का अधिकार होना चाहिये, और दोनों राज्यों के सम्बन्ध परस्पर पूर्ववत् बने रहें।

१८६६ और १८७० के बीच के वर्षों में प्रुशिया और फ्रांस की जनता और सरकारों को यह निश्चय हो गया था कि इन दोनों देशों के बीच युद्ध अनिवार्य है।

अनेक फ्रांसीसी सैडोवा का बदला लेने के इच्छुक थे। प्रुशिया के लोगों का दो सफल युद्धों के कारण उत्साह और अहँकार बहुत बढ़ गया था और वे यूरोप में अपनी नई स्थिति के महत्त्व को भली-भाँति समझने लगे थे। अगले चार वर्षों में दोनों देशों के समाचार पत्रों ने एक दूसरे की कटु निंदा की और गाली गलौज की तथा मखौल उड़ाया। किसी भी सरकार ने इस मूर्खतापूर्ण व्यवहार को रोकने का प्रयत्न नहीं किया, बल्कि कभी-कभी तो उसको उभाड़ा और निर्देशित किया। ऐसा वातावरण उन मन्त्रियों के लिये बड़ा अनुकूल था जो युद्ध चाहते थे, और फ्रांस तथा प्रुशिया दोनों में ठीक ऐसे ही मन्त्री थे। बिस्मार्क का विश्वास था कि युद्ध अनिवार्य है। वह यह भी समझता था कि जर्मनी के एकीकरण का यही एकमात्र उपाय है। क्योंकि नेपोलियन अपनी इच्छा से इस बात का कभी समर्थन नहीं करेगा कि दक्षिणी जर्मनी की रियासतें भी परिसंघ में सम्मिलित करली जाएँ। बिस्मार्क केवल यह चाहता था कि युद्ध ऐसे समय छिड़े जबकि प्रुशिया पूर्णतया तैयार हो और उसका आरम्भ फ्रांस की ओर से हो, जिससे प्रुशिया यूरोप के सामने यह दिखा सके कि हम केवल आक्रमणकारी से अपनी रक्षा करने के लिए युद्ध लड़ रहे हैं।

बिस्मार्क की राय में फ्रांस के विरुद्ध युद्ध अनिवार्य

जब जिम्मेदार राजनीतिज्ञों की ऐसी मनःस्थिति थी। तो युद्ध प्रारम्भ करना कठिन न था। फिर भी युद्ध यूरोप पर आँधी और मेघ गर्जना की भाँति सहसा टूट पड़ा पहली जुलाई १८७० को इसका किसी को स्वप्न भी न था, किन्तु १५ जुलाई को युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसका आरम्भ टेढ़े मेढ़े ढंग से हुआ। स्पेन के विद्रोहियों ने रानी आइजाबेला को देश से मार भगाया था; अतः स्पेन का सिंहासन खाली हो गया था। २ जुलाई को पेरिस में समाचार पहुँचा कि प्रुशिया के राजा के एक सम्बन्धी होहेनत्सोलर्न के लियोपोल्ड ने स्पेन का राजमुकुट स्वीकार कर लिया है। बिस्मार्क ने होहेनत्सोलर्न के उम्मीदवार का उत्साह के साथ समर्थन किया, यद्यपि वह जानता था कि नेपोलियन इसके विरुद्ध है। फ्रांस के समाचार पत्रों और संसद में भारी क्रोध प्रदर्शित किया गया और शीघ्र ही गम्भीर संकट उपस्थित हो गया। किन्तु शान्ति के लिये कार्य करने वाली शक्तियों ने हस्तक्षेप किया १२ जुलाई को घोषणा की गई कि लियोपोल्ड ने अपना नाम वापिस ले लिया है।

स्पेन के सिंहासन के लिए होहेनत्सोलर्न वंश का उम्मीदवार

तनाव तुरन्त कम हो गया, लड़ाई का आतंक जाता रहा। किन्तु इससे दो व्यक्तियों को प्रसन्नता नहीं हुई : प्रथम, बिस्मार्क का कुचक्र विफल हो गया था और उसको इतना भारी अपमान सहना पड़ा था कि वह अपना पद त्याग कर राजनीति से सन्यास लेने की बात सोचने लगा। दूसरा व्यक्ति फ्रांस का परराष्ट्र मंत्री ग्रामो था जिसे अपनी इस राजनयिक विजय से संतोष नहीं हुआ था और जो एक अन्य विजय द्वारा प्रुशिया को नीचा दिखाना चाहता था। फ्रांस की मन्त्रि-परिषद् ने एक नई माँग की प्रुशिया का राजा वचन दे कि होहेनत्सोलर्न वंश का उम्मीदवार फिर कभी खड़ा नहीं किया जायगा। राजा ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और बिस्मार्क की घटना का विवरण प्रकाशित करने का अधिकार दे दिया। अब बिस्मार्क को अवसर मिल गया, जिसका उसने क्रूरता और प्रसन्नता के साथ इस ढंग से प्रयोग

किया कि फ्रांस की सरकार क्रुद्ध होकर युद्ध की घोषणा कर दे। उसने स्वयं लिखा, है कि मेरे विवरण का उद्देश्य यह था कि उसे पढ़कर फ्रांस की सरकार उबल पड़े, जैसे कि बैल लाल झंडी को देखकर विदक पड़ता है। उसके प्रकाशन का प्रभाव तुरन्त पड़ा। दोनों देश क्रोध के ज्वर से जलने लगे। प्रुशिया के लोगों ने सोचा कि हमारे राजा का अपमान हुआ और फ्रांसीसियों ने सोचा कि हमारे राजदूत को अपमानित किया गया है। मानो यह पर्याप्त न था, इसलिए दोनों देशों के समाचार-पत्रों ने झूठे गाली गलौज से भरे हुए और भड़काने वाले विवरण छापे। शान्ति की पैरवी करने वालों की आवाज सामान्य चीख पुकार में डूब गई। फ्रांस की मन्त्रि-परिषद् के प्रमुख ने घोषणा की कि इस युद्ध को में प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता हूँ। १५ जुलाई को फ्रांस ने युद्ध की घोषणा करदी। वास्तव में यह लड़ाई केवल राजनयिकों की पटेबाजी का परिणाम थी। फ्रांस की जनता इसको नहीं चाहती थी; केवल पेरिस के लोगों ने, जिन्हें सरकारी प्रेस ने उत्तेजित कर रखा था इसका स्वागत किया। सच तो यह है जब तक लड़ाई की घोषणा नहीं हो गई तब तक फ्रांस की जनता को इस बात का पता ही न था कि झगड़े का कारण क्या है, वह तो सहसा उन पर आ पड़ी। इस युद्ध का उत्तरदायित्व दोनों सरकारों के प्रमुखों के ऊपर था। दोनों में से किसी देश में युद्ध का कारण राष्ट्रीय नहीं था। इसका तात्कालिक बहाना तो बहुत ही तुच्छ था। किन्तु यह दोनों ही देशों में देश-भक्ति के प्रदर्शन का अद्भुत कारण बना।

फ्रांस और प्रुशिया का युद्ध १८७०

जिस युद्ध को फ्रांस की मन्त्रि-परिषद् ने इतनी निश्चितता और प्रसन्नता से प्रारम्भ किया था वह उसके देश के इतिहास में सर्वाधिक विनाशकारी सिद्ध हुआ। हर दृष्टि से युद्ध विशेषकर अशुभ परिस्थितियों में प्रारम्भ हुआ। फ्रांस ने केवल प्रुशिया के विरुद्ध लड़ाई घोषित की, किन्तु उसका ढँग ऐसा था कि दक्षिणी जर्मनी की रियासतें, जिनकी सहायता का उसको भरोसा था, सीधे विस्मार्क के शिविर में जा पहुँची। उनके विचार में फ्रांस के राजा की यह माँग अनावश्यक और अपमानजनक थी कि प्रुशिया का राजा सदैव के लिये होहेनत्सोलर्न वंश के उम्मीदवार को कभी भी न खड़ा करने का वचन दे। ववारिया वाडेन और वूर्टेम्वुर्ग तुरन्त ही प्रुशिया का पक्ष लेकर लड़ाई में सम्मलित हो गये।

दक्षिणी जर्मनी के राज्यों का प्रुशिया से जा मिलना

फ्रांस के सैनिक अधिकारियों ने सबसे गम्भीर भूल यह की कि उन्होंने परिस्थिति की गुरुता और कठिनाइयों को वहुत कम आँका। तैयारियाँ इतनी कम थी कि सुनकर विश्वास नहीं होगा, और युद्ध छिड़ते ही यह वात एकदम स्पष्ट हो गई। फ्रांस की सेना की साज-सज्जा अपर्याप्त थी और संख्या तथा सेनापतियों की योग्यता की दृष्टि से वह प्रुशिया की सेना के मुकाविले में घटिया थी। युद्ध में फ्रांस को एक के वाद एक अनेक हारें खानी पड़ीं, एक दो वार सफलता मिली, जिसका कोई महत्त्व नहीं था। जर्मन सेना राइन को पार करके अल्सास और लारेन में घुस गई और कई दिन के भयंकर संग्राम के वाद फ्रांस की मुख्य सेना के साथ वाजेन नामक सेनानायक को मेत्स के किले में वन्द करके घेरा डाल दिया।

जर्मनी का फ्रांस पर आक्रमण

सैडान का युद्ध

१ सितम्बर को एक दूसरी फ्रांसीसी सेना, जिसके साथ सम्राट् स्वयं था सैडान के युद्ध में परास्त हुई, और दूसरे दिन उसने जर्मनों के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। नेपोलियन स्वयं युद्ध-बन्दी बना लिया गया। इन दो दिनों मे फ्रांसीसियों को हताहतों ओर युद्ध बन्दियों के रूप में एक लाख बीस हजार सैनिकों की क्षति उठानी पड़ी।

इस भयावह विनाश का समाचार सारे संसार में गूँज उठा। फ्रांस के पास अब कोई सेना ही न रह गई थी; एक सैडान में समर्पण कर चुकी थी और दूसरी मेत्स के दुर्ग में बन्द थी। अगस्त के महीने में जो प्रारम्भिक हारें हुईं उनको सरकार ने पेरिस के जनता के समक्ष अपनी विजय के रूप में प्रस्तुत किया। किन्तु अधिक समय तक वह लोगों को धोखे में न रख सकी। ३ सितम्बर को सम्राट् ने संदेश भेजा। "सेना परास्त हो चुकी है और कैद कर ली गई हैं; मैं स्वयं बन्दी बन गया हूँ।" चूँकि बन्दी के रूप में वह फ्रांस की सरकार का प्रमुख नहीं रह सकता था, अत: जैसा कि तियेर ने कहा, देश में सत्ता का स्थान रिक्त हो गया था। रविवार, ४ सितम्बर को विधान निकाय की बैठक बुलाई गई।

साम्राज्य का पतन

किन्तु उसे विचार करने का समय ही न मिला। भीड़ ने भवन को घेर लिया और चिल्लाने लगी। "साम्राज्य का नाश हो! गणतन्त्र जिन्दाबाद! गाम्बेता, ज्यूल कार्वे और ज्यूल फेरी भीड़ के आगे-आगे चलकर ओतेल द विल में पहुँचे और वहाँ से **गणतन्त्र** की घोषणा कर दी। साम्राज्ञी भाग गई, जनरल त्रोशु की अध्यक्षता में एक **राष्ट्रीय प्रतिरक्षा सरकार** का निर्माण किया गया, जिसने युद्ध के शेष दिनों में वास्तविक रूप से देश का शासन, कार्य चलाया।

फ्रांस और जर्मनी का युद्ध लगभग छः महीने तक चला, अगस्त, १८७० में प्रारम्भ हुआ और फरवरी, १८७१ में समाप्त हो गया। इसको दो स्वाभाविक कालों में विभक्त किया जा सकता है – साम्राज्यीय और गणतन्त्रीय। पहला काल अगस्त के महीने तक सीमित रहा जिसमें स्थायी सेनायें या तो नष्ट हो गईं या वन्दी बना ली गईं, साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया और स्वयं सम्राट् बन्दी बना कर जर्मनी भेज दिया गया। दूसरा काल ५ महीने तक चला, इसमें फ्रांस ने **राष्ट्रीय प्रतिरक्षा सरकार** की अधीनता में अद्‌भुत साहस और उत्साह के साथ देश की प्रतिरक्षा की, यद्यपि परिस्थितियाँ; अत्यधिक प्रतिकूल और हतोत्साह करने वाली थीं।

जर्मन लोग मेत्स के घेरे के लिये पर्याप्त सेना छोड़ कर पेरिस की ओर बढ़े। १९ सितम्बर को उन्होंने उस नगर का घेरा प्रारम्भ कर दिया। इतिहास का यह एक सर्वाधिक प्रसिद्ध घेरा है, यह चार महीने तक चला और यूरोप को विस्मय में डाल दिया। नगर में अपार सामिग्री एकत्र कर ली गई, नागरिकों को हथियारों से सुसज्जित किया गया और बड़ी शक्ति के साथ बचाव कार्य चलाया गया। पेरिस वासियों को आशा थी कि हम तब तक डटे रहेंगे, जब तक कि नई सेनायें संगठित होकर मोर्चे पर नहीं आ जातीं, अथवा कोई राजनयिक हस्तक्षेप नहीं होने लगता। पहला काम पूरा करने के लिये **राष्ट्रीय प्रतिरक्षा सरकार** का एक प्रतिनिधि मंडल गाम्बेता के नेतृत्व में गुब्बारे के द्वारा पेरिस से निकल भागा और पहले तूर और फिर बोर्दो में सरकार की एक शाखा स्थापित कर ली। गाम्बेता ने अपनी अनुल

शक्ति, वक्तृता और देशभक्ति के बल पर नई सेनायें एकत्र कर लीं, उनके प्रतिरोध ने जर्मनों को विस्मित कर दिया। किंतु उनका प्रशिक्षण पूरा नहीं हुआ था, इसलिए वे विफल रहीं, वे पेरिस के आसपास पड़े हुए उस फौलादी घेरे को न तोड़ सकीं। साम्राज्य के पतन के बाद युद्ध केवल पेरिस तक सीमित रहा।

मेत्स का पतन

जर्मन उसका घेरा डाले रहे और फ्रांसीसी तत्काल संगठित सेनाओं द्वारा उसके तोड़ने का प्रयत्न करते रहे। इसी बीच में २७ अक्टूबर, १८७० को मेत्स का पतन हो गया जिससे पेरिस वासियों के ये प्रयत्न और भी अधिक निष्फल रहे। मेत्स में ६००० अफसर और १७३००० सैनिक घिरे हुए थे। भूखों मरने की नौबत देख कर उन्होंने अन्त में समर्पण कर दिया, और सैकड़ों तोपें तथा अतुल युद्ध सामग्री शत्रु के हाथ लगी। सभ्य राष्ट्रों के इतिहास में उल्लिखित यह सबसे बड़ा पतन था। एक महीने पहले २७ सितम्बर को स्ट्रासबुर्ग ने भी समर्पण कर दिया था और १९,००० सैनिक बन्दी हो गए थे।

मेत्स का पतन विशेषकर विनाशकारी सिद्ध हुआ, क्योंकि अब जर्मन लोग अपनी और सेनाओं को भी पेरिस के घेरे में जुटा सकते थे और उन सेनाओं पर आक्रमण कर सकते थे जिन्हें गाम्बेता अपने अद्वितीय प्रयत्न द्वारा शेष फ्रांस में एकत्र कर रहा था। गाम्बेता की सेनायें पेरिस की सहायता के लिए न पहुँच सकीं और न पेरिस की सेनायें घेरे को तोड़ कर उनकी मदद को पहुँच सकीं। अब प्रश्न केवल यह था कि किसमें कितने समय तक डटे रहने की शक्ति है।

पेरिस का घेरा

जर्मनों ने जनवरी के प्रारम्भ में नगर पर गोलाबारी शुरू कर दी। कुछ भागों में भारी हानि हुई तथा जल कर स्वाहा हो गए। दुर्भिक्ष सामने दिखाई देने लगा। २० नवम्बर के बाद गाय और भेड़ का माँस मिलना बन्द हो गया; १५ दिसम्बर के बाद प्रतिदिन प्रति व्यक्ति को केवल १५ ग्राम घोड़े का माँस मिलता और उसका भी भाव २½ डालर प्रति पौंड था, १५ जनवरी के बाद रोटी की मात्रा घटा कर ३०० ग्राम कर दी गई और वह भी बड़ी गन्दी रोटी थी। लोगों को जो कुछ मिल जाता वही खा लेते कुत्ते, बिल्लियाँ, चूहे इत्यादि। बाजार में एक चूहे का मूल्य २ फ्रैंक था। स्थिति ऐसी थी कि ३१ जनवरी के बाद खाने को कुछ नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त उस वर्ष का जाड़ा जहाँ तक लोगों को याद था सबसे भयंकर था। कोयला और बनई की लकड़ी समाप्त हो गई। **शाँप इलीजे** और ब्वाइ बवूलों में स्थति पेड़ काट डाले गये और गरीबों के लिये चौराहों पर अलाव जला दिये गए। शराब पीपों में जम गई। २८ फरवरी को भुखमरी को सामने देखकर वीरतापूर्ण प्रतिरोध के बाद पेरिस ने हथियार डाल दिये।

फ्रांकफर्ट की संधि

बिस्मार्क ने सुलह के लिये असाधारण रूप से कठोर शर्ते रक्खीं जिनके आधार पर १० मई, १८७१ को फ्रांकफर्ट की संधि पर हस्ताक्षर हो गये। फ्रांस को अल्सास और लोरेन का अधिकांश जिसमें मेत्स का किला सम्मिलित था, देना पड़ा। इसके अतिरिक्त निश्चय किया गया कि उसे तीन वर्ष के भीतर ५ अरब फ्रैंक युद्ध के हर्जाने के रूप में देने पड़ेंगे—इतना बड़ा हर्जाना कभी किसी हारे हुए राष्ट्र को नहीं देना पड़ा था। अन्तिम शर्त यह थी कि फ्रांस को जर्मनी की अधिकतर सेना का भी खर्च देना

पड़ेगा, और जैसे-जैसे वह हर्जाने की किश्तें चुकाता जायेगा, वैसे-वैसे ही जर्मन सेना की टुकड़ियाँ वापस होती जाएँगी।

१८७१ से लेकर फ्रांकफर्ट की संधि यूरोप के शरीर पर बहते हुये फोड़े की तरह बनी रही। तज्जनित असह्य अपमान को फ्रांस न कभी भूल सका और न क्षमा कर सका। हर्जाने की भारी रकम को तो फ्रांसीसी कदाचित बहुत समय बीतने पर भूल जाते, किन्तु वे इस चीज को कभी नहीं भूल सकते थे कि उनके दो प्रान्त शक्ति के बल पर और उन प्रान्तों की जनता के सर्वसम्मत विरोध के बावजूद हड़प लिये गये थे। इसके अतिरिक्त अब फ्रांस की पूर्वी सीमा बड़ी दुर्बल हो गई।

इसी बीच में युद्ध के फलस्वरूप कुछ और घटनाएँ भी घट चुकीं थीं। इटली ने रोम पर अधिकार करके अपने एकीकरण की प्रक्रिया पूरी कर ली थी और इस प्रकार पोप की लौकिक शक्ति का अन्त कर दिया था। पोप की सहायता के लिये रोम में एक फ्रांसीसी सेना पड़ी हुई थी। सेडान की लड़ाई के बाद उसे वापस बुला लिया गया था। तब विक्टर इमानुअल ने पोप की सेना पर आक्रमण कर दिया, एक साधारण सी लड़ाई में उसे परास्त किया और २० सितम्बर १८७० को रोम में प्रवेश किया। इस प्रकार इटली का एकीकरण पूर्ण हुआ और रोम उस राज्य की राजधानी बनाया गया।

पोप की लौकिक शक्ति का अन्त

इटली के एकीकरण का पूर्ण होना

युद्ध का इससे भी महत्वपूर्ण परिणाम जर्मनी के एकीकरण का पूर्ण होना और **जर्मन साम्राज्य** का निर्माण था। बिस्मार्क ने जर्मन के एकीकरण को पूर्ण करने के लिए आवश्यक समझकर ही फ्रांस के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था। युद्ध आवश्यक था अथवा नहीं, वह उद्देश्य अवश्य पूरा हो गया। युद्ध के दौरान में प्रुशिया तथा **दक्षिणी जर्मनी** के राज्यों के बीच बातचीत प्रारम्भ हो गई। संधियाँ तैयार कर ली गईं और **परिसंघ** को विस्तृत करके सभी जर्मन राज्य उसमें सम्मिलित कर लिए गये। १८ जनवरी, १८७१ को वार्साय के शाही महल में राजा विलियम प्रथम को जर्मन सम्राट घोषित किया गया।

जर्मनी के एकीकरण का पूर्ण होना

१८६६ की लड़ाई के फलस्वरूप आस्ट्रिया को जर्मनी और इटली से निकाल दिया गया था। १८७० की लड़ाई से दोनों देशों का एकीकरण पूर्ण हो गया। बर्लिन संघ साम्राज्य की राजधानी बना और रोम संयुक्त इटली की।

अध्याय २१

जर्मन साम्राज्य

फ्रांसीसी जर्मन युद्ध ने जर्मनी के एकीकरण को पूरा कर दिया। प्राचीन फ्रांसीसी राजतन्त्र की राजधानी वार्सेई में १८ जनवरी, १८७१ के दिन जर्मन साम्राज्य की घोषणा की गई। युद्धों की समाप्ति के पश्चात् तत्काल ही नये राज्य के लिये नवीन संविधान स्वीकार कर लिया गया। १६ अप्रैल, १८७१ से इस संविधान को वास्तविक मान्यता प्रदान की गई। अनेक दृष्टिकोणों से १८६७ के उत्तरी जर्मन संघ के संविधान से यह संविधान मिलता जुलता था। इसमें संघ के स्थान पर साम्राज्य शब्द और राष्ट्रपति के स्थान पर सम्राट शब्द प्रयुक्त किया गया था; किन्तु इस साम्राज्य में पुराने संघ के समस्त २५ राज्य और अल्सास-लौरैन का शाही क्षेत्र भी सम्मिलित था।

नवीन जर्मन साम्राज्य का संविधान

प्रुशिया का राजा स्वाभाविक रूप से जर्मनी का सम्राट स्वीकार किया गया। देश में नियम-निर्माण सम्बन्धी अधिकार बुंडेसराट अथवा संघ का परिषद तथा राइखटाग में केन्द्रित था। बुंडेसराट की अनुमति से सम्राट युद्ध की घोषणा कर सकता था, वह देश की जल एवं स्थल सेनाओं का सेनापति था, वही देश की वैदेशिक समस्याओं का संचालक और विधान-सभा के कुछ नियन्त्रणों के अन्तर्गत वह विदेशों से सन्धियाँ करने का पूर्ण अधिकार रखता था। प्रशासकीय कार्यों में उसे सहायता देने के लिये एक चांसलर प्रधान मन्त्री की नियुक्ति उसी के द्वारा की जाती थी जो अपने कर्त्तव्य पालन के लिये विधान सभा के स्थान पर सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। चांसलर के अधीन अनेक मन्त्रिगण थे जो विभाग विशेष के अध्यक्ष के रूप में उसे शासन प्रबन्ध में सहायता देते थे; किन्तु वर्तमान मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की भाँति विधान सभा के प्रति वे उत्तरदायी न थे।

सम्राट्

जर्मनी में नियम बुंडेसराट एवं राइखटाग द्वारा ही बनाये जाते हैं। बुंडेसराट

बुंडेसराट अथवा संघ परिषद्

साम्राज्य की सबसे शक्तिशाली संस्था है। इसे व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्याय-पालिका सम्बन्धी समस्त अधिकार प्राप्त हैं और यह एक प्रकार की राजनीतिक एवं कूटनीतिज्ञ सभा है। यह सम्पूर्ण साम्राज्य के २५ राज्यों के नरेशों का प्रतिनिधित्व करती है और इसके सदस्य वे लोग ही होते हैं जिन्हें शासकगण अपने प्रतिनिधि के रूप में इसमें भेजते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट की भाँति इसमें समस्त राज्यों के बराबर सदस्य नहीं आते हैं। इसके ५८ सदस्यों में से १७ सदस्य प्रशा से, ६ सदस्य बवेरिया से, ४ सदस्य सेक्सिनी से, ४ सदस्य वुरटम्वर्ग से, २ या ३ सदस्य ४ राज्यों से और एक-एक सदस्य शेष १७ राज्यों से आते है। वस्तुत: यह संस्था १८१५ की फ्रैंकफर्ट की डाइट अथवा संविधान सभा का ही एक दूसरा रूप है और परिस्थिति एवं समय के अनुकूल इसमें कुछ परिवर्तन किये गये है। इसके सदस्य जर्मनी के विभिन्न शासकों के प्रतिनिधियों के रूप में देश के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ होते हैं इसके सदस्य व्यक्तिगत रूप से मतदान का प्रयोग नहीं करते हैं किन्तु प्रत्येक राज्य के सदस्य अपने शासक के आदेशानुसार सामूहिक रूप से अथवा एक राज्य के रूप में इससे मतदान करते हैं। उदाहरणस्वरूप प्रशिया के समस्त मत यहाँ के शासक की इच्छानुसार किसी भी समस्या के सम्बन्ध में एक ही पक्ष में पड़ सकते हैं।

बुंडेसराट एक परामर्श समिति के रूप में

बुंडेसराट एक परामर्श समिति नहीं है, क्योंकि इसके सदस्य अपने शासकों की इच्छानुसार इसके कार्यों में भाग लेते हैं और वे अपनी स्वतन्त्रता से इसमें भाग नहीं ले सकते। वस्तुत: यह सभा जर्मनी के शासकों की एक सभा है इसके अधिकार विस्तृत है। व्यवस्थापिका के रूप में इसका महत्त्व बहुत ही अधिक है क्योंकि समस्त नियम इसी में प्रस्तावित होते हैं और राइखटाग द्वारा पालित सभी प्रस्ताव इसके सामने प्रस्तुत किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसे इन प्रस्तावों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है और इसी कारण यह जर्मनी की मुख्य व्यवस्थापिका सभा है। जर्मनी के शासकों का प्रतिनिधित्व करने के कारण यह एक राज्य सत्तावादी संस्था हैं और इसमें राजतंत्रवादियों का ही बहुमत हैं। इसमें प्रशा का सदैव बहुमत रहा है और १८७१ के एक दो उदाहरणों को छोड़कर इसके द्वारा प्रस्तावित नियमों में प्रशा का ही प्रधान महत्त्व रहा है। इसकी कार्यवाही गुप्त रखी जाती है।

राइखटाग

यह सभा साम्राज्य की लोकप्रिय सभा है और इसमें २५ वर्ष या इससे अधिक आयु वाले पुरुषों द्वारा ५ वर्ष के निर्वाचित ३९७ सदस्य है। यूरोप के अन्य लोकप्रिय सदनों की अपेक्षा जर्मनी के इस छोटे सदन की शक्तियाँ कम है। इसे मन्त्रिमण्डल बनाने अथवा उन्हें हटाने का कोई अधिकार नहीं है। बुंडेसराट की अनुमति से यह सभा सरकारी व्यय पर और मुख्यत: सेना सम्बन्धी व्यय की धनराशि पर जो कई वर्षों के लिये एक बार ही निश्चित की जाती है, कुछ अधिकार अवश्य रखती है। नये करों के लगाने के लिये इसकी अनुमति आवश्यक है किन्तु प्रचलित कर इसकी आज्ञा के बिना ही कर वसूल किये जा सकते हैं। यह सभा स्थल सेना, नौ सेना, व्यापार, आयात-निर्यात, रेल, डाक-प्रणाली, तार-प्रणाली तथा नियम आदि सम्बन्धी विधि निर्माण का कार्य कर सकती है। जिन समस्याओं पर संघीय सरकार का अधिकार नहीं है, उन पर राज्यों की इकाइयाँ स्वयं विचार कर सकती हैं। वास्तव में यह सभा जर्मनी की एक

परामर्श समिति है और इसे नये नियम बनाने में ही कुछ महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं और शासन की यथार्थ सत्ता बुंडेसराट तथा प्रशा के राज्य में ही निहित हैं।

राजतन्त्रों का एक संघ

जर्मन साम्राज्य एक विचित्र प्रकार का संघीय राज्य है, क्योंकि इसमें विभिन्न क्षेत्रफलों एवं जनसंख्या के अनेक राजतन्त्र सम्मिलित हैं। इसमें एक ओर तो प्रशा का राज्य है जिसकी जनसंख्या ४ करोड़ है और जिसका क्षेत्रफल संपूर्ण साम्राज्य का दो तिहाई भाग है और दूसरी और इसमें शाम्बरलिप का राज्य है जिसमें केवल ४५ हजार व्यक्ति रहते हैं। साम्राज्य में तीन गणतंत्र हैं, जिनके नाम ल्यूबेक, ब्रिमेन तथा हैम्बर्ग है। इसके शेष समस्त राज्य राजतंत्रवादी हैं। सभी राज्यों के अपने-अपने विधान एवं विधान सभाएँ हैं और बहुत कम विधान उदारवादी हैं। इसके अतिरिक्त साम्राज्य की विधान सभाओं में विभिन्न राज्यों का महत्व भी एक जैसा नहीं है और बड़े राज्यों को अधिक महत्व और छोटे राज्य को कम महत्व प्राप्त है। प्रशा, जिसका क्षेत्रफल एवं जनसंख्या अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत अधिक है का साम्राज्य में भी अधिक महत्त्व है।

चांसलर अथवा प्रधानमंत्री

सम्राट् का मुख्य प्रतिनिधि चांसलर है और यह एक साधारण मंत्री की भाँति इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री से पूर्णतया भिन्न है। सरकार के समस्त पदाधिकारियों से उसका पद एवं महत्व अधिक है। जर्मनी में न तो राजकीय मंत्रिमण्डल है और न ही वहाँ उत्तरदायी शासन व्यवस्था है। चांसलर की नियुक्ति स्वयं सम्राट् द्वारा होती है, वह उसे पदच्युत कर सकता है और उसी के लिये वह अपने कर्त्तव्य पालन के लिये उत्तरदायी रहता है। ईसके अतिरिक्त वह किसी भी प्रकार से बुंडेसराट अथवा राइखटाग के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। यहाँ तक कि यदि दोनों सभाएँ उसके प्रस्तावों को अस्वीकार कर दें या उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर दें, तो भी वह पदच्युत नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, उसकी उदासीनता अथवा पदच्युत होना पूर्णतया सम्राट की इच्छा पर निर्भर है।

जर्मनी में विदेशमंत्री, गृहमंत्री तथा शिक्षामंत्री आदि अन्य मंत्री भी होते है; किन्तु अमरीका अथवा इंगलैण्ड की भाँति ये मंत्रिमंडल के सदस्य नहीं होते हैं। वे चांसलर के अधीनस्थ अधिकारियों की भाँति एवं उसकी इच्छानुकूल अपना कार्य करते हैं और उन्हें राइखटाग के सदस्य किसी प्रकार से भी पदच्युत नहीं कर सकते। चांसलर के विस्तृत अधिकार हैं किन्तु, उसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट द्वारा होने के कारण वह उसकी अपेक्षा कम अधिकार रखता है। बिस्मार्क की भाँति कोई भी चांसलर साम्राज्य का एक अति महत्त्वपूर्ण सदस्य बन सकता है अथवा बिस्मार्क के उत्तराधिकारियों की भाँति वह सम्राट का एक प्रतिनिधि मात्र ही रह सकता है। विलियम प्रथम की अपेक्षा बिस्मार्क का महत्त्व अधिक था, किन्तु सम्राट विलियम द्वितीय स्वयं चांसलर भी रहना चाहता था, अपने चांसलरों की अपेक्षा वह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था।

जर्मन साम्राज्य की यही विशेषता एक अत्यंत विचित्र समस्या है। इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली, बेल्जियम, हालैण्ड और स्कैण्डनेविया के राज्यों की अपेक्षा यहाँ मन्त्रिमण्डल सम्राट् के सहयोग पर अधिक निर्भर है। इसके अतिरिक्त यहाँ की

कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का कोई नियन्त्रण नहीं है। यहाँ के मंत्रियों को व्यवस्थापिका सभा अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा पदच्युत नहीं कर सकती। जर्मनी का शासन एक संविधानिक शासन है क्योंकि इसका एक लिखित विधान है। यह एक संसदीय सरकार से वंचित है, क्योंकि देश के शासन प्रवन्ध में संसद का कोई भी महत्त्व नहीं है। प्रशासकीय महत्व जर्मनी के सम्राटों, विशेषकर प्रशा के सम्राट को प्राप्त है।

जर्मनी में उत्तरदायी शासन व्यवस्था का अभाव

विस्मार्क की एक महान् सफलता संसद पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना थी। उसने अपने पद के प्रभाव को बढ़ाकर देश में उत्तरदायी शासन के विकास को रोक दिया। स्वयं विस्मार्क इस विधान का निर्माण था और जहाँ तक विधान के अनुसार लोकमत के महत्त्व का सम्बन्ध है यह फ्रैंकफोर्ट की सभा द्वारा निर्मित १८४८ के विधान से भी बहुत कम महत्त्वपूर्ण हैं।

विस्मार्क द्वारा संसदीय संस्थाओं पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना

जर्मनी सम्राट प्रुशिया का राजा होने के कारण विशेष शक्तियों एवं अधिकारों का स्वामी है। वह राजा होने के कारण ही सम्राट हो सकता है। राजा के रूप में ही उसके विस्तृत कार्य हैं और राजा और सम्राट के रूप में उसके कार्य इतने समरूपी हैं कि उनमें किसी प्रकार की भिन्नता नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में प्रुशिया का राजा एक निरंकुश सम्राट होता है। प्रशा की संसद तथा संघीय व्यवस्थापिका सभा उसकी इच्छाओं का किसी भी प्रकार से (१८७१ के पश्चात्) विरोध नहीं कर सकती। प्रशा एवं जर्मनी दोनों में उत्तरदायी सरकार का पूर्ण अभाव है।

प्रजा के शासक को विस्तृत शक्तियाँ

१८७१ के पश्चात् जर्मनी में तीन सम्राट हुए है। विलियम प्रथम ने १८७१ से १८८८ तक, फ्रेडरिक तृतीय ने मार्च से जून १८८८ तक और विलियम द्वितीय ने १८८८ से १९१८ तक शासन किया है। १८७१ के पश्चात् यहाँ का इतिहास स्वाभाविक रूप से दो भागों, विलियम प्रथम का शासन काल तथा विलियम द्वितीय का शासन काल, में विभाजित होता है। प्रथम काल में जर्मनी का शासक वास्तविक रूप में चांसलर प्रिंस विस्मार्क था, जिसकी सत्ता एवं महत्ता असीमित थी। नौ वर्ष के अन्दर प्रशा के राजा को उसने यूरोप का सर्व शक्तिमान सम्राट बना दिया। उसी ने जर्मनी का एकीकरण पूर्ण किया और १८९० तक (इसी वर्ष उसने पद त्यागा) वह जर्मनी का सर्वोच्च सत्ताधिकारी बना रहा। विलियम द्वितीय अपने शासन काल में स्वयं देश का सर्वोच्च सत्ताधिकारी था।

सम्राट् विलियम प्रथम का शासन

सांस्कृतिक संघर्ष

जर्मनी के नवीन साम्राज्य की स्थापना होते ही यहाँ संस्कृति की रक्षा का एक संघर्ष आरम्भ हुआ, जो रोमन कैथोलिक चर्च एवं सरकार के मध्य अनेक वर्षों तक निरन्तर चलता रहा। आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ युद्ध करके जर्मनी ने धार्मिक संघर्ष मोल लिये, क्योंकि ये दोनों राज्य कैथोलिक धर्मावलम्बी थे और

एक धार्मिक संघर्ष

परामर्श समिति है और इसे नये नियम बनाने में ही कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं और शासन की यथार्थ सत्ता बुंडेसराट तथा प्रशा के राज्य में ही निहित हैं।

राजतन्त्रों का एक संघ

जर्मन साम्राज्य एक विचित्र प्रकार का संघीय राज्य है, क्योंकि इसमें विभिन्न क्षेत्रफलों एवं जनसंख्या के अनेक राजतन्त्र सम्मिलित हैं। इसमें एक ओर तो प्रशा का राज्य है जिसकी जनसंख्या ४ करोड़ है और जिसका क्षेत्रफल संपूर्ण साम्राज्य का दो तिहाई भाग है और दूसरी और इसमें शाम्बरलिप का राज्य है जिसमें केवल ४५ हजार व्यक्ति रहते हैं। साम्राज्य में तीन गणतंत्र हैं, जिनके नाम ल्यूवैक, ब्रिमेन तथा हैम्वर्ग है। इसके शेष समस्त राज्य राजतंत्रवादी हैं। सभी राज्यों के अपने-अपने बिधान एवं विधान सभाएँ हैं और बहुत कम विधान उदारवादी हैं। इसके अतिरिक्त साम्राज्य की विधान सभाओं में विभिन्न राज्यों का महत्व भी एक जैसा नहीं है और बड़े राज्यों को अधिक महत्व और छोटे राज्य को कम महत्व प्राप्त है। प्रशा, जिसका क्षेत्रफल एवं जनसंख्या अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत अधिक है का साम्राज्य में भी अधिक महत्त्व है।

चांसलर अथवा प्रधानमंत्री

सम्राट् का मुख्य प्रतिनिधि चांसलर है और यह एक साधारण मंत्री की भाँति इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री से पूर्णतया भिन्न है। सरकार के समस्त पदाधिकारियों से उसका पद एवं महत्व अधिक है। जर्मनी में न तो राजकीय मंत्रिमण्डल है और न ही वहाँ उत्तरदायी शासन व्यवस्था है। चांसलर की नियुक्ति स्वयं सम्राट् द्वारा होती है, वह उसे पदच्युत कर सकता है और उसी के लिये वह अपने कर्त्तव्य पालन के लिये उत्तरदायी रहता है। इसके अतिरिक्त वह किसी भी प्रकार से बुंडेसराट अथवा राइखटाग के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। यहाँ तक कि यदि दोनों सभाएँ उसके प्रस्तावों को अस्वीकार कर दें या उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर दें, तो भी वह पदच्युत नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, उसकी उदासीनता अथवा पदच्युत होना पूर्णतया सम्राट की इच्छा पर निर्भर है।

जर्मनी में विदेशमंत्री, गृहमंत्री तथा शिक्षामंत्री आदि अन्य मंत्री भी होते है; किन्तु अमरीका अथवा इंगलैण्ड की भाँति ये मंत्रिमंडल के सदस्य नहीं होते हैं। वे चांसलर के अधीनस्थ अधिकारियों की भाँति एवं उसकी इच्छानुकूल अपना कार्य करते हैं और उन्हें राइखटाग के सदस्य किसी प्रकार से भी पदच्युत नहीं कर सकते। चांसलर के विस्तृत अधिकार हैं किन्तु उसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट द्वारा होने के कारण वह उसकी अपेक्षा कम अधिकार रखता है। विस्मार्क की भाँति कोई भी चांसलर साम्राज्य का एक अति महत्त्वपूर्ण सदस्य बन सकता है अथवा विस्मार्क के उत्तराधिकारियों की भाँति वह सम्राट का एक प्रतिनिधि मात्र ही रह सकता है। विलियम प्रथम की अपेक्षा विस्मार्क का महत्त्व अधिक था, किन्तु सम्राट विलियम द्वितीय स्वयं चांसलर भी रहना चाहता था, अपने चांसलरों की अपेक्षा वह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था।

जर्मन साम्राज्य की यही विशेषता एक अत्यंत विचित्र समस्या है। इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली, वेलजियम, हालैण्ड और स्कैण्डनेविया के राज्यों की अपेक्षा यहाँ मन्त्रिमण्डल सम्राट् के सहयोग पर अधिक निर्भर है। इसके अतिरिक्त यहाँ की

कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का कोई नियन्त्रण नहीं है। यहाँ के मंत्रियों को व्यवस्थापिका सभा अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा पदच्युत नहीं कर सकती। जर्मनी का शासन एक संविधानिक शासन है क्योंकि इसका एक लिखित विधान है। यह एक संसदीय सरकार से वंचित है, क्योंकि देश के शासन प्रवन्ध में संसद का कोई भी महत्त्व नहीं है। प्रशासकीय महत्व जर्मनी के सम्राटों, विशेषकर प्रशा के सम्राट को प्राप्त है।

जर्मनी में उत्तरदायी शासन व्यवस्था का अभाव

बिस्मार्क की एक महान् सफलता संसद पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना थी। उसने अपने पद के प्रभाव को बढ़ाकर देश में उत्तरदायी शासन के विकास को रोक दिया। स्वयं बिस्मार्क इस विधान का निर्माण था और जहाँ तक विधान के अनुसार लोकमत के महत्त्व का सम्बन्ध है यह फ्रैंकफोर्ट की सभा द्वारा निर्मित १८४८ के विधान से भी वहुत कम महत्त्वपूर्ण हैं।

बिस्मार्क द्वारा संसदीय संस्थाओं पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना

जर्मनी सम्राट प्रुशिया का राजा होने के कारण विशेष शक्तियों एवं अधिकारों का स्वामी है। वह राजा होने के कारण ही सम्राट हो सकता है। राजा के रूप में ही उसके विस्तृत कार्य हैं और राजा और सम्राट के रूप में उसके कार्य इतने समरूपी हैं कि उनमें किसी प्रकार की भिन्नता नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में प्रुशिया का राजा एक निरंकुश सम्राट होता है। प्रशा की संसद तथा संघीय व्यवस्थापिका सभा उसकी इच्छाओं का किसी भी प्रकार से (१८७१ के पश्चात्) विरोध नहीं कर सकती। प्रशा एवं जर्मनी दोनों में उत्तरदायी सरकार का पूर्ण अभाव है।

प्रजा के शासक की विस्तृत शक्तियाँ

१८७१ के पश्चात् जर्मनी में तीन सम्राट हुए है। विलियम प्रथम ने १८७१ से १८८८ तक, फ्रेडरिक तृतीय ने मार्च से जून १८८८ तक और विलियम द्वितीय ने १८८८ से १९१८ तक शासन किया है। १८७१ के पश्चात् यहाँ का इतिहास स्वाभाविक रूप से दो भागों, विलियम प्रथम का शासन काल तथा विलियम द्वितीय का शासन काल, में विभाजित होता है। प्रथम काल में जर्मनी का शासक वास्तविक रूप में चांसलर प्रिंस विस्मार्क था, जिसकी सत्ता एवं महत्ता असीमित थी। नौ वर्ष के अन्दर प्रशा के राजा को उसने यूरोप का सर्व शक्तिमान सम्राट बना दिया। उसी ने जर्मनी का एकीकरण पूर्ण किया और १८९० तक (इसी वर्ष उसने पद त्यागा) वह जर्मनी का सर्वोच्च सत्ताधिकारी बना रहा। विलियम द्वितीय अपने शासन काल में स्वयं देश का सर्वोच्च सत्ताधिकारी था।

सम्राट् विलियम प्रथम का शासन

सांस्कृतिक संघर्ष

जर्मनी के नवीन साम्राज्य की स्थापना होते ही यहाँ संस्कृति की रक्षा का एक संघर्ष आरम्भ हुआ, जो रोमन कैथोलिक चर्च एवं सरकार के मध्य अनेक वर्षों तक निरन्तर चलता रहा। आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ युद्ध करके जर्मनी ने धार्मिक संघर्ष मोल लिये, क्योंकि ये दोनों राज्य कैथोलिक धर्मावलम्बी थे और

एक धार्मिक संघर्ष

जर्मनी एक प्रोटेस्टैण्ट मतावलम्बी देश था। १८७० में पोप की राजनीतिक सत्ता को एक गहरा आघात पहुँचा और इससे जर्मनी के अनेक कैथोलिक नागरिक क्रुद्ध एवं नष्ट हो उठे। उन्होंने जर्मनी में केन्द्र नामक एक दल की स्थापना की और इसका लक्ष्य पोप की राजनीतिक सत्ता की पुनः स्थापना तथा कैथोलिक चर्च के हितों की रक्षा करना था। राइखटाग के प्रथम निर्वाचन में इस दल के ६३ सदस्य निर्वाचित हुए। बिस्मार्क देश की राजनीतिकता में एक पुरोहितवादी दल का उत्थान सहन नहीं कर सकता था। उसका विचार था कि पादरियों को राजनीति से अलग रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त वह इस बात को मानने के लिये कभी भी तैयार न था, क्योंकि देश की कुछ समस्याओं में राज्य की अपेक्षा चर्च, विशेषकर कैथोलिक चर्च का अधिकार अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी कारण उसने इस दल के विकास का डटकर विरोध किया।

सांस्कृतिक संघर्ष के कारण

इस संघर्ष का तात्कालिक कारण स्वयं कैथोलिकों का पारस्परिक विरोध था। वैटिकन सभा की १८७० की इस घोषणा का विरोध कि पोप किसी भी समस्या में त्रुटि नहीं कर सकता स्वयं जर्मन पादरियों ने किया था, किन्तु अब सब पादरियों को विवश किया जाने लगा कि वे पोप के इस अधिकार को स्वीकार न करें। कहा जाता है कि कुछ पादरियों ने तो इसे मान लिया किन्तु इने गिने पुरोहितों ने इसे मानने से इन्कार कर दिया। ये पादरी पोप के अधिकारों के समर्थक थे और अपने को ओल्ड कैथोलिक कहते थे। किन्तु ये लोग सरकार की नवीन आज्ञा को अपने धार्मिक सिद्धान्तों में सम्मिलित करने के लिये तैयार न थे। जिन पादरियों ने तत्सम्बन्धी सरकारी आदेशों का पालन करना चाहा, उन्होंने सरकार से माँग की कि पुराने पादरी पदच्युत कर दिये जाएँ और उन्हें पाठशालाओं एवं विश्वविद्यालयों में काम करने से पूर्ण रूप से रोक दिया जाए। प्रशा की सरकार ने उनकी इस माँग को स्वीकार न किया। फलस्वरूप दोनों वर्गों में एक संघर्ष आरम्भ हो गया, जिसने शीघ्र ही एक भीषण युद्ध का रूप धारण कर लिया।

फाक अधिनियम

सर्वप्रथम केन्द्रीय संसद ने पादरियों के शिक्षा सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिये और उन्हें अध्यापन कार्य से रोक दिया। तत्पश्चात् १८७२ में सरकार ने जैज्यूटों को जर्मनी से निर्वासित कर दिया। इस सम्बन्ध में पारित किये जाने वाले सभी नियमों की अपेक्षा फाक अथवा मई अधिनियम जो १८७३-१८७४ और १८७५ के मई के महीने में बारी-बारी से पारित किये गये, अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बिस्मार्क ने इन नियमों की इस आधार पर पुष्टि की कि यह संघर्ष धार्मिक न होकर राजनीतिक था और देश के शासन प्रबन्ध में चर्च के प्रभाव की अपेक्षा राजसत्ता का प्रभाव अधिक श्रेष्ठ होना चाहिए। उसका विश्वास था कि इस आन्दोलन एवं संघर्ष को तीव्रतर बनाने में उन लोगों का हाथ था जो जर्मनी की एकता के विरोधी थे। इसलिये वह उस आन्दोलन को पूर्ण रूप से कुचल देना चाहता था जो देश की एकता के लिये घातक सिद्ध हो सकता था। इन मई अधिनियमों से सरकार की शक्ति और अधिकारों में विशेष वृद्धि हो गयी और विशेषकर शिक्षा एवं चर्च सम्बन्धी समस्त नियुक्तियाँ अब सरकार द्वारा होने लगीं। रोमन कैथोलिक चर्च को शासन प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने और नागरिकों अथवा अधिकारियों को पीड़ित करने से पूर्ण रूप से रोक दिया गया। सरकार ने

यह भी व्यवस्था कर दी कि सभी पादरी राज्य की ओर से निर्धारित एक विशेष परीक्षा उत्तीर्ण करें, एक राजकीय विश्वविद्यालय में तीन वर्ष तक धर्मशास्त्र का अध्ययन करें, समस्त कैथोलिक शिक्षा केन्द्रों का राज्य द्वारा नियुक्त निरीक्षक निरीक्षण करने लगे। अब सरकार ने समस्त पादरियों की नियुक्ति एवं पदच्युक्ति का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। एक अन्य नियम द्वारा समस्त नागरिकों एवं पादरियों के लिये 'सिविल मैरिज' अनिवार्य घोषित कर दी गयी। इससे पादरियों का यह अधिकार समाप्त हो गया कि वे एक कैथोलिक पुरुष अथवा स्त्री का एक प्रोटेस्टैण्ट स्त्री अथवा पुरुष से विवाह रुकवा दें। सारांश में इन नियमों द्वारा कैथोलिकों का जर्मनी में सम्पूर्ण प्रभाव समाप्त कर दिया गया।

चर्च और राज्य में संघर्ष

इन नियमों के विरुद्ध कैथोलिकों ने क्रुद्ध होकर अपना रोष प्रकट किया। पोप ने इन्हें महत्त्वहीन घोषित करते हुए मानने से इन्कार कर दिया। पुरोहितों ने इनके पालन न करने की प्रतिज्ञा कर ली और पोप के स्वामिभक्त समर्थक पुरोहितों के इस विरोध में पूर्ण सहयोग देने के लिये भारी संख्या में तैयार हो गये। सरकार ने भी इन नियमों को कार्यान्वित करने के लिये कठोरता से काम लिया और इनका पालन न करने वाले पुरोहितों को अनेक प्रकार के दण्ड देने की नीति अपना ली। अनेक पुरोहितों से अर्थ दण्ड लिया गया, असंख्य पादरियों को कारावास में डाल दिया गया, कुछ का वेतन रोक लिया गया और अनेक कैथोलिक पादरियों को देश-निर्वासित कर दिया गया। सरकार और चर्च का यह संघर्ष शीघ्र ही देशव्यापी हो गया और अनेक नगर, ग्राम, पाठशालाएँ और विश्वविद्यालय इस संघर्ष के केन्द्र बन गये। इस संघर्ष एवं कलह ने जर्मनी की राजनीति को अनेक वर्षों तक प्रभावित रखा और जनसाधारण के सामान्य रूप से चलने वाले जीवन में बाधाएँ उपस्थित कीं। १८७७ के संसदीय निर्वाचन में कैथोलिकों के दल अथवा सेण्टर के ९२ सदस्य रायखस्टैग में पहुँच गये। कहा जाता है कि इस सदन में इस दल का इस समय बहुमत हो गया। स्पष्ट है, कि बिस्मार्क और जर्मनी की सरकार की चर्च सम्बन्धी यह नीति पूर्णतया विफल सिद्ध हो रही थी।

बिस्मार्क का पीछे हटना

इसी मध्य सामाजिक एवं आर्थिक कुछ अन्य ऐसी महत्त्वपूर्ण समस्याएँ उठ खड़ी हुईं कि बिस्मार्क चर्च और राज्य के इस संघर्ष को समाप्त करके अपना सारा ध्यान इनके समाधान की ओर लगाना चाहता था। सम्राट विलियम प्रथम एवं बिस्मार्क इस समय विशेषकर उन्नति करते हुये समाजवादी दल के प्रभाव को क्षीण करने के इच्छुक थे। इसी कारण बिस्मार्क ने अपने चर्च से संघर्ष में पीछे हटने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त १८७८ में पोप पीयस नवम की मृत्यु एवं पोप लियो त्रयोदश के इस पद पर आसीन होने की घटना ने बिस्मार्क के कार्य को और भी सुगम बना दिया। यह नवीन पोप स्वयं भी एक दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ एवं शान्तिप्रिय राजनीतिज्ञ था। ऐसी परिस्थिति में बिस्मार्क ने चर्च सम्बन्धी अपनी नीति को बदलने का विचार किया। उसने शनैः-शनैः पुरोहितों के विरुद्ध समस्त कठोर नियम भंग कर दिये। केवल नागरिक विवाह की प्रथा पूर्ववत् बनी रही। परिणामतः कैथोलिक पुरोहितों ने उसके शेष समस्त शासन सम्बन्धी कार्यों में उसे सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही राज्य और चर्च में संधि हो गई। इस दीर्घकालीन धार्मिक संघर्ष का एक स्थायी

परिणाम यह हुआ कि सेण्टर अथवा कैथोलिक दल राजनैतिक दृष्टिकोण से पहले की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो गया और आज भी इस प्रोटेस्टैण्ट देश में यह दल अन्य समस्त दलों से अधिक प्रभावशाली है।

बिस्मार्क तथा समाजवाद

१८७८ में बिस्मार्क ने समाजवादी दल के बढ़ते हुये प्रभाव को अपने लिए घातक समझकर इसे महत्त्वहीन बनाने की ओर अपना पूरा ध्यान लगाया। इस दल की स्थापना १८४८ ई० में एक जर्मनी के समाजवादी फर्नीनेण्ड लसाले ने की थी। यह तत्कालीन फ्रांसीसी समाजवाद का एक कट्टर समर्थक था। शीघ्र ही इस दल ने अपना विकास आरम्भ कर दिया; किन्तु जर्मनी की तत्कालीन सरकार ने इसे कठोर एवं दमनकारी नीति से महत्त्वहीन बनाकर १८६३ ई० तक इसे विकसित न होने दिया। १८६५ में लास्ले ने सोशल डिमोक्रेट नामक एक समाचार-पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। कार्ल मार्क्स नामक एक अन्य समाजवादी नेता ने इस दल के विरोध में और इससे कुछ भिन्न एक दूसरे समाजवादी दल की स्थापना की। ये दोनों दल १८७५ ई० तक एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बने रहे; किन्तु इसी वर्ष गोथा नामक स्थान पर इन दोनों दलों में एक संधि द्वारा परस्पर एकता स्थापित हुई और दोनों ने अपने लिये समान कार्यक्रम निश्चित कर लिया। इन दलों ने देश की तत्कालीन आर्थिक प्रणाली की निन्दा करते हुए घोषित किया कि देश के उत्पादन के साधनों पर धनाढ्यों का अधिकार सर्वथा अनुचित था। उन्होंने सरकार से माँग की कि उसे स्वयं इन साधनों पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहिये और उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण करके देश की अधिकांश जनता अर्थात श्रमिकों का कल्याण करना चाहिये।

समाजवाद का विकास

समाजवादियों की दृष्टि में देश की उपज के वास्तविक उत्पादक श्रमिक थे। इसी कारण वे श्रमिकों को ही समाज और राज्य में समस्त आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार दिलवाना चाहते थे। दूसरे शब्दों में, उनका उद्देश्य एक स्वतंत्र राज्य एवं समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित एक नवीन समाज की स्थापना करना था। यह कहना पूर्णतया उपयुक्त होगा कि उस समय जर्मनी न तो एक स्वतन्त्र राज्य ही था और न ही इसमें एक समाजवादी शासन-व्यवस्था प्रचलित थी। जर्मनी का स्वतंत्र राज्य निर्माण करने के लिये समाजवादियों ने सार्वजनिक मताधिकार की माँग की। उनकी माँग थी कि स्त्री-पुरुष सभी को जो २० वर्ष से अधिक आयु के हों, मताधिकार मिलना चाहिये। इसके अतिरिक्त गुप्त मतदान की व्यवस्था, समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता, सभाएँ करने की स्वतंत्रता और वस्तुतः प्रजातंत्र के दृष्टिकोण से नागरिकों के राजनीतिक अधिकार का विस्तार, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा और कुछ अविलम्ब किये जाने वाले आर्थिक और सामाजिक सुधार जैसे कि प्रगतिपूर्ण आयकर, श्रमिकों के काम करने का न्यायोचित समय, रविवार का अवकाश, अल्पवयस्कों से श्रम लिये जाने को अवैध घोषित करना तथा उसके साथ ही साथ स्वास्थ्य और नैतिकता को क्षति पहुँचाने वाली स्त्रियों को श्रमिकों के रूप में कार्य देने की व्यवस्था, श्रमिकों के जीवन एवं स्वास्थ्य के संरक्षण सम्बन्धी नियम और कारखानों तथा

समाजवादियों की माँगें

खानों का नियमित निरीक्षण आदि का समुचित प्रवन्ध होना चाहिये। १८७१ में समाजवादियों ने राइखटाग में जिसमें तीन वर्ष बाद प्रतिनिधियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गई दो प्रतिनिधियों का निर्वाचन कर लिया गया। १८७१ में यह प्रतिनिधि बढ़कर ९ हो गये और उसके भी बाद १८७७ में इनकी संख्या १२ हो गई। प्रतिनिधियों द्वारा पाये गये मत १८७१ में १२४, ६५५; १८७४ ई० में ३५१, ९५२ तथा १८७७ ई० में ४९३, ८८८ थे।

शासक वर्गों की चिन्ता

इस दल के बढ़ते हुए विकास ने राजतंत्रवादी तथा कुलीनों के पक्षपाती जर्मनी के शासक वर्गों को अप्रत्याशित रूप में चिंतित कर दिया। ये शासक वर्ग तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के पक्षपाती थे जोकि स्वयं उनके लिये घातक थीं। बिस्मार्क दीर्घ-काल से ही समाजवादियों का विरोधी रहा था, क्योंकि कुछ तो उसकी शिक्षा-दीक्षा और वातावरण इसी प्रकार का था और कुछ समाजवादियों की प्रतिक्रियापूर्ण घोषणाओं ने उसे इस ओर अग्रसर किया था इन समाजवादी नेताओं जैसे लीनक्नैश ओर बावेल ने उत्तरी जर्मन संघ की स्थापना, फ्रांस के साथ युद्ध तथा एलसेस और लोरेन पर अधिकार स्थापित करने का विरोध किया था। समाजवादियों ने जर्मनी के वर्तमान शासन का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रत्यक्ष विरोध किया। अब उस व्यक्ति के विरुद्ध जिसने इस शासन की स्थापना की और जिसने अपना प्रायः समस्त जीवन ही उसके संगठन में लगा दिया, भयंकर हिंसात्मक संघर्ष करना एक ऐसी समस्या थी जिसके समाधान के लिए उन्हें कुछ समय प्रतीक्षा करना वांछनीय था। पुनश्च, समाजवादी दल एक प्रजातांत्रिक प्रतिक्रियावादी दल था जबकि बिस्मार्क को प्रजातन्त्र से घृणा थी। जनमत के इन दो परस्पर विरोधी तत्वों में संघर्ष अनिवार्य था। बिस्मार्क ने समाजवादियों का दमन करने का निश्चय कर लिया था। इसके लिये उसे दो मार्ग अपनाने थे—समाजवादी आन्दोलन का दमन तथा श्रमिकों की दशा में लाभदायक सुधार, क्योंकि उसका यह विश्वास था कि उनकी यह दशा समाजवादी आन्दोलन उन्हें समाजवादियों के झूठे तथा भ्रामक सिद्धान्तों को सुनने का अवसर देती थी।

समाजवादियों के दमन का कठोर प्रयास एवं तत्सम्बन्धी कानून

सर्वप्रथम दमन की कार्यवाही की गई। अक्टूबर १८७८ में पूंजीवादी संसद द्वारा एक ऐसा अत्यन्त कठोर नियम बनाया गया जिसका लक्ष्य था—समस्त समाज-वादी प्रचार को पूर्णतया समाप्त कर देना। "वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का विरोध" तथा "समाजवादी प्रवृत्तियों" को प्रकट करने वाले समस्त संगठनों, सभाओं और प्रका-शनों को वर्जित कर दिया गया। इस नियम के अन्तर्गत पुलिस कर्मचारी को हस्तक्षेप करने, बन्दी बनाने तथा देश-निष्कासन के विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये। जहाँ आवश्यक हो, सैनिक नियम को लागू करने की अनुमति थी, जिसका तात्पर्य यह था कि समाजवादियों के सम्बन्ध में उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सारे अधिकारों का सामान्य न्यायालयों द्वारा संरक्षण किया जाना अब समाप्त हो गया। यदि किसी को भी समाजवादी होने के अपराध अथवा उस पर इस प्रकार की शंका के कारण पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता तो पुलिस के केवल एक कर्मचारी के आदेश से ही उसे जर्मनी से निष्कासित कर दिया जा सकता था। यह कानून चार वर्ष के लिए बनाया गया

था। बाद में इसका दो बार नवीकरण किया गया और इस प्रकार यह १८९० ई० तक लागू रहा। इस नियम को कठोरतापूर्वक व्यवहृत किया जाता रहा। स्वयं समाजवादियों द्वारा दिये गये आँकड़ों के अनुसार इस समय में १४०० प्रकाशनों का दमन किया गया, १५०० व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया गया और ९०० व्यक्तियों को देश निष्कासित किया गया। इस सम्बन्ध में लासेल की पुस्तकों का किसी वाचनालय में साधारण व्यक्ति द्वारा अवलोकन करना भी सरल नहीं है।

बिस्मार्क के एक जीवनी लेखक ने ही कहा था कि यह नियम अत्यन्त ही निराशापूर्ण है और "अब हम सरकार को वे पुराने ढंग ही अपनाते हुए देखते हैं जिन्हें कि मेटर्निख ने ५० वर्ष पूर्व लागू किया था।[1] सरकार द्वारा किये गये ये सारे प्रयास असफल ही सिद्ध हुए।

सरकार की असफलता

१२ वर्ष तक तो समाजवादी नेता गुप्त रूप में ही प्रचार करते रहे। अब यह एक सुस्पष्ट बात थी कि इन समाजवादियों की शक्ति उनके विचारों और अश्रमिकों की आर्थिक दशाओं में ही सन्निहित थी न कि उनके वाह्य संगठनों में जिन्हें विघटित किया जा सकता था। उनके लिये स्विट्जरलैण्ड से एक साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित किया गया, जिसके पढ़ने की पुलिस द्वारा पूरी रोक-थाम होने पर भी प्रति सप्ताह जर्मनी के सहस्त्रों श्रमिकों के हाथ में उसकी असंख्य प्रतियाँ किसी न किसी प्रकार पहुँच जाती थीं। उनका दमन, जैसा कि रोमन कैथोलिकों के साथ हुआ था। उन्हें उत्तरोत्तर दृढ़ संकल्प एवं सक्रिय बना रहा था। पहले तो यही प्रतीत हुआ कि यह नियम उनके प्रतिपादकों की लक्ष्यपूर्ति करने में सफल रहेगा क्योंकि इसके ठीक बाद में होने वाले निर्वाचनों में समाजवादियों ने पहले की भाँति ४,९३,००० अथवा उससे अधिक मत न पाकर केवल ३,१२,००० मत ही प्राप्त किये। उसके ठीक विपरीत स' १८८४ ई० के निर्वाचनों में उन्हें ५,४९,००० मत मिले तथा १८८७ में ७,६३,००० और १८९० ई० में १,४२७,००० मत प्राप्त हुए जिसके फलस्वरूप रायखस्टैग में उनके ३५ सदस्य निर्वाचित हो गए। १८९० ई० में सरकार ने अपने दमनकारी नियमों का नवीकरण न किया। बिस्मार्क का विरोध बढ़ गया था और संसदीय क्षेत्र में जिन समावादियों ने सफलता पाई थी, उनकी संख्या अब पहले से तीन गुनी हो चुकी थी। विस्मार्क अपने इस मौलिक विश्वास में दृढ़ था कि प्रबल प्रतिद्वन्दियों को शान्तिपूर्ण ढंगों से नहीं, प्रत्युत बल प्रयोग द्वारा ही भली-भाँति दबाया जा सकता है। उसने, जैसा कि सांस्कृतिक संघर्ष में किया था, यहाँ भी एक जटिलतम प्रश्न को सुलझाने के लिए, स्वेच्छाचारपूर्ण एवं निरंकुश ढंगों को अपनाकर पुलिस-कार्यवाही ही की और इस प्रकार व्यक्ति के अत्यन्त मूल्यवान अधिकारों जैसी कि अन्यान्य देशों की धारणा थी, को राजतन्त्रवाद की स्वार्थ-पूर्ति के लिये वलिदान कर दिया।

समाजवादी दल की निरन्तर वृद्धि

इतना होते हुए भी विस्मार्क केवल दमनकारी नियमों को ही पारित करवाकर सन्तुष्ट न रह सका; प्रत्युत उसने श्रमिकों के पक्ष में कुछ आवश्यक नियमों को भी पारित करवाकर उन्हें समाजवादी दल से पृथक करवाने का भी प्रयास किया।

---

1. दे०—'हेडलाम', "विस्मार्क", पृष्ठ-४०९।

वह उन्हें यह विश्वास दिलाता रहा कि राज्य सरकार उनकी सच्ची हितचिन्तक है और उनके हित-साधन में विशेष रुचि लेती है।

बिस्मार्क जिस विधि से श्रमिकों की दशा में सुधार करने का आश्वासन देता था, वह यह थी कि यह मानव जीवन को दुर्भाग्यजनक बुराईयों से बचाने के लिये विभिन्न प्रकार की बीमा योजनाएँ लागू करना चाहता था।

विभिन्न प्रकार की बीमा-योजनाएँ

अतः उसने श्रमिक वर्ग को एक विस्तृत बीमा प्रणाली के द्वारा श्रमिकों की बीमारियों की दुर्भाग्यजनक घटनाओं, वृद्धता और क्षमता शून्य होने की दशाओं से उन्हें संरक्षण प्रदान करने की चेष्टा की। यह उसकी हार्दिक इच्छा थी कि उपर्युक्त दशाओं में अपनी क्षमता को खो बैठने वाले श्रमिक को आर्थिक विपन्नता की आशंकाओं में न छोड़ देना चाहिये प्रत्युत उसके लिये राज्य द्वारा पेन्शन दी जानी चाहिये। उसकी इस नीति को राजतन्त्रवादी सामाजिक प्रणाली का नाम दिया गया और उसका राइखटाग में तथा उसके बाहर के प्रभूत व्यक्तियों द्वारा प्रबल विरोध किया गया। वह अपनी इस नीति को कालान्तर में, १८८३ के रोग-बीमा कानून, दुर्घटना बीमा कानून (१८८४-८५) और वृद्धावस्था बीमा कानून (१८८९) द्वारा शनैः शनैः ही क्रियान्वित कर पाया। ये नियम इतने जटिल थे कि इनका यहाँ विस्तृत विवरण देना ही कठिन है। तथापि यह निश्चित है कि बिस्मार्क ने राजतन्त्रवादियों की निरंकुश नीति की सामान्य उपेक्षा करके श्रमिक वर्ग की दुर्दशा को सुधारने का ठोस पग उठाया।

राजतन्त्रवादी सामाजिक नीति

सामाजिक माँगों को पूरा करने में बिस्मार्क का यह एक महान् पग था। जिसकी १९वीं शताब्दी में सर्वोपरि महत्ता स्वीकार की जाती है। इन सुधारों का वह प्रथम आदर्श प्रतिपादक था। उसके विचार अन्यान्य विदेशों में अध्ययन किये गए और कुछ मतों में तो उनका अनुसरण भी किया गया।

सामाजिक सुधारों का प्रथम आदर्श प्रतिपादक

इन नियमों को पारित होने में भी समाजवादियों ने उसके साथ सहयोग न किया क्योंकि वे इन्हें अत्यन्त ही स्वल्प रूप में उपयोगी समझते थे और इन्हें अपनी सामाजिक बुराइयों के निराकरण के लिये सर्वथा अपर्याप्त समझ कर इनकी तीव्र आलोचना करते थे। तथापि बिस्मार्क को उनकी कोई आवश्यकता भी न थी क्योंकि वे तो समाजवादी लोकतन्त्र के समर्थक थे और वह (बिस्मार्क) स्वतः प्रजातंत्र को घृणा की दृष्टि से देखता था। एक शक्तिशाली शासक द्वारा नियंत्रित राजकीय स्तर का समाजवाद कुछ और ही वस्तु थी किन्तु लोकतन्त्र में विश्वास रखने वाले लोगों द्वारा समाजवाद का विकास उससे सर्वथा भिन्न था। बिस्मार्क ने श्रमिकों के दुर्घटना बीमा कानून के पारित होने के साथ ही साथ समाजवादियों के विरुद्ध अपने पूर्व निर्मित नियम का नवीकरण करने का भी प्रस्ताव रखा। उसकी यह भविष्यवाणी, कि समाजवादी अपनी प्रचार योजना में असफल हो जायेंगे, सर्वथा भ्रामक ही सिद्ध हुई। यह दल अब अत्यधिक प्रबल हो गया है किन्तु जब से

समाजवादियों का बिस्मार्क के साथ असहयोग

उसने इसके दमन का कार्य आरम्भ किया इसका कोई प्रतिफल भी ठोस रूप में न सामने आ सका और समाजवादी अवाध रूप में शक्तिशाली होते गए ।

बिस्मार्क और उसकी संरक्षण नीति

सन् १८७९ ई० में बिस्मार्क ने जर्मनी की आर्थिक एवं औद्योगिक उन्नति के लिये इन क्षेत्रों में अत्यन्त विस्तृत परिवर्तन किये । इस हेतु उसने संसद को इस दिशा में प्रभावित किया कि वह संकुचित व्यापार प्रणाली और सापेक्षिक स्वतन्त्र व्यापार के उन्मूलन का नियम पारित करे तथा देश में उच्च दर के व्यापार-कर और व्यापार के अधिकाधिक संरक्षण सम्बन्धी नियम बनाए । उसका इस प्रयास में द्वैध-मंतव्य था । एक ओर तो वह साम्राज्य की आय से वृद्धि करना चाहता था तथा इसके दूसरी ओर वह स्थानीय व्यक्तिगत उद्योगों को प्रोत्साहित करना चाहता था । संरक्षण नीति को अपनाने में वह अर्थ-विज्ञों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों द्वारा प्रभावित न था प्रत्युत इसमें वह तथ्यों और वास्तविकताओं पर विश्वास रखता था । उसने यह अपनी आँखों से देखा था कि सारे यूरोप में जहाँ केवल इंगलैंड ही ऐसा अकेला राष्ट्र था जो स्वतन्त्र व्यापार प्रणाली का प्रतिपादन करता था, वहाँ फ्रान्स, आस्ट्रिया, रूस और संयुक्तराज्य अमरीका इत्यादि ऐसे अनेक देश थे जो संरक्षण नीति के अत्यधिक पक्षपाती थे ऐसी दशा में जर्मनी के लिये यह सर्वथा अनुपयुक्त था कि वह एक ऐसी सामान्य त्रुटि के कारण ही सदैव अपने व्यापारिक प्रगति से वंचित बना रहे । उसका कथन था कि अपनी संकुचित व्यापार-कर प्रणाली के कारण जर्मनी दूसरे अधिकाधिक उत्पादन करने वाले देशों की औद्योगिक वस्तुओं की खपत का एक अभूतपूर्व साधन बना हुआ है । अतः अब जर्मनी के उद्योग अवश्य संरक्षित किये जाने थे जिससे कि वे अपने उत्पादन के लिये कम से कम स्थानीय मण्डियाँ तो उपलब्ध कर सकें । चूँकि यह संरक्षण नीति अन्य देशों और विशेषकर संयुक्तराज्य अमरीका में लाभदायक रूप में प्रतिफलित हुई थी, इस कारण, उसने अपने देशवासियों में इसी का अनुगमन करने पर बल दिया ।

बिस्मार्क को अपने तत्सम्बन्धी नियम निर्माण कार्य में कुछ कठिनाइयों का सामना करने के साथ-साथ सफलता मिली । जर्मनी ने उस व्यापार संरक्षण की नीति में प्रवेश किया, जिसने विस्तृत होकर आधिकाधिक उद्योगों को क्षेत्राधिकार में उन्मीलित कर लिया और यह अभी तक प्रचलित है । बिस्मार्क का विश्वास था कि जर्मनी को शक्तिशाली बनने के लिये धन सम्पन्न होना भी आवश्यक था जो केवल औद्योगीकरण द्वारा ही सम्भव था और वह उद्योग व्यवस्था तभी स्थायी रख सकता था जबकि वह उसका यथोचित संरक्षण कर सके । यह व्यवस्था शनैः-शनैः ही क्रियान्वित की जा सकी क्योंकि वह अपनी सम्पूर्ण योजना को तत्क्षण ही लागू न कर सकता था । व्यापार-कर नीति से वह जर्मनवासियों को स्थानीय मण्डियाँ उपलब्ध कराने का आश्वासन देना चाहता था । उसको इस चेष्टा में न केवल विस्तृत सफलता ही मिली प्रत्युत इसके प्रदत्त साधनों द्वारा विदेशी मण्डियों का क्षेत्र भी बढ़ गया । विदेशी राष्ट्रों द्वारा सुविधाएँ मिलने के उपलक्ष में उनका हित साधन करने जर्मनी ने अन्यान्य देशों में अपनी औद्योगिक वस्तुएँ भेजने का वह सुअवसर भी प्राप्त कर लिया जो कि उन्हें अभी तक अनुपलब्ध रहा था । १८८० ई० के बाद जर्मन उद्योगों की प्रशंसनीय वृद्धि प्रायः इसी नीति का सुपरिणाम बतलायी जाती है ।

संरक्षण नीति का शनैः-शनैः लागू होना

उपनिवेश-स्थापना

औपनिवेशिक साम्राज्य का श्रीगणेश

बिस्मार्क के रानीतिक जीवन के अन्तिम वर्षों की एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध विशेषता थी—जर्मन औपनिवेशिक साम्राज्य का शिलान्यस। अपने प्रारम्भिक वर्षों में बिस्मार्क को यह विश्वास न था कि जर्मनी उपनिवेश स्थापना की दिशा में भी प्रयत्नशील है। १८७१ ई० में उसने कुछ फ्रांसीसी उपनिवेशों को युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त करना अस्वीकार कर दिया। उसका निश्चय था कि जर्मनी अपना पूर्ण संगठन करे और औपनिवेशिक प्रतिद्वन्द्विता में प्रवेश करके अन्य राष्ट्रों की शत्रुता मोल न ले। इतना होते हुए भी उपनिवेश व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा ही स्थापित किये जा रहे थे। उष्ण कटिबन्धों की वस्तुएँ जैसे कोको, काफी, रबर और मसालों का क्रय और अपनी औद्योगिक वस्तुओं का विक्रय करने के उद्देश्य से हेम्बर्ग और ब्रेमेन के शक्ति सम्पन्न एवं प्रभूत व्यापारियों ने अफ्रीका और प्रशान्तमहासागरीय द्वीपों में अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये। इन व्यक्तिगत कम्पनियों की सहायता करने के लिये सरकार से माँग भी की गई तथापि बिस्मार्क ने इस ओर कोई ध्यान न दिया व्यक्तिगत कम्पनियों के साहसिक कार्यों की अधिकाधिक रुचि ने १८८० ई० में एक विशिष्ट औपनिवेशिक दल को प्रोत्साहित किया और इसके साथ ही साथ एक ऐसे औपनिवेशिक संगठन की स्थापना भी हुई जो वर्तमान समय तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया है।

व्यापार-संरक्षण-नीति का एक सुपरिणाम

सरकार की नीति में उपनिवेशों की ओर उदासीनता से हटकर उनमें सक्रिय भाग लेने एवं उनकी स्थापना में योग प्रदान करने के परिवर्तन का कारण यह था कि अब सरकार ने व्यापारिक संरक्षण और उद्योग-व्यापार को प्रोत्साहन देने की नीति अपनायी थी। १८७९ ई० को 'व्यापार-कर' सम्बन्धी एक विधेयक के वाद-विवाद में बिस्मार्क ने कहा कि उद्योगों का संरक्षण करना वांछनीय था और इससे श्रमिकों और उनके श्रम की बढ़ती हुई उपयोगिता एवं माँग में और भी वृद्धि होगी और जर्मनी में अधिकाधिक लोग निवास कर सकेंगे। फलतः विदेश-गमन (emigration), जिसके फलस्वरूप गत कई वर्षों में देश से लाखों व्यक्ति अन्यत्र और विशेषकर संयुक्तराज्य अमरीका में जा बसे हैं, अब पूर्णतया बन्द हो जायगा। तथापि उद्योगों के अधिकाधिक विकास के लिये जर्मनी को अपनी औद्योगिक वस्तुओं के लिये नवीन मण्डियाँ स्थापित करना अत्यावश्यक था और इस हेतु उपनिवेश-स्थापना विशेष वांछनीय था। सन् १८८४ ई० में उसने व्यक्तिगत व्यापारियों और यात्रियों के कार्य में सहायता देकर एवं इस प्रकार उसको और भी विस्तृत करके, एक शक्तिशालिनी औपनिवेशिक नीति का अनुसरण किया।

अफ्रीका में प्रबल हस्तक्षेप

उस वर्ष जर्मनी ने अफ्रीका के पूर्वी दक्षिण-पश्चिमी भागों में अनेक व्यापारिक चौकियों को हस्तगत कर लिया। अतः अब राजनयिक कार्यवाही प्रारम्भ हुई जिसके फलस्वरूप आगामी कुछ ही वर्षों के अन्तर्गत जर्मनी ने इंगलैण्ड आदि अनेक देशों के साथ सन्धियाँ करके अफ्रीका के इस क्षेत्र में रहने के इच्छुक विभिन्न देशवासियों की क्षेत्रिक सीमाओं का निर्धारण कर दिया। यही अफ्रीका का विभाजन कहलाता है। जिसका वर्णन अन्यत्र[1]

---

1. दे० अध्याय—२८।

किया गया है। इस प्रकार अफ्रीका में जर्मनी ने एक बिखरा हुआ किन्तु अत्यन्त सुविशाल औपनिवेशिक साम्राज्य प्राप्त किया जिसमें 'कैमरूम' टोगोलैंड, दक्षिण-पश्चिमी जर्मनी, अफ्रीका, पूर्वी जर्मन, अफ्रीका और न्यूगिनी का कुछ भाग सम्मिलित है। कालान्तर में कुछ सेमोआ के द्वीप भी उसमें सम्मिलित हो गये। तदुपरान्त १८९९ ई० में जर्मनी ने स्पेन से ग्वाम (Guam) के द्वीप को छोड़कर कैरोलीन और लैड्रोन के द्वीपों को भी लगभग ४ लाख डालर के मूल्य पर खरीद लिया।

जर्मन उपनिवेश

त्रिराष्ट्र संश्रय

जिस समय फ्रांस के विरुद्ध युद्ध के बाद बिस्मार्क गृह क्षेत्र की समस्याओं की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा था, ठीक उसी समय उसने देश के वैदेशिक मामलों में भी इतनी ही सक्रियता पूर्वक ध्यान देना आरम्भ किया, जितना कि उसने इससे पूर्वकाल में प्रदर्शित की थी। उसने गम्भीरता और दक्षता के साथ वैदेशिक नीति की ओर ध्यान दिया जिसने कि उसके पूर्वगत राजनैतिक जीवन को विशेषता एवं श्रेय प्रदान किया था। इन तीन वर्षों में उसकी बाह्य राजनीति की महानतम सफलता थी,—त्रिराष्ट्र संश्रय की स्थापना।

त्रिराष्ट्र संश्रय

उसकी यह सफलता, उसके अन्याय राजनैतिक कार्यों की भाँति जर्मनी के एकीकरण और उसकी अधिकाधिक उन्नति से ही सम्बन्धित थी। इस संश्रय की पृष्ठभूमि वस्तुतः फ्रांकफर्ट की उस सन्धि में मिलती है। जिसने फ्रांस के भाग्य की दयनीयता का प्रारम्भ किया था। फ्रान्स से एल्सेस और लोरेन के क्षेत्रों का हस्तगत कर लिया जाना उसे प्रतिशोध युद्ध अथवा खोये हुए क्षेत्रों की प्राप्ति के युद्ध की ओर अग्रसर करने का मुख्य कारण था। १८७१ ई० तक यह यूरोप की शांति के लिए एक चिन्ताजनक भय बना रहा और इस समय में असंख्य, दुसाध्य और व्यापक बुराइयाँ उत्पन्न हुईं। अपने विजित क्षेत्रों को अपने अधिकार में सुरक्षित रखने का दृढ़ निश्चय करके विस्मार्क ने अपना ध्यान इन क्षेत्रों के सम्वन्ध में इस ओर अग्रसर किया कि उन्हें हस्तगत करने के शत्रु के सारे भावी प्रयत्न असम्भव ओर निराशापूर्ण हो जाएँ। अस्तु उसने फ्रांस की पूर्णतया ऐसी नाकेबन्दी करने का निश्चय किया कि कि वह संघर्ष के लिये एक कदम भी न हिल सके। उसकी यह उद्देश्य पूर्ति तीन यूरोपीय राज्यों के शासकों—जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस के सम्राटों के मध्य मित्रता पूर्ण सम्बन्धों की स्थापना द्वारा सम्भव हुई। कालान्तर में १८७६ और १८७८ ई० के बल्कान प्रायद्वीप सम्बन्धी भगड़ों के फलस्वरूप यह मैत्री समाप्त हो गई। इस क्षेत्र में रूस और आस्ट्रिया एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे तथापि बर्लिन सन्धि द्वारा जो विस्मार्क की अध्यक्षता में हुई, यह प्रतिद्विन्द्विता शान्त हो गई। विना किसी ओर से सहायता प्राप्त किये हुए रूस ने टर्की के साथ युद्ध किया था और उसे पराजित करके उसने उसके साथ सैन्सस्टीफेनी की संधि कर ली थी इस सम्वन्ध में उसे सारे यूरोप की मान्यता प्राप्त करने की आशा थी। इसके विपरीत जव बर्लिन की अन्तर्राष्ट्रीय संधि में उसने इसे मान्यता प्रदान करने का प्रश्न रखा तो उसने उस समय विस्मार्क जैसे राजनीतिज्ञ को आस्ट्रिया का विशिष्ट एवं अभिन्न मित्र पाया।

फ्रांस की नाकेबन्दी

बिस्मार्क एवं जर्मनी की रूस ने १८६३ ई० से लेकर १८७० ई० तक के संकट काल में गणनातीत सेवाएँ की थीं। आस्ट्रिया, जिससे बिस्मार्क अब मिल गया था, अब टर्की के गत युद्धों में कोई भाग न लेने के बावजूद भी इस लौह राजनीति के अपूर्व प्रतिपादक जर्मन चांसलर की सहायता से टर्की के क्षेत्रों में स्वयं अपना स्वार्थ स्थापित करना चाहता था। अन्त में बर्लिन सम्मेलन का परिणाम भी आस्ट्रिया के पक्ष में तथा रूस के विपक्ष में ऐसे ही हुआ। इस प्रकार बर्लिन की संधि, रूस के अपमान एवं प्रबल असन्तोष और आस्ट्रिया की अप्रत्याशित सफलता का कारण बनी, जिसे अब बोस्निया और हर्जेगोविना के क्षेत्रों को 'अधिकृत' करने की शक्ति प्रदान हुई। कोई आश्चर्य नहीं कि रूस के प्रधान मंत्री गौर्ट्चकौफ ने बर्लिन कांग्रेस को "बिस्मार्क के राजनीतिक जीवन की अंधकारमय घटना" बतलाया और अलेक्जेण्डर द्वितीय ने उद्घोषित किया कि, "बिस्मार्क अपने १८७० ई० के वादों को ही भुला बैठा था।" अपने एक मित्र राष्ट्र के साथ पक्षपात करके उसने दूसरे राष्ट्रों के साथ शत्रुतापूर्ण कार्य किया। इस रहस्य में भविष्य की दो अन्तर्राष्ट्रीय संधियों—त्रिराष्ट्र संश्रय और द्विराष्ट्र संश्रय संधि का यथार्थ अन्तर्निहित है। ये संधियाँ तत्कालीन यूरोपीय इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

इन संधियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं लाभदायक त्रिराष्ट्र संश्रय थी बिस्मार्क यह भली-भाँति समझता था कि बर्लिन संधि उसके पक्षपातपूर्ण व्यवहार में रूस अत्यधिक क्षतिग्रस्त हुआ था और अब उसके साथ समस्त मैत्री-सम्बन्ध समाप्त हो चुके थे। अतः उसने अब आस्ट्रिया के साथ एक और भी अधिक घनिष्ठतापूर्ण संधि की। इस संधि ने, जो ७ अक्टूबर १८७९ ई० को हुई, यह उपबन्ध रखा कि यदि जर्मनी अथवा आस्ट्रिया किसी पर भी रूसी आक्रमण हुआ तो वे उसका संगठित रूप में सामना करेंगे। इस हेतु वे 'अपनी समस्त सैनिक शक्ति से एक दूसरे की सहायता करेंगे और उससे पृथक रूप में कोई संधि न करके एक दूसरे के साथ मिल कर तथा सम्मिलित रूप में ही कोई समझौता करेंगे।'

आस्ट्रिया और जर्मनी के मध्य १८७९ की संधि

इसके अतिरिक्त यदि जर्मनी अथवा आस्ट्रिया में से किसी एक पर भी कोई अन्य राष्ट्र अथवा फ्रांस ही, आक्रमण करे तो उस समय उनका मित्र राष्ट्र उस समय तक तटस्थ रहेगा जब तक कि आक्रान्ता को रूसी सहायता अनुपलब्ध थी, किन्तु उसे रूस की सहायता मिल जाने की दशा में जर्मनी और आस्ट्रिया पूर्ववत् संयुक्त सैनिक-शक्ति से एक दूसरे की सहायता करेंगे और संयुक्त रूप में ही आक्रान्ता शत्रु के साथ कोई संधि कर सकेंगे। इस प्रकार १८७९ ई० की आस्ट्रिया और जर्मनी के मध्य इस सन्धि ने एक रक्षात्मक मैत्री की स्थापना की जो मुख्यतः रूस के विरुद्ध की गई थी और उससे कम अंशों में फ्रान्स के विपरीत थी। यह सन्धि पूर्णतया गुप्त थी और १८८७ ई० तक तो यह विस्तृत रूप में उद्घोषित अथवा प्रकाशित भी न की गई थी। इसी मध्य १८८७ ई० में इसमें इटली भी सम्मिलित हो गया। एक मास पूर्व फ्रान्स के ट्यूनिस को अधिकृत कर लेने के कारण वह (इटली) उससे अत्यन्त क्रुद्ध था। ट्यूनिस एक ऐसा प्रदेश था जिसमें इटली अपना उपनिवेश स्थापित करने का प्रबल इच्छुक था, किन्तु इसके विषय में बिस्मार्क ने फ्रान्स को कुछ ऐसी मंत्रणा दी कि इसे हस्तगत करे, क्योंकि वह चाहता था कि इस प्रकार फ्रान्स का एक और शत्रु तैयार हो जायगा। इस प्रकार उसने इटली को अपने मित्र संघ

संश्रय में इटली का प्रवेश

में सम्मिलित किया; किन्तु यह कई प्रकार से एक अत्यन्त अप्राकृतिक मैत्री थी, क्योंकि आस्ट्रिया, इटली का एक पुराना शत्रु ही था और स्वयं जर्मनी भी आस्ट्रिया का पहले से ही अभिन्न मित्र बन चुका था। इस रूप में यह त्रैध मैत्री-संधि स्थापित हुई। इस संधि के सम्पूर्ण उपबंध कभी भी प्रकाशित न किये गये किन्तु इसके उद्देश्य एवं प्रधान लक्षण आस्ट्रिया और जर्मनी की इस गुप्त मैत्री से परिलक्षित होते हैं जिसके विस्तार का केवल यही लक्ष्य था कि वे इस गुप्त संगठन में एक अन्य महाद्वीपीय राष्ट्र को भी सम्मिलित कर लें। यह मित्र संघ एक सीमित समय के लिए ही स्थापित हुआ था किन्तु इसकी तत्सम्बन्धी संधि का १९१५ ई० तक निरन्तर नवीकरण किया जाता रहा, अस्तु यह इस दीर्घकाल तक सक्रिय बना रहा। तथापि यह एक रक्षात्मक मैत्री सन्धि ही थी, जिसका कि उद्देश्य इसमें सम्मिलित होने वाले राष्ट्रों के क्षेत्रों को बाह्य शत्रुओं से सुरक्षित रखना था।

इस प्रकार यूरोपीय राष्ट्रों का यह एक ऐसा संगठन बना, जो रूम सागर से लेकर बाल्टिक समुद्र तक अपना विशिष्ट प्रभुत्व स्थापित किये हुए था और जिसके पीछे दो लाख से भी अधिक व्यक्तियों की सैनिक शक्ति विद्यमान थी। इस संगठन का संचालक जर्मनी स्वयं था। इस रूप में यूरोप अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उस जर्मन नेतृत्व-काल में प्रविष्ट हुआ जिसे कालान्तर में मन्थर गति से बनने वाले एक नवीन मैत्री संघ ने जो रूस और फ्रांस के मध्य स्थापित हुआ था, एक प्रबल चुनौती दी।

विलियम द्वितीय का शासन

विलियम प्रथम की मृत्यु

९ मार्च सन् १८८८ ई० के दिन सम्राट् विलियम प्रथम ९१ वर्ष की अवस्था पाकर स्वर्ग सिधार गया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र फ्रेड्रिक तृतीय ५७ वर्ष की अवस्था में सिंहासनासीन हुआ। यह नवीन सम्राट् तटस्थ नीति का समर्थक था और राजनीतिक क्षेत्र में इंगलैण्ड के संविधान का प्रशंसक होने के साथ-साथ उदारवाद का पक्षपाती भी था। यह सर्वत्र स्वीकार किया जाता है कि यदि वह अधिक समय तक जीवित रहता तो जर्मन शासकों की कुलीनतंत्रात्मक व्यवस्था के स्थान पर इंगलैण्ड जैसी उत्तरदायित्वपूर्ण संसदीय प्रणाली ही जर्मनी में स्थापित हो गई होती और इस देश में अधिकाधिक स्वतंत्रता के युग का श्रीगणेश हो चुका होता। खेद का विषय है कि वह पहले से ही एक मृत तुल्य व्यक्ति था और गले के कैंसर रोग से पीड़ित था। उसका शासन क्रम उसकी ऐसी शारीरिक पीड़ाओं से परिपूर्ण था, जिन्हें वह स्वयं धैर्यपूर्वक सहन किये हुए था। अतः कुछ भी न बोल सकने के कारण वह अपनी इच्छाएँ लिख कर अथवा संकेत देकर ही व्यक्त करता था। अन्ततः उदारवादी युग के प्रभात के पूर्व ही इसका शासन काल समाप्त हो गया। फ्रेड्रिक केवल ९ मार्च से १५ जून सन् १८८८ ई० तक ही जर्मनी का शासक एवं सम्राट् बनने का सौभाग्य-लाभ कर सका।

विलियम द्वितीय का सिंहासनारूढ़ होना

फ्रेड्रिक के बाद उसका पुत्र विलियम द्वितीय उसका उत्तराधिकारी बना। यह नवीन शासक अभी २९ वर्ष का ही था और अत्यन्त ही सक्रिय बुद्धि का व्यक्ति था। उसमें दूरदर्शिता, स्वतंत्र विचार क्षमता महत्त्वाकांक्षा, आत्म-विश्वास

और असाधारण शक्ति विद्यमान थी। अपने प्रारम्भिक निर्देशनों में उसने सेना और धार्मिक कट्टरता की ओर अपनी अत्यधिक लगन प्रदर्शित की। उसने राजसत्ता के दैवी अधिकारों की प्रतिष्ठा की और उसमें मध्यकालीन उदारता का परिचय दिया और इसे वह नाटकीय ढंग से समय-समय पर गतिपूर्वक प्रकट करता था। अतः यह स्पष्ट था कि इस चरित्र का व्यक्ति केवल नाम-मात्र के लिये शासक न बनकर वस्तुतः उचित शासन करने की इच्छा रखता था। वह आवश्यकता से अधिक प्रभावशाली प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व से अधिक समय तक अपना राजत्व अधिकार पीछे न रख सकता था। बिस्मार्क ने यह भविष्यवाणी की थी कि सम्राट् आगे चलकर स्वयं अपना प्रधान मंत्रित्व करके एक निरंकुश शासक बन जायगा। तथापि उसमें यह अन्तर्दृष्टि न उत्पन्न हुई कि वह पूर्वगामी सम्राट् की मृत्यु के साथ पद त्याग कर देता और सम्मानपूर्वक अपने स्थान को चला जाता। बिस्मार्क सत्ता से चिपटा रहा। विलियम द्वितीय के शासन के आदि से ही राजा तथा मंत्री के पक्षों में संघर्ष खड़ा हुआ। सम्राट् जो कुछ सोचता और अनुभव करता था वह प्रधानमंत्री के निर्णय के विपरीत ही होता था। मौलिक प्रश्न यह था कि जर्मनी में शासन का संचालक कौन बने। सर्वोच्च सत्ता के लिये यह एक संघर्ष था जिसमें दो स्वेच्छाचारी कुलीन शासक सत्ता का पारस्परिक विभाजन कर सकते। बिस्मार्क निरंतर पदारूढ़ रहा और उसने यह देखा कि सम्राट् अब अधिक समय के लिये इसमें अधिक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित मंत्री के निर्देशों के लिये बाध्य रहना पसन्द न करता था, अस्तु उसने १८९० ई० में बिस्मार्क से त्याग-पत्र माँगा। इस

बिस्मार्क का पद-त्याग

प्रकार एक ऐसे राजनीतिज्ञ का राजनीतिक जीवन घृणा और अपमान के साथ समाप्त हुआ जिसके विषय में उस विशिष्ट राजनीतिज्ञ—"बिस्मार्क ने कहा था कि वह जर्मनी और प्रशा दोनों के इतिहास में एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिखायेगा।" अब एक प्रत्यक्ष रूप में यूरोप और जर्मनी के समक्ष यह महान् उदाहरण प्रकट भी हो गया। वह अपने पदत्याग के बाद अनेक वर्षों तक जीवित रहा और सन् १८९८ ई० में परलोक सिधारा जबकि वह ८३ वर्ष का था, किन्तु मरणोत्तर वह अपने जीवन का एक महान् आदर्श—सम्राट् विलियम प्रथम के प्रति स्वामिभक्ति का उदाहरण छोड़ गया। इस प्रकार एक महान् कूटनीतिज्ञ अपने राजनीतिक क्षेत्र के साथ-साथ अपनी जीवनलीला भी छोड़कर संसार से उठ गया और यहाँ व्यक्ति कालान्तर में विश्व इतिहास में राज्यों का महान संस्थापक प्रसिद्ध हुआ।

विलियम के विभिन्न प्रधानमन्त्री

१८९० से जर्मनी के इतिहास में राज्य का निर्णायक तत्व वस्तुतः सम्राट् विलियम द्वितीय का ही व्यक्तित्व था और उसके मंत्री यथार्थ रूप में और सिद्धान्ततः भी उसके सेवक होते थे। जिन्हें उसकी इच्छा का पालन करना आवश्यक था उसके शासन काल में इन चार मंत्रियों ने पृथक-पृथक समयों में प्रधान मंत्रित्व किया जिनका नाम और प्रधान मंत्रित्व काल निम्नलिखित हैं:—

कैप्रिवी सन् १८९०-९४ ई०; होहेनलोह सन १८९४-१९०० ई०; फोन बुल्लो १९००-१९०९ ई० तथा बेथमैन हॉलविग जुलाई १९०९ ई० से जुलाई १९१४ तक।

असीम राजनैतिक संघर्ष पहले तो विस्मार्क के हट जाने से कुछ कम हो गये क्योंकि यह महान् राजनीतिज्ञ अपने ३८ साल के कार्य-काल को समाप्त करके मरा था। इस नवीन शासक की अधीनता में सरकार के कार्य-क्रमों में उदार प्रवृत्ति का प्रदर्शन हुआ। समाजवाद विरोधी नियमों का, जिनके कार्य काल की अवधि १८९० ई० में समाप्त होती थी, अब भविष्य में पुनर्नवीकरण न किया गया। यही आगे चलकर सम्राट और प्रधानमंत्री के मध्य संघर्ष का कारण बना। बिस्मार्क ने उनके नवीकरण और उनको और भी कठोर बनाने की इच्छा की। सम्राट् ने उदारनीति का अनुसरण किया और इससे उसे यह आशा थी कि वह समाजवादियों को देशवासियों के समान सामाजिक और आर्थिक सुविधाएँ देकर प्रभाव शून्य कर देगा और दया के शस्त्र से वह उनकी मृत्यु सम्भव कर सकेगा। अत्याचारपूर्ण नियमों के समाप्त होते ही समाजवादियों ने फिर अपने को प्रत्यक्ष रूप में संगठित करना आरम्भ कर दिया और अब उन्होंने अप्रत्याशित रूप में आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सम्राट् ने अपने उदार सुधारों को जब समाजवादियों के प्रभावशून्य बनाने में प्रयुक्त नहीं किया तो सम्राट् उनका (सम्राट्वादियों का) कट्टर शत्रु बन गया और उनका प्रत्यक्ष रूप में अपमान करने लगा और इसके साथ ही साथ उसने समाजवाद की निन्दा करना भी प्रारम्भ कर दिया, तथापि समाजवादियों के विरुद्ध कोई नियम न बनाये गये। पहले की तरह जब कभी समाजवाद के विरुद्ध नियम बनाये गये तो उनकी प्रभावशून्यता को देख कर सम्राट् ने इस समय तत्सम्बन्धी कोई नियम न बनाये। विलियम द्वितीय का शासन जर्मनी के औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण है और इसने इस क्षेत्र में जर्मनी को इंगलैंड और संयुक्त राज्य अमरीका का प्रतिद्वन्द्वी भी किसी सीमा तक बना दिया। उसने, औपनिवेशिक और वैदेशिक मामलों के विषय में आक्रामक नीति का पालन किया। जर्मन उपनिवेशों का, जिनका महत्त्व अत्यधिक कम था, उनका व्यय अधिक था और उनसे प्राप्त लाभ अपेक्षाकृत कम। किन्तु एक महान् औपनिवेशिक साम्राज्य की इच्छा सरकारी नीति में स्थिरता प्राप्त कर चुकी थी और उसने जनमत को अपने पक्ष में ले रखा था। जर्मनी के व्यापार एवं औपनिवेशिक विस्तार सम्बन्धी उत्साह ने उसे अपनी जल-सेना में वृद्धि करने की ओर अग्रसर किया। विलियम द्वितीय की इच्छा थी कि गत ५० वर्षों से अपनी प्रबल स्थल सेना रखने वाला जर्मनी अब जल-शक्ति में भी पर्याप्त सबल हो जाय। उसकी यह भावना थी कि विश्व के किसी भी भाग में तथा विशेषकर यूरोप, एशिया और अफ्रीका में अपनी प्रबल जल-शक्ति एवं स्थल-सेना से बल प्राप्त करके जर्मनी देशों की राजनीति में निर्णायक तत्व के रूप में कार्य करे एवं उसके परामर्श के विना इन देशों में कोई भी कार्य संभव न हो। इस सम्राट् की सबसे अधिक बलवती भावना यह थी कि जर्मनी का जहाजी बेड़ा शक्तिशाली बन जाय।

समाजवाद-विरोधी नीति का परित्याग

जर्मनी का महत्त्वपूर्ण औद्योगिक विकास

राजनैतिक संसार में जर्मनी के समाजवादी प्रजातांत्रिक दल का विकास एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह न केवल आर्थिक क्षेत्र में क्रान्ति का इच्छुक था, प्रत्युत यह तत्कालीन शासक की कुलीनतंत्रीय सरकार का भी तीव्र विरोध करता था। यह निरंतर लोकतंत्रात्मक संस्थाओं की स्थापना की माँग करता रहा। संसद के प्रति मंत्रि-मण्डल का कोई उत्तरदायित्व न होने के कारण, जर्मनी की

समाजवाद का अविरल विकास

यह प्रतिनिधि-संस्था सरकार पर किसी प्रकार का नियंत्रण भी रखती थी। संसद में विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तो थी किन्तु इसके बाहर जन-साधारण इससे वंचित थे। इस देश में गत २० वर्षों में सैकड़ों व्यक्ति सरकार के प्रति ऐसी ही कठोर आलोचनाओं के कारण वन्दी बना लिये गये थे। राजकीय स्तर का यह एक ऐसा अपराध था जो राज्यतंत्र के अस्तित्व काल तक स्वतंत्र राजनैतिक जीवन को प्रतिबाधित रख सकता था।

संसद में समाजवादी प्रजातांत्रिक दल की अतीव संख्या वृद्धि

समाजवादी प्रजातांत्रिक दल किसी सीमा तक केवल उदारवाद का ही प्रतिनिधित्व करता था और इस कार्य में वह पूर्व-सत्तारूढ़ समाजवादियों के आर्थिक सिद्धान्तों की ओर कोई ध्यान न देता था। यह एक महान् सुधारवादी उदार दल था। इसने किसी भी पार्टी से भी अधिक लोकप्रियता और जनमत प्राप्त किया और इसे ३,२५०,००० मतों का उपभोग करने का श्रेय प्राप्त था। रूढ़वादी दल ने, जिसने १९०७ ई० की राइखस्टैंग में केवल ८३ प्रतिनिधि निर्वाचित किये थे, समाजवादियों की अपेक्षा अधिक मत प्राप्त किये तथापि रूढ़वादियों को समाजवादी प्रजातांत्रिक दल से १,५००,००० मत कम मिले थे। समाजवादियों के केवल ४३ सदस्य ही चुने जा सके। इसका कारण यह था कि यद्यपि जनसंख्या अधिकांशतः ग्रामों से हट कर नगरों में जा बसी थी, तथापि १८६९-७१ में स्थापित किये गये निर्वाचन क्षेत्रों में कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया था। इस समय से नगरों की अत्यधिक वृद्धि हुई और, केवल औद्योगिक केन्द्रों में ही समाजवादियों की प्रबल शक्ति स्थापित थी। बर्लिन केद जिसकी १८७१ ई० में ६००,००० जनसंख्या थी, केवल ६ सदस्य ही जर्मनी की संसद अर्थात् राइखस्टैंग में चुने जा सके। अब भी बर्लिन के सदस्यों की संख्या राइखस्टैंग में उतनी ही रही। यद्यपि जनसंख्या २,०००,००० से भी अधिक हो चुकी थी और यदि निर्वाचन क्षेत्रों का समान रूप से विभाजन किया गया होता तो इसे राइखस्टैंग के लिये २० सदस्यों को निर्वाचित करने की क्षमता थी। समाजवादियों की, जैसी कि माँग थी, इन बढ़े हुए सदस्यों से उस दल की राइखस्टैंग में सबसे अधिक शक्ति सम्भाव्य थी क्योंकि बर्लिन के औद्योगिक केन्द्र में यही दल लोकप्रिय था और केवल यही एक ऐसा कारण था जिसने सरकार को उनकी इस माँग को अस्वीकार करने की ओर अग्रसर किया। समाजवादी प्रजातांत्रिकों के तीव्र विरोधी अब भी संविधान द्वारा प्रदान किये गये सार्वजनिक मताधिकार के उन्मूलन पर बल देते रहे। इस उग्रवादी परिवर्तन की ओर कोई ध्यान न दिया गया। तत्कालीन वर्षों में जिन प्रश्नों पर अत्यधिक वाद-विवाद किया गया, वे ये थे: प्रशा के निर्वाचन क्षेत्रों में परिवर्तन सम्बन्धी सुधार तथा संसद में सीटों के पुनर्वितरण का प्रश्न, चाहे वह प्रशा की राइखस्टैंग से सम्बन्धित था और चाहे जर्मनी की राइखस्टैंग से। इसके अतिरिक्त मंत्रि-मण्डल के उत्तरदायित्व का प्रश्न भी इस समय अत्यधिक विवादग्रस्त था।

निर्वाचन क्षेत्र सम्बन्धी सुधारों की माँग

वस्तुतः प्रशा का राज्य ही जर्मन साम्राज्य का शासन संचालन करता था। यह व्यवस्था बिस्मार्क द्वारा उस समय की गयी थी जबकि उसने साम्राज्य के लिये संविधान निर्माण किया था और उसकी राजनीति का मूलमंत्र भी यही व्यवस्था थी। बिस्मार्क के सिद्धान्त की इन दो प्रमुख धाराओं पर ही जर्मनी का वर्तमान विधान आधारित था: राज्यतंत्र की शक्ति-वृद्धि और प्रशा की प्रधानता। उस समय भी वहाँ के शासक वर्गों की यही नीति है। जैसाकि

१९१४ में उस लब्धप्रतिष्ठ राजकुमार वानबुलों ने व्यक्त किया था, जो बिस्मार्क के बाद अभी तक सबसे महत्त्वपूर्ण प्रधान मंत्री था। प्रशा सैनिकों और कर्मचारियों का देश बनकर ही एक महान् राज्य बन सकता था और इसी रूप में जर्मनी के एकीकरण का कार्य सम्पन्न होना सम्भाव्य था। आज वर्तमान युग में भी वह एक आवश्यक रूप में सैनिकों और कर्मचारियों का ही राज्य था। शासक वर्गों का भी अस्तित्व प्रशा में ही है, और वे सम्राट्, कुलीनतन्त्र और सेना तथा राज्य कर्मचारियों के निरंकुश-तंत्र के रूप में जर्मनी का शासन करते हैं तथापि वे सब केवल वहाँ के शासक के प्रति ही उत्तरदायी हैं। राज्य का निर्णायक तत्व वहाँ पर स्वयं सम्राट् का व्यक्तित्व है।

प्रुशिया "सैनिकों और कर्मचारियों का ही राज्य है" के सिद्धान्त का प्रतिपादन

न तो प्रुशिया का राज्य और न ही उसका साम्राज्य प्रजातांत्रिक तत्त्वों द्वारा शासित होता है। वहाँ का साम्राज्यवाद राज्य के क्षेत्र का इतना अतिक्रमण करता है कि वहाँ स्वतन्त्रता का विकास ही प्रतिबंधित है। मताधिकार व्यवस्था और निर्वाचन प्रणाली जो इस समय प्रुशिया की सरकार ने प्रचलित की थी, उसके अन्तर्गत प्रुशियन विधान मण्डल जैसा कि पहले ही व्यक्त किया जा चुका है, तीन भागों में विभाजित था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति की मताधिकार क्षमता, उसकी कर-क्षमता के आधार पर निश्चित की जाती थी। टैक्स के अनुसार मतदाता तीन विभागों में बाँट दिये जाते हैं जिसमें से प्रत्येक भाग उन सभाओं में समाज का प्रतिनिधित्व करता है जो कि प्रशा की विधान सभा के प्रतिनिधियों[1] का चुनाव करती हैं। पहले विभाग अथवा वर्ग में ३ से लेकर ५ प्रतिशत तक मतदाता होते हैं, दूसरे में १० से १२ प्रतिशत तक तथा तीसरे वर्ग में लगभग ८५ प्रतिशत मतदाता होते हैं किन्तु प्रुशियन विधान सभा का चुनाव करने वाली सभा के केवल एक तिहाई सदस्य ही इसके द्वारा चुने जाते हैं। इसका परिणाम यह है कि प्रुशिया की चेम्बर आफ डिपुटीज में धनी और सम्पन्न लोगों का ही प्रतिनिधित्व होता है। प्रुशिया का श्रमिक वर्ग प्रतिनिधित्व से प्रायः सर्वथा वंचित है। इस अप्रत्यक्ष निर्वाचन विधि के कारण १९०८ तक प्रुशिया के समाजवादी चेम्बर आफ डिपुटीज में एक सदस्य भी न निर्वाचित कर सके। इसके विपरीत यदि प्रत्यक्ष निर्वाचन किया जाता तो उन्हें लगभग १०० सीटें मिल जातीं।

प्रुशिया के सदन के निर्वाचन क्षेत्र १८६० से परिवर्तित नहीं किये गये हैं और वे परस्पर एक-दूसरे से छोटे बड़े हैं। पूर्वी प्रुशिया के प्रान्त में ६३,००० निवासी प्रति डिपुटी के हिसाब से हैं जबकि बर्लिन में १,७०,००० निवासियों द्वारा औसतन एक प्रतिनिधि का निर्वाचन होता है। इस बात की वहाँ अधिक माँग है कि अनेक निर्वाचन क्षेत्रों को पूर्णतः अथवा अंशतः एक-दूसरे से सम्मिलित कर दिया जाय क्योंकि यहाँ अन्यान्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व है।

साम्राज्य में यहाँ इसी प्रकार एक दूसरी समस्या प्रतिवर्ष कठिन होती जाती थी। १८७१ में राइखस्टैग के निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या १९७ थी। यह संख्या कभी भी न बदली न तो किसी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व ही बढ़ा

---

1. Dipnties.

संसदीय सुधारों की माँग

और न ही समाप्त हुआ। तथापि उस समय तक साम्राज्य की जनसंख्या ४१,००,००० से लेकर ६५,००,००० तक बढ़ चुकी थी और इसके साथ ही साथ जनसंख्या का ग्रामों से नगरों को आगमन हो चुका था। बर्लिन का एक विभाग जिसकी जनसंख्या ६,९७,००० थी केवल एक ही प्रतिनिधि चुनता था; जब कि वाल्डेक की छोटी-सी रियासत जिसकी जनसंख्या केवल ५९,००० है, भी एक प्रतिनिधि भेज सकती है। ग्रेटर बर्लिन के ८,५१,००० मतदाता केवल ८ सदस्य ही चुन सकते थे। जबकि ५० छोटे-छोटे निर्वाचन क्षेत्रों में उतने ही मतदाता ३८ सदस्यों का चुनाव करते थे। वहाँ उस समय इन असीम विषमताओं का सुधार करने की विस्तृत माँग थी।

मंत्रि-मण्डल के दायित्व की माँग

दूसरी समस्या जो इस समय पर्याप्त महत्त्वपूर्ण थी, उसका सम्बन्ध मन्त्रि-मण्डल के उत्तरदायित्व से था। सम्राट् विलियम द्वितीय की स्वेच्छा ने इस समस्या को अत्यन्त विवाद-ग्रस्त बना दिया था। अपने एक व्यक्तिगत भेंट में सम्राट ने मुक्त कंठ से जर्मनी तथा ग्रेट-ब्रिटेन के पारस्परिक वमनस्य पूर्ण सम्बन्धों का परिचय दिया था, जो कि लन्दन के समाचार पत्र—लन्दन टेलीग्राफ दिनाङ्क २८ अक्टूबर १९०८ को प्रकाशित हुआ था।। ठीक इसी समय जर्मनी में जब से इस साम्राज्य निर्माण हुआ था, उसके बाद से अब तक के दीर्घकाल में एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी। उस समय सम्राट के निरंकुश एवं उत्तरदायित्वहीन कृत्यों का तीव्र विरोध किया गया और उस पर बिना सोचे समझे युद्ध का सूत्रपात करने का आरोप लगाया गया। सब प्रकार के समाचार-पत्रों ने विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बल देते हुए अपने ऊपर लगे हुए अभूतपूर्व प्रतिबन्धों की कटु आलोचना की। राइखस्टैग में सभी दलों ने राजा की स्वेच्छा का तीव्र विरोध किया। उस घटना ने भी सरकार को इस ओर अग्रसर किया कि वह राजा के समस्त कार्यों के लिये मन्त्रि-मण्डल को उत्तरदायी ठहराये और मन्त्रि-मण्डल पर संसद का नियन्त्रण स्थापित हो। अर्थात् सूक्ष्म शब्दों में, संसदीय व्यवस्था की जाय।

प्रजातन्त्र के तीव्र विरोधी रूप में—प्रुशिया

१९वीं व २०वीं शताब्दी में लोकतन्त्रीय आन्दोलन के मार्ग में प्रुशिया का देश सबसे कठिन बाधा था। सन् १८४८ का जर्मनी जितना उदार था, सन् १९१४ का जर्मनी अपेक्षाकृत कम ही उदार था। बिस्मार्क द्वारा प्रतिनिधि सरकार के सिद्धान्त को पहुँचाये गये आघात अपने परिणामों में अभी तक अक्षुण्ण बने हुए हैं। इसके प्रमाण पूर्णतया मान्य हैं। स्वयं प्रुशिया के प्रधान मन्त्री वानबुल्लो ने सन् १९१४ में कहा था कि—

"बिस्मार्क ने ५० वर्ष पूर्व जिस उन्नतिशील दल पर भारी प्रतिबन्ध लगाये थे और जो अभी तक १८४८ के सिद्धान्तों और आदर्शों का प्रतिपादन करता था उसके फलस्वरूप तथा बिस्मार्क की दमन नीति के कारण यद्यपि उदारवाद ने राष्ट्रीय समस्याओं के क्षेत्र में अपना दृष्टिकोण परिवर्तित कर दिया था तथापि यह अभी तक पुनर्जीवित नहीं हो सका है।"

बर्लिन विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के नवीन अध्यक्ष ट्रेचस्की के पश्चात् कालीन स्थानापन्न डेलबर्क के शब्दों में उस परिस्थिति का उल्लेख इस प्रकार है—

"कोई भी व्यक्ति जो हमारे देश के सैन्याधिकारियों और जनरलों से परिचित है, जानता है कि जब तक जर्मन संसद सेना पर नियंत्रण स्थापित करेगी तब तक हम सेडन का दूसरा युद्ध उल्टे ही हार जाएँगे ?" जर्मनी की वास्तविक शक्ति जिसमें अन्तर्निहित है उसका यहाँ पर प्रत्यक्ष परिचय मिलता

संसद द्वारा तनियंत्रित सेना

है। इस सम्बन्ध में कोई भी व्यक्ति इंगलैंड के इतिहास के उस महान् प्रकरणों से अवगत हो सकता है, जो वहाँ स्वतन्त्रता के संघर्ष के विषय में यह स्पष्ट करते हैं कि इसकी उपलब्धि उस संसद के माध्यम द्वारा ही सम्भव हुई, जिसने सम्राट् के विशेषाधिकारों और सन्यशक्ति पर नियंत्रण स्थापित किया।

सारे पश्चिमी यूरोप में ज़र्मन राज्य सबसे अधिक कुलीनतन्त्रात्मक था। स्वतन्त्रता के मूलाधिकार, जिनका कि इंगलैंड, फ्रांस, अमरीका आदि अन्यान्य राज्यों में अत्यधिक महत्त्व है जर्मनीवासियों को कभी भी न प्राप्त थे और न ही वे उसे इस समय उपलब्ध थे। जर्मनी शक्तिशाली, धनवान, प्रभावशाली एवं सुशिक्षित देश है, तथापि यह स्वतन्त्र नहीं है। वहाँ सैनिकतंत्रीय राज्यतन्त्र की स्थापना की गयी थी जो कि एक प्रजातन्त्रीय राज्य से सर्वथा विपरीत एवं विभिन्न होता है। अपनी एक आधुनिक पुस्तक[1] में वहाँ के प्रधानमन्त्री वानबुल्लो ने लिखा है—

"जर्मन राष्ट्र में विद्यमान अनेक गुणों और महान् लक्षणों के होते हुए भी इसमें राजनैतिक दूरशिता का पूर्ण अभाव रहा है।"

किसी भी स्वतन्त्र देश का नागरिक यह जानता है कि मानव का बौद्धिक विकास उस समय होता है जबकि उसे उसका उपयुक्त अवसर सुलभ होता है। कोई आश्चर्य नहीं कि यह अवसर की ही बात थी कि रोम के

जर्मनी के सम्बन्ध में जर्मनवासियों के विचार

इतिहासकार 'मोमसेन' (Mommsen) ने १९०२ में लिखा था तथा अपने देशवासियों के समक्ष कहा था कि, "जब (जमनी में) अधिक समय के स्थान पर जर्मनी में कार्यकुशल सुशिक्षित, उच्च पद महत्वाकाँक्षी, एवं स्वाभिभक्त प्रजाजन ही होते थे।

अध्याय २२

फ्रांस का तीसरा गणतंत्र

फ्रांस में सेडान की पराजय का समाचार राजधानी तक पहुँचते-पहुँचते, जैसा कि हम इतिहास द्वारा भली-भाँति जानते हैं, ४ सितम्बर १८७० को पेरिसवासियों ने फ्रांस के तृतीय गणतंत्र की घोषणा कर दी। राष्ट्रीय-सुरक्षा के उद्देश्य से अविलम्ब एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गयी। फरवरी सन् १८७१ को इस व्यवस्था के स्थान पर ७५० प्रतिनिधियों की एक राष्ट्रीय सभा स्थापित की गयी जो कि जर्मनी के साथ सन्धि करने का कार्य सम्पन्न करने के लिये ही सार्वजनिक मतदान द्वारा निर्वाचित हुई थी। यह राष्ट्रीय सभा जो वोर्दो में आयोजित हुई प्रधानतः राजतंत्रवादियों से ही मुक्त थी, कारण यह था कि राज्यतंत्रवादी प्रत्याशी सन्धि के पक्षपाती थे जबकि 'गम्वेटा' के नेतृत्व में गणतंत्रवादी राजनीतिज्ञ, युद्ध को जारी रखना चाहते थे। फ्रांस की कृषक जनता शान्ति एवं सन्धि का समर्थन करने के कारण सन्धि के प्रतिपक्षी प्रत्याशियों का समर्फन करती थी। इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि इन कृषकों ने इसी कारण राज्यतंत्रवादियों और उनकी व्यवस्था का समर्थन किया। इस राष्ट्रीय सभा ने एल्सेस और लोरेन को छोड़ कर सन्धि करली और जर्मनी को भारी क्षति-पूर्ति देने का वचन दे दिया तथापि फ्रैंकफर्ट की सन्धि के परिणामों के कारण फ्रांस में शान्ति न स्थापित हो सकी। यह भयंकर युद्ध जो कि १८७० और १८७१ ई० में हुआ, अप्रत्याशित रूप में क्षतिदायक सिद्ध हुआ। जर्मनी के साथ होने वाले इस युद्ध के बाद फ्रांस में गृह-युद्ध शुरू हुआ जो कि उससे भी कहीं अधिक भयंकर सिद्ध हुआ। यह युद्ध पेरिस नगर का नियंत्रण करने वाले नगर सभा के सदस्यों और फ्रांस की सरकार के मध्य हुआ जिसका प्रतिनिधित्व उपर्युक्त वोर्डो—सभा द्वारा किया गया था। इस सभा ने देश की कार्यपालिका का अध्यक्ष थीयर्स को चुना, और "राष्ट्र की स्थायी सरकार की स्थापना सम्बन्धी माँग" की उपेक्षा की। इस रूप में राष्ट्रीय सभा ने

४ सितम्बर १८७० को फ्रान्स के तृतीय गणतंत्र की घोषणा

राष्ट्रीय सभा

भीषण युद्ध

देश के एक मौलिक प्रश्न को ही स्थगित कर दिया। थियर्स अनिश्चित काल के लिये चुना गया था। वह सभा की इच्छाओं की सन्तुष्टि करने हेतु उसी का अधीनस्थ कर्मचारी था और सभा द्वारा किसी भी क्षण पदच्युत किया जा सकता था।

दि कम्युन

सरकार और पेरिस के नगरवासियों में शीघ्र ही मतभेद पैदा हो गया और इसके फलस्वरूप पेरिस की कम्युन को संघर्ष करना पड़ा। पेरिस ने गणतंत्र की घोषणा कर दी थी; किन्तु फ्रान्स और उसकी राष्ट्रीय सभा ने गणतन्त्र को मान्यता न दी। गणतन्त्र केवल नाममात्र को था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय सभा पर राज्यतन्त्र-वादियों का नियंत्रण था और इस संस्था ने देश में स्थायी संस्था का विचार स्थगित कर दिया था। क्या इसका यह मतलब न था कि यह गणतन्त्र का संकल्प समाप्त करके जैसे ही अवसर पाये राज्यतन्त्र की घोषणा कर देती? यह आशंका भली-भाँति विदित हो चुकी थी और कम्युन की सबसे मुख्य समस्या भी यही थी कि राष्ट्रीय सभा गणतन्त्र के विरुद्ध थी। इस बात की आशंका और चिंता उन पेरिसवासियों के हृदय में प्रतिक्षण रहती थी जो कि दृढ़ संकल्प गतन्त्रवादी थे। साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत गत १० वर्षों से पेरिसवासी फ्रान्स की चेम्बर ऑफ डिप्युटीस के लिये सदैव ही गणतन्त्रवादियों को ही निर्वाचित करते आ रहे थे। यह १८५१ में लुई नेपोलियन द्वारा किये गये समझौते (Contract) को अब पुनः अपने देश में न होने देना चाहते थे। राष्ट्रीय सभा के अनेकानेक कृत्य उपर्युक्त प्रशासकीय अनिश्चितता को स्पष्टतः उत्पन्न कर रहे थे जिसकी भयंकर आशंका पेरिसवासियों के हृदय में घर कर गयी। राष्ट्रीय सभा के नेता पेरिस की नगर सभा पर अविश्वास करते थे और इस कारण उन्होंने इसके विरुद्ध मार्च १८७१ में मतदान करके यह निश्चय किया कि भविष्य में राष्ट्रीय सभा की बैठक वार्सेई में हुआ करेगी। दूसरे शब्दों में, अब राज्यतन्त्र के इतिहास से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित वर्साय के छोटे तथा सुस्त नगर को पेरिस के विशाल नगर के स्थान पर जिसने आत्म-त्याग द्वारा और महान् कष्टों को उठाकर युद्ध की भयंकर स्थिति को समाप्त किया था तथा फ्रांस की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को ऊँचा रखने के हर सम्भव उपाय किये थे, फ्रांस की राजधानी बनना थी। राष्ट्रीय सभा के पेरिस के प्रति दृढ़ संदेह युक्त कार्य के फलस्वरूप न केवल पेरिस के आत्म-सम्मान को ही धक्का लगा था अपितु इस भयंकर अर्थ संकट के समय उसके भौतिक हितों को भी महान् क्षति पहुँची थी। सरकार ने इस संकट को दूर करने का कोई भी पग न उठाया प्रत्युत उसने इसके स्थान पर इसे और भी भीषण बनाने के लिये अनेक अदूरदर्शिता पूर्ण कार्य किये।

पेरिस कम्युन और राष्ट्रीय सभा का मतभेद

वर्साय को फ्रांस की राजधानी बनाया जाना

पेरिस में विभिन्न प्रकार के क्रान्तिकारी विचार रखने वाले बहुसंख्यक लोग रहते थे। जिनमें अराजकतावादी, समाजवादी तथा जैकोबिन लोग उल्लेखनीय थे और जिनके नेतागण पेरिस की असंतुष्ट एवं दलित जनता के मध्य पर्याप्त सफलतापूर्वक कार्य एवं प्रचार करते थे। इस असंतोष से एक भीषण क्रान्ति का उत्पन्न होना अत्यन्त सरल था। क्रान्तिकारी भावना उस समय तक तीव्रगति से

पेरिस के क्रांतिकारी तत्व

बढ़ती रही जब तक कि पेरिस कम्युन तथा उसके साथ ही साथ पेरिसवासियों और वर्साय की सरकार में संघर्ष का सूत्रपात न हो गया। दोनों में समझौता कराने की कठिनाइयों को सुलझाने के प्रयास विफल हुए और सरकार ने पेरिस का दमन करने का निश्चय कर दिया। पेरिस नगर के दमन के लिये, जोकि इस वर्ष के दुर्भाग्य का दूसरी बार आखेट बन रहा था, नियमित रूप में आक्रामक नीति का अपनाया जाना आवश्यक समझा जा रहा था तथापि इस बार यह आक्रमण उन फ्रांसीसियों और जर्मनों द्वारा संचालित किया गया जिन्होंने पेरिस के उत्तर में स्थित दुर्गों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर उन्हें अपने नियंत्रण में कर लिया था। यह घेरा २ अप्रैल से लेकर २१ मई अर्थात् प्रायः २ मास तक चलता रहा और वर्साय की सेनाएँ पेरिस के नगर में बलात् प्रविष्ट हो गयीं। उन्होंने पेरिस की सड़कों पर ७ दिन तक भयानक रक्तपात मचाये रखा। कम्युन के सदस्य और सारे नगरवासी अधिकाधिक निराश और भयभीत हो गये किन्तु वर्साय के सैनिक उतने ही रक्तपिपासु और प्रतिशोध की भावना से मदांध हो रहे थे। यह रक्तिम सप्ताह था और इसमें पेरिस को जर्मनों की पिछली बम्बारी से कहीं अधिक क्षति पहुँची। यह पेरिस के धन और जीवन के भयंकर विनाश का सप्ताह था। वर्साय की सेनाओं ने इस अवसर पर भीषण अग्निकांड और नृशंस रक्तपात का बीभत्स दृश्य प्रस्तुत किया। अन्ततः यह कुख्यात एवं भयानक उत्पीड़न समाप्त हुआ किन्तु वर्साय की सरकार ने पेरिस से अप्रत्याशित रूप से प्रतिशोध लिया। उसने इस दमन कार्य द्वारा एक भयंकर उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। अनेक व्यक्ति बिना किसी न्यायालय की कार्यवाही के ही गोली से उड़ा दिए गये। गिरफ्तारियाँ और कानूनी कार्यवाहियाँ कई वर्षों तक चलती रहीं। सहस्त्रों व्यक्तियों को देश से निष्कासित करके उष्ण कटिबन्ध के पीड़ाजनक एवं कठिन क्षेत्रों में डाल दिया गया और दूसरे सहस्रों बन्दियों को कठिनतम परिश्रम करने के लिये विवश किया गया। धीरे-धीरे इस राजतंत्रवादी सभा का क्रोध कम होता गया।

पेरिस का दूसरा घेरा

रक्तिम सप्ताह

थियर्स की सरकार

पेरिस के विप्लव को शान्त करके तथा जर्मनी के साथ क्षतिदायक संधि करके फ्रांस ने शान्ति के वायुमंडल में पदार्पण किया। गणतंत्रवादी यह सोचते थे कि राष्ट्रीय सभा को भंग हो जाना चाहिये और उनका तत्सम्बन्धी अकाट्य तर्क यह था कि वह सभा मध्यम निर्वाचित हुई थी। इसके विपरीत सभा ने यह निश्चित किया कि उसे फ्रांस के समस्त मामलों पर नियम निर्माण करने तथा उसका संविधान बनाने की सम्पूर्ण शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त हों। यह सभा लगभग ५ वर्षों तक सत्तारूढ़ रही और भंग होने को तैयार न हुई। इसने संविधान निर्माण का कार्यारम्भ करने के पूर्व थियर्स के साथ मिलकर २ वर्षों तक फ्रांस का पुनर्निर्माण करने का कार्य किया। सबसे अधिक आवश्यक कार्य जर्मनों को देश से बाहर निकालना था। थियर्स के कुशल नेतृत्व में जर्मनी को युद्ध की भारी क्षतिपूर्ति ५,००,००,००० फ्रैंक देने का कार्य पर्याप्त [illegible]

फ्रांस में शान्ति

जर्मनी (सैनिकों) द्वारा अधिकृत फ्रांसीसी क्षेत्रों का खाली कराया जाना

और तीव्रता से सम्पन्न हुआ। सितंबर १८७३ में इस क्षति पूर्ति की अन्तिम किस्त चुका दी और अब अवशिष्ट जर्मन सैनिक भी वहाँ से अपने देश को चले गये। संधि की शर्तों से ६ महीने पूर्व ही फ्रांस की भूमि जर्मनों से खाली हो गयी। इस महत्त्वपूर्ण कार्य तथा देश के पुनर्निर्माण में थियर्स की महान् सेवाओं के कारण राष्ट्रीय सभा ने उसके पक्ष में अपना बहुमत देते हुए यह स्पष्ट किया कि वह देश में उचित कार्य करने का श्रेय पा चुका था और फलतः देशवासियों ने अनायास ही मुक्त कंठ से उसके विषय में कहा कि, "वह फ्रांसीसी क्षेत्रों का मुक्तिदाता था।"

सैनिक सुधार

सेना का पुनर्निर्माण भी आवश्यक था और यह कार्य उसी राष्ट्रीयता की भावना से किया गया। यद्यपि इसमें कई व्यक्तियों का बलिदान हो गया। १८७२ ई० में अनिवार्य सैनिक सेवा का नियम लागू किया गया। इस नियम के अन्तर्गत ५ वर्ष की सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गयी। इस नियम में फ्रांस में प्रुशिया की सैनिक प्रणाली कार्यान्वित की गयी। यह सैनिक प्रणाली अनेकानेक प्रतिद्वन्द्वियों को दबाने में सफल हुई। अब फ्रांस में उस अत्याचारी सैनिक शासन का प्रादुर्भाव हुआ जोकि तत्कालीन यूरोपीय इतिहास में अद्वितीय है। इस प्रकार हमारे दूसरे राष्ट्र भी यह सोचने लगे कि उन्हें भी प्रुशिया की भाँति सैनिक व्यवस्था अपनी भावी सुरक्षा के हेतु अवश्य करनी चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था का लागू होना फ्रान्स की आवश्यकताओं के लिये कितना लाभदायक था, यह स्वतः स्पष्ट बात है।

इस नव-निर्माण के कार्य में प्रधानमन्त्री, थियर्स और राष्ट्रीय सभा ने संयुक्त प्रयास करके समान नीति अपनाई थी और अब सेना का पुनर्संगठन पूरा हो जाने के बाद राष्ट्रीय सभा के समस्त राज्यतंत्रवादियों ने निश्चय किया कि गणतंत्र का अन्त करके पूर्णतः राज्यतंत्र की दृढ़ स्थापना कर दी जाय। उनको यह भी शीघ्र ज्ञात हुआ कि थियर्स एक ऐसा व्यक्ति था जो उनकी योजनाओं में कोई सहायता न दे सकता था। थियर्स वस्तुतः वैधानिक राजतंत्र का पक्षपाती थी किन्तु गणतंत्रवादी सरकार से उसे किसी प्रकार की आशंका न थी और १८७० के बाद उसका

थियर्स और फ्रांस का गणतंत्र

अपना यह विश्वास भी पक्का हो गया कि फ्रांस में गणतंत्र एक संघर्षपूर्ण शताब्दी की अन्तिम स्थितियों से गुजर रहा था और यही फ्रांस के लिए हर प्रकार से उचित तंत्र भी था। उसका कथन था कि "सारे फ्रांस का राज्य सिंहासन एक ही था और उसके प्रत्याशी तीन थे।" उसने फ्रांस के गणतंत्र के पक्ष में एक बहुत ही सुन्दर सिद्धान्त निकाला था कि, "यह ऐसी सरकार है जो हमारा (जनता का) कम से कम विभाजन करती है।" इसके अतिरिक्त "वे राजनैतिक दल जो राजतंत्र के इच्छुक थे इस प्रकार के राजतंत्र के कदापि समर्थक न थे।" इस प्रकार के शब्दों से थियर्स ने उस महत्त्वपूर्ण परिस्थिति का वर्णन किया। राजतंत्रवादी राष्ट्रीय सभा में

राजतंत्रवादी दल

अपना बहुमत स्थापित करने के बाद तीन वर्गों—'लेजिटिमिस्ट', 'ओरलियनिस्ट', और 'बोनापार्टिस्ट',—में विभाजित हो गये और इनमें से एक भी वर्ग का बहुमत तथा लेजिटिमिस्ट अर्थात् फ्रांस के प्राचीन कुलीनतंत्र के समर्थक चार्ल्स दशम के पौत्र का फ्रान्स के सम्राट के पद पर

अधिकार सिद्ध करते थे। चार्ल्स दशम के पौत्र को काउण्ट आफ कैम्वोर्ड भी कहते हैं। ओरलियनिस्ट वर्ग के लोग पेरिस के काउन्ट लुई फिलिप के पौत्र का अधिकार स्थापित करना चाहते थे और वोनापार्टिस्ट वर्ग के लोग नैपोलियन तृतीय अथवा उसके पुत्र को फ्रांस का शासन देना चाहते थे। यह राज्यतंत्रवादी दल गणतंत्रवादी एवं स्थायी वैधानिक सरकार की स्थापना रोकने के लिये तो संगठित हो सकते थे किन्तु यह राज्यतंत्र को विभिन्न शासकों के हाथ में देने के समर्थक होने के कारण अपने लक्ष्य राज्यतंत्र की स्थापना करने के लिये संगठित न हो सकते थे। इस विभाजन के फल-स्वरूप फ्रांस का यह तीसरा गणतंत्र दीर्घजीवी न सिद्ध हो सका। कुछ महीनों वाद राज्यतन्त्रवादियों ने सोचा कि उनका नेता थियर्स निरन्तर गणतन्त्रवादी विचारों का समर्थक होता जा रहा था और यही सच भी था। यदि राज्यतन्त्र के पुनः स्थापना का निश्चित प्रयास किया जाना था तो इसकी सफलता के लिए थियर्स का अपदस्थ कर दिया जाना ही उपयुक्त था। फलतः १ मई १८७३ को राष्ट्रीय सभा ने थियर्स को त्याग पत्र देने के लिये वाध्य कर दिया।

थियर्स का पद-त्याग

इस सभा ने अविलम्ब मार्शल मैकमोहन को गणतन्त्र का अध्यक्ष नियुक्त किया जिससे कि वह फ्रांस के भावी सम्राट के लिये एक सुदृढ़ पृष्ठ-भूमि तैयार कर दे।

संविधान का निर्माण

इसी समय राज्यतन्त्र की पुनःस्थापना का दृढ़ प्रयास किया गया। यह कार्य तभी सम्भव हो सकता था, जबकि लेजिटिमिस्ट और ओरलियनिस्ट दलों का संयोजन हो जाय। इस प्रकार के संयोजन की परिस्थितियाँ सुलभ थीं। कैमवोर्ड के कोई सन्तान न थीं। इसलिये उसकी मृत्यु के बाद के उत्तराधिकार ओरलियनिस्ट वंश को उप-लब्ध होना था, जिसका प्रमुख प्रतिनिधि स्वयं पेरिस का काउण्ट था। ज्येष्ठवंश के बाद कनिष्ठवश को उसका उत्तराधिकारी वनना था। इस प्रकार का संयोजन उस दशा में और भी संभव मालूम दिया जवकि स्वयं पेरिस का काउण्ट कैम्वोर्ड के काउण्ट से भेंट करने को गया और उसने उसको अपने वंश का अध्यक्ष स्वीकार किया १८७३ के ग्रीष्मकाल में राष्ट्रीय सभा के उन सदस्यों की एक ऐसी पृथक संस्था वनायी गई थी जो सम्राट् हेनरी पंचम के विषय से राजतन्त्र की स्थापना का समर्थन करते थे। संगठन के साम्राज्यवादी पृथक रहे। संगठन की योजना भी कई प्रकार से सफल होती दिखायी पड़ती थी और ऐसा प्रतीत होता था कि इस वर्ष के अन्त तक फ्रांस में गणतन्त्र का अन्त हो जायगा और देश पर हेनरी पंचम का शासन स्थापित होगा। कैम्वोर्ड के काउण्ट के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त पर वल देने के कारण उस काल के लिये गणतंत्र सुरक्षित रहा। उसने कहा कि हम फ्रांस के प्राचीन वोर्वो शासन-तन्त्र के झंडे को कभी न छोड़ेंगे। "हेनरी चतुर्थ के सफेद झंडे और उसकी नीति को हेनरी पंचम भी कभी न त्याग सकता था।" वह पहले यह वात उद्घोषित कर चुका था और इस बात पर सदैव अटल रहा। तिरंगा झंडा क्रान्ति का प्रतीक था और यदि हेनरी पंचम फ्रांस का शासक था तो उसके सिद्धान्तों में इस प्रकार के विचारों के स्थान पर अपने निजी सिद्धान्त और पृथक झंडे का प्रभाव स्वाभाविक था। वह क्रांति का समर्थक नहीं हो सकता। इसके विपरीत ओरलियनिस्टों का तिरंगा झंडा था और उनका क्रान्ति में अधिक विश्वास था और वे यही समझते थे कि इनका जनता में

कैम्वोर्ड का काउण्ट

विशेष प्रचार था और प्रगति के इन महान् प्रतीकों की उपेक्षा करके कोई भी शासन स्थायी नहीं रह सकता। इस बाधा के कारण दोनों राजवंशों के संयोजन का प्रयास सफल न हो सका। फलतः गणतंत्र का भय समाप्त हो गया।

किन्तु राजतंत्रवादियों ने राजतंत्र की पुनःस्थापना की। उन्होंने आशा का त्याग न किया। इस सम्बन्ध में कैम्बोर्ड का काउण्ट अपना विचार बदल सकता था और यदि नहीं तो उसके कोई सन्तान न थी अतः सिंहासन के वास्तविक अधिकारी के रूप में पेरिस के काउण्ट को सत्तारूढ़ होना था और चूँकि पेरिस का काउण्ट क्रान्ति का समर्थक था अतः वह फ्रांस का शासक उद्घोषित किया जा सकता था। राजतंत्रवादियों ने इसलिये समय की प्रतीक्षा की। मार्शल मैकमोहन कार्यपालिका का अध्यक्ष उसी रूप में अनिश्चित काल के लिये चुना गया था जिस प्रकार से कि थियर्स। मार्शल मैक-मोहन को राष्ट्रीय सभा की संतुष्टि तक कार्य करना था। राजतन्त्रवादियों का विश्वास था कि जब तक फ्रांस का शासक इस योग्य न हो कि वह उसके राज्य सिंहासन पर बैठे, केवल तभी तक मार्शल मैकमोहन को शासन संचालन करना था। अतः उन्होंने उसका कार्यकाल केवल ७ वर्ष निश्चित किया जिससे कि इसकी मध्य परिस्थितियाँ सुगम बन जाएँ और या तो लोगों का मस्तिष्क ही बदल जाय अथवा कैम्बोर्ड के काउण्ट की मृत्यु हो जाय। यह सात वर्ष की शासन व्यवस्था इस रूप में स्थापित हुई और मार्शल मैकमोहन को इसका अध्यक्ष बनाया गया। वह अब भी जीवित है। यह सरकार राजतंत्रवादियों द्वारा जैसा कि वे अपने लिये हितकर समझते थे, निश्चित समय के लिए ही स्थापित की गयी। यदि वे १८७३ तक राजतंत्र की स्थापना न कर पाते तो कम से कम उन्हें यह अवसर तो उपलब्ध था, कि वे इस सरकार पर पर्याप्त समय तक नियंत्रण स्थापित किये रहते और इस प्रकार उपयुक्त अवसर के सुलभ होने पर अपनी नवीन राजतंत्रवादी सरकार की स्थापना करते।

सप्तवर्षीय शासन की व्यवस्था

फ्रान्स इस समय शासन की निश्चित व्यवस्था स्थापित करना चाहता था और इन सामायिक प्रबन्धों से वह छुटकारा पाना चाहता था जिनसे कि दलीय मतभेद उत्पन्न होता था और वैदेशिक नीति में फ्रान्स की असफलता सम्भाव्य थी। फ्रान्स का अब भी कोई संविधान न था किन्तु केवल शान्ति स्थापित करने के लिए निर्मित की गई राष्ट्रीय सभा ने संविधान निर्माण करने का आश्वासन दिया और इसी आश्वासन के बल पर वह सन्धि के बाद दीर्घकाल तक अपने सत्तारूढ़ रहने की पुष्टि करती रही। महीनों पर महीने और सालों पर साल बीतते चले गये किन्तु न तो फ्रान्स का संविधान बनाया गया और न ही इस पर गम्भीर विचार किया गया। यदि यह सभा संविधान न बना सकती थी तो इसे पद त्याग कर देना चाहिये था जिससे कि जनता ऐसी संस्था के निर्वाचन का अवसर पाती जो कि देश का संविधान निर्माण करती तथापि राष्ट्रीय सभा ने ऐसा करना स्वीकार न किया।

राष्ट्रीय सभा द्वारा संविधान निर्माण की उपेक्षा

राजतंत्रवादियों के पारस्परिक मतभेदों से गणतंत्रवादी दल ने लाभ उठाया। अब गणतंत्रवाद का इतना प्रचार था कि बहुत से राजतंत्रवादी भी इस निश्चय पर पहुँचने लगे कि भविष्य में राजतंत्र का पुनः स्थापन सरल न होगा। इस विचार से वे सब गणतंत्रवादी दल में सम्मिलित हो गये और १८७५ ई० में उन्होंने

यह निश्चय किया कि राष्ट्रीय सभा संविधान निर्माण करने के लिए तैयार है। जैसा कि पहले विभिन्न राष्ट्रीय सभाओं ने किया था, एक राजकीय प्रपक्ष पर नागरिकों के अधिकारों और उनके संगठन की केवल परिभाषा करके ही उन्होंने संविधान का निर्माण न किया। राष्ट्रीय सभा के सदस्यों ने तीन पृथक नियम बनाये जो सम्मिलित रूप में संविधान का कार्य करते थे। इन नियमों के अन्तर्गत दोनों सदनों की एक विधान सभा बनाई गयी। यह सदन चेम्बर आफ डिप्युटीस और सिनेट अर्थात् कार्यपालिका थे। सिनेट के सदस्यों की संख्या ३०० थी तथा उनकी प्रत्येक की कम से कम निश्चित आयु ४० वर्ष थी और उसका कार्यकाल नौ वर्ष निश्चित किया था। चेम्बर आफ डिप्युटीस के सदस्यों का निर्वाचन सार्वजनिक प्रणाली द्वारा होता था और इनका कार्यकाल चार वर्ष निश्चित था। यह दोनों सदन सम्मिलित रूप में उस राष्ट्रीय सभा का निर्माण करते थे जिसे गणतंत्र अध्यक्ष निर्वाचित करता था। वहाँ न तो कोई उपराष्ट्रपति अथवा उपाध्यक्ष की व्यवस्था ही है और न ही उत्तराधिकार प्रणाली की।

१८७५ का संविधान

दोनों सदनों के सदस्यों की तरह राष्ट्रपति को नियम प्रस्तावित एवं पारित करवाने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त उसका प्रमुख कर्तव्य यह है कि वह समस्त नियमों को संचालित करे और राज्य के समस्त कार्यों का नियन्त्रण करे, जल और स्थल सेनाओं का निर्देशन करे और समस्त सैनिक एवं सार्वजनिक पदों की नियुक्तियाँ करे। राष्ट्रपति को यह भी अधिकार है कि वह सिनेट का परामर्श लेकर चेम्बर आफ डिप्युटीस को भंग कर दे और नवीन निर्वाचकों का आदेश प्रकाशित करे तथापि उसकी यह शक्तियाँ केवल नाम की ही थीं। यह आवश्यक था कि राष्ट्रपति का प्रत्येक निर्देश किसी न किसी मन्त्री (कार्यपालिका अथवा सिनेट के सदस्य) के हस्ताक्षरों द्वारा ही प्रसारित होता था। इस प्रकार यह मन्त्री ही राष्ट्रपति के उस कार्य का उत्तरदायी हो जाता था। राष्ट्रपति प्रत्येक कार्य का अनुत्तरदायी होता था, जब तक कि कोई भारी षड्यन्त्र का मामला न हो।

फ्रांस का राष्ट्रपति

तीसरे गणतंत्र की मुख्य विशेषता यह थी कि वह संसदीय व्यवस्था पर आधारित था। यह इंगलैण्ड के संविधान के अनुरूप और संयुक्त राज्य अमेरिका के गणतंत्र तथा फ्रांस के गत दोनों गणतंत्रों से भिन्न सिर्फ अपनी संसदीय प्रणाली के कारण था। फ्रांस में राष्ट्रपति की स्थिति वैधानिक सम्राट के अनुरूप है। उसके सारे कार्य मंत्रियों की सहमति और हस्ताक्षरों द्वारा ही होते हैं और वे उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी होते हैं। यह मंत्री बारी-बारी से सदनों और विशेष कर चेम्बर आफ डिप्युटीस के सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार मंत्रिमंडल सदन द्वारा नियंत्रित होता है और उसका बनना या बिगड़ना चेम्बर के प्रधान के अधीन होता है। विधानसभा कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है। इस प्रकार विधान सभा और कार्यपालिका इंगलैण्ड के विधान की भाँति एक-दूसरे से संयुक्त हैं, न कि संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति एक-दूसरे से पृथक हैं।

मन्त्रिमण्डल

इस गणतंत्र की एक आवश्यक विशेषता यह है कि इसकी प्रशासकीय व्यवस्था को एक राजतंत्र में विस्तृत किया गया है। १८७५ का संविधान ऐसे दो विपरीत तत्वों का समन्वय था जो एक-दूसरे के पृथक रूप में किसी सफलता का श्रेय लाभ न कर सकते थे।

फ्रान्स एक संसदीय गणतंत्र के रूप में

जिस राजतंत्रवादी राष्ट्रीय सभा ने फ्रांस में १८७५ ई० के संसदीय गणतंत्र की स्थापना की थी, उसने विचार किया कि उसने अपनी व्यवस्था के अन्तर्गत पर्याप्त रूप में राजतन्त्रवादी तत्वों का समावेश कर दिया है। इससे प्रजातन्त्र की वृद्धि प्रतिबंधित रहेगी और किसी उपयुक्त अवसर पर राजतंत्र का पुनर्स्थापन सरल होगा। उसका विचार था कि सीनेट एक राजतंत्रवादी दुर्ग होगी और यह राष्ट्रपति के साथ मिलकर चेम्बर आफ डिप्युटीस पर उसे भंग करने की क्षमता द्वारा नियन्त्रण स्थापित करेगी।

मार्शल मैकमोहन की नीति

कुछ ही वर्षों पूर्व गणतन्त्रवादियों ने फ्रांस की गणतन्त्रीय सरकार के प्रायः सभी विभागों पर अपना प्रभाव स्थापित किया था। प्रथम निर्वाचनों में जो कि नवीन संविधान के अन्तर्गत १८७६ के प्रारम्भ में हुए थे, राजतन्त्रवादियों ने सीनेट में थोड़ा-सा बहुमत स्थापित करने में सफलता प्राप्त की, जबकि गणतन्त्रवादियों ने चेम्बर आफ डिप्युटीस में अपना विशाल बहुमत स्थापित कर लिया। साधारणतया यह स्वीकार किया जाता था कि राष्ट्रपति मैकमोहन अपने विचारों से राजतन्त्रवादी था। यह बात उस समय स्पष्ट हुई जब कि मई १८७७ में चेम्बर आफ डिप्युटीस में अपना बहुमत रखने वाले गणतन्त्रवादी साइवन मन्त्रिमंडल को पदच्युत कर दिया गया तथा उसके स्थान पर ब्रोगली के ड्यूक के नेतृत्व में राजतंत्रवादियों का एक नवीन मन्त्रिमण्डल नियुक्त किया गया। तदुपरान्त इस मंत्रिमंडल ने अपने राजतन्त्रवादी विचारों की प्रधानता के कारण बहुसंख्यक गणतन्त्रवादियों से युक्त चेम्बर आफ डिप्युटीस को भंग करके नवीन निर्वाचनों का आदेश प्रसारित करवाया। राजतन्त्रवादियों ने गणतन्त्रवादियों के विरुद्ध कठिन संघर्ष किया।

तृतीय गणतन्त्र और चर्च

राजतन्त्रवादी सन् १८७१ ई० से अत्यधिक सक्रिय रहने वाले पादरी दल का समर्थन पर्याप्त रूप में प्राप्त कर चुके थे। गणतन्त्रवादी कैथोलिक पादरियों के गणतन्त्र पर अनावश्यक प्रभाव का विरोध करते थे और उनकी तत्संबन्धी भावना गेम्बेटा के इस प्रसिद्ध पद से प्रदर्शित रोमन कैथोलिक चर्च गणतन्त्र का सबसे भयंकर प्रतिद्वन्द्वी था। गणतन्त्रवादियों और राजतन्त्रवादियों का पारस्परिक संघर्ष बढ़ता गया। ब्रोगली के मंत्रिमंडल गेम्बेटा और गणतन्त्रवादियों के विरुद्ध जनमत को प्रभावित करने का प्रत्येक सम्भव प्रयास किया। पादरियों ने भी ब्रोगली मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का समर्थन करते हुए इस संघर्ष में सक्रिय भाग लिया और गणतंत्रवादियों के विरुद्ध प्रबल प्रचार किया; किन्तु अन्त में उन्हें अपने इस प्रकार के कार्यों के लिये बहुत ही महँगा मूल्य देना पड़ा।

ज्यूल्स ग्रेवी का राष्ट्रपति चुना जाना

इतना होते हुए भी सार्वजनिक निर्वाचनों में गणतन्त्रवादी अप्रत्याशित रूप में विजयी हुए। अगले वर्ष, सन् १८७८ ई० उन्होंने सिनेट में अपना बहुमत स्थापित कर लिया और १८७९ ई० में उन्होंने मेकमोहन को त्याग पत्र देने को विवश कर दिया। इसके बाद ही राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन किया गया और इसमें ज्यूल्स ग्रेवी को राष्ट्रपति निर्वाचित किया। ज्यूल्स ग्रेवी एक ऐसा व्यक्ति था, जिसकी कि गणतन्त्रवादी सिद्धांतों पर अत्यधिक श्रद्धा थी और इसका ज्ञान फ्रांसवासियों को गत बीस वर्षों से था। १८७१ ई० के बाद गणतन्त्रवादियों ने

पहले पहल चेम्बर आफ डिप्युटीस तथा सिनेट और राष्ट्रपति की कार्यपालिका पर अपना नियन्त्रण स्थापित किया। इस समय से फ्रांस का गणतन्त्र पूर्णतया वहाँ के गणतन्त्रवादियों के हाथ में आ गया।

इस समय गणतन्त्रवादियों ने अपने को पूर्णतया सफलीभूत होते देखकर वैधानिक निर्माण कार्यों द्वारा गणतन्त्र का पुनर्गठन आरम्भ किया। इस समय मुख्यतः दो राजनीतिज्ञों गेम्बेटा और ज्यूलस फेरी की प्रतिष्ठा सर्वाधिक थी। गेम्बेटा चेम्बर आफ डिप्युटीस का सभापति था और ज्यूलस फेरी विभिन्न मन्त्रि-मंडलों का सदस्य था तथा दो बार प्रधान मन्त्री बन चुका था। राजतन्त्रवादियों और पादरियों के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के श्रेय का प्रदर्शन करने के लिये तथा गणतन्त्र को सुदृढ़ रूप प्रदान करने के उद्देश्य से गणतंत्रवादी सरकार ने फ्रांस की संस्थाओं को पूर्णतः गणतन्त्रवादी और धर्म-निरपेक्ष बनाने का नियम बनाया। सरकार की राजधानी को वर्साय से जहाँ यह १८७१ ई० से स्थापित की गयी थी, स्थानान्तरण करके पेरिस में स्थापित किया गया। सन् १८८० ई० में १४ जुलाई का दिन जबकि बास्तील (Vastille) का पतन हुआ था जनता की राजतन्त्र पर विजय का प्रतीक माना गया, यह राष्ट्रीय अवकाश का दिन घोषित किया गया और फ्रान्स के इतिहास में सर्वप्रथम १८८० ई० में यह दिन बड़े समारोह और उत्साह के साथ मनाया गया। नागरिकों का बिना सरकार की पूर्व अनुमति लिये हुए स्वेच्छानुकूल सार्वजनिक सभाएँ करने का अधिकार अब सुरक्षित हो गया। इसके अतिरिक्त १८८१ ई० में समाचार-पत्रों को भी असीम स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। श्रमिक वर्ग को भी स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी ट्रेड यूनियनें बनाने की अनुमति दे दी गयी (सन् १८८४ ई०)। गणतन्त्रवादी देश में शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने को विशेष चिन्तित थे। चूँकि राज्य की आधारशिला सार्वजनिक मताधिकार ही थी। अतः इस बात की मौलिक आवश्यकता समझी गयी, कि यह मतदाता पर्याप्त सुशिक्षित एवं बुद्धिमान हो। शिक्षा गणतन्त्र का मूलाधार समझी
गयी। अतः शिक्षा की समस्त श्रेणियों के विषय में **राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा**
और मुख्यतः प्राथमिक विद्यालयों के सम्बन्ध में उनके अनेक **की व्यवस्था**
नियम बनाये गये। १८८१ के कानून के अनुसार प्राथमिक
शिक्षा निःशुल्क कर दी गयी और १८८२ ई० के दूसरे कानून ने इसे छः से लेकर तेरह वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य कर दिया। उसके बाद के कानूनों द्वारा प्राथमिक शिक्षा को पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष बना दिया गया। इन विद्यालयों में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है। वहाँ सर्वसाधारण वर्ग के ही लोग अध्यापक नियुक्त होते हैं। इस लोकप्रिय शिक्षा-प्रणाली की स्थापना का कार्य गणतन्त्र के महान् लाभदायक निर्माण कार्यों में से एक है। ज्यूलस फेरी के असाधारण कार्यों एवं प्रभाव के फलस्वरूप जो, १८८१ में तथा उसके बाद १८८३ से १८८५ ई० तक फ्रांस का प्रधानमंत्री रहा, गणतन्त्र ने एक आक्रामक औपनिवेशिक नीति पर चलना आरम्भ किया। उसने ट्यूनिस पर अपना संरक्षणात्मक नियन्त्रण स्थापित किया, टोकिन और मेडागास्कर का औपनिवेशिक अभियान किया और फ्रेन्च कांगो नामक उपनिवेश की स्थापना की। इस नीति ने प्रारम्भ से ही देश में भीषण विरोध एवं वैमनस्य को जन्म दिया और इस पर सरकार का धन भी अत्यधिक व्यय हुआ, किन्तु ज्यूलस फेरी ने विरोधी तत्वों की उपेक्षा करके अपनी नीति पर दृढ़ता से कार्य किया और फलतः वह समयान्तर में अपने पद से पृथक कर दिया गया। इस प्रकार के

औपनिवेशिक नीति

साहसपूर्ण कार्यों में उसके विभिन्न उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य आर्थिक था। फ्रांस जर्मनी और इटली के साथ प्रतिद्वन्द्विता अनुभव करता था और फेरी का यह विश्वास था कि फ्रांस को अपने द्वारा शनैः शनैः अपनी छोड़ी हुई मण्डियों के बदले में नई मण्डियों में अवश्य अधिकार करना चाहिये। इस प्रकार तथा वैसे भी फ्रांस को अपने आत्मगौरव की वृद्धि करनी होगी और अपनी सन्तोषजनक स्थिति में यदि उसने अपना ध्यान जर्मन युद्धों में होने वाली असीम क्षति से हटाकर साम्राज्य विस्तार की ओर अग्रसर किया, तो निश्चय ही विदेशों में उसे महान गौरव प्राप्त होगा। उसका दृष्टिकोण व्यापक हो जायगा। इसके अतिरिक्त, फ्रांस उस दशा में शान्त नहीं बैठा रह सकता था, जबकि उसके समीपस्थ दूसरे राष्ट्र अफ्रीका और एशिया तक अपने उपनिवेश विस्तार के हेतु पहुँच चुके थे। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का विकास प्रारम्भ हो चुका था। इस परिवर्तन में फ्रांस को भी सक्रियतापूर्वक सम्मिलित होना था, अन्यथा वह अन्यान्य राष्ट्रों की प्रतिद्वन्द्विता के मध्य सबसे अधिक पिछड़ा हुआ देश रह जाता। ज्यूल्स फेरी के दृढ़ नेतृत्व में उपनिवेश विस्तार की नीति सफलतापूर्वक संचालित हुई और फ्रांस के उपनिवेशों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई, किन्तु कुछ एक या दो सामान्य त्रुटियों और उसके शत्रुओं द्वारा उन्हें अत्यधिक कुख्यात किये जाने के फलस्वरूप स्वयं फेरी की लोकप्रियता समाप्त हो गयी और उसका मन्त्रिमण्डल सन् १८८५ ई० में पदच्युत कर दिया गया।

१८८२ में गेम्बेटा की मृत्यु

आगामी कुछ वर्षों में फ्रान्स की राजनैतिक स्थिति संकटजनक और अनिश्चित हो गई। लोगों के विचारों को प्रगतिशील एवं समुन्नत बनाने वाला फ्रान्स का कोई भी राजनीतिज्ञ इस समय न था। १८८२ में ही गेम्बेटा ४४ वर्ष की अवस्था में परलोक सिधार चुका था, तथा प्रसिद्ध साम्राज्य-निर्माता फेरी निराधार एवं अकारण कलंक एवं कुख्याति का पात्र बन चुका था। फलतः फ्रांस में शीघ्रातिशीघ्र मंत्रिमण्डल बदलते रहे और राजनीति कुछ इने गिने स्वार्थी अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों का खेल बन गयी थी। खेद है कि फ्रांस में इस समय कोई भी प्रभावशाली कूटनीतिज्ञ तथा देश प्रेमी राजनीतिज्ञ उन्नति न कर सका।

कार्नो का राष्ट्पति के पद पर निर्वाचन

सरकार की शिक्षा, चर्च एवं उपनिवेश सम्बन्धी नीति की चारों और निंदा होने लगी। इसी मध्य फ्रांस में एक ऐसा कुचक्र रचा गया, जिसमें तत्कालीन राष्ट्रपति ग्रेवी का जमाता सम्मिलित था। इस कारण ग्रेवी को अपने पद का त्याग करना पड़ा।

गणतंत्र के प्रति जनता में असन्तोष

३ दिसम्बर १८८३ के दिन एक उदारवादी एवं गणतंत्रवादी राजनीतिज्ञ कार्नो को फ्रांस का राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया। ऐसी अव्यवस्थित एवं संकटग्रस्त दशा में यह स्वाभाविक था, कि फ्रांस के गणराज्य के प्रति लोगों में सामान्य असन्तोष फैले और गणतंत्र के विरोधी पुनः अनुशासनहीनता फैलाने का प्रयास करें। इन विरोधियों को सौभाग्यवश जनरल बोलेंजर नामक एक लोकप्रिय व्यक्ति एवं प्रसिद्ध सेना मंत्री ताने के रूप में मिल गया।

सन् १८८६ ई० में यह फ्रांस का युद्ध मंत्री नियुक्त हुआ था। उसने अपने

पदसम्बन्धी कार्यों में अत्यधिक रुचि प्रकट करते हुए देश के सैनिकों की स्थिति को सुधारने की चेष्टा की उसने उनके लिये अच्छी बैरकें बनवायीं और उनकी सेवा का काल भी कम कर दिया। उसने अनेक समाचार-पत्रों को प्रभावित किया और इनमें यह

जनरल बोलेंजर

प्रचारित किया जाने लगा कि फ्रांस बोलेंजर के नेतृत्व में ही यूरोप में उन्नति कर सकता है तथा जर्मनी से अपनी अपमानजनक पराजय का बदला ले सकता है। उसने गणतंत्र के रक्षक के रूप में अपने को प्रकट करते हुए सरकार से अनुरोध किया कि देश का विधान बदल दिया जाये। उसका कार्य-क्रम एवं नीति महत्त्वहीन थी तथा इसी बात पर केन्द्रित थी, कि देश की विधान सभा के अधिकारों में कमी करके राष्ट्रपति की शक्तियाँ बढ़ा दी जाएँ। सम्भवत: उसे विश्वास था कि यदि वह इस पद के लिये प्रत्याशी बने तो जनता द्वारा वह एक भारी बहुमत से निर्वाचित हो जायेगा। तीन वर्ष तक बोलेंजर का व्यक्तित्व और कार्यक्रम देश में भारी अशांति का कारण बना रहा।

असन्तुष्ट जनता के अनेक वर्ग, राजतंत्रवादी, साम्राज्यवादी और चर्च के पादरी को उसे गणतंत्र को परिवर्तित करके राजतंत्र बनाने का माध्यम समझते थे इन दलों ने उसके प्रचार कार्यों के लिये धन एकत्रित किया। यह प्रचार जनरल बोलेन्जर की ओर से जनता को प्रभावित करने के लिये अपने सत्संघी प्रबंधकार बहुत ही तत्परता से करते थे। जनता को अपनी ओर अधिकाधिक रूप में आकृष्ट करने के लिये जनरल बोलेन्जर ने अनेक निर्वाचन क्षेत्रों से अपने समय में होने वाले संसदीय रिक्त स्थानों के प्रत्याशी के रूप में निर्वाचन लड़ने का निश्चय किया। पाँच महीनों के अन्दर वह छ: बार चेम्बर आफ डिप्युटीस के सदस्य के पद पर निर्वाचित हुआ। सातवें निर्वाचन में जो जनवरी १८८९ ई० से पेरिस में हुआ, उसकी भारी बहुमत से विजय हुई। ८०००० से भी अधिक बहुमत द्वारा वह चेम्बर का सदस्य निर्वाचित हुआ। इस समम जैसा कि अवसर उपयुक्त था और जैसा कि पिछले वर्षों में दो बोनापार्टों द्वारा किया गया था, उसे भी अंतिम पग उठाकर समस्त शासन सत्ता को ही हस्तगत कर लेना शेष था। तथापि इतने महान् साहस का उसमें सर्वथा अभाव था। इस संकटपूर्ण परिस्थिति में गणतंत्रवादियों ने अपना सारा भेद-भाव भुलाकर अपना संगठन कर लिया। उन्होंने राजतंत्रवादियों का प्रबल विरोध आरम्भ किया। गणतंत्र-वादी मंत्रिमंडल ने जनरल बोलेन्जर को सिनेट के सामने

गणतंत्र का जटिल स्थिति में फँसना

उपस्थित होने का निर्देश प्रकाशित किया और इस समय उच्च न्यायालय के रूप में सिनेट ने उसके ऊपर राज्य की सुरक्षा को क्षतिग्रस्त करने का आरोप लगाया। जनरल बोलेन्जर भला कब इतने भयंकर अपमान को सहन कर सकता था। उसने शीघ्र ही अपने देश से बेल्जियम को पलायन कर दिया। उसकी अनुपस्थिति में सिनेट ने उसके ऊपर कठोर आरोप लगाकर उसे अपमानित किया। उसका दल छिन्न-भिन्न हो गया और इसका सामान्य कारण केवल इतना ही था, कि उसका नेता एक अत्यन्त साहसहीन व्यक्ति था। इस घटना के दो वर्ष बाद बोलेन्जर ने आत्महत्या करली। गणतंत्र ने एक जटिल स्थिति अवश्य उत्पन्न की थी, किन्तु वह इसके बीच से किसी दुर्बल स्वरूप को नहीं प्रत्युत अत्यन्त प्रबल शक्ति प्राप्त करके निकला। इसके प्रतिद्वन्दी असफल और लज्जित हुए।

१८९१ ई० में एक अन्य महत्त्वपूर्ण राजनैतिक सफलता ने गणतंत्र को और भी शक्तिशाली बना दिया। इसके साथ फ्रान्स की संधि के फलस्वरूप फ्रान्स का दीर्घकालीन अकेलापन समाप्त हुआ और जिसने फ्रान्स और प्रुशिया के युद्ध के बाद गत बीस वर्षों से उसे निःशक्त बना रखा था। उस संकट का अब अन्त हो गया। इस द्वैध-मैत्री संघ ने कालान्तर में आस्ट्रिया, जर्मनी तथा इटली की त्रैध-मैत्री सन्धि के साथ उठकर प्रतिद्वन्द्विता की। इसके अतिरिक्त इस संधि ने फ्रान्सीसियों को अपने भविष्य के प्रति आशा, विश्वास तथा देश की सुरक्षा के प्रति संतोष प्रदान किया और फ्रान्स के निवासी शान्ति और सन्तोष का अनुभव करने लगे।

द्वैध-मैत्री संघ

सन् १८९४ ई० में राष्ट्रपति कार्नो की हत्या कर दी गयी। उसके बाद कैसिमिर पीरियर (Casimir-Perier) को उसके उत्तराधिकारी के रूप में चुना गया, किन्तु छः महीने के बाद ही उसने पद त्याग कर दिया। उसकी जगह पर फेलिक्स फौर (Felix-Faur) को राष्ट्रपति बनाया गया, किन्तु १८९९ ई० में ही वह भी परलोक सिधार गया। फेलिक्स फौर के जीवन काल में भी फ्रान्स और रूस की मैत्री तथा ड्रेफस के मामले का आरंभ हुआ था। यह दुर्घटना बोलेन्जर की हत्या से भी कहीं अधिक भीषण थी और इसने गणतंत्र के लिए एक नवीन कठिनता एवं जटिल स्थिति उत्पन्न कर दी थी। फौर की मृत्यु के बाद एमाइल लोबेट (Emile Loubet) फ्रान्स का राष्ट्रपति चुना गया।

ड्रेफस का मुकद्दमा (The Dreyfus Case)

अक्टूबर १८९४ में किसी अप्रत्याशित एवं गुप्त परिस्थिति में सेना के ड्रेफस-नामी एक यहूदी पदाधिकारी को बन्दी बनाया गया और उसका कोर्ट मार्शल करके उस पर भयंकर कुचक्र करने का आरोप लगाया गया। इसके अतिरिक्त उस पर यह भी आरोप लगाया गया कि उसने विदेशी शक्ति सम्भवतः जर्मनी के पास फ्रान्स की सरकार के महत्त्वपूर्ण प्रपत्रों को प्रेषित किया था। यह न्यायालय कार्यवाही गुप्त रूप में की गई थी और उसके ऊपर लगाये गये समस्त आरोप तत्कालीन परिस्थिति की साक्षी पर ही आधारित थे। कहा जाता है कि इन प्रपत्रों पर उसकी हस्तलिखित पंक्तियाँ विद्यमान थीं। वह सेना से निकाल दिया गया और आजीवन बन्दी बना लिया गया। जनवरी १८९५ में वह एक सैनिक विद्यालय के प्रांगण में एक विशाल सैनिक टुकड़ी के समक्ष अत्यन्त ही नाटकीय ढंग से सार्वजनिक रूप में अपमानित किया गया। उसके राजकीय वस्त्रों से समस्त राजकीय चिह्न उतार डाले गये और उसकी तलवार खण्ड-खण्ड कर दी गयी। इस पीड़ाजनक दृश्य के मध्य वह एक राजद्रोही था और उसने अपने अपराध को स्वीकार करते हुए चिल्ला कर कहा—

ड्रेफस का अपमानित एवं बन्दी किया जाना

"विवे-ला-फ्रांस"।

इसके पश्चात् ड्रेफस एक छोटे से उजाड़ और जंगली द्वीप फ्रेन्च गायना को निर्वासित कर दिया गया। यह द्वीप दक्षिणी अमरीका में है और अपने उजाड़पन के कारण यह दैत्य का द्वीप कहा जाता है। इस जंगली द्वीप में ड्रेफस को अज्ञातवास में रखा गया। इन दुस्सह परिस्थितियों में कोई भी व्यक्ति आजीवन बन्दी के रूप में नहीं रह सकता था क्योंकि यह वातावरण मानव जीवन के लिये अत्यधिक घातक था।

ड्रेफस के मित्रों ने सरकार की इस नीति को अन्यायपूर्ण बतलाते हुए सरकार से यह अनुरोध किया कि उसका यह कृत्य अनुचित था, किन्तु सरकार ने उस ओर कोई ध्यान न दिया। सन् १८९६ ई० एक सरकारी गुप्तचर अधिकारी कर्नल पिकार्ट (Colonel Picquart) ने यह पता लगाया कि जिस प्रपत्र के लिये कुछ समय पूर्व ड्रेपस पर अपराध लगाया गया था; उस पर ड्रेफस का हस्तलेख न होकर मेजर इस्तरहेजी (Major Esterhaxy) का हस्तलेख मिलता था और वह सेना का एक अत्यन्त कुख्यात एवं भ्रष्ट पदाधिकारी सिद्ध हो चुका था। इसके बाद पिकार्ट के उच्चपदाधिकारी उसके प्रयासों के प्रति आभार भी न प्रकट कर सके; क्योंकि यह भली-भाँति मालूम था कि यदि किसी ने मार्शल के निर्णय को त्रुटिपूर्ण सिद्ध कर दिया तो इसमें सेना का अपमान होगा। फलतः इस पद से कर्नल पिकार्ट को च्युत करके कर्नल हेनरी को नियुक्त किया गया।

जनवरी १८९८ ई० में एमाइल जोला नामक एक सुप्रसिद्ध उपन्यासकार ने पर्याप्त साहस और योग्यता के साथ एक पत्र प्रकाशित किया जिसमें उसने ड्रेफस का कोर्ट मार्शल करने वाले न्यायधीशों की कठोर निन्दा की और इसमें उसने न्यायधीशों पर अन्याय का लान्छन न लगाकर भ्रष्टाचार का आरोप
लगाया। बहुत से प्रख्यात साहित्यकारों और विद्वानों ने इमाइल जोला द्वारा तत्सम्बन्धी निर्णय पर वाद-विवाद करके ड्रेफस को निरपराध ड्रेफस के मामले को पुनः सिद्ध किया। जोला इस मुकद्दमे को पुनः प्रारम्भ करना प्रारम्भ किया जाना चाहता था। किन्तु वह इसी समय एक न्यायालय द्वारा
बन्दी बनाया गया और उस पर भारी अर्थ-दण्ड लगाया गया। कुछ ही दिनों बाद हेनरी ने आत्महत्या कर ली क्योंकि उसके ऊपर ड्रेफस सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सरकारी प्रपत्र का भेद देने एवं उसमें कुचक्र रचने का आरोप लगाया गया था। उसकी आत्महत्या को उसके द्वारा अपने अपराधों का पश्चाताप माना गया। इस अत्यंत भयंकर घटना की अनेकों दुर्घटनाओं ने जनमत को ड्रेफस को पुनः आरम्भ कराने की ओर अग्रसर किया। जनता में इस मामले के विषय में घोर असंतोष फैला हुआ था। ड्रेपस अपने शारीरिक और मानसिक रोगों से उत्पीड़ित रूप में दैत्यों के द्वीप से लाया गया। उसको नवीन रूप से अगस्त १८९९ में रेन्स के कोर्टमार्शल न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। यह नया मुकद्दमा फ्रांस की अत्यधिक उत्तेजित जनता के मध्य में आरम्भ हुआ। इसके प्रति विदेशों में भी विशेष चिन्ता व्याप्त थी। इस मामले के विषय में दलों की वह उत्तेजना प्रज्वलित हुई जो कम्युन के शासन में अद्वितीय थी। ड्रेफस के पक्षपातियों को सेना स्वाभिमान गिराने का दोषी बतलाया गया। सेना, जो कि देश की सुरक्षा के लिये सर्वाधिक उपयोगी थी, को अपमानित करने वालों को देश-द्रोही सिद्ध किया गया था। रेन्स के न्यायालय में उसे अनेक सैनिक अधिकारियों का विरोध सहन करना पड़ा। ये लोग पाँच वर्षों से इसका विरोध करते आये थे। यह निश्चय कर लिया गया था कि वह पुनः अपराधी सिद्ध किया जायगा। यह मुकद्दमा एक विशिष्ट प्रकार की आधारशिला पर चलाया गया। न्यायाधीशों का यह प्रत्यक्ष उद्देश्य था।

ड्रेफस का दूसरा मुकद्दमा

इस मामले की वे मुख्य बातें जिन पर इंगलैंड और अमेरिका में अधिक दल

दिया जाता था, छोड़ दी गयीं, जैसा कि लन्दन के प्रसिद्ध समाचार-पत्र (Times) द्वारा प्रकट किया गया था। फ्रांस के बाहर लोगों का यह विचार था कि "कैप्टन ड्रेफस के विरुद्ध यह मामला सैनिक अधिकारियों द्वारा बनाया गया था और इसमें असत्यता और झूँठी बातें सम्मिलित कर दी गयी थीं और ड्रेफस को इतना कठोर दण्ड दिये जाने का कोई उचित कारण भी स्पष्ट नहीं किया गया था।"

ड्रेफस को पुनः अपराधी सिद्ध करना

इतना सब कुछ होते हुए भी न्यायालय में इसके पक्ष मैं पाँच मत तथा विपक्ष में दो मत देकर ड्रेफस को पुनः अपराधी घोषित किया गया। उसने इन जटिल परिस्थितियों में अपना यह आश्चर्यजनक निर्णय किया। यह सदैव स्वीकार नहीं किया जाता कि किसी का देश के विरुद्ध कुचक्र इतनी भयंकर परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दे। न्यायालय में ड्रेफस को दस वर्ष की सजा दी गयी, जिसमें से जितने समय वह फ्रेन्च गायना में रहा था उतना समय कम कर दिया गया गया था। ड्रेफस को इस प्रकार अपराधी घोषित करके न्यायालय ने सेना के आत्मसम्मान की रक्षा की।

ड्रेफस को क्षमा किया जाना

राष्ट्रपति लोबेट ने ड्रेफस का अपराध क्षमा करके उसे मुक्त होने का आदेश दे दिया। ड्रेफस का स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया था। यह फैसला किसी भी पक्ष को संतोष न दे सका। ड्रेफस के विरोधियों ने लोबेट की कटु आलोचना की। इससे विपरीत ड्रेफस ने अपने को अपराध मुक्त करके क्षमा किये जाने की माँग की। वह चाहता था कि न्यायालय उसके विषय में यह स्वीकार करे कि उस पर चलाये गये अभियोग से उसका कोई सम्बन्ध न था। सरकार ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि इस अभियोग की चर्चा को अविलम्ब समाप्त हो जाना चाहिये था, क्योंकि इसने समाज में प्रबल मतभेद उत्पन्न कर रखा था। ड्रेफस के समर्थकों के विरोध को ध्यान में रखते हुए सरकार ने १९०० ई० वे एक अधिनियम द्वारा उन सारे अपराधियों को क्षमा प्रदान कर दी, जो इस अभियोग में पकड़े गये थे। स्पष्ट है कि अब इस मुकद्दमे में फँसे हुए किसी भी व्यक्ति पर कोई अपराध नहीं लगाया जा सकता था। जोला एवं पिकर्ट द्वारा तीव्र निरोध किये जाने पर भी यह बिल पारित कर दिया गया।

छः वर्ष बाद ड्रेफस के समर्थकों के साथ न्याय किया गया। इस मुकद्दमे पर पुनः विचार करने के लिये इसे सेशन कोर्ट में भेजा गया। १२ जुलाई १९०६ को इस न्यायालय में इस मुकद्दमे की कोर्ट मार्शल कार्यवाही को समाप्त कर दिया गया और यह उद्घोषित किया कि ड्रेफस पर लगाये गये सारे अपराध निराधार थे और कोर्ट मार्शल ने उसके साथ अन्याय किया था। यदि इस सैनिक न्यायालय ने ड्रेफस की गवाही स्वीकार की होती तो उसका निरपराध होना स्वयं ही सिद्ध हो जाता। यह मामला फिर किसी दूसरे सैनिक न्यायालय को नहीं गया और सदैव के लिये समाप्त कर दिया गया। सरकार ने अब ड्रेफस को उसके सैनिक पद पर पुनः वापस कर दिया और उसे अब पहले से निम्न पद अर्थात् मेजर का स्थान दिया जिससे कि ड्रेफस अपने शेष जीवन भर इस चिन्ता में पड़ा रहे कि उसे इतने अन्याय के साथ अपने उच्च पद से च्युत किया गया। २१ जुलाई १९०६ के दिन उसे उसी सैनिक विद्यालय में सम्मान पूर्ण पद से विभूपित किया गया जहाँ कि ग्यारह वर्ष पहले

ड्रेफस के साथ न्याय

उसको नाटकीय ढंग से अपमानित किया गया था। कर्नल पिकार्ट जिसे ब्रिग्रेडियर जनरल बनाया गया था, अब फ्रान्स का युद्ध मंत्री नियुक्त हुआ। जोला की सन् १९०३ ई० में ही मृत्यु हो गई, किन्तु १९०८ ई० में उसका शरीर पेन्थियन (Panthion) में लाया गया और उसके प्रति सार्वजनिक रूप में सम्मान प्रकट किया गया। इस प्रकार उस मामले का अंत हुआ। ड्रेफस का मामला मूलतः एक सामान्य मुकद्दमा था।

ड्रेफस के मुकद्दमे का महत्त्व

ड्रेफस के इस साधारण से मामले में देशद्रोह का अपराध लग गया था और इस कारण इसकी विशेष महत्ता थी। दलीय और व्यक्तिगत महत्त्वकांक्षाओं एवं स्वार्थों ने इस मामले को अपनी स्वार्थ पूर्ति का साधन के रूप में उप-
भोग करने की चेष्टा की तथा उन्होंने वैधानिकता और अवैधानिकता के प्रश्न को खूब तोड़ा मरोड़ा। जो लोग यहूदियों से घृणा करते थे, उन्होंने इस मामले को लेकर देश-
वासियों को भड़काने की चेष्टा की और पादरी वर्ग उन्हीं से जा मिला। राजतंत्र-वादियों ने इस अवसर का अनुचित लाभ उठाकर यह प्रचारित किया कि गणतंत्र की यह भारी असफलता थी। इस भीषण कुचक्र को दबाने में असफल होने के कारण उसका उन्मूलन कर दिया जाना चाहिये। इसके विपरीत ड्रेफस के समर्थकों ने, जो ड्रेफस को निरपराध समझते थे, उसके विरुद्ध जातीय बर्बरता और घृणा की तीव्र निन्दा की। वे समस्त लोग जिनका यह विश्वास था कि सेना को सार्वजनिक पदाधिकारियों के नियत्रणों में होना चाहिए और जैसा कि सैनिक अफसर उस समय कर रहे थे उन्हें अपने को कानून से बढ़कर नहीं समझना चाहिये, ड्रेफस के साथ थे। वे व्यक्ति भी ड्रेफस का ही समर्थन करते थे, जिन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि गणतन्त्र को अपमानित करने के लिए यह मामला बनाया गया था और जिनकी धारणा थी कि पादरियों को राजनीति से पृथक रहना चाहिए।

धार्मिक संस्थाओं का शिक्षा देने से रोका जाना

संस्थाओं द्वारा शिक्षा देना समाप्त हो जायगा। राज्य को नवयुवकों की शिक्षा के क्षेत्र में अपने उदारवादी सिद्धान्तों के हित में एकाधिकार स्थापित करना आवश्यक था। अतः कोम्बस ने जिस पर कि इस नियम को लागू करने का दायित्व था, इस समय लगभग ५०० शैक्षिक एवं व्यापारिक संस्थाओं का दमन किया। कैथोलिकों ने इस नीति को अत्याचारपूर्ण कहकर विख्यात किया। उनका कहना था कि सरकार की यह नीति स्वतंत्रता, शिक्षा और बच्चों के माता-पिता को उन्हें संस्थीय विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कराने की स्वतन्त्रता पर एक भीषण आघात था।

१८०२ ई० का समझौता

यह घटनाएँ आगे चलकर एक भयंकर धार्मिक संघर्ष के रूप में प्रस्फुटित हुईं और अन्ततः राज्य और चर्च का पूर्ण पृथक्करण हो गया। १९०५ ई० तक कैथोलिक चर्च और राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों का राजकीय समझौते (Contract) द्वारा निर्धारण किया जाने लगा। इस प्रकार का समझौता नैपोलियन प्रथम और पोप पायस सप्तम के मध्य सन् १८०१ ई० में पहलेपहल हुआ था और उसके आगामी वर्ष यह कार्यान्वित किया गया। उस समय स्थापित की

गई व्यवस्था १९वीं शताब्दी तक चलती रही, यद्यपि इस बीच अनेक प्रकार के शासकों का नियन्त्रण रहा। तीसरा गणतंत्र बन जाने के बाद चर्च और राज्य के मध्य निरन्तर संघर्ष बढ़ते रहे। ड्रैफ्स के मामले में गणतन्त्रवादियों और चर्चवादियों का संघर्ष और भी बढ़ गया। फलतः ९ दिसम्बर १९०५ को एक नियम बनाया गया जिसके अनुसार उपर्युक्त धार्मिक समझौते का उल्लंघन कर दिया गया। अब राज्य को पादरियों को कोई वेतन न देना था। इसके अतिरिक्त राज्य ने पादरियों की नियुक्ति का अधिकार रद्द कर दिया सरकार ने अधिक वर्षों तक चर्च की सेवा कर चुकने वाले वृद्ध पादरियों के लिये राज्य-वृत्ति का विधान पारित किया। इसके अतिरिक्त राज्य को कुछ ही समय तक चर्च का कार्य करने वालों को भी कुछ राज्यवृत्ति देनी थी। सम्पत्ति के विषय में १७८९ ई० में यह घोषित किया गया कि चर्च के अधिकार में समस्त चर्च भवनों को राष्ट्रीय सम्पत्ति स्वीकार किया जाय। किन्तु अब यह नियम बनाया गया कि यह समस्त चर्च सम्पत्तियाँ रोमन कैथोलिक चर्च के ही अधिकार में रहेंगी। किन्तु वे इस समय बनाये पूजा स्थान के संगठन के प्रबन्ध में दे दी जाएँगी। यह संगठन क्षेत्रीय जनसंख्या के अनुसार छोटे-बड़े थे।

धार्मिक समझौते का उल्लंघन

पूजा स्थानों का संगठन

यह कानून पोप पायस दशम द्वारा तीव्र निन्दा का पात्र बनाया गया कि चर्च और राज्य का पृथक्करण सिद्धान्ततः एक मिथ्या दम्भ एवं घातक त्रुटि थी। उसने उन पूजा स्थानों के संगठन की निन्दा करते हुए उसे एक ऐसा नियन्त्रण बतलाया कि "जो दैवी एवं प्राकृतिक रूप में स्थापित परम्परागत संस्था के स्थान पर एक सामान्यतम व्यक्तियों के संगठन के सुपुर्द कर दिया गया था।" पोप के निर्णय को सभी रोमन कैथोलिकों ने अन्तिम मान कर यह सिद्ध किया कि यह कुछ बाह्य एवं मौलिक बातों पर ही आधारित था। उन्होंने १९०५ ई० के कानूनों को मानने से इन्कार कर दिया।

पोप का विरोध

अन्ततः १९०७ के प्रारम्भ में ही सरकार को १९०५ ई० के धर्म सम्बन्धी कानून के सम्पूरक के रूप में एक नवीन नियम पारित करना पड़ा। इस नियम द्वारा १९०५ के नियम के अनुसार कैथोलिक चर्च को दिये गये विशेषाधिकारों और सुविधाओं का अन्त कर दिया गया। इस नियम की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि धार्मिक कृत्यों के लिये चर्च को खुला रहने दिया गया, जिससे कि अब भ्रष्टाचार, अन्याय और जनता के असंतोष का कोई अवसर न रह गया। यदि इन धार्मिक स्थानों को बिलकुल बन्द कर दिया जाता तो निस्सन्देह फ्रान्स की जनता में असन्तोष फैल गया होता। इस नियम द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि इन पूजा स्थानों के प्रयोग पर किसी प्रकार का आर्थिक प्रतिबन्ध न होना चाहिये, प्रत्युत इन्हें पुरोहितों और नगर-सभाओं के अध्यक्षों के मध्य होने वाले समझौते के नियमों द्वारा संचालित होना चाहिये। इस समझौते से चर्च भवनों पर सार्वजनिक स्वामित्व अक्षुण्ण रहेगा और साथ ही साथ उनमें पूजा का कार्य भी पूर्ववत् होता रहेगा। यह व्यवस्था फ्रान्स में अब भी है।

२ जनवरी १९०७ का कानून

इन परिस्थितियों और नियमों के परिणामस्वरूप चर्च और राज्य का पृथक्करण हो गया। तदुपरान्त होने वाले निर्वाचनों में जनता ने सरकार की इस नीति का प्रत्यक्ष रूप से समर्थन किया। पादरियों और पुरोहितों को अब कोई वेतन न दिया जाता था। इसके विपरीत जनसाधारण को अब वे विस्तृत सफलताएँ सुलभ हुईं जो कि उन्हें १८०५ ई० के कन्कार्डेट (Concor-dat) द्वारा प्राप्त न थीं। ये सुविधाएँ धार्मिक सभाएँ करने की स्वतन्त्रता तथा चर्च के लिये अनिवार्य रूप से चन्दा देने के बन्धनों का अन्त थीं। इस प्रकार सिद्धान्ततः असमाजिक किन्तु प्रत्यक्ष रूप में व्यवहारिक रीति द्वारा चर्च के भवनों का उपयोग जनसाधारण के लिये सुलभ हुआ।

प्रबल गणतन्त्रवादी सरकार की स्थापना

राजनीतिक क्षेत्र में इस प्रसिद्ध संघर्ष का मुख्य परिणाम यह हुआ कि गणतंत्र-वादियों ने अपनी विभिन्न शाखाओं को एक कार्यक्रम और भावना के सूत्र में बाँधने का निश्चय किया। उन्होंने सेना और चर्च की राजनैतिक महत्ता को कम करने का भी विचार किया। सैनिक महत्ता को कम करने की दृष्टि से राजतन्त्रवादी सैनिक पदाधिकारियों को पद मुक्त करना था और चर्च के नैतिक महत्त्व को कम करने के लिये फ्रांस के इतिहास में चर्च के साथ महान् संघर्ष का श्रीगणेश होना था क्योंकि यह एक बहुत ही गम्भीर एवं जटिल समस्या थी।

चर्च और राज्य का पृथक्करण

राज्य और चर्च का प्रश्न

इस नवीन मतभेद ने वाल्डेक रूसो नामक पेरिस के एक उच्चतम श्रेणी के वकील के अत्यधिक प्रभावशाली बना दिया। वह पहले गेम्बेटा का अनुयायी था और इस समय फ्रांसीसी गणतन्त्र का प्रधानमन्त्री। वाल्डेक रूसो ने अक्टूबर १९०० ई० में अपना जो वक्तव्य टोलोज (Toulouse) में दिया था वह सारे देश में अत्यन्त प्रख्यात हो गया। उसका कहना था कि देशों को धार्मिक परम्पराओं से जो साधु सन्यासियों और सन्यासिनियों द्वारा प्रचलित की जाती है सबसे अधिक हानि पहुँचती है। इसके अतिरिक्त जो शिक्षा उनके द्वारा धार्मिक विद्यालयों में दी जाती है, वह देश के लिए और भी अधिक घातक होती है। उसने यह संकेत किया कि राज्य की यह एक विशिष्ट शक्ति है। चर्च स्वयं राज्य की ही प्रतिद्वन्द्विता एवं विरोध करता था।

धर्म सम्वन्धी संस्थाओं की वृद्धि

यह धार्मिक संस्थाएँ और परम्पराएँ फ्रांस के कानूनों द्वारा मान्यता न प्राप्त किए हुए होने पर भी धन और शक्ति में निरंतर बढ़ रही थीं। १८७७ और १९०० ई० के मध्यकाल में सरकारी मान्यता से वंचित संस्थाओं में भी संन्यासिनियों की संख्या १४,००० से बढ़कर ७५,००० हो गयी। संन्यासियों की संख्या १९०,००० थी। इन विभिन्न संस्थाओं के पास शताब्दी के मध्य में लगभग ५०,०००,००० फ्रैन्क के मूल्य की अचल सम्पत्ति थी, किन्तु १८८० तक यह बढ़कर ७०,०००,००० हो गयी और १९०० में यह १,०००,०००,००० फ्रैंक से भी अधिक हो गयी थी। चर्च संस्थाओं के पास असंख्य धन सम्पत्ति थी, जो जनसाधारण के व्यापार क्षेत्र के बाहर थी और जिससे आर्थिक संकट का अत्यधिक भय था। चर्चों की सबसे गंभीर एवं घातक कार्यवाही यह थी कि इनकी शिक्षा और उपदेश प्रणाली अत्यन्त ही दोषपूर्ण थी। वह गणतन्त्र के विरुद्ध तथा स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्तों के विपरीत ही शिक्षा देते थे

और फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के बाद से गणतन्त्रवादी सदैव ही इन सिद्धान्तों पर बल देते आये थे। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि चर्च के विद्यालय अपने विद्यार्थियों को गणतन्त्र और गणतन्त्रवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध भड़काने के सभी संभव प्रयास कर रहे थे। राज्य को इस प्रकार महान् भय था और पार्लियामेंट को इसका सामना करना स्वाभाविक था। गणतन्त्र की रक्षा के लिए रक्षात्मक उपाय किये जाने थे। इस निश्चय से वाल्डेक रूसो के मन्त्रिमंडल ने १ जुलाई १९०१ के दिन चर्च के संगठनों का नियम पारित किया, जिसने अन्य व्यवस्थाओं के साथ यह भी निश्चित किया, कि यह धार्मिक संस्थाएँ हर दशा में बिना पार्लियामेंट की मान्यता प्राप्त किए हुए अपना कोई कार्य नहीं कर सकती थीं। इस नियम के प्रतिपादकों का कथन था कि रोमन कैथोलिक चर्च गणतन्त्र का शत्रु था और यह गणतन्त्र के विरुद्ध विचार कर रहा था। इसके अतिरिक्त इस चर्च ने ड्रेफस विरोधी दल को फ्रान्स की संस्थाओं की निन्दा की ओर अग्रसर किया। नियम के प्रतिपादकों का कथन यह भी था कि कैथोलिक चर्च ने मैकमोहन के शासन काल में भी इसी प्रकार का दुस्साहस किया। उस समय गेम्बेटा ने यह घोषणा की थी कि पादरी दल ही राज्य का शत्रु था और मिस्टर कोम्बुस ने जो १९०२ में वाल्डेक रूसो का उत्तराधिकारी बना, इस सम्बन्ध में यह घोषणा की कि चर्चवाद उन समस्त आन्दोलनों और कुचक्रों की जड़ में विद्यमान मिलता है, जिनमें कि गत पैंतीस वर्षों से गणतन्त्रवादी फ्रान्स फँस रहा है।

चर्च संगठनों का नियम

इस भावना से प्रेरित होकर सन् १९०२ और १९०३ ई० में कोम्बस ने चर्च संगठनों का नियम तत्परतापूर्वक लागू किया। बहुत-सी चर्च संस्थाओं ने तो संसद की मान्यता और उसकी आवश्यकता को ही अस्वीकार कर दिया तथापि हजारों संन्यासी और संन्यासिनियों को उन संस्थाओं से दीक्षित होने को विवश कर दिया गया और यह संस्थाएँ बन्द कर दी गईं। सन् १९०४ के नियम में यह भी व्यवस्था की गई थी कि आगामी दस वर्षों में धार्मिक नियंत्रण स्थापित करेगी।

१९वीं शताब्दी में फ्रांस का उपनिवेश स्थापन

१७वीं-१८वीं शताब्दी में फ्रान्स का एक विस्तृत औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित था किन्तु लुई पन्द्रहवें के शासनकाल और नेपोलियन के काल में इंगलैण्ड के साथ अनेक युद्धों के फलस्वरूप उसके पास उपनिवेशों में इने-गिने क्षेत्रों के अतिरिक्त और कुछ न रह गया। १८१५ की शान्ति सन्धि के बाद उसके पास केवल दो चार महत्त्वपूर्ण क्षेत्र ही शेष रहे—जैसे कि पश्चिमी द्वीपसमूह में ग्वाडालोप (Guadaloupe) और मार्टिनिक (Martinque), न्यू फाउण्ड लाइन को छोड़कर सेण्टपियरी मिक्वेलन, भारत के सागरीतट के पाँच नगर जिनमें पांडेचेरी का नगर प्रमुख था, फ्रान्स के औपनिवेशिक साम्राज्य के अन्तर्गत थे। इसके अतिरिक्त बोरबोन जिसे कि पुनर्संयोजन कहा जाता है, भारतीय सागरीतट में हिन्द महासागर के तट पर स्थित एक टापू, दक्षिणी अमरीका में गायना जिसमें कि बहुत कम निवासियों का निवास था। अफ्रीका में सेनीगल आदि क्षेत्रों तक फ्रांस के उपनिवेश फैले हुए थे। यह असंख्यक अमरीकी जनता के सौभाग्यपूर्ण अतीत के दुःखद प्रतीक अथवा

फ्रांस की औपनिवेशिक साम्राज्य

स्मारक थे, और जो एक समय अत्यन्त विशाल साम्राज्य रहा था, उसका कंकाल मात्र ही अवशिष्ट बचा। निःसन्देह यह एक खेद का विषय है कि फ्रांस का विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया।

१९वीं शताब्दी में उसने साम्राज्य विस्तार का कार्य पुनः स्थापित करने का प्रयास किया और इस दिशा में फ्रांस को इंगलैण्ड के बाद दूसरे दर्जे की शक्ति प्राप्त कराने की ओर आवश्यक कदम उठाना था। सन् १८१५ के बाद ही धीरे-धीरे फ्रान्स का ध्यान भी युद्धों की ओर अग्रसर होता गया। फ्रांस ने १७९२ से लेकर १८१२ तक जो भी देश जीते थे वह अन्ततः उसके हाथ से निकल ही गये ! इन यूरोपीय क्षेत्रों के हाथ से निकल जाने के साथ-साथ फ्रांस को उपनिवेशों की हानि अत्यधिक क्षति पहुँचा चुकी थी। इस युद्ध में हर प्रकार के युद्ध क्षेत्र सम्बन्धी असफलता और अदूरदर्शितापूर्ण कार्यों का ही फ्रांस द्वारा परिचय किया गया। तथापि अब पुनः समय के अनुकूल हो जाने पर दोनों सरकारों अर्थात् इंगलैण्ड और फ्रांस में एक दूसरे के क्षेत्रों को अधिकृत किया और १८१५ के बाद इस समय तक अनेक शासनों के अन्तर्गत उपनिवेश विस्तार की नई भावना उत्पन्न हुई अफ्रीका के उत्तर में समुद्र का तटीय क्षेत्र अल्जीरिया था। फ्रांस ने अपने उपनिवेश विस्तार का कार्य अल्जीरिया से किया। अल्जीरिया फ्रांस के समीप अफ्रीका के उत्तरी सागरीय तट पर स्थित है। यहाँ पर फ्रांस के मुख्य नगर मारसेल्ज के पहुँचने में लगभग चौबीस घण्टे लगते थे। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अल्जीरिया ट्यूनिस और ट्रपरेमी नाम मात्र को ही तुर्क साम्राज्य के अधीन थे।

इसके विपरीत वे सर्वथा स्वतन्त्र रूप से असभ्य राज्य थे, जिनका कि मुख्य काम डाका डालना था ; किन्तु अब यूरोप के दूसरे राज्य इस बात को दीर्घकाल तक सहन करने के लिये तैयार न थे, कि ये इस्लामी राज्य उनकी सम्पत्ति को लूटते रहें तथा उनके नागरिकों को दास बनाते अल्जीरिया रहें। १८१६ ई० में एक अँग्रेजी नाविक बेड़े ने अल्जीरिया पर गोला-बारी की और ३,००० ईसाइयों को उसकी कैद से मुक्त कराकर उसे भीषण हानि पहुँचाई।

१८३० में अल्जीरिया की बे (Bey) में फ्रांसीसी कौंसल को अपमानित किया गया। इसके फलस्वरूप फ्रांस ने अल्जीरिया पर आक्रमण करने का निश्चय किया। अतः उसने अल्जीरिया की राजधानी अल्जीयर्स को विजय करने के लिये अपना जहाजी बेड़ा रवाना कर दिया। उसका उस समय पूरी अल्जीरिया पर अधिकार करने का विचार न था। फ्रांस की सरकार स्वच्छन्द डे को सजा देना चाहती थी। फ्रांस समय कुसमय पर अल्जीरिया के क्षेत्रों को अपने अधिकार में करता रहा और शनैः शनैः उसने सारे अल्जीरिया प्रदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। लुई फिलीप के पूरे शासन काल पर यह क्रिया चलती रही। इस संघर्ष के अन्तर्गत फ्रांस और अब्दुल कादिर नामक एक अल्जीरियन नेता के मध्य प्रबल संघर्ष चल रहा था। अब्दुल कादिर ने फ्रांस के विरुद्ध एक धार्मिक युद्ध लड़ा। अन्त में अब्दुल कादिर की पराजय हुई और फ्रांस को विशाल क्षेत्र प्राप्त हो गया।

नैपोलियन तृतीय के शासन काल में अफ्रीका के दूसरे भाग में विजय का कार्य

आरम्भ हुआ। लुई तेरहवें और रिसलू के समय में फ्रांस के पास एक या दो बन्दरगाह ही पश्चिमी समुद्र तट पर थे, जिनमें सेंट लुई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दूसरे यह कि नेपोलियन तृतीय के शासन काल में सैमगिल की घाटी पर अधिकार करने का प्रयास वहाँ के गर्वनर फ्रैड हर्व के फलस्वरूप चलता रहा। यह गवर्नर फ्रैड हर्व फ्रांस और जर्मनी के मध्य होने वाले पिछले युद्ध में अत्यन्त ख्याति प्राप्त कर चुका था। नेपोलियन तृतीय के शासन काल में ही एशिया में उपनिवेश विस्तार का कार्य प्रारम्भ हो गया। यह महाद्वीप विश्व का दूसरा भाग था। अनाम (Annam) में कुछ ईसाइयों पर अत्याचार तथा वहाँ के कुछ फ्रांसीसी पादरियों की हत्या के फलस्वरूप नैपोलियन को अनाम पर आक्रमण का अवसर मिल गया। अनाम प्रायद्वीप एशिया के दक्षिण-पूर्व में है। यहाँ पर आठ वर्ष तक निरन्तर युद्ध करते रहने के पश्चात् फ्रांस ने अनाम के राजा से सारा कोचीन-चायना छीन लिया (१८५८ से १८६७ तक)। इसके अतिरिक्त फ्रांस ने कम्बोडिया राज्य के उत्तरी भाग पर अपना संरक्षण अधिकार स्थापित कर लिया। इस प्रकार १८७० तक फ्रांस ने लगभग ७००००० वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस भूभाग की जनसंख्या ६००००० थी।

अफ्रीका की दूसरी विजयें

कोचीन-चायना

इस गणतन्त्र ने साम्राज्य विस्तार एवं उसके संगठन का कार्य पहले के अन्य शासनों की अपेक्षा अधिक तेजी से एवं विस्तृत रूप में किया। उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी अफ्रीका, हिन्द महासागर, और हिन्द चीन में फ्रांस ने अपना साम्राज्य विस्तार किया।

तीसरे गणतन्त्र में फ्रांस का साम्राज्य विस्तार

उत्तरी अफ्रीका में ट्यूनिस पर फ्रांस का नियंत्रण स्थापित हो गया। अल्जीरिया में अपना राज्य स्थापित करने के पूर्व फ्रांस ने इस क्षेत्र के पूर्व में भी अपना प्रभाव विस्तार करने का विचार किया। किन्तु अब इटली ने भी अपना एकीकरण सम्पन्न करने के बाद सन् १८७० ई० के लगभग इसी प्रकार की महत्वाकांक्षा पूर्ण करने का विचार किया। इसलिये ज्यूल्स फेरी की सरकार ने फ्रांस से ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिये सेना भेज दी (सन् १८८१)। ज्यूल्स फेरी उपनिवेश विस्तार का कट्टर समर्थक था। उसने जो सेनाएँ ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिए भेजी थीं उन्होंने वहाँ के 'बे' को ट्यूनिस पर फ्रांस का संरक्षणत्व स्वीकार करने के लिए विवश किया। तदुपरान्त फ्रांस ट्यूनिस पर बाह्यतः अपना अधिकार रखने लगा। फ्रांस ट्यूनिस पर वहाँ के बे के दरबार में एक पदाधिकारी रखकर यहाँ का शासन करता है। इस पदाधिकारी (Resident) की राय मानने के लिए बे विवश था।

पश्चिमी अफ्रीका में फ्रांस ने विस्तृत रूप में अपना उपनिवेश विस्तार किया था। सेनिगल, गायना, डेहुमे, आयवरी कोस्ट, नाइजर का क्षेत्र और उत्तरी कांगो पर उसका साम्राज्य स्थापित था। सहारा के मरुस्थलीय जल उद्यानों पर ही अपना अधिकार स्थापित करके फ्रांस इस समस्त विशाल प्रदेश पर, जो कि अभी तक अनुपजाऊ एवं उत्पादन-शून्य स्थिति में था, अपना अधिकार सिद्ध करता था।

फ्रांस के तत्सम्बन्धी प्रयास इस गणतन्त्र के अधिकांश शासन काल में चलते रहे। फलतः उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के एक विशाल भाग और रूम सागर में अल्जीरिया से लेकर कांगो नदी तक उसका अधिकार स्थापित हो गया। अल्जीरिया के दक्षिण में स्थित यह देश फ्रेन्च-सूडान कहलाता है। इस क्षेत्र में फ्रांस का लगभग सात या आठ गुना क्षेत्र है और इसकी जनसंख्या प्रायः १४०००००० है, जिनमें से अधिकांश लोग काले चमड़े के हैं। इन अफ्रीका क्षेत्रों में फ्रांस ट्रांस्स सहारन रेलवे लाइन वनवाने का विचार कर रहा है जिससे कि यह क्षेत्र एक दूसरे के निकट आ जायेंगे।

पश्चिमी अफ्रीका

फ्रांस के तृतीय गणतन्त्र ने १८८३ ई० में अनाम के राज्य पर अपना संरक्षण अधिकार स्थापित किया और १८८५ ई० में भयंकर संग्राम करने के वाद चीन से टोंकिन का प्रदेश हस्तगत कर लिया। हिन्द महासागर में फ्रांस ने अपने से भी विशाल क्षेत्र, मेडागास्कर द्वीप पर अधिकार कर लिया। यह ढाई लाख से भी अधिक जनसंख्या का द्वीप था। इस द्वीप पर भी सन् १८९५ ई० में फ्रांस ने अपना संरक्षण अधिकार स्थापित किया किन्तु, १८९५ ई० के दूसरे ही वर्ष वहाँ पर एक विद्रोह का दमन करने के वाद मेडागास्कर को फ्रांस के अधीन एक स्थायी उपनिवेश वना दिया गया। इस तरह वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही फ्रांस का औपनिवेशिक साम्राज्य उसके अपने क्षेत्रफल से ग्यारह गुना वढ़ गया। इस औपनिवेशिक साम्राज्य का क्षेत्र ६००००० वर्ग किलोमीटर था, जिसकी ५०००००० के लगभग जनसंख्या थी और व्यापार की विशेष उन्नति हो रही थी। उस साम्राज्य का अधिकाँश भाग उष्ण कटिवन्ध में स्थित है और यहाँ की जलवायु यूरोपवासियों के लिए सुखद नहीं है। तथापि अल्जीरिया और ट्यूनिस में यूरोपवासियों के निवास करने की परिस्थितियाँ अनुकूल हैं। यह फ्रान्सीसी साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। अल्जीरिया तो एक उपनिवेश के स्थान पर फ्रांस का अपना अभिन्न अंग माना जाता है। यह तीन विभागों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक अपना एक एक प्रतिनिधि फ्रांस की सिनेट के सदस्य के रूप में भेजता है। यह तीनों विभाग फ्रांस की चेम्वर ऑफ डिप्युटीस में कुल दो प्रतिनिधि भेज सकते हैं।

मेडागास्कर

३० मार्च, १९१२ के दिन फ्रांस ने मुरक्को पर भी अपना संरक्षण अधिकार स्थापित कर लिया। फलतः कई वर्षों तक यह देश अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक विवादग्रस्त विषय वना रहा। फ्रांस ने मुरक्को पर इसलिए अधिकार स्थापित किया था कि वह अपने उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के साम्राज्य को सुरक्षित रख सके। १९०४ में उसने इस सम्वन्ध में इंगलैण्ड के साथ एक समझौता कर लिया और यह यूरोप में एक महान् राजनीतिक उथल-पुथल का कारण वना। यह समझौता और अफ्रीका में फ्रांसीसी साम्राज्य विस्तार का कार्य फ्रान्स के विदेश मंत्री थियोफिल डेलकेस (Theophile Delcasse) के १८९८ से लेकर १९०५ तक के अर्थात् सप्तवर्षीय अविरल प्रयासों का फल था। यह राजनीतिज्ञ उन महान्तम फ्रांसीसी राजनीतिज्ञों में से एक था जिन्हें इस तृतीय गणतन्त्र ने उत्पन्न किया था। डेलकेस का विश्वास था कि फ्रांस अव अधिक स्वतंत्र और आत्मसम्मानपूर्ण

मुरक्को

वैदेशिक नीति का अनुसरण करने के योग्य बन गया था। उसका यह भी विश्वास था कि यदि फ्रांस के इटली और इंगलैण्ड के साथ सम्वन्ध विशेषकर औपनिवेशिक प्रतिद्वन्द्विता और वैमनस्य के फलस्वरूप कठोर हो जाते तो डेलकेस फ्रांस को जर्मनी के आतंक से स्वतंत्र वैदेशिक नीति का पालन करने की स्थिति में रख सकता था। डेलकेस वैदेशिक नीत को सहानुभूति एवं मित्रतापूर्ण रखना चाहता था। यह वह तभी कर सकता था जबकि इटली को ट्रिपोली में स्वतंत्र अधिकार देते हुए उसके साथ एक व्यापारिक संधि की जाती और उससे यह वचन ले लिया जाता कि वह मुरक्को में फ्रांसीसी नीति को प्रतिबाधित करने का कोई कार्य न करेगा। फ्रान्स का अल्जीरिया पर अधिकार स्थापित हो जाने पर मुरक्को के साथ अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्बन्ध थे।

इंगलैण्ड और फ्रांस के मध्य १९०४ का समझौता

इससे भी अधिक आवश्यक कार्य इंगलैण्ड के साथ समझौता करना था। इन दोनों पड़ौसी देशों के सम्बन्ध दीर्घकाल से कठोर चले आ रहे थे और समय-समय पर यह अत्यन्त घातक भी बन जाते थे। १८९८ ई० में फ्रांस और इंगलैण्ड उस समय पर बिलकुल युद्ध के निकट आ गये, जबकि मार्चाण्ड (Marchand) की अध्यक्षता में एक फ्रान्सीसी व्यापारिक अभियान ने अफ्रीका की सीमाओं को पार करके अपर नाइल के तट पर स्थित फेशोदा (Fashoda) के क्षेत्र को हस्तगत कर लिया। इस देश को ग्रेट ब्रिटेन अपने अधिकार में समझता था। फेशोदा की घटना में अँग्रेजों की दृढ़ नीति के सामने फ्रांस को झुकना और पीछे हटना पड़ा। इस घटना के फलस्वरूप दोनों पक्षों को अपार क्षति हुई और ६ वर्ष बाद अर्थात् ८ अप्रैल १९०४ को इंगलैण्ड और फ्रांस के मध्य एक समझौता हो गया। इसके फलस्वरूप दोनों देशों के मध्य संघर्ष के समस्त कारणों का अन्त हो गया और दोनों के मध्य एक ऐसा समझौता हुआ, जिससे अनेक वर्षों तक ये देश एक दूसरे के मित्र बने रहे। यह भविष्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस समझौते के अनुसार फ्रांस ने मिस्र में इंगलैण्ड के विशेषाधिकारों की पुष्टि की और यह माँग करना भी वन्द कर दिया कि इंगलैंड इस देश में अपने द्वारा अधिकृत किये गये क्षेत्रों को फ्रांस के हक में छोड़ने की तिथि निश्चित करे। इसके साथ ही साथ इंगलैण्ड ने मुरक्को में फ्रांस के विशेषाधिकारों को स्वीकृति दी और वहाँ उनके प्रभाव विस्तार को प्रतिवाधित न करने का आश्वासन दिया।

यूरोप में एक ऐसी शक्ति भी थी जो कि एक स्वतन्त्र देश के भाग्य निर्णय का अधिकार इन दो शक्तियों के हाथ में पड़ने का तीव्र विरोध करती थी। जर्मनी ने इंगलैंड और फ्रांस की मिस्र सम्वन्धी कार्यवाहियों और विशेपकर इंगलैंड और फ्रांस के समझौते का प्रवल विरोध किया। जर्मनी जो इंगलैण्ड और फ्रांस दोनों को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता था इस वात का इच्छुक था कि इस प्रकार के मामलों में उसका भी परामर्श लिया जाय और उसका कथन था कि उसके प्रतिद्वन्द्वी विश्व के उन भागों में अपना प्रभाव विस्तार करने का अकेले ही कोई अधिकार नहीं रखते हैं। जर्मनी का कथन था कि इन क्षेत्रों में उसे फ्रान्स और इंगलैण्ड के समकक्ष अधिकार मिलने चाहिए।

जर्मनी के इस तीव्र अनुरोध ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्या उत्पन्न कर दी और

१९०६ ई० में अल्जेसिराज का सम्मेलन हुआ, जिसमें फ्रांस की ही सफलता रही, जिसे मुरक्को में सबसे अधिक प्राथमिक अधिकार दिये गये।

१९०६ ई० में अल्जेसिराज का सम्मेलन

फ्रांस ने आगामी वर्षों में अपनी शक्ति का विस्तार करना आरम्भ किया। फलतः सन १९११ में जर्मनी ने उसको एक प्रबल चुनौती दी। जर्मनी ने अगादीर में अपनी गन वोट को भेजकर एक दूसरी जटिल समस्या उत्पन्न कर दी, जो कुछ समय तक यूरोप में महाद्वीपीय युद्ध की आशंका उत्पन्न किये रही। अन्त में जर्मनी ने अफ्रीका में फ्रांस की स्थिति को स्वीकार कर लिया। इसके उपलक्ष में फ्रांस ने जर्मनी के पक्ष में कैमरून के विस्तृत क्षेत्र और फ्रेन्च कांगो के प्रदेश छोड़ दिये। कई वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मुरक्को की स्थिति भयंकर बनी रही। यह यूरोपीय शक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों और विशेषकर फ्रांस और जर्मनी के मध्य वैमनस्य का कारण बना रहा। अन्त में मुरक्को की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गयी और यह देश प्रत्यक्षरूप में फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया।

जर्मनी का फ्रेन्च कांगो के एक भाग को प्राप्त करना

अध्याय २३

१८७० के बाद इटली का राज्य

जैसा कि हम पहले लिख आये हैं, इटली के राज्य की स्थापना १८५९ और १८६० में हुई थी। वेनेसिया पर १८६६ और रोम पर १८७० में अधिकार स्थापित किया गया। इटली के अन्य क्षेत्रों की भाँति इन प्रदेशों की जनता को भी मतदान द्वारा अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने का अवसर दिया गया। दोनों ही प्रदेशों की जनता ने लगभग सर्वसम्मति से इटली के राज्य में सम्मिलित होने के पक्ष में मत दिया।

इटली का राज्य

नये राज्य के सामने पहली समस्या संविधान स्थापित करने की थी। पीडमोंट के पुराने संविधान को थोड़े हेर-फेर के साथ सम्पूर्ण इटली के लिये स्वीकार कर लिया गया। संविधान के अनुसार एक द्विसदनात्मक संसद की स्थापना की गयी। पहले सदन का नाम सिनेट और दूसरे का नाम प्रतिनिधि सदन रखा गया। संसदीय प्रणाली को पूर्णरूप से स्थापित किया गया और तदनुसार निम्न सदन की इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों को कार्यपालिका की शक्ति सौंप दी गयी। देश की पहली राजधानी तूरिन थी। १८६५ में फ्लोरेंस को और अन्त में १८७१ में रोम को राजधानी बनाया गया।

संविधान

नये राज्य के सामने सबसे अधिक उलझन की समस्या यह थी कि रोम के पोप के साथ किस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये जाएँ। रोम के नगर पर पोप लोग निर्विवाद रूप से लगभग १००० वर्ष से राज्य करते आये थे; अब इटली के राज्य ने उस पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। अन्य नगरों की तुलना में रोम की विशेषता यह थी कि वह संसार भर के कैथोलिकों की राजधानी था। यदि पोप को नगर से निष्कासित करने अथवा उसकी सेवाओं को राजवंश के अधीन करने का प्रयत्न किया जाता तो इस बात का डर था कि उसके भक्त जो पहले से ही शोरगुल मचाते आये थे अब और अधिक भड़क उठें और उसकी राजनीतिक शक्ति

पोप तथा उससे सम्बन्ध

की पुनः स्थापना करने के लिये हस्तक्षेप करें। अतः इस समय से एक ही नगर में दो प्रभुत्व सम्पन्न शासक निवास करने लगे—एक लौकिक और दूसरा आध्यात्मिक। इस प्रकार की व्यवस्था एकदम अभूतपूर्व और अत्यधिक नाजुक थी। यह आवश्यक समझा गया कि सरकार को रोम ले जाने से पहले ही इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध सुनिश्चित कर लिये जाएँ। किन्तु पोप के साथ किसी प्रकार का भी समझौता करना असंभव था, क्योंकि वह इटली के राज्य को ही मान्यता देने के लिये तैयार न था, और विक्टर इमेनुअल को केवल सार्डीनिया का राजा मानता था। इसके अतिरिक्त वह रोम में अपने अधिकारों को किसी भी रूप में छोड़ने को तैयार नहीं था। अतः संसद ने अकेले ही मामले को तय करने का निश्चय किया और १३ मई १८७१ को पोप के अधिकारों की गारण्टी का कानून पास कर दिया। इटली के अन्दर राज्य तथा चर्च अधिनियम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हुआ।

पोप के अधिकारों की गारन्टी का कानून

इस कानून के दो उद्देश्य थे; 'काचूर के स्वतन्त्र राज्य में स्वतंत्र चर्च' के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देना और कैथोलिकों को यह विश्वास दिलाना के यद्यपि पोप को उसकी लौकिक शक्तियों से वंचित कर दिया गया था, किन्तु नये राज्यों को उसके आध्यात्मिक कार्यों पर किसी प्रकार नियंत्रण लगाने का इरादा नहीं था। यदि उसके अधिकारों का अतिक्रमण करेगा तो इस कानून के अन्तर्गत उसको वही दण्ड मिलेगा जो कि राजा के अधिकारों का अतिक्रमण करने के लिये दिया जायगा। पोप की अपनी राजनयिक मण्डली है, और वह अन्य देशों के राजनयिक प्रतिनिधियों को अपने यहाँ स्थान देता है। नगर में कुछ स्थान हैं जिन पर उसका पूर्ण प्रभुत्व है; वेटिकन, लेटरन, कासिल गेण्डोल्फो तथा अन्य उद्यान। इटली का कोई राजकर्मचारी अधिकारी की हैसियत से इन स्थानों पर प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि इटली का प्रशासन तथा कानून इन स्थानों की सीमा के बाहर समाप्त हो जाता है। लौकिक शक्ति के हाथ से निकल जाने से पोप को जो हानि हुई, उसके बदले में इटली के राज्य ने कानून का ईमानदारी के साथ पालन किया है; किन्तु पोप ने इसे कभी स्वीकार नहीं किया है और न इटली के राज्य को ही मान्यता दी है। वह अपने को "वैटिकन का बन्दी" समझता है और १८७० के बाद वह अपने स्थान को छोड़कर रोम की सड़कों पर नहीं गया, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ होता कि वह वहाँ किसी अन्य शासन की सत्ता को स्वीकार करता है।

वैटिकन का बन्दी

राज्य की दूसरी कठिन समस्या वित्त व्यवस्था की थी। उसने विभिन्न राज्यों के ऋण को अपने ऊपर ले लिया था और उनकी रकम भारी थी। राष्ट्र की सेना की ओर से प्रतिवर्ष उसे ३२२५००० फ्रेंक दिये जाते हैं। इटली की सरकार को इस नौसेना, किलेबन्दी और सार्वजनिक निर्माण कार्यों विशेषकर रेल पथों पर भारी खर्च करना पड़ा; रेल-पथ देश की आर्थिक समृद्धि तथा राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ करने के लिये अत्यंत आवश्यक थे। अनेक वर्षों तक वार्षिक बजट में घाटा चलता रहा, जिसके फलस्वरूप नया ऋण लेना आवश्यक हो गया और सार्वजनिक ऋण का बोझ बहुत बढ़ गया। एक के बाद कई मन्त्रियों ने शासन का खर्च चलाने के लिये साहसिक प्रयत्न किये, वे नये तथा अप्रिय कर लगाने में भी नहीं हिचके और न मठों की भूमि

वित्तीय कठिनाइयाँ

को बेचने में डरे। अन्त में उन्हें सफलता मिली और १८७९ में आय खर्च से अधिक हो गयी।

१८७८ में विक्टर-इमेनुअल द्वितीय की मृत्यु हो गयी ; उसे पेन्थियोन में जो कि रोम की थोड़ी-सी बची हुई पुरानी इमारतों में थी, दफनाया गया। उसकी कब्र पर लिखा हुआ है "अपने देश के पिता के लिये" उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र हम्बर्ट प्रथम हुआ जो उस समय ३४ वर्ष का था। एक महीने के उपरान्त पोप की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर लीओ तेरहवाँ पोप बन गया। चुनाव के समय उसकी अवस्था ६८ वर्ष की थी, किन्तु व्यक्तियों के बदलने से स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। दोनों ने अपने पूर्वजों की व्यवस्था को कायम रखा। लिओ तेरहवें (१८७०-१९०३) ने पीयस नवम के उदाहरण का अनुसरण किया; उसने न तो कभी इटली के राज्य को मान्यता दी और न कभी वेटिकन को छोड़कर बाहर ही गया। वह भी अपने को "डाकू राजा" का बन्दी समझता रहा।

विक्टर इमेनुअल की मृत्यु

नये राज्य के सामने अन्य तात्कालिक समस्या नागरिकों की शिक्षा की थी। शिक्षा के बिना जनता राजनीतिक क्रान्ति के कारण उपलब्ध स्वतंत्र जीवन की जिम्मेदारियों को भली-भाँति नहीं निभा सकती थी। पिछली सरकारों ने अपने इस कर्तव्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था। १८६१ में राज्य की ७५ प्रतिशत से अधिक जनता निरक्षर थी। नेपल्स और सिसली इटली के सबसे अधिक पिछड़े हुए प्रदेश थे; उनकी ९० प्रतिशत से अधिक जनता निरक्षर थी; पीडमोंट और लोम्बार्डी में जो कि देश के सबसे अधिक विकसित भाग थे, एक तिहाई पुरुष और आधे से अधिक स्त्रियाँ न पढ़ना जानती थीं न लिखना। १८७० ई० में शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये एक कानून पास किया गया, किन्तु खर्च के अभाव के कारण क्रियान्वित नहीं किया जा सका। यद्यपि पिछले तीस वर्षों में इटली ने बहुत प्रगति कर ली है, फिर भी अभी बहुत कुछ करना शेष है। यद्यपि निरक्षरता कम हो गयी है, किन्तु अभी भी वह व्यापक रूप से फैली हुई है। हाल के आँकड़ों से पता लगता है कि सेना के ४० प्रतिशत रंगरूट निरक्षर हैं।

शिक्षा की समस्या

१८८२ में मताधिकार का क्षेत्र और अधिक बढ़ा दिया गया। उस समय तक केवल उन्हीं लोगों को मतदान का अधिकार था, जो २५ वर्ष अथवा उससे ऊपर की आयु के थे और ८ डालर प्रति-वर्ष प्रत्यक्ष करों के रूप में देते थे; अब २१ वर्ष से ऊपर के उन सब लोगों को मताधिकार दे दिया गया जो ४ डालर कर के रूप में अदा करते थे; इसके अतिरिक्त २१ वर्ष के उन सब नागरिकों को भी मत देने का अधिकार मिल गया जो प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। फलस्वरूप मतदाताओं की संख्या तिगुनी अर्थात् ६००,००० से २,०.००,००० हो गयी।

मताधिकार का विस्तार

१९१२ में इटली ने लोकतंत्र की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ाया ; पुरुषों के लिए मताधिकार लगभग सार्वभौम कर दिया गया; केवल उन लोगों को मतदान के अधिकार से वंचित रखा गया, जिनकी आयु ३० वर्ष से कम थी तथा जिन्होंने न सैनिक सेवा पूरी की है और न लिखना-पढ़ना सीखा है इस प्रकार २१ वर्ष से

मताधिकार का और विस्तार

अधिक आयु के उन सब पुरुषों को मत देने का अधिकार है जिन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर ली है चाहे वह देता हो अथवा नहीं। इस प्रकार मतदाताओं की संख्या ३०,००,००० से बढ़कर ८,५०,००,००० के लगभग हो गयी।

अपने वैदेशिक क्षेत्र में इटली ने एक ऐसा महत्त्वपूर्ण निश्चय किया, जिसने उसके भावी इतिहास को सदैव प्रोत्साहित किया। १८८२ ई० में उसने जर्मन और आस्ट्रिया के साथ एक सन्धि की। आस्ट्रिया प्राचीनकाल से उसका शत्रु और अनेक मामलों में प्रबल प्रतिद्वन्द्वी रहा था इस प्रकार से यह त्रैध सन्धि स्थापित हुई जो कि पर्याप्त काल तक यूरोप की राजनीति को प्रभावित करती रही। इस संघ में इटली के प्रवेश के कारण अनेक थे। सर्व-प्रथम बहुत समय से यह आस्ट्रिया को घृणा की दृष्टि से देखता रहा था तथापि मैत्री संघ अत्यन्त अप्राकृतिक था। ट्यूनिस के क्षेत्रों का फ्रांस द्वारा हस्तगत करना जिसे कि इटली स्वयं चाहता था, पोप की ओर से फ्रांस का हस्तक्षेप और इटली की स्वयं अपनी सामान्य आकांक्षा आदि ऐसी बातें थीं जिनके कारण इटली केवल इस मैत्री सन्धि में ही सम्मिलित न हुआ, उसने अपनी सेना पर अधिकाधिक व्यय करना और उसका प्रुशियन शैली पर, पुनर्संगठन करना आरम्भ कर दिया। उसने न केवल अपनी स्थल सेना का ही नवनिर्माण कर दिया प्रत्युत उसने एक बार पुनः अपनी आर्थिक नीति को हानि पहुँचा कर देश की स्थल एवं जल सेनाओं पर पर्याप्त व्यय किया।

त्रिराष्ट्र संश्रय

इटली ने अब एक दूसरा महान् विशाल कार्यक्रम चलाने की चेष्टा की, जो व्यय और साहस पर अधिकाधिक रूप में निर्भर था। यह था उपनिवेश विस्तार जिसकी ओर अग्रसर होना यूरोप की एक विशिष्ट प्रथा बनी हुई थी। इसके अतिरिक्त यह यूरोप का एक सबसे बड़ा देश बनना चाहता था। उसका प्राकृतिक क्षेत्र ट्यूनिस फ्रांस द्वारा हस्तगत कर लिया गया था। अतः इटली ने १८८५ ई० में लाल समुद्र के ऊपर अनेक छोटे-छोटे बन्दरगाहों और विशेषकर मसावा के बन्दरगाहों को अधिकृत कर लिया। दो वर्ष बाद इटली और अबीसीनिया के मध्य युद्ध छिड़ गया। मन्त्री डेप्रीटीज की, जिसने यह विदेशनीति और साहस पूर्ण योजना संचलित की थी, १८८७ ई० में मृत्यु हो गई। उसकी जगह पर फ्रंसिस कोक्रिस्पी ने विदेश मन्त्रालय का कार्य संचालन आरम्भ किया। उसने उपनिवेश विस्तार की ओर अपनी शक्ति भर प्रयास किया और पूर्वी अफ्रीका में इटली ने अपने प्रभाव को विस्तृत कर लिया। फ्रांसिस कोक्रिस्पी ने पूर्वी अफ्रीका के नेताओं में फूट डालने का सफल प्रयास किया। उसने वहाँ पर इटली के नवीन उपनिवेश को एरीट्रिया का नाम दिया। इसके अतिरिक्त पूर्वी अफ्रीका के एक क्षेत्र सुमालीलैण्ड पर उसने अपना संरक्षण भी स्थापित कर लिया। इन साहसपूर्ण कार्यों के लिये इटली को वहाँ के स्थानीय उपनिवेशवासी जातियों से दीर्घ संघर्ष मोल लेना पड़ा, जिसमें इटली का अत्याधिक धन व्यय हो गया। इटली यूरोप और एशिया में भी एक महान् राष्ट्र सिद्ध होना चाहता था, किन्तु उसके पास तत्सम्बन्धी साधनों का नितान्त अभाव था। इस साहसपूर्ण सैनिक, नौसैनिक एवं औपनिवेशिक नीति की आक्रामक प्रवृत्तियों ने इटली को अत्यधिक आर्थिक क्षति पहुँचाई।

फ्रेन्सिस कोक्रिस्पी

इटली की महत्त्वाकांक्षा पूर्ण सैनिक और औपनिवेशिक नीति

सेना पर सीमा से अधिक व्यय करने के कारण इटली के बजट में घाटा आ गया और देश की आर्थिक स्थिति गम्भीर हो गयी। चार वर्ष तक बजट में निरन्तर घाटा ही आते रहने के कारण, जो ७५००००० डालर से भी अधिक था, इटली की सरकार को भारी-भारी नये कर लगाने पड़े। इसके फलस्वरूप जनता में व्यापक असंतोष छा गया, किन्तु इटली के निरंकुश शासक ने उसका निर्दयतापूर्वक दमन किया। इटली की आक्रामक नीति के फलस्वरूप १८९६ ई० में इटली और अबीसीनिया में घोर युद्ध छिड़ गया और उसमें अडोवा की लड़ाई में इटली की पराजय हुई, जिससे फ्रांसिस कोक्रिस्पी की लोकप्रियता और राजनीतिक जीवन सदैव के लिये क्षीण हो गये और इसके साथ ही साथ इटली ने भी प्रतिक्रियाशून्य नीति का अधिकाधिक पालन करना आरम्भ कर दिया। इटली में जनता का असन्तोष जारी रहा। उसका मूल कारण इटलीवासियों की निर्धनता थी। इस शोचनीय विपन्नता की स्थिति में भी इटली की सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नेतृत्व करने की महत्त्वाकांक्षा पूर्ति के लिये इटली-वासियों पर भारी-भारी कर लगाये। यह महत्त्वाकांक्षा उसके जैसे छोटे से देश के लिये सर्वथा अनुपयुक्त थी। इटली के मध्य और उत्तरवर्ती क्षेत्रों में जनता के इस असंतोष ने "रोटी के लिये आन्दोलन" (Bread riots) के रूप में एक नृशंस दृश्य प्रस्तुत किया, किन्तु इटली के उत्तरी क्षेत्रों में यह नृशंस विद्रोह क्रान्तिकारी भावना से ओत-प्रोत था। इटली में यही शोरगुल सुन पड़ता था कि वहाँ के तत्कालीन राज्य वंश का विनाश हो। यद्यपि यह सारे विद्रोह सरकार प्रतिक्रियापूर्ण नीति के द्वारा कुचल अवश्य दिये गये, तथापि इस कार्य में उसे अत्यधिक रक्तपात करना पड़ा। सरकार के इन कुकृत्यों के प्रति जनता में व्यापक असंतोष छा गया। जुलाई सन् १९०० ई० में एक इटैलियन अराजकतावादी ने देश के असंतोष की दशा में सम्राट हम्बर्ट का बध कर दिया।

हम्बर्ट प्रथम की हत्या

हम्बर्ट के बाद उसका पुत्र विक्टर इमेनुअल तृतीय इकतीस वर्ष की अवस्था में राजसिंहासन पर उसके उत्तराधिकारी के रूप में आसीन हुआ।

यह नवीन शासक उत्तम वातावरण में सुशिक्षित हुआ था और शीघ्र ही उसने यह सिद्ध कर दिया कि वह एक चतुर कूटनीतिज्ञ,शक्तिशाली और दृढ़ संकल्प शासक था। वह अपने जीवन की सादगी और कर्तव्यनिष्ठा से जनता में अधिक लोकप्रिय हो गया। इसके अतिरिक्त उसकी जनहित की भावना उसके प्राकृतिक एवं अभूतपूर्व कार्यों द्वारा प्रदर्शित होती थी। देश की राजनीति में वह अपने पिता से कहीं अधिक निर्णायक तत्व बन गया। वह एक परिश्रमी, शक्तिशाली और प्रजातांत्रिक सम्राट था और कार्य की वास्तविकता के विपरीत उसकी कृत्रिमता से सदैव घृणा करता था।

विक्टर इमेनुअल तृतीय

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दस वर्षों पर उस नवयुवक सम्राट की सक्रियता, आशावादिता और साहस का अधिकाधिक प्रभाव मिलता है। इस समय वास्तविकता यह थी कि शासकों के परिवर्तन मात्र से ही जनता को लाभ नहीं हो सकता था और उसके लिये नवीन आशावादी विचारों एवं साहसी कार्यक्रमों की भावना इस युवक सम्राट में परिलक्षित होती है। इस नवीन आशावादी विचारधारा के प्रचार का मुख्य कारण शासक का परिवर्तन न होकर राष्ट्र की बढ़ती हुई आर्थिक सम्पन्नता थी। यह सम्पन्नता पिछले अनेक वर्षों से इटली में दृष्टिगोचर हो रही थी और यह सम्भव था अब इटली के पतन एवं अवनति के दिन समाप्त थे।

इटली एक उद्योग प्रधान देश बनता जा रहा है, गत कुछ ही वर्षों से इटली में रुई, मिल, और लोहे का उत्पादन तथा रासायनिक वस्तुओं का निर्माण कार्य अत्यधिक बढ़ गया है। उस समय इटली की जनसंख्या बढ़ रही थी। १८७० में यह २५०००००० से बढ़ कर ३५०००००० हो गयी। इस कारण उसका औद्योगिक विकास आवश्यक ही था। वहाँ की जनसंख्या यूरोप के किसी भी देश की अपेक्षा अत्यन्त बढ़ी है, किन्तु इसी वर्ष इटली से विदेशों में जा बसने के लिये बाहर जाने वालों की संख्या में भी तीव्र वृद्धि हुई। राजकीय पत्रलेखों से विदित होता है कि सन् १८७६ और १९०५ ई० के मध्य में इटली के विदेशों में जा बसने वाले ८००००० व्यक्तियों में से ४००००० मनुष्य दक्षिणी अमरीका के विभिन्न देशों में ही विशेपकर अर्जेन्टाइना और संयुक्तराज्य अमेरिका में भी पहुँच कर स्थायी रूप से रहने लगे। इनमें से कम से कम आधे लोग कालान्तर में स्वदेश वापस लौट आये, क्योंकि उनका विदेश गमन अस्थायी प्रकृति का था। आधुनिक काल में इटलीवासियों ने अधिक गमन किया और आधुनिक काल में ही उनकी आर्थिक स्थिति में भी सामान्य उन्नति हुई। इस वात से यह सिद्ध होता है कि वस्तुतः दक्षिणी इटली और सिसली में उपर्युक्त औद्योगिक विकास न हो पाया था जहाँ कि वहुत से अन्य इटलीवासी आ वसे। उन भागों में भी जहाँ से कि यह निवासी विदेशों में वसने के लिये जाते थे, औद्योगिक उन्नति का कोई विशेष विकास न हुआ था। यह विशेपगमन तभी कम किया जा सकता था, जवकि इटली में उद्योगों का विस्तार संभव होता। इटली की स्थिति इस समय वैसी ही थी जैसी कि अनेक वर्षों तक जर्मनी की रही। जर्मनी की भाँति इटली में भी लाखों नागरिक दुर्भाग्यग्रस्त होकर मृत्यु के आखेट वन रहे थे। जर्मन उद्योग के विस्तार के फलस्वरूप सुदूर विदेशों में जा वसने वाले इटैलियनों की संख्या कुछ घट गई किन्तु आगे चलकर १९०८ ई० में यह संख्या प्रायः शून्य हो गयी और उसका कारण एक मात्र यही था कि वहाँ समस्त इटलीवासियों को काम पर लगाये रखने के लिये ही खानों और कारखानों का पर्याप्त विकास कर दिया गया था।

जनसंख्या में वृद्धि

देश छोड़कर विदेशों में जा वसने वाले इटलीवासियों की समस्या

इटली की वढ़ती हुई जनसंख्या और वहाँ से लाखों की संख्या में विदेश चले जाने वाले इटलीवासियों ने इटली का ध्यान उपनिवेश-विस्तार की ओर अग्रसर किया। वे नवीन और उपयोगी उपनिवेशों की आवश्यकता समझने लगे, क्योंकि वे चाहते थे कि उनकी अतिरिक्त जनसंख्या अनुपयोगी एवं अनुपजाऊ विदेशों में जाकर कठिनाइयों का सामना न करने पाये। उपनिवेश विस्तार की भावना के फलस्वरूप इटलीवासियों ने तत्कालीन यूरोपीय राजनीति द्वारा प्रदत्त अवसरों का अधिकाधिक लाभ उठाने का निश्चय किया। फलतः १९१२ ई० में उसने ट्रिपोली का विस्तृत क्षेत्र और वारह एजीएन टापुओं को हस्तगत कर लिया। इसके अतिरिक्त उसे टर्की के साथ संघर्ष करने के उपलक्ष में अत्यधिक लूट की सामग्री हाथ लगी जिसके विपय में आगे विस्तृत रूप से वर्णन किया जायगा। साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के प्रयासों ने इटली को अपने पड़ौसी मित्र राष्ट्रों जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ अपने राजनीतिक सम्वन्धों का मूल्यांकन करने का भी अवसर दिया। उपर्युक्त त्रैध-मैत्री संधि

इटली द्वारा ट्रिपोली और वारह एजीएन सागरीय टापुओं पर अधिकार

के लाभों के विषय में अनेक लोगों के मस्तिष्क में सन्देह डाल दिया। सबसे अधिक स्पष्ट और मुख्य हानि जो इटली को इस मैत्री सन्धि से थी, वह उसकी उत्तरपूर्वी क्षेत्रों के प्रति आस्ट्रिया की आक्रामक नीति के फलस्वरूप हुई। यह क्षेत्र अधिकांशतः इटैलियनों द्वारा बसे हुए थे, किन्तु इटली के नवनिर्माण के समय वे इसकी सीमाओं के अन्तर्गत सम्मिलित न किये जा सके। यह क्षेत्र ट्रेण्ट नगर के चारों ओर का भू-भाग और इस्ट्रिया के थे। इन पर आस्ट्रिया का अधिकार था। जब तक इटली के साथ यह मैत्री सम्बन्ध चलता रहा तब तक यह (इटली) अपने बिछुड़े हुए देशों को प्राप्त करने हेतु कोई प्रयत्न न कर सका। इन्हें प्राप्त करने के लिये इटली पर आक्रमण भी न कर सकता था। इटली की सीमाओं के बाहर यह प्रदेश जाति, भाषा, परम्परा और संभवतः राष्ट्रीय समस्त भावना में भी इटैलियन है। उसे इस महान् कार्य को जिसे वे इटैलिया इरि-डेण्टा (Italia irredenta) अर्थात् "खोये क्षेत्रों को प्राप्त करना" कहते थे, अवश्य ही सम्पन्न करना था। ४ मई १९१५ के दिन अन्ततः इटली को आस्ट्रिया के साथ अपने मैत्री सम्बन्धों के त्याग की घोषणा करनी पड़ी। इस प्रकार त्रैध-मैत्री संघ का यह सार्वभौमिक प्रभाव जो सन् १८८२ ई० से योरोपीय राजनीति में अक्षुण्ण बना हुआ था, अब समाप्त हो गया। २३ मई के दिन इटली ने आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की।

इटली के प्रगतिहीन क्षेत्र जो अभी तक इटली के साथ संयोजित न हो सके थे

अध्याय २४

सन् १८४८ ई० के पश्चात् आस्ट्रिया-हंगरी

आस्ट्रिया के साथ १८६७ की सन्धि

सन् १८४८ ई० में आस्ट्रिया का साम्राज्य भयंकर विनाश के निकट पहुँच चुका था। इस समय बोहीमिया, हंगरी और लम्बार्डी-वेनीशिया के भीषण विद्रोहों और जर्मनी में अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखने के प्रयासों में कुछ समय के लिये क्षति उठाने के उपरान्त आस्ट्रिया ने अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। १८५० ई० तक अपने बिखरे हुए राज्यों पर वह एक बार पुनः आधिपत्य स्थापित करने में सफल हो गया तथापि उसने अपनी उस भयंकर स्थिति को, जिसमें कि वह अभी फँस चुका था, विस्मृत करके अपनी पुरानी स्वेच्छाचारितापूर्ण नीति पर चलना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक स्थान पर निरंकुश राजतन्त्रों की स्थापना की गयी। इटली में इस अत्यन्त शक्तिशाली राजवंश का कठोर नियंत्रण था, प्रशा के साथ अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया ही जा चुका था, हंगरी को तो आस्ट्रिया के शासक फ्रैन्सिस जोजेफ (Francis Joseph) के प्रबल रोष का सामना करना पड़ गया। हंगरी के विषय में तो वस्तुतः यह सोचा जाता था कि जिन नागरिक अधिकारों का वह शताब्दियों से उपभोग करता रहा था, वे उसके इस विद्रोह के कारण उससे छीन लिये गए हैं। हंगरी की डाइट भंग कर दी गई तथा सारे प्रदेश को ५ खण्डों में विभाजित करके उन्हें जर्मनों के प्रत्यक्ष शासन में दे दिया गया। आस्ट्रियन सरकार का इस नीति से वस्तुतः यह अभिप्राय था कि पृथक जातीयता के समस्त चिह्नों का उन्मूलन कर दिया जाए तथापि ऑस्ट्रिया के राजा फ्रैंसिस जोजेफ ने यह अनुभव किया कि हंगरी के उन मग्यारों (Magyars) की भावनाओं को कुचलना अत्यन्त असम्भव है जो कुलीनतन्त्र के सम्मुख नत-मस्तक होते हुए भी अपनी माँगों को कम करने के लिये तैयार न हुए हैं।

१८४९ के बाद आस्ट्रिया द्वारा वहाँ की प्रजा का दमन

आगामी दस वर्षों तक यही शान्तिपूर्ण निरंकुश शासन चलता रहा। तदनन्तर १८५९ ई० में इटली में भीषण विद्रोह हो गया।

१८५९ में इटली के विरुद्ध युद्ध

इस पराजय का एक कारण यह था कि अधिकांश हंगरीवासियों ने इटली की सेनाओं के साथ मिलकर आस्ट्रियन सेनाओं के ऊपर प्रहार भी किये। इस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हंगरी में ही किसी भी क्षण एक भीषण क्रान्ति का विस्फोट हो सकता है।

फ्रैन्सिस जोजेफ द्वारा नीति में परिवर्तन

इस बार आस्ट्रियन सरकार ने इटली के विरुद्ध युद्ध में अपनी पराजय के अनुभवों से लाभ उठाया। आस्ट्रियन सम्राट् ने अपने साम्राज्य के विभिन्न राष्ट्रों (जातियों) का समर्थन प्राप्त करने के लिये अपने शासन की पुरानी अत्याचारपूर्ण नीति को छोड़कर शासन सम्बन्धी दोषों का निराकरण, लोगों की शिकायतों पर विचार और उदारवादी सुधार करना आरम्भ कर दिया। किन्तु यह समस्या अत्यन्त ही जटिल थी और इस सम्बन्ध में अनेक प्रयासों में सफलता मिलने के बाद इसका हल केवल धीरे-धीरे ही हो सका। सम्राट की मुख्य कठिनाई यह थी कि शासित ज़ातियों की विभिन्न माँगों को किस प्रकार पूरा किया जाये।

सन् १८६१ ई० में सम्राट ने यह निश्चित किया कि समस्त आस्ट्रिया साम्राज्य के लिये दो सदनों वाली एक संसद होनी चाहिये और उसका अधिवेशन प्रतिवर्ष किया जाना चाहिये। इसमें लोकसभा के सदस्य जनसंख्या के आधार पर स्थानीय डाइटों (Diets) से लिये जाने थे। ये स्थानीय धारासभाएँ स्थानीय मामलों के लिये जारी रहनी थीं, किन्तु इनकी शक्ति अब कम कर दी गयी थी। सम्राट् द्वारा स्वीकृत इस संविधान से आस्ट्रिया एक वैधानिक राजतन्त्र बन गया। शासन पद्धति में निरंकुशता का परित्याग कर दिया गया।

हंगरी का सहयोग देने से इन्कार करना

यह संविधान असफल सिद्ध हुआ और हंगरीवासी इसका विशेष रूप से विरोध करते थे। प्रथम संसद में उन्होंने अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया और उनकी प्रतिक्रिया उस समय तक इसी रूप में चलती रही जब तक कि उनके सन्तोष के अनुसार अनेक वर्षों के उपरान्त नवीन व्यवस्था न की गयी। अब प्रश्न यह उठता है कि हंगरी ने देश में पहले-पहल लागू किये जाने वाले इस अत्यन्त उदार संविधान को भी क्यों न स्वीकार किया? उसने संसद में अपने प्रतिनिधि भेजने से क्यों इन्कार कर दिया जिसमें कि अपनी जनसंख्या के अनुसार वे अपना विशिष्ट प्रभाव रख सकते थे? इसके अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि हंगरी ने एक उदार और न्याय संगत संविधान को मान्यता देना क्यों अस्वीकार कर दिया।

यह स्मरणीय रहे कि हंगरी में अनेक जातियों का आवास है और इनमें मग्यार जाति अल्पसंख्यक होते हुए भी सबसे अधिक प्रभावशालिनी रही है। यह प्रभुत्व सम्पन्न जाति दो दलों में विभक्त थी। एक दल उन प्रबल विरोधी मग्यारों का था जो आस्ट्रिया के राजतन्त्र से घृणा करते थे, उसके साथ कोई समझौता करने को भी तैयार न हो सकते थे और उनका लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही था। तथापि इन मनुष्यों पर अब किसी प्रकार का अंकुश न था, किन्तु १८४९ ई० की इनकी अपनी असफलताओं ने इनकी लोकप्रियता अत्यन्त कम कर दी

थी। वर्तमान समय में हंगरी का नेतृत्व नर्म विचार के उदारवादी कर रहे थे जिनके नेता फ्रैंसिस डीक अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। यह १९वीं शताब्दी में हंगरी का सबसे अधिक प्रभावशाली राजनीतिज्ञ था। जिस समय आस्ट्रिया को यूरोप में एक महाद्वीपीय शक्ति का रूप देने तथा उसकी राज्य-सरकार को अपेक्षित सत्ता प्रदान करने का प्रश्न उठा तो ये उदारवादी आस्ट्रिया के साथ समझौता करने को तैयार थे, किन्तु अभी कुछ ही समय पहले फ्रैंसिस जोजेफ द्वारा लागू किये गये संविधान का विरोध करने से ये अपना पग पीछे हटाने को किंचत्मात्र भी तैयार न थे। इन्होंने समस्त हंगरीवासियों के लिये वैधानिक अधिकारों की माँग करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। इस विधान के विरोध के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और इसमें सदियों से शासन करते आये हुए प्रगतिशून्य निरंकुश राजतंत्र में सम्राट को स्वेच्छाचारिता से रोकने के लिये व्यापक सुधार किये गये थे। यद्यपि राजा ने स्पष्ट रूप से उदारता की नीति पर चलने का आश्वासन दिया, तथापि हंगरीवासी उसमें विश्वास करने को तैयार न हुए।

हंगरी द्वारा आस्ट्रिया का संविधान स्वीकार न करने के कारण

उन्होंने (हंगरी के नेताओं ने) यह उद्घोषित किया कि हंगरी सदैव से ही एक पृथक राष्ट्र रहा है। वह आस्ट्रिया के साथ इस रूप में संयोजित रहा है कि जो राजा सारे आस्ट्रिया का है, वही हंगरी का शासक भी है; किन्तु वह हंगरी का वास्तविक सम्राट् तभी हो सकता है, जबकि राज्यारोहण के समय वह हंगरीवासियों के मूल अधिकारों का समर्थन करने की शपथ ले और सेंट स्टीफेन (St. Stephen) के लौह राज मुकुट को अपने सिर पर धारण करे। हंगरी के मैग्यार नेताओं का कथन था कि ये मौलिक नियम और संस्थाएँ, सदियों पुरानी हैं और आज भी देश में अपनी मान्यता को अक्षुण्ण रक्खे हुए हैं। इसके अतिरिक्त नवीन संविधान तो फ्रैंसिस जोजेफ (आस्ट्रिया के राजा) द्वारा ही स्वीकार किया गया है, वह इसे रद्द भी कर सकता है, क्योंकि इसमें चाहे जो भी गुण हों, हंगरीवासियों को यह सर्वथा अमान्य है। हंगरी के लोग इसे अपनी मौलिकता के विपरीत समझते हैं। इसके अतिरिक्त इस संविधान का उद्देश्य हंगरी को आस्ट्रिया के एक छोटे से प्रदेश में परिणत करना ही था। मग्यारों ने यह अनुरोध किया कि हंगरी जनता इस प्रकार के संविधान के स्थान पर वह संविधान चाहती है, जिसे सम्राट् ने १८४८ ई० से अनुचित एवं अवैधानिक रूप में स्थापित कर रखा है। फ्रैंसिस जोजेफ को हंगरी के परम्परागत अधिकारों को प्रत्यक्ष रूप में मान्यता देनी होगी। तत्पश्चात् हंगरी के निवासी इस बात के लिये तैयार होंगे कि वे महाद्वीपीय क्षेत्र में अपने सम्राट् को एक महान् शासक का स्थान दिलाने हेतु कौनसी आवश्यक शक्तियाँ प्रदान करने के प्रश्न पर विचार करें। हंगरीवासी सर्वप्रथम अपनी प्राचीन मौलिकता की रक्षा के लिये दृढ़ संकल्प हैं और वे हैप्सवर्ग राजतन्त्र के आधीन अन्य जातियों में सम्मिलित होने को कदापि तैयार नहीं हैं। हैप्सवर्ग राजवंश को सारे हंगरीवासी विदेशी समझते हैं।

हंगरीवासियों का अपने परम्परागत अधिकारों को मान्यता देना

हंगरी द्वारा अपने प्राचीन विधान को लागू करने की माँग

हंगरीवासियों ने अपना निश्चय न छोड़ा। सारे साम्राज्य से एक राजतंत्र

वादी संसद की स्थापना का प्रयोग हंगरीवासियों द्वारा उसके सतत् एवं उग्र विरोध के फलस्वरूप विफल हो गया। सन् १८६१ से १८६५ ई० तक अर्थात् पूरे चार वर्ष तक यह मतभेद स्थायी रूप में चलता रहा, किन्तु कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष की बात मानने को तैयार न हुआ। तदुपरान्त महाद्वीपीय क्षेत्र में आस्ट्रिया की १८६६ में भारी पराजय हुई और जर्मनी तथा इटली में उसके प्रभुत्व का अन्त कर दिया गया। इस दशा में आस्ट्रिया का शासक, जबकि आस्ट्रिया के बाहर अपना समस्त प्रभाव वह खो चुका था, अपने देश में आवश्यक रूप में अपनी शक्ति में वृद्धि करना चाहता था।

मतभेद की स्थिति

इन प्रयासों के फलस्वरूप आस्ट्रिया और हंगरी के मध्य १८६७ में एक समझौता हुआ जिसे कि जर्मन भाषा में 'आउस ग्लाइक' कहते हैं। यही संधि आज भी आस्ट्रियन राज्य की आधार मानी जाती है। इस सन्धि ने आस्ट्रिया को एक अद्भुत राज्य बना दिया और हर प्रकार के जाति-विभेद को समाप्त करके इसे एक अद्वितीय राज्य का रूप दिया। इस साम्राज्य को, अब जिसमें द्वैध राजतंत्र की व्यवस्था की गयी थी, आस्ट्रिया-हंगरी कहा जाने लगा। आस्ट्रिया-हंगरी में अब दो पृथक एवं स्वतंत्र राज्य हैं तथा दोनों, कानून के अनुसार समान स्तर के राज्य माने जाते हैं। दोनों की अपनी-अपनी राजधानी है। आस्ट्रिया की राजधानी वियना है तथा हंगरी की बुडापेस्ट है। दोनों राज्यों का शासन एक ही है, जो हंगरी में तो राजा ही कहा जाता है, किन्तु आस्ट्रिया का सम्राट् माना जाता है। आस्ट्रिया और हंगरी दोनों की अलग-अलग संसद, मन्त्री परिषद एवं शासन व्यवस्था है। अपने-अपने गृह-क्षेत्र में दोनों राज्यों का शासन बिना एक दूसरे के हस्तक्षेप के संचालित होता है।

१८६७ ई० की संधि

द्वैध राजतंत्र

ये दोनों राज्य केवल एक सम्राट के नाम पर ही एक दूसरे से संयोजित नहीं है। ये दोनों राज्य एक दूसरे के कुछ समान मामलों की व्यवस्था संयुक्त रूप में करते हैं। आस्ट्रिया-हंगरी में तीन विभागों—"वैदेशिक, युद्ध तथा राजस्व"—की देख-रेख एक संयुक्त मंत्रिमण्डल द्वारा की जाती है। दोनों राज्य एक संसद न रख कर अपनी अलग-अलग संसद रखते हैं। अतः इन तीनों विभागों का प्रबन्ध करने के लिये प्रतिनिधित्व प्रणाली स्थापित की गयी। इस प्रतिनिधित्व का तात्पर्य यह है कि आस्ट्रिया और हंगरी दोनों देशों की संसदों से साठ-साठ प्रतिनिधि भेजे जायेंगे और इनकी सम्मिलित सभा बारी-बारी से वियना और बुडापेस्ट में होगी। वे वस्तुतः दोनों देशों की संसदों द्वारा नियुक्त की गयी सभाएँ ही होती हैं। ये सभाएँ पृथक-पृथक सदनों में बैठतीं और अपनी-अपनी राष्ट्रभाषा में विचार-विमर्श करती हैं। तदुपरान्त ये एक-दूसरे से लिखित रूप में सम्पर्क स्थापित करती हैं। यदि इस प्रकार तीन बार सम्पर्क स्थापित करने पर भी इन सभाओं द्वारा एक निर्णय की स्वीकृति नहीं हो पाती, तो ये सभाएँ अपना सम्मिलित अधिवेशन करती हैं। इस बार बिना किसी बहस के बहुसंख्यक सदस्यों के मतदान के आधार पर इस निर्णय की स्वीकृति ले ली जाती है।

दोनों संसदों द्वारा प्रतिनिधि भेजना

विभिन्न देशों में उनके अनेकानेक भागों के लिये समान रहने वाले मामले

जैसे कि व्यापार और मुद्रा इस संयुक्त मन्त्रिमण्डल में नहीं रखे जाते थे। ये मामले दोनों संसदों द्वारा दस वर्ष के लिये मान्य उनके समझौते के अनुसार निश्चित किये जाते हैं। यह व्यवस्था ऐसी किन्हीं दो राजनीतिक इकाइयों में पाई जा सकती है जिनमें कि दस वर्षों में प्रायः किसी समझौते के निश्चित करने में पर्याप्त कशमकश बनी रहती है, क्योंकि इस प्रकार के समझौते अत्यन्त ही जटिल होते हैं।

आस्ट्रिया-हंगरी में दोनों देशों के अलग-अलग संविधान और अलग-अलग संसदें हैं जिनके पृथक-पृथक दो-दो सदन होते हैं इनमें से किसी भी देश में सार्वजनिक मताधिकार व्यवस्था न थी। इन दोनों देशों में सार्वजनिक-मताधिकार व्यवस्था के लिये समय-समय पर जोरदार माँग की जाती रही है जिसके परिणाम आगामी घटनाओं में वर्णित हैं।

आस्ट्रिया-हंगरी की प्रभावशालिनी जातियाँ

इन दोनों राज्यों में से किसी में भी सजातीय जनता का निवास न था। प्रत्येक में एक न एक प्रभावशाली जाति अवश्य रहती थी; जैसे कि आस्ट्रिया के जर्मन तथा हंगरी के मग्यार। १८६७ ई० का समझौता केवल इन्हीं दो जातियों के अनुकूल था। प्रत्येक देश में एक दूसरे के अधीन एवं प्रतिद्वन्द्वी जातियाँ भी रहती थीं, जो उपर्युक्त मैग्यारों और जर्मनों की प्रधानता से द्रोह रखती थीं और मैग्यारों द्वारा उनके मौलिक अधिकारों की प्राप्ति के उदाहरण से प्रेरित होकर अपनी मान्यता और सत्ता प्राप्त करने के लिये अत्यन्त चिन्तित थीं। हंगरी में क्रोशिया, साल्वोनिया और ट्रासिल्वेनिया ये तीन प्रदेश थे, आस्ट्रिया में कुल मिलाकर १७ प्रदेश थे जिनकी अपनी-अपनी 'डाइटें' (Dites) थीं और जो प्रायः एक-सी जातियों का ही प्रतिनिधित्व करती थीं। इनमें से कुछ प्रदेश और विशेषकर बोहिमिया की तो पिछली शताब्दियों में अपनी पृथक राजसत्ता थी। ये प्रदेश अपनी सत्ता पुनः प्राप्त करना चाहते थे जबकि अन्य दूसरे प्रदेशों में आत्म-विकास एवं स्वशासन की भावनाएँ दृढ़ हो रहीं थी और वे अपने नियंत्रण में अपने समस्त हितों की पूर्ति की व्यवस्था करके अपना भविष्य निर्माण करना चाहती थीं।

राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का आस्ट्रिया-हंगरी पर निर्णायक प्रभाव

अगले पचास वर्षों में इन जातियों के संघर्ष आस्ट्रिया के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह स्मरणीय है कि राष्ट्रीयता के जिस सिद्धान्त ने इटली और जर्मनी को एकीकरण के पथ पर अग्रसर किया था, आस्ट्रिया में वह दूसरे ही रूप में प्रकट हुआ। इसने आस्ट्रिया को एक से अनेक भागों में विघटित करवा दिया। १८६७ ई० में यहाँ द्वैध राजसत्ता स्थापित हुई, किन्तु इन शासित जातियों ने उसे अपना स्थायी सहयोग न दिया क्योंकि यह द्वैध व्यवस्था मग्यारों और जर्मनों का ही समर्थन करती थी। अतः ये असन्तुष्ट जातियाँ इसे एक द्वैध-राज के स्थान पर ऐसा संघ-राज्य बनाना चाहती हैं, जिसमें अनेकानेक जातियों को समान अधिकार प्राप्त हों। गत अनेक वर्षों से द्वैध अथवा संघीय व्यवस्था किसी न किसी के सिद्धान्तों को लेकर आस्ट्रिया-हंगरी में मौलिक संघर्ष चलता रहा है। ये जातीय एवं राष्ट्रीय संघर्ष अत्यन्त अशांतिकारक हैं। स्पष्टता को ध्यान में रखकर इनमें से केवल कुछ महत्त्वपूर्ण संघर्षों पर ही यहाँ पर प्रकाश डालना सम्भव है।

आस्ट्रिया के साम्राज्य और हंगरी के राज्य का १८६७ से अपना-अपना पृथक इतिहास होने के कारण दोनों का पृथक-पृथक वर्णन करना अधिक उपयुक्त एवं लाभप्रद होगा।

१८७६ का आस्ट्रिया-साम्राज्य

१८६७ का आस्ट्रिया

ज्यों ही आस्ट्रिया ने हंगरी के साथ यह संधि की, उसे यह ज्ञात हुआ कि उसको इस सम्बन्ध में और भी माँगों को हल करना है। विभिन्न जातियों अथवा उपजातियों ने यह माँग की कि उनके साथ अब वही उदार व्यवहार किया जाना चाहिए, जैसा कि १८६७ की सन्धि के अनुसार हंगरी की जातियों के साथ किया जाता है। इस आन्दोलन का नेतृत्व बोहिमिया के वे चैक लोग कर रहे थे जिन्होंने अपनी माँगों पर सन् १८६८ ई० से स्पष्ट रूप में बल देना आरम्भ कर दिया था। इनकी दशा लगभग वही थी, जो कि १८६७ ई० में हंगरीवासियों की थी।

चैकों की माँगें

उनकी माँग यह थी कि बोहिमिया एक ऐतिहासिक एवं स्वतन्त्र राष्ट्र है और यह दूसरे राज्यों के साथ हैप्सबर्ग राजतन्त्र में राजा केवल व्यक्तिगत नाम पर ही संयोजित है। बोहिमिया के चैकों ने यह माँग की कि बोहिमिया की पृथक राज्यसत्ता को मान्यता दी जाय तथा 'प्रेग' में सम्राट फ्रैंसिस जोजेफ को 'वेन्सेसलास' (Wenceslaus) के राजमुकुट को धारण करके अपना राज्यारोहण करना चाहिये। यह आन्दोलन इतना प्रबल हो गया कि सम्राट ने बोहिमियावासियों की माँगों को स्वीकार कर लेने का विचार किया। इसी मध्य १४ सितम्बर १८७१ को बोहिमिया को उसने एक ऐतिहासिक राज्य होने की मान्यता दे दी और 'प्रेग' के स्थान बोहिमिया का राजमुकुट भी उसी प्रकार धारण करने का वचन दे दिया, जिस प्रकार उसने बुडापेस्ट में हंगरी का राजमुकुट पहना था। इसके साथ ही साथ उसने यह प्रबन्ध भी किया कि बोहिमिया को उसी प्रकार के अधिकार दिये जाएँ जैसे कि हंगरी को प्राप्त थे—अर्थात् स्वशासन की स्वतन्त्रता तथा आस्ट्रिया और हंगरी का कुछ सामान्य मामलों में पारस्परिक संयोजन। इस प्रकार आस्ट्रिया-हंगरी का द्वैध राजतन्त्र अब आस्ट्रिया-बोहिमिया-हंगरी के द्वैध-राजतन्त्र में परिणत होने वाला था।

सम्राट् का उनकी माँगों को स्वीकार करने के लिये तैयार होना

जर्मनों और मग्यारों का विरोध

सम्राट द्वारा दिये गये इन वचनों का कार्यान्वित होना निश्चित न था। सम्राट की योजना आस्ट्रिया के उन जर्मनों के सर्वथा विरुद्ध थे जो कि समस्त जनता में अल्पसंख्यक होने के साथ-साथ सबसे अधिक प्रभावशाली थे। और अपनी प्रधानता के भावी ह्रास से चिन्तित थे। उन्हें भय था कि अब उनके स्थान पर उस 'स्लाव' जाति का उत्थान होगा जिससे कि वे घृणा करते थे। हंगरी के मग्यरों का भी तीव्र विरोध था। उन्होंने राजा बोहिमिया सम्बन्धी उपर्युक्त निश्चयों से १८६७ के समझौते को भी विफल हो जाने की घोषणा की। मग्यारों को भय था कि बोहिमिया के 'स्लाव' राज्य के उत्थान से हंगरी में रहने वालों स्लावों को भी यह प्रेरणा मिलेगी कि वैसे ही नागरिक अधिकारों की

माँग करें। इसलिये हंगरी के मग्यार अपनी विशिष्ट महत्ता में बोहिमिया के स्लावों को बराबरी करते हुए देखने को कदापि तैयार न थे। अस्तु अब सम्राट् की योजनाओं का और भी तीव्र एवं भयंकर विरोध किया गया। इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि वैदेशिक मामलों का दो के स्थान पर तीन राष्ट्रों द्वारा नियंत्रण किया जाना अपेक्षाकृत कठिन कार्य होगा। अन्त में सम्राट् को इस प्रबल विरोध के सामने नत-मस्तक हो जाना पड़ा। आस्ट्रिया और हंगरी के साथ-साथ हंगरी को भी समान स्तर प्रदान करने वाली राजाज्ञा कभी भी प्रकाशित न की जा सकी। संघ शासन के तत्वों पर द्वैध सत्ता की विचारधारा सफल हुई और इस सम्बन्ध में उन जातियों में पर्याप्त उत्तेजना फैल गई, जिन्हें अपनी महत्ता के ह्रास का भय था। इस प्रकार १८६७ का समझौता अविचल रहा। आजकल हैप्सबर्ग राजतन्त्र किसी संघ राज्य का शासक न होकर अपने द्वैवराज्य का ही शासक है।

द्वैध सत्तावादियों की विजय

जातीय प्रश्न इतनी सरलता से हल किया जाने वाला न था। यह अब भी वर्तमान था। इस द्वैध राजसत्ता सम्बन्धी उपर्युक्त सफलता के बाद अनेक वर्षों तक आस्ट्रिया की संसद में जर्मनों का प्रभाव सर्वोपरि रहा, किन्तु कालान्तर में इनके तीन वर्गों में विघटित हो जाने तथा सम्राट् की कुछ योजनाओं का निरन्तर विरोध करते रहने के फलस्वरूप सम्राट् ने, जो इनसे पहले से ही अप्रसन्न हो चुका था, अब इन जर्मनों के सर्वथा विपरीत ही अपनी सत्ता का प्रयोग करने का निश्चय किया। इस समय एक ऐसा मंत्रिमण्डल बना जो कि किसी अन्य मंत्रिमण्डल की अपेक्षा अत्यधिक सफल रहा और जिसके सिद्धान्त किसी दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। यह तैफ़ (Teaffe) मंत्रिमण्डल था, जो १८७१ से १८९३ ई० तक अर्थात् पूरे १४ वर्ष तक सत्तारूढ़ रहा। इसकी नीति स्लाव जाति की दोनों उपजातियों अर्थात् चैकों (Czechs) और पोलों की समर्थक थी। बोहिमिया में दो जातियाँ हैं जर्मन और चैक। तैफ़ मन्त्रिमण्डल जर्मनी से अप्रसन्न था किन्तु चैकों के हितों का समर्थन करता था। चैकों ने एक मताधिकार नियम से लाभान्वित होकर बोहिमिया की डाइट में अपना बहुमत स्थापित कर लिया और इस प्रकार आस्ट्रिया की संसद में भी उन्हीं का बहुमत रहा। चैकों ने पुराने जर्मन विश्वविद्यालय[1] को दो भागों में विभाजित करवा कर उसमें से एक में अपनी प्रेग-विश्वविद्यालय की संस्था पृथक रूप से स्थापित की। इस प्रकार अब प्रेग विद्यालय जर्मन और जैक[2] दो संस्थाओं में विभक्त हो गया। विभिन्न प्रकार के आदेशों द्वारा अब जर्मन भाषा भी अपने राजा-भाषा के गौरवपूर्ण पद से च्युत कर दी गयी। १८८६ ई० के बाद में राजकर्मचारियों को यह निर्देशित किया गया कि वे जनता की प्रार्थनाओं का जर्मन अथवा चैक किसी भी भाषा में उत्तर दे सकते हैं।

तैफ़ (Teaffe) मंत्रिमण्डल १८७९-९३ ई०

बोहीमिया को सुविधाएँ

---

1. इस विश्वविद्यालय की स्थापना १८५७ ई० में हुई थी।
2. चैक विश्वविद्यालय का प्रेग के प्राचीन विश्वविद्यालय में ही सन् १८८८ में संस्थापन हुआ था।

गैलीशिया में पोल जाति अल्पसंख्यक होते हुए भी तैफ मन्त्रिमण्डल की शक्ति पाकर वहाँ की डाइट में सबसे अधिक प्रभावशालिनी बन गयी थी। इसने इस प्रदेश के रूथिनियनों (Ruthenians) का दमन करना आरम्भ कर दिया और साथ ही कार्निओला के स्लावों ने भी उस क्षेत्र में अपना ही अधिकतम प्रभुत्व स्थापित करना आरम्भ किया। इस प्रकार तैफ मंत्रिमण्डल के दीर्घ काल में स्लाव जाति का ही अधिकाधिक पक्ष लिया गया और स्लाव जाति को जर्मनों की उपेक्षा करके अधिकांश रूप में अपनी उन्नति करने का अवसर मिला। इस वर्तमान समय में आस्ट्रिया तथा हंगरी में होने वाले अपने-अपने पृथक परिवर्तनों के मध्य यही एक महत्त्वपूर्ण भेद था। आस्ट्रिया में स्लावों के ऊपर जर्मन नियंत्रण पर्याप्त सीमा तक समाप्त हो गया और स्लावों को भी उन्नति करने का थोड़ा अवसर सुलभ हुआ। जहाँ तक हंगरी का प्रश्न है और जैसा कि आगामी पृष्ठों में हम स्वयं देखेंगे वहाँ की सबसे अधिक प्रमुख सम्पन्न अर्थात् सत्तारूढ़ जाति की स्थायी नीति जातिवाद के आधार पर अत्याचार करना ही रही है। इसका परिणाम यह है कि यद्यपि आस्ट्रिया से जातीय संघर्ष पूर्णतया समाप्त तो नहीं हो सका, तथापि यह वहाँ पर्याप्त सीमा तक कम अवश्य रहा है, जबकि हंगरी में यह उस समय तक तीव्रगति से बढ़ता ही रहा है; जब तक कि कोई गम्भीरतम स्थिति न उत्पन्न हो जाए।

स्लावों का समर्थन

तैफ मंत्रिमण्डल के समय में लोकतंत्रवादी आन्दोलन तो चलता ही रहा; किन्तु उसके पतन के बाद भी यह उसी रूप में जारी रहा। अन्त में सार्वजनिक मताधिकार सम्बन्धी लोकसत्तावादी आन्दोलन को सफलता प्राप्त हुई। २६ जनवरी १९०७ के दिन आस्ट्रिया के उन समस्त पुरुषों को मतदान करने का अधिकार दिया गया, जिनकी आयु २४ वर्ष से अधिक थी। उदारनीति इसी का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम (मई १९०७) आस्ट्रिया के उन प्रथम निर्वाचनों में देखने को मिला, जिनके फलस्वरूप समाजवादी दल के लगभग दस करोड़ से भी अधिक मतदाताओं ने जो समस्त मतदाताओं के तिहाई थे, मतदान करके अपने ८७ समाजवादी प्रतिनिधियों को आस्ट्रिया संसद की सदस्यता प्रदान कर दी। पहले इस दल के केवल १२ सदस्यों को ही संसद में प्रतिनिधित्व प्राप्त था। इन निर्वाचनों में यह प्रत्यक्ष देखा गया कि साम्प्रदायिक दलों को अत्यधिक असफलता मिली। इससे कदाचित यही अनुमान लगाया जा सकता है कि असीम साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्द्विता का युग अब समाप्त हो चला था और उसके स्थान पर सामाजिक वर्गों का संघर्ष प्रारम्भ होने वाला था। इसके अतिरिक्त इनकी अपनी पृथक प्रकार की संस्थाएँ भी थीं। १८६८ ई० में मग्यारों ने क्रोशिया के साथ समझौता कर लिया, जो लगभग उसी प्रकार का था जैसा कि स्वयं हंगरीवासियों ने आस्ट्रिया के साथ पिछले वर्ष किया था। देश की दूसरी जातियों की अपेक्षा मग्यारों ने अपना जातीय प्रभाव, समस्त दफ्तरों, न्यायालयों, विद्यालयों, रेलवे कार्यालयों और जहाँ कहीं भी सम्भव हो, डालने पर अधिकाधिक बल दिया। कहा जाता है कि सारे हंगरी में किसी भी डाकखाने अथवा रेलवे स्टेशन पर सिवा मग्यार भाषा के अन्य किसी भाषा में एक लेख तक न मिलेगा। हंगरी की सीमा में मग्यारों ने अपने साथ रहने वाली प्रत्येक

आस्ट्रिया में सार्वजनिक मताधिकार

मग्यारों का अपना प्रभाव डालना

जाति को किसी प्रकार की सुविधा प्रदान करने से इन्कार कर रखा है। उन्होंने निस्सन्देह अन्य सभी प्रकार की विशेषताओं का बहिष्कार कर दिया है। लगभग ५० वर्ष तक हंगरी में इसी नीति का अनुसरण किया जाता रहा, किन्तु इसे कोई सफलता न मिल सकी। हंगरी को वे सम्पूर्णतया मग्यार बनाने में असफल ही रहे क्योंकि स्लावकों (Slavaks), क्रोशियानों (Croatians), स्लावोनियनों (Slavonions) और रूमानियनों (Roumanians) की शक्ति भी वहाँ यथेष्ठ थी, किन्तु पिछले दस वर्षों में मग्यारों ने इस दिशा में अथक प्रयास करने से भी किंचित संकोच नहीं किया है। इस जाति ने अपने विरुद्ध आवाज उठाने वाली जातियों को दबाने के लिये समस्त सम्भाव्य विधियों का, यथा कानून का उल्लंघन कर और समझा बुझाकर, प्रयोग करने की चेष्टा की है। मग्यारों को समस्त जातियों को अपने प्रभावाधीन रखने के असीमित एवं दृढ़ प्रयासों ने राजनीतिक संस्थाओं को तोड़ मरोड कर निर्मम अत्याचारों का साधन बना दिया तथा वहाँ के राजनीतिक जीवन का प्रकार एवं उद्देश्य भी प्राय: समाप्त कर दिया है। हंगरी ने जो अपने को एक स्वतन्त्र देश कहता है, केवल शक्तिशाली जाति मग्यारों को ही अधिकतम स्वतन्त्रता प्रदान की है। जबकि दूसरी जातियों के लिये यह निर्बाध निरंकुश शासनतन्त्र ही रहा है। स्लावों को मग्यार जाति में परिवर्तित करने के प्रत्येक सम्भव उपाय किये गये हैं। इस हेतु उन्होंने राज्य के उच्च सेवा पदों और निर्वाचनों के विषय में अनैतिक एवं सर्वथा अनियमित चेष्टा करने में कोई संकोच न किया। यद्यपि हंगरी की अन्य समस्त शासित जातियाँ वस्तुत: एवं सिद्धान्तत: वहाँ के स्वतन्त्र नागरिक हैं, तथापि उन्हें अपनी भाषाओं, साहित्यों, कलाओं, आदर्शों और आर्थिक जीवन की अपनी परम्परानुसार उन्नति करने से दृढ़ता के साथ रोका गया है।

स्लावों द्वारा विरोध

मग्यारों के बलात् प्रयास

१८६७ का हंगरी-राज्य

आस्ट्रिया से विशाल और ग्रेट ब्रिटेन से भी अधिक विस्तृत हंगरी के राज्य ने अपनी ऐतिहासिक मौलिकता की स्थायी मान्यता एवं तत्सम्बन्धी उद्घोषणा १८६७ के समझौते द्वारा उपलब्ध की थी। उसने हैप्सबर्ग राजतंत्र के अधीन दूसरे देशों के साथ अपना संयोजन होने के समस्त प्रयासों का सफल विरोध किया। सेन्ट स्टीफन के राजतन्त्र मे यह एक स्वतंत्र राज्य है। यहाँ की एक ही राजभाषा मग्यार, जो न तो स्लाव और न ही जर्मन भाषाओं के अनुरूप है; प्रत्युत यह मूलत: तूरानी भाषाओं की ही भाँति है।

हंगरी का पृथक राज्य

१८६७ की सन्धि के बाद हंगरी के राजनैतिक इतिहास में आस्ट्रिया की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता के दर्शन होते हैं। जाति और भाषा की समस्याओं को तुरत-फुरत ढंग से सुलझाने का सफल प्रयास किया गया। १८६७ में सत्तारूढ़ मग्यार जाति अब भी वहाँ सत्तारूढ़ बनी हुई है। १८६७ में यद्यपि जनसंख्या की दृष्टि से यह एक अल्पसंख्यक जाति थी, और इसमें हंगरी के १५ निवासियों में से केवल ६ व्यक्ति ही सम्मिलित थे तथापि यह एक ऐसी शक्तिशाली जाति थी, जो शासन करने के लिए योग्य एवं दृढ़ संकल्प

गैलीशिया में पोल जाति अल्पसंख्यक होते हुए भी तँफ मन्त्रिमण्डल की शक्ति पाकर वहाँ की डाइट में सबसे अधिक प्रभावशालिनी बन गयी थी। इसने इस प्रदेश के रूथिनियनों (Ruthenians) का दमन करना आरम्भ कर दिया और साथ ही कार्निओला के स्लावों ने भी उस क्षेत्र में अपना ही अधिकतम प्रभुत्व स्थापित करना आरम्भ किया। इस प्रकार तँफ मंत्रिमण्डल के दीर्घ काल में स्लाव जाति का ही अधिकाधिक पक्ष लिया गया और स्लाव जाति को जर्मनों की उपेक्षा करके अधिकांश रूप में अपनी उन्नति करने का अवसर मिला। इस वर्तमान समय में आस्ट्रिया तथा हंगरी में होने वाले अपने-अपने पृथक परिवर्तनों के मध्य यही एक महत्त्वपूर्ण भेद था। आस्ट्रिया में स्लावों के ऊपर जर्मन नियंत्रण पर्याप्त सीमा तक समाप्त हो गया और स्लावों को भी उन्नति करने का थोड़ा अवसर सुलभ हुआ। जहाँ तक हंगरी का प्रश्न है और जैसा कि आगामी पृष्ठों में हम स्वयं देखेंगे वहाँ की सबसे अधिक प्रमुख सम्पन्न अर्थात् सत्तारूढ़ जाति की स्थायी नीति जातिवाद के आधार पर अत्याचार करना ही रही है। इसका परिणाम यह है कि यद्यपि आस्ट्रिया से जातीय संघर्ष पूर्णतया समाप्त तो नहीं हो सका, तथापि यह वहाँ पर्याप्त सीमा तक कम अवश्य रहा है, जबकि हंगरी में यह उस समय तक तीव्रगति से बढ़ता ही रहा है; जब तक कि कोई गम्भीरतम स्थिति न उत्पन्न हो जाए।

स्लावों का समर्थन

तँफ मंत्रिमण्डल के समय में लोकतंत्रवादी आन्दोलन तो चलता ही रहा; किन्तु उसके पतन के बाद भी यह उसी रूप में जारी रहा। अन्त में सार्वजनिक मताधिकार सम्बन्धी लोकसत्तावादी आन्दोलन को सफलता प्राप्त हुई। २६ जनवरी १९०७ के दिन आस्ट्रिया के उन समस्त पुरुषों को मतदान करने का अधिकार दिया गया, जिनकी आयु २४ वर्ष से अधिक थी। उदारनीति इसी का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम (मई १९०७) आस्ट्रिया के उन प्रथम निर्वाचनों में देखने को मिला, जिनके फलस्वरूप समाजवादी दल के लगभग दस करोड़ से भी अधिक मतदाताओं ने जो समस्त मतदाताओं के तिहाई थे, मतदान करके अपने ८७ समाजवादी प्रतिनिधियों को आस्ट्रिया संसद की सदस्यता प्रदान कर दी। पहले इस दल के केवल १२ सदस्यों को ही संसद में प्रतिनिधित्व प्राप्त था। इन निर्वाचनों में यह प्रत्यक्ष देखा गया कि साम्प्रदायिक दलों को अत्यधिक असफलता मिली। इससे कदाचित यही अनुमान लगाया जा सकता है कि असीम साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्द्विता का युग अब समाप्त हो चला था और उसके स्थान पर सामाजिक वर्गों का संघर्ष प्रारम्भ होने वाला था। इसके अतिरिक्त इनकी अपनी पृथक प्रकार की संस्थाएँ भी थीं। १८६८ ई० में मग्यारों ने क्रोशिया के साथ समझौता कर लिया, जो लगभग उसी प्रकार का था जैसा कि स्वयं हंगरीवासियों ने आस्ट्रिया के साथ पिछले वर्ष किया था। देश की दूसरी जातियों की अपेक्षा मग्यारों ने अपना जातीय प्रभाव, समस्त दफ्तरों, न्यायालयों, विद्यालयों, रेलवे कार्यालयों और जहाँ कहीं भी सम्भव हो, डालने पर अधिकाधिक बल दिया। कहा जाता है कि सारे हंगरी में किसी भी डाकखाने अथवा रेलवे स्टेशन पर सिवा मग्यार भाषा के अन्य किसी भाषा में एक लेख तक न मिलेगा। हंगरी की सीमा में मग्यारों ने अपने साथ रहने वाली प्रत्येक

आस्ट्रिया में सार्वजनिक मताधिकार

मग्यारों का अपना प्रभाव डालना

जाति को किसी प्रकार की सुविधा प्रदान करने से इन्कार कर रखा है। उन्होंने निस्सन्देह अन्य सभी प्रकार की विशेषताओं का बहिष्कार कर दिया है। लगभग ५० वर्ष तक हंगरी में इसी नीति का अनुसरण किया जाता रहा, किन्तु इसे कोई सफलता न मिल सकी। हंगरी को वे सम्पूर्णतया मग्यार बनाने में असफल ही रहे क्योंकि स्लावकों (Slavaks), क्रोशियानों (Croatians), स्लावोनियनों (Slavonions) और रूमानियनों (Roumanians) की शक्ति भी वहाँ यथेष्ठ थी, किन्तु पिछले दस वर्षों में मग्यारों ने इस दिशा में अथक प्रयास करने से भी किंचित संकोच नहीं किया है। इस जाति ने अपने विरुद्ध आवाज उठाने वाली जातियों को दबाने के लिये समस्त सम्भाव्य विधियों का, यथा कानून का उल्लंघन कर और समझा बुझाकर, प्रयोग करने की चेष्टा की है। मग्यारों को समस्त जातियों को अपने प्रभावाधीन रखने के असीमित एवं दृढ़ प्रयासों ने राजनीतिक संस्थाओं को तोड़ मरोड़ कर निर्मम अत्याचारों का साधन बना दिया तथा वहाँ के राजनीतिक जीवन का प्रकार एवं उद्देश्य भी प्रायः समाप्त कर दिया है। हंगरी ने जो अपने को एक स्वतन्त्र देश कहता है, केवल शक्तिशाली जाति मग्यारों को ही अधिकतम स्वतन्त्रता प्रदान की है। जबकि दूसरी जातियों के लिये यह निर्बाध निरंकुश शासनतन्त्र ही रहा है। स्लावों को मग्यार जाति में परिवर्तित करने के प्रत्येक सम्भव उपाय किये गये हैं। इस हेतु उन्होंने राज्य के उच्च सेवा पदों और निर्वाचनों के विषय में अनैतिक एवं सर्वथा अनियमित चेष्टा करने में कोई संकोच न किया। यद्यपि हंगरी की अन्य समस्त शासित जातियाँ वस्तुतः एवं सिद्धान्ततः वहाँ के स्वतन्त्र नागरिक हैं, तथापि उन्हें अपनी भाषाओं, साहित्यों, कलाओं, आदर्शों और आर्थिक जीवन की अपनी परम्परानुसार उन्नति करने से दृढ़ता के साथ रोका गया है।

स्लावों द्वारा विरोध

मग्यारों के बलात् प्रयास

१८६७ का हंगरी-राज्य

आस्ट्रिया से विशाल और ग्रेट ब्रिटेन से भी अधिक विस्तृत हंगरी के राज्य ने अपनी ऐतिहासिक मौलिकता की स्थायी मान्यता एवं तत्सम्बन्धी उद्घोषणा १८६७ के समझौते द्वारा उपलब्ध की थी। उसने हैप्सबर्ग राजतंत्र के अधीन दूसरे देशों के साथ अपना संयोजन होने के समस्त प्रयासों का सफल विरोध किया। सेन्ट स्टीफन के राजतन्त्र मे यह एक स्वतंत्र राज्य है। यहाँ की एक ही राजभाषा मग्यार, जो न तो स्लाव और न ही जर्मन भाषाओं के अनुरूप है; प्रत्युत यह मूलतः तूरानी भाषाओं की ही भाँति है।

हंगरी का पृथक राज्य

१८६७ की सन्धि के बाद हंगरी के राजनैतिक इतिहास में आस्ट्रिया की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता के दर्शन होते हैं। जाति और भाषा की समस्याओं को तुरत-फुरत ढंग से सुलझाने का सफल प्रयास किया गया। १८६७ में सत्तारूढ़ मग्यार जाति अब भी वहाँ सत्तारूढ़ बनी हुई है। १८६७ में यद्यपि जनसंख्या की दृष्टि से यह एक अल्पसंख्यक जाति थी, और इसमें हंगरी के १५ निवासियों में से केवल ६ व्यक्ति ही सम्मिलित थे, तथापि यह एक ऐसी शक्तिशाली जाति थी, जो शासन करने के लिए योग्य एवं दृढ़ संकल्प

दोनों ही थी। अल्पसंख्यक जाति उसी समय से अपने में बहुसंख्यक जातियों को आत्मसात् करने का असम्भव प्रयास करती रही है। हंगरी में चार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण जातियाँ रहती हैं—स्लाव, मग्यार, रूमानियन तथा जर्मन। इनमें रूमानियन लोग सबसे प्राचीन हैं और वे अपनी उत्पत्ति प्राचीन काल में यमन उपनिवेशकों से बतलाते हैं। ये मुख्यतः हंगरी के पूर्वी भाग जिसे ट्रिसिल्वेनिया कहते हैं में रहते हैं। इनकी जनसंख्या का कोई ठोस भाग नहीं मिलता, क्योंकि इनके मध्य में बहुत सी जर्मनों की बस्तियाँ भी पाई जाती हैं तथा इसके साथ ही साथ इन रूमानियों—रूमानिया के स्वतंत्र अथवा स्वशासित प्रदेशों के बीच—में बहुत से मग्यार लोग भी रहते हैं। हंगरी के स्लाव भी दो-पृथक वर्गों में रहते हैं। हंगरी के उत्तरी भाग में स्लावकों का निवास है। दक्षिणी अथवा दक्षिणी-पश्चिमी भाग में सर्व और क्रोशियन लोग रहते हैं। ये क्रोशियन लोग ही ऐसे थे जिनकी एक पृथक मौलिकता थी। ये कभी भी हंगरी में पूर्णतया सम्मिलित न किये जा सके थे। इनका इतिहास भी पृथक था।

हंगरी की विभिन्न जातियाँ

क्रोशियन जाति

यह परिस्थिति स्लावों तथा अन्य जातियों के लिये अत्यधिक कष्टदायक थी। मग्यारों का कुशासन अब अत्यन्त ही प्रबल हो चुका है और वर्तमान समय में इससे समस्त हंगरी का राष्ट्रीय जीवन अत्यधिक भ्रष्ट हो गया है, जिसके फलस्वरूप हंगरी में किसी भी क्षण भीषण विद्रोह का विस्फोट हो सकता है। यह देश अत्याचार का एक दुःखद इतिहास वर्णन कर रहा है और यूरोप में महाद्वीपीय संघर्षों का केन्द्र विन्दु बन गया। जब तक कि मग्यार जाति हंगरी में रहने वाली दूसरी जातियों केअपने समकक्ष अधिकारों को मान्यता देने को अग्रसर न होगी और जब तक वहाँ बल प्रयोग द्वारा जाति-परिवर्तन के स्थान पर समस्त जातियों के मूल अधिकारों को स्वीकृति प्रदान करके न्यायोचित व्यवहार न किया जायेगा, हंगरी में व्यवस्था कभी भी नहीं स्थापित हो सकती। समस्त हंगरी को मग्यार न बनाया जा सका। इसके विपरीत वहाँ पर साम्प्रदायिक वैमनस्य इतना बढ़ गया है कि यह एक अत्यन्त भयानक परिस्थिति उत्पन्न करने वाला समझा जाता है। हमारे इस कथन की पूर्ति सत्तारूढ़ मग्यारों के सर्वो स्लावकों क्रोशियनों और रूमानियनों के साथ अतीत एवं वर्तमान कालीन सम्बन्धों के विस्तृत अध्ययम द्वारा प्रत्यक्ष रूप में होती है।

हंगरी में भीषण अत्याचारपूर्ण शासन

इन निष्कर्षों के प्रत्युत्तर में मग्यारों के पक्षपाती कहते हैं कि हंगरी का कानून स्पष्टतः एवं मुख्यतः समस्त जातियों के समान स्तर को मान्यता देता है। इस सम्बन्ध में वे अपने १८६८ के कानून की ओर इंगित करते हैं जो "जातियों के समान अधिकार" की प्रत्यक्ष स्वीकृति देता है। यह प्रबुद्ध एवं प्रशंसनीय नियम फ्रैंसिस डीक की अत्यन्त उदारवादी भावनाओं का प्रतीक था, जोकि स्वयं ही उसका वास्तविक प्रतिपादन करता था। खेद का विषय है कि यह कानून अब मृत-प्राय है और जब से यह पारित हुआ है, इसी दशा में रहा है। इसका उन्मूलन इसलिए नहीं किया गया ताकि हंगरी के पक्षपाती इसे एक उदार नियम समझकर मग्यारों की निन्दा न करें और हंगरी की

सन् १८६८ ई० का मृत-कानून

सरकार का समर्थन करें। फ्रैंसिस डीक की आत्मा हंगरी के प्रशासकीय क्षेत्र से बहुत दिनों पूर्व ही बाहर निकल चुकी है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान वर्षों में, मंग्यारों में ही लुई कोसुथ के नेतृत्व में हंगरी में एक दल का उत्थान हुआ है, जो कि १८४८ के समझौते के पूर्णतया विरुद्ध और हंगरी को उसकी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा अधिक स्वाधीन बनाने का विचार करता है। इस दल की माँग यह है, कि हंगरी स्वयं अपने संरक्षण में ही वैदेशिक मंत्रालय की व्यवस्था करके आस्ट्रिया से स्वतन्त्र रूप में विदेशों के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित करेगा और साथ ही साथ अपने देश से सम्बन्धित व्यापार पर भी वह स्वतंत्र रूप में नियंत्रण रखेगा। इस समय जबकि उसने द्वैध शासन के अन्तर्गत आस्ट्रिया की सेना के उस भाग में, मग्यार भाषा के प्रयोग पर अधिक बल दिया, जिसमें कि हंगरी के सैनिक होते हैं, तो सम्राट् फ्रैंसिस जोजेफ ने उनके प्रयासों को अपनी प्रबल एवं दृढ़ नीति द्वारा विफल कर दिया। जोजेफ का विचार था, कि सेना में एक भाषा प्रयोग पर ही राज्य की सुरक्षा आधारित है और व्यवस्था से युद्धस्थल में किसी प्रकार की चिन्तनीय एवं निराशाजनक कठिन परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो सकती। इस प्रश्न को लेकर संसद तथा उसके बाहर भीषण हिंसापूर्ण कुकृत्यों का सूत्रपात हुआ, किन्तु सम्राट् ने उन पर कोई ध्यान न दिया। सरकार की कार्यवाहियाँ रोक दी गयी और अनेक वर्षों तक यह समझौता स्थागित रहा, जब तक कि सम्राट ने एक बार स्वयं दोनों पक्षों को समझा बुझा कर इस समझौते को पुनः क्रियान्वित करने का प्रयत्न पूरे वर्ष भर तक न किया। फ्रैंसिस जोजेफ ने अन्ततः अनेक धमकियों के भय से हंगरी की भाषा को मान्यता देने के प्रश्न को हंगरी में सार्वजनिक निर्वाचनों से सम्बन्धित कर दिया, किन्तु इसके लिये वहाँ की जनता निरन्तर प्रबल माँगें कर रही थी। सार्वजनिक स्तर पर निर्वाचनों के पक्ष में मंग्यार लोग नहीं थे, क्योंकि उन्हें भय था कि इससे हंगरी की अनेक पिछड़ी हुई जातियों के हाथ में सत्ता आ आयेगी और अन्त में वे अपने प्रतिद्वन्द्वी स्लावों के पूर्ण प्रमाण में पड़ जायेंगे। हंगरी के वयस्क पुरुषों में जनता के केवल २५ प्रतिशत लोगों को ही मताधिकर प्राप्त हैं। जातीय एकाधिकार और राष्ट्रीय स्वतंत्रता सम्बन्धी हिंसा-जन्यवाद-विवादों ने राजनीतिक संस्थाओं के सामान्य अत्याचारों का भीषण विरोध किया है। हंगरी में संसदीय स्वतंत्रता का गत वर्षों से लोप हो चुका है और वहाँ पर अत्यन्त निरंकुशतापूर्ण शासन किया जा रहा है।

भाषा के प्रश्न पर हंगरी में संघर्ष

आस्ट्रिया-हंगरी के शासक हैप्सबर्ग राजवंश ने १८१५ में ही अपना लोम्बार्डी वेनिशिया का समृद्ध क्षेत्र (१८५९-६६) खो दिया था। तथापि इसने कालान्तर में बोस्नीया और हर्जेगोविना के नवीन क्षेत्र प्राप्त कर लिये। ये तुर्की क्षेत्र रूप और टर्की के मध्य होने वाले भीषण युद्धकाण्ड के उपरान्त बर्लिन कांग्रेस द्वारा 'अधिकृत' एवं 'प्रशासित' करने के लिये प्रदान किये गये थे। उस समय मग्यारों ने आस्ट्रिया-हंगरी में इन स्लाव जाति प्रधान क्षेत्रों को सम्मिलित करने का विरोध भी किया क्योंकि वे साम्राज्य में अधिक स्लाव जातियों को न आने देना

आस्ट्रिया हंगरी के क्षेत्रिक लाभ एवं हानियाँ

चाहते थे, किन्तु सम्राट् ने इन क्षेत्रों को अपने विशाल साम्राज्य का स्वेच्छापूर्वक अंग बना दिया। बल्कान क्षेत्रों का इस प्रकार अधिकृत किया जाना आस्ट्रिया-हंगरी को समस्त बल्कान राजनीति एवं पूर्वी समस्याओं के वादविवादों में आक्रामक सिद्ध करता है और इस प्रकार यह भावी यूरोपियन टर्की के भाग्य निर्णय में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अक्टूबर १९०८ में आस्ट्रिया हंगरी ने इन प्रदेशों को प्रत्यक्ष रूप में अपने राज्य का अभिन्न अंग बनाने की घोषणा की। उसकी इस कार्यवाही के महत्त्व का दक्षिण-पूर्वी यूरोप के आधुनिक इतिहास और १९१४ के विश्व युद्ध के सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन किया जायेगा।

२१ नवम्बर १९१६ के दिन फ्रैंसिस जोजेफ लगभग ६८ वर्ष तक शासन करने के पश्चात् परलोक सिधार गया। उसके बाद उसके पोते (Grand-nephew) ने चार्ल्स प्रथम के नाम से शासन-सूत्र सँभाला।

अध्याय २५

सन् १८१५ से १८६८ ई० तक का इंगलैण्ड

फ्रांस की राज्यक्रांति के फलस्वरूप कल्याणकारी सुधारों की एक ऐसी लहर उत्पन्न हुई, जिसने न केवल फ्रांस के ही वरन् सारे यूरोपीय राज्यों के असंख्य दूषणों और उनके अन्तर्गत प्राचीनतम एवं हानिप्रद संस्थाओं का सुधार अथवा पूर्ण उन्मूलन कर दिया। फ्रांस की राज्य क्रांति को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने मुख्यत: फ्रांस, जर्मनी और इटली जैसे देशों के सामान्य जीवन की दशाओं में एक सुनिश्चित सुधार किया। एक यूरोपीय राज्य अर्थात् इंगलैण्ड पर इसका प्रभाव दुर्भाग्यपूर्ण ही पड़ा। इंगलैण्ड अपनी संस्थाओं और नीतियों का काया-कल्प करना चाहता था, क्योंकि न्याय-परम्पराओं की प्रतिष्ठा की दृष्टि से यह आवश्यक ही था। योग्यतम लेखकों और दार्शनिकों ने अतीत काल में ही इन अनिवार्य एवं लाभदायक परिवर्तनों की भावी आवश्यकता की ओर सन्दिग्ध शब्दों में इंगित किया था और विलियम पिट जैसे महान् राजनीतिज्ञ ने तत्सम्बन्धी आलोचनाओं के महत्त्व को पहचान कर अपना यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह अपने देश में नवीन भावना फूँककर राष्ट्रीय जीवन का उत्थान करेगा। यह राज्य-क्रान्ति इंगलैण्ड के अत्यधिक उदार लोगों द्वारा पहले एक नवीन एवं सुखदायी युग का प्रतीक समझी गई, किन्तु कालांतर में रूढ़िवादी अंग्रेजों को फ्रांसीसियों की सम्पत्ति अधिकारों और जातीय भेद-भाव के विरुद्ध कटु आलोचना को सुनकर अत्यंत रोष आया। तदुपरान्त जब यह क्रांति अपनी चरम सीमा को पहुँची, तो बहुत से रूढ़िवादी विचारक तो परिवर्तन की कल्पना से भय-ग्रस्त हो जाते थे। क्या इंगलैण्ड में भी कोई सुधार इस सीमा तक नहीं पहुँच सकता है? यह एक सामान्य बात बन चुकी थी, जिसकी चर्चा साहित्यकार एडमण्ड बर्क के अनुयायी सदैव ही किया करते थे। इसका फल यह था कि इंगलैण्ड में

फ्रांस की राज्यक्रांति के व्यापार एवं लाभ-दायक प्रभाव

इंगलैण्ड पर फ्रांस की राज्यक्रांति का दुर्भाग्य पूर्ण प्रभाव

इंगलैण्ड में कट्टर रूढ़िवादी

१७९३ से लेकर १८१५ तक कोई सुधार न हुए और प्राय: पूरी एक पीढ़ी के लिये, जो महत्त्वपूर्ण सुधार अत्यंत ही लाभप्रद सिद्ध हो सकते थे, विलम्बित ही हो गये ।

फ्रांस के विरुद्ध दीर्घकालीन युद्ध के उपरान्त तथा वाटरलू ने निर्णायक संग्राम में अंग्रेजों को विजय प्राप्त होने के अनन्तर भी इंगलैण्ड में किसी प्रकार के भी परिवर्तन के प्रति अनायास भय जाग्रत हो जाता था । अब भी लोगों की सुधारों के विषय में वही तीव्र विरोधपूर्ण एवं दृढ़ धारणा थी जब हम अंग्रेजी संस्थाओं, अंग्रेज जनता और उसके व्यक्तिगत जीवन की वास्तविकता का मूल्यांकन करेंगे तो हम इस रहस्य से भली-भाँति अवगत हो जाएँगे । इस समस्त समय में ब्रिटिश संसद में टोरी दल का प्रभुत्व रहा जोकि, प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन के विरुद्ध अत्यंत स्थायी एवं दृढ़ शत्रुता देखता था । क्रांति समानता के सिद्धान्त का प्रबल समर्थन करती थी तथा पक्षपात और विशेषाधिकारों के उन्मूलन के लिये प्रयत्नशील भी थी । इसके विपरीत इंगलैण्ड प्राचीन राजतंत्र के अन्तर्गत एक ऐसा देश था, जो विशेषाधिकारों का समर्थन तथा सामाजिक वर्गों के मध्य ऊँच-नीच का पर्याप्त भेद-भाव करता था । यहाँ एक विशिष्ट प्रकार की असमानता प्रत्येक चर्च, राज्य तथा विद्यास्थान पर विद्यमान थी ।

प्राचीन राजतंत्र के अतंर्गत इंगलैण्ड

इंगलैण्ड की राजसत्ता सामन्तों तथा उच्च श्रेणी की जनता में अन्तर्निहित थी । वहाँ की 'स्वायत्त शासन व्यवस्था' के विषय में जिसकी सराहना विदेशों तक में की जाती थी, लोगों का विचार था कि यह जनता की एक ऐसी सरकार है, जो जनता द्वारा ही संचालित होती है और जो इंगलैण्ड को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं पाई जाती है । काउण्टियों अर्थात् छोटी-छोटी रियासतों की सरकारों में स्थानीय कुलीन धनिकों को ही समस्त प्रसासकोय पद उपलब्ध होते थे और अन्य सामन्तीय प्रदेशों की सरकारों में तो सामन्तों की स्थिति निर्णायक ही होती थी । राष्ट्रीय अर्थात् केन्द्रीय सरकार अथवा संसद में भी कुलीन तंत्र की ही शक्ति सबसे अधिक दृढ़ थी । लार्ड सभा के समस्त सदस्य बड़े-बड़े भूमिपति थे । ये समाज के शासक वर्ग में एक सर्वाधिक प्रभावशाली वर्ग समझा जाता था । इसके विपरीत कामन सभा भी, जो लार्ड सभा की अपेक्षा अत्यंत कम सुरक्षित थी, उसी प्रकार का एक गढ़ थी । इस कामन सभा ने, जिससे इंगलैण्ड की सर्व-सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करने की आशा की जाती थी, अपने कार्य में कोई सफलता न प्राप्त की इसकी निर्मित वस्तुत: असाधारण ही थी ।

सामन्तों की प्रशासकीय स्थिति

सन् १८१५ ई० में इंगलैण्ड की कामन सभा में कुल ६५८ सदस्य थे, जिनमें से ४८९ इंगलैण्ड की ओर से, १०० आयरलैण्ड की ओर से ४५ स्काटलैण्ड के और २४ वेल्स के थे । देश में तीन प्रकार के निर्वाचन केन्द्र थे— (१) काउण्टियाँ (२) बोरॉ और (३) यूनीवर्सिटियाँ । इंगलैण्ड की प्रत्येक काउण्टी से दो सदस्य तथा प्रत्येक बोरॉ से भी प्राय: दो सदस्य ही लिये जाते थे, किन्तु कुछ बोरॉ से केवल एक-एक सदस्य भी ले लिया जाता था । जनसंख्या चाहे जितनी भी हो, उसके आकार से प्रतिनिधित्व का कोई सम्बन्ध न था । कोई भी काउण्टी चाहे बड़ी हो या छोटी इसी प्रकार चाहे कोई बोरॉ बड़ा हो और चाहे छोटा ही हो किन्तु इनमें से बराबर-बराबर संख्या

कामन्स सभा

में प्रतिनिधि लिये जाते थे। अतीत काल में इंगलैण्ड के राजा को यह अधिकार था कि वह देश के नगर-प्रतिनिधियों को एकत्र करके उनमें से दो प्रतिनिधियों को लन्दन की संसदीय वैठक में भेज सकता था। एक वार इस प्रकार का अधिकार पा जाने के वाद ये संसदीय सदस्य अपना प्रतिनिधित्व का अधिकार वनाये रखते थे। यदि कालान्तर में किसी नये नगर का उदय हो जाता, तो राजा उसे संसदीय प्रतिनिधित्व अधिकार दे सकता था, किन्तु ऐसा करने के लिये वह नियमबद्ध न था। १६२५ से अभी तक केवल दो नये दो वोरों का निर्माण हुआ था। कामन सभा निर्माण की, उस समय से जवकि जनसंख्या वढ़ रही थी और जनता प्राचीन केन्द्रों से हटकर नवीन औद्योगिक केन्द्रों में वस रही थी, यही परम्परा वन गई। इस राजनैतिक व्यवस्था की विशेपता यह थी कि इसके अन्तर्गत असमान प्रतिनिधित्व का ही प्रबन्ध था। इस प्रकार इंगलैण्ड की दक्षिणवर्ती दस काउण्टियों के ग्रामीण क्षेत्रों और नागरीय क्षेत्रों से २४७ तथा अन्य तीस काउण्टियों से केवल २५२ ही सदस्य चुने गये, किन्तु इन तीस काउण्टियों की जनसंख्या पहली दसों काउण्टियों की जनसंख्या की तीन गुनी थी। स्काटलैण्ड से तो केवल ४५ सदस्य ही चुने गये जवकि इंगलैण्ड की अकेली कार्नवाल नामक काउन्टी (जिसमें ग्राम एवं नगर दोनों प्रकार के क्षेत्र थे) से ४४ प्रतिनिधि लिये गये। स्काटलैण्ड की जनसंख्या कार्नवाल की अठगुनी थी।

प्रतिनिधित्व की प्रणाली

इंगलैण्ड की समस्त काउण्टियों में मतदान के समान नियम प्रचलित थे। मताधिकार उन समस्त लोगों को प्राप्त था, जो अपनी भूमि से कम से कम ४० शिलिंग की प्रतिवर्प आय कर सकते थे। इस नियम के लागू हो जाने से वहुत कम लोगों को मताधिकार प्राप्त हो सका। काउन्टी के मतदाता मुख्यतः वही लोग थे, जिनके पास विस्तृत भूमियाँ और उनके असामी लोग होते थे। उन काउण्टियों का नियंत्रण जिनमें कि वहुत कम मतदाता थे, सम्पन्न भूमिपतियों द्वारा ही सुविधापूर्वक हो जाता था। सारे स्काटलैण्ड में ३ सहस्र काउण्टी (अथवा ग्रामीण) मतदाताओं से अधिक न थे किन्तु स्काटलैंड की जनसंख्या प्रायः दो लाख थी। इसी प्रकार फाइफ नामक काउण्टी में २४० मतदाता थे, जवकि क्रोमार्टी में केवल ९ ही थे। व्युट में स्थिति और भी विपम थी क्योंकि इसके १४००० निवासियों में से केवल २१ व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त था। जिनमें से केवल एक मतदाता ही उस काउण्टी में स्थायी रूप से निवास करता था। एक वार इस काउन्टी के केवल एक व्यक्ति ने ही काउन्टी की निर्वाचन समिति की वैठक में भाग लिया। वह स्वयं ही समिति का अध्यक्ष वना, स्वयं ही उसने अपने को मनोनीत किया, स्वयं मतदाताओं की सूची का अवलोकन किया और स्वयं ही उसने अपने को संसद का निर्विरोध सदस्य निर्वाचित एवं घोपित किया।

काउण्टियों में मताधिकार व्यवस्था

ग्रेट ब्रिटेन की उन काउन्टियों की दशा तो यही थी, जो कामन सभा में अपने १८६ प्रतिनिधियों को चुनकर भेजती थी, किन्तु वोरों की इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति थी जो संसद में अपने ४६७ प्रतिनिध सदस्यों के रूप में भेजते थे। वोरों के निर्वाचन केन्द्रों में सम्पत्तिशाली एवं भूमिपति वर्ग का प्रभाव काउण्टियों की अपेक्षा अधिक निर्णायक था। इन वोरों की अनेक श्रेणियाँ थीं। कुछ

वोरों (नागरीय) निर्वाचन केन्द्रों में मतदान की व्यवस्था

बोरॉ ऐसे थे, जिनके सदस्य मतदान द्वारा मनोनीत किये जाते थे, कुछ अत्यन्त महत्त्व शून्य अथवा निरर्थक बोरॉ थे, अन्य कुछ बोरा में पर्याप्त संख्या में मतदाता होते थे और कुछ बोरॉ में मतदान प्रजातान्त्रिक विधि से होता था। इन समस्त प्रकार के बोरॉ में पहले दो ऐसे बोरॉ थे, जिन्होंने सदन में आवश्यक सुधार करने की लोकप्रिय माँग को प्रस्तुत करने में विशेष सहायता की। मतदाताओं और सदस्यों को मनोनीत करने वाले बोरॉ में यह कार्य पूर्णतः उनके संरक्षकों द्वारा सम्पन्न होता था। ऐसे स्थान प्रायः मनुष्यों द्वारा खाली कर दिये गये होते, किन्तु प्रतिनिधित्व भौगोलिक क्षेत्रों से अधिक सम्बद्ध था, न कि उनकी जनसंख्या से[1]; अस्तु इन स्थानों को इस रूप में भी संसद में अपने दो सदस्य भेजने का अधिकार था। इस प्रकार काल क्रमानुसार कोर्फ केसिल एक उजाड़ क्षेत्र था, ओल्ड सारम केवल एक घास का टीला तथा गैटन एक पार्क का भाग था। इसके अतिरिक्त डनविच का क्षेत्र भी दीर्घकाल तक समुद्र के जल से आच्छादित रह चुका था। तथापि इन समस्त स्थानों में कोई जनसंख्या न होते हुए भी, इनके द्वारा कामन सभा में दो सदस्य भेजे जाते थे। इसका कारण यह था, कि जब पहले इन क्षेत्रों में जनसंख्या विद्यमान थी, तो प्राय; शताब्दियों पूर्व इस प्रकार का निश्चय किया गया था और इंगलैण्ड की संसद परिवर्तनों का कोई विचार न करती थी। इस रूप में धराशायी होने वाली दीवाल का मालिक, हरी घास के टीले का स्वामी अथवा सागरी जल से ढके हुए किसी विशिष्ट मैदान का संरक्षक भी संसद की सदस्यता के लिये अपना प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकारी था।

नामिनेशन बोरॉ

निरर्थक अथवा महत्त्व शून्य बोरॉ के सदस्यों का नगर सभाओं अथवा निगमों (Corporation) के अध्यक्ष आदि के द्वारा चुनाव होता था, अन्यथा मतदाता स्वयं प्रत्यक्ष मतदान कर लेते थे, किन्तु इनकी संख्या प्रायः इतनी कम होती थी कि बहुधा ये कम से कम १२ अथवा अधिक से अधिक ५० ही होते थे और साथ ही ये इतने निर्धन होते थे कि इनके संरक्षक इन्हें सुविधापूर्वक रिश्वतें देकर अथवा किसी अन्य विधि से प्रभावित करके इनसे अपनी स्वेच्छानुकूल प्रतिनिधि मनोनीत करवा लेते थे।

महत्त्व शून्य निरर्थक बोरॉ

इस प्रकार के स्थानों के निर्वाचन एवं मतदान सम्बन्धी कार्य प्रायः नाम मात्र को ही होते थे। कहा जाता है कि सन् १७९३ ई० में १२८ सामन्तों के अनुचित प्रभावों के फलस्वरूप २४५ सदस्यों को मनोनीत एवं निर्वाचन कर दिया गया। इस प्रकार ये सामन्त स्वयं तो लार्डसभा में बैठे रहते थे किन्तु इसके द्वारा मनोनीत सदस्य कामन सभा में उपस्थित रहते थे। एक सामन्त ने जिसका नाम मि० लेन्स डेल था, इस प्रकार के नौ प्रतिनिधियों को संसद की सदस्यता करने के लिये मनोनीत एवं निर्वाचित करवाया था और इस कारण वह इनका नेता

---

1. यूनीवर्सिटी (विश्वविद्यालयीय) निर्वाचन केन्द्रों द्वारा संसद में ५ सदस्य भेजे जाते थे।

समझा जाता था। दूसरे अन्य सामन्तों में से भी किसी ने छः, तो किसी ने पाँच और किसी ने चार प्रतिनिधियों को संसद की सदस्यता करने का अवसर प्रदान किया। कभी-कभी तो कुछ सामन्त इन महत्त्वशून्य बोरों के प्रतिनिधियों को मनोनीत करने का अपना अधिकार विक्रय भी कर लेते थे। यह सबसे अधिक मूल्य देने वाले को प्राप्त हो जाता था। स्वतंत्र रूप में संसद की सदस्यता प्राप्त करने वाले कुछ सभ्रांत एवं लाभदायक सदस्यों ने अपने पदों का क्रय ही किया था, किन्तु ये इस विधि को अत्यन्त हीन समझते थे। इस रूप में महत्त्वशून्य बोरों के कुछ इने-गिने लोगों ने अपने प्रभावों से कामन सभा में पर्याप्त संख्या में प्रतिनिधियों को निर्वाचित करवा दिया था, जबकि वे स्वयं लार्ड सभा के सदस्य बने रहते थे।

प्रतिनिधित्वहीन नगर

कुछ ऐसे बोरों भी जिनमें व्यापक अथवा पूर्णतया प्रजातंत्रीय मतदान की व्यवस्था थी। यहाँ धनिकों ने घूस (bribery) का प्रचलन कर रखा था। यहाँ घूस का प्रचलन इसलिये अत्यधिक रूप में था कि यहाँ १५ दिनों तक मतदान होता रहता था। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड में मैनचेस्टर, बर्मिघम तथा शेफील्ड जैसे कुछ विशाल नगर भी थे; जिन्हें कामन सभा में कोई प्रतिनिधित्व न प्राप्त था यद्यपि इनमें से प्रत्येक की जनसंख्या ७५ सहस्र अथवा १०० सहस्र अथवा इससे भी अधिक थी। इसी कारण छोटे पिट ने एकबार ये शब्द कहेथे कि—

"यह सदन ग्रेट ब्रिटेन के जन साधारण का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, वरन् यह महत्त्वहीन बोरों का ही प्रतिनिधित्व करता है। इसके अतिरिक्त यह विनष्ट एवं उजाड़ नगरों, उच्च परिवारों, धनवान व्यक्तियों और विदेशी शासकों का भी प्रतिनिधित्व करता है।"

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इंगलैण्ड की तत्कालीन सरकार प्रतिनिधित्वपूर्ण न होकर कुलीन तंत्रात्मक ही थी।

इंगलैण्ड का चर्च

ब्रिटेन में राज्य से ही मिलती-जुलती तथा राज्य की ही भाँति अनेक विशेपाधिकारों से युक्त एक दूसरी संस्था भी थी। जिसे "इंगलैण्ड के चर्च" की संज्ञा दी गयी थी। यद्यपि इंगलैण्ड में धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। और लोग स्वेच्छानुकूल विधि से पूजा पाठ कर सकते थे तथापि इंगलैण्ड के राजकीय ऐंग्लिकन चर्च की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी और इसे राज्य का अधिकाधिक समर्थन प्राप्त था। यहाँ केवल इसी चर्च के सदस्यों को ही विशेपाधिकार युक्त राजनैतिक शक्ति प्राप्त थी। संसद की सदस्यता कोई कैथोलिक व्यक्ति न कर सकता था और न ही वह राज्य अथवा नगरपालिका में किसी लोक-सेवा-पद पर नियुक्ति का अधिकारी था। सैद्धान्तिक रूप में ऐंग्लिकन चर्च से मतभेद रखने वाले दूसरे प्रोटेस्टेंट भी इसी प्रकार-सरकारी नौकरी पाने के अधिकारी न थे कि एक नियम—इण्डेम्निटी ऐक्ट द्वारा राज्य ने उन्हें इस अधिकार द्वारा लाभान्वित होने का अवसर प्रदान कर दिया था। इण्डेम्निटी ऐक्ट संसद द्वारा वार्षिक रूप में पारित होता था और इसमें गत वर्षों में इस प्रकार अनियमित रूप में सरकारी स्थानों पर कार्य करने वाले प्रोटेस्टेण्टों को क्षमा दान दे दिया जाता था। इन्हें डिसेन्टर्स का

ऐंग्लिकन चर्च से मत भेद रखने वाले 'डिसेन्टर्स'

नाम दिया गया था और इनकी स्थिति भारस्वरूप तथा अपमानजनक थी। इसे इंगलैण्ड के चर्च की सहायता में कर देने पड़ते थे, यद्यपि वे इस चर्च में सम्मिलित न थे। उन्हें इंगलैण्ड के चर्च अधिकारियों के पास अपना पूजा-स्थान पञ्जीकृत कराना पड़ता था। इसी चर्च के पादरी द्वारा यदि ये यहूदी अथवा क्वेकर[1] न हों तो, इन्हें अपना विवाह संस्कार सम्पन्न करना होता था। इसी प्रकार इन्हें अन्तर्जातीय विवाह कराने का भी अधिकार न था। कोई भी रोमन कैथोलिक अथवा डिसेन्टर न तो कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा-दीक्षा के लिए जा सकता था और न ही वह आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त कर सकता था। उस विश्वविद्यालय में उसकी धार्मिक विषयों में एक परीक्षा ली जाती थी, जिसको उत्तीर्ण करना एक ऐंग्लिकन को छोड़कर किसी रोमन कैथोलिक अथवा डिसेन्टर के लिए अत्यन्त कठिन था। इस चर्च (ऐंग्लिकन) की प्रधानता का परिणाम यह हुआ कि जो लोग अपने पुत्रों को आक्सफोर्ड अथवा कैम्ब्रिज में शिक्षित करवाना चाहते थे, अथवा जो अपने सामाजिक उत्थान के लिए राजनैतिक क्षेत्र में आने के इच्छुक थे अथवा जिन्हें किसी प्रकार का स्वार्थ था, इनमें सम्मिलित हो जाते थे। एक डिसेन्टर होना भी अपमान-जनक समझा जाता था।

इस प्रकार इंगलैण्ड की समस्त बड़ी-बड़ी संस्थाओं पर धनिकों अथवा उनके हितों का नियन्त्रण विद्यमान था। इस समय इंगलैण्ड में उच्च वर्ग के समान ही अपने विशेष हित रखने वाला धनवान उद्योगपतियों का भी इसी प्रकार का एक वर्ग उत्पन्न हो रहा था, जिसके पक्ष में अन्य शक्तिशाली एवं भूमिपति कुलीन सामन्तों की भाँति इंगलैण्ड में नियमों का निर्माण होता था। इसके विपरीत

इंगलैण्ड में सामान्य जनता के हितों की उपेक्षा

जनता के एक विशाल भाग के हितों की ओर नाम मात्र का ही ध्यान दिया जाता था। सामान्य जनता की शिक्षा की तो अत्यन्त ही उपेक्षा थी। इंगलैण्ड के प्रायः तीन चौथाई बच्चों को किसी प्रकार की भी शिक्षा अनुपलब्ध थी। श्रमिक वर्ग भी अपनी उन दशाओं में स्वयं सुधार करने से वर्जित था, जिसका कि राज्य स्वप्न भी न देख पाता था। उनके लिए अन्न-सामग्री का मूल्य भी मँहगा रखा जाता था, क्योंकि खाद्य-सामग्री की सारी व्यापार-व्यवस्था भूमिपतियों के लाभ के लिए ही होती थी। इस प्रकार इंगलैण्ड की महानता, शक्ति एवं समृद्धि इस दूसरे पक्ष अर्थात् सामान्य जनहित के विचार से अत्यधिक निराशाजनक प्रतीत होती थी। इंगलैण्ड में क्रान्तिकारी परिवर्तनों और आधुनिक उदारवाद की आवश्यकतानुकूल अनेकानेक सुधारों की आवश्यकता थी, चाहे वे यहाँ की राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक किसी भी प्रकार की संस्थाओं के क्षेत्रों से सम्बद्ध हों।

सुधारों की आवश्यकता पर जो राज्यक्रान्ति और फ्रांस के विरुद्ध दीर्घ-कालीन संघर्ष के फलस्वरूप अत्यन्त गौण थी, वाटरलू के युद्ध में नैपोलियन की पराजय के बाद से अधिकाधिक बल देना प्रारम्भ हुआ। सुधारों

वाटरलू के निर्णायक युद्ध के बाद इंगलैण्ड में व्यापक अशान्ति

की माँग को इंगलैंड की सामान्य जनता की व्यापक एवं वेदनाजन्य विपन्नता से विशेष रूप में बल मिला। लोगों की आशाओं के सर्वथा विपरीत इस शान्ति काल ने वर्ग के

---

1. A member of the Religion "*Society of Friends*"

विरुद्ध अत्यधिक घृणा और कटुता पैदा करने के अतिरिक्त देश में सुख और समृद्धि का सृजन न किया। फ्रांस के साथ संधि हो जाने तथा युद्धों के स्थगित होने के उपरान्त यूरोप के अन्यान्य देशों में औद्योगिक उत्पादन किया जाने लगा फलतः अंग्रेजी वस्तुओं की माँग अपेक्षाकृत अत्यधिक गिर जाने के फलस्वरूप अंग्रेज उद्योगपतियों ने अपने सहस्रों श्रमिकों की छंटनी कर दी। इस समय जबकि श्रमिकों की संख्या उनकी माँग (Demand) की अपेक्षा अत्यधिक बढ़ी-चढ़ी थी किन्तु युद्ध विराम के कारण ब्रिटिश स्थल एवं जल सेनाओं में भी छंटनी कर दी गयी। जिससे श्रम-बाजार में श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या में दो लाख बेकार सैनिक और भी बढ़ गये। इससे भी अधिक चिन्ताजनक बात यह थी कि आगामी कुछ वर्षों तक इंगलैंड में उपज भी खराब होती रही इसके फलस्वरूप तथा १८१५ के अन्न कानून के कारण खाद्य-सामग्री का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया। इसके अतिरिक्त वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था, कारखाने, घरेलू उद्योगों का कष्टदायक अंत करना थे, जिससे कुछ समय के लिए असंख्य श्रमिक अपने जीविकोपार्जन के साधनों से या तो वंचित हो गये अथवा उन्होंने अपनी कठोरतम अमानुषिक परिस्थितियों में कोई कठोर व्यवसाय ही पाया। इससे यह स्पष्ट है कि इस समय इंगलैंड की अधिकांश जनता में व्यापक निराशा एवं असंतोष का वातावरण छाया हुआ था। धनिक अल्पसंख्यकों की पोषक होने के कारण संसद ने भी इनकी सहायता करना स्वीकार न किया, वस्तुतः इसने तो उन्हें स्वयं अपने आप अपनी सहायता करने के प्रयासों से भी प्रतिबंधित कर दिया क्योंकि यह एक श्रमिक के लिये अनुशासनहीनता थी। यदि वे ऐसा करते भी थे तो उन्हें बन्दी बना लिया जाता था। इंगलैंड के श्रमिक संगठित भी न थे।

जीविकोपार्जन के साधनों का प्रभाव

सुधारों की माँग सर्वप्रथम निर्धन एवं निराश जनता की ओर से की गयी जिसे एक कृषक-श्रमिक के पुत्र के रूप में विलियम कॉबेट नामक असाधारण प्रतिभाशाली नेता भी उपलब्ध हो गया। कुछ समय तक कॉबेट ने एक उदारवादी समाचार पत्रिका 'दि वीकली पॉलिटिकल रजिस्टर' का प्रकाशन भी करवाया था जिसमें उसने सरकार की नीति की निन्दा की थी। १८१६ में उसने अपनी पत्रिका का मूल्य एक शिलिंग से घटाकर केवल दो पैसे ही कर दिया और श्रमिक वर्ग को सीधे प्रभावित करने में सफल हुआ। इस प्रकार वह श्रमिकों का पथप्रदर्शक एवं एक सच्चा नेता बन गया। उसका प्रभाव अविलम्ब रूप में पड़ा। कारण यह था कि इंगलैंड के निम्न वर्ग ने भी उसकी पत्रिका के रूप में एक ऐसा लाभदायक साधन पाया था जो सस्ता होने के साथ-साथ प्रकाण्ड विद्वत्तापूर्वक लिखा जाता था। कॉबेट की साहित्यिक क्षमता इतनी अधिक थी कि लन्दन के प्रसिद्ध समाचार पत्र—"स्टैण्डर्ड" (Standard) ने घोषित किया कि स्पष्ट वक्तृता, प्रभावशाली और दृष्टान्तात्मक विवरण के दृष्टिकोण से कॉबेट की समता करने वाला स्विफ्ट (Swift) के समय से भी अभी तक अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ। कॉबेट ऐसा पहला महान् एवं जनप्रिय सम्पादक था जिसने कि लगभग ३० वर्षों तक अपनी साप्ताहिक पत्रिका में सामान्यतम संशोधन के साथ श्रमिक वर्गों की इच्छाओं और भावनाओं का प्रकाशन किया। कॉबेट एक महान् प्रजातांत्रिक नेता, एक शक्तिशाली एवं लोकप्रिय सम्पादक, संसदीय सुधारों का प्रमुख समर्थक एवं इंगलैण्ड के तत्कालीन शासनतन्त्र का भीषण विष-वमन करने वाला आलोचक था।

विलियम कॉबेट

कॉबेट ने श्रमिकों को यह बात मानने पर राजी कर लिया कि वे अपनी सामाजिक एवं आर्थिक माँगें प्रस्तुत करने से पूर्व सर्वप्रथम अपने मूल राजनीतिक अधिकार प्राप्त कर लें क्योंकि तद्‌विषयक संसदीय सुधारों की पृष्ठभूमि अवश्य होनी चाहिए। कॉबेट का विचार था कि पहले जनता को राजनीतिक शक्ति मिले, फिर वह संसद को कुछ इनेगिने सम्पन्न लोगों की हितपूर्ति के माध्यम से एक सच्ची राष्ट्रीय महासभा में रूपांतरित करने में सफलता पायें। तब कहीं वे उन दोषों का अन्त कर सकेंगे, जिनसे कि वे सभी लोग त्रस्त थे और तभी वे अपने आवश्यक कानूनों को प्रचलित कर सकते थे। इस प्रकार उसने सार्वजनिक मताधिकार की माँग की। कालांतर में अन्य नेता भी प्रकट हुए और इस युग की विशेषता यह थी कि सम्पत्तिहीन श्रमिक वर्गों के विचारों में पर्याप्त उत्तेजना जाग्रत हुई।

संसदीय सुधार

दलित वर्ग की माँगों के विरुद्ध इंगलैंड के रूढ़िवादी टोरी दल ने अपने हृदय को पत्थर की भाँति कठोर बना लिया था प्रत्येक देशव्यापी आन्दोलन से फ्रांस की राज्यक्रान्ति की ही गंध पाकर इन्होंने निम्न वर्ग की माँगों का न तो समाधान ही किया और न ही उनका गम्भीर अध्ययन प्रत्युत इसके विपरीत टोरी सरकार ने अव्यवस्था और अशान्ति की भावनाओं को बल प्रयोग द्वारा कुचलने का बड़े-से-बड़ा साहस करने का निश्चय कर लिया। फलत: जनका का इतना अधिक विरोध बढ़ गया कि सरकार को अपने हेबियस कार्पस ऐक्ट को स्थगित कर देना पड़ा, जो केवल अत्यन्त भयंकर परिस्थितियों में ही लागू किया जा सकता है। अब सरकार ने गेग लाज (Gag Laws) पारित किये जो बोलचाल की स्वतंत्रता और सार्वजनिक सभायें करने के अधिकारों पर भारी प्रतिबन्ध थे और जिन्हें मान्यता देकर इंगलैंड की सरकार दीर्घकाल से गर्व करती आयी थी। यह कठोर शासन का युग था जिसमें अत्याचारपूर्ण नियम पारित करवाये गये, जिसने ब्रिटिश लोगों की परम्परागत स्वतंत्रता का भी अपहरण कर लिया और जो लगभग ५ वर्ष तक निरंतर लागू रहा।

हेबियस कार्पस ऐक्ट का स्थगित होना

जार्ज तृतीय की मृत्यु उसकी ८१ वर्ष की आयु में हुई। वह अनेक वर्षों से अन्धा था और इसी कारण अब उसके पुत्र को जार्ज चतुर्थ के रूप में सिंहासनासीन किया गया जिसने १८२० से लेकर १८३० ई० तक राज्य का संचालन किया।

जार्ज तृतीय की मृत्यु

१८२० ई० के बाद इंगलैण्ड के राजनीतिक जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। वहाँ की संसद में टोरी दल अब भी बहुमत में था किन्तु इसकी मंत्रिपरिषद् के अनेक प्रतिक्रियावादी सदस्य या तो मर चुके थे या त्याग-पत्र देकर उससे पृथक हो चुके थे। इनके स्थान पर अब उसमें कुछ नवयुवक तथा अधिक उदारवादी विचारों के लोग जैसे कैनिंग पील और हस्किसन आदि व्यक्ति सम्मिलित हो गये थे जो टोरी दल को आंशिक करने की स्थिति में ला सकते थे। कैनिंग ने इंगलैंड के विदेश मंत्री के रूप में वहाँ की वैदेशिक नीत को यूरोप की "पवित्र संधि" से पृथक कर लिया। उसने साहसपूर्वक इस नियम का प्रतिपादन किया। हर राष्ट्र अपनी सरकार के

सुधारों के नव-युग का उदय

प्रकार को निश्चित करने में स्वतन्त्र होता है किन्तु यह सिद्धान्त मर्टनिख (Metternich) के विचारों के प्रतिकूल था। हास्किसन के सुधार आर्थिक थे जितना लक्ष्य इंगलैण्ड की प्रचलित व्यापार नीति के कुछ प्रतिबन्धों का अन्त करना था। इस हेतु वह अनेक आयात वस्तुओं पर आयात कर समाप्त करने तथा व्यापार नियन्त्रण की प्रणाली को सरल बनाने का इच्छुक था।

पवित्र मैत्री संधि की उपेक्षा

इसी मध्य सर रॉबर्ट पील ने पैनल कोड अर्थात् दण्ड विधान में आवश्यक सुधार करने का कार्य आरम्भ किया। यह विधान इंगलैण्ड के लिये अपमानजनक था और इसे फ्रान्स तथा कुछ अन्य देशों से भी पीछे ले जाना चाहता था। इस विधान अथवा नियम के अनुसार लगभग दो सौ अपराधों में केवल मृत्यु दण्ड की व्यवस्था रखता था। जेब काटना, किसी स्थान से ५ शिलिंग अथवा उससे अधिक की चोरी करना, किसी निवास गृह से ४० शिलिंग अथवा उससे अधिक धन चुराना, मछली की चोरी, वेस्ट मिन्स्टर के पुल को आघात पहुँचाना और धमकी से भरे हुए पत्र भेजने आदि अनेक अपराधों के लिये केवल मृत्यु-दण्ड का ही विधान था। १८२३ ई० में ऐसे प्रायः १०० अपराधों के लिये मृत्यु-दण्ड अवैध घोषित कर दिया गया।

पेनल कोट में आवश्यक संशोधन

इन वर्षों का एक दूसरा सुधार धार्मिक स्वतन्त्रता की सुविधाएँ देने से सम्बन्धित था। वे अयोग्यतायें जो प्रोटेस्टेण्ट डिसेन्टरों पर लगाई गयी थीं १८२८ ई० में समाप्त कर दी गईं। सरकार ने इस सम्बन्ध में यह आदेश दिया कि चर्च अधिकारी, इंगलैण्ड के चर्च के नियमों का ही व्यवहार करें तथा धर्म परिवर्तन के विरुद्ध स्पष्ट घोषणा करें। आगामी वर्ष संसद ने पर्याप्तों बहसों और उत्तेजनापूर्ण वाद-विवादों के बाद "कैथोलिक इमेंसिपेशन ऐक्ट" पारित करके कैथोलिकों की शिकायतें दूर कर दीं। इस ऐक्ट द्वारा कैथोलिकों को यह सुविधा प्राप्त हुई कि वे कुछ प्रतिबन्धों के साथ संसद के किसी भी सदन में बैठ सकते तथा नगरपालिका अथवा राष्ट्र सम्बन्धी किसी भी सेवा पद पर कार्य कर सकते हैं। इस कानून के अन्तर्गत कैथोलिक तथा प्रोटेस्टैण्टों दोनों की राजनीतिक समानता को राज्य द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गयी।

धार्मिक अयोग्यताओं का उन्मूलन

कैथोलिकों की मुक्ति

उपर्युक्त समस्त सुधार टोरी दल के माध्यम से ही संसद द्वारा स्वीकार किये गये थे। इनके अतिरिक्त एक अन्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक सुधार भी था और जिसके विषय में यह स्पष्ट है कि टोरी दल कभी भी सहमत न हो सकता था। यह सुधार स्वयं संसद में ही सुधार करने से सम्बन्ध रखता था। संसद की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ पहले ही वर्णन की जा चुकी हैं। टोरियों का कथन था कि गत ५० वर्षों अथवा इससे भी अधिक समय तक संसद में वैसे ही ह्विग दल के अनेक नेताओं द्वारा संसद-सम्बन्धी विस्तृत सुधार किये जा चुके हैं किन्तु अधिक समय से वे अल्पसंख्यक होने के फलस्वरूप प्रभावशून्य होने के कारण अब वे सब प्रकार का कोई कार्य न कर सकते थे। कुछ परिस्थितियों के

संसद में सुधार करने के विषय में टोरियों का विरोध

एकत्र हो जाने के फलस्वरूप दीर्घकाल तक प्रभुत्व सम्पन्न रहने वाले दल का पतन हो गया और इससे अब उपर्युक्त सुधार करने का समय भी सुलभ हो गया है। २६ जून, १९३० के दिन इंगलैण्ड का सम्राट जार्ज चतुर्थ परलोक सिधारा और उसके बाद उसका भाई विलियम चतुर्थ (१८३०-१८३७ई०) उसका उत्तराधिकारी बना। सम्राट् की मृत्यु के कारण संसद के नये चुनाव की आवश्यकता पड़ी। इस निर्वाचन का परिणाम यह हुआ कि टोरी दल कामन सभा की ५० सीटें हार गया। शीघ्र ही टोरी दल के नेता वेलिंगटन के ड्यूक को अपना पद-त्याग करना पड़ा और अब ह्विगदल सत्तारूढ़ हुआ। इस प्रकार एक साधारणतम परिवर्तन के फलस्वरूप टोरी दल का शासन भावी छियालिस वर्षों के लिये समाप्त हो गया।

प्रथम सुधार अधिनियम

मि० अर्ल ग्रे जो गत ४० वर्षों से संसदीय सुधारों कीं माँग कर रहा था, अब इंगलैण्ड का प्रधानमन्त्री बना। प्रधानमंत्री के परामर्शानुसार सुविधापूर्वक एक मंत्रिमण्डल का निर्माण हो गया, जिसमें अनेक अनुभवी राजनीतिज्ञ थे जैसे कि, डरहम, सैल ब्रोगम, पामर्स्टन, स्टेन्ले और मेलबोर्न आदि। प्रथम मार्च १८३१ को ही कामन सभा में लार्ड जॉन रसेलने एक सुधार बिल प्रस्तावित किया। इस प्रस्ताव का उद्देश्य यह था कि संसद की सीटों का अब और अधिक समानता की योजना के आधार पर पुनर्विभाजन किया जाये और इसके साथ ही साथ बोरों में वर्तमान अनेक प्रकार की मतदान प्रणालियों के स्थान पर एकसा मतदान पद्धति की स्थापना की जाये। संसदीय पदों का पुनर्विभाजन दो सिद्धान्तों के आधार पर होना था। प्रथम यह कि छोटे और उजाड़ बोरों से प्रतिनिधित्व के अधिकार को वापस ले लिया जाये तथा द्वितीय यह कि इस अधिकार को उन बड़े एवं सम्पन्न नगरों को प्रदान किया जाये जो कि इससे वंचित हैं।

इस अधिनियम ने अपने व्यापक स्वरूप से कामन सभा को चकित कर दिया तथा सुधारवादी सदस्यों को प्रोत्साहन दिया। इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन की किसी भी दल को आशा न थी। बिल की प्रस्तावना ने संसद में महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद उत्पन्न किया। यह वाद-विवाद सन् १८३१ की प्रथम मार्च ५ जून १८३२ ई० तक दैनिक रूप में हैं १५ मिनट अथवा इससे कुछ अधिक समय के मध्यान्तरों के साथ चलता रहा।

लार्ड जॉन रसेल का वक्तव्य

लार्ड जॉन रसेल ने बिल को प्रस्तावित करते हुए कहा कि ब्रिटिश संविधान का सिद्धान्त है कि बिना उचित प्रतिनिधित्व के कोई कर न लगाये जाने चाहिये और उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट अपनी जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करती थी किन्तु अब ऐसा कुछ नहीं है। उन्होंने इस प्रकार अपना वक्तव्य दिया कि कोई अनजान व्यक्ति भी जिसे यह बताया गया कि यह देश सम्पत्ति, उद्योग, सभ्यता और प्रबुद्धता में किसी भी अन्य देश से आगे है, तथा यह अपनी स्वतन्त्रता के गर्व से अपना मस्तक ऊँचा किये हुए है और इसके अतिरिरिक्त हर सातवें वर्ष यह अपनी समस्त जनता में से अपने ऐसे प्रतिनिधि निर्वाचित करता है जो इसकी उस स्वतन्त्रता के संरक्षक का कार्य करते हैं, तो वह यह देखने को अत्यन्त उत्सुक होगा कि अन्ततः इसका प्रतिनिधित्व कैसे निर्मित होता है और यहाँ

के लोग अपने उन प्रतिनिधियों को कैसे निर्वाचित करते हैं। जिनकी सच्चाई और संरक्षकत्व पर विश्वास रख कर वे उन्हें अपनी स्वतन्त्र एवं उदार संस्थाओं का दायित्व सौंपते हैं। अन्त में यह व्यक्ति उस दशा में अत्यन्त आश्चर्य चकित होगा यदि उसे एक उजाड़ टीले पर ले जाकर यह बतलाया जाये कि यह टीला संसद को सार्वजनिक चुनावों के अवसर पर दो प्रतिनिधि भेजता है, अथवा यदि उसे उस पत्थर की दीवाल तक ले जाकर यह बताया जाये कि इसकी तीनों कानिसें दो-प्रतिनिधि संसदीय सदस्यों के रूप में निर्वाचित करती हैं, अथवा यदि उसे एक ऐसे पार्क में ले जाकर जिसमें एक मकान भी दृष्टिगोचर नहीं होता, यह बताया जाये कि यह पार्क भी संसद के लिये अपने दो प्रतिनिधि सदस्य निर्वाचित करता है। उस अज्ञात नाम व्यक्ति को यह सब बतलाने और उसके आश्चर्य कर लेने के बाद उसे भी अधिक आश्चर्य तब होगा जब कि वह देखेगा कि इंगलैण्ड में ऐसे बड़े-बड़े एवं सम्पन्न नगर भी हैं जो साहस, उद्योग, बुद्धि कौशल और प्रत्येक प्रकार की औद्योगिक वस्तुओं के भण्डार गृहों से भरपूर होते हुए भी संसद में अपने कोई भी प्रतिनिधि नहीं भेजते।”

इस प्रस्ताव के पक्ष एवं विपक्ष में संसदीय सदस्यों के तर्क

इस वक्तव्य के बाद उपर्युक्त बिल पर तीव्र गरमागरम बहस हुई। इस प्रस्ताव के विरोधियों ने कहा कि किसी नगर की जनसंख्या का उसके प्रतिनिधि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है और न ही संविधान के अन्तर्गत प्रतिनिधित्व एवं राजस्व करों का कोई सम्बन्ध है। उन्होंने यह भी कहा कि जैसा कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के इतिहास से विदित है इन्हीं नामिनेशन बोरों तथा महत्त्वहीन बोरों के प्रतिनिधियों के रूप में संसद में उसके कुछ महत्त्वपूर्ण सदस्यों जैसे कि छोटे पिट, बर्क, कैनिंग तथा फॉक्स आदि ने अपना प्रवेश पाया है किन्तु अब उन्हीं बारों की इतनी तीव्र आलोचना की है। इसके उत्तर में लार्ड मैकाले (Lord Macaulay) ने कहा कि “हमें किसी सरकार के निर्माण का यथार्थ मूल्यांकन उसकी घटनात्मक परिस्थितियों के आधार पर न करके उसकी सामान्य प्रवृत्ति के आधार पर करना चाहिये।” यदि, “यह नियम हो जाये कि इंगलैण्ड भर में सबसे अधिक लम्बे १०० आदमियों को यहाँ की संसद की सदस्यता प्राप्त होगी तो उनमें कुछ योग्य पुरुष भी इस नियम के फलस्वरूप संसद में सम्भवतः अवश्य सम्मिलित हो जायेंगे।”

मंत्रिमण्डल की पराजय तथा संसद का भंग होना

इस प्रकार वाद-विवाद चलता रहा और उसमें सदस्यों की अभूतपूर्व संख्या ने भाग लिया किन्तु यह प्रस्ताव अल्पजीवी सिद्ध हुआ। इस प्रस्ताव का निरन्तर विरोध होता रहा और १९ अप्रैल को तत्सम्बन्धी संशोधन के प्रश्न पर मंत्रिमण्डल की पराजय हो जाने के फलस्वरूप उसने पद त्याग करके जनमत को प्रभावित करने का निश्चय किया। अतः अब संसद भंग हो गई तथा नये निर्वाचन की आज्ञा प्रकाशित की गई। यह निर्वाचन पर्याप्त उत्तेजना के वातावरण में सन् १८३१ ई० के ग्रीष्मकाल में सम्पन्न हुआ। देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यही आवाज गूँजती थी कि—“सर्वप्रथम संसदीय सुधार-बिल को सम्पूर्ण रूप से पारित किया जाये।” मतदाताओं ने कुछ हिंसात्मक कार्य तथा एक दूसरे को भड़काने का प्रयत्न तो किया ही किन्तु इसके साथ ही साथ दोनों पक्षों में घूस भी काफी

चली। अभ्यर्थियों से केवल यही एक प्रश्न किया जाता कि उक्त बिल का समर्थन करेंगे अथवा उसका विरोध। निर्वाचन में सुधारवादियों की अत्यधिक मतों से विजय हुयी।

दूसरा सुधार बिल

२४ जून १८३१ को लार्ड जानमेल ने संसद में दूसरे सुधार बिल का प्रस्ताव रखा जो पहले सुधार बिल के ही अनुरूप था। विरोधी दल अपने विरोध पर डटा रहा और उसने इस प्रस्ताव का पग-पग पर विरोध किया। विरोधकर्ताओं ने बिलम्ब करने वाले तर्कों और असंख्य ऐसे व्याख्यानों द्वारा जिनमें कि वे एक ही बात को बार-बार दुहराते थे, मंत्रिमण्डल पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की। दो सप्ताह के अल्पकाल में इस प्रस्ताव के विषय में सर रोबर्ट पील ने ४८ वक्तव्य दिये, क्रोकर ने ५७ तथा वेदरेल ने ५८।

लार्ड सभा द्वारा बिल का विरोध

तथापि २२ सितम्बर के दिन यह प्रस्ताव १०६ के बहुमत से पारित हुआ। तदुपरान्त यह लार्ड सभा को प्रेषित हुआ। किन्तु वहाँ इसके तीव्र विरोध के फलस्वरूप यह शीघ्र ही विफल हो गया। (अक्टूबर १८३१ ई०)।

नामिनेशन बोरों तथा महत्त्वशून्य बोरों की निर्वाचन पद्धति से सबसे अधिक लाभ उठाने वाले ये लार्ड अथवा सामंतगण ही थे अतः वे इसकी सम्मति के प्रस्ताव पर अत्यन्त कुपित हुए और वे उस पद्धति द्वारा प्राप्त शक्ति को त्यागने के लिये तैयार न थे।

उच्च सदन द्वारा प्रस्ताव की अस्वीकृति ने सारे देश में महान् उत्तेजना व्याप्त कर दी और यह भी स्पष्ट था कि इंगलैंड के सामन्तों को अपने विशेषाधिकारों का अत्यधिक लोभ था। इसके फलस्वरूप लन्दन तथा कुछ अन्य नगरों में दंगों का सूत्रपात्र हुआ। ये घटनाएँ उक्त प्रस्ताव के जनमत द्वारा समर्थन की द्योतक थीं। समाचार-पत्रों में शोक प्रकट किया गया, चर्च के घण्टे बजाये गये। लार्डों के साथ हिंसात्मक व्यवहार करने की कही तो धमकियाँ ही दी गईं किन्तु कहीं-कहीं पर उनके साथ प्रत्यक्ष दुर्व्यवहार भी किया गया। अन्त में कुछ स्थानों में शांति स्थापन के लिये सेना भी बुलानी पड़ी। ऐसा अनुमान होता था कि ईंगलैंड में अब गृह-युद्ध होने वाला है।

अब पालियामेण्ट का अधिवेशन स्थगित हो गया। ६ दिसम्बर से इसकी बैठक पुनः आरम्भ की गयी और १२ दिसम्बर को लार्ड जान रसेल ने सुधार बिल को तीसरी बार पेश किया। विरोधी दल ने विलम्बात्मक तर्क पुनः उपस्थित कर दिये। किन्तु २३ मार्च १८३२ को यह बिल ११६ के बहुमत से अन्तिम रूप में पारित हो गया।

तीसरा सुधार बिल

यह बिल लार्ड सभा को पुनः प्रेषित हुआ और इसके सामन्तों ने इसे पूर्ववत् अस्वीकार करने का निश्चय प्रदर्शित किया। इस समय भी वही निराशाजनक स्थिति दिखाई पड़ती थी। कामन सभा ने इसे दो बार बहुमत एवं जनमत की माँगों पर पारित किया था। अब क्या वे पैत्रिक विशेषाधिकारों से युक्त उच्च सदन द्वारा अपने मार्ग से विमुख किये जा सकते थे। विद्रोहों, विशाल प्रदर्शनों, और सरकार की कटु

निन्दा का वातावरण उत्पन्न करके जनमत ने एक बार पुनः अपनी प्रवृत्ति प्रदर्शित की। इस प्रस्ताव को मान्यता दिलाने का ही मार्ग था। वह मार्ग यह था कि राजा लार्ड सभा में कुछ नये सामन्त और सम्मिलित कर लेता कि उच्च सदन में इस प्रस्ताव का समर्थन करने वाले लार्डों की संख्या अधिक हो जाती किन्तु विलियम चतुर्थ इस बात पर राजी न हुआ। फलतः अर्ल ग्रे के मन्त्रिमण्डल ने त्याग पत्र दे दिया। अब सम्राट् ने वेलिंग्टन के ड्यूक को मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने का निर्देश दिया किन्तु ड्यूक के प्रयास सफल न हो सके। अतः अब सम्राट् को मार्ग देना पड़ा और उसने ग्रे को पुनः सत्तारूढ़ करते हुए यह आदेश प्रकाशित किया कि—

"सम्राट अर्ल ग्रे और चान्सलर लार्ड बोगम को यह स्वीकृति प्रदान करता है कि लार्ड सभा में उतने सामन्तों की वृद्धि करने का परामर्श दें जितने कि सुधार बिल के पारित होने के लिये आवश्यक हैं।" ये सामान्त कभी न बढ़ाये गये और केवल-धमकी से ही काम चल गया जिससे कि ४ जून १८३२ को उच्च सदन के बिल विरोधी लगभग १०० सदस्यों ने अनुपस्थित होकर शेष सदस्यों को इसे स्वीकार करने का अवसर दिया और इस प्रकार यह बिल अब सारे देश का कानून बन गया।

सुधार बिल का पारित होना

बिल के पारित होत-होते उनमें कुछ परिवर्तन आ गये थे। जिस समय यह कानून बना, इसका स्वरूप यह था कि प्रत्येक २००० से कम जनसंख्या रखने वाला नामिनेशन बोरॉ अथवा महत्त्वहीन बोरॉ संसद में प्रतिनिधित्व करने के अधिकार से वंचित कर दिया जायेगा। ऐसे बोरॉ की कुल संख्या ५६ थी। इसके अतिरिक्त इस नियम के दूसरे ३२ बोरॉ के प्रतिनिधियों की संख्या में से, जो ४००० से कम जनसंख्या के थे, एक-एक प्रतिनिधि कम कर दिया जायेगा। इस प्रकार प्राप्त सीटें अब इस प्रकार पुनर्वितरित की जानी थी :— २२ बड़े-बड़े नगरों में से प्रत्येक से २ प्रतिनिधि लिये जाने थे, दूसरे २२ नगरों में से प्रत्येक से १ प्रतिनिधि लिया जाता था और बड़ी-बड़ी काउण्टियों में अधिक सदस्य रखने थे जिनकी कुल संख्या ६५ थी। समान निर्वाचक जिले बनाये जाने का प्रयास न करके निर्वाचन के भावी दोषों का उन्मूलन करने का प्रयास ही किया गया था। जनसंख्या की दृष्टि से निर्वाचन केन्द्र एक-दूसरे से अत्यन्त भिन्न थे।

संसदीय स्थानों का पुनर्वितरण

इस सुधार बिल ने मताधिकार को परिवर्तित एवं विस्तृत किया। पहले काउण्टियों का मताधिकार भूमि स्वामित्व पर ही निर्भर था। दूसरे शब्दों में यह केवल उन्हीं लोगों तक सीमित था जिनके पास ४० शिलिंग वार्षिक से अधिक अथवा कम से कम उतने ही मूल्य की भूमि थी। काउण्टियों का मताधिकार इस रूप में और भी विस्तृत किया गया कि कुछ विशिष्ट दशाओं में जो लोग अपनी भूमि रेहन रखते थे (leased) उन्हें भी अब यह अधिकार प्रदान कर दिया गया। तथापि काउन्टियों का मताधिकार अब भी भूस्वामित्व पर आधारित होकर भूमि की उपज पर निर्भर था।

बोरॉ में इससे भी अधिक बड़े परिवर्तन हुए। १० पौंड की आय वाले

समस्त गृह-स्वामियों को मतदान का अधिकार दिया गया, जिसका तात्पर्य यह था कि जो लोग १० पौण्ड अथवा उससे अधिक धन किसी मकान, दूकान अथवा अन्य भवन के किराये के रूप में प्राप्त करते अथवा अदा करते थे वे मतदान के अधिकारी माने गये। इस रूप में अब मताधिकार की सुविधा बोरों के अधिक धनवान मध्य वर्ग को उपलब्ध हो गयी। बोरों में समान मताधिकार व्यवस्था लागू की गई तथा काउण्टियों में विभिन्न प्रकार की मतदान प्रणाली प्रचलित हुई।

बोरों में मतदान व्यवस्था

१८३२ का सुधार-बिल लोकतन्त्रात्मक न था वरन् इससे कॉमन सभा को जनता का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था का स्तर अवश्य प्रदान किया। इससे धनी मध्यम वर्ग के मताधिकार को मान्यता प्रदान की। मतदाताओं और विशेष कर बोरों के मतदाताओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि कर दी गयी किन्तु इङ्गलैंड के श्रमिकों और निर्धन मध्यवर्ग के मताधिकार को कोई मान्यता न दी गयी; इङ्गलैंड की समस्त जनसंख्या तथा उसके मतदाताओं की संख्या में प्रायः १ और ३० का अनुपात था। यह प्रस्ताव अथवा नियम यद्यपि ह्विग दल द्वारा पूर्ण माना गया तथापि बहुसंख्यक जनता द्वारा जो अब भी मतदान की अधिकारी न थी यह अपूर्ण ही समझा जाता था। १८६७ ई० तक इस नियम में कोई संशोधन न हुए किन्तु इन तीनों वर्षों में मताधिकार के विस्तार की बराबर माँग की जाती रही। १८३१ और १८३२ में लोगों ने विशाल सभाएँ कीं, दँगे मचाये और अन्य हिंसात्मक कृत्य किये और तब कहीं वे इस सुधार बिल को सरकार द्वारा अन्तिम रूप में स्वीकार करा पाए। जब यह नियम बन गया तो उन्होंने अपनी आशाओं के विपरीत यह अनुभव किया कि इससे और इसके पारित होने में उनके प्रयत्नों से तो अन्य लोग ही लाभान्वित होते हैं न कि वे लोग स्वयं।

ह्विगों का यह सुधार-कार्य, जिसने कामन सभा में अभूतपूर्व परिवर्तन लाने में अपूर्व सफलता का परिचय दिया था, अबाध रूप में अनेक वर्षों तक चलता रहा। कालान्तर में इसी सुधरी हुई संसद ने अगले वर्षों में अनेक महत्त्वपूर्ण नियम पारित किये।

यह सुधार लोकतन्त्रात्मक न था

इन नियमों में सर्वप्रथम वह नियम था जिसने कि १८३३ ई० में दास-प्रथा का अन्त किया। ब्रिटिश न्यायालयों द्वारा पर्याप्त समय पूर्व यह स्वीकार किया जा चुका था कि ब्रिटेन में दास प्रथा का अस्तित्व अक्षुण्ण नहीं रक्खा जा सकता। क्योंकि कोई भी दास ज्यों ही इंगलैण्ड की भूमि का स्पर्श करता है, अविलम्ब स्वतन्त्र बन जाता है तथापि पश्चिमी द्वीप समूह, मारीशस तथा दक्षिणी अफ्रीका में यही दासता अब भी विद्यमान थी। इन उपनिवेशों में लगभग साढ़े सात लाख दास थे। इन्हें स्वतन्त्र करना अत्यन्त कठिन था क्योंकि उपनिवेशवासियों का कहना था कि यह कार्य उनके सम्पत्ति अधिकारों में हस्तक्षेप होगा और इसके फलस्वरूप उपनिवेशों की सारी समृद्धि ही नष्ट हो जायगी। इस प्रथा की नैतिक असमानता के प्रति लोगों की विरोधी भावनाएँ बढ़ रही थीं और इसके फलस्वरूप अन्त में "दासता-विरोधी" आन्दोलन को सफलता मिली जिसका नेतृत्व विल्बर फोर्स तथा जैकरी मेकाले

ह्विग शासन का काल

उपनिवेशों में दास-प्रथा

इतिहासकार के पिता ने किया था। अगस्त १८३३ में एक यह प्रस्ताव संसद में रक्खा गया कि अगामी वर्ष के प्रारम्भ तक दासता का अन्त कर दिया जाये और दासों के स्वामियों के लिये इस प्रकार होने वाली हानि की पूर्ति हेतु सौ लाख डालर की धनराशि मुआविजे के रूप में स्वीकार कर ली जाये। इस नियम से दासों के स्वामियों को यद्यपि असन्तोष ही रहा तथापि उन्होंने अपने समस्त दास मुक्त कर दिये। इनका कहना यह था कि उनको दी जाने वाली क्षति पूर्ति की धन राशि अपर्याप्त थी।

श्रमिक बच्चे

इसी मध्य इंगलैण्ड में यह विचारधारा प्रबल हुई कि इंगलैण्ड के कारखानों में अल्पवयस्कों अर्थात् बच्चों को कठोर कार्यों में नौकर रखने का अधिकार दोषपूर्ण था। वर्तमान कारखानों की व्यवस्था ब्रिटिश उद्योगों में बच्चों को श्रमिकों के रूप में नौकर रखने का ही दुष्परिणाम थी। यह पहले ही अनुभव किया जा चुका था कि मशीन द्वारा किये जाने वाले अधिकांश कार्य को बच्चे ही पूरा कर सकते हैं और चूँकि उनकी मजदूरी वयस्क श्रमिकों के पारिश्रमिक से अत्यन्त सस्ती होती थी अस्तु इंगलैण्ड के कारखानों में बच्चों की विशाल संख्या भर्ती कर ली गई जिससे अन्त में भीषण दोष उत्पन्न होने आरम्भ हो गये। वे निस्सन्देह देश के सबसे अधिक निर्धन लोगों के बच्चे थे। इनमें से बहुतों ने तो यह दुर्भाग्यजनक कार्य ५ अथवा ६ वर्ष की आयु अथवा अधिकतम ८ या ९ वर्ष की आयु से प्रारम्भ कर दिया था किन्तु जैसा कि विश्वास करना भी कठिन है वे दिन में प्रायः १२ और १४ घण्टे तक काम करने के लिये विवश किये जाते थे। उनको भोजन करने के लिये बीच में आधा घण्टे का समय दिया जाता था किन्तु अत्याचार के कृत्रिम प्रलोभनों द्वारा उनसे इसी समय में मशीन को साफ कराने का काम लिया जाता था। काम करते-करते सो जाने पर या तो ये बच्चे स्वयं ही मशीन से कट जाते थे अथवा निरीक्षकों की निर्दय मार खाते। अमानुषिक शासन के पास न तो इतना समय था और न ही इतनी क्षमता थी कि किसी प्रकार की शिक्षा अथवा मनोरंजन अथवा शारीरिक उन्नति की ओर ध्यान दिया जाता। बच्चों से काम कराने का कृत्रिम नैतिक वातावरण अत्यन्त ही घातक था। इसका दुष्परिणाम यह था कि शारीरिक, बौद्धिक अथवा नैतिक दृष्टि से दुर्बल लोग ही जीवन व्यतीत करते थे।

बच्चों को काम पर लगाने की व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने का प्रयास

इस घृणित प्रथा का राजनैतिक अर्थशास्त्रियों, उद्योगपतियों और सामान्य राजनीतिज्ञों द्वारा व्यक्ति-स्वातंत्र्य के नाम पर समर्थन किया गया। व्यक्ति स्वातंत्र्य की आड़ में ही आज तक प्रायः अनेक अपराध किये जाते रहे हैं। उत्पादनकर्त्ताओं की अपना उत्पादन कार्य संचालन करने में, बिना किसी वाह्य हस्तक्षेप के स्वतंत्रता तथा श्रमिकों को चाहे भी जिन दशाओं में उन्हें कार्य करना पड़ता। अपने श्रम को विक्रय करने की स्वतंत्रता के तर्कों ने उनके समर्थन को किसी प्रकार अक्षुण्ण रक्खा। तथापि, इंगलैण्ड की पार्लियामेंण्ट जो जमैका के नीग्रो दासों के साथ होने वाले दुर्व्यवहारों से घृणा और दासों के साथ सहानुभूति रख सकती थी अब भला इंगलैण्ड के बच्चों की दुर्दशा को किस प्रकार चुपचाप देख सकती थी? अस्तु राबर्ट ओवेन टामस सैंडलर फील्डेन तथा लार्ड ऐश्ले जैसे अंग्रेज मानववादी राजनीतिज्ञों के दीर्घ-

कालीन अथक प्रयासों के फलस्वरूप १८३३ ई० में फैक्ट्री ऐक्ट (Factory Act) पारित किया गया। नियम के अनुसार कातने और बुनने के कारखानों में ९ वर्ष से कम आयु के बच्चों की श्रमिकों के रूप में नियुक्ति करना अवैध घोषित किया गया। ९ से १३ वर्ष की आयु के अल्पवयस्कों लिये दैनिक काम करने के घण्टे अधिक से अधिक ८ निर्धारित किये गये तथा १३ से १८ वर्ष तक की आयु के अल्पवयस्कों के लिये यह समय १२ घण्टे प्रतिदिन निश्चित किया गया। सुधारों के क्षेत्र में यह एक अत्यन्त सामान्य प्रारम्भ था, किन्तु इंगलैंड की भावी नीति के महान् प्रगतिवादी सुधारों का यह एक मौलिक चिह्न था। इंगलैण्ड के समस्त समाज में श्रमिकों की दशा को सुधारने के लिये प्रस्तुत होने वाले नियमों में यह एक प्रारम्भिक नियम था। इस प्रकार के नियम यद्यपि संख्या में बहुत अधिक बन चुके हैं तथापि वर्तमान युग में १८३३ ई० के बाद से पारित होने वाले अधिकाधिक गम्भीर नियम और तीव्र होते जा रहे हैं। यह विचार कि कोई भी नियुक्ति करने वाला अधिकारी पूर्णतया अपनी स्वेच्छानुसार कार्य का संचालन कर सकता है—आधुनिक अँग्रेजी कानून के अन्तर्गत कोई अस्तित्व नहीं रखता है।

फैक्ट्री ऐक्ट

सुधारवाद की भावना जिसने १८३० से १८४० के मध्य का समय इतना अधिक प्रख्यात कर रक्खा है, नगर की स्थानीय सरकार की क्रिया विधियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सहायता की। इंगलैण्ड की स्वायत्त शासन व्यवस्था विदेशों में तो अपनी उत्तमता के लिये प्रख्यात थी किन्तु अपने वास्तविक क्षेत्र में यह अत्यन्त ही दयनीय स्थिति में थी। १८३० ई० में इंगलैण्ड की संसद ही कुलीनतन्त्र का प्रमुख साधन न था प्रत्युत वहाँ की स्वायत्त शासन व्यवस्था भी वैसी ही थी।

स्वायत शासन की पतनोन्मुखी दशा

यहाँ की नगरपालिका बहुत ही छोटे-छोटे दलों के हाथ में थी। उदाहरणार्थ कैम्ब्रिज के क्षेत्र में जहाँ जनसंख्या तो बीस सहस्र थी वहाँ के मतदाओं की संख्या कुल ११८ ही थी। इसी प्रकार पोर्टसमाउथ (Portsmouth) की जनसंख्या तो ४६ सहस्र किन्तु मतदाताओं की केवल १०२। असंख्य स्थानों की स्थिति तो और भी खराब थी और वहाँ का स्वायत्त शासन का कार्य एक नगर सभा अथवा 'निगम' के दायित्व में दे दिया गया था, जिसमें केवल एक अध्यक्ष और उसकी परामर्श-दात्री समिति ही होते थे। यह अध्यक्ष इस समिति द्वारा चुना जाता था और इसके सदस्य जो आजीवन पदासीन रहते थे, अपनी इच्छानुसार इस संस्था के रिक्त स्थानों पर व्यक्तियों को सम्मिलित करने की क्षमता रखते थे। ये सरकारें अत्यन्त ही भ्रष्ट तथा अत्यन्त ही अयोग्य थीं। सामान्यतः बोरों में रहने वाले अंग्रेज स्वशासित न होकर कुशासित थे।

सुधार की आवश्यकता

१८३५ ई० में एक ऐसा कानून पारित हुआ जिसके अनुसार नगर समितियों के उन समस्त नागरिकों द्वारा जिन्होंने गत वर्षों में सरकार को टैक्स अदा किया था, चुनाव की व्यवस्था की गयी। समिति को अध्यक्ष अर्थात् मेयर (Mayor) का चुनाव भी करना था। ऐसा अनुमानित है कि इस प्रकार प्रायः बीस लाख नागरिकों

नगरपलिका-सरकार में सुधार

को नगर-सभाओं के मतदाता होने का अधिकार उपलब्ध हुआ। यद्यपि यह कोई लोकतन्त्रीय व्यवस्था न थी तथापि कुलीनतन्त्रीय शासक से दूर, इस दिशा में एक सुनिश्चित प्रयास अवश्य थे। १८३५ से मताधिकार का विस्तार हो गया था।

इस सुधारकाल में इंगलैण्ड के राजतंत्र में एक विशेष परिवर्तन हुआ। २० जून १८३७ के दिन जब सम्राट् विलियम चतुर्थ परलोक सिधारा तो उसकी भतीजी विक्टोरिया उसकी उत्तराधिकारिणी बनी।

महारानी विक्टोरिया का राज्यारोहण

महारानी विक्टोरिया जार्ज तृतीय के चौथे पुत्र केण्ट के ड्यूक की पुत्री थी। अपने राज्यारोहण के समय वह केवल १८ वर्ष की थी। उसकी भली-भाँति शिक्षा तो हुई थी किन्तु चूँकि सम्राट् विलियम चतुर्थ को उसकी (विक्टोरिया की) माता से अरुचि थी अतः राज दरबार के जीवन को बहुत कम देख पाने के कारण वह इससे बहुत कम परिचित थी। साहित्यकार कार्लाइल जो इस अविश्वसनीय विश्व की भौतिक उलझनों में पड़ने का विरोधी था, व्यर्थ ही उसके (महारानी) विषय में चिन्तित था। उसने एक बार यह व्यक्त भी किया था कि—

"बेचारी अल्पवयस्क महारानी, वर्तमान समय में इतनी अपरिपक्व आयु की बालिका है कि उस पर उसके अपने लिये ठीक हैट (सिर की टोपी) को छाँटने का विश्वास भी मुश्किल से किया जा सकता है तथापि उसको अब ऐसा दायित्व सौंपा गया है कि उससे कोई महान्तम देवदूत भी संकोच कर सकता है।"

महारानी का मस्तिष्क ऐसा संकुचित न था। वह प्रसन्नचित्त और फुर्तीली थी और उसने महान् उत्साह के साथ उस शासन अधिकार में पदार्पण किया था जिसे इंगलैण्ड के इतिहास में सबसे अधिक समय तक अक्षुण्ण रहना था। वह अपने व्यक्तित्व और प्रतिभा से जो भी उसके सम्पर्क में आता था उसे प्रभावित कर लेती थी। पहले उसकी राजनैतिक शिक्षा-दीक्षा बेल्जियम के शासक लियोपोल्ड के संरक्षण में जो कि उसका चाचा था, हुई। तदुपरांत सम्राज्ञी बनने पर उसे महान् राजनितिज्ञ लार्ड मैल्बोर्न ने प्रशिक्षित किया और इनमें से दोनों ने उसके मस्तिष्क में वैधानिक राजतंत्र के सिद्धान्त

महारानी की राजनैतिक शिक्षा

कूट-कूट कर भर दिये थे। उसके परिणाग्रहण का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था और इसका हल उसने स्वयं ही किया। उसने अपने चचेरे भाई—सेक्स कोबर्ग के राजकुमार अल्बर्ट को आमंत्रित करके उसके साथ अपना वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इस सम्बन्ध में जैसा कि उसने बाद में स्वयं कहा था, कि 'इस बात का साहस करना अत्यन्त कठिन था' और स्वयं राजकुमार अल्बर्ट ने 'इस प्रकार की स्वतन्त्रता का उपभोग करने की कल्पना भी न की थी' कि वह इंगलैण्ड की सम्राज्ञी से पाणिग्रहण करने की बात उससे कहने का साहस कर पाता। यह एक सच्चा प्रेम-विवाह था। सर रॉबर्ट पील ने एक बार कहा था कि उसके हृदय में इतना प्रेम था जितना कि (काव्य की नायिका) जूलियट के हृदय में वर्तमान था। उसका दाम्पत्य जीवन असाधारणतया सुखी था और जब २१ वर्षों के पश्चात् प्रिंस कंसर्ट राजकुमार अल्बर्ट की मृत्यु हुई तो उस समय महारानी को ढाढ़स देना अत्यन्त असम्भव-सा हो गया था। अपने जीवन काल

में प्रिंस कंसर्ट महारानी का स्थायी परामर्शदाता रहा और दोनों के विचारों में इतना अधिक समन्वय पाया जाता था कि वह वस्तुतः (प्रिंस अल्बर्ट) देश का वैसा ही शासक था जैसी कि स्वयं महारानी।

और अधिक संसदीय सुधारों की माँग

१८३२ के सुधार कानुन ने उच्च वर्ग को ही मताधिकार प्रदान किया था किन्तु श्रमिक वर्ग, चाहे वह नगर से सम्बन्धित था और चाहे ग्राम से, इस नियम के अन्तर्गत समस्त राजनैतिक अधिकार क्षेत्र से बहिष्कृत रक्खा गया था अतः यह स्वाभाविक था कि वह इन आंशिक सुधारों से सन्तुष्ट रहना स्वीकार करे और फिर जब कि उसने इस महत्वपूर्ण नियम के पारित होते समय तत्सम्बन्धी आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया और कामनर्स की सहायता की थी तो इस असंतुष्ट श्रमिक वर्ग के लिये यह आवश्यक था कि वह अपने हित में मताधिकार के विस्तार के लिये पुनः आन्दोलन करता। इस कारण श्रमिकों ने अपने उन अधिकारों के लिये कई वर्षों तक सक्रिय आन्दोलन किया, जिनके लिये उनका विश्वास था कि वे स्वयं उतने ही अधिकारी हैं जितने कि उनसे अधिक धनवान होने का सौभाग्य रखने वाले उच्च वर्ग के लोग। उनके नेता लॉवेट ने (दिसम्बर १८३६) अपनी प्रचार पत्रिका "सड़ी हुई कामन सभा" में राजकीय आँकड़ों के आधार पर यह प्रकाशित किया कि सारे यूनाइटेड किंगडम की ६०,२३,७५२ पुरुष जनता में से केवल ८३९, ५१९ लोगों को ही मताधिकार प्राप्त है। उसने स्पष्ट किया कि १८३२ के सुधारों के बाद भी निर्वाचन केन्द्रों में इतनी अधिक असमानताएँ हैं कि कहीं तो २४११ मतों से ही २० सदस्य चुन लिये जाते हैं और कहीं इतने ही सदस्यों के लिए ८६०७२ मतों की आवश्यकता पड़ती है। इन प्रतिक्रियावादी श्रमिकों की माँगें १८३८ में तैयार किये गये संसद के लिये एक अनुरोध-पत्र अथवा उसके कार्यक्रम—'पीपुल्स चार्टर' में व्यक्त की गयी हैं। श्रमिकों ने यह उद्घोषित करते हुए जोरदार माँग की कि प्रत्येक वयस्क पुरुष को मताधिकार दिया जाये और जब "हम स्वतन्त्र पुरुषों के रूप में अपने दायित्वों का पालन करते हैं तो हमें स्वतन्त्र व्यक्तियों के समस्त अधिकार मिलने आवश्यक हैं। उनका कहना था कि गुप्त मतदान होना चाहिए न कि मौखिक मतदान, जैसे कि उस समय की प्रथा थी। गुप्त मतदान से

दी पीपुल्स चार्टर

प्रत्येक मतदाता दूसरों के भड़काने से बच जायेगा और उसे घूस लेने का अवसर भी कम हो जायगा। इसके अतिरिक्त कॉमन सभा के लिये सम्पत्ति योग्यताएँ समान हो जानी चाहिए और जबकि संसद के सदस्य वेतन पाते है तो ये निर्धन पुरुष और श्रमिक ही, जैसा कि उनकी आवश्यकताओं को समझने से विदित होता है कि यदि मतदाताओं की इच्छा हो, संसद के सदस्य चुने जाएँ। उन्होंने यह भी माँग की कि कॉमन सभा के सदस्य जैसा कि उस समय का नियम था ७ वर्ष के लिये न चुने जाकर केवल एक वर्ष के ही लिये चुने जाएँ। इसका उद्देश्य प्रतिनिधियों को विशेषाधिकार पा जाने के बाद मतदाताओं की इच्छाओं के प्रति उदासीन अथवा कटु होकर उनका झूँठा प्रतिनिधित्व करने से रोकना था। वार्षिक निर्वाचन से मतदाताओं को तीव्रगति से ऐसे प्रतिनिधियों को इस रूप में दण्डित करने का अवसर मिलेगा कि वे उसके स्थान पर दूसरे नागरिकों को कार्य करने का अवसर देते रहेंगे। पीपुल्स चार्टर का उल्लेख था कि प्रतिनिधियों और जनता के पारस्परिक सम्बन्ध को

यदि लाभप्रद होना है तो इसे आवश्यक रूप में घनिष्ठ भी होना है। संसद को किसी वर्ग की प्रतिनिधि न बनने देकर, जनता की सच्ची प्रतिनिधि बनाने हेतु इस प्रसिद्ध चार्टर ने पाँच संकेत प्रस्तुत किये। एक बार इसके कार्यान्वित हो जाने के बाद लोगों की धारणा यह थी कि जनता विधान सभा पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेगी और तब वह अपनी दशाओं को सुधारने में समर्थ हो सकेगी।

चार्टिस्टों का पार्लियामेंट पर प्राय: कोई प्रभाव न था और उनका आन्दोलन संसद के बाहर श्रमिक संगठनों में ही चल सकता था जहाँ पर वे सस्ते पत्र-पत्रिकाओं, लोकगीतों, कविताओं, अनुभवशून्य व्याख्याताओं की बड़ी-बड़ी सभाओं और असंख्य एवं अप्रत्याशित लम्बे-लम्बे अनुरोध पत्रों द्वारा अपना प्रचार कार्य करते थे। इनमें से एक याचिका जो १८३९ में सरकार को समर्पित हुआ था, बेलनाकार मोहने पर ४ फुट के व्यास का होता था और इस पर १२ लाख ८६ हजार नागरिकों के हस्ताक्षर थे। यह पूर्णतया अस्वीकार हो गया। इस असफलता के बाद भी इसी प्रकार का एक अन्य प्रार्थना-पत्र सन् १८४२ ई० में पुन: ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया और इस पर तीन लाख से अधिक व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे। एक विशाल जलूस में लन्दन की सड़कों पर ले जाया जाकर जब यह प्रार्थना-पत्र कामन सभा के द्वार पर लाया गया तो यह इतना विशालकाय था कि इसे कई भागों में काटकर सभा भवन के फर्श पर रख दिया गया। यह भी अस्वीकृत हो गया।

चार्टिस्ट आन्दोलन की रूपरेखा

सन् १८४८ ई० में इस प्रकार का एक दूसरा प्रयास किया गया। उस वर्ष फ्रांस की राजक्रांति से प्रोत्साहन लेकर चार्टिस्टों ने एक विशाल राष्ट्रीय सभा अथवा लन्दन की पीपुल्स पार्लियामेंट का निर्माण किया और इसमें चार्टर की ओर से एक विशाल प्रदर्शन करने की योजना बनाई। इसके अनुसार एक नवीन प्रार्थना-पत्र को संसद के समक्ष ५० सहस्र प्रदर्शनकारियों द्वारा ले जाया जाना था और चार्टिस्टों का अनुमान था कि इस बार सारी संसद उनसे भयभीत हो जायेगी और इतने दृढ़ प्रतिज्ञ लोगों की इस प्रबल माँग को उसे स्वीकार करना पड़ेगा। इस घटना से सरकार इतनी चिन्तित हुई कि लन्दन की सुरक्षा का दायित्व ड्यूक ऑफ वेलिंगटन को दे दिया जो कि इस समय ७९ वर्ष का हो चुका था। उसने पर्याप्त सेना के साथ इस भीड़ का नियंत्रण करने का प्रबन्ध किया। इस हेतु एक लाख सत्तर हजार सिपाही भर्ती किये गये जिनमें वह लुई नैपोलियन भी सम्मिलित था जिसे कि इसी वर्ष फ्रांस के गणतन्त्र का अध्यक्ष पद सुशोभित करना था। समुचित प्रबन्धों के फलस्वरूप चार्टिस्टों का प्रदर्शन असफल हो गया और संसद द्वारा नियुक्त तत्सम्बन्धी समिति ने जाँच करने पर उनसे प्रार्थना-पत्र पर चार्टिस्टों के वचनानुसार ५७ लाख ६ सहस्र हस्ताक्षरों के स्थान पर दो लाख हस्ताक्षर भी न पाये। इस प्रार्थना-पत्र को भी अस्वीकार कर दिया गया। यह आन्दोलन अपने आन्तरिक झगड़ों तथा मतभेदों के कारण तो ठण्डा पड़ ही गया किन्तु इसके साथ-साथ एक मुख्य बात यह थी कि अब 'अन्न कानून' के उन्मूलन के बाद स्वतन्त्र व्यापार नीति की स्थापना के फलस्वरूप देश की समृद्धि बढ़ रही थी।

इस आन्दोलन के यथार्थ महत्त्व का मूल्यांकन करना कठिन है। ऊपरी ढंग

पर जाँच करने तथा तत्क्षण परिणामों के फलस्वरूप चार्टिस्ट आन्दोलन पूर्णतया असफल रहा। तथापि उनके द्वारा इंगित किये गये अनेक परिवर्तन क्रियान्वित भी किये गये। अब कामन सभा की सदस्यता के लिये सम्पत्ति योग्यताओं का बन्धन न रहा, गुप्त-दान की व्यवस्था हुई, अधिकतम बहु-संख्यक लोगों को मताधिकार का अवसर मिला यद्यपि कुछ लोग उससे वंचित भी रखे गये। अब सदस्यगण वेतन पाते हैं और पार्लियामेंट का कार्यकाल ५ वर्ष कर दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि १९ वीं शताब्दी के अन्त में जिस प्रजातन्त्र की भावना इतनी प्रबल हो चुकी थी, उसे महान् प्रेरणा देने का श्रेय इसी आन्दोलन से प्राप्त है।

चार्टिस्ट आन्दोलन की महत्ता

इस समय चार्टिस्ट आन्दोलन के साथ-साथ एक दूसरा आन्दोलन भी इंगलैण्ड में प्रबल रूप से चल रहा था जिसका फल लाभदायक सिद्ध हुआ। स्वतन्त्र व्यापार की नीति का अनुसरण इंगलैण्ड के इतिहास की एक महान् घटना मानी जाती है और यह एक महत्त्वपूर्णता की, जो ४० वर्षों तक चलता रहा, चरम सीमा की प्रतीक है किन्तु अपना अत्यन्त निर्णायक स्वरूप कुछ वर्षों की तीव्र प्रक्रिया के बाद उपलब्ध किया। यह परिवर्तन इंगलैण्ड की उस नीति के फलस्वरूप पूर्णरूप में हुआ जिसका कि वह विश्व के अनेक देशों के साथ शताब्दियों से पालन करता आया था और जिसे कि दूसरे देश भी पालन कर रहे हैं।

इंगलैण्ड दीर्घकाल से संरक्षण की नीति पर विश्वास करता आया है। सैकड़ों वस्तुएँ जैसे कि औद्योगिक वस्तुएँ और कच्चा माल जैसे ही देश की सीमाओं में प्रविष्ट होती थीं उन पर कर लग जाता था। इस संरक्षण की नीति का मूल-आधार इंगलैण्ड की कृषि थी। 'अनाज' का शब्द इंगलैण्ड का गेहूँ तथा अन्य खाद्य-वस्तुओं के लिये प्रयुक्त होता है। वहाँ समस्त वस्तुओं के संरक्षण की नीति का मूल आधार थे—'अन्न' पर बढ़ते हुए कर। फलतः स्वतन्त्र व्यापार-नीति के प्रतिपादकों ने अन्न कानूनों के सिद्धान्त पर तीक्ष्ण प्रहार किये। यह विश्वास किया जाता था कि यदि ये अन्न कानून समाप्त कर दिये जाएँ तो संरक्षण नीति का उपक्रम भी टूट जायेगा। किन्तु दीर्घकाल तक इंगलैण्ड की राजनीति में भूमिपति-वर्ग के अधिकाधिक प्रभावों के कारण यह नियम (अन्न कानून) वहाँ पर अकाट्य रूप में लागू रहा।

इंगलैण्ड में संरक्षित व्यापार

अन्न कानून

इंगलैण्ड के वैदेशिक बाजारों के क्षेत्र को विस्तृत करने के एक मात्र साधन स्वतन्त्र व्यापार नीति का इंगलैण्ड के व्यापारी और उद्योगपति इसलिये समर्थन करते थे कि इससे अंग्रेज श्रमिकों को काम पर लगाये रखना और इंगलैण्ड के कारखानों को संचालित रखना सुलभ था। विदेशी लोग इंगलैण्ड की वस्तुएँ तभी खरीद सकते थे जबकि वे इनके उपलक्ष में अपने देशों की बनी हुई वस्तुएँ अपना अन्न और अपना श्रम प्रदान करते। पुनश्च, जनसंख्या की बढ़ती हुई दशा में इंगलैण्ड को सस्ते भोजन की आवश्यकता थी। १८३९ ई० में इंगलैण्ड में, अन्न कानून विरोधी संघ नामक एक विशाल औद्योगिक केन्द्र की स्थापना हुई और इसका नेता रिचर्डकाब्डेन एक सफल एवंअनुभवी व्यापारी था। शीघ्र ही उसका सम्पर्क अपनी तरह के एक उद्योगपति-जानब्राइट के साथ स्थापित हुआ जो कि

उसके विपरीत, १९ वीं शताब्दी का एक अत्यन्त लोकप्रिय वक्ता था। इस संघ की क्रियाविधियाँ व्यापार-प्रधान एवं परिपक्व थी। इसका आन्दोलन शान्तिपूर्वक समझाने-बुझाने की नीति पर आधारित था। इसने भारी संख्या में प्रचार पत्रिकाएँ बाँटी और वक्ताओं का एक मण्डल स्थान-स्थान पर ऐसे भाषण देने के लिये बाहर भेजा जो स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में अपने चुने हुए तर्क प्रस्तुत करते थे। तर्कों की प्रक्रिया प्रतिवर्ष चलती रही। अंग्रेजों को इस बात पर अग्रसर करने के लिये, कि वे स्वयं अपनी समृद्धि को ध्यान में रखकर अपनी व्यापार नीति को पूर्णतया परिवर्तित कर दें—यह एक सच्चा और गम्भीर प्रयास था। तथापि यह नहीं प्रतीत होता है कि १८४५ में आयरलैण्ड के अकाल के कारण भयंकर दैवी आपत्ति का सामना न करना पड़ा होता तो भी यह शांत आन्दोलन अन्न कानूनों का उन्मूलन करवाने में सफल हो पाता। आयरलैण्ड के बहु-संख्यक लोगों का भोजन आलू था। आयरलैण्ड के आठ लाख निवासियों में से आधे से अधिक लोग इस पर पौष्टिक भोजन के रूप में निर्भर करते थे जबकि शेष आधे लोगों में से अधिकांश व्यक्तियों का यह मुख्य आहार था। उस समय एक कृषि रोग के प्रकोप के फलस्वरूप आलू की उपज बिलकुल ही न हुई थी। अकाल पड़ गया और लाखों व्यक्ति भूखों मर गये। जनता को अकाल से मरने से बचाने के लिए एक मात्र साधन अन्न कानूनों का उन्मूलन था, जिससे कि महाद्वीपीय अन्न का आयात सम्भव हो सकता जो कि कृषि रोग से विनष्ट 'आलू' के स्थान पर प्रयुक्त होता १८४६ ई० में कठोर विरोधों के बावजूद भी सर रॉबर्ट पील ने इस प्रबल माँग को पूरा करने के लिए 'अन्न-कानूनों' का उन्मूलन करने में सफलता पाई। इसके बाद भी इंगलैण्ड के व्यापार पर ऐसे ही अनेक कर लागू थे किन्तु संरक्षण नीत का मूलाधार अन्न कानून अब समाप्त हो गया। आगामी २० वर्षों में शेष व्यापार कर भी एक-एक करके समाप्त कर दिये गये। इंगलैण्ड में अब भी व्यापार नीति के निश्चित नियम स्थापित हैं किन्तु वे अँग्रेजों के उद्योगों के संरक्षण से नहीं वरन् उनकी राजस्व नीति से सम्बन्धित हैं। इंगलैण्ड के वर्तमान व्यापार से मिलने वाला राजस्व प्रायः तम्बाकू, चाय, शराब, स्प्रिट और शक्कर आदि वस्तुओं के आयात कर से, ही जो कि वहाँ उत्पन्न नहीं होतीं, उपलब्ध होता है। इंगलैण्ड अपने भोजन की आवश्यकता पूर्ति के लिए दूसरे देशों पर अधिकाधिक रूप में निर्भर करता है।

आयरलैण्ड का भीषण अकाल सन १८४५ ई०

'कार्न लाज़' का अन्त

शेष संरक्षणात्मक करों का भी शनैः शनैः अन्त

अन्न कानूनों की समाप्ति के पश्चात्कालीन २० वर्ष शान्ति और पराभव के वर्ष थे। तथापि, नियम निर्माण में कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए। इनमें से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नियम कारखानों और खानों की नौकरियों से सम्बन्धित थे। इस प्रकार का नियमन अपने तात्कालिक प्रभावों में अत्यन्त उदार एवं दयालुतापूर्ण होने के साथ-साथ अपने आधारभूत सिद्धान्तों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी अधिक था और यह विशेषकर १८४० और १८५० के मध्यकाल में सम्भव हो सका। इस नियम-निर्माण कार्य का पहल। कदम पूर्ववर्णित १८३३ के फैक्ट्री ऐक्ट को पारित करके पहले ही उठाया जा चुका था। इस नियम ने कपड़े के कारखानों में नौकरी करने वाले बच्चों

श्रमिक नियम

और स्त्रियों के काम करने की दशाओं को कुछ सीमा तक नियंत्रित किया था। तथापि बहुत से दूसरे प्रकार के कारखानों में श्रम अभी असंरक्षित था और उनमें भयंकर बुराइयाँ आ गई थीं। १९वीं शताब्दी की सर्वप्रसिद्ध संसदीय रिपोर्ट यह थी कि खानों की दशा की जाँच के लिए एक आयोग नियुक्त किया जाये। १८४२ ई० में प्रकाशित इस संसदीय रिपोर्ट के सुझावों ने जनमत में एक प्रकार की उत्तेजना पैदा कर दी और इस सम्वन्ध में तत्परता से कार्य होने को प्रोत्साहन दिया। इस रिपोर्ट ने यह प्रकाशित किया कि पाँच, छ: और सात साल के बच्चे भूगर्भ में स्थित कोयले की खानों में नौकर रखे जाते हैं जिनमें बालक और बालिकाएँ दोनों ही होते हैं। इनके साथ-साथ जो स्त्री और पुरुष इन खानों में मजदूरी करते थे उनके काम की दशाएँ नैतिकता और स्वास्थ्य के लिये अत्यधिक घातक थे। उनके काम करने के घण्टे लम्बे तथा १२ से लेकर १४ थे। वे स्त्री और पुरुष वस्तुत: जीवन की घातक दशाओं में कार्य करते थे और प्राय: बोझा ढोने में पशुओं की भाँति कार्य करने को विवश थे। खानों में हाथों और पैरों द्वारा बोझ से भरी हुई गाड़ियों को घसीटते और धक्का देते हुए इन्हें उन तंग और नीचे भागों से निकलना पड़ता था जिनमें कि सीधे खड़ा हो पाना भी दूभर अर्थात् असम्भव था। खानों में आठ या दस वर्ष की लड़कियों को दिन भर में कई बार सीधी अथवा खड़ी चढ़ाई की सीढ़ियों पर अपनी पीठ पर कोयले से भरी हुई बाल्टियाँ लेकर चढ़ना पड़ता था।

खानों के श्रमिकों से सम्बन्धित नियम

ये सुझाव इतने प्रभावशाली एवं दु:खद थे कि १८४२ में एक यह कानून बना दिया गया कि खानों में औरतों और लड़कियों की नियुक्ति अवैध थी किन्तु इस नियम के अनुसार १० वर्ष के लड़कों को सप्ताह में केवल तीन दिन ही काम पर लगाया जा सकता था।

फैक्ट्री ऐक्ट

आर्थिक रूप में आश्रित वर्गों का संरक्षण करने की नीति अपना चुकने पर संसद को इस दिशा में प्रेरित किया जाता था कि वह व्यक्तिगत उद्योग पर सरकारी नियंत्रण करे। इस संबंध में संसद ने अनेक प्रकार के नियम बनाये, जिनके उपबन्ध इतने विस्तृत एवं गम्भीर हैं कि उनका इस स्थान पर वर्णन करना असम्भव है। इन नियमों की संख्या अविरल रूप से इस कारण बढ़ रही है कि सरकार का आश्रित वर्ग पर विशेष ध्यान रहा है।

इन विभिन्न प्रकार के नियमों का निर्माण करके तथा अन्य ढंगों से इंगलैण्ड ने १९वीं शताब्दी के मध्यकालीन वर्षों में यह प्रदर्शित किया कि उसके रूढ़िवादी विचारों और संस्थाओं का ह्रास होकर प्रजातंत्रीय विचारधाराओं का उत्तरोत्तर विकास हो रहा था। तथापि उसके राजनीतिक जीवन एवं संस्थाओं में इस सामान्य प्रवृति का आभास नहीं मिलता था। संसद प्राय: उन्हीं सिद्धांतों तक सीमित रही जो कि १८३२ के सुधार नियम द्वारा स्थापित हुए थे। १८३२ से १८६७ तक न तो कॉमन सभा की सीटों और न ही मताधिकार के क्षेत्र में कोई परिवर्तन हुआ। यह जिस रूप में मध्यम वर्ग का शासनकाल था उसी रूप में इसके पहले कुलीनतंत्र का शासनकाल हुआ था। और दोनों की पृथक-पृथक विशेषताएँ हैं।

विस्तृत मताधिकार की माँग

इस युग में मताधिकार के विस्तार की माँग निरन्तर की जा रही थी। इस समय इंगलैण्ड के प्रत्येक छ: आदमियों से केवल एक आदमी को ही जो कि १० पौण्ड की धनराशि वार्षिक रूप में किराया-मकान वसूल करता[1] अथवा देता था, मताधिकार प्राप्त था। १८६६ में कॉमन सभा के नेता ग्लैडस्टन ने अर्ल रसेल के प्रधानमन्त्रित्व काल में मताधिकार को कुछ विस्तृत करने का प्रस्ताव संसद के समक्ष रखा। प्रस्ताव की सामन्यता ने इसके महत्त्व को समाप्त कर दिया और इस प्रस्ताव में जनमत का कोई उत्साह न जाग्रत किया। जनता में इस की प्रवृत्ति का आभास भी न मिल सका कि लोग इस मताधिकार सम्बन्धी प्रस्ताव को संसद द्वारा पारित करवाना चाहते हैं। इस कारण रूढ़िवादी सदस्यों ने उदार सदस्यों के साथ मिककर ग्लैडस्टन के प्रस्ताव को ईर्ष्यापूर्वक अस्वीकृत कर दिया। फलत: मन्त्रिमण्डल को पद-त्याग करना पड़ा तथा लार्ड डर्बी प्रधानमन्त्री बनाया गया। उसके साथ में मन्त्रिमण्डल का प्रभावशाली सदस्य डिजरायली भी था। अब रूढ़िवादी दल एक बार पुन: सत्तारूढ़ हो गया था और सुधारों के विरोधी सदस्यों ने विचार किया कि रूढ़िवादी सदस्यों ने प्रजातन्त्र की दिशा में सारी प्रगति को बलपूर्वक रोक दिया है। राजनीतिक व्यक्तियों को इतना अधिक धोखे में पहले कभी भी न रखा। ग्लैडस्टन के इस लोकप्रिय प्रस्ताव की अस्वीकृति ने जनता के हृदय को उत्तेजित कर दिया। ग्लैडस्टन ने भी अपना सारा संकोच छोड़कर विस्तृत सुधारों के तीव्र पक्षपाती प्रचण्ड देवदूत का रूप धारण कर लिया था। ग्लैडस्टन को रूढ़िवादियों को यह चुनौती कि—

१८६६ के सुधार प्रस्ताव की अस्वीकृति

"आप भविष्य की प्रगति को रोक नहीं सकते, वर्तमान हमारे पक्ष में है"—जनता का नारा बन गयी। जान ब्राइट अपने अन्तर्तम में विद्रोहाग्नि को छिपाये हुए जनता को १८३२ के दृश्यों की पुनरावृत्ति करने को प्रोत्साहित कर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले की तरह महान लोकप्रिय प्रदर्शनों ने ग्लैडस्टन के सुधार प्रस्ताव का समर्थन करना आरम्भ कर दिया। लोगों की माँग स्पष्टता न्यायोचित ही थी।

सन् १८६७ ई० में डिज़रायली का सुधार प्रस्ताव

रूढ़िवादी दल ने जब यह परिस्थिति देखी, और अनुभव किया कि सुधारों की माँग प्रबल होने के कारण सुधार प्रस्तावों की अस्वीकृति असम्भव है और इस दशा में यदि उन्हें स्वीकार कर दिया जाये तो सुधार करने का सारा श्रेय उदारवादियों अथवा किसी अन्य दल को न मिलकर उसे ही प्राप्त हो जायेगा तो उसके नेता डिजरायली (Disraeli) ने आगामी वर्ष अर्थात् १८६७ में एक सुधार प्रस्ताव संसद के समक्ष रखा इस। प्रस्ताव की ग्लैडस्टन के नेतृत्व में उदारवादी सदस्यों ने प्राय: काया-पलट ही कर दी और वे रूढ़िवादी मंत्रिमण्डल के तत्सम्बन्धी सुझावों का समय-समय पर खण्डन करते रहे। अन्ततः इस प्रस्ताव में वे अपने प्रगतिवादी सिद्धांतों को उन्मीलित करने में सफल न रहे। अन्तिम रूप में पारित होने पर यह प्रस्ताव मुख्यत: ग्लैडस्टन के प्रयत्नों का ही फल था और उसने इस सम्बन्ध में जो-जो प्रश्न किये प्राय: वे सब के सब शनैः शनैः स्वीकृत होते गये किन्तु यह

1. "The ten-pound householders."

श्रेय डिजरायली को ही उसकी योग्यता, गम्भीरता एवं प्रभावशीलता के कारण उपलब्ध है कि उसने एक ऐसे तीव्र प्रगतिवादी प्रस्ताव को उन्हीं विधायकों द्वारा स्वीकार करने में सफलता प्राप्त की जिन्होंने गत वर्ष उसके सामान्यतम रूप को भी स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था।

अगस्त १८६७ में इस प्रस्ताव ने नियम का रूप धारण करते ही मध्यवर्गीय हितों का संरक्षण करके परम्परा ही तोड़ दी और इंगलैंड को एक प्रजातंत्र का स्वरूप प्रदान किया। बोरों में रहने वाले समस्त नागरिकों को मताधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार अब **विधेयक के उपबन्ध** मतदाताओं की सूची में दस पौण्ड किराया देने अथवा पाने वालों के साथ-साथ अन्य समस्त प्रकार के गृहपतियों को भी उनके मकानों का चाहे जो भी वार्षिक मूल्य हो, सम्मिलित कर लिया गया। इस नियम के अनुसार नगरों के उन निवासियों को भी जो एक डालर प्रति सप्ताह वाले किराये के मकानों में या १० पौण्ड वार्षिक किराये के मकानों में रहते थे, मताधिकार दे दिया। काउण्टियों में उन समस्त नागरिकों को मताधिकार प्रदान हुआ जो कम से कम प्रति वर्ष ५ पौण्ड की आय देने वाली अचल सम्पत्ति के स्वामी थे न कि केवल वे ही लोग जो १० पौण्ड की आय प्राप्त करते थे। इसके साथ-साथ अब भूमिपतियों के उन आसामियों (Occupiers) को भी मतदान करने का अधिकार उपलब्ध हुआ जो ५० पौण्ड के स्थान पर केवल १२ पौण्ड की धनराशि लगान के रूप में देते थे। इस प्रकार बोरों के उच्च श्रेणी के श्रमिकों और मुख्यतः काउण्टियों में रहने वाले कृषक आसामियों[1] को मतदान करने का अधिकार मिल गया। इस विधेयक के पारित होने के फलस्वरूप मतदाताओं की संख्या लगभग दुगनी हो गयी।

यह सुधार प्रस्ताव इतना अधिक प्रगतिशील था कि इंगलैंड के प्रधान मंत्री लार्ड डर्बी ने इसे "अन्धकार में कूद"[2] का विशेषण दिया था। कार्लाइल ने इसके भविष्य को अन्धकारपूर्ण बतलाते हुए इसे "नियाग्रा प्रपात को पार करने" (Shooting Niagra) की भाँति कहा था। राबर्ट लो ने, जिसके प्रबल तर्कों ने इस सुधार विधेयक के सामान्यतम रूप को एक वर्ष पूर्व अस्वीकार कराने में विशेष योग दिया था, अब इसके पारित होने पर व्यंग्यात्मक रूप में कहा कि "हमें अपने स्वामियों को अवश्य शिक्षा देनी चाहिये"। यह भी स्मरणीय है कि उपर्युक्त विधेयक के वाद-विवादों में जॉन स्टुअर्ट मिल ने स्त्रियों को भी मताधिकार देने के पक्ष में अत्यन्त तर्कशोधित वक्तव्य दिया। इस सुझाव को सदन ने मनोरंजन का विषय बतलाया, तथापि इस प्रकार का आन्दोलन अभी अपने शैशव काल के आरम्भ में ही था और काल-क्रमानुसार इसका स्थायी एवं प्रतिफलित होना अवश्यम्भावी था।

---

1. 'Tenant farmers.'
2. 'Leap in the dark.'

अध्याय २६

सन् १८६८ ई० के बाद का इंगलैण्ड

कदाचित् इसमें तनिक भी सन्देह न हो कि संसद के रूढ़िवादी सदस्यों ने १८६७ के सुधारों से आशा की थी, जैसा कि उदारवादियों का १८३२ के सुधार विधेयक के विषय में विचार था कि नव-मताधिकार प्राप्त सामान्य लोग कृतज्ञता की भावना के कारण उन्हें सत्तारूढ़ रखने में योग देंगे। इसके फलस्वरूप उन्हें भी पारितोषिक रूप में जनमत का बल प्राप्त हो जायेगा। यदि वस्तुतः ऐसा ही होना था तो उनका निराशाजनक स्थिति का मुख देखना निश्चित था क्योंकि १८६८ के निर्वाचनों में उनकी आशाओं के विपरीत उदार दल ने कामन सभा की १२० सीटें जीतकर अपना बहुमत स्थापित कर लिया। अब ग्लैडस्टन उस मंत्रिमण्डल का नेता बना जिसे भविष्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सफल बनना था।

सन् १८३२ ई० के बाद किसी प्रधान मंत्री की अपेक्षा ग्लैडस्टन ने संसद में अधिक बहुमत स्थापित किया। जिस तरह १८३२ में मताधिकार के विस्तार ने दृढ़ एवं प्रगतिवादी सुधारों के युग का सूत्रपात किया था ठीक उसी प्रकार १८६७ के संसदीय सुधारों का भी सुपरिणाम **एक महान् मन्त्रिमण्डल** देशवासियों के समक्ष प्रस्तुत हुआ। ग्लैडस्टन देश की बढ़ती हुई विचारधारा का सच्चा प्रतिनिधि था। तत्कालीन पूर्वगत आन्दोलन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि जनता सरकार के निर्माण सम्बन्धी नियमों और सुधारों के स्वस्थ काल की अपेक्षा करती है। संसद में इतने विशाल बहुमत और उसके बाहर सर्व-साधारण में इतने शक्तिशाली एवं उत्साहपूर्ण जनमत का समर्थन पाकर ग्लैडस्टन देश की परिस्थितियों के नायक के रूप में पैदा हुआ। सत्ता के क्षेत्र में पदार्पण करते समय कोई भी राजनीतिज्ञ उसके समान उपयुक्त दशाएँ प्राप्त करने की आशा न कर सकता था। वह शक्तिशाली, सुसंगठित एवं सुदृढ़ दल का नेता था और उसके मंत्रि-मण्डल में कई अत्यन्त कुशल राजनीतिज्ञ सम्मिलित थे।

यह व्यक्ति जो अपनी उनसठ वर्ष की आयु में इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री बना अंग्रेजों के इतिहास का एक गण्यमान राजनीतिज्ञ था। ग्लैडस्टन के माता-पिता

स्काटलैण्ड के निवासी थे। उसके पिता ने अपने जीवनक्रम का स्वत: निर्माण किया था और उसने थोड़े ही धन से अपनी मानवीय शक्ति एवं बुद्धि के सफल प्रयोग द्वारा अपने को लिवरपूल का सबसे अधिक प्रभावशाली एवं सम्पत्तिशाली व्यक्ति बनाने में सफलता प्राप्त की। तदुपरान्त वह संसद का सदस्य निर्वाचित हो गया, युवा विलियम एवार्ट ग्लैडस्टन ने एटन के महाविद्यालय और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में 'उस समय की सर्वोत्तम शिक्षा'[1] प्राप्त की और इन दोनों शिक्षा संस्थाओं में वह अपने सहपाठियों में सबसे अधिक योग्य समझा जाता था। एटन के महाविद्यालय में इसका घनिष्ट मित्र था—आर्थर हालम जो महाकवि टैनीसन की सुप्रसिद्ध महान् प्रशंसात्मक कविता—'इन मेमोरियम' का नायक है। उसका ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालीय जीवन उसकी चमत्कारपूर्ण स्नातकीय सफलताओं से अलंकृत था और यहाँ पर भी उसने विश्वविद्यालीय वाद-विवाद क्लब—'यूनियन' में एक सुवक्ता की अभूतपूर्व ख्याति उपार्जित की। विश्वविद्यालय को छोड़ने के पूर्व वह अपने विचारानुसार चर्च के निर्देश लेना चाहता था किन्तु जब उसने अपने पिता को इसके विरुद्ध देखा तो उसने इस विचार को छोड़ दिया।

विलियम एवार्ट ग्लैडस्टन (१८०९–१८९८ ई०)

ग्लैडस्टन का संसद में प्रवेश

१८३३ ई० में उसने उन महत्त्वशून्य बोरों में से एक प्रतिनिधि के रूप में कामन सभा की सदस्यता ग्रहण की जिन्हें विगत वर्ष के सुधार विधेयक ने उन्मूलन न किया था। आगामी ६० वर्षों तक उसे इस संस्था में कार्य करना था और इस दीर्घ काल के आधे से भी अधिक समय तक उसे निम्न सदन के एक प्रमुख्य सदस्य के रूप में रहना था। १८६८ ई० में प्रधान मंत्रित्व प्राप्त करने के पूर्व उसका राजनीतिक जीवन पर्याप्त दीर्घ रहा और उसने इसका हर प्रकार का अनुभव प्राप्त किया। उसने इस समय में अनेक पदों पर कार्य किया जिनमें से वित्त मंत्री का पद और कामन सभा का नेतृत्व विशेष उल्लेखनीय है। एक रूढ़िवादी के रूप में (सन् १८३८ ई० में उसको मैकाले ने दृढ़ एवं स्थिर प्रवृति के टोरियों की बढ़ती हुई आशा का प्रतीक बतलाया था[2]) अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ करके वह सर रॉबर्ट पील के सम्पर्क में आया और पील एक ऐसा व्यक्ति था जो अन्ततम से रूढ़िवादी होते हुए भी परिस्थितियों के अनुकूल वन जाने की इतनी अधिक क्षमता और दूरदर्शिता रखता था तथा जो असाधारण सहसी था किन्तु उसमें विश्व के परिवर्तन के साथ अपने में परिवर्तन लाने का पर्याप्त बुद्धि-चातुर्य था। दीर्घकालीन संघर्ष के वाद ग्लैडस्टन अब उदार-वादी बन गया था और वह उदारदल का नेतृत्व कर रहा था। अपने कार्यकौशल के कारण जो उसने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रवन्ध में प्रदर्शित किया था, उसका संसदीय इतिहास एवं क्रिया विधियों का अपूर्व ज्ञान, उसका नैतिक साहस, उसकी उच्च

ग्लैडस्टन उदारवादी दल के नेताओं के रूप में

---

1. "The best education then going."
2. Macaulay called him in 1838 the "rising hope of the stern and nubending Tories."

प्रवृत्ति, उसकी दृढ़ता एवं साहस; उसकी सुधारवादिता और उसकी प्रभावशालिनी वक्तृता ने उसे कामन सभा के नेतृत्व की अत्यधिक योग्यताएँ प्रदान कीं। ६० वर्ष की अवस्था में वह इंगलैण्ड के प्रधान-मंत्री पद पर आसीन हुआ, जिसे उसको अपने जीवन में चार बार सुशोभित करने का सौभाग्य मिलना था। इस पद पर कार्य करके उसने आश्चर्यजनक बुद्धि-वैभव और कर्मठतापूर्ण शारीरिक शक्ति का परिचय दिया। उसका शासनकाल जो १८६८ से लेकर १८७४ तक रहा महान् मंत्रित्व का समय कहा जाता है। इस नीति का रहस्य जिस समय वह महारानी द्वारा मंत्रिमण्ल का निर्माण करने के लिये आमंत्रित किया गया था, अपने एक दोस्त के साथ वार्तालाप करते हुए उसने स्वयं प्रकट किया था कि—"मेरा सन्देश आयरलैण्ड को शान्ति देना है।" आयरलैण्ड की समस्या की ओर ग्लैडस्टन ने अपने अंतिम राजनीतिक जीवन काल में अधिकाधिक ध्यान दिया और यह समस्या सम्पूर्ण प्रधान मंत्रित्व काल में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। यह इतनी सक्रिय समस्या थी कि इंगलैण्ड की राजनीति की गत ५० वर्ष से यह समय-समय पर निर्णायक तत्व बनती रही थी।

ग्लैडस्टन का प्रथम मंत्रिमंडल १८६८-७४ ई०

आयरलैण्ड की समस्या का सबसे अधिक महत्त्व

इस समस्या को भली-भाँति समझने के लिये १९वीं शती के आयरलैण्ड के इतिहास का सिंहावलोकन उपयुक्त होगा। इस सम्पूर्ण शताब्दी में यह देश ब्रिटिश साम्राज्य का अत्यंत असन्तुष्ट एवं निर्धन भाग बना रहा। जहाँ इस समय इंगलैण्ड की जनसंख्या और सम्पत्ति में वृद्धि होती रही वहाँ आयरलैण्ड की जनसख्या निरन्तर घटती गयी और उसकी निराशा बढ़ती रही। आयरलैण्ड में दो प्रकार के लोग रहते थे जिनमें से एक तो आयरलैण्ड के कैथोलिक धर्मानुयायी स्थायी निवासी थे और दूसरे इंगलैण्ड तथा स्काटलैण्ड से आकर बसे हुए वे लोग थे जिनमें से अधिकांश व्यक्ति एंग्लिकन चर्च के समर्थक अथवा प्रेसबिटीरियन थे। इंगलैण्ड तथा स्काटलैण्ड से आकर बसे हुए लोगों की संख्या तो आयरलैण्ड में अपेक्षाकृत कम ही थी किन्तु वे धनवान एवं प्रभावशाली अधिक थे।

आयरलैण्ड की समस्या का मूल कारण इस तथ्य में सन्निहित था कि वह एक विजित देश था और आयरी जाति एक परतन्त्र जाति थी। अत्यन्त अतीतकाल अर्थात् १२वीं शताब्दी से ही अंग्रेजी ने इस द्वीप पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था। इन ६०० वर्षों में आयरलैण्डवासियों ने अनेक बार आक्रमणकारियों को परास्त करके देश के बाहर खदेड़ने के प्रयत्न किये किन्तु के बराबर विफल होते रहे और उनकी परतंत्रता दु:खद रूप में बढ़ती रही। आयरी विद्रोहों का निर्दयतापूर्वक दमन किया गया और इस देश की सबसे अधिक प्रबल उत्तेजना उस जातीय वैमनस्य के कारण थी जिसे अंग्रेजों ने जन्म दिया था। उस समस्त समय में इंगलैण्ड और आयरलैण्ड की प्रतिद्वन्द्विता असमान थी क्योंकि इंगलैण्ड एक अत्यधिक साधन-सम्पन्न देश था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस संघर्षमय इतिहास में आयरी जाति को अपनी मातृभूमि पर पराधीनता के बन्धन में शताब्दियों तक रहना पड़ा और इनकी परतन्त्रता के उदाहरण इतने अधिक एवं दु:खदायी थे कि असंख्य आयरी इस परिस्थिति की भीषणता से बच कर

आयरलैण्ड एक विजित देश के रूप में

अपना एक दिन भी न व्यतीत कर पाते थे। वे घृणा से परिलुप्त वातावरण में साँस लेते थे।

इस परतंत्रता के अनेक प्रतीक थे। उदाहरणार्थ आयरी लोगों के पास उनके स्वामित्व में आयरलैण्ड की कोई भूमि न थी यद्यपि उनके पूर्वज इस भूमि के स्वामी रह चुके थे। अंग्रेज शासकों ने अनेक बार आक्रमण करके उनको भूमि के स्वामित्व से वंचित कर रखा था जिनमें क्रामवेल (Cromwell) के आक्रमण विशेष उल्लेखनीय हैं। ये भूमियाँ (आयरलेंड के कृषकों की) बड़े-बड़े फार्मों के रूप में अंग्रेजों को दे दी जाती थीं। आयरी लोग केवल उनमें कृषि कार्य करने वाले श्रमिक थे और उन भूमियों पर अंग्रेज भूमिपातियों का स्वामित्व होने के कारण वे उनकी इच्छानुकूल ही कृषि कार्य करते रह सकते थे। तथापि आयरियों ने अपने को सदैव ही आयरलंण्ड की भूमि का न्यायोचित अधिकारी समझा। वे अंग्रेज भूमिपातियों को अपहर्ता समझते थे और अपना भूमि अधिकार पुनः प्राप्त करने के प्रबल इच्छुक थे। इस प्रकार आयरी कृषकों का यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी उठता है जोकि तत्कालीन आयरी समस्या का एक प्रमुख अंग था। इस प्रश्न पर आगामी पृष्ठों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

कृषकों की समस्या

पुनश्च, आयरी लोगों को धार्मिक असहिष्णुता या दीर्घ काल तक आखेट बना रहना पड़ा। इंगलैण्ड अपने ऐतिहासिक धर्म सुधार काल में रोम के चर्च से पृथक हो गया किन्तु आयरलैण्डवासी कैथोलिक ही बने रहे। उनके ऊपर ऐंग्लिक चर्च के मत को स्वीकार करने के लिये बल का प्रयोग किया जाता रहा किन्तु इससे उनके विरोध की सीमा बढ़ती गयी। कुछ भी हो, १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वे आयरलैण्ड में स्थापित ऐंग्लिकन चर्च को धार्मिक कर देते थे यद्यपि वे स्वयं कट्टर कैथोलिक थे, और उन्होंने एक प्रोटेस्टैण्ड चर्च में कभी भी प्रवेश न किया। इसके साथ ही साथ वे अपने कैथोलिक चर्चों को अपनी हार्दिक इच्छा द्वारा दी गयी भेंटों और उपहारों से सहायता देते रहते थे। इस प्रकार उन्हें दो प्रकार के चर्चों को चन्दा देना पड़ता था—एक विदेशी जिससे उन्हें घृणा थी और एक स्वदेशी जिसमें उनकी अनुरक्ति थी। इस रूप में आयरी समस्या का एक महत्त्वपूर्ण विषय धार्मिक प्रश्न भी था।

धार्मिक समस्या

आयरी लोगों को अपने शासन सम्बन्धी नियम बनाने का कोई अधिकार न था। १८०० ई० में इनकी डबलिन में स्थापित पृथक संसद का अन्त कर दिया गया और १८०१ ई० से सारे ग्रेट ब्रिटेन की वही एक पार्लियामेंट हो गयी जो कि लन्दन में स्थापित थी। आयरलैण्ड की ओर से निश्चित संख्या के प्रतिनिधि रहते थे किन्तु वे नगण्य अल्पसंख्यकों के रूप में ही थे। इसके अतिरिक्त ये आयरी सदस्य वस्तुतः आयरलेंड की बहुसंख्यक जनता का प्रतिनिधित्व न करते थे, क्योंकि कामन सभा में किसी कैथोलिक को प्रवेश करने का भी अधिकार न था। इस रूप में यह एक अद्भुत विषमता विद्यमान थी कि आयरलैण्ड के बहुसंख्यक जनता को पर्लियामेंट के उन सदस्यों के लिये अपना मतदान करना पड़ता था जो प्रोटेस्टेण्ट थे। यह उनके लिये उपहास का विषय था। आयरों ने स्वशासन के अधिकार की प्रवल माँगें की। आयरी समस्या का यह प्रश्न पूर्णतया राजनीतिक था।

आयरलैण्ड की राजनीतिक समस्या

आयरियों की मुक्ति

उपर्युक्त बुराई सन् १८२९ में ही दूर कर दी गयी थी, जबकि कैथोलिकों की मुक्ति कर दी गयी और कैथोलिकों कॉमन सभा में बैठने का अधिकार दे दिया गया। अंग्रेज राजनीतिज्ञों को उन्हें यह अधिकार उस समय देना पड़ा जबकि उन्होंने यह देखा कि देश में गृह-युद्ध छिड़ जाने की तीव्र आशंका है। तथापि आयरी जनता केवल इतने से ही सन्तुष्ट न रह सकती थी।

आयरलैंड को इंगलैण्ड से पृथक करने का आन्दोलन

आयरी-कैथोलिकों की मुक्ति के बाद आयरलैंड की जनता ने ओ० कोनल के नेतृत्व में १८०१ में किये गये आयरलैंड और इंगलैण्ड के संयोजन का अन्त करने के वैसे ही ठोस कदम उठाये। उन्होंने अपनी पृथक विधान सभा और पर्याप्त स्वतंत्रता की स्थापना के लिये तीव्र आन्दोलन किया। यह आन्दोलन कुछ समय तक अधिक बलशाली रहते हुए भी असफल रहा। इसका कारण यह था कि अंग्रेजों ने यह दृढ़ निश्चय कर रखा था कि यह संयोजक कदापि न भंग किया जाये और दूसरे यह कि आयरियों का नेता डैनियल ओ० कोनल इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप आयरलैंड के पृथक्करण के लिये गृह-युद्ध की अग्नि न भड़कने देना चाहता था क्योंकि वह इस प्रकार के संघर्ष को नितांत निराशाजनक समझता था। यह आन्दोलन १८४३ ई० में समाप्त हुआ, तथापि ओ० कोनल के असंख्य नवयुवक अनुयायियों ने उसके शान्तिपूर्ण ढंगों पर चल कर अपनी माँगें करने के उद्देश्य से "यंग आयरलैंड" नामक संगठन स्थापित किया। इस संगठन का लक्ष्य आयरलैण्ड को स्वतन्त्र करके वहाँ गणतन्त्र की स्थापना करना था। १८४८ के असन्तोषपूर्ण वर्ष में आयरलैण्ड के नवयुवकों ने क्रांति कर दी किन्तु यह सरलतापूर्वक दबा दी गयी।

आयरलैंड का अकाल

इसी मध्य, जैसे कि आयरलैण्ड को सामाजिक एवं राजनीतिक विपत्तियों का कोई अधिक सामना ही न पड़ रहा हो, उसके ऊपर दैवी संकटों का पहाड़ ही फट पड़ा। आयरलैण्ड का अकाल जो १८४५ से १८४७ तक रहा, और जिसका कि पहले ही वर्णन किया जा चुका है, अपने कुपरिणामों में एक अत्यन्त हृदय-द्रावक आपत्ति थी। अन्न कानूनों का उन्मूलन भी इसके कुपरिणामों को न रोक सका। यह संकट कई वर्षों तक चलता रहा यद्यपि यह उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा था। आलू की उपज १८४६ ई० में तो १८४५ की अपेक्षा भी खराब रही और १८४८ तथा १८४९ की उपजें भी सामान्यतः असन्तोषजनक रहीं। इस विषम परिस्थिति में आयरियों की सहायता करने के लिये सरकार की ओर से दान दिये जाने की व्यवस्था की गयी किन्तु वह भी अपर्याप्त सिद्ध हुई। सरकार ने पहले अकाल पीड़ितों में रुपया बाँटा और फिर अन्न वितरण किया। मार्च १८३७ में ७ लाख से ही अधिक आयरियों को राजकीय वृत्ति मिलती थी। इसी वर्ष के मार्च तथा अप्रैल में केवल आयरी श्रम केन्द्रों में एक महीने के अन्दर दस सहस्र से भी अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हुई। कृपक लोग जड़ें और छिलके खाते थे और उनमें से बहुत से लोग तो निराशाओं के दुःख निवारण के लिये नगरों की ओर भागते थे। विशाल भीड़ों के रूप में बहुत से आयरियों

ने इंगलैण्ड में आकर शरण ली और उन्होंने यहाँ से अमरीका को जाने वाले अँग्रेजी जहाजों में ही रहना प्रारम्भ कर दिया किन्तु उनमें से सहस्रों-आयरी ज्वर और दम घुटने से मृत्यु की भेंट हो गये। यह एक व्यापक आतंक था और जब इसका प्रकोप समाप्त हुआ तो यह ज्ञात हुआ कि आयरलैण्ड की जनसंख्या जो १८४५ ई० में प्रायः तिरासी लाख थी अब १८५१ ई० में घट कर छियासठ लाख से भी कम रह गयी। इस समय से देश को छोड़ जाने के अविरल क्रम के फलस्वरूप आयरियों की जनसंख्या घटती ही रही। यह जनसंख्या सन् १८८१ ई० में घटकर ५१ लाख, १८९१ ई० में ४७ लाख तथा १९०१ ई० में केवल ४४५०,००० ही रह गयी। १८५१ से लगभग ४० लाख आयरी अपना देश छोड़कर अन्यत्र बस चुके थे। वस्तुतः आयरलैण्ड ही एक ऐसा देश था जिसकी जनसंख्या १९वीं शताब्दी में घट गयो। वे प्रतिवर्ष संयुक्त राज्य अमरीका में जा-जाकर बसते रहते थे।

आयरलैंड की जनसंख्या में ह्रास

जब १८६८ में ग्लैडस्टन सत्तारूढ़ हुआ तो उसने आयरियों की कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण शिकायतों को दूर करके उन्हें सन्तुष्ट करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

आयरलैण्ड में राजकीय ऐंग्लिकन चर्च स्थापित था जो उसकी जनसंख्या के आठवें भाग से अधिक लोगों से भी सम्बन्धित न था किन्तु सारे आयरी चाहे वे कैथोलिक हों और चाहे प्रोटेस्टैण्ट, उसी को धर्म कर चुकाते थे। अतः ग्लैडस्टन ने सर्वप्रथम इसी शिकायत का अन्त करने के लिये उपर्युक्त व्यवस्था की कटु आलोचना की। सन् १८६८ ई० में उसने एक ऐसा नियम पारित करवाया कि जिसके अनुगत उसने आयरलैण्ड को ऐंग्लिकन चर्च का राष्ट्रीयकरण समाप्त कर दिया तथा आंशिक रूप से उसे सहायता देना भी बन्द कर दिया। इस प्रकार यह आयरलैण्ड का ऐंग्लिकन चर्च अब राज्य से सम्बन्वित न रह गया। इसके पादरी उच्च सदन की सदस्यता से वंचित कर दिये गये। अब यह एक ऐच्छिक संगठन बन गया किन्तु इसे इसके अधिकार में पहले से दी गयी। सम्पत्ति के एक बड़े भाग को दान के रूप में रखने की अनुमति दे दी गयी। आयरलैण्ड के ऐंग्लिकन चर्च को उससे सम्बन्वित समस्त चर्च भवनों को अपने अधिकार में रखने की राजाज्ञा थी। यह चर्च अब भी पर्याप्त धनी था किन्तु इसके वे सारे सम्बन्ध जो १ जनवरी १८७१ तक इंगलैण्ड के चर्च के साथ थे, उसके बाद से समाप्त हो जाने थे।

पादरी उच्च सदन की सदस्यता से वंचित

ग्लैडस्टन ने अब एक और भी कठिन समस्या को हल करने का बीड़ा उठाया। यह समस्या थी—कृषि के लिये दी जाने वाली भूमि की व्यवस्था। आयरलैण्ड एक अधिकाधिक कृषि प्रधान देश था तथापि इसकी भूमि पर उस कृषक का कोई स्वामित्व न था जो कि इसे जोतता-बोता और इस पर अपना जीवन-निर्वाह करता था, प्रत्युत इसका स्वामित्व अंग्रेज भूमिपतियों को ही प्राप्त था जो आयरलैंड की बड़ी-बड़ी रियासतों के मालिक थे। इन भूमिपतियों की संख्या आयरी कृषकों की अपेक्षा अत्यन्त ही कम थी। इन भूमिपतियों में से अधिकांश लोग अँग्रेज पूँजीपति तथा सदैव ही अनुपस्थित रहने वाले अंग्रेज भूमिपति थे जो स्वयं आयरलैण्ड में बहुत कम अथवा बिलकुल नहीं आते थे, अपनी आयरलैंड की विभिन्न रियासतों को अपनी आय अथवा भूमि-कर का साधन

आयरलैंड में कृषि के लिये स्थानीय कृषकों को दी जाने वाली भूमि की व्यवस्था

समझते थे। आयरलैण्ड में अपनी रियासतों को भी देखभाल करने और स्थानीय कृषकों के साथ उपज और भूमिकर आदि के विषय में सम्पर्क स्थापित रखने के लिये, वहाँ अपने अधिकर्ता रखते थे जिनके द्वारा कृषकों के साथ वहुधा कठोर और पीड़ाजनक व्यवहार ही होता था। यदि कृषक अपना लगान निश्चत समय पर चुकाने में असमर्थ होता था तो वह अविलम्ब भूमि से पृथक् कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त चूँकि कृषक को अपना एक मात्र प्रमुख आहार—आलू—उगाने लिये भूमि की आवश्यकता होती थी अतः बहुधा उसे भूमि की वार्षिक मूल्य-दर से भी कहीं अधिक लगान पर भी भूमि लेना स्वीकार करना पड़ता था। इस पर भी उसे निश्चित समय के वाद भूमि छोड़ने के लिये विवश होना पड़ता था और इस दशा में वह भुखमरी का आखेट वनता था।

भूमि पर कृषक द्वारा किये गये निर्माणों का मुआविजा नहीं

इसके अतिरिक्त जब कोई भूमिपति अपने कृषक को भूमि से पृथक करता था तो वह उस कृषक को उसके द्वारा भूमि पर वनाई गयी इमारत अथवा किसी अन्य प्रकार के निर्माण का व्यय देने को किंचित बाध्य न था। वह कृषक द्वारा भूमि पर निर्मित की गयी सारी सम्पत्ति हड़प जाता था। कृषक को अपने द्वारा जोती जाने वाली भूमि को और अधिक उपयोगी बनाने के लिए कोई प्रोत्साहन न था क्योंकि ऐसा करने से उसे अधिक लगान देने को वाध्य किया जाता था अन्यथा उसे भूमि से पृथक करके उसके द्वारा भूमि पर किये गये निर्माणों से भी वंचित कर दिया जाता था। इससे अधिक अन्यायपूर्ण एवं अदूर-दर्शिता की प्रतीक व्यवस्था का मिलना कठिन है क्योंकि इससे कृषक और भूमिपति दोनों ही निष्क्रियता और आलस्य की ओर अग्रसर होते थे।

आयरी कृषकों का भाग्य अविरल कष्टों और असामान्य दयनीयता से परिलुप्त था। इंगलैंड के एक तत्कालीन सरकारी प्रपत्र से ज्ञात होता है कि—आयरी कृषक समस्त यूरोप में एक सबसे अधिक निर्धनता का भोजन करने वाला सबसे अधिक निर्धनतापूर्ण मकानों की स्थिति में रहने वाला और अधिकतम निर्धनतापूर्ण वस्त्रों को धारण करने वाला ऐसा अभागा व्यक्ति है जिसके पास न तो 'कोई भावी जीवन का साधन' ही है और न ही कोई सम्पत्ति। वह दैनिक व्यवस्था में जीवन निर्वाह करता है।"

कृषक वर्ग

आयरी कृषक सस्ते पहाड़ी पत्थर की झोंपड़ी में रहता था जिसमें फर्श कच्ची होती थी। १८४१ ई० की जनगणना ने इस तथ्य को परिलक्षित किया है कि आयरलैण्ड की छियालिस प्रतिशत जनता में प्रत्येक परिवार एक मकान में रहता था और यह मकान बहुधा एक मात्र कमरे की झोंपड़ी ही होता था। यही कमरा प्रायः पशुओं की खालें रखने के उपयोग में भी ले लिया जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि आयरलैण्ड का कृषक वर्ग एक ऐसा पीड़ित वर्ग था जिसके उद्धार का प्रयास मनुष्यता के दृष्टिकोण से एक न्यायोचित कार्य था।

दुर्भाग्य और भूमिपतियों का संरक्षण करने वाले कानूनों के अन्याय से प्रताड़ित

आयरी कृषकों के पास केवल दो ही साधन थे—भूमिपति को आत्म-समर्पण कर देना (अर्थात् उसका सेवक अथवा दास बन जाना) अथवा भूखों मरना। आयरी कृषक यह विचार करके कि, जब वे भूमि से पृथक किये जाते थे तो वे भूमिपति की डकैती के भी आखेट बनाये जाते थे। घोर चिन्ता और प्रबल क्रोध में आकर अनेक प्रकार के मार-पीट के भीषण अपराध, हत्याकाण्ड, अग्निकाण्ड और पशुओं के वध आदि कुकृत्य कर बैठते थे। परिणामतः इंगलैण्ड की संसद ने उनके लिए एक नवीन दमनकारी कानून और बनाया जिसने उनकी कुस्थिति को अधिक बढ़ा दिया।

हिंसात्मक कृत्य

सन् १८७० ई० में इंगलैंड की सरकार ने आयरी भूमिपतियों तथा कृषक संबंधी दोषों और उनकी भूमि व्यवस्था की बुराइयों के निराकरण के लिए एक भूमि कानून पारित किया। इसमें यह व्यवस्था की गई कि यदि आयरलैण्ड का कृषक लगान न देने के अतिरिक्त अन्य कारणवश भूमि से वंचित किया गया तो वह क्षतिपूर्ति अथवा मुआविजे की माँग कर सकता था। इसके अतिरिक्त इस दशा में वह अपने द्वारा किये गये भूमि पर किसी स्थायी निर्माण के लिए भी क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी था। इस विधेयक में कुछ ऐसी धाराएँ थीं जिनके अनुगत आयरी कृषकों को भूमिपतियों से सीधे भूमि का क्रय कर लेने का भी अधिकार था। इस प्रकार वे दूसरे लोगों के अधीनस्थ कृषक न रहकर स्वयं भूमिपति भी बन सकते थे किन्तु यह कार्य भूमिपतियों की मूल्यवान अचल सम्पत्ति को खरीद कर ही किया जा सकता था और यह आयरी कृषकों की क्षमता से स्पष्टतः परे था। इस कारण नियम में यह भी उपबन्ध रखा गया था कि इंगलैण्ड की सरकार आयरी कृषकों को एक निश्चित सीमा तक आर्थिक सहायता प्रदान करेगी और इसके उपलक्ष में इन्हें इस प्रकार ऋण रूप में दिये जाने वाले धन को सरल किश्तों में चुकाना होगा। १८७० के भूमि कानून ने यह कार्य न सम्पन्न किया जिसकी कि उससे आशा की जाती थी और इसने आयरलैण्ड को सन्तुष्ट करने में विशेष सफलता भी न पायी। भूमिपतियों ने इस कानून के प्रभावों से बचने के दूसरे ढंग निकाले और अब पहले से भी अधिक कृषकों को भूमि से पृथक अथवा बेदखल किया जाने लगा। भूमि के क्रय सम्बन्धी धारा उपयुक्त न हो सकी और १८७७ ई० तक केवल ७ भूमियाँ क्रीत हो सकीं। तथापि वह विधेयक महत्त्वपूर्ण अवश्य था क्योंकि इसके सिद्धान्त ठोस थे अतः इस कानून ने कृषक सम्बन्धी भावी नियमन को अधिकाधिक रूप में प्रभावित किया। इस समय आयरलैण्ड के विषय में कोई अन्य कार्यवाही न की गयी।

१८७० ई० का भूमि कानून

इंगलैंड के इस सक्रिय मंत्रिमंडल ने जो दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह था १८७० ई० में फोर्स्टर का शिक्षा कानून पारित करवाना। जिसने देश की प्रारम्भिक शिक्षा व्यवस्था को राष्ट्रीय स्तर प्रदान किया। इंगलैंड में इस समय इस प्रकार के कोई विद्यालय न थे और सामान्यतः लोगों की धारणा यह थी कि शिक्षा के प्रबंध से राज्य के दायित्व का कोई संबंध न था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस देश की शिक्षा-सुविधाएँ अन्य अनेक देशों की अपेक्षा अत्यंत निम्नकोटि की तथा नितांत अपर्याप्त थीं। शिक्षा संबंधी यह कार्य जिसकी सरकार ने उपेक्षा कर रखी थी किसी सीमा तक उन विद्यालयों द्वारा होता था; जो विभिन्न धार्मिक संस्थाओं द्वारा संचालित होते थे। ये

शिक्षा सम्बन्धी सुधार

धार्मिक संस्थाओं में प्रधानतः ऐंग्लिकन थीं किन्तु इनके साथ ही साथ कैथोलिक और मेथाडिस्क संस्थाएँ भी शैक्षिक प्रबंध करती थीं। १८६९ ई० में जो अनुमान लगाया गया उसके अनुगत इंगलैण्ड में शिक्षा की आवश्यकता रखने वाले ४३ लाख बच्चों में से २० लाख बच्चे किसी भी विद्यालय में न जा पाते थे, दस लाख बच्चे निम्नतम विद्यालयों में पढ़ते थे और शेष केवल १३ लाख बच्चे ही उत्तम प्रबन्ध के विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर पाते थे।

फोर्स्टर का १८७० का शिक्षा का कानून

इंगलैण्ड के इतिहास में सर्वप्रथम सन् १८७० ई० में इस एक विधेयक को पारित करके ग्लैडस्टन के मन्त्रिमण्डल ने देश में राष्ट्रीय स्तर की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करने का प्रयास किया। इस समय में जो भी व्यवस्था की गयी १९०२ ई० तक प्रायः ज्यों की त्यों ही चलती रही। इस व्यवस्था को इंगलैण्ड में आधुनिक महान् शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है। तथापि इस विधेयक द्वारा किसी ऐसी नवीन शैक्षिक प्रणाली द्वारा नागरिकों की शिक्षा को वास्तविक अधिकार सुविधा, जैसी कि आजकल है, देने का कार्य सम्पन्न न हो पाया और न ही सरकार द्वारा इसकी आर्थिक सहायता और इसके नियंत्रण का वास्तविक कार्य होने की व्यवस्था हुई। इसने चर्च-विद्यालयों (इंगलैंड के उपर्युक्त अनेक चर्चों द्वारा संचालित) को ही शिक्षा का माध्यम बनाया और परिवर्तन केवल इतना किया कि अब ये विद्यालय (चर्च-संचालित) सरकार के निरीक्षण के अन्तर्गत आ गये। सरकार इस बात का अधिकाधिक ध्यान रखती थी कि इन चर्च विद्यालयों में शिक्षा का यथोचित स्तर स्थापित है। इस परिस्थिति में कि चर्च शिक्षा का उचित स्तर स्थापित रखें, उन्हें राज्य द्वारा वृत्ति मिलती थी। इसके अतिरिक्त जहाँ ऐसे विद्यालयों की स्थापना न थी उन स्थानों अथवा जिलों में ऐसे स्थानीय विद्यालीय परिपदों का निर्वाचन किया जाना आरम्भ हुआ कि वे (आधुनिकतम) नवीन विद्यालयों की स्थापना द्वारा शिक्षा का प्रचार करें। इसके साथ ही साथ उन्हें (बोर्डों को) यह दायित्व प्रदान हुआ कि इस प्रकार के विद्यालयों के संचालन हेतु जनता पर 'कर' निश्चित करें। इस व्यवस्था के अन्तर्गत वस्तुतः उल्लेख-नीय संख्या में, उत्तम श्रेणी के विद्यालयों की स्थापना हुई और शिक्षा के जनप्रिय स्वरूप की अधिकाधिक प्रगति हुई। गत बीस वर्षों में ही विद्यालयों की संख्या दो गुने से भी अधिक हो गई तथापि इन विद्यालयों में उपर्युक्त विद्यालीय आयु के समस्त बच्चों को शिक्षित करने की पर्याप्त क्षमता वर्तमान थी। इतना होते हुए भी १८७० ई० के कानून —फोर्स्टर एजूकेशन ऐक्ट—ने न तो निःशुल्क शिक्षा, न अनिवार्य शिक्षा और न ही किसी धर्म निर्पेक्ष शिक्षा की व्यवस्था की। १८७० के बाद १८८० ई० में अनिवार्य शिक्षा की घोषणा की गयी और १८९१ ई० में तो यह निःशुल्क भी कर दी गयी।

सैनिक सुधार

इस मन्त्रिमण्डल ने अन्य बहुत से प्रजातांत्रिक प्रवृति के एवं अत्यन्त लाभ-प्रद सुधार किये। प्रशियन विधि के अनुसार सैनिक सुधार किये गये, यद्यपि अनिवार्य सैनिक सेवा का सिद्धान्त अभी स्वीकार न किया। सैन्याधिकारियों के अतिरिक्त सामान्य अफसरों के पद जिनका कि पहले क्रय किया जाता था अस्तु जिन पदों पर किसी समय धनिकों और कुलीनों का एकाधिकार स्थापित था, वे अब सामान्य जनता के योग्यता

सम्पन्न लोगों में वितरित किये जाने लगे। अब लोक सेवा पदों पर भी जो सामान्य जनता के व्यक्तियों को सार्वजनिक प्रतियोगिता परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर दिये जाने लगे धनवानों और कुलीनों का कोई विशेषाधिकार न रह गया। ऑक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विद्यालयों को राष्ट्रीय स्तर प्रदान किया गया। उसमें धार्मिक परीक्षाओं का अन्त कर दिया, जिनके फलस्वरूप उन पर इंगलैण्ड के चर्च का एकाधिकार स्थापित था। इस समय से इन विश्व विद्यालयों में किसी भी धर्म के अनुयायी अथवा धर्म में न भी विश्वास रखने वाले व्यक्ति भी प्रवेश पाकर उच्चशिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर पा सकते थे। ये विश्वविद्यालय अब समस्त अँग्रेजों की शिक्षा संस्थाएँ बन गये।

लोक सेवा पदों सम्बन्धी सुधार

विश्वविद्यालीय सुधार

अब आस्ट्रेलियन गुप्त मतदान प्रणाली का पहले पहले प्रयोग किया गया और इस प्रकार प्रत्येक मतदाता को अपना मत देने में पर्याप्त स्वतन्त्रता उपलब्ध हुई। पहले निर्वाचनों में मतदान की क्रिया, विधि सार्वजनिक एवं मौखिक रूप में थी किन्तु अब पहले की तरह लोगों को मतदाताओं को भड़का-फुसला कर तथा रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर लेने का कोई अवसर न रहा और गुप्त मतदान की व्यवस्था कर दी गई। इस मन्त्रिमण्डल का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य जिसने इसे देश में लोकप्रियता प्रदान की और जो वस्तुतः एक महान् राजनीतिक सफलता एवं दूरदर्शितापूर्ण कार्य सिद्ध हुआ, यह था कि इंगलैण्ड की सरकार ने संयुक्त राज्य अमरीका के साथ अल्बामा का मामला तय करने के लिये शान्ति एवं सम्पर्क स्थापन द्वारा विचार-विमर्श करने का मार्ग अपनाया। अतः यह नीति दो राष्ट्रों के मध्य शान्ति को स्थापना में अधिकाधिक सहायक एवं सफल होने के कारण राजनीतिक पटुता का एक प्रत्यक्ष चिह्न मानी जाती है। इंगलैण्ड के विरुद्ध गृह-युद्ध के समय संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक आरोपों के कारण जो कई वर्ष तक चलते रहे, दोनों देशों के मध्य भयंकर संघर्ष खड़ा हो सकता था। इन आरोपों और मतभेदों के निराकरण के लिये इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन ने सम्पर्क स्थापन द्वारा विचार विनिमय करने की नीति पर चलना स्वीकार किया। इतना होते हुए भी जब इस मामले के सम्बन्ध में जेनेवा कमीशन ने इंगलैण्ड के विरुद्ध अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की (१८७२ ई०) तो ग्लैडस्टन की सरकार जनमत का समर्थन न प्राप्त कर सकी। तथापि ग्लैडस्टन ने तत्सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ तो कर ही दिया था क्योंकि युद्ध के स्थान पर सम्पर्क स्थापन द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय जटिलताओं का समाधान करने के सिद्धान्त का आरम्भ करके उसने एक महानतम सफलता प्राप्त की थी। इस क्षेत्र में भी ग्लैडस्टन की सरकार ने मानव हितों की ही उन्नति की, यद्यपि इंगलैण्ड और स्वयं उसके मन्त्रिमण्डल को हानि भी उठानी पड़ी।

गुप्त मतदान की व्यवस्था होना

अल्बामा का मामला

सन् १८७४ ई० में ग्लैडस्टन मन्त्रिमण्डल का पतन हुआ और अब डिजरायली के नेतृत्व में रूढ़िवादी दल सत्तारूढ़ हुआ। डिजरायली की सरकार ने सन् १८७४ से १८८० ई० तक कार्य संचालन किया किन्तु यह ग्लैडस्टन की सरकार से उतनी ही भिन्न थी जितने कि दोनों के नेताओं के चरित्र। जहाँ ग्लैडस्टन ने पहले आयरी

समस्या के समाधान और गृह क्षेत्र के सुधारों पर अधिकाधिक बल दिया था, वहाँ अव डिजरायली ने देश की औपनिवेशिक समस्याओं और वैदेशिक क्षेत्र में प्रमुख रुचि लेना आरम्भ किया। उसने यह अनुभव किया कि इंगलैण्ड में दीर्घकाल से सोचे हुए उन राजनीतिक आदर्शों की स्थापना की उपयुक्त परिस्थिति और अनुकूल अवसर उपलब्ध था जिन्हें सक्षेप में साम्राज्य कहा जाता है। उसके इन राजनैतिक विचारों का तात्पर्य इंगलैण्ड को एक 'कूप-मण्डूक' राज्य न वनाये रखकर उसे एक विस्तृत साम्राज्य और विश्व शक्ति की स्थिति एवं शक्ति प्रदान करने को अधिकाधिक महत्त्व देना था। उसने सन् १८७२ ई० में एक वार स्वयं कहा था कि "मेरी समझ में ऐसा मन्त्री जो देश के औपनिवेशिक साम्राज्य के अधिकाधिक पुनर्निर्माण करने तथा उन सुदूरस्थ लोगों की सहानुभूतियाँ प्राप्त करने, जो स्वयं इंगलैण्ड की अपरिमेय शक्ति और सुख-समृद्धि के साधन वन सकते हैं; के अवसरों की उपेक्षा करता है, अपना ठीक-ठीक दायित्व पालन नहीं करता।"

डिजरायली सरकार

डिजरायली ने अपने शासन काल में इस सिद्धान्त का मन-वच-क्रम से पालन किया। यह आदर्श जो उसके द्वारा आन्शिक रूप में ही प्राप्त किया जा सका, पुनः सत्तारूढ़ होने पर (१८८० ई०) ग्लैडस्टन द्वारा भी आंशिक रूप में सिद्ध किया गया तथापि उसके पहली वार पद त्याग करने के समय से ही इंगलैण्ड के लोगों में साम्राज्यवाद के विचार स्थिर हो चुके थे। साम्राज्यवादी नीति ने अंग्रेजों की राजनीतिक विचारधारा को नवीन रूप प्रदान किया और इंगलैण्ड के राजनीतिक इतिहास में डिजरायली को मुख्यतः इसीलिये एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसने ब्रिटिश उपनिवेशों की ओर और लोगों का ध्यान अधिकाधिक रूप में अग्रसर किया। इस प्रकार वह विभिन्न देशों के सम्पर्क स्थापन की "प्राचीन लोगों की गम्भीर प्रवृत्ति" को इस समय पर भी जाग्रत करता था।

साम्राज्यवाद

उपनिवेशों की महत्ता पर बल

वैदेशिक क्षेत्र में उसकी प्रथम महान् सफलता—स्वेज नहर के हिस्से (Shares) खरीदने की थी। इंगलैण्ड के अप्रत्यक्ष विरोधों के विपरीत फ्रांसीसियों ने इस विशाल नहर का निर्माण किया था। स्वयं डिजरायली की भी इस सम्बन्ध में अपनी यही घोषणा थी कि यह कार्य फ्रांस के लिये असफलता का प्रतीक सिद्ध होगा। तथापि नहर वन जाने के वाद उसकी प्रारम्भिक सफलता स्वाभाविक थी। इसने पूर्वी देशों के साथ व्यापार की दशाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया और इन देशों तक पहुँचने वाले जलमार्गों की दूरी में पर्याप्त कमी की। अभी तक भारत, चीन और आस्ट्रेलिया के साथ व्यापार करने का प्रमुख मार्ग अफ्रीका के किनारे-किनारे उसके दक्खिन में उत्तमाशा अन्तरीप में होकर जाता था और यह एक लम्बी यात्रा थी। कुछ लोग लाल सागर में होकर जाते थे किन्तु सिकन्दरिया के स्थान पर जलपोतों को उथले समुद्र से निकलने में वाधा होती थी। तथापि अव इस नहर द्वारा जो पर्याप्त गहरी थी; हर प्रकार के जलपोत निकलने लगे। कुल जितने भी टन व्यापारिक माल इस नहर द्वारा निकलता था उसका तीन चौथाई भाग इंगलैण्ड का ही माल होता था।

स्वेज नहर के हिस्सों का इंगलैण्ड द्वारा क्रय

भारत को पहुँचने की यह एक सीधी सड़क बन गयी थी। स्वेज नहर की औद्योगिक संस्था ने चार लाख हिस्से रखे थे जिनके अधिकांश भाग को मिस्र के शासक खदीब ने खरीद रखा था किन्तु इससे खदीब अब प्रायः दीवालिया हो चुका था। फलतः सन् १८७५ ई० में डिजरायली ने खदीव से तार द्वारा सम्पर्क स्थापित करके ४ लाख पौंड पर १ लाख सतहत्तर हजार हिस्से क्रय कर लिये। इंगलैण्ड के लोग जब इससे अवगत किये गये तो उन्होंने इसके पहले इस सम्बन्ध में कल्पना भी न की थी, तथापि वे इसकी इसलिये प्रशंसा करने लगे कि यह वस्तुतः फ्रांस के औपनिवेशिक एवं औद्योगिक विकास के प्रतिबाधित करने का प्रवल साधन था। कहा जाता था कि इस नहर के बन जाने से भारत को जाने के लिये स्थल मार्ग भी सुरक्षित हो गया। इंगलैण्ड के इस कार्य की राजनैतिक महत्ता यह थी कि इससे कम से कम इंगलैण्ड और मिस्र के भावी सम्बन्धों के विषय में एक निश्चित सिद्धान्त की कल्पना की गयी और ऐसा प्रतीत होता था कि इस कार्य ने साम्राज्यवादी स्वार्थ पूर्ति को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त डिजरायली की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा तथा उसके शासन की प्रमुख विशेषता भी यही थी।

इसी समय डिजरायली ने इंगलैण्ड के प्रमुख उपनिवेश भारत की महत्ता पर कुछ दूसरे ही रूप में बल देने का निश्चय किया। उसने इंगलैण्ड के शासक को एक नवीन एवं गौरवपूर्ण पद से विभूषित करने का प्रस्ताव रखा। महारानी विक्टोरिया ही भारत की भी साम्राज्ञी उद्घोषित होनी थीं। इस प्रस्ताव का विरोधी दल ने इसे "सस्ता" और "अत्यंतसस्ता" प्रस्ताव अर्थात् सत्ता का व्यर्थ प्रयोग कह कर इसका विरोध किया। अब प्रश्न यह था कि क्या सम्राट् अथवा साम्राज्ञी का पद इंगलैण्ड के शासकों द्वारा सहस्त्रों गौरवपूर्ण वर्षों तक धारण नहीं किया जाता रहा? विरोधी-पक्ष का कहना था कि यह कोई नई बात न होने के कारण इस सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित करना कोई महत्त्व नहीं रखता है तथापि डिजरायली ने यह स्पष्ट करते हुए इस प्रस्ताव पर विशेष बल दिया कि—इंगलैण्ड की समस्त जनता का दृढ़ निश्चय यही है कि वह भारत राज्य के साथ अपने सम्बन्ध अक्षुण्ण रक्खे। इसके साथ ही साथ यह विधेयक उन कोरे अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों को एक यथोचित उत्तर होगा जो यह कहते हैं कि हम लोगों के लिये, भारत या तो भारस्वरूप है और या फिर यह भय का प्रतीक है। इस विधेयक को पारित करके सदन समुचित रूप में यह प्रत्यक्ष करेगा कि इंगलैण्ड की जनता और सरकार भारत को अपना एक बहुमूल्य उपनिवेश समझती है और इस बात पर गर्व करती है कि वह उसके साम्राज्य के एक अभिन्न अंग के रूप में ब्रिटिश साम्राज्ञी द्वारा शासित है।

महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी होने की घोषणा

इस प्रस्ताव की आधारशिला वलवती न थी, तथापि इससे महारानी को अत्यधिक सन्तोष मिला। फलतः यह नियम बना दिया गया और १ जनवरी १८७७ ई० के दिन महारानी ने भारत में आकर इस नियम के अनुगत इस नवीन पद को स्वीकार किया और यहाँ के राजाओं तथा महाराजाओं की एक विशाल सभा के मध्य इसकी राजकीय उद्घोषणा करवायी।

डिजरायली यूरोप में एक सक्रिय नीति का अनुगमन करना चाहता था। पूर्वी

समस्या की पुनरवृत्ति ने उसे तत्सम्बन्धी अवसर सुलभ कर दिया। इस समस्या को १८७६ ई० में टर्की के एकीकरण के प्रश्न की संज्ञा भी दी जाती है। यूरोपीय राज्यों के राजाओं और राजनीतिज्ञों ने इस दिशा में पिछले दो वर्षों से अधिकाधिक रुचि लेने के नाते कुछ कार्यवाहियाँ भी की थीं जिसके परिणामों से इंगलैण्ड विशेष रुचि रखता था। १९वीं शताब्दी में पूर्वी समस्या के सामान्य इतिहास के साथ ही साथ इंगलैण्ड की तत्सम्बन्धी नीति का अध्ययन[1] भली-भाँति किया जा सकता है।

पूर्वी समस्या की पुनरावृत्ति

प्रधान मंत्री डिजरायली जो १८७६ ई० में लार्ड बेकंसफील्ड के पद से विभूषित किया गया था, १८८० ई० तक पदासीन रहा। जो बल वह साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक समस्याओं पर इस समय दे रहा था उसे इंगलैण्ड की आगामी पीढ़ी और भावी इतिहास में पर्याप्त प्रभावशाली बनना था। गत: ३९ वर्षों में ये साम्राज्यवादी एवं औपनिवेशिक आयरी समस्याओं के साथ प्रतिद्वन्द्विता करके इंगलैण्ड के राजनीतिक वाद-विवादों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में सफल हुए।

सन् १८८० ई० में उदारवादी पुन: सत्तारूढ़ हुए था ग्लैडस्टन अब दूसरी बार इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री पद पर आरूढ़ हुआ।

ग्लैडस्टन की महान्तम योग्यता, जैसा कि उसके पिछले मंत्रिमण्डल से ज्ञात होता है, उसके गृह क्षेत्र के सुधारों से व्यक्त होता है उसके विचार राष्ट्रोत्थान की दृष्टि से इसी दिशा में अग्रसर थे। शान्ति, सेना में कमी, और आंतरिक सुधार आदि विषयों ने जो उसके दल के मौलिक सिद्धान्त थे, अब उसके उस कार्यक्रम को प्रस्तुत किया जिसे वह इस बार संचालित करना चाहता था। तथापि अब यह सम्भव न था। देश की आन्तरिक उन्नति से सम्बन्धित कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नियम आगामी पाँच वर्षों में पारित हुए तथापि इन वर्षों में साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक समस्याएं ने उसके साथ-साथ युद्धों की प्रधानता सर्वाधिक रूप में रही। ग्लैडस्टन को अपने पूर्वगत शासन की अपेक्षा इस बार कहीं अधिक वैदेशिक क्षेत्र में अधिकाधिक तत्परता से ध्यान देना पड़ा। एशिया और अफ्रीका की गम्भीरतम समस्याओं ने इसके ध्यान को अधिकाधिक केन्द्रित किया। ये समस्याएं ब्रिटिश साम्राज्य के विषय में एक पृथक अध्याय में अध्ययन की जायेंगी।

ग्लैण्डस्टन का दूसरा मंत्रिमण्डल (१८८०-८५)

आन्तरिक सुधारों के सम्बन्ध में इस मंत्रिमण्डल ने दो नियमों को पारित करके अपने अपूर्व कौशल का परिचय दिया—१८८१ का आदर्श भूमि-कानून और सन् १८८४-८५ ई० के सुधार।

ग्लैडस्टन के पिछले मंत्रिमण्डल द्वारा बनाये गये नियमों से आयरलैण्ड की दशा में सन्तोषजनक उन्नति न हुई थी। १८७० ई० के भूमि कानून ने कोई स्थायी व्यवस्था न करके महान् निराशा ही उत्पन्न की थी। इसने यह केवल सामान्य व्यवस्था ही की थी। कृषक यदि लगान न दे पाने के कारण भूमि से वंचित किया जाता तो भूमिपति उसे कुछ भी क्षतिपूर्ति (मुआविजा) न देता था किन्तु यदि वह

1. देखिए—इसी पुस्तक का ३२वाँ अध्याय।

अन्य कारणोंवश अपने कृषक को भूमि से पृथक करता था तो उसे कृपक को क्षति-पूर्ति देनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त भूमि पर कृपक द्वारा किये गये उसकी उपयोगिता सम्बन्धी निर्माणों के लिये भी भूमिपति को उसे क्षति-पूर्ति देना आवश्यक था। कहने का तात्पर्य यह है और यथार्थतः यह नियम कृषक को उसके भूमि पर उत्पादन करते रहने के किसी स्थायी अधिकार को देने के सर्वथा अपर्याप्त था।

१८७० के भूमि कानून की असफलता

इस नियम ने भूमिपतियों को लगान (भूमिकर) बढ़ाने से किंचित प्रतिवाधित न किया; इस प्रकार कृषक की स्थिति और भी चिन्ताजनक हो गई और अन्ततः उसे इतनी ऊँची दर पर बढ़े हुए लगान को दे पाने की असफलता अपनी भूमि से वंचित अथवा पृथक कर देती थीं। कृषक को स्थायी रूप से कृषि करने का कोई अवसर न था। आगामी नवीन भूमि कानून जो १८८१ ई० में पारित हुआ, उसमें ग्लैडस्टन ने आयरी कृषकों द्वारा पहले प्राप्त की गयी सुविधाओं के साथ-साथ ये अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकार भी इस वर्ष उन्हें सुलभ हो गये—एक उचित दर एवं स्थायी दर की लगान-प्रणाली जो भूमिपति की स्वेच्छापूर्वक बदलती न रह सके, भूमि अधिकार (जो कृषक को प्राप्त है) के विक्रय की स्वतन्त्रता जिससे कि वह प्रत्येक कृषक जब चाहे तो अपने भूमि पर कृषि करने के अधिकार को किसी अन्य कृषक के हाथ बेच सकता है आदि सुविधाएँ। इन सुधार कानूनों से कि

सन् १८८१ ई० का भूमि कानून

स्थाई एवं उचित दर की लगान-प्रणाली और कृषकों को भूमि अधिकार को क्रय-विक्रय की स्वतन्त्रता, उस समय के कृषकों की माँगों का सन्तोषप्रद प्रतिनिधित्व किया गया किन्तु यह अधिक समय तक लाभप्रद एवं सफल न रह सका। अतः ऐसी दशा में इस कार्य के लिये एक इस विशिष्ट कार्य-संचालन हेतु पृथक् न्यायालय की व्यवस्था की गयी कि वे लगान का जो निर्धारण करेगे उससे अधिक अथवा कम धनराशि देय न होगी। एक बार निश्चित किया गया लगान अगामी १५ वर्षों तक अपरि-

न्यायालय द्वारा लगान-निर्धारण

वर्तनीय रह सकता था। इसके फलस्वरूप कृषक (आयरी) साधारणतः इस दीर्घकालीन अवधि के अन्तर्गत भूमि से पृथक (बेदखल) न किये जा सकते थे, किन्तु लगान न दे पाने की दशा में उनका भूमि से पृथक्करण अवश्यम्भावी था। इसके साथ ही साथ १८७० के भूमि कानून की भाँति कृषक को भूमि पर स्वामित्व प्रदान करने के अधिकार के संरक्षण करने का उपबन्ध भी रक्खा गया। कृषक को भूमि को क्रय करने की क्षमता प्रदान करने हेतु ब्रिटिश सरकार की ओर से कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत इस ग्लैडस्टन सरकार द्वारा कृषकों को बहुत कम दामों पर भूमि देने की व्यवस्था की गई और उन्हें भूमिपति से भूमि का क्रय करने और भूमि का स्वामित्व अधिकार पाने की ओर प्रोत्साहन दिया गया।

सन् १८८१ ई० का भूमि विधेयक पर्याप्त विरोध होने पर भी पारित हो गया। इसका विरोध मुख्यतः भूमिपति द्वारा ही किया गया जिन्होंने यह विचार किया कि लगानों की कमी उनकी अपनी स्वेच्छा से न की जा कर जब

सन् १८८१ ई० के भूमि कानून को सम्पत्ति का अपहरण बतला कर भूमिपतियों द्वारा इसका घोर विरोध

न्यायालयों द्वारा की जायेगी तो इससे उन्हें अत्यधिक आर्थिक हानि का भागी होना पड़ेगा, अतः भूमिपतियों ने इसे सम्पत्ति के राजकीय अपहरण का नाम दिया और इसकी तीव्र आलोचना की। उनका कथन था कि यह कानून ऐसा है कि इसने भूमिकर का निर्धारण अन्य वस्तुओं के मूल्य की भाँति माँग और पूर्ति के नियम के अनुसार नहीं किया। ये वे लगान न थे जो भूमिपति की माँग और कृषक की उसे पूरा करने की सहमति के अनुसार निश्चित किये जाते हों अपितु इन लगानों का निर्धारण भूमि और राज्य से कोई सम्बन्ध अथवा अभिरुचि न रखने वाले न्यायाधीशों द्वारा औचित्य और अनौचित्य के विवेक से ही किया जाता था। इस विधेयक की आलोचना इसलिये भी अधिक की जाती थी कि इसने द्वैध स्वामित्व स्थापित करके इस नियम द्वारा अविवेकपूर्वक भूमि-सम्पत्ति का प्रकार ही परिवर्तित कर दिया।

१८८४ ई० का सुधार-कानन

अब ग्लैडस्टन ने १९ वीं शताब्दी के उन महान् कानूनों में से तीसरा कानून पारित करवाया। उन्होंने कालान्तर में इंगलैण्ड को कुलीनतन्त्र से परिवर्तित करके लोकतन्त्र का रूप प्रदान कर दिया। १८३२ के सुधार कानून ने मध्यम वर्ग के अधिक सम्पन्न व्यक्तियों को मताधिकार दिया, किन्तु १८६७ में ब्रिटिश सरकार ने बोरों में रहने वाले श्रमिक वर्ग तथा मध्यम वर्ग के निम्न श्रेणी के सहस्रों व्यक्तियों को मतदान का अधिकार देने के लिये जो नियम बनाया था उसने काउण्टियों अथवा ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली जनता को कोई विशेष लाभ न पहुँचाया। बोरों में काउण्टियों की अपेक्षा मताधिकार की विस्तृत व्यवस्था थी और उनमें रहने वाले श्रमिकों को मताधिकार प्राप्त था किन्तु काउण्टियों में रहने वाले कृषक इस अधिकार से वंचित थे। इस प्रकार का विभेद रखने में कोई स्पष्ट कारण भी न था अतः ग्लैडस्टन के मन्त्रिमण्डल ने काउण्टियों के विषय में १८८४ ई० में एक महत्त्वपूर्ण नियम पारित किया। इस नियम ने दो प्रकार के निर्वाचन क्षेत्रों (बोरों और काउण्टी) के मध्य उपर्युक्त भेद को समाप्त करने की चेष्टा की और काउण्टियों में भी वही मताधिकार पद्धति प्रचलित की जो कि बोरों निर्वाचन क्षेत्रों में थी। फलतः हर प्रकार के श्रमिकों को चाहे वे नगरवासी थे अथवा ग्रामवासी, मतदान करने का अधिकार सुलभ हो गया। काउण्टियों की मताधिकार व्यवस्था जो पहले उच्च सम्पत्ति योग्यता को भी विचार में रखती थी अब बोरों की मताधिकार व्यवस्था के समरूप बना दी गयी। इस नियम के

काउण्टियों में मताधिकार का विस्तार

लागू होने का फल यह हुआ कि काउण्टियों के मतदाताओं की संख्या अब पहले से दो गुनी हो गयी। ये मतदाता जो पहले तीन लाख से कुछ ही अधिक थे अब पाँच लाख से भी अधिक बढ़ गये। इस प्रस्ताव के पारित होते समय ग्लैडस्टन का एक प्रमुख एवं अकाट्य तर्क यह था कि "यह नियम जनमत एवं जनता की भावना में सरकार की व्यापक एवं गहन नीति के प्रति स्थायी श्रद्धा उत्पन्न करके, इंगलैण्ड के उस प्राचीन राजतन्त्र के अन्तर्गत सर्वसाधारण लोगों को सुदृढ़ समाज के रूप में संगठित करेगा, जिसे कि वे सदैव से प्रेम करते आये थे। "इसके साथ ही साथ वे ऐसे नवीन विधान के अन्तर्गत ही अपना सुसंगठित एवं समुन्नत रूप प्राप्त करेंगे जो कि अपने क्षेत्र में सदैव ही शक्तिशाली और स्वतन्त्र रहा है।"

मताधिकार की विभिन्न योग्यताएँ

सन् १८८४ ई० से अभी तक इंगलैण्ड के मताधिकार का कोई विस्तार नहीं किया गया है। वहाँ अब भी ऐसे अनेक लोग हैं जो विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति-योग्यताएँ न रहने के कारण मताधिकार से वंचित है और यह स्मरणीय रहे कि इंगलैण्ड में सार्वजनिक मतदान की वयस्काधिकार की व्यवस्था जैसी कोई वस्तु नहीं है। वहाँ वे लोग ही मत दे सकते है जो सन् १८३२-१८६७ और १८८४ ई० के कानून में दी हुई सम्पत्ति योग्यताएँ रखते हैं। यहाँ मताधिकार की ऐतिहासिक दशाएँ हैं, न कि समाजिक। बहुतों को तो कई मत देने का अधिकार है जबकि बहुत से अन्य लोग मताधिकार से वंचित हैं। इंगलैण्ड में समस्त वयस्क पुरुषों को मताधिकार दिये जाने की प्रबल माँग है। स्त्री-मताधिकार की कोई उचित व्यवस्था न होने के कारण वहाँ सक्रिय आन्दोलन चल रहे हैं तथापि वहाँ के उदार-दल ने एक-एक पुरुष को अनेक मताधिकार दिये जाने की व्यवस्था का उन्मूलन करने का निश्चय कर लिया है। १८८५ ई० से वहाँ संसदीय सीटों का भी पुनर्वितरण नहीं हुआ है। इंगलैण्ड में जैसी कि प्रत्येक जनगणना के बाद संयुक्त राज्य अमरीका में व्यवस्था है, जनसंख्या के आधार पर संसदीय सीटों का पुनर्वितरण और मतदाताओं का निश्चय करने का भी उपबन्ध नहीं है। इंगलैण्ड के कुछ निर्वाचन जिले अब भी दूसरों की अपेक्षा १० गुने अथवा १५ गुने बड़े हैं और यहाँ के कुछ निर्वाचन जिलों में तो केवल १३००० निर्वाचन क्षेत्र ही हैं किन्तु कुछ दूसरे जिलों में २१७,००० निर्वाचन क्षेत्र होते हैं।

लार्ड सेलिसबरी का प्रथम मन्त्रि-मण्डल

ग्लैडस्टन का यह द्वितीय मन्त्रिमण्डल १८८५ ई० में सत्ताच्युत हुआ। कुछ महीनों के रूढ़िवादी दल का नियंत्रण स्थापित हुआ और उसका नेतृत्व लार्ड सेलिसबरी द्वारा किया गया किन्तु १८८६ ई० में जब नये निर्वाचनों की व्यवस्था सम्पन्न हो गई तो ग्लैडस्टनपुनः सत्तारूढ़ हो गया। वह इस समय तीसरी बार इंगलैण्ड के प्रधान-मन्त्रित्व के लिये निर्वाचित किया गया।

'होमरूल' आन्दोलन

अब की बार यह आयरी समस्या में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक उलझा। इस समय आइरी लोग सरकार में एक भारी परिवर्तन करना चाहते थे। वे अब स्वशासन (Home Rule) की माँग कर रहे थे, जिनके माध्यम से वे आयरलैण्ड की आन्तरिक व्यवस्था स्वयं ही कर सकें। उनकी डबलिन में आयोजित की जाने वाली संसद के १८०० ई० के संयोजन कानून द्वारा समाप्त हो जाने से आयरियों को गहरा आघात पहुँचा था। १९वीं शताब्दी की प्रबल राष्ट्रीय विचारधारा ने उन पर अप्रत्याशित प्रभाव डाला। वे ऐतिहासिक एवं अपने निजी कारणोंवश अंग्रेज संसद और विदेशियों की आधीनता में रहने की वास्तविकता से घृणा करते थे। आयरलैण्ड का इंगलैण्ड से प्रथक्करण नहीं चाहते थे और केवल इतना ही चाहते थे कि आयरी मामलों के निश्चय के लिये एक पृथक रूप में देश की संसद स्थापित हो। इस माँग की आधार-शिला यह थी कि आयरी समस्याओं को ठीक-ठीक समझने की क्षमता और उपयुक्त समय इंगलैड की संसद के पास कदापि न था। होमरूल दल की संख्या शनैः-शनैः बढ़ती गयी और इस रूप में कई साल बीतने के बाद १८७९ ई० से चार्ल्स स्टुअर्ट पार्नेल (Charles Stuart Parnell) ने इसका नेतृत्व करना आरम्भ किया जो अन्य महान् आयरी नेताओं की भाँति न तो उच्च वक्तृता रखता था और न ही नम्र स्वभाव

प्रत्युत वह एक जिद्दी, जटिल एवं कठोर अथवा दृढ़ स्वभाव का व्यक्ति था। उसके नेतृत्व में उपर्युक्त दल की संख्या, संगठन शक्ति और दृढ़ निश्चयों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। पार्नेल इस दल की इतनी अधिक वृद्धि करने का प्रवल इच्छुक था कि यह कामन सभा के साथ आयरी जनमत का शक्ति संतुलन कर सके। १८८६ ई० में जो संसद का अधिवेशन हुआ उसमें आयरलैण्ड ने होमरूल शासन के समर्थकों ने यह स्थिति प्राप्त कर ली थी। यह लोग रूढ़िवादी दल के साथ सम्मिलित हो जाते तो दोनों दल मिलकर उदारवादी सदस्यों के बरावर थे किन्तु रूढ़िवादियों से उन्हें सहायता मिलने की कोई आशा न होने के कारण अब वे उदारवादियों के ही पक्ष में सम्मिलित हो गये।

होमरूल के प्रतिपादकों का शक्ति-संतुलन स्थापित करना

ग्लैडस्टन ने १ फरवरी १८८६ ई० से अपने तृतीय शासन का आरम्भ किया। यह उसका अत्यंत अल्पजीवी एक मन्त्रिमण्डल था जो छः मास से भी कम समय तक सत्तारूढ़ रह सका। इस समय यह आयरी समस्या में ही दत्तचित रहा। इसी पूर्वगत निर्वाचन में जबकि आयरलैण्ड को १०३ प्रतिनिधियों का चुनाव करना था, उनमें से उसने अपने होमरूल आन्दोलन के ८५ नेताओं को निर्वाचित करके अपनी वास्तविक भावना का प्रदर्शन किया। लोकतंत्रीय मतदान को प्रभावित करने वाले इन निर्वाचनों के प्रतिफल से ग्लैडस्टन अत्यंत सन्तुष्ट था। उसने अपने पिछले वनाये गये नियमों द्वारा आयरी शासन इंगलैण्ड के विचारों के आधार पर न करके आयरी जनता की पम्पराओं के आधार पर ही करने का प्रयास किया था। उसका विश्वास था कि इंगलैण्ड के इतिहास में 'आयरी प्रकरण' जैसा कि यह वस्तुतः था अंग्रेजों की जड़ता, द्वेष, अदूरदर्शिता का ही परिचायक होगा। उसकी हार्दिक भावना शांतिपूर्ण ढंगों से समाधान करने की ही थी इसके अतिरिक्त उसके पास दो ही मार्ग थे—आयरियों के अनुसार उनकी शासन-प्रणाली में और अनेक सुधार करना अथवा उनकी वह पुरानी एवं दुःखद स्थिति उत्पन्न करना जिसने उनका कठोर किन्तु असफल दमन ही किया था। ग्लैडस्टन इस कठोर विधि को अब अधिक न अपनाना चाहता था अतः उसने आयरलैण्ड की प्रत्यक्ष भावना के अनुसार उसे स्वशासन की सुविधाएँ देने का प्रयास किया। ८ अप्रैल १८८६ के दिन उसने संसद में आयरी स्वशासन विधेयक को प्रस्तुत करते हुए यह घोषण की इसके बाद एक भूमि-विधेयक प्रस्तुत होगा और दोनों विधेयक एक ही योजना के अन्तर्गत एक दूसरे के सम्पूरक हैं।

ग्लैडस्टन का तीसरा मन्त्रिमण्डल

स्वशासन अथवा अशांति

होमरूल विधेयक का प्रस्तुतीकरण

इस प्रकार प्रस्तुत किये गये विधेयकों में एक ऐसी आयरी संसद का उपवन्ध रखा गया था जो डवलिन में आयोजित होनी थी तथा जिसे अपने मंत्रिमण्डल के नियन्त्रण के साथ-साथ केवल आयरी स्वशासन सम्बन्धी मामलों के सम्बन्ध में ही निर्माण करने थे किन्तु उन्हें अपने द्वीप के साम्राज्यवादी हितों से कोई मतलब न था। इसी समय एक वाधा उत्पन्न हुयी। यदि आयरियों को अपने आन्तरिक मामलों के लिए अपनी पृथक विधान सभा रखनी थी तो क्या अब भी उन्हें लन्दन की संसद में सम्मिलित होना था जिसमें उन्हें

क्या आयरी सदस्य इंगलैण्ड में ही अपनी संसद आयोजित करते ?

अँग्रेजों तथा स्काटलैण्डवासियों की समस्याओं में भी पड़ना पड़ता। इसके अतिरिक्त यदि वे लन्दन की संसद में बिलकुल न सम्मिलित होते तो उन्हें सारे साम्राज्य के लिए नियम निर्माण करने के अधिकार से वंचित रहना पड़ता। इस सम्बन्ध में मि० मोर्ले ने कहा था कि यह "एक ऐसी गुत्थी थी जो पहले पहल पैदा हुयी थी किन्तु जिसे सदैव ही विद्यमान रहना था।" इस विधेयक ने यह निश्चित कर दिया था कि आयरी सदस्य लन्दन की संसद से पृथक कर दिए जाएँगे। कुछ विषयों में आयरी संसद को नियम बनाने का अधिकार न था जैसे कि ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट् सम्बन्धी प्रश्न, उसके सेना, जल सेना, वैदेशिक एवं औपनिवेशिक विभाग। इसके अतिरिक्त वे न तो किसी राजकीय स्तर पर धर्म की स्थापना कर सकते थे और न ही उसकी आर्थिक सहायता कर सकते थे।

भूमि क्रय-विधेयक

इस प्रकार शासन की केवल नवीन व्यवस्था करके ग्लैडस्टन को यह विश्वास न था कि वह आयरी समस्या का ठीक-ठीक हल कर सकेगा। एक गम्भीर सामाजिक प्रश्न ऐसा था जो इस व्यवस्था द्वारा हल न हो सकता था। यह था भूमि का प्रश्न, जिसके विषय में आयरियों को कोई सन्तोष न हो पाया। अतः उसने अविलम्ब एक भूमि विधेयक प्रस्तावित किया। जिसके क्रय द्वारा भूमि को भूमिपति से कृषक के पास हस्तान्तरित करने का विस्तृत अवसर सुलभ होना था और जिससे राज्य को भी लगभग १२ करोड़ पौण्ड व्यय करना पड़ता।

विधेयकों का संसद में विरोध

इस विधेयक ने, जिसके पारित हो जाने से आयरलैण्ड की भूमि-व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन होना अवश्यम्भावी था इंगलैण्ड के संसदीय इतिहास में एक प्रबलतम संघर्ष उत्पन्न कर दिया। संसद के सदस्यों को विश्वास दिलाया गया कि ये नियम आवश्यक थे और आयरलैण्ड को स्थायी शान्ति एवं सन्तोष देने के लिये इनका अंतिम रूप में पारित होना आयरलैण्ड और इंगलैण्ड के एकीकरण को दृढ़ करने के विचार से विशेष लाभप्रद था। इस विधेयक के समर्थकों का कहना था कि अन्यथा इंगलैण्ड के पास आयरलैण्ड का दमन करने वाला एक ही मार्ग रह जाता है और वह उसकी असफलता का प्रतीक होगा। इसके अतिरिक्त कुछ सदस्यों की ऐसी धारणा थी कि इन विधेयकों द्वारा इंगलैण्ड और आयरलैण्ड के एकीकरण के हो भंग होने का भय था अतः उन्होंने इसका सबसे अधिक विरोध किया संसद से आयरी सदस्यों का पृथक्करण बहुत से सदस्यों को ऐसा प्रतीत होता था कि वह इन दोनों देशों को संयोजित रखने वाले सम्बन्धों को ही समाप्त कर देता था। क्या यह विधेयक इंगलैण्ड के विघटन का कारण न था? कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी अँग्रेज राजनीतिज्ञ इस प्रकार का विचार न प्रस्तुत कर सका। ग्लैडस्टन का विचार था कि ये विधेयक, इन दोनों जातियों को जो सदियों से एक संयुक्त व्यवस्था में रह रही थीं, एक दूसरे के निकट लाने में सहायक थे और इन नियमों में इंगलैण्ड की शक्ति के ह्रास की सम्भावना थी। अभी तक इंगलैण्ड की आयरलैण्ड सम्बन्धी नीति ने पृथकता, घृणा और आत्मिक समष्टि का विनाश ही किया है। इसके विरोधियों का कथन अब भी यही था कि आयरी सदस्यों को इंगलैण्ड की संसद से पृथक करना उनकी पृथक संसद, पृथक विधानसभा पर उनके नियंत्रण, उनकी

पृथक कार्यपालिका, न्यायपालिका और पुलिस का विधान, उन्हें उनके देश को इंगलैण्ड से पृथक करने में सहायक था। ये विरोधी सदस्य कहते थे कि आप उन्हें इंगलैण्ड के साम्राज्य सम्बन्धी मामलों से पृथक करके उन्हें अपने स्थानीय (आयरलैण्ड) देश प्रेम को ही अधिकाधिक जाग्रत कर रहे हैं। यह सत्य है कि इस विभाजन से साम्राज्य का कुछ भार आयरी लोग भी वहन कर सकते थे। क्या यह उपवन्ध किंचित लाभप्रद है ? क्या उससे आयरी लोग कोई शिकायत न करेंगे—उन पर बिना प्रतिनिधित्व के कर बाँधा जायगा तो क्या पुरानी कठिनाई पुनः न उत्पन्न हो जायगी ? विरोधियों ने ग्लैडस्टन से कहा कि अपने आयरलैण्ड के प्रोटेस्टेण्टों की पूर्ण उपेक्षा करके उन्हें नवीन आयरी संसद में कैथोलिकों के बहुमत के प्रतिशोध के लिये छोड़ दिया है। यह निश्चत है कि आपने आयरलैण्ड में सहिष्णुता की भी व्यवस्था की है तथापि यह व्यवस्था केवल पत्र लिखित ही है और पत्र को भी सार्थक नहीं कर सकती कि जिस पर लिखी गयी है।

आयरलैण्ड तथा इंगलैण्ड का एकीकरण भयग्रस्त

इस बिल का सबसे अधिक विरोध करने वाले असंख्य वे अंग्रेज थे जो आयरियों के प्रति घृणपूर्ण विचार रखते थे। उनकी दृष्टि में आयरलैण्ड के निवासी विद्रोही थे, अंग्रेजों के साम्राज्य के प्रति भक्तिहीन थे, वे साम्राज्य की सम्पत्ति या सम्राज्य के हितों का अपहरण करने के लिये हर समय तैयार रहते थे और यदि उन्हें शासन सत्ता प्राप्त हो गयी तो वे निश्चय ही अंग्रेजों से पुरानी दुश्मनी का बदला लेगे और वहाँ के प्रोटेस्टेण्टों को अत्यधिक पीड़ित करेंगे। इसी भय से इंगलैण्ड का प्रबल लोकमत इस बिल का विरोधी था और इसी कारण ग्लैडस्टन को इसे पारित करवाने में सफलता न मिल सकी।

आयरियों के प्रति अंग्रेजों की घृणा

इंगलैण्ड के इतिहास में इस होमरूल विधेयक के प्रस्ताव ने एक अभूतपूर्व कटुता को जन्म दिया। केवल एक व्यक्ति को छोड़कर समस्त रूढ़िवादियों ने इसका विरोध किया और यह इस प्रस्ताव का ही फल था कि उदारवादी दल का भी विघटन आरम्भ हो गया। लगभग सौ उदारवादी सदस्यों ने इस समय ग्लैडस्टन का नेतृत्व छोड़कर रूढ़िवादी दल में प्रवेश किया और ये अपने को 'उदार एकतावादी' कहने लगे। उदारवादियों के लिये वे कहते थे कि उन्होंने इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करके इंगलैण्ड और आयरलैण्ड के विघटन और संयोजन का कोई ध्यान नहीं रक्खा है और इसके पारित होने से विघटन अवश्यम्भावी था। इसका परिणाम अन्ततः यह हुआ कि इस विधेयक के विपक्ष में ३४३ मत आये और पक्ष में केवल ३१३। ऐसी दशा में उस विधेयक का अस्वीकृत होना स्वाभाविक था।

उदारवादी दल का विघटन

ग्लैडस्टन ने संसद को भंग कर दिया और होमरूल बिल के विषयों में जनमत को प्रभावित करने की चेष्टा की। मतदाताओं के समक्ष यह विधेयक उदारवादियों द्वारा प्रकट एवं पर्याप्त रूप में विचार हेतु प्रस्तुत किया गया और इस बाद में भी उन्हें मुँह की खानी पड़ी। ग्लैडस्टन की नीति का विरोध करने वाले १०० सदस्य रूढ़िवादियों में मिल गये और उदारवादी दल का बहुमत समाप्त हो गया।

रूढ़िवादी दल सत्तारूढ़

इस होमरूल विधेयक का प्रस्ताव इंगलैण्ड की राजनीति में महान् परिवर्तन का कारण हुआ। अगामी २० वर्षों तक प्रायः उदारवादी दल निश्चेण्ट बन गया। इस दल का एक बहुत बड़ा भाग जो विचारों में बहुत कम प्रजातांत्रिक था, अब रूढ़िवादी दल में जा मिला और उसने रूढ़िवादियों के साथ मिलकर यूनियानिस्ट मन्त्रिमण्डल बनाया। इस सरकार ने एक सामान्य सत्ता हस्तान्तरण को छोड़कर दीर्घकाल तक इंगलैण्ड का शासन किया। यूनियनिस्टों ने साम्राज्य विस्तार की एक नवीन नीति का अनुसरण किया। उन्होंने उस संयोजन अथवा एकीकरण को अक्षुण्ण रक्खा था जिसे कि उन्हें होमरूल बिल के पारित होने से भंग होने की आशंका थी। इस दिशा में वे और भी आगे बढ़े और अब साम्राज्य-विस्तार की नीति के प्रतिपादक बन गये। इसके दूसरी ओर इन अधिक कुलीनतन्त्रवादी तत्वों के पृथक्करण से उपर्युक्त उदार दल अधिकाधिक प्रजातांत्रिक बन गया। इन दोनों दलों के पृथक्करण का उपर्युक्त आधार भी दृढ़ होता गया। इस समय उदारवादी दल अत्यन्त ही अल्पसंख्यक था।

सेलिसबरी की दूसरी सरकार (१८८६-९२)

ग्लैडस्टन के पदच्युत हो जाने पर लार्ड सेलिसबरी सत्तारूढ़ हुआ और वह रूढ़िवादी अथवा यूनियनिस्ट दल सरकार का नेतृत्व करने लगा। इस मन्त्रिमण्डल के समक्ष भी आयरलैण्ड की वही समस्या उत्पन्न हुयी जोकि ग्लैडस्टन के सामने उपस्थित थी। तथापि यह सरकार क्षण-मात्र के लिये भी आयरलैण्ड के स्वशासन सम्बन्धी प्रस्ताव को स्वीकार करने को तैयार न थी अतः इसे वही पुराना मार्ग—दमन, बल प्रयोग आदि का अपनाना स्वाभाविक था। इस सरकार ने आयरलैण्ड में स्वतन्त्रताओं और सुविधाओं का दमन किया जो इंगलैण्डवासियों द्वारा उपभोग की जा रही थीं। इस मन्त्रिमण्डल की नीति सर्वथा नकारात्मक ही न थी। इसने यह विचार किया कि यदि आयरलैण्ड की एक मात्र समस्या—भूमि का प्रश्न एक बार पूर्णतया सुलझा दिया जाये तो उनकी राजनैतिक सुधारों की नवीन माँग दब जायेगी। इस लक्ष्य पूर्ति के विचार से उन्होंने दृढ़तापूर्वक भूमि क्रय की उस रीति को अपना लिया, जिसे कि भूमि कानूनों में जो १८७० और १८८१ ई० में पारित हुए थे, संकोच के साथ व्यवहृत किया गया था। हम राजनीतिज्ञों का विचार यह था कि यदि आयरियों को भूमि का स्वामित्व अधिकार मिल गया और दमनकारी अनुपस्थित भूमिपति उनके स्वामित्व अधिकार एवं कार्य में बाधक न रह गये, तो वे निस्सन्देह सुखी एवं समृद्ध हो जायेंगे तब वे होमरूल जैसे क्रांतिकारी राजनीतिक सुधारों की ओर अधिक ध्यान न देंगे।

दमन-नीति

ग्लैडस्टन के नियमों की भूमि क्रय सम्बन्धी धाराएँ विशेष लाभप्रद न हो सकीं क्योंकि राज्य ने क्रय-मूल्य के दो-तिहाई भाग से अधिक धन देने की व्यवस्था न रक्खी थी। अतः रूढ़िवादियों ने ऐसा नियम बनाया कि राज्य इस समस्त क्रय मूल्य का धन कृषकों को दे सकेगा और इसे कृषक दीर्घकाल में सरल किस्तों में चुका देंगे। इस नियम के समर्थकों का कहना था कि राज्य स्वयं भूमि का क्रय करके इसे कृषकों के हाथ बेचता है और इसे खरीद कर वे इसके नियमानुकूल स्वामी बन जाते हैं और राज्य द्वारा दिये गये ऋण का उन्हें शनैः शनैः भुगतान करना होगा। इस रूप में उन्हें जो कुछ भूमिपति को प्रतिवर्ष लगान के रूप में देना पड़ता था उससे

उन्हें ऋण की किस्त के रूप में बहुत कम धन देना था और अन्ततः उन्हें भूमि के लगान से सदैव के लिये छुटकारा मिल जाना सम्भाव्य था। यह नियम १८९१ ई० में पारित हुआ और लगभग ५ वर्षों में प्रायः ३५,००० कृपकों को भूमि का क्रय करने की क्षमता प्रदान हुयी। तदुपरान्त कालान्तर में यह व्यवस्था विशेषकर १९०३ ई० के कानून द्वारा और भी विस्तृत कर दी गयी जिसके लिये असीम धन देना निश्चित किया गया। १९०३ से १९०८ ई० तक लगभग १६०,००० कृपकों ने भूमि का क्रय किया। इस कानून द्वारा, जिसने कि भूमिपतियों को अपनी भूमियाँ क्रय करने के लिये आकर्षित किया, आयरलैंण्ड स्वामित्व अधिकार-सम्पन्न कृपकों का देश बनता जा रहा है। ग्लैडस्टन के १८८१ के कानून में मान्यता प्राप्त द्वैध भूमि स्वामित्व के प्रारम्भिक नियम ने व्यक्तिगत स्वामित्व के इस नवीन सिद्धान्त को विकसित एवं पल्लवित किया जिससे अनुगत पहले की भाँति बड़े-बड़े भूमिपतियों का व्यक्तिगत स्वामित्व अधिकार न रह कर आयरलैण्ड के निवासियों का जो छोटे कृपक थे भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व अधिकार स्थापित हो गया।

भूमि-क्रय नियम

इस मन्त्रिमण्डल ने स्पष्टतः उदार प्रकृति के ही कुछ अन्य नियम भी पारित किये जिनके अन्तर्गत १० वर्ष से कम आयु तथा कुछ दशाओं में स्त्रियों को कारखानों में नियुक्त करना अवैध घोषित किया गया। स्त्रियों के काम करने के घन्टों को घटा कर १२ रक्खे गये तथा उनको १½ घन्टा भोजन अथवा जलपान आदि के लिये अवकाश के लिये दिया गया। एक अन्य नियम द्वारा श्रमिक की प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क कर दी गयी। इसके अतिरिक्त एक ऐसा कानून भी बनाया गया जिसने देश में कृपक-भूमिपतियों का निर्माण किया। इस प्रकार के प्रस्तावों का इंगलैंण्ड के प्रायः समस्त दलों ने अनुमोदन किया। ये नियम इस दृष्टिकोण से और भी महत्त्वपूर्ण थे कि भविष्य में राजनैतिक सुधारों की अपेक्षा सामाजिक सुधारों की अधिक आवश्यकता प्रतीत होती थी। मन नियमों ने यह भी प्रदर्शित किया कि अब इंगलैण्ड के समाज में रूढ़िवादी दल अपनी मौलिकता को परिवर्तित कर रहा था और सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में नेतृत्व करने के चिन्ह प्रदर्शित कर रहा था।

सामाजिक सुधार

आन्तरिक नीति के एक दूसरे कार्य क्षेत्र में सेलिसबरी के मन्त्रिमण्डल ने एक ऐसा पग उठाने का श्रेय लाभ किया जो आज तक निर्णायक माना जाता है। १८८९ ई० में देश की जल सेना में अप्रत्याशित वृद्धि की। आगामी ७ वर्षों में २१,५००,००० पौण्ड के व्यय से इंगलैंड के जहाजी बेड़े में ७० अतिरिक्त जलपोतों की वृद्धि की जानी थी। लार्ड सेलिसबरी ने यह नियम ही बना दिया कि ब्रिटेन की जल सेना विश्व की किन्हीं दो जल शक्तियों से अधिक होगी। वैदेशिक मामलों में इस मन्त्रिमण्डल में जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह अफ्रीका का विभाजन था और इसका वर्णन अन्यत्र किया जायगा।

वैदेशिक नीति

१८९२ ई० सार्वजनिक निर्वाचनों के फलस्वरूप उदारवादी दल 'होमरूल' आन्दोलन के समर्थन करने वाले सदस्यों के फलस्वरूप सत्तारूढ़ हुआ और अब ग्लैडस्टन ने ८२ वर्ष की अवस्था में चौथी बार प्रधान मंत्री के रूप में पदारूढ़ होकर

इंगलैंड के इतिहास में अभूतपूर्व उदाहरण उपस्थित किया जैसा कि उसने स्वयं कहा था केवल एक आयरलैंड के होमरूल का प्रश्न ही उसे राजनैतिक जीवन से आबद्ध किये हुए था और इसके समाधान में वह दत्तचित्त था।

यह ऐसा प्रश्न ही था कि ज्यों ही ग्लैडस्टन का मन्त्रिमंडल सत्तारूढ़ हुआ जनमत उस प्रश्न में अविलम्ब केन्द्रित हो गया। १८९३ के प्रारम्भिक काल में ग्लैडस्टन ने संसद में अपना दूसरा होमरूल विधेयक प्रस्तुत किया और विरोधी दल ने इसका अत्याधिक कटुता एवं स्थिरता के साथ कठोर विरोध किया। बहुत कम तर्कों पर दोनों पक्ष एक मत हो सके। दलीय उत्तेजना में भीषणता उत्पन्न हो गयी किन्तु ग्लैडस्टन ने अपने पूरे वाक चातुर्य से यह स्पष्ट किया कि उसका आयरी जाति पर पक्का विश्वास था। उनका यह भी विश्वास था कि यदि उसकी नीति के विपरीत कोई भी व्यवहार किया गया तो उसका तात्पर्य आयरी जनता का दमन होगा और यह दमन कभी भी सफल नहीं हो सकता था। उसका विचार था कि यह इंगलैंड का कर्त्तव्य था कि वह इंगलैण्ड के गत ६०० वर्षों अथवा शताब्दियों के कुशासन पर शोक प्रकट करता।

८२ दिनों के वादविवाद तथा जनता में महान् अव्यवस्थापूर्ण घटनाओं के बाद जब कि एक बार कुछ सदस्य कुछ संसदीय परम्पराओं की हानि के कारण उत्ते-जना में आकर एक दूसरे से मारपीट करने को उतारू हो गये, यह बिल चौंतिस के बहुमत से जब कि इसके पक्ष में ३०१ तथा विपक्ष में २६७ मत पड़े, पारित हो गया। इसके एक सप्ताह बाद जब यह विधेयक लार्डसभा में प्रस्तुत हुआ तो इसके पक्ष में केवल ४१ मत पड़े और विपक्ष में ४१९ मत पड़े अर्थात् यह दस गुने बहुमत से अस्वीकृत हो गया। इस प्रकार इस विधेयक की अत्येष्टि हो गयी। ग्लैड-स्टन का चौथा मन्त्रिमंडल अपने हर कदम पर लार्ड सभा द्वारा प्रतिपादित हो गया और इस सदन को सेलिसबरी के मन्त्रि-मंडल ने जो शक्ति उसने १८३२ के बाद पहली बार पायी थी इसके बल पर ग्लैडस्टन के प्रस्तावों का पूर्ण विरोध करने में सफलता पायी।

द्वितीय होमरूल विधेयक कामन सभा के सदस्यों द्वारा पारित किन्तु उच्च सदन द्वारा अस्वीकृत

१८९४ ई० में ग्लैडस्टन ने अपने पद से त्याग-पत्र देकर एक महान् राजनैतिक जीवन का जो इंगलैंड के इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ, अन्त कर दिया। संसद में उसके दिये गये, अन्तिम वक्तव्य में उसने लार्डसभा की कठोर आलोचना की। उसकी सम्मति में यह उच्च सदन अब प्रगति के मार्ग में बाधक हो रहा था। उसने कहा—जो प्रश्न एक इसी कार्य के लिये ६,०००,००० से भी अधिक मतदाताओं के चुनाव द्वारा नियुक्त तथा एक पैत्रिक सभा द्वारा उठाया जाता है एक ऐसा वाद-विवाद की समस्या बन जाता है जो उत्पन्न होकर एक न एक नया प्रश्न खड़ा कर देती है। यह सभा वही थी जिसमें कि ६१ वर्ष पूर्व ग्लैड-स्टन ने कभी अपना वक्तव्य दिया था। इस घटना के चार वर्ष बाद ही ग्लैडस्टन की मृत्यु हो गयी और वेस्टमिन्स्टर एबे में उसकी समाधि बना दी गई (१८९८ ई०)।

ग्लैडस्टन का पद-त्याग

१८९५ के चुनावों में यूनियनिस्टों ने १५० के बहुमत से अपना मंत्रिमण्डल

निर्माण किया और वे दिसम्बर १९०५ तक अबाध रूप में सत्तारूढ़ रहे। अब लार्ड सेलिसबरी ने तीसरी बार प्रधान मंत्री के पद को सुशोभित किया और १९०२ ई० तक उसने इसी पद पर कार्य करके सार्वजनिक जीवन से अवकाश ले लिया। उसके स्थान पर उसका भतीजा आर्थर जेम्स बालफोर ही प्रधान मंत्री बना। उसके दल में कोई परिवर्तन न हुआ क्योंकि लार्ड सेलिसबरी ने कामन सभा में पर्याप्त बहुमत स्थापित कर रखा था। वह स्वयं अत्यन्त योग्य पुरुष था और उच्च कोटि के योग्य राजनीतिज्ञ ही उसके मंत्रिमंडल के सदस्य थे जबकि वह स्वयं वैदेशिक मंत्रालय का नियंत्रण करता था। जोसेफ चेम्बरलेन औपनिवेशिक मंत्री था तथा जेम्स बालफोर स्वयं कामन-सभा का नेतृत्व करता था। ग्लैडस्टन के त्याग-पत्र देने तथा उदारवादी दल के विभाजन ने दल को इतना शिथिल कर दिया कि एक विरोधी दल के रूप में इसकी स्थिति सर्वथा नगण्य हो गयी। आयरी प्रश्न तो सर्वथा दबा ही दिया गया क्योंकि यूनियनिस्ट दल आयरलैंड में स्वतंत्र संसद की स्थापना का प्रबल विरोधी था और उसने होमरूल बिल को स्वीकार करने से पूर्णतया इन्कार कर दिया था। इसके साथ ही साथ उसने आयरलैण्ड के लिए भूमि क्रय तथा उसके स्वायत्व शासन के सम्बन्ध में लाभदायक नियम बनाये। सामाजिक और श्रमिक सम्बन्धी विशेष लाभदायक निर्माण किया गया।

सेलिसबरी का तीसरा मंत्रिमंडल

इस युग का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न साम्राज्यवाद से विशेष सम्बन्धित था। महान् शक्ति और राजनैतिक कुशलता से मुक्त तथा मंत्रिमण्डल का अत्यधिक प्रसिद्ध सदस्य जोसेफ चेम्बरलेन उसका एक केन्द्रीय व्यक्ति था जिसने कि एक प्रगतिशील उदारवादी की ख्याति उपार्जित की थी। उसने आर्थिक और सामाजिक सुधारों के एक प्रभावशाली प्रतिपादक के रूप में साम्राज्यवाद का प्रबल समर्थक होने की ख्याति भी उपार्जित की थी। उसका पद यद्यपि उपनिवेश मंत्री का ही था तथापि उसने अपनी मातृभूमि के लिए इन उपनिवेशों के महत्त्व पर बल देने का अत्यधिक उपयुक्त अवसर प्राप्त किया था। वह इन उपनिवेशों को पारस्परिक निकट सम्पर्क में लाने तथा साम्राज्यवादी संघ का विकास करने पर अधिक बल देता था।

महारानी विक्टोरिया के राज्यतिलक की साठवीं वर्षगाँठ १८९७ में मनायी गयी। इस अवसर ने साम्राज्य के प्रति उपनिवेशों की असीम स्वामिभक्ति तथा सम्राट् के प्रति विश्वव्यापी स्नेह और प्रेम का प्रदर्शन किया। यह उसकी हीरक जयन्ती थी और इसने प्रशंसनीय रूप में, एकीकरण के उन तत्वों का सुन्दर प्रदर्शन किया जिन्होंने कि ब्रिटिश साम्राज्य को एकता के सूत्र में आबद्ध कर रखा था। इसके अतिरिक्त साम्राज्य के विभिन्न भाग जिन पारस्परिक गर्व तथा शक्ति के संबंधों में आबद्ध थे उनका भी इस समारोह में प्रस्फुटन किया गया। विभिन्न उपनिवेशों के प्रधान मंत्रियों की उपस्थिति से भी लाभ उठाया गया। उन्होंने साम्राज्य के इन विभिन्न भागों को पारस्परिक निकट सम्पर्क में लाने के उपायों पर विचार-विमर्श किया। इन सब परिस्थितियों ने उस साम्राज्यवाद की अभिव्यक्ति की जो ब्रिटेन की राजनीति का अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व बन रही थी।

महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती

नवीन यूनियनिस्ट मंत्रिमंडल के उद्घाटन के ठीक बाद ही औपनिवेशिक और वैदेशिक विभागों में एक महान् प्रक्रिया के युग का सूत्रपात हुआ। यह लार्ड किचनर द्वारा

सूडान के क्षेत्रों के पुनः प्राप्ति के रूप में प्रस्फुटित हुआ किन्तु इस सक्रियता का अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रकरण दक्षिणी अफ्रीका की दशाओं से सम्बन्धित है जिसमें १८९९ ई० में बुअर युद्ध की अग्नि भड़की और जिसने अत्यन्त ही चिन्ताजनक परिस्थिति उत्पन्न कर दी। इसके विषय में पृथक अध्याय में विस्तृत वर्णन दिया गया है। अफ्रीका का संघर्ष सन् १८९९ से १९०२ ई० तक चला। यह अप्रत्याशित दीर्घकाल था और इसने जब तक कि युद्ध समाप्त न हुआ इंगलैंड का ध्यान अपनी ओर रखा। इस युग में गृह-क्षेत्र संबंधी सामान्य नियमों की व्यवस्था की। इस युद्ध काल के मध्य में ही महारानी विक्टोरिया का देहान्त हो गया। वह २२ जनवरी १९०१ ई० के दिन अपना ६३ वर्षीय शासन काल समाप्त करके परलोक सिधारी। यह ब्रिटिश इतिहास में सबसे अधिक लम्बा शासन काल था और यह अन्यत्र फ्रांस के शासक लुई चतुर्दश के ७१ वर्षीय शासन काल की अपेक्षा कम था। अपने समस्त शासन काल में इसका श्रीगणेश १९३७ में हुआ था, उसने अपने को एक वैधानिक साम्राज्ञी के रूप में ही इस प्रकार कार्य किया कि इसकी स्वेच्छा जनता के आधीन रही और जनता की इच्छा इंगलैण्ड की संसद और मंत्रि परिषद द्वारा ही व्यक्त होती रही। उसकी मृत्यु के समय कामन सभा में शोक प्रकट करते स्वयं जेम्स बाल्फर ने कहा था; कि वह संसार अथवा इंगलैण्ड में अपना कोई भी शत्रु छोड़कर नहीं मरी हैं क्योंकि वे जोकि उसके जीवन काल में इंगलैण्ड से प्रेम न करते थे उससे अवश्य प्रेम रखते थे। अब एडवर्ड द्वितीय उसका उत्तराधिकारी बना जो कि इस समय ६२ वर्ष की आयु में था। उसनें १९०१ ई० से १९१० ई० तक राज्य किया।

महारानी विक्टोरिया की मृत्यु

एडवर्ड सप्तम का शासन काल (१९०१ से १९१० ई०)

जब दक्षिणी अफ्रीका का युद्ध समाप्त हो गया तो ब्रिटेन की संसद ने अपना ध्यान गृह-क्षेत्र में केन्द्रित किया। १९०२ ई० में वह शिक्षा नियम पारित किया जो ग्लैडस्टन के प्रथम मंत्रिमंडल द्वारा बनाये गये १८७० ई० के फार्सटर ऐक्ट से कहीं अधिक लाभप्रद था। इसने इस पूर्व पारित शिक्षा नियम द्वारा स्थापित किये विद्यालीय बोर्डों का उन्मूलन कर दिया। उसने विभिन्न टैक्सों की सहायता द्वारा संस्थीय सहयोग से सचालित होने वाले विद्यालयों के सिद्धान्त का समर्थन किया। ऐसे विद्यालयों का प्रधान अध्यापक उस विशिष्ट संस्था द्वारा नियुक्त किया जाना था और उनके बहुसंख्यक प्रबन्धकों को भी संस्था का सदस्य होना आवश्यक था इस व्यवस्था में धर्म निरपेक्षता की ओर कोई ध्यान न दिया था।

१९०२ ई० का शिक्षा कानून

इस अधिनियम ने डिसेन्टरों और धर्म निरपेक्ष शैक्षिक व्यवस्था के समर्थकों को अपना विरोधी बना लिया। उसने संस्थीय लाभों के लिए टैक्सो की वसूली का अधिकार उन संस्थाओं को दे दिया। जिनके कि बहुसंख्यक करदाता सदस्य भी न थे। इस नियम को इगलैण्ड के चर्च की शक्ति वृद्धि करने का साधन—रूढ़िवादी दल का मुख्यतम कार्य—समझा गया।

इस नियम का तीव्र विरोध हुआ। सहस्रों व्यक्तियों ने तत्सम्बन्धी कर देने से इन्कार कर दिया और इस दशा में सरकार ने इनकी सम्पत्ति का नीलाम करने की व्यवस्था की। बहुत से लोग बन्दी बना लिए गए। न्यायालय में ७०,००० से भी

अधिक लोग प्रस्तुत किए गए। इस प्रकार उत्पन्न होने वाला आन्दोलन १९०२ ई० में रूढ़िवादी दल के पतन का प्रमुख कारण वना तथापि १९०२ ई० में पारित किये गए नियम को जो वहाँ लागू किया गया और अभी तक चल रहा है, महत्त्व शून्य वनाने के लिए १९०६ ई० में उत्तरवादियों ने एक विधेयक को प्रस्तुत करके जो प्रयास किया, वह सफल सिद्ध न हो सका। अँग्रेजी राजनीति की विवादनीय समस्याओं में यह शैक्षिक प्रणाली उल्लेखनीय है।

यूनियनिस्ट मंत्रिमण्डल की लोकप्रियता दक्षिणी अफ्रीका के युद्ध की समाप्ति के वाद से क्षीण होनी आरम्भ हो गयी। इस सरकार द्वारा वताये गए प्राय: समस्त नियम वर्ग पक्षपात से युक्त समझे गये और उन्हें इंगलैण्ड के जनहित के लिए नहीं अपितु रूढ़िवादी दल की स्वार्थपूर्ति का कारण सिद्ध करके उनकी जनता द्वारा तीव्र-भर्त्सना की गयी। इसके अतिरिक्त इस समय एक ऐसा नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ जिसने ब्रिटेन की राजनीति में यूनियनिस्ट दल को इसी रूप में विभाजित कर दिया जिसमें कि होमरूल प्रस्ताव ने उदार नीति में परिवर्तन करने का प्रस्ताव रखा और इस वात पर वल दिया कि यह सुधार साम्राज्य के विभिन्न भागों को और भी अधिक घनिष्ठता के सूत्र में वाँधने में सहायक होगा। उसका कथन था कि इंगलैण्ड को अन्यान्य देशों पर आयात एवं निर्यात कर लगा कर अपने उपनिवेशों को इस कर व्यवस्था से मुक्त रखना चाहिए। वह इस नीति को "औपनिवेशिक विकल्प" की संज्ञा देता था। इस व्यवस्था का अभिप्राय इंगलैण्ड के स्वतन्त्र व्यापार नीति के त्याग और सुरक्षित व्यापार नीति के पालन से भी सम्वन्धित था।

व्यापार प्रणाली में सुधार करने का प्रस्ताव

इस प्रस्ताव के वाद-विवाद की वृद्धि से यह पता चला कि अँग्रेजों का स्वतंत्र व्यापार नीति में अव भी कुछ कम विश्वास न था क्योंकि यह इन्हें आर्थिक रूप में लाभप्रद थी तथापि यह नीति उनके कल्याण के लिए विशेष आवश्यक न थी। इस सम्वन्ध में उठने वाले मतभेदों ने यूनियनिस्ट दल का विघटन और उदारवादियों का पुनर्संगठन किया।

इस वढ़ते हुए भेदभाव का फल यूनियनिस्टों की पराजय तथा उदारवादियों के नेतृत्व में एक सर्वथा नवीन नीति के श्रीगणेश के रूप में प्रस्फुटित हुआ। दिसम्बर १९०५ ई० से उदारवादी दल सत्तारूढ़ हुआ और पहले इसका प्रधान मन्त्रित्व सर हेनरी कैम्पवेल वेनरमैन द्वारा सम्पन्न हुआ किन्तु १९०८ ई० के प्रारम्भ में ही उसकी मृत्यु हो जाने के फलस्वरूप हर्वर्ट एस्क्विथ इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री हुआ। इस दल ने १९०६ ई० के सार्वजनिक निर्वाचनों में, १८३२ ई० से लेकर अभी तक सवसे अधिक वहुमत प्राप्त किया।

उदारवादी दल का सत्तारूढ़ होना

इस शासन की एक मुख्य सफलता वृद्धावस्था में पेन्शन दिये जाने के लिए पारित किये जाने वाले नियम द्वारा व्यक्त होती है। राज्य के कार्य में इस नियम ने अप्रत्याशित प्रगति का परिचय दिया। कुछ अत्यंत साधारण प्रतिवन्धों के साथ इस नियम द्वारा एक निश्चित आयु तथा स्वल्प आय के समस्त लोगों के लिए राज्यवृत्ति की व्यवस्था की गयी। यह नियम, विरोधियों

वृद्धावस्था में पेंशन का नियम

द्वारा पिताओं के साथ पक्षपात करने वाला तथा समाजवादी बतलाया गया तथा इससे ग्रेट ब्रिटेन के श्रमिक वर्ग में अपव्ययता और उत्तरदायित्व-हीनता जागृत होती थी ; तथापि यह व्यवस्था इंगलैंड की श्रमिक सेवाओं को मान्यता देने के लिए उचित और लाभदायक समझी गयी । उदारवादियों का विचार था कि स्थल और जलसेना तथा प्रशासन संबंधी सेवाओं के समकक्ष ही श्रमिक-सेवाओं को महत्त्व दिया जाना चाहिए । इस नियम ने यह व्यवस्था की कि ७० वर्ष की आयु के समस्त लोग जिनकी वार्षिक आय २५ गिनी से कम थी, उन्हें ५ शिलिंग साप्ताहिक 'राज्यवृत्ति' दी जाया करेगी और जिनकी इसी अनुपात में अधिक आय है उन्हें क्रम से कम १ शिलिंग प्रति माह तक पेन्शन दी जा सकेगी । जिनकी आय १० शिलिंग १३ गिनी वार्षिक से अधिक थी उन्हें कोई पेन्शन न मिलती थी । प्रधान मन्त्री ने हिसाब लगाया कि राज्य पर इस व्यय का प्रारम्भिक भार अनुमानतः ७½ लाख पौंड वार्षिक पड़ेगा और आगामी वर्षों में यह बढ़ता रहेगा । इस वृत्ति (पेंशन) का वितरण डाक-खानों के द्वारा होता था । १९०९ को यह विधि कार्यान्वित हुई । उस दिन ५ लाख से अधिक स्त्री-पुरुष अपने-अपने अत्यंत निकटस्थ डाकखाने में गये और १ शिलिंग से पाँच शिलिंग तक की अपनी-अपनी प्रथम वृत्तियाँ प्राप्त कीं, और तत्पश्चात् प्रति शुक्रवार को जीवन पर्यन्त वे वृत्ति प्राप्त कर सकते थे । यह देखा गया कि ये स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी वृत्तियों को दान अथवा निर्धन-सहायता के रूप में नहीं वरन् एक सम्मान-पूर्ण पारितोषिक के रूप में स्वीकार करते थे । इस विधि के अधीन जिन्होंने इस वृत्ति की माँग की उनकी सांख्यिकी शिक्षाप्रद तथा गंभीरता उत्पादक है । लन्दन-प्रान्त (काउण्ट) में प्रति ५१७ व्यक्तियों में से एक इंगलैण्ड तथा वेल्स में प्रति ५६ में से एक, स्काटलैन्ड में प्रति ६७ में से एक और आयरलैण्ड में प्रति २१ में से एक व्यक्ति अधिकारी था ।

१८९५ से १९०५ तक यूनियनिस्ट दल

१८९५ से १९०५ तक संयुक्तवादी (यूनिनियनिस्ट) दल सत्तारूढ़ रहा । इसने साम्राज्यवाद की समस्याओं पर प्रमुख बल दिया । सामाजिक विधान की उपेक्षा की गयी । परन्तु बुअर युद्ध के संचालन तथा घटना चक्र ने, जोकि साम्राज्यवाद का महान् साहसपूर्ण कार्य था, रूढ़िवादियों की राजनीतिक ख्याति अथवा लोकप्रियता में वृद्धि नहीं की । जैसाकि माना जाता था उनके गृह-विधान ने, जिसका लक्ष्य दल को दो सबल तथा स्थायी रक्षकों, संस्थापित चर्च तथा मदिरा व्यापार को सुदृढ़ बनाना था, उन्हें कुलीनों, अधिकार प्राप्त तथा निहित स्वार्थों में विश्वास करने वालों तथा राष्ट्रीय जीवन को लोकतांत्रिक शक्तियों के विकास के शत्रुओं के रूप में कठोर आलोचना का पात्र बना दिया ।

१९०५ से उदारवादी दल की लोकतान्त्रिक नीति

अब सत्तारूढ़ होने के कारण उदारवादियों ने पूर्ववर्ती मंत्रिमण्डल के वर्ग-विधान को समाप्त करने तथा वस्तुतः लोकप्रिय शासन के विकास की बाधाओं को दूर करने के लिये सबल प्रयत्न आरम्भ कर दिये । प्रथम **स्वशासन विधेयक** (होमरूल बिल) के समय के पुराने **उदारवादी दल** की अपेक्षा नया **उदारवादी** दल अधिक उग्रवादी (रैडीकल) था क्योंकि अधिक रूढ़िवादी **उदार-वादियों** ने उसे त्याग दिया था और वे विरोधी दल में सम्मिलित हो गये थे । साथ ही अब संसद में एक और भी अधिक उग्रवादी (रैडीकल)

दल अर्थात् श्रमिक दल प्रकट हो गया था जिनके लगभग ५० सदस्य थे। उग्रवादी सामाजिक तथा श्रमिक विधान का प्रयत्न किया गया। यह मन्त्रिमण्डल इस बात को मानता था कि तत्कालीन सामाजिक प्रणाली जनसाधारण पर अनुचित कठोरता से भार डाल रही थी। एसक्विथ ने कहा था, 'जनता के अधिकांश भाग के मस्तिष्क में सम्पत्ति का सम्बन्ध विवेक और न्याय की भावनाओं से होना चाहिये।'

परन्तु जब **उदारवादियों** ने अपने नवीन तथा प्रगतिशील कार्यक्रम को पूरा करने का प्रयत्न किया तब उनको तुरन्त ही एक भयंकर बाधा का सामना करना पड़ा। उन्होंने १९०२ के **शिक्षा अधिनियम** के दोषों को दूर करने के लिये जोकि प्रमुखतः **संस्थापित चर्च** के हितार्थ लागू किया गया था एक **शिक्षा विधेयक** लोकसभा (हाउस ऑफ कामन्स) में पारित कराया। अनुज्ञप्ति (लाइसेंसिंग) **विधेयक** पारित कराया जिसका उद्देश्य मदिरा-व्यापार को दण्डित करना था जिसका रूढ़िवादी विधान ने अधिक पक्ष किया था और **बहुमत दान समाप्त कारक विधेयक** भी पारित कराया क्योंकि बहुमत दान सम्पत्तिशाली वर्गों को अनुचित महत्त्व देता था। इसके कारण धनी लोग एक ही समय कई मत (वोट) दे सकते थे जबकि बहुत से निर्धन व्यक्तियों को एक भी मत प्राप्त नहीं था। प्रत्येक पद पर जो बाधा सामने आयी वह लार्डसभा थी जिसने इन विधेयकों को अस्वीकार कर दिया, जो **उदारवादी** दल के मार्ग में उठकर खड़ी हो गयी, जिसने अति-लोकतान्त्रिक विधियों के पारित न होने देने का दृढ़ विचार किया और जिसने उस स्थिति को जिसे रूढ़िवादियों ने पूर्ववर्ती प्रशासनों में प्राप्त कर लिया था, बनाये रखने का भी दृढ़ संकल्प किया। इस प्रकार एक गम्भीर राजनीतिक तथा सांविधानिक समस्या उत्पन्न हो गई जिसका समाधान **उदारवादियों** द्वारा **उदारनीतियाँ** लागू किये जाने (enactment) के लिये होना आवश्यक था। पूर्व इसके कि उदारवादी अपने विशाल लोकप्रिय बहुमत को जैसा कि वह लोकसभा में प्रदर्शित हुआ, प्रयोग कर सकें। लार्डसभा जो सर्वदा **रूढ़िवादियों** से शासित होती रही थी और एक वंशानुगत संस्था होने के कारण जो लोकमत के प्रत्यक्ष नियन्त्रण से नहीं थी। अधिक स्पष्ट उदार विधेयकों को अस्वीकार करके प्रदर्शन करती थी, तथा **उदारवादियों** के मत से अभद्रता से करती थी। लोकसभा को रोकने में अपनी सरल सफलताओं से उत्साहित होकर लार्डसभा ने प्रसन्नतापूर्वक एक और पग आगे को बढ़ाया। यह पग, जैसाकि घटनाओं ने सिद्ध किया, महान् पतन का पूर्ववर्ती पग था। १९०९ में लार्ड सभा ने आय-व्यय विवरण (बजट) को अस्वीकार कर दिया। यह कार्य उसके अब तक के अन्य कार्यों की अपेक्षा, जो लोकप्रिय सदन के विरुद्ध किये गये थे, अत्याधिक गम्भीर था। यह कार्य उस आत्म-विश्वास की भावना की स्पष्ट अभिव्यंजना थी जो लार्ड सभा अपनी शक्तियों में रखती और जो अब विविधता तथा सुचारुरूपता से प्रदर्शित की जा रही थी।

१९०९ में अर्थमन्त्री (चाँसलर ऑफ दी एक्सचेकर) लायड जार्ज ने आय-व्यय विवरण (बजट) प्रस्तुत किया। उसने ठीक प्रकार से उद्घोषित किया कि वृद्धावस्था की वृत्तियों के भुगतान तथा नौसेना के द्रुत विस्तार की दो बड़ी व्यय की मदों ने नये तथा अतिरिक्त करों को आवश्यक बना दिया है। उसके प्रस्तावित नये करों का भार मुख्यतः धनी वर्गों पर पड़ना था। आयकर में वृद्धि होनी थी। उसके अतिरिक्त ५,००० पौण्ड से अधिक की आय पर विशेष अथवा ऊपर कर

(सुपरटैक्स) भी लगना था। अर्जित तथा अनर्जित आयों में भेद किया जाना था— पहली अर्थात् अर्जित आय व्यक्ति के परिश्रम का परिणाम थी तथा दूसरी अर्थात् अनर्जित आय लगाये गये धनों (इनवेस्टमेण्ट्स) से होने वाली आय थी जो प्रापकों के वैयक्तिक प्रयत्नों (कार्यों) का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। अर्जित आय की अपेक्षा अनर्जित आय पर अधिक कर लगना था। पैतृक सम्पत्ति कर अधिक स्पष्टता से वर्गीकृत किया जाना था और धन राशि के अनुसार निश्चित रूप से घटाना-बढ़ाना था। विभिन्न प्रकार की भूमियों पर नये कर भी लगने थे।

आय-व्यय विवरण का विरोध

इस आय-व्यय विवरण (बजट) का सार्वाधिक तीव्र विरोध भूस्वामियों, पूँजीपतियों, महाजनों (बैंकर्स), विशाल सम्पत्ति में निहित हितों के व्यक्तियों, पैतृक धन पर जीवन निर्वाह करने वाले व्यक्तियों और लगाये गये धनों (इनवेस्टमेंण्ट) पर जीवन निर्वाह करने वाले व्यक्तियों के वर्गों ने किया। उन्होंने इस विधेयक की निन्दा यह कहकर की कि यह समाजवादी है, क्रान्तिकारी है, (संक्षेप में) एक घृणित वर्गीय विधान है जो धनी व्यक्तियों के विरुद्ध है, अपहरणकारी है तथा न्यायोचित साम्पत्तिक अधिकारों का विनाशकारी है। लोकसभा ने बड़े बहुमत से आय-व्यय विवरण को पारित कर दिया। तब यह लार्डसभा में गया। दीर्घकाल से यह कल्पना नहीं की जाती रही थी कि लार्डसभा को धन विधेयकों के अस्वीकार करने का कोई अधिकार था क्योंकि वह वंशानुगत संस्था थी न कि प्रतिनिधि-संस्था। तो भी लार्डसभा ने अब कहा कि उसे वह अधिकार प्राप्त था, चाहे उसने उसका मानव स्मृति के भीतर प्रयोग नहीं किया था। ३० नवम्बर १९०९ को कुछ दिनों के वाद-विवाद के पश्चात् ३५० के विरुद्ध ७५ मतों से आय-व्यय विवरण (बजट) को उसने अस्वीकार कर दिया।

लार्डसभा आय-व्यय विवरण अस्वीकार करती है

लोकसभा द्वारा वह कार्य असांविधानिक घोषित किया गया

तुरन्त ही एक उत्तेजक तथा महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथा सांविधानिक संघर्ष सहसा उत्पन्न हो गया। देश को पूर्णतः कुलीनतन्त्रीय वंशानुगत सदन द्वारा पुनः अवरुद्ध तथा इस बार उस क्षेत्र में जो दीर्घकाल से लोक सभा के लिये आरक्षित समझा जाता था, अवरुद्ध होने से उदारवादियों ने लार्ड सभा द्वारा दी गयी चुनौती को क्रोध पूर्वक स्वीकार कर लिया। ३४९ के विरुद्ध १३४ मतों से लोकसभा ने उद्घोषित किया कि 'लार्डसभा का वह कार्य संविधान का अतिक्रमण तथा लोकसभा के अधिकारों का अपहरण है।' भरे सदन में ऐसक्विथ ने घोषणा की कि "यह सदन अपने अतीत तथा उन परंपराओं के अयोग्य होगा जिनका यह संरक्षक तथा धरोहर रखने वाला (ट्रस्टी) है, यदि यह इस बात को प्रकट किये बिना कालाक्षेप होने दे कि यह इस अपहरण को सहन नहीं करेगा।" उसने उद्घोषित किया कि वित्त शक्ति (Power of purse) केवल लोकसभा का है। प्रतिनिधि-शासन का सिद्धान्त ही संकट में था। यदि लार्डसभा को वह अधिकार था जो कि उसने मान लिया था तो परिस्थिति ठीक यह थी : जब लोकसभा के लिये मतदाता रूढ़िवादियों के बहुमत को चुनते तब विधान पर रूढ़िवादियों का नियन्त्रण रहा; जब वे उदारवादियों के बहुमत को

ऐसक्विथ समस्या का स्पष्टीकरण करता है

चुनते तब भी लार्डसभा के निषेधाधिकार द्वारा उसके लिये अरुचिकर सभी विधान को अवरुद्ध करके रूढ़िवादी ही नियन्त्रण रखते क्योंकि लार्डसभा सर्वदा तथा स्थायी रूप से रूढ़िवादी दल से सम्बद्ध रहने वाली संस्था थी। एक वंशानुगत संस्था जो जनता के आधीन नहीं थी, जनताओं की इच्छाओं को, जैसी कि वे प्रतिनिधि संस्था लोकसभा, द्वारा अभिव्यक्त की जाती थी, ठुकरा सकती थी। दूसरे शब्दों में लोकतान्त्रिक तत्व की अपेक्षा कुलीनतान्त्रिक तत्व अधिक प्रबल था, एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन जनता के प्रतिनिधित्व करने वाले सदन की अपेक्षा अधिक सबल था।

१० जनवरी १९१० का सार्वजनिक निर्वाचन

आय-व्यय विवरण का प्रश्न तथा उच्चसदन की उचित स्थिति एवं उसके भविष्य का प्रश्न परस्पर सम्बद्ध थे। असाधारण गम्भीरता के प्रश्न होने के कारण मंत्रिमण्डल ने इस पर जनमत लेने का निश्चय किया। संसद भंग कर दी गयी और नवनिर्वाचन का आदेश दिया गया। कई अहिंसात्मक कार्यों में अपने को अभिव्यंजित करता हुआ यह अभियान अत्यंत कटुतापूर्ण रहा। जनवरी १९१० में होने वाले निर्वाचन का परिणाम यह हुआ कि पूर्ववर्ती संसद की अपेक्षा **संयुक्तवादियों (यूनियनिस्टों)** को १०० मत अधिक मिले। इस लाभ के प्राप्त करने पर भी नई लोकसभा में **उदारवादियों** को १०० मत अधिक का बहुमत मिल जाता, यदि श्रमिकदल तथा स्वशासनदल (**होमरूलर्स**), जैसा कि उन्होंने किया उनका समर्थन करते।

आय-व्यय विवरण पारित हुआ

विना गम्भीर परिवर्तन के नई संसद में वही आय-व्यय विवरण प्रस्तुत किया गया जो गतवर्ष अस्वीकार कर दिया गया था। **लोकसभा ने** इसे पुनः पारित कर दिया और वह **लार्डसभा** में गया। इस बार उच्च **सदन** मान गया और इसने आय-व्यय विवरण को उसके तथाकथित क्रान्तिकारी तथा समाजवादी उपबन्धों के साथ पारित कर दिया।

लार्डसभा के निषेधाधिकार का प्रश्न

अब **उदारवादियों** ने अपना अवधान **'लार्डों के निषेधाधिकार'** अथवा उस राष्ट्र में, जो लोकतांत्रिक होने का बहाना करता है, जैसाकि इंगलैण्ड करता था, एक वंशानुगत, कुलीनतंत्रीय सदन की उचित स्थिति की ओर आकृष्ट किया। वह प्रश्न जो अब से लगभग बीस वर्ष पूर्व ग्लैडस्टन ने अपनी संसद की अंतिम वक्तृता में प्रतिपादित किया था अब निर्णयात्मक स्थिति में आ गया था। साठ लाख से अधिक मतदाताओं द्वारा चुनी गयी विचारात्मक सभा तथा एक वंशानुगत संस्था में क्या सम्बन्ध होना चाहिये? इस प्रश्न पर संसद के बाहर तथा भीतर प्रबल तीव्रता ने वाद-विवाद हो रहा था। अपने भविष्य की उचित आशंका से लार्डसभा के **सुधार** के लिये उसी सदन के सदस्यों ने विविध सुझाव दिये। लोकप्रिय एडवर्ड नरेश की मृत्यु (६ मई १९१०) तथा जार्ज पंचम के राज्यारोहण ने, जो इस अभियान के बीच में घटित हुये, विरोधियों को कुछ गम्भीर बना दिया किन्तु केवल अस्थायी रूप से। इस बात के प्रयत्न किये गये कि दोनों दलों में लार्डसभा के भविष्य पर कोई समझौता हो जाय। प्रश्न की गम्भीरता तथा दूरव्यापी प्रभावशीलता के कारण ये प्रयत्न निष्फल रहे।

१९१९ के निर्वाचन

मंत्रिमण्डल ने इस नये प्रश्न पर जनमत की इच्छा करते हुये लोकसभा को पुनः भंग कर दिया और एक वर्ष के भीतर (दिसम्बर १९१०) दूसरे नव निर्वाचन का आदेश दे दिया। परिणाम यह हुआ कि दलों का प्राय: उतनी ही सदस्य-संख्या के साथ जितनी कि पहले थी, पुनः निर्वाचन हुआ। सरकार का बहुमत कम नहीं हुआ।

लोकसभा संसद विधेयक को पारित करती है

ऐंसक्विथ मंत्रिमण्डल ने लोकसभा में एक संसद विधेयक पारित कराया जिसने लार्डसभा की शक्तियों पर कई महत्त्वपूर्ण बातों में प्रतिबन्ध लगाये तथा यह उपबंधित किया कि यदि दूसरे सदन से कोई विवाद हो तो उसमें अंतिम निर्णय लोकसभा का हो। यह विधेयक लोकसभा में भारी बहुतमत से पारित हो गया। लार्डसभा में किस प्रकार पारित कराया जाय ? क्या लार्ड लोग दूसरे सदन की अपेक्षा अपनी हीनता को मान्यता देने के पक्ष में होंगे, क्या वे उन अधिकारों की वापसी पर सहमत हो जावेंगे जिन्हें वे अब तक प्रयोग करते रहे थे, क्या वे इस सदन द्वारा इस परिवर्तन तथा हीन स्थिति को स्वीकार कर लेंगे जिसके विधेयकों को वे कई वर्षों से बाधित करते रहे थे। वस्तुतः समर्थ होने पर ऐसा नहीं करेंगे कितना ही अधिक विरोध क्यों न हो। लार्डसभा के विरोध पर विजय पाने का एक मार्ग था। नरेश नये लार्ड बना सकता था—जितने वह चाहे—जो विचाराधीन विधेयक के विरुद्ध बहुमत पर विजय पाने के लिये पर्याप्त हों। इस सर्वोत्कृष्ट अस्त्र को नरेश—जिसका वास्तव में अभिप्राय था ऐंसक्विथ मंत्रिमण्डल—अब प्रयुक्त करने के लिए तैयार था। ऐंसक्विथ ने घोषणा की कि जार्ज पंचम ने आवश्यक होने पर विधेयक के पारित कराने के लिये पर्याप्त संख्या में लार्ड बनाने की सहमति दे दी है। यह धमकी काफी थी। १८ अगस्त १९११ को लार्डसभा ने संसद अधिनियम[1] पारित कर दिया जिसने उनकी स्थिति, शक्ति और सम्मान को इतना अधिक परिवर्तित कर दिया।

लार्डसभा संसद विधेयक को पारित करती है

विधेयक के उपबन्ध

यह विधेयक विधि-निर्माण की नई रीतियाँ (Processes) स्थापित करता है। यदि लार्ड लोग, लोकसभा द्वारा पारित होने के पश्चात् एक मास तक किसी धन विधेयक को अपनी स्वीकृति न दें, (धन विधेयक से अभिप्राय उस विधेयक से है जो कर लगावे अथवा विनियोग करे) तो विधेयक नरेश के हस्ताक्षरों के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है और हस्ताक्षर प्राप्त कर लेने पर लार्डों की स्वीकृति के बिना विधि हो जाता है। धन विधेयक के अतिरिक्त यदि कोई अन्य विधेयक लोकसभा द्वारा एक अथवा कई संसदों के लगातार तीन सत्रों में पारित किया जावे और लार्डों द्वारा अस्वीकृत किया जावे, तो वह लार्डों की तृतीय अस्वीकृति पर नरेश के हस्ताक्षरों के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है और उस स्वीकृति को पा लेने पर विधि हो जावेगा—इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि लार्डसभा ने विधेयक को स्वीकार नहीं किया था किन्तु उपबन्ध यह है कि उन सत्रों के प्रथम अधिवेशन, जिनमें विधेयक का द्वितीय वाचन हुआ तथा लोकसभा में तृतीय बार पारित होने के दिनांक के मध्य दो वर्ष का अन्तर हो।

---

1. यहाँ पर विधेयक होना चाहिये परन्तु मूल में **एक्ट** होने से अधिनियम लिखा है।

इस **संसद** अथवा **निषेधाधिकार विधेयक** में एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपबन्ध भी था जिसके अनुसार संसद की अधिकतम अवधि सात वर्ष के स्थान पर पाँच वर्ष हो गयी। अर्थात् आगे के लिये लोकसभा के सदस्य पाँच वर्ष के लिये चुने जावेंगे न कि सात वर्ष के लिये। इस प्रकार उनकी अवधि कम हो गयी।

लार्डों का निषेधाधिकार समाप्त

अस्तु, वित्तीय विधान के लिये लार्डसभा का निषेधाधिकार पूर्णतः समाप्त हो गया तथा अन्य विधान के लिये उसका निषेधाधिकार केवल निलम्बनात्मक (Suspensive) है। अन्त में लोकसभा का निर्णय मान्य होगा। दो वर्षों का विलम्ब हो सकता है।

पुनः होमरूल प्रश्न

उदारवादी दल द्वारा अभिलषित उस विधान के पारित होने का मार्ग अब साफ हो गया था जिसे लार्डसभा की स्वीकृति प्राप्त नहीं हो सकती थी। **स्वशासन (होमरूल) विधेयक**[1], जिसके सिद्धान्त को **उदारवादी दल** ने लगभग २५ वर्ष से स्वीकार कर लिया था, अब अंततः पारित हो सकता था। ११ अप्रैल १९१२ को ऍसक्विथ ने तृतीय **स्वशासन विधेयक** पुनः स्थापित किया जिसके अनुसार आयरलैण्ड को उसकी निजी संसद, जिसमें ४० सदस्यों की सीनेट तथा १६४ सदस्यों की लोकसभा थी, प्रदान की गयी। यदि दोनों सदन परस्पर असहमत हों तो उन्हें साथ बैठना तथा मतदान करना था। कुछ विषयों के सम्बन्ध में आयरलैण्ड की **संसद** को विधान बनाने का अधिकार नहीं था : शान्ति अथवा युद्ध,

तृतीय स्वशासन विधेयक पुनः स्थापित

नौसेना अथवा स्थल सेना सम्बन्धी विषय, संधियाँ, मुद्रा प्रणाली (करेंसी), विदेशी व्यापार। यह किसी धर्म की संस्थापना अथवा उसकी आर्थिक सहायता नहीं कर सकती थी और न धार्मिक अयोग्यताएँ लगा सकती थी। पूर्ववर्ती १०३ सदस्यों के स्थान पर भविष्य में लन्दन की संसद में ४२ सदस्य आयरियों का प्रतिनिधित्व करेंगे।

अल्स्टर का विरोध

रूढ़िवादी दल ने अत्यन्त भावुकता के साथ इस विधेयक का विरोध किया और विशेषरूप से **अल्स्टर दल** ने। अल्स्टर आयरलैण्ड का वह प्रान्त है जिसमें प्रोटेस्टेण्ट लोग प्रबल हैं। यदि अल्स्टर को इस विधि के कार्यान्वियन (Operation) से मुक्त न किया गया तो उन्होंने गृह-युद्ध की धमकी दी। इस बात पर लगभग दो आगामी वर्षों तक राजनीतिक नेताओं के सम्मेलनों, संसद के वाद-विवादों तथा समाचार पत्रों (प्रेस) में संघर्ष होता रहा। समझौते के प्रयत्न निष्फल रहे क्योंकि **स्वशासन (होमरूल) दल** आयरलैण्ड के एक चौथाई भाग को प्रस्तावित आयरी संसद के अधिकार क्षेत्र से मुक्त करने पर सहमत नहीं था।

लोकसभा द्वारा विधेयक पारित

तो भी विधेयक पारित हो गया परन्तु सभा द्वारा तुरन्त ही करा दिया गया। दूसरे सत्र में यह पुनः पारित कर दिया गया और लार्डों द्वारा पुनः निषिद्ध कर दिया गया। २५ मई १९१४ को ३५१ के विरुद्ध २७४ मतों से अर्थात् ७७ के बहुमत से **लोकसभा** द्वारा यह तीसरी बार अन्ततः पारित कर दिया

---

1. आगे चलकर अल्स्टर को छोड़कर शेष आयरलैण्ड को स्वशासन (Home Rule) प्रदान कर दिया गया और आज वह प्रायः स्वतंत्र है। —अनुवादक

गया। १९११ के **संसद अधिनियम** के अनुसार अब यह उनकी स्वीकृति के अभाव में **भी विधि** बन सकता था। केवल नरेश की औपचारिक स्वीकृति आवश्यक थी।

परन्तु **अल्स्टर दल** की तीव्रता तथा दृढ़ संकल्प से मन्त्रिमण्डल इतना प्रभावित हुआ कि उसने यह देखने के लिये कि कोई समझौता हो सकता है या नहीं इस पर वाद-विवाद चालू रखने का निश्चय किया—**अल्स्टर दल** ने एक सेना की व्यवस्था करने तथा एक प्रकार की अस्थायी सरकार की स्थापना करने तक का प्रयत्न किया था। **यूरोप के युद्ध** ने इन विवादों में बाधा डाल दी।

वेल्स के चर्च का विस्थापन

इसी मध्य में ऐंग्लीकन चर्च के विस्थापन का विधेयक भी इसी प्रकार पारित किया जा चुका था। तीन बार **लोकसभा** द्वारा पारित किया जा चुका था और लार्डों द्वारा अस्वीकृत किया जा चुका था। **स्वशासन (होमरूल) विधेयक** की भाँति इस पर भी नरेश के हस्ताक्षरों की प्रतीक्षा की जा रही थी।

दोनों विधियाँ निलंबित

अन्त में १८ सितम्बर १९१४ को दोनों विधेयकों पर वे हस्ताक्षर कर दिये गये परन्तु उसी दिन **संसद** ने युद्ध की समाप्ति तक इन विधियों के कार्यान्वियन के निलम्बन का विधेयक पारित कर दिया।

अब इंगलैण्ड को कहीं अधिक गंभीर विषयों पर विचार करना था और उसने बुद्धिमत्ता के साथ विवादास्पद घरेलू मामलों पर सुविधाजनक समय तक विचार न करने का निश्चय किया। यह देखना वास्तव में शेष है कि जब **स्वशासन (होमरूल) अधिनियम** अन्ततोगत्वा कार्यान्वित होगा तब अल्स्टर के प्रोटेस्टेण्टों को सांत्वना देने के लिये उनके साथ कुछ संशोधन लगे हुए होंगे अथवा नहीं।

अध्याय २७

ब्रिटिश साम्राज्य

यूरोप का विस्तार

अब तक हमने यूरोपीय महाद्वीप के इतिहास से अपना सम्बन्ध रक्खा है परन्तु १९वीं शताब्दी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक विशेषता यूरोप का संसार की विजय के लिये बाहर जाना था। यह शताब्दी केवल राष्ट्र-निर्माण की ही नहीं थी अपितु वृहत् स्तर पर साम्राज्य निर्माण की भी थी। यह यूरोप निवासियों के दूसरे देशों में खाने और उपनिवेश बनाने की शताब्दी थी। यह एक ऐसी शताब्दी थी जिसमें श्वेत जाति ने संसार के जो भी कोई हथियाने से बचे हुये क्षेत्र थे उनको हथिया लिया अथवा उन क्षेत्रों को हथिया लिया जो इतने निर्बल थे कि अपने को अक्षुण्ण नहीं रख सकते थे। इस प्रकार विभिन्न शक्तियों ने तात्कालिक अन्तिम प्रयोग के लिये महत्त्वपूर्ण एवं भव्य साम्राज्यवादी दावे प्रस्तुत किये।

औपनिवेशिक साम्राज्यों का विकास

विकास के कारण

जातियों के इस नवीन परिभ्रमण के बहुत से कारण थे। एक कारण था इस शताब्दी में यूरोप की जनसंख्या की असाधारण अभिवृद्धि। संभवतः १८१५ में वह १७५,००,००० थी और एक शताब्दी पश्चात् ४५०,००,००० हो गयी। यह आधुनिक इतिहास के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तथ्यों में एक अविवादग्रस्त तथ्य है जोकि इस वृहत् निष्क्रमण का मूलभूत कारण है। दूसरा कारण आर्थिक प्रणाली (व्यवस्था का परिवर्तन था अर्थात् उत्पादन की शक्तियों में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि जिसने उत्पादकों को संसार में कच्चे माल को नये साधनों और नये बाजारों की खोज और तट के लिये अभिप्रेरित किया। एक अन्य तथा सबल कारण ब्रिटिश साम्राज्य का चमत्कारिक दृश्य था जिसने अन्य जातियों की कल्पना को प्रभावित किया अथवा उनकी ईर्ष्या को उत्पन्न किया। इसलिये वे संभावित सीमाओं के भीतर (इंगलैण्ड का) अनुकरण करने लगी आधुनिक यूरोप को समझने के लिये इस साम्राज्य के इतिहास तथा विशेषताओं के परीक्षण की आवश्यकता है।

१८वीं शती की समाप्ति पर ब्रिटिश साम्राज्य

१८ वीं शताब्दी के अन्त में **नवीन संसार** में इंगलैण्ड के अधिकार में ये भाग थे : सेण्टलॉरेन्स का क्षेत्र, न्यूब्रंजविक, नोवास्कोशिया, न्यूफाउण्डलैण्ड, प्रिंस एडवर्ड द्वीप, विस्तृत अस्पष्ट क्षेत्र जो हडसन की खाड़ी के प्रदेश के नाम से विख्यात था, जमेका तथा अन्य पश्चिमी इंडियन द्वीप, आस्ट्रेलिया में पूर्वी समुद्रतट का क्षेत्र, भारत में बंगाल तथा गंगा का निम्न क्षेत्र, बम्बई तथा पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तट के क्षेत्र। इंगलैण्ड की औपनिवेशिक नीति की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता थी फ्रांस का प्रतिद्वन्द्वी के रूप में उन्मूलन करना जिससे उसने **सप्तवर्षीय** युद्ध में उसके प्रायः सभी भारतीय तथा उत्तरी अमरीका के अधिकृत प्रदेश ले लिये थे। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार क्रांतिकारी युद्धों तथा नेपोलियन के युद्धों में किया था जो फ्रांस तथा फ्रांस के मित्र हालैण्ड को पराजित करके किया गया था। इस प्रकार उसने ये भूभाग प्राप्त कर लिये थे। उत्तमाशा अन्तरीप, दक्षिणी अमरीका में गायना, हिन्द महासागर में टोबेगो, ट्रीनीडाड, सेन्टलूशिया, मारीशश और लंका का विशाल द्वीप। भूमध्य सागर में उसने माल्टा ले लिया था। उसने हैलगोलैण्ड संरक्षित आयोनियन द्वीप समूह भी प्राप्त कर लिये थे।

१८१६ के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य की महती वृद्धि

१८१५ से शृंखलाबद्ध युद्धों तथा उसके प्रारम्भिक उपनिवेशों से सटे हुए प्रदेशों पर उसके औपनिवेशकों के स्वाभाविक बढ़ाव से उसका साम्राज्य अत्यधिक बढ़ गया जैसा कि कनाडा तथा आस्ट्रेलिया में हुआ। उसका साम्राज्य विश्व के प्रत्येक भाग में स्थित है।

भारत

मराठा संगठन की पराजय

भारत की प्राप्ति, जो स्वयं एक संसार है, ब्रिटिश ताज के लिये एक व्यक्तिगत व्यापारिक संगठन **'ईस्ट इण्डियन कम्पनी'** द्वारा की गयी थी। इस कम्पनी की स्थापना १६वीं शताब्दी में हुई थी और इसको भारत के साथ व्यापार का एकाधिकार दिया गया था। इस कम्पनी ने उस प्रायद्वीप (भारत) के विभिन्न भागों में व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये। फ्रांसीसियों के संघर्ष में आते हुये तथा देशी राजाओं के झगड़ों में भाग लेते हुये इसने विस्तृत भागों पर सीधा नियन्त्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त की तथा अन्य भागों पर उसने उन राजाओं का संरक्षण भार लेते हुये जिन्होंने अँगरेजों से मित्रता कर ली और जिन्हें सिंहासनाहीन रहने दिया गया अप्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित कर लिया। अँग्रेज संसद द्वारा विभिन्न समयों पर पारित विधियों के उपलब्धों के अधीन इस व्यापारिक कम्पनी ने अपनी उपलब्धियों (अर्थात् भूभागों) पर शासनाधिकार स्थापित कर लिया। १९वीं शताब्दी में ब्रिटिश नियंत्रण का क्षेत्रफल दृढ़ता से विस्मृत हो गया और अन्ततः पूर्ण हो गया। दीर्घकालीन तथा समय-समय पर होने वाले **मराठा संगठन** के, जोकि भारतीय राजाओं का अदृढ़ संघ था और जिसका प्रभुत्व पश्चिमी तथा मध्यभारत में था, युद्धों से इसको प्रगति को अत्यधिक सहायता मिली। १८१६ से १८१८ तक होने वाले युद्ध में यह संगठन अन्ततः पराजित कर दिया गया और तब उसके विस्तृत भाग ब्रिटिश अधिकृत भागों से प्रत्यक्षतः मिला दिये गये तथा दूसरे भाग देशी राजाओं के अधीन छोड़ दिये जोकि

प्रभावशाली ढंग से अँग्रेजी नियंत्रण में अँग्रेजी नीति के अनुसार कार्य करने पर विवश करके लाये गये थे। उन्हें अपने दरबारों में अँग्रेजी दूत (रेजीडेण्ट) रखना पड़ा जिसका परामर्श उनको मानना पड़ता था और अपनी सेनाएँ ब्रिटिश निर्देशन में रखनी पड़ीं। आज (१९३७) भी उनमें से बहुत सों की ऐसी दशा है।

अँग्रेज बंगाल से उत्तर तथा पश्चिम की ओर भी बढ़े। उन्होंने जो भाग अपने राज्य में मिलाये उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग पंजाब था जोकि सिन्धु नदी पर एक विस्तृत प्रदेश है। यह १८४५ से १८४९ तक होने वाले कठिन युद्ध के परिणामस्वरूप लिया गया था। पंजाब तथा बंगाल के मध्य में स्थित भारत के सर्वाधिक उपजाऊ भागों में एक भाग, अवध प्रान्त, १८५६ में मिलाया गया।

अँग्रेजी विजयों की दृढ़ प्रगति ने अँग्रेजों के विरुद्ध शत्रुता की तीव्र भावना जागृत कर दी जिसकी परिणति १९५७ के प्रसिद्ध सिपाही विद्रोह में हुयी जिसके कारण कुछ समय तक उत्तरी भारत में अँग्रेजों के पूर्ण पराभव की आशंका होने लगी। यह विद्रोह के विविध कारण थे : गद्दी से उतारे गये राजाओं और उनके साथियों का कटु असंतोष जिन्होंने अनाधिकार रूप से आये अँग्रेजों के विरुद्ध घृणा जागृत करने के लिये अपने गुप्त संदेश वाहक भेजे, अन्य राजाओं का यह भय कि उनकी बारी भी आ सकती है, रेलों और तारों का प्रारम्भ जिसे धर्माचार्यों ने अपने धर्म पर आक्रमण बताया, यह जनप्रवाद कि अँग्रेज जनता को ईसाई धर्म मानने पर विवश करना चाहते हैं और उनके धर्म तथा सभ्यता को नष्ट करना चाहते हैं; सती की प्रथा को समाप्त करने के प्रयत्न; भविष्यवक्ताओं की यह भविष्यवाणी कि अँग्रेजी राज्य जो १७५७ में प्लासी के युद्ध से प्रारम्भ हुआ था सौवें वर्ष में समाप्त हो जावेगा।

अँग्रेजी आधिपत्य सैनिक शक्ति पर और मुख्य रूप से देशी सैनिकों पर अवलंबित था। १८५७ में भारत में ४५,००० अँग्रेज सैनिक तथा २५०,००० से अधिक देशी सैनिक (सिपाही) थे। इस वर्ष गंगा के प्रान्तों में उत्तरी भारत में सिपाहियों में विद्रोह फैल गया। इसका तात्कालिक कारण १८५७ का भारतीय नये राइफलों का प्रयोग प्रारम्भ करना था अथवा उनके लिये विद्रोह कागज से आच्छादित कारतूस थे जो कि लोगों के कथनानुसार सुअर और गाय की चर्बी से चिकने किये हुये थे। बैरक में रखने के पूर्व कारतूस का किनारा दाँत से काटना पड़ता था। इससे हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची क्योंकि वे गाय को पवित्र जीव मानते थे और मुसलमानों की भावना को इसलिये कि वे सुअर को अशुद्ध मानते थे और सुअर की चर्बी को भ्रष्ट करने वाली मानते थे। अँग्रेजों ने जिस चिकनायी का, जो प्रयोग की गयी थी, सूत्र (फारमूला) प्रकाशित करके और अधिकारियों को यह आदेश देकर कि वे सैनिकों को विश्वास दिलावें कि ये वस्तुएँ प्रयोग नहीं की गयी थीं, इस जन-प्रवाद को मिथ्या सिद्ध करने का प्रयत्न किया किन्तु उनके प्रयत्न निष्फल रहे। एक पदाति सेनांग (टुकड़ी) ने नये कारतूसों को लेना अस्वीकार कर दिया, उसके कुछ सदस्यों (सैनिकों) को दस वर्ष का कारावास दिया गया, उनके साथियों ने उनको बचाने के लिये विद्रोह प्रारम्भ कर दिया और वह विद्रोह द्रुतगति से फैल गया। देशी सैनिकों ने मुगलों की पुरानी राजधानी दिल्ली, लखनऊ, कानपुर

तथा अन्य स्थानों पर अधिकार कर लिया और बर्बर निर्दयता के साथ बड़ी संख्या में स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों की हत्या कर दी। शीघ्र सम्पूर्ण उत्तरी भारत हाथ से निकला हुआ प्रतीत होने लगा।

अंग्रेजों ने भयावह तथा निर्णायक प्रतिशोध लिया। बहुत से सिपाही स्वामि-भक्त रहे, अशांति के स्थानों को यूरोपीय सैनिक शीघ्रता से भेज दिये गये और विद्रोह दबा दिया। अत्यधिक क्रोध और अपने बाल-बाल बचने से भयभीत होने के कारण अँग्रेजों ने भयंकर एवं निर्दयतापूर्ण दण्ड दिया। बिना अभियोग चलाये सैकड़ों को बिना उत्तेजना के गोली से मार दिया और सहस्रों को अभियोग चला कर फाँसी देदी गयी जोकि न्याय की विडम्बना थी। बहुत सों को तोपों के मुँह से बाँध दिया गया और उनको तोप से टुकड़े टुकड़े कर दिया गया।

१८५७ के इस विद्रोह के पश्चात अँग्रेजी नियन्त्रण को समाप्त करने के कोई प्रयत्न नहीं किये गये हैं। एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि १८५८ में भारत का शासन व्यक्तिगत कम्पनी से, जिसने उसे एक शताब्दी तक चलाया ताज को हस्तान्तरित कर दिया गया। वह इंगलैण्ड के प्रत्यक्ष अधिकार में आ गया। जैसा कि हम देख चुके हैं १८७६ में भारत में साम्राज्य उद्घोषित कर दिया गया तथा जनवरी १८७७ को महारानी विक्टोरिया ने भारत की साम्राज्ञी की उपाधि धारण कर ली। यह तथ्य वायसराय लार्ड लिटन ने शासक राजाओं की एक प्रभावपूर्ण सभा (दरबार) में अधिकृत रूप से उद्घोषित किया।

भारत की विशाल जनता

तीस करोड़ निवासियों सहित यह सचमुच एक साम्राज्य है। शासन के शिखर पर एक वायसराय होता है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में भारत के लिये एक सचिव होता है। भारत का शासन अधिकांश अत्यधिक संगठित असैनिक सेवा द्वारा किया जाता है और लगभग ग्यारह सौ अंग्रेजों के हाथ में रहता है लगभग २२ करोड़[1] निवासी ग्रेट ब्रिटन के प्रत्यक्ष नियंत्रण में है; लगभग ६ करोड़ ७० लाख भारत के देशी नरेशों के अधीन—जो कि भारत के संरक्षित राजागण हैं—देशी राज्यों में हैं। व्यवहार में प्रायः सभी उद्देश्यों के लिए इन राजाओं को अंग्रेज अधिकारियों या रेजीडेण्टों का परामर्श मानना होता है जोकि इन राजधानियों में रहते हैं।

बर्मा तथा बलोचिस्तान का मिलाना

इंगलैण्ड ने १९वीं शताब्दी में भारत का नियंत्रण पूर्ण ही नहीं किया प्रत्युत भारत के चारों ओर के देशों को उससे मिला भी दिया—पूर्व की ओर बर्मा और पश्चिम की ओर बलोचिस्तान, जिसका एक भाग पूर्णरूप से मिला दिया गया और शेषभाग सुरक्षित प्रदेश के रूप में ले लिया। उसने १८३९ से १८४२ और १८७८-८० तक के अफगानी युद्धों के फलस्वरूप अफगानिस्तान में भी एक प्रकार का संरक्षण बलात् स्थापित कर दिया।

---

1. इस अनुच्छेद में वर्णित परिस्थितियाँ सन् १९४७ से परिवर्तित हो गयी हैं—भारत स्वतन्त्र हुआ है। —अनुवादक।

ब्रिटिश उत्तरी अमरीका

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उत्तरी अमरीका में इंगलैण्ड के पास ७ उपनिवेश थे : ऊपरी कनाडा, न्यू ब्रेसविक, नोवास्कोशिया, प्रिंस एडवर्ड द्वीप, और न्यूफाउण्डलैण्ड और हडसन वे कम्पनी के प्रदेश जोकि अनिर्दिष्ट सीमाओं से उत्तर तथा उत्तर पश्चिम की ओर फैले हुये थे। इन उपनिवेशों की पूरी जनसंख्या ४,६०,००० थी। सभी उपनिवेश एक दूसरे से पूर्णतः पृथक् थे। प्रत्येक की अपनी सरकार थी और दूसरों से उसके सम्बन्ध नहीं थे परन्तु इंगलैण्ड से थे। सबसे पुराना तथा सबसे अधिक जनसंख्या वाला उपनिवेश निचला कनाडा था जिसमें मांट्रियल, क्यूबेक तथा सेण्ट लारेन्स की घाटी सम्मिलित थीं। यह १७६३ में जीता हुआ फ्रांसीसी उपनिवेश था। इसकी जनसंख्या फ्रांसीसी बोलने वाली तथा कैथोलिक धर्म की मानने वाली थी।

१८३७ का विद्रोह

इनमें से दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपनिवेश से: निचला कनाडा जो अधिकांश फ्रांसीसी था। तथा ऊपरी कनाडा जो पूर्णतः अंग्रेजी था। १७९१ में प्रत्येक को संविधान प्राप्त हो गया था परन्तु किसी भी उपनिवेश में इस संविधान ने ठीक कार्य नहीं किया और इसका मूलभूत कारण यह था कि जनता अथवा उसके विधायकों का कार्यकारिणी पर कोई नियंत्रण नहीं था। गवर्नर, जो प्रायः सभी विधान को निषिद्ध कर सकता था, अपने को अंग्रेजी सरकार के प्रति प्रथमतः उत्तरदायी समझता था, प्रदेश की जनता के प्रति नहीं। अमरीकी क्रांति की शिक्षा तथा अर्द्ध शताब्दी पूर्व तेरह उपनिवेशों को खो देने का तथ्य पर्याप्त रूप से स्पष्ट था तो भी इंगलैण्ड ने अब तक उपनिवेशों के सफल प्रवन्ध का रहस्य नहीं सीख पाया था। इस शिक्षा की ओर संकेत करने तथा इस कहानी को सजाने के लिये एक दूसरे विद्रोह की आवश्यकता पड़ी। १८३७ में असंतोष ऐसी दशा पर पहुँच गया था कि ऊपरी तथा निचले दोनों कनाडाओं में क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। कनाडा के अधिकारियों ने इंगलैण्ड की सहायता के बिना ही इन विद्रोहों को सरलता से दबा दिया परन्तु उपनिवेशवासियों की शिकायतें अभी भी बनी रहीं।

डरहम मिशन

एक दूसरे साम्राज्य के हाथ से निकल जाने के भय से पूर्णतः भयभीत अंग्रेजी सरकार ने विवेक से कार्य किया और उपनिवेशवासियों की शिकायतों का अध्ययन करने के लिये एक आयुक्त कनाडा भेजा। इसके लिये लार्ड डरहम चुना गया जिसने १८३२ के सुधार में अच्छा कार्य किया था। डरहम कनाडा में पाँच मास रहा। जिस प्रतिवेदन में उसने विद्रोह के कारणों का विश्लेषण किया और नीति में परिवर्तन के सुझाव दिये वह उसको ब्रिटिश इतिहास में महत्तम औपनिवेशक राजनीतिज्ञों की श्रेणी में स्थान दिलाता है। संक्षेप में उसने फॉक्स की उद्घोषणा को स्वीकार किया जिसने कहा था कि दूरस्थ उपनिवेशों लाभपूर्वक बनाये रखने की एकमात्र विधि थी 'उनको स्वयं अपना शासन करने योग्य बनाना।' उसने इंगलैण्ड में कार्यान्वित होने वाली कैबिनेट प्रणाली को आरम्भ करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उसने विधान-मण्डल के लोकप्रिय सदन को कार्यपालिका पर नियंत्रण प्रदान किया।

डरहम की सिफारिशें तत्काल नहीं मानी गयीं क्योंकि बहुत से अंग्रजों को

ऐसा प्रतीत हुआ कि वे उपनिवेशों को स्वतंत्र बना देंगी। तो भी दस वर्ष पश्चात् (१८४७) में लार्ड ऐलगिन ने, जो कनाडा का गवर्नर तथा डरहम का जमाता था, मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के इस सिद्धान्त को कार्यान्वित किया। उसके उदाहरण का उसके उत्तराधिकारियों ने अनुसरण किया और धीरे-धीरे वह स्थापित प्रक्रिया (व्यवहार) हो गयी। यह रीति शीघ्रता से ग्रेट ब्रिटेन के अन्य उपनिवेशों में भी प्रसारित हो गई। जोकि अंग्रेज वंशों से सम्बन्धित थे, तथा इस कारण से स्वशासन के योग्य समझे गये। यही वह योजक (सीमेण्ट) है जो ब्रिटिश साम्राज्य को एक सूत्र में बाँधे रखता है। स्वशासन अपने साथ संतोष लाया है (अर्थात् स्वशासन के फलस्वरूप संतोष उत्पन्न हो गया है)।

कनाडा में मन्त्रि-मण्डलीय उत्तरदायित्व प्रारम्भ होता है

लार्ड डरहम ने उत्तरी अमेरिका के सभी उपनिवेशों के संघ का भी सुझाव दिया था। यह १८६७ में स्थापित हुआ जबकि ब्रिटिश उत्तरी अमरिका अधिनियम बिना किसी परिवर्तन के अँग्रेजी संसद् ने पारित कर दिया। यह अधिनियम कनाडा में तैयार किया गया था और वह कनाडावासियों की भावनाओं को व्यक्त करता था। इस अधिनियम के अनुसार ऊपरी कनाडा, निचला कनाडा, नोवास्कोशिया और न्यूब्रजविक एक संघ में संयोजित कर दिये गये जिसका नाम कनाडा **का औपनिवेशिक राज्य** (डुमीनियम) रखा गया। ओटावा में बैठने के लिये कनाडा की केन्द्रीय अथवा संघीय संसद स्थापित होनी थी। स्थानीय विषयों के लिये विधान बनाने के लिये स्थानीय अथवा प्रान्तीय विधान मण्डल भी स्थापित होने थे। सम्पूर्ण औपनिवेशिक राज्य को प्रभावित करने वाले प्रश्न संघीय संसद के लिये सुरक्षित कर दिये गये।

१८६७ में कनाडा के औपनिवेशिक राज्य की स्थापना

केन्द्रीय या संसद में दो सदन होने थे : एक **सीनेट** तथा एक **लोकसभा** (**हाउस ऑफ कामन्स**)। सीनेट में ७० सदस्य होने थे जो गवर्नर जनरल द्वारा, जो स्वयं (इंगलैण्ड) **नरेश** द्वारा नियुक्ति किया जाता था और **ताज** का प्रतिनिधित्व करता था, जीवन भर के लिये मनोनीत किये जाने थे **लोकसभा** जनता द्वारा चुनी जाती थी। संविधान में कुछ बातें **अँग्रेजी सरकार** के उदाहरण के अनुसार रखी गयी थीं और कुछ बातें **संयुक्त राज्य** के अनुसार थीं।

डुमीनियन संसद

यद्यपि इस **औपनिवेशिक राज्य** (डुमीनियन) में प्रारम्भ में केवल चार ही प्रान्त थे तथापि अन्य संभावित प्रान्तों के प्रवेश के लिये। उपबन्ध रखा गया था। १८७० में **मनीटोबा**, १८७१ में **ब्रिटिश कोलंबिया** और १८७३ में **प्रिंस एडवर्ड** द्वीप प्रविष्ट किये गये

डुमीनियन का विकास

१८४६ में ओरेगन का विवाद सुलझने से **संयुक्त राज्य** और ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों को विभक्त करने वाली रेखा प्रशान्त महासागर तक विस्तृत कर दी गयी और १८६९ में **डुमीनियन** ने **हडसन बे कम्पनी** से ३००,००० पौण्ड में विस्तृत क्षेत्र मोल ले लिये जिनसे अलबर्टा और ससकचीवन के प्रान्त बनाये गये तथा १९०५ में संघ में प्रविष्ट कर लिये गये। अब इस डुमीनियन में न्यूफाउण्डलैण्ड के द्वीप के

अतिरिक्त, जो दृढ़तापूर्वक सम्मिलित होना अस्वीकार करता रहा है, शेष सम्पूर्ण ब्रिटिश उत्तरी अमरीका सम्मिलित है । दो बातों के अतिरिक्त—एक तो उसका गवर्नर जनरल इंगलैण्ड से आता है और दूसरे उसके पास संधि की शक्तियाँ नहीं हैं—वह प्राय: स्वतन्त्र है । वह आपने मामलों का स्वयं प्रबन्ध करता है और वह अपने आयात-निर्यात कर (टैरिफ) भी स्वयं लगाता है जो मातृ देश (इंगलैण्ड) के लिये हानिकारक होते हैं । उसमें स्थानीय तथा साम्राज्यीय देश प्रेम है । यह दक्षिणी अफ्रीकी युद्ध में स्पष्टत: प्रकट हुआ । उसने अपने व्यय से कनाडीय सैनिक वहाँ उस साहसपूर्ण कार्य में भाग लेने के लिये भेजे जिससे उसके हितों का कोई भी समीप का सम्बन्ध नहीं था । वही भावना, वही मूल्यवान् बलिदान करने की इच्छा (उत्सुकता) १९१४ के युद्ध में आगे चलकर अधिक विस्तृत स्तर पर अभिव्यंजित होनी थी ।

१८६७ में कनाडीय संघ की स्थापना ने महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने वाली मेहती कनाडीय प्रशान्त रेलवे का निर्माण संभव कर दिया जो १८८१ से १८८५ तक निर्मित हुई । इसने भी विभिन्न प्रान्तों को परस्पर सम्बद्ध करके तथा पश्चिम के उल्लेखनीय विकास में सहयोग प्रदान करके कनाडा को प्रभावित किया है । महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने वाली एक दूसरी रेलवे भी अभी हाल ही उसके उत्तर की ओर बनायी गयी है । वाष्पजलीय मार्गों से कनाडा यूरोप, जापान तथा आस्ट्रेलिया से मिला हुआ है । उसकी १८१५ की पाँच लाख से भी कम जनसंख्या अब बढ़कर सत्तर लाख से भी अधिक हो गयी है । वह अत्यधिक समृद्ध हो गया है और उसका आर्थिक जीवन अपेक्षाकृत अधिक विविधतापूर्ण हो गया है । प्रमुखत: कृषि सम्बन्धों तथा कष्ट उत्पादन करने वाला देश होने के कारण संरक्षक आयात-निर्यात कर पद्धति के आधीन वह अपना उत्पादन बढ़ा रहा है और उसके प्रचुर खनिज साधन द्रुतगति से विकसित हो रहे हैं ।

आस्ट्रेलिया

१९वीं शताब्दी में ग्रेट ब्रिटेन ने दक्षिणी गोलार्द्ध में भी एक नवीन साम्राज्य स्थापित किया जिसका भौम विस्तार (क्षेत्रफल) संयुक्त राज्य अथवा कनाडा के प्राय: समान है, यूरोप के लगभग $\frac{3}{4}$ के बराबर है और जिसमें प्राय: सभी अँग्रेज वंशज निवास करते हैं ।

प्रारम्भिक खोज

१८वीं शताब्दी के अन्त तक आस्ट्रेलिया की नियमित खोज नहीं की गयी । परन्तु इसके कुछ भाग बहुत पहले स्पेनी, पुर्तगाली तथा विशेष रूप से डच नाविकों द्वारा देखे अथवा खोज लिये गये थे । अन्त के खोजियों में **स्टमान** नामक व्यक्ति उल्लेखनीय है जिसने १६४२ में दक्षिण-पूर्वी भाग खोजा था । (यद्यपि) यह नहीं जान सका था कि जिस देश का नाम आगे चलकर उसके नाम पर रखा गया वह एक द्वीप था । यह तथ्य डेढ़ शताब्दी तक अज्ञात रहा उसने आस्ट्रेलिया के पूर्व में द्वीपों का पता लगाया और उनका डच भाषा का नाम **न्यूजीलैण्ड** रखा । डच लोग आस्ट्रेलिया को नया हालैण्ड या **टैरा आॅस्ट्रेलिया** कहते थे और खोज करने के कारण

कप्तान कुक की समुद्र यात्राएँ

उस पर अपना अधिकार प्रदर्शित करते थे। परन्तु उन्होंने उस पर अधिकार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इस ओर अँग्रेजों का ध्यान सर्व प्रथम प्रसिद्ध कप्तान कुक ने आकृष्ट किया जिसने १७६८ से १७७९ तक इस क्षेत्र की तीन सामुद्रिक यात्राएँ कीं। कुक ने अपना जहाज **न्यूजीलैण्ड** के चारों ओर तत्पश्चात् इस **न्यू हालैन्ड** के पूर्वी तट पर चलाया। उसने अपना जहाज किसी वन्दरगाह में ठहराया जिसका नाम 'बोटनीबे' अर्थात् वनस्पति विज्ञान की खाड़ी तत्काल ही रख दिया गया क्योंकि वहाँ समुद्र तट पर बहुत प्रकार की वनस्पति थी। पूर्वीतट के ऊपर की ओर समुद्र यात्रा करते हुए, उसने इस पर जार्ज तृतीय के अधिकार की उद्घोषणा (दावा) की और इसका नाम **न्यू साउथवेल्स** अर्थात् नया दक्षिणी वेल्स रखा क्योंकि इसे देखकर उसको वेल्स के तट का स्मरण हुआ। तो भी सत्तरह वर्ष बीतने पर ही यहाँ कोई बस्ती बसी।

अपराधियों का उपनिवेश

प्रारम्भ में अँग्रेज राजनीतिज्ञों ने आस्ट्रेलिया को दण्डित अपराधी भेजने के लिए उचित साधन समझा और यह नया साम्राज्य अपराधी उपनिवेश के रूप में ही प्रारम्भ हुआ। ७५० दण्डित अपराधियों को लेकर मई १७८७ को इस देश को उपनिवेश बनाने के लिए प्रथम सामुद्रिक अभियान प्रारम्भ हुआ और बोटनीबे में जनवरी १७८८ में पहुँचा। यहाँ पहली बस्ती बसाई गयी और उसको तत्कालीन औपनिवेशिक सचिव **सिडनी** का नाम प्रदान किया गया। कई वर्षों तक दण्डित अपराधियों के नये-नये जत्थे जलपोतों द्वारा यहाँ भेजे गए जिन्होंने अपने दण्ड-काल की समाप्ति पर खेत प्राप्त किये। घर पर आर्थिक अवनति के बहुत से कालों के कारण, खेत और भोजन दिये जाने के वचनों के कारण तथा नए महाद्वीप के कृषि योग्य एवं विशेष रूप से भेड़ें पालने के उपयुक्त होने की बढ़ती हुई जानकारी के कारण स्वेच्छा से बसने वाले वहाँ आये। १८२० तक यहाँ की जनसंख्या लगभग ४०,००० हो गई। प्रथम तीस वर्षों में यहाँ का शासन सैनिक प्रकृति का रहा।

सोने की खोज

स्वेच्छा से बसने वाले इस बात के प्रबल विरोधी थे कि आस्ट्रेलिया दण्डित अँग्रेजी अपराधियों का कारावास समझा जावे और १८४० के पश्चात् यह प्रणाली धीरे-धीरे समाप्त कर दी गयी। प्रारम्भ में आस्ट्रेलिया मुख्य रूप से चरवाहों का देश था और ऊन तथा चमड़े का उत्पादन करता था। परन्तु १८५१ तथा १८५२ में सोने की अच्छी खानों का पता लग गया जिनकी समानता कैलीफोर्निया की खानें ही कर सकती थीं जो अभी थोड़े समय पूर्व ही ज्ञात हुई थीं। उपनिवेशकों का यहाँ के लिए एक विशाल प्रवजन हुआ। न्यूसाउथवेल्स के अतिरिक्त विक्टोरिया उपनिवेश की जनसंख्या पाँच वर्षों के भीतर ७०,००० से ३००,००० हो गयी। तब से आस्ट्रेलिया संसार के महान् स्वर्णोत्पादक देशों में से एक देश रहा है।

आस्ट्रेलिया के ६ उपनिवेश

इस प्रकार धीरे-धीरे वहाँ उपनिवेश स्थापित हो गये: न्यूसाउथवेल्स, क्वीन्सलैण्ड, विक्टोरिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया तथा समीपस्थ द्वीप टस्मानिया। धीरे-धीरे इनको कनाडा में कार्यान्वित स्वरूप का स्वशासन अर्थात् संसद तथा उत्तरदायित्वपूर्ण मन्त्रिमंडल दे दिये गए। जनसंख्या में लगातार वृद्धि होती रही और वह गत शताब्दी के अन्त में लगभग चालीस लाख हो गयी।

इन उपनिवेशों के इतिहास की महती घटना (गत) शताब्दी के अन्त में उनका एक संघ में सम्मिलित हो जाना था। तब तक ये उपनिवेश वैध रूप से एक दूसरे से संबद्ध नहीं थे और उनके संघ का अपुष्ट रूप केवल ताज के अधीन रहना था। दीर्घ-काल तक इस बात पर विवाद होता रहा कि इनको परस्पर अधिक घनिष्ठता से सम्बद्ध किया जावे अथवा नहीं। संघ के लाभों को आस्ट्रेलियावासियों ने कई कारणों से मान लिया। प्रमुख कारण था, व्यापारिक तथा औद्योगिकों मामलों, रेलवे के नियमों, जलयातायात, अभिसिंचन तथा आयात-निर्यात करों के एक समान विधान की वांछनीयता। साथ ही राष्ट्रीयता की अभिलाषा भी यहाँ सक्रिय थी जिसने १९वीं शताब्दी में यूरोप में उल्लेखनीय परिवर्तन कर दिये थे। आस्ट्रेलिया के निवासियों में स्वदेश प्रेम उत्पन्न हो गया था। वे दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने देश को एक प्रभावशाली शक्ति बनाना चाहते थे। पृथक् उपनिवेशों के जीवन द्वारा प्रदत्त दृष्टि-कोण की अपेक्षा वे एक बृहत्तर-दृष्टिकोण की आकांक्षा रखते थे। इस प्रकार विवेक तथा भावना का एक ही लक्ष्य की ओर सम्मिलन हो गया। वह लक्ष्य था—एक घनिष्ठ संघ अर्थात् एक अन्य औपनिवेशिक राष्ट्र का निर्माण।

दस वर्षों (१८९० से १९००) के गम्भीर वाद-विवाद के पश्चात् अन्ततोगत्वा **संघ** की स्थापना हो गयी। संघीय व्यवस्था के विभिन्न प्रयोगों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया गया—विशेषरूप से संयुक्त राज्य तथा कनाडा के संविधानों का। कई सभाओं (कनवेंशन्स) तथा कई उपनिवेशों की सरकारों और मंत्रियों ने संविधान का प्रारूप (ड्राफ्ट) तैयार किया और अंत में जनता की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत कर दिया गया। जनता की स्वीकृति प्राप्त कर लेने पर, **ब्रिटिश संसद** में वह संविधान "स्वतन्त्र आस्ट्रेलिया राष्ट्र मण्डल संविधान अधिनियम" (१९००) के नाम से पारित हुआ।[1] यह संविधान आस्ट्रेलिया के निवासियों ने बनाया था। इंगलैंड ने केवल स्वीकृति मात्र देने का कार्य किया था। यद्यपि संसद ने ब्यौरे के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये तथापि आस्ट्रेलिया के विरोध करने पर उनके सम्बन्ध में हठ नहीं की।

संविधान ने ६ उपनिवेशों के संयोजन का संघ स्थापित किया जोकि आगे **राज्य** कहलाते थे। न कि कनाडा की भाँति **प्रान्त**। इसके अनुसार दो सदनों की संघीय संसद बनी—**सीनेट** में प्रत्येक राज्य के ६ सदस्य होते थे और **प्रतिनिधि सभा** के सदस्यों की संख्या विभिन्न राज्यों की जनसंख्या के आधार पर निश्चित की गयी। संघीय शासन को दी गई शक्तियाँ सावधानी से निर्धारित की गईं। जनवरी १९०१ को इस नई पद्धति का उद्घाटन हुआ।

न्यूजीलैण्ड

इस नये राष्ट्रमण्डल में आस्ट्रेलिया के महत्त्वपूर्ण द्वीपों का समुदाय जिसका नाम न्यूजीलैंड है सम्मिलित नहीं है। यह आस्ट्रेलिया के पूर्व में १२०० मील की दूरी पर स्थित है। १८१५ के पश्चात् शीघ्र ही इंगलैंड ने इससे कुछ सम्बन्ध प्रारम्भ कर दिया था परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य में उसका संयोजन १८३९ में ही हुआ। १८५४ में न्यूजीलैंड को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्रदान कर दिया गया और १८६५

में उसे न्यूसाउथवेल्स से पूर्णत: पृथक् कर दिया गया और एक पृथक् उपनिवेश बना दिया गया। यहाँ के लिए विधिवत् रूप से प्रजनन को प्रोत्साहित किया गया। न्यूजीलैण्ड कभी भी दण्डित अपराधियों का उपनिवेश नहीं था। इसकी जनसंख्या बढ़ गयी और यह **साम्राज्य** का सर्वाधिक लोकतान्त्रिक उपनिवेश बन गया। १९०७ में इस उपनिवेश का नाम परिवर्तित करके **न्यूजीलैण्ड का औपनिवेशिक राज्य (डमीनियन)** रख दिया गया।

न्यूजीलैण्ड में कई छोटे-छोटे द्वीप तथा दो प्रमुख द्वीप सम्मिलित हैं। यह ग्रेट-ब्रिटेन से प्राय: सवाया है और इसकी जनसंख्या १० लाख के लगभग है जिनमें से ५०,००० वहाँ के आदि निवासी **माओरिये** हैं। इसकी राजधानी वैलिंगटन है जिसकी जनसंख्या लगभग ७०,००० है। एक दूसरा महत्त्वपूर्ण नगर ऑकलैंड है। न्यूजीलैंड एक कृषि प्रधान तथा चारागाहों का देश है और इसमें स्वर्ण सहित अन्य खनिज पदार्थों की प्रचुरता है।

न्यूजीलैण्ड

प्रगतिशील सामाजिक सुधारों, श्रम, पूँजी, भूस्वामित्व और व्यापार संबन्धी विधान के क्षेत्र में प्रयोगों के कारण आज से संसार के लिए न्यूजीलैंड अधिक रुचि का विषय है। उद्योग की जितनी शाखाओं पर राज्य का नियंत्रण स्थापित कर दिया गया है उतना अन्य देशों में स्थापित नहीं हुआ है।

सरकार रेलों की स्वामिनी है और वही उनको चलाती है। सैकड़ों की व्यवस्था लाभ के उद्देश्य से नहीं प्रत्युत जन-सेवा के लिए की जाती है। जैसे ही लाभ ३% से अधिक होने लगता है वैसे ही किराये और भाड़े की दरें कम कर दी जाती हैं। सघन नगर-बस्तियों के निवासियों को ग्रामीण क्षेत्र में बसने के लिए प्रोत्साहित करने के हेतु कम दर पर विशाल तथा सफल प्रयत्न किये जाते हैं। जो श्रमिक घर के बाहर जाते हैं अथवा घर लौट कर आते हैं वे एक सेण्ट में ३ मील की यात्रा कर सकते हैं। प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे नि:शुल्क ले जाये जाते हैं, और जो ऊँची कक्षाओं में पढ़ते हैं उन्हें बहुत कम किराया देना पड़ता है।

प्रगतिशील सामाजिक सुधार

टेलीग्राफ तथा टेलीफून पर सरकार का स्वामित्व है, और वही डाकखाने के बचत बैंकों को चलाती है। जीवन बीमा भी अधिकांश इसी के हाथ में है। इसका एक विभाग अग्निकाँडों तथा अन्य दुर्घटनाओं के बीमा का है। १९०३ में इसने कुछ राजकीय कोयले की खानों को चालू किया। इसका भूमि विधान उल्लेखनीय है जिसका मुख्य लक्ष्य कुछ थोड़े से व्यक्तियों के एकाधिकार से भूमि की रक्षा करना तथा जनता को भूस्वामी बनाना है। १८९२ में वृहत् सम्पदाओं पर वर्द्धमान कर लगाए गये, १८९६ में ऐसी संपदाओं को सरकार को बेचना अनिवार्य कर दिया गया और इस प्रकार विशाल भू-क्षेत्रफलों का स्वामित्व शासन को प्राप्त हो गया। राज्य उन्हें विविध रूपों से पट्टों पर भूमि-हीन तथा श्रमिक वर्गों को हस्तांतरित करती है। उतार-चढ़ाव के सिद्धान्त पर आधारित कर-प्रणाली अर्थात् वृहत्तर आयों, सम्पत्तियों और उत्तराधिकारों पर करों की अधिक दरों का उद्देश्य एकाधिकार तोड़ना अथवा रोकना है और छोटे स्वामी उत्पादक का हित साधन (पक्षपात) करना है।

कर प्रणाली

वृद्धावस्था वृत्तियाँ

औद्योगिक तथा श्रमिक विधान में भी न्यूजीलैंड ने उग्रवादी प्रयोग किये हैं। श्रमिक झगड़ों में, यदि एक पक्ष भी चाहे तो, मध्यस्थ निर्णय अनिवार्य है और उसका निर्णय स्वीकार्य है। कारखानों की विधियाँ कठोर हैं जिनका उद्देश्य विशेषरूप से स्त्रियों का संरक्षण तथा 'अरुचिकर अतिश्रम' को समाप्त कर देना है। सभी गोदामों में शनिवार को आधे दिन की छुट्टी अनिवार्य है। शासन में एक श्रम विभाग है जिसका अध्यक्ष मंत्रिमंडल की अंतरंग परिषद् (केवीनेट) का सदस्य होता है। इस विभाग का प्रथम कर्त्तव्य बेकारों के लिए कार्य खोजना है और इसका महान् प्रयत्न लोगों को नगरों से ग्रामीण क्षेत्रों में ले जाना है। यहाँ एक **वृद्धावस्था वृत्ति विधि** है जो १८९४ में कार्यान्वित की गई तथा १९०५ में संशोधित की गयी जिसके अनुसार उन स्त्रियों और पुरुषों को ६५ वर्ष की आयु के उपरान्त लगभग १२५ डालर की वृत्ति का उपवन्ध है जिनकी साप्ताहिक आय ५ डालर से न्यून है।

शासन के ये सब कार्य लोकतंत्रात्मक आधार पर होते हैं। मतदान के लिए सांपत्तिक अर्हताएँ नहीं हैं तथा पुरुषों और स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त है। प्रत्यक्ष मतदान पद्धति अपनाई गयी है।

विक्टोरिया नामक आस्ट्रेलीय उपनिवेश ने न्यूजीलैंड के सम्वन्ध में वर्णित विधान से समता रखने वाला प्रचुर विधान कार्यान्वित किया है।

ब्रिटिश दक्षिणी अफ्रीका

इंगलैण्ड अन्तर्राष्ट्रीय उपनिवेश प्राप्त करता है

फ्रांस और उसके मित्र तथा अधीन देश हालैण्ड के विरुद्ध युद्धों के परिणाम-स्वरूप इंगलैण्ड ने दक्षिणी अफ्रीका में स्थित डचों के अधिकृत क्षेत्रों, अन्तरीपी उप-निवेश (केप कालोनी) को छीन लिया। इस उपनिवेश तथा दक्षिणी अमेरिका के डच अधिकृत क्षेत्रों को ६० लाख पौंड प्रतिकर देकर १८१४ में इंगलैण्ड अपने अधिकार में रख लिया। अफ्रीका में अँग्रेजी विस्तार का यह प्रारम्भ था जो कि (गत) शताब्दी के अन्त में उल्लेखनीय रूप से विस्तृत हो गया। जब इंगलैण्ड ने इसको अपने अधिकार में लिया तब इसकी जनसंख्या में लगभग २७,००० यूरोपीय वंशज (अधिकांश डच), लगभग ३०,००० अफ्रीकी हैं और डचों के मलयी दास तथा लगभग १७,००० हुटेण्टोट्स थे। यहाँ तत्काल अँग्रेजों का प्रवजन (आगमन) प्रारम्भ हो गया।

बुअरों के साथ संघर्ष

अँग्रेजों तथा डचों (जिनको बुअर अर्थात् किसान कहते थे) के मध्य तीव्र संघर्ष बढ़ने लगा। स्थानीय सरकारों के रूप जिनके बुअर लोग अभ्यस्त थे, समाप्त कर दिए गए और नये रूप स्थापित किये गये। अँग्रेजी ही एक मात्र भाषा बना दी गयी और वह न्यायालयों में प्रयोग की जाने लगी। बुअर लोग, जो इन अधिनियमों के कारण उत्तेजित थे, १८१४ में दास प्रथा के समाप्त कर देने ने क्रुद्ध हो गए। वे दास प्रथा को गलत नहीं समझते थे। साथ ही अपर्याप्त प्रतिकर मिलने से वे यह समझते थे कि धोखा देकर उनकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया है। यह प्रतिकर लगभग ३० लाख पौण्ड था जो उनके विचारानुसार उनके दासों के मूल्य के तृतीयांश से थोड़ा ही अधिक था।

बुअर लोगों ने उपनिवेश त्यागने और भीतरी क्षेत्रों में बसने का संकल्प कर लिया जहाँ पर वे अनाहूत आगंतुकों द्वारा अनुपीड़ित रह सकते थे। वह प्रव्रजन अथवा 'ग्रेट ट्रेक' १८३६ में प्रारंभ हुआ और कई वर्षों तक चालू रहा। इस प्रकार लगभग १०,००० बुअर अन्तरोपी उपनिवेश छोड़कर चले गये। कई जोड़े बैलों द्वारा खींची जाने वाली भद्दी गाड़ियों द्वारा उनके परिवार तथा चल-संपत्तियाँ निर्जन जंगलों को स्थानांतरित की गयी। इसके परिणामस्वरूप अन्तरीपी उपनिवेश के उत्तर में दो स्वतंत्र बुअर गणतंत्र स्थापित हुये जिनको **आरेंज फ्रीस्टेट** (आरेंज स्वतंत्र राज्य) तथा ट्रान्सवाल अथवा दक्षिणी अफ्रीकी गणतंत्र कहते थे। उनका आस्तित्व अत्यन्त विषमतापूर्ण था। १८४८ में आरेंज फ्रीस्टेट को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने की घोषणा की गयी परन्तु उसने विद्रोह किया और १८५४ में ग्रेट ब्रिटेन ने उसकी स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान कर दी। तब से १८९९ तक वह अपना शांत जीवन (आस्तित्व) व्यतीत करता रहा। उसकी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं हुआ।

महान् प्रवजन

१८५२ में ट्रान्सवाल की स्वतंत्रता को भी मान्यता प्रदान की गई। परन्तु १८६७ में २५ वर्ष पश्चात् लार्डबेकंस-फील्ड के उग्र साम्राज्यवादी मन्त्रिमण्डल के अधीन इसके ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाये जाने की सहसा उद्घोषणा की गई। कारण यह बताया गया कि इसकी स्वतन्त्रता इंगलैण्ड के दक्षिणी अफ्रीका में स्थित अन्य अधिकृत क्षेत्रों की शांति के लिये बाधा थी। अँग्रेजों के प्रति बुअर लोगों की घृणा स्वभावतः प्रकट हुई और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की प्रतिरक्षा करने के लिये अस्त्र ग्रहण कर लिये।

ट्रांसवाल का अँग्रेजी साम्राज्य

१८८० में लार्ड बेकन्सफील्ड का मन्त्रिमण्डल समाप्त हो गया और ग्लैडस्टोन सत्तारूढ़ हुआ। ग्लेडस्टोन ने इस बलात् संयोजन की निन्दा की थी और उसकी धारणा थी कि एक भूल हो गयी है जो अवश्य सुधारी जानी चाहिये। वह इस आशा से कि शांतिपूर्ण उपायों से समस्या का समाधान कर लेगा बुअर नेताओं से बातचीत कर रहा था ताकि वह उभय पक्ष के लिये संतोषजनक सिद्ध हो सके। तब यह समस्या स्वयं बुअरों ने अत्यधिक कठिन बना दी। उन्होंने दिसम्बर १८८० में विद्रोह कर दिया और एक अँग्रेजी लघु सैनिक टुकड़ी को मजूबा पहाड़ी पर २७ फरवरी १८८१ में हरा दिया। सैनिक दृष्टिकोण से यह तथाकथित मजूबा पहाड़ी की लड़ाई अमहत्त्व-पूर्ण थी परन्तु अँग्रेजों और बुअरों पर इसके अत्यधिक तथा दूरगामी प्रभाव पड़े। ग्लैडस्टोन जो पहले से ही ट्रांसवाल को पुनः स्वतन्त्रता प्रदान करने के विचार से बातचीत कर रहा था अपनी नीति को एक छोटी सी लड़ाई (जो चाहे कितनी ही अपमानजनक क्यों न रही हो) के कारण बदलना ठीक नहीं समझता था क्योंकि वह ट्रांसवाल की स्वतन्त्रता के अपहरण को अन्यायपूर्ण मानता था। अतः उसके मन्त्रिमण्डल ने अपने मार्ग का परित्याग नहीं किया क्योंकि उसका विश्वास था कि एक स्वयं अमहत्त्वपूर्ण सैनिक दुर्भाग्य के कारण न्याय और समझौते के कार्य से विमुख नहीं होना चाहिये। ट्रांसवाल की स्वतन्त्रता को औपचारिक

मजूबा पहाड़ी

ग्लैडस्टोन के प्रशासन की नीति

रूप से मान्यता प्रदान कर दी गयी किन्तु यह प्रतिबंध रखा गया कि "यह ग्रेट ब्रिटेन की अनुमति के बिना विदेशों से समझौता नहीं कर सकेगा तथा यह प्रतिवन्ध भी रखा गया, जोकि आगे चलकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ, कि श्वेतजनों को गणतन्त्र के किसी भी भाग में बसने की स्वतन्त्रता होगी, वे उसमें व्यापार भी कर सकेंगे और उन्हें वे ही कर देने होंगे जो वहाँ के नागरिकों को देने पड़े।'

ग्लैडस्टोन के इस कार्य की अँग्रेजों द्वारा, जो वहाँ से वापस आने तथा एक पराजय को प्रतिशोध लिये बिना छोड़ देने में विश्वास नहीं करते थे, कठोर आलोचना की गई। उन्होंने मन्त्रिमण्डल की नीति को दक्षिणी अफ्रीका के उपनिवेशों के प्रतिकूल तथा साम्राज्य के सम्मान के लिये हानिकर बताकर निन्दित किया। दूसरी ओर बुअरों ने यह समझा कि उन्होंने शस्त्रों के बल से परम्परागत शत्रु को अपमानित करके अपनी स्वतंत्रता को जीता है और इस हेतु वे अति प्रसन्न थे। इस विचार को धारण करके वे अपने आपको आत्म-प्रवंचना द्वारा हानि पहुँचा रहे थे। साथ ही इस विचार से कि वे जो एक बार कर चुके हैं उसे पुनः कर सकते हैं अपने को हानि पहुँचा रहे थे और मजूबा पहाड़ी की स्मृति को जीवित रखकर वे अँग्रेजों को क्रुद्ध कर रहे थे। प्रव्रजन के संबंध में जो वाक्यांश ऊपर अभी उद्धृत किया है वह भावी संकट के बीजाणु से पूर्ण था जिसकी परिणति अंत में गणतंत्र के पतन में हुई क्योंकि वहाँ के निवासियों के चरित्र में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होने वाला था।

बुअर लोग

दक्षिणी अफ्रीकी गणतंत्र में पूर्णरूपेण बुअर लोग ही रहते थे जो कि केवल कृषि तथा पशुओं के चराने में अभिरुचि रखते थे। वे पुष्ट, दृढ़, धार्मिक, स्वतंत्राप्रिय, किन्तु आधुनिक अर्थ में अप्रगतिशील, अशिक्षित, विदेशियों और विशेष रूप से अँग्रेजों पर संदेह करने वाले थे। १८८४ की इस खोज से कि इनके रैंड नामक पर्वतों में प्रचुर मात्रा में स्वर्ण अंतर्निहित है इस ग्रामीण जाति की शांति और संतोष भंग हो गयीं। तत्काल खनिज और सटोरियों (Speculators) का यहाँ भारी संख्या में आगमन प्रारंभ हो गया। ये प्रमुखतः अँग्रेज थे। खान प्रान्त के मध्य में जोणसवर्ग नामक नगर द्रुतगति से वर्द्धमान हुआ और कुछ ही वर्षो में इस विदेशियों के नगर की जनसंख्या १००,००० से अधिक हो गयी। शीघ्र ही यहाँ के निवासी बुअरों तथा झगड़ा प्रारंभ करने वाले एवं स्फूर्तिवान् विदेशियों अथवा यूटीलेण्डरों में झगड़े प्रारंभ हो गये।

विदेशियों ने अपनी कठिनाइयों (शिकायतों) का अधिक विज्ञापन किया। उनके देशीकरण के मार्ग में बड़ी बाधाएँ खड़ी की गयीं, और उनका शासन में कोई भी भाग यहाँ तक कि मताधिकार भी नहीं दिया गया। तो भी ट्रांसवास के कई भागों में वहाँ के निवासियों में उनकी संख्या अधिक थी और करों का अधिकांश भाग वे ही देते थे। इनके अतिरिक्त उनको सैनिक सेवा भी करनी पड़ती थी जिसका अभिप्राय, उनके विचार में, नागरिकता था। वे ब्रिटिश सरकार की ओर इस हेतु दृष्टि लगाये हुये थे कि वह सुधारों के लिये उनकी माँगों को प्रस्तुत करेगी। बुअर सरकार निस्संदेह एक कुलीनतन्त्र थी परन्तु बुअर लोग यह समझते थे कि केवल इन अनाहूत एवं अप्रिय आगंतुकों को मताधिकार से वंचित रखकर ही वे अपने राज्य पर जिसको उन्होंने उन निर्जन जंगलों में बड़ी कठिनाइयों से स्थापित किया था, नियंत्रण रख सकते थे। १८९५ में एक घटना घटित हुयी

जैम्सन का आक्रमण

जिसने उनमें तीव्र कटुता कर दी। यह घटना थी जैम्सन का आक्रमण जो कि रोडेशिया के प्रशासक डा० जैम्सन के अधीन कई सौ सैनिकों ने स्पष्टत: बुअर सरकार को उलटने के लिये ट्रान्सवाल पर किया था। आक्रमणकर्ताओं को बुअरों ने बड़ी सरलता से पकड़ लिया और बड़ी उदारता से इंगलैण्ड को लौटा दिया। इस असमर्थनीय आक्रमण तथा इंगलैण्ड में अपराधियों को हल्का दण्ड दिये जाने के तथ्य से तथा अँग्रेज सरकार द्वारा सैसिल रोड्स को, जिनको सभी बुअर इस षड़यंत्र के लिये पूर्ण उत्तरदायी समझते थे, संरक्षण प्रदान किये जाने से बुअरों के हृदयों को भारी आघात पहुँचा और विदेशियों की माँगों के प्रति उनका प्रतिरोध और भी बढ़ गया। ये माँगें ठुकरा दी गयीं और विदेशियों की शिकायतें ज्यों की त्यों बनी रहीं। विदेशियों की संख्या वहाँ के निवासियों से दूनी थी। संघर्ष लगातार बढ़ता रहा। अँग्रेजों ने यह आक्षेप लगाया कि बुअरों का उद्देश्य अंततः अँग्रेजों को दक्षिणी अफ्रीका से निकालना था और बुअरों ने यह आक्षेप लगाया कि अँग्रेजों का उद्देश्य इन दोनों बुअर गणतन्त्रों को समाप्त करना था। दोनों सरकारों में समझौते की भावना नहीं थी।

दक्षिण अफ्रीकी युद्ध

अँग्रेज उपनिवेश सचिव जोसेफ चैम्बरलेन घमण्डी और धृष्ट था। ट्रान्सवाल का राष्ट्रपति, पॉल क्रूगर, हठी और अज्ञ था। अंत में बुअरों ने ग्रेट ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ऑरेंज फ्रीस्टेट ने जिसका कोई झगड़ा नहीं था, अपने स्वजातीय बुअर गणतंत्र का साथ दिया।

दोनों पक्षों ने इस युक्त को हल्केपन से प्रारम्भ किया। प्रत्येक ने एक दूसरे के साधनों और भावनाओं को बहुत ही कम समझा था। अँग्रेजी सरकार ने पूर्ण रूपेण तैयारी नहीं की क्योंकि वह बाह्यत: यह विश्वास नहीं करती थी कि यह छोटा राज्य अन्त में सबल ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करने का साहस नहीं करेगा। दूसरी ओर बुअर लोग दीर्घकाल से संघर्ष के लिये तैयारियाँ कर रहे थे और वे यह जानते थे कि दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश सैनिकों की संख्या कम है और वे उनके प्रतिरोध को दबाने के लिये पूर्णत: अपर्याप्त हैं। साथ ही कई वर्षों से उन्होंने मजूवा पहाड़ी के महत्त्व को अतिशय प्रदान करके अर्थात् अँग्रेजों पर विजय मानकर अपनी स्वयं अववंचना की थी। प्रत्येक पक्ष यह विश्वास करता था कि युद्ध अल्पकालीन होगा और उसके पक्ष में समाप्त होगा।

अँग्रेजों की विजय

जिस युद्ध की समाप्ति की कल्पना उन्होंने कुछ ही मासों की थी वह तीन वर्षों तक चलता रहा। प्रारंभ में इंगलैण्ड की कई असम्मानजनक पराजयें हुयीं। युद्ध में बड़ी लड़ाइयाँ नहीं हुयीं परन्तु प्रारम्भ में कई घेरे डाले गये और छुट पुट (गुरीला) लड़ाइयाँ हुयीं तथा इस घेरा की वृहत, विधिवत् एवं कठिन विजय इस युद्ध की विशेषता थी। दोनों पक्षों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। लार्ड रावर्ट तथा लार्ड किचनर अँग्रेजों के नेता (सेनानी) थे। क्रिश्चियन डालावेट, लुई बोथा, डिलारी आदि कई सेनानियों ने विश्वख्याति प्राप्त करके बुअरों के नेताओं के रूप में अपने को अति प्रसिद्ध किया। केवल संख्या की अधिकता के कारण अँग्रेजों ने विजय प्राप्त की और १ जून १९०२ को अंत में संधि हो गयी। ट्रांसवाल तथा ऑरेंज फ्रीस्टेट

की स्वतंत्रता समाप्त हो गयी और वे ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश बन गये। अन्यथा विजेताओं द्वारा जो शर्तें प्रस्तुत की गयीं वे उदार थीं। बुअरों को अपने बुरी तरह बरबाद देश में पुनः जीवन प्रारंभ करने के लिये इंगलैण्ड को धन-राशियों के उदार अनुदान तथा ऋण देने थे। जहाँ कहीं संभव था उनकी भाषा को सम्मान मिलना था

ट्रांसवाल तथा ऑरेंज फ्रीस्टेट का मिलाया जाना

युद्ध की समाप्ति के पश्चात् उल्लेखनीय तीव्रगति से एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता तथा समझौते का कार्य होता रहा। १९०६ में ट्रांसवाल के उपनिवेश को और ऑरेंज नदी उपनिवेश को १९०७ में उत्तरदायित्वपूर्ण अर्थात् स्वशासन प्रदान कर दिया गया। अँग्रेज सरकार के इस उदार व्यवहार के अत्यंत सुखद परिणाम निकले जैसा कि अधिक घनिष्ठ संघ के आन्दोलन की शक्ति और स्वाभाविकता ने विश्वस्त रूप से प्रकट कर दिया। इस आन्दोलन की परिणति १९०९ में ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत एक नवीन औपनिवेशक राष्ट्र के निर्माण में हुयी। १९०८ में एक सभा बुलायी गयी जिसमें चारों उपनिवेशों के प्रतिनिधि ने भाग लिया। इसके विचार-विमर्श का, जो कई महीनों तक होता रहा, 'निष्कर्ष दक्षिण अफ्रीकी संघ' के संविधान का प्रारूप था। तत्पश्चात् यह प्रारूप उपनिवेशों की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किया गया और जून १९०९ तक उन सबने इसको स्वीकार कर लिया। यह संविधान एक विधि के रूप में था जो ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किया जाना था। २० सितम्बर १९०९ को यह विधि बन गया।

दक्षिण अफ्रीकी संघ

दक्षिण अफ्रीकी संघ स्वयं दक्षिण अफ्रीका निवासियों का कार्य था जिसमें पूर्व विरोधी बुअरों और अँग्रेजों ने मिलकर सहयोगपूर्वक कार्य किया। केन्द्रीय सरकार में एक सभासदन (हाउस ऑफ असेम्बली), एक सीनेट, एक कार्यकारिणी परिषद्, तथा एक गवर्नर जनरल होता है जिसकी नियुक्ति ताज द्वारा की जाती है। अँग्रेजी तथा डच भाषा सरकारी भाषाएँ हैं और दोनों को समान सम्मान प्राप्त है। विभिन्न नगरों की प्रतिस्पर्धा इतनी गहन थी कि राजधानी का चुनाव करने में कठिनाई का अनुभव हुआ। फलस्वरूप एक समझौता सम्पन्न हुआ। शासन की कार्यपालिका शाखा का स्थान प्रीटोरिया को और व्यवस्थापिका शाखा का स्थान केपटाउन को चुना गया।

दक्षिण अफ्रीकी संघ का निर्माण राष्ट्रीयता की भावना की अति निकटवर्ती भूतकालीन विजय है जिसने विश्व को १८१५ के पश्चात् इतना अधिक परिवर्तित कर दिया है। नये स्वतंत्र राष्ट्रमण्डल की जनसंख्या में लगभग १,१५०,००० श्वेत तथा ६,०००,००० से अधिक अश्वेत अर्थात् ऐसे व्यक्ति हैं जो यूरोपनिवासियों के वंशज नहीं हैं। अंततोगत्वा रोडेशिया के संघ में प्रवेश करने के लिये उपबन्ध रखा गया है।

साम्राज्यीय संघ

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ग्रेट ब्रिटेन के अधिकार में जितना विस्तृत और विशाल जनसंख्या वाला साम्राज्य है उतना बड़ा साम्राज्य संसार में कभी स्थापित नहीं हुआ। यदि मिस्र और सूडान भी इसमें सम्मिलित कर

इंगलैण्ड का दूरस्थ साम्राज्य

लिया जावे तो इस साम्राज्य की ४२०० लाख से अधिक जनसंख्या है और लगभग १३० लाख वर्गमील इसका क्षेत्रफल है। यह साम्राज्य एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, (दोनों) अमरीकाओं तथा सप्त महासागरों के द्वीपों में सर्वत्र फैला हुआ है। इसकी जनसंख्या में विविध जातियों के लोग सम्मिलित हैं। केवल ५४ लाख व्यक्ति अंग्रेजी बोलने वाले हैं जिनमें से ४२ लाख ग्रेट ब्रिटेन के निवासी हैं। अधिकांश उपनिवेश आत्म-निर्भर हैं। उनमें सैनिक, निरंकुश, प्रतिनिधि, लोकतान्त्रिक आदि सभी रूपों की सरकारें पायी जाती हैं। सम्पूर्ण साम्राज्य को केवल समुद्र ही संयोजित करता है। इंगलैण्ड का सिंहासन अलंकारिक तथा सामान्य अर्थ मे उत्तुंग लहर पर स्थित है। अपने सुदूरस्थ उपनिवेशों से संसार व्यवस्था बनाये रखने के लिये उसका महासमुद्रों पर आधिपत्य होना आवश्यक है। यह केवल संयोग की बात नहीं है कि इंगलण्ड विश्व की महत्तम सामुद्रिक शक्ति है और वह ऐसी ही बने रहने की इच्छा रखता है। वह अपने साम्राज्यवादी अस्तित्व के लिये इसको अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त मानता है।

जैसा पहले ही पर्याप्त रूप से प्रकट किया जा चुका है ब्रिटिश साम्राज्य की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसके बहुमत से उपनिवेशों में जिनमें अँग्रेज वंशधर अधिक संख्या में हैं जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड, प्रायः असीम स्वशासन स्थापित है। यह नीति जर्मन तथा फ्रांसीसी सरकारों द्वारा अनुसरण की जाने वाली नीति के प्रतिकूल है जो कि अपने उपनिवेशों को सीधे पैरिस तथा बर्लिन से शासित करते हैं। परन्तु यह पद्धति उनमें सबसे बड़े (देश) **भारत** तथा अन्य बहुत से अपेक्षाकृत छोटे अधिकृत क्षेत्रों में लागू नहीं है।

साम्राज्यीय संघ की समस्या

एक प्रशन, जिस पर गत पच्चीस वर्षों से अधिकतम तथा सच्चाई से विवाद हो रहा है वह **साम्राज्यीय संघ** का है। क्या कोई ऐसा यंत्र (व्यवस्था) विकसित किया जा सकता है, कोई ऐसी विधि ज्ञात की जा सकती है कि जिसके द्वारा यह विस्तृत साम्राज्य घनिष्ठ रूप से संगठित किया जा सके तथा कुछ उद्देश्यों के लिये इकाई के रूप में कार्य कर सके। यदि ऐसा हो सके तो इसकी शक्ति अधिक बढ़ जावेगी और विश्व इतिहास में उल्लिखित शासन-कला की सर्वोत्तम उपलब्धि को देखने का संसार को अवसर प्राप्त होगा। इस प्रकार के ग्रेट ब्रिटेन की स्थापना, समीपवर्ती विगत वर्षों में, बहुत से विचारशील राजनीतिज्ञों की कल्पना का विषय बन गयी है। १९१४ को (विश्व) युद्ध इस समस्या के समाधान में सहयोग प्रदान करेगा। यह आशा तर्क संगत प्रतीत होती है। कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका, तथा बाह्यतः भारत निवासियों में भी इस युद्ध ने गहन साम्राज्यीय प्रेम के अस्तित्व की अभिव्यंजना की है। ये सभी मातृदेश (इंगलैण्ड) की, आवश्यकता के समय, सहायतार्थ सहज ही शीघ्रतापूर्वक आ रहे हैं। सभी स्पष्ट रूपों से अपने प्रेम को पूर्णरूप से उस हेतु देने के लिये इच्छुक हैं जिसे वे अपने सबके लिये एक समान समझते हैं। इतनी बलवती भावना किसी स्थायी राजनीतिक संस्था के रूप में प्रस्फुटित एवं प्रतिमूर्तित होने का मार्ग अवश्य खोज लेगी। एकता की जो भावना निर्विवाद रूप से अभिव्यंजित हुयी है किसी ऐसे भावी संगठन की अग्रदूती हो सकती है जो उस भावना को संरक्षित रखने, पोषण करने तथा अधिक समृद्ध रूप से विकसित करने के अनुरूप होगा।

अध्याय २८

अफ्रीका का विभाजन

यूरोप के क्षेत्रफल के तिगुने क्षेत्रफल का अफ्रीका

यूरोप से प्रायः दृष्टिगोचर तथा उसके महान् स्थलीय सागर की दक्षिणी सीमा का निर्माण करता हुआ एक बृहत् महाद्वीप स्थित है जो कि यूरोप के आकार का तिगुना है तथा जिसकी वास्तविक प्रकृति १९वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में ही ज्ञात हुयी। कुछ दशाओं में वह अत्यन्त प्राचीन इतिहास का स्थान है, अधिकतम दशाओं में इसका इतिहास अभी प्रारम्भ हो रहा है। नील नदी की निचली घाटी में मिस्र में एक समृद्ध तथा उन्नत सभ्यता अत्यन्त प्राचीन काल में प्रकट हुयी थी। तो भी सहस्रों वर्षों के पश्चात् और वह भी केवल हमारे समय में इस विख्यात नदी के उद्गम तथा ऊपरी क्षेत्र के बहाव की खोज की गयी। उत्तरी समुद्र तट पर कारथेज की सभ्यता तथा राज्य का प्रादुर्भाव हुआ जो कि समृद्ध, रहस्यपूर्ण तथा भीषण था। कुछ समय तक वह रोम का शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी था और जिससे वह कठिन तथा स्मरणीय संघर्ष के पश्चात् ही पराभूत हुआ। प्राचीन संसार अफ्रीका के उत्तरी समुद्र तट से परिचित था। शेष भाग प्रायः अज्ञात था।

खोज की अवधि अनुसंधानों का काल

१५वीं शताब्दी में महती भौगोलिक अनुसंधानावली प्रारम्भ हुयी। जिसने ज्ञात संसार की सीमाओं को अत्यधिक विस्तृत कर दिया। अन्य बातों के साथ-साथ उन अनुसंधानों ने इस महाद्वीप की अज्ञात रूपरेखा और विस्तार को प्रकट कर दिया। परन्तु इसका अधिकांश आंतरिक भाग यथापूर्ण अज्ञात रहा और वह १९वीं शताब्दी में दीर्घकाल तक वैसा ही अज्ञात रहा।

१८१५ में परिस्थिति

१८१५ में निम्न परिस्थिति थी : तुर्की साम्राज्य समस्त उत्तरी समुद्र तट पर मराको तक फैला हुआ था अर्थात् (तुर्की) सुल्तान मिस्र, ट्रिपोली, ट्यूनिस तथा अल्जीरिया का नाम मात्र का सुल्तान था। मराको अपने सुल्तान के अधीन स्वतन्त्र था। पश्चिमी समुद्र तट पर इंगलैण्ड, फ्रांस, डेनमार्क, हालैण्ड, स्पेन और पुर्तगाल की बस्तियाँ अथवा स्टेशन यत्र-तत्र स्थित थे। मैडागास्कर के सम्मुख स्थित पूर्वी समुद्र

तट पर पुर्तगाल अपने अधिकार रखता था। इंगलैण्ड ने, जैसा कि हम देख चुके हैं, अभी-अभी डच अन्तरीपी उपनिवेश प्राप्त किया था जहाँ से उसका विस्तार अफ्रीका में प्रारम्भ हुआ। महाद्वीप का आंतरिक भाग अज्ञात था और उसमें केवल भूगोल-वेत्ताओं की अभिरुचि थी।

अल्जीरिया की फ्रांस द्वारा विजय

१८१५ के पश्चात् ६० वर्ष तक यूरोपीय देशों द्वारा अफ्रीका को अधिकृत किये जाने की प्रगति मन्द रही। १८३० और १८४७ के बीच में फ्रांस द्वारा अल्जीरिया का अपहरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। दक्षिण में इंगलैण्ड अपना विस्तार कर रहा था और बुअर लोग अपने दो गणतन्त्रों की स्थापना कर रहे थे। यूरोपीय देशापहरण अनुसंधान का अनुगामी था। अफ्रीका 'अन्ध महाद्वीप' था और जब तक अन्धकार समाप्त नहीं हुआ तब तक उसकी चाह किसी ने नहीं की। गत शताब्दी के मध्य से अन्धकार समाप्त होने लगा। इस महाद्वीप को विभिन्न दिशाओं से पार करते हुये अन्वेषक आन्तरिक भागों में आगे-आगे बढ़ते चले गये। हम अपने ग्रन्थ की सीमाओं के भीतर बहुत से वीर एवं साहसी अँग्रेज, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच, जर्मन तथा बेल्जियम वासी अन्वेषकों के आश्चर्यजनक कार्य की ओर संकेत करने के अतिरिक्त और अधिक नहीं लिख सकते हैं। केवल कुछ घटनाएँ ही वर्णित की जा सकती हैं।

नील नदी के उद्गम

यह स्वाभाविक था कि यूरोप निवासी नील नदी के उद्गम के विषय में उत्सुक थे। यह नदी इतिहास के प्रारम्भ से विख्यात थी परन्तु जिसका उद्गम अज्ञात था। एक अँग्रेज अन्वेषक, स्पेन, द्वारा उसके एक उद्गम का पता लगाया गया जोकि भूमध्यरेखा के दक्षिण में एक बड़ी झील में से था। इस झील का नाम **विक्टोरिया न्यान्जा** रखा गया। ६ वर्ष पश्चात् एक अन्य अँग्रेज, सर सेमुअल बेकर, ने एक दूसरी झील का पता लगाया। वह भी उद्गम थी। उसका नाम अल्बर्ट **न्यान्जा** रखा गया।

इस अफ्रीकी अन्वेषण के अभिलेख में दो नाम विशेष रूप से स्थान रखते हैं: लिविंगस्टोन तथा स्टैनली। डैविड लिविंगस्टोन जोकि एक स्काटलैण्ड का धर्म प्रचारक तथा यात्री था, ने अपना अफ्रीकी जीवन १८४० में प्रारम्भ किया और १८७३ में मृत्यु पर्यन्त जारी रखा। उसने ऊपरी कांगो की जम्बेसी नदी के उद्गम का पता लगाया। तथा टंगानिका और न्यासा झीलों के चारों ओर के क्षेत्र का अन्वेषण किया। उसने अफ्रीका की इस ओर के समुद्र से उस ओर के समुद्र तक की यात्रा की। उसने संसार के लिये एक नये देश का उद्घाटन किया। उसकी खोजों की ओर यूरोप निवासियों का ध्यान गया और जब उसकी एक यात्रा के अवसर पर यूरोप वालों ने यह समझा कि उसकी मृत्यु हो गयी अथवा वह खो गया है,

स्टैनली

तो उसको खोजने के लिये एक अभियान भेजा गया। उस अभियान ने यूरोप निवासियों का अवधान इतना आकृष्ट किया जितना कि अफ्रीकी इतिहास में अन्य किसी भी अभियान ने नहीं किया था। यह अभियान हेनरी एम० स्टैनली के निर्देशन में न्यूयार्क हैराल्ड ने भेजा था। स्टैनली की कहानी यूरोप में अत्यधिक सावधानी से पढ़ी गयी और इस महाद्वीप के विषय में जानकारी के लिये पहले से ही बहुत से लोगों की जो इच्छा थी उसको उसने और

अधिक बढ़ा दिया। इस कहानी में यह बताया गया था कि उसने लिविंगस्टोन का किस प्रकार पता लगाया। अफ्रीकी अन्वेषण में लिविंगस्टोन का नाम सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है। १८७३ में उसका देहान्त हो गया। पूर्ण सम्मान के साथ उसका मृतक शरीर इंगलैण्ड ले जाया गया और वैस्टमिंस्टर एबे में उसका शव एक राष्ट्रीय वीर की भाँति दफना दिया गया।

इस समय तक यूरोप निवासियों की वैज्ञानिक उत्सुकता ही पूर्णरूप से जागरित नहीं हुयी थी अपितु उत्साही धर्म प्रचारकों को अपने कार्य के लिये एक नया क्षेत्र दृष्टिगोचर हो गया। इस प्रकार १८७४ से १८७८ तक स्टैनली की अफ्रीका के एक सिरे से दूसरे सिरे तक की यात्रा पर यूरोप निवासियों का (अत्यधिक) ध्यान रहा जिसकी समानता आधुनिक देशान्वेपण के इतिहास में नहीं है। जानकारी में महत्त्व-पूर्ण वृद्धि करते हुये स्टैनली ने भूमध्यरेखीय झील की खोज की। तो भी उसका महान् कार्य था कांगो और उसकी सहायक नदियों का अन्वेषण। उस नदी के विपय में उसके समुद्र के समीपवर्ती निचले भाग के अतिरिक्त बहुत कम जानकारी थी। स्टैनली ने यह सिद्ध किया कि यह संसार की सबसे बड़ी नदियों में से एक है; इसकी लम्बाई तीन सहस्र मील से अधिक है, इसमें बहुत सी सहायक नदियाँ गिरती हैं; यह १,३००,००० वर्ग मील से भी अधिक विस्तृत क्षेत्र के पानी को निकालती है और इसके पानी का घनत्व केवल अमेजन नदी से ही कम है।

इस प्रकार १८८९ ई० तक वैज्ञानिक उत्साह और कौतुहल, यूरोप निवासियों का धार्मिक तथा मानव सम्बन्धी उत्साह और दासों को पकड़ने वालों के प्रति घृणा जो कि भीतरी भागों में अपना व्यापार करते थे, ने अफ्रीका के महान् रहस्य का उद्घाटन कर दिया। जहाँ पहले कुछ नहीं रहता था वहाँ पर अब मानचित्रों में नदियाँ और झीलें दिखाई गयीं।

अन्वेषण के पश्चात् शीघ्र ही अधिकार किया गया। १८८१ में फ्रांस ने अपने रक्षित प्रदेश ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया, इंगलैंण्ड ने १८८२ में मिस्र पर अधिकार कर लिया। यह सामान्य संघर्ष के लिये संकेत था।

अफ्रीका को यूरोप निवासियों ने हस्तगत कर लिया

अद्रुत एवं दीर्घ अन्वेषण काल के पश्चात् विभाजन का तीव्र काल आया। जो महाद्वीप उनके अति निकट स्थित था तथा जिसकी अब तक उपेक्षा तथा घृणा की गयी थी उस पर यूरोपीय शक्तियों ने आक्रमण सा कर दिया और उसको परस्पर विभाजित कर लिया। अपने-अपने अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करते हुये इस कार्य को उन्होंने बिना युद्ध किये परस्पर संधिमाला के द्वारा सम्पादित किया। अफ्रीका यूरोप का **परिशिष्ट** (अधिकतम क्षेत्र) हो गया। क्षेत्राधिकार की इस दौड़ में स्वभावत: इंगलैण्ड, फ्रांस और जर्मनी ने सबसे अधिक प्रदेशों पर अधिकार जमाया परन्तु पुर्तगाल तथा इटली में से प्रत्येक को भी कुछ भाग मिल गया। इन अधिकृत क्षेत्रों की स्थिति तथा सापेक्ष विस्तार मानचित्र के परीक्षण में सर्वोत्तम रूप में समझा जा सकता है। अधिकांश संधियाँ, जिनके द्वारा यह विभाजन किया गया था, १८८४ और १८९० के बीच में की गयी थीं।

यूरोप द्वारा अफ्रीका के विभाजन की एक विशेपता थी कांगो के स्वतन्त्र

कांगो का स्वतन्त्र राज्य

राज्य की स्थापना । यह बेलजियम के दूसरे नरेश, ल्योपोल्ड द्वितीय का कार्य था जो कि इस महाद्वीप के अन्वेषण में अधिक अभिरुचि रखता था । लिविंगस्टन की खोजों और स्टैनली की प्रारम्भक खोजों के पश्चात् १८७६ में उसने शक्तिशाली देशों (Powers) का एक सम्मेलन बुलाया । इसके विचार विमर्श के परिणामस्वरूप एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित की गयी जिसका स्थान ब्रुसेल्स में होना था और जिसका उद्देश्य मध्य अफ्रीका का अन्वेषण तथा उसे सभ्य बनाना होना था इस सर्वनिष्ठ उद्देश्य के लिये प्रत्येक राष्ट्र को जो सहयोग देना चाहता था, निधियाँ (Funds) स्थापित करनी थीं ।

१८७९ में स्टैनली उसी कार्य को करने के लिये भेजा गया जो उसने पहले ही प्रारम्भ कर दिया था । अब तक जो अन्वेषक था, अब संगठनकर्त्ता तथा राज्य निर्माता भी हो गया था ।

आगे के चार या पाँच वर्षों (१८७९-८४) में उसने स्थानीय शासकों से सैकड़ों सन्धियाँ कीं और कांगों में बहुत से स्थान स्थापित किये । साधारणतया वह एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का दूत था परन्तु उसका अधिकांश व्यय भार नरेश ल्योपोल्ड द्वारा वहन किया गया ।

बर्लिन की सभा

पूर्व अन्वेषण के आधार पर पुर्तगाल ने इस कांगो क्षेत्र के अधिक भाग पर विस्तृत अधिकारों की माँग प्रस्तुत की । १८८४-८५ में इन अधिकारों की माँगों और अन्य मामलों को सुव्यवस्थित करने के लिये बर्लिन में एक सम्मेलन किया गया जिसमें स्विट्जरलैण्ड के अतिरिक्त सभी यूरोपीय राज्य तथा संयुक्त राज्य अमरीका ने भी भाग लिया । एक विस्तृत भू-भाग अर्थात् कांगों की घाटी के अधिकांश भाग सहित कांगो फ्रीस्टेट (स्वतन्त्र कांगो राज्य) की एक स्वतन्त्र शक्ति के रूप में सत्ता को स्वीकार किया गया । इस सम्मेलन ने स्पष्टतः समझ लिया था कि यह एक तटस्थ तथा अन्तर्राष्ट्रीय राज्य होगा । इसमें सभी राष्ट्र समानाधिकार के साथ खुला व्यापार कर सकेंगे, सभी के लिये नदियाँ खुली रहेंगी, और केवल वे ही शुल्क (dues) लगाये जावेंगे जो व्यापार की आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे । कोई व्यापारिक एकाधिकार नहीं दिया जावेगा । तो भी इस सम्मेलन ने अपने आदेशों को मनवाने के लिये कोई व्यवस्था नहीं की (अर्थात् कोई प्रशासन-यन्त्र स्थापित नहीं किया) उन निर्णयों का पालन नहीं हुआ । राज्य शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय नहीं रहा, एकाधिकार प्रदान किये गये, कांगो का व्यापार सभी के लिये खुला नहीं रहा ।

कांगो स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया

यह नया राज्य लगभग बेलजियम का राज्य बन गया क्योंकि इस योजना में केवल बेलजियम नरेश ने ही व्यावहारिक अभिरुचि प्रदर्शित की थी । १८८५ में ल्योपोल्ड द्वितीय ने उसके नरेश की पदवी धारण करली और उसने यह घोषणा की कि बेलजियम तथा कांगो के स्वतन्त्र राज्यों का सम्बन्ध केवल व्यक्तिगत होगा क्योंकि वह दोनों का शासक है । यह घोषणा तथा कांगो की स्थिति में अन्य परवर्ती परिवर्तन अन्य शक्तियों द्वारा मान लिये गये अथवा उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । अन्ततः १९०८ में यह अन्तर्राष्ट्रीय राज्य पूर्णरूपेण बेल-

जियम के उपनिवेश में परिवर्तित कर दिया गया जो कि नरेश के व्यक्तिगत शासन के अधीन न रह कर संसद के अधीन रहेगा।

मिस्र

पुरानी सभ्यता के केन्द्र (स्थान), मिस्र देश को तुर्की ने जीता और वह १५१७ में तुर्की साम्राज्य का अंग बन गया। यह नाममात्र रूप से १९१५ तक ऐसा ही रहा जबकि ग्रेट ब्रिटेन ने संरक्षित राज्य के रूप में इसके ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाये जाने की घोषणा की। उस कालावधि में इसका सर्वोपरि शासक सुल्तान था जो कि कुस्तुन्तुनिया में रहता था। परन्तु १९ वीं शताब्दी की उल्लेखनीय घटनावली घटित हुयी जिसके फलस्वरूप इसको अत्यन्त विशिष्ट तथा असरल स्थिति प्राप्त हो गयी। सुल्तान के कुछ विरोधियों को दबाने के लिए अल्बानिया निवासी योद्धा, मेहमत अली, १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में भेजा गया। सुल्तान द्वारा १८०६ में यह मिस्र का शासक नियुक्त किया गया परन्तु १८११ तक इसने अपने को उस देश का पूर्ण स्वामी बना लिया। वह भली-भाँति सफल हुआ। मूलतः वह सुल्तान का प्रतिनिधि मात्र था परन्तु वह उस देश का वास्तविक शासक बन गया। सफलताओं के साथ उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ भी बढ़ती गयीं और वह एक महत्त्वपूर्ण रियायत प्राप्त करने में सफल हुआ कि मिस्र के वायसराय के रूप में शासन का अधिकार उस वंश में पैतृक रूप से बना रहेगा। आगे चल कर उपाधि खेदीव कर दी गयी। इस प्रकार कुस्तुन्तुनिया के वंश के अधीन एक मिस्री वंश की स्थापना हुयी।

मेहमत अली द्वारा अर्ध राजवंश की स्थापना

मिस्र

इस वंश का पंचम शासक इस्माइल (१८६३-६९) था। इसके समय में स्वेज नहर बनाई गयी। यह महती कृति फर्डीनैण्ड डी लैसप्स नामक फ्रांसीसी अधियन्ता (इंजीनियर) ने पूरी की थी। इस पर अधिकांश पूंजी यूरोप निवासियों ने लगायी थी। यह खेदीव अत्यधिक व्यर्थव्ययी बन गया। फलतः मिस्र का ऋण असाधारण वेग से बढ़ने लगा। १८६३ में ३० लाख पौण्ड था और १८७६ में ८९० लाख पौण्ड हो गया।

खेदीव को धन की आवश्यकता थी। उसने अपने स्वेज नहर के भागों को लगभग ४० लाख पौण्ड में बेच दिया। इससे फ्रांसीसी बहुत उत्तेजित हुये। खेदीव की अर्थ-व्यवस्था के लिये यह केवल अस्थायी सुविधा थी परन्तु इससे इंगलैण्ड को महत्त्वपूर्ण लाभ हुआ। क्योंकि भारत के लिये यह नहर सर्वप्रिय मार्ग बनने वाली थी।

मिस्र के ऋण में यह असाधारण वृद्धि उसके परवर्ती इतिहास की कुञ्जी है। धन विदेशों में मुख्यतः इंगलैण्ड और फ्रांस में उधार लिया गया था। मिस्र के दिवालिया हो जाने की आशंका से अपने धन लगाने वालों के हितार्थ दोनों देशों की सरकारों ने हस्तक्षेप किया और वित्तीय प्रशासन के अधिकतर भाग पर नियन्त्रण करने में वे सफल रहीं। यह प्रसिद्ध दुहरा नियन्त्रण था जो

फ्रांस और इंगलैण्ड का हस्तक्षेप

कि १८७९ से १८८३ तक रहा। खेदीव इस्माइल ने इस अधीनता का विरोध किया। अतः उसे सिंहासन त्यागने पर विवश किया गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र त्यूफिक गद्दी पर बैठा जिसने १८७९ से १८९२ तक राज्य किया। नये खेदीव ने दुहरे नियन्त्रण के विरुद्ध संघर्ष नहीं किया परन्तु जनता के कुछ अंगों ने विरोध किया। इस हस्पक्षेप के द्वारा विदेशियों के विरुद्ध उद्दीप्त घृणा ने एक उग्र आन्दोलन का रूप धारण कर लिया जिसका नारा यह था—'मिस्र मिस्र के निवासियों के लिये।' उसका नेता अरबी पाशा था जो कि सेना में एक अधिकारी था। अपनी प्रजा के इस आन्दोलन के सामने खेदीव शक्तिहीन था। यह बात स्पष्ट थी कि विदेशी नियन्त्रण, जो कि विदेशी बन्धपत्र गृहीताओं (Bond holders) के हितार्थ स्थापित किया गया था, अरबी पाशा तथा उसके असंतुष्ट अनुयायियों को दबाकर ही अक्षुण्ण रखा जा सकता था और यह दबाना विदेशियों द्वारा ही संभव था। इस प्रकार वित्तीय हस्तक्षेप हुआ। इंगलैण्ड ने फ्रांस के सहयोग का अनुरोध किया परन्तु फ्रांस ने इसे स्वीकार नहीं किया। तब उसने अकेले ही श्रीगणेश किया, अरबी पाशा को पराजित किया और विद्रोह को दबा दिया।

अरबी पाशा का विद्रोह

अँग्रेजी अभियान विद्रोह को समाप्त करता है

यद्यपि खेदीव ने स्वयं अथवा तुर्की के सुल्तान ने जो कि मिस्र का वैध सम्राट् था, अथवा यूरोपीय शक्तियों ने अँग्रेजों से हस्तक्षेप करने के लिये नहीं कहा था तथापि उन्होंने खेदीव की सत्ता के हितों की रक्षा के नाम से विद्रोही अरबी के विरुद्ध हस्तक्षेप किया था। विद्रोह को दबाने के पश्चात् वे क्या करते? क्या वे अपनी सेना को लौटा लेते? यह कठिन प्रश्न था। सेना को वहाँ से हटाने का अभिप्राय मिस्र को अराजकता का शिकार बन जाने देना था और वहाँ डटे रहने से निश्चय ही यूरोपीय शक्तियों को अप्रसन्न करना था जो कि इस कार्यवाही की इंगलैण्ड के आक्रमण के रूप में आलोचना करेंगी। विशेषतः फ्रांस ऐसी कार्यवाही का विरोध करेगा। अतः इंगलैण्ड ने मिस्र को अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। उसने खेदीव को अब भी शासक माना और मिस्र को तुर्की साम्राज्य का वैध रूप से अंग स्वीकार किया। परन्तु उसने खेदीव के परामर्शदाता के रूप में अपने को बनाये रखने का आग्रह किया तथा इस बात का भी आग्रह किया कि मिस्र देश के शासन में उसके परामर्श के अनुसार कार्य किया जावेगा। १८८३ से १९१५ तक ऐसी दशा रही। एक ब्रिटिश सेना मिस्र में रही। तथाकथित अधिकार स्थापित रहा। परामर्श अनिवार्य रहा। विधि के अनुसार नहीं किन्तु वास्तविक शासक इंगलैण्ड था। १८८३ में दुहरा नियन्त्रण समाप्त हो गया। इंगलैण्ड ने सच्चाई के साथ सुधार तथा पुनर्निर्माण का कार्य आरम्भ किया जो कि लार्ड क्रोमर के मार्गदर्शन में अग्रसरित होता रहा। लार्ड क्रोमर १९०७ तक मिस्र में ब्रिटिश राजदूत (कौंसल-जनरल) था।

इंगलैण्ड परामर्शदाता की पदवी धारण करता है

१८८२ में मिस्र देश में हस्तक्षेप करने से इंगलैण्ड एक अन्य साहसपूर्ण कार्य में अविलम्ब उलझ गया जिसका परिणाम हुआ संकट तथा असम्मान। मिस्र के अधिकार में दक्षिण की ओर स्थित सूडान नामक देश था जिसमें

सूडान का हाथ से निकलना

मुख्यत: ऊपरी नील की घाटी स्थित थी। इस देश का शासन प्रवन्ध (संगठन) सुदृढ़ नहीं था और इसमें कई प्रकार के अर्द्ध-सभ्य एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहने वाले (खानाबदोश) निवासी रहते थे। इसकी राजधानी खारतूम में थी। यह प्रान्त, जिस पर मिस्र का दीर्घकालीन अत्याचारपूर्ण अधिकार था विप्लवग्रस्त था। इस प्रान्त को एक मुखिया मिल गया था जो कि महदी अथवा नेता कहलाता था। उसने अपने को पैगम्बर या मसीहा प्रकट करके सूडान निवासियों के धार्मिक जोश को उभाड़ने में सफलता प्राप्त करली थी। मिस्र की सेना पर विजय प्राप्त करके उसने धार्मिक युद्ध की घोषणा कर दी। सम्पूर्ण सूडान के निवासियों ने उसका साथ दिया और परिणाम यह हुआ कि सैनिक दुर्गों में छिपने पर विवश किये गये और वहाँ पर घेर लिये गये। क्या इंगलैण्ड मिस्र के लिये सूडान की रक्षा करने के किसी दायित्व को स्वीकार करेगा? तत्कालीन प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टन ने सूडान को त्यागने का संकल्प किया। किन्तु यह भी कठिन था। इसमें भी कम से कम वन्दी बनाये हुये सैनिकों के बचाव का प्रश्न तो अन्तर्निहित था ही। मंत्रिमण्डल वहाँ सैनिक अभियान करने का इच्छुक नहीं था परन्तु उसने अन्त में जनरल गार्डन को, जिसने अर्द्ध सभ्य जातियों को प्रभावित करने की ख्याति प्राप्त की थी, भेजने का निश्चय किया। यह समझ लिया गया था कि सैनिक अभियान नहीं होगा। स्पष्टत: यह कल्पना की गयी थी कि सैनिक सहायता के बिना किसी न किसी प्रकार जनरल गार्डन सैनिकों को सुरक्षा पूर्वक वहाँ से निकाल लावेगा। वह खारतूम पहुँच गया उसने स्थिति को जितनी कि कल्पना की गयी थी उसने कहीं अधिक गंभीर पाया और विद्रोह कहीं अधिक भयावह था शीघ्र ही उसने अपने को खारतूम में बन्द तथा धर्मान्धि और आत्म विश्वासपूर्ण महदी के अनुयायियों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ पाया। इंगलैण्ड में अविलम्ब गार्डन के बचाने की माँग की जाने लगी। यह ऐसा व्यक्ति था जिसके व्यक्तित्व ने, जो कि वीरता, विलक्षणता और समझ में न आने वाले विपरीत आकर्षक गुणों के लिए विख्यात था अंग्रेज जाति की कल्पना और अभिरुचि को पर्याप्त रूप से प्रभावित कर दिया। परन्तु सरकार विलम्ब कर रही थी। सप्ताह ही नहीं, मास भी बीत गए। अन्त में सितम्बर १८८४ में एक अभियान भेजा गया। वह कठिनाइयों के होते हुए भी द्रुतगति से आगे

गार्डन की मृत्यु

बढ़ते हुए २८ जनवरी १८८५ को केवल महदी के झण्डे को फहराते हुए देखने के लिए खारतूम पहुँच गया। केवल दो दिन पूर्व इस स्थान पर आक्रमण हुआ था और गार्डन तथा उसके ग्यारह सहस्र साथी मार डाले गये थे।

सूडान की पुन: प्राप्ति

इसके पश्चात् दस वर्षों तक सूडान दरवेशों (भिक्षुकों) के हाथ में छोड़ दिया गया और पूर्णत: त्याग दिया गया। परन्तु अन्त में इंगलैण्ड ने सूडान को पुन: प्राप्त करने का संकल्प किया जो कि ओडरमन की लड़ाई द्वारा पूरा हुआ। इस लड़ाई में २ सितम्बर १८९८ को जनरल किचनर ने दरवेशों की शक्ति को पूर्णरूप से नष्ट कर दिया।

मिस्र तथा सूडान ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिये गये

यूरोप के युद्ध के परिणामस्वरूप १९१५ में मिस्र तथा सूडान को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने की घोषणा की गयी। खेदीव को सिंहासन से उतार दिया गया और नये खेदीव को उसके स्थान पर बिठाया गया। इंगलैण्ड ने देशी नरेश को औपचारिक रूप से वहाँ का शासन बनाये रखते हुये, जैसा कि वह भारत की बहुत सी रियासतों में करता है; मिस्र पर शासन करने की तैयारी की। मिस्र एक **'संरक्षित राज्य'** घोषत कर दिया गया।

अध्याय २९

स्पेन तथा पुर्तगाल

१८३० के पश्चात् स्पेन

हम नैपोलियन के पतन से १८२३ तक स्पेन के इतिहास का वर्णन कर चुके हैं और हम यह भी देख चुके हैं कि नरेश फर्डीनैण्ड सप्तम ने जो पुनः सिंहासनासीन किये गये, इतना अबुद्धिमत्तापूर्ण और अत्याचारपूर्ण शासन किया कि जनता ने विद्रोह किया और उदार संविधान प्रदान किये जाने का अनुरोध किया।[1] हम यह भी देख चुके हैं कि फलतः उन शक्तियों ने, जिनका समान्यतः **पवित्र संघ (होली अलायेन्स)** कहते थे, इस सुधार आन्दोलन के दबाने के लिये हस्तक्षेप किया, एक फ्रांसीसी सेना प्रायद्वीप (स्पेन) में भेजी और फर्डीनैण्ड को उसकी निरंकुश शक्तियाँ पुनः प्राप्त करा दीं। विदेशी सहायता से अपनी पूर्वस्थिति की पुनः प्राप्ति के पश्चात् फर्डीनैण्ड द्वारा उन सब लोगों पर जो उदारवादी समझे जाते थे अशोभनीय तथा निर्दयतापूर्ण प्रतिशोध लिये जाने का काल प्रारम्भ हुआ। अत्यन्त छोटे-छोटे कार्यों के लिये सैकड़ों व्यक्तियों को सैनिक न्यायालयों द्वारा प्राण-दण्ड दिया गया। संदिग्ध व्यक्तियों के रूप में कई वर्गों के व्यक्तियों—सैनिकों, वकीलों, डक्टरों, प्राध्यापकों और पशु-चिकित्सकों—पर कड़ी दृष्टि रखी गयी। विश्वविद्यालयों और राजनीतिक तथा समाजिक संस्थाओं (क्लबों) को भयावह बतलाकर बन्द कर दिया गया।

स्पेन

१८२३ के पश्चात् फर्डीनैण्ड का प्रतिशोध

द्वितीय सिंहासन प्राप्ति के पश्चात् फर्डीनैण्ड ने दस वर्षों तक अप्रगतिशील एवं अनुदार निरंकुशता के साथ राज्य किया। उसके शासनकाल में इस बात का कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया कि उस देश की परिस्थितियों में सुधार किया जाय जिसमें सुधार की अत्यन्त आवश्यकता थी यह शासनकाल नये संसार में अपने विशाल साम्राज्य को खोने के लिये तथा मध्य एवं दक्षिणी अमरीका के

अमरीकी उपनिवेशों का हाथ से निकलना

---

1. देखिये पृष्ठ २४३

स्वतन्त्र राज्यों के अभ्युदय के लिये मुख्य रूप से विख्यात हुआ। क्यूबा, पोर्टो-रिको और फिलीपाइन्स के अतिरिक्त इस नरेश के राजदण्ड के अधीन अन्य कुछ भी शेष नहीं बचा।

इजाबैला रानी घोषित की गयी

१८३३ में फर्डीनैण्ड की मृत्यु पर उसकी त्रिवर्षीय पुत्री इजाबैला, उसकी माता क्रिस्टीना की संरक्षता में, रानी घोषित की गयी। मृत नरेश के भाई, डान कार्लो ने वैध शासक होने का दावा किया। उसने कहा कि इस देश में सालिक विधि लागू होती है जिसके अनुसार स्त्रियाँ सिंहासन से वंचित हैं। इस बात का निर्णय करने के लिये कि वह शासन करे अथवा उसकी भतीजी शासन करे सप्तवर्षीय युद्ध हुआ।

कार्लिस्ट युद्ध

रानी के समर्थकों की विजय हुई परन्तु शक्ति प्राप्त करने के लिये संरक्षक ने ऊपर से उदारवादी दीख पड़ने वाला एक संविधान विवश होकर प्रदान किया। यह वास्तविक रियायत की अपेक्षा दिखायी देने वाली रियायत थी। तो भी इसके पश्चात् कम से कम नाम में यहाँ पर सांविधानिक राजतन्त्र स्थापित रहा न कि निरंकुश। कम से कम स्पेन निवासियों की राजनीतिक शिक्षा प्रारम्भ हो गयी। तो भी बहुत वर्षों तक देश के वास्तविक शासक सैनिक नेता, थे जिन्होंने एक दूसरे को हटाकर मंत्रियों के रूप में उत्तराधिकार प्राप्त किया अर्थात् एक दूसरे के पश्चात् मन्त्री बने।

इजाबैला का शासन

इजाबैला ने १८३३ के १८६८ तक शासन किया। १८४३ में वह वयस्का घोषित की गई। समग्र रूप में उनका शासन प्रतिक्रियावादी था। राजतन्त्रात्मक अधिकारों के लिये सिद्धान्त को कट्टरता से मान्यता प्रदान करती हुयी रानी पर उसके सम्पूर्ण शासन काल में उसके कृपापात्रों का प्रभाव रहा और उसने संविधान की भावना और प्रायः अक्षरों का पालन नहीं किया अर्थात् उसका उल्लंघन किया। उसका शासन भी उतना ही सीमाहीन निरंकुश शासन था जितना कि उसके पूर्ववर्ती शासकों का था। निरंकुश कार्यों को छिपाने के लिये सांविधानिक रूपों का प्रयोग किया गया। यह एक ऐसा काल था जिसमें अल्पकालीन तथा दुर्बल मन्त्रिमण्डल बने, दरबारी षड्यन्त्र रचे गये, और क्षुद्र राजनीतियाँ व्यहृत हुईं। इस काल से कोई भी शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती है। जहाँ कहीं जो कोई अव्यवस्था उत्पन्न हुयी वह कठोरता से कुचल दी गयी।

इजाबैला का पतन

इस शासन के विरुद्ध असन्तोष उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया क्योंकि इस काल को निरंकुशता, धार्मिक तथा बौद्धिक असहिष्णुता, अनियमितताओं और भ्रष्टाचार एवं रानी की कुख्यात अनैतिकताओं ने कलंकित कर दिया था। अन्त में १८६८ में एक विद्रोह हुआ जिसके फलस्वरूप रानी फ्रांस को भाग गयी और एक अस्थायी सरकार स्थापित हो गयी जिसमें मार्शल सैरानो तथा जनरल प्रिम प्रमुख व्यक्ति थे। स्पेनी बारबूनों के शासन के अन्त की घोषणा कर दी गयी तथा सर्वमताधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता, प्रेस (समाचार पत्रों तथा प्रकाशन) की स्वतन्त्रता की भावी संविधान के मूलभूत सिद्धान्तों के रूप में, घोषणा कर दी गयी।

होहेंजोलर्न राजकुमार का प्रत्याशी होना

कुछ काल पश्चात् विधानमण्डलों (कॉर्टेज)[1] का निर्वाचन सर्वमताधिकार के आधार पर किया गया और स्पेन के भावी शासन का निर्णय उन्हीं के ऊपर छोड़ दिया गया। उन्होंने गणतन्त्र के विरुद्ध तथा राजतन्त्र के पक्ष में घोषणा की। उन्होंने समस्त यूरोप में राजा की खोज की और अन्त में होहेंजोलर्न वंशीय राजकुमार ल्योपोल्ड को चुना। इतिहास में उसका प्रत्याशी होने का यह महत्त्व है कि उसके कारण अविलम्ब १८७० का फ्रांस प्रशिया युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्त में ल्योपोल्ड ने (स्पेन के) निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। १८७० में ३११ में से १९१[2] के मतों से स्पेन का ताज इटली नरेश विक्टर इमैनुएल के द्वितीय पुत्र अमेदियो को समर्पित किया गया।

सेवोय वंश का अमेदियो राजा चुना गया

यह स्वल्प बहुमत अशुभ सूचक रहा। नये नरेश का शासन अल्पकालीन तथा अशांत रहा। १८७० में उसके स्पेन में जलपोत से उतरने पर उसका हार्दिक स्वागत नहीं हुआ। कई स्रोतों से उसका विरोध हुआ—गणतन्त्रवादियों द्वारा जो कि किसी भी राजा के विरुद्ध थे; कार्लिस्टों द्वारा जो कि डॉनकार्लो के उत्तराधिकारी, फर्डीनैण्ड सप्तम को वैध राजा मानते थे, इजाबैला के पुत्र अल्फेन्सो के समर्थकों द्वारा जोकि उसको वास्तविक शासक बताते थे। अमेदियो को केवल इसलिये भी पसन्द नहीं किया जाता था कि वह एक विदेशी था।

अमेदियो द्वारा सिंहासन त्यागना

धर्माचार्य उसकी आलोचना इस कारण करते थे कि वह सांविधानिक शासन के सिद्धान्तों का अनुयायी था। राजनीतिज्ञों की किसी सबल संस्था ने उसका समर्थन नहीं किया। मन्त्रिमण्डल अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक बने और समाप्त हुये—दो वर्ष में आठ, जिनमें से एक तो केवल सत्तरह दिन तक ही चला। प्रत्येक परिवर्तन के पश्चात् शासन अधिक अव्यवस्थित तथा अधिक अप्रिय होता गया। यह विश्वास करते हुये कि स्पेन को शांति प्रदान करना असम्भव है तथा असुविधापूर्ण ताज को धारण करते हुये थककर फरवरी १८७३ में अमेदियो ने सिंहासन त्याग दिया।

स्पेन गणतन्त्र घोषित हो गया

कार्टेज अथवा संसद ने २५८ के विरुद्ध ३० के बहुमत से स्पेन को गणतन्त्र घोषित कर दिया। परन्तु गणतन्त्र की स्थापना से स्पेन में शान्ति स्थापित नहीं हुयी। वस्तुतः उसका इतिहास अल्पकालीन तथा उत्तेजनापूर्ण रहा। स्विट्‌जरलैण्ड के अतिरिक्त अन्य सभी यूरोपीय शक्तियों ने अपने राजदूतों को वापस बुला लिया। केवल संयुक्त राज्य ने ही इस शासन को मान्यता प्रदान की। फरवरी १८७३ से १८७४ में दिसम्बर के अन्त तक गणतन्त्र रहा। उसने व्यापक मताधिकार की स्थापना की, धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा की, चर्च तथा राज्य के पूर्ण पृथक्करण का प्रस्ताव किया, और पोर्टोरिको में अविलम्ब दासों की मुक्ति (के प्रस्ताव) को सर्वसम्मति से पारित किया।

1. यह शब्द बहुवचन में प्रयोग होता है। अतः यहाँ इसका अनुवाद संसद न करके विधानमण्डल किया गया है।
2. ६३ मत गणतन्त्र के पक्ष में पड़े, शेष मत रिक्त रहे अथवा अव्यवस्थित रूप से इधर-उधर पड़े।

उसके पतन के कारण

उसके पतन के कई कारण थे। मूलभूत कारण यह था कि स्पेन निवासियों को दीर्घकालीन प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था जो कि एक दक्ष शासन के लिये आवश्यक है और न उनको दलीय प्रबन्ध का वास्तविक अनुभव ही था। नेता लोग मिलकर कार्य नहीं कर सके। साथ ही गणतन्त्र-वादी जो कभी सत्तारूढ़ थे कई वर्गों में विभक्त हो गये जो परस्पर झगड़ने लगे। गणतन्त्र के बहुत से शत्रु थे : राजतन्त्रवादी, पादरी जो कि धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा से अप्रसन्न हो गये, वे सब जो पुराने शासन से लाभ उठाते रहे थे जिनको डर दिखाया जा रहा था। नये शासन को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा उन्होंने भी अव्यवस्था को बढ़ा दिया। गणतन्त्र के अल्पकालीन जीवन में तीन युद्ध होते रहे—क्यूबा का युद्ध, कार्लिस्ट युद्ध और दक्षिणी स्पेन संघवादियों के विरुद्ध युद्ध।

आलफेंसो द्वादश को राजा मान लिया गया

एक राष्ट्रपति के पश्चात् दूसरा राष्ट्रपति द्रुतगति से बना। फिग्यूरस चार मास तक पदारूढ़ रहा पीमारगल ६ सप्ताहों तक रहा, साल मेरोन तथा कास्टेलर अल्पकाल तक रहे। अन्त में सिरानो प्रायः अधिनायक बन गया। गणतन्त्र के भाग्य का निर्णय सेनानियों ने किया जो कि देश में सर्वाधिक शक्तिशाली थे और जिन्होंने दिसम्बर १८७४ में इजाबैला द्वितीय के पुत्र आलफेंसो के पक्ष में घोषणा कर दी। बिना संघर्ष के गणतन्त्र का पतन हो गया। १८७५ में आलफेंसो स्पेन में जलपोत से उतरा और मैडरिड में उसका बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। वह सांविधानिक राजतन्त्र का वचन देकर शासनारूढ़ हो गया। इस प्रकार इजाबैला को सिंहासन च्युत करने के ६ वर्ष पश्चात् उसके पुत्र का नरेश के रूप में पुनः स्वागत हुआ। नवम्बर १८८५ में उसकी मृत्युपर्यंत उसका शासन रहा।

१८७६ का संविधान

१८७६ में एक नया संविधान पारित हुआ जो कि १९वीं शताब्दी में नरेशों, कार्टेजों, अथवा क्रान्तिकारी गुटों से संभूत अल्पकालीन अभिलेखों (documents) में अन्तिम था। १८७६ का संविधान जो अब भी (१९३७) लागू है उत्तरदायी मन्त्रिमंडल का और द्विसदनात्मक संसद का निर्माण करता है। स्पेन में संसदीय शासनतन्त्र है और अर्थात् संसद् के मतों के अनुसार मन्त्रिमंडलों का उत्थान-पतन होता है। तो भी व्यवहार में राजनीतिक संघर्ष अधिकांश दिखावटी होता है क्योंकि वह पद लोलुपता पर निर्भर होता है, सिद्धान्तों अथवा नीतियों पर नहीं।

आल्फेंजो द्वादश की मृत्यु

१८८५ में आलफेंजो द्वादश की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के कुछ मास पश्चात् उत्पन्न होने वाले बच्चे, वर्तमान नरेश आल्फेंजो त्रयोदश की संरक्षिका, उसकी पत्नी मैरिया क्रिस्टीना जो कि एक ऑस्ट्रियन राजकुमारी थी, घोषित की गयी। अपने सोलह वर्षीय संरक्षण काल में मैरिया क्रिस्टीना को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इनमें से सबसे गम्भीर कठिनाई स्पेन के प्रमुख उपनिवेश क्यूबा की थी। मातृ देश के प्रचुर कुशासन के कारण उस द्वीप में १८६८ में एक विद्रोह प्रारम्भ हो गया। यह क्यूबा संग्राम दस वर्षों तक चलता रहा। इसमें लगभग १००,०००

स्पेन निवासी मारे गये और २००,०००,००० डालर व्यय हुए। बड़ी-बड़ी रिश्वतों और स्वाशासनोन्मुख सांविधानिक सुधारों के उदार वचनों के द्वारा १८७८ में ही वह समाप्त किया जा सका। १८९५ में एक दूसरा विद्रोह प्रारम्भ हो गया क्योंकि ये वचन पूरे नहीं किये गये तथा क्यूबा निवासियों की दशा अधिक असहनीय हो गई। वेलर द्वारा यह युद्ध अत्यंत वर्बर कठोरता से संचालित किया गया। इससे अन्ततोगत्वा मानवता तथा सभ्यता के हित में संयुक्त राज्य को हस्तक्षेप करना पड़ा। फलतः १८९८ में स्पेन और संयुक्त राज्य में युद्ध प्रारम्भ हो गया जो स्पेन के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। संण्टियागो तथा कैविट की लड़ाइयों में स्पेन की नौशक्ति नष्ट हो गयी; सैंटियागो में उसकी सेना को आत्म-समर्पण करना पड़ा और उसको १८९८ की पैरिस की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसके अनुसार उसने क्यूबा, पोर्टोरिको और फिलीपाइन द्वीपों को त्याग दिया। स्पेनी साम्राज्य जो १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व के मानचित्र में विस्तृत दिखायी देता था, जिसमें अमरीका के विशाल भू-भाग तथा दोनों गोलार्द्धों के द्वीप समूह सम्मिलित थे, तिरोहित हो गया। १८०८ में जब जोसेफ नैपोलियन राजा हुआ था तब मध्य तथा दक्षिणी अमरीका में विद्रोह प्रारम्भ हुए थे और ९० वर्ष पश्चात् क्यूबा की स्वतंत्रता के साथ वे समाप्त हुए। फलतः स्पेन के पास पश्चिमी अफ्रीका में रियोडी ओरो, रियो मुनी के अविस्तृत भाग, मर्राको के उसके प्राचीन पूर्व कालीन कुछ भू भाग तथा अफ्रीका के तट पर कुछ छोटे-छोटे द्वीप ही रह गये। स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य का यह तिरोधान १९वीं शती की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। किसी समय स्पेन विश्व की महती शक्तियों में गिनी जाता थी। आज (१९३७) वह निम्न श्रेणी का राज्य है।

अमरीकी-स्पेनी युद्ध

क्यूबा, पोर्टोरिको और फिलीपाइन द्वीपों से वंचित होना

आलफेंसो त्रयोदश, वर्तमान शासक (१९३७), ने १९०२ में औपचारिक रूप से शासन की बागडोर हाथ में ली। उसने १९१६ में इंगलैंड के राजवंश की वैंटिनवर्ग की राजकुमारी ईना से विवाह किया। देश को प्रगतिशील बनाने के लिए गम्भीर तथा अत्यधिक सुधारों की आवश्यकता है। यद्यपि सर्वमताधिकार १८९० में स्थापित किया गया था तथापि राजनीतिक परिस्थितियों और रीतियों में परिवर्तन नहीं हुआ। निरक्षरता फैली हुयी है। १८,०००,००० निवासियों में से कदाचित १२,०००,००० ही साक्षर हैं। गत वर्षो में इस दशा को सुधारने का प्रयत्न किया गया है; राज्य में रोमन कैथोलिक के प्रभाव को कम करने का भी प्रयत्न किया गया है। इस दशा में अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुयी। अन्य मतावलंवियों[1] के लिए प्रार्थना की स्वतंत्रता अभी अभी प्रदान की गयी है।

आलफेंसो त्रयोदश का शक्ति हाथ में लेना

पुर्तगाल (१८१५-१९१४)

पुर्तगाल को अन्य देशों के समान नैपोलियन के आक्रमणों के पूर्णाघात को

---

1. जो लोग कैथोलिक चर्च को नहीं मानते हैं—अनुवादक।

राजवंश का ब्राजील को पलायन

अनुभव करना पड़ा। महाद्वीपीय पद्धति (कॉण्टीनेण्टल सिस्टम) को मानने के लिए विवश करने के लिए १८०७ में इस प्रायद्वीप में सेनाएँ भेजी गयी थीं। इनका उद्देश्य सम्पूर्ण यूरोप को अँग्रेजी व्यापार के लिये बन्द करना था। जब फ्रांसीसी सेना लिस्बन पहुँची तभी राजवंश वहाँ से भाग गया और पुर्तगाल के प्रमुख उपनिवेश ब्राजील की राजधानी को चला गया। पुर्तगाल का वास्तविक शासन कई वर्षों तक अँग्रेजी सेना लार्ड ब्रैसफर्ड के हाथ में रहा। नैपोलियन के पतन के पश्चात् पुर्तगालियों को राजवंश के प्रत्यागमन की आशा थी परन्तु यह नहीं हुआ। नरेश जॉन षष्ट रियोडी जेनरियों में संतुष्ट था। साथ ही वह समझता था कि ब्राजील से चले आने से वहाँ विद्रोह हो जावेगा और जिसका परिणाम ब्राजील की स्वतंत्रता होगी। इन परिस्थितियों ने पुर्तगालियों को महान् असंतोष प्रदान किया। उनके स्वाभिमान को इस बात से धक्का लगा कि लिस्बन में दरबार नहीं होगा और मातृ देश एक उपनिवेश प्रतीत होने लगा। उसका महत्त्व ब्राजील से कम होगा। अन्त में राजा ब्राजील से लौट आया। उसने अपने सबसे बड़े पुत्र, डॉम पीड्रो, को उस देश का शासक नियुक्त कर दिया। १८२२ में डॉम पीड्रो प्रथम के अधीन ब्राजील ने अपनी स्वतन्त्रता की उद्घोषणा कर दी। तीन वर्ष पश्चात् पुर्तगाल ने उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी। इस प्रकार पुर्तगाल के अधिकार से उसका प्रमुख उपनिवेश निकल गया।

पुर्तगाल के अधिकार से ब्राजील का निकलना

संसदीय शासन का प्रारम्भ

१८२६ में जॉन षष्ट की मृत्यु ने देश को कई वर्षों तक अव्यवस्थित रखा। उसका सबसे बड़ा पुत्र, डॉम पीड्रो, ब्राजील का सम्राट् था। उसका छोटा भाई डॉम माइगूल था। डॉम पीड्रो पुर्तगाल का वैध नरेश था। उसने अपने शासन को पीड्रो चतुर्थ के रूप से अँग्रेजी स्वरूप के संसदीय शासन के प्रारम्भ से आरम्भ किया। तब ब्राजील से लौटने की इच्छा न करते हुए उसने अपनी पुत्री डोना मैरियाडा ग्लोरिया के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। अपने भाई डॉम माइगूल को निरस्त्र करने के लिये उसने अपनी सप्त वर्षीय पुत्री डोना मेरिया की वरीक्षा उसके साथ इस आदेश के साथ कर दी कि जब डोना मेरिया वयस्का हो जावे तब उसके साथ विवाह सम्पन्न हो। तत्पश्चात् उसने डॉम माइगूल को अल्पवयस्का राजकुमारी का संरक्षक नियुक्त कर दिया। परन्तु माइगूल के पुर्तगाल में उतरते ही, निरंकुशवादियों ने उसे राजा घोषित कर दिया। उसने ताज स्वीकार कर लिया। उसका शासन अत्यन्त घृणित रहा। उसके शासन की ये विशेषताएँ थीं : अत्याचार, निरंकुशता, विधि और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की पूर्ण अवमानता, कारावास, देश-निष्कासन और मृत्युदण्ड। डॉम पीड्रो ने ब्राजील के सम्राट् के पद को त्याग दिया और अपनी पुत्री के पक्ष का भार उठाने के लिये यूरोप लौट आया। मैरिया डाग्लोरिया और डॉम माइगूल के मध्य होने वाले गृह-युद्ध का परिणाम मैरिया के पक्ष में रहा। डॉम माइगूल ने सिंहासन के ऊपर अपने समस्त अधिकारों को त्याग दिया और १८३४ में सदा के लिए पुर्तगाल से चला गया।

१८५३ में मृत्युपर्यन्त मैरिया ने शासन किया। इसको राजनीतिक संघर्षों

की हिंसा तथा प्रायः उठ खड़े होने वाले विद्रोहों ने अशांत एवं अस्थिर बना दिया। १८३६ में १८२६ का आज्ञापत्र (चार्टर) मैरिया के शासन द्वारा पुनः संस्थापित किया गया और महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों द्वारा उदार बना दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से दल संतुष्ट हो गये और उसके उत्तराधिकारी पीड्रो पंचम के शासन काल में राजनीतिक जीवन व्यवस्थित तथा दयालुतापूर्ण रहा। उसके शासन में उल्लेखनीय घटनाएँ नहीं हुयीं। उसके पश्चात् १८६१ में लुई प्रथम तथा लुई प्रथम के पश्चात् १८८९ में थार्लो प्रथम राजा हुआ।

मैरिया की मृत्यु

उसी बीच गणतन्त्रवादी और समाजवादी नामक अग्रदल बने। हिंसात्मक कार्यों द्वारा असन्तोष व्यक्त हुआ। इसका उत्तर शासन ने उत्तरोत्तर अधिक निरंकुश होकर दिया। नरेश कार्लो प्रथम ने केवल अपने आदेश द्वारा १८२७ के आज्ञापत्र (चार्टर) को समाप्त करना चाहा। उदारवादियों, उग्रवादियों और रूढ़िवादियों का विवाद अत्यन्त कटु हो गया। संसदीय संस्थाओं ने साधारणतः कार्य करना बन्द कर दिया, आवश्यक विधान पारित नहीं किया जा सका। फरवरी, १८०८ को लिस्बन की सड़कों पर नरेश और युवराज कुमार का वध कर दिया गया। राजा का द्वितीय पुत्र, मैनुअल, सिंहासनासीन हुआ। मैनुअल का शासन अल्पकालीन रहा क्योंकि अक्टूबर १९१० में लिस्बन में एक विद्रोह हुआ। कई दिन तक सड़कों पर कठिन लड़ाई होने के पश्चात् राजतन्त्र समाप्त हो गया और गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी। राजा बचकर इंगलैण्ड भाग गया। डॉक्टर थ्योफाइल ब्रेगा जो अजोज का निवासी और लगभग चालीस वर्ष से अधिक विद्वान के रूप में प्रख्यात था, राष्ट्रपति (प्रेसीडेंट) बनाया गया। संविधान का पुनः निर्माण किया गया और उसे अधिक उदार बना दिया गया। १९११ में धर्म (चर्च) और राज्य का पृथक्करण कर दिया और धर्माधिकारियों को राज्य की ओर से पूजादि के लिये व्यय और पोषण धन का मिलना बन्द हो गया।

पुर्तगाल की हाल की घटनाएँ

१९१० में पुर्तगाल गणतन्त्र घोषित कर दिया गया

अतः १९१० से पुर्तगाल एक गणराज्य है। उसकी समस्याएँ अधिक तथा गम्भीर हैं। उस पर अत्यधिक ऋण है जो उसके साधनों से कहीं अधिक है तथा उसके कारण जनता पर उत्पीड़क कर लगाने पड़ते हैं। यद्यपि १९१३ से प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य रही है तथा ६ वर्ष की आयु से अधिक आयु की सत्तर प्रतिशत से अधिक जनता अब भी (१९३७) अशिक्षित है। उसकी जनसंख्या लगभग ६० लाख है। एशिया में उसके छोटे-छोटे उपनिवेश हैं तथा अफ्रीका में बड़े-बड़े उपनिवेश हैं जिससे अभी तक बहुत थोड़ा लाभ हुआ है। अजोज तथा मैडोरिया उपनिवेश नहीं हैं प्रत्युत गणतन्त्र के अभिन्न अंग हैं।

अध्याय ३०

१८३० के परवर्ती हालैण्ड और बेल्जियम

हालैण्ड

नीदरलैण्ड्स का राज्य

हम १८३० तथा परवर्ती वर्षों में नीदरलैंण्ड्स के राज्य के विघटन का वर्णन कर चुके हैं। वह राज्य, जिसमें हालैण्ड तथा बेल्जियम सम्मिलित थे, वीयना के सम्मेलन का, जो कि फ्रांस के विरुद्ध दुर्ग के रूप में निर्मित किया गया कार्य था। बेल्जियम निवासियों ने विद्रोह किया था और अन्त में कुछ शक्तियों द्वारा समर्थित किये जाने से उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। तब से दो राज्य बने रहे हैं।

पुराने डच प्रान्तों ने तब से अपना नाम **नीदरलैण्ड्स का राज्य** बनाये रखा है। अँग्रेजी बोलने वाले देशों में इस राज्य को प्रायः हालैण्ड कहते हैं। इसका इतिहास अपेक्षाकृत शांत आन्तरिक विकास का इतिहास रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कोई भी इसने महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पादित नहीं की है। इसके ऊपर कई नरेशों ने शासन किया है : विलियम प्रथम ने १८१४ से १८४० तक, विलियम द्वितीय ने १८४० से १८४९ तक, विलियम तृतीय ने १८४९ से १८९० तक और रानी विलहेलमीना ने १८९० से आगे। इसके पृथक् इतिहास में संविधानिक स्वतंत्रताओं, शैक्षिक नीति और औपनिवेशिक प्रशासन से सम्बन्धित प्रश्न सर्वाधिक महत्त्व के प्रश्न रहे हैं।

१८१५ की मूल विधि

यहाँ की राजनीतिक प्रणाली विलियम प्रथम द्वारा १८१५ में प्रदत्त मूल विधि पर निर्भर थी इसके द्वारा यह राज्य **सांविधानिक राजतन्त्र** हो गया परन्तु इस राजतन्त्र में **संसद** अथवा **स्टेट्स-जनरल** की अपेक्षा राजा अधिक शक्तिशाली था। संसद की विधायिनी शक्ति उन्हीं विधेयकों की स्वीकृति तथा अस्वीकृति तक सीमित थी जो इसमें शासन द्वारा प्रस्तुत किये जाते थे। संसद को (विधेयक) प्रारम्भ करने अथवा (उसमें) संशोधन करने का अधिकार नहीं था। कई वर्षों के लिये आय-व्यय विवरण (बजट) पर मतदान कर लिया जाता था; असैनिक सेवाओं पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था।

मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं था वरन् केवल राजा के प्रति उत्तरदायी था।

यह प्रणाली निरंकुशता से तो अच्छी थी परन्तु इसने राजा के पास विस्तृत शक्तियाँ छोड़ दी थीं जिन पर सरलता अथवा पर्याप्त रूप से नियंत्रण नहीं रखा जा सकता था और उन्होंने विलियम प्रथम के वैयक्तिक शासन को संभव बना दिया जिसके परिणामस्वरूप बेल्जियम निवासियों का १८३० का विद्रोह हुआ। हालैण्ड के उदारवादियों ने इस प्रणाली के परिवर्तन की माँग की कि भविष्य में संसद को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाय और संसद जनता के अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध में लायी जावे। कई वर्षों के आन्दोलन के पश्चात् उनको संविधान संशोधन कराने की सफलता मिल गयी। १८४८ के परिवर्तित संविधान के अनुसार राजा की शक्ति कम हो गयी और संसद की अधिक हो गयी। उच्च सदन की नियुक्ति आगे राजा द्वारा नहीं होनी थी वरन् वह प्रान्तीय रिसायतों द्वारा निर्वाचित होना था। निम्नसदन मतदाताओं के द्वारा प्रत्यक्षतः चुना जाना था, अर्थात् (स्थान के अनुसार कुछ भिन्नता से) इनके द्वारा चुना जाना था जो कुछ संपत्ति-कर देते थे। मंत्रियों को संसद के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। संसद को विधान प्रारम्भ करने, प्रस्तुत प्रस्तावों को संशोधित करने तथा आय-व्यय विवरण पर प्रतिवर्ष मतदान करने का अधिकार प्राप्त हो गया। संसद के अधिवेशन सार्वजनिक हो गये। १८४८ से संविधान में स्वल्प संशोधन हुए हैं जिनमें से अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण संशोधन यह है कि १८८७ में निर्वाचकगण का विस्तार हुआ और इंगलैण्ड की भाँति प्रायः सभी गृह-स्वामियों अथवा किराये पर रहने वाले व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त हो गया। इससे मतदाताओं की संख्या १४०,००० से बढ़कर ३००,००० हो गयी। १८९० के एक परवर्तीय सुधार ने सम्पत्तिक अर्हताओं की विविधता को बढ़ाते हुये मतदाताओं की संख्या बढ़ाकर लगभग ७००,००० कर दी अर्थात् प्रति ७ निवासियों में एक मतदाता बन गया। समाजवादियों तथा उदारवादियों द्वारा माँगा हुआ सर्वमताधिकार अभी तक प्रदान नहीं किया गया है। नीदरलैण्ड्स के राज्य के अधिकार में पूर्वीद्वीप समूह तथा पश्चिमी द्वीप समूह में विस्तृत उपनिवेश हैं। इनमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण जावा है। एशिया में सुमात्रा बोर्नियो और सेलीबीज तथा अमरीका में कुराकाओ और सुरीनाम अथवा डचग्याना मूल्यवान् अधिकृत क्षेत्र हैं। डच औपनिवेशक साम्राज्य की जनसंख्या लगभग ३८,०००,००० है, जबकि इसकी तुलना में स्वयं नीदरलैण्डस की जनसंख्या लगभग ६,०००,००० है। अयनवृत्तीय वस्तुओं, जैसे शक्कर, कॉफी, मिर्च, चाय, तम्बाकू तथा नील, को विशाल परिणामों में उपलब्ध कराते हुए महान् व्यापारिक महत्त्व के उपनिवेश हैं।[1]

१८४८ का संविधान

मताधिकार का विस्तार

बेल्जियम

हालैण्ड से पृथक् होते समय १८३१ में बेल्जियम निवासियों ने जो संविधान

1. अब ये उपनिवेश नहीं हैं वरन् हिन्देशिया के नाम से स्वतन्त्र राज्य हैं।
—अनुवादक

बनाया था वही आज भी इस राज्य का आधार है। इसके अनुसार वंशानुगत राज-तन्त्र, द्विसदनात्मक संसद तथा इसके प्रति उत्तरदायी मन्त्रि-मण्डल की स्थापना हुयी थी। नरेश ल्योपोल्ड प्रथम ने प्रारम्भ से ही संसदीय शासन की पद्धतियाँ पूरी सच्चाई के साथ व्यवहृत कीं। उसने सदनों के बहुमत वाले दल से मन्त्रियों को चुना। ल्योपोल्ड ने १८३१ से १८६५ तक मृत्युपर्यन्त राज्य किया। उसका शासन शांतिपूर्ण विकास का काल था। जनकल्याण की आवश्यक संस्थाएँ स्थापित की गयीं। बेल्जियम की तटस्थता की प्रत्याभूति (गारण्टी) अन्य शक्तियों ने की थी। तो भी यह आवश्यक था कि उसमें स्वयं पर्याप्त शक्ति हो ताकि वह अपनी तटस्थता को बनाये रखे। अतः सेना की व्यवस्था की गयी और युद्धस्तर पर उसमें १००,००० सैनिक रखे गये। राजकीय विश्वविद्यालय स्थापित किये गये और एक बड़ी संख्या में प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय खोले गये। उद्योग तथा व्यापार के लिये उपयोगी विधान पारित किया गया। रेल की सड़कें बनवायी गयीं। धर्म, प्रेस (प्रकाशन), समुदाय और शिक्षा की स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति (गारंटी) संविधान द्वारा प्रदान की गयी। ल्योपोल्ड प्रथम ने विदेशी सम्बन्धों का संचालन बुद्धिमत्तापूर्ण रीति से किया। यूरोपीय राज-नीतिज्ञों से व्यापक परिचय, राजनीति के ज्ञान और निर्णय की निश्चयात्मकता के कारण यूरोप के अन्य शासकों पर उसका महान् प्रभाव था। ल्योपोल्ड प्रथम के अधीन बेल्जियम का भौतिक एवं बौद्धिक विकास द्रुतगति से हुआ।

ल्योपोल्ड प्रथम का राज्य-काल

१८६५ में उसके पश्चात् उसका पुत्र ल्योपोल्ड द्वितीय गद्दी पर बैठा जिसने चवालीस वर्ष तक राज्य किया। इस काल के अधिकांश भाग में दो सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण राजनीतिक प्रश्न थे जिनका सम्बन्ध मताधिकार तथा विद्यालयों से था। अपेक्षाकृत उच्च सांपत्तिक अर्हताओं के कारण मताधिकार सीमित था। इसके परिणामस्वरूप १८९० में ६० लाख की जनसंख्या में से केवल १३५,००० को मताधिकार प्राप्त था। नगरों की द्रुतवृद्धि और श्रमिकों को प्रायः मताधिकार न मिलने के कारण सर्व-मताधिकार की माँग इतनी ऊँची हो गयी कि अन्त में उस पर ध्यान देना ही पड़ा। १८९३ में संविधान में सुधार हुआ और मताधिकार अधिक विस्तृत कर दिया गया। यदि किसी अन्य कारण से अर्हत न हो गया तो २५ वर्ष की आयु के प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त हो गया परन्तु पूरक मत उनको दिया गया जो आयु की अर्हता के साथ ही विशिष्ट साम्पत्तिक अर्हताओं को पूरा कर सकें। यह बहुमतदान का सिद्धान्त है और इसका उद्देश्य सम्पत्तिशाली वर्गों को उससे अधिक महत्त्व प्रदान करना था जितना कि वे केवल अपनी संख्या के आधार पर प्राप्त कर सकते थे। यह भी उपबन्ध रखा गया था कि किसी भी मतदाता को तीन से अधिक मत प्राप्त न हों। इस प्रकार के मताधिकार का समाजवादियों द्वारा तीव्रता से विरोध किया जाता है। यह वह वर्धमान दल है जिसने '**एक व्यक्ति को एक मत**' के सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त कराने के लिये प्रयत्न किया है परन्तु अभी तक उसको सफलता प्राप्त नहीं हुयी।

मताधिकार

१८९९ की एक विधि से बेल्जियम ने आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एक पद्धति को स्थापित किया। यूरोप में इस पद्धति को अपनाने वाला यह प्रथम देश था। पन्द्रह वर्षीय अनुभव ने यह प्रदर्शित किया है कि इस मतदान योजना की प्रवृत्ति निश्चयरूप से रूढ़िवादी है।

सर्वाधिक महत्त्व के राजनीतिक दल ये रहे हैं—उदारवादी दल तथा कैथोलिक दल। कैथोलिकों ने विद्यालयों में कुछ साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षण प्राप्त कराने का प्रयत्न किया और उन्हें अधिक शिक्षा सीमा तक सफलता भी मिली है। उसके विरोधी असाम्प्रदायिक विद्यालयों को चाहते हैं।

बेल्जियम यूरोप में सबसे अधिक बसा हुआ देश है। ७० लाख से अधिक की जनसंख्या में कैथोलिक अत्याधिक संख्या में हैं। इसके पास एक उपनिवेश है (१९२७) जो पहले कांगो स्वतन्त्र राज्य था परन्तु १९०८ में उपनिवेश बना लिया गया।[1]

१७ दिसम्बर १९०९ में ल्योपोल्ड द्वितीय का देहान्त हो गया और उसके पश्चात् उसका भतीजा अल्बर्ट प्रथम गद्दी पर बैठा।

यद्यपि जर्मनी ने संधि के द्वारा बेल्जियम की अक्षुण्णता को स्पष्ट तथा गम्भीर मान्यता प्रदान की थी तथापि अगस्त १९१४ में बेल्जियम की तस्थता को उसने भंग कर दिया। जर्मनी ने उस देश को पदाक्रांत किया, नष्ट किया और जीत लिया। यूरोपीय युद्ध के अन्तिम परिणामों पर उसका भविष्य निर्भर है।[2]

अध्याय ३१

स्विटजरलैण्ड

१८१५ में स्विटजरलैण्ड २२ राज्यों अथवा कैण्टूनों का अदृढ़ संघ था। इनके शासन के स्वरूपों में बड़ा अन्तर था। कुछ शुद्ध प्रजातन्त्र थे जिनमें समस्त जनता निश्चित समयों पर विधियाँ पारित करने के लिये तथा उनको कार्यान्वित करने के लिये, अधिकारी निर्वाचित करने के लिये किसी चरागाह अथवा खुले स्थान पर इकट्ठी होती थी। परन्तु ये अपेक्षाकृत छोटे तथा निर्धन कैण्टून थे। दूसरों में प्रजातान्त्रिक शासन नहीं था परन्तु प्रतिनिधि शासन था। इनमें से कुछ में राजनीति शक्ति महत्त्वपूर्ण परिवारों (पेट्रोशियन) के समूहों के एकाधिकार में थी। दूसरों में संपत्तिशाली वर्ग का एकाधिकार था। अतः अधिकांश कैण्टूनों में प्रजातन्त्र नहीं था प्रत्युत उन पर विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों का शासन था। केन्द्रीय सरकार में संसद (डाइट) थी जो कि वास्तव में दूतों की सभा थी। ये दूत कैण्टूनों के निर्देशों के अनुसार मतदान करते थे जो उनको भेजते थे। संविधान १८१५ का एक समझौता था। स्विटजरलैण्ड की एक राजधानी नहीं थी। संसद (डाइट) की बैठक क्रमशः बर्न, ज्यूरिज तथा ल्यूसर्न में होती थी।

१८१५ का संविधान

अस्तु स्विस संस्थाओं में संघ के स्थान पर कैण्टूनों पर बल दिया जाता था। संचालक मण्डल तथा नैपोलियन के आधिपत्य काल के अतिरिक्त यह स्विटजरलैण्ड के ५०० वर्षों के इतिहास की विशेषता रही है। जो शक्तियाँ स्पष्टरूप से संसद (डाइट) को प्रदान नहीं की गयी थीं वे कैण्टूनों की थीं। उनकी डाक-व्यवस्था तथा मुद्रा अपनी-अपनी थी। कोई भी व्यक्ति स्विटजरलैण्ड का नागरिक नहीं था वरन् कैण्टून का नागरिक था। कैण्टून के अतिरिक्त वह देशहीन व्यक्ति था। कैण्टून विदेशों से व्यापारिक समझौते कर सकते थे। १८१५ के समझौते में प्रकाशन

कैण्टूनों का महत्त्व

---

1. इनमें से तीन अर्द्ध राज्यों में विभक्त थे। इस प्रकार कुल २५ कैण्टूनी शासक थे। अर्द्ध राज्य को स्थानीय शासन कार्य में ही शक्तियाँ प्राप्त थीं जो कि पूर्ण राज्य को प्राप्त थीं। तो भी संघीय मामलों में इसे पूर्ण कैण्टून का आधा महत्त्व प्राप्त था।

(प्रेस), सार्वजनिक सभा और धर्म की सामान्य स्वतन्त्रताओं का कोई भी उल्लेख नहीं था। ये विषय कैण्टूनों के हाथ में छोड़ दिये गये थे। वे स्वेच्छानुसार विधान बनाते थे, कोई-कोई अत्यधिक उदारता से बनाते थे। कई एक संस्थापित चर्च भी थे और वे किसी दूसरे चर्च को आज्ञा नहीं देते थे। वेले प्रोटेस्टेण्ट भक्ति की आज्ञा नहीं देता था और वॉड में **कैथोलिक धर्म** को आज्ञा नहीं थी। शिक्षा पूर्णत: कैण्टून का विषय था। अधिकांश कैण्टून न तो प्रजातांत्रिक ही थे और न उदार ही थे। इन छोटे छोटे राज्यों का एकीकरण भविष्य के लिये शेप था।

१८१५ के पश्चात् लगभग १५ वर्ष तक अधिकांश कैण्टूनों ने प्रतिक्रियावादी नीतियों का अनुसरण किया। उसके पश्चात् वह काल प्रारम्भ हुआ जिसको स्विस लोग **पुनर्जागृति** अथवा **पुनर्जीवन काल**
कहते हैं। इस काल में बहुत से कैण्टूनों के संविधान **पुनर्जीवन काल**
उदार बना दिये गये। उन वर्गों को मान्यता प्रदान की गयी
जो अब माँगों के लिये अपनी आवाज अधिक ऊँची कर रहे थे[1] और जो अब तक शक्ति से वंचित थे। असंतोष के शक्ति प्रयोग में परिणत होने के पूर्व ही कैण्टूनों के शासकों ने पर्याप्त बुद्धिमत्ता से सर्वमताधिकार, प्रकाशन (प्रेस) की स्वतन्त्रता, न्याय के समक्ष समानता आदि माँगी जाने वाली रियायतों को प्रदान कर दिया। १८३० और १८४७ के बीच कैण्टूनों के संविधानों में लगभग तीस संशोधन (Revisions) हुए।

जिस दल ने उदार कैण्टूनीय संस्थाओं की माँग की थी उसी ने अधिक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की भी माँग की। परन्तु यह उतनी सरलता से कार्यान्वित न हो सकी, किन्तु एक छोटे से गृहयुद्ध अर्थात् **सौण्डरबण्ड** के युद्ध के पश्चात् कार्यान्वित हुई।

प्रत्येक कैण्टून का शिक्षा तथा धर्म पर अधिकार था। इसलिये यह स्थिति हो गयी कि सात कैथोलिक कैण्टूनों में **जैसुइस्टों** में का महान् प्रभाव स्थापित हो गया था और ये उस प्रभाव को बढ़ाने का प्रयत्न
कर रहे थे। **उग्रवादी दल** के ये उद्देश्य थे: धर्म की **सौण्डरबण्ड**
स्वतन्त्रता, धर्म निरपेक्ष शिक्षा, धर्म निरपेक्ष राज्य[2]। यह
दल केन्द्रीय शासन की शक्ति को बढ़ाना चाहता था ताकि वह अपने दृष्टिकोण को समस्त संघ मनवा सके। इसी कारण से कैथोलिक कैण्टून संघीय शक्ति के प्रवर्द्धन के विरुद्ध थे और कैण्टून के अधिकारों को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते थे क्योंकि वे इसी प्रकार अपने दृष्टिकोण की रक्षा कर सकते थे। राजनीतिक तथा धार्मिक भावनाएँ इतनी अधिक उभड़ गयीं कि १८४७ मे सात कैथोलिक कैण्टूनों ने उन हितों की रक्षा के लिए जो उन्हें संकटाग्रस्त जान पड़ रहे थे एक विशिष्ट संघ (**सौण्डरबण्ड**) की स्थापना की। वे अपने इस कार्य को संभावित आक्रमण के विरुद्ध केवल प्रतिरक्षात्मक समझते थे तथापि संसद (डाइट) में उग्रवादियों के पक्ष में

1. अर्थात् अपनी माँगें मनवाने के लिए आन्दोलन कर रहे थे।—अनुवादक
2. वह राज्य जिसमें धर्माधिकारियों का प्रशासन पर प्रभाव न हो।—अनुवादक

इस संघ के विघटन के लिए प्रस्ताव पारित हो गया। संघ के सदस्यों ने संघ के विघटन को स्वीकार नहीं किया। इसलिए युद्ध (१८४७) हुआ। यह अल्पकालीन था और तीन सप्ताह में समाप्त हो गया। संघीय शासन की सेना ने जो विजय प्राप्त की उसके लिए अधिक व्यक्तियों का जीवन नष्ट नहीं हुआ। संघीय सेना की संख्या अधिक थी और उसके पास कैण्टूनों के संघ के सेना की अपेक्षा हथियार भी अच्छे थे। **सौण्डरबण्ड** विघटित कर दिया गया, जैसूइस्ट निकाल दिये गये और विजयी अग्रवादी संघीय शासन को सुदृढ़ करने की अपनी चिरभिाषित योजना को कार्यान्वित करने के लिए अग्रसर हुए। इसे उन्होंने १८४८ के संविधान के द्वारा, जिसने १८१५ के समझौते को समाप्त कर दिया, सम्पादित किया। कुछ परिवर्तनों के साथ संविधान अभी भी लागू है। इस संविधान ने स्विटजरलैण्ड को कई बातों में संयुक्त राज्य से समानता रखते हुए वास्तविक संघीय राज्य में परिवर्तित कर दिया है। राजदूतों की संसद के स्थान पर व्यापक विधायनी शक्तियों की प्रतिनिधि संस्था स्थापित हो गयी है।

१८४८ का संविधान

तदुपरान्त संघीय व्यवस्थापिका में दो सदन होने थे: **राष्ट्रीय परिषद** जिसके लिए प्रति २०,००० निवासियों पर एक सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्षतः निर्वाचित किया जावेगा; और **राज्य परिषद्** जिसमें प्रत्येक कैण्टन के दो सदस्य होंगे। राष्ट्रीय परिषद में जनसंख्या का महत्त्व है और राज्य परिषद में कैण्टनों की समानता अक्षुण्ण रखी गयी है। दोनों संस्थाएँ एक साथ बैठकर संघीय न्यायाधिकरण को चुनती हैं और कार्यपालिका का कार्य करने के लिए संघीय परिषद् को भी चुनती हैं।

संघीय शासन

इस सप्त सदस्यीय परिषद् में से वे प्रतिवर्ष एक सदस्य को उसके सभापति का कार्य करने के लिए चुनती हैं। इस सभापति को '**स्विस संघ का राष्ट्रपति**' कहते हैं परन्तु उसके अधिकार अन्य सदस्यों के अधिकारों से अधिक नहीं होते हैं। यह भी स्वीकार किया गया था कि केवल एक ही राजधानी होनी चाहिए। जर्मन तथा फ्रांसीसी भाषा बोलने वाले जिलों की सीमा के समीप स्थित होने के कारण बर्न को राजधानी चुना गया।

संघ को अब अधिक शक्तियाँ प्रदान कर दी गयी हैं: विदेशी मामलों का नियंत्रण, सेना, आयात-निर्यात कर, डाक व्यवस्था और मुद्रा। कैण्टनों ने महती शक्तियाँ अपने पास रखीं; जैसे, व्यवहार तथा अपराध सम्बन्धी विषयों पर विधान बनाने का अधिकार, धर्म और शिक्षा।

संघीय तथा कैण्टनी शासनों की शक्तियाँ

नया संविधान अविलम्ब कार्यान्वित किया गया। इसने एक पुराने राज्यों के समूह को एक सुदृढ़ संघ में परिवर्तित कर दिया। इतिहास में प्रथम बार इसने **स्विस राष्ट्र** का निर्माण किया। यह राष्ट्रीय भावना की विजयों में से एक विजय थी। यूरोप में १९वीं शताब्दी में इस भावना ने बहुत सी विजयें प्राप्त की थीं। यह उस शताब्दी की अन्य प्रेरक शक्तियों में से एक शक्ति, लोकतांत्रिक भावना, की भी विजय थी।

१८४८ से स्विटजरलैंड शान्ति पूर्ण विकास करता रहा है परन्तु बाहरी

संसार के लिए वह असाधारण अभिरुचि का विषय रहा है। यह अभिरुचि (उसकी) महती घटनाओं में नहीं रही है, न उसकी विदेशी नीति में ही रही है क्योंकि स्विटरजरलैंड ने पूर्णरूप से अपनी तटस्थता बनाये रखी है। यह अभिरुचि उसके कुछ राजनीतिक स्वरूपों (संस्थाओं) के दृढ़ तथा पूर्ण विकास में रही है जोकि सभी स्वशासित देशों के लिए अधिक मूल्यवान हो सकते हैं। स्विटजरलैंड में विधान निर्माण की कुछ ऐसी प्रतिक्रियाओं का विकास हुआ है, जो इस विश्व में सर्वाधिक लोकतांत्रिक प्रतिक्रियाएँ मानी जाती हैं। उनकी सफलता इतनी महत्त्वपूर्ण रही है और उनकी प्रक्रिया इतनी अविरल रही है कि उसका वर्णन करना उचित जान पड़ता है।

स्विटजरलैण्ड की प्रमुख महत्ता

उन सभी देशों में जो अपने को लोकतान्त्रिक कहते हैं, राजनीतिक यन्त्र **प्रतिनिधि-स्वरूप** का होता है, **प्रत्यक्ष-स्वरूप** का नहीं होता अर्थात् मतदाता स्वयं विधि-निर्माण नहीं करते हैं वरन् निश्चित समयों पर विधियाँ—निर्माण करने के लिये कुछ लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनते हैं। ये विधियाँ मतदाताओं द्वारा स्वीकृत अथवा अस्वीकृत नहीं की जाती हैं क्योंकि वे कभी भी मतदाताओं के समक्ष प्रत्यक्षतः नहीं आती हैं। परन्तु स्विसों से मतदाताओं को स्वयं विधि-निर्माता बनाने का प्रयत्न किया है, और इसमें अधिक सफलता प्राप्त की है। उन्होंने मतदाताओं को केवल विधि-निर्माताओं का निर्वाचक मात्र बनाने का प्रयत्न नहीं किया है। उन्होंने सर्वदा तथा प्रत्येक स्तर या स्थिति में लोकतन्त्र की शक्ति को राष्ट्रीय जीवन में व्यवहृत करने का प्रयत्न किया है। यह (कार्य) उन्होंने कई प्रकार से लिया है। उनकी रीतियाँ प्रथमतः कैण्टूनों में कार्यान्वित की गयीं और तत्पश्चात् संघ में लागू की गयी।

लोकतान्त्रिक शासन में योगदान

अज्ञात काल से कुछ छोटे कैण्टून शुद्ध लोकतन्त्र रहे हैं। निश्चित समयों पर प्रायः खुले स्थानों पर मतदाता इकट्ठे हुए और अपने अधिकारियों को चुना तथा हाथ उठाकर विधियों पर मतदान किया। आज ऐसे ६ कैण्टून हैं। यह प्रत्यक्ष शासन इस लिए सम्भव है कि इनका क्षेत्रफल तथा जनसंख्या कम है। वे इतने छोटे हैं कि किसी मतदाता को मतदान के लिए १५ मील से अधिक दूर नहीं जाना पड़ता है, अधिकांश मतदाताओं को इससे कम दूर ही जाना होता है।

प्रत्यक्ष लोकतन्त्रात्मक शासन कैण्टून

परन्तु अन्य कैण्टूनों में यह पद्धति व्यवहृत नहीं होती है। इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य के समान उनमें जनता प्रतिनिधि सभाओं को चुनती है परन्तु उन पर जनता का नियंत्रण इन देशों की अपेक्षा अधिक रहता है। यह नियंत्रण उपर्युक्त ६ कैण्टनों के समान ही स्वशासन को पूर्ण बना देता है। ये इसको तथाकथित प्रत्यक्ष जनमत संग्रह तथा अभिक्रम के द्वारा सम्पन्न करते हैं। जिन कैण्टनों में ये प्रक्रियायें व्यवहार में आती हैं उनकी जनता प्रत्यक्ष लोकतन्त्रात्मक कन्टनों की भाँति सार्वजनिक सभाओं में एक साथ भाग नहीं लेती है और न विधियों को पारित करती है। अन्य देशों के समान वे अपनी व्यवस्थापिकाओं को चुनते हैं और वे विधियाँ पारित करती हैं। शासन लोकतन्त्रात्मक नहीं है वरन् प्रतिनिधित्यात्मक है। परन्तु व्यवस्थापिका का कार्य अन्तिम नहीं होता है। वह

प्रत्यक्ष जनमत संग्रह

आवश्यक होने पर, केवल उत्तराधिकारिणी व्यवस्थापिका द्वारा बदला जा सकता है। कैण्टन की व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधियाँ जनता के समक्ष प्रत्यक्ष मतदान के लिये रखी जा सकती हैं अथवा अवश्य रखी जानी चाहिए। तव जनता को उन्हें स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में जनता विधि निर्माता बन जाती है। उनकी व्यवस्थापिका विधियों का सुभाव देकर और उनका प्रारूप तैयार करके उनकी सहायतार्थ एक प्रकार की समिति मात्र हो जाती है।

अभिक्रम

इसके विपरीत अभिक्रम के द्वारा कुछ मतदाता किसी विधि अथवा किसी विधान के सिद्धान्त का प्रस्ताव कर सकते हैं और व्यवस्थापिका के विरुद्ध होने पर भी ये यह माँग कर सकते हैं कि वह प्रस्ताव जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जावे। यह जनता उस (प्रस्ताव) को स्वीकार कर ले तो वह विधि हो जाता है। इस प्रकार जनमत की माँग इस प्रक्रिया को उलट देती है—विधि निर्माण की प्रेरणा व्यवस्थापिका से नहीं वरन् जनता से आती है। जनमत संग्रह नकारात्मक तथा प्रतिषेधात्मक है। जनमत की माँग सकारात्मक, मौलिक एवं रचनात्मक है। इन दो प्रक्रियाओं से लोकतन्त्र अपनी प्रसन्नता के अनुसार कोई भी विधि निर्मित करता है। एक दूसरे की पूरक है। वे व्यवस्थापिका को समाप्त नहीं करती हैं वरन् जब पर्याप्त संख्या में अपने नियंत्रण को लागू करना चाहती हैं तब वे जनता को नियंत्रण प्रदान करती हैं। यूरोप का संविधान इस सम्बन्ध को निम्नानुसार प्रकट करता है : "राज्य की व्यवस्थापिका की सहायता से जनता विधि-निर्माण की शक्ति का प्रयोग करती है।" व्यवस्थापिका विधि-निर्माण की अन्तिम संस्था नहीं है। मतदाता सर्वोपरि विधि-निर्माता है। प्रत्यक्ष जनमत संग्रह तथा जनमत की माँग के ये दो उपाय जनता के तथा जनता के द्वारा शासन की स्थापना का उद्देश्य रखते हैं और (वैसा शासन) स्थापित करते हैं। वे उन सब लोगों के लिए अत्यधिक अभिरुचि के विषय हैं जो लोकतन्त्र के सिद्धान्त और व्यवहार को सुसंगत बनाना चाहते हैं। उनके द्वारा अन्य किसी देश की अपेक्षा स्विटजरलैण्ड लोकतन्त्र के अधिक समीप पहुँच गया है।

स्विटजरलैण्ड ने शिक्षा तथा उद्योगों में अधिक प्रगति की है। १८५० की अपेक्षा वहाँ की जनसंख्या दस लाख से अधिक बढ़ गयी है और इस समय (१९३७) ३५ लाख से अधिक है। इस जनसंख्या की भाषा अथवा जाति एक ही नहीं है। लगभग ७१ प्रतिशत लोग जर्मनी भाषा बोलते हैं, २१ प्रतिशत फ्रांसीसी, ५ प्रतिशत इटैलियन और एक छोटी संख्या एक विलक्षण रोमानी भाषा, जिसे रूमान्श कहते हैं, बोलती है। परन्तु जैसा कि अन्यत्र है (उदाहरण के लिए आस्ट्रिया-हंगरी और बल्कान प्रायद्वीप में है) भाषा विभाजक शक्ति नहीं है क्योंकि संभवतः कोई भी राजनीतिक लाभ अथवा हानि इससे सम्बद्ध नहीं है। अन्य शक्तियों द्वारा स्विटजरलैण्ड की तटस्थता की प्रत्याभूति दी गयी है।

स्विटजरलैण्ड की जनसंख्या

स्विटजरलैण्ड की तटस्थता

अध्याय ३२

स्कैण्डनेविया के राज्य

डैनमार्क

नेपोलियन के परवर्ती युद्धों में डैनामार्क उसका मित्र रहा था और वह अन्त तक सच्चा मित्र रहा जबकि अन्य मित्रों ने उचित अवसरों पर उसका साथ छोड़ दिया। इस व्यवहार के लिए नेपोलियन के विजेताओं ने उसको **कील की संधि** (जनवरी १८१४) मानने पर विवश करके स्वीडन को, जोकि विजेताओं के साथ रहा था, नार्वे दिला दिया। अस्तु इस डैनिस राज्य की दशा वास्तव में शोचनीय थी। नार्वे के निकल जाने से उसकी जनसंख्या एक तिहाई कम हो गई, उसका व्यापार नष्ट हो गया और उसकी अर्थव्यवस्था अत्यधिक अव्यस्थित हो गयी।

डैनमार्क के हाथ से नार्वे निकल जाता है

यहाँ एक शासन निरंकुश राजतंत्र था। वह गत शताब्दी के मध्य की १८४८ की स्मरणीय यूरोपीय उथल-पुथल तक वैसा ही बना रहा। १८४९ में नरेश फ्रैडरिक सप्तम ने एक संविधान प्रकाशित किया। १८५४ में उसने दूसरा संविधान लागू किया और १८५५ में एक और संविधान लागू किया। कठिनाई यह थी कि संविधान का प्रश्न श्लैस्विग तथा होलस्टीन नामक डचियों (रियासतों) के डैनमार्क से सम्बन्ध की अति जटिल समस्या से सम्बद्ध था। जैसा कि हम देख चुके हैं यह समस्या १८६४ में प्रशा तथा आस्ट्रिया की दो महती शक्तियों द्वारा डैनमार्क पर आक्रमण से हल कर दी गयी थी और उन्होंने उन डचियों को स्वयं हस्तगत कर लिया था। यह समस्या वहीं तक सुलझ गयी थी जहाँ तक इसका डैनमार्क से सम्बन्ध था। १९वीं शती में इस प्रकार सैनिक महा-शक्तियों द्वारा दूसरी बार डैनमार्क का विघटन हुआ। इस

संविधान प्रदान किया जाता है

डैनमार्क श्लैस्विग तथा होलस्टीन से वंचित होता है

विघटन ने उसके भौम क्षेत्रफल को एक तिहाई कम कर दिया और जनसंख्या में लगभग दस लाख की कमी हो गयी।

इस युद्ध में पश्चात् के डैनमार्क अपने आन्तरिक विकास की नीति का अनुसरण करता रहा है। विदेशी नीतियों का उसकी गृह नीति में कोई भी हस्तक्षेप नहीं हुआ है **(अर्थात् तब से उस पर कोई भी वाह्य आक्रणम नहीं हुआ है)**। १८४९ के संविधान का संशोधन हुआ और १८६६ में द्विसदनात्मक संसद् की स्थापना करने वाला संविधान प्रकाशित किया गया। यह संसद् दीर्घकाल तक रूढ़िवादी रही परन्तु कुछ समय से अधिकाधिक उदारवादी बन गयी है। १८९१ में वृद्धावस्था-वृत्ति की व्यवस्था की गयी। ६० वर्ष से अधिक आयु के तथा अच्छे आचरण वाले सभी व्यक्तियों को इस वृत्ति को पाने का अधिकार है। इस वृत्ति का आधा भाग राज्य देता था तथा आधा भाग स्थानीय संस्था देती थी। जर्मनी की भाँति प्रापकों द्वारा पूर्व प्राप्तियों की कोई भी व्यवस्था नहीं है। १९१५ के संविधान के संशोधनों द्वारा लगभग सभी पुरुषों और स्त्रियों को मताधिकार मिल जाने से प्रायः सर्वमताधिकार स्थापित हो गया है। मतदाता की आयु कम से कम २५ वर्ष होनी चाहिये। ७ वर्ष से १४ वर्ष की आयु तक शिक्षा अनिवार्य है। डैनमार्क की जनसंख्या लगभग २७½ लाख है। क्षेत्रफल लगभग स्विटजरलैण्ड के बराबर है।

संविधान में संशोधन

उग्रवाद का विकास

डैनमार्क के विस्तृत अधिकृत क्षेत्र हैं: ग्रीनलैण्ड, आइसलैण्ड और फैरो द्वीप समूह इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। **आइसलैण्ड** जोकि नार्वे के पश्चिम में ६०० मील की दूरी पर स्थित है और जिसका क्षेत्रफल ४०,००० वर्ग मील से अधिक है तथा जनसंख्या लगभग ८५,००० है। आइसलैण्ड को **गृहशासन (होमरूल)** १८७४ में प्रदान किया गया और ३६ सदस्यों की उसकी अपनी संसद् है। १८७४ में आयरलैण्ड ने अपने बसने की सहस्राब्दी मनायीं। फैरो द्वीप समूह उपनिवेश नहीं है वरन् **डनमार्क राज्य** का भाग है।

डैनमार्क के उपनिवेश

१९३७ में डैनमार्क का नरेश था **फ्रैडरिक सप्तम** जोकि १९०६ से सिंहासनासीन रहा था।

स्वीडन तथा नार्वे

नेपोलियन के युद्धों का प्रभाव स्वीडन तथा नार्वे दोनों पर पड़ा था। १८०७ को टिलसिट की सन्धि के पश्चात् जिसके अनुसार रूस और फ्रांस में मैत्री स्थापित हो गयी थी, रूस ने अपनी दीर्घकालीन महत्त्वकांक्षा को पूरा करने के लिये स्वीडन से फिनलैण्ड छीन लिया और इस प्रकार उसने एक विस्तृत भूभाग तथा बाल्टिक समुद्र का लम्बा तट प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् स्वीडन ने मित्रराष्ट्रों से नैपोलियन के विरुद्ध मित्रता कर ली। अतः १८१४ में उसको नार्वे की उपलब्धि का पुरस्कार दिया गया जो कि डैनमार्क से पृथक् किया गया था। डैनमार्क अन्त तक नैपोलियन के साथ रहा था। इसीलिये उसे दण्ड का उचित पात्र समझा गया था।

इस मामले में नार्वेनिवासियों की राय नहीं ली गयी। वे अवहेलनीय समझे गये

और इस अन्तर्राष्ट्रीय खेल में मोहरा मात्र परन्तु यह विचार भ्रमात्मक सिद्ध हुआ क्योंकि ज्योंही यह सुना कि वे बाह्यशक्तियों द्वारा डैनमार्क से विच्छिन्न करके स्वीडन को दिये जा रहे हैं त्योंही उन्होंने इसका विरोध किया तथा विरोध को व्यवस्थित करने में संलग्न हो गये। उन्होंने यह दावा किया कि—डैनिश नरेश के ताज के त्याग ने ताज उनको प्राप्त करा दिया है। १७ मई १८१४ को उन्होंने अपने नरेश का चुनाव कर लिया और उन्होंने एक उदार संविधान बना लिया जिसको **'ईड्सवोल्ड का संविधान'** कहते हैं। इस संविधान ने स्टॉरथिंग अथवा संसद् स्थापित कर दी। परन्तु स्वीडन नरेश जिसको शक्तियों की सहमति से वह देश दिया गया था नार्वेनिवासियों के इस कार्य से अपने को उस देश से वंचित नहीं रखना चाहता था। उसने युवराज बर्नेडाट को नार्वे पर अधिकार करने के लिये भेजा। फलस्वरूप नार्वे और स्वीडन के निवासियों में युद्ध हुआ जिसमें नार्वेनिवासी विजयी रहे। तब महाशक्तियों ने इतनी शीघ्रता से हस्तक्षेप किया कि निर्वाचित नार्वे नरेश ने संसद् के हाथों में अपना ताज समर्पित करते हुये सिंहासन त्याग दिया। तब संसद (Storthing) ने स्वीडन के साथ संघ पर आपत्ति नहीं की परन्तु केवल उसी दशा में जब उसने स्वीडन नरेश को नार्वे का **नरेश** भी चुन लिया और इस प्रकार अपनी संप्रभुता को स्पष्ट कर दिया, तथा जब उस **नरेश** ने १८१४ के **संविधान** को जिसको स्वयं नार्वेनिवासियों ने बनाया था, मान्यता प्रदान करने का वचन दे दिया।

ईड्सवोल्ड का संविधान

इस प्रकार नार्वे और स्वीडन का एकीकरण नहीं हुआ। दो राज्य थे और एक राजा था। एक व्यक्ति नार्वे तथा स्वीडन का राजा था परन्तु वह प्रत्येक पर उसकी विधियों तथा पृथक्-पृथक् मन्त्रिमण्डलों के द्वारा शासन करता था। नार्वेनिवासी स्वीडन में तथा स्वीडन-निवासी नार्वे में किसी पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता था। प्रत्येक देश का पृथक् संविधान था तथा पृथक् संसद थी। स्वीडन की संसद अथवा डाइट में चार सदन थे जो क्रमशः कुलीनों, धर्माचार्यों (पादरियों), नगरों तथा कृषकों का प्रतिनिधित्व करते थे। नार्वे की संसद अथवा स्टॉरथिंग में दो सदन थे। स्वीडन के कुलीन जन सुदृढ़ थे परन्तु नार्वे के कुलीन अल्पसंख्या में तथा दुर्बल थे। स्वीडन का शासन तथा समाज कुलीनतन्त्रात्मक तथा सामन्तवादी था परन्तु नार्वे के शासन तथा समाज अत्यधिक लोकतन्त्रात्मक थे। नार्वे, कृषकों का देश था जो अपने खेतों के स्वामी थे तथा वहाँ सुदृढ़, सीधे एवं स्वतन्त्र मत्स्यजीवी रहते थे। प्रत्येक देश की अपनी-अपनी भाषा तथा अपनी-अपनी राजधानी थी—स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम में और नार्वे की क्रिस्टियाना में थी।

एक नरेश के अधीन नार्वे तथा स्वीडन पृथक् राष्ट्र

अतः अपनी-अपनी भिन्न भाषाओं, भिन्न-भिन्न संस्थाओं तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों सहित वे दोनों राज्य अत्याधिक असमान थे। उन दोनों का एक ही युद्ध तथा परराष्ट्र-मन्त्री थे। दोनों का सम्बन्ध, जोकि सीमित था, गत शताब्दी में अनेकों तथा कटु असहमतियों का कारण बना और अन्त में कुछ वर्ष पूर्व दोनों पृथक् हो गये।

स्वीडन की संस्थाएँ कुलीनतन्त्रात्मक तथा प्राचीन कालीन थीं। वे १८६६ तक

वैसी ही बनी रहीं जबकि इस अलचीले तथा अनुदार शासन में प्रथम दरार पड़ी (अर्थात् पहली बार उसमें परिवर्तन हुआ)। इस वर्ष डाइट एक आधुनिक संसद् में परिवर्तित की गयी जिसमें दो सदन थे। परन्तु उच्च सदन पर कुलीन तथा धनी वर्गो का नियन्त्रण रहना था; निम्न सदन को भी सम्पत्तिशाली वर्गों का प्रतिनिधित्व करना था। अतः मतदाताओं के लिये सम्पत्ति की उच्च अर्हतायें रखी गयीं जिससे इस संविधान के अधीन केवल (प्रायः) ८% जनता को ही मताधिकार प्राप्त था। यह पद्धति १८६६ में कार्यान्वित हुयी और १९०९ तक लागू रही।

१८६६ का संविधान

ऑस्कर द्वितीय (शासनकाल १८७२ से १९०७ तक) के अधीन स्वीडन और नार्वे के सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गये जिनका परिणाम पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद हुआ। दोनों में १८१४ से ही संघर्ष होता था और प्रायः संकट उत्पन्न होते रहते थे। इसका मूल कारण दोनों जातियों के विभिन्न व्यापक विचारों में निहित था जो वे उस वर्ष में होने वाले संघ की वास्तविक प्रकृति के विषय में रखते थे। स्वीडन निवासी मानते थे कि १८१४ की कील की संधि के अनुसार नार्वे उनको विना किसी शर्त के दिया गया था और वे आगे चलकर इस बात को मानने के लिये तैयार थे कि नार्वेवासियों को आंशिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जावे और कि, तो भी, उनको नार्वे में कुछ अधिकार प्राप्त थे तथा संघ में उनको अधिक शक्ति प्राप्त थी। दूसरी ओर नार्वेनिवासियों का कहना था कि उनका संघ कील की संधि पर निर्भर नहीं था। यह सन्धि स्वीडन तथा डैनमार्क के मध्य हुई थी वरन् यह संघ उनके स्वकार्य पर निर्भर था। उनका कहना था कि वे स्वतन्त्र थे; कि उन्होंने स्वयं ईड्सवोल्ड के संविधान का निर्माण किया था; उन्होंने स्वतन्त्रता पूर्वक स्वीडन नरेश को नार्वे-नरेश चुनकर अपनी इच्छा से अपने को स्वीडन के साथ मिला दिया था; कि दोनों राज्यों का एकीकरण नहीं हुआ था; कि स्वीडन को नार्वे में कोई भी अधिकार (शक्ति) प्राप्त नहीं थे; कि संघ में स्वीडन की अधिक शक्ति नहीं थी। प्रत्युत दोनों राज्य पूर्णरूप से समान स्तर पर थे। इस प्रकार के दो असमान दृष्टिकोण के कारण संघर्ष बढ़ने से रुक नहीं सकता था और वह १८१४ के पश्चात् एक अमहत्त्वपूर्ण प्रश्न पर अविलम्ब प्रारम्भ हो गया। नार्वे निवासी अपने आन्तरिक मामलों को अपने विवेक के अनुसार स्वीडन के प्रभाव के बिना संचालित करने के लिये कृत संकल्प थे परन्तु उनका राजा स्वीडन का राजा भी था और वास्तव में अधिक काल तक स्वीडन में रहता था तथा नार्वे में उसके बहुत कम अवसरों पर दर्शन होते थे। साथ ही इस असुविधाजनक संघ में स्वीडन अधिक जन-संख्या वाला साझीदार था।

नार्वे और स्वीडन का संघर्ष

संघ के विषय में असमान दृष्टिकोण

ईड्सवोल्ड के संविधान के अनुसार नार्वे की संसद्, स्टॉथिंग की विधियों पर नरेश को केवल निलंबनात्मक निषेधाधिकार प्राप्त था। इस निषेधाधिकार के प्रतिकूल कोई भी विधि कार्यान्वित की जा सकती थी। केवल यह उपबन्ध था कि वह लगातार तीन संसदों द्वारा पारित की गयी हो और मतदानों के मध्य तीन वर्ष का समय अन्तर हो। यह प्रक्रिया मन्द थी परन्तु किसी भी

नार्वे के कुलीनों का उन्मूलन

बात पर, जिस पर नार्वे निवासी सच्चाई के साथ अटल हों, उनकी विजय प्राप्ति के लिए पर्याप्त थी। इसी प्रकार उन्होंने नरेश के निषेधाधिकार के विरुद्ध नार्वे के कुलीनों का उन्मूलन किया। नार्वे निवासियों और नार्वे नरेश के मध्य राष्ट्र-ध्वज के, वार्षिक अधिवेशनों के तथा अन्य विषयों के प्रश्नों पर होने वाले संघर्षों ने संघ के विरुद्ध नार्वे निवासियों की भावना को बनाये रखा। इसी समय उनकी समृद्धि में वृद्धि हुई। विशेषरूप से उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण व्यापार का विकास किया। धीरे-धीरे यूरोपीय महाद्वीप के सामुद्रिक व्यापार का चतुर्थांश उनके हाथ में आ गया। इसके कारण अब तक उत्पन्न हुये प्रश्नों में से सर्वोपरि गम्भीरता का प्रश्न उत्पन्न हुआ—यह प्रश्न व्यापारिक सेवा का था।

१८९२ में व्यापारिक-सेवा विषयक महत्त्वपूर्ण विवाद प्रारम्भ हुआ। नार्वे की संसद् ने नार्वे के लिए पृथक् व्यापारिक-सेवा की माँग की जोकि उसके द्वारा संचालित होनी थी तथा जो स्वीडन की अपेक्षा नार्वे के अधिक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक हितों की देखभाल करे। यह माँग नरेश ने इस आधार पर—कि वह संघ को विघटित कर देगी तथा स्वीडन और नार्वे की दो वैदेशिक नीतियाँ नहीं हो सकती हैं—स्वीकार नहीं की। इस प्रकार प्रारम्भ वाला संघर्ष कई वर्ष तक चलता रहा। फलत: स्वीडन तथा नार्वे के निवासियों के सम्बन्ध कटुतर होते चले गये और भावनाएँ तीव्रतर होती चली गयीं। ७ जून १९०५ को नार्वे की संसद् ने सर्वसम्मति से उद्घोषित किया कि 'एक नरेश के अधीन स्वीडन के साथ संयोजन समाप्त हो गया है'। स्वीडन में युद्ध की भावना प्रबल थी परन्तु संघर्ष की बुराइयों से बचने के लिए शासन ने अन्त में संघ के विघटन को इस शर्त पर मान्यता प्रदान करने का निर्णय किया कि यह प्रश्न नार्वे के निवासियों के समक्ष रखा जावे। स्वीडन का कहना था कि इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं था कि नार्वे निवासी उस विघटन को चाहते थे प्रत्युत उसका यह मत था कि वह समस्त संकट संसद् का[1] उत्पन्न किया हुआ था। यह मत भ्रमात्मक था जैसा कि १३ अगस्त १९०५ के मतदान द्वारा सिद्ध हुआ। इस मत-दान में ३६८,००० से अधिक मत पृथक्करण के पक्ष में तथा केवल १८४ मत उसके विपक्ष में पड़े। तब विघटन की सन्धि अथवा समझौता तैयार करने के लिये काल-स्टेड में एक सम्मेलन हुआ। इस समझौते में यह उपबन्ध रखा गया कि भविष्य में दोनों देशों के बीच उत्पन्न होने वाले विवाद, जोकि सीधी कूटनीतिक बातचीत के द्वारा तय न हो सकें, हेग के **अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण** को भेजे जावेंगे। साथ ही दोनों देशों की सीमाओं पर स्थित तटस्थ क्षेत्र का भी उपबन्ध किया जिस पर कभी भी सैनिक दुर्ग स्थापित नहीं किये जावेंगे।

संघ का विघटन

कालस्टेड की सन्धि

उसी वर्ष आगे चलकर नार्वे निवासियों ने तत्कालीन डैनमार्क नरेश के पौत्र राजकुमार चार्ल्स को नार्वे का नरेश चुना। गणतन्त्र के पक्ष में प्रबल भावना थी परन्तु यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि यूरोप के राजतन्त्रों को एक राजा का निर्वाचन अधिक मान्य होगा और उससे विदेशी हस्तक्षेप की सभी भावनाएँ दूर हो जावेंगी। नये नरेश ने हकॉन सप्तम का नाम धारण किया। इस प्रकार उसने मध्ययुग में

---

1. कार्य था।

विकसित नार्वे के स्वतन्त्र राज्य की अविच्छिन्नता को अक्षुण्ण रखने का परिचय दिया। उसने अपना आवास क्रिस्टियाना में बनाया।

ऑस्कर द्वितीय की मृत्यु

ऑस्कर द्वितीय का जो १९०५ से केवल स्वीडन का राजा था, ४ दिसम्बर १९०७ को देहावसान हो गया। उसका पुत्र **गस्टवस पंचम** के नाम से उसका उत्तराधिकारी हुआ।

१९०९ में स्वीडन ने लोकतन्त्र की ओर एक लम्बा पग रखा। मताधिकार सुधार विधेयक, जो दीर्घकाल के संसद के समक्ष था, अन्त में पारित कर दिया गया। **निम्न सदन** के लिए वयस्क पुरुष मताधिकार स्थापित हो गया और **उच्च सदन** के निर्वाचन के लिए अर्हताएँ बहुत कम कर दी गयीं।

नार्वे में मताधिकार

नार्वे में उन पुरुषों, जो २५ वर्ष की आयु को प्राप्त कर चुके हैं तथा वहाँ पर पाँच वर्षों से निवास कर रहे हैं, मताधिकार प्राप्त था। १९०७ के संविधानिक संशोधन के द्वारा संसद के सदस्यों के लिए मत देने का अधिकार उन स्त्रियों को भी दे दिया गया जो उन्हीं अर्हताओं को पूरा करती है तथा जो स्वयं उनके प्रति ग्रामों में लगभग ७५ डालर की आय से लेकर नगरों में १०० डालर तक की आय पर आय-कर देते हों। इस प्रकार २५ वर्ष अथवा उससे अधिक आयु की ५,५०,००० स्त्रियों में से लगभग ३००,००० स्त्रियों ने मताधिकार प्राप्त कर लिया। इसके पूर्व उनको स्थानीय निर्वाचनों में मताधिकार प्राप्त था।

(१९३७ में) स्वीडन की जनसंख्या लगभग ५५ लाख थी और नार्वे की २५ लाख से कम थी।

अध्याय ३३

औटोमन साम्राज्य का विघटन तथा बल्कान राज्यों का उदय

जिस काल का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है उस सम्पूर्ण काल में एक साम्राज्य का विघटन होता रहा जिसने किसी समय सम्पूर्ण यूरोप को अपनी विलक्षण घृणित एवं अत्याचार पूर्ण दासता की अधीनता के भय से पाश्चात्य संसार को भयभीत कर दिया था। दो विगत शताब्दियों में वह साम्राज्य अपनी प्रतिरक्षा में लगा रहा है और निरन्तर अवनति करता रहा है। अठारहवीं शती में उसके पड़ोसी रूस तथा आस्ट्रिया ने उसके कुछ मूल्यवान् क्षेत्र छीन लिये। उन्नीसवीं शती में मुख्य रूस से उसकी प्रजा ने ही इसके विरुद्ध विद्रोह किया। उसी ने साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया और उस भूमि पर जो पहले तुर्की साम्राज्य में थी कई स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर दिये। अब से एक सौ वर्ष पूर्व के यूरोप के मानचित्र की तुलना में आज (१९३७) का मानचित्र सबसे अधिक परिवर्तन बल्कान प्रायद्वीप में प्रदर्शित करता है। यह परिवर्तन अत्यन्त घटनापूर्ण इतिहास की उपज है। यह यूरोप के राजनीतिज्ञों द्वारा सबसे अधिक जटिल तथा विवादग्रस्त समस्याओं में से एक समस्या का अब तक किया हुआ समाधान है। वह समस्या थी **पूर्वीय प्रश्न** अर्थात् तुर्की साम्राज्य का क्या किया जाय ?

औटोमन साम्राज्य की अवनति

तुर्क एशिया की मुसलमान जाति थी। उसने चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शती में दक्षिण-पूर्वी यूरोप को जीत लिया था और उसने कई भिन्न जातियों को अर्थात् यूनानी लोगों को जो प्राचीन काल के यूनानियों से अपनी उत्पत्ति मानते थे, रूमानियन लोगों को जो रोमन साम्राज्य के औपनिवेशकों से अपनी उत्पत्ति बतलाते थे, अल्बानिया निवासियों को तथा महान् स्लाविक जाति की विभिन्न शाखाओं को, सर्वो को, बल्गेरियनों को, बोसनियनों को और मॉण्टीग्रिनों को अपने अधीन कर लिया था जिनको उन्होंने जीता था उसके प्रति घृणा से पूर्ण होने के कारण उनको अपने में मिलाने अथवा एक राजनीतिक संस्था में संगठित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया था। वे उनको अधीन करने तथा उनका शोपण करने से ही सन्तुष्ट थे। ये

अधीन जातियों के साथ व्यवहार

ईसाई जातियाँ कई शताब्दियों तक मुसलमानी अत्याचार से पराभूत रहीं, उनकी सम्पत्ति छीनी जा सकती थी, उनके जीवन शासकों की स्वेच्छानुसार लिये जा सकते थे। जब तक उन्होंने अत्याचार का विरोध असम्भव समझा तब तक वे इसको शांतिपूर्वक सहन करती रहीं तथापि उन्होंने अपनी स्थिति को कभी भी स्वीकार नहीं किया। अपने अत्याचारियों के प्रति अमर घृणा रखते हुए वे अपनी मुक्ति-काल की प्रतीक्षा करती रहीं। वह काल उन्नीसवीं शती के आरम्भ में आता हुआ दिखाई दिया जबकि फ्रांसीसी क्रांति तथा नैपोलियन के युद्धों के परिणामस्वरूप महान् परिवर्तन हो रहे थे। परन्तु बलकान जातियों के वे मुक्ति-संग्राम जो उन्नीसवीं शती के प्रथम दशक में प्रारम्भ हुए थे बीसवीं शती के द्वितीय दशक में भी समाप्त नहीं हुए हैं। यह एक दीर्घकालीन, रक्तरंजित, अशान्तिपूर्ण, अस्पष्ट एवं वीरतापूर्ण इतिहास है।

सर्बिया

१८०४ में कारा जार्ज नामक शूकरपालक के अधीन सर्बिया निवासियों ने सर्वप्रथम विद्रोह किया। कुछ समय के लिए तुर्क सर्बिया से निकाल दिये गये परन्तु १८१३ में उन्होंने उसको पुनः ले लिया। सर्बिया निवासियों ने पुनः विद्रोह किया और १८० में मिलोश अब्रेनोविच ने, जिसने १८१७ में काराजार्ज का वध करा दिया था, तथा जो इस प्रकार स्वयं नेता बन गया था, सुल्तान से **'बैलग्रेड के पाशालिक के सर्बिया निवासियों के राजा'** की उपाधि प्राप्त कर ली। इसके पश्चात् उनकी नीति सर्बिया के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति की ओर उन्मुख रही। दीर्घकालीन बातचीत तथा रूस के द्वारा प्रबल समर्थन किये जाने से यह उसने १८३० में प्राप्त कर ली और तब सुल्तान की आज्ञानुसार उसको **'सर्बिया निवासियों के वंशानुगत राजा'** की उपाधि प्रदान की गयी। इस प्रकार युद्ध और बातचीत के कई वर्षों के पश्चात् सर्बिया तुर्की का केवल प्रान्त मात्र नहीं रही वरन् सुल्तान को कर देने वाली रियासत बन गयी जो स्वशासित थी तथा जिसमें एक वंशानुगत शासक राजवंश स्थापित था। यह राजवंश ओब्रेनोविच का था जिसने काराजार्ज के पूर्ववर्ती वंश को नष्ट करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। यूरोपीय तुर्की के विघटन से उन्नीसवीं शती में उदित होने वाले राज्यों में यह प्रथम राज्य था। इसकी राजधानी बैलग्रेड में थी।

यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम

(इस) घृणित अत्याचारी के विरुद्ध इन अधीन जातियों में विद्रोह करने वालों में इसके पश्चात् यूनानी थे। तुर्की बाढ़ ने यूनानियों को दबा दिया था परन्तु वह नष्ट नहीं कर पाया था। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में उन्होंने जातीय तथा राष्ट्रीय चेतना की पुनर्जागृति की अनुभूति की थी। १८२० में उनकी दशा गत शताब्दियों की अपेक्षा अच्छी थी। उनका उत्साह उच्चतर था और उनमें तुर्की की उद्दण्डता के सम्मुख झुकने की कम प्रवृत्ति थी। पूर्वापेक्षा उनकी समृद्धि अधिक थी। अठारहवीं शती में उनमें एक उल्लेखनीय बौद्धिक पुनर्जीवन का संचार हुआ था जिसका सम्बन्ध यूनानी भाषा की पुनर्स्थापना तथा शुद्धि से था।

यूनानियों की दशा

१८२१ में यूनानियों ने विद्रोह कर दिया और उन्होंने उस संग्राम का श्रीगणेश किया जो तब तक समाप्त नहीं हुआ जब तक कि १८२९ में उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर ली। प्रथम छः वर्षों में उन्होंने तुर्की के विरुद्ध अकेले युद्ध किया। इस काल के पश्चात् विदेशी हस्तक्षेप का राज्य प्रारम्भ हुआ। दोनों ओर से अत्यन्त क्रूरतापूर्ण संग्राम हुआ। यह वह विनाशपूर्ण संग्राम था जो सेनाओं तक ही नहीं था। प्रत्येक पक्ष के विजयी होने पर असैनिक स्त्री-पुरुषों और बच्चों का बड़ी संख्या में वध कर दिया।

यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम

तुर्की ने असफल संग्राम लड़ा। यूनानियों को परस्पर मिलकर कार्य न करने की असमर्थता के द्वारा यह काल और भी अधिक असुखद बना दिया गया। हिंसात्मक वर्गीय संघर्षों से विच्छिन्न यूनानी कोई स्पष्ट लाभ प्राप्त नहीं कर सके। दूसरी ओर अपनी स्वयं की शक्ति से विजय करने में असमर्थ तुर्की ने मिस्र के पाशा मेहमत अली को सहायता के लिये बुलाया। इस शासक ने एक सुदृढ़, अनुशासित, सुसज्जित तथा यूरोपीय पद्धतियों के अनुसार प्रशिक्षित सेना बना ली थी जोकि उन सेनाओं से कहीं अधिक अच्छी थी जो सुल्तान अथवा यूनानियों के पास थीं। १८२५ के आरम्भ में पाशा के पुत्र इब्राहीम के अधीन एक मिस्र सेना मोरिया में उतरी जिसमें ११,००० सैनिक थे और उसने विनाश का युद्ध आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही मोरिया पर विजय कर ली गयी। अप्रैल १८२५ से अप्रैल १८२६ तक एक वर्षीय उल्लेखनीय घेरे के पश्चात् मिस्लौंघी के पतन, जिसमें प्रायः सभी निवासियों का विनाश हुआ, तथा आगामी वर्ष में ऐथेन्स और एक्रोपोलिस के हस्तगन से यूनान के दमन की पूर्णता प्रकट होने लगी। थोड़े से स्थान ही हस्तगत करने के लिये शेष बचे।

यूनानियों में वर्ग संघर्ष

अन्त में दुर्भाग्य की चरम सीमा से यूनानियों की रक्ष विदेशी शक्तियों के हस्तक्षेप के निर्णय द्वारा की गयी। सभ्य जातियों की सहानुभूति आरम्भ से ही उस देश के प्रति जागृत हो गयी थी जिसने संसार को बौद्धिक जागृति एवं विशिष्टता प्रदान की थी, जो कलाओं का जनक[1] था और अब अपने स्वतन्त्र एवं सुचारु जीवन के लिये वीरतापूर्ण तथा रोमांचकारी संघर्ष कर रहा था। प्राचीन यूनान की स्मृतियों की प्रेरणा से सर्वत्र यूनान प्रेमी संस्थायें (Phipellenic societies) स्थापित हुई। इन संस्थाओं ने जो फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, इंगलैण्ड और संयुक्त राज्य अमरीका में स्थापित की गई, धन, शस्त्र और स्वयंसैनिक भेजकर तथा शासनों पर हस्तक्षेप करने के लिये दबाव डालकर विद्रोहियों की सहायता करने का प्रयत्न किया। पश्चिमी यूरोप के बहुत से पुरुष यूनानी सेना में सम्मिलित हो गये। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति था लार्ड बायरन जिसने स्वतन्त्र यूनान के विचार के लिये अपना जीवन बलिदान कर दिया। उसकी मृत्यु १८२४ में मिसौलौंघी में हुई। अन्त में शासनों ने

विदेशी हस्तक्षेप

1. अंग्रेजी में देश स्त्रीलिंग शब्द है। अतः उसको कलाओं की जननी कहा गया है परन्तु हिन्दी देश पुल्लिंग है। इसलिये उसका अनुवाद जनक किया गया है— अनुवादक।

हस्तक्षेप करने का संकल्प किया। १८२७ की लन्दन संधि के अनुसार इंगलैण्ड, रूस और फ्रांस इस माँग को करने पर सहमत हुए कि यूनान तुर्की की संप्रभुता के अधीन स्वशासित राज्य बना दिया जावे, अतः वह प्रायः उसी स्थिति में रख दिया जावे जिस स्थिति में सर्बिया था। तुर्की सरकार ने इस माँगों को ठुकरा दिया। २० अक्टूबर १८२७ को नैवारिनों की सामुद्रिक लड़ाई में तुर्की बेड़े का विनाश हो गया। आगामी वर्ष में रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह रूस-तुर्की संग्राम एक वर्ष से अधिक काल तक होता रहा। प्रथम अभियान में रूसियों को सफलता नहीं मिली परन्तु अपने प्रयत्नों को द्विगुणित करते हुए तथा योग्यतर नेतृत्व में उन्होंने बल्कान-देशों को पार कर लिया और द्रुतगति से कुस्तुन्तनिया की ओर प्रस्थान किया। इसी बीच फ्रांसीसियों ने अपनी एक सेना मोरिया को भेज दी थी और उसने मिस्री सेना को उस देश को छोड़ने तथा मिस्र को चले जाने पर विवश कर दिया। सुल्तान को झुकना पड़ा और १४ सितम्बर १८२९ को रूस के साथ ऐड्रियानोपल की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े।

रूस और तुर्की के मध्य संग्राम

इस घटनावली के परिणामस्वरूप यूनान एक स्वतन्त्र राज्य बन गया जो कि तुर्की से पूर्ण स्वतन्त्र हो गया। उसकी स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति (**गारंटी**) तीन शक्तियों—फ्रांस, इंगलैण्ड और रूस ने दी। औपचारिक रूप से तो नहीं किन्तु व्यवहारिक रूप से डैन्यूबी रियासतें—माल्डेविया तथा वैलैशिया—प्रायः स्वतन्त्र बना दी गयीं। अतः यूरोप में सुल्तान की शक्ति पर्याप्त रूप से क्षीण हो गयी। १८३३ में बवेरिया नरेश लुई प्रथम का सप्तदश वर्षीय पुत्र **औटो** (Otto) यूनान का प्रथम नरेश बन गया। दक्षिण पूर्वी यूरोप में एक नये ईसाई राज्य का मिर्माण हो गया।

यूनान के राज्य का निर्माण

क्रीमिया का युद्ध

तुर्की युद्ध के परिणामस्वरूप रूस की प्रतिष्ठा एवं शक्ति में वृद्धि हो गयी। उसके १९२९ के अभियान ने ही सुल्तान को शर्तें स्वीकार करने पर विवश किया था। यूनान स्वतन्त्र हो गया था और अन्य शक्तियों की अपेक्षा रूस का अधिक आभारी था। मौल्डेविया तथा वैलैशिया अभी भी नाममात्र के लिये तुर्की के भाग थे परन्तु वे प्रायः तुर्की नियन्त्रण से मुक्त थे तथा परवर्ती काल में उनमें रूसी प्रभाव सर्वोपरि था। कई वर्ष पश्चात् रूस ने अपना प्रभाव क्षेत्र और आगे बढ़ाने के प्रयत्न करने का साहस किया और इसी प्रयत्न से **पूर्वीय प्रश्न** को पुनः उठाने का सहसा अवसर प्रदान किया तथा इसके परिणामस्वरूप नैपोलियन प्रथम के पतन के पश्चात् एक महान् यूरोपीय युद्ध हुआ।

रियासत

रूस ने तुर्की साम्राज्य के निवासी सभी यूनानी ईसाइयों की रक्षा करने के अधिकार की माँग की। इनकी संख्या कई लाख थी। यह माँग शिथिलता के साथ अभिव्यंजित की गयी थी और यदि स्वीकार करली गयी होती तो उसका अर्थ यह होता कि तुर्की के आन्तरिक मामलों में रूस को सदा हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो जाता और अन्त में तुर्की रूस का एक प्रकार का अधीन देश बन जाता। कम से कम तुर्की

रूसी माँगें

का यही कहना था। अस्तु १८५३ में रूस और तुर्की के मध्य संग्राम छिड़ गया। रूस ने यह आशा की थी कि यह युद्ध उन दिनों तक ही सीमित रहेगा। परन्तु शीघ्र ही उसकी यह आशा भ्रमात्मक सिद्ध हो गयी क्योंकि इंगलैण्ड तथा फ्रांस और उसके पश्चात् पीडमौण्ट ने तुर्की की सहायता की। रूस ने अपने विरुद्ध एक के स्थान पर चार शक्तियों को पाया। इंगलैण्ड युद्ध में इसलिये सम्मिलित हुआ कि वह आक्रामक तथा विस्तारवादी रूस से भारत के मार्ग के विषय में भयभीत था। फ्रांस इसलिये सम्मिलित हुआ कि नैपोलियन तृतीय रूस के प्रति अपने पुराने वैमनस्य का प्रतिरोध लेना चाहता था, वह नैपोलियन प्रथम के मास्को अभियान का बदला लेना चाहता और वह १८१५ की संधियों को तोड़ना चाहता था जिन्होंने फ्रांस के अपमान पर छाप लगा दी थी। पीडामौण्ट युद्ध में केवल इसलिये सम्मिलित हुआ कि वह इटली के निर्माण के हेतु कावूर की योजना के लिये इंगलैण्ड और फ्रांस की अभिरुचि प्राप्त करना चाहता था।

रूस और तुर्की के मध्य युद्ध

रूस के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा

यह युद्ध मुख्यत: क्रीमिया में लड़ा गया जो कि दक्षिणी रूस में काले सागर में स्थित प्रायद्वीप है। यह इसलिये महत्त्वपूर्ण था कि वहाँ पर सैवस्टापोल में रूस ने एक विशाल सामुद्रिक अस्त्रागार वनाया था और रूसी समुद्री वेड़ा वहाँ उपस्थित था। सैवस्टापोल लेने और सामुद्रिक बेड़े को डुबा देने में कई वर्षो के लिए रूस की शक्ति नष्ट हो जावेगी और इस प्रकार वह शस्त्र (साधन) नष्ट हो जावेगा जिससे वह तुर्की को गंभीर आघात पहुँचा सकता था।

मित्रराष्ट्र क्रीमिया पर आक्रमण करते हैं

क्रीमिया के युद्ध की प्रमुख विशेषता थी **सैबस्टापोल का घेरा**। वह घेरा ग्यारह मास तक रहा। सभी अभियन्ता (इंजीनियर) टौडिलवैन ने सैवस्टापोल की रक्षा चरम चातुर्य से की, उस युद्ध द्वारा विकसित वीरों में प्रथम श्रेणी का एकमात्र वीर वही था। इस अभियान के अंग, जो इस घेरे के सहायक थे, आत्मा, वाल्कलावा और इंकरमान के संग्राम थे। ये संग्राम वृहत् तथा लघु सैनिक टुकड़ियों के भव्य आक्रमणों के द्वारा सदा के लिये स्मरणीय वना दिए गए तथा वे उत्तेजक एवं वीरता की घटनाओं से पूर्ण थे। इन कारणों से मित्रराष्ट्रों को भयावह:क्षति उठानी पड़ी—कड़ी सर्दी थी, रसद विभाग अव्यवस्थित हो गया था और औषधि एवं उपचारालय (अस्पताल) की सेवाओं की हृदय द्रावक अक्षमता थी। ये कमियाँ समय पर दूर की गयीं परन्तु केवल भयानक क्षति के पश्चात् ही वे दूर हुई थीं।

सैवस्टापोल का घेरा

१८५५ के प्रारम्भ में (२ मार्च को) अपनी योजनाओं की सफलता पर बुरी तरह निराश होकर निकोलस प्रथम पंचत्व को प्राप्त हो गया। १८५५ की ग्रीष्म ऋतु पर्यन्त सैवस्टापोल की दशा धीरे-धीरे विगड़ती रही तथा ३३६ दिन के घेरे के पश्चात् अन्त में ८ सितम्बर १८५५ को उसका पतन हो गया। यहाँ पर मानव-जीवन का वृहत् विनाश हुआ था?

यह युद्ध कुछ सप्ताहों तक आगे भी चलता रहा परन्तु अधिकांश शक्तियाँ

सन्धि की इच्छुक थीं। अतः वे पैरिस सम्मेलन में भाग लेने पर सहमत हो गयीं। यह सम्मेलन २५ फरवरी १८५६ को हुआ और उससे एक मास के विचार-विमर्श के पश्चात् ३० मार्च १८५६ को पैरिस की संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। इस संधि में ये उपबंध रखे गये—कि भविष्य में काले सागर को तटस्थ बना दिया जावे, कि उसमें रूस और तुर्की के तटवर्तीय देशों के युद्धपोत में भी प्रवेश न कर सकें, और कि इसके किनारों पर कोई अस्त्रागार न तो स्थापित ही किया जावे और न बना रहने ही दिया जावे। इस पर प्रत्येक राष्ट्र के व्यापारिक जलपोत चल सकते थे। डैन्यूब नदी में भी किसी भी राष्ट्र के जलपोत स्वतन्त्रतापूर्वक चल सकते थे। मौल्डेविया और वैलेशिया के ऊपर रूसी संरक्षण समाप्त कर दिया गया और वे तुर्की सम्राट् की संप्रभुता के अधीन स्वतन्त्र घोषित कर दिये गये। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धारा वह थी जिसके अनुसार तुर्की को यूरोपीय राज्यों के परिवार में सम्मिलित कर लिया गया। इस परिवार से अब तक उसको असभ्य राष्ट्र के रूप में बाहर रखा गया था और इसी धारा के अनुसार वे तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने पर सहमत हुए। जैसा कि कहा गया था कि यह कार्यवाही इसलिये की गयी थी कि सुल्तान ने अपनी प्रजा के सतत् कल्याण की कामना से अपने ईसाई निवासियों के प्रति उदार भावनाओं का उल्लेख करते हुये **फरमान** प्रकाशित किया गया था।

पैरिस की संधि

इस प्रकार पश्चिमी यूरोप की ईसाई शक्तियों ने तुर्की को सहायता देकर नष्ट होने से बचाया क्योंकि ये कुस्तुन्तुनिया पर रूस का आधिपत्य नहीं होने देना चाहती थीं। पूर्वी प्रश्न के हल के रूप में यह युद्ध पूर्ण असफलता थी। अपनी ईसाई प्रजा की दशा को सुधारने के लिये दिया हुआ सुल्तान का वचन कभी भी पूरा नहीं किया गया। उनकी दशा और अधिक बिगड़ गयी।

बल्कान प्रायः द्वीप में विद्रोह

उन्नीसवीं शती के मध्य तक तुर्की का साम्राज्य का केवल एक भाग जो स्वतन्त्र हो गया था यूनान था। सर्बिया तथा मौल्डेविया अर्द्ध स्वतन्त्र थे और वे पूर्ण स्वतन्त्र होना चाहते थे। पिछले दोनों प्रान्तों (मौल्डेविया-वैलेशिया) ने शीघ्र ही अपने को एक नाम **रूमानिया**, से संयुक्त घोषित कर दिया और १८६६ में उन्होंने होहेन्जोलर्न वंश की रोमन कैथोलिक शाखा के एक सदस्य को अपना राजा, चार्ल्स प्रथम, चुन लिया। यह जर्मन राजकुमार जो १९१४ में अपनी मृत्यु पर्यन्त रूमानिया का शासक रहा उस समय सत्ताईस वर्ष की आयु का था। वह अपने नये देश की परिस्थितियों के अध्ययन में अविलम्ब संलग्न हो गया। इस कार्य में उसको उसकी धर्मपत्नी से योग्यतापूर्ण सहयोग मिला। उसकी पत्नी एक जर्मन राजकुमारी थी जिसकी साहित्यिक देन ने उसको महती ख्याति प्राप्त करायी और वह रूमानिया के हित में प्रयुक्त होनी थी। 'कार्मन सिल्वा' के नाम से उसने कवितायें और कहानियाँ लिखीं, रूमानिया के सामान्य परम्परागत प्रथाओं और परम्पराओं का संलग्न प्रकाशित कराया और रूमानिया की देशी वस्त्र-भूषा एवं प्राचीन प्रथाओं में अपनी अभिरुचि प्रकट करके राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहित किया।

रूमानिया का उदय

रूमानिया का चार्ल्स प्रथम

चार्ल्स प्रथम प्रमुखतः एक सैनिक था और उसके शासन के प्रारम्भिक वर्षों का कार्य था सेना का निर्माण क्योंकि वह रूमानिया को वास्तव में रूस और तुर्की के साथ अपने व्यवहार में स्वतन्त्र होने के लिये इसको आवश्यक मानता था। उसने सेना के आकार में वृद्धि की। उसको प्रशा की तोपों से सज्जित किया और प्रशा के अधिकारियों से उसकोप्रशिक्षित कराया। उसकी बुद्धिम त्ता उस समय स्पष्ट हुई जब कि **पूर्वीय प्रश्न** पर पुनर्विचार प्रारम्भ हुआ।

पूर्वीय प्रश्न पर पुनर्विचार

१८७५ में **पूर्वीय प्रश्न** ने गम्भीर एवं प्रखर रूप धारण किया। ऐसी हलचलें प्रारम्भ हुई जिनका बल्कान प्रायद्वीप के विभिन्न भागों पर गम्भीर प्रभाव पड़ना था। इस वर्ष की ग्रीष्म-ऋतु में सर्विया के पश्चिमवर्ती प्रान्त हर्जे-गोविना में विद्रोह प्रारम्भ हो गया। कई वर्षों तक वहाँ कृषक कुशासन से प्रपीड़ित रहे थे। तुर्की दमन इतना उत्पीड़क तथा ऐसे बर्बर एवं अमानुषिक कार्यों से युक्त हो गया कि कृषकों ने अन्त में विद्रोह कर दिया। कृषक स्लैव थे। अस्तु बोस्निया, सर्विया तथा बल्गारिया के समीपवर्ती क्षेत्रों के स्लैवों ने उनकी सहायता की। उनमें अधिक कटुता इसलिये उत्पन्न हो गयी कि वे सर्बिया के स्लैवों को अपेक्षाकृत अधिक सन्तुष्ट देखते थे क्योंकि वे अधिकांश स्वशासित थे। वे दूसरे के समान ही अच्छी परिस्थितियों का क्यों स्वयं उपभोग न करें? सम्पूर्ण प्रायद्वीप में ईसाइयों तथा स्लैवों की विधर्मी तुर्कों के प्रति धार्मिक तथा जातीय घृणा प्रज्वलित हो गयी। अपने सह-धर्मियों पर अत्याचार होते हुये देखकर ईसाई लोग आराम से नहीं बैठ सके। ठीक इस समय होने वाले अत्याचारों ने इतनी क्रूरता प्राप्त कर ली कि समस्त यूरोप दहल गया।

हर्जेगोविना का विद्रोह

यूरोपीय तुर्की के विस्तृत प्रान्त बल्गेरिया के ईसाइयों ने १८७६ के प्रारम्भ में तुर्की अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और कुछ का बध कर दिया। तुर्कों ने जो प्रतिशोध लिया उसकी क्रूरता विश्वसनीय नहीं है। नियमित सैनिकों तथा अनियमित सैनिकों की, जिनको बाशीबाजूक कहते थे, टुकड़ियाँ इस प्रान्त में भेजीं। उन्होंने सहस्रों को पाशविकता की प्रत्येक सुघरता अथवा भद्देपन के साथ मार डाला। मरित्जा की घाटी में ८० गांवों में से १५ के अतिरिक्त शेष सभी गाँव नष्ट कर दिये। बाटक नामक नगर के ७००० निवासियों में से ५००० स्त्री, पुरुष और बच्चे अवर्णनीय विश्वासघात तथा क्रूरता के साथ कत्ल कर दिये गए।

बल्गेरिया के अत्याचार

इन बल्गेरी क्रूरताओं ने सम्पूर्ण यूरोप को भय से कँपा दिया। ग्लेडेस्टन ने राजनीतिक एकान्तवास (अवकाश) से निकलते हुए 'बात न करने योग्य तुर्क' की निन्दा एक जाज्वल्यमान पुस्तिका में की। उसने यह माँग की कि इंगलैण्ड को उस सरकार का समर्थन करना बन्द कर देना चाहिए जो ईश्वरीय नियमों का स्पष्ट निरादर करती है, और यह अनुरोध किया कि तुर्कों को 'साज-सामान सहित' यूरोप से निकाल देना चाहिए। यूरोप का जनमत जागरित हो गया था।

ग्लैडस्टन द्वारा तुर्कों की निन्दा

जुलाई १८७६ में सर्बिया तथा मॉन्टीनीग्रो ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की उद्-घोषणा कर दी और बल्गेरिया निवासियों का विद्रोह सामान्य हो गया। रूसी लोगों की तीव्र सहानुभूति अपने सहधर्मियों और साथी स्लैवों के प्रति जागृत हो गयीं। अन्त में २४ अप्रैल १८७७ को रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध १८७८ के जनवरी मास के अन्त तक चलता रहा। इस अभियान की मुख्य विशेषता थी **प्लेवना का प्रसिद्ध घेरा** जिसने पाँच मास तक अपनी रक्षा की परन्तु अन्त में उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इसने तुर्की के प्रतिरोध की रीढ़ तोड़ दी और रूसी सेनाएँ द्रुतगति से कुस्तुन्तुनियाँ की ओर बढ़ने लगीं। सुल्तान ने सन्धि का प्रस्ताव किया और तीन मार्च १८७८ को रूस तथा तुर्की के मध्य **सैनस्टीफैनो की सन्धि** हो गयी। इस सन्धि के द्वारा तुर्की शासन (पार्टी) ने सर्बिया, मॉण्टीनीग्रो और रूमानिया की पूर्ण स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान कर दी और दो पूर्व कथित राज्यों (सर्बिया तथा मान्टीनीग्रो) को कुछ भू-भाग भी दिये। सन्धि की मुख्य शर्त (विशेषता) का सम्बन्ध बल्गेरिया से था जोकि स्वशासित राज्य बना दिया गया परन्तु वह सुल्तान को कर देने वाला राज्य रहेगा। इसकी सीमाएँ अत्यन्त उदारतापूर्वक निर्धारित की गयीं। इसके भू-भाग में यूरोपीय तुर्की का प्रायः वह सम्पूर्ण भाग सम्मिलित रहना था जो कि रूमानिया तथा सर्बिया के मध्य में उत्तर की ओर तथा दक्षिण में यूनान की ओर स्थित था। इस प्रायद्वीप के आरपार कुस्तुन्तुनिया से ऐड्रियांटिक तक एक सँकरी एवं भग्न भूमि ही तुर्की के पास रहनी थी अस्तु नये राज्य में केवल बल्गेरिया ही नहीं रहना था वरन् दक्षिण में रोमेलिया तथा मेसीडोनिया का अधिकांश उसमें सम्मिलित होना था। ग्लैडस्टन की 'तुर्क को साज-सामान के साथ यूरोप से निकालने' की इच्छा लगभग पूरी हो गयी।

सर्बिया तथा मान्टीनीग्रो युद्ध की घोषणा करते हैं

रूस युद्ध की घोषणा करता है

सैनस्टीफैनो की सन्धि

परन्तु इस सन्धि की शर्तें पूरी नहीं होनी थीं। अन्य शक्तियों ने बिना उनकी सहमति के **पूर्वीय प्रश्न** के हल पर आपत्ति की। दक्षिण में भूमध्यसागर की ओर रूसी विस्तार की अशंका से तथा यह विश्वास करते हुए कि बल्गेरिया एवं अन्य राज्य रूस की कठपुतलियाँ मात्र रहेंगे इंगलैण्ड ने विशेष रूप से यह उद्घोषणा की कि बल्कान प्रायद्वीप से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ यूरोपीय शक्तियों द्वारा निश्चित की जानी चाहिए और कि सैनस्टीफैनो की सन्धि एक सामान्य सम्मेलन के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए क्योंकि यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार पूर्वीय प्रश्न केवल एक राष्ट्र द्वारा हल नहीं किया जा सकता था वरन् सब पर प्रभाव डालने के कारण वह सभी शक्तियों द्वारा सम्मिलित रूप से तय किया जा सकता था। तुर्की की लूट के कुछ अंश को अपने लिए चाहते हुए आस्ट्रिया ने भी इस आपत्ति को उठाया। स्वाभाविक रूप से रूस ने उन शक्तियों को विजय के परिणाम को निश्चित करने की आज्ञा देने से आपत्ति की जिन्होंने युद्ध में भाग नहीं लिया था। परन्तु इन शक्तियों को विशेपकर इंगलैण्ड जहाँ इस समय वेकन्सफील्ड के मन्त्रिमण्डल का प्रशासन था, आग्रह के कारण तथा आगे

इंगलैण्ड इस सन्धि के पुनर्विचार की माँग करता है

युद्ध चालू रखने की स्थिति में न होने के कारण रूस मान गया। बिस्मार्क के सभापतित्व में यह सम्मेलन बर्लिन में हुआ। इसमें इंगलैण्ड का प्रतिनिधित्व स्वयं बेकन्सफील्ड ने किया। इसने **बर्लिन की सन्धि** तैयार की और उस पर १३ जुलाई १८७८ को हस्ताक्षर हो गए। इस सन्धि के अनुसार मॉण्टीनीग्रो, सर्बिया तथा रूमानिया को तुर्की से पूर्णरूप से स्वतन्त्र बना दिया गया। परन्तु बल्गेरिया को तीन भागों में विभाजित किया गया। एक भाग जिसका नाम मकदूनिया (मैसीडोनिया) था तुर्की को लौटा दिया गया। एक दूसरा भाग जिसका नाम पूर्वी रूमीलिया था अभी सुल्तान के अधीन रहना था परन्तु उसका शासक एक ईसाई होगा जिसको सुल्तान नियुक्त करेगा। तीसरा भाग बल्गेरिया, अभी भी नाम के लिए तुर्की का भाग रहेगा। परन्तु वह अपना राजा स्वयं चुनेगा और स्वशासित रहेगा। इन व्यवस्थाओं को स्थापित करने में ये शक्तियाँ न तो तुर्की के विषय में विचार कर रहीं थीं और न उस जनता की प्रसन्नता पर ध्यान दे रही थीं जिनका तुर्कों ने दीर्घकाल से दमन किया था। १८१५ के वीयना के सम्मेलन की भाँति बर्लिन का सम्मेलन भी दमित जातियों की वैध इच्छाओं के प्रति उदासीन अथवा वैरपूर्ण दृष्टिकोण रखता था। अतः इसके कार्य का भी वही हाल हुआ जो वीयना के सम्मेलन के कार्य (सन्धि) का हुआ था। इस सन्धि की यह अथवा वह बात अर्थात् प्रायः सभी व्यवस्थाएँ समाप्त कर दी गयी हैं और यह समाप्ति की क्रिया अभी चालू है और पूर्णरूप से समाप्त नहीं हुई है। जहाँ तक मानवीय दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, मकदूनिया (मैसीडोनिया) की व्यवस्था बड़ी भारी भूल थी। यदि इसकी जनता बल्गेरिया का अंग बन गयी होती, तो वह कहीं अधिक सुखी होती। महती शक्तियों की पारस्परिक विरोधी महत्त्वाकांक्षाओं के कारण मैसीडोनिया के ईसाइयों का वह घृणित अत्याचार एक दीर्घकाल तक सहना था जिसने बल्कान प्रायद्वीप के अधिक भाग्यशाली अन्य ईसाई मुक्त हो गये थे।

बर्लिन का सम्मेलन

मैसीडोनिया

इन्हीं शक्तियों ने इस अवसर को तुर्की साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को स्वयं लेने के लिए सुविधाजनक समझा। आस्ट्रिया को बोसनिया तथा हर्जेगोविना पर अधिकार करने तथा उसका प्रशासन करने के लिए आमन्त्रित किया गया। इंगलैण्ड को साइप्रस पर अधिकार करना था। ये सब क्षेत्र अभी तक तुर्की साम्राज्य के नाम मात्र के भाग थे। उनकी स्थिति अनियमित, अस्पष्ट एवं भविष्य में संकट उत्पन्न करने वाली थी।

इसके प्रतिकूल बर्लिन की संधि ने जिन लाभों का आश्वासन दिया था वे पर्याप्त थे और वे केवल रूस के हस्तक्षेप के कारण ही सम्भव हुये थे किन्तु रूस ने अपने युद्ध से प्रत्यक्षतः बहुत कम लाभ उठाया। तीन बल्कानी राज्य मॉण्टीनीग्रो, सर्बिया तथा रूमानिया, जो दीर्घकाल तक निर्मित होते रहे थे, पूर्णरूप से स्वतन्त्र घोषित किये गये तथा एक नये राज्य, बल्गेरिया को नवीन अस्तित्व प्रदान किया गया, यद्यपि वह अभी न्यून रूपेण तुर्की सम्राट् के अधीन रहा। इस सन्धि के फलस्वरूप यूरोपीय तुर्की अत्यधिक कम हो गयी। उनकी जनसंख्या एकसौ सत्तर लाख के स्थान पर साठ लाख रह गयी। दूसरे शब्दों में एक सौ दस लाख अथवा अधिक जनता तुर्की नियंत्रण से मुक्त कर दी गयी।

बर्लिन की सन्धि से लाभ

१८७८ के पश्चात् बल्गेरिया

यद्यपि बर्लिन की सन्धि से सारभूत लाभ हुए तथापि इसके द्वारा बल्कान प्रायद्वीप में शांति स्थापित नहीं हुई। इसने सुल्तान के अधिकृत क्षेत्रों को छोटा तो कर दिया परन्तु विभिन्न जातियों की महत्त्वकांक्षाओं को पूरा नहीं किया। इसने तुर्कों को यूरोप से बहिष्कृत नहीं किया तथा इस प्रकार बुराई की जड़ का उन्मूलन नहीं किया। संकट के पर्याप्त स्रोत विद्यमान रहे जैसा कि आगामी चालीस वर्षों को प्रदर्शित करना था। १८७८ से इन विभिन्न राज्यों का इतिहास घरेलू तथा विदेशी मामलों में उत्तेजनापूर्ण रहा तथापि अशान्ति रहने पर भी, पर्याप्त प्रगति हुई है।

असंतुष्ट महत्त्वाकांक्षायें

बल्गेरिया के विषय में १८७६ में यूरोप निवासी बहुत कम जानते थे। उसे १८७८ में स्वशासित राज्य बना दिया गया परन्तु इसने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की क्योंकि वह नाम के लिये तुर्की साम्राज्य का अंग था और उसे उसको कर देना पड़ता था। इस राज्य का अस्तित्व रूस के कारण सम्भव हुआ था और कई वर्षों तक इसमें रूसी प्रभाव सर्वोपरि रहा। इसके (प्रशासनिक) जीवन का श्रीगणेश रूसी अधिकारियों द्वारा किया गया था। एक संविधान तैयार किया गया जिसने **सोबरन्जे** नाम की सभा स्थापित की। इस सभा ने बेटनबर्ग अलैकजेण्डर को बल्गेरिया का राजा चुना। यह रूसी राजवंश का सम्बन्धी और २२ वर्षीय जर्मन नवयुवक था। यह विश्वास किया गया था कि यह जार को स्वीकार्य होगा (अप्रैल १८७९)।

बेटेनबर्ग का अलैकजैंडर

बल्गेरिया निवासी रूसियों की सहायता के लिये उनके कृतज्ञ थे। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जो रूसी बल्गेरिया में रह गये उनको उन्होंने उन सब अधिकारों की मान्यता दी जो बल्गेरिया के नागरिकों को प्राप्त थे। अन्य अधिकारों के साथ साथ उनके पद पर आसीन होने के अधिकार को भी मान्यता दी गयी। बल्गेरिया के मंत्रि-मण्डल में वे महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। तो भी शीघ्र ही संघर्ष बढ़ गया और रूसियों के निरंकुश व्यवहार के कारण कृतज्ञता क्रोध में परिणत हो गयी क्योंकि वह स्पष्टतः बल्गेरिया को एक प्रकार का प्रान्त अथवा वाह्य चौकी समझते थे जिसका प्रशासन रूसी विचारों और हितों के अनुसार होना था। रूसी मंत्री धृष्ट तथा अभिमानी थे और उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि वे एलेकजैण्डर को नहीं वरन् जार को अपना बड़ा मानते थे जिसकी इच्छाओं को पूरा करना उनका कर्तव्य था। राजा, वहाँ के सैनिक अधिकारी और जनता को अपनी स्थिति अधिकाधिक अपमानजनक दिखाई दी। अन्त में १८३३ में रूसी मंत्रियों को पद त्याग करने पर प्रायः विवश किया गया और राजा अब बल्गेरिया के नेताओं पर निर्भर हो गया। इससे रूस से खुला विरोध हो गया जो कि पूर्वी रूमीलिया की जनता द्वारा १८८५ में बल्गेरिया के साथ संयोजित होने की इच्छा की अभिव्यक्ति से और भी बढ़ गया)। राजा अलैकजैण्डर इससे सहमत हो गया और उसने 'दोनों बल्गेरियाओं के राजा' की उपाधि धारण कर ली। शक्तियों ने इस संयोजन का

बल्गेरिया निवासियों और रूसियों में संघर्ष

विरोध किया और उन्होंने इस परिवर्तन को मान्यता प्रदान नहीं की किन्तु इससे अधिक और कुछ नहीं किया।

राजा अलैकजैण्डर का सिंहासन त्याग

तो भी रूस ने इस नये राज्य की स्वतन्त्रता से अप्रसन्न होकर जिसको वह अपना केवल अधीन राज्य समझता था, एक षड्यन्त्र रचकर उसे विनम्रता का पाठ पढ़ाने का संकल्प किया।

षड्यंत्रकारियों ने राजा को उसके शयनकक्ष में अर्द्धरात्रि में पकड़ लिया, उसको सिंहासन त्यागपत्र पर हस्ताक्षर करने पर विवश किया और फिर उसको रूसी भूमि पर पकड़कर ले गये। अल्पकाल तक अलैकजैण्डर रूस में रोका गया और तब तक रोका गया जब तक कि यह विश्वास न हो गया कि रूसी दल ने बल्गेरिया में पूर्णरूप से शक्ति प्राप्त कर ली है। तब उसको आस्ट्रिया जाने की आज्ञा दे दी गयी। उसको अविलम्ब बल्गेरिया बुलाया गया। वह अत्यधिक स्वागत प्राप्त करने के लिए लौटा और उसने जबकि वह अत्यन्त सर्वप्रिय बन गया था अपनी दुर्बलता के क्षण में; प्रकटतः रूसी विरोध से पराभूत होकर, सिंहासन त्याग दिया (७ सितम्बर, १८८६)। परिस्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। विरोधी नीतियों का समर्थन करते हुए दो दल एक दूसरे का सामना कर रहे थे। एक रूस समर्थक था। उसका विश्वास था कि बल्गेरिया को कोई राजा, जिसे जार चुन दे, स्वीकार कर लेना चाहिए। दूसरा दल राष्ट्रीय और स्वतन्त्र था। वह **'बल्गेरिया बल्गेरिया निवासियों के लिए है'** के नारे पर डटा हुआ था। दूसरे दल ने शीघ्र ही सत्ता हस्तगत कर ली। सौभाग्य से इस दल को स्टैम्बुलोफ जैसा नेता प्राप्त था जो कि वहीं का निवासी, एक सराय के स्वामी का पुत्र शक्तिशाली, बुद्धिमान तथा असाधारण दृढ़ता, लोच एवं साहस का व्यक्ति था। उसके द्वारा उस राज्य पर पुनः रूसी नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न विफल कर दिये गये और एक नया राजा प्राप्त कर लिया गया। यह सैक्सकोबर्ग का राजकुमार फर्डीनैण्ड था जिसकी आयु २६ वर्ष थी और ७ जुलाई १८८७ को सोब्रांजे ने सर्वसम्मति से चुना था। रूस ने इस कार्य का विरोध किया तथा किसी भी शक्ति ने फर्डीनैण्ड को मान्यता नहीं दी।

सैक्सकोबर्ग का फर्डीनैण्ड

स्टैम्बुलॉफ का अधिनायकत्व

बल्कानी राज्यों के इतिहास में जितने राजनीतिज्ञ विकसित हुए उनमें स्टैम्बुलॉफ सर्वाधिक प्रभावशाली था। वह बल्गेरिया को आत्म-निर्भर बनाये रखने में सफल रहा। अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में फर्डीनैण्ड उस पर विश्वासपूर्वक निर्भर रहा और वास्तव में उसी के कारण सिंहासनासीन बना रहा। उसने 'बल्गेरिया के बिस्मार्क' होने की झूठी एवं विनम्रताहीन उपाधि धारण कर ली उसकी कार्यपद्धतियाँ एक से अधिक रूपों में उसके ट्यूटनवंशीय मूलानुकरण-स्रोत अर्थात् बिस्मार्क के समान थीं। सात वर्ष तक वह बल्गेरिया का प्रायः अधिनायक (तानाशाह) बना रहा। रूसी षड्यन्त्र होते रहे। उसने उनको निर्दयता के साथ दबाया। उसका एक मूल सिद्धान्त था **'बल्गेरिया बल्गेरिया निवासियों के लिए।'** उसका शासन आतंक का, स्वतन्त्रताओं के दमन का, सिद्धान्तहीनता का तथा स्वदेश प्रेमोन्मुख था। उसका उद्देश्य तुर्की नियंत्रण की भाँति बल्गेरिया को रूसी नियंत्रण

से भी मुक्त करना था। उसके अधीन बल्गेरिया की जनसंख्या तथा धन सम्पत्ति में अभिवृद्धि हुई। सेना को आधुनिक उपकरण प्राप्त हुए। सार्वभौम सैनिक प्रशिक्षण की स्थापना हुई। व्यापार को प्रोत्साहित किया गया। रेल की सड़कें बनायी गयीं। सार्वजनिक शिक्षा प्रारम्भ की गयी और सोफिया, जो कि एक भद्दा एवं गन्दा तुर्की गाँव था, यूरोप की एक आकर्षक राजधानी बना दी गयी।

स्टैम्बुलॉफ का बध

परन्तु स्टैम्बुलॉफ ने बहुत से शत्रु बना लिये थे और फलतः १८९४ में वह सत्ताच्युत हो गया। अगली वर्ष सोफिया की सड़कों पर उसका अभद्रता से बध कर दिया। परन्तु उसने अपना कार्य पूर्णरूप से कर लिया था। और आज भी उसी का कार्य बल्गेरिया के जीवन का आधार है। तुर्की संप्रभुता केवल नाममात्र की थी और वह भी दीर्घकाल तक नहीं बनी रह सकती थी। अन्त में मार्च १८९६ में राजा के रूप में फर्डीनैण्ड का निर्वाचन महान् शक्तियों द्वारा मान लिया गया। इसकी पूर्ववर्ती वर्षे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही थीं। इन वर्षों में बल्गेरिया की एकता पूर्णरूप से स्थापित हो चुकी थी, उसकी संस्थाओं की जड़ जम चुकी थी, वह स्वतन्त्र कार्य करने तथा आत्मनिर्भर रहने का अभ्यस्त बन चुका था। वे वर्षें विद्यालयों, रेल की सड़कों, सेना आदि के आधुनिक साधनों से राष्ट्रीय जीवन को समृद्धशाली बनाने के लिए प्रयुक्त हुई थीं। बल्गेरिया की जनसंख्या लगभग ४० लाख थी और उसकी राजधानी सोफिया थी उसका क्षेत्रफल लगभग ३८,००० वर्गमील था। वह मकदूनिया को मिलाना चाहता था[1] किन्तु वहाँ पर उसको बहुत से प्रतिपक्षियों का सामना करना था। वह तुर्की के साथ अपने नाममात्र के सम्बन्ध को समाप्त करने के लिए अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। यह अवसर १९०८ में प्राप्त हुआ। उस वर्ष ५ अक्टूबर को बल्गेरिया ने अपनी स्वतन्त्रता की उद्घोषणा कर दी और उसके राजा ने जार की उपाधि धारण कर ली। बल्गेरिया का परवर्ती इतिहास १९१२ तथा १९१३ के बल्कानी युद्धों के सम्बन्ध में अत्यन्त अच्छाई के साथ वर्णित किया जा सकता है।

१८७८ के पश्चात् रूमानिया तथा सर्बिया

१८७७ के रूसी-तुर्की युद्ध के प्रारम्भ में रूमानिया ने अपने को तुर्की से पूर्ण स्वतन्त्र उद्घोषित कर दिया। इस स्वतन्त्रता को सुल्तान तथा बर्लिन सम्मेलन की शक्तियों ने इस शर्त पर मान्यता प्रदान की कि वहाँ के सभी नागरिक कानूनी समानता का उपभोग करेंगे चाहे वे किसी भी धर्म के मानने वाले हों। यह शर्त यहूदियों के संरक्षणार्थ रखी गयी थी जिनकी संख्या पर्याप्त थी और जिनको इससे पूर्व राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।

१८८१ में रूमानिया ने अपने को **राज्य** उद्घोषित कर दिया और इसके पश्चात् वहाँ के राजा ने अपने को **नरेश चार्ल्स प्रथम** की उपाधि से विभूषित किया।

रूमानिया को राज्य उद्घोषित किया गया

राज-मुकुट प्लेवना में छीनी गयी तुर्की तोप के लोहे से बनाया गया ताकि वह उसके स्वतन्त्रता संग्राम के स्वरूप का सर्वदा स्मरण करा सके। रूमानिया ने प्रशा के आदर्श पर लगभग ५,००,००० की सेना का निर्माण किया। उसने रेल-पथ तथा महापथ बनाये तथा कृषि-सम्बन्धी विधान के द्वारा कृषकों की दशा को सुधारा।

---

1. बल्गेरिया देश को हिन्दी में पुल्लिग मानकर अनुवाद किया गया है।
—अनुवादक।

उसकी जनसंख्या लगातार बढ़ती रही है और इस समय (१९३८) सत्तर लाख से अधिक है। रूमानिया का क्षेत्रफल लगभग ५३,००० वर्ग मील है। प्रमुखतः कृषि प्रधान देश होते हुए भी, अभी विगत वर्षों में उसका उल्लेखनीय औद्योगिक विकास हुआ है। उसका व्यापार अन्य सभी बल्कानी राज्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। (१९३७) उसकी सरकार व्यवस्थापक सदनों सहित सांविधानिक राजतंत्र है। विगत वर्षों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न निर्वाचन पद्धति का सुधार का रहा है। यह निर्वाचन पद्धति प्रशा की त्रिवर्गीय पद्धति के समान है और जिसके अनुसार जनता के अल्पांश को ही प्रत्यक्ष मतदान का अधिकार प्राप्त है। १९०७ में कृषकों ने विद्रोह कर दिया। उन्होंने कृषि सम्बन्धी सुधारों की माँग की। जनसंख्या के ⁴⁄₅ से अधिक की जीविका का साधन कृषि थी और जनसंख्या लगातार बढ़ती रही थी। अतः प्रत्येक कृषक की भूमि उसी मात्रा में कम हो गयी। इस विद्रोह को दबाने के लिए १४०,००० सैनिकों की सेना की आवश्यकता पड़ी। पुनः व्यवस्था स्थापित करने के पश्चात् किसानों को कठिनतम भारों से मुक्त करने के उद्देश्य से मन्त्रिमण्डल ने कई विधेयक पुनः स्थापित एवं पारित कराये।

कृषि सम्बन्धी अशांतियाँ

१८७८ की **बर्लिन संधि** ने सर्विया की स्वतन्त्रता को भी मान्यता प्रदान की थी। उसने अपने को १८८२ में एक राज्य घोषित कर दिया। गत वर्षों में उसका इतिहास अशांति पूर्ण रहा है। १८८५ में उसने बल्गेरिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जिसमें उसको केवल अप्रत्याशित रूप से तथा बुरी भाँति पराजित होना था। आर्थिक नीति शोचनीय थी। सात वर्षों में ऋण सत्तर लाख से बढ़कर तीन सहस्र एक सौ बीस लाख फ्रैंक हो गया। **नरेश मिलान** के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कुख्यातियों ने राजतन्त्र को पूर्णरूप से असम्मानित कर दिया। १८८९ में उसको सिंहासन त्यागने के लिए विवश किया गया। और उसका बारह वर्षीय पुत्र, **अलैकजैण्डर प्रथम**, उसका उत्तराधिकारी हुआ। रानी ड्रैगा के साथ राजप्रसाद की आधीरात की एक क्रान्ति में उसका सपत्नीक वध कर दिया गया। नये नरेश पीटर प्रथम की स्थिति कई वर्षों तक अदृढ़ रही। १९१२ के बल्कान युद्ध से सर्विया के इतिहास का एक नया तथा महत्त्वपूर्ण इतिहास प्रारम्भ हुआ।

सर्बिया

१८३३ के पश्चात् यूनान

जनवरी १८३३ में बवेरिया नरेश लुई प्रथम का द्वितीय पुत्र **औटो** यूनान का **नरेश** हुआ। यूनान अत्यन्त निर्धन देश था। उसकी जनसंख्या लगभग ७५०,००० थी। वहाँ के निवासी पश्चिमी यूरोप के अर्थों में विधि और व्यवस्था के अभ्यस्त नहीं थे। यह छोटा सा राज्य था। इसकी सीमायें असन्तोषजनक थीं। इसमें थैसले सम्मिलित नहीं था जिसके सभी निवासी यूनानी थे। दीर्घकाल तथा असाधारण रूप से रक्तरंजित युद्ध ने इस देश को नष्ट कर दिया था। आंतरिक परिस्थितियाँ अराजकतापूर्ण थीं। लूटमार और डकैतियों की भरमार थी। ऋण विशाल था। ऐसे निराशापूर्ण साधनों से एक समृद्ध एवं प्रगतिशील राज्य का निर्माण किस प्रकार किया जावे ? यह समस्या थी।

औटो प्रथम का राज्यकाल

नरेश औटो ने १८३३ से १८६२ तक राज्य किया। बहुत से बवेरिया निवासियों ने उसके शासन में सहायता दी जो सैनिक तथा असैनिक सेवाओं में महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त थे। नये शासन की अप्रियता का प्राथमिक कारण यह जर्मन प्रभाव ही था। तो भी एक स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन के निर्माण का सूत्रपात किया गया। ऐथेन्स राजधानी बनायी गयी और वहाँ एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। पुलिस व्यवस्थित की गयी और एक राष्ट्रीय अधिकोष (बैंक) स्थापित किया गया। १८४४ में औटो को अपने निरंकुश राजतन्त्र को सांविधानिक राजतन्त्र में परिवर्तित करने की सहमति देने पर विवश कर दिया गया। एक द्विसदनात्मक संसद स्थापित की गयी जिसके प्रतिनिधि सर्वमताधिकार द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। तब यूनानियों की राजनीति शिक्षा प्रारम्भ हुई।

औटो का पतन

क्रीमिया के युद्ध से **पूर्वीय प्रश्न** पर पुनः विचार प्रारम्भ हो जाने से यूनान को आशा थी कि उसकी सीमाओं में वृद्धि हो जावेगी तथापि महान् शक्तियों का विचार इसके विपरीत था और उन्होंने उनको शान्त रहने पर विवश कर दिया। शासन ने यूरोपीय शक्तियों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया और अपने अधिकारों का आग्रह नहीं किया जोकि एक मूर्खतापूर्ण कार्यवायी होती। अस्तु वह अत्यन्त अप्रिय हो गया। इस कारण तथा निरंकुशता की प्रवृत्तियों के करण १८६२ में एक विद्रोह के औटो को सत्ताहीन कर दिया। वह कभी भी वापस न आने के लिये यूनान से चला गया।

आयोनियन द्वीप

एक डैनिश राजकुमार को जो कि डैनमार्क के तत्कालीन नरेश का द्वितीय पुत्र था, नया नरेश बनाया गया। नये नरेश, जार्ज प्रथम ने १८६३ से १९१३ तक राज्य किया। उसकी प्रियता को प्रारम्भ से ही सुदृढ़ करने के लिये यूनान राज्य को इंगलैण्ड ने आयोनियन द्वीप दे दिये जिन पर उसका १८१५ से अधिकार था। जबसे उसकी स्थापना हुई थी तब से यह उसकी प्रथम सीमा वृद्धि थी। १८६४ में एक नया संविधान लागू हुआ जिसने सीनेट को समाप्त कर दिया तथा एक मात्र सभा, बोल, के हाथों में संसदीय शक्ति न्यस्त कर दी। इस सभा का

थैसले का मिलाया जाना

निर्वाचन सर्वमतधिकार से होता था। इसमें १९२ सदस्य थे और उसकी कालावधि ४ वर्ष की थी। १८८१ में मुख्यतः इंगलैण्ड के प्रयत्नों द्वारा सुल्तान यूनान को थैसले देने पर सहमत हो गया। इस प्रकार एक दूसरी सीमा-वृद्धि हुई। यह र्बालिन सम्मेलन के इस वचन के अनुसार हुआ था कि यूनान की सीमा का सुधार होना चाहिये।

१८९७ में यूनान ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोपणा की जिसका उद्देश्य क्रीट को, जिसने तुर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था, हस्तगत करना था। यूनान सरलतापूर्वक हरा दिया गया और उसको तुर्की को थैसले के कुछ भाग देने पर विवश किया गया। साथ ही क्रीट को हस्तगत करने की योजना भी उसको छोड़नी पड़ी। शक्तियों की लम्बी बातचीत के पश्चात् सुल्तान की अधीनता में क्रीट द्वीप स्वशासित बना दिया गया तथा वहाँ पर यूनानी नरेश के पुत्र राजकुमार जार्ज का प्रत्यक्ष

प्रशासन स्थपित किया गया, जो १९०६ तक वहाँ सत्तारूढ़ रहा। इस प्रकार यूनानी राजनीति में क्रीट की नयी समस्या ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया।

यूनान को आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं है। सैनिक सज्जा, रेलमार्गों के निर्माण, तथा नहरों के खोदने के कारण उसका ऋण अत्यधिक बढ़ गया है तथापि उसकी जनसंख्या बढ़ गयी है और सार्वजनक शिक्षा की दिशा में अधिक प्रगति हो गयी है। लाखों यूनानी यूनान राज्य के बाहर रहते हैं। जो लोग यूनान में रहते हैं वे उनको अपने में सम्मिलित करना चाहते हैं। सर्बिया, बल्गेरिया तथा यूनान की प्रतिस्पर्धाओं का मिलन मकदूनिया में हुआ जिसको इसमें से प्रत्येक देश चाहता था तथा जिसमें इन सभी जातियों के प्रतिनिधि इस प्रकार मिले-जुले रूप से निवास करते थे कि उनको पृथक नहीं किया जा सकता था। मकदूनिया की समस्या महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा के कारण तथा उस क्रान्ति के कारण जो १९०८ में स्वयं तुर्की में हो गयी और भी अधिक जटिल बन गयी।

यूनान के बाहर रहने वाले यूनानी

तुर्की की क्रान्ति

१९०८ की ग्रीष्म ऋतु में पूर्वीय प्रश्न का एक नया तथा आश्चर्यजनक पहलू प्रारम्भ हुआ। जुलाई में द्रुत, प्रभावपूर्ण तथा शान्तिपूर्ण क्रांति हुई। 'युवक तुर्क' नाम के एक क्रांतिकारी तथा सांविधानिक दल ने, जिस पर पाश्चात्य यूरोपीय राजनीति के सिद्धान्तों का प्रभुत्व था, शासन पर नियन्त्रण स्थापित करके कूटनीतिज्ञों तथा यूरोप की जनता को आश्चर्य में डाल दिया। इस दल में वे लोग सम्मिलित थे जिनको सुल्तान अब्दुल हामिद द्वितीय के निरंकुश शासन ने तुर्की के बाहर निकाल दिया था और जो विदेशों में, मुख्यतया पैरिस में रहते थे। इसमें वे लोग भी सम्मिलित थे जिन्होंने अपने विचारों को गुप्त रखा था और जो अभी भी तुर्की में रहते हुए निष्कासन से बच सके थे। इसके सदस्य निरंकुश, भ्रष्टाचारपूर्ण तथा अकार्यकुशल शासन को समाप्त करना तथा उसके स्थान में आधुनिक उदार व्यवस्था करना चाहते थे जो कि विविध एवं समग्र सुधारों के द्वारा तुर्की को प्रगतिशील राष्ट्रों में स्थान दिला सके। मौन रूप से अपना षड़यन्त्र रचकर तथा उल्लेखनीय चतुराई से उन्होंने तुर्की सेना को, जो कि अब तक सुल्तान की शक्ति की ठोस संरक्षक रही थी, इस षड़यन्त्र में सम्मिलित कर लिया। तब एक उपयुक्त अवसर पर सेना ने सुल्तान की आज्ञा मानना अस्वीकार कर दिया और षड्यन्त्रकारियों ने टेलीफून से अविलम्ब तथा अनिवार्य रूप से यह माँग की कि वह १८७६ के संविधान को पुनः लागू कर दे। यह संविधान उस वर्ष सुल्तान ने केवल एक संकट को टालने के लिये प्रदान किया था और शीघ्रता से अपना उद्देश्य सिद्ध करने के पश्चात् उस संविधान को अविलम्ब निलम्बित कर दिया था और तब से यह निलंबित ही रहा था। सुल्तान ने सेना का अनिष्ट सूचक पक्ष परिवर्तन देखकर 'युवक तुर्क' की माँग को तुरन्त मान लिया और २४ जुलाई को १८७६ का संविधान पुनः लागू कर दिया और संसद के निर्वाचनों के लिये आदेश दे दिया। संसद का अधिवेशन नवम्बर में होना चाहिये था। इस प्रकार एक घृणित अत्याचारपूर्ण शासन तत्क्षण समाप्त हो गया।

युवक तुर्क

संविधान का पुनः लागू होना

इसे बिना किसी अतिशयोक्ति के एक अवैधानिक शासन परिवर्तन कहा जा सकता है। इस बार यह शासन परिवर्तन किसी भावी निरंकुश शासक ने नहीं किया था वरन् सेना ने किया था जो कि निरंकुश शासन अथवा राजसत्ता की प्राय: प्रमुख अविलम्ब होती है और जो इस समय प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति का मुख्य उपकरण थी। इस सैनिक क्रांति का जो कि पूर्णत: सफल एवं लगभग रक्तहीन थी सुल्तान के सम्पूर्ण राज्य में सर्वत्र अविश्वसनीय उत्साह के साथ स्वागत हुआ। विद्रोही तथा सैनिक, मुसलमान तथा ईसाई, यूनानी, सर्बिया निवासी, बल्गेरिया निवासी, अल्बानिया निवासी, अर्मीनिया निवासी, और तुर्क सभी ने असहनीय परिस्थितियों से मुक्त के उपलक्ष में होने वाले मोदपूर्ण उत्सव में एक साथ भाग लिया। सर्वाधिक आश्चर्यजनक विशेषता थी जातीय एवं धार्मिक घृणाओं का पूर्ण तिरोभाव जिन्होंने अब तक तुर्की साम्राज्य को एक सिरे से दूसरे सिरे तक विच्छिन्न एवं नष्ट कर दिया था। आधुनिक इतिहास में यह क्रान्ति अत्यधिक भ्रातृभाव पूर्ण आन्दोलन सिद्ध हुई। सार्वभौम पुनर्मिलन के दृश्य प्रभावशाली और स्मरणीय थे। जिस सरलता तथा आकस्मिकता से यह आश्चर्यजतक परिवर्तन सम्पन्न हुआ था उसने अब्दुल हमीद द्वितीय के शासन तथा पद्धतियों के प्रति उसके सभी प्रान्तों और समस्त प्रजा की घृणा की सार्वभोमता को सिद्ध कर दिया।

इस आन्दोलन के लिये प्रत्यक्ष सर्वसम्मति

क्या यह एक नये काल का अथवा तुर्की साम्राज्य की समाप्ति का प्रारम्भ था? इस प्रश्न का परीक्षण कुछ आगे चलकर अधिक सुविधा से किया जा सकता है।

अध्याय ३४

रूस का जापान के विरुद्ध युद्धोन्मुख होना

अलैकजैण्डर प्रथम का राज्यकाल

रूसी विजएँ

नैपोलियन के पतन के समय रूस यूरोप में सबसे बड़ा राज्य था और एशियायी साम्राज्य के रूप में और भी अधिक बड़ा था। यह अविरल रूप से जर्मन संघ से होकर प्रशान्त महासागर तक फैला हुआ था। इसकी जन संख्या लगभग ४५,०००,००० थी। इसका यूरोपीय भूभाग लगभग २,०००,००० वर्गमील था। इसमें कई जातियाँ रहती थीं परन्तु प्रमुख जाति स्लैविक थी। इसमें यद्यपि कई धर्म थे तथापि दरबार और दो तिहाई से अधिक जनता का धर्म तथाकथित **यूनानी कट्टर ईसाई धर्म था।** यद्यपि कई भाषाएँ बोली जाती थीं तथापि मुख्य भाषा रूसी थी। रूसियों ने कई दिशाओं में कई जातियों को जीता था। अठारहवीं शती के अन्त में तीन विभागों में और उससे भी अधिक १८१५ में उसने पुराने पोलैण्ड राज्य का पर्याप्त भाग ले लिया था। यहाँ के निवासी **पोलिश** नामक भिन्न भाषा बोलते थे और एक दूसरे धर्म, **रोमन कैथोलिक**, के अनुयायी थे। बाल्टिक प्रान्तों एस्थोनिया, लिवॉनिया, और कोरलैण्ड में उच्चवर्ग के निवासी जर्मनवंशीय थे और जर्मन भाषा बोलते थे जबकि अधिकांश कृषक जनता फिन और लिथूनियायी थी। यहाँ के सब निवासी ल्यूथर के अनुयायी थे। कुछ समय पूर्व स्वीडन से फिनलैण्ड जीत लिया गया था। वहाँ पर **स्वीडिश** तथा **फिन** भाषाएँ बोली जाती थीं और ल्यूथर का धर्म माना जाता था। पूर्व और दक्षिण में एशियायी निवासी थे जिनमें से अधिकांश का धर्म था **इस्लाम।** कुछ वर्गों में बहुत से यहूदी भी थे।

कुलीन लोग

ये सभी भिन्न तत्व एक ही सम्प्रभु **जार** की प्रजा होने के कारण एक दूसरे से मिले हुये थे। जार एक निरंकुश नरेश था। उसकी शक्ति असीमित थी। रूसी समाज में दो वर्ग थे—कुलीन और कृषक। कृषकों में अधिकांश जार और कुलीनों के दास थे। कुलीन वंशों की संख्या लगभग १४०,००० थी। कुलीन लोग सेना तथा असैनिक सेवाओं में पदासीन थे। वे बहुत से करों से मुक्त थे और कुछ एकाधिकारों का उपभोग करते थे।

कृषक वर्ग

अपने दासों (**सर्फों**) पर उनके विस्तृत तथा निरंकुश अधिकार थे। वे उनसे अपनी आज्ञाओं का पालन कोड़ों के द्वारा तथा साइबेरिया के निर्वासन द्वारा मनवाते थे। धनी एवं शिक्षितों का मध्यवर्ग, जो कि अन्य यूरोपीय देशों में अधिक महत्त्वपूर्ण था, रूस मे प्राय: नहीं था। रूस एक ऐसा कृषि प्रधान देश था जिसकी कृषि अत्यधिक पुरानी रीति की तथा अकुशल थी। यह दासों तथा दासों से कुछ ही अधिक अच्छे और धनवान कृषकों का राष्ट्र था। यह वर्ग दीन, अशिक्षित, आलसी तथा अधिक मदिरा पीने वाला था। मीर अथवा ग्रामसमाज में साम्यवाद का प्रारम्भिक स्वरूप तथा सीमित स्वशासन विद्यमान था।

अलैकजैण्डर प्रथम

इस विशाल तथा असुसज्जित राष्ट्र पर सब रूसियों का स्वेच्छाचारी नरेश **जार** शासन करता था। जो निरंकुश था और **यूक्रेसों** अथवा आदेशों के रूपों में अभिव्यंजित जिसके निर्णय उस देश की विधियाँ थीं। १८१५ में यहाँ का शासक **अलैकजैण्डर प्रथम** (१८०१ से १८२५ तक) था जिसकी आयु अड़तीस वर्ष की थी।

वह यूरोप के सिंहासनासीन नरेशों में सबसे अधिक प्रबुद्ध (उदार) शासक था। १८१४ तथा १८१५ में होने वाली यूरोपीय पुनर्व्यवस्था में उसने समग्र रूप में उदारता का परिचय दिया था। उसने विजित फ्रांसीसियों के लिये उदार शर्तों का समर्थन किया था। उसने इस बात का आग्रह किया था कि **लुई अठारहवाँ** फ्रांसीसियों को एक संविधान प्रदान करे। उसने जर्मन जाति के लिये वृहत्तर राजनीतिक जीवन को प्रोत्साहित किया था।

उसने अपनी उदार प्रवृत्तियों को अपनी **पोलनीति** में और भी अधिक निर्भ्रान्ति रूप में प्रदर्शित किया। वियना के सम्मेलन में वारसा की विशाल रियासत (ग्रांड डची) के अधिकांश भाग को प्राप्त करने में वह सफल रहा जिसे अब उसने **पोलैण्ड राज्य** में परिवर्तित कर दिया। इस राज्य में ३,०००,००० निवासी थे और पुराने पोलैण्ड राज्य से इसका क्षेत्रफल छठवें भाग से कम था परन्तु इसमें पोलैण्ड की राजधानी **वारसा** स्थित थी। भविष्य में यह एक स्वतन्त्र राज्य होना था न कि रूस का एक भाग। रूस और पोलेण्ड का एकमात्र सम्बन्ध था **शासक**। रूस का **जार** पोलैण्ड का नरेश होना था। अलैकजैण्डर ने इस राज्य को एक संविधान प्रदान किया जिसने एक संसद की स्थापना की। प्रकाशन (प्रेस) तथा धर्म की स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया। यहाँ की राजभाषा पोलभाषा होनी थी। प्रशा अथवा आस्ट्रिया की अपेक्षा इस समय पोलैण्ड में अधिक स्वतन्त्र संस्थाएँ थीं। फ्रांस अथवा इंगलैण्ड की अपेक्षा यहाँ अधिक व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त था। प्रत्यक्षत: अलैकजैण्डर अपने पोल-प्रयोग को वैसे ही सुधारों को रूस में भी पुन: स्थापित करने की भूमिका समझता था।

वह प्रतिक्रियावादी बनता है

परन्तु अलैकजैण्डर का चरित्र अस्थिर था। वह सरलता से प्रभावित होने वाला, परिवर्तनशील एवं हतोत्साहित होने वाला व्यक्ति था। मैटरनिख ने उसको उसकी उदारता से डराने का अपना विशेष व्यवसाय बना लिया जोकि उसकी सुदृढ़ प्रतिक्रिया की नीति के मार्ग में यूरोप में मुख्य बाधा उपस्थित करने वाला व्यक्ति था। उसने अलैकजैण्डर के मूलत: असाहसपूर्ण दब्बू स्वभाव पर सतत् प्रभाव डाला और केवल तीन वर्षों में ही उसके विचारों में परिवर्तन हो गया।

तब अलैकजैण्डर मैटरनिख की हस्तक्षेप की नीति का प्रबल समर्थक बन गया जो कि विभिन्न सम्मेलनों में अभिव्यंजित होती रहती थी तथा जिसने मनुष्यों में **पवित्र संघ** के नाम को एक अशुभ शब्द बना दिया था। वह अपने पोल-प्रयोग से निराश हो गया। और वह उन स्वतन्त्रताओं में हस्तक्षेप करने लगा जो उसने स्वयं प्रदान की थीं। वह अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी बनता चला गया और जब दिसम्बर १८२५ में उसकी मृत्यु हुई तब उसने ऐसा प्रशासन अपने पीछे छोड़ा जिस पर उसके प्रारम्भिक वर्षों के प्रशासन में परिव्याप्त भावना से पूर्णतः विरुद्ध भावना का प्रभुत्व था।

निकोलस प्रथम का राज्य

उसका उत्तराधिकारी उसका भाई निकोलस प्रथम हुआ जिसका तीस वर्षीय (१८२५—१८५५) राज्य घटनापूर्ण रहा। यह राज्य देश में तथा विदेश में पूर्ण-रूपेण निरंकुशतावादी था। वह तीस वर्षों तक यूरोपीय राजतन्त्र का महान् मूलाधार रहा। उसकी शासन प्रणाली क्रूर तथा अपरिवर्तनशील दमन की थी जिसके साधन थे पाशविक पुलिस तथा सुव्यवस्थित भाव प्रकाश निरोधक विभाग (Censor)। किसी भी प्रकार के उदारवादियों को अत्यन्त कठोर दण्ड दिये गये। सर्वाधिक अहानिकर शब्द के लिए बिना किसी प्रारम्भिक न्यायिक कार्यवाही के साइबेरिया को निष्कासित कर दिया था। सहस्रों व्यक्ति रूस के कारागारों में पड़े हुये यातनाएँ भोग रहे थे। राजनीतिक प्रपीड़न के साथ अब धार्मिक प्रपीड़न भी होने लगा।

निकोलस प्रथम (१८२५–१८५५)

व्यवस्थित दमन

निकोलस की विदेशी नीति की भी यही विशेषताएँ थीं और उसने यूरोपीय महाद्वीप में सर्वाधिक पाशविक निरंकुश शासक के रूप में उससे सर्वत्र घृणा उत्पन्न कर दी थी। उसने १८३०–३१ के पोल विद्रोह का दमन किया, अलैकजैण्डर प्रथम द्वारा प्रदत्त संविधान को समाप्त कर दिया और पोलैण्ड को, उसके पन्द्रह वर्ष मात्र के इतिहास को समाप्त करते हुए रूस में मिला लिया। उसने तुर्की के विरुद्ध दो पूर्व वर्णित युद्ध लड़े—एक १८२८-२९ और दूसरा १८५३-५५ में। १८४९ में उसने हंगरी के क्रान्तिकारियों को दमन करने के लिये निर्णयात्मक हस्तक्षेप किया। क्रीमिया के युद्ध के मध्य में उसका देहावसान हो गया। यद्यपि वह तब तक नहीं मरा जब तक कि यह स्पष्ट नहीं हो गया कि १८०२ में मास्को से नेपोलियन के पलायन से उसके देश का अत्यन्त बढ़ा हुआ सम्मान पूर्णतः नष्ट हो गया था। यह केवल एक पराजय ही नहीं रहा वरन् उसने आँखें खोलने का भी काम किया। शासन उतना ही अयोग्य एवं अशक्त सिद्ध हुआ जितना कि वह प्रतिक्रियावादी था। यह बात स्पष्ट हो गयी कि शासन अत्यन्त दोषपूर्ण था और यदि उसे उन्नति करनी हो तो उसका सुधार होना आवश्यक था।

उसकी विदेशी-नीति

अलैकजैण्डर द्वितीय का राज्यकाल

अलैकजैण्डर द्वितीय ने जो इसके पश्चात् सिंहासनासीन हुआ और जिसने १८५५ से १८८१ तक शासन किया, स्पष्ट रूप से समझ लिया कि परिवर्तन का

समय आ गया था । सुलझे हुए विचारों का होने तथा रूसियों के जीवन की दशाओं के सुधार का इच्छुक होने के कारण उसने कुछ वर्षों तक सुधारवादी नीति का अनुसरण किया । उसने प्रकाशन की स्वतन्त्रता के नियन्त्रण को ढीला कर दिया । यात्रा तथा विश्वविद्यालयों पर लगे हुये प्रतिबन्धों में से बहुत से प्रतिबन्धों को हटा दिया । उसने अपना ध्यान दासों के प्रश्न पर विशेषरूप से लगाया ।

अलैकजैण्डर द्वितीय (१८५५-१८८१)

प्रायः समस्त और व्यावहारिक रूप से रूस की कृषि योग्य भूमि का ९/१० भाग सम्राट् के परिवार तथा एकसौ चालीस हजार कुलीनों के वंशों के अधिकार में था । अस्तु प्रायः वृहत् भूक्षेत्रों अर्थात् बड़ी-बड़ी रियासतों पर इन लोगों का स्वामित्व था । यह भू-स्वामित्व एक लघु अल्पसंख्यक वर्ग का था । इसको रूस के लाखों व्यक्ति जोतते थे जोकि दास (सर्फ) थे । सम्राट राजवंश के लगभग २३-०००,००० दासों को सरलता से मुक्त कर सकता था क्योंकि अपने दासों के प्रति जैसा चाहे वैसा व्यवहार करने के राज्य के अधिकार के विरुद्ध कोई भी व्यक्ति आपत्ति नहीं कर सकता था । अतः राजवंश के दासों को १८५९ से १८६६ तक की गयी विधियों द्वारा मुक्त किया गया । परन्तु **मुक्ति की राजघोषणा**, जिसके कारण अलैकजैण्डर द्वितीय की वास्तविक ख्याति हुई, का सम्बन्ध भूमिपति कुलीनों के व्यक्तिगत दासों से था । इनकी संख्या भी लगभग २३,०००,००० थी । ये व्यक्तिगत भूस्वामी अपनी भूमि का कुछ भाग अपने लिए आरक्षित रख लेते थे और अपने दासों को साधारणतया सप्ताह में तीन दिन तक बिना वेतन के उस पर कार्य करने की आज्ञा देते थे । शेष भूमि दासों (सर्फों) को दे दी जाती थी जिस पर वे अपनी ओर से खेती करते थे । उससे उनको जितनी सहायता (जीविका) मिल सकती थी उतनी वे लेते थे । वास्तव में उससे उनको जीवन यापन के लिये पर्याप्त जीविका प्राप्त नहीं होती थी । सर्फ लोग वास्तविक अर्थ में **दास** नहीं थे । उनको पृथक रूप से बेचा नहीं जा सकता था परन्तु उनका सम्बन्ध भूमि से होता था और अपने स्वामी की सहमति के बिना वे उस (भूमि) को छोड़ नहीं सकते थे और यदि उनका स्वामी अपनी सम्पदा (रियासत) को बेचता तो वे नये स्वामी को हस्तान्तरित कर दिये जाते थे । इसके अतिरिक्त भूस्वामी का अपने दासों (सर्फों) पर प्रायः असीमित अधिकार होता था । उनको कोई भी ऐसे अधिकार प्राप्त नहीं थे जो उनके स्वामी को व्यवहार में अवश्य स्वीकार्य हों । यह कहना अनावश्यक है कि यह व्यवस्था उस समय के लोगों के नैतिक विचारों (अंतःकरण) को आघात पहुँचाती थी ।

तत्कालीन भू-व्यवस्था

दासत्व की समस्या

तीन मार्च १८६१ को **मुक्ति की राजघोषणा** प्रकाशित की गयी । इसने सम्पूर्ण साम्राज्य के दासत्व भू-दासत्व को समाप्त कर दिया । इसके कारण अलैकजैण्डर को **जार मुक्तिदाता** की जनप्रिय उपाधि मिली । इस घोषणा ने **दासों** को केवल स्वतन्त्र व्यक्ति ही घोषित नहीं किया वरन् इसने भूमि के स्वामित्व की अत्यधिक कठिन समस्या को सुलझाने का भी प्रयत्न किया । जार ने यह अनुभव किया कि दासों को केवल स्वतन्त्रता देने तथा सम्पूर्ण भूमि को कुलीनों के अधिकार में रहने देने का अर्थ होगा एक विशाल निर्धन श्रमिक वर्ग का निर्माण जिसके

मुक्ति की राजघोषणा

पास कोई भी सम्पत्ति नहीं होगी तथा जो उसी हेतु शीघ्र ही सम्भवत: कुलीनों पर आर्थिक रूप से निर्भर हो जावेगा और स्वतन्त्रता का दान केवल उपहास का विषय बन जावेगा। साथ ही कृषक लोगों का दृढ़ विश्वास था कि जिस भूमि को उन्होंने तथा उनके पूर्वजों ने सदियों से जोता, बोया तथा अपनी जीविका का साधन बनाया है उसके वे अधिकृत स्वामी हैं और इस बात ने कि भूस्वामी उस भूमि के वैध स्वामी थे उनके विचारों को परिवर्तित नहीं किया। बिना भूमि के उनको स्वतन्त्रता देना तथा उस भूमि को कुलीनों के अधिकार में रहने देने का जो कि उसको अपने पास रखना चाहते थे, इस आधार पर तीव्र विरोध होगा कि उनकी दशा सदा की अपेक्षा खराब बनाई जा रही है। इसके प्रतिकूल उनको स्वतन्त्रता के साथ भूमि देने का अर्थ होगा कुलीनों के वर्ग का सर्वनाश जो राज्य के लिए आवश्यक समझे जाते थे। हितों के इस संघर्ष का परिणाम हुआ एक समझौता (मध्यमार्ग) जो किसी को भी मान्य नहीं था परन्तु वह कृषकों की अपेक्षा कुलीनों का अधिक हितसाधक था।

भूमि का बँटवारा

भूमि को दो भागों में विभाजित किया गया। एक भाग भूस्वामी के पास रहेगा और दूसरा कृषकों को वैयक्तिक रूप में अथवा ग्राम समाज या **मीर** के सदस्यों के रूप में सामूहिक रूप में, जिसके वे सदस्य थे, मिलेगा। परन्तु यह उनको एक साथ और पूर्णरूप से नहीं दिया गया। कृषकों को अथवा गाँव को उस भूमि के लिये जो उनको दी गयी थी कुछ देना था। कृषकों की दशा ऐसी नहीं थी कि वे कुछ दे सकें। अत: राज्य उनको धन देगा जिसे वह किसान अथवा **मीर** से सुविधाजनक किश्तों में पुन: प्राप्त करेगा। ये किश्तें ४९ वर्षों तक चालू रहेंगी और तब **मीर** उस भूमि का **पूर्ण स्वामी** हो जावेगा जो उसने प्राप्त किया है।

कृषकों को निराशा

इस व्यवस्था से कृषकों को महान् निराशा हुई। उनकी नवार्जित स्वतन्त्रता भूमि के विभाजन की इस रीत के कारण एक संदिग्ध वरदान प्रतीत होने लगी। वास्तव में वे यह नहीं समझ सके कि इस परिवर्तन से वे लाभान्वित हो रहे हैं या नहीं। वैयक्तिक स्वातंत्र्य का अधिक अर्थ नहीं होगा जबकि जीवकोपार्जन सुगम होने की अपेक्षा कठिनतर हो गया था। कृषक भूमि को अपनी समझते थे परन्तु राज्य ने भूमि के एक भाग को सदा के लिए भूस्वामियों की प्रत्याभूति कर दी और यह उद्घोषणा की कि जो भूमि कृषकों को दी गयी है उसका उनको मूल्य देना होगा। कृषकों को यह केवल डकैती जान पड़ी। साथ ही जब विभाजन हुआ तब उन्होंने देखा कि मुक्ति के पूर्वकाल की अपेक्षा जब उनको अपने प्रयोग के लिए कम भूमि प्राप्त हुई और राज्य के द्वारा उन्हें भूस्वामियों को उस भूमि के मूल्य से अधिक देना था जो उनको प्राप्त हुई थी। अस्तु, **मुक्ति की राज** घोषणा ने कृषकों को शान्ति अथवा समृद्धि प्रदान नहीं की। जनसंख्या की विशाल वृद्धि तथा फलस्वरूप भूमि पर अधिक भार पड़ने से अगले ५० वर्षों में भूमि की समस्या अधिकाधिक तीव्रतर होती चली गयी। रूसी कृषक आवश्यक रूप में प्राय: भुखमरी से पीड़ित रहता था।

भूमि की समस्या का समाधान नहीं हुआ

अब दासों की मुक्ति अमिश्रित वरदान नहीं दीख पड़ी। तो भी रूस ने इस असमर्थनीय बुराई को दूर करके दूसरे राष्ट्रों के सम्मान में नैतिक लाभ अवश्य प्राप्त

किया। कम से कम सिद्धान्ततः प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र था। साथ ही प्रशा और आस्ट्रिया के कृषकों की स्वतन्त्रता के समय की अपेक्षा रूसी कृषक, यद्यपि सुजीवन-गायन नहीं कर रहा था, तो भी अधिक अच्छी दशा में था।

गृह-सुधार

अलेकजैण्डर द्वितीय के राज्यकाल का सबसे बड़ा कार्य था **दासता की समाप्ति** परन्तु जनसाधारण के उत्साह के इस काल की कई उदारतापूर्ण विधियों में से यह एक विधि थी। आंशिक स्थानीय स्वराज्य प्रदान किया गया, न्यायिक व्यवस्था में सुधार किये गये जो कि यूरोप तथा संयुक्त राज्य की व्यवस्थाओं के अध्ययन पर आधारित थे, प्रकाशन के निरोध (Censor) में कमी की गयी और शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं में कुछ विकास हुआ।

सुधार काल का अन्त

तथापि यह सुधारों का आशाजनक काल शीघ्र ही समाप्त हो गया और प्रतिक्रिया का काल प्रारम्भ हुआ जो कि अलैकजैंडर के राज्य काल के परवर्ती अर्द्ध-भाग की विशेषता थी और जिसकी परिणति १८८१ में उसके वध में हुई। इस परिवर्तन के कई कारण थे : नरेश का एक परिवर्तनशील चरित्र जो अपने कार्यों से ही भयभीत हो गया था, बहुसंख्यकों की निराशा की अनुभूति जो कि प्रसन्नता तथा न्याय की सहस्राब्दी की आशा किये हुए थे परन्तु जो उनको प्राप्त नहीं हुई तथा अधिकार प्राप्त एवं रूढ़िवादी वर्गों की अभी ऊपर वर्णित की गयी विधियों के प्रति तीव्र घृणा।

१८६३ का पोल-विद्रोह

ठीक इसी समय, जबकि सम्राट् का विचार बदल रहा था और जनमत इस अनिश्चित तथा परिवर्तनशील दशा में था एक ऐसी घटना घटित हुई जिसने प्रति-क्रियावादी शक्तियों को अत्यधिक बल प्रदान किया। यह घटना थी **पोलैण्ड का विद्रोह**। १८३१ में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के प्रयत्न की असफलता के पश्चात् पोल लोग शान्त रहे थे परन्तु यह शान्ति निराशा की शान्ति थी। जब तक निकोलस प्रथम जीवित रहा उनके ऊपर अत्यधिक कठोरता से शासन किया गया और अपने बन्धनों को तोड़ फेंकने की असम्भवता के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं सूझा। परन्तु अलैकजैंडर द्वितीय के सिंहासनासीन होने से उनमें अपेक्षाकृत अच्छी दशाओं की आशा उत्पन्न हो गयी। राष्ट्रीय भावना पुनः जागृत हो गयी जिसको अन्यत्र उसी भावना की सफलता से अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। इटली निवासियों की आशा अभी अभी पूरी हुई थी—इटली राष्ट्र का निर्माण हो गया था जो कि पूर्णतः उनके प्रयत्नों के कारण नहीं हुआ था वरन् विदेशी शक्तियों की सहायता से हुआ था। क्या पोल लोग भी उतनी ही आशा नहीं रखते थे। अलैकजैंडर एक क्षण के लिए भी पोलों की इस प्रिय भावना को, कि स्वतन्त्र हो जावें नहीं मान सकता था। उसने उन्हें जोरदार शब्दों में बतला दिया कि यह विकार निरर्थक स्वप्न था और "उनको अपनी स्वतन्त्रता के विचारों को सदा के लिए त्याग देना चाहिए—**यह अब और सर्वथा असम्भव है**"। इस समझौतावादी व्यवहार तथा दमनकारी विधियों ने पोल लोगों को इतना क्रुद्ध कर दिया कि वे हताश हो गये। अन्त में १८६३ में स्वतन्त्रता के उद्देश्य से विद्रोह प्रारम्भ हो गया। यह विद्रोह निर्दयता तथा कठोरता के साथ दबा दिया गया। पोल लोगों की एक मात्र आशा थी विदेशी हस्तक्षेप परन्तु इस सम्बन्ध में उनको पूर्ण

निराशा हुई। इङ्गलैंड, फ्रांस तथा आस्ट्रिया ने उनके पक्ष में तीन बार हस्तक्षेप किया किन्तु केवल कूटनीतिक पत्रों द्वारा। उन्होंने अपने पत्रों पर शक्ति प्रयोग का प्रदर्शन करके वल देने का प्रयास नहीं किया। रूस ने यह देखकर तथा प्रशा का समर्थन प्राप्त होने के कारण उनके हस्तक्षेप को अशिष्टता समझा और अपने प्रतिशोध लेने की तैयारी की। जो दण्ड उसने दिया वह भयानक था।

रूसीकरण की नीति

रूसीकरण की प्रक्रिया सवल रूप से प्रयुक्त की गयी। अधिकारियों की लिखा-पढ़ी तथा विश्वविद्यालयों के आचार्यों के अध्यापन-भाषणों के लिये रूसी भाषा निर्धारित की गयी तथा पोल भाषा का प्रयोग गिरिजाघरों, विद्यालयों, नाटकगृहों, समाचार-पत्रों एवं व्यावसायिक संकेतपटों में वास्तव में निषिद्ध कर दिया गया।

शीघ्र ही सर्वदा अनस्थिर एवं अनिश्चिवान् अलैकजैण्डर ने सुधारों के साथ अनिश्यात्मक खिलवाड़ करना पूर्णरूप से बन्द कर दिया और रूसी नरेशों की परम्परागत दमनकारी नीति का अनुसरण करने लगा। इस प्रतिक्रिया ने तीव्र असन्तोष को जन्म दिया और एक ऐसे आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसने स्वयं राजतन्त्र के अस्तित्व को भय उत्पन्न कर दिया। इस आन्दोलन का नाम था **शून्यवाद (निहीलिज्म)**।

शून्यवाद का उत्थान

शून्यवादी रूस के बौद्धिक वर्ग के थे। पाश्चात्य यूरोप के अपेक्षाकृत अधिक उग्रवादी दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों की पुस्तकों को पढ़कर तथा अपनी स्वयं की राष्ट्रीय संस्थाओं एवं दशाओं पर विचार करके वे अत्यन्त विघातक समालोचक बन गये। अति व्यक्तिवादी थे जोकि प्रत्येक मानवीय संस्था और रीति को तर्क की कसौटी पर कसते थे। थोड़ी सी रूसी संस्थाएँ ही इस कसौटी पर कसी जा सकती थीं। अतः शून्यवादियों ने उन सभी का खण्डन किया। उनका दृष्टिकोण प्रथमतः बौद्धिक चुनौती का, तत्पश्चात् सम्पूर्ण स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का था। शीघ्र ही सभी स्थापित संस्थाओं के प्रति घृणा पर समाजवाद आच्छादित हो गया। तत्कालीन समाज के स्थान पर, जिसको अवश्य समाप्त कर देना चाहिये, एक नया समाज निर्मित किया जाना था जो समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित हो। इस प्रकार इस आन्दोलन का नया पहलू प्रारम्भ हुआ। यह केवल आलोचनात्मक तथा विनाशात्मक ही नहीं रह गया। यह रचनात्मक भी हो गया। संक्षेप में सकारात्मक कार्यक्रम वाला एक राजनीतिक दल, एक छोटा किन्तु दृढ़ संकल्प एवं परिणामों से न डरने वाला दल, जो अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये किसी भी साधन को काम में ला सकता था **(अस्तित्व में आ गया)**।

शून्यवादी प्रचार

यह अनुभव करके कि जब तक लाखों कृषक अपनी वर्तमान व्यवस्था के प्रति जो कृषकों पर इतना भार डाल रही थी दुराग्रह पूर्ण मान्यता से मुक्त नहीं किये जाते है तब तक कुछ नहीं किया जा सकता था, इस दल ने अब रूस में एक शैक्षणिक अभियान प्रारम्भ करने का दृढ़ संकल्प किया। यह असाधारण आन्दोलन जोकि **'जनता में प्रवेश'** के नाम से पुकारा जाता था, १८७० के पश्चात् अत्यन्त सक्रिय हो गया। युवक तथा युवतियाँ जो सभी शिक्षित वर्ग के थे और जो प्रायः कुलीन वंशों के

थे दैनिक श्रमिक तथा कृषक बन गये जिससे वे जनता को कार्य करने को जागृत करने के लिये वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के ध्वंसावशेषों पर, जैसा कि उनके एक अभिलेख में लिखा था, 'श्रमिक वर्गों के साम्राज्य को स्थापित करने के लिये' उससे मिल सकें। उन्होंने आत्म-त्याग का, उस वीरता का परिचय दिया जो कि अत्यन्त हतोत्साहित करने वाली परिस्थितियों में कार्य करने वाले धर्म प्रचारक द्वारा प्रदर्शित की जाती हैं। अनुमान किया जाता है कि १८७२ और १८७८ के बीच में इस प्रचार में दो और तीन सहस्र के मध्य प्रचारक सक्रिय रूप से लगे हुये थे तथापि उनके प्रयत्न सफल नहीं हुये। कृषक वर्ग सन्तुष्ट नहीं तो दुराग्राही बना रहा। साथ ही यह शिक्षा और शंका-निवृत्ति का अभियान जहाँ कहीं भी सम्भव हुआ वहाँ सर्वव्यापी तथा विधिहीन पुलिस द्वारा भंग कर दिया गया। बहुत से कारावास में डाल दिये गये अथवा साइबेरिया को निष्कासित कर दिये गये।

आतंकवाद की नीति

शान्तिपूर्ण प्रचार असम्भव होने से हिंसात्मक प्रचार ही अधिक स्फूर्तिवान् एवं सक्रिय व्यक्तियों को एकमात्र विकल्प प्रतीत हुआ। चूँकि शासन जनता को अमानवोचित परतंत्रता में रखता था. अपने प्रत्येक शासन को प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध प्रयोग करता था जो किसी भी प्रकार के सुधार की माँग करता हो और संक्षेप में आतंक के द्वारा शासन करता था। इन सुधारवादियों ने आतंक की एकमात्र सम्भव विधि द्वारा इसका विरोध करने का दृढ़ विचार किया। आतंकवादी स्वभाव से रक्तपिपासु अथवा क्रूर नहीं थे। उनका एकमात्र यही विश्वास था कि रूस को उसकी दुर्गति से निकालने से कोई भी प्रगति अपेक्षाकृत अधिक सिद्धान्तहीन अधिकारियों से मुक्ति पाये बिना नहीं की जा सकती थी। उन्होंने अपने संगठन को पूर्णरूप से व्यवस्थित किया और हिंसाकाल में प्रविष्ट हो गये। उन उच्च अधिकारियों—पुलिस प्रमुखों और अन्यों—की हत्या करने के लिये बहुत से किन्तु प्रायः सफल प्रयत्न किये गये जिन्होंने अपने को विशेष रूप से घृणित बना लिया था। बदले में बहुत से क्रान्तिकारियों को फाँसी दी गयी।

सम्राट् के जीवनांत करने के प्रयत्न

अन्त में आतंकवादियों ने सम्पूर्ण घृणित, निरंकुश तथा दमनकारी व्यवस्था को समाप्त करने के एकमात्र उपाय के रूप में जार की हत्या करने का दृढ़ संकल्प किया। कई प्रयत्न किये गये। १८७९ में सोलीवीक नामक अध्यापक सम्राट् पर पाँच गोलियाँ चलायीं परन्तु एक भी सफल नहीं हुई। उसी वर्ष दिसम्बर में वह रेलगाड़ी, जिस पर क्रीमिया से सम्राट् वापस आता हुआ मान लिया गया था, रेल की पटरियों के बीच में बारूद की सुरंग रखकर उसी समय नष्ट कर दी गयी जबकि वह मास्को पहुँची। इसके पहले की एक रेलगाड़ी पर गुप्त रूप से राजधानी में पहुँच जाने के कारण अलैकजैण्डर बच गया। सेण्टपीटर्सबर्ग में शीतकालीन राजप्रसाद में भोजन करते समय फरवरी १८८० में उसको वध करने का अगला प्रयत्न किया गया। एक तीव्र विस्फोटक का विस्फोट किया गया। सर के ऊपर रक्षा सदन में सीधे दस सैनिक मारे गये और तिरेपन घायल हुये और भोजनागार का फर्श फट गया। जार बाल-बाल बच गया क्योंकि वह सामान्य समय पर भोजन करने नहीं गया।

इस समय तक सेण्ट पीटर्सबर्ग पर पूर्ण आतंक छा गया। अब अलैकजैण्डर

ने लारिस मैलीकॉफ को प्राय: अधिनायक नियुक्त किया। मैलीकॉफ ने अधिक दयालुतापूर्ण शासन प्रारम्भ करने का प्रयत्न किया उसने सैकड़ों बन्दियों को मुक्त कर दिया और बहुत-सों के मृत्यु-दण्ड को परिवर्तित कर दिया। उसने जार से अनुरोध किया कि वह जनता को शासन में कुछ भाग प्रदान करे क्योंकि उसका विश्वास था कि इससे शून्यवादी आन्दोलन नष्ट हो जावेगा जोकि निरंकुशता के दोषों से पूर्ण एवं विधिहीन शासन व्यवस्था वाले राष्ट्र के असन्तोष की हिंसापूर्ण अभिव्यंजना थी। उसने अनुरोध किया कि निरंकुशता के सिद्धान्त को निर्बल किये बिना ही यह किया जा सकता था और इस प्रकार अलैकजैण्डर उस लोकप्रियता को पुन: प्राप्त कर लेगा जो उसकी अपने सुधारों के प्रारम्भिक वर्षों में प्राप्त थी। पर्याप्त हिचक एवं मानसिक उद्विग्नता के पश्चात् १३ मार्च १८८१ को जार ने मैलीकॉफ की योजना को राजपत्र में प्रकाशित करने की आज्ञा दी। परन्तु उसी दिन दोपहर के पश्चात् जबकि वह कजाकों की सुरक्षा में गाड़ी में बैठकर लौट रहा था उसकी गाड़ी पर एक बम्ब फैंका गया। गाड़ी नष्ट हो गयी और उसके कई रक्षक घायल हुये। चमत्कारिक रूप से अलैकजैण्डर बच गया परन्तु जब वह घायलों की सहायता देने जा रहा था तब उसके समीप एक दूसरा बम फटा। वह भयानक रूप से क्षत विक्षत हो गया और एक घण्टे के भीतर उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार **मुक्तिदाता जार** का देहावसान हुआ। इसी काल उदारवादियों की आशाएँ भी नष्ट हो गयीं इस उच्चतम हिंसा के कार्य ने सिंहासन के उस उत्तराधिकारी, अलैकजैण्डर तृतीय को भयभीत नहीं किया जिसका सम्पूर्ण राज्य काल कठोर दमन का काल रहा।

अलैकजैण्डर द्वितीय तथा लारिस मैलीकॉफ

अलैकजैण्डर द्वितीय का बध

अलैकजैण्डर तृतीय का राज्यकाल

जो व्यक्ति अब रूस के सिंहासन पर बैठा वह पूर्णरूप से भव्य युवावस्था का व्यक्ति था अलैकजैण्डर तृतीय जो अलैक्जैण्डर द्वितीय का पुत्र था छत्तीस वर्ष का तथा सबल शरीर का व्यक्ति था। उसने मुख्यतया सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। वह विशाल अथवा सक्रिय मस्तिष्क की अपेक्षा दृढ़ एवं संकल्पशील व्यक्ति था। यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गयी कि उसका चरित्र सबल और अपरिवर्तनशील था कि वह निरंकुशता में पूर्णरूप से विश्वास करता था और वह उसको अक्षुण्ण रूप से बनाये रखने का दृढ़ विचार रखता था। उसने नई योजनाओं का प्रतिपादन करने वालों तथा उदारवादियों के विरुद्ध अवमानतापूर्ण शत्रुता का व्यवहार किया। उसका शासन-काल जोकि १८७१ से १८९४ तक रहा, शासन के पुराने आदर्शों की पुनरावृत्ति और पूर्ण निरंकुशता का काल था।

अलैकजैण्डर तृतीय (१८८१-१८९४)

प्रतिक्रिया की कठोर नीति

खोज खोज कर आतंकवादियों का विनाश किया गया और उनके प्रयत्न प्राय: समाप्त हो गये। समाचार-पत्रों (प्रेस) पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया गया। विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों पर गुप्त दृष्टि रखी गयी। परिस्थिति

सुधार आंशिक रूप से समाप्त कर दिये गये और गुप्त पुलिस, भयानक तृतीय विभाग, की संख्या अत्यधिक बढ़ा दी गयी। उदारवादियों ने इस राज्यकाल में प्रगति की समस्त आशाएँ त्याग दीं और शुभतर दिवसों की प्रतिक्षा करने लगे। अलैकजैण्डर तृतीय के अधीन यहूदियों पर वे अत्याचारपूर्ण अमानवीय उत्पीड़न प्रारम्भ हुये जो कि रूस के निकटवर्ती भूतकाल की गर्हित विशेषताएं रही हैं। संयुक्त राज्य अमरीका को यहूदियों का महाभिनिष्क्रमण इसी काल से प्रारम्भ हुआ।

आतंकवादियों का विनाश

इस निरानन्द और कठोर शासन में केवल एक ही क्षेत्र में प्रगति हुई। वह क्षेत्र था **आर्थिक**। तव तक औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ हुई जिसने उसके उत्तराधिकारी के समय से अधिक प्रगति की। रूस कई शताब्दियों से कृषिप्रधान देश रहा था। साथ ही उसकी कृषि प्रारम्भिक रूप की थी। जो कुछ भी उद्योग थे वे घरेलू प्रकार के थे। रूस संसार के निर्धनतम देशों में से था। उसके प्राकृतिक साधनों का विकास नहीं हुआ। अलैकजैण्डर द्वितीय के समय में अपनाई गयी तथा अलैकजैण्डर तृतीय के समय में चालू रखी गयी और बढ़ाई गयी संरक्षण प्रणाली के अन्तर्गत आधुनिक प्रकार के उद्योग विकसित होने लगे। १८९२ में सर्गियसड विटे के वित्त तथा व्यापार मन्त्री नियुक्त हो जाने से इसके विकास को अत्यधिक प्रेरणा मिली। विटे का यह विश्वास था कि रूस जो यूरोप की विशालतम तथा अधिकतम जनसंख्या वाला देश है और अपने में स्वयं एक संसार है परमुखापेक्षी नहीं होना चाहिये, कि जब तक वह प्रमुखतः कृषि प्रधान देश रहेगा तब तक वह निर्मित वस्तुओं के लिये औद्योगिक राष्ट्रों के अधीन रहेगा और कि श्रम तथा कच्चेमाल के साधन इसके पास इतने अधिक थे कि वह, यदि उनका केवल विकास हो जावे तो, अपनी आवश्यकताओं की स्वयं पूर्ति कर सकता है। उसका विश्वास था कि विकास संरक्षण की नीति को अपनाने से किया जा सकता है। क्या जर्मनी तथा संयुक्त राज्य का चमत्कारपूर्ण औद्योगिक विकास इस नीति के मूल्य की विश्वस्त करने वाली उत्पत्ति नहीं थी। रूस के लिये इनको अपनाकर, विदेशियों को नये संरक्षित उद्योगों में वड़ी-वड़ी पूँजिया लगाने के लिये प्रोत्साहित करके, और उनको यह दिखाकर कि अनिवार्य रूप से उनको महान् लाभ प्राप्त होंगे उसने अपने देश का आर्थिक परिवर्तन प्रारम्भ किया और उसे भली-भाँति अग्रसरित किया। महती विदेशी पूँजी आने लगी और उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक में रूस की द्रुत गति से औद्योगिक प्रगति हुई।

सर्गियसड विटे का वित्तमन्त्री होना

विटे की औद्योगिक नीति

एक वात और आवश्यक थी। रूस की सबसे वड़ी कमी यातायात तथा संचार के सुसाधनों का अभाव था। इस अभाव की पूर्ति के लिये उसने वृहत् रेल की सड़कें बनाना प्रारम्भ किया। विटे के पदभार ग्रहण करने के कई वर्ष पूर्व से रूस प्रतिवर्ष ४०० मील से कम लम्बा रेल मार्ग बनाता था परन्तु उस समय से उस दशक के शेष भाग में उसने प्रायः ४०० मील का निर्माण किया। इन कार्यों में से सबसे वड़ा कार्य था यूरोप को प्रशांत महासागर से मिलाने वाले सीधे रेल मार्ग का निर्माण जिसको साइवेरिया को पार करने वाला महान् रेलमार्ग **(ट्रांस साय-बेरियन)** रेलवे कहते हैं। इसके लिये रूस ने पश्चिमी यूरोप

से, प्रायः फ्रांस से, विशाल धन राशियाँ उधार लीं। १८९१ में प्रारम्भ हुआ रेलमार्ग १९०२ ई० में औपचारिक रूप से उद्घाटित किया गया। इसने पूर्व के यातायात व्यय को प्रायः आधा कर दिया है। १९०९ में रूस के अधिकार में ४१,००० मील से अधिक रेलमार्ग था जिसमें से २४,००० मील से अधिक का स्वामित्व तथा संचालन शासन करता था।

विस्तृत रेल निर्माण मार्ग

साम्राज्य के आर्थिक जीवन के इस महान् परिवर्तन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम होने थे जिनमें से कुछ तो शीघ्र ही स्पष्ट दीखने लगे। नगरों का विकास द्रुतगति से हुआ, एक विशाल श्रमिक वर्ग का विकास हुआ और उस प्रकार की श्रम समस्याएँ तथा समाजवादी सिद्धान्त श्रमिक वर्गों में शीघ्रता से प्रसारित हो गये जिनमें पश्चिमी यूरोप परिचित था। पूँजीपतियों और उत्पादकों का एक नया मध्यम वर्ग निर्मित हो गया जो किसी दिन शासन में भाग की माँग कर सकता था। ये नयी शक्तियाँ उपयुक्त समय पर उस पुराने अनुदान एवं अप्रगतिशील शासन के लिये जिसने रूस को इतने दीर्घकाल तक अप्रगतिशील एवं अत्यधिक दुखी रखा था, भय उत्पन्न कर सकती थीं। तथापि यह कि पुरानी प्रणाली की नींव नीचे ही नीचे नष्ट की जा रही है, स्पष्ट नहीं था और यदि रूस अलैकजैण्डर की मृत्यु के दस वर्ष पश्चात् जापान के साथ दुर्भाग्यपूर्ण एवं अपमानजनक युद्ध में न उलझा होता तो यह बहुत वर्षों तक स्पष्ट न हुआ होता।

श्रम समस्याओं का विकास

निकोलस द्वितीय का राज्यकाल

अलैकजैण्डर तृतीय की मृत्यु १८९४ में हुई और उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र निकोलस द्वितीय हुआ जिसकी आयु उस समय २६ वर्ष थी। यह सामान्य आशा थी कि अब अपेक्षाकृत अधिक दयालुतापूर्ण शासन प्रारम्भ होगा। तथापि यह नहीं होना था। दस वर्ष तक युवक सम्राट् (जार) ने अपने पिता की नीति का बिना किसी परिवर्तन के अनुसरण किया यदि कोई परिवर्तन था तो वह अपेक्षाकृत अधिक कठोरता की दिशा में था। एक सुझाव कि प्रतिनिधि संस्थाओं को स्वीकृति प्रदान की जा सकती है 'मूर्खतापूर्ण स्वप्न' उद्घोषित किया गया। शासन विधि का नहीं प्रत्युक्त निरंकुश शक्ति का था। इसके उपकरण थे बहुसंख्यक एवं भ्रष्ट राज्याधिकारियों का समुदाय तथा निर्दय, सक्रिय पुलिस। गिरफ्तारी, कारावास तथा देश निकाले से कोई भी सुरक्षित नहीं था। सर्वाधिक प्रारम्भिक मानवीय अधिकारों का अभाव था।

निकोलस द्वितीय का सिंहासनासीन होना

व्यावसायिक तथा शिक्षित व्यक्तियों की दशा असहनीय थी। यदि कोई विश्वविद्यालय का प्राचार्य होता तो उस पर पुलिस दृष्टि रखती थी और प्राध्यापक मिल्यूकोव की भाँति किसी समय पदमुक्त किया जा सकता था। यह प्राध्यापक विख्यात इतिहासकार था और उसको साधारण रूप से हानिकारक सामान्य प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से पद से वंचित नहीं होना पड़ा था। यदि कोई संपादक होता तो उसकी स्थिति, जब तक कि वह अधिकारियों

बुद्धिजीवियों का उत्पीड़न

का पूर्ण दास न हो, और भी अधिक अनिश्चयात्मक थी। अल्पिष्ठ बौद्धिक स्वतन्त्रता के व्यक्ति के लिये, जो आधुनिक युग के विचारों का होता, यह वातावरण अत्यन्त घातक था। भाव प्रकाशन विरोध (Censor) अधिकाधिक कठोर होता गया और वह ग्रीन के **इंगलैण्ड के इतिहास** तथा ब्रायस के **अमरीकी राष्ट्रमण्डल** जैसी पुस्तकों पर भी लागू होता था। रूस को पूर्णतः नियन्त्रित करने की कठिनाई ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी त्यों-त्यों प्रतिवर्ष अकारण एवं स्वेच्छा पर निर्भर गिरफ्तारियाँ भी बढ़ती गयीं। विद्यार्थी पुलिस की सावधानी के विशेष विषय थे क्योंकि इस निरर्थक निरंकुश राजतन्त्र से युवक, उत्साहपूर्ण तथा शिक्षित ही सर्वाधिक अप्रसन्न थे। उनमें से अधिकांश तिरोहित हो गये क्योंकि एक ही वर्ष में मास्को विश्वविद्यालय के १/२ विद्यार्थी संभवतः साइबेरिया को अथवा यूरोप के कारावासों को भेज दिये गये।

इस प्रकार की सरकार पोलों, फिनों इत्यादि जैसे परतन्त्र जातियों (राष्ट्रों) के प्रति सहानुभूति की अधिकता की भूल नहीं कर सकती थी। वस्तुतः फिनलैण्ड में उसका स्वेच्छाचारी शासन चरम शिखर पर पहुँच चुका था।

फिनलैण्ड पर आक्रमण

१८०९ में रूस के द्वारा फिनलैण्ड प्राप्त किया गया था। वह रूस में नहीं मिलाया गया प्रत्युत **भव्य रियासत** (ग्रांड डची) के रूप में रूसी सम्राट् के महान् ड्यूक के अधीन रखा गया था। उसकी अपनी संसद् और अपनी मूल विधियाँ अथवा संविधान थे जिनके प्रति सच्ची निष्ठा की महान् ड्यूक ने शपथ ली थी। ये मूल विधियाँ संसद् तथा महान् ड्यूक की सहमति के बिना परिवर्तित तथा समाप्त नहीं की जा सकती थीं और न उनका (कोई नया) अर्थ ही निकाला जा सकता था। राज्याध्यक्ष (ड्यूक) के शरीर द्वारा रूस से सम्बद्ध स्वशासित फिनलैण्ड एक सांविधानिक राज्य था। इसकी अपनी निजी सेना, मुद्रा प्रणाली और एक डाक व्यवस्था थी। इस उदार शासन के अधीन उसने महती उन्नति की थी। गत शताब्दी के अन्त में उसकी जनसंख्या, जो पहले दस लाख से भी कम थी, बढ़कर लगभग तीस लाख हो गयी थी। रूस के एक इतिहासकार के अनुसार वह भौतिक सभ्यता की सभी उपलब्धियों (सामग्रियों) में उस देश (रूस) की अपेक्षा तीस वर्ष आगे था। अपने निजी संविधान और पृथक संगठन का उपभोग करने वाले इस देश को देखकर रूस के नियन्त्रणकर्ता अप्रसन्न होते थे। वे सम्राट् के सम्पूर्ण राज्य के विभिन्न भागों के सभी अन्तरों को समाप्त करना चाहते थे, एकीकरण करना चाहते थे, रूसीकरण करना चाहते थे। अलैकजैण्डर के शासन काल में फिनों की स्वतन्त्रताओं पर आक्रमण प्रारम्भ हुआ। निकोलस द्वितीय ने इसको और अधिक बढ़ाया और उसने १५ फरवरी १८९९ को एक राजघोषणा प्रकाशित की जिसने उस देश के संविधान का वास्तव में निराकरण (अन्त) कर दिया। १४०० लाख व्यक्तियों के निरंकुश नरेश के विरुद्ध फिनों ने अपना आग्रहपूर्ण किन्तु प्रत्यक्षतः आशाहीन संघर्ष प्रारंभ किया।

फिन-संविधान की समाप्ति

उपरिवर्णित के अन्तर्गत मनुष्यों को डराकर चुप रखा जा सकता था परन्तु सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता था। सभी वर्गों का असंतोष जो भूमिगत धाराओं में अन्तर्निहित कर दिया गया था, विस्फोट काल की प्रतीक्षा करता हुआ केवल

बढ़ता ही रहा । १९०४-५ में रूस की जापान द्वारा दुर्भाग्यपूर्ण पराजय के साथ ही वह समय आ गया । यह पराजय समकालीन इतिहास की एक युगान्तकारी घटना थी ।

सुदूर पूर्व के प्रश्न का उदय

रूस की निकट भूतकालीन घटनाओं को समझने के लिये उस युद्ध के घटना चक्र का, जिसके गम्भीर प्रभाव हुये हैं, अनुसंधान आवश्यक है । उस संघर्ष के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिये हमको रूस के इतिहास के विवरण को वीच ही में छोड़ देना चाहिये ताकि हम एशिया के समीपवर्ती विकास का वर्णन कर सकें जो कि तथाकथित सुदुर पूर्व के प्रश्न का उदार एवं पूर्व और पश्चिम का पारस्परिक प्रभाव (प्रतिक्रिया) था ।

अध्याय ३५

सुदूरपूर्व

एशिया में इंगलैंड, फ्रांस और रूस का प्रभाव

एशिया में इंगलैण्ड, फ्रांस और रूस

यूरोप ने केवल अफ्रीका पर ही अपना अधिकार नहीं जमाया वरन् उसने एशिया के विशाल भागों पर भी अपना अधिकार कर लिया है और वह शेष भाग पर अधिक शक्ति के साथ अपने अधिकार को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है। अपने नियंत्रण के द्वारा इंगलैण्ड और फ्रांस ने प्राधान्य स्थापित कर लिया है—इंगलैण्ड का प्रभुत्व भारत और ब्रह्मा में है और फ्रांस का भारत चीन में है। इसके प्रतिकूल रूस का प्राधान्य उत्तरी एशिया में यूराल पर्वतों से लेकर प्रशान्त महासागर तक स्थापित है। जहाँ तक भौगोलिक विस्तार का सम्बन्ध है वह यूरोपीय शक्ति की अपेक्षा एशियायी शक्ति अधिक है। यह कथन इंगलैण्ड तथा फ्रांस के विषय में भी सत्य है। रूस इनकी अपेक्षा अधिक काल से एशियायी शक्ति रहा है क्योंकि अमरीका में **यात्रियों**[1] के आने के पूर्व ही उसने एशिया में अपना विस्तार प्रारम्भ कर दिया था। प्रायः तीन शताब्दियों से रूस एशियायी राज्य रहा है जबकि इंगलैण्ड भारत में एक शक्ति के रूप में उसके आधे काल से ही रहा है।

रूसी विस्तार

तथापि १९वीं शताब्दी के पूर्व रूस ने एशिया पर औपनिवेशिक तथा व्यापारिक विस्तार के लिये (उपयुक्त) क्षेत्र के रूप में ध्यान नहीं दिया। साइबेरिया को केवल अपने असंतुष्ट अथवा अपराधी नागरिकों को भेजने के लिये सुविधाजनक कारावास मात्र माना जाता था। यूरोप की घटनाओं ने उसको अपने एशियायी विकास पर अधिकाधिक अवधान केन्द्रित करने को विवश किया है। वहाँ उसने उस वस्तु को

---

1. १६२० में इंगलैण्ड में कुछ व्यक्ति अमरीका गये और वहाँ उन्होंने न्यू इंगलैण्ड बसाया था। इनको यात्री-पिता (Pilgrim Father) कहते हैं। —अनुवादक

अर्थात् महासागर के सम्पर्क को संसार के उन्मुक्त मार्ग को, प्राप्त किया है जिसको प्राप्त करने के लिये वह यूरोप में दीर्घकाल से प्रयत्न करता रहा था परन्तु उस विरोध के कारण जिसका उसको सामना करना पड़ा वह असफल रहा। रूस के समुद्रतट पर यूरोप अथवा एशिया में ऐसा कोई भी वन्दरगाह नहीं है जहाँ पर वर्फ न जमती हो। तुर्की से यूरोप में ऐसा वन्दरगाह प्राप्त करने में पुनः पुनः एवं निर्णयात्मक रूप से वाधित होने से उसने ऐसे वन्दरगाहों को पूर्वी एशिया में प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। उसकी यह महत्वाकांक्षा उसकी एशियायी नीति की व्याख्या करती है। १८५८ में उसने चीन से आमूर नदी का सम्पूर्ण उत्तरी तट ले लिया और दो वर्ष पश्चात् दक्षिणी दिशा में और अधिक भू-भाग प्राप्त कर लिए। यह भाग समुद्री प्रान्त था। इसके दक्षिणी सिरे पर उसने व्लाडोवोस्टक नामक सामुद्रिक समर-केन्द्र स्थापित किया जिसका आशय है **पूर्व में प्रधान**। परन्तु व्लाडीवोस्टक शीतकाल में हिम से मुक्त नहीं रहता था। (अस्तु) रूस को अब भी अपना चिरभिलषित निष्कासन मार्ग नहीं मिला।

रूस समुद्र पर पहुंचने का प्रयत्न करता है

चीन

(१९३७ में) उत्तर में रूसी एशिया और दक्षिण में ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी एशिया के मध्य में चीन स्थित है जो संसार का प्राचीनतम साम्राज्य है। वह यूरोप से अधिक विस्तृत है और ४० करोड़ से अधिक निवासियों सहित वह उससे जनसंख्या में भी अधिक है। इसकी महान् नदियों पर जलपोत चल सकते हैं, इसमें विस्तृत कृषि योग्य भू-क्षेत्र हैं और इसमें ऐसी खानें है जिनमें कोयला और धातुयें प्रचुर मात्रा में हैं। किन्तु अभी तक वह अधिकतर अविकसित है। यूरोप निवासियों से दीर्घकाल पूर्व चीनी लोग अत्यधिक सभ्य जाति थी। उन्होंने यूरोप निवासियों की अपेक्षा कई शताब्दियों पूर्व ध्रुवदर्शक यन्त्र, वारूद, चीनी मिट्टी के चमकदार वर्तन और कागज का प्रयोग किया था। ईसा की छटी शताब्दी में वे चल काष्ठ टुकड़ों (ब्लाकों) से मुद्रण कला से परिचित थे। वह काँसे, काष्ठ सुनहरी वार्निश तथा रेशम-उत्पादन के चमत्कारों के लिए दीर्घकाल से विख्यात थे। परिश्रमी तथा बुद्धिमान् जाति होने के कारण वे सर्वदा शान्तिपूर्ण उद्योगों का व्यवसाय करते रहे हैं और उन्होंने युद्ध की कला से घृणा की है।[1]

चीन की सभ्यता

बाहरी संसार को घृणा करते हुए चीन ने सर्वदा एकाकी जीवन व्यतीत किया था। उसके कूटिनीतिक प्रतिनिधि किसी भी विदेश में नहीं थे और न कोई विदेशी राजदूत पीकिंग में रहता था। विदेशी लोग केवल काण्टन नामक एक ही वन्दरगाह में व्यापार कर सकते थे और वहाँ भी केवल कष्टपूर्ण एवं अपमानजनक दशाओं के अन्तर्गत।

चीन का अकेलापन

आधुनिक युग में इस अकेलेपन की नीति का स्थायी रूप से अनुसरण करना

1. आधुनिक साम्यवादी चीन इसके प्रतिकूल युद्ध प्रिय वन गया है। —अनुवादक

असंभव था और १९वीं शती ज्यों-ज्यों अग्रसरित हुई यह नीति भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। चीनी लोग अपने को अकेले छोड़ जाने की अपेक्षा अन्य कुछ भी आकांक्षा नहीं करते थे परन्तु यह नहीं होना था। दीर्घकाल तक आक्रामक कार्यवाहियों के द्वारा आधुनिक काल तक यूरोप की शक्तियों ने चीन को उनके साथ सम्बन्ध रखने पर, भू-भाग प्रदान करने पर, व्यापारिक अधिकार देने पर तथा दौत्य सम्बन्ध रखने पर विवश किया है। चीन पर यूरोपीय आक्रामक कार्यवाहियों की कहानी में चीन के विरुद्ध १८४० से १८४२ तक का इंगलैण्ड द्वारा लड़ा गया **अफीम का युद्ध** निर्णायक रहा था क्योंकि उसने यह स्पष्ट कर दिया कि चीन को जीतना कितना सरल था। अपनी जनता के लिए हानिकारक होने के कारण चीन ने अफीम के आयात पर रोक लगा दी थी। परन्तु अँग्रेज उस व्यापार को छोड़ना नहीं चाहते थे जिससे वे अत्यधिक लाभ उठाते थे। चीन तथा प्रथम यूरोपीय शक्ति के मध्य लड़ा जाने वाला यह युद्ध दो वर्ष तक चला और अन्त में उसमें ग्रेट ब्रिटेन की विजय हुई। यूरोपीय प्रभावों के लिए चीन के द्वारों को खोलने के परिणाम महत्त्वपूर्ण थे।

अफीम का युद्ध

१८४२ की **नानकिंग की संधि** के द्वारा चीन को विशाल युद्ध क्षति देनी पड़ी, कान्टन के अतिरिक्त अन्य चार बन्दरगाह इंगलैण्ड के साथ व्यापार के लिए खोलने पड़े, और कान्टन के समीप में स्थित **हांगकांग** का द्वीप इंगलैण्ड को पूर्ण रूप से देना पड़ा। तब से हांगकांग ब्रिटिश साम्राज्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नौ सैनिक एवं व्यापारिक केन्द्रों में से एक केन्द्र बन गया है।

संधि के बन्दरगाह

ब्रिटिश विजय से लाभ उठाने के लिए अन्य शक्तियाँ भी आगे बढ़ीं। १८४४ में चीन से व्यापारिक संधि करने ने लिए संयुक्त राज्य ने कलीब कुशिंग को भेजा और शीघ्र ही फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड, प्रशा तथा पुर्तगाल ने पाँच संधि बन्दरगाहों पर अपने-अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये। तब से इस प्रकार के बन्दरगाहों की संख्या ४० हो गयी है। चीन को अपनी अकेलेपन की नीति त्यागने तथा राजदूतों का आदान-प्रदान करने पर विवश होना पड़ा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में १८९४-९५ के जापान के साथ युद्ध के परिणाम स्वरूप चीन के यूरोपीय सम्बन्धों में महत्त्वपूर्ण काल प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध को समझने के लिए जापान के इससे पूर्व के विकास के इतिहास का कुछ वर्णन आवश्यक है।

जापान

पूर्व के सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य के रूप में जापान का उदय निकट अतीत के इतिहास का अत्यन्त रुचिकर और आधुनिक युग के लिए अधिक महत्त्व का अध्याय है। १९वीं शती के अन्तिम तृतीय काल में पूरा होकर इस उदय ने अन्तः राष्ट्रीय परिस्थितियों पर पहले ही अधिक प्रभाव डाला है और संसार के भावी विकास में अधिकाधिक महत्त्व का संभाव्य तत्व प्रतीत हो रहा है।

जापान

जापान का वर्णन

जापान का एक द्वीप समूह है जिसमें चार विशाल द्वीप तथा लगभग चार सहस्र लघु द्वीप सम्मिलित हैं। १८९४ में इसका क्षेत्रफल १४७,००० वर्ग मील था जो कि कैलीफोर्निया से कम है। प्रमुख द्वीप अर्द्धचन्द्राकार है। इसका उत्तरी सिरा साइबेरिया के सम्मुख स्थित है और दक्षिणी सिरा कोरिया की ओर घूम गया है। इसके और एशिया के मध्य में जापान सागर है। यह देश अत्यधिक पहाड़ी है। इसकी सबसे ऊँची चोटी, फ्यूजीयामा, की ऊँचाई १२,००० फीट है। ज्वालामुखी उद्भव के कारण इसमें कई ज्वालामुख अब भी सक्रिय है। भूचाल प्रायः आते रहते हैं और उन्होंने वास्तु कला की विशेषताओं पर प्रभाव डाला है। इसका समुद्रतट अधिक कटा-फटा है और उस पर कई बन्दरगाह हैं। जापानी अपने देश को **निप्पौन** अथवा **उदीपमान सूर्य का देश** कहते हैं। केवल $\frac{1}{6}$ **भूभाग** पर कृषि की जाती है। इसके कारण हैं : भूमि का पहाड़ी होना और कृषि की प्रचलित पद्धतियाँ ; तथापि इस लघु क्षेत्र में ५० लाख निवासी रहते हैं। यह जनसंख्या ग्रेट ब्रिटेन अथवा फ्रांस की जनसंख्या से अधिक है। (अस्तु) यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जापानियों ने भौम विस्तार की इच्छा की है।

जापानी सभ्यता

जापान के निवासियों ने अपनी सभ्यता की प्रारम्भिक बातें चीन से प्राप्त की थीं परन्तु वे कई बातों में चीनियों से भिन्न थे। सैनिक गुणों का वहाँ उच्च सम्मान होता था। देश भक्ति उनकी उत्कट भावना थी और उसके साथ बिना पूछताछ किये हुए **आत्म बलिदान** की भावना भी थी। शिन्तो धर्म की आज्ञा थी, "तुम देवताओं का सम्मान करोगे और अपने देश से प्रेम करोगे।" यह आदेश सभी मानते थे। इस कलाप्रिय और आमोद-प्रिय जाति में सक्रिय मस्तिष्क तथा आत्मसात करने की चमत्कारपूर्ण शक्ति थी जो कि उन्हें राष्ट्रीय एवं महत्त्वपूर्ण स्तर पर प्रदर्शित करनी थी।

जापान की अकेलेपन की नीति

चीनियों के समान जापानियों ने भी अकेले रहने की नीति का अनुसरण किया था। कई शताब्दियों से जापानी बाह्य संसार से प्रायः योगियों की भाँति सुरक्षित रूप में बन्द थे। डैशिमा के प्रायद्वीप पर केवल एक व्यापारिक केन्द्र था जोकि डचों के साथ थोड़ा सा व्यापार करता था। दो शताब्दियों से अधिक से जापानियों का बाह्य संसार से केवल यही सम्पर्क था।

कामोडोर पैरी

१८५३ में कामोडोर पैरी के अधीन अमरीकी जहाजी बेड़े ने इस अकेलेपन की शान्ति को बुरी तरह से भंग कर दिया। यह जहाजी बेड़ा संयुक्त राज्य की सरकार ने भेजा था। अमरीकी नाविकों की नावें, जो व्हेल मछली का शिकार करते थे, जब तब जापान के समुद्रतट पर टकरा जाती थीं और वहाँ पर उनके साथ प्रायः क्रूर व्यवहार होता था। पैरी को यह निर्देश दिया गया था कि वह जापान के शासक से उन अमरीकी नाविकों और सम्पत्ति के लिए सुरक्षा की माँग करे जो इस प्रकार नावों के भग्न होने से संकटग्रस्त हो जाती थी और अमरीकी जहाजों को किसी एक बन्दरगाह में ठहरने की आज्ञा की माँग करे जिससे वे वहाँ आवश्यक रसद प्राप्त कर सकें और अपने सामान को बेच सकें। उसने ये माँगें वहाँ की सरकार के सामने रखीं। उसने यह भी उद्घोषित किया कि, यदि उसकी ये प्रार्थनायें अस्वीकार की

गयीं तो, वह युद्ध प्रारम्भ कर देगा। शासन ने कुछ माँगें अविलम्ब स्वीकार कर लीं परन्तु इस बात का आग्रह किया कि विदेशी राज्य से साधारण सम्बन्ध प्रारम्भ करने के प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार करना पड़ेगा।

अकेलेपन की नीति की समाप्ति

पैरी विवाद की आज्ञा पर सहमत हो गया और अपने जलपोतों को वहाँ से हटा लाया। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि वह अगली वर्ष अन्तिम उत्तर प्राप्त करने के लिए लौटेगा। शासकीय वर्गों ने इस साधारण प्रश्न पर अत्यन्त सचाई के साथ विचार-विमर्श किया। कुछ ने विदेशियों से पूर्णरूप से अलग रहने की नीति का समर्थन किया; तथापि विदेशियों की स्पष्ट सैनिक विशिष्टता के कारण दूसरे इसको असंभव समझते थे। उस विशिष्टता के रहस्य को समझने के लिए उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करना और उनके पश्चात उसको जापान के लिए प्रयोग करना वे सर्वोत्तम मानते थे। उनका विश्वास था कि एकमात्र इसी उपाय से अन्त में उनके देश की स्वतन्त्रता और शक्ति की प्रत्याभूति मिल सकती है। यह मत अन्तत्तोगत्वा विजयी रहा और जब पैरी पुनः लौटा तब १८५४ में उसके साथ एक संधि हुई जिसके अनुसार दो बन्दरगाह अमरीकी जहाजों के लिए खोल दिये गये। यह केवल प्रारम्भ मात्र था परन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि दो शताब्दियों के एकान्त जीवन के पश्चात् जापान ने किसी विदेशी राज्य के साथ सम्बन्ध स्थापित किये। तत्पश्चात् संयुक्त राज्य तथा अन्य देशों के साथ अपेक्षाकृत अधिक उदार एवं अन्य सन्धियाँ की गयीं।

जापान का द्रुत परिवर्तन

इन घटनाओं की जापान के आन्तरिक विकास पर असाधारण प्रतिक्रिया हुई। इन्होंने अत्यन्त गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न कर दी और सहसा गृह युद्ध प्रारम्भ करा दिया। इस विवाद और संघर्ष का परिणाम हुआ उस दल की विजय जो परिवर्तन में विश्वास करता था। १८६८ के पश्चात कुछ ही वर्षों में जापान ने अपनी राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया, पाश्चात्य भौतिक और वैज्ञानिक सभ्यता को उत्साह के साथ अपनाया। इन बातों में उसने अपने को एक यूरोपीय राज्य बना लिया और परिणामस्वरूप उस अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को प्रारम्भ किया जिसने पहले ही विश्व को अत्यधिक परिवर्तित कर दिया है और वह सम्भवतः पूर्व के भावी विकास में अविरल एवं वर्द्धमान तत्व रहेगा। एक विदेशी सभ्यता का इतना पूर्ण, इतना द्रुत, इतना हार्दिक आत्मीयकरण और वह भी एक ऐसी सभ्यता का जिसके प्रभाव से मुक्त रहने की कई शताब्दियों तक प्रत्येक सावधानी वरती गयी थी, संसार के इतिहास में अद्वितीय परिवर्तन है और प्रदर्शित साहस एवं बुद्धिमत्ता के लिये दृष्टव्य है। यह जीवन में प्रवेश पैरी के अभियान का प्रत्यक्ष परिणाम था।

यूरोपीय संस्थाओं का अपनाया जाना

जापानी क्रांति सर्वदा आश्चर्यजनक कहानी रहेगी। एक वार प्रारम्भ होकर यह क्रान्ति वेग से अग्रसरित हुई। पिछले सैनिक वर्ग के स्थान पर यूरोपीय आदर्शों पर आधारित सेना का उदय हुआ। १८७२ में सैनिक सेवा अनिवार्य एवं सार्वभौम घोषित कर दी गयी। जिस जर्मन पद्धति ने यूरोप में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये, उसी ने एशिया में भी क्रान्ति प्रारम्भ की।

१८७० में टोक्यो तथा याकोहामा के मध्य प्रथम रेल मार्ग प्रारम्भ किया

गया। तीस वर्ष पश्चात् ३,६०० मील से भी अधिक पर कार्य हो रहा था। आज (१९३७) ६,००० मील लम्बा रेल मार्ग है। पाश्चात्य शिक्षा विधियाँ भी प्रारम्भ की गयीं। टोक्यो में एक विश्व-विद्यालय स्थापित किया गया, तत्पश्चात् क्योटो में भी स्थापित किया गया। उनमें विदेशी प्राध्यापकों को महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ स्वीकार कराने के प्रयत्न किये गये। नयी विद्या को अध्ययन करने में विद्यार्थियों ने महान् उत्साह का परिचय दिया। सार्वजनिक विद्यालय द्रुत गति से निर्मित किये गये और १८८३ तक ३,३००,००० शिक्षार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे। १८९३ में यूरोपीय वर्ष-पद्धति अपनायी गयी।

शिक्षा में सुधार

यूरोपीय प्रणालियों के पूर्ण अध्ययन के पश्चात् विधि-संहितायें पूर्णरूपेण परिवर्तित की गयीं। विदेशी संविधानों के आठ वर्ष के अध्ययन और विस्तार के पश्चात् अन्ततोगत्वा १८८९ में एक संविधान प्रदान किया गया। इसने दो सदनों की संसद स्थापित की—एक **सामन्त-सदन** (तथाकथित वयोवृद्ध राजनीतिज्ञों का सदन) और दूसरा **प्रतिनिधि-सदन**। उन २५ वर्षीय अथवा अधिक आयु के पुरुषों को, जो एक निश्चित संपत्ति कर देते थे, मताधिकार दिया गया। नरेश के लिये विशाल शक्तियाँ आरक्षित की गयी हैं। संसद का सर्वप्रथम अधिवेशन १८९० में हुआ। पुनर्निर्मित जापान की परीक्षा का अवसर १९वीं शती के अन्तिम तथा २० वीं शती के प्रथम दशक में आया और उसने इस आश्चर्यजनक उपलब्धि के ठोसपन को सिद्ध कर दिया। इन वर्षों में उसने प्रत्यक्षत: अपने से अधिक बलवती दो शक्तियों—चीन और रूस से युद्ध किया और उनको पराजित किया, तथा राष्ट्रों के परिवार में एक **सदस्य** के रूप में अपना स्थान प्राप्त किया।

जापान एक सांविधानिक राज्य बनता है

चीन तथा रूस के साथ युद्ध

चीनी-जापानी युद्ध और उसके परिणाम

जिस युद्ध में परिवर्तित जापान की दक्षता स्पष्ट रूप से स्थापित हुई वह १८९४ में चीन के विरुद्ध प्रारम्भ हुआ। तात्कालिक कारण था कोरिया के साथ दोनों शक्तियों के सम्बन्ध। कोरिया एक राजतन्त्र था परन्तु चीन और जापान दोनों ही उस पर अपना आधिपत्य बताते थे। अपनी उत्पादित वस्तुओं के लिये वृहत्तर मण्डियों की इच्छा के कारण जापान को अपने अधिकारों विस्तार में अभिरुचि थी। दोनों देशों में उनके कोरिया सम्बन्धी अधिकारों के कारण प्राय: संघर्ष होता रहता था जिसके फलस्वरूप जापान ने एक ऐसा युद्ध प्रारम्भ किया जिसमें उसने अपनी आधुनिक सेना के द्वारा अपने महान् पड़ौसी पर सरलता से विजय प्राप्त कर ली। उस पड़ौसी की सेनाओं ने परम्परागत एशियायी साज-सज्जा के साथ प्राचीन एशियायी प्रणाली से युद्ध किया। जापानियों ने चीनियों को कोरिया के बाहर खदेड़ दिया, मंचूरिया पर आक्रमण किया और वहाँ पर उन्होंने पोर्ट आर्थर के दुर्ग को, जो कि पूर्वी एशिया में सबसे सुदृढ़ स्थान था, छीन लिया, ल्योतुंग प्रायद्वीप पर जिसमें यह दुर्ग स्थित है, अधिकार कर लिया तथा पैकिंग की ओर प्रस्थान की तैयारी कीं। अपनी राजधानी के लिए भयभीत होकर चीनी

चीन के साथ युद्ध का कारण

शिमोनो सेकी की संधि

संधि के लिए सहमत हो गए और १७ अप्रैल १८९५ को **शिमीनो सेकी** की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए जिसके अनुसार उन्होंने पोर्ट आर्थ, ल्योतुंग प्रायद्वीप, फारमोसा द्वीप तथा पैस्केडोर्स द्वीप समूह जापान को दे दिये। वे युद्ध की क्षति के रूप में दो सहस्र लाख टेल (लगभग १७५,०००,००० डालर) देने को सहमत हो गये। चीन ने कोरिया की पूर्ण स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान कर दी।

रूस, फ्रांस तथा जर्मनी का हस्तक्षेप

परन्तु विजय के क्षणों में एक यूरोपीय शक्ति के हस्तक्षेप ने जापान के मार्ग में बाधा उपस्थित की और उसको उसकी विजय के फल से वंचित कर दिया। अब रूस निर्णयात्मक रीति से ऐसे नाटकीय दृश्य में प्रविष्ट हुआ जिसमें उसको आगामी दस वर्षों तक महत्त्वपूर्ण भूमिका पूरी करनी थी। उसने शीघ्र ही यह प्रदर्शित कर दिया कि उसकी योजनाएँ जापान के ठीक प्रतिकूल हैं। उसने फ्रांस और जर्मनी को इस विषय में अपना साथ देने के लिये सहमत कर लिया कि जापानियों को अपनी विजयों के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पारितोषिक को त्यागने पर विवश किया जावे और उनको ल्योतुंग (Liao-Tung) प्रायद्वीप को इस आधार पर समर्पित करने का आदेश दिया जावे कि पोर्ट आर्थर के उनके अधिकार में चले जाने से पैकिंग की स्वतन्त्रता को भय था और 'सुदूर पूर्व की शांति' के लिए सदा भय उपस्थित रहेगा; तथापि उन्होंने, यह समझकर कि यूरोप की तीन महान् सैनिक शक्तियों का विरोध करना मूर्खता होगी, उनकी बात मान ली और इन शक्तियों के इस कार्य से अप्रसन्न होकर वे मुख्य देश से हट गये। उन्होंने यह विश्वास करके कि एशिया में उनका शत्रु रूस था जिससे किसी न किसी दिन उनको भुगतना पड़ेगा अपनी स्थल सेना तथा जलसेना को बढ़ाने का दृढ़ संकल्प किया। आगामी दस वर्षों की घटनाओं ने उनके विश्वास को और अधिक दृढ़ कर दिया।

जापान पोर्ट आर्थर को त्यागता है

इन शक्तियों की चीन की अक्षुण्णता एवं पूर्व की शांति की बातों की असत्यता (गैर ईमानदारी) शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो गयी।

जर्मन आक्रमण

१८८७ में शानतुंग के प्रान्त में दो जर्मन धर्म प्रचारकों का बध कर दिया गया। जर्मन सम्राट् ने अविलम्ब जहाजी बेड़ा क्षतिपूर्ति की माँग करने के लिये भेज दिया। फलतः ५ मार्च १८९८ को जर्मनी ने चीन से सुन्दर बन्दरगाह क्यॉचो को उसके आसपास की पर्याप्त भूमि सहित ९९ वर्ष के पट्टे पर प्राप्त कर लिया तथा शानतुंग के सम्पूर्ण प्रान्त में विस्तृत व्यापारिक एवं आर्थिक अधिकार भी प्राप्त कर लिये। वास्तव में वह प्रान्त जर्मनी के प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत आ गया।

रूस पोर्ट आर्थर प्राप्त करता है

इस कार्य ने रूस को अधिक माँगें प्रस्तुत करने के लिये प्रोत्साहित किया। २७ मार्च १८९८ को उसने चीन से पोर्ट आर्थर का २५ वर्ष का पट्टा ले लिया जो कि पूर्वी एशिया में सुदृढ़तम स्थान था और जैसा कि उसने जापान से कहा था, उस पर अधिकार रखने वाला पैकिंग को भयभीत कर सकता था तथा पूर्व की शांति को भंग कर सकता था। फ्रांस तथा इंगलैण्ड ने भी इसी प्रकार की शर्तों पर एक-एक बन्दरगाह प्राप्त कर लिया। इन शक्तियों ने चीन को एक दर्जन बन्दर-

गाह विश्व के व्यापार के लिये खोलने को और कारखाने स्थापित करने, रेलमार्ग बनाने तथा खानों का विकास करने के लिये विस्तृत अधिकार प्रदान करने को विवश किया।

१८९८ की ग्रीष्म ऋतु में ऐसा प्रतीत हुआ कि चीन का भी वह भाग्य होगा जो अफ्रीका का हुआ, कि वह विभिन्न शक्तियों में विभाजित हो जावेगा। इन आक्रमण कार्यवाहियों के कारण निर्मित एक तीव्र विदेश-विरोधी दल के उदय से यह प्रवृत्ति अवरुद्ध हुई और उसकी परिणति १९०० के बॉक्सर के विद्रोह हुये। ये विद्रोह द्रुत-गति से बढ़े और उत्तरी चीन में फैल गये। उनका उद्देश्य था 'विदेशी शैतानों को समुद्र में धकेल देना।' बीसियों धर्म प्रचारकों तथा उनके परिवारों का वध कर दिया गया और सैकड़ों चीनी जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया था क्रूरतापूर्वक मार डाले गये। अन्त में विभिन्न शक्तियों के दूतावासों पर पैकिंग में घेरा डाला गया और कई सप्ताह तक यूरोप और अमरीका को यह भय रहा कि वहाँ पर जितने भी विदेशी हैं सभी मार डाले जावेंगे। इस सर्वनिष्ठ भय के कारण सभी शक्तियों को अपनी प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या को त्यागना पड़ा और उनके छुटकारे के लिये जापान, रूस, जर्मनी, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य के सैनिकों का संयुक्त अभियान वहाँ भेजना पड़ा। दूतावास ठीक उसी समय बचा लिये गये जब दो मास (जून १३ से १४ अगस्त १९००) के घेरे के कारण उनके साधन समाप्त हो चले थे। एक लघु अभियान के पश्चात् इस अन्तर्राष्ट्रीय सेना ने बॉक्सर आन्दोलन को दबा लिया। चीनियों को एक वृहत् धनराशि क्षति पूर्ति के रूप में देने पर और आन्दोलन के नेताओं को दण्ड देने पर विवश किया। इस अन्तर्राष्ट्रीय सेना के निर्माण करते समय इन शक्तियों ने भू-क्षेत्र प्राप्त न करने का समझौता कर लिया था और युद्ध की समाप्ति पर उन्होंने चीन की अक्षुण्णता की प्रत्याभूति दी। इसका कोई अभिप्राय था या नहीं यह भविष्य में देखना शेष रहा।

बॉक्सर आन्दोलन

दूतावासों का बचाव

१८९५ में चीन की अक्षुण्णता पर बल दिया गया था परन्तु आगामी वर्षों में उस पर ध्यान नहीं दिया गया। रूस, फ्रांस और जर्मनी ने इसी तर्क का अवलम्ब लेकर १८९५ में जापानियों द्वारा पोर्ट आर्थर को खाली करने की माँग प्रस्तुत की थी। शीघ्र ही जर्मनी ने एक बन्दरगाह तथा चीन का एक प्रान्त प्रायः हस्तगत कर लिया और फ्रांस ने भी दक्षिण में एक बन्दरगाह ले लिया। इसके पश्चात् सर्वाधिक निर्णयात्मक कार्य हुआ—रूस के द्वारा पोर्ट आर्थर का हस्तगन। इसके कारण जापान में एक क्रोध की लहर आ गयी और उस देश की जनता वहाँ के राजनीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता द्वारा बड़ी कठिनाई से नियंत्रण में रखी जा सकी। रूस के द्वारा पोर्ट आर्थर प्राप्त करने का अभिप्राय यह था कि अब रूस के पास सम्पूर्ण वर्ष हिममुक्त बन्दरगाह था। रूस के व्यवहार से वह बात निर्भ्रान्त रूप से स्पष्ट हो गयी कि वह अपने इस अधि-कृत प्रदेश (पोर्ट आर्थर) को एक अल्पकालीन पट्टा मात्र नहीं समझता था वरन् एक स्थायी उपलब्धि समझता था। उसने ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग से मिलाते हुये हार्बिन से दक्षिण की ओर एक रेलमार्ग

जापान अप्रसन्न एवं आशंकित

मंचूरिया में रूस की कार्यवाहियाँ

बनाया। उसने मंचूरिया में सहस्रों सैनिक भेज दिये। उसने पोर्ट आर्थर को एक दुर्ग के रूप में अत्यधिक दृढ़ करना प्रारम्भ कर दिया और वहाँ पर एक अच्छाखासा जहाजी बेड़ा रख दिया गया। इस सब का जापानियों ने यह आशय लगाया कि वह अन्ततोगत्वा मंचूरिया के विशाल प्रान्त को (अपने साम्राज्य में) मिलाना चाहता है और आगे चलकर संभवतः कोरिया को भी मिलाना चाहता है और इससे उसको हिम-मुक्त बन्दरगाह तथा प्रशान्त महासागर में प्रभुत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त हो जावेगी जिससे, जैसा कि जापानियों ने अनुभव किया, वह जापान के अस्तित्व को ही भय उत्पन्न कर देगा। साथ ही इससे इन दिशाओं में जापानी-विस्तार के तथा जापानी उद्योगों के लिये मंडियों के हस्तगन को सभी संभव अवसर पूर्णतः समाप्त हो जावेंगे। इन दोनों शक्तियों के पूर्व में प्रभुत्व स्थापित करने की महत्वाकांक्षाओं का संघर्ष हुआ। साथ ही यह विषय जापानियों को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनकी स्थायी सुरक्षा उनके द्वीपीय साम्राज्य में भी खतरे में थी।

रूस-जापान का युद्ध और उसके परिणाम

१९०२ की इंगलैण्ड और जापान की सन्धि

इस समय १९०३ की इंगलैण्ड के साथ प्रतिरक्षात्मक संधि के कारण जापान का सम्मान अधिक बढ़ गया। इस सन्धि के अनुसार प्रत्येक शक्ति ने कुछ परिस्थितियों में एक दूसरे को सहायता देने का वचन दिया। यदि दोनों में से किसी एक को युद्ध में भाग लेना पड़े तो दूसरा तटस्थ रहेगा परन्तु यदि उसके शत्रु से कोई दूसरी शक्ति मिल जावे तो वह अपनी तटस्थता को छोड़ देगा और अपने मित्र की सहायता करेगा। इसका अभिप्राय यह था कि यदि फ्रांस अथवा जर्मनी जापान के विरुद्ध युद्ध में रूस की सहायता करें तो इंगलैण्ड जापान की सहायता करेगा। रूस और जापन के मध्य होने वाले युद्ध में इंगलैण्ड तटस्थ रहेगा। अस्तु यह सन्धि जापान के लिये वृहत् व्यावहारिक महत्त्व की थी और इसने उसके सम्मान को भी बढ़ाया। इतिहास में पहली बार ही एक एशियायी शक्ति ने पूर्णरूप से समान स्तर पर एक यूरोपीय शक्ति से सन्धि की थी। जापान ने राष्ट्र-परिवार में प्रवेश किया था और उसकी महत्ता का यह उल्लेखनीय प्रमाण था कि ग्रेट ब्रिटेन ने उसकी मैत्री को लाभदायक समझा। इसी मध्य रूस की एक विशाल सेना मंचूरिया में थी और उसके पास दृढ़ दुर्ग का पट्टा तथा पोर्ट आर्थर में एक नौ सैनिक अड्डा था। उसने मंचूरिया में व्यवस्था स्थापित होने के पश्चात् वहाँ से हटने का निश्चित वचन दिया था परन्तु इससे अधिक स्पष्टीकरण देना उसने अस्वीकार कर दिया। उसकी सैनिक तैयारियाँ इस बीच में बढ़ती गयीं और प्रत्यक्षतः व्यवस्था स्थापित हो जाने से जापान ने रूस से यह माँग की कि वह मंचूरिया से अपनी सेना को हटाने का दिनांक निश्चित करे। अगस्त १९०३ से फरवरी १९०४ तक दोनों शक्तियों में बातचीत होती रही। यह विश्वास करके कि रूस विस्तृत एवं जान बूझकर की जाने वाली देरी और टालमटोल के द्वारा मंचूरिया पर अपना नियंत्रण और अधिक कड़ा करने के लिये समय लेने के लिये तथा उस समय तक बातचीत को चालू रखने के लिये जब तक कि वह इस कपट भेष को समाप्त करने के लिये उस प्रान्त में पर्याप्त सेना इकट्ठी नहीं कर लेता है प्रयत्न कर रहा है, जापान ने अकस्मात् दौत्य सम्बन्धों को तोड़ दिया और युद्ध प्रारम्भ कर दिया। १९०४ की ८-९ फरवरी की रात्रि में

जापान रूस से युद्ध करता है

जापानियों ने पोर्ट आर्थर के सन्मुख रूसी जहाजी बेड़े के एक भाग को टारपीडो द्वारा नष्ट कर दिया और अपनी सेनाओं को कोरिया में प्रविष्ट करा दिया।

इस प्रकार प्रारम्भ होने वाला रूसी-जापानी युद्ध फरवरी १९०४ से सितम्बर १९०५ तक चलता रहा। यह समुद्र तथा पृथ्वी दोनों पर लड़ा गया। रूस के एशियायी समुद्रों में दो बेड़े थे—एक पोर्ट आर्थर में और दूसरा ब्लाडीवोस्टक में। एशिया से उसका स्थलीय सम्बन्ध एक मात्र लम्बी ट्रांस साइबेरियन रेलवे के द्वारा था। युद्ध के प्रारम्भ में ही जापान उसके पोर्ट आर्थर के जहाजी बेड़े को नियंत्रित करने में सफल रहा। एशियायी समुद्र पर नियंत्रण रखते हुये वह अपनी स्थल सेनाओं और युद्ध सामग्री को उस स्थान पर भेजने में सफल रहा जहाँ युद्ध हो रहा था। ब्लाडीवोस्टक का जहाजी बेड़ा अल्पक्षति ही पहुँचा सका। यलू से खदेड़ कर रूसियों की एक सेना को कोरिया के बाहर निकाल दिया गया। जनरल ओको की अधीनता में दूसरी सेना ल्योतुंग प्रायद्वीप पर उतर गयी और उसने पोर्ट आर्थर का रूस से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। उसने पोर्ट आर्थर को आक्रमण द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु उसे न ले सका और अन्त में उसने घेरा प्रारम्भ किया। जनरल ओकू रूसियों को मकडन की ओर खदेड़ रहा था। अतः घेरे का नेतृत्व जनरल नोगी द्वारा किया गया। रूसी जनरल कुरोप्टकिन पोर्ट आर्थर की सहायता के लिये मकडन के दक्षिण की ओर चला। मकडन के दक्षिण में महान् लड़ाइयाँ हुईं। लायो-यांग की लड़ाई में पाँच लाख सैनिकों ने भाग लिया और वह कई दिनों तक हुई। अन्त में जापानियों की विजय हुई और उन्होंने ४ सितम्बर १९०४ को लायोयांग में प्रवेश किया। अब उनका लक्ष्य मकडन था। इसी मध्य जापानियों ने पोर्ट आर्थर तथा ब्लाडीवोस्टक दोनों के जहाजी बेड़ों को हटा दिया और उनको युद्ध में भाग लेने से वंचित कर दिया। दस मास के घेरे के पश्चात् जब तक पोर्ट आर्थर ने आत्म-समर्पण नहीं किया तब तक उस पर भयानक बम वर्षा होती रही। इस घेरे में ६०,००० जापानी खेत रहे अथवा घायल हुये (१ जनवरी, १९०५)। जिस सेना ने इस घेरे को सम्पादित किया था वह अब मकडन के समीप जनरल ओक से सहयोग करने के लिये उत्तर की ओर प्रस्थान करने में समर्थ थी। वहाँ कई लड़ाइयाँ हुईं। ये १८७० के फ्रांस और जर्मन युद्ध के पश्चात् होने वाली सबसे बड़ी लड़ाइयाँ थीं जो कई दिनों तक लड़ी जाती रहीं। मकडन पर मार्च ६-१०, १९०५ की चार दिन की अन्तिम लड़ाई में दोनों सेनाओं के १,२०,००० सैनिक मारे गये और घायल हुये। रूसी हार गये और उन्होंने जापानियों के हाथों में ४०,००० बन्दी छोड़ते हुये मकडन खाली कर दिया।

रूसी-जापानी युद्ध (१९०४-१९०५)

पोर्ट आर्थर का घेरा

जापानियों द्वारा मडकन का लिया जाना

इस युद्ध की एक अन्य घटना थी रूस से जल सेनाध्यक्ष (एडमिरल) रोजेस्टवैन्सकी के अधीन एक नये जहाजी बेड़े का भेजा जाना। उत्तमाशा अन्तरीप का चक्कर काटकर एक लम्बी समुद्र यात्रा के पश्चात् जैसे ही यह जहाजी बेड़ा जापान सागर में प्रविष्ट हुआ वैसे ही जल सेनाध्यक्ष टोगो ने इस पर आक्रमण किया और २७ मई १९०५ को सुशिमा के जल डमरूमध्य की महान् नौ सैनिक लड़ाई में वह नष्ट कर दिया गया।

७ मई १९०५ को रूसी जहाजी बेड़े का विनाश

राष्ट्रपति रूजवेल्ट के सुझाव पर दोनों शक्तियाँ न्यू हैम्पशायर में पोर्टस्माऊथ को, यह देखने के लिए कि क्या युद्ध समाप्त किया जा सकता है, प्रतिनिधि भेजने पर सहमत हो गयीं। फलस्वरूप ५ सितम्बर १९०५ को पोर्टस्माउथ की संधि पर हस्ताक्षर हो गये। यद्यपि रूस और जापान का युद्ध कोरिया तथा मुख्यतया चीन के प्रांत मंचूरिया में हुआ था जो दोनों में से किसी के भी प्रदेश नहीं थे, तथापि कोरिया और चीन ने युद्ध में बिल्कुल भाग नहीं लिया। अपनी भूमि की तटस्थता अथवा स्वतन्त्र संप्रुभता को बनाये रखने में असमर्थ होने से वे निष्क्रिय दर्शक रहे थे। इस युद्ध के कारण दोनों राष्ट्रों के दस अरब डालर व्यय हुए और २००,००० व्यक्ति मारे गये तथा घायल हुए।

पोर्टस्माउथ की संधि

पोर्टस्माउथ की संधि से रूस ने कोरिया में जापान के सर्वोपरि हितों को मान्यता प्रदान की तथापि कोरिया देश स्वतन्त्र रहना था। रूसी और जापानी दोनों को मंचूरिया छोड़ना था। रूस ने पोर्ट आर्थर तथा ल्योतुंग प्रायद्वीप का अपना पट्टा जापान को हस्तांरित कर दिया और साखालिन द्वीप का आधा दक्षिणी भाग जापान को दे दिया।

इस प्रकार जापान पूर्व की सर्वोपरि प्रभुत्वपूर्ण शक्ति बन गया। उसने दस वर्ष के भीतर फारमोसा तथा साखालिन केसेपोजन से अपना विस्तार बढ़ाया था। उसने कोरिया को स्वतन्त्र नहीं समझा परन्तु युद्ध की समाप्ति के पश्चात् १९१० में उसे (साम्राज्य में) मिला लिया। पोर्ट आर्थर उसके अधिकार में है तथा मंचूरिया में उसकी स्थिति पर बहुत-सा कूटनीतिक विवाद हुआ है। (१९३७) उसकी सेना में ६००,००० सैनिक हैं और वह आधुनिक विनाश के सभी साधनों से सुसज्जित है। उसकी नौसेना फ्रांस की नौसेना के बराबर है। उसके उद्योग तथा व्यापार उन्नत दशा में हैं। जो समय अभी अभी समाप्त हुआ है उसमें उसके साधनों पर अत्यधिक भार पड़ा है और कई वर्षों तक शांत होकर पुनर्लाभ तथा पुर्ननिर्माण की आवश्यकता को समझते हुए वह पोर्टस्माऊथ की सन्धि के लिए तैयार हो गया। उसकी आर्थिक कठिनाइयाँ महान् थीं जिसके कारण भारी कर लगाने पड़े। किसी भी जाति ने इतने अल्पकाल में इतना महान् परिवर्तन नहीं कर पाया।

इन घटनाओं की चीन पर प्रतिक्रिया

इन भीषण घटनाओं से चीनियों ने शिक्षा प्राप्त की। एक पूर्वी राज्य जापान की एक महती पाश्चात्य शक्ति पर तथा चीन पर विजयों ने बहुत से प्रभावशाली चीनियों को यूरोपीय पद्धतियों और यूरोपीय ज्ञान को अपनाने के लाभों के विषय में आश्वस्त कर दिया। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि आक्रमणकारियों को बाहर निकालने का एकमात्र उपाय है उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त अस्त्रों से सुसज्जित हो जाना।

चीन में सुधार

सुधारों का परिवर्तनकारी प्रभाव मध्य राज्य में सफलतापूर्वक कार्यान्वित होने लगा। इस राज्य में सैनिक भावना जागरित हुई जो कि इससे पूर्व सैनिक गुणों से घृणा करती थी। जापानी प्रशिक्षणकर्त्ताओं के अधीन यूरोपीय आदर्शों और सैनिक सज्जा की पद्धति के अनुसार एक चीनी सेना के निर्माण का प्रारम्भ किया गया। पाश्चात्य ज्ञान की उपलब्धि को प्रोत्साहित किया गया। यूरोप तथा अमरीका के

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के लिए बड़ी संख्या में विद्यार्थी गये। उनमें से बीस सहस्र जापान को गये। राज्य में असैनिक सेवाएँ अर्थात् अधिकारी जीवन उन लोगों के लिए निश्चित कर दिए जो पाश्चात्य विषयों में विशिष्टता प्राप्त करते थे। सम्पूर्ण देश में विद्यालय खोले गये। कुछ स्थानों पर कन्याओं के लिए भी सार्वजनिक विद्यालय स्थापित किये गये जो कि किसी भी प्राच्य देश के लिए उल्लेखनीय बात थी। १९०६ में १० वर्ष के भीतर अफीम के प्रयोग को प्रतिसिद्ध करने की राजघोषणा प्रकाशित की गयी। यह राजघोषणा तब से कार्यान्वित की गयी है और अन्त में अफीम का व्यापार समाप्त कर दिया गया है।

संविधान के लिए वाक दान

राजनीतिक पुनर्व्यवस्था भी प्रारम्भ की गयी। विभिन्न देशों की प्रतिनिधि पद्धतियों के अध्ययन के लिए एक साम्राज्यीय आयोग १९०५ में यूरोप भेजा गया। उसके लौटने पर बहुत से उच्चाधिकारियों की एक समिति उसके प्रतिवेदन के अध्ययन के लिए नियुक्त की गयी। अगस्त १९०८ को एक अधिकृत राजघोषणा प्रकाशित हुई जिसने सम्राट् के नाम पर १९१७ में एक संविधान प्रदान किये जाने का वचन दिया।

मंचू वंश का पतन

परन्तु परिवर्तन की प्रक्रिया जितना सोचा गया था उसकी अपेक्षा अधिक द्रुतगति से होनी थी। उग्रवादी तथा क्रान्तिकारी दल बने जिन्होंने अविलम्ब संविधान देने की माँग की। सम्राट् का शासन इस माँग का प्रतिरोध नहीं कर सका। अतः १९११ में एक संविधान स्वीकार किया गया जिसने वृहत् शक्तियों वाली संसद की स्थापना की। इन सब घटनाओं को महत्वहीन कर देने के लिये मध्य तथा दक्षिणी चीन में गणतन्त्रवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और शीघ्रता से प्रसारित हो गया। अन्त में नानकिंग में एक गणतन्त्र की उद्घोषणा की गयी और सनयातसेन जिसने अंशतः संयुक्त राज्य में शिक्षा प्राप्त की थी राष्ट्रपति चुना गया। इस गणतन्त्रवादी आन्दोलन तथा उत्तर में सम्राट् दल के संघर्ष के परिणामस्वरूप फरवरी १९१२ में बाल सम्राट् को सिंहासन त्यागना पड़ा। यह मंचू वंश का अन्त था।

चीन का गणतन्त्र उद्घोषित किया जाना

इसके पश्चात् यूनानशीकोपाई चीन के गणतन्त्र का राष्ट्रपति चुना गया। इस नये गणतन्त्र को गम्भीर परिस्थिति का सामना करना पड़ा। क्या ठोस तथा स्थायी आधार पर नये शासन की स्थापना संभव थी अथवा यह गणतन्त्र चीनियों के आन्तरिक झगड़ों का शिकार बन जावेगा अथवा वह यूरोपीय शक्तियों द्वारा विदेशी आक्रमण का शिकार बन जावेगा अथवा अपेक्षाकृत अधिक संभव था कि वह महत्वाकांक्षी तथा पड़ौसी जापान का शिकार बन जावे ? ये भविष्य के रहस्य थे।

अध्याय ३६

जापान के साथ युद्ध के पश्चात् रूस की दशा

अब हम उस स्थिति में हैं कि रूस अति निकटवर्ती इतिहास को थोड़ा सा समझ सकें। यह इतिहास घटनाओं से परिपूर्ण है। जटिल एवं शांतिहीन है। यह इतिहास जापानी युद्ध की रूस पर होने वाली प्रतिक्रिया का लेखा है।

जापान के युद्ध की रूस में अप्रियता

रूसी लोग इस युद्ध को प्रारम्भ से ही नहीं चाहते थे। पराजय की घटनावली ने इस अप्रियता को और भी अधिक बढ़ा दिया और इस युद्ध के समय जनता की घृणापूर्ण अप्रसन्नता एवं क्रोध कई प्रकार से प्रदर्शित हुये। इसके लिये शासन को ठीक ही उत्तरदायी माना गया और उसकी असफलताओं के कारण उसको श्रेय नहीं दिया गया। इसने पूर्व स्थित असंतोष को अत्यधिक बढ़ा दिया। इसलिए जिस परिस्थिति में सरकार ने अपने को पाया उसने उसको उस असंतोष की सार्वजनिक अभिव्यंजना को शीघ्रता पूर्वक दबाने में असमर्थ बना दिया। कई मास तक

सार्वजनिक असंतोष की स्पष्ट अभिव्यंजना

विवाद, प्रकाशन (प्रेस) और भाषण की असाधारण स्वतन्त्रता रही जो बीच-बीच में जब-तब अधिकारियों द्वारा समाप्त कर दी जाती थी परन्तु वह समाप्ति उसकी केवल पुनः स्थापना के लिए होनी थी। जापान के साथ होने वाले युद्ध के परिणाम शासन के लिए अत्यन्त अप्रत्याशित एवं असुखद रहे। चारों ओर अव्यवस्थापूर्ण असंतोष छाया हुआ था।[1]

प्लेह्वे का लौह काल

इस समय प्लेह्वे गृहमन्त्री था जिसके हाथ में सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व था। यह निकटवर्ती काल के रूसी इतिहास के उन व्यक्तियों में से था जिसको लोग सर्वाधिक घृणा करते थे। प्लेह्वे १९०२ से सत्तारूढ़ रहा था और उसने अपने असाधारण कठोर चरित्र को प्रकट किया था। उसने उदारवादियों को सर्वत्र अविरल रूप से तथा निर्दयतापूर्वक अभियोजित किया था। उसने उनसे कारावासों को भर दिया था। वह फिन लोगों के विरुद्ध पूर्व कथित आन्दोलन का

---

1. मिलाइये-हिन्दी मुहाविरा—'चले मरुत उनचास'। —अनुवादक

केन्द्र रहा था और ऐसा जान पड़ता है कि उसने उस समय होने वाले यहूदियों की अत्यन्त भयानक हत्याओं का गुप्त रूप से समर्थन किया था। जितना वह घृणा का पात्र था उतने घृणा के पात्र बहुत कम लोग हुए हैं। उसने युद्ध के कारण आलोचना की बढ़ती हुई मात्रा को, सभाओं को भंग करने और विद्यार्थियों, व्यावसायिक व्यक्तियों और श्रमिकों को साइ-वेरिया को निष्कासित करने की उन्हीं पुरानी निर्दयतापूर्ण पद्धतियों को प्रयोग में लाकर साधारण रीति को दमन करने का प्रयत्न किया। एक पुराने विद्यार्थी द्वारा उसकी गाड़ी के नीचे बम फेंके जाने से जुलाई १९०४ को उसकी हत्या हुई। अब रूस निवासी अधिक सुविधापूर्वक जीवन यापन करने लगे।

प्लेह्व का वध

जनता के विभिन्न उदारवादी तथा प्रगतिशील तत्वों ने ऐसी स्वतन्त्रता के साथ अपनी इच्छाओं की अभिव्यंजना की जैसी उन्होंने पहले कभी नहीं की थी। उन्होंने माँग की कि रूस में विधि का शासन स्थापित किया जावे, कि नौकरशाही तथा पुलिस नियन्त्रण का समय जोकि समीक्षण तथा क्रूरता की सीमाओं को मान्यता प्रदान नहीं करता है[1] समाप्त हो जावे। उन्होंने व्यक्ति के उन अधि-कारों की माँग की जोकि पश्चिमी यूरोप में साधारणतया पाये जाते हैं—अन्तःकरण की स्वतन्त्रता, भाषण की स्व-तन्त्रता, प्रकाशन की स्वतन्त्रता, सार्वजनिक सभाओं और समुदायों की स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र न्यायाधीशों द्वारा न्याय किये जाने की स्वतन्त्रता। उन्होंने जनता द्वारा बनाये जाने वाले संविधान की तथा राष्ट्रीय संसद की भी माँग की।

रूसियों द्वारा हत्या के औचित्य का समर्थन

सम्राट् जार ने इस माँग को स्वीकार करने के लिए अपनी प्रवृत्ति प्रदर्शित नहीं की। इससे अव्यवस्था बनी रही और अधिक व्यापक होती चली गयी और वह विशेष रूप से तब बढ़ी जबकि ये लज्जास्पद तथ्य ज्ञात हुये कि राष्ट्रीय सम्मान की परवाह न करके अधिकारी धनवान बनते जा रहे थे, जो सामान सेना के लिए था उसको अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए बेच रहे थे और रैडक्रास समिति निधि को भी हड़पे जा रहे थे। युद्ध अपमानजनक तथा रक्तरंजित पराजयों की घटनावली बना जा रहा था और एक भयानक घेरे के पश्चात् १ जनवरी १९०५ को पार्ट आर्थर ने आत्म-समर्पण कर दिया। सभ्य संसार उस घटना से जो कुछ सप्ताहों पश्चात् घटित हुई अत्यन्त भयभीत हो गया। यह घटना थी २२ जनवरी १९०५ के **रक्तरंजित रविवार का हत्याकाण्ड**।

सार्वजनिक असंतोष

उग्रवादी पादरी, पिता गैपन के नेतृत्व में श्रमिकों ने एक बड़ी संख्या में सेण्ट पीटर्सबर्ग में सम्राट् के प्रासाद पर प्रत्यक्षतः स्वयं सम्राट् के समक्ष अपनी शिकायतें प्रस्तुत करने की आशा से पहुँचने का प्रयत्न किया क्योंकि उनको किसी भी अधिकारी पर विश्वास नहीं था। इसके स्थान पर कज्जाकों तथा नियमित सैनिकों ने उन पर आक्रमण किया और उसका परिणाम हुआ भयावह मानव जीवन का विनाश। कितने व्यक्ति मारे गये यह ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता है।

रक्तरंजित रविवार

---

1. अर्थात् जो अत्यन्त क्रूर और विविहीन हैं। —अनुवादक

१९ अगस्त १९०५ की घोषणा[1]

१९०५ में वर्षभर अशान्ति और कोलाहल होता रहा। कृषकों ने कुलीनों के घरों को जला दिया। स्थल सेना और जल सेना में प्रायः विद्रोह होते रहे। जार का चचा, ग्रांडड्यूक सर्गियस, मार डाला गया जोकि साम्राज्य में अति कुख्यात प्रतिक्रियावादियों में से था और जिसने कहा था कि 'जनता लाठी चाहती है'। रूस में प्रायः अराजकता फैलने वाली थी। अन्त में जार ने विरोध की वर्द्धमान भावना को प्रतिनिधि सभा के सम्बन्ध में घोषणा प्रकाशित करके कम करने का प्रयत्न किया। १९ अगस्त १९०५ से इस सभा के लिए तीव्र माँग की जा रही थी। यह घोषणा कटु निराशा सिद्ध हुई क्योंकि इसमें निरंकुश शासन को बनाये रखने तथा एक ऐसी प्रतिनिधि सभा के लिए वचन दिये जाने का उल्लेख था जिसको केवल परामर्श देने का अधिकार होगा किन्तु यह अधिकार न होगा कि वह यह देखे कि उसका परामर्श माना जाता है अथवा नहीं। अस्तु, आन्दोलन अशिथिल रूप से चलता रहा अथवा नये एवं भयावह रूपों को धारण करता हुआ बढ़ता रहा जिसने अन्त में शासन पर भयपूर्ण दबाव डाला। अन्ततोगत्वा ३० अक्टूबर १९०५ को जार ने एक नई घोषणा प्रकाशित की जिसने अन्तःकरण, भाषण, सभा और समुदाय की स्वतन्त्रता का वचन दिया साथ ही एक प्रतिनिधि सभा अथवा **ड्यूमा** का भी वचन दिया जिसका निर्वाचन विस्तृत मताधिकार के आधार पर होगा। यह अपरिवर्तनीय नियम भी स्थापित करते हुए कि बिना **ड्यूमा** की स्वीकृति के कोई भी विधि कार्यान्वित नहीं होगी, **ड्यूमा** को सार्वजनिक अधिकारियों पर प्रभावशाली नियन्त्रण भी प्रदान किया जावेगा।

सम्राट् ड्यूमा अथवा प्रतिनिधि सभा को वचन देता है

इस प्रकार जार ने 'ड्यूमा' का वचन दिया जोकि विधि-निर्मात्री संस्था होनी थी तथा जिसको राज्याधिकारियों की देखभाल का अधिकार प्राप्त होना था परन्तु इसके अधिवेशन प्रारम्भ होने के पूर्व ही उसने इस पर काट करने प्रारम्भ कर दिए। उसने एक आदेश प्रकाशित किया जिसके अनुसार एक **साम्राज्य परिषद्** स्थापित होनी थी अर्थात् एक ऐसी संस्था जिसमें अधिकतर नौकरशाही अथवा पुरानी परम्पराओं से सम्बन्धित व्यक्ति राज्य द्वारा नियुक्त किये जावेंगे। यह व्यवस्थापिका का एक प्रकार का उच्च सदन होगा और **ड्यूमा** उसका निम्न सदन होगा। जार की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किये जाने के पूर्व सभी विधियाँ **परिषद्** तथा **ड्यूमा** दोनों के द्वारा स्वीकृत हो जानी चाहिए।

साम्राज्य परिषद्

मार्च तथा अप्रैल १९०६ में **ड्यूमा** के लिए निर्वाचन हुये तथा परिणाम स्वरूप सांविधानिक लोकतन्त्रवादियों को, जिन्हें सर्वसाधारण 'कैडेट' कहता था, विशाल बहुमत प्राप्त हुआ। अब जार के नाम पर कुछ संघटनात्मक विधियाँ प्रकाशित हुई। ये ऐसी विधियाँ थीं जिनको ड्यूमा स्पर्श (परिवर्तित) नहीं कर सकती थी। इस प्रकार प्रथम बैठक होने के पूर्व ही इस संस्था की शक्तियों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

संघटनात्मक विधियाँ

---

1. Manifesto=अधिपत्र, आविपत्र, घोषणा।

१० मई १९०६ को स्वयं निकोलस द्वितीय ने विशाल समारोह के साथ ड्यूमा का उदघाटन किया। इसका जीवन अल्पकालीन तथा अशान्तिपूर्ण होना था। इसने प्रारम्भ से ही यह प्रदर्शित किया कि यह पाश्चात्य उदारवाद के प्रसिद्ध आधार पर रूस में व्यापक सुधार चाहती है। नौकरशाही के दलों तथा दरबार ने इसका विरोध किया जो इसके अधिवेशन को तो न रोक सके किन्तु वे उसको शक्तिहीन बनाने के लिये कृत संकल्प थे तथा उसकी समाप्ति के लिये उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने यह माँग की कि **साम्राज्य परिषद्**, द्वितीय सदन, का सुधार होना चाहिये क्योंकि वह पूर्णत: सम्राट् के नियन्त्रण में थी और इस प्रकार जनता के सदन के कार्य को नष्ट कर सकती थी। इसने जनता को अधिकारियों पर नियन्त्रण प्रदान करने के लिये एक मात्र उपाय के रूप में यह माँग की कि मंत्रियों को ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी बना दिया जावे। इसने सम्पूर्ण साम्राज्य में सैनिक विधि (मार्शल लॉ) की समाप्ति की माँग की जिसकी आड़ में शासक वर्ग सभी प्रकार के अपराध करता रहता था। इसने मृत्युदण्ड को समाप्त करने वाला विधेयक पारित कर दिया। कृषकों की आवश्यकताएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं इसलिये उसने यह माँग की कि राज्य, ताज और मठों की सम्पूर्ण भूमि दीर्घकालीन पट्टों पर उनको दे दी जावे।

१० मई १९०६ को ड्यूमा का उद्घाटन

ड्यूमा की माँगे

दो मास से अधिक काल तक ड्यूमा का अस्तित्व रहा। इसके विवाद उच्च-स्तर की बुद्धि एवं सुभाषण के प्रदर्शनों को प्राय: परिलक्षित कराते थे। इन विवादों में बहुत से कृषक प्रख्यात हो गये। इसने शासन के दोषों की स्वतन्त्रापूर्वक तथा कटुता से आलोचना की। इसके अधिवेशन प्राय: झंझावातीय तीव्र कटुता पूर्ण होते थे। मन्त्रियों का व्यवहार प्राय: घृणापूर्ण होता था। जार तथा **साम्राज्य-परिषद्** ने इसके सुधार सम्बन्धी सभी प्रयत्न विफल कर दिये।

ड्यूमा की शक्तिहीनता

मन्त्रियों के उत्तरदायित्व पर निर्णयात्मक संघर्ष हुआ। ड्यूमा जनता को शासन में प्रभावशाली भाग प्रदान करने के लिए एक मात्र उपाय के रूप में इसको माँगती थी। जार इसे लगातार अस्वीकार करता रहा। फलत: गतिरोध हो गया। २२ जुलाई १९०६ को ड्यूमा को भंग करके जार ने इस विषय को संक्षेप रूप में समाप्त कर दिया। उसने स्वयं यह अभिव्यंजित किया कि वह इसकी कार्यवाहियों से 'अत्यन्त निराश' हुआ है और उसने नई ड्यूमा के निर्वाचनों का आदेश दे दिया।

५ मार्च १९०७ को जार ने द्वितीय ड्यूमा का उदघाटन किया। वह शासन को संतुष्ट नहीं कर सकी। शीघ्र ही मन्त्रियों और इसके मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो गया और लगातार बढ़ता रहा। अन्त में शासन ने इसके सोलह सदस्य बन्दी बना लिए और अन्य बहुत से सदस्यों पर क्रान्ति-कारी प्रचार करने का अभ्यारोप लगाया। वास्तव में सभा (ड्यूमा) की ईमानदारी पर यह एक महत्त्वपूर्ण आक्रमण था जोकि अत्यन्त विनम्र सांविधानिक स्वतन्त्रताओं का स्पष्ट अतिक्रमण था। इस स्वेच्छाचारी कार्य का प्रति-रोध करने के लिए तैयार होने वाली **ड्यूमा** १६ जून १९०७ को भंग कर दी गयी और एक नई **ड्यूमा** करने का आदेश दे दिया गया। साथ ही अत्यन्त मनमाने ढंग

द्वितीय ड्यूमा

से निर्वाचन-विधि को परिवर्तित करते हुए और लगभग १३०,००० भूस्वामियों को बहुसंख्यक सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार देते हुये सम्राट् की घोषणा प्रकाशित की गयी। अब तक प्रदान की गयी सांविधानिक स्वतन्त्रताओं का यह भी गम्भीर अतिक्रमण था क्योंकि इन स्वतन्त्रताओं में इस बात का भी वचन दिया गया था कि ड्यूमा की सहमति के विना निर्वाचन-विधि में परिवर्तन नहीं होना चाहिये।

जार निर्वाचन पद्धति में परिवर्तन करता है

शासन ने शब्दों और कार्यों द्वारा यह उद्‌घोषित कर दिया कि शासक की निरंकुशता अक्षुण्ण थी। अधिकारियों ने प्राय: परिचित एवं पुराने ढंग की अनियमिततायें कीं। अनवरुद्ध प्रतिक्रिया परिव्याप्त हो गयी। तृतीय ड्यूमा का जिसका निर्वाचन सीमित एवं धनिकतंत्रीय मताधिकार के अनुसार किया गया था, उद्‌घाटन १४ नवम्बर १९०७ को किया गया। इसका निर्माण अधिकांश प्रतिक्रियावादियों से हुआ था जो कि बड़े-बड़े भूस्वामी थे। यह सभा आज्ञाकारी सिद्ध हुई।

तृतीय ड्यूमा

प्रतिक्रियावादियों के अनुसार शासन ने अभी तक ड्यूमा को समाप्त करने का साहस नहीं किया। आज १९१७ में भी ड्यूमा का अस्तित्व है परन्तु वह व्यवस्थापिका संस्था की अपेक्षा परामर्शदात्री संस्था है। राष्ट्रीय जीवन पर दुर्बल प्रभाव डालती हुई समय के साथ यह स्थायी प्रकृति की संस्था बनती जा रही है। तथा रूस का शासन अब भी प्राय: वैसा ही है जैसा कि जापान तथा रूस के साथ होने वाले युद्ध के पहले था और जैसा कि सम्पूर्ण १९ वीं शताब्दी में रहा। स्वतन्त्रता का भीषण संग्राम अब तक असफल रहा है। १९०४ से १९०७ तक की झंझावातीय वर्षों के पश्चात पुराने शासक वर्गों का पुन: राज्य पर नियंत्रण स्थापित हो गया है और पुराने सिद्धान्त लागू कर दिए हैं। फिन लोगों पर पुन: आक्रमण, पोल लोगों के विरुद्ध अधिकाधिक कठोर विधियाँ और यहूदियों के साथ बर्बर व्यवहार इन (सिद्धान्तों) में से कुछ हैं। रूस अब भी पुरानी मूर्तियों (आदर्शों) की पूजा करता है अथवा उन पुरानी मूर्तियों का अभी तक पतन नहीं हुआ है। आज भी उसका मध्यकालीन अतीत राज्य में अत्यन्त शक्तिशाली तत्व के रूप में विद्यमान है और वह (तत्व) अब भी राज्य की प्रकृति पूर्णत: मध्यकालीन बनाये हुये है। यह बात आगे चलकर ज्ञात होगी कि १९१४ का युद्ध उन उपलब्धियों को प्राप्त करने में सफल होगा अथवा नहीं जिनको जापान के साथ लड़े जाने वाले युद्ध ने प्रारम्भ तो किया किन्तु उपलब्ध न कर सका। ये उपलब्धियाँ होनी थीं—राष्ट्र की संस्थाओं और नीतियों में महत्वाकांक्षाओं और मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन। इस समय यह निश्चय रूप से अज्ञात है।

प्रतिक्रिया की विजय

अध्याय ३७

१९१२ तथा १९१३ के बल्कान युद्ध

शान्ति का आन्दोलन

युद्ध की भावना, युद्ध के लिये असाधारण समारम्भ तथा युद्ध को रोकने के लिये उत्साहपूर्ण एवं सुकेन्द्रित प्रयत्नों का जिस मात्रा में हमारे समकालिक संसार में प्राधान्य रहा है, उस मात्रा में उनका प्राधान्य इतिहास में इससे पूर्व कभी नहीं रहा। अन्त में एक ऐसा संघर्ष, जो कल्पना को उद्वेलित कर देता है और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है तथा जिसके परिणामों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, प्रारम्भ हो गया है और वह अपनी लौह पाश में समस्त संसार को जकड़ रहा है। यह एक शताब्दी के विकास का परिणाम है जो कई बातों में अद्वितीय है। तथापि, यह व्याख्या के परे नहीं है और हमारे लिये यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि ऐसा दुःख एवं निराशाजनक तथा अशुभ मोड़ मानव जाति के भाग्य-चक्र को किस प्रकार दिया गया है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में सैनिक भावना के उदय और विकास पर प्रकाश डाला जा चुका है। यूरोपीय महाद्वीप के अधिकांश देशों ने प्रशा की सैनिक पद्धति को अपना लिया है जिस पर वैज्ञानिक पूर्णता तथा दक्षता की छाप
लगी हुई है। उन्नीसवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश में यूरोप **सैनिकवाद का प्रसार** की अभूतपूर्व स्थिति हो गयी अर्थात् वह अस्त्रसज्जित महाद्वीप
बन गया। राष्ट्रों में विनाश के सर्वाधिक पूर्ण उपकरणों, सर्वाधिक सबल स्थल तथा जल सेनाओं को रखने की प्रतिस्पर्धा आधुनिक संसार की सर्वप्रमुख विशेषताओं में से एक विशेषता बन गयी है। युद्ध-पोत इतने सुदृढ़ बनाये गये कि वे आक्रमण को सहन कर सकें। अस्तु भयानक शक्ति के लिये प्रक्षेपणास्त्रों की आवश्यकता हुई और टारपीडो का आविष्कार किया गया। इस प्रक्षेपणास्त्र को छोड़ने के लिये एक नया साधन उपयोगी रहेगा और इस प्रकार टारपीडो नाव का विकास हुआ। अतः इसको निष्फल बनाना तात्कालिक आवश्यकता थी और उसका परिणाम दिखाई देने वाली नावों की अपेक्षा अप्रत्यक्ष रूप से पानी के नीचे चलने वाली नावें अधिक उपयोगी

होंगी और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जल के नीचे चलने वाली नावें[1] (सबमैरीन) उपलब्ध करायी गयीं। अब हम युद्ध के वायव्य सहायकों के रूप में चलाये जा सकने वाले गुब्बारों और वायुसेना से वायु पर अधिकार कर रहे हैं। इस प्रकार विज्ञान की प्रगति से मानव का विस्मृत कालीन व्यवसाय, युद्ध, लाभान्वित हो रहा है और उस प्रगति में सहयोग प्रदान कर रहा है। अतीत के युद्ध भूमण्डल पर लड़े गये थे। वर्तमान के युद्ध ऊपर आकाश में लड़े जाते हैं और भविष्य में भूगर्भ में जल के नीचे लड़े जायेंगे।

युद्ध के आधुनिक उपकरणों का मूल्य

परन्तु यह अब अत्यधिक व्ययसाध्य है। समुद्रतट की प्रतिरक्षा करने वाली सबसे बड़ी तोप के निर्माण पर एक सौ सहस्र डालरों से अधिक व्यय होता है जोकि २० मील तक मार करती है और जिससे एक बार चलाई जाने वाली गोली (बारूद) पर एक सहस्र डालर व्यय होते हैं। एक युद्धपोत (ड्रेड नॉट) बनाने के लिए १५० लाख डालर की आवश्यकता होती है और अब हमारे पास भीषणतर युद्धपोत (सुपर ड्रेड नॉट) हैं जोकि इससे अधिक मूल्यवान तथा अधिक विनाशकारी हैं। मुख्यतया सैनिक व्यय के कारण यूरोपीय देशों के ऋण गत तीस वर्षों में प्रायः दूने हो गये। 'सशस्त्र शान्ति' के युग में यूरोपीय राज्यों के सैनिक बजट प्रतिवर्ष डेढ़ अरब डालर के लगभग थे जोकि १८७१ में जर्मनी द्वारा फ्रांस से युद्ध की क्षति के रूप में लिये जाने वाले धन का ड्योढ़ा है। यह भार इतना अधिक हो गया और प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र हो गयी कि इन्होंने एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दिया जिसका उद्देश्य उसको समाप्त करना था। इस बुराई की वृद्धि ने स्वयं उसके उपचार की इच्छा को प्रोत्साहित किया।

निकोलस द्वितीय तथा शस्त्रास्त्रों का सीमित किया जाना

१८९८ की ग्रीष्म ऋतु में रूस के सैनिक अधिकारी इस बात पर विचार कर रहे थे कि वे पुराने ढंग के तोपखाने को अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक तथा अत्यधिक व्ययसाध्य तोपखाने में परिवर्तित करने की आवश्यकता से सर्वोत्तम ढंग से कैसे बच सकते हैं। इस विवाद से यह विचार विस्तृत हुआ कि यदि सम्भव हो तो शास्त्राओं की इस वृद्धि को रोकना वांछनीय होगा। यह किसी एक राष्ट्र द्वारा अकेले सम्पादित नहीं किया जा सकता था परन्तु यदि हो सकता है तो सभी के द्वारा किया जाना चाहिए। इन विवादों का निष्कर्ष यह हुआ कि २४ अगस्त १८९८ में जार निकोलस द्वितीय ने (संसार की) शक्तियों को यह सुझाते हुए समाचार भेजा कि इस सामान्य समस्या पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया जावे।

हेग में प्रथम शान्ति सम्मेलन

जार द्वारा इस प्रकार सुझाया गया सम्मेलन १८९९ में हेग में हुआ। संसार की ५९ संप्रभु सरकारों में से २६ सरकारों का उनके एक सौ प्रतिनिधियों ने प्रतिनिधित्व किया। इनमें २० राज्य यूरोपीय थे और चीन, जापान, फारस तथा स्याम चार एशियायी तथा दो संयुक्त राज्य तथा मैक्सिको अमरीकी राज्य थे। यह सम्मेलन १८ मई को प्रारम्भ हुआ और २९ जुलाई को समाप्त हुआ।

---

1. पनडुब्बी।

अधिकांश प्रतिनिधियों के आधिकारिक भाषणों में युद्ध के लिए शस्त्रास्त्र पर होने वाले वृहत् व्यय के भयानक भार एवं अपव्यय पर बल दिया गया जबकि सभी बड़े तथा छोटे राष्ट्रों को शान्ति के कार्यों, दिशा और
कई दिशाओं में सामाजिक प्रगति के लिए अपने सभी साधनों **सैनिकवाद की आलोचना**
की आवश्यकता है। अधिकांश प्रतिनिधियों ने अनिवार्य
सैनिक सेवा से होने वाली क्षति पर भी बल दिया क्योंकि यह सेवा लाखों नवयुवकों को उनके जीवन के व्यवसायों से अर्थात् कई मूल्यवान् वर्षों तक उत्पादक कार्यवाही से दूर हटा देती हैं। इसके विपरीत एक जर्मन प्रतिनिधि ने इस सब को स्वीकार नहीं किया। उसने इस बात को भी नहीं माना कि भारों और करों का आवश्यक भार सन्निकट विनाश और परिसमाप्ति का अशुभ सूचक है। उसने घोषणा की इस सब काल में सामान्य कल्याण की वृद्धि होती रही थी और अनिवार्य सैनिक सेवा उसके देश में भारी बोझ नहीं समझी जाती है परन्तु एक पवित्र एवं स्वदेश प्रेम सम्बन्धी कर्तव्य समझी जाती है जिस पर उसके देश का अस्तित्व, समृद्धि एवं भविष्य निर्भर है।

मतों की इस विभिन्नता से यह सम्मेलन उस मूलभूत प्रश्न पर जिसके कारण यह बुलाया गया था किसी भी समझौते पर न पहुँच सका। इस विश्वास को प्रकट करते हुए कि 'मानव जाति के भौतिक एवं नैतिक कल्याण के लिए उन सैनिक व्ययों की परिसीमा अति वांछनीय है जोकि इस समय संसार पर भार डाल रहे हैं और वह इच्छा प्रकट करते हुए कि शासन 'पृथ्वी एवं समुद्र की सेनाओं की तथा सैनिक बजट की परिसीमा सम्बन्धित समझौते की संभावनाओं का अध्ययन करेंगे' यह सम्मेलन केवल एक प्रस्ताव पारित कर सका।

विवाचन अथवा मध्यस्थ निर्णय के सम्बन्ध में यह सम्मेलन अधिक सफल रहा। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के जो कूटनीति के साधारण द्वारों से सुलझाये जाने असंभव हो जाते हैं, पंच फैसले (विवाचन) को सुविधाजनक
बनाने के उद्देश्य से इसने एक *स्थायी विवाचन-न्यायालय* **स्थायी विवाचन**
स्थापित किया। इस न्यायालय में निश्चित समयों पर उनके **न्यायालय की स्थापना**
मुकदमों को सुनने के लिए जो इसके सम्मुख रखे जावें,
अधिवेशन करने के लिए न्यायाधीशों का समूह नहीं होता है। परन्तु यह उपबन्ध रखा गया है कि 'प्रत्येक शक्ति अन्तराष्ट्रीय प्रश्नों पर मान्यता प्राप्त दक्षता के चार से अधिक व्यक्तियों को नहीं चुनेगा। वे व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ नैतिक ख्याति प्राप्त किये हुए हों तथा विवाचकों के कर्तव्यों को पूरा करने के लिए प्रवृत्त हों।' उनकी नियुक्ति छह वर्षों के लिए होगी तथा वह नियुक्ति पुनः की जा सकती है। इस लम्बी सूची में से विरोधी शक्तियाँ निर्धारित रीति से न्यायाधीश चुन सकती हैं जोकि किसी मुकदमे (वाद) का निर्णय करेंगे।

इस न्यायालय की सहायता वैकल्पिक है परन्तु यह सुनवाई करने के लिए सदा प्रस्तुत रहता है। झगड़ने वाले पक्षों के लिए विवाचन पूर्णतः वैकल्पिक है परन्तु यदि वे विवाचन चाहते हों तो यह यंत्र (अर्थात् न्यायालय) सुविधापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है। यह एक ऐसा तथ्य है जो सम्भवतः इस प्रयोग को प्रोत्साहित करता है।

प्रथम शांति-सम्मेलन का कार्य अत्यन्त सीमित एवं विनम्र था तथापि उत्साह-वर्द्धक था। परन्तु यह बात शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो गयी कि नयी शताब्दी शान्ति नहीं प्रत्यक्ष तलवार को लायेगी और शक्ति अब भी संसार पर शासन करती है। जो लोग भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के नियम विवाचन के सिद्धान्त के द्रुत प्रसारण के विषय में आशावादी थे वे सम्मेलन के स्वल्प परिणामों से अत्यन्त निराश हुए तथा परिवर्ती घटनाओं से वे और भी अधिक दुखी हुए।

बीसवीं शताब्दी युद्धों से प्रारम्भ होती है

क्योंकि इस सम्मेलन के प्राय: समाप्त होते ही और जिसके विषय में यह आशा थी कि शांति के हितों को प्रोत्साहित करेगी दक्षिणी अफ्रीका में विनाशकारी युद्ध प्रारम्भ हो गए और उनके पश्चात् रूस-जापान युद्ध हुआ। यूरोपीय राज्यों के स्थल तथा जल सेनाओं पर व्यय भी बढ़ते रहे और वे सर्वदा से अधिक द्रुतगति से बढ़े। १८९८ से १९०६ तक के ८ वर्षों में वे व्यय प्राय: ७०,०००,००० पौण्ड अधिक हो गये। पूर्ण योग्य २५०,०००,००० पौण्ड से ३२०,०००,००० पौण्ड हो गया।

हेग सम्मेलन का परिणाम इतना निराशाजनक रहा परन्तु हतोत्साहनों के होते हुए भी शांति के इच्छुक (मित्र) सक्रिय रहे और अन्त में १९०७ में हेग में द्वितीय शांति सम्मेलन बुला लिया गया। यह भी निकोलस द्वितीय के द्वारा ही बुला लिया गया था, परंतु राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इस का श्रीगणश किया था। जून १५ से अक्टूबर १८ तक द्वितीय सम्मेलन के अधिवेशन चले। १९०७ में

हेग का द्वितीय शांति सम्मेलन

अपने को संप्रभु कहने वाले ५७ राज्यों में से ४४ राज्यों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। अत: जिस संख्या में राष्ट्रों का इस सम्मेलन में प्रतिनिधित्व हुआ वह पहले सम्मेलन की प्रतिनिधि संख्या की प्राय: दूनी थी और सदस्यों की संख्या दूने से भी अधिक थी। यह एक सौ के स्थान पर दो सौ छप्पन हो गई थी प्रमुख वृद्धियाँ मध्य एशिया तथा दक्षिणी अफ्रीका के गणतन्त्रों के भाग लेने के कारण हुई थीं। वास्तव में अमरीकी शासनों की संख्या जिनके प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया, दो के स्थान पर उन्नीस हो गयी। इक्कीस यूरोपीय, उन्नीस अमरीका तथा चार एशियायी राज्यों ने इस द्वितीय सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजे। इसकी सदस्यता ने हमारे समय को कुछ विशेषताओं का सर्वोत्तम रूप से प्रदर्शन किया। अन्य विशेषताओं में से एक यह असंदिग्ध तथ्य प्रदर्शित हुआ कि हम विश्व राजनीति के युग में रहते हैं, और पृथक्करण का अब अस्तित्व नहीं रहा—यह पृथक्करण चाहे राष्ट्र का हो, चाहे गोलार्द्ध का हो। यह सम्मेलन यूरोपीय नहीं था प्रत्युत अन्तर्राष्ट्रीय था। अधिकांश राज्य यूरोपीय नहीं थे। युद्ध के अपेक्षाकृत दयालुतापूर्ण रीति से वास्तविक संचालन के नियमन के अधिसमयों को अपनाने में और पूर्वापेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के कुछ पहलुओं की अधिक निश्चयपूर्वक परिभाषा करने में इस सम्मेलन ने पर्याप्त लाभदायक कार्य किया। परन्तु अनिवार्य विवाचन के सम्बन्ध में और निरस्त्रीकरण अथवा शस्त्रास्त्र पर परिसीमा के सम्बन्ध में कोई सफलता नहीं मिली। उसने यह प्रस्ताव पारित किया, "सैनिक व्यय के नियंत्रण के सम्बन्ध में यह सम्मेलन १८९९ के सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्ताव की पुष्टि करता है, और चूँकि उक्त कथित वर्ष से प्राय: प्रत्येक देश का सैनिक व्यय बढ़ गया है, इसलिए यह सम्मेलन उद्घोषित करता है कि यह अत्यन्त वांछनीय है कि शासन इस प्रश्न का गम्भीर अध्ययन करें।"

सम्मेलन का कार्य

यह सैद्धान्तिक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ । शासनों की दृष्टि में इस प्रस्ताव के महत्त्व पर जो कठोर टीका थी वह आगामी वर्षों के उनके सर्वदा वर्द्धमान सैनिक तथा नौसैनिक विनियोगों, गुरुतर प्रतिस्पर्धाओं तथा उनके गम्भीरतर होते हुए दृढ़-विचार के इतिहास में अन्तर्निहित था । यह दृढ़ संकल्प उस सबके लिए तैयार रहने के हेतु था जो भविष्य के गर्भ में उनके लिए छिपा हुआ था ।

उस भविष्य में उनके लिए १९१२ तथा १९१३ के बल्कान प्रायद्वीप के दो भीषण युद्ध थे । और १९१४ की भयावह प्रलय अर्थात् विश्व युद्ध था ।

ओटोमन साम्राज्य की समाप्ति

१९०८ की तुर्की क्रांति

हम देख चुके हैं कि तुर्की की सभी जातियों ने किस उत्साह के साथ २४ जुलाई, १९०८ की रक्तहीन क्रांति का स्वागत किया था । यह एक नवीन युग का उषाकाल प्रतीत हुआ । तथापि एशिया में नहीं तो वह यूरोप में तुर्की साम्राज्य की समाप्ति का प्रारम्भ सिद्ध हुआ । उस दिन से ६ वर्ष पश्चात् यूरोपीय युद्ध के प्रारम्भ होने तक बल्कान प्रायद्वीप संसार के झंझावात का केन्द्र रहा । एक घटना के पश्चात् दूसरी घटना शीघ्रता से, चमत्कार से और उत्तेजनात्मक ढंग से अपने सम्मुख लम्बी होती हुई तथा गम्भीर होती हुई परछाईं डालती हुई घटित होती रही । इन घटनापूर्ण वर्षों का पर्याप्त वर्णन यहां नहीं किया जा सकता है । महत्त्वपूर्ण तथा ध्याना-कर्षक नाटक की क्रमागत दशाओं को प्रकट करने वाली रूपरेखा मात्र दी जा सकती है ।

१९०८ की जुलाई के दिवसों में जिस सुगमता से 'युवक तुर्कों' ने अब्दुल हमीद के घृणित शासन को समाप्त किया तथा स्वतन्त्रता एवं सच्चे व्यवहार के जो सिद्धांत उद्घोषित किये उन्होंने साम्राज्य के बाहर तथा भीतर विशाल जनसमूहों में सुखदतम आशाओं को जागरित किया और उनकी सर्वोत्कृष्ट अभिरुचिपूर्ण सहानु-भूति को प्राप्त किया । सम्पूर्ण वातावरण इस आशा से ओतप्रोत था कि इस दुःख और वेदनापूर्ण देश में, जहाँ अब तक तर्कहीनता अपने सभी विविध रूपों में प्रधान रही थी स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव का शासन स्थापित होने वाला था । क्या पुनर्जीवित, अभिनवीकृत और उदारीकृत तुर्की जोकि अपने नागरिकों के कल्याण और देशभक्ति से सबल बन गयी है और अपने अंधकारपूर्ण अतीत के दुःखजनक उत्तराधिकार से मुक्त हुई है अन्त मे दयालु तथा प्रगतिशील राष्ट्रों के परिवार में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी ? क्या एक नये शासन के अधीन जिसमें प्रत्येक स्थान को कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त होगी जो धर्म तथा भाषा की आवश्यक स्वतंत्रता की प्रत्या-भूति करने के लिये पर्याप्त हो पुराने जातिगत तथा धार्मिक झगड़े तिरोहित नहीं हो जावेंगे ? क्या स्वतंत्रता की बहुभाषीय परिस्थितियों से सबल राष्ट्रीय स्वदेश प्रेम, जिसको निरंकुशता कभी भी आमंत्रित एवं उत्पन्न नहीं कर सकी, विकसित नहीं किया जा सकता था ? क्या अपनी विविध जातियों और धर्मों के प्रति सच्ची सहिष्णुता के सिद्धान्त को अपना कर तुर्की एक सबलतर राष्ट्र नहीं बन सकता था ? क्या इन आदिकालीन कठोर विपरीत भावनाओं तथा कटुताओं को दूर करने का समय नहीं आ गया था ? क्या जातियाँ तथा धर्म आवश्यक एकता के अधीन नहीं

किये जा सकते थे ? क्या प्रसिद्ध पूर्वीय प्रश्न का यह अन्तिम, यद्यपि अप्रत्याशित, समाधान नहीं हो सकता था ?

विदेशी शक्तियों का दृष्टिकोण

इन स्वर्ण दिवसों में भी संसार के उन अनवस्थित होने के लिये आगामी आनन्द तथा न्याय की सहस्राब्दी के कोई भी प्रामाणिक चिह्न न देख सकने के कारण कुछ लोग इस बात का संदेह करते थे। कम से कम इतने विस्तृत परिवर्तन की समस्या अति कठिन होगी। जैसा कि यूरोप के इतिहास की बहुत सी भूतकालीन घटनाओं ने संकेत किया कि पुरानी प्रणाली के सुखद विनाश पर जो मतैक्य प्रदर्शित किया गया था वह नई प्रणाली की रचना में संभवतः प्रदर्शित न किया जाये। यदि तुर्की को स्वयं अपने भावी सुधार कार्य पर अपनी शक्ति को केन्द्रित करने के लिये अकेला छोड़ दिया जाता तो संभवतः वह सफल हो जाती। परन्तु गत शताब्दियों की अपेक्षा उसको (अपने सुधार कार्य के हेतु) अब भी अधिक अकेला नहीं छोड़ा गया। **पूर्वीय प्रश्न** ने यूरोप की शक्तियों को दीर्घकाल से चिंतित रखा और साथ ही उसकी भूलभुलइयों अर्थात् जटिल समस्याओं में अपना लाभ खोजने के लिये वे लुब्ध रहीं। यह प्रमुखतः अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। परन्तु साम्राज्य की शक्ति को प्रवर्द्धित करके आन्तरिक सुधार तुर्की की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को संभवतः अत्यधिक परिवर्तित कर सकते थे।

इस प्रकार १९०८ की जुलाई की क्रान्ति ने यूरोपीय शक्तियों के अवधान को अपने पर अविलम्ब केन्द्रित कर लिया और उसके कारण अकस्मात् आश्चर्यजनक घटनावली[1] घटित हुई। क्या पुनर्जाग्रत तुर्की, जिसमें नवराष्ट्रीय भावना का संचार हो रहा था, अपनी पुनर्व्यवस्थित एवं ठोस आधार पर स्थापित सेना और वित्त-व्यवस्था से अपने उन अधिकृत क्षेत्रों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं कर लेगा जो वास्तव में, जैसा हम देख चुके हैं उससे विच्छिन कर दिये गये किन्तु नाम मात्र को एवं प्राविधिक रूप से विच्छिन्न नहीं थे ? ये क्षेत्र थे—बोसनिया, हर्जीगोविना, बल्गेरिया, क्रीट, संभवतः साइप्रस और मिस्र। इस बात के न्यून प्रमाण उपलब्ध थे कि 'तरुण तुर्की' का इस प्रकार का विचार था अथवा वे ऐसे भयावह कार्य को करने का स्वप्न भी देखते हों। अपनी तात्कालिक समस्या की जटिलता को तथा उसके समाधान के लिये शान्ति की आवश्यकता को पूर्णरूप से समझते हुये यह बात वास्तव में बिल्कुल स्पष्ट थी कि वे अकेले छोड़े जाने की अपेक्षा और अधिक कुछ नहीं चाहते थे (**अर्थात् वे केवल इतना ही चाहते थे कि उन्हें स्वयं अपनी समस्यायें सुलझाने दी जावें और विदेशी शक्तियाँ उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें।**[2]) परन्तु एक की आपत्ति दूसरे का सुअवसर होती है।

३ अक्टूबर १९०८ को आस्ट्रिया-हंगरी के सम्राट ने अन्य शासकों को

---

1. शुद्ध शब्द **घटनावलि** है परन्तु हिन्दी में प्रायः **घटनावली** ही प्रयोग होता है। —अनुवादक

2. अनुवादक ने यह वाक्य भाव को स्पष्ट करने के लिये प्रक्षिप्त कर दिया है। आगे भी यथावश्यकता ऐसा किया गया है।

स्व-हस्तलिखित पत्रों द्वारा बोसनिया तथा हर्जीगोविना को निश्चय रूप से अपने साम्राज्य में मिलाने का अपना निर्णय उद्घोषित किया।

आस्ट्रिया-हंगरी बोसनिया और हर्जीगोविना को मिलाता है

यद्यपि वे अधिकृत रूप से तुर्की के आधिपत्य के अन्तर्गत थे तथापि १८७८ के **बर्लिन सम्मेलन** के इन तुर्की प्रान्तों को 'अधिकार' एवं प्रशासन के लिये आस्ट्रिया-हंगरी को हस्तान्तरित कर दिया था। ५ अक्टूबर को बलगेरिया के राजा फर्डीनेण्ड ने महान् समारोह के साथ तुर्की के आधिपत्य से बलगेरिया की पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा की और **जार** (सम्राट्) की उपाधि धारण की। दो दिन पश्चात् क्रीट द्वीप की यूनानी जनता ने तुर्की के साथ अपने सभी सम्बन्धों को अस्वीकार कर दिया और यूनान के साथ **संघ** की घोषणा की। उसी दिन अक्टूबर ७ को फ्रांसिस जोसेफ ने बोसनिया और हर्जीगोविना की जनता के लिये एक राज-घोषणा प्रकाशित की जिसमें इन प्रान्तों से संयोजन की उद्घोषणा की गयी। इस कार्यवाही के विरुद्ध सर्बिया ने शक्तियों की तीव्र आपत्ति प्रेषित की। अविलम्ब उसकी संसद बुलाई गयी और युद्ध की भावना प्रज्वलित हो गयी तथा यह आशंका हुई कि वह नियंत्रण के बाहर हो जावेगी। यदि आवश्यक हो तो तुर्की के विरुद्ध युद्ध करके भी बलगेरिया की स्वाधीनता की रक्षा के लिये फर्डीनेण्ड तैयार था।

बलगेरिया अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करता है

इन आश्चर्यजनक घटनाओं ने सम्पूर्ण यूरोप में अविलम्ब गम्भीर उत्तेजना जागरित कर दी। ये बर्लिन की संधि की तीव्र अवहेलनायें थीं। आस्ट्रिया-हंगरी तथा बलगेरिया द्वारा उत्पन्न की गयी इस गम्भीर स्थिति ने बर्लिन की संधि पर हस्ताक्षर करने वाली सभी महती शक्तियों को इस दृश्य पर उपस्थित करा दिया। यह भी शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि वे (शक्तियाँ) परस्पर सहमत नहीं थीं। जर्मनी ने यह बात स्पष्ट कर दी कि वह आस्ट्रिया का समर्थन करेगा और ऐसा जान पड़ा कि इटली भी वैसा ही करेगा। अतः यह **त्रिशक्ति संघ** दृढ़ रहा। दूसरे वर्ग में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस थे जिनकी वस्तु-स्थिति स्पष्ट नहीं थी परन्तु वे स्पष्टतः बर्लिन की संधि की अवहेलना से उत्तेजित थे। कूटनीतिक पत्रों का भीषण आदान-प्रदान हुआ। ब्रिटिश विदेशमन्त्री, सर ऐडवर्ड ग्रे, ने उद्घोषित किया कि ग्रेट ब्रिटेन सन्धि के सम्बद्ध अन्य शक्तियों की सहमति के बिना किसी भी शक्ति के द्वारा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के परिवतन के अधिकार को नहीं मान सकता है और यह माँग की कि बल्कान की सार्वजनिक विधि १८७८ की बर्लिन की संधि पर आश्रित थी और वह संधि सभी महती शक्तियों द्वारा की गयी थी। इसलिये वह संधि सम्मेलन में बैठकर उन्हीं महती शक्तियों द्वारा परिवर्तित की जा सकती थी। परन्तु जर्मनी अथवा आस्ट्रिया ने इस सुझाव को नहीं सुना। वे जानते थे कि जापान के विरुद्ध दुर्भाग्यपूर्ण युद्ध के कारण पंगु बना हुआ रूस हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा। उसकी सेना अव्यवस्थित है और उसकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है और वे फ्रांस तथा ग्रेट ब्रिटेन से बिल्कुल नहीं डरते थे। इस प्रकार बर्लिन की संधि की अवहेलना की गयी; तथापि आगे चलकर संधि पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों ने सम्पादित कार्य को औपचारिक मान्यता प्रदान कर दी।

शक्तियाँ बर्लिन की संधि की अवहेलनाओं को नहीं रोकतीं

इन घटनाओं से इन सब राज्यों में सर्बिया सर्वाधिक दुःखी एवं सर्वाधिक

असमर्थ था। कई वर्षों से सर्विया निवासी सर्विला, बोसनिया, हर्जीगोविना और मॉण्टीनीग्रो को, जिनमें सर्व जाति के लोग रहते थे, एक करने की महत्त्वाकांक्षा कर रहे थे और इस प्रकार वे मध्य-युग के सर्व साम्राज्य की पुनर्स्थापना और समुद्र तक पहुँचने के मार्ग को प्राप्त करना चाहते थे। यह योजना प्रत्यक्षतः सदा के लिये अवरुद्ध हो गयी। चूँकि आस्ट्रिया ने बोसनिया और हर्जीगोविना से मार्ग अवरुद्ध कर दिया। इसलिये सर्विया का पश्चिम की ओर विस्तार नहीं हो सकता था। वह समुद्र तक नहीं पहुँच सकता था। इस प्रकार वह अपनी उत्पादित वस्तुओं के लिये केवल अन्य राष्ट्रों की सहमति से ही मंडियाँ प्राप्त कर सकता था। स्विटजरलैण्ड के अतिरिक्त यूरोप के सभी राज्यों में से केवल वही अकेला इस दुःखद परिस्थितियों में था। यह अनुभव करके कि वह इस प्रकार संभवतः अपने शत्रु आस्ट्रिया-हंगरी का अधीन राज्य बन जावेगा, तथा विस्तार की सभी संभावनायें समाप्त होते देखकर, अपने झण्डे के नीचे बल्कान प्रायद्वीप के सर्बों को मिलाने की सभी आशाओं को भग्न होते देखकर (उसकी) यह भावना बलवती थी कि गलाघोंट कर मारे जाने की अपेक्षा अपने से कहीं अधिक असमान शत्रु से युद्ध करना अच्छा था तथापि उसने शीघ्रता से हथियार ग्रहण नहीं किये। परन्तु क्रोध और भय की भावना बनी रही। यह सामान्य दशा का एक ऐसा तत्व था जिसे महत्त्वहीन नहीं समझा जा सकता था और जो भविष्य के लिये अशुभ की सूचना दे रहा था।

सर्बिया

परन्तु 'तरुण तुर्कों' पर केवल बाहर से ही आपत्ति नहीं आई। वह भीतर से भी आई और जैसा कि शीघ्र ही दिखाई दिया वह अधिकांश उनकी अबुद्धिमत्ता में ही निहित थी। उनको कई प्रकार की कठिनाइयों ने चारों ओर से घेर लिया।

सामान्य उत्साह के साथ दिसम्बर १९०८ में नई तुर्की संसद का अधिवेशन हुआ। उसमें दो सदन थे— एक **सीनेट** जिनकी नियुक्ति सुल्तान करता था और एक **प्रतिनिधि सदन** जो जनता द्वारा निर्वाचित होता था। चार मास पश्चात् ऐसी घटनायें घटित हुईं जिन्होंने सांविधानिक शासन के इस प्रयोग को सहसा समाप्त करने की आशंका उत्पन्न कर दी। १३ अप्रैल १९०९ को बिना किसी चेतावनी के कुस्तुतुनिया में सहस्रों सैनिकों ने विद्रोह कर दिया, अपने कुछ अधिकारियों को मार डाला, '**तरुण तुर्कों**' की आलोचना की, और संविधान की समाप्ति की माँग की। नगर भयभीत कर दिया गया। साथ ही एशिया माइनर विशेषकर अदाना में भीषण हत्या-काण्ड हुये जिन्होंने यह प्रदर्शित किया कि पिछले कालों की धार्मिक तथा जातीय कटुताओं में किंचित् भी न्यूनता नहीं आई थी। ऐसा जान पड़ता था कि नये प्रशासन का पूर्ण पतन होने वाला था। एक प्रति-क्रान्ति जुलाई के कार्य को नष्ट करने वाली थी। परन्तु यह प्रति-क्रान्ति सैलोनिका तथा ऐड्रियानोपल से भेजे सैनिकों द्वारा साहस एवं बलपूर्वक दबा दी गयी और शीघ्र ही '**तरुण तुर्क**' पुनः सत्तारूढ़ हो गये। यह मानते हुये कि यह विद्रोह उस सुल्तान द्वारा प्रेरित एवं व्यवस्थित किया गया था जिसने सेना को इस उद्देश्य से भ्रष्ट कर दिया था कि वह अपने पुराने प्रशासन को पुनः स्थापित कर

तुर्की संसद् का उद्घाटन

अप्रैल १९०९ की प्रति क्रान्ति

तरुण तुर्कों का पुनः नियंत्रण स्थापित होता है

सके, उन्होंने उसके शासन को समाप्त करने का दृढ़ विचार किया। २७ अप्रैल १९०९ को अब्दुल हामिद द्वितीय गद्दी से उतार दिया गया और राज्य के वन्दी के रूप में अविलम्ब सालोनिका ले जाया गया। उसका उत्तराधिकारी उसका भाई हुआ जिसे उसने कई वर्षों से कारावास में डाल रखा था। नया सुल्तान मुहम्मद पंचम ६४ वर्ष का होने वाला था। उसने 'तरुण तुर्कों की सेनाओं के प्रति अपनी पूण सहानुभूति तत्काल प्रकट की और सांविधानिक नरेश होने की अपनी इच्छा व्यक्त की। 'तरुण तुर्क' एक वार पुनः सत्तारूढ़ हो गये।

अब्दुल हामिद द्वितीय का सिंहासन से हटाया जाना

प्रारम्भ से ही वे असफल रहे। उन्होंने अपने सुन्दर अवसर के उपयुक्त कार्य नहीं किया। उन्होंने उन आशाओं को पूरा नहीं किया जो जागरित करदी गयीं थीं। उन्होंने उन सिद्धान्तों का सच्चाई से पालन नहीं किया। जिसका उन्होंने प्रतिपादन किया था। उन्होंने अपने अत्यधिक मिश्रित साम्राज्य के विविध तत्वों के प्रति न्यायप्रिय होने, न्याय की भावना को पुनः स्थापित करने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। स्वतन्त्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धान्तों को लागू करने के स्थान पर उन्होंने स्वेच्छाचारी शासन का, एक जाति प्राधान्य का, जनता के अधिकारों के क्रूर दमन का सहारा लिया। उन्होंने ठीक वही किया जो अलसके, लॉरोन तथा पोसोना में जर्मनी ने, रूसियों ने पोलैण्ड और फिनलैंड में और आस्ट्रेलिया-हंगरी के निवासियों ने अपनी सीमाओं के भीतर स्लैविक जातियों के साथ किया था।

तरुण तुर्क प्रतिक्रियावादी तथा निरंकुश बन जाते हैं

अधीन जातियों पर अत्याचार की नीति और शक्ति तथा चालाकी से एकीकरण के प्रयत्न से यूरोप में जलनशील सामग्री (विस्फोटक कारण) विछा दी है और अन्त में प्रज्वलन प्रारम्भ हो गया है। तरुण तुर्कों का शासन उतना ही निरंकुश था जितना कि अब्दुल हामिद का था और उसका परिणाम भी वही हुआ—साम्राज्य का अधिक तथा निर्णयात्मक विघटन।

अधीन जातियों पर अत्याचार

प्रारम्भ से ही उन्होंने अपना उद्देश्य व्यक्त कर दिया था। उन्होंने, तुर्कों ने, अर्थात् शासन करने वाली मुसलमान जातियों ने ऐन-केन प्रकारेण शक्ति को निरंकुशतापूर्वक अपने हाथ में रखने का दृढ़ विचार कर लिया था। संसद के लिये प्रथम निर्वाचन में ही उन्होंने मामलों को ऐसा व्यवस्थित किया था कि अन्य सब जातियों को मिलाकर भी उनका वहुमत रहेगा। वे ईसाई यूनानियों और आर्मीनिया निवासियों अथवा मुसलमान अरबों के साथ शक्ति को विभाजित करना नहीं चाहते थे। उसकी नीति तुर्कीकरण की थी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रूसियों की रूसीकरण की तथा जर्मनों की जर्मनीकरण की थी। उन्होंने अदन के हत्याकाण्डों के करने वालों का दण्ड देने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। इन हत्याकाण्डों में तीस सहस्र से अधिक आरमीनी ईसाइयों का वध किया गया था। इस प्रकार आरमीनी जनता उनके विरुद्ध थी। उन्होंने उन स्वतन्त्रताओं को भी दबाने का प्रयत्न किया जिनका सनातन यूनानी

तुर्कीकरण की नीति

चर्च ने पुराने प्रशासनों के अन्तर्गत उपभोग किया था। जिस प्रकार वे साम्राज्य की सभी जातियों को अपनी जाति के अधीन करना चाहते थे, उसी प्रकार वे शक्ति के सभी धार्मिक अधिकारों को दबाना चाहते थे। इस प्रकार उन्होंने यूनानियों को अप्रसन्न एवं क्रुद्ध कर दिया, जिनको उन्होंने व्यापारिक बहिष्कार के द्वारा भयभीत एवं कटु बना दिया था। इसका कारण यह था कि यूनानी लोग क्रीट निवासियों के सम्बन्ध में व्यवहृत उनकी दमनकारी नीति से सहमत नहीं थे। उनका मकदूनिया के प्रति व्यवहार उनकी मूर्खता की पराकाष्ठा थी। उन्होंने अन्य क्षेत्रों से मुसलमानों को लाकर वहाँ की जनता के मुस्लिम तत्वों को बढ़ाने का प्रयत्न किया। इससे यूनानी, बल्गेरियायी तथा सर्बियायी ईसाई तत्व उत्तेजित हुए। इनमें से बहुसंख्यक ईसाई अपनी शिकायतों को साथ लेकर तथा वहाँ के शासनों से तुर्कों के विरुद्ध युद्ध का अनुरोध करते हुये मकदूनिया छोड़कर यूनान, बल्गेरिया तथा सर्बिया को भाग गये।

मकदूनिया में पूर्ण कुशासन

तुर्कों ने एक पग और आगे बढ़ाया। पश्चिम में अल्बानिया के निवासी थे। ये मुसलमान थे। इन्होंने अब तक अपनी स्थानीय स्वतन्त्रता तथा सेना एवं शासन में तुर्की अधिकारियों की निष्ठावान और प्रशंसित सेवाओं को एकीकृत कर रखा था। तुर्कों ने इस स्वतन्त्रता को दबाने का तथा अल्बानिया निवासियों को प्रत्येक मामले में कुस्तुन्तुनियों के अधिकारियों की आज्ञा मानने पर विवश करने का निश्चय किया। परन्तु अल्बानिया निवासी कई शताब्दियों से विख्यात युद्ध करने वाले रह चुके थे। अब उन्होंने हथियार उठा लिये। प्रतिवर्ष अल्बानिया में विद्रोह हुआ जोकि तुर्कों द्वारा केवल अस्थायी रूप से दबा दिया या कुचल दिया जाता था। इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति को समाप्त कर दिया तथा इन परिश्रमी युद्ध-प्रिय पहाड़ी निवासियों को शान्त करने के निष्फल प्रयत्नों में अपने साधनों का अप-व्यय किया।

अल्बानिया के साथ उनका व्यवहार

इस प्रकार **तरुण तुर्क** के शासन के कुछ वर्ष ही अत्यधिक गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न करने के लिये आवश्यक थे। असंतुष्ट तत्वों की इतनी अधिक संख्या थी। तुर्की को पुनर्जीवित करने, सबके लिये स्वतन्त्रता के आधार पर विभिन्न जातियों को सहयुक्त करने का कोई भी गम्भीर प्रयत्न नहीं किया गया। तुर्की अपने उन लाखों ईसाई प्रजा-जनों से वंचित हो गया जो उस घृणित अत्याचार को सहने की अपेक्षा समीपवर्ती देशों को भाग गये। इन देश निष्कासित व्यक्तियों ने अपने अत्याचारियों के विरुद्ध, जो कुछ वे कर सकते थे, किया।

व्यापक असन्तोष

तरुण तुर्क प्रारम्भ से ही सुधारकों के रूप में असफल रहे क्योंकि वे अपने वचनों के प्रति सच्चे नहीं थे। उनकी असफलता के कारण बलकान प्रायद्वीप में युद्ध हुए और बलकान युद्ध के कारण यूरोपीय युद्ध हुआ। उन्होंने अपने समय को शासकों की जाति के रूप में सिद्ध करने में व्यतीत किया। शीघ्र ही इसका उससे भारी प्रतिशोध लिया गया—उन्होंने जैसा बीज बोया वैसा ही फल पाया।

तरुण तुर्कों ने अपने वचन पूरे नहीं किये

१९११ का तुर्की-इटली युद्ध

जब तुर्की साम्राज्य इस अति विक्षुब्ध दशा में था और जब बल्कान राज्य के सजातियों के साथ मकदूनिया में किये जाने वाले दुर्व्यवहार के कारण आग बबूला हो रहे थे और कुछ करने की इच्छा से प्रकंपित हो रहे थे तभी एक अन्य क्षेत्र में तरुण तुर्कों के लिए आपत्ति उत्पन्न हो गई। इटली कई वर्षों से भूमध्य सागर के दक्षिणी तट पर स्थित देशों पर अपनी लुब्ध दृष्टि डाल रहा था। किसी समय उसने ट्यूनिस को लेने की आशा की थी परन्तु फ्रांस ने अप्रत्याशित रूप से इस दशा में पहले ही उसका मार्ग अवरुद्ध कर दिया और १८८१ में उसने उस देश को छीन लिया। इसी समय इंगलैण्ड ने मिस्र पर अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। जो शेष बचा वह था ट्रिपोली जो कि मिस्र की भाँति तुर्की साम्राज्य का एक भाग था। कई वर्षों से इटली के प्रभावशाली शासन सम्बन्धी तथा कूटनीतिक क्षेत्रों में यह विचार एक स्वयं सिद्ध के रूप मे स्वीकार कर लिया गया था कि वह देश इटली के अधिकार में होना चाहिए। योजनाएँ बनाई गयीं और वे इस देश में आर्थिक स्वरूप के 'प्रशान्त प्रवेश' के लिए अंशतः कार्यान्वित की गयीं। अब, तथापि, वह समय आया हुआ प्रतीत हुआ जब उसे पूर्ण रूप से हस्तगत कर लिया जावे। आस्ट्रिया-हंगरी ने बोसनिया तथा हर्जीगोविना को ले लिया था और बल्गेरिया ने १९०८ में अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी और तुर्की ने अथवा महती शक्तियों में से किसी ने भी इसका सफल विरोध नहीं किया था। क्या इटली की योजना के लिए यह परिपक्व समय नहीं था?

इटली की औपनिवेशिक महत्त्वाकांक्षाएँ

वह प्रत्यक्षतः ऐसा ही समझा जाता था क्योंकि सितम्बर १९११ में उसने ट्रिपोली को अपने युद्धपोत भेज दिये और उस देश की विजय प्रारम्भ कर दी। यह पूर्व कल्पना से अपेक्षाकृत अधिक कठिन सिद्ध हुआ। यद्यपि उसने समुद्र के तटवर्ती नगरों को ले लिया तथापि उन पर उसका पूर्ण अधिकार नहीं रहा और तुर्कों द्वारा वहाँ के निवासियों को आक्रान्ता के विरुद्ध जागरित एवं निर्देशित किये जाने से उसकी देश के भीतरी भागों में प्रगति मन्द एवं अतिव्यय साध्य रही। इटली ने अपने मित्र ऑस्ट्रिया-हंगरी को यह समझा दिया था कि वह यूरोप में तुर्की पर प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं करेगा क्योंकि यूरोपीय तुर्की ज्वलनशील-पिटक कहलाने योग्य था। यदि वह एक बार जलने लगा तो वह विनाशकारी एवं अनुमान न किये जाने योग्य भीषण ज्वाला में परिणत हो जावेगा। [illegible] परान्त मास व्यतीत होते रहे और इटली ट्रिपोली में केवल अनिश्चयात्मक [illegible] उत्पन्न कर रहा था। अतः उसने तुर्कों को संधि की शर्तें स्वीकार करने पर [illegible] करने की आशा करते हुए कुस्तुन्तुनिया के समीप अपेक्षाकृत अधिक [illegible] कार्यवाही करने का दृढ़ विचार किया। उसने आक्रमण किया और ईजियन सागर में स्थित रोडस तथा अन्य बारह द्वीप, डोडेकैनीज को छीन लिया। इसने तथा इस तथ्य ने कि उसी समय तुर्कों के विरुद्ध एक अल्बानिया विद्रोह अधिकाधिक भयावह बनता जा रहा था उनको इटली के साथ सन्धि करने को तैयार कर दिया ताकि

इटली ट्रिपोली पर आक्रमण करता है (१९११)

इटली [illegible] स्थित [illegible] छीनता है

लॉसीन की सन्धि

निवासियों को दबाने के लिए स्वतन्त्र रहें। १५ अक्टूबर १९१२ को ऊँची अथवा लॉसीन में एक संधि पर हस्ताक्षर किये गये जिसके अनुसार तुर्की ने ट्रिपोली को त्याग दिया। यह भी उपबन्धित किया गया कि जैसे ही तुर्की ट्रिपोली से अपनी सेनायें हटा लेगा वैसे ही इटली अपनी सेनाओं को डोडैकैनीज से हटा लेगा। यह एक ऐसा शब्द समूह था जिस पर भविष्य में सरलतापूर्वक विवाद किया जा सकता था।

इटली तुर्की युद्ध का महत्त्वपूर्ण स्वरूप

इस युद्ध का बड़ा महत्त्व इस बात में निहित नहीं था कि इटली ने एक नया उपनिवेश प्राप्त कर लिया था। किन्तु यह इस तथ्य में निहित था कि इसने तुर्की साम्राज्य के उग्र विघटन की प्रक्रिया को जो १८७८ से अवरुद्ध थी, पुनः प्रारम्भ कर दिया; कि इसने उस साम्राज्य की अपनी अक्षुण्णता को सुरक्षित रखने की सैनिक असमर्थता को प्रकट कर दिया; और जो बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह यह है कि इसके कारण प्रत्यक्षतः तथा अधिकांश तुर्की पर बलकान राज्यों का कहीं अधिक गम्भीर आक्रमण हुआ जो आगे चलकर स्वयं यूरोपीय युद्ध का कारण बना। ज्वलनशील-पेटिका जला दी गई थी और फलतः एक सामान्य यूरोपीय युद्ध की प्रचण्ड ज्वालाएँ जलने लगीं। ट्रिपोली पर इटली का आक्रमण अपने परिणामों के कारण महत्वपूर्ण रहा।

बलकानीय युद्ध

बलकानीय राज्य तुर्की के विरुद्ध संगठित होते हैं

इस युद्ध के मध्य बलकानीय राज्य एक दूसरे से तुर्की के विरुद्ध सम्मिलित कार्यवाही के उद्देश्य से बातचीत करते रहे। यह संगठन सरलता से स्थापित नहीं किया जा सकता था क्योंकि ऐतिहासिक, जातीय और भावनात्मक कारणों से जिनका अधिकता के कारण यहाँ पर वर्णन नहीं किया जा सकता है बल्गेरिया, सर्बिया और यूनान एक दूसरे को अधिक नापसन्द करते थे। तथापि वे तुर्कों को और भी अधिक नापसन्द करते थे और उनको तुर्कों से अविरल क्षति उठानी पड़ रही थी। भयानक अत्याचार ही नहीं प्रत्युत मकदूनिया में ईसाइयों के हत्याकांडों ने, जिनमें बहुसंख्यक यूनानियों, बलगेरियो और सर्बों ने अपने प्राण गँवाये, उन राज्यों की जनता को मकदूनिया में रहने वाले अपने भाइयों को मुक्त करने की इच्छा से उत्तेजित कर दिया। इस कार्य को करके वे अपने भूक्षेत्र को भी बढ़ा लेंगे और एक घृणित अत्याचारी शासन को कम अथवा समाप्त कर देंगे। इन राष्ट्रों के लिए तुर्कों को हराने के हेतु मिल जाना संभव हो गया परन्तु उस भूक्षेत्र को जो वे प्राप्त करें परस्पर विभाजन करने में संभवतः वे सहमत न हों क्योंकि इसमें उनकी पुरानी तथा स्थापित महत्त्वाकांक्षाओं और विरोधी भावनाओं में संघर्ष हो सकता था। इन प्रतिस्पर्धाओं और धृणाओं के कारण तुर्कों अथवा अन्य विदेशी शक्तियों ने बलकानीय राज्यों की मैत्री को संभावनाओं में कोई भी स्थान नहीं दिया (अर्थात् असम्भव समझा)।[1]

---

१. यह अनुवादक का वाक्य समूह है स्पष्टीकरण तथा हिन्दी भाषा की प्रकृति की अनुकूलता के कारण प्रक्षिप्त किया गया है। —अनुवादक

परन्तु इस प्रायद्वीप के अशांत इतिहास से बलकानीय राजनीतिज्ञों ने कुछ शिक्षा प्राप्त की थी और उन्होंने अपने झगड़ों को चालू रखने की मूर्खता को समझ लिया था। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि अभी उनका अवसर था, कि वे सम्भवतः [illegible] शत्रु को पुन; कभी भी इतना निर्बल एवं साहसहीन तथा सामान्य यूरोपीय स्थिति को इतनी उपयुक्त नहीं पायेंगे।

इस प्रकार अक्टूबर १९१२ में मॉण्टीनीग्रो, सर्बिया, बलगेरिया और यूनान चार बलकानीय राज्यों ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध किया। यह युद्ध अल्पकालीन रहा और मित्रों को महती सफलताएँ मिलीं। १५ अक्टूबर को अर्थात् ठीक उसी दिन जिस दिन इटली और तुर्की के मध्य लासीन की संधि पर हस्ताक्षर हुए, लड़ाई प्रारंभ हो गयी किन्तु औपचारिक रूप से १८ अक्टूबर तक युद्ध की घोषणायें नहीं की गयी थीं। यूनानी मकदूनिया में भीतर घुस गए, शत्रु पर कई विजयें प्राप्त की और अभियान के प्रारम्भ होने के केवल तीन सप्ताह पश्चात् ८ नवम्बर को युवराज कॉन्सटैण्टाइन के साथ उन्होंने सालोनिका के महत्त्वपूर्ण नगर एवं बन्दरगाह में प्रवेश किया। युवराज कॉन्सटैण्टाइन उनके वर्तमान नरेश हैं और उन्होंने उनके सेनानी के रूप में महत्त्वपूर्ण सैनिक योग्यता को प्रदर्शित किया था। सुदूर पश्चिम में सर्बों तथा मॉण्टीनीग्रो के निवासियों ने भी सफलता प्राप्त की। सर्बों ने कुमानोवो में एक महान् विजय प्राप्त की। यहाँ उन्होंने अपने पूर्वजों की कोसोवो की पराजय का बदला लिया जिसे वे पाँच सौ वर्षों में भी नहीं भूले थे। तत्पश्चात् उन्होंने मानास्टीर छीन लिया।

१९१२ का बलकान युद्ध

यूनानी सालोनिका में प्रवेश करते हैं

विजयी सर्ब

इसी मध्य बलगेरियावासी, जिनके पास अपेक्षाकृत बड़ी सेनाएँ थीं विजय पर विजय प्राप्त करते रहे। उन्होंने तुर्कों को कर्क किलिसी तथा लूले बर्गस की लड़ाइयों में भलीभाँति पराजित किया। पिछली लड़ाई आधुनिक युग की बड़ी लड़ाइयों में से है। बलगेरिया की सेना का इसमें तीन दिन तक भीषण एवं दुर्भेद्य संघर्ष में ३५० सहस्र [illegible] सैनिकों ने युद्ध किया। फलतः तुर्कों की सैनिक शक्ति नष्ट हो गयी। नवम्बर के मध्य तक बलगेरिया के सैनिक तुर्कों की शतालजा पंक्ति तक पहुँच गये जिसका विस्तार मारमोरा सागर से काले सागर तक है। कुस्तुन्तुनिया [illegible] २५ मील दूर स्थित था।

यूरोप में तुर्की शक्ति का विनाश प्रायः पूरा हो चुका था। पूर्व में केवल ऐड्रियानोपुल का अति महत्त्वपूर्ण दुर्ग और पश्चिम में जनीना तथा स्कूतारी का पतन नहीं हुआ था। छः सप्ताह के अभियान में यूरोप में तुर्की का अधिकृत क्षेत्र घटकर कुस्तुन्तुनिया तथा पश्चिम में शतालजा सैनिक दुर्ग रेखा के २५ मील के क्षेत्र तक सीमित हो गया था। इस पतन और विनाश पर तुर्कों, स्वयं बलकानी मित्रों और महाशक्तियों, को [illegible] देने वाला आश्चर्य हुआ। कुस्तुन्तुनिया, ऐड्रियानोपुल, जनीना और स्कूतारी को

तुर्की शक्ति का विनाश

छोड़कर शेष औटोमन साम्राज्य का यूरोप में अस्तित्व समाप्त हो गया था। तुर्की का सैनिक सम्मान तिरोहित हो गया था।

लंदन में दिसम्बर में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों की बैठक संधि करने के लिये हुई। वे असफल रहे क्योंकि बलगेरिया ने ऐड्रियानोपुल के समर्पण की माँग की और तुर्कों ने इसको स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। इसलिए मार्च १९१३ में युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया। एक के पश्चात् दूसरे दुर्ग का पतन होता रहा। ६ मार्च को जनीना, २६ मार्च को ऐड्रियानोपुल और २३ अप्रैल को स्कूतारी का पतन हुआ। तुर्कों को विवश होकर सन्धि की शर्तें माननी पड़ीं। ३० मई को लन्दन की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। इस सन्धि में यह उपबंधित किया गया कि ईजियन सागर पर ईनोस से काले सागर पर स्थित मीडिया तक एक रेखा खींची जावे और उस रेखा के पश्चिम का एड्रियाटिक सागर पर स्थित अनिश्चित सीमाओं के भूभाग अलबानिया को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण तुर्की मित्रों को दे दिया जावे। अलबानिया की सीमायें तथा स्थिति महाशक्तियों द्वारा निर्धारित की जानी चाहिये। क्रीट महाशक्तियों को दे दिया गया और ईजियन सागर के द्वीपों का निर्णय जिनको यूनान ने ले लिया था, महाशक्तियों पर छोड़ दिया गया। १९१३ में क्रीट यूनान के राज्य में मिला लिया गया। यूरोप में सुलतान की सल्तनत प्रायः शून्य बिन्दु तक पहुँच गयी। पाँच शताब्दियों के गौरवपूर्ण अधिकार के पश्चात् उसने अपने को यूरोप से प्रायः बहिष्कृत पाया। अब भी उसके अधिकार में कुस्तुन्तुनिया तथा उसकी सुरक्षा के लिये पर्याप्त उसके चारों ओर का क्षेत्र रह गया। यह महती उपलब्धि चार बलकानीय राज्यों की कृति थी जो मुक्ति के सर्वनिष्ठ कार्य के लिये प्रथम बार एक सूत्र में बँधे थे। महाशक्तियों ने कुछ भी नहीं किया था। तथापि यूरोप ने अब मुक्ति की अनुभूति की कि बलकान प्रायद्वीप के मानचित्र का इतना बड़ा परिवर्तन युद्ध में महाशक्तियों को सम्मिलित किये बिना ही कार्यान्वित कर लिया गया था।

लन्दन का शान्ति सम्मेलन

३० मई १९१३ को लन्दन की सन्धि

तो भी लन्दन की सन्धि दीर्घकाल तक लागू नहीं रहनी थी। जैसे ही बलकानीय राज्यों ने तुर्की पर विजय प्राप्त की वैसे ही वे लूट के विभाजन पर परस्पर युद्ध करने लगे। इस संकट का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं पर नहीं है। यह अंशतः महाशक्तियों, विशेषकर आस्ट्रिया तथा हंगरी का है। यह इन शक्तियों का हस्तक्षेप तथा इस बात का आग्रह था कि तुर्कों द्वारा दिये गये भूभाग में से एक नया स्वाधीन राज्य अलबानिया, बनाया जावे। इसने वह गम्भीर स्थिति उत्पन्न की जिसका संभाव्य परिणाम युद्ध होना था। इसका कारण यह था कि एड्रियाटिक तट पर इस कृत्रिम राज्य के निर्माण से सर्बिया अपनी सर्वाधिक हार्दिक एवं वैध महत्त्वाकांक्षाओं में से एक महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति से पूर्णतः वंचित रहेगा। यह महत्त्वाकांक्षा थी समुद्र के लिये एक मार्ग अर्थात् उसकी चारों ओर से भूखंडों से घिरी हुई स्थिति से एक बचत। इस स्थिति के कारण उसको अपने पड़ोसियों की दया पर निर्भर रहना पड़ता था।

अल्पकालीन सन्धि

सर्बिया अब भी चारों ओर से देशों से घिरा रहा

यदि युद्ध का परिणाम उसके पक्ष में रहे तो तुर्कों के साथ युद्ध प्रारम्भ करने के पूर्व सर्विया तथा बलगेरिया ने ऊपरी मकदूनिया में अपने भावी प्रभाव क्षेत्रों की सीमायें स्पष्ट कर दी थीं। मकदूनिया का वृहत्तर भाग बलगेरिया को मिलेगा और सर्विया की उपलब्धियाँ मुख्यतया पश्चिम में होंगी जिनमें उसके द्वारा अभिलषित ऐड्रियाटिक का तट सम्मिलित रहेगा। परन्तु अब वहाँ अलबनिया की स्थापना की जा रही थी और सर्विया यथापूर्व भूभागों से घिरा हुआ था। आस्ट्रिया का यह दृढ़ विचार था कि सर्विया किसी भी दशा मे एड्रियाटिक राज्य न बनने पावे। उसने सर्विया के विस्तार और अभ्युदय का विरोध किया क्योंकि उसके शासन में लाखों सर्व हैं जो कि वृहत्तर तथा अधिक सम्मानित स्वतन्त्र सर्विया रूस का मोहरा मात्र रहेगा और अपनी दक्षिणी सीमाओं तथा एड्रियाटिक के सहारे रूस के प्रभाव को यदि वह रोक सके तो सहन नही करेगा। वह उस सागर में अतीत की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहना चाहता। अस्तु सर्विया को एड्रियाटिक से वंचित रहना था। सर्विया के समुद्र के मार्ग के अवरोध के कारण मित्रों के मध्य दूसरा बलकान युद्ध हुआ। सर्विया निवासी अत्यधिक क्रुद्ध हुए किन्तु वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। आंशिक प्रतिकार के रूप मे उन्होंने मकदूनिया में उससे वृहत्तर भू भागों की माँग प्रस्तुत की जो उनकी बलगारिया के साथ सन्धि के द्वारा उनके लिये निश्चित किये गये थे। उन्होंने पर्याप्त शुद्ध तर्क प्रस्तुत किया कि जब यह समझौता किया गया था तब से अब परिस्थितियाँ बहुत बदल गयी थीं और नवीन परिस्थितियों ने नवीन व्यवस्था को समुचित एवं आवश्यक बना दिया था। परन्तु इसमें उनको बलगेरिया के आग्रह पूर्ण विरोध का सामना करना पड़ा जिसने इस तर्क के आधार पर कोई भी रियायत देनी स्वीकार नहीं की और संधि की शर्तों को पूर्णतया पालन किये जाने का आग्रह किया। इन दोनों देशों की एक दूसरे के प्रति पुरानी एवं तीव्र घृणा पुनःतत्काल उत्तेजित हो गयी। सर्विया निवासियों ने इस बात का आग्रह किया कि तुर्कों का निष्कासन सभी मित्रों का कार्य था और जो भू-भाग सभी के नाम पर प्राप्त किये गये थे उनका समुचित विभाजन होना चाहिये। इसके प्रतिकूल बलगेरिया निवासी यह तर्क प्रस्तुत करते थे कि युद्ध में उन्हीं ने सबसे भारी लड़ाईयाँ लड़ी हैं। यह बात सत्य थी, कि उन्होंने सबसे अधिक सैनिक दिये थे, कि किर्क, किलिसी और लूली बर्गास की उनकी विजयों के कारण ही यूरोप में तुर्कों की शक्ति का विनाश हुआ था और वे मकदूनिया के उन भू-भागों को संयोजित करने के अधिकारी थे जिनमें उनकी घोषणा के अनुसार बलगेरियायी लोगों का निवास था। इस परिस्थिति में अन्य विचार भी प्रविष्ट हो गये।

आस्ट्रिया द्वारा सर्विया का विरोध

सर्विया और बलगेरिया की माँग

इतना कहना पर्याप्त है कि बलगेरिया अपने मार्ग का अनुसरण करना चाहता था। उसकी सेना अपनी निकट भूतकालीन आश्चर्यजनक विजयों के कारण फूली नहीं समाती थी, वह यूनानियों और सर्विया निवासियों से घृणा सी करती थी, सबके हित में इन के द्वारा की गयी सेवाओं को बलपूर्वक न्यूनता प्रदान करती थी, वह समझती थी कि वह, यदि आवश्यक हो तो, इन दोनों को सरलता से जीत सकती थी और वह अपनी इच्छानुसार जो भी भूभाग चाहे उनसे

बलगेरिया समझौता नहीं मानता

ले सकती थी। बलगेरिया **संग्रामदल** ने औचित्य की भावना को, तथा अपने पूर्व मित्रों के अधिकारों की पूर्ण भावना को त्याग दिया था जिन्होंने यह संघर्ष प्रारम्भ किया था। उसने १९१३ में जून के अन्त में विश्वासघात करके यूनान और सर्बिया पर आक्रमण कर दिया। कई दिनों तक भीषण लड़ाई होती रही जिसमें दोनों पक्षों ने बर्बर नृशंसताओं का प्रदर्शन किया।

बलगेरिया यूनान और सर्बिया पर आक्रमण करता है (जून १९१३)

इस टाले जा सकने वाले युद्ध में बलगेरिया का प्रवेश होने का कार्य और भी अधिक मूर्खतापूर्ण था क्योंकि उसके सम्बन्ध अपने उत्तरी पड़ोसी रूमानिया से अनिर्णीत एवं संदिग्ध थे। रूमानिया ने यह माँग की थी कि बलगेरिया उत्तर पूर्व में अपनी भूमि की एक सँकरी पट्टी उसको दे दे ताकि बलकान राज्यों का संतुलन यथापूर्व ज्यों का त्यों बना रहे। बलगेरिया ने इस तथाकथित प्रेतकर को अस्वीकार कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि रूमानिया ने भी बलगेरिया से युद्ध छेड़ दिया। निकट भूतकाल में खोये हुये देशों में से कुछ भू भागों को पुनः प्राप्त करने का अवसर देखते हुये तुर्क भी इस युद्ध में सम्मिलित हो गये।

बलगेरिया के विरुद्ध रूमानिया तथा तुर्क युद्ध में भाग लेते हैं

इस प्रकार बलगेरिया को सब ओर से शत्रुओं का सामना करना पड़ा। वह तीन के स्थान पर पाँच राज्यों से युद्ध कर रहा था क्योंकि मॉण्टीनीग्रो भी इसमें सम्मिलित था। जून मध्य तक उसकी समझ में आगया कि परिस्थिति निराशपूर्ण थी और वह बुखारेट की संधि करने पर सहमत हो गया। इस सन्धि पर १० अगस्त १९१३ को हस्ताक्षर हुये। इसके अनुसार सर्बिया और यूनान ने अपनी पूर्व आशाओं से अधिक विस्तृत भू भाग प्राप्त किये और रूमानिया को उसके द्वारा चाहा हुआ भू-भाग दे दिया गया। तुर्की को भी विगत वर्ष में खोया हुआ विस्तृत भू क्षेत्र पुनः प्राप्त हो गया जिसमें एड्रियानोपुल का महत्त्वपूर्ण नगर तथा दुर्ग भी सम्मिलित था।

बलगेरिया पराजित हुआ

बुखारेस्ट की संधि

इस सबसे बलगेरिया को क्षति पहुँची जिसने अपने घमण्ड तथा समझौता न करने के स्वभाव के कारण उस भूभाग को खोकर हानि उठाई जिसको वह अन्यथा प्राप्त कर सकता था। साथ ही अपने पुराने तथा घृणित मित्रों को युद्ध क्षेत्र में विजयी देखकर एवं उनके द्वारा उन भूभागों के लेने से जिन्हें वह साधिकार अपना समझता था उसको नीचा देखना पड़ा। इस सबसे बलगेरिया गम्भीर रूप से कटु हो गया और तब से वह बुखारेस्ट की संधि को तोड़ने की प्रतीक्षा कर रहा है जिसको उसने नैतिक रूप से मान्य एवं किसी भी रूप में बलकान प्रायद्वीप की स्थायी व्यवस्था मानना अस्वीकार कर दिया है। सभी बलगेरिया निवासियों के मस्तिष्क में १९१३ के वर्ष की कटु स्मृति बनी रहेगी।

दोनों बल्कान युद्धों से जन-मन की अपार क्षति हुई। तुर्की और बलगेरिया

बल्कान युद्धों का मूल्य

में से प्रत्येक के १५०,००० से अधिक व्यक्ति मारे गये और घायल हुये। सर्विया और यूनान दोनों के पृथक्-पृथक् ७०,००० से अधिक और छोटे से देश मॉण्टीनीग्रो के १०,००० से अधिक व्यक्ति हताहत हुये। असैनिकों की संख्या भी जो भुखमरी अथवा रोग अथवा हत्याकांड से मरे, अत्यधिक थी क्योंकि द्वितीय बल्कान युद्ध निर्विवाद रूप से क्रूरता का युद्ध था। इसके विपरीत मॉण्टीनीग्रो, यूनान तथा सर्विया का आकार प्रायः दूना हो गया। बल्गेरिया और रूमानिया में भी अभिवृद्धि हुई। यूरोप में तुर्की साम्राज्य अपेक्षाकृत छोटे से भूभाग तक सीमित हो गया—उसका क्षेत्रफल बहुत कम हो गया।

मानचित्र में परिवर्तन

बल्कानीय युद्धों की यूरोप पर प्रतिक्रिया

अब हमको बल्कान के उन सब प्रभूत एवं आश्चर्यजनक परिवर्तनों की यूरोप पर होने वाली प्रतिक्रिया का सामान्य परीक्षण करना चाहिये। दूसरे शब्दों में हमको १९१४ के युद्ध के कारणों का अध्ययन करना चाहिये क्योंकि १९१२ और १९१३ के बल्कानीय युद्ध १९१४ के यूरोपीय युद्ध के उपक्रम अथवा प्रस्तावना थे। तुर्की की जुलाई १९०८ की क्रान्ति से जुलाई १९१४ के सर्विया के विरुद्ध आस्ट्रिया की युद्ध की उद्घोषणा का घटनाक्रम प्रत्यक्ष, अचूक एवं दुर्भाग्यपूर्ण है। प्रत्येक वर्ष ने लौह शृंखला की लम्बाई बढ़ाने के लिये एक कड़ी जोड़ी (अर्थात् प्रतिवर्ष एक सम्बद्ध घटना घटी जिससे वह घटनाक्रम आगे को चालू रहा)[1] यूरोप का मानचित्र (परिवर्तन की) ज्वाला में डाल दिया गया। नया मानचित्र क्या होगा? यह भविष्य का रहस्य है।

अलबानिया की विशिष्ट असफलता

प्रसंगतः यह कहा जा सकता है कि नवीन अलबानिया राज्य प्रारम्भ से ही एक विशिष्ट असफलता सिद्ध हुआ और जब १९१४ में युद्ध प्रारम्भ हुआ तब वह पूर्णतः तिरोहित हो गया। जिन शक्तियों ने इसका निर्माण किया था उन्होंने अपनी सहायता (समर्थन) वापस ले ली और उसका जर्मन राजा, वीड का विलियम, जर्मनी चला गया और वहाँ वह उस सेना में भर्ती हो गया जो फ्रांस से लड़ रही थी। इसी मध्य उसने लालित्यपूर्ण भाषा के आविपत्र में अपने सिंहासन त्यागने की घोषणा की।

1. यह वाक्य भाव को स्पष्ट करने के लिये अनुवादक ने प्रक्षिप्त कर दिया है। —अनुवादक

2. Manifesto=आविपत्र, राजघोषणा। —अनुवादक

अध्याय ३८

यूरोपीय युद्ध

यूरोप के सभी निवासियों को इस बात पर प्रकटत: संतोष हुआ कि अगस्त १९१३ में बल्कान की दीर्घकालीन गम्भीर स्थिति बुखारेस्ट की संधि से सुरक्षित रूप से समाप्त हुई प्रतीत हुई। जैसा कि अधिक लोगों को भय था इसका वैसा परिणाम, अर्थात् यूरोपीय युद्ध, नहीं हुआ। वह बचा दिया गया था और संसार ने अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक साँस ली। परन्तु यह भावना आस्ट्रिया और जर्मनी के शासनों की नहीं थी। यह बात उसके परवर्तीकाल में प्रकट हो गई।

बल्कान की व्यवस्था पर आस्ट्रिया हंगरी तथा जर्मनी का असंतोष

यद्यपि यह बात उसके पश्चात् एक वर्ष तक सार्वजनिक रूप से ज्ञात नहीं हुई तथापि यह बात निश्चित हो चुकी है कि बुखारेस्ट की संधि पर औपचारिक रूप से हस्ताक्षर होने के एक दिन पूर्व ९ अगस्त १९१३ को आस्ट्रिया ने अपने मित्र इटली को सूचित किया था कि वह सर्बिया के विरुद्ध कार्यवाही करना चाहता है। उसने इस कार्यवाही का प्रस्ताव प्रतिरक्षा के रूप में किया था और इसलिये वह त्रिराष्ट्र संश्रय की शर्तों के अधीन इसमें इटली की सहायता की प्राप्ति की आशा को समुचित समझता था। इटली ने अपने प्रधानमंत्री ग्योलिटी के द्वारा इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया। उसने कहा कि इस प्रकार युद्ध आस्ट्रिया के लिये प्रतिरक्षात्मक नहीं होगा क्योंकि कोई भी उस पर आक्रमण करने का विचार नहीं कर रहा था। त्रिसूत्री संधि अपने (हस्ताक्षर करने वाले) सदस्यों को एक दूसरे को सहायता देने का उसी दशा में उपबन्ध करती थी जब किसी सहयोगी को प्रतिरक्षात्मक युद्ध करने पर विवश होना पड़े। तब आस्ट्रिया ने अगस्त १९१३ में सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की योजना बनायी। यह बात केवल कल्पना करने की है कि इस बात की जानकारी ने कि इटली उसकी सहायता नहीं करेगा अथवा अन्य विचारों के कारण वह इस युद्ध से रुका रहा।

आस्ट्रिया सर्बिया पर आक्रमण करने का संकल्प करता है

इटली सहयोग देना अस्वीकार करता है

जर्मनी अपनी सेना बढ़ाता है

राजकुमार वॉन वूलो ने जो नौ वर्ष तक जर्मनी का कुलपति अथवा प्रधान मन्त्री (चान्सलर) रहा था, उद्घोषित किया कि तुर्की का पतन जर्मनी पर प्रहार था। इसी आधार पर १९१३ में असाधारण रूप से युद्ध के लिये जर्मनी की तैयारी को बढ़ाते हुये नवीन सेना तथा कर विधेयक पारित किये गये थे। इसके कारण फ्रांस में भी ऐसा विधान बना।

जर्मनी और आस्ट्रिया का असंतोष

अतः बल्कान की घटनाओं के परिणाम से आस्ट्रिया तथा जर्मनी प्रसन्न नहीं हुए। इनमें से पहला (अर्थात् आस्ट्रिया) ५ करोड़ जनसंख्या वाला यूरोप का महान् राष्ट्र सर्बिया के विरुद्ध सामाजिक कार्यवाही की योजना बना रहा था जोकि अब ४० लाख जनसंख्या वाला राज्य हो गया था तथा युद्ध के दो वर्षों के कारण परिश्रांत एवं उल्लसित था। सम्भावतः आस्ट्रिया जानता था कि इस प्रकार की कार्यवाही में रूस भी आगे आ जावेगा और यही कारण था कि वह अपने दो मित्रों की अन्त में सहायता चाहता था। १९१३ में उन कारणों से जो कुछ-कुछ अस्पष्ट हैं आस्ट्रिया ने अन्त में सर्बिया के विरुद्ध युद्ध करने का उपयुक्त अवसर नहीं समझा परन्तु जुलाई १९१४ में उसने यह उपयुक्त समझा और उसकी कार्यवाही से उस समय १९१४ में शीघ्रता से तथा नाटकीयता से विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

आस्ट्रिया-हंगरी तथा सर्बिया के सम्बन्ध

आस्ट्रिया-हंगरी और सर्बिया के सम्बन्धों, आस्ट्रिया के द्वारा १९०८ में बोसनिया और हर्जीगोवीना को अपने राज्य में मिला लेने और सर्बिया के लिये समुद्र के मार्ग को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से अलबानिया के कृत्रिम राज्य के निर्माण में उसकी भूमिका की ओर पहले ही संकेत किया जा चुका है। इसमें सफल होने पर भी वह सर्बिया की वृद्धि को रोकने में समर्थ नहीं रहा था; तथापि सर्बिया ने १९०८, १९०९ और १९१३ में आस्ट्रिया-हंगरी द्वारा प्रतिपादित तथा अत्यन्त अपमानजनक माँगों को स्वीकार कर लिया था। जैसा कि दीर्घकाल से होता रहा था, दोनों पक्षों की भावनायें पर्याप्त रूप से अमर्षपूर्ण थीं।

आर्कड्यूक फ्रांसिस फर्डीनैण्ड का वध

अकस्मात् एक भयानक अपराध हुआ जिसके कारण महान् तथा शोचनीय घटनावली प्रारम्भ हुई। २८ जून १९१४ को बोसनिया की राजधानी सारजीवो की सड़कों पर आस्ट्रिया के सम्राट् के भतीजे और युवराज आर्कड्यूक फ्रांसिस फर्डीनैण्ड का सपत्नीक वध कर दिया गया। जिन्होंने इस कुख्यात कार्य को किया था वे बोसनिया के निवासी आस्ट्रिया के प्रजाजन थे। परन्तु वे सर्व जाति के थे। सर्व जाति के विरुद्ध तीव्र क्रोध की ज्वाला धधकने लगी। यह घोषित किया गया कि यह 'हत्यारों का राष्ट्र' है। यद्यपि यह अपराध आस्ट्रिया की भूमि पर हुआ था, आस्ट्रिया के प्रजाजनों ने किया था और बोसनिया पर शासन करने की आस्ट्रियायी पद्धतियाँ इस प्रकृति की थीं कि इस कायरतापूर्ण अमानुषिक अपराध के लिये पर्याप्त रूप से उत्तरदायी मानी जा सकती थीं तथापि आस्ट्रियायी सम्मति में (इसके लिये) सर्बिया उत्तरदायी ठहराया गया। कम से कम कई आस्ट्रियायी समाचार पत्रों में युद्ध की इच्छा व्यक्त की गयी जिन्होंने (इसके लिये) सर्बिया के शासन को उत्तरदायी माना। परन्तु चार सप्ताह बीत गये और आस्ट्रिया के शासन ने कोई भी कार्यवाही

नहीं की। वीयना में कूटनीतिज्ञों को इस बात का कोई भी समाचार न मिल सका कि वह क्या करना चाहता था। उन्हें विशेष चिन्ता का कोई कारण नहीं दीख पड़ा क्योंकि वहाँ का शासन स्पष्टत: अत्यन्त कार्य व्यस्त एवं आत्म-निर्भर था। अत: उन्होंने अपना साधारण अवकाश ग्रहण कर लिया। यह सूचना दी गयी कि आस्ट्रिया सर्विया के सम्मुख कुछ माँगें प्रस्तुत करेगा परन्तु वे सामान्य रूप की होंगीं। उसके लिये व्यापक सहानुभूति थी और यह सामान्य भावना भी थी कि उसका सर्बिया से कुछ माँगें करना न्यायोचित होगा। विभिन्न यूरोपीय राज्यों के प्रतिनिधियों को अनभिज्ञ रखा गया। अत्यन्त मौन रूप से तथा रहस्यात्मक ढंग से एक ऐसा पत्र तैयार किया जा रहा था जो विश्व की नींव को हिला देगा।

आस्ट्रियायी शासन का व्यवहार

२३ जुलाई को आस्ट्रिया ने यह पत्र सर्बिया को दे दिया। इस पत्र के प्रारम्भ में सर्बिया के शासन को उन दायित्वों को पूरा न करने के लिये दोषी ठहराया गया जो उसने १९०९ में आस्ट्रिया के प्रति पूरे करने के लिये अंगीकार किये थे। इस पत्र ने यह माँग की कि सर्बिया के शासन को एक अधिकृत वक्तव्य प्रकाशित करना चाहिये जिसकी सभी शर्तें उस पत्र में लिखी हुई थीं। उस वक्तव्य में यह प्रकट किया जाना चाहिये कि सर्बिया आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध जो प्रचार हो रहा है शासन उसको मान्यता नहीं देता है और इस बात पर खेद प्रकाशित करना चाहिये कि सर्बिया के अधिकारियों ने इस प्रचार में भाग लिया था। इसके पश्चात् सर्व-सर्व प्रचार को दमन करने के संस्थाओं सम्बन्ध में दस माँगें लिखी हुई थीं। यह प्रचार सर्बिया के समाचार पत्रों तथा गुप्त द्वारा किया जाता था। इस पत्र में माँग की गई थी कि सर्बिया के शासन को ऐसे किसी भी प्रकाशन का दमन करना चाहिये जो आस्ट्रिया-हंगरी के राजतन्त्र के प्रति घृणा तथा अवमानना उत्पन्न करे, गुप्त संस्थाओं के दमन तथा भंग करने के लिये अत्यन्त व्यापक कार्यवाही करनी चाहिये, विद्यालयों से ऐसे सभी अध्यापकों और पाठ्य-पुस्तकों से ऐसी सभी सामग्री को निकाल देना चाहिये जो आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध प्रचार को बढ़ावा देने में सहायक हुये हों अथवा सहायक हो सकें, सेना तथा सरकारी पदों से ऐसे सभी अधिकारियों को हटा देना चाहिये जो इस प्रचार में सम्मिलित हों तथा जिनके नामों को भेजने का अधिकार आस्ट्रिया की सरकार ने आरक्षित कर लिया है, और १८ जून के षडयन्त्र की जाँच के कार्य में सर्विया को आस्ट्रियायी अधिकारियों के सहयोग को स्वीकार करना चाहिये। इस निर्णयात्मक पत्र के अन्य उपबन्धों का सम्बन्ध हत्या में भाग लेने वालों की सहायता करने वालों[1] की गिरफ्तारी तथा सीमा पार शस्त्रास्त्र एवं विस्फोटकों के व्यापार की रोक से था। इस पत्र के साथ एक स्मृति पत्र संलग्न था जिसमें यह लिखा हुआ था कि आर्कड्यूक तथा उनकी पत्नी की हत्या का षडयन्त्र सर्विया में रचा गया था और सर्विया के अधिकारियों की सहापराधिता से पूरा किया गया था।

२३ जुलाई का आस्ट्रिया का पत्र

सर्बिया के सम्मुख माँगें रखी गयीं

---

1. महापराधियों।

इस पत्र की भाषा कठोर थी और माँगें अधिनायकवादी थीं। यह अन्तिम चेतावनी पत्र या अन्तिमेत्थम्[1] था क्योंकि इसने अपने समग्र रूप में ४८ घण्टे के भीतर स्वीकार किये जाने की माँग की और इसने उन दोषारोपणों की जाँच करने अथवा विवाद करने के लिए कोई भी समय नहीं दिया जो इनमें प्रस्तुत किये गये थे तथा उन समस्यायों के सम्बन्ध में भी कोई समय जाँच या विवाद करने के लिये नहीं दिया था जो इस अनिवार्य तथा तात्कालिक माँग के द्वारा उत्पन्न की गयी थी। कोई राष्ट्र अपने समकक्ष राष्ट्र को युद्ध चाहे बिना ऐसा पत्र नहीं भेजेगा। अपने से अत्यन्त छोटे राष्ट्र को लिखे जाने से इसका अभिप्राय केवल अभूतपूर्व अभिमान था और यदि ४८ घण्टे के पश्चात इसके अनुसार कार्यवाही हुई तो इसका अभिप्राय था राष्ट्रीय उन्मूलन।

पत्र एक अंतिमेत्थम था

आस्ट्रिया के इस अन्तिमेत्थम् ने एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर दी। यह अन्तिमेत्थम् घृणित हत्याओं के कारण उत्पन्न स्वाभाविक क्रोध में लिखा हुआ उत्तेजना पूर्ण एवं अविचारपूर्ण उद्‌गार नहीं था। यह सोच विचार कर शान्त चित्त से चार सप्ताहों की गुप्त तैयारियों के पश्चात् लिखा गया प्रलेख था। रूसी राजदूत को इसके भेजे जाने की सूचना नहीं दी गई और वह वियना में अवकाश लेकर चला था यद्यपि इटली उसका मित्र राष्ट्र था और वह किसी बलकान प्रायद्वीप पर किसी भी प्रकार से अथवा किसी भी भाग में प्रभाव डालने वाली बात से विशेष रूप से सम्बन्धित था, तथापि उसके शासन को सूचना नहीं दी गई थी। जब अंत में युद्ध प्रारम्भ हुआ तो इस तथ्य पर इटली ने अपनी तटस्थता को न्यायोचित ठहराया क्योंकि आक्रान्ता के रूप में यह युद्ध आस्ट्रिया द्वारा प्रारम्भ किया गया था। इस अन्तिमेत्थम् ने सर्विया को केवल विकल्प प्रदान किया कि अत्यन्त भद्दी अपमान जनक शर्तों को स्वीकार करे जो उसको प्रायः आस्ट्रिया के अधीनस्थ राज्य की दशा को प्राप्त करा दें अथवा वह युद्ध को स्वीकार करे।

पत्र के कारण भयानक स्थिति उत्पन्न होती है

पत्र से सम्बन्धित विशेष परिस्थितियाँ

इंगलैण्ड, फ्रांस और रूस ने यह प्रयत्न किया कि आस्ट्रिया अवधि को बढ़ावे क्योंकि वही एक मात्र ऐसा मार्ग था जिसके द्वारा कूटनीति उस विषय में कार्य कर सकती थी। साथ ही यदि अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का नियमन एक दूसरे के तर्कसम्मत अधिकारों अथवा इच्छाओं का ध्यान रखने से हो सकता था तो अवधि बढ़ाना आवश्यक था। उनके प्रयत्न असफल रहे। तब उन्होंने सर्विया से अनुरोध किया वह यूरोप के सामान्य हितों के लिये अर्थात् सम्भव समझौतावादी एवं शान्तिपरक उत्तर भेजे। परिणाम यह हुआ कि सर्विया ने आस्ट्रिया के माँगों के वृहतर भाग को स्वीकार कर लिया और उसने यह भी प्रस्ताव किया कि यदि उसके उत्तर से आस्ट्रिया संतुष्ट न हो तो वह इस प्रश्न को

आस्ट्रिया से अवधि बढ़ाने का अनुरोध किया गया

1. Ultimatum=अन्तिमेत्थम्, अंतिम चेतावनी पत्र।

हेग के न्यायाधिकरण अथवा महाशक्तियों के सम्मेलन से सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है।

आस्ट्रिया ने सर्बिया के उत्तर को अविलम्ब असंतोषजनक घोषित कर दिया और युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी। वह यह बात भली भाँति जानता था कि ऐसी कार्यवाही से रूस इस विवाद में अवश्य भाग लेगा। इस बात को जानने के लिये उसको प्रत्येक कारण उपलब्ध था जो किसी राज्य को उपलब्ध हो सकता था कि १९०८ में बोसनिया और हर्जीगोविना के संयोजन की अवज्ञा के पश्चात् एक छोटी स्लैविक जाति पर एक दूसरे आक्रमण से अग्रगण्य स्लैविक शक्ति रूस को गम्भीर आघात पहुँचेगा। रूस पर विचार किये बिना आस्ट्रिया सर्बिया से प्रतिशोध लेने में समर्थ होने की आशा नहीं कर सकता था और न उसने यह आशा की। इसलिये एक महान् राज्य को जानबूझ कर और अत्यन्त भयानक उत्तेजना देने का उत्तरदायित्व उसी का है।

आस्ट्रिया सर्बिया के उत्तर को अस्वीकार करता है

स्लैविक जातियों के भविष्य के निर्णय करने में स्लैविक शक्ति, रूस को ट्यूटॉनिक शक्तियाँ नगण्य नहीं समझ सकती थीं। यदि यूरोप के सम्पूर्ण राजनीतिक क्षेत्र में कोई सुविदित तथ्य था तो केवल यही था कि बलकान प्रायद्वीप के स्लैव राज्यों के भाग्य (निर्णय) में रूस अधिक अभिरुचि रखता था। यदि यूरोपीय राजनीति की कोई दूसरी सर्वविदित सुसंस्थापित सामान्य बात थी तो वह यह थी कि प्रत्येक बल्कान प्रश्न को स्पष्ट रूप से सामान्य सम्बन्ध का अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न समझा जाता था। वास्तव में १९०९ के पूर्व कथित सर्बिया के उत्तरदायित्व महा शक्तियों के प्रति थे न कि केवल अकेले आस्ट्रिया के प्रति।

आस्ट्रिया का अन्तिमेत्थम् रूस को जानबूझ कर दी गयी चुनौती थी

आस्ट्रिया का कहना[1] यह था कि उसकी कार्यवाही केवल उससे तथा सर्बिया से सम्बन्ध रखती थी; कोई अन्य एक राष्ट्र अथवा अधिक राष्ट्रों का इससे सम्बन्ध नहीं था और इस सम्बन्ध में उनका कोई अधिकार न था। इस कथन में वह आदि से अन्त तक जर्मनी द्वारा समर्थित किया गया। आस्ट्रिया तथा जर्मनी दोनों यह जानते थे कि सर्बिया के विरुद्ध सामरिक कार्यवाहियों के कारण रूस इस प्रश्न में भाग लेगा और त्रिसूत्री तथा द्विसूत्री मैत्रियों के कारण सम्भवतः एक समान्य यूरोपीय युद्ध हो जावे, तथापि दोनों ने दृढ़तापूर्वक इस बात पर विचार करना अस्वीकार कर दिया कि रूस को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार था; यह केवल आस्ट्रिया और सर्बिया दोनों से ही सम्बन्धित मामला था।

जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया का समर्थन

स्वभावतः रूस का यह दृष्टिकोण नहीं था। जब आस्ट्रिया सर्बिया पर आक्रमण के लिये तैयारियाँ करने लगा और उसकी चेतावनी का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा तब रूस ने लामबन्दी प्रारम्भ कर दी। जुलाई के उस अन्तिम सप्ताह भर जर्मनी की यह नीति रही कि वह आस्ट्रिया को उसके इस कथन में समर्थन दे कि यह उसका निजी मामला था। उसने कहा कि यह झगड़ा उन दोनों के बीच था और किसी

रूस का व्यवहार

---

1. Position=स्थिति, परन्तु यहाँ पर हिन्दी मुहाविरे के अनुसार कहना अधिक उपयुक्त है। —अनुवादक

भी बाह्य शक्ति को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। यदि यह झगड़ा इन दोनों तक ही सीमित रखा जा सके तो साधारण रूप से शान्ति भंग नहीं होगी और यदि इस पर भी जार हस्तक्षेप करे तो विभिन्न मैत्रियों के कारण कल्पनातीत परिणाम होंगे। यदि शान्ति के लिये जर्मनी ने यही सब किया और वह कहता था कि उसने शान्ति को बनाये रखने के लिए प्रत्येक

जर्मनी इस संघर्ष पर स्थानीयकरण की माँग करता है

प्रयत्न किया, तो उसने संघर्ष को स्थानीय बनाने की' इस नीति के लिये (वास्तव में) कुछ भी नहीं किया—जिस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया उसी को मान लिया गया।[1] यह बात मान ली गयी कि रूस अथवा अन्य किसी शक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं था। इतिहास, तर्क और हितों के प्रकाश में यह कथन पूर्णतः अमाननीय था। यह प्रश्न पूर्वीय प्रश्न का एक अंग था जिस पर बार बार विचार किया जा चुका था और जो दृढ़ रूप से अन्तर्राष्ट्रीय माना जाता था। इस प्रश्न का कोई भी पहलू एक पाँच करोड़ जनसंख्या वाले राष्ट्र के निर्णय के लिये जो ४० या ५० लाख जनसंख्या वाले राष्ट्र के साथ संघर्ष कर रहा हो, नहीं छोड़ा जा सकता है।

इंगलैण्ड ने यह प्रस्ताव किया कि विचारधीन प्रश्न लन्दन में होने वाले उस सम्मेलन में रखा जावे जिसमें इस प्रश्न से प्रत्यक्षतः असम्बद्ध महाशक्तियाँ अर्थात् जर्मनी, फ्रांस, इंगलैण्ड तथा इटली भाग लें। कदाचित ये चार (शक्तियाँ) सर्बिया और आस्ट्रिया और रूस में समझौता करा सकें रूस ने

इंगलैंड अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव करता है

अपनी इच्छा प्रकट की परन्तु यह प्रस्ताव जर्मनी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। उसी प्रकार के अन्य प्रस्ताव जिनका उद्देश्य विलम्ब, कूटनीतिक विचार विमर्श और मध्यस्थता थी जर्मनी के विरोध अथवा उदासीनता के कारण असफल रहे। जब इंगलैण्ड ने जर्मनी से शान्ति बनाये रखने के लिये मध्यस्थता की किसी पद्धति के सुझाव के लिये कहा तब उसके पास कोई सुझाव नहीं था। उसने केवल अपनी बात दुहराई कि यह मामला

जर्मनी द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार

केवल आस्ट्रिया और सर्बिया से सम्बन्ध रखता था। वह इस बात के लिये तैयार था कि रूस से इस मामले से न पड़ने का और लामबन्दी न करने का अनुरोध करे और उसने यह अनुरोध किया भी परन्तु इसका अनुरोध सर्वदा इस सिद्धान्त पर आधारित रहा कि इस झगड़े से रूस का कोई सम्बन्ध नहीं था वरन् केवल आस्ट्रिया तथा सर्बिया का था। यह ऐसा दृष्टिकोण था जिससे रूस न तो सहमत

जर्मनी का कार्य

हो ही सकता था और न सहमत हुआ ही। जर्मनी इस बात के लिये तैयार था कि रूस पर दबाव डालने के लिये वह अन्य शक्तियों को सहयोग प्रदान करे परन्तु अपने मित्र आस्ट्रिया पर दबाव डालने के लिये वह तैयार नहीं था जिसको उसने सर्बिया के प्रति अपनाई जाने वाली प्रक्रिया की पूरी छूट दे दी थी।

जर्मनी और रूस के दृष्टिकोणों में समझौता नहीं हो सकता था। जर्मनी का

1. 'Beg the question' का यही आशय होता है। यह अशुद्ध तर्क है।—अनुवादक

रूस का आस्ट्रिया-हंगरी के प्रति लामबन्दी करना

जर्मनी रूस को अन्तिमेत्थम भेजता है

जर्मनी रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करता है

कहना था कि रूस आस्ट्रिया को कार्यवाही करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करेगा। रूस यह विश्वास करता था कि आस्ट्रिया की असमझौतावादी तथा उग्र प्रक्रिया के कारण रूस को 'केवल आस्ट्रिया हंगरी के विरुद्ध' लामबन्दी करनी चाहिए। उसका विश्वास था कि एक मात्र यही वह पद्धति थी जो उस देश को *अपनी प्रक्रिया अनुग्र करने तथा दूसरों के अधिकारों को मान्यता प्रदान कराने के लिए* सहमत करा सकती थी। यदि रूस निष्क्रिय रहेगा तो आस्ट्रिया अपनी इच्छा के अनुसार सर्बिया के साथ व्यवहार करेगा। रूस इस अधिकार की जोर देकर माँग करता था कि बलकान की व्यवस्था पर उससे परामर्श किया जाना चाहिए। आस्ट्रिया ने लामबन्दी कर दी थी और २८ जुलाई को सर्बिया के साथ युद्ध प्रारंभ कर दिया था। तदानुसार रूस ने आस्ट्रिया के विरुद्ध लामबंदी करदी। जर्मनी ने इस कार्यवाही को अपने लिए एक प्रत्यक्ष भय समझा और ३१ जुलाई को रूस को एक अन्तिमेत्थम भेजा कि रूस बारह घन्टे के भीतर अपनी लामबन्दी बन्द कर दे अन्यथा जर्मनी भी लामबन्दी करेगा। रूस ने इस सबल माँग का उत्तर नहीं दिया। जर्मनी ने एक अगस्त को उद्घोषित कर दिया कि रूस और जर्मनी के मध्य युद्ध की स्थिति (उत्पन्न हो गयी) थी। **द्विसूत्री मैत्री** के कारण जर्मनी की रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा का अभिप्राय था फ्रांस के साथ युद्ध।

द्विसूत्री और त्रिसूत्री मैत्रियों का झमेला

हम देख चुके हैं कि यह **द्विसूत्री मैत्री** १८८२ में जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली के बीच होने वाली **त्रिसूत्री मैत्री** का अवश्यंभावी परिणाम थी। ***द्विसूत्री मैत्री** उस आवश्यकता से उत्पन्न हुई थी जो रूस* और फ्रांस दोनों ने इतने शक्तिशाली मेल अर्थात त्रिसूत्री मैत्री के अस्तित्व के कारण बाह्य सहायता के विषय में अनुभव की थी। यदि यूरोप में शक्ति संतुलन जैसी कोई वस्तु थी तो रूस और फ्रांस को अवश्य मिल जानी चाहिए। सर्बिया के विरुद्ध आस्ट्रिया की कार्यवाही ने रूस को इस नाटक में भाग लेने को प्रेरित किया। जर्मनी की कार्यवाही के कारण फ्रांस की कार्यवाही आवश्यक हो गयी।

त्रिमित्र गुट

एक राज्य इंगलैण्ड, अपनी इच्छानुसार जैसा वह उचित समझे, कार्य करने के लिए अपेक्षाकृत स्वतन्त्र था क्योंकि उसका व्यवहार किसी बन्धनकारी मैत्री द्वारा निर्धारित नहीं होता था। द्विसूत्री तथा त्रिसूत्री मैत्रियाँ सुनिश्चित संधियों पर अवलम्बित थीं। इन दोनों में से कोई भी प्रकाशित नहीं हुई थी तथा प्रत्येक संधि ने समझौता करने वाले पक्षों पर दायित्वों का भार डाल दिया था। निकट अतीत में तथाकथित **त्रिमित्र गुट** बढ़ गया था। विगत पन्द्रह अथवा बीस वर्षों में जर्मनी तथा इंगलैण्ड की व्यापारिक प्रतिस्पर्धा समीपवर्तीय यूरोपीय इतिहास का प्रमुख तथ्य रही थी जो मण्डियों के लिए संघर्षमें, औपनिवेशिक प्रतियोगिताओं मे तथा नौसैनिक शक्ति के चमत्कारिक विकास में अभिव्यंजित हुई थी। यह देख कर कि इतने सक्रिय एवं सफल प्रतिद्वन्द्वी के मैदान में रहने से उसकी अकेलेपन की नीति संभवतः भयानक होती जा रही थी

ग्रेट ब्रिटेन ने बीसवीं शती के मध्य के प्रथम दशक में फ्रांस तथा रूस के साथ दीर्घ-काल से चली आ रही गलतफहमियों को दूर करने का प्रयत्न किया। यह कार्य उसने फ्रांस के साथ १९०४ की संधि तथा रूस के साथ १९०७ की संधि से (सम्पादित) किया। इन संधियों ने कुछ समस्याओं को सुलझाया और सर्वनिष्ठ कार्यवाहियों को उपबन्धित किया—पहली ने अफ्रीका में और दूसरी ने एशिया में। परवर्ती कूटनीतिक गम्भीर परिस्थितियों में तीनों शक्तियों ने पर्याप्त सहयोग से कार्य किया। परन्तु त्रिसूत्री मित्रभाव मैत्री (संधि) नहीं था। यह केवल एक कूटनीतिक समुदाय या वर्ग था जो उस समय मिलकर कार्य करता था जब उसके सदस्यों के हितों का संयोगवश समाप्त[1] हो। किसी भी यूरोपीय नीति अथवा आक-स्मिकता के विषय में ग्रेट ब्रिटेन और रूस के मध्य कोई समझौता नहीं था और ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस के बीच कोई वास्तविक मैत्री नहीं थी। जब १९१४ की गम्भीर स्थिति उत्पन्न हुई तब ग्रेट ब्रिटेन इस परिस्थिति मे था कि वह जिस बात में अपना हित समझता हो उसके आधार[2] पर जैसा चाहे वैसा कार्य करे। कूटनीतिक पत्र व्यव-हार से यही बात बर्लिन और वीयना में ठीक वैसे ही समझी जाती थी जैसे कि पेरिस और सेण्टपीटर्सबर्ग में। परन्तु यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन की ऐसी कोई मैत्री नहीं थी जो उसको अनिवार्य रूप से युद्ध में भाग लेने पर विवश करे, तथापि यूरोपीय शक्ति के रूप में और महान् साम्राज्यवादी औपनिवेशिक राज्य के रूप में उसके बहुत से तथा महत्त्व-पूर्ण हित थे जिनका उसको ध्यान रखना आवश्यक था।

त्रिसूत्री मित्र भाव मैत्री संधि नहीं था

यह उसके हित में था तथा यूरोप और विश्व के हित में था कि यूरोपीय युद्ध न हो। सर्बिया को अन्तिमेत्थम भेजे जाने के पश्चात् से युद्ध की उद्घोषणाओं तक जुलाई के उस सप्ताह की बातचीत इस बात को प्रचुर परिणाम में प्रदर्शित करती है कि उसने सच्चे पुनः पुनः तथा विविध प्रकार के प्रयत्न उन समस्याओं के शान्तिपूर्ण समाधान के लिये किये जो कि अकस्मात् सम्मुख उपस्थित कर दी गयी थीं। वह किसी विशेष योजना अथवा सूत्र से आवद्ध नहीं था और उसने जर्मनी को सुझाव देने के लिए आमन्त्रित किया जो, यदि उसके सुझावों से सन्तुष्ट न हो तो, समझौता करा सके। परन्तु उसके द्वारा प्रयत्नों के किये जाने पर भी एक ऐसा युद्ध प्रारम्भ हो गया था जिसमें कम से कम चार बड़े राज्य आस्ट्रिया, रूस, जर्मनी और फ्रांस तथा एक छोटा राज्य सर्बिया भाग ले रहे थे। क्या यह ज्वाला फैलेगी? इंगलैंड क्या करेगा?

ग्रेट ब्रिटेन के हित

इंगलैंड शांति बनाये रखने का प्रयत्न करता है

निश्चय ही यह उसके हित में नहीं था कि जर्मनी फ्रांस पर विजय प्राप्त कर ले क्योंकि उससे फ्रांस एक अधीनस्थ राज्य बन जावेगा और जर्मनी की शक्ति और प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ जावेगी। साथ ही इंगलैण्ड की यह प्रतिष्ठा का प्रश्न था कि वह फ्रांस के अटलाण्टिक तट पर होने वाले आक्रमण को रोके क्योंकि १९१२ से उसका फ्रांस से एक नौसैनिक समझौता था जिसके अनुसार फ्रांसीसी

इंगलैण्ड का फ्रांस से सम्बन्ध

---

1. एक समान हों।
2. प्रकाश में।

जल-बेड़ा भूमध्यसागर में केन्द्रित कर दिया गया था ताकि गृह समुद्र पर इंगलैण्ड वृहत्तर जल-सेना रख सके। यह सम्भव दिखाई देता है कि यदि फ्रांस पर आक्रमण होता और निश्चय ही यह जर्मनी का उद्देश्य था तो इंगलैण्ड को युद्ध में भाग लेना पड़ता परन्तु जर्मनी द्वारा बेलजियम पर आक्रमण किये जाने से उसका युद्ध में भाग लेना अनिवार्य हो गया।

बेलजियम तटस्थ बनाया हुआ राज्य था

यूरोप के तीन छोटे राज्य बेलजियम, लक्षिम्वर्ग[1] तथा स्विटजरलैंड को अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के द्वारा सदा के लिए तटस्थ भूभाग घोषित कर दिया गया था। इन समझौतों के अनुसार सम्बन्धित देश कभी युद्ध नहीं करेंगे और न कभी उन पर आक्रमण किया जावेगा। जिन शक्तियों ने इन सन्धियों पर हस्ताक्षर किये थे उन्होंने इस तटस्थता को बनाये रखने तथा उसका आदर करने का वचन दिया था। बेलजियम की तटस्थता की प्रत्याभूति देने वाली संधि पर इंगलैंड, फ्रांस, प्रशा, आस्ट्रिया और रूस ने हस्ताक्षर किये थे।

जर्मनी का बेलजियम को अन्तिमेत्थम्

अस्सी वर्ष से अधिक काल तक यह उत्तरदायित्व पूरी सच्चाई के साथ निबाहा गया था। अब २ अगस्त को जर्मनी ने बेलजियम को एक अन्तिमेत्थम् भेजा उसमें यह माँग की गयी थी कि बेलजियम अपनी भूमि पर होकर जर्मनी की सेनाओं को जाने को आज्ञा दे। जर्मनी ने यह वचन दिया था कि शांति स्थापित हो जाने के पश्चात् उसकी सेनाएँ वहाँ से चली आवेंगी और यदि यह इसे अस्वीकार करेगा तो उसके भाग्य का निर्णय युद्ध के द्वारा किया जावेगा।

बेलजियम का उत्तर

बेलजियम ने यह उत्तर दिया कि वह अपने अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों के प्रति सर्वदा निष्ठावान् रहा है, उसकी स्वतन्त्रता पर आक्रमण से अंतर्राष्ट्रीय विधि का अविनीत एवं ज्वलन्त उल्लंघन होगा, कि वह अपने सम्मान का बलिदान नहीं करेगा और वह साथ ही यूरोप के प्रति अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होगा प्रत्युत उसकी सेनाएँ अपनी अधिकतम सामर्थ्य के अनुसार आक्रान्ता का प्रतिरोध करेंगी।

जिस प्रकार आस्ट्रिया के २३ जुलाई के अन्तिमेत्थम् का अभिप्राय एक छोटे राज्य, सर्बिया, की स्वतन्त्रता को समाप्त करना था, उसी प्रकार जर्मनी के २ अगस्त के अन्तिमेत्थम् (अल्टीमेटम) का अभिप्राय भी एक छोटे राज्य, बेलजियम, की स्वतन्त्रता को समाप्त करना था। जर्मनी की कार्यवाही और भी अधिक निन्दनीय थी क्योंकि वह जिस देश की तटस्थता का सम्मान करने का वचन दे चुका था उसी को नष्ट करने वाला था।

इस कार्यवाही का यह कारण था कि जर्मनी की सेनाओं के लिए फ्रांस में प्रवेश करने के लिये सबसे अधिक सुगम मार्ग बेलजियम में होकर था। जर्मनी फ्रांस को जितनी शीघ्रता से सम्भव हो सकता उतनी शीघ्रता से हराना चाहता था

---

1. यह शब्द लक्जैम्बर्ग (Luxemburg) भी लिखा जाता है परन्तु X के लिये हिन्दी क्ष अधिक उपयुक्त है। इसीलिए Alexander को विशुद्ध भाषाविद् 'अलक्षेन्द्र' लिखते हैं। —अनुवादक

और उसके पश्चात् वह रूस पर आक्रमण करना चाहता था और उसको हराना चाहता था। यदि सम्भव भी हो तो क्योंकि उस सीमा की सुदृढ़ दुर्गबन्दी की जा चुकी थी, जर्मनी से फ्रांस पर सीधा आक्रमण अपेक्षाकृत धीमा होगा। ४ अगस्त को चांसलर वैथमन हॉलवेग ने रायचस्टेग[1] में अधिकृत घोषणा की। उसमें कहा गया था कि जर्मनी आत्मरक्षा के लिये कार्यवाही कर रहा था : "आवश्यकता विधि को नहीं जानती है। हमारी सेनाओं ने लक्षेम्बर्ग पर अधिकार कर लिया है और कदाचित बेलजियम की भूमि पर प्रवेश कर दिया है। सज्जनो यह अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन है। यह सत्य है कि फ्रांस के शासन ने ब्रसेल्स को सूचित किया है कि वह जब तक शत्रु बेलजियम की तटस्थता का सम्मान करेगा तब तक वह भी उसका सम्मान करेगा। परन्तु हम जानते हैं कि फ्रांस युद्ध के लिये सन्नद्ध खड़ा था फ्रांस प्रतीक्षा कर सकता था परन्तु हम नहीं कर सकते थे।

जर्मन चांसलर का वक्तव्य

निचली राइन में हमारे पार्श्व पर फ्रांसीसी आक्रमण दुर्भाग्यपूर्ण हो सकता था अस्तु हमने विवश होकर लक्षेम्बर्ग और बेलजियम के उचित विरोध पर ध्यान नहीं दिया। मैं स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ कि जो अन्याय हम कर रहे हैं उसे हम अपने उद्देश्य को पूरा करने के पश्चात् ठीक करने का प्रयत्न करेंगे। कोई भी व्यक्ति जो हमारे समान भयभीत किया जाता है और अपने सर्वोत्तम अधिकारों के लिये लड़ रहा है वह केवल एक बात ही सोच सकता है कि वह अपने उद्देश्य को किस सकार पूरा करे, चाहे उसके लिये उसे कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।

आवश्यकता किसी विधि को नहीं जानती है

६५० लाख के राष्ट्र ने ७० लाख के राष्ट्र पर आक्रमण किया जिसकी तटस्थता को बनाये रखने की उसने शपथ ली थी जैसा कि जर्मन राज्य सचिव वॉन जैगो ने स्पष्टतापूर्वक उसी चार अगस्त को कहा था, "उनको फ्रांस में शीघ्रतम तथा सरलतम मार्ग से आगे बढ़ना था जिससे वे पर्याप्ततः अपनी (सैनिक) कार्यवाहियों को अग्रसरित कर सकें और जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र निर्णयात्मक प्रहार करने का प्रयत्न कर सकें। उनके लिये यह जीवन-मरण का मामला था।"

वॉन जैगो का वक्तव्य

इंगलैण्ड ठीक कह सकता था कि उसने 'अन्तिम क्षण तक और अन्तिम क्षण के पश्चात् तक' शान्ति के लिये कार्य किया था। अब उसने युद्ध में प्रवेश किया क्योंकि बेलजियम की स्वतन्त्रता में उसके महत्त्वपूर्ण हित निहित थे और चूँकि उस पर सन्धि के स्पष्ट उत्तरदायित्व थे। सैकड़ों वर्षों से उसकी यह नीति रही थी कि वह कम चौड़े समुद्रवंक के उस पार के समुद्र तटों को ऐसे नियन्त्रण में आने से रोके जो उसके तटों के लिये भय उत्पन्न कर सके क्योंकि इससे वे एक प्रबल शक्ति के हाथों में आ जावेंगे। इस प्रश्न पर इंगलैण्ड स्पेन वालों

इंगलैण्ड युद्ध में प्रवेश करता है

---

1. इस शब्द के तीन उच्चारण होते हैं—राइचस्टेग राइच स्टेक और राइख स्टेश परन्तु हिन्दी में प्राय: रायचस्टेग ही लिखा जाता है। यह जर्मनी की संसद है। उच्चारण के लिये देखिये डी० जोन्स कृत अंग्रेजी उच्चारण कोष।—अनुवादक

और फ्रांसीसियों के विरुद्ध शताब्दियों से कई बार युद्ध कर चुका था अथवा कार्यवाही करता रहा था अब वह कार्यवाही जर्मनी के विरुद्ध होनी थी। अपने महत्वपूर्ण हितों की रक्षा करते समय वह अपने वचन को पूरा करेगा और एक छोटे राज्य की एक महान् सैनिक शक्ति के आक्रमण से रक्षा करेगा। यह बात अपनी जनता की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करने के लिये उसके लिये अत्यन्त लाभदायक थी।

२३ जुलाई १९१४ को यूरोप में अनिश्चयात्मक ग्रीष्म-कालीन शान्ति विद्यमान थी। चार अगस्त तक सात शक्तियाँ युद्ध करने लगी थीं। सभ्यता और मानवता के विरुद्ध इस दुखद, क्रूर, अनावश्यक अपराध का उत्तरदायित्व गम्भीरतापूर्वक स्वीकार नहीं किया गया था। यह परिस्थिति विभिन्न राज्यों के अधिकार प्राप्त अध्यक्षों के द्वारा उत्पन्न की गयी थी। जो कोई भी शक्ति उस गम्भीर स्थिति में विलम्ब के लिये, बातचीत के लिये, विचार विमर्श के लिये अपनी इच्छा प्रदर्शित करती थी वह शान्ति के हित में कार्य कर रही थी। जो कोई शक्ति ऐसा करना अस्वीकार कर रही थी वह विकल्पहीन दृष्टिकोण अपना रही थी, वह विश्वास न करने योग्य स्वल्प कालावधियों सहित अन्तिमेत्थम् दे रही थी, भयानक उलझाव को शीघ्रता से उत्पन्न कर रही थी और युद्ध के लिये, चाहे वह चाहती हो अथवा न चाहती हो, तैयार थी।

१९१४ में युद्ध

सर्बिया जैसे छोटे परन्तु स्वतन्त्र एवं सफल राज्य पर आस्ट्रिया द्वारा प्रतिशोध लिये जाने, उसको दण्ड देने, उसको अपमानित करने और उस पर अधिकार करने के दृढ़ संकल्प ने प्रत्यक्षतः एवं विश्वास न करने योग्य शीघ्रता से एक भयानक समस्या उत्पन्न कर दी। बारह महत्त्वपूर्ण दिवसों में पाँच बड़े राष्ट्र—आस्ट्रिया-हंगरी, जर्मनी, रूस, फ्रांस और इंगलैण्ड तथा दो छोटे राष्ट्र सर्बिया एवं बेलजियम शान्ति की स्थिति से युद्ध की स्थिति में पहुँच गये थे। यूराल पर्वत से अटलांटिक महासागर तक, उत्तरी सागर से भूमध्यसागर तक करोड़ों मानवों ने अपने को वृहत् संघर्ष के दल-दल में फँसा पाया जिनमें मानव जीवन और आनन्द और धन की अत्यन्त भयानक क्षति अवश्यम्भावी थी। आस्ट्रिया, हंगरी तथा जर्मनी ने जिस अविचारपूर्ण एवं धृष्टता पूर्ण शीघ्रता से इस गम्भीर परिस्थिति को उत्पन्न कर दिया था उससे संसार स्तब्ध रह गया था।

तथापि जिन्होंने इस विनाशकारी स्थिति को उन बारह दिवसों में टालने का अत्यन्त प्रयास किया था उन्होंने इस अशुभ विद्वेषपूर्ण एवं हानिकारक चुनौती को लौह संकल्प के साथ अविलम्ब स्वीकार किया और इंगलैण्ड तथा फ्रांस जैसी शक्तियों ने ही नहीं वरन् बेलजियम तथा सर्बिया जैसी छोटी शक्तियों ने कभी हिचक नहीं की वरन् करने या मरने का दृढ़ विचार किया। युद्ध के प्रारम्भ में ही इंगलैण्ड तथा फ्रांस के उत्तरदायित्वपूर्ण राजनीतिज्ञों ने यह साधिकार कथन किया था कि यह संघर्ष केवल भौतिक ही नहीं प्रत्युत इसमें नैतिक हित भी निहित थे। (युद्ध के) उन प्रारंभिक दिनों में इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री मि० ऐस्क्विथ ने पाश्चात्य शक्तियों के सर्वनिष्ठ संकल्प को अभिव्यंजित किया था जब उन्होंने यह उद्घोषित किया था-कि "हम तब तक उस तलवार को ध्यान में नहीं रखेंगे जोकि हमने बिना

सोचे समझे अगम्भीरता से नहीं खींची है जब तक कि बेलजियम पूर्णतया और उससे अधिक जो उसने बलिदान किया है पुनः प्राप्त कर ले, जब तक फ्रांस आक्रमण के भय से पर्याप्त रूप से सुरक्षित न हो जावे, जब तक यूरोप के लघु राष्ट्रों के अधिकार अनाक्रम्य आधार पर स्थापित न हो जावें और जब तक प्रशा का सैनिक आधिपत्य पूर्णतः तथा अंतिम रूप से नष्ट न हो जावे।"

फ्रांस तथा बेल्जियम की ओर संकेत क्यों किया गया? क्योंकि जर्मनी की सैनिक योजना के अन्तर्गत इन दोनों को सर्वप्रथम आक्रान्त करना और विजय करना था, तत्पश्चात् रूस और तब जर्मनी का यूरोप पर प्रभुत्व स्थापित हो जावेगा और वह अनाक्रम्य बना दिया जावेगा।

जर्मनी ने अपनी सेनाओं के लिये बेलजियम में होकर उन्मुक्त मार्ग मांगा था। युद्ध के वीरों में से एक वीर नरेश अलबर्ट ने उस विषम क्षण में जर्मनी की माँग के प्रत्युत्तर में अपनी जनता की भावना को मूर्तरूप प्रदान किया था और बेलजियम के नाम में गौरव की अभिवृद्धि की थी। उसने घोषणा की कि, "अपने अधिकारों पर किये जाने वाले **बेलजियम की भावना** प्रत्येक आक्रमण का अपने सभी साधनों से प्रतिरोध करने के लिये बेलजियम का शासन दृढ़ता से कृत संकल्प है।" तभी वज्रपात हुआ[1] (अर्थात् **अप्रत्याशित युद्ध प्रारम्भ हो गया**)। लघुतम मार्ग से पेरिस पहुँचने के लिए दृढ़ संकल्प प्रबल जर्मन सेना म्यूज की घाटी के प्रदेश में सहसा घुस आयी। मार्ग में लीज का दुर्ग अवस्थित था। इस पर सबल तोपखाने द्वारा बम बरसाये गये और ७ अगस्त को इसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। २० अगस्त को ब्रूसेल्स पर अधिकार कर लिया गया परन्तु लीज के पतन से पेरिस का मार्ग निष्कण्टक नहीं हुआ। मार्ग को नामूर ने अवरुद्ध कर रखा था। यहाँ फ्रांसीसियों और अँग्रेज लोगों ने कैजर[2] के तथाकथित कथनानुसार 'अपनी घृणा के योग्य छोटी सी सेना भेजते हुये' बेल्जियम निवासियों की सहायता की। २२ अगस्त को नामूर पर अधिकार हो गया। आगामी आक्रमण मौन्स पर हुआ और अँग्रेज तथा फ्रांसीसियों को पीछे हटना पड़ा। उन्हें अवश्य पीछे हटना चाहिये था अन्यथा जर्मन सेनायें उनको चारों ओर से घेर लेतीं तथा, १८७० की सीडान की सी विपत्ति की सम्भावना थी। मौन्स से दक्षिण की ओर द्रुत मर्मभेदी, सतत एवं विनाश की अविरल आशंका से आशंकित यह महा अपमान अहर्निश चालू रहा। उत्तरी फ्रांस में एक नगर के पश्चात् दूसरा नगर जर्मनों के हाथ में आता चला गया जोकि पेरिस के १५ मील के भीतर बढ़ आये थे। फ्रांस की सरकार बोर्डो को हटा दी गयी। जर्मन विजय पूरी होती हुई दिखाई दी। मित्रों के लिए अगस्त अन्धकार का मास था।

तब फ्रांसीसी सेनापति जनरल जॉफ़े ने अपना प्रसिद्ध आदेश प्रकाशित किया कि अपमान पूरा हो चुका था। अपने (अधीनस्थ) सेनापतियों को उसने यह समाचार

---

1. अँग्रेजी मुहाविरा Thunder-cloud broke का हिन्दी मुहाविरे में अनुवाद है। इसका आशय अनुवादक ने कोष्ठांकित कर दिया है। —अनुवादक
2. इसका शुद्ध उच्चारण है कइजर् (अथवा कइसर्) (Kaizr)। र् प्रायः नहीं बोला जाता है। देखिये जौन्स कृत 'उच्चारण कोश'। —अनुवादक

भेजा, "दृढ़ रहने का तथा हार मानने के स्थान पर प्राण देने का समय आ गया है।" सेना को जॉफ्रे ने यह आदेश दिया, "इस समय जब हम लड़ाई में मोर्चा लेने वाले हैं तब यह आवश्यक है कि प्रत्येक को यह स्मरण रखना चाहिए कि पीछे देखने (अपमान) का समय चला गया है, शत्रु पर आक्रमण करने तथा उसे पीछे हटाने का प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिए। जो सैनिक आगे बढ़ सकें उन्हें प्रत्येक दशा में उस स्थान पर बने रहना चाहिए जो उन्होंने जीत लिया है और जहाँ वे खड़े हैं वहाँ से पीछे हटने की अपेक्षा उन्हें गोली से मर जाना चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में किसी दुर्बलता को सहन नहीं किया जा सकता है।"

निर्णयात्मक समय आ गया था किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं थी वरन् सम्पूर्ण फ्रांसीसी सेना सर्वोच्च प्रयत्न करने के लिए प्रोत्साहित थी। ५ सितम्बर से १० सितम्बर तक पैरिस से वर्डन[1] तक एक सौ मील से अधिक लम्बी पंक्ति में मार्ने की प्रख्यात लड़ाई लड़ी गयी जोकि संसार के इतिहास की निर्णयात्मक लड़ाइयों में से है।

मार्ने की लड़ाई

जिस उत्साह से ये लोग लड़े उसका प्रतीक जनरल फ्रॉक था। यह जॉफ्रे का अधीनस्थ अधिकारी था जिसने एक गम्भीर क्षण में अपने सेनापति को यह तार भेजा था: "मेरा दक्षिणांग अपमान कर रहा है, मध्यांग झुक रहा है। स्थिति सर्वोत्तम है। मैं आक्रमण करूँगा।" और उसने अति सफलतापूर्वक आक्रमण किया।

जर्मनी की पराजय हुई। वह भयानक विनाशकारी प्रहार जो फ्रांस को युद्ध से निरस्त करने के लिए किया गया था असफल रहा। वे जितनी आकस्मिता और शीघ्रता से आगे बढ़े थे उतनी ही आकस्मिता और शीघ्रता से पीछे हट गये। फ्रांसीसी उनका पीछा कर रहे थे। वे केवल तभी सुरक्षित हुए जब उन्होंने आइसने को पार कर लिया और वे उन खाइयों में स्थित हो गये जो उनके लिए पहले से तैयार कर ली गयी थीं। मार्ने की लड़ाई में फ्रांस ने अपने को तथा अपने मित्रों को बचा लिया था।

मार्ने की लड़ाई के पश्चात् **मित्र राष्ट्रों**[2] ने जर्मनों की सैनिक पंक्तियों को तोड़ने का प्रयत्न किया परन्तु वे असफल रहे। तत्पश्चात् समुद्र के लिए सामरिक दौड़ प्रारम्भ हुई और उत्तर की ओर आंग्ल समुद्र वंक (इंगलिश चैनल) तक खाइयां खोद दी गयी—**मोर्चा बन्दी हो गयी**। जर्मनों ने बेलजियम का पश्चिमी भाग विजय कर लिया, १० अक्टूबर को **ऐण्टवर्प** और ऑस्टेण्ड ले लिया और डनकर्क तथा कैले पर अधिकार करने का प्रयत्न किया परन्तु येसर नदी पर उन्हें रोक दिया गया। अक्टूबर के अन्त तक विरोधी पक्ष न्यूपोर्ट से स्विजरलैण्ड तक एक दूसरे के आमने सामने खाइयों में अवस्थित हो गये। 'स्थितियों का युद्ध' प्रारम्भ हो गया था जोकि मामूली परिवर्तनों के साथ मार्च १९१८ तक चलता रहा।

बेलजियम की विजय

---

1. इसका शुद्ध उच्चारण वर्डन (Verdon) है, देखिये जोन्स कृत उच्चारण कोश।
—अनुवादक

2. यद्यपि Allies का अनुवाद **मित्र** है तथापि प्रसंग के अनुसार **मित्र राष्ट्र** प्रयोग किया गया है। प्रायः यह प्रयोग शुद्ध माना जाता है। —अनुवादक

इन घटनाओं के परिणामस्वरूप उत्तर पूर्वी फ्रांस का एक वृहत् क्षेत्र और प्रायः सम्पूर्ण बेलजियम जर्मनों के अधिकार में आ गया। इस भूभाग के अधिकार के कारण उनकी युद्ध करने की शक्ति बहुत बढ़ गयी क्योंकि इस (क्षेत्र) के साथ फ्रांस का ९०% लोहा और ५०% कोयला हस्तांतरित हो गया और बेलजियम के बन्दरगाह परवर्ती काल में अपनाये गये जल गर्भ युद्ध[1] के लिये उपयुक्त अड्डे (आश्रय स्थान बन गये।

रूस द्वारा जर्मनी पर आक्रमण

निर्णायक ४ अगस्त १९१४ के पश्चात् पश्चिमी यूरोप का यह घटना चक्र था। इसी बीच पूर्व तथा दक्षिण पूर्व में भी घटनायें घटित हो रही थीं। जर्मनों की कल्पना के विपरीत रूस ने अपेक्षाकृत अधिक शीघ्र लामबन्दी करके अगस्त के मध्य में पूर्वी प्रशा पर आक्रमण कर दिया और कोई विजयें प्राप्त कीं। इस अप्रत्याति संकट का सामना करने के लिये जर्मनों को पश्चिमी मोर्चे से अपनी कुछ सेनायें बुलानी पड़ीं और इसी कारण मार्ने पर जर्मनों की पराजय हुई। रूसियों की विजयें अल्पकालीन थीं क्योंकि २६ अगस्त से १ सितम्बर १९१४ तक की टॅनेनबर्ग की लड़ाई में जनरल वॉन हिण्डनबर्ग की अध्यक्षता में जर्मनों ने उनको बुरी तरह हरा दिया। इसके पश्चात् हिण्डनबर्ग जर्मनी में लोकप्रिय व्यक्ति बन गया।

रूसियों को आस्ट्रिया ने विरुद्ध अधिक सफलता मिली। आस्ट्रिया के गैलिशिया प्रान्त पर आक्रमण करके उन्होंने टर्नोपोल, लैम्बर्ग और जोरोस्लाव पर अधिकार कर लिया और परजिमिस्ल का घेरा प्रारम्भ किया जिसने मार्च १९१५ में आत्म-समर्पण कर दिया। इसके पश्चात् हंगरी पर आक्रमण करने का विचार था।

इस प्रकार आस्ट्रिया का पूरा अवधान रूसियों की ओर लगा हुआ था। अस्तु सर्बिया निवासियों ने आस्ट्रिया की उन सेनाओं को (देश के) बाहर निकाल दिया जिन्होने उनके देश पर आक्रमण किया (दिसम्बर १९१४)।

तुर्की युद्ध में प्रवेश करता है

१९१४ के उन मासों की घटनायें जिनका वर्णन किया जाना चाहिये ये हैं: मॉण्टीनीग्रो निवासी सर्ब जाति के होने से, लघु राष्ट्र मॉण्टीनीग्रो ने सर्बिया के प्रति सहानुभूति के कारण ७ अगस्त को युद्ध में प्रवेश किया; और मध्य शक्तियों के पक्ष से तुर्की ने ३ नवम्बर को प्रवेश किया। तुर्की का युद्ध-प्रवेश पर्याप्त महत्व की घटना थी। यद्यपि बलकानीय युद्धों के परिणामस्वरूप यूरोपीय तुर्की अधिक संकुचित हो गया था तथापि ऑटोमन साम्राज्य अभी विस्तृत था क्योंकि उसमें एशिया माइनर, आरमीनिया, मैसोपोटामिया, सीरिया पेलेस्टाइन (फिलस्तीन) और अरब सम्मिलित थे। यह सब मिलाकर सात सौ सहस्र वर्गमील से भी अधिक था अथवा इसका जर्मन साम्राज्य से तिगुना क्षेत्रफल था और इसकी अनुमानित जनसंख्या दो करोड़ दस लाख थी। इसकी राजधानी में दस लाख से अधिक व्यक्ति रहते थे और इसकी स्थिति अद्वितीय थी क्योंकि यह उस स्थान पर स्थित है जहां यूरोप और एशिया परस्पर मिलते हैं और जहाँ से काले सागर अर्थात् दक्षिणी रूस का आना

---

1. पनडुब्बी युद्ध।

जाना अवरुद्ध किया जा सकता है। सुल्तान का शासन जातियों के एक अत्यन्त विजातीय समुदाय पर था जिसमें सम्पूर्ण जनसंख्या में अल्पसंख्यक तुर्क और अरब, यूनानी, सीरिया निवासी, कुर्द लोग, सरकासी लोग, आरमीनियावासी, यहूदी तथा अन्य कई जातियाँ सम्मिलित थीं। ये सब जातियाँ केवल जिस एक एकता को जानती थीं वह उस दमन में पाई जाती थीं जिसे वे सब अपने शासन (के हाथों) में अनुभव करती हैं जोकि निरंकुश एकतंत्र था। शासन अत्यधिक जर्मन समर्थक था। अनवर पाशा युद्ध मन्त्री था जोकि वर्लिन स्थित दूतावास में सैनिक सहदूत रह चुका था और जिसने जर्मन के सैनिक क्षेत्रों में अच्छे मैत्री सम्वन्ध स्थापित कर लिये थे। जर्मन सम्राट् ने अपने सम्पूर्ण शासन काल में तुर्की में अपना सफलतापूर्वक प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया था और १९१४ तक तुर्की जर्मनी का इच्छुक तथा समुत्सुक मित्र वन गया था और उसकी सेना के अधिकांश अधिकारी जर्मन थे। अतः प्रत्याशित घटना घटी जबकि तुर्की शासन ने दो जर्मन युद्ध पोतों को वोस्पोरस में प्रवेश करने की आज्ञा प्रदान की और वहाँ से वे काले सागर में प्रविष्ट हो गये तथा उन्होंने रूसी वन्दरगाहों पर बम वरसाये। तब ३ नबम्बर १९१४ को रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और इंगलैण्ड तथा फ्रांस ने भी अविलम्ब यही किया।

तुर्की के युद्ध-प्रवेश का एक उद्देश्य था और वह (वास्तव में बलकान राज्यों के लिये तथा ब्रिटिश साम्राज्य के लिये अर्थात् भारत और मिस्र के लिये एक (भावी) संकट था। इसने एशिया और अफ्रीका—मैसोपोटामिया, सीरिया, फिलस्तीन, मिस्र को युद्ध में सम्मिलित करा दिया। इसका तात्कालिक परिणाम हुआ मिश्र के खेदीव का सिंहासन से उतारा जाना जो कि सुल्तान के साथ अँग्रेजों को मिस्र के निकालने का षड़यन्त्र रच रहा था। ग्रेट ब्रिटेन ने मिस्र को संरक्षित राज्य घोषित कर दिया और सिंहासनाच्युत खेदीव के चाचा को सुल्तान की उपाधि से विभूषित करके उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया। अगली वर्ष फरवरी १९१५ में तुर्की के मिश्र पर आक्रमण करने और स्वेज नहर पर नियंत्रण स्थापित करने एवं इस प्रकार इंगलैण्ड का भारत से सम्वन्ध विच्छिन्न करने के प्रयत्न विफल कर दिये गये।

जापान युद्ध में प्रवेश करता है

२३ अगस्त १९१४ को प्रायः युद्ध प्रारम्भ होते ही एक अन्य शक्ति, जापान, ने भी युद्ध में प्रवेश किया। जापान ने दो कारणों से भाग लिया। एक कारण तो उसकी मूलतः १९०२ में की गयी तथा १९०५ और १९११ में पुनः की गई ग्रेट ब्रिटेन के साथ मैत्री के प्रति निष्ठा थी। उस संधि ने जापान की अत्यधिक सेवा (हित साधना) की थी। उसने उसके अन्तर्राष्ट्रीय गौरव को वढ़ाया था और उसके भौम अधिकारों की प्रत्याभूति प्रदान की थी। यह एक प्रतिरक्षात्मक मैत्री थी। प्रत्येक पक्ष ने युद्ध होने पर कुछ निश्चित आकस्मिकताओं में दूसरे को सहायता देने का वचन दिया था।

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाने से इंगलैण्ड ने अव जापान से उसके पूर्वीय व्यापार को सुरक्षा प्रदान करने में सहायता देने की प्रार्थना की और जापान ने निष्ठा के साथ उत्तर दिया। परन्तु यह सुरक्षा तव तक प्राप्त नहीं की जा सकती थी जव तक जर्मनी का क्यौचौ के सवल नौसैनिक अड्डे पर अधिकार था। जापानियों को यह ज्ञात था कि सत्तर वर्ष पूर्व रूस तथा फ्रांस से मिलकर जापानियों को अपने चीन के विरुद्ध युद्ध के सुफलों को त्यागने पर विवश करने के पश्चात् जर्मनी

ने उस अड्डे को किस प्रकार प्राप्त किया था। अस्तु उन्होंने उस आघात का बदला लेने में तथा उसी भाषा में अपनी माँग की अभिव्यंजना करने में जो जर्मनी ने उसके प्रति बीस वर्ष पूर्व व्यवहृत की थी आनन्द की अनुभूति की। १७ अगस्त १९१४ को जापान ने जर्मनी को यह माँग करते हुए अन्तिमेत्थम् भेजा कि वह अपना जहाजी बेड़ा हटा ले और 'पूर्व की शांति के लिए आवश्यक होने से' क्याँचौ को समर्पित कर दे और २३ अगस्त तक इसका उत्तर माँगा गया था। जर्मनी ने इस अन्तिमेत्थम का कोई उत्तर नहीं दिया परन्तु कइजर ने क्याँचौ को यह तार भेजा "मैं रूसियों को बर्लिन समर्पित करने की अपेक्षा जापानियों को क्याँचौ समर्पित करने में अधिक लज्जित होऊँगा।" २३ अगस्त को जापान ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और नवम्बर के मध्य तक उसने जर्मनी के उपनिवेश को जीत लिया उसके पश्चात् १९१८ तक जापान ने कम भाग लिया। तथापि वह मित्र-राष्ट्रों में से एक राष्ट्र था और उसने इंगलैण्ड, फ्रांस तथा रूस से यह समझौता किया था कि वह पृथक् संधि नहीं करेगा।

इसी मध्य महासागरों पर युद्ध का एक दूसरा पहलू संघर्ष का विषय बना हुआ था। युद्ध के प्रारम्भ से ही ग्रेट ब्रिटेन की नौसैनिक अग्रगण्यता का मित्रराष्ट्रों के लिए अत्यधिक महत्त्व प्रदर्शित हो रहा था और प्रति
दिन अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था। अगस्त में समुद्रों का नियंत्रण
हैलगोलैण्ड के समीप अँग्रेजों ने नौसैनिक विजय प्राप्त
की। नवम्बर में चिली के तट से दूर जर्मनी ने नौसैनिक विजय प्राप्त की जिसका बदला ८ दिसम्बर को अँग्रेजों ने फॉकलैण्ड द्वीपों से दूर जर्मन बेड़े को पूर्ण रूप से पराजित करके लिया। इन घटनाओं का पूर्ण परिणाम यह हुआ कि जर्मनी के सैनिक जलपोत महासागरों से हट गये और जर्मनी का मुख्य जहाजी बेड़ा कील नहर में बंद हो गया। साथ ही जर्मनी के व्यापारिक जलपोत भी समुद्रों पर नहीं रहे। यदा कदा जर्मनी का पीछा करने वाला जलपोत अब भी बाहर आ जाता और हानि पहुँचा देता। पनडुब्बियों का संकट अभी तक गम्भीर नहीं था। ग्रेट ब्रिटेन के महासागरों से संचार के मार्गों पर व्यवहारिक नियंत्रण होने से इंगलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका से युद्ध स्थलों तक सैनिकों को पहुँचाना तथा युद्ध और व्यापारिक आदान-प्रदान मुख्य तथा अनवरुद्ध रूप से होते रहे। इस तथ्य की अतिशयोक्ति नहीं की जा सकती है। इसके कारण मित्रराष्ट्र युद्ध संचालन कर सके और इसने औद्योगिक तथा व्यापारिक जीवन सक्रिय रखा—यह केवल सुविधा और संतोष का ही नहीं प्रत्युत धन का भी साधन था। और युद्ध को पूर्ण रूप से संचालित करते रहने, जल तथा स्थल सेनाओं तथा अन्य सभी युद्ध सेवाओं को बढ़ाने के लिए धन की आवश्यकता थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९१४ के अगस्त के दिसम्बर तक के मास निर्णयात्मक घटनाओं से ओत-प्रोत थे। उस वर्ष के अन्त तक दस राष्ट्र युद्ध में संलग्न थे—आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी और तुर्की एक ओर थे और दूसरी ओर थे सर्बिया, रूस, फ्रांस, बेलजियम, ग्रेट ब्रिटेन, मॉण्टीनीग्रो और जापान। दो महान राष्ट्रों—संयुक्त राज्य तथा इटली—ने और बहुत से छोटे राष्ट्रों ने अपनी तटस्थता की उद्घोषणा की थी। यह बात देखनी शेष रही कि वे अपनी तटस्थता इस युद्ध में, जैसा

कि पहले ही स्पष्ट था, जो प्रत्येक राष्ट्र पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल रहा था, बनाये रख सकेंगे अथवा नहीं।

१९१५ में युद्ध

न्यू चैपल की लड़ाई

१९१४ के वर्ष की समाप्ति पर मित्रराष्ट्र मार्ने की लड़ाई में जर्मनों को हराकर उन्हें पश्चिमी मोर्चे पर रोके हुए थे। परन्तु जर्मनों ने एक छोटे से भाग को छोड़कर शेष सम्पूर्ण बेलजियम और उत्तर पूर्वी फ्रांस जीत लिये थे तथा उत्तरी सागर से स्विटजरलैण्ड तक अपने प्रतिरक्षात्मक मोर्चे[1] जमा दिए थे। मित्र राष्ट्रों ने उनको वहाँ से खदेड़ने तथा उनकी मोर्चाबन्दी को तोड़ने का १९१५ में पुनः पुनः प्रयत्न किया था। न्यू चैसल की लड़ाई में सर जोन फ्रेंच की अध्यक्षता में अँग्रेजों ने चार मील से अधिक के अग्रभाग पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण के पूर्व इतनी भीषण गोलाबारी हुई थी कि किसी भी (पूर्ववर्ती) युद्ध में वैसी न हुई होगी। उस तंग मोर्चे पर ३०० से अधिक अँग्रेजी तोपों ने १० मार्च को गोले बरसाये। गोला बारूद द्वारा मार्ग बना देने के पश्चात् पदाति सेना आगे को बढ़ी और वह एक मील बढ़ गई। आगामी दो दिवसों में जर्मनों ने पुनः प्रत्याक्रमण किये परन्तु वे असफल रहे। अँग्रेज अपने नये मोर्चे पर जमे रहे परन्तु मृतकों की संख्या अत्यधिक रही। वे जर्मन पंक्ति में केवल स्थानीय प्रवेश पा सके। यह लड़ाई इसलिये महत्त्वपूर्ण थी कि इसने तीव्रता से प्रदर्शित किया कि यदि जर्मनों को फ्रांस तथा बेलजियम से बाहर खदेड़ना है तो कितना भयंकर प्रयत्न तथा बलिदान करना पड़ेगा। वाटरलू के युद्ध में इंगलैण्ड तथा प्रशा के जितने सैनिक मारे गये थे उससे कहीं अधिक सैनिक इस लड़ाई में हताहत हुए तथा बन्दी बनाये गये।

एप्र का युद्ध

ऐसी ही लड़ाई एक तंग मोर्चे पर २२ अप्रैल से २६ अप्रैल तक हुई। इस बार यह जर्मनों द्वारा प्रारम्भ की गयी। यहाँ पर सर्वप्रथम गैस प्रयोग की गयी। फ्रांसीसी सैनिक पंक्ति नष्ट हो गयी। जो गैस से बचे वे तीन मील पीछे हट आये। यह लड़ाई युद्ध के इस नये पहलू तथा कनाडा के सैनिकों की शांतचित्तता, वीरता और बलिदान की भावना के लिये प्रसिद्ध है। "कनाडी सैनिकों पर यह तूफान पूरे वेग से आया और कनाडी सैनिकों (मिलीशिया) ने अँग्रेजी सैनिकों के वीरतापूर्ण गौरव की मॉन्स से मान तक पुनरावृत्ति की। ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में एप्र की दूसरी लड़ाई स्मरणीय रहेगी। परन्तु चैपल की लड़ाई की भाँति इसने किसी भी सैनिक पंक्ति को नहीं तोड़ा। यह केवल काटाकूटी (निर्बलिग) थी। यह शब्द आधुनिक प्रयोग में इस लड़ाई की प्रकृति को व्यंजित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पश्चिमी मोर्चे पर १९१५ को सम्पूर्ण ग्रीष्म ऋतु में छुट पुट लड़ाइयाँ हुई जो न टूटने वाली (अभेद्य) पंक्ति को तोड़ने के लिए बीच-बीच में बन्द रहती थीं। एक महत्त्वपूर्ण घटना यह हुई कि सर जान फ्रेंच को कार्य मुक्त किया गया और जनरल

---

1. अँग्रेजी मुहाविरे **'dug themselves'** का अनुवाद है 'अपने लिए प्रतिरक्षात्मक खाइयाँ खोदीं, परन्तु हिन्दी मुहाविरा है 'प्रतिरक्षात्मक मोर्चा जमाया।

—अनुवादक

हेग को अंग्रेजी सेनाओं का सेनाध्यक्ष बनाया गया। इस नियुक्ति को यह सिद्ध करना था कि अन्त में इंगलैंड को अपना नेता मिल गया।

१९१५ के उस कटु वर्ष के लिये मित्र राष्ट्रों के लिये और भी कई निराशायें आरक्षित थीं। जर्मनी की मूल योजना, जैसा कि हम देख चुके हैं यह थी कि सर्व-प्रथम फ्रांस को नष्ट किया जाय और उसको (युद्ध) निरस्त कर दिया जाये; तत्पश्चात् पूर्व की ओर मुड़ा जावे और रूस को निरस्त कर दिया जावे। इसके पश्चात् वह यूरोप को जैसी चाहेगा वैसी सन्धि मानने पर विवश करेगा। मार्ने की लड़ाई तथा बेलजियम में यू पोर्ट से स्विटजरलैंड तक इंगलैंड तथा फ्रांस की ठोस मोर्चाबन्दी ने इस योजना को अवरुद्ध कर दिया था। फ्रांस को सरलता से निरस्त नहीं किया जा सकता था। अतः जर्मनी ने एक नई योजना अपनाई अर्थात् रूस को नष्ट करना तथा उसे निरस्त करना और तब पश्चिम की ओर मुड़ना तथा फ्रांस से निबटना और इंगलैंड से घुटने टिकवाना। यह बात भी स्वाभाविक थी कि अपने पूर्वी शत्रु से लड़ते समय उनको अपना पश्चिमी मोर्चा सुदृढ़ रखना चाहिए और यदि सुअवसर प्राप्त हो तो आक्रमण भी किया जाये। कहीं भी प्रयत्न को विलंबित अथवा न्यून नहीं करना चाहिए परन्तु मुख्यतया पूर्वी अभियान पर बल देना चाहिये क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक था और अविलम्ब लाभ की आशा दिलाता था। पूर्व में प्रमुख प्रयत्न करने का यह और भी तर्क था। हिण्डनबर्ग जर्मनी का नवीन लोकप्रिय सैनिक नेता कई वर्षों के अध्ययन के कारण युद्ध के उस रंगमंच की प्राकृतिक विशेषताओं से भली भाँति परिचित था। संभवतः जो कुछ उसने टैनेनबर्ग में किया था उसको वह पुनः भी कर सकता था।

पूर्वीय मोर्चा

पूर्व की घटनायें जर्मनी की उच्चतम कल्पनाओं से भी परे सिद्ध होनी थीं। टैननबर्ग के पश्चात् शक्ति लाभ करते हुए रूसियों ने आक्रमण प्रारम्भ कर दिया और पुनः पूर्वी प्रशा पर अभिक्रमण किया। फलतः हिण्डनबर्ग उन पर टूट पड़ा और १२ फरवरी १९१५ को मजूरियन लेक्स पर उनको पूर्ण रूप से पराजित किया। रूसियों के १५० सहस्र सैनिक हताहत हुए और एक सौ सहस्र सैनिक बन्दी बनाये गए।

यह केवल प्रारम्भ था। पूर्वी प्रशा रूसियों से मुक्त हो गया। परन्तु उन्होंने आस्ट्रिया के उत्तरी प्रान्त गलीशिया को पादाक्रान्त कर दिया था। वे भी निकाले जाने चाहिए। तत्पश्चात कोई भी विदेशी सैनिक मध्य साम्राज्यों की भूमि में न रह जावेगा। साथ ही युद्ध प्रत्यक्षतः रूस में लड़ा जाना चाहिये। परिस्थितियाँ बदलनी चाहिये और वे स्मरणीय ढंग से बदलीं। अप्रैल से अगस्त तक गर्मी भर हिण्डनबर्ग तथा मेकेनसन की अधीनता में जर्मनी और आस्ट्रिया के सैनिकों के विशाल सह अभियान हुए और उन्होंने विस्तृत मोर्चों पर युद्ध किया। विजय के पश्चात द्रुतक्रम से विजय होती रही। रूसियों को गलीशिया से खदेड़ दिया गया। प्रशेमिस्ल का पतन २ जून को हुआ और लैमबर्ग का पतन २२ जून को हुआ। रूसी पोलैण्ड पर अभिक्रमण हुआ। उसकी राजधानी वारसा पर ५ अगस्त को अधिकार हो गया। सम्पूर्ण पोलैण्ड जीत लिया गया और लिथुनिया तथा कौर-लैंड पदाक्रान्त हो गये। जब अभियान समाप्त हुआ तब भी रूसी पंक्ति अक्षुण्ण थी

रूस पर जर्मनों का आक्रमण

परन्तु काफी पीछे हटने पर विवश की गयी थी और इस समय वह उत्तर में रीगा से दक्षिण में रूमानिया की उत्तरी सीमा जर्नोविच तक विस्तृत थी।

जर्मनी द्वारा पोलैण्ड की विजय

यह एक उल्लेखनीय ग्रीष्म ऋतु की कार्यवाही थी। राष्ट्रीय वीर के रूप में हिण्डनबर्ग के साथ मेकेन्सन ने भी ख्याति प्राप्त की। रूसियों का वह विघटन जिसके कारण दो वर्ष पश्चात ब्रेस्ट लिटवस्क की दुर्भाग्यपूर्ण संधि हुई, प्रारम्भ हो गया था। रूस का ६५,००० वर्गमील का भूक्षेत्र हाथ से निकल गया था जो कि न्यूइंगलैण्ड से अधिक विस्तृत भू-भाग था। इस युद्ध की सैनिक सांख्यिकी अनिश्चित है क्योंकि वह सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त किसी अन्य के नियन्त्रण में नहीं थी परन्तु यह कहा जाता है कि हताहत रूसी सैनिकों की संख्या १२ लाख थी और लगभग दस लाख सैनिक बन्दी बनाए गये थे। रूसी सेनापति ग्रांड ड्यूक निकोलस को प्रधान सेनापति के पद से हटा दिया गया और काकेसस भेज दिया गया। पूर्वी मोर्चे के लिये इतना पर्याप्त है। जिस प्रकार १९१४ में जर्मनी ने बेलजियम तथा उत्तर-पूर्वी फ्रांस था उसी प्रकार उन्होंने १९१५ में रूस के अधिकांश भाग को छीन लिया। जिस उल्लास की जर्मनों ने अनुभूति की और उन्होंने स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त किया उसके वे अधिकारी थे।

उस १९१५ के वर्ष में मित्र राष्ट्रों को एक ओर उल्लेखनीय पराजय और सम्मान में गम्भीर न्यूनता भोगनी पडी। इस बार यह (घटना) यूरोप के सुदूरतम दक्षिण पूर्वी भाग में हुई उन्होंने तुर्की साम्राज्य की राजधानी कुस्तुन्तुनिया को लेने का प्रयत्न किया जो कि भूमि की बनावट (स्थल रूप रेखा) के कारणों से असाधारण रूप से कठिन कार्य था। यदि वे इसे पूरा कर लेते तो बलकानीय राज्य जो अभी तक युद्ध में प्रविष्ट नहीं हुए थे वे सम्भवत: मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में प्रविष्ट हो जाते और इस समलक्ष्य संघटन से आस्ट्रिया पर दक्षिण तथा पूर्व से अतिक्रमण किया जा सकता था। तुर्की भी संधि करने के लिए विवश की जा सकती थी अथवा कम से कम वह प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही करने के लिए बाध्य की जा सकती थी। और मित्र राष्ट्र डार्डेनैनीज तथा बोसपोरस पर नियन्त्रण स्थापित कर सके तो वे कालेसागर में होकर रूस से सम्बन्ध स्थापित कर लेंगे। इस प्रकार वे रूस को युद्ध की सामग्री भेज सकते थे। जिसकी उसे अत्यधिक आवश्यकता थी और उससे वह खाद्य-सामग्री प्राप्त कर सकते थे जिसका वह उत्पादन करता था।

फरवरी तथा मार्च में अँग्रेजी तथा फ्रांसीसी बेड़े ने डार्डेनैलीज में प्रवेश करने का प्रयत्न किया। समुद्रवंक में 'संकीर्ण स्थानों' तक पहुँचने के पश्चात् वे आगे नहीं बढ़ सके। समुद्र तट पर सुदृढ़ सैनिक दुर्ग बने हुए थे और दुर्गों तथा जलपोतों के बीच जो लड़ाई हुई उसमें कई जलपोत नष्ट कर दिये गये। जहाजी बेड़े को पीछे हटाना पड़ा। उस मार्ग से कुस्तुन्तुनिया नहीं पहुँचा जा सका। आगामी प्रयत्न स्थलमार्ग से किया गया।

आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड में अनजाक[1] नामक सैनिकों के

---

1. यह मिश्रित शब्द आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड आर्मी कोर (Australia Newzealand Army Corps) के शब्दों के प्रथम अक्षरों को मिलाने से बना है।

गाली पोली का अभियान

आकर मिल जाने पर क्षतिपूर्ण विलम्ब के पश्चात् आंग्ल-फ्रांसीसी सेनायें सर आयन हैमिल्टन के सेनापतित्व में गाली पोली के प्रायद्वीप में उतरीं। ये अनजाक सैनिक लालसागर से मार्ग से आये थे। परन्तु तुर्कों को पूर्व चेतावनी मिल चुकी थी और वे जर्मन जनरल लिमरवॉन सैण्डर्स के अधीन उनके लिये तैयार थे। भारी क्षति के पश्चात् ये सेनायें उतर सकीं और जिन मोर्चों (स्थितियों) का मित्र राष्ट्रों को सामना करना पड़ा वे अभेद्य सिद्ध हुईं। सुवला की खाड़ी में पार्श्वाक्रमण भी असफल रहा। मित्रराष्ट्र वर्ष भर लड़ते रहे परन्तु वे रोक दिये गये और दिसम्बर में उन्होंने इस प्रयत्न को त्याग दिया। उनको बड़ी भारी क्षति उठानी पड़ी थी और सम्भवतः तुर्कों को स्वेज नहर पर आक्रमण करने से रोक रखने के अतिरिक्त उनको और कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस स्पष्ट एवं पूर्ण असफलता की झिझकने वाले बलकानी राज्यों बलगेरिया और यूनान पर दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रिया हुई। वे अब तक तटस्थ थे। अब वे यह सोचने लगीं कि मध्यशक्तियां अन्ततोगत्वा विजयी रहेंगी और यह अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सुगम रहेगा यदि विजयी पक्ष की ओर रहा जावे।

बलगेरिया युद्ध में प्रवेश करता है

बलगेरिया सर्विया, रूमानिया और यूनान को अत्यधिक नापसन्द करता था। वह बुखारेस्ट की संधि से अत्यधिक असंतुष्ट था और उसको तोड़ने के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। हिन्डनबर्ग और मेकेनसन की सेनाओं के भयानक प्रहारों के कारण प्रति-मास और प्रति सप्ताह रूसियों का अपमान और तुर्कों तथा जर्मनों द्वारा डार्डेनैलीज के जलडमरूमध्य का अवरुद्ध किया जाना तथा गाली पॉली के समुद्र तट पर अँग्रेजों को रखना जार फर्डिनेण्ड और उसके मन्त्री रैंडसलाफ को यह स्पष्ट प्रतिभासित कराने लगे कि इस बृहत् युद्ध में जर्मनों का विजयी रहना विधाता ने पूर्व निर्धारित कर दिया था। अतः ८ अक्टूबर १९१५ को दुहरी चाल के स्पष्ट प्रदर्शन के पश्चात् उन्होंने बलगेरिया को **मध्य-शक्तियों** की ओर से युद्ध में प्रविष्ट करा दिया। बलगेरिया की इस कार्यवाही के दो तात्कालिक परिणाम हुए। इसके पूर्व में एशिया तक का मार्ग पूरा करते हुए तुर्कों से **मध्य शक्तियों** को शृंखलाबद्ध कर दिया और इसने सर्विया के विनाश की घंटी बजा दी।

सर्विया को एक ऐसे युद्ध का बहाना बनने की इच्छा नहीं थी जिसने इतने शीघ्र सभी सीमाओं का उल्लंघन कर दिया और सम्पूर्ण विश्व को अपने साथ घसीट कर अव्यवस्था के गहरे गर्त में डाल दिया। आस्ट्रिया को सर्विया को अल्टिमेटम् इस सामान्य संघर्ष का संकेत (सिगनल) था। आस्ट्रिया की सेनाओं ने सर्विया पर अविलम्ब आक्रमण किया और बेलग्रेड पर अधिकार कर लिया। इस संघर्ष में उसको कठिन प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था और २० अगस्त १९१४ तथा उसके परवर्ती दिनों में सर्विया ने एक अच्छी विजय भी प्राप्त की थी जो कि यूरोपीय मोर्चे की पहली सामान्य लड़ाई थी। मॉण्टीनीग्रो के निवासियों की सहायता प्राप्त करते हुये सर्विया निवासी आस्ट्रिया वालों के आक्रमण का हताश होकर दुर्दम्य से सामना करते रहे और दिसम्बर के मध्य तक उनकी विजय पूरी हो गयी। १५ दिसम्बर को बेलग्रेड पर उनका पुनः अधिकार स्थापित हो गया। आस्ट्रिया की सेना उस देश में

से सहसा पीछे हट गयी जिसको वे अति घृणा करते थे। उनका अपमान भगदड़ (या पराजय) में परिणत हो गया। सर्विया ने आस्ट्रिया पर आक्रमण भी किया। सर्विया निवासी लेखक को इस लेख के लिये हमें क्षमा प्रदान करनी चाहिए : "दस दिन में आस्ट्रिया की पाँच सेनाओं पर सर्विया की सेना की पूर्ण विजय हो गयी। उस समय के पश्चात् से जब सीपियों ने रोम को हैनीबाल से बचाया था अथवा इंगलैंड ने स्पेन की शक्ति का विनाश किया था, विश्व ने ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा था और न कभी किसी उपयुक्त पात्र को ऐसी विजय ही प्राप्त हुई थी।" सर्विया की विजय का श्रेय वीर सेनानी मिसिच को प्राप्त हुआ।

सर्विया पर विजय

विश्व युद्ध में सर्विया के इतिहास का प्रथम अध्याय इतना गौरवपूर्ण था। दूसरा अध्याय इससे अत्यन्त भिन्न था। अक्टूबर १९१५ में रूस और गालीशिया की विजयों के पश्चात् शीघ्र ही जनरल वॉन मेकेनसन के सेनापतित्व में जर्मनी तथा आस्ट्रिया की सेनाओं ने एक बड़ी संख्या में सर्विया पर आक्रमण किया। साथ ही बलगेरिया की सेना ने पूर्व की ओर उस पर आक्रमण किया। दो मास तक सर्विया निवासी जर्मनी, आस्ट्रिया तथा बलगेरिया की विशाल सेनाओं से अकेले लड़ते रहे। इसके अतिरिक्त उनके मित्र यूनान ने समय पर उनका साथ नहीं दिया जिनको संधि के अनुसार ऐसी आकस्मिकता में सहायता करनी चाहिये थी। सर्विया पूर्ण रूप से पराजित हुआ एवं कुचल दिया गया। उसकी सेना का केवल एक भाग सुरक्षित रूप से अलबानिया के समुद्र तट पर पहुँच सका। वहाँ से वह मित्रराष्ट्रों के जहाजों द्वारा कॉर्फू द्वीप पहुँचा दिया गया। अलबानिया के निर्जन (ऊजड़) पहाड़ों में होकर उनके भयावह अपमान तथा अवर्णनीय कठिनाइयों को, जो उन्होंने सहन कीं, समुचित रूप से व्यक्त करने के लिए शब्दों का प्राप्त करना कठिन है। इस युद्ध में एक और शहादत (बलिदान) हुई। आस्ट्रिया तथा जर्मनी की सेनाओं ने इस विजय के पश्चात् जनवरी १९१६ में मॉण्टोनीग्रो को पदाक्रान्त कर दिया।

सर्विया की इस विजय तथा विनाश के साथ ही एक अन्य घटनावली प्रारम्भ की जा रही थी जिसकी पूर्ण महत्ता दो और घटनापूर्ण एवं हतोत्साहित करने वाले वर्षों में अन्त में ही जानी जा सकी। अक्टूबर १९१५ में यूनान के प्रमुख बन्दरगाह साओनिका में आंग्ल-फ्रांसीसी सेना उतर गयी। यह सेना यूनान के प्रधान मन्त्री वेनीजिलोस के आमन्त्रण पर सर्विया के सहायता के लिये आई थी। यद्यपि सन्धि के अनुसार उसका कर्तव्य था तथापि यूनान का नरेश और जर्मन सम्राट का साला कोंसटैण्टाइन सर्विया की सहायता नहीं करना चाहता था। उसने वेनीजिलोस को पदच्युत कर दिया और उसने जर्मन समर्थक अत्याचारपूर्ण नीति का अनुसरण किया जिसके कारण उसको अन्त में सिंहासन त्यागना पड़ा।

सालोनिका का सैनिक अड्डा

आंग्ल फ्रांसीसी सेना सर्विया निवासियों की सहायता के लिये उत्तर की ओर चली परन्तु वह असफल रही और उसको सालेनिका के सैनिक अड्डे की पीछे की ओर अभियान करना पड़ा। परन्तु इस सेना से उचित समय पर इसे पीड़ित देश का उद्धार होना था। इसमें आगे चलकर कोर्फ द्वीप में शरण पाने वाली सर्विया की पुनर्व्यवस्थित एवं पुनः शक्ति प्राप्त सेना के मिल जाने से पर्याप्त वृद्धि हो गयी।

इस वर्ष पूर्व में तथा बलकान देशों में मित्र राष्ट्रों की परिस्थिति पहले से बिगड़ गई थी परन्तु एक दूसरे क्षेत्र में उन्होंने स्पष्ट एवं भविष्य में लाभ की सूचक परिस्थिति का निर्माण कर लिया था। इटली उनके पक्ष में युद्ध में प्रविष्ट हो गया था। ३० वर्ष से अधिक काल तक इटली त्रिसूत्री मैत्री का सदस्य रहा था जो १८८२ ई० में जर्मनी तथा आस्ट्रिया-हंगरी के साथ सम्पादित की गयी थी। इस मैत्री का १९१२ में पुनर्नवीकरण हुआ था और यह पुनर्नवीकरण १९२० तक बना रहना था परन्तु जब १९१४ में युद्ध प्रारम्भ हुआ और उसके मित्रों ने उसके सहयोग के लिये कहा तब उसने इस तर्क पर सहयोग देना अस्वीकार कर दिया था कि उस पर उनको सहायता देने का दायित्व उसी दिशा में था जब उन पर आक्रमण किया जाता। उसका कहना था कि वास्तव में युद्ध उन्ही ने प्रारम्भ किया है। अत इटली ने तटस्थता की नीति अपनाई जिस पर वह २३ मई १९१५ तक बना। जब रूसी पूर्णरूप से पीछे को हट रहे थे, वह पश्चिमी शक्तियों की ओर से युद्ध में प्रविष्ट हो गया। वह मित्र राष्ट्रों के लिये इस वर्ष का महान् लाभ था। यह ऐसा लाभ था जिससे शक्ति का पलड़ा उनके पक्ष में भारी होने की आशा थी।

इटली युद्ध में प्रवेश करता है

इस प्रकार की कार्यवाही करके इटली के शासन ने केवल जनता की व्यापक माँग के अनुसार कार्य किया था। १८५९ और १८७० के बीच के दशक में जब से इटली का राज्य बना था तब से इटली निवासी इस विचार में व्यग्र रहते थे कि उनका एकीकरण पूरा नहीं हुआ था, उस समय उनके राज्य की सीमाएँ जैसी निर्धारित हुई थीं उनके अनुसार लाखों इटालवी आस्ट्रिया के अधीन थे। वे उत्तर में ट्रेनटिनो में रहते थे तथा उत्तरपूर्व में ट्रिस्टी तथा इस्ट्रिया के प्रायद्वीप में रहते थे। यह **असुक्त इटली** थी। अब इटली के शासन ने इस भूक्षेत्र को प्रथमतः आस्ट्रिया-हंगरी के साथ शान्तिपूर्ण बातचीत के द्वारा तथा जब वह प्रणाली असफल रही तब युद्ध के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इटली के शासन को एक अन्य तत्व ने भी प्रभावित किया। वह तत्व था जनता की अनवरत माँग कि इटली को जर्मनी के निरंकुश एकतंत्र से प्रजातन्त्र की प्रतिरक्षा में अपना सहयोग प्रदान करना चाहिये। इटली निवासियों की यह प्रबल प्रवृत्ति थी कि मित्र राष्ट्रों के समान विचार रखने वाले होने के कारण वे उनके पक्ष में थे। उनका युद्ध प्रवेश स्वभावतः इंगलैंड तथा फ्रांस में बड़े उत्साह से समादृत हुआ और जर्मनी तथा आस्ट्रिया में उसका गम्भीर विरोध हुआ। इटली से युद्ध में हस्तक्षेप के पश्चात् शीघ्र ही सैन मैरिनो नामक स्वतन्त्र लघु गणराज्य ने युद्ध में प्रवेश किया। वह राज्य जोकि अपने को यूरोप का सबसे पुराना राज्य बतलाता है और एपीनाइन पर्वतों की ऊँची हुई संरक्षा परि-स्थिति से चारों ओर से पूर्णतः इटली से घिरा हुआ है। इसकी जनसंख्या लगभग बारह सहस्र है। सैन मैरिनो उन नगर राज्यों में से, जो इटली में मध्य युग में बहुत बड़ी संख्या में थे, बचा हुआ एक मात्र राज्य है। उसने ३ जून १९१५ को **मध्य शक्तियों** के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

मित्रराष्ट्रों का १९१४ और १९१५ का एक अन्य लाभ था, जर्मनी के उपनिवेश की विजय। युद्ध में प्रवेश करते ही जापान ने, जैसा कि हम देख चुके हैं, जर्मनी

छीन लिया। अफ्रीका में अँग्रेजी तथा फ्रांसीसी सेनाओं ने सुगमतापूर्वक टोगोलैण्ड तथा कैमेरन को पदाक्रान्त कर दिया। यद्यपि १९१७ के प्रारम्भ तक विजय पूर्ण नहीं हुई थी तथापि दक्षिण पश्चिमी जर्मन अफ्रीका को सेनाध्यक्ष स्मट्स की अधीनता में दक्षिण अफ्रीका की सेनाओं ने जीत लिया। पूर्वी जर्मन अफ्रीका के विरुद्ध प्रारम्भ से ही अभियान का श्रीगणेश किया गया था और फलतः शीघ्र ही वह उपनिवेश अधिकांश जर्मन सेनाओं से मुक्त हो गया। तथापि कुछ जर्मन सेनाओं का पता नहीं चल सका और वे प्रत्यक्षतः युद्ध के अन्त तक अपराजित ही रहीं। १८१५ के अन्त तक जर्मनी का विशाल औपनिवेशक साम्राज्य बहुत छोटा रह गया था।

जर्मन उपनिवेशों की विजय

उसी वर्ष १९१५ में एक अन्य घटना घटी जिसने सारे संसार को संवेदना पहुँचाई और जिसका उचित समय पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ना था। यह घटना थी ७ मई को आयरलैण्ड के तट से दूर ल्यूसीटानिया नामक अटलांटिक युद्ध पोत का डूबना। इस घटना का आगे चलकर सर्वोत्तम वर्णन दिया जा सकता है; तथापि इसको १९१५ की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की सूची में अवश्य सम्मिलित कर लेना चाहिए।

१९१६ में युद्ध

हम देख चुके हैं कि जर्मन की मूल योजना यह थी कि प्रथम फ्रांस को कुचल कर तब रूस पर आक्रमण करके उससे घुटने टिकवा देने चाहिये। १९१४ में इस योजना को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया गया था परन्तु वह असफल रहा था। फ्रांस नहीं कुचला गया परन्तु उसने जर्मन को मार्ने की प्रसिद्ध लड़ाई में हराकर सहसा आइसिन तक खदेड़ दिया था, अपनी युद्ध क्षेत्र की सेना को सुरक्षित बचा लिया था, पेरिस को बचा लिया था और फ्रांस में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दुर्ग वडन, बैलफोर्ट, टूल और इनीपल भी बचा लिये गये थे। १९१५ और १९१६ में मित्रराष्ट्रों की आशा और पक्ष का प्रमुख आशय फ्रांस रहा। तथापि १½ वर्ष के युद्ध के पश्चात् रूस बुरी भाँति परास्त हो चुका था तथा उसने दुर्बलता तथा विघटन के बहुत चिह्नों को प्रकट किया था जो आगे चलकर अति द्रुति गति से तथा भयावह रूप से विकसित होने थे। इंगलैंड अभी तक उस कार्यवाही को पूरी तरह नहीं जान सका था जो उसको करनी चाहिए थी; उसने अभी तक अनिवार्य सैनिक सेवा को नहीं अपनाया था, यद्यपि स्वयं सेवकों की सेना से उसने आश्चर्यजनक कार्य किये ये। इटली ने अभी तक कोई ऐसा कार्य नहीं किया था जिससे वे आशाएँ उचित जान पड़तीं जिनको लेकर मित्रराष्ट्रों ने उसके युद्ध प्रवेश का शुभागमन किया था। बेलजियम का मानचित्र में प्रायः अस्तित्व ही नहीं रहा था। यही भाग्य सर्बिया, माण्टीनीग्रो और अलबानिया का हुआ। ये सभी राज्य *मध्य शक्तियों* की सेनाओं द्वारा पदाक्रान्त किये जा चुके थे और दासता की बेड़ियों में पूर्णरूप से जकड़े हुये थे। तथापि कृत संकल्प, कटिबद्ध, प्रगाढ़, सभी प्रकार से उत्साहपूर्ण एवं आकस्मिकता का सामना करने के लिए सन्नद्ध फ्रांस ने सर नहीं झुकाया था।

१९१६ के प्रारम्भ के युद्ध का मानचित्र

परन्तु फ्रांस ने भारी क्षति उठाई थी और जर्मनी के सैनिक अधिकारी उस काम को १९१६ में करना सम्भव समझते थे जिसे वे १९१४ में करने में असफल

रहे थे। वर्डन के आक्रमण का यही अभिप्राय है। जर्मनी के सेनाध्यक्ष यह समझते थे कि फ्रांसीसी सेना पर भयानक, अवारणीय, एवं घातक प्रहार (आक्रमण) करके वे उसको कुचल सकते थे। शांति (सरलता से) शीघ्र ही स्थापित हो जावेगी क्योंकि फ्रांस भावी संघर्ष की आशाहीनता को, अलसेक-लॉरीन की पुन: प्राप्ति की असंभवता को, स्वीकार कर लेगा। वर्डन में फ्रांसीसियों की स्थिति सुदृढ थी परन्तु यदि उसको एक बार ले लिया जावे तो उसके तथा पेरिस के बीच में कोई भी वैसी ही सबल प्रतिरक्षात्मककार्यवाही नहीं की जा सकेगी। राजधानी का पतन हो जावेगा और राजधानी के पतन से फ्रांस युद्ध से अलग हो जावेगा। संयोगवश जर्मनी का युवराज वर्डन के समीप सेनापति था। अत: प्रशा के सिंहासन के उत्तराधिकारी को व्यक्तिगत रूप से चकचौंध करने वाला सैनिक गौरव प्राप्त होगा।

१९१६ में २१ फरवरी को सात बजकर १५ मिनट पर प्रात: वर्डन पर अभिक्रमण हुआ जोकि फ्रांस के सैनिक इतिहास में दीर्घकाल से विख्यात है। परन्तु अब उसको सौभाग्य से अपेक्षाकृत वृहत्तर ख्याति मिलनी थी। जितनी भीषण प्रलयकारी गोलाबारी इस आक्रमण के प्रारम्भ में हुई उतनी बड़ी पहले कभी नहीं हुई थी। जर्मनों ने बड़ी भारी तैयारी की थी और उसकी सेना तथा सामग्री विशाल थी। उनका मार्गविरोध मानवों के लिये असंभव प्रतीत हो रहा था। परन्तु असंभव सम्पादित किया गया। विश्वास न करने योग्य शांत चित्त एवं अक्षय वीरता से फ्रांसीसियों ने प्रत्येक इंच भूमि के लिए संघर्ष किया; तथापि लगातार पराजित होते रहे और चार दिन की उस उत्तेजनापूर्ण लड़ाई में वे चार मील पीछे हटा दिये गये। फ्रांसीसी उपोद्बल (कमुक) सहस्त्रों मोटरों के द्वारा वहाँ शीघ्र ही पहुँच गया। जाफ्रे का एक अतियोग्य अधीन सेनानी, पेटिन, वहाँ पहुँच गया और उसने प्रतिरक्षा करने वाली सेना में नया उत्साह भर दिया। पेटिन ने सैनिकों से ये शोभनीय एवं प्रोत्साहित करने वाले शब्द कहे, "साथियो! साहस, हम उनको पराजित करेंगे।"

वर्डन

यह लड़ाई फरवरी से अक्टूबर तक छह मास तक चलती रही। इसको संक्षेप में वर्णन करना कठिन है। इसमें बहुत सी घटनायें हुईं। गम्भीर (नाजुक) स्थितियों के लिये कई सप्ताह तक, कई महीनों तक कभी आगे की ओर बढ़कर और कभी पीछे की ओर हटकर युद्ध होता रहा। दुमोण्ट और वॉक्स उन दो सहायक दुर्गों के नाम हैं जो कि आक्रमण-प्रत्याक्रमण, अग्रगमन-अपगमन के (इस) संहारक चक्र में प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। कितनी भी क्षति क्यों न उठानी पड़े जर्मन वर्डन लेने के लिए कृत संकल्प थे। वे किसी भी मूल्य को चुकाकर विजय लाभ करना चाहते थे। उनको भारी क्षतियों के रूप में मूल्य तो चुकाना पड़ा परन्तु विजयश्री उनको प्राप्त नहीं हुई। पेटिन की अधीनता में फ्रांसीसी सैनिक दृढ़ हो गये और उसके पश्चात् निवेल के सेनाध्यक्षत्व में 'वे यहाँ से नहीं जा सकेंगे' के उत्साह-वर्धक नारे ने उनको सचेष्ट कर दिया। 'वे नहीं जायेंगे।' उन्होंने शत्रु के क्रोध और वेग को अवरुद्ध कर दिया और अन्त में उसको उन सब स्थानों से खदेड़ दिया जो उसने जीत लिये थे। वर्डन का पतन नहीं हुआ। पेटिन तथा निवेल की सैनिक ख्याति में अति वृद्धि हो गयी और निवेल शीघ्र ही मुख्य सेनापति के पद में

वे यहाँ से नहीं जा सकेंगे

जॉफ्रे का उत्तराधिकारी हुआ। जर्मनी के युवराज को इस लड़ाई से कोई भी चमत्कृत कर देने वाला गौरव प्राप्त नहीं हुआ।

वर्डन के अभियान की परवर्ती लड़ाइयों के घटनाचक्र तथा परिणाम पर एक और अभियान का प्रभाव पड़ा जो साथ ही साथ उस लम्बी (सैनिक) पंक्ति के, जो बेलज़ियम से फ्रांस में होकर स्विजरलैण्ड तक जाती थी, एक अन्य भाग में किया जा रहा था। यह सोमे की लड़ाई थी। यह आंग्ल-फ्रांसीसी आक्रमण था जो कि अरास से सोमे नदी के कुछ दूर दक्षिण तक विस्तृत था। इसमें अंग्रेजी सेना का अध्यक्ष जनरल हेग, फ्रांसीसी सेना का अध्यक्ष फॉक, और जर्मन सेना का अध्यक्ष हिण्डनबर्ग था जिसका स्थानांतरण पूर्व की महान् सफलताओं के पश्चात् पश्चिम को कर दिया गया था। अब इंगलैण्ड एक नया पग रख रहा था जिसे वह स्थल युद्ध में चालू रखेगा एवं बढ़ावेगा। १९१४ में उसके पास केवल एक लाख सैनिकों की नियमित सेना थी। स्वयं सेवकों के द्वारा इसमें द्रुतगति से वृद्धि हुई थी परन्तु वह वृद्धि उल्लेखनीय होते हुए भी पर्याप्त रूप से उल्लेखनीय नहीं थी। जनवरी १९१६ में उसने अविवाहित पुरुषों के लिए अनिवार्य सैनिक सेवा अपनायी और मई में विवाहित पुरुषों के लिए भी अपनाली। इस प्रकार १८ से ४१ तक की आयु के पुरुषों के लिए उसने सार्वभौम अनिवार्य सेवा प्रारम्भ कर दी थी। वह नये भर्ती हुए रगरूटों ruits)को शीघ्रता से प्रशिक्षण दे रहा था और अपनी गोला-बारूद की उपलब्धि को अत्यधिक बढ़ा रहा था। उसने सैनिक पंक्ति में अधिक से अधिक स्थान पर सैनिक नियुक्त कर दिए थे और अब समुद्र से सोमे तक लगभग ९० मील में उसके सैनिक फैले हुए थे।

सोमे की लड़ाई

मित्र देशों की जनता यह आशा करती थी कि उनकी इस प्रकार वर्द्धित और सुसज्जित सेनायें जर्मनी की सैनिक पंक्तियों को तोड़ने का प्रयत्न करेंगी। सोमे की लड़ाई पश्चिमी मोर्चे के दीर्घकालीन गत्यावरोध को समाप्त करने का प्रयत्न थी भयानक बमवर्षा के पश्चात्, जो कि अब आक्रमण की रीतिगत भूमिका बन गयी थी, जुलाई को सामान्य अभिक्रमण प्रारम्भ किया गया। कुछ दिनों तक मित्रराष्ट्र प्रगति करते रहे परन्तु यह प्रगति सब मिलाकर धीमी ही रही। बापोम तथा पैरोन के रेल केन्द्र उनके लक्ष्य थे। जर्मन सेनायें दृढ़ हो गयीं और उन्होंने प्रत्याक्रमण किया। लड़ाई चलती रही और वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गयी जिसके कारण दलदली सड़कों पर भारी तोपों का लाना-ले जाना असंभव हो गया। यद्यपि अँग्रेज तथा फ्रांसीसियों (दोनों) ने कई नगर ले लिए और बहुसंख्यक युद्धबन्दी बनाये तथापि वे अपने लक्ष्यों को न ले सके। सम्पूर्ण ग्रीष्म ऋतु में और शरद ऋतु में दीर्घ काल तक यह निराशाजनक एवं भयंकर संघर्ष होता रहा और अक्टूबर में समाप्त हो गया। मित्र राष्ट्रों ने १२० वर्ग मील का लघु क्षेत्र ही विजय कर पाया। अपने प्रारम्भ करने वाले स्थान से वे सात मील से अधिक कहीं भी नहीं बढ़ सके। तथापि हेग ने अपनी इस उद्घोषणा में तीन कारणों से भूल नहीं की कि अभियान सफल रहा था। वे कारण ये थे इसने वर्डन को मुक्त कर दिया था, पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनों की विशाल सेनाओं को युद्ध में उलझाने से पूर्वी मोर्चे पर रूसी पर्याप्त विजय प्राप्त कर सके थे और उसने जर्मन शक्ति को क्षीण किया था। सोमे की

लड़ाई का परिणाम

लड़ाई के दूसरे दौर में अँग्रेजों ने शक्तिशाली सशस्त्र मोटर कारें प्रयोग कीं जो कि शीघ्र ही 'टैंक' कहलाने लगे। ये टैंक खाइयों को पार कर सकते थे, कँटीले तार की रुकावटों को तोड़ सकते थे और साथ ही भीतर रखी हुई तोपों से चारों ओर विनाशकारी बमवर्षा कर सकते थे। उन पर मशीन गनों की गोलियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। टैंक तभी नष्ट होते थे जब उन पर बड़ी तोपों से भारी प्रक्षेपणास्त्र (बम) बरसाये जाते थे।

इटली पर आक्रमण

१९१६ में इटली तथा रूसी मोर्चे पर गम्भीर लड़ाई हुई। आस्ट्रिया निवासियों ने यह कल्पना करके कि रूसियों ने गतवर्ष उचित शिक्षा प्राप्त कर ली थी और कि वे आक्रमण करने के पूर्व भली भाँति विचार करेंगे, अपने पूर्वी मोर्चे की सुरक्षा व्यवस्था अपर्याप्त कर दी और अपने ऐतिहासिक शत्रु इटली निवासियों को दण्ड देने की तैयारियाँ कीं जिनको इस समय वे पूर्वापेक्षा अधिक घृणा करते थे क्योंकि उन्होंने त्रिसूत्री सन्धि को विश्वासघात पूर्वक तोड़ दिया था। मई में आस्ट्रिया ने टिरोल की ओर से आक्रमण किया। आल्प पर्वत के दर्रों पर नियन्त्रण रखते हुए वे एक विशाल सेना तैयार कर सके और वेरोना तथा विसेन्जा को भयभीत कर सके। इटली निवासियों ने निराशापूर्ण वीरता से प्रतिरोध किया परन्तु उसके बहुसंख्यक सैनिक एवं तोपें नष्ट हो गई। उन्होंने लगभग दो सौ तीस वर्गमील भू-क्षेत्र भी खो दिया। परन्तु आस्ट्रिया ने अपने पूर्वी मोर्चे को इतनी गम्भीरता से दुर्बल बना दिया था कि उस क्षेत्र में रूसी उन पर महान् विजयें प्राप्त करने लगे। इसकी प्रतिक्रिया इटली के अभियान पर हुई। इस नये आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिये उन्हें बहुसंख्यक सैनिक वहाँ से वापस बुलाने पड़े। अतः उस समय उनको वेनीशिया में प्रवेश करने के अपने विचार (स्वप्न) को त्यागना पड़ा।

ब्रुसीलॉफ का अभिक्रमण

१९१५ में हिण्डनबर्ग तथा मेकेनसेन ने रूसियों को महा अपमान करने पर विवश किया था परन्तु वे युद्ध से निरस्त नहीं किये जा सके और जून १९१६ में उन्होंने ब्रुसीलॉफ के अधीन एक नया अभिक्रमण प्रारम्भ कर दिया। इस बार यह अभिक्रमण प्रीपेट के दलदल और आस्ट्रिया के बुकोवीना प्रान्त के मध्य में हुआ। ब्रुसीलॉफ अभिक्रमण कुछ समय तक सफल रहा और पश्चिमी मोर्चे पर सोमे की लड़ाई में होने वाले भौम लाभों की अपेक्षा उसने कहीं अधिक विस्तृत भौम लाभ प्राप्त किये। ब्रुसीलॉफ आस्ट्रिया की सेना को बीस से लेकर पचास मील तक पीछे हटाने, बहुसंख्यक बन्दी बनाने तथा लटस्क और जर्नोविच के प्रमुख नगरों सहित बहुत से नगरों पर अधिकार करने में समर्थ रहा। यह अभियान इन से अक्टूबर तक चलता रहा परन्तु प्रथम मास के पश्चात् कोई भी महान् प्रगति नहीं हुई और यह अभिक्रमण धीरे-धीरे धीमा पड़ गया तथा समाप्त हो गया। गत वर्ष रूस ने जो भूक्षेत्र खो दिया था उतना भूक्षेत्र वह पुनः प्राप्त नहीं कर सका। वास्तव में उत्तर में प्रीपेट दलदल से बाल्टिक समुद्र तक वह कुछ भी पुनः हस्तगत न कर सका।

इन विभिन्न अभियानों की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया स्पष्ट थी। सोमे के अभियान ने वर्डन को सहायता प्रदान की और रूसी अभियान ने इटली को आस्ट्रिया वालों से मुक्त कराके तथा उसको इसोन्जो के प्रदेश पर आक्रमण करने

बनाकर उसकी सहायता की। इटली के इस आक्रमण के कारण उसने ९ अगस्त को गोरीजिया पर अधिकार कर लिया और वह चिरभिलषित ट्रीस्टी के तीस मील के भीतर प्रविष्ट हो गया। परन्तु जिस समय एक क्षेत्र पर दवाव को कम कराके दूसरे क्षेत्र पर दवाव डालने की क्रिया-प्रतिक्रिया हो रही थी उस समय **मित्रराष्ट्रों** का सहयोग अत्यन्त अपूर्ण था। अभी तक मित्रराष्ट्रों की सेनाओं की मिलीजुली सेनाध्यक्षता की उपयुक्तता पर प्रायः विचार ही नहीं किया गया था। इस विचार की उपयुक्तता को विभिन्न देशों के सम्बन्धित अधिकारियों के मस्तिष्कों में स्थान दिलाने के लिए एक वर्ष से अधिक के अनुभवों की आवश्यकता हुई।

रूमानिया युद्ध में प्रवेश करता है

१९१६ में एक अन्य क्षेत्र अर्थात् रूमानिया में मित्र राष्ट्रों के सर्वनिष्ठ लक्ष्य की पूर्ति के लिये उचित सहकार्य के अभाव के दुखद परिणाम स्पष्ट रूप से दिखाई दिये। अगस्त २७, १९१६ को रूमानिया मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में प्रविष्ट हुआ। उसका मुख्य ध्येय था अपनी राष्ट्रीय एकता को स्थापित करना। इस शब्द समूह का आशय था आस्ट्रिया-हंगरी की अधीनता से ३० लाख रूमानियों की मुक्ति जोकि ट्रांसिलवानिया में द्विविध राजतन्त्र के अन्तर्गत निवास करते थे और उनका रूमानिया के राज्य में संयोजन। उस देश की कार्यवाही के मूल में राष्ट्रीयता का सिद्धान्त निहित था कि एक जाति के लोग जो परस्पर मिलना चाहते हों मिला देने चाहिये। स्वभावतः रूमानिया के युद्ध प्रवेश की मित्रराष्ट्रों द्वारा हार्दिक प्रशंसा की गयी। इसके पश्चात् रूमानिया ने ट्रांसिलवानिया पर अविलम्ब आक्रमण किया जिसमें उसको पर्याप्त सफलता मिली।

रूमानिया की विजय

परन्तु जर्मन अपने मित्र के संभावित अंग-भंग रोकने तथा तुर्की के साथ मध्य शक्तियों के संभावित सम्बन्ध विच्छेद को रोकने के लिये कृत संकल्प थे। यदि रूमानिया की सफलता न रोकी जाती तो उसका विस्तृत प्रभाव बलकान प्रायद्वीप पर पड़ता और बलगेरिया तथा सर्बिया में होकर प्रसिद्ध मार्ग को भय उत्पन्न हो जाता। अस्तु जर्मन सेनाधिकारी ने अपनी पूरी शक्ति से ऐसा प्रहार करने का दृढ़ विचार किया जो द्रुत एवं स्मरणीय हो। जर्मनी, आस्ट्रिया और बलगरिया की मिश्रित विशाल सेनायें फाकेनहायन तथा मेकेनसन की अध्यक्षता में रूमानिया के विरुद्ध भेज दी गयी। उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक सुगमतापूर्वक उस राज्य के दक्षिण भाग को जीत लिया और ६ दिसम्बर को उसकी राजधानी, बुखारेस्ट में प्रवेश किया। रूमानिया की बची हुई सेना उत्तर की ओर चली गयी। बहुत दिनों तक शान्ति स्थापित नहीं हुई परन्तु इस बीच रूमानिया के अधिकांश भाग पर मध्य शक्तियों का नियंत्रण रहा और उन्होंने उसके गेहूँ तथा तेल के सम्पन्न साधनों का शोषण किया। कुस्तुन्तुनिया का 'मार्ग' कटने की अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गया। इस समय से जर्मनी के प्रभुत्व के अन्तर्गत **मध्य यूरोप** की स्थापना की जर्मनी की महत्त्वाकांक्षा अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी।

रूमानिया की भूलों तथा जर्मनी के अत्यधिक वरिष्ट साधनों, साज-सज्जा तथा सेनापतित्व के कारण रूमानिया की दुर्भाग्यपूर्ण पराजय हुई थी। रूमानिया की एक भूल यह थी कि उसने बहुत दिनों पश्चात् युद्ध में प्रवेश करने का निर्णय किया। रूस के अतिरिक्त उसकी सहायता अन्य कोई भी मित्रराष्ट्र नहीं कर

सकता था। यदि रूमानिया ने ब्रूसीलॉफ की महान् विजयों के समय जून में युद्ध की घोषणा की होती तो उसका भिन्न परिणाम होता। उसने, जैसा कि हुआ, युद्ध की घोषणा ब्रूसीलॉफ के अभियान के प्रतिरुद्ध होने पर की। यह इस बात का एक और प्रमाण था कि सफलता प्राप्त करने के लिए मित्रराष्ट्रों को अपने प्रयत्नो को अधिक सुसंबद्ध करना चाहिए।

पुर्तगाल युद्ध में प्रवेश करता है

एक अन्य राज्य, पुर्तगाल, ने भी १९१६ में यूरोपीय युद्ध में प्रवेश किया। इस अधिकार कथन के साथ कि जर्मनी के पनडुब्बी नौका अभियान के कारण जलपोतों की कमी हो जाने से उसकी कार्यवाही न्यायोचित है, पुर्तगाल ने अपने बन्दरगाहों में स्थित जर्मनी के जहाजों को २३ फरवरी को छीन लिया। तत्पश्चात् ९ मार्च को जर्मनी ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कुछ दिन पश्चात् पुर्तगाल के मंत्री ने संयुक्त राज्य को अधिकृत रूप से सूचित किया कि 'पुर्तगाल और इंगलैंड की गत पाँच सौ वर्षो से अविच्छिन्न मित्रता रही है। अतः इस दीर्घकालीन मैत्री के फलस्वरूप पुर्तगाल युद्ध में सम्मिलित हो रहा है।' यह एक विचित्र सूचना थी क्योंकि इसमें १६ जून १३७३ को लन्दन में हस्ताक्षरित संधि की ओर सकेत था। जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे को युद्ध संलग्न हो जाने पर सहायता देने का वचन दिया था। इन समस्त शताब्दियों में आंग्ल-पुर्तगाली मैत्री अक्षुण्ण रही है। इसको प्रायः पुनः पुनः उद्घोपित किया गया है और जिस मैत्री-स्थापना के लिए यह की गई थी वह अभी भी वची हुई है। १३७३ में की गई संधि को किसी भी पक्ष ने नहीं तोड़ा है और वह अभी लागू मानी जाती है। पुर्तगाल ने फ्रांस को एक सेना भेजकर तथा अफ्रीका में इंगलैंड की सहायता करके युद्ध में भाग लिया।

आंग्ल जहाजी वेड़े की सेवायें

१९१६ में इंगलैंड तथा जर्मनी के मध्य जटलैण्ड की महान् नौ सैनिक लड़ाई हुई। युद्ध के प्रारम्भ से ही इंगलैंड ने अपनी सामुद्रिक शक्ति का उल्लेखनीय परिचय दिया था। जिस प्रकार युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में जर्मनी की स्थल सेना की लामवन्दी उल्लेखनीय रही थी उसी प्रकार इंगलैंड के जहाजी वेड़े की लामवन्दी भी उतनी ही उल्लेखनीय रही थी; जिस प्रकार जर्मन स्थल सेना ने विजयें प्राप्त करनी प्रारम्भ की थीं। उसी प्रकार इंगलैंड का जहाजी वेड़ा भी विजय के मार्ग पर अग्रसर हुआ था। आंग्ल नौ सेना का दवाव वहीं पर अनुभव किया जाने लगा जहाँ के लिए उसका लक्ष्य वनाया गया था अर्थात् जर्मनी में। जर्मन के समुद्र की प्रारम्भ से नाकेवन्दी की गयी थी जोकि धीरे-धीरे अधिकाधिक प्रभावशाली बनाई जाती थी। जर्मनी के व्यापारिक जलपोत महासागरों पर अदृश्य हो गये और उसका विशाल सामुद्रिक व्यापार नष्ट हो गया। युद्ध के संचालन के लिए अत्यावश्यक वस्तुएँ जैसे खाद्य पदार्थ, पैट्रोल, रुई, कॉफी, रबड़, जस्ता, टिन इत्यादि का जर्मनी में आयात रोका गया। यह नाकेवन्दी पूर्ण नहीं थी क्योंकि जब तब जर्मन युद्धपोत उसको पार करके निकल जाता था परन्तु अन्त में वह अवश्यमेव खोजकर नष्ट कर दिया जाता था। परन्तु संसार का अवधान और स्वयं इंगलैण्ड का अवधान अविरल नौसैनिक युद्ध पर उतना केन्द्रित नहीं था जितना कि वह स्थल युद्ध पर केन्द्रित था। इसका एक कारण यह था कि नौसैनिक युद्ध शान्त एवं अदृश्य रूप से चालू था तथापि उसके परिणाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। दूसरा कारण यह था कि स्थल-युद्ध

तीव्रता से लड़ा जाता था और उसमें असंख्य घटनायें घटित होती थीं। वह सघन, गम्भीर और संदेहास्पद संघर्ष था परन्तु समुद्र-युद्ध सामान्यतः घटना रहित था; इंगलैण्ड का जल (समुद्रों) पर अधिकार सर्वदा असंदिग्ध था और बहुत ही कम अवसरों पर उसको चुनौती दी गयी थी। पनडुब्बियाँ कभी-कभी हानि पहुँचा सकती थीं और पहुँचाती थीं। एक बार तो उन्होंने तीन युद्ध-पोत डुबो दिये थे। छोटे-छोटे जहाजी बेड़ों के मध्य दो-तीन सामुद्रिक लड़ाइयाँ भी हो चुकी थीं। चिली से दूर प्रारम्भिक दिनों में जर्मनी की जीत हुई थी और इंगलैंड ने उसके पश्चात् उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण विजय फॉकलैंड द्वीपों से दूर प्राप्त की थी। तथापि ये घटनायें स्वल्प महत्त्व की थीं। जर्मनी का मुख्य जहाजी बेड़ा अपने अड्डे, कील के बन्दरगाह, में दृढ़तापूर्वक स्थित था तथा नाकेबन्दी का अन्यून, अविरल प्रभाव उस विश्व के लिए कोई भी सनसनी पूर्ण घटनायें[1] प्रस्तुत नहीं करता था जोकि स्थल युद्ध के फलस्वरूप उनसे ओत-प्रोत था। परन्तु ३१ मई १९१६ को जर्मनी **उच्च जहाजी बेड़ा** जलसेनाध्यक्ष वॉन शियर की अधीनता में आगे बढ़ा और डैनमार्क के पश्चिमी तट पर पहुँच गया। दोपहर को साढ़े तीन बजे अँग्रेजी गुप्तचरों ने जल सेनाध्यक्ष बीटी की अधीनता में उसको देखा। अविलम्ब मुठभेड़ प्रारम्भ हो गई। जल सेनाध्यक्ष जैलीको की अधीनता में मुख्य जहाजी बेड़ा उसके पश्चात् वहाँ पहुँचा। रात को आठ और नौ के बीच अन्धकार हो जाने तक लड़ाई होती रही। ट्रैफाल्गर के पश्चात् यह सबसे बड़ी नौ सैनिक लड़ाई थी और जिन इकाइयों ने इसमें भाग लिया उनकी शक्ति के विचार से यह निस्संदेह इतिहास की सबसे बड़ी लड़ाई थी। परिणाम अनिर्णीत रहा। दोनों पक्षों के महत्त्वपूर्ण जलपोत नष्ट हुए परन्तु दोनों पक्षों ने विजयी होने का दावा किया। यह कि इंगलैंड वास्तव में विजयी रहा था इस बात से सिद्ध हुआ कि जर्मनी के जहाजी बेड़े को विवश होकर कील लौटना पड़ा और वह उस शरण स्थल से पुनः बाहर नहीं आया। अब भी जलोर्मियों पर—समुद्रों पर—ब्रिटेन का अधिकार था।

जटलैंड का युद्ध

संयुक्त राज्य का युद्ध में प्रवेश

अगस्त १९१४ से अप्रैल १९१४ तक अमरीका ने दुःखद एवं भयानक अनुभूति की। उसका युद्ध-प्रवेश १९१७ की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यद्यपि यह तत्काल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नहीं थी क्योंकि उसी वर्ष के रूस के पतन का सैनिक स्थिति पर द्रुततर तथा अपेक्षाकृत अधिक सीधा प्रभाव पड़ा। परन्तु यह अमरीका ने विश्वास-पूर्वक कार्य किया तो वह अन्त में युद्ध के संतुलन को अपने पक्ष में कर लेगा।

हम अन्त में युद्ध में प्रविष्ट हुए क्योंकि जर्मनी ने हमको विवश कर दिया, क्योंकि हमारा युद्ध से बाहर रहना तभी सम्भव हो सकता था जब हम विश्व के सर्वाधिक शांतिप्रिय राष्ट्र होते। यदि किसी की ऐसी धारण थी तो वह हमारे पूर्व इतिहास से इसकी साक्षी उद्धृत नहीं कर सकता था।

जर्मनी ने हमको युद्ध में प्रवेश करने पर किस प्रकार विवश किया? उसने

---

1. रोमांचकारी घटनायें।

ऐसे कौन से विशेष कार्य किए थे जिनका केवल एक ही उत्तर हो सकता था ? अमरीका के नैतिक, बौद्धिक आध्यात्मिक तथा भौतिक हितों के प्रति किए गये अपराधों का लम्बा लेखा है। प्रथम, सर्बिया जैसे छोटे राज्य पर दो विशाल राज्यों का अकारण क्रूर आक्रमण शांति पूर्ण रीति से अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयों को सुलझाने के प्रयत्नों अथवा पंच फैसले या विवाचन के सभी सुझावों का न मानना ये ऐसी प्रणालियाँ थीं जिनमें अमरीका विश्वास करता था जैसा कि उसके द्वारा उनको पुनः पुनः प्रयोग किये जाने और हेग के दोनों सम्मेलनों से प्रयत्न को उत्साहपूर्ण समर्थन प्रदान करने से प्रदर्शित किया जा चुका है जिससे उन प्रणालियों को पूर्ण बनाया जा सके तथा उनके अनुसरण के प्रति सामान्य अभिरुचि जागरित की जा सके। द्वितीय वेलजियम का आक्रमण और उसका वलदान (शहादत)। अमरीका का क्रोध स्वाभाविक, व्यापार और गम्भीर था तथा उस दिन के पश्चात कम होने की कोई प्रवृत्ति परिलक्षति नहीं हुई। भय की भावना जो कि इस प्रकार विना किसी आवश्यकता के जागरित की गयी थी और वेलजियम निवासियों के वीरता पूर्ण प्रतिरोध की प्रशंसा तथा उनके कष्टों के प्रति सहानुभूति ने प्रबल रूप से मिलकर वह मानसिक दशा उत्पन्न की जिसकी अन्तिम अभिव्यंजना ६ अप्रैल १९१७ को हुई।

जर्मनी के अपराध

परन्तु वेलजियम की विजय तथा उसके प्रति कठोर व्यवहार हमारे अधिकारों का प्रत्यक्ष अपहरण नहीं था। हमारा राष्ट्रीय क्रोध अत्यधिक उत्तेजित हो गया था, राष्ट्रीय सहानुभूति जागरित हो गयी थी परन्तु न तो हमारे शासन की संप्रभुता पर ही कोई प्रभाव पड़ा था और न संयुक्त राज्य के नागरिकों के शरीर अथवा संपत्ति पर ही कोई कुप्रभाव पड़ा था। तथापि ये दीर्घकाल तक आक्रमण से सुरक्षित नहीं रह सकते थे। जर्मनी तथा आस्ट्रिया के अधिकारी जो कि हमारे शासन से सम्बद्ध थे तथा हमारे देश के आतिथ्य का उपयोग कर रहे थे अपने पदों को जर्मनी के शत्रुओं को क्षति पहुँचाने के निमित्त प्रयोग करने लगे। उन्होंने अमरीकी युद्ध सामग्री बनाने वालों तथा जहाजों पर कार्य करने वालों से हड़तालें करवाई, उन्होंने उन जहाजों पर वम रखवा दिए जो युद्ध सामग्री ले जा रहे थे, उन्होंने दुर्भावनापूर्ण अग्निकाण्डों के षडयन्त्र रचे तथा जलपोतों और कारखानों को नष्ट करने के षड्यन्त्र रचे। तथा १९१५ में आस्ट्रिया-हंगरी का राजदूत डम्बा तथा जर्मनी के सैनिक एवं नौ सैनिक एवं सहदूत पेपिन तथा बॉयड इस प्रकार की कार्यवाहियां करते हुए पकड़े गए और उनको हमारे देश को छोड़ना पड़ा। पेपिन की देख-रेख में जर्मन आरक्षितों को जाली परिपत्र दिलाने के लिए एक नियमत कार्यालय काम करता था। अमरीकी भूक्षेत्र रसद भेजने के अड्डे की भाँति प्रयुक्त किया जाता था तथा अमरीकी भूमि पर कनाडा एवं भारत के विरुद्ध सैनिक कार्यवाहियों की योजनायें बनाई गयी। ये जर्मन षड्यन्त्र हमारी तटस्थ राष्ट्र के रूप में स्थित और हमारे स्वतन्त्र राष्ट्र की संप्रभुता के विरुद्ध थे।

जर्मन षडयन्त्र

जब हमारे देश के भीतर अमरीकावासियों के विरुद्ध जर्मनी के कूटनीतिक प्रतिनिधि संलग्न थे, उसी समय स्वयं जर्मन शासन ने ऐसी कार्यप्रणाली अपनाई

जिसकी अनिवार्य परिणति महासागरों पर अमरीकी जीवन और सम्पत्ति से विनाश में हुई। फरवरी १९१५ में जर्मनी ने इंगलैंड के चारों ओर के समुद्रों को युद्ध क्षेत्र घोषित किया और यह उद्घोषणा की कि उन समुद्रों में पाये जाने वाले शत्रु के जलपोत बिना पूर्व चेतावनी के डुबो दिये जावेंगे। यह आशा की जाती थी कि तटस्थ देश इस क्षेत्र से अपने जहाजों को दूर रखेंगे। यदि वे अपने जलपोतों को वहाँ के दूर नहीं रखेगे तो जो कुछ घटित होगा उसका उत्तरदायित्व उनका होगा न कि जर्मनी का।

जर्मनी की पनडुब्बियों की नीति

जर्मनी की पनडुब्बी नीति की यह उद्घोषणा थी। नीति के उससे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए जितने कि उसके निर्माताओं ने सोचे भी नहीं थे। पनडुब्बी युद्ध पोत है और इस हेतु उसको शत्रु के युद्धपोत पर बिना चेतावनी दिए आक्रमण करने का पूर्ण अधिकार है और यदि वह उसको डुबा सके तो डुबा दे। परन्तु पनडुब्बी अथवा अन्य किसी युद्ध पोत को अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार शत्रु के अथवा तटस्थ देश के व्यापारिक जलपोत को निश्चित शर्तों के अतिरिक्त डुबाने का कोई भी अधिकार नहीं है। इनमें से एक शर्त यह है उस जल पोत के नाविक तथा यात्री सभी व्यक्ति आक्रमण करने वाले जलपोत पर ले लिये जावें अथवा उनके जीवन किसी अन्य प्रकार से पूर्णतः सुरक्षित बना दिये जावें।

जर्मनी की (इस) उद्घोषणा के छः दिन पश्चात् राष्ट्रपति विल्सन ने जर्मनी को एक पत्र भेजा। इसमें घोषित किया गया था कि यदि अमरीकी जहाज डुबाए गये और अमरीकी निवासियों की जीवन की क्षति हुई तो संयुक्त राज्य जर्मन शासन को उसके लिए पूर्णतः उत्तरदायी ठहरावेगा तथा संयुक्त राज्य इस हेतु आवश्यक कार्यवाही करेगा कि "महासागरों पर अमरीकी जीवन और सम्पत्ति सुरक्षित रहे तथा अमरीकी नागरिकों को अपने मान्यता प्राप्त अधिकारों को उपभोग के लिए संरक्षण मिल सके।"

जर्मनी की सरकार ने इसका यह उत्तर दिया कि जो तटस्थ जलपोत युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करेंगे वे "किसी घटित होने वाले दुर्भाग्य घटना के लिए स्वयं उत्तरदायी होंगे। इस प्रकार की दुर्घटनाओं और उसके परिणामों का कोई भी उत्तरदायित्व जर्मनी पर नहीं है।" यह इस बात की स्पष्ट उद्घोषणा थी कि जर्मनी केवल शत्रु के व्यापारिक जलपोतों को ही नहीं अपितु यदि तटस्थ जलपोत प्रतिबन्धित क्षेत्र में पाये जावंगे तो वह उनको भी डुबा देगा। उनके यात्रियों को न तो सुरक्षित स्थान पर भेजा जावेगा और न उनको आवश्यक चेतावनी ही दी जावेगी। जिससे वे जीवन नौकाओं पर जा सकें। ये जीवन नौकायें महासागरों में स्वयं सुरक्षा के स्थान तो नहीं होंगे परन्तु वे सम्भवतः जीवन रक्षा के कुछ अवसर प्रदान कर सकेंगी।

२८ मार्च १९१५ को आंग्ल वाष्प जलयान, **फलावा** को टोरपीडो से नष्ट किया गया और एक अमरीकी डूब गया। १ मई को अमरीकी जलपोत 'गलफलाइट' को बिना चेतावनी दिये टारपीडो से नष्ट कर दिया गया। यह जलपोत समुद्र पर

तैरता रहा और उसके पश्चात् बन्दरगाह को ले जाया गया परन्तु धक्के के कारण हृदयगति के रुक जाने से उसका कप्तान मर गया और नाविक जो समुद्र में कूद गये थे डूब कर मर गये। संयुक्त राज्य की सरकार ने इस मामले की जाँच पड़ताल उसी समय प्रारम्भ कर दी क्योंकि इस मामले में सभी बातों का पूर्ण उत्तरदायित्व (जर्मनी पर) रखा जा सकता था। परन्तु जाँच होने से पूर्व, वास्तव में एक सप्ताह होने के पूर्व ही **लूसी टैनिया** के डुबो देने से यह मामला फीका पड़ गया।

फलाबा का मामला

जर्मनी के निर्दयतापूर्ण पनडुब्बी अभियान के फलस्वरूप, जो फरवरी से कार्यान्वित हो रहा था, प्रथम मई तक युद्ध क्षेत्र में ६० से अधिक व्यापारिक जलपोत डुबाये जा चुके थे जिनमें से कई जहाज तटस्थ राष्ट्रों के थे और लगभग २५० व्यक्तियों का जीवन नष्ट हो चुका था जो कि सभी युद्ध से असम्बद्ध थे। जर्मनी ने जान बूझकर ऐसी नीति अपनाई थी जो उतने युद्ध न करने वालों का जीवनांत कर दे जितनों की उसकी उद्देश्य पूर्ति के लिये आवश्यकता थी। अभी तक ये युद्ध न करने वाले व्यक्ति सभ्य राष्ट्रों की अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा युद्ध की परम्पराओं से सुरक्षित थे। परन्तु जर्मनी द्वारा बहुत से जलपोतों के टारपीडो द्वारा नष्ट किये जाने पर भी इंगलैण्ड का व्यापार पूर्ववत चलता रहा। ब्रिटिश बन्दरगाहों में सहस्रों जलपोत आते-जाते रहे, और ग्रेट ब्रिटेन ने बिना एक भी व्यक्ति के हत हुए एक सेना फ्रांस भेज दी। जैसा कि जर्मनी की जनता को बताया गया था कि पनडुब्बियाँ शीघ्र ही इंगलैण्ड के घुटने टिकवा देंगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। अतः वचनों और आशाओं को उचित सिद्ध करने के लिए कोई दर्शनीय तथा रोमांचकारी कार्य किया जाना चाहिए जिससे आन्तरिक आलोचना तथा हतोत्साहन रोके जा सकें। अतः सबसे बड़ा ट्रांस अटलांटिक जलपोत जो कि अभी भी कार्य कर रहा था विनाश के लिए चुना गया। यह विश्वास किया गया था कि तब संसार इस ओर ध्यान देगा और युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करने के पूर्व सब लोग पूर्ण विचार किया करेंगे। ७ मई को इंगलैण्ड के समीप पहुँचता हुआ **लूसीटैनिया** बिना चेतावनी दिए हुये दो बार टारपीडो किया गया और वह बीस मिनटों से कम में डूब गया। लगभग बारह सौ स्त्री-पुरुष और बच्चे डूब गये जिनमें से एक सौ से अधिक अमरीकी थे। यह निरपराध असामयिक व्यक्तियों की हत्या जर्मनी के पनडुब्बी अभियान की सबसे बड़ी सफलता थी और जर्मनी में बड़े उत्साह के साथ महान् विजय के रूप मे मनाई गयी थी। शेष समस्त संसार ने इसको बर्बर तथा कायरतापूर्ण माना। तीन वर्ष पश्चात १९१८ के अभियान में अमरीकी सैनिकों शत्रुओं पर चिल्लाकर 'लूसी टैनिया' का नारा लगाते हुए आगे बढ़े तब वे एक विशुद्ध जाति के गम्भीर अमर्ष को व्यक्त कर रहे थे—इस अमर्ष तथा विरोध को समय ने कम नहीं किया था।

लूसीटैनिया

१३ मई को राष्ट्रपति विल्सन ने एक सन्देश भेजा जिसमें इस कार्य को अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन बताया, जर्मनी से इस कार्य के निषेध[1] करने को कहा

1. यहाँ Disavow का अर्थ है किये हुए कार्य को अनुचित ठहराना। इस अर्थ में यह शब्द जर्मनी द्वारा अपनी पनडुब्बी कार्यवाही को अनुचित बताने तथा भविष्य में न किये जाने पर बल देता है। —अनुवादक

गया और जितनी सम्भव हो सकती है जर्मनी उतनी क्षतिपूर्ति करे। साथ ही इस सन्देश में यह भी कहा गया था कि "संयुक्त राज्य की सरकार एक भी शब्द अथवा एक भी कार्य को नहीं छोड़ेगी जो कि उसके नागरिक तथा उनके अधिकारों की सुरक्षा तथा उनके उन्मुक्त पालन एवं उपभोग कराने के हेतु उसके पवित्र कर्तव्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है।"

२८ मई को जर्मनी ने, अमरीका के पत्र की मुख्य बातों की चर्चा न करते हुए तथा बहुत सी ऐसी बातें लिखते हुए जो शीघ्र ही झूठी सिद्ध हो गयीं, उत्तर दिया। दोनों शासनों के बीच पत्र व्यवहार हुआ जिसमें राष्ट्रपति ने निषेध तथा सभी सम्भव क्षति की माँग की। अन्त में जमनी ने मृतकों के जीवन के लिए क्षति पूर्ति करना स्वीकार किया परन्तु इस बात को मानना अस्वीकार किया कि जलपोत का डुबोना अवैध था। दोनों राष्ट्रों में कोई भी समझौता न हो सका तथापि, कोई भी कार्यवाही नहीं की गयी।

१९१५ में वर्षभर जहाज टारपीडो से नष्ट किये गये और बहुत से अमरीकी डुबो दिये गये। अमरीकी शासन ने अपने अधिकारों का बलपूर्वक उल्लेख किया परन्तु जर्मनी की सरकार ने मूलभूत प्रश्नों को छोड़ते हुए विचाराधीन प्रश्न को असंगत तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए, अस्पष्ट बनाने का प्रयत्न किया।

२४ मार्च १९१६ को निरपराध असैनिकों की अविचारपूर्ण हत्या की एक और मुख्य घटना घटित हुई अर्थात् अँग्रेजी जलपोत, ससैक्स, जब कि वह आंग्ल समुद्र वंक इंगलिश चैनल को पार कर रहा था, बिना चेतावनी दिये हुए टारपीडो से नष्ट कर दिया गया। दो अमरीकी घायल हुए और लगभग ७० अन्य व्यक्ति जो जहाज में थे संकट में पड़ गये। राष्ट्रपति विल्सन ने पुनः विरोध किया और यह उद्घोषणा की कि यदि जर्मनी का शासन यात्री वाहक तथा भारवाही जलपोतों के विरुद्ध अपनी वर्तमान पनडुब्बी युद्ध प्रणाली के परित्याग तथा उसके कार्यान्वियन की अविलम्ब घोषणा नहीं करेगा तो संयुक्त राज्य के पास जर्मन साम्राज्य से पूर्ण कूट-नीतिक संबन्ध विच्छेद करने के अतिरिक्त अन्य कोई भी विकल्प नहीं रहेगा। अन्त में ४ मई को जर्मनी इस बात पर सहमत हो गया कि यदि व्यापारिक जलपोत निकल भागने अथवा प्रतिरोध करने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो वे पूर्व सूचना के बिना तथा मानव जीवन को बचाये बिना नहीं डुबाये जावेंगे। परन्तु उसने एक शर्त लगाई कि संयुक्त राज्य इंगलैंड को अन्तर्राष्ट्रीय विधि पालन करने पर विवश करे। यदि संयुक्त राज्य इसमें सफल नहीं रहेगा तो जर्मनी का निर्णय-स्वातन्त्र उसके पास आरक्षित रहेगा।" (अर्थात वह जो चाहेगा निर्णय कर सकेगा)।

राष्ट्रपति विल्सन ने जर्मनी के वचन को स्वीकार किया परन्तु (उक्त) शर्त को इस आधार पर अस्वीकार किया कि जर्मनी के द्वारा हमारे स्पष्ट अधिकार किसी अन्य शक्ति के ऊपर आश्रित नहीं किये जा सकते हैं कि वह शक्ति क्या करे अथवा क्या न करे। इस पत्र का जर्मनी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

आगे चलकर जर्मन चान्सलर वैथमैन-हॉलवेग ने यह स्वीकार किया कि यह वचन पूर्णतः झूठा था, कि जब सुविधाजनक हो तभी तक इसको मानने का विचार था और जब कभी सफल होता दिखाई देगा तभी निर्दयतापूर्ण पनडुब्बी युद्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया जावेगा। १९१६ में वर्ष भर यदा-कदा जहाज डुबाये जाते रहे

और अन्त में पर्दा उठा दिया गया और ३१ जनवरी १९१७ को असीमित तथा निर्दयतापूर्ण पनडुब्बी युद्ध की घोषणा की गयी। जर्मनी ने यह उद्घोषणा की कि दूसरे दिन एक फरवरी से वह ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली के चारों ओर के (समीपवर्ती) क्षेत्र में तथा भूमध्य सागर में, तटस्थ राष्ट्रों सहित, सभी प्रकार के जलयानों के संचरण को अवरुद्ध करेगा........। इस क्षेत्र में जितने जलपोत मिलेंगे, वे सभी डुबो दिये जावेंगे। यह रियायत दी गयी थी कि प्रति सप्ताह एक अमरीकी यात्री वाहक जलपोत इंगलैंड जा सकता था परन्तु शर्त यह थी कि इस पर निर्धारित चौड़ाई की रंगीन पट्टियाँ चित्रित हों और वह जर्मनी द्वारा निर्धारित मार्ग का अनुसरण करे। जर्मनी के विदेश-सचिव, जिमरमैन ने ३१ जनवरी को अमरीका के राजदूत जीराई से कहा था, "इस प्रकार के युद्ध के हमको दो मास दे दीजिये और हम तीन मास के भीतर युद्ध बन्द कर देंगे तथा सन्धि कर लेंगे।"[1]

असीमित पनडुब्बी युद्ध

ऐसे पत्र का केवल एक ही उत्तर संभव था। ३ फरवरी को (अमरीकी) राष्ट्रपति ने जर्मनी से कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ दिये, अपने राजदूत को बुला लिया और बॉन बर्न्सटर्फ को हटा दिया। जर्मनी के विदेश सचिव जिमरमैन ने मैक्सिको के जर्मनमन्त्री[2] को एक पत्र भेजा था जिसमें उसको निर्देश दिया गया था कि वह मैक्सिको तथा जापान में एक मैत्री का और संयुक्त राज्य के विरुद्ध युद्ध का प्रस्ताव करे। मैक्सिको को टैक्सास, न्यू मैक्सिको और आरीजोना के राज्य पारितोषिक में प्रदान किये जावेंगे (अर्थात् संयुक्त राज्य के इन राज्यों को वह युद्ध के फलस्वरूप प्राप्त करेगा)। मास के अन्त में संयुक्त राज्य के विदेश-सचिव लैनसिंग ने इस बीच में रोके गये पत्र को प्रकाशित कर दिया।

जब २ अप्रैल १९१७ को राष्ट्रपति विल्सन काँग्रेस के सम्मुख उपस्थित हुए और उन्होंने अपने भाषण में, जो कि जर्मनी की कटु आलोचना थी, इस स्वतंत्रता के स्वाभाविक शत्रु' के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने की सिफारिश की तब उनको उत्साहपूर्ण समर्थन मिला क्योंकि वे केवल अमरीका की जनता की भावनाओं को व्यक्त कर रहे थे जो कि कैजर से निर्देशित नहीं होना चाहती थी। राष्ट्रपति के शब्दों में वे 'स्वार्थपरतापूर्ण एवं एकतंत्रात्मक शक्ति के विरुद्ध विश्व के जीवन में शांति और न्याय के सिद्धान्तों को चरितार्थ करने के लिए कृत संकल्प थे। ६ अप्रैल को कांग्रेस ने इस आशय का प्रस्ताव पारित किया कि "जो युद्ध की स्थिति संयुक्त राज्य पर थोप दी है उसकी एतद् द्वारा औपचारिक उद्घोषणा की जाती है" और उसने शीघ्र ही महत्त्वपूर्ण सैनिक, वित्तीय एवं आर्थिक विधेयकावली पारित करनी प्रारम्भ कर दी जिसका उद्देश्य देश को इस महान संघर्ष में उचित भूमिका अदा करने के लिए सक्षम बनाना था। संयुक्त राज्य ने ७ दिसम्बर तक आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध युद्ध की उद्घोषणा नहीं की और उसने

जर्मनी तथा संयुक्त राज्य के बीच में युद्ध

---

1. 'Make peace' का अभिप्राय है किसी से संधि कर लेना अथवा शान्ति स्थापित करना। —अनुवादक

2. दूत।

बलगेरिया और तुर्की के विरुद्ध तब अथवा आगे कभी युद्ध की घोषणा नहीं की। अन्तिम दो (**अर्थात् बलगेरिया और तुर्की**) के साथ केवल कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ दिये गये।

इस प्रकार जर्मनी तथा आस्ट्रिया-हंगरी ने डैन्यूब नदी के तटों पर बिना गम्भीर विचार किये हुए जो युद्ध प्रारम्भ किया था उसने विस्तृत होकर केवल अधिकांश यूरोप और एशिया तथा अफ्रीका को ही अन्तर्गत नहीं कर लिया था वरन् उसने अब सम्पूर्ण उत्तरी अमरीका को भी अपने क्रोड़ में ले लिया था। कनाडा युद्ध के प्रारम्भ से ही उसमें सम्मिलित था और उसने कई क्षेत्रों में विशिष्ट ख्याति प्राप्त की थी। अब संयुक्त राज्य ने भी बिना किसी तैयारी के युद्ध में प्रवेश किया—केवल उसकी नौ सेना ही तैयार थी जिसने अपनी समर्थता तथा मित्र-राष्ट्रों के लिये अपनी उपयोगिता तत्काल सिद्ध करनी प्रारम्भ की। परन्तु यदि संयुक्त राज्य अमरीका के विशाल तथा विविध साधनों का विकास हो जाता और वे उचित रूप से प्रयोग किये जाते तो वह युद्ध करने वाली सेनाओं के लिये एक अत्यन्त शक्तिशाली अभिवृद्धि था। संयुक्त राज्य के युद्ध-प्रवेश के दूसरे दिन ७ अप्रैल को क्यूबा तथा पनामा के गणतन्त्रों ने भी युद्ध में प्रवेश किया। जून १९१७ में यूनानी नरेश कोंसटैण्टाइन को सिंहासन से उतार दिया गया और २ जुलाई को यूनान मित्र-राष्ट्रों के साथ सम्मिलित हो गया। स्याम ने २२ जुलाई को, लाइबीरिया ने ४ अगस्त को ब्राजील ने १६ अक्टूबर को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की उद्घोषणा कर दी तथा उसी वर्ष मध्य तथा दक्षिणी अमरीका के कई राज्यों ने जर्मनी के साथ अपने कूटनीतिक सम्बन्धों को तोड़ दिया।

अन्य राज्य युद्ध में प्रवेश करते हैं

संयुक्त राज्य के हस्तक्षेप की अपेक्षा युद्ध को अधिक अविलम्ब एवं प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाली अधिक प्रभावशाली एवं आश्चर्यजनक घटनावली किसी अन्य भूभाग में घटित हो रही थी। संयुक्त राज्य अपने प्रभाव की महती अनुभूति कुछ काल की तैयारी के पश्चात् ही करा सका।

रूस की क्रान्ति

१९१७ की सर्वाधिक प्रभावशाली घटना थी रूस का पतन और उसका युद्ध से अलग हो जाना। इससे जर्मनी की शक्ति बहुत बढ़ गयी और साथ ही मित्रराष्ट्रों के ऊपर भारी बोझ आ पड़ा जिसको उठाने के लिये वे समर्थ नहीं दीख रहे थे।

१९१५ में हिण्डनबर्ग ने रूस को बुरी तरह हराया था तथा १९१६ में महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक सफलताओं के पश्चात ब्रूसीलॉफ के अभियान में भी गत्यावरोध आ गया था। इन घटनाओं के परिणामस्वरूप सरकार की आलोचना होने लगी। यह विश्वास फैल गया कि पुरानी परिचित 'काली शक्तियाँ' एक बार पुनः नियंत्रण कर रही थीं, वे राष्ट्र के संकट को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये प्रयोग कर रही थीं, दरबार जर्मनी के पक्ष में था, और जार जर्मनी के साथ एक पृथक् सन्धि करने पर विचार कर रहा था। कुछ अधिकारियों के विरुद्ध अक्षमता एवं बेईमानी के आरोप लगाये गये। ड्यूमा के प्रमुख सदस्यों ने उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल के निर्माण की माँग की जिसको सेना तथा जनता का समर्थन प्राप्त था और कि शासन में दक्षता की दिशा में, इंगलैण्ड तथा फ्रांस में किये जाने वाले परिवर्तनों के

समान, क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाने चाहिये। फरवरी में पीट्रोग्राड में १००,००० और मास्को में २५००० श्रमिकों ने हड़ताल मनाई। गम्भीर खाद्य समस्या विकसित हो गयी और पाठशालाओं पर अवैध आक्रमण हुए। एक अशुभ सूचक बात यह हुई कि आज्ञा दिये जाने पर कुछ सैनिकों ने भीड़ों पर गोली चलाना अस्वीकार कर दिया। छुटकारा पाने की इच्छा से ११ मार्च को जार ड्यूमा को भंग कर दिया। परन्तु ड्यूमा ने भंग होना अस्वीकार किया। क्रान्ति पूर्ण रूप से व्यापक हो गयी। सड़कों पर पर्याप्त लड़ाइयाँ हुई जिनमें जनता ने विशेष रूप से अपना क्रोध पुलिस पर प्रदर्शित किया। क्रान्तिकारी जत्थों ने कुछ महत्त्वपूर्ण भवनों पर अधिकार कर और प्रधान मन्त्री गॉलिटजिन तथा भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्टुरमर को जर्मनी के पक्ष में षड्यन्त्र रचने के सन्देह पर पकड़ लिया। ड्यूमा ने अब अस्थायी शासन की स्थापना के पक्ष में मतदान करके एक **सैनिक क्रान्ति** की। जार को इस परिवर्तन की सूचना दी गई और उससे सिंहासन त्यागने के लिये कहा गया। उसने १५ मार्च को सिंहासन त्याग दिया। इस प्रकार रोमानॉफ नामक वंश के अन्तिम शासक जार निकोलस द्वितीय का राज्य काल समाप्त हुआ। इस वंश ने ३०० वर्षों से अधिक तक रूस पर शासन किया।

अस्थायी सरकार

अस्थायी सरकार मिली जुली सरकार थी। वह तीन भिन्न दलों का प्रतिनिधित्व करती थी जिन्होंने इस आश्चर्यजनक परिवर्तन को सम्भव बनाने में अत्यधिक सहयोग दिया था। मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष राजकुमार ल्वफ व्यापारियों तथा उदार भूस्वामियों का प्रतिनिधित्व करता था; विदेशमन्त्री, पालम्ल्फ्यूकफ, जो दीर्घकाल तक रूस के सुधार आन्दोलनों के सम्पर्क में रहा था, **सांविधानिक लोकतांत्रिक दल** का प्रतिनिधित्व करता था और कैरैन्सकी तृतीय वर्ग अर्थात् सैनिकों और श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता था। कैरेंसकी क्रान्तिकारी समाजवादी था जो कृषि करने वाली जनता के हित में भूमि के अधिक न्यायोचित विभाजन की लोकप्रिय माँग के साथ सहानुभूति रखता था। मन्त्रिमन्डल फिनलैन्ड को पुनः संविधान प्रदान करने को, पोलैण्ड को स्वशासन तथा एकता का वचन देने को और यहूदियों को समान सैनिक, नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार प्रदान करने को अग्रसर हुआ। ३१ मार्च को उसने मृत्युदण्ड समाप्त कर दिया। सामान्य क्षमादान की घोषणा की गई और देश से निकाले हुए व्यक्ति साइबेरिया से एक बड़ी संख्या में वापस लौट आये और उनका उन्मत्तता के साथ स्वागत हुआ। जनता आशावादी एवं उत्तेजित थी।

सव्वाइटों का उदय

क्रान्तियाँ जब एक बार सफल हो जाती हैं तो उनको दबाना असम्भव हो जाता है और वे शीघ्र ही कई दशाओं को द्रुतगति से पार कर देती हैं, प्रत्येक दशा पूर्ववती दशा से अधिक क्रान्तिकारी होती है। रूसी क्रान्ति भी इस नियम का अपवाद नहीं थी प्रत्युत् उसने उसको एक बार पुनः प्रदर्शित किया। राजनीतिक उदारता, धीमे तथा व्यवस्थित सुधारों का काल शीघ्र ही समाप्त हो गया। श्रमिकों तथा सैनिकों की परिषदों अथवा सव्वाइटों[1] की व्यवस्था करते हुए **समाजवादी दल** सामने

---

1. सामान्यतः यह शब्द **'सोवियट'** बोला जाता है परन्तु इसका शुद्ध उच्चारण **सव्वाइट** है, सव्वयट भी बोला जाता है। हिन्दी में प्रायः सोवियत लिखा जाता है। —अनुवादक

आया। इन परिषदों, विशेष कर पीट्रोग्राड की परिषद, ने अस्थायी शासन का अपने साहस के अनुसार विरोध प्रारम्भ कर दिया तथा अपने दृष्टिकोण को दूसरों पर थोपना प्रारम्भ कर दिया। युद्ध के सम्बन्ध में ल्वफ मन्त्रिमण्डल ने यह घोषणा की कि स्वतन्त्र रूस दूसरे देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना नहीं चाहता है और न उनका भू-क्षेत्र ही लेना चाहता है परन्तु वह अपने देश को दुर्बल अथवा अपमानित कराकर युद्ध से बाहर नहीं निकलने देगा। २ मई को इसने मित्रराष्ट्रों से उद्‌घोषणा की कि रूस तब तक युद्ध में सम्मिलित रहेगा जब तक पूर्ण विजय न प्राप्त हो जावे। इसके प्रतिकूल पीट्रोग्राड की परिषद् ऐसी सामान्य शान्ति के पक्ष में थी जो सभी देशों के श्रमिकों के द्वारा स्थापित की जावे और उसने बलपूर्वक कहा कि युद्ध का श्रीगणेश एवं संचालन नरेशों एवं पूँजीपतियों के हित में है। यह राजधानी का प्रतिनिधित्व करने के कारण शक्तिशाली थी और अस्थायी शासन पर प्रभुत्व जमाने का पूरा प्रयत्न कर रही थी। १६ मई को म्ल्यूकैफ, विदेशमन्त्री, को शासन में से इस आधार पर हटा दिया गया कि वह एक साम्राज्यवादी था। उसने यह आशा प्रकट की थी रूस कुस्तुन्तुनिया को प्राप्त करेगा। उसके स्थान पर एक समाजवादी नियुक्त किया गया और कैरेंसकी युद्धमन्त्री बन गया। यह पुनर्निर्मित मन्त्रिमण्डल भी पृथक् सन्धि के विरुद्ध था।

शासन में शीघ्र ही कैरैन्सकी के व्यक्तित्व का प्राधान्य स्थापित हो गया। युद्ध मन्त्री के रूप में उसने उस अनैतिकता को रोकने का प्रयत्न किया जो सेना में गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर रहा था। अनुशासन तिरोहित होता जा रहा था और यदि विद्रोह नहीं तो कम से कम आज्ञा न मानने की घटनायें कई स्थानों पर घटित हो रही थीं। कुछ समय तक कैरेन्सकी इस भयोत्पादिक अव्यवस्था को रोकने में सफल रहा और वह गैलीशिया में सेना को एक नया अभियान करने के लिये भी प्रोत्साहित कर सका। फलस्वरूप रूसी सेना दस मील आगे बढ़ गयी परन्तु पुनः पुनः होने वाले विद्रोहों के कारण वह अभियान रुक गया जिससे जो कुछ लाभ हुआ था वह नष्ट हो गया (जुलाई १९१७)।

२२ जुलाई को कैरेन्सकी अस्थायी शासन का अध्यक्ष हो गया और वह इस पद पर तब तक कार्य करता रहा जब तक कि पीट्रोग्राड की बॉलशेविकी ने ७ नवम्बर को उसे तथा उसके सहयोगियों को पदच्युत नहीं कर दिया

कैरेन्सकी समाजवादी था और वह जर्मनी के साथ पृथक् कैरेन्सकी
सन्धि का प्रबल विरोध करता था परन्तु वह इस पक्ष में था
कि मित्रराष्ट्र सन्धि की शर्तों में परिवर्तन कर दें। परिवर्तन इस सूत्र की ओर उन्मुख होना चाहिये, "कोई देश नहीं छीना जावेगा, कोई क्षतिपूर्ति नहीं कराई जावेगी।" सेना में अनुशासनहीनता अत्यधिक बढ़ती रही। गैलीशिया से अपमान करते समय सेनानायकों को यह ज्ञात हुआ कि उन्हें विवश होकर सैनिकों की कई समितियों से अपने आदेशों पर वाद-विवाद करना पड़ा और उनके माने जाने के पूर्व उनकी स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ी। कई बार सैनिकों ने अपने अधिकारियों को गोली से मार दिया। उनके बीच में जो समाजवादी प्रचार हुआ था उसके कारण वे इतने शान्ति प्रिय हो गये थे कि बहुत से सैनिक बिना प्रतिरोध किये हुए पीछे हट आये।

कैरेन्सकी ने इन कार्यों को सार्वजनिक रूप से लज्जास्पद बताया और उसने लगातार तथा असाधारण शक्ति के साथ बढ़ती हुई अराजकता को देखने तथा सेना को पुनः लड़ने वाली सेना बनाने का सतत प्रयत्न किया जो कि देश की प्रतिरक्षा के लिये आवश्यक था। इसके प्रयत्न निष्फल रहे और परिस्थितियां लगातार बिगड़ती चली गईं। प्रायः बिना किसी प्रतिरोध के जर्मनों ने २ सितम्बर को रीगा पर अधिकार कर लिया। एक बार पुनः प्रतिदिन एक महान् राज्य की दुर्बलता और असमर्थता (पुंसत्वहीनता) प्रदर्शित की जा रही थी।

वह दुर्बलता और पुंसत्वहीनता पूर्णतया के साथ रूस के नये शासकों, बॉलशेविकी की नीति और व्यवहार के द्वारा प्रदर्शित की जा रही थी जोकि निकोलस लैनिन के नेत्रत्व में ७ नवम्बर को कैरेन्सकी को पदच्युत करने तथा शासन को हस्तगत करने में सफल रहे थे। कई मन्त्री बन्दी बना लिये गये तथा सेना के मुख्य कार्यालय पर अधिकार कर लिया गया। कैरेन्सकी बचकर भाग गया और कई मास तक उसके विषय में कुछ भी पता नहीं चला। अन्त में वह लन्दन में प्रकट हुआ। लैनिन प्रधानमन्त्री तथा ट्राटस्की युद्ध मन्त्री हो गये।

बॉलशेविकी सत्ता हस्तगत करते हैं

नई सरकार ने अपनी नीति तत्काल उद्घोषित कर दी; अविलम्ब प्रजातांत्रिक सन्धि, सम्पूर्ण भौम सम्पत्ति की जब्ती, सोव्वाइट्स अथवा श्रमिकों और सैनिकों की परिषदों के सर्वोपरि अधिकार की मान्यता, एक सांविधानिक अभिसमय या सम्मेलन का निर्वाचन। इन माँगों में पूर्णता के साथ नहीं किन्तु पर्याप्तता के साथ बॉलशेविकियों ने अपने को अभिव्यक्त किया। वे उग्र समाजवादी थे और तत्काल समाजवादी क्रांति को कार्यान्वित करने के लिये कृत संकल्प थे। वे जर्मनों अथवा आस्ट्रियावासियों से लड़ने के लिये इच्छुक नहीं थे परन्तु समाजवादी गणतन्त्र की स्थापना के उद्देश्य से वे अपने सहनागरिक वर्जवा[1] अर्थात् मध्यवर्गीय व्यापारिक पूंजीपतियों से लड़ने के लिये तैयार थे। रूस के द्वारा इससे पूर्व दिये वचनों को उनको परवाह नहीं थी क्योंकि वे मित्रराष्ट्रों का साथ छोड़ना चाहते थे और यद्यपि रूस इस सन्धि पर हस्ताक्षर कर चुका था कि वह पृथक् सन्धि नहीं करेगा तथापि वे रूस के शत्रुओं से पृथक् सन्धि करना चाहते थे।

यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि इस प्रकार के व्यक्तियों के सत्तारूढ़ होने से रूस का युद्ध में सम्मिलित रहना समाप्त हो गया था और कि पश्चिमी मित्रराष्ट्रों पर जो भार पड़ेगा वह पूर्वापेक्षा अत्यधिक होगा।

बॉलशेविकियों ने जर्मनों के साथ अविलम्ब शान्ति-वार्ता प्रारम्भ कर दी और १५ दिसम्बर को ब्रेस्ट-लिटोवस्क में उन्होंने युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये। इसी स्थान पर तीन मास पश्चात् उन्होंने सम्भवतः यूरोप के किसी भी राष्ट्र के इतिहास में ज्ञात संधियों में सर्वाधिक अपमानजनक एवं दुर्भाग्यपूर्ण सन्धियों पर हस्ताक्षर किये।

---

1. इसमें मध्यवर्ग के पूंजीपति (विशेषकर व्यापारी वर्ग) सम्मिलित माने जाते हैं।
—अनुवादक

रूसी क्रान्ति तथा बॉलशेविकी के उदय के कारण रूस राज्य का भौम सत्ता के रूप में द्रुत विघटन हुआ। फिनलैण्ड ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। दक्षिण के विशाल भू क्षेत्र, यूक्रेन, ने भी ऐसा ही किया। आगे चलकर साइबेरिया ने भी वही किया। पोलैण्ड, लिथूनिया तथा बाल्टिक प्रान्तों पर जर्मनों का नियंत्रण था। अतः वहाँ पर स्वतन्त्रता की उद्घोषणायें अवैध थीं। कजाकों के नेता, जनरल कलादीन, ने देश की सुरक्षा के नाम पर बॉलशेविकी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। रूस के मित्रों तथा तटस्थ राज्यों में से किसी ने भी बॉलशेविकी को रूस की वैध सरकार स्वीकार नहीं किया। केवल जर्मनी, आस्ट्रिया तथा तुर्की ने उसको मान्यता प्रदान की।[1]

रूस का विघटन

दिसम्बर में पीट्रोग्राड में संविधान सभा की बैठक हुई। वह बॉलशेविकी के लिये सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुई। अतः उन्होंने नाविकों के एक समूह को सभा भवन में उसे भंग करने के लिये भेजा। संविधान सभा समाप्त हो गयी और इससे उनके जातियों के स्वनिर्णय के सूत्र के अर्थ का एक और उदाहरण प्राप्त हुआ।

१९१७ के इतिहास की दो प्रमुख घटनायें थीं : रूसी क्रांति अपने तत्कालिक परिणामों के कारण और संयुक्त राज्य का (युद्ध में) हस्तक्षेप अपने अन्त के संभावित परिणामों के कारण। परन्तु उस वर्ष सैनिक महत्त्व की घटनायें भी हुईं। पूर्वी मोर्चे पर अपेक्षाकृत बहुत कम हलचल रही क्योंकि रूसी क्रांति के पश्चात् जर्मन उस देश के मामलों के विकास के पर्यालोचन से ही संतुष्ट थे। संभवतः उन देशों को शीघ्र ही संधियाँ करने पर वाध्य करने की आशा से उन्होंने रूस तथा रूमानिया में जो स्थिति बना ली थी मुख्यतया उसकी रक्षा से ही वे सन्तुष्ट रहे क्योंकि वे यह आशा कर रहे थे कि संधियों हो जाने पर वे अपनी सेनाओं को उन देशों से हटाने एवं उन्हें निर्णयात्मक रूप से पश्चिमी मोर्चे पर भेजने के योग्य हो जावेंगे।

१९१७ में युद्ध

गत वर्ष की सोमे की लड़ाई के प्रभाव १९१७ के प्रारम्भिक मासों में पूर्व कल्पना से भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शित हुए क्योंकि जब अँग्रेज और फ्रांसीसियों ने अभियानों को उसी क्षेत्र में पुनः प्रारम्भ किया तब उनको दुर्बल प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। शत्रु उनके सामने से हटता चला गया। उसके पश्चात् मार्च तथा अप्रैल में प्रसिद्ध 'हिण्डनबर्ग पंक्ति' तक उनका अपमान प्रारम्भ हुआ। जिसका उनके नेताओं ने 'सामरिक युक्तिपूर्ण पीछे हटना कहा। अरास से नोयोन के समीप तक एक सौ मील के मोर्चे पर जर्मन पीछे हट गये। उन्होंने एक सहस्त्र वर्गमील से अधिक फ्रांसीसी भूमि को खाली कर दिया जिसमें पहले ३०० से अधिक नगर तथा गाँव बसे हुए थे। इस अपमान में उन्होंने अत्यधिक क्षति पहुँचाई। एक दर्शक ने निम्नानुसार लिखा : "दूरवीक्षण यंत्र की सहायता से मैं प्रत्येक सड़क के दोनों ओर मीलों तक देख सकता था ; प्रत्येक हराभरा खेत जलाया

जर्मनों का अपमान तथा विनाश

---

1. अँगरेजी वाक्य का शब्दानुवाद इस प्रकार होगा—वह मान्यता केवल जर्मनों, आस्ट्रियावासियों तथा तुर्कों के लिये ही अरक्षित थी।' —अनुवादक

जा रहा है ; खेत नष्ट भ्रष्ट किये जा रहे हैं ; प्रत्येक उद्यान तथा झाड़ी का उन्मूलन किया जा रहा है; प्रत्येक वृक्ष को भूमि के समीप आरे से काटा जा रहा है। यह भयानक दृश्य था और मानव के विनाश से भी अधिक अशोभनीय था। वे सहस्रों वृक्ष जो भूमि पर पड़े हुए थे और जिनकी शाखायें वायु से हिल रही थीं हमारी आँखों के सामने अत्यन्त दुःख की अनुभूति करती हुई जान पड़ती थीं।"

विमीरिज

१९१७ की पश्चिमी मोर्चे की अन्य घटनायें ये थीं : अरास की लड़ाई जो कि अँग्रेजों द्वारा अप्रैल से जून तक लड़ी गयी और जिसमें कनाडी सैनिकों ने अपने को विमीरिज की लड़ाई में प्रख्यात किया; फ्रांसीसियों द्वारा अप्रैल में नवम्बर तक लड़ी गई दीर्घ काल तक अनिर्णीत रहने वाली आइसने की लड़ाई जोकि चैमिन डेसडेम्स की लड़ाई के लिए प्रख्यात है; जुलाई से दिसम्बर तक फ्लैंडर्स का ब्रिटिश आक्रमण जिसमें पैसेंडेल रिज तथा अन्य स्थान प्राप्त हुए ; नवम्बर से दिसंबर तक की कैम्बरे की लड़ाई जिसमें वीस मील के (लम्बे) मोर्चे पर जर्मनों को कई मील पीछे हटना पड़ा।

इटली पर आक्रमण

परन्तु जिस समय मित्रराष्ट्रों को फ्रांसीसी मोर्चे पर पर्याप्त उपलब्धियाँ हुईं उसी समय इटली में उनको गंभीर असफलतायें हुईं। १९१६ में इटालियनों ने गोरीजिया छीन लिया था और १९१७ की ग्रीष्म ऋतु में उन्होंने आइसोन् जो तथा कार्सो पठार पर सफल अभिक्रमण किया था। परन्तु रूस के पतन तथा रूसी सेनाओं में शांतिवाद के प्रसार के कारण जर्मन सेनायें पर्याप्त संख्या में तथा भारी तोपखाना प्रचुर मात्रा में उनके मित्र देश आस्ट्रिया की सहायता के लिये भेजी जा सकीं। २८ अक्टूबर १९१७ को आस्ट्रियन तथा जर्मन सेना ने गोरीजिया पर अधिकार कर लिया ; ३० अक्टूबर को यूडीन का पतन हुआ ; इसके पश्चात् इटली की सेनायें टैगलियामैंटो की ओर शीघ्रता से पीछे को हटीं। जर्मनों ने यह उद्घोषणा की कि उन्होंने १८०,००० व्यक्तियों को बन्दी बना लिया है और १५०० तोपें छीन ली हैं। टैगलियामैण्टो में भी वे न ठहर सके और इटालियनों को प्यावे तक पीछे हटा दिया गया। कई दिनों तक मित्र राष्ट्र किंकर्त्तव्य विमूढ़ रहे।

प्यावे

उन्हें यह भय हो गया कि १९१५ में सर्बिया का १९१६ में रूमानिया का जो दुर्भाग्य रहा था वही दशा १९१७ में इटली की होनी थी और कि वह पराजित हो जावेगा तथा युद्ध से निरस्त कर दिया जावेगा। परन्तु प्यावे पर इटालिय, जम गये और वेनीशिया के उत्तर में पहाड़ों में असीयागो पठार तथा अन्य पहाड़ियों में उनको पार्श्व से हराने के **मध्य शक्तियों** के प्रयत्न असफल रहे। यहाँ पर आक्रमण रोक दिया गया। फ्रांसीसी तथा अंग्रेज सेनायें इटली की सहायता के लिए शीघ्रता पूर्वक भेजी गयीं और उनके आने से इटालियनों को अत्यधिक सहायता एवं उत्साह प्राप्त हुआ परन्तु मित्रराष्ट्रों को एक बहुत बुरा धक्का लगा था और वे अभी डर रहे थे कि कहीं इटली की सेनाओं की पंक्तियाँ टूट न जावें। जर्मनी ने यह उद्घोषणा की कि उन्होंने ३००,००० व्यक्ति बन्दी बनाये हैं और ३००० तोपें छिना ली हैं। इस विजय के परिणाम स्वरूप उन्होंने आस्ट्रिया को शत्रु से मुक्त करा दिया है, अब इटली का ४००० वर्गमील क्षेत्र उनके अधिकार में है और वे इस स्थिति में हैं कि इटली के सबसे अधिक धनी प्रदेश पर आक्रमण कर सकें जिसमें अन्य वस्तुओं के साथ युद्ध सामग्री बनाने वाले विशाल कारखाने थे।

अतः १९१७ का वर्ष निराशा (अन्धकार) के साथ समाप्त हुआ। पश्चिमी मोर्चे पर मित्रराष्ट्रों को असघन एवं कठिन उपलब्धियों और संयुक्त राज्य के युद्ध प्रवेश की अपेक्षा जो अति विलम्ब के कारण संभवतः अधिक सहायक होता प्रतीत नहीं हो रहा था, रूस का पतन तथा इटली का दुर्भाग्य यदि आवश्यक नहीं तो कम से कम अपने संभावित परिणामों के कारण अधिक भयोत्पादक दीख पड़ रहे थे। यह सत्य है कि इस वर्ष एशिया में मित्रराष्ट्रों का कुछ उत्साह बढ़ा था परन्तु भविष्य कथन पूर्णतः असम्भव था कि वहाँ की सफलतायें कितने समय तक स्थायी रहेंगी अथवा कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगी। जर्मनों ने उच्च स्वर से अपने विचारों की उद्घोषणा की थी कि वे बर्लिन को बगदाद से मिलाना, मध्य यूरोप स्थापित करना और उसको तुर्की तथा दजला-फरात की महान् घाटियों तक विस्तृत करना चाहते थे। इसका केवल यही अभिप्राय था कि अंग्रेजों के भारत तथा मिश्र के साम्राज्य को स्पष्ट संकट उत्पन्न हो जावे। अस्तु यह स्वाभाविक एवं अनिवार्य था कि जिस प्रकार इंगलैंड ने जर्मनी की चुनौती को पश्चिमी मोर्चे तथा महासागरों पर स्वीकार किया था उसी प्रकार वह इसको विश्व के उस भाग में भी स्वीकार करे। अतएव १९१५ में ही सेनाध्यक्ष टाउनशैण्ड की अध्यक्षता में भारत से एक सेना जर्मनी की योजनाओं को पूर्ण होने से रोकने के लिये भेजी गयी थी। परन्तु यह सैनिक अभियान बुरी तरह असफल रहा था। दजला नदी तक २०० मील तक आगे बढ़ने तथा कुत्तेल-अमारा नामक नगर से लेने के पश्चात् सेनाध्यक्ष टाउनशैण्ड ने अपने को उस स्थान पर तुर्की द्वारा घिरा हुआ पाया और कोई भी सहायता न मिलने के कारण उसे कई मास पश्चात् अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस सेना में दस सहस्र सैनिक थे तथा यह आत्मसमर्पण १४३ दिन के घेरे के पश्चात् २८ अप्रैल १९१६ को किया गया था। यह केवल एक गंभीर पराजय ही नहीं थी अपितु इसने पूर्व में ग्रेट ब्रिटेन के सम्मान को भारी क्षति भी पहुँचाई। इस क्षति को पूरा करने के अतिरिक्त उसे और कुछ भी नहीं करना था। उसने और अधिक सावधानीपूर्ण तैयारी के साथ तथा वृहत्तर पैमाने पर एक दूसरे सैनिक अभियान की तत्काल व्यवस्था की जिसको उसने सेनाध्यक्ष मौडे की अध्यक्षता में १९१७ के प्रारम्भ में मैसोपोटामिया भेजा। यह सैनिक अभियान सफल रहा। २४ फरवरी को कुत्तेल-अमारा पर पुनः अधिकार कर लिया गया और मार्च को अंग्रेज ने बगदाद में विजेता के रूप में प्रवेश किया। बगदाद सामरिक महत्त्व का नगर नहीं था परन्तु इस पर अधिकार करने से सम्पूर्ण विश्व पर एक निर्णयात्मक प्रभाव पड़ा।

मैसोपोटामिया में अँग्रेज

वर्ष के अन्त में अंग्रेजों ने पश्चिम की ओर बढ़कर फिलिस्तीन में तुर्कों पर अन्य विजयें प्राप्त कीं। युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में तुर्कों ने अंग्रेजों के स्वेज नहर तथा मिस्र के नियंत्रण को गम्भीर संकट में डाल दिया था। अंग्रेजों ने सेनाध्यक्ष ऐलैनबी की अध्यक्षता में फिलस्तीन सेना भेजकर इस संकट को सदा के लिये दूर करने का संकल्प किया। यह सेना धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ी, जाफा पर अधिकार किया, जेरूसलम के बन्दरगाह पर अधिकार किया और १० दिसम्बर १९१७ को इसने स्वयं जेरूसलम में विजयपूर्वक प्रवेश किया। सात

जेरूसलम पर अधिकार

शताब्दियों तक मुसलमानी नियन्त्रण में रहने के पश्चात् इस पवित्र नगर पर पुनः अधिकार स्थापित हो जाने के कारण सम्पूर्ण ईसाई जगत में अत्यन्त हर्ष मनाया गया। मध्यकालीन धर्म योद्धाओं की सफलताओं की पुनरावृत्ति की जा रही थी। क्या ईसाइयों की गैर ईसाई (काफिर) पर की गयी यह नवीन विजय पूर्व विजय के समान अल्प-कालीन सिद्ध होगी ?

युद्ध के इन दूरस्थ रंगमंचों पर घटित होने वाली घटनाओं से जर्मनों को कोई दुःख नहीं हुआ। न उनका दुखी होने का कोई कारण ही था। सब मिलाकर पश्चिमी मोर्चे पर वे जमे हुए थे और उस भयानक प्रहार के कारण जो उन्होंने रूस पर किया था और जिसने उसे नष्ट कर दिया था पूर्वी मोर्चा तिरोहित हो गया था। २२ दिसम्बर को जर्मन सम्राट ने उस समय सामान्य परिस्थिति से सम्बन्धित तत्कालीन व्यापक जर्मन जनमत की ही अभिव्यंजना की थी जब उन्होंने फ्रांस में (अपनी) सेना से कहा था : "१९१७ की वर्ष ने अपनी महती लड़ाइयों सहित यह सिद्ध कर दिया है कि जर्मन जाति का स्वर्ग में सृष्टि का निर्माता परमात्मा उसका शर्त रहित एवं वचन बद्ध मित्र है जिसके ऊपर वह पूर्ण रूप से विश्वास कर सकती है……। यदि शत्रु शान्ति नहीं चाहता है तो हम अपनी लौह-मुष्टिका और चमकती हुई तलवार से उन (व्यक्तियों) के द्वारों को तोड़कर जो शान्ति नहीं चाहते हैं विश्व को शान्ति प्रदान करेंगे। परन्तु हमारे शत्रु, नये मित्रों की सहायता से, अब भी तुमको पराजित करने को तथा तत्पश्चात् जर्मनी के द्वारा कठिन प्रयत्न से संसार में प्राप्त की हुई स्थिति को सदा के लिये नष्ट करने की आशा कर रहे हैं। वे सफल नहीं होंगे। अपने पवित्र उद्देश्य तथा बल में विश्वास करते हुए हम पवित्र १९१८ की वर्ष का दृढ़ विश्वास एवं लौह इच्छा शक्ति के साथ सामना करेंगे। अतः परमात्मा के (विश्वास के) साथ नवीन कार्यों तथा नवीन विजयों के लिये आगे बढ़ो।"

इन नवीन विजयों में से प्रथम विजयें कूटनीतिक क्षेत्र में प्राप्त की गयी और वे जर्मनों के लिये अत्यधिक सन्तोषजनक (सिद्ध) होनी थीं। ये विजयें उन संधियों में सन्निहित थीं जो उनके द्वारा रूस, रूमानिया तथा पूर्ववर्ती रूस के विशाल खण्डों अर्थात् यूकेरीन तथा फिनलैण्ड पर, जिन्होंने बॉलशेविकी द्वारा शासित देश से सम्बद्ध रहने की अपेक्षा अपनी स्वतन्त्रता की उद्घोषणा कर दी थी, पर थोपी गई।

बॉलशेविकी तथा शांति

बॉलशेविकी अविलम्ब शान्ति चाहते थे और जब वे करेंसकी को सत्ताहीन करने में सफल हुए और उन्होंने नियन्त्रण को अपने हाथ में लिया तब उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बातचीत प्रारम्भ की। १५ दिसम्बर १९१७ को जर्मन सेना के मुख्य कार्यालय ब्रेस्ट-लिटीवस्क में युद्ध विराम सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये (ऊपर देखिये)। इन बातचीतों में तीन प्रमुख व्यक्तियों ने भाग लिया : जर्मनी की ओर से खूलमैन आस्ट्रिया-हंगरी की ओर से जर्निन, और रूस की ओर से ट्रॉटस्की। ये बातचीतें दीर्घकालीन तथा प्रायः उत्तेजनापूर्ण (झंझावातीय) रहीं। ट्रॉटस्की ने यह अनुरोध किया कि सन्धि इस सूत्र पर आधारित होनी चाहिये—"न कोई देश ही लिये जावेंगे और न क्षति पूर्तियाँ ही कराई जावेंगी।" मध्य शक्तियों ने इस सूत्र को स्वीकार करने का नाटक रचा।

परन्तु इस सिद्धान्त को मानने तथा जातियों को अपना अधीनत्व स्वयं चुनने के सिद्धान्त को मानने, में उनकी कपटपूर्ण भावनायें शीघ्र ही स्पष्ट हो गयीं। रूस के उन बन्दरगाहों से, जिन पर उनका अधिकार था, उन्होंने अपनी सेनायें हटाना अस्वीकार कर दिया और उन्होंने यह संकेत किया कि उनके उद्देश्य उनके वक्तव्यों के प्रतिकूल थे। इस पर ट्रॉटस्की निराश हुआ और उस सम्मेलन से पृथक् हो गया तथा रूस की सरकार ने यह उद्घोषित किया कि वह **'संयोजन वादी संधि** पर हस्ताक्षर नहीं करेगी परन्तु साथ ही यह भी घोषणा की गयी कि युद्ध समाप्त हो गया था। उसने सभी मोर्चे पर रूसी सेनाओं के पूर्ण सैन्य विघटन[1] का भी आदेश दिया; तथापि जर्मनी ने 'युद्धाभाव किन्तु शांत्याभाव' के समाधान को मानना अस्वीकार किया। उसने लिखित सन्धि का आग्रह किया। दस फरवरी को रूसी प्रतिनिधियों के चले जाने से संधिवार्ता भंग हो गयी थी। अतः जर्मन सेना ने अविलम्ब (पुनः) आक्रमण की तैयारी की और रूस पर नया आक्रमण किया। वे ५०० मील के मोर्चे पर आगे बढ़ गयीं और पीट्रोग्राड से सत्तर मील से कम दूर रह गयी। इस कारण रूसियों ने शीघ्र ही शर्तें स्वीकार कर लीं और उन्होंने ३ मार्च १९१८ को **'ब्रेस्ट-लिटोवस्क की संधि'** पर हस्ताक्षर कर दिये जो कि लिखित संधियों में सबसे अधिक स्पष्ट **'संयोजनवादी संधि'** है। इसके मुख्य उपबन्ध ये थे: रूस ने पोलैण्ड, लियूनिया, कोरलैण्ड, लियूनिया, और एस्थोनिया पर अपने सभी अधिकारों का परित्याग कर दिया; उसने फिनलैण्ड तथा यूक्रेन पर भी अपने सभी अधिकारों का परित्याग कर दिया तथा वह उनसे संधि करने एवं उनकी स्वाधीनता को मान्यता प्रदान करने पर सहमत हो गया; उसने काकेशस में स्थित बाटम, इरीवन तथा कार्स तुर्की को दे दिये, और उसने प्रदत्त क्षेत्रों तथा मध्य मित्रों के देशों में क्रान्तिकारी प्रचार न करने का वचन दिया।

ब्रेस्ट-लिटोवस्क की संधि

इसके पश्चात् तथा संधि के एक अनुच्छेद के स्पष्ट आशय का उल्लंघन करते हुए रूस से क्षति स्वरूप एक बड़ी धन राशि देने की प्रतिज्ञा करायी गयी।

इस सन्धि के अनुसार रूस का विशाल भू-क्षेत्र उसके हाथ से निकल गया जिसका क्षेत्रफल प्रायः ५ लाख वर्ग मील था और जर्मन साम्राज्य का दुगुना था। वह लगभग ६५,०००,००० जनसंख्या से वंचित हो गया जो कि जर्मन साम्राज्य की जनसंख्या के बराबर थी। प्रदत्त भू-क्षेत्रों का क्या भविष्य होगा उसके विषय में इस वक्तव्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी संकेत नहीं किया गया था कि जर्मनी तथा आस्ट्रिया हंगरी की इच्छा है कि वे इन क्षेत्रों का भविष्य उनकी जनता की सहमति से निर्धारित करें।" कुछ सप्ताह पश्चात् मध्य शक्तियों ने रूमानिया को भी कठोर सन्धि स्वीकार करने पर विवश किया जिसके अनुसार उसको उन्हें विशाल भू-क्षेत्र देने पड़े तथा उसके लाभार्थ उसे आर्थिक साधनों से वंचित होना पड़ा।

रूस का विघटन

ब्रेस्ट-लिटोवस्क की संधि ने जर्मनी की मनोभावनाओं को प्रकट किया था। इसने सम्पूर्ण विश्व के समक्ष यह सिद्ध कर दिया कि वह कुछ भी कहे किन्तु उसकी

---

1. लामबन्दी तोड़ना।

महत्त्वाकांक्षायें असीमित थीं। ये महत्त्वाकांक्षाएँ केवल उसके सैनिक तथा असैनिक शासकों की ही नहीं थीं। जिस जर्मन संसद (रायचस्टैग) ने जुलाई १९१७ में 'संयोजन तथा क्षतिपूर्ति नहीं होगी' के सिद्धांत के पक्ष में मतदान किया था उसी ने बड़े उत्साह के साथ 'ब्रेस्ट लिटोवस्क' की संधि को सत्यांकित अथवा अनुसमर्थित कर दिया। समाजवादियों ने भी इस सत्यांकन में भाग लिया। शेष संसार को अब, यदि उसको पहले ज्ञात नहीं था तो, ज्ञात हुआ कि यदि वह इसी नियन्त्रण में आ गया तो उसको क्या आशा करनी चाहिए। जर्मनों के मनोरथ पूर्ण रूप से प्रकट हो चुके थे। वे उनकी वास्तविक शक्ति से अत्यन्त संबद्ध रहेंगे (**अर्थात् वे अपनी शक्ति के अनुसार अपने साम्राज्य का विस्तार करेंगे।**)

जर्मनी तथा पश्चिमी मोर्चा

पूर्व में सन्तोपजनक व्यवस्था करके तथा उस ओर से निर्भय एवं निश्चित होकर जर्मनी ने अपना पूरा अवधान पश्चिमी मोर्चा पर केन्द्रित किया। उसे विश्वास था कि आक्रमण की केन्द्रित शक्ति से वह वहाँ पर अन्त में विजयी रहेगा और वहाँ वह उस विजय को प्राप्त करेगा जो अब तक उसके लिए मृगमरीचिका बनी रही थी और जिसके प्राप्त करने से युद्ध समाप्त हो जावेगा। वहाँ अपनी विशाल पूर्वी सेना को स्थानांतरित करके वह आश्वस्त था कि अब वह निर्णय करा लेगा और अपनी इच्छानुकूल समझौता करने पर (शत्रु को) विवश कर देगा। फ्रांस में एक और अभियान किया जाय और सब ठीक हो जावेगा। वसंत ऋतु का अभियान प्रारम्भ में ही होने वाला था। उद्देश्य यह था कि अँग्रेजी तथा फ्रांसीसी सेनाओं को पृथक् कर दिया जावे और एक-एक को क्रमशः शीघ्रता से परास्त करा दिया जावे। यह पराजय अमरीकी सेनाओं को इतनी संख्या में आने के पूर्व हो जानी चाहिए कि वे घटना चक्र को प्रभावित न कर सकें।

१९१८ में युद्ध

२१ मार्च १९१८ को (जर्मनी ने) यह अभियान प्रारम्भ किया। जिस मनोदशा में यह (अभियान) प्रारम्भ किया था वह कैजर ने एक दिन पूर्व स्वयं स्पष्ट की थी: उसने कहा कि "विजयोपहार अवश्य ही हमको मिलना चाहिए और मिलेगा। कोई भी साधारण संधि नहीं की जावेगी प्रत्युत् जर्मनी के हितों के अनुसार ही संधि की जावेगी।" एक मास पश्चात् २३ अप्रैल को जब जर्मनी के अर्थ-सचिव ने यह कहा कि 'हम अभी तक यह नहीं जानते हैं कि हमको कितनी धन राशि क्षति पूर्ति के रूप में मिलेगी, तब उसने सम्राट के विचार का परिशिष्ट प्रस्तुत किया था।

१९१८ का जर्मन अभियान

यह महाभिक्रमण, जो कि इस युद्ध का महत्तम अभिक्रमण था, तीन मास तक पूर्णतः हार्दिक इच्छानुकूल चलता रहा। यूरोप में जैसा महान् गैस का आक्रमण पहले कभी न हुआ वैसे गैस के आक्रमण से यह प्रारम्भ हुआ। साथ ही पैरिस पर ऐसी तोप से इतनी दूर से गोले बरसाये गये जितनी दूर से कोई भी अन्य तोप गोले नहीं बरसा सकती थी। आगामी आक्रमण भयंकर शक्ति के साथ हुआ और उसका उद्देश्य मिलने के स्थान पर अँग्रेजी

तथा फ्रांसीसी सेनाओं को पृथक् कर देना था। अभिक्रमण का लक्ष्य था आम्याँ[1] वास्तव में अँग्रेजी सेना का वामांग कुछ ही दिनों में अरास की ओर पीछे खदेड़ दिया गया और उसका मध्यांग सोमे से आगे तक खदेड़ दिया गया। इससे वस्तुतः सैनिक पंक्ति टूट गयी। अँग्रेजी सेना का मोर्चा टूट गया था और एक बड़ा भारी संकट सुगमता से उत्पन्न हो सकता था क्योंकि जर्मनों ने अँग्रेजी सेना के दक्षिणांग को पदाति सेना के द्वारा भगाने का प्रयत्न किया तथापि ठीक समय पर फ्रांसीसी सेना ने उनका सामना किया और उसका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। परन्तु मार्च २१ तथा मार्च २८ के बीच में जर्मनों ने महान् प्रगति की। पैरोन, बपोमें, हैम, अलबर्ट, नौयन, माण्टडीडियर एक के पश्चात् एक नगर उन्होंने ले लिये। ठीक इसी गम्भीर क्षण में सेनाध्यक्ष पर्शिंग ने अपनी सम्पूर्ण सेना को सेनाध्यक्ष फ्रांस की इच्छानुसार प्रयोग किये जाने के लिए समर्पित कर दिया। संकट इतना महान् था—मार्न की लड़ाई के पश्चात् का महत्तम संकट था—कि फ्रॉक २८ मार्च को पश्चिमी मोर्चे पर मित्रराष्ट्रों की सेनाओं का **प्रधान सेनापति** नियुक्त कर दिया गया। अन्त में **मित्रराष्ट्रों** ने सैनिक समादेश को एकता स्थापित कर ली।

अल्प विलम्ब के पश्चात् जर्मनों ने अँग्रेजों पर उत्तर में फ्लैण्डर्स में उस स्थान पर आक्रमण किया जहाँ पर उनकी तथा पुर्तगालियों की सेना मिल गयी थी। १२ अप्रेल तक अँग्रेजों को काफी पीछे हटना पड़ा। तब सेनाध्यक्ष हेग ने अपने सैनिकों को एक विशेष आदेश दिया जो ऐसे व्यक्तियों को हतोत्साहित एवं अनैतिक बना सकता था जो कितने भी असुखद किन्तु स्पष्ट सत्य को सुनना कम पसंद करते हों। अँग्रेज सेनापति का यह आदेश ऐतिहासिक बना रहेगा :

हेग का विशेष आदेश

"आज के दिन तीन सप्ताह पूर्व शत्रु ने पचास मील के मोर्चे पर हमारे ऊपर आक्रमण किया था। उसके ये उद्देश्य हैं : हमको फ्रांसीसियों से पृथक् करना, आंग्ल समुद्र वंक के बन्दरगाहों पर अधिकार करना, ब्रिटिश सेना को नष्ट करना.............. सर्वाधिक संकटाकीर्ण परिस्थितियों में हमारी सभी सेना ने जो भव्य प्रतिरोध किया है उसकी प्रशंसा की अभिव्यंजना करने के लिए शब्द मेरी सहायता नहीं कर रहे हैं जो मैं अनुभव कर रहा हूँ।

"हम में से बहुत से थक गये हैं। उनसे मैं कहूँगा कि विजय श्री उसको प्राप्त होगी जो अधिकतम दीर्घकाल तक युद्ध करेगा। फ्रांसीसी सेना शीघ्रता से बहुत बड़ी संख्या में हमारी सहायता के लिए आगे बढ़ रही है। हमारे लिए लड़ने के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

"प्रत्येक स्थिति अन्तिम व्यक्ति तक बनाये रखनी है। अपमान नहीं होना चाहिए। शत्रु के सर पर होने से तथा अपने उद्देश्य के न्याय में विश्वास होने से हम में से प्रत्येक को अन्त (समय) तक लड़ना चाहिए। हमारे घरों की सुरक्षा तथा मानव-जाति की स्वतन्त्रता इस गम्भीर वेला में हम में से प्रत्येक के आचरण पर समान रूप से निर्भर है।" घोरतम युद्ध होता रहा और अँग्रेजों के हाथ से एप्र की

---

1. उच्चारण के लिए देखिये डी० जोन्स कृत उच्चारण कोश। —अनु०

समीपवर्ती प्रसिद्ध मैसेनेस, विटशायटे की पहाड़ियाँ तथा कैमल पर्वत की स्थितियाँ निकल गयी। परन्तु फ्रांसीसी कुमक आ गयी और जर्मन रोक दिये गये। एप्र पर अभी तक मोर्चा डटा हुआ था।

इन आक्रमणों के करने तथा उपलब्धियाँ प्राप्त करने में जर्मन को भारी क्षति उठानी पड़ी थी। उनको अपने क्षीण शक्ति वाले सेनांगों को पुनः व्यवस्थित करने की आवश्यकता थी। इसी समय यह भी प्रतीत हुआ कि जर्मन सेना के उच्च समादेश मे भी परिवर्तन हुआ। हिण्डनबर्ग के स्थान पर लुडैण्डर्फ नियुक्त हुआ। २७ मई को लुडैण्डर्फ ने सौइसंस से रीम्स तक चालीस मील के मोर्चे पर एक अप्रत्याशित नया आक्रमण किया। २९ को सौइसन्स का पतन हो गया। जर्मन द्रुतगति से आगे बढ़े। चार वर्ष के पश्चात् ३१ मई तक वे मोर्ने पर एक बार पुनः पहुँच गये। चार दिन में उन्होंने ४५००० बन्दी बना लिए थे और प्रचुर परिणाम में युद्ध सामग्री हस्तगत कर ली थी। फ्रांसीसी आरक्षित सेना ने चैट्यू-थियरे के स्थान पर २ जून को उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। यह सेना युद्ध-स्थल को शीघ्रतापूर्वक भेजी गयी थी। जर्मनी सेना पेरिस से ४० मील से कम दूरी पर थी और उन्होंने लगभग एक सहत्र वर्ग मील भूमि पर अधिकार कर लिया था।

अमरीकी सेना का महत्त्व भी समझा जाने लगा था। २ जून को सैनिकों ने चैनटिवनी को हस्तगत कर लिया था। २४० वंदी बनाये। दो दिन पश्चात् उन्होंने चैंट्यू थियरे में जर्मनों को रोकने में सहायता की। उन्होंने न्यूलीयड़ पर आक्रमण को भी विफल कर दिया और $\frac{2}{3}$ मील आगे बढ़े तथा २७० बन्दी बनाये। जून ६ तथा ७ को छह मील के मोर्चे पर वे २ मील आगे बढ़े तथा टार्चा और बोरेश पर अधिकार कर लिया। उसके कुछ समय पश्चात् उन्होंने बैलोवुड पर अधिकार कर लिया। ये छोटी लड़ाइयाँ थीं परन्तु लाभदायक एवं शुभ सूचक थीं। ९ जून को जर्मनी ने माण्ट्डीडियर से नौयोन तक २० मील के मोर्चे पर अभिक्रमण किया। उन्होंने अत्यन्त क्षति उठाते हुए फ्रांसीसी सेना के मध्यांग को कई मील पीछे हटा दिया। उसके पश्चात् लड़ाई रुकी रही।

बैलो का जंगल

१५ जुलाई को उन्होंने इस उल्लेखनीय सफल अभियान का पंचम एवं अंतिम अभिक्रमण प्रारंभ किया। रीम्स के पूर्व और पश्चिम में ६० मील के मोर्चे पर आक्रमण करके वे आगे बढ़े, मोर्चे को कई स्थानों पर पार किया और प्रत्यक्षतः वे चैलों को लक्ष्य बनाये हुए थे। उन्होंने चैट्यू-थियरे पर अधिकार कर लिया।

१९१८ में मार्च २१ से जुलाई १८ तक जर्मनों ने विशाल एवं भीषण अभिक्रमण किया था और उन्होंने बहुत से बंदी, बहुत सा भू-क्षेत्र तथा प्रचुर परिणाम में लूट का धन हस्तगत कर लिये थे। वे उन नदियों के दोनों ओर, जो पेरिस के समीप बहती हैं, छाये हुए थे और पेरिस से भी अधिक दूर नहीं थे। क्या एक या दो बार आगे बढ़ने से वे फ्रांस की अभिलषित राजधानी को हस्तगत नहीं कर लेंगे और मित्रराष्ट्रों के उद्देश्य के विनाश पर (निश्चय की) छाप नहीं लगा देंगे? चार मास की विजयों से उल्लसित, जिन्होंने उनको अपने लक्ष्य (शिकार) के अधिकाधिक समीप पहुँचा दिया था, निकटवर्ती एवं अद्वितीय सफलता के स्वप्नों से उत्तेजित, वे

अन्तिम उछाल (आक्रमण) के लिए समुत्सुक हो रहे थे। तब सब कुछ समाप्त हो जावेगा तथा पूर्व (रूस आदि) पर थोपी गयी ब्रेस्ट-लिटोवस्क की सन्धि की भाँति पश्चिमी देशों पर संधि थोप दी जावेगी। विश्व अपने स्वामी को पहचान लेगा, वह होहैन्जोलर्न (वंश के) विचारों के अनुसार पुनर्व्यवस्थित किया जावेगा और वह अपने समस्त आदेश बर्लिन से प्राप्त करेगा (अर्थात् सम्पूर्ण विश्व जर्मनी के इशारे पर नाचेगा।

क्या अमरीका ने अति विलम्ब कर दिया था ?

यदि कभी ऐसे गंभीर अवसर इतिहास में उपस्थित हुये हों तो उनकी संख्या अति न्यून होगी। सम्पूर्ण संसार पीड़ादायक, हृदय-विदारक एवं असहनीय चिन्ता और भय की तीव्रता के पाश में आबद्ध था। विशेष रूप से अमरीका में भय और अपशकुन की महान एवं निराशा पूर्ण लहर जनमानस में प्रवाहित हो रही थी। निलम्बन इतना दुखद था कि मिनटें घंटों के समान, और घंटे समाप्त के समान प्रतीत हो रहे थे। क्या हम अतिविलम्ब से पहुँचे थे ? अपने समय के निराशापूर्ण नाटक में अपना उत्तरदायित्व समझने में हमारी गति इतनी अधिक मन्द रही थी अन्त में हमने युद्ध में बिना इतनी अधिक तैयारी के प्रवेश किया था कि यह अत्यधिक संभव प्रतीत हो रही थी कि हमारे मन्थर विचारों एवं निर्णय का हमको तथा (सम्पूर्ण) विश्व को दुखद मूल्य चुकाना पड़ेगा। और क्या उस मूल्य में (हमारी) राष्ट्रीय असुरक्षा ही नहीं अपितु अपमान एवं निरादर भी सम्मिलित होगा ? इन प्रश्नों का उत्तर घटनाओं पर अवलम्बित था और अब तक की घटनायें आशाजनक नहीं रही थीं; प्रत्युत वे दुर्भाग्य की ओर अभिसृत[1] (Converge) हो रही थीं।

युद्ध में प्रवेश होने के समय में हमने सबके हित के लिये भौतिक रीतियों से बहुत कुछ किया था। हमारी दक्ष एवं तैयार नौसेना ने प्रथम दिवस से ही उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण सेवायें प्रारम्भ कर दी थीं। १९१७ के अन्त तक हमारे २००,००० से कम सैनिक फ्रांस में थे। यह कहना असम्भव है कि इनमें से कितने सैनिक मोर्चे पर कार्य करने के योग्य थे। परन्तु आपत्ति को देखते हुये वे निश्चय ही बहुत कम थे।

२७ मार्च को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लॉयड जार्ज ने 'न्यूनतम सम्भव समय में अमरीकी कुमुक' के लिये आवश्यक तथा तात्कालिक अनुरोध किया और उन्होंने घोषणा की कि "हम युद्ध की गंभीरतम स्थिति में हैं और जर्मनी की अत्याधिक बहु-संख्यक सेनाओं ने हम पर आक्रमण किया है जो हमारी सेनाओं से अधिक अच्छी हैं।" इस अनुरोध का प्रभाव पड़ा। उस समय से अमरीकी सेनायें शीघ्रता एवं बहुलता के साथ यूरोप को भेजी जाने लगीं— मार्च में ८३०००; अप्रैल में ११७,००० ; मई में २४४,००० ; जून में २७८,००० और जुलाई के अन्त तक फ्रांस में १,३००,००० अमरीकी सैनिक हो चुके थे। नवम्बर १९१८ तक उनकी संख्या २०,००,००० हो गयी।

---

1. Converge का अर्थ है : सिमटना, अभिसृत होना। इसका विपरीतार्थक शब्द है diverge अर्थात् दूर होते जाना, अपसृत होना। —अनुवादक

१९१८ की ग्रीष्म ऋतु के मध्य मे परिस्थिति इतनी निराशाजनक थी कि १९१४ की भाँति फ्रांसीसी सरकार किसी भी समय पेरिस को छोड़ने के लिये तैयार थी।

परन्तु यह समय कभी भी आने वाला नहीं था। कारण यह था कि सेनापति फॉक ने ऐसा प्रहार किया कि पेरिस संकट मुक्त हो गया और उसने, जैसा कि अभी हम देख चुके हैं, युद्ध का नवीन एवं अन्तिम रूप प्रारम्भ किया। मार्ने पर स्थित कैट्यू-थियरे से लेकर आइसने नदी तक शत्रु के पार्श्व पर आक्रमण करते हुए उससे १८ जुलाई को अभिक्रमण प्रारम्भ कर दिया। अमरीकी तथा फ्रांसीसी सैनिकों (की सहायता) से उसने जर्मन सेनाओं पर अकस्मात् आक्रमण किया और उत्तम सफलता प्राप्त की। २० गाँवों को मुक्त करती हुई उसकी पूरी सेना ४ मील से ६ मील तक आगे वढ़ी। सहस्रों बन्दी बनाये गये। अकेले अमरीकी सेना ने चार सहस्र वन्दी वनाये। तोपें भी एक वड़ी संख्या में छीनी गयीं। आगामी दिनों में प्रत्याक्रमण होते रहे। प्रत्येक दिन सफलता मिली और प्रत्येक दिन इसमें अतिरिक्त गति आई। मित्रराष्ट्रीय संसार को नया अनुभव हुआ। कई दिनों तक और कई सप्ताहों तक १८ जुलाई को पहल करने के पश्चात् सेनापति फॉक की सेनाओं को अविरल विजयावली प्राप्त हुई।

फॉक आक्रमण करता है

२१ जुलाई तक उन जर्मनों के पार्श्व को भयभीत करके पीछे खदेड़ दिया जो मार्ने के इस पार आ गये थे। मार्ने की दूसरी लड़ाई समाप्त हो चुकी थी और मार्ने की पहली लड़ाई के साथ इतिहास में अपना स्थान प्राप्त कर चुकी थी। इसने पेरिस की मुक्ति सम्पादित कर दी थी और फ्रांस की मुक्ति को प्रारम्भ कर दिया था। यद्यपि इसकी अतिशयोक्ति नहीं करनी चाहिये तथापि इस लड़ाई में अमरीकी सैनिकों ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। इसमें भाग लेने वाले सैनिकों में ७० प्रतिशत फ्रांसीसी थे। मार्ने के उस ओर जाने के लिये विवश किये हुए जर्मनों ने अपना अग्रिम मोर्चा वेस्ले नदी पर जमाया। वहाँ पर कठोर संघर्ष हुआ। उनको पुनः पीछे हटना पड़ा और उनका अगला मोर्चा आइसने पर जमा। प्रति सप्ताह वे पीछे हटते रहे। तथापि उन्होंने दुराग्रहपूर्ण किन्तु असफल प्रतिरोध किया। फॉक का प्रत्याक्रमण रीम्स के सुदूरपूर्व तक तथा सौइन्स के सुदूर उत्तर तक विस्तृत हो गया। आरगोने के जंगल तथा म्यूज नदी के बीच में प्रमुख अमरीकी सेना को भयंकर एवं कठिन कार्य सौंपा गया था। वह प्रतिदिन निराशापूर्ण वीरता के साथ लड़ती रही और धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता से अत्यन्त क्षति उठाकर उत्तर की ओर आगे वढ़ती रही। आरगोने के पश्चिम में फ्रांसीसी जर्मनों को पीछे खदेड़ रहे थे।

मार्ने की दूसरी लड़ाई

इसी समय अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसी सेनायें इटालियन, वेलजियम, पुर्तगाली, अमरीकी मित्रराष्ट्रीय सेनाओं सहित सौइन्स से आंग्ल समुद्र वंक तक के लम्वे मोर्चे पर कई स्थानों में आक्रमण कर रही थीं। ये छितरे आक्रमण जो कि सावधानी से परस्पर सम्वद्ध किये गये थे मार्शल फॉक द्वारा भलीभाँति वनाई गयी व्यापक योजना के अंग मात्र थे और अव वह अपने को युद्ध की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा के रूप में प्रकट कर रहा था। सर्वत्र अन्यून दवाव, यत्रतत्र क्षतिकारक वढ़ाव—यह

फॉक का महान् अभियान

स्पष्ट नीति थी जिसका उद्देश्य १८ जुलाई को मित्रराष्ट्रों द्वारा अपनाई गयी पहल तथा अभिक्रमण को चालू रखना था। अगस्त, सितम्बर तथा अक्टूबर भर बिना आराम के विशाल आक्रमण चालू रहा। विजेताओं के रूप में मित्रराष्ट्र दृढ़तापूर्वक उस भूमि पर आगे बढ़ रहे थे जिसको अल्पकाल पूर्व छोड़ने पर उनको विवश होना पड़ा था। वर्डन, रीम्स और एम्र जर्मन संकट से मुक्त किये गये। इस विशाल तथा जटिल अभियान की उन कार्यवाहियों और घटनाओं की लम्बी सूची समास-रूप से अथवा व्यास रूप से बनाना भी असम्भव है जो प्रायः स्वयं बड़ी महत्त्वपूर्ण तथा अभिरुचिपूर्ण थी। बहुत से नगर तथा ग्राम, जो १९१४ से जर्मनों के अधिकार में थे, वापस ले लिये गये। मार्च २१ से जुलाई १८ तक जो कुछ भी जर्मनों ने जीता था वह सब उनके हाथ से निकल चुका था। फ्रांस के शेष भाग को जो, इतने दीर्घ काल में उनके अधिकार में था, जीतने तथा उनकी पीछे हटती हुई सेना के मोर्चा को नष्ट करने के लिये जो कहीं भी बनाये जाते हों तथा उनको फ्रांस और बेलजियम के बाहर खदेड़ने के लिये मित्रराष्ट्र आगे बढ़ते रहे।

सेण्ट मिहील

इस सामान्य अभियान की एक महत्त्वपूर्ण तथा अमरीकी जनता के लिये महती अभिरुचि की एक विवरणात्मक घटना यह थी कि १२–१३ सितम्बर को परशिंग के सैनिकों ने सेण्ट मिहील के सैयकि दार्चे को (जर्मनों को परास्त करके) समाप्त कर मिनो।

अपने अपमान के लिये महान् क्षति उठाकर सितम्बर के अन्त तक जर्मन सेनायें प्रसिद्ध हिण्डनबर्ग पंक्ति पर पहुँच गयी थीं जो कि प्रतिरक्षा की जटिल एवं सुबल प्रणाली थी और जर्मन उसको कई वर्ष से तैयार करते रहे थे। उनकी यहाँ पर डट-कर मोर्चा जमाने की और तक उन राष्ट्रों में शान्ति प्रचार करने की योजना थी जिनको युद्ध के कारण श्रान्त माना जाता था। इस उद्देश्य को अवरुद्ध करने का केवल एक ही मार्ग था। वह था हिण्डनबर्ग पंक्ति को नष्ट करना और जर्मनों को लगातार शीघ्रतापूर्वक जर्मनी की ओर भागने के लिए विवश करना। क्या यह किया जा सकता था?

हिण्डनबर्ग पंक्तिकी लड़ाई

हिण्डनबर्ग पंक्ति की लड़ाई इस विश्वयुद्ध की निर्णयात्मक लड़ाई के रूप में इतिहास में स्थान प्राप्त करेगी। यह लड़ाई उतनी ही महत्त्वपूर्ण थी जितनी कि १८१३ की लिपजिक की राष्ट्रों की लड़ाई थी जिसने नेपोलियन के साम्राज्य के विनाश की पूर्व छाया डाली थी (अर्थात् उसी लड़ाई के कारण भविष्य में नैपो-लियन के साम्राज्य का पतन हुआ था)। दोनों दशाओं में विश्व की शक्ति (बनने) का स्वप्न समाप्त प्रायः हो गया। जिस प्रकार लिपजिक की लड़ाई के पश्चात् फ्रांस पर आक्रमण हुआ था उसी प्रकार हिण्डनबर्ग पंक्ति की लड़ाई के पश्चात् जर्मनी पर आक्रमण संभव प्रतीत होने लगा। कुछ ही मासों में नैपोलियन को सिंहासन त्यागने पर विवश किया था। क्या एकसौ पांच वर्ष के मध्यान्तर के पश्चात् इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? चतुर्वर्षीय युद्ध की चरमावस्था द्रुतवेग से समीप आ रही थी।

यह लड़ाई २६ सितम्बर को दूरस्थ पार्श्वों पर अतिक्रमणों से प्रारम्भ हुई। उसी दिन सेनाध्यक्ष लिगेट की अधीनता में फ्रांसीसी सेना के साथ मिल

कर प्रथम अमरीकी सेना ने जर्मनों के वाम पार्श्व पर आक्रमण किया। अमरीकी सेना आरगोने के जंगल तथा म्यूज के मध्य में लड़ी थी और सर्वप्रथम कई गाँवों को हस्तगत करती हुई द्रुतवेग से आगे बढ़ी। आरगोने की दूसरी ओर गौरौड आगे बढ़ी। जब जर्मनी की अभ्यारक्षित सेना युद्धस्थल में शीघ्रतापूर्वक आ गई तब फ्रांसीसी-अमरीकी अभियान अवरुद्ध तो नहीं हुआ परन्तु उसकी गति मन्दतर हो गयी।

इसी बीच में बेलजियम तथा अँग्रेजी सेनाओं ने जर्मनी के दक्षिण पार्श्व पर सुदूर उत्तर में बेलजियम में आक्रमण किया और वे बेलजियम के समुद्रतट की जर्मन सेनाओं तथा लिली के क्षेत्र की जर्मन सेनाओं के बीच में व्यवधान उत्पन्न करने में सफल रहे। इस संकट का सामना करने के लिये युडैण्डर्फ ने पुनः अभ्यारक्षित सेनायें भेजीं। परन्तु न तो वहाँ फ्लैण्डर्स में और न दूसरे सिरे पर आरगोने में ही मित्र राष्ट्रों का दबाव कम हुआ।

अन्त में फॉक अपने प्रमुख प्रहार के लिये तैयार था। ८ अक्टूबर को दोनों पार्श्वों की ओर ध्यान देते हुए उसने शत्रु के मध्यांग पर आक्रमण किया। कैम्ब्राइ तथा सेण्टक्विंटिन के मध्य में यह आक्रमण तीन ब्रिटिश सेनाओं द्वारा बिंग रॉलिन्सन तथा होर्ने की अधीनता में डैलैनी के अधीन फ्रांसीसी सेना की सहायता से किया गया था। यहाँ पर अँग्रेजों ने अपने इतिहास की संभवतः सबसे बड़ी विजय प्राप्त की। बार-बार स्थगित आशा अंततोगत्वा पूरी हुई। अँग्रेजों ने तीन दिन में बारह मील के मोर्चे पर सीधे हिण्डनबर्ग पंक्ति में प्रवेश किया और वह प्रवेश भी वहाँ किया जहाँ पर वह पंक्ति सबलतम थी। उसके पश्चात् वे खुले प्रदेश में आगे बढ़ते चले गये। जिस प्रतिरक्षा की (जर्मनी द्वारा) इतनी शेखी बघारी गयी थी। वह आगे अजेय नहीं रह गई। सेण्टक्विंटिन का पतन हुआ और यही भाग्य कैम्ब्राइ का हुआ।

मित्र राष्ट्रों की प्रगति

हिण्डनबर्ग पंक्ति को तोड़ने के बड़े भारी परिणाम हुए। अँग्रेज वेलेंसीनीज की ओर बढ़े। दोनों पार्श्वों पर द्विगुणित कार्यवाही की गयी और शीघ्र ही आंग्ल समुद्रबंक से वर्डन तक प्रायः पूरी पंक्ति पर प्रगति हुई पर्याप्त गौरवपूर्ण ख्याति के साथ यह सभी मित्र राष्ट्रों का सहकारी अभियान था। (शत्रु का) सुदृढ़ स्थान, लाओन, शीघ्र ही खाली हो गया। १६ अक्टूबर तक जर्मनों को बेलजियम का समुद्रतट, ओस्टेण्ड तथा जीब्रग छोड़ना पड़ा। तत्पश्चात् लिली, रूबेक और टरकोइंग खाली किये गये। तीन सप्ताहों में उन स्थानों पर, जो जर्मनों द्वारा स्वयं चुने गये थे तथा जहाँ पर दीर्घकाल से तैयारी की गयी थी, आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की गयी थी। अमरीकी सेना दृढ़तापूर्वक म्यूज नदी के नीचे की ओर बढ़ती रही। १६ अक्टूबर के पश्चात् यह केवल समय का प्रश्न शेष रहा था कि जर्मन सेनायें सेना का अधिकाधिक नैतिक पतन होता रहा। युद्ध की सबसे बड़ी लड़ाई निर्णयात्मक रूप से जीती जा चुकी थी। केवल फलोपलब्धि ही शेष रह गयी थी। सैनिक इतिहास के महान् नामों में सेनापति फॉक के नाम ने अपना स्थान प्राप्त कर लिया था।

इसी बीच युद्ध के विस्तृत रंगमंच पर महत्त्वपूर्ण घटनायें घटित हो रही थीं जो कि प्रबल रूप से युद्ध की समाप्ति कराने में सहायता कर रही थीं। प्रत्येक मोर्चे से तथा प्रत्येक नवीन दिवस इतनी आश्चर्यजनक, इतनी निर्णयात्मक तथा इतने तात्कालिक एवं दूरगामी परिणामों वाली विजयों के समाचार आते थे कि यह स्पष्ट

था कि सर्वोपरि विजय का समय निकट आ रहा था और मानवता के इतिहास का भयानक अध्याय समाप्त हो रहा था।

पैलेस्टाइन में एलनबी का अभियान

फिलस्तीन से यह समाचार आया कि एलनबी पुनः कार्यवाही कर रहा था जिसने दिसम्वर १९१७ में जरूसलम ले लिया था। कुछ समय से अनौपचारिक रूप से लारेंस अरबों को तुर्की के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार कर रहा था। १२५,००० सैनिकों से, जिनमें थोड़े से फ्रांसीसी भी थे, एलनबी ने तुर्कों के विरुद्ध सफल अभियान किया। सितम्वर के मध्य में प्रारम्भ करते हुए तथा अश्वारोही सेना का द्रुत एवं पूर्ण प्रयोग करते हुए वह उनके समीप पहुँच गया और उनके पीछे पहुँचकर तथा उनको चारों ओर से घेर कर उसने समारिया के मैदान में उन पर प्रबल प्रहार किया। कुछ दिनों में एलनबी ने ७०,००० वन्दी, ७०० तोपें तथा तुर्की सेना की प्रायः सम्पूर्ण सामग्री हस्तगत कर ली। इस विजय का अनुकरण करते हुए वह दमिश्क तक चला गया और ७००० वन्दी वनाते हुए उसने उसमें १ अक्टूबर १९१८ को प्रवेश किया। ६ अक्टूबर को एक फ्रांसीसी सेना ने वीरत ले लिया जोकि सीरिया का प्रमुख वन्दरगाह है। तत्पश्चात् अलप्पो की ओर द्रुत अभियान प्रारम्भ हुआ जिसका उद्दश्य बगदाद रेलमार्ग से काट देना था और उस प्रकार उन तुर्कों को पृथक कर देना था जोकि मैसोपोटामिया में लड़ रहे थे। १५ अक्टूबर को दमिश्क तथा अलप्पो के बीच में स्थित हाम्स का तथा समुद्रतट पर स्थिति ट्रिपॉली का पतन हो गया। कुछ दिन पश्चात् अलप्पो ले लिया गया। मैसोपोटामिया, सीरिया और अरब के भाग्य का निर्णय हो गया। जो क्षेत्र शताब्दियों से तुर्की शासन के अन्तर्गत रहे थे अब मुक्त कर दिये गये। विश्व के उस भाग में तुर्की साम्राज्य अतीत की कहानी बन गया। बर्लिन से बगदाद तक सड़क बनाने का जर्मनी का स्वप्न भी नष्ट हो गया।

बलगेरिया का आत्म-समर्पण

जिस समय तुर्की साम्राज्य का पूर्व में अंग-भंग किया जा रहा था उसी समय वह पश्चिम में प्रभावशाली ढंग से सबसे पृथक किया जा रहा था। बलगेरिया जोकि यूरोप में तुर्की की सीमा पर स्थित है युद्ध में निरस्त किया जा रहा था। लगभग ठीक उसी समय जिस समय एलेनबी ने समारिया में अपना अतिक्रमण प्रारम्भ किया था, फ्रेंकेट ऐसपेरी ने बलगेरिया की सेना पर वरदा तथा कर्ना नदियों के बीच में आक्रमण किया और उनकी पंक्तियों को दो भागों में विभक्त करके उनकी स्थिति को अत्यन्त गम्भीर बना दिया। फ्रेंकेट मार्ने की प्रथम लड़ाई का वीर था और इस समय बलकान में स्थिति मित्र राष्ट्रों की सेना का सेनापति था जिसमें फ्रांसीसी, अँग्रेज, यूनानी, सर्वियाई, तथा इटालवी सैनिक सम्मिलित थे। दस दिनों के पश्चात् बलगेरिया ने एक युद्ध विराम संधि पर हस्ताक्षर किया जिसका अभिप्राय विना शर्त के आत्म-समर्पण से कम नहीं था। वह उस सम्पूर्ण यूनानी तथा सर्वियायी भूक्षेत्र को खाली कर देने पर सहमत हो गया जिस पर उसने अधिकार कर लिया था। वह अपनी सेना की लामवन्दी समाप्त करने तथा मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को उनकी इच्छानुसार बलगेरिया के सैनिक उपयोग के स्थानों तथा संचार के साधनों को प्रयोग करने की आज्ञा देने पर भी सहमत हो गया। इस प्रकार बलगेरिया युद्ध के बाहर निकल गया। बर्लिन-बगदाद का स्वप्न दोबारा नष्ट हो गया। जर्मनी तथा

तुर्की के मध्य का रेल मार्ग से आना जाना भंग हो गया। मध्य यूरोप की भव्य जर्मन योजना, जिसके विषय में संसार ने इतना अधिक सुना था शीघ्रता के साथ टूटे-फूटे तथा परित्यक्त निरर्थक अलंकारों के अनुपयोगी वस्तु-गृह (गोदाम) में रची जा रही थी (अर्थात् उसके पूरे होने की अब कोई आशा नहीं रही थी) तुर्की भी शीघ्रतापूर्वक अपने भाग्य की ओर दौड़ा जा रहा था। सर्विया को सर्वियानिवासियों ने सर्विया निवासियों के लिए शीघ्रता के साथ पुनः जीत लिया था। अल्पकाल के पश्चात् रूमानिया का भी पुनः उत्थान हो गया और वह ७ मई १९१८ को जर्मनी तथा आस्ट्रिया हंगरी द्वारा अपने ऊपर थोपी हुई पाँच मास से कम की बुखारेस्ट की घृणित संधि को अस्वीकार करने की घोषणा करेगा। इस संधि ने उसकी आर्थिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता का प्रायः अपहरण कर लिया था।

बलगेरिया में क्रांति

यह सूक्ष्म विषय की बात थी कि ३ अक्टूबर को अपने आप बलगेरिया को जार की उपाधि धारण करने वाले फर्डीनैण्ड ने जिसने इकत्तीस वर्ष तक शासन किया था अपने चौबीस वर्षीय पुत्र युवराज बोरिस के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। विश्व-युद्ध में अपने व्यवहार के कारण जिन बलकानी नरेशों को अपने सिंहासन त्यागने पड़े थे उसमें फर्डीनैण्ड का दूसरा स्थान था। यूनान नरेश कौन्स-टैण्टाइन जून १९१७ में उससे पूर्व निष्कासित किया जा चुका था। नये नरेश बोरिस के भाग्य में केवल एक मास सिंहासन (शासन) था १ नवम्बर को जनता के आन्दोलन के कारण उसको सिंहासन त्यागना पड़ा तथा देश के बाहर जाना पड़ा। बलगेरिया का राजतन्त्र (जारशाही) गणतन्त्र बन गया।

जब पूर्व में, बलकान प्रायद्वीप में तथा फ्रांस में ये शत्रु विनाशक घटनायें घटित हो रही थीं, तभी इटली की युद्धाग्नि पुनः धधकने लगी। अक्टूबर १९१७ में इटली की महान् तथा भयानक पराजय हुई थी। उसी समय उसे आस्ट्रिया से हटना पड़ा था, आइसोन्जो के इस ओर आना पड़ा था और उस प्यावे तक आक्रमण हुआ था। उसने अपार जनक्षति या सामग्री-क्षति का अनुभव किया था। उस दिनांक के एक वर्ष पश्चात् अक्टूबर १९१८ में नैतिक पुनरुत्थान तथा सब भाँति की पुनरुपलब्धि के पश्चात् इटली ने आस्ट्रिया के विरुद्ध अभिक्रमण किया। उसका आक्रमण प्रारम्भ से ही अति सफल रहा और आगामी दिनों में वह (शत्रु के लिये) अधिकाधिक अशुभ सूचक बनता गया। अन्त में इटली ने आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की जिसने गतवर्ष की (अप्रिय) स्मृतियों को अधिकांश नष्ट कर दिया। शत्रु की पंक्ति तोड़ दी गई तथा आस्ट्रिया के सैनिकों को अपने देश की ओर तितर बितर होकर हड़बड़ाहट के साथ भागना पड़ा। यह शत्रु की भगदड़ थी। इसके फलस्वरूप उसके लाखों सैनिक बन्दी बना लिये गये तथा सहस्रों बड़ी तोपें छीन ली गयीं।

तुर्की का युद्ध से निरस्त होना

इन निर्णयात्मक घटनाओं के कारण वातावरण शीघ्रता से स्पष्ट होता जा रहा था। तुर्की तथा आस्ट्रिया युद्ध को त्यागने के लिये तैयार थे। दोनों ने युद्ध-विराम सन्धि की प्रार्थना की। ३१ अक्टूबर को मित्रराष्ट्रों ने तुर्की के साथ ऐसी शर्तों पर युद्ध विराम सन्धि स्वीकार की जिसका अभिप्राय (तुर्की का) आत्मसमर्पण था। डार्डनैलीज[1] तथा बासफोरस को मित्रराष्ट्र स्वतन्त्रतापूर्वक

---

1. दानिपाल।

प्रयोग करेंगे तथा वे उन दुर्गों पर अधिकार कर सकेंगे जो कि रक्षा करते थे। इस प्रकार काले सागर तक मित्रराष्ट्रों की पहुँच की प्रत्याभूति हो गयी। तुर्की की सेना की लामबन्दी अविलम्ब समाप्त कर दी जावेगी। मित्रराष्ट्रों को अधिकार होगा कि वे अपनी आवश्यकता तथा इच्छा के अनुसार किसी भी युद्धोपयोगी स्थान पर अधिकार कर लें। अन्य शर्तों ने तुर्की की पराजय को पूर्ण किया तथा उसको युद्ध से निरस्त कर दिया।

आस्ट्रिया का युद्ध से निरस्त होना

४ नवम्बर को आस्ट्रिया को जो युद्ध विराम प्रदान किया गया उसमें भी ऐसी ही तथा इनसे भी अधिक कठिन शर्तें थीं। आस्ट्रिया-हंगरी की लामबन्दी समाप्त की जानी चाहिये और उनको अपनी युद्ध-सामग्री का अधिक भाग मित्रराष्ट्रों तथा संयुक्त राज्य को देना होगा। युद्ध के आरम्भ से आस्ट्रिया ने जिन भू-क्षेत्रों पर अधिकार किया था वे उसको खाली करने होंगे उसको लगभग पूरा ट्रेंटिनों, ट्रिस्टी, स्ट्रिया तथा डालमेशियन समुद्रतट का एक भाग देना होगा। सम्पूर्ण सैनिक तथा रेल सामग्री जहाँ पर है वहीं छोड़नी होगी और वह मित्रराष्ट्रों की इच्छा पर निर्भर रहेगी। पन्द्रह दिन के भीतर सभी जर्मन सेनायें आस्ट्रिया को छोड़ देंगी। मित्रराष्ट्रों के जितने भी बन्दी आस्ट्रिया के अधिकार में हों अविलम्ब मित्रराष्ट्रों को दे दिये जावेंगे। आस्ट्रिया की अधिकांश नौसेना (मित्रराष्ट्रों को) हस्तांतरित की जानी चाहिये। अन्य कई उपलब्धों ने आस्ट्रिया की पूर्ण पराजय पर सूक्ष्म रूप से बल दिया (**अर्थात् उसको पूर्ण पराजय निश्चित कर दी**)।

आस्ट्रिया और हंगरी का विघटन

इसी बीच आस्ट्रिया-हंगरी के विघटन की द्रुत प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। प्रत्येक सूचना के साथ द्विविध राजतन्त्र के सभी भागों से जनता के विद्रोहों के समाचार प्राप्त हो रहे थे। जैक-स्लावकों ने अपनी स्वतन्त्रता उद्घोषित करदी, नरेश को सिंहासनच्युत कर दिया और गणतन्त्र की घोषणा कर दी। हंगरी ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की और स्पष्टतः गणतन्त्र बनने के लिये तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। ऐसा जनप्रवाद था कि सम्राट् कार्ल ने सिंहासन त्याग दिया है। वह सिंहासन से उतार दिया गया और वह देश को छोड़ कर भाग गया है। सूचनायें इतनी असंबद्ध एवं परस्पर विरोधिनी थीं कि सत्य का पता लगाना कठिन था। स्पष्टतः वियना क्रांतिकारियों तथा समाजवादियों के अधिकार में आगया था तथा यह कहा जाता था कि आस्ट्रिया के जर्मन-भागों ने भी अपनी स्वतन्त्रता को उद्घोषित कर दिया था। प्राचीन साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था और कई नये राज्यों का विकास हो रहा था। राष्ट्रीय, प्रजातांत्रिक तथा समाजवादी शक्तियाँ मान्यता प्राप्ति के लिये तथा नियंत्रण के लिये संघर्ष कर रही थीं। चरम परिणति क्या होगी? वह कोई नहीं बता सकता था। चारों ओर अव्यवस्थापूर्ण असन्तोष छाया हुआ था। यह बात अनिश्चित थी कि हैप्सीवर्ग के राजवंश का अब भी अस्तित्व था अथवा नहीं। यदि यह वंश अब तक तिरोहित नहीं हो चुका था। यो यह निश्चित प्रतीत होता था कि यह पूर्णतः लुप्त हो जावेगा और अत्यन्त शीघ्र ही लुप्त हो जावेगा। इस घोर अव्यवस्था और उत्तेजना के अवारणीय प्रभावों में आगामी दिन अथवा घण्टे में क्या घटित होगा यह किसी को भी ज्ञात नहीं था।

हमारे समय के भयानक दु:खान्त नाटक का पाँचवाँ अंक अप्रत्याशित शीघ्रता से समाप्त हो रहा था और यवनिका पतन द्रुतवेग से हो रहा था। बलगेरिया, तुर्की तथा आस्ट्रिया-हंगरी युद्ध से पृथक् हो चुके थे। केवल जर्मन साम्राज्य ही (युद्ध कर रहा) था। अपने मित्रों द्वारा परित्यक्त स्वयं फ्रांस और बेलजियम के बाहर द्रुत-गति से खदेड़े जाते हुए तथा उसके देश के संभावित ही नहीं अपितु वास्तव में होने वाले आक्रमण के कारण वह ब्रेस्ट-लिटवस्क और चैट्यू-थियरे के समय से इतने अधिक परिवर्तित विश्व में क्या करेगा और क्या कर सकता था? भाग्य का लेख वृहत्तर, स्पष्टतर एवं भयानकतर होता जा रहा था। भयावह प्रतिशोध की वेला समीप आ रही थी।

जर्मनी शान्ति चाहता है

उसने शान्ति के लिए अत्यधिक प्रयत्न किया। एतदर्थ उसने राष्ट्रपति विलसन से उनके उस वर्ष के भाषणों में इंगित किये हुये भावी युग के उचित आधारों को स्वीकार करते हुए एवं अपने निरंकुश और सैनिक शासन की उन बुराइयों को, जो विदेशियों की आलोचना का विषय रहा था, दूर करके सुधारने का वचन देते हुए, शान्ति सम्मेलन बुलाने की प्रार्थना की। इन प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप वरसायी में मित्रराष्ट्रों तथा संयुक्त राज्य ने उन शर्तों को सविस्तार तैयार किया जिनके आधार पर वे युद्ध विराम संधि प्रदान करेंगे। ये शर्तें प्रधान सेनापति मार्शल फॉक द्वारा उसके द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जर्मन सरकार द्वारा भेजे हुए प्रतिनिधि मण्डल को सूचित की जानी थीं। शुक्रवार ८ नवम्बर को मार्शल फॉक से फ्रान्स में सैनलिस नामक स्थान पर रेल मार्ग पर चलने वाली कार में जर्मनी के युद्ध विराम प्रतिनिधि मंडल ने भेंट की जिसमें मार्शल फॉक ने युद्ध विराम की (पूर्व निश्चित) शर्तें पढ़कर उनको सुनाईं। उनको वहत्तर घण्टे का समय इस हेतु दिया गया कि वे अपने उच्चाधिकारियों से परामर्श कर लें तथा युद्ध विराम की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दें अथवा उसे अस्वीकार कर दें।

जर्मनी में क्रान्ति

इसी बीच में स्वयं जर्मनी में क्रान्ति प्रारम्भ हो गयी थी। गुरुवार ७ नवम्बर को कील में विद्रोह हो गया। विद्रोहियों ने कई युद्धपोतों पर अधिकार कर लिया और उन पर लाल झण्डे फहरा दिये गये। उस दिन तथा आगामी दिनों में कई नगरों में तथा कई राज्यों में ऐसे ही आन्दोलन हुये तथा यह तो ठीक प्रकार से [illegible] सकता था किस अंश तक प्रायः समाजवादियों की अधीनता में स्थानीय [illegible] क्रांतिकारी सरकारें घोषित की गयीं परन्तु हैमवर्ग, ब्रीमैन, टिलसिट [illegible] स्टैटगर्ट, ब्रंजविक, ववेरिया और अन्त में वर्लिन में ऐसी सरकारों की [illegible] वड़ी तेजी से ये समाचार चारों ओर फैल रहे थे, कि शासक नरेश [illegible] रहे थे अथवा सिंहासन च्युत किये जा रहे थे, श्रमिकों तथा सैनिकों [illegible] अथवा सोवियतें कितने ही स्थानों पर बनायी जा रही थीं और [illegible] रही थीं। ये माँगें की जा रही थीं कि कैजर को सिंहासन त्याग [illegible] गर्त के फटने के सभी उपक्रम हो रहे थे। भयावह झगड़ों के [illegible] विघटित हो रहा था और गत चार वर्षों की लगभग सर्वसम्मति [illegible] शिला पर विचूर्ण हो रही थी। जनता के मस्तिष्क में [illegible] के सैनिक एवं राजनीतिक नेताओं में अस्थिरता थी और [illegible]

शनिवार, नौ नवम्बर को लन्दन तथा पेरिस में बेतार का समाचार सुना गया जिसको सुनकर सारा संसार स्तब्ध रह गया। समाचार यह था कि जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय ने सिंहासन त्याग दिया है और उसके पुत्र युवराज फ्रेडरिक विलियम ने अपने सिंहासन के अधिकारों का परित्याग कर दिया है; समाजवादी इवर्ट चांसलर बना दिया गया है; और कि सर्व मताधिकार द्वारा शीघ्र ही जर्मन राष्ट्रीय सभा निर्वाचित की जावेगी और सभा इस बात का "अन्तिम निर्णय करेगी कि जर्मन राष्ट्र तथा इस साम्राज्य में आने की इच्छुक जातियों के भावी शासन का क्या स्वरूप होगा।"

सोमवार को प्रातःकाल अमरीका निवासियों को उठते ही सीटियाँ और घण्टों की ध्वनि सुनाई पड़ी जो यह प्रतिध्वनित कर रही थी कि जर्मनी की सरकार ने युद्ध विराम की शर्तों को स्वीकार कर लिया था और 'युद्ध समाप्त हो गया था।' उस दिन प्रातः ११ बजे पेरिस समय के अनुसार शत्रुता समाप्त हो जावेगी। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक प्रातःकालीन समाचार पत्रों को प्राप्त करके इस तथ्य का भी पता लगाया कि जर्मन सम्राट्, विलियम द्वितीय, जो ३० वर्ष तक संसार का सबल-तम नरेश रहा था, एक स्वचालित (कार) में बैठकर शरण के हेतु हालैंड को पलायन कर गया था।

अध्याय ३९

युद्ध की समाप्ति करके शान्ति स्थापित करना[1]

चार वर्ष तथा तीन मास से अधिक तक विश्व की विक्षोभकारी एवं घृणित अग्नि-परीक्षा होती रही थी। १९१४ में जिस प्रकार इसका प्रारम्भ अकस्मात् अप्रत्याशित रूप से हुआ था उसी प्रकार इसका अन्त भी अकस्मात् हुआ। अनिश्चय की वेदना, विपरीत आशाओं और निराशाओं की मानसिक पीड़ा, विभीपिका दैनिक तथा प्रति घण्टे की चिन्ता के गम्भीर भार, अवर्णनीय कष्ट और दु:ख की सर्वकालीन भावना का स्थान अब मित्र राष्ट्रों के विजय के उल्लास, सफलता के गौरव के गर्व और विजय करने वालों के प्रति कृतज्ञता ने ले लिया था।

हमारे समय के भयानक दु:खान्त नाटक का सबसे बुरा भाग तो समाप्त हो गया था और युद्ध के समाप्त हो जाने से प्रतिदिन न तो सहस्रों व्यक्ति ही मारे जाते थे और न प्रति घंटे नये नर संहार ही होते थे तथापि युद्ध के कारण हुए भीषण विनाश की सफाई, उस प्रकम्पन के पश्चात् संहार की नवीन व्यवस्था के लिये, जैसाकि स्पष्ट था, अधिक समय तथा धैर्य की आवश्यकता होगी जिसने विश्व के प्रत्येक भाग को प्रभावित किया था। मित्र राष्ट्रों ने विजय के विना सन्धि के सुझाव को ठुकरा दिया था क्योंकि उनके विचार में इसका अभिप्राय पराजय के साथ सन्धि से कम न होता। शान्ति के लिये विजय आवश्यक है युद्ध विराम संधि के पश्चात् तत्काल एक सम्पादक ने लिखा था, "विश्व की स्वतन्त्र जातियों की निर्णयात्मक विजय में युद्ध की समाप्ति हुई है—जिन आदर्शों के लिये वे लड़ी थीं उनके योग्य केवल यही अन्त हो सकता था और यही उनके द्वारा किये गये बलिदानों का प्रतिकार कर सकता था। केवल यही ऐसा अंत था जो पुरानी सभ्यता के ध्वंसावशेषों पर नवीन तथा श्रेष्टतर सभ्यता का निर्माण कर सकता था।"

---

1. Make the peace=संधि करना, युद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापित करना।

ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री, मि० एसक्विथ ने युद्ध के प्रारम्भ होते ही कहा था कि 'जब तक प्रशा का सैनिक प्राधान्य पूर्ण रूप से और अन्तिम रूप से नष्ट' नहीं कर दिया जाता है, तब तक इंङ्गलैंड अपनी तलवार को म्यान में नहीं रखेगा।" अन्ततोगत्वा वह उद्देश्य पूरा हो गया।

प्रशा के सैनिकवाद का विनाश

बिस्मार्क ने एक बार कहा था, "अपनी मृत्यु के बीस वर्ष पश्चात् मेरा विचार अपने शवाधार से इस हेतु उठने का है कि मैं यह देखूँ कि जर्मनी संसार के सम्मुख सम्मान पूर्वक खड़ा है अथवा नहीं।" बिस्मार्क की मृत्यु १८९८ में हुई थी। यदि वह १९१८ में पुनः जीवित हो जाती तो उसकी आयु होमर के आदर्शानुसार होती। वास्तव में अपनी मृत्यु से बहुत पहले उसे यह आभासित हो गया था कि क्या होगा। उसने सम्राट विलियम द्वितीय के विषय में कहा था, "वह तरुण पुरुष किसी दिन **अपनी योजनाएँ कार्यान्वित करेगा**[1]। वह इस कार्य को अनुचित समय पर करेगा और अपने देश को नष्ट कर देगा।" यह भविष्यवाणी अब शब्दशः पूरी हो गई थी। विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने से कुछ मास पूर्व एक प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसका मातृदश[2] (जर्मनी) में सोत्साह स्वागत हुआ था। इस पुस्तक का नाम था—**विश्व साम्राज्य अथवा पतन**। इसके लेखक बर्नहार्डी का कथन ठीक था। पतन ही होना था। इस पतन की मात्रा की ओर युद्ध-विराम संधि में संकेत किया गया था जिस पर जर्मनी ने ११ नवम्बर को हस्ताक्षर किये थे और जो विश्व शान्ति की दिशा मे प्रथम पग था।

बिस्मार्क की भविष्यवाणी

युद्ध विराम सन्धि

इस अभिलेख के प्रथम अनुच्छेद में भूमि तथा वायु में सामरिक क्रियाओं को युद्ध विराम संधि पर हस्ताक्षर होने के छः घंटे पश्चात् समाप्त कर देने का उपबन्ध रखा गया था। दूसरे अनुच्छेद में यह अनुबन्धित किया गया था कि बेलजियम फ्रांस, अलसेस-लारीन और लक्ष्मबर्ग में सेनाएँ अविलम्ब हटा ली जावेंगी और इसकी व्यवस्था इस प्रकार की जावेगी कि सेनाएँ चौदह दिनों के भीतर हट जावें। इस प्रकार से अभियुक्त क्षेत्रों पर मित्र राष्ट्रों तथा संयुक्त राज्य की सेनाओं का अधिकार हो जावेगा। इस अनुच्छेद का अधिक महत्व था क्योंकि इसमें अलसेस-लारीन के अभिक्रमण को भी जो कि ८ वर्ष पूर्व हुआ था और बेलजियम, लक्षेमबर्ग, तथा फ्रांस के अभिक्रमण को जो ४ वर्ष पूर्व हुआ साथ-साथ रखा गया था। दूसरे शब्दों में १८७१ में अलसेस-लारीन का जर्मनी द्वारा संयोजन अमान्य (सामरिक) कार्य था और मध्य वर्ती वर्षों में वह अमान्य ही रहा था। समय बीत गया था परन्तु उन खोये हुए प्रान्तों पर फ्रांस के अधिकारों में किंचित मात्र भी कमी नहीं आई थी।

इसके प्रमुख उपबन्ध

अन्य अनुच्छेदों में यह अनुबन्धित किया गया था कि जर्मनी को अच्छी दशा में अधिक युद्ध सामग्री समर्पित करनी चाहिये—५००० भारी सामरिक तोपें, २५०००

1. शाब्दिक अनुवाद होगा—अपने हाथ का चमत्कार दिखावेगा।
2. हिन्दी में पितृदेश प्रयुक्त नहीं होता है।

मशीनगनें, ३००० बम फेंकने के यन्त्र, १७०० वायुयान, ५००० रेलों के इंजिन, १५०,००० रेल मार्ग पर चलने वाली कारें, ५००० मोटर कारें, सभी जर्मन पनडुब्वियाँ तथा विविध प्रकार के जल के ऊपर चलने वाले ७४ युद्ध पोत।

जर्मन की सेनाओं को राइन नदी के पश्चिम की संपूर्ण भूमि खाली कर देनी चाहिए जिस पर तत्पश्चात् मित्र राष्ट्रों तथा संयुक्त राज्य की सेनाओं का अधिकार हो जावेगा। राइन नदी को मेन्स कावलेन्ज तथा कोलोग्न पर पार करने के पुल और उनके आस पास २० मील (३० किलोमीटर) के अर्द्ध-व्यास के भीतर की भूमि पर भी इन सेनाओं का अधिकार होगा। राइन नदी के पूर्व में हालैंड की सीमा से स्विटजरलैण्ड तक लगभग छः मील (चौड़ी) तटस्थ पट्टी होगी। जो सैनिक राइन के प्रान्त में रहेंगे उनका व्यय जर्मनी की सरकार को देना होगा। विराम-संधि के अन्य उपवन्धों के अनुसार जर्मनी को ब्रेस्ट-लिटोवस्क तथा बुखारेस्ट की संधियों को त्यागना था; जर्मनी के सद्धहस्त सैनिकों को उन प्रदेशों को अविलम्ब छोड़ना होगा जो पहले आस्ट्रिया-हंगरी, रूमानिया और तुर्की के भाग थे; पूर्वी अफ्रीका को खाली करना होगा, अपने प्रजा-जनों को, जिन्हें मित्रराष्ट्रों ने शिविरों में वन्दी कर रखा है, छुड़ाने के अधिकार के विना उसको समस्त मित्रराष्ट्रीय युद्ध वन्दियों को लौटाना होगा। जर्मनी को उस सभी सुवर्ण को लौटाना होगा जो उसने रूस तथा रूमानिया से लिया था और वह सुवर्ण उसको मित्रराष्ट्रों को हस्तांरित करना होगा जोकि उनके पास संधिपत्र पर हस्ताक्षर होने तक न्यस्त रहेगा। युद्ध-विराम तीस दिन तक चलेगा तथा उसके पश्चात् वढ़ाया भी जा सकता था। इन विविध उपवन्धों का यह उद्देश्य था कि जर्मनी सफलता की आशा से युद्ध को पुनः प्रारम्भ न कर सके।

युद्ध विराम सन्धि का कार्यान्वयन

११ नवम्वर की युद्ध-विराम संधि के उपवन्ध ऐसे थे। ज्यों ही वह संधि की गयी त्यों ही उसका कार्यान्वियन प्रारम्भ हो गया। १९ नवम्बर को मार्शल पेता फ्रांसीसी सेना का नेतृत्व करता हुआ लारीन की राजधानी मेट्स में जोकि राइन के पश्चिम में सवलतम दुर्ग था, प्रविष्ट हुआ। ४७ वर्षीय जर्मन शासन के पश्चात् वहाँ के निवासियों ने तिरंगे झण्डे का स्वागत करते हुये उत्साहपूर्वक उनका अभिनन्दन किया। २३ नवम्बर को स्ट्रैसवर्ग में फ्रांसीसी समय के अनुसार घड़ियाँ ठीक कर दी गयीं और मित्रराष्ट्रों के प्रधान सेनापति मार्शल फॉक ने उत्साह हर्षध्वनि के मध्य उस नगर में विजेता के रूप में प्रवेश किया। उचित अवसर आ जाने पर अलसेस निवासियों की भावना की इतनी स्पष्ट अभिव्यंजना हुई कि जर्मनी को भी उस स्थिति को स्वीकार करना पड़ा। जव फ्रांसीसियों के कॉमरसै वर्ने और विजैमवर्ग तथा अन्य अलसेसी नगर में प्रवेश के समय होने वाले स्वागत का समाचार कालोन गजट ने प्राप्त किया तव उसने **लिखा** "अच्छा हो कि हम अपने को धोका न दें। आँधी की प्रखरता के समान सम्पूर्ण अलसेस में जर्मनी के प्रति घृणा का प्रदर्शन हो रहा है। वास्तविक मुक्ति दाताओं के रूप में उत्साह की प्रमत्तता के साथ फ्रांसीसियों का स्वागत किया गया है।"

अलसेस तथा लारीन फ्रांसीसी सेना का स्वागत करते हैं

---

१. जैसे कि ऊपर लिखे जा चुके हैं।

इतिहास की सर्वाधिक नाटकीय चरमावस्थाओं में फ्रांस के लिए केवल अल-सेस और लारीन ही पुनः प्राप्त नहीं किये गये वरन् युद्ध-विराम संधि के अनुसार मित्रराष्ट्रों की सेनाओं को प्रशा के राइन प्रान्त तथा वार्ये किनारे और नदी को पार करने के प्रमुख स्थानों पर अधिकार करने का भी हक था।

प्रशा का राइन प्रान्त

तदनुसार अधिकार करने वाली तीन सेनायें आगे को वढ़ीं। अँग्रेजी सेना उत्तर की ओर वढ़ी और उसने कालोन में पड़ाव डाल दिया। अमरीकी सेना उसके दक्षिण की ओर वढ़ी और उसका मुख्य पड़ाव कॉवलेन्ज में रहा। फ्रांसीसी सेना अमरीकी सेना के दक्षिण में रही तथा उसका मुख्य पड़ाव मेयेन्स में रहा। अन्तिम जर्मन सैनिक राइन के उस ओर से हटा लिया गया और मित्रराष्ट्रों की सेना ने उस नदी को उपर्युक्त तीन स्थानों पर पार किया ताकि वे उन पुलों तथा समीपवर्ती भूक्षेत्र पर अधिकार कर सकें।

जिस समय यह विधिवत् कार्यवाही स्थल पर हो रही थी उसी समय हुए अति महत्त्वपूर्ण घटना समुद्र पर घटित हो रही थी। फोर्थ के खाड़ी के लगभग पचास मील पूर्व में १८ नवम्बर को जर्मनी के जहाजी बेड़े ने मित्रराष्ट्रों के जहाजी बेड़े के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। मित्रराष्ट्रों के लगभग चार सौ युद्ध पोतों ने इस आत्म-समर्पण के दृश्य को देखा जोकि छह मील दूर दो लम्बी पंक्तियों में खड़े हुए थे। इनके वीच में जर्मन जहाजों ने प्रवेश किया। इस विजय के समान पूर्ण विजयों का वर्णन नौ सैनिक इतिहास में बहुत कम मिलता है। संसार की द्वितीय नौ-सैनिक शक्ति विलियम द्वितीय और आधुनिक जर्मनी की गौरवपूर्ण कृति का अस्तित्व समाप्त हो गया था, उसके जहाजों को शत्रु की उपस्थिति में विवश होकर अपने झण्डे झुकाने पड़े तथा ब्रिटिश बन्दरगाह में स्थानबद्ध होना पड़ा। जर्मनी की नौ-सैनिक शक्ति समाप्त हो गयी थी तथा इस बात की कोई सम्भावना नही दीखती थी कि उसके पुनर्जीवित होने की कभी भी आज्ञा दी जावेगी जिससे वह विश्व-शांति को भंग कर सके। जर्मनी की नौसेना ने विजयोपहार तो बहुत कम प्राप्त किये थे परन्तु उसका आत्मसमर्पण पूर्ण था। (अव) वह ब्रिटिश समुद्र पर वन्दी थी। जलसेनाध्यक्ष बीटी ने जर्मनी के जलसेनाध्यक्ष वॉन राइटर को सूचित किया कि आज सायं काल जर्मनी का झण्डा झुका दिया जावेगा और विना आज्ञा के पुनः नहीं फहराया जावेगा।"

जर्मनी के नौ सैनिक जहाजी बेड़े का आत्मसमर्पण

सन्धि की समस्यायें

युद्ध विराम तो शत्रुता का निलंवन मात्र होता है। यह शान्ति की दिशा में प्रथम पग होता है तथापि इसके पश्चात् सर्वदा शान्ति होती है। युद्ध विराम सन्धि परिस्थितियों के दवाव के कारण सोचने के लिए स्वल्प समय मिलने से सम्पादित की जाती है तथापि स्थायी होने के लिए एवं ऐसे युद्ध के पश्चात् जिसने अपनी विनाशकारी सीमाओं से सारे संसार को लपेट लिया था सन्धि तभी की जा सकती है जवकि उस पर दीर्घकाल तक गम्भीरतापूर्वक विचार किया जावे। इसके लिए जल्दी नहीं की जा सकती है। तो भी यह अवश्य ही जल्दी से करनी पड़ती है क्योंकि जीवन की सामान्य कार्यवाहियों को शीघ्रता से पुनः प्रारम्भ करने की साधारण इच्छा होती है,

स्थायी संधि की शर्तें

तथा विलम्ब के कारण उन क्रान्तिकारी मनोभावों और इच्छाओं को भयोत्पादक विकास हो जाता है जोकि असंतोष और विघटन की शक्तियाँ होती हैं और युद्ध के द्वारा सर्वदा निर्मुक्त एव प्रवर्द्धित कर दी जाती हैं। संघर्ष के अनिश्चयों एवं संकटों के पश्चात् शान्ति के निश्चयों एवं आश्वासनों का आना आवश्यक है। साथ ही हथोड़े से लोहे को नवाकृति तभी प्रदान की जा सकती है जब कि वह तप्त हो। इसी प्रकार युद्ध के द्वारा कार्यान्वित किये जाने वाले परिवर्तनों को शीघ्रता से कार्यान्वित एवं वैधरूप प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि उसके पूर्व वे लोग जो उनको नापसन्द करते हों उनका विरोध एवं अवरोध करने की पर्याप्त शक्ति पुनः प्राप्त न कर सकें। अन्यथा लड़ने वालों के द्वारा जो कुछ जीता गया है वह सन्धि करने वालों के द्वारा खोया जा सकता है।

इस प्रकार ११ नवम्बर की युद्ध विराम संधि एवं जर्मनों को दुर्बल बनाने के लिए उसके तात्कालिक उपबन्धों के कार्यान्वियन, उनके जहाजी बेड़े के आत्म-समर्पण तथा उनकी भूमि पर आंशिक अधिकार करने के पश्चात् मानवों ने संधि के कठिन-तर कार्य को प्रारम्भ किया।

विचार करने पर यह कार्य कितना आश्चर्यजनक रूप से जटिल दीख पड़ा। जिन समस्याओं के समाधान की आवश्यकता थी उनकी विविधता एवं गम्भीरता वियना के सम्मेलन से कहीं अधिक थी। ये समस्यायें कुछ प्रमुख वर्गों की थीं जोकि परस्पर एक दूसरे के पूर्णतः पृथक् नहीं थे किन्तु असाधारण रूप से एक दूसरे से सम्बद्ध थे।

जर्मनी की समस्या

सर्वप्रमुख जर्मनी की समस्या थी। जो हानि उसने मित्रराष्ट्रों को पहुँचाई है उसके लिये उसको भू-क्षेत्र तथा युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में भुगतान करना होगा। बहुतों का विचार था कि यह न्यायोचित होगा कि उसे युद्ध का पूर्ण व्यय देना पड़े परन्तु यह प्रायः असम्भव था क्योंकि सम्पूर्ण राष्ट्रों ने युद्ध पर सम्भवतः दो सहस्र खरब डालर व्यय किये थे। परन्तु इस महान् भार का जो भाग जर्मनी वहन नहीं करेगा वह उन राष्ट्रों को वहन करना होगा जिनको उसने युद्ध करने पर विवश किया था और जिसके लिए वे स्वयं उत्तरदायी नहीं थे। उस युद्ध का व्यय जर्मनी को उतना ही देना चाहिए जितना कि वह मानव सामर्थ्य के अनुसार दे सकता था। परन्तु इस बात के निर्धारण में मानव विवरणात्मक कठिनाइयाँ सामने आयीं। एक अति-रिक्त कठिनाई यह थी कि जर्मन साम्राज्य के पतन के कारण जर्मनी में राजनीतिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी थी। अब तक होहैन्जोलर्न वंश का पलायित विलियम जिस नियंत्रण को लागू करता था उसके लिए प्रतिद्वन्द्वी दलों में संघर्ष हो रहा था।

जर्मनी पर समाज-वादियों का अधिकार

९ नवम्बर को जर्मनों के समक्ष युद्ध विराम की शर्तों के रखे जाने पर तथा उनके स्वीकार किये जाने के पूर्व साम्राज्यीय शासन के अन्तिम चांसलर राजकुमार मैक्सी मिलियन[1] ने यह उद्घोषित किया था कि कैजर ने सिंहासन त्यागने का दृढ़ विचार कर लिया था। उसी दिन समाजवादी यहूदी कर्ट ऐनसर की अध्यक्षता एवं व्यावहारिक अधिनायकत्व से म्यूनिख में बवेरिया के कैथोलिक राज्य के

1. Massimilian को हिन्दी में मैक्सी मिलियन भी लिख सकते है परंतु वह भाषा शास्त्र के नियमों से शुद्ध नहीं है। इसी प्रकार लक्जेमबर्ग के स्थान पर लक्षेमबर्ग अधिक शुद्ध है। —अनु०

गणतंत्र की घोषणा की गयी। उसी दिन बर्लिन के एक समाजवादी दल ने राजकुमार मैक्षी मिलियन से यह माँग की कि समाजवादी शासन की स्थापना की जाय। राजकुमार ने यह माँग स्वीकार कर ली और उसने अपने चान्सलर के पद को हिडल वर्ग के एक काठी बनाने वाले प्रमुख समाजवादी एबर्ट को हस्तांतरित कर दिया और एबर्ट ने चान्सलर के प्रासाद पर अविलम्ब अधिकार कर लिया। परन्तु वास्तविक शक्ति ऐबर्ट के हाथों में दीर्घकाल तक नहीं रह सकी क्योंकि रविवार १० नवम्बर को बर्लिन की अस्थायी सैनिक-श्रमिक परिषदों की महान् बैठक हुई। उन्होंने सम्राट् के संविधान को औपचारिक रूप से अस्वीकार कर दिया। नवीन जर्मनी के संविधान के निर्माण के हेतु राष्ट्रीय सभा के चुनाव तक उन परिषदों को एबर्ट द्वारा मान्यता प्रदान की गयी।

कई वर्षों से रायत्रस्टेग (संसद्) के लिए किये जाने वाले चुनावों में समाजवादी साम्राज्य के सभी दलों की अपेक्षा अधिक मत डालते थे। जिस प्रकार १९१७ में रूस में रोमानॉफ वंश के पतन के पश्चात् समाजवादियों ने सत्ता को हथिया लिया था उसी प्रकार उन्होंने भी शासन की बागडोर अपने हाथ

बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक समाजवादी

में ले ली। परन्तु रूस की भाँति जर्मनी में भी समाजवादी कई वर्गों में विभक्त थे। एबर्ट तथा शीडमैन के नेतृत्व को मानने वाले बहुसंख्यक समाजवादियों ने सम्राट् की सरकार के कार्यों का युद्ध काल में समर्थन किया था। हस्स के नेतृत्व में कार्य करने वाले अल्पसंख्यक समाजवादियों ने उनका विरोध किया था। कुछ समय के लिये नवनिर्मित **एबर्ट-हस्स शासन** में दोनों वर्गों का एकीकरण हो गया। यह शासन क्रान्ति की उपज थी और सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये कार्य करने का दावा करने पर भी वास्तव में बर्लिन की स्थानीय परिषद (सोवियत) ने उसका चुनाव किया था। यह चुनाव तब तक के लिये हुआ था जब तक सम्पूर्ण जर्मनी में परिषदें (सोवियतें) न बन जावें तथा वे एक संघ में एकीकृत न हो जावें।

इस क्रान्तिकारी शासन का कार्यकाल अनिश्चित एवं झंझावातीय होना था समाजवाद का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि उत्पादन के साधन अर्थात् कारखाने, और भूमि पर राज्य का स्वामित्व होना चाहिए तथा संचालन भी राज्य द्वारा होना चाहिए और व्यक्तिगत उत्पादन की वर्तमान प्रणाली समाप्त हो जानी चाहिये। परन्तु यह बात प्रारम्भ से ही स्पष्ट थी कि नवीन शासन के सदस्यों में अधिक सदस्य ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये उस समय को उपयुक्त नहीं समझते थे और यदि इसका प्रयत्न किया गया तो इसमें असफलता मिलेगी और इसकी प्रतिक्रिया होगी। **उनका विचार था** कि जनता अविलम्ब शान्ति चाहती थी और व्यक्तिगत सम्पत्ति के काल को सामाजिक सम्पत्ति के काल में परिवर्तन करने के लिये उचित अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये।

इसके प्रतिकूल अल्पसंख्यक समाजवादी इस बात के पक्ष में प्रतीत होते थे कि सामाजीकरण (अथवा राष्ट्रीयकरण) पहले हो और शान्ति

कार्ल लिबिकनेट तथा स्पार्टा साइड्स

(अथवा सन्धि) उसके पश्चात् हो। समाजवादियों का एक उग्रदल भी था जिसको स्पार्टा साइड्स कहते थे। इसका नेतृत्व कार्ल लिबिक्नेट तथा रोजा लक्ष्मवर्ग करते थे जिनकी शान्ति या सन्धि में कोई अभिरुचि नहीं थी प्रत्युत वे देश के मध्यमवर्ग को राजनीतिक

अधिकारों से वंचित करना तथा श्रमिकवर्ग का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना चाहते थे। वे उन्हीं विचारों और प्रणालियों का प्रतिनिधित्व करते थे जिनका प्रतिनिधित्व रूस में बॉलशेविकी करते थे अर्थात् एक वर्ग का शासन, लोकतन्त्र की अमान्यता, पूर्ण समाजवाद की अविलम्ब पुनः स्थापना के लिये शक्ति का प्रयोग।

क्रान्ति के एक मास पश्चात् तक ऍवर्ट-हस्स शासन अपनी दुर्बलता के लिये मुख्य रूप से कुख्यात था। यद्यपि यह पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता था तथापि स्वयं वर्लिन में इसकी आज्ञाओं का अपूर्ण रूप से पालन होता था। इसी वीच में **स्पार्टा साइड्स** शक्ति पूर्वक सत्ता हस्तगत करने के लिये तैयारी कर रहे थे। प्रायः सम्पूर्ण दिसम्बर मास में तथा जनवरी के प्रारम्भ में राजधानी में वार-वार विद्रोह-झगड़े और प्रचुर रक्त-पात होते रहे। **स्पार्टा साइड्स** असफल रहे तथा डा० लिविकनॅट और रोजा लक्षेमवर्ग एवं वहुतसों की गणना मृतकों में की गई। कम से कम उस समय जर्मनी में बॉलशेविकवाद अवरुद्ध हो गया।

संविधान सभा का निर्वाचन

अव ऍवर्ट-शीडमैन दल वीस वर्ष अथवा इससे अधिक आयु के स्त्री-पुरुषों द्वारा एक सभा के निर्वाचन के लिये अपनी योजना को कार्यान्वित करने में अग्रसर हुआ। इस सभा को जर्मनी के लिये नया संविधान वनाना था। इन निर्वाचनों के परिणामस्वरूप कोई भी वहुमतीय दल निर्वाचित नहीं हुआ। यद्यपि समाजवादियों ने अन्य दलों के अपेक्षा अधिक सदस्य चुने तथापि पूरी सभा में उनको अल्पमत प्राप्त था। वे विशुद्ध समाजवादी संविधान नहीं वना सकते थे। परन्तु **लोकतन्त्रीय दल** से मिलकर वे व्यवस्था कर सकते थे।

वीमर-सभा

जर्मनी के उदारवाद और साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध, गेटे, शिलर, हर्डर तथा वीलॅण्ड के निवास स्थान छोटे से नगर **वीमर** में **संविधान सभा** की वैठक हुई। एक अस्थायी संविधान तत्काल पारित किया गया और ११ फरवरी १९१९ को फ्रैडरिक ऍवर्ट जर्मन राज्य का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया। चौदह सदस्यों के मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई जिसमें सात सदस्य समाजवादी थे और सात सदस्य अन्य दलों के थे। तव सभा ने जर्मनी के लिये स्थायी संविधान का विस्तारपूर्वक निर्माण करने का मुख्य कार्य प्रारम्भ किया। इसके विचार-विमर्श का क्या परिणाम होगा ? यह कोई नहीं वता सकता था। इससे भी अधिक गंभीर यह संदेह था कि **वीमर-सभा** संविधान वना भी सकेगी अथवा नहीं ? संविधान वनाने के पश्चात् वह इसको जर्मनी में लागू कर सकेगी अथवा नहीं ? क्या राष्ट्रीय उथल-पुथल शांत हो जावेगी अथवा **स्पार्टा-साइड्स**, जो कि बॉलशेविकी-ढंग के उग्र क्रान्तिकारी थे अन्ततोगत्वा शक्ति प्रयोग करने की विधियों से **वीमर-सभा** को हटाकर राज्य पर नियन्त्रण हस्तगत करके **बॉलशेविक वाद** स्थापित कर देंगे ? इन प्रश्नों का उत्तर केवल समय ही दे सकता था।

यूरोपीय पुनर्निर्माण

यद्यपि जर्मनी की पुनर्व्यवस्था महत्त्वपूर्ण थी, तथापि वह उस कार्यावली का एक कार्य था जो कि विश्व में एक वार पुनः सापेक्षिक शांति स्थापित करने के लिये करनी होगी। यूरोपीय पुनर्निर्माण की सामान्य समस्या के असंख्य पहलू (पक्ष),

सामने आये। वह असंख्य कठिनाइयों से ओतप्रोत थी तथा उसने विविध आशायें और निराशायें उत्पन्न कीं। विश्वव्यापी युद्ध के द्वारा उत्पन्न किये गये प्रश्नों और पुनः स्थापित परिवर्तनों की केवल सूची ही विस्तृत होगी एवं हतोत्साहित करने वाली होगी। अव्यवस्था से व्यवस्था के निर्माण में अत्यधिक श्रम करना होगा तथा उसके लिये बुद्धि और सद्भावना की वृहत् निधि की आवश्यकता होगी। इन प्रश्नों का पर्याप्त सर्वेक्षण तो यहाँ पर असंभव है परन्तु उनमें से दो एक पर यहाँ विचार किया जा सकता है।

भावी राष्ट्रीय सीमायें

उदाहरणार्थ राष्ट्रीय सीमाओं का प्रश्न ले लीजिये। थोड़ीसी सीमायें ही ठीक वैसी होंगी जैसी कि वे पहले थीं। अटलांटिक महासागर से यूराल पर्वत तक, आर्क-जल से सालोनिका तक घटनाओं ने राजनीतिक परिवर्तन कर दिये थे और व्यवहारतः उनको मान्यता मिलनी चाहिये। युद्ध की रासायनिक प्रक्रिया से कुछ थोड़े से राष्ट्र ही अपरिवर्तित निकल सकेंगे। उदाहरणतः स्पेन, पुर्तगाल, स्विटजरलैण्ड, नार्वे और संभवतः स्वीडन (अपरिवर्तित रह सकें)। परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य कौनसा यूरोपीय राज्य ऐसा था जो भावी पुनर्व्यवस्था में अपरिवर्तित रह सके? ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी इटली, रूस, सर्बिया, यूनान, रूमानिया, बलगेरिया, अलबानिया, तथा तुर्की साम्राज्य की सीमायें पुनः निर्मित की जानी चाहिये क्योंकि भूतकालीन विभाजक रेखायें तिरोहित हो चुकी थीं। बेलजियम, हालैण्ड, लक्षेमबर्ग तथा डैनमार्क की सीमायें संभवतः संशोधित होनी चाहिये। एक बात निश्चित थी। यूरोप का मानचित्र जिससे हम बचपन से परिचित थे सदा के लिये परित्यक्त वस्तु संग्रहालय में स्थान प्राप्त कर चुका था और अब हमको शीघ्र ही एक नये विलक्षण मानचित्र से परिचित होने के लिये प्रस्तुत होना चाहिये था **(अर्थात् यूरोप का पुराना मानचित्र अब पूर्णतः नये प्रकार से खींचा जावेगा)।**

हमको नवीन यूरोप से ही नहीं अपितु नवीन अफ्रीका, नवीन एशिया और नवीन प्रशांत महासागर से भी परिचित हो जाना चाहिये क्योंकि जर्मन उपनिवेश तथा तुर्की साम्राज्य के विशाल भाग दूसरों को हस्तांतरित होने थे।

वर्तमान प्रादेशिक समस्याएं

१९१९ में जो प्रादेशिक समस्यायें विश्व के सम्मुख थीं वे उन समस्याओं से अधिक व्यापक थीं जो एक सौ वर्ष पूर्व नैपोलियन के पतन के समय थीं। ये समस्यायें अधिकांशतः रूस, आस्ट्रिया-हंगरी और तुर्की के तीन महान् साम्राज्यों के विनाश तथा चौथे जर्मन साम्राज्य की पराजय एवं उसके बाईस राजाओं के सिंहासन च्युत होने के कारण उत्पन्न हुई थीं। इसी मध्य इस भीषण एवं विशाल विनाश में से सर्बिया गौरव सहित बाहर आया था। उसका राष्ट्रीय एकीकरण इस समय पूर्वापेक्षा सुदृढ़तर था और उसका प्रादेशिक क्षेत्र विस्तृत होना था। इसमें संदेह है कि विश्व के इतिहास में इससे अधिक व्यंग्यपूर्ण कोई अन्य पृष्ठ होगा।

१९१४ में रूस, आस्ट्रिया-हंगरी जर्मनी और तुर्की ने मानचित्र में अधिक स्थान प्राप्त कर रखा था। रूस के अधीन ८,४००,००० वर्गमील अर्थात् विश्व के धरातल का सातवाँ भाग था। आस्ट्रिया-हंगरी के अधीन २६१,००० वर्गमील, जर्मनी के अधीन २०८,००० वर्गमील और तुर्की के अधीन ७१०,००० वर्गमील

अर्थात् जर्मनी का साढ़े तीन गुना भूक्षेत्र था। (इस प्रकार इनके अधीन) कुल मिलाकर ९,५७९,००० वर्गमील अथवा अलास्का रहित संयुक्त राज्य के महाद्वीप क्षेत्र का तिगुना क्षेत्र था जिसकी जनसंख्या दो सहस्र पाँच सौ लाख थी। नैपोलियन के युद्धों के परिणामस्वरूप वियना के सम्मेलन को एक लघु भूक्षेत्र एवं तीन सौ बीस लाख जनसंख्या की ही व्यवस्था करनी थी। ये क्षेत्र थे : वारसा की डची जो कि पहले के पोलैण्ड का एक भाग था, राइन नदी के बायें किनारे पर स्थित जर्मनी के भाग तथा इटली का प्रायद्वीप।

कुल मिलाकर ९,०००,००० वर्गमील से अधिक के भूक्षेत्र सीमाओं के विषय में महायुद्ध के अन्त में कोई कुछ नहीं कह सकता था। इस भूक्षेत्र की जनसंख्या ढाई खरब थी और इसकी सीमायें युद्धाग्नि ने भस्मसात कर दी थीं। उनके स्थान पर क्या रखा जावे ? यह देखना शेष था। यह बात निश्चित थी कि नवीन मानचित्र का निर्माण अत्यन्त विवादग्रस्त विषय सिद्ध होगा।

जैकोस्लाविया, यूगोस्लाविया तथा पोलैण्ड

एक बात के लिये विजेता वचनबद्ध थे अर्थात् जैकोस्लोवाकिया और यूगोस्लाविया नामक दो नवीन राज्यों को मान्यता प्रदान करना तथा एक प्राचीन राज्य पोलैण्ड की पुनः स्थापना करना। इनमें से प्रथम राज्य में वे प्रदेश सम्मिलित होंगे जो पहले आस्ट्रिया-हंगरी में थे; द्वितीय राज्य में सर्बिया, मॉण्टीनीग्रो तथा आस्ट्रिया-हंगरी के (कुछ) प्रदेश सम्मिलित होंगे; तृतीय राज्य में वे प्रदेश सम्मिलित होंगे जो एक शती से अधिक काल तक रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया द्वारा शासित होते रहे थे।

युद्ध के द्वारा उत्पन्न की गयी कुछ प्रमुख समस्यायें ये थीं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी थीं जिनका समाधान, यदि शांति स्थापित करनी हो तो, शीघ्रता से किया जाना चाहिए। कुछ समस्यायें जटिल थीं, कुछ अस्पष्ट थीं किन्तु सभी समस्यायें तीव्र भावनायें जागरित करने वाली थीं। ऐसी संभावना नहीं थी कि उनको प्रेमपूर्वक हल किया जा सके और उनके कारण कटुता उत्पन्न न हो। वे समस्यायें उन्हीं तथ्यों पर आधारित थीं जो कि विरोध और घृणा को उत्पन्न करते हैं तथापि किसी न किसी प्रकार उनका समाधान आवश्यक था।

विश्व की समस्यायें

जर्मनी के उपनिवेश, रूस, चीन इत्यादि

मित्रराष्ट्र केवल यही अनुभव नहीं करते थे कि युद्ध में जर्मनी के द्वारा किये गये विनाश के लिये उसको क्षतिपूर्ति करनी चाहिये, यूरोप की अधिकांश सीमायें पुनः निर्धारित की जानी चाहिए, कई नये राज्यों का निर्माण होना चाहिए और उनको प्रत्याभूति दी जानी चाहिए वरन् इन राज्यों के आर्थिक विकास का भी आश्वासन दिया जाना चाहिए। पहले के जर्मन उपनिवेशों और तुर्की साम्राज्य से पृथक् किये गये विशाल प्रदेश आरमीनिया, सीरिया, फिलस्तीन, मैसोपोटामिया, अर्गनैलीज, बास्फोरस और कुस्तुन्तुनिया की शांति, सुरक्षा, और सुशासन की व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। साथ ही

रूस, चीन और फारस का भविष्य भी संस्थाओं पर आधारित होना चाहिए। अन्यथा विश्व शान्ति वास्तव में अस्थायी होगी। इन देशों में संसार की एक तिहाई जनसंख्या निवास करती है। इस अत्यन्त अवैध युद्ध में केन्द्रीय शक्तियों ने अन्तर्राष्ट्रीय विधि को त्याग दिया था। उसका समग्ररूप में कष्टपूर्वक एवं परिश्रमपूर्वक पुनः निर्माण किया जाना चाहिए क्योंकि जब तक राष्ट्रों को अपने कर्तव्य और अधिकारों का ज्ञान नहीं होगा और जब तक वे उनका पालन नहीं करेंगे तथा दूसरों से पालन कराने का आग्रह नहीं करेंगे तब तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का आधार दृढ़ नहीं होगा और मानवता शक्ति एवं कपट की दया पर निर्भर रहेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि

संक्षेप में युद्धविराम के पश्चात् विश्व का जिस ओर भी सर्वेक्षण किया जाता उसी ओर ऐसे कंटकाकीर्ण प्रश्नों का दर्शन होता था जिनके समाधान की आवश्यकता थी। सर्वत्र सभी प्रकार की चिन्ताजनक समस्याओं की बहुलता थी और ऐसी भावनायें परिव्याप्त थीं जिनके कारण कठिनाइयों के शीघ्रता से निराकरण के शुभ लक्षण दृष्टि-गोचर नहीं हो रहे थे। युद्ध के चार वर्षों में बहुतसी कार्यवाहियाँ अपूर्ण रही थीं जो शान्ति के संस्थापकों के सामने प्रस्तुत थीं। इन्हीं कार्यवाहियों और समस्याओं के मध्य से उनको अपना मार्ग-निर्माण करना था। उनके सभी ओर विविध प्रकार के संकटों का अस्तित्व सम्भव था। विश्व की खाद्य-समस्या का समाधान (अर्थात संसार की भोजन-व्यवस्था करना) अत्यंत आवश्यक था और उसने भयावह तथा उग्ररूप धारण कर रखा था। उसके साधनों की उपलब्धि, यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य थी। विश्व के किसी भी देश के निवासियों का आर्थिक जीवन सामान्य अथवा स्वस्थ नहीं था। अधिकांश देशों का आर्थिक जीवन असामान्य, भग्न एवं अव्यवस्थित था। मूलभूत उद्योग, कृषि, उत्पादन व्यापार और वाणिज्य सभी को युद्ध ने अव्यवस्थित एवं क्षतिग्रस्त कर दिया था। श्रमिकों की अधिकांश संख्या उद्योग तथा वाणिज्य से निकल कर लड़ने वाले देशों की सेना में प्रविष्ट हो गयी थी। जिस समय अधिक भोजन की आवश्यकता थी उस समय उसका उत्पादन कम हो रहा था। मण्डियाँ विलुप्त अथवा परिवर्तित हो गयी थीं। युद्ध के अपरिहार्य दबाव के कारण उद्योग शनैः शनैः राज्य के अधिकाधिक नियंत्रण में आ गये थे और वे युद्ध की आवश्यकताओं को पूरा करने की ओर उन्मुख कर दिये गये थे। उद्योग निजी नियंत्रण से हटकर अधिकाधिक सार्वजनिक नियंत्रण में चले गये थे।

शान्ति-संस्थापकों के लिए तात्कालिक समस्याएँ

शांति के साथ लामबन्दी समाप्त हो जावेगी। लाखों मनुष्य अपने घर लौट आवेंगे और वे विभिन्न राष्ट्रों के आर्थिक-जीवन में पुनः अपना स्थान खोजेंगे। दूसरे लाखों मनुष्य इस कारण बेकार हो जावेंगे कि युद्ध-सामग्री निर्माण करने वाले कारखानों, जलपोत निर्माणागरों तथा विविध युद्ध-सामग्री-सेवाओं को अपना उत्पादन जितनी शीघ्रता से हो सकेगा उतनी शीघ्रता से कम करना होगा। जो पुरुष युद्धस्थल को चले गये थे उनके स्थान पर बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियाँ नियुक्त कर दी गयी थीं। अब इस प्रकार वैयक्तिक पुनर्व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए। जो कार्य शासनों को करते थे वे महान् थे। आर्थिक जगत में

लामबन्दी की समाप्ति तथा आर्थिक संसार

युद्ध के स्तर से शांति के स्तर पर जो परिवर्तन हो वह इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि गत चार वर्षों के लम्बे और निराशपूर्ण सैनिक संघर्ष के स्थान पर सामान्य औद्योगिक संघर्ष न प्रारम्भ हो जावे। पूंजीपतियों और श्रमिकों के सम्बन्ध, जो सदा कोमल तथा असमन्यवशील होते हैं, इस समय अन्य समयों की अपेक्षा अधिक दुखदायी हो सकते थे। इन बहुसंख्यक आर्थिक समस्याओं का अस्तित्व तथा उनकी तात्कालिक प्रकृति विभिन्न देशों के शासनों के भार को अत्यधिक बढ़ा देंगे और वह भी ऐसे समय पर जबकि महत्तम विविधता एवं गम्भीरता के अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर उनका अवधान केन्द्रित होगा और उनकी योग्यता की सर्वाधिक परीक्षा होगी। परन्तु जनता का यह विश्वास था कि यह जनता का युद्ध था और जनसाधारण के आन्तरिक हितों को ध्यान में रखते हुए ही शासनों की विदेशी नीतियाँ निर्धारित की जानी चाहिए। आन्तरिक तथा वाह्य मामलों को पृथक भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता है और न उनको पृथक कम से तय ही किया जा सकता है। वे परस्पर संवद्ध थे और शासनों के कार्यक्रमों में दो प्रकार के हितों का ध्यान रखा जाना चाहिए। वहुसंख्यक जनता के हितों का तथा राष्ट्र परिवार के सदस्यों के रूप में एवं समग्र रूप में देशों के हितों का ध्यान रखकर ही शासनों को कार्यक्रम बनाने चाहिए। व्यवहार में यह सिद्ध हो सकता है कि इतिहास के इतने विक्षुब्ध और गम्भीर काल में राजनीतिज्ञों के प्रवर्द्धित उत्तरदायित्व मानवीय शक्तियों का अतिक्रमण कर जावें और उनके आन्तरिक तथा वैदेशिक कार्यों के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी उपलब्धियाँ जनता की आशाओं की पूर्ति न कर सकें।

आन्तरिक तथा बाह्य मामलों का पारस्परिक सम्बन्ध

इसकी संभावना इस कारण और भी अधिक बढ़ गयी थी कि असंयत वक्ताओं और लेखकों ने अनियन्त्रित आशाओं को निर्विवाद रूप से जागरित कर दिया था क्योंकि पुनर्निर्माण के ऐसे कार्यक्रम बहुलता से प्रस्तुत किये गये थे जो निश्चित एवं मूर्त सुधारकों के द्वारा, यदि कभी वे पूरे किये जा सकते हों तो दशकों में नहीं तो कम से कम वर्षों में सम्पादित किये जा सकते थे। विरोधी सम्मतियाँ भी बहुत थीं किन्तु वे सभी अपने को जनता की प्रामाणिक आवाज उद्घोषित करती थी। तथापि वे प्रायः विशिष्ट वर्गों की आवाजें जान पड़ती थीं। लोकतन्त्र तथा उर्वर प्रकाशन (प्रेस) के युग की अनिवार्य सम्मतिदाताओं की बहुलता में अत्यधिक अनिश्चय एवं भावी निराशा के बीज अन्तर्निहित थे। परन्तु किसी न किसी प्रकार समस्या सुलझानी तो थी ही।

राष्ट्र संघ

युद्ध काल में जिन विचारों पर विवाद हुआ था उनमें से एक विचार अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का था। इसके उद्देश्य और अधिकार इस प्रकार के घृणित संकटों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए होनी चाहिये जोकि संसार को नष्ट एवं निर्जन कर रहा था और जिसके पश्चात् अनिवार्यतः दुःख और ऋण की भारी क्रूर उपलब्धि कई वर्षों तक विश्व को इसके उत्तराधिकार के रूप में होनी थी। राष्ट्रों का पुराना संगठन अथवा जैसा कि समालोचन कहना अधिक अच्छा समझते थे, असंगठन पूर्णतः टूट गया था और पूर्णतः श्रेयहीन हो गया था। उसको सदा के लिये त्याग

इसकी युद्ध को रोकना चाहिए और शान्ति बनाये रखनी चाहिये

देना चाहिए। झंझावात (अर्थात् युद्ध) की समाप्ति के पश्चात् उसकी पुनः स्थापना के सभी प्रयत्नों को असफल कर देना चाहिये। राष्ट्रों को अपनी पुरानी आदतों और पद्धतियों को पुनः अपनाने से रोकना चाहिए। इन पद्धतियों और आदतों ने दिवाला निकाल दिया था। पुरानी कूटनीति का स्थान नई कूटनीति को लेना चाहिए। पुरानी कूटनीति अपनी मित्रताओं, जो प्रायः गुप्त होती थीं, चालों तथा जनता के प्रति सामान्य उत्तरदायित्वहीनता के साथ समाप्त हो जानी चाहिए। यह कूटनीति जनता के भाग्य का नियन्त्रण का भार अपने ऊपर (अपने आप) ले लेती थी। नवीन कूटनीति स्पष्ट, छल-कपट रहित होनी चाहिये, उसका उद्देश्य घृणाओं, प्रतिस्पर्धाओं को समाप्त करना तथा राष्ट्रों में मैत्री भाव और सहयोग की भावना का पुनस्थापन एवं प्रोत्साहन होना चाहिये। विशेषतः युद्ध को अवैध कर देना चाहिए। यह शब्द-समूह प्रचलित हो गया था कि 'यह युद्ध युद्ध को समाप्त करने के लिये' था। उसी प्रकार ये शब्द भी प्रचलित हो गये थे 'पुनः कभी नहीं।' दोनों शब्द समूह मानव जाति के इस विस्तृत कालीन अभिशाप को समाप्त करने के दृढ़ विचार की अभिव्यंजना करते थे।

शान्ति स्थापना के लिये संघ के लिये जनता की माँग

फ्रांस, इंगलैंड तथा अमरीका में इस अमर्षपूर्ण एवं भावनापूर्ण दृढ़ संकल्प को बहुत से व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त हुआ। इसका उद्देश्य भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयों को सुलझाने की पूर्वापेक्षा सुन्दरतर रीति (उपाय) को खोजना था। उन देशों में संस्थाओं की स्थापना की गयी जिनका उद्देश्य समाज के ऐसे संगठन की संभावना एवं औचित्य के विषय में जनमत जागरित करना था जो मानव जाति के हितों की रक्षा करे। और मानव जाति की अन्तर्भावना (अन्तःकरण) को अभिव्यक्त करे। संयुक्त राज्य में जून १९०५ में फिलाडलफिया में स्वतन्त्र कक्ष में शान्ति की स्थापना के हेतु संघ की स्थापना की गयी। इसके सभापति थे संयुक्त राज्य के भूतपूर्व राष्ट्रपति टाफ्ट। अगली वर्ष राष्ट्रपति ने अपनी यह सम्मति प्रकट की, "जब वर्तमान महायुद्ध समाप्त हो जावेगा, तब अमरीका का यह कर्तव्य होगा कि वह विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ शान्ति बनाये रखने के लिये किसी प्रकार के संघ में सम्मिलित हो।" यह विचार अमरीकी जनता की दीर्घकालीन इच्छाओं से भली भाँति साम्य रखता था जैसा कि हेग के सम्मेलन में उसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण रीति से सुलझाने के उत्साहपूर्ण समर्थन से प्रकट होता था तथा उसके द्वारा विवाचन के सिद्धान्त को बहुधा दी जाने वाली स्वीकृति से अभिव्यंजित होता था।

एक कार्यकारी संघ-ठन की आवश्यकता

परन्तु वह राष्ट्रसंघ, जो युद्ध को रोक सके अथवा उसकी सम्भावना को कम कर सके, इच्छा मात्र नहीं रह सकता था। इसका एक निश्चित संगठन होना चाहिये। उसकी शक्तियाँ तथा दायित्व निश्चित होने चाहिये तथा अपने उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसके कार्यालय और कार्यकर्त्ता (यन्त्र) होने चाहिए। सरलता से यह घटित हो सकता था कि जब इस इच्छा को निश्चित संस्था के मूर्त रूप में परिणत करने का प्रयत्न किया जावे तब गंभीर तथा अलंघ्य कठिनाइयाँ हो

जावें। इस इच्छा की पूर्ति के व्यावहारिक साधनों पर जब दो व्यक्ति परस्पर सहमत नहीं होते हैं तब दो राष्ट्रों की तो बात ही क्या है। संविधान की आकाँक्षा एक बात थी; उसका प्रारूप तैयार करना नितान्त भिन्न बात थी और अपेक्षाकृत कठिन थी और उस प्रारूप को उनसे स्वीकार कराना और भी अधिक कठिन था जिनके द्वारा वह माना जावेगा। इस (शुभ) कार्य में उन आलोचनाहीन एवं उत्साहपूर्ण समर्थकों से कोई भी सहायता नहीं मिलेगी जिन्होंने ऐसे लेख लिखे तथा भाषण दिये थे, मानो कि कवियों और दार्शनिकों के युगयुगान्तर के स्वप्नों को साकार करने तथा विश्व में सबके लिए सद्भावना और शान्ति की स्थापना करने लिये केवल एक राष्ट्रसंघ की ही आवश्यकता थी। प्रचुर तथा अनवरुद्ध भावनावाद, जो सुमधुर शब्दों में अभिव्यक्त किया गया था, इस दिशा में अधिक सहायक सिद्ध नहीं होगा प्रत्युत, उससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हो सकती थी।

नवम्बर १९१८ में शत्रुता के निलंबन से सामान्य परिस्थिति में इस प्रकार के कुछ तत्वों की अभिव्यक्ति हुई थी। एक महान् एवं भयंकर संकट से मानवता बाल-बाल बची थी। मानवता गंभीर एवं निराशपूर्ण परिस्थितियों से गुजरी थी; वह दीर्घकाल तक असफलता एवं दुर्भाग्य का स्पर्श करती रही थी निरंकुशता ने विश्व के नियन्त्रण के लिये स्वतन्त्रता को ललकारा था और निरंकुशता की पराजय हुई थी। जिन राजवंशों ने शताब्दियों से शासन किया था और संसार को भयभीत कर रखा था वे प्रतिशोध की समीर के सम्मुख भूसे की भाँति तितर-बितर हो गए थे। होहैंजोलर्न, हैप्सबर्ग तथा रौमनाफ वंश के सिंहासन समाप्त हो गए थे तथा उनके आश्रित छोटे-छोटे राजा और राजकुमार छिपकर भाग गये थे। उनको स्विटजरलैण्ड तक सकुशल भाग जाने की ही प्रसन्नता थी। सम्पूर्ण मध्य तथा पूर्वी यूरोप में रातभर में ही राजतन्त्र गणतन्त्रों में परिवर्तित हो गये थे। निरंकुशतन्त्रों के स्थान पर लोकतन्त्र स्थापित हो गये थे। जिन लोगों को अपने पूर्व अनुभव अथवा प्रशिक्षण के आधार पर स्वशासन करने की आदत नहीं थी उन्हें विवश होकर अपने आप शासन करना पड़ रहा था अथवा अत्याचार और कुशासन के नवीन रूपों को स्वीकार करना पड़ रहा था। स्वनियुक्त उग्रवादियों को अधिनायकत्व आन्तरिक सुख और वैदेशिक शान्ति के लिए उतने ही विनाशकारी सिद्ध हो सकते थे जितने कि दैवी अधिकार प्राप्त नरेशों के अधिनायकत्व सिद्ध हुए। राष्ट्रीय, जातीय, सामाजिक तथा आर्थिक प्रश्नों का सभी दिशाओं में प्राचुर्य था।

इस प्रकार के विश्व में जिन मित्र राष्ट्रों ने युद्ध जीता था वे उस संधि की शर्तों पर विचार विमर्श करने एवं उनको निर्धारित करने के लिये बैठक करने की तैयारी करने लगे जिसको वे अपने पराजित शत्रु के समक्ष प्रस्तुत करेंगे। उन शर्तों पर परस्पर सहमति हो जाने पर वे उन्हें शत्रु की स्वीकृति के लिये भेजेंगे। युद्ध तभी समाप्त हुआ माना जा सकता था जब संधियाँ हो जावें और उनको अनुसमर्थित कर दिया जावे। केवल तभी पुनर्निर्माण का कार्य गंभीरतापूर्वक प्रारम्भ किया जा सकता था।

शान्ति सम्मेलन के स्थान के लिये फ्रांस की राजधानी को चुना गया। पैरिस के सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन १७ जनवरी १९१९ को विदेश मन्त्रालय में हुआ। इस औपचारिक बैठक का आयोजन मित्रराष्ट्रों की सर्वोच्च युद्ध परिषद् ने तथा पाँच महाशक्तियों के प्रतिनिधियों ने किया था जिन्होंने अन्य बातों

पैरिस का शांति सम्मेलन

प्रतिनिधि

के साथ यह भी निश्चित कर लिया था कि सम्मेलन में प्रत्येक राज्य के कितने प्रतिनिधि होंगे। संयुक्त राज्य, ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रांस, इटली और जापान (प्रत्येक) के पाँच-पाँच प्रतिनिधि होंगे। साथ ही ब्रिटिश स्वशासित औपनिवेशिक राज्य (Dominions) तथा भारत के प्रतिनिधि भी रहेंगे—आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, और भारत के दो-दो प्रतिनिधि होंगे और न्यूजीलैंड का एक प्रतिनिधि होगा। ब्राजील तीन प्रतिनिधि तथा बैलजियम, चीन, यूनान, पोलैण्ड, पुर्तगाल, जैकोस्लावक गणतन्त्र, रूमानिया और सर्बिया दो दो प्रतिनिधि भेजेंगे। मॉण्टीनीग्रो, स्याम, क्यूबा, गौटीमाला, हेटी, हौण्ड्रास, लाइबीरिया, निकारागुआ, पनामा, बॉलिविया, ईक्वेडर, पेरू, और यूरूगुआई का एक-एक प्रतिनिधि होगा। इस प्रकार लगभग सत्तर सदस्यों की सभा होगी। यद्यपि वृहत्तर राज्यों को वृहत्तर प्रतिनिधित्व मिला था तथापि प्रत्येक राज्य को केवल एक मताधिकार प्राप्त था। बेलजियम तथा सर्बिया ने आदि से अन्त तक युद्ध किया था और उन्होंने लगातार क्षति उठाई थी। अब उनको भी केवल दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिला था। इसके प्रतिकूल उस ब्राजील को तीन प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया था जिसने किंचित् मात्र भी युद्ध नहीं किया था। अस्तु बेलजियम तथा सर्बिया के विरोध के कारण प्रतिनिधियों का यह प्रारंभिक वितरण प्रायः अविलम्ब परिवर्तित कर दिया गया। बेलजियम तथा सर्बिया को तत्काल तीन-तीन प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दे दिया गया और हैजाज के नवीन राज्य को दो प्रतिनिधियों का अधिकार दिया गया।

राष्ट्रपति विलसन ने सम्मेलन में स्वयं भाग लेने का निश्चय किया। इस प्रकार उसने शासन की पुरानी परिपाटी को त्याग दिया। अमरीकी प्रतिनिधिमण्डल में उसने राज्य-सचिव लैनसिंग, कर्नल एडवर्ड एम० हाउज, मि० हेनरीव्हाइट, और सेनापति टास्कर व्लिस को अपना सहयोगी नियुक्त किया। इंङ्गलैंड, फ्रांस और इटली के प्रधान मन्त्रियों तथा विदेश-मन्त्रियों ने भाग लिया। इनके नाम थे : लॉयड जार्ज, बाल्फर, क्लैमैन्क्यू, पिचौं, ऑरलैण्डो, और सौनिनो। कई ब्रिटिश स्वशासित राज्यों के प्रधान मन्त्रियों ने तथा सर्बिया, यूनान और रूमानिया के पैचिट, वैनीजिलास और ब्राटियानो नामक प्रधान मन्त्रियों ने इसमें भाग लिया। बेलजियम ने अपने विदेश-मन्त्रि हिमान्स, जैकोस्लावाकिया ने क्रैमर और पोलैंड ने डनोव्सकी को भेजा तथा अब बहुत से महत्त्वपूर्ण एवं विख्यात व्यक्ति प्रतिनिधियों में सम्मिलित थे।

प्रारम्भिक अधिवेशन

एक उल्लेखनीय भाषण के साथ फ्रांस के राष्ट्रपति पॉइन्करे ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। उसने कहा, "आज के दिन ४८ वर्ष पूर्व १८ जनवरी १८७१ को वरसाई के राज प्रासाद में जर्मनी की आक्रमणकारी सेना ने जर्मन साम्राज्य की उद्घोषणा की थी। इसको दो फ्रांसीसी प्रान्तों की चोरी से पवित्र किया गया था। अर्थात् उसमें दो फ्रांसीसी प्रांत बलात् सम्मिलित कर लिये गये थे। इस प्रकार प्रारम्भिक काल से ही यह अधिकार का निषेध था। इसके संस्थापकों के दोषों के कारण इसका आविर्भाव अन्याय से हुआ था। इसकी परिसमाप्ति लज्जा के साथ हो रही है।

आप उस बुराई को सुधारने के लिए जो इसने की है तथा उसकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए एकत्रित हुए है। विश्व का भविष्य आपके हाथों में है।

माग्शियर क्लेमैंक्यू सर्व सम्मति से इस सम्मेलन के सभापति चुने गये। तत्पश्चात् उन महान विषयों की जाँच करने के लिए तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिये समितियाँ बनायी गयीं जिनकी व्यवस्था आवश्यक होगी। युद्ध का उत्तरदायित्व, क्षति-पूर्ति, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विधान बंदरगाहों, जल मार्गों तथा रेल मार्गों का नियमन और राष्ट्र संघ के सम्बन्ध में समितियाँ बनायी गयीं। इनमें से अन्तिम समिति का सभापति राष्ट्रपति विलसन को बनाया गया क्योंकि उन्होंने यह उद्घोषणा की थी कि सम्मेलन के कार्य में उनकी प्रमुख अभिरुचि राष्ट्रसंघ पर केन्द्रित थी तथा सम्मेलन के उद्घाटन के पूर्व उन्होंने फ्रांस, इंगलैंड तथा इटली में अपने कई भाषणों में उसकी महत्ता पर बल दिया था। अस्तु, सम्मेलन को गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित करना था क्योंकि उसमें कई उलझन उत्पन्न करने वाली समस्यायें और प्रश्न अन्तर्निहित थे।

इसका संगठन

पैरिस का सम्मेलन

इस प्रकार १८ जनवरी १९१९ को औपचारिक रूप से उद्घाटित पैरिस के सम्मेलन का अधिवेशन वर्ष भर होता रहा। इसके समक्ष इतने विविध प्रकार के तथा इतने जटिल कार्य थे कि उनका कोई भी समाधान गम्भीर परिणामों से खाली नही था। अतः यदि बुद्धिमानी के साथ प्रगति की जाती तो वह अवश्य ही धीरे-धीरे ही की जा सकती थी। भविष्य के लिए इतने महत्त्वपूर्ण निर्णय अनिवार्य रूप से दीर्घकालीन एवं पूर्ण विचार-विमर्श के परिणाम होने चाहिए और होंगे अन्यथा वे विश्व को पूर्वापेक्षा और भी अधिक अव्यवस्थित स्थिति को पहुँचा देंगे। इस समस्या का सार था समय अर्थात् सुझाव को पूर्णता से तथा सावधानी से अध्ययन करने के लिए समय, परस्पर विरोधी योजनाओं और हितों में असंख्य सामंजस्यों की स्थापना के लिए समय, प्रतिदिन के वहुस से विचारों (मस्तिष्कों) के संघर्ष से एकतर्क-सम्मत समझौते के एक्य को सम्भव बनाने के लिए समय, तथा अज्ञात एवं अपरीक्षित (क्षेत्र) में मार्ग खोजने के लिये समय की आवश्यकता थी क्योंकि सम्मेलन को अपने आवश्यक कार्य के लिये अधिकांश के लिए अतीत से प्रकाश अथवा मार्ग दर्शन की सम्भावना नहीं थी। तथापि परिस्थिति की यही भीषण प्रतिकूलता थी क्योंकि समय ही एक ऐसी वस्तु थी जिसको विश्व बिना किसी हिचक के कम से कम मात्रा में प्रदान कर सकता था क्योंकि उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता यह थी कि पुनर्स्थापना के महान् कार्य को अविलंब प्रारम्भ किया जावे तथा यदि शरीर और आत्मा को साथ-साथ (अर्थात् जीवित) रखना था तो सामान्य कार्यवाहियाँ पुनः प्रारंभ की जानी चाहिए और उनकी गति भी तीव्रतर होनी चाहिए। दीर्घकालीन संघर्ष से विनष्ट एवं छिन्न-भिन्न यूरोपीय समाज जिसकी सब प्रकार से अकूत क्षति हुयी थी वह, यदि अपने पुनर्गठन पर शीघ्रता से अपना अवधान केन्द्रित न करे तो सुगमतापूर्वक और भी अधिक विघटित हो सकता था, और भौतिक

उसकी समस्याओं की जटिलता

तीव्रगति की आवश्यकता

भावनाओं से प्रेरित विरोधी वर्गों में विभाजित हो सकता था, अस्तु जो कुछ परिस्थितियाँ थीं उनके अनुसार सम्मेलन को प्रतिकूल दशाओं में कार्य करना पड़ा।

तथापि सामान्य स्वरूप की कुछ बातों का वर्णन किया जा सकता है। इनमें से एक बात यह थी कि जहां तक सम्मेलन की कार्य-पद्धति का सम्बंध था वहाँ तक इतिहास की अद्भुत पुनरावृत्ति हुई थी। विशेष रूप से अमरीका में वियना के सम्मेलन की लालित्यपूर्ण भाषा में कटु आलोचना की गयी थी तथा स्वयं राष्ट्रपति विलसन ने इस अमर्ष की अभिव्यंजना का नेतृत्व किया था। उन्होंने एक नवीन कूटनीति की माँग की थी जो सबके देखते हुए तथा स्पष्ट रूप से कार्यान्वित की जावे तथा 'प्रत्यक्ष रूप से किये गये प्रत्यक्ष गठबन्धनों (संधियों)' का निर्माण करे। परन्तु यह नहीं होना था। परिस्थितियों के दबाव तथा जो कार्य किया जा रहा था उसकी प्रकृति ने आलोचना की अगम्भीरता (खोखलेपन) को स्पष्ट कर दिया तथा यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि कुछ किया जाना था तो उस पर गुप्त रूप से वाद-विवाद करने की आवश्यकता थी। वास्तव में इस सम्मेलन की कार्य-प्रणाली कुछ बातों में वियना के सम्मेलन से मिलती-जुलती थी। निश्चय ही वियना के सम्मेलन के कई पूर्ण अधिवेशन हुए थे जिनमें समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को प्रविष्ट होने की आज्ञा दी गयी थी परंतु इस सम्मेलन का कोई भी सामान्य अधिवेशन नहीं हुआ। परन्तु सम्मेलन की सार्वजनिक अधिवेशन केवल पूर्ण प्रदर्शन मात्र थे, अथवा अधिक से अधिक, उनमें अन्यत्र किये हुए निर्णयों को औपचारिक रूप से केवल सत्यांकित किया गया था। वियना की काँग्रेस की भाँति इस सम्मेलन का भी वास्तविक कार्य बहुत सी समितियों, अनौपचारिक वार्तालापों, और महाशक्तियों के प्रतिनिधियों के गुप्त अधिवेशनों में सम्पादित हुआ था। महाशक्तियों के इन गुप्त अधिवेशनों में कभी **'पाँच बड़ी शक्तियाँ'**, कभी जापान के अतिरिक्त **'चार बड़ी शक्तियाँ'** और कभी जापान तथा इटली के अतिरिक्त **'तीन बड़ी शक्तियाँ'** भाग लेती थीं।

वर्साई[1] की संधि

जर्मनी के साथ संधि

सम्मेलन का तात्कालिक तथा आवश्यक कर्तव्य यह था कि जर्मनी के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली संधि की शर्तों को तैयार किया जावे। यह कार्य अन्य प्रत्येक कार्य से पहले होना चाहिए। कई मासों के वाद विवाद तथा जाँच-पड़ताल के पश्चात् समझौता हुआ। फलस्वरूप सन्धि का प्रारूप तैयार हो गया जो कि लिखित संधियों में सबसे लम्बी सन्धि का प्रारूप था। यह संधि इस पुस्तक के आधे आकार की होगी। जर्मन शासन द्वारा वर्साई को भेजे हुये प्रतिनिधियों के सम्मुख यह ७ मई १९१९ को रखा गया। सम्मेलन के सदस्यों तथा जर्मनी के प्रतिनिधियों के बीच सीधी बात-चीत नहीं होनी थी परन्तु उन प्रतिनिधियों को कुछ समय दिया गया था जिसके भीतर वे इस अभिलेख (प्रारूप) का ध्यान करें और जो कुछ सुझाव वे देना चाहें लिखित रूप में प्रस्तुत करें। उन्होंने उचित समय पर (उचित) तर्क तथा प्रतिकूल प्रस्ताव प्रस्तुत किये जिनका आकार मूल प्रारूप के आकार से छोटा नहीं था। इनमें से

---

1. इस शब्द के कई उच्चारण हैं जैसे वरसाई, वर्साई, वसाई, वर्सेल्ज, वर्सील्ज वरसाय आदि। देखिये D. Jones English Pronouncing Dictionary.

अधिकांश प्रस्तावों को सम्मेलन ने अस्वीकार किया। जर्मनों की आपत्तियों को दूर करने के लिये कुछ परिवर्तन किये गये और १६ जून को संशोधित संधि पत्र उनको लौटा दिया गया। युद्ध को पुनः प्रारम्भ करने तथा जर्मनी पर आक्रमण करने की धमकी के साथ २३ जून तक स्वीकृति का आदेश दिया गया था। इस अवधि के अन्तिम दिन जर्मनी की राष्ट्रीय सभा ने वीमर में १३४ के विरुद्ध २३७ मतों से इस आशय का प्रस्ताव पारित किया कि "राष्ट्रीय सभा संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए सहमत है।" जून 2८ को जर्मनी के विदेश-मन्त्री डॉ० हरमैन मूलर तथा डॉ० जोहन्स और मित्र राष्ट्रों एवं सहयुक्त शक्तियों के प्रतिनिधियों ने **वर्साई की संधि** पर हस्ताक्षर कर दिये। चीनी प्रतिनिधि ने शांतुंग पुरस्कार के जिसका आगे वर्णन किया जावेगा, विरुद्ध अपना विरोध प्रकट करते हुए हस्ताक्षर करना अस्वीकार किया। यह ऐतिहासिक घटना भी वर्साई के राज प्रासाद के दर्पणों के उसी महाकक्ष में घटित हुयी जिसमें ४८ वर्ष पूर्व जर्मन साम्राज्य की उद्घोषणा की गयी थी। समय ने अपना पूर्ण प्रतिशोध ले लिया था। उचित आकस्मिक संपात से वर्साई की संधि पर २४ जून को हस्ताक्षर हुए थे। इसी दिन पांच वर्ष पूर्व साराजीवो में आस्ट्रिया के आर्कड्यूक फ्रांसिस फर्डीनैन्ड का वध किया गया था जिसके कारण इतने आश्चर्यजनक एवं शोचनीय परिणाम हुए।

राष्ट्र संघ का समझौता

वर्साई की संधि के प्रथम भाग में राष्ट्र संघ के निर्माण को उपबंधित किया गया था—प्रारम्भ में राष्ट्रसंघ में दो वर्गों के राज्य सम्मिलित होने थे— प्रथमतः संधि के मूल हस्ताक्षरकर्त्ता जिनकी कुल संख्या बत्तीस थी और द्वितीयतः कुछ अन्य राज्य, जिनकी संख्या तेरह थी और जो आमन्त्रण को स्वीकार करने के पश्चात् सदस्य बनने थे।[1] यह बात अविलम्ब दृष्टव्य है कि जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, बल्गेरिया और तुर्की अर्थात् **केन्द्रीय मित्र** इस संघ में सम्मिलित नहीं किये गये थे। रूस अथवा निकट

---

1. **संघ के मूल्य सदस्य**

संयुक्त राज्य अमरीका	दक्षिणी अफ्रीका	हेटी	पोलैण्ड
वेलजियम	न्यूजीलैण्ड	हैजाज	पुतगाल
वॉलिविया	भारत	हौण्डुरास	रूमानिया
	चीन	इटली	सर्व-क्रोट-स्लोवीन राज्य
ब्राजील	क्यूबा	जापान	
ब्रिटिश साम्राज्य	ईक्वेडर	लाइबीरिया	स्याम
कनाडा	यूनान	पनामा	जैको-स्लावाकिया
आस्ट्रेलिया	गौटीमाला	पेरू	युरुगाई

सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित राज्य

अर्जेण्टाइन गणतन्त्र	डेनमार्क	फारस	स्वीडन
चिली	नीदरलैण्ड्स	सालवेडर	स्विटजरलैंड
कोलंबिया	नार्वे	स्पेन	वेनीजुवेला
	पैरागुई		

अतीत में रूस से स्वतन्त्र होने का दावा करने वाले राज्य भी इसके सदस्य नहीं बनाये गये थे। सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किये जाने वालों में मैक्सिको (मैक्सिको) भी नहीं था। सभा के दो तिहाई बहुमत से नवीन सदस्यों के प्रवेश का तथा दो वर्ष की सूचना (नोटिस) के पश्चात् राष्ट्रसंघ से निकलने का उपबन्ध रखा गया था परन्तु शर्त यह थी कि संघ से निकलने के समय उसके सभी अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व एवं इस समझौते के आधीन सभी दायित्व पूरे किये जा चुके हों।'

सभा

इस समझौते के द्वारा संघ के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दो प्रमुख संस्थाओं, सभा और परिषद् की स्थापना की थीं। इनमें से दूसरी (अर्थात् परिषद्) अधिक महत्त्वपूर्ण थी। संघ के प्रत्येक सदस्य का सभा में प्रतिनिधित्व होना था और वह अपनी इच्छानुसार तीन अथवा कम प्रतिनिधियों को भेज सकता था। तथापि, प्रत्येक राज्य को मत प्राप्त था। इस प्रकार छोटी-बड़ी सभी शक्तियों को समान मताधिकार प्राप्त था। यह बात दृष्टव्य है कि सभा में ब्रिटिश साम्राज्य को सामुदायिक रूप से छह मत दिये गये थे क्योंकि एक मत सम्पूर्ण साम्राज्य को तथा उस साम्राज्य के पाँच अंगों अर्थात् कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैंड तथा भारत को पृथक्-पृथक् एक-एक मत प्राप्त था।

इसके प्रतिकूल परिषद् में राष्ट्रों की सैद्धान्तिक तथा कल्पित समता के स्थान पर उनकी वास्तविक तथा स्पष्ट असमता को प्रतिनिधित्व दिया गया था। यह केवल नौ सदस्यों की लघु संस्था होनी थी। इन नौ सदस्यों में से पाँच सदस्य सर्वदा ब्रिटिश साम्राज्य, संयुक्त राज्य, फ्रांस, इटली तथा जापान होंगे। इन पाँच के अतिरिक्त चार अन्य सदस्य सभा द्वारा अपने विवेक से समय-समय पर चुने जावेंगे। सभा के संगठन एवं निर्माण के पूर्व इस **समझौते** के अनुसार चार सदस्य ये बनाये गये : बेलजियम, ब्राजील, स्पेन तथा यूनान। परिषद् में जिस राज्य का प्रतिनिधित्व था उसको केवल एक मत प्राप्त था तथा उसके एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं हो सकते थे। परिषद् के दोनों वर्गों स्थायी एवं अस्थायी की सम्भावित वृद्धि के लिये उपबन्ध किया गया था। तथापि संघ का कोई भी सदस्य जो परिषद् का सदस्य न हो उसमें उस समय अपना प्रतिनिधि भेज सकता था जबकि परिषद् के विचाराधीन किसी विषय का उसके हितों पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता हो। इस विषय में कुछ नहीं कहा गया था कि इसका निर्णय कौन करेगा कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है अथवा नहीं। अतः सम्भवतः उसका निर्णय स्वयं परिषद् करेगी वह राज्य इसका निर्णय नहीं करेगा जो अपने को प्रभावित हुआ समझता हो।

बैठकें प्रायः होंगी

आवश्यकता के अनुसार परिषद् की बैठक होगी परन्तु वर्ष में एक बैठक अवश्य होगी। सभा के विषय में ऐसी कोई निश्चित बात नहीं कहीं गयी थी परन्तु 'कथित मध्यान्तरों के पश्चात् आवश्यकता के अनुसार समय समय पर उसकी बैठक होनी चाहिये'। इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था कि बैठक के उचित अवसर के आने का कौन निर्णय करेगा। परिषद् तथा सभा दोनों अपने अधिवेशनों में उन सभी विषयों पर 'संघ के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत हों अथवा विश्व-शान्ति पर प्रभाव डालते हों' विचार कर सकती थीं। यह आज्ञा पत्र उतना ही उदार (स्वतन्त्र) था

जितनी कि वायु स्वतन्त्र होती है। क्योंकि अतीत का इतिहास यह प्रदर्शित करता जान पड़ता था कि कुछ परिस्थितियों में प्रायः कोई भी बात विश्व-शांति को प्रभावित कर सकती है। जहाँ समझौते में स्पष्ट रूप से अन्यथा प्रतिपादन किया गया हो, उसके अतिरिक्त परिषद् तथा सभा के उपस्थित सदस्यों की सर्व सम्मति से सभी निर्णय किये जावेंगे। यह ऐसा उपबन्ध था जो सबसे छोटे एवं सबसे कम महत्त्वपूर्ण राज्य को भी विचाराधीन कार्यवाही को निषिद्ध करने का अधिकार प्रदान करता था। अवरोध सरल है परन्तु थोड़े से मानवों की संस्था में भी साधारणतया सर्व-सम्मति कठिनाई से उपलब्ध हो सकती है। उदाहरणार्थ यह बात कोई भी व्यक्ति देख सकता था कि यदि परिषद् में पाँच महाशक्तियाँ किसी ऐसी नीति को अपनाना चाहें जिसका कोई अथवा अन्य सभी शक्तियाँ विरोध करें तो वे ऐसा तभी कर सकती थीं जब कि वे उन पर ऐसा प्रभाव डालें जो अनुचित दबाव हो तथा उनको दबने पर विवश कर दें। यह प्रक्रिया स्वभावतः उस सद्भावना को बढ़ावा नहीं देगी जोकि संघ के उद्देश्य को पूरा करने तथा उसके अस्तित्व (जीवन) को बनाये रखने के लिये होनी चाहिये और सम्भवतः अत्यावश्यक थी।

संघ का कार्यालय (स्थान) जिनेवा में रहेगा परन्तु परिषद् अन्यत्र कहीं भी स्थापित की जा सकती थी। एक महासचिव होगा जिसकी नियुक्ति सभा के बहुमत से स्वीकृत के पश्चात् परिषद् द्वारा की जावेगी। संघ के अभिलेख को सुरक्षित रखने, पत्र व्यवहार करने तथा लिखा पढ़ी का कार्य करने के लिये आवश्यकता के अनुसार सुव्यवस्थित सचिवालय स्थापित किया जाना चाहिये। इसका व्यय संघ के सदस्यों को अपने-अपने भाग के अनुसार देना होगा।

संघ के निर्माण के पीछे युद्ध को रोकने तथा शांति को बनाये रखने की किसी प्रणाली का पता लगाने की प्रेरक शक्ति थी और इस संस्था का यही उद्घोषित उद्देश्य था। अतः इस समझौते के अभिलेख के वे अनुच्छेद सर्वोपरि थे जोकि इस विषय से सम्बन्धित थे। वे वास्तव में इसके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग थे। सुभाषी आदर्शवादियों ने बार-बार कहा था कि यह अंतिम युद्ध था जिसका उद्देश्य युद्ध को समाप्त करना था। यदि इस पवित्र भावना की पूर्ति होनी थी तो वह केवल संघ द्वारा हो सकती थी। समझौता तैयार होने के पूर्व तथा पश्चात् उसके प्रस्तावकों ने इसी आशय से उसकी सिफारिश की थी कि वह उस उद्देश्य की पूर्ति की वास्तव में आशा दिलाता था अथवा उसकी पूर्ति की बहुत कुछ आशा दिलाता था।

निःशस्त्रीकरण की समस्या

युद्ध के कल्पित कारण अथवा विवादों के प्रकार जिनको भूतकाल में इसका कारण माना जाता था कई प्रकार से विचाराधीन रहे थे। यूरोप के प्रवर्द्धित शस्त्रीकरण को कम से कम एक पीढ़ी के लिये शांति के लिये संकट और युद्ध के लिये उत्तेजना समझा जाता था और १८९९ में हेग के प्रथम सम्मेलन में उनकी वृद्धि को रोकने तथा उनके आकार को घटाने के निष्फल प्रयत्न किये गये थे। अब इतिहास में सर्वाधिक विनाशकारी युद्ध के पश्चात् इस समस्या पर पुनः विचार किया गया और इस समझौते का एक अनुच्छेद इससे सम्बन्धित था। उस अनुच्छेद में लिखा है कि संघ की परिषद् विभिन्न शासनों द्वारा विचार तथा कार्यवाही के हेतु शस्त्रास्त्रों को घटाने

शस्त्रास्त्र में कमी

की योजनाएँ तैयार करेगी और विभिन्न शासनों द्वारा इन योजनाओं के स्वीकार किये जाने के पश्चात् परिषद की सहमति के बिना उन योजनाओं में निर्धारित मात्रा में वृद्धि नहीं की जावेगी। शासनों को इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि युद्ध सामग्री के व्यक्तिगत उत्पादन के कुपरिणामों को किस प्रकार न्यून किया जा सकता था और उनको सैनिक तथा नौ-सैनिक कार्यक्रमों की सूचना पूर्ण रूप से तथा बिना किसी हिचक के एक दूसरे को देनी थी।

इस अनुच्छेद के अनुसार शस्त्रास्त्र में कमी की जा सकती थी। यह ठीक उसी प्रकार की जा सकती थी जिस प्रकार गत बीस वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के द्वारा कमी भी की जा सकती थी। यह पूर्वापेक्षा अधिक सम्भव नहीं थी। यह नहीं कहा जा सकता है कि पेरिस के सम्मेलन ने इस पर हेग के दोनों सम्मेलनों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली ढंग से विचार किया था। इसने उस समय की सुविदित गम्भीरता की ओर संकेत करने तथा उसको अध्ययन करने की प्रतिज्ञा से अधिक कुछ नहीं किया। वास्तव में इसकी एक शर्त न्यूनता की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के स्थान पर उसको अवरुद्ध कर सकती थी। परिषद् को शास्त्रास्त्रों में कमी करने की योजनाएँ बनानी थीं परन्तु उन योजनाओं को स्वीकार करने के लिये कोई भी राज्य विवश नहीं किया जा सकता था। परन्तु यदि कोई राज्य उनको स्वीकार कर ले तो वह भविष्य में कभी भी परिषद् की सर्वसम्मति से दी गयी आज्ञा के बिना अपनी स्थल सेना, नौसेना तथा वायु सेनाओं में निर्धारित एवं स्वीकृत सीमा (मात्रा) से अधिक वृद्धि नहीं कर सकता था। इस प्रकार यदि संयुक्त राज्य के लिये परिषद् ५००,००० की स्थल सेना की सिफारिश करे और संयुक्त राज्य उसको स्वीकार कर ले तो चाहे कितनी भी गम्भीर अथवा निराशाजनक आपात् स्थिति क्यों न उत्पन्न हो जावे संयुक्त राज्य आठ अन्य राज्यों को आज्ञा के बिना अपनी सेना नहीं बढ़ा सकता। ये आठ राज्य उसके परिषद् में सहयोगी थे, चाहे वे यूरोपीय हों चाहे एशियायी हों, चाहे अमरीकी हों। ऐसी परिस्थिति होने से यह बात तर्क सम्मत रूप से कल्पित की जा सकती थी कि प्रत्येक राज्य प्रारम्भ में ही सभी सम्भव आकस्मिकताओं का सामाना करने के लिये अपना ऊँचा स्तर निर्धारित करेगा ताकि उसे भविष्य में पछताना न पड़े। अस्तु इस अनुच्छेद का झुकाव शस्त्रास्त्रों की अधिकतम सीमा की ओर अधिक था, उनकी कमी की ओर कम था। क्योंकि राष्ट्र अपनी सुरक्षा केवल उसी प्रकार से सम्भव समझेंगे। अतः वह अनुच्छेद स्वतः असफल हो जावेगा।

परिषद का निषेधाधिकार

युद्ध का अवरोध

निःशस्त्रीकरण शांति बनाये रखने की समस्या का एक पहलू था और वह भी कम महत्त्वपूर्ण पहलू था। शस्त्रास्त्रों की कमी की अपेक्षा उनके प्रयोग को रोकना अथवा प्रोत्साहित न करना अधिक महत्त्वपूर्ण था। यदि किसी राज्य पर यह प्रभाव डाला जावे कि जो युद्ध वह प्रारम्भ करने वाला था उसे वह सम्भवतः हार जावेगा तो बहुत कम युद्ध प्रारम्भ किये जावेगे। समझौता करने वालों के मस्तिष्क में यह विचार विद्यमान था। अनुच्छेद १० का इस प्रभाव को उत्पन्न करने का प्रबल उद्देश्य है। इस युद्ध ने कई नये राज्यों का निर्माण किया था और बहुत से पुराने राज्यों

अनुच्छेद १० का महत्त्व

की सीमाओं को परिवर्तित कर दिया था। इसके सम्बन्ध में अनुच्छेद १० में कहा गया है, "संघ के सदस्य संघ के सभी सदस्यों की प्रादेशिक अखंडता तथा वर्तमान राजनीतिक स्वतन्त्रता का समादर करने तथा बाह्य आक्रमण से उसकी रक्षा करने का दायित्व स्वीकार करते हैं। इस प्रकार के आक्रमण अथवा इस प्रकार के आक्रमण की आशंका अथवा धमकी की स्थिति में परिषद् उन साधनों का परामर्श देगी जिनके द्वारा यह दायित्व पूरा किया जावेगा।" संघ के प्रत्येक सदस्य का यह दायित्व उतना ही स्पष्ट था जितना स्पष्ट कि कोई दायित्व हो सकता था तथा संघ के सभी सदस्यों की प्रादेशिक अखण्डता तथा वर्तमान राजनीतिक स्वतन्त्रता के समादर करने एवं रक्षा करने की प्रतिज्ञा सुस्पष्ट तथा अनिवार्य रूप से पालनीय थी। परिषद् किसी परिस्थिति विशेष में की जाने वाली वास्तविक कार्यवाही के सम्बन्ध में प्रत्यक्षतः परामर्श देती थी परन्तु प्रादेशिक अखण्डता तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता का समादर करने और रक्षा करने का दायित्व सभी (सदस्यों) ने स्वीकार कर लिया था और उसके अनुसार आचरण किया जाना था अन्यथा यह अनुच्छेद केवल एक कागज का टुकड़ा था। पैरिस के सम्मेलन ने इस अनुच्छेद को समझौते में इस हेतु स्थान दिया था कि सम्पूर्ण संधि के चारों ओर एक अभेद्य पुश्ता स्थापित किया जा सके। यह पुश्ता भविष्य में शान्ति भंग करने वालों को स्पष्ट रूप से यह चेतावनी देकर स्थापित किया जावेगा कि यदि वह संघ के किसी सदस्य पर आक्रमण करेगा तो संघ के सभी सदस्य उसका सामना करेंगे। इतने प्रभावशाली शत्रु समूह को उद्देश्य के प्रतिरोधार्थ वचनवद्ध देकर वह विवेक को वीरता का वृहत्तर भाग समझ सकेगा और ठीक समय पर आक्रमण से रुक जावेगा। स्वभावतः यह प्रत्याभूति अपना वास्तविक प्रभाव तभी डाल सकती थी जब कि युद्ध करने वाले राज्य को इस बात का वास्तव में विश्वास हो कि संघ के सदस्य इसको सचमुच कार्यान्वित करेंगे। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि संघ के सदस्य अपनी प्रतिज्ञा सच्चे हृदय से और दृढ़ संकल्प के साथ कर रहे थे।

संघ युद्ध की किसी भी धमकी पर विचार कर सकते हैं

परन्तु संघ अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को बातचीत द्वारा सुलझाकर युद्ध को रोकने की आशा करता है और यह प्रयास उस समय तक किया जाता है जब तक कि वह विवाद विस्फोटक दशा को प्राप्त नहीं हो जाता है। यह उद्घोषित किया गया था कि यदि किसी युद्ध का अथवा युद्ध की धमकी का तात्कालिक अथवा अतात्कालिक प्रभाव किसी सदस्य पर पड़ता है तो वह सम्पूर्ण संघ से सम्बन्ध रखने वाला मामला है। किसी भी सदस्य की प्रार्थना पर परिषद् बुलायी जा सकती है और वह शांति बनाए रखने के लिए जो कार्यवाही उचित समझे कर सकती है। किसी समय कोई भी सदस्य परिषद् तथा सभा के अवधान को किसी भी ऐसी परिस्थिति की ओर आकर्षित कर सकता है जो अन्तर्राष्ट्रीय शांति अथवा राष्ट्रों के मध्य की उस सद्भावना (सुसमझ) को भंग करने की आशंका उत्पन्न करती हो जिस पर शांति निर्भर होती है। इसमें यह विचार अन्तर्निहित है कि यदि गलतफहमियों पर पूर्ण रूप से तथा स्वतन्त्रता के साथ विचार विमर्श किया जावे तो वे कम हो जाती हैं। यह सत्य है परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह भी सत्य है कि मतों की भिन्नता में वादविवाद से प्रायः तीव्रता और कटुता उत्पन्न हो जाती है।

विवाचन अथवा पृच्छा

एक अन्य अनुच्छेद के अनुसार संघ के सदस्य इस पर भी सहमत हो गये कि यदि उनके मध्य कोई ऐसा विवाद उत्पन्न हो जिसकी संभाव्य परिणति संवर्ष हो तो वे उस विषय को **परिषद्** द्वारा विवाचन अथवा अनुसंधान (जाँच) के लिए प्रस्तुत करेंगे और विवाचकों के निर्णय अथवा परिषद् के प्रतिवेदन के तीन मास पश्चात तक वे किसी भी दशा में युद्ध प्रारंभ नहीं करेंगे। यदि इस अनुच्छेद का पालन किया गया तो यह आकस्मिक आक्रमणों को अवरुद्ध करेगा तथा शान्ति स्थापित कराने वालों की कठिनाई को सुलझाने के प्रयत्न करने का उचित समय प्रदान करेगा। यदि आस्ट्रिया ने ऐसी प्रक्रिया अपनाई होती तो १९१४ का युद्ध इतनी आकस्मिता के साथ प्रारम्भ न हो गया होता और सम्भवत: वास्तव में पूर्ण रूप से टाल दिया गया होता। यह अनुच्छेद युद्ध को रोकता नहीं था क्योंकि निर्धारित समय समाप्त होने के पश्चात् विवाद से सम्बन्धित पक्ष युद्ध प्रारम्भ कर सकते थे किन्तु शान्ति प्रदायक समय के व्यवधान के कारण इसकी सम्भावना कम हो जाती थी। सदस्य इस पर भी सहमत हुए कि राष्ट्रीय नीति से भिन्न न्याय स्वरूप के कुछ विषयों को विवाद के पक्षों द्वारा मान्य न्यायालय अथवा संघ द्वारा स्थापित किये जाने वाले **अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय** के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस वर्ग के अन्तर्गत वे विवाद होंगे जो कि किसी संधि की व्याख्या अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विधि से सम्बन्धित हों। यदि कोई एक रक्षा न्यायालय के निर्णय को स्वीकार करे तो संघ के सदस्य उसके विरुद्ध युद्ध नहीं करेंगे परन्तु यदि कोई पक्ष उसको स्वीकार न करे तो परिषद को उस कार्यवाही का प्रस्ताव करना चाहिये जो उस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए की जानी चाहिए।

परिषद् द्वारा अनुसंधान

यदि संघ के सदस्यों के मध्य कोई ऐसा विवाद उत्पन्न हो जाय जिसकी संभाव्य परिणति संघर्ष हो और जो विवाचन के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया हो, तो सदस्य इस पर सहमत हुए कि उसको **परिषद्** के समक्ष प्रस्तुत किया जावे। परिषद उस विषय का अनुसंधान (जाँच) करे और समझौता कराने का प्रयत्न करे। यदि परिषद् असफल रहे तो वह उस विषय से सम्बन्धित तथ्यों के विषय में अपना प्रतिवेदन प्रकाशित करे जिसमें उसकी सिफारिशें भी सम्मलित हों ताकि संसार अपना निर्णय कर सके और विवाद के न मानने वाले पक्ष अथवा पक्षों पर जनमत का दबाव डाला जा सके। यदि विवाद से सम्बन्ध रखने वाले पक्षों को छोड़कर परिषद् का प्रतिवेदन सर्व सम्मति मूलक हो तो संघ के सदस्य उसको सिफारिशों को मानने वाले पक्ष के विरुद्ध युद्ध नहीं करेंगे। यदि यह प्रतिवेदन सर्वसम्मति मूलक न हो तो सदस्य ऐसी कार्यवाही करेंगे जैसी वे आवश्यक समझते हों।

यदि इस विवाद से सम्बन्धित कोई पक्ष प्रार्थना करे तो ऐसा विवाद **परिषद् से सभा** को स्थानांतरित कर दिया जावेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पहले किसी एक अथवा दूसरे रूप के अनुसंधान

अथवा विवाचन के लिए विवाद को प्रस्तुत किये बिना युद्ध न करने पर संघ के सदस्य सहमत हो गये। वे विवाचन के परिणामों को अनिवार्य रूप से स्वीकार करने पर सहमत नहीं हुए और न संघ के अन्य सदस्य जो विवाद से संबन्धित न हों उनको विवश करने पर सहमत हुये। उन्होंने अपनी कार्यवाही के अधिकार को, जैसा करना वे उचित समझें, केवल सुरक्षित रखा। इस प्रकार युद्ध रोका नहीं गया था परन्तु यदि युद्ध हुआ तो वह निर्धारित कालावधि के पश्चात् होगा। वह सहसा प्रारम्भ नहीं हो जावेगा।

युद्ध की घोषणा के पूर्व विचार विमर्श अवश्य हो

आर्थिक अस्त्रों का प्रयोग

परन्तु कल्पना कीजिये कि यदि संघ का कोई सदस्य अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन न करे, अनुसंधान अथवा विवाचन को स्वीकार करने की अपनी प्रतिज्ञा तोड़े, और पुरानी पद्धति से सहसा युद्ध प्रारम्भ करे तब क्या होगा? अनुच्छेद १६ में उल्लिखित महत्त्वपूर्ण कार्यवाही की जावेगी। न मानने वाला राज्य तदनुसार केवल अपने शत्रु के विरुद्ध ही नहीं अपितु संघ के अन्य सभी सदस्यों के विरुद्ध सामरिक कार्यवाही करने वाला माना जावेगा और वे सदस्य "एतद्द्वारा उससे अपने राष्ट्रों तथा समझौतों को तोड़ने वाले राज्य के राष्ट्रिकों तथा अपने राष्ट्रों के मध्य सम्पर्क को अविलम्ब समाप्त करने तथा समझौते तोड़ने वाले राज्य के राष्ट्रिकों तथा किसी भी अन्य राज्य के राष्ट्रिकों—चाहे वह राज्य संघ का सदस्य हो अथवा न हो—के मध्य सम्पूर्ण वित्तीय, व्यापारिक अथवा व्यक्तिगत सम्पर्क को अवरुद्ध करने का दायित्व स्वीकार करते हैं।" यदि यह शक्ति प्रयोग की जावे तो यह महान् शक्ति थी और यदि संघ के सदस्य अपनी प्रतिज्ञा का पालन करें तो यह 'अविलम्ब' प्रयोग की जावेगी। यही वह आर्थिक दवाव था जिसके विषय में कुछ दिनों में संसार ने युद्ध के प्रतिषेधक के रूप में बहुत कुछ सुना था। इसके अतिरिक्त **परिषद्** को विभिन्न सम्बन्धित सरकारों से संघ के समझौतों की रक्षा करने हेतु प्रयुक्त की जाने वाली सशस्त्र सेना के लिये संघ के सदस्यों द्वारा पृथक-पृथक दी जाने वाली स्थल, जल और वायु सेना के लिये सिफारिश करनी चाहिये **(अर्थात् यह सिफारिश की जानी चाहिये कि प्रत्येक सदस्य कितनी-कितनी प्रभावशाली सेना दे)**।

अनुच्छेद १६ तथा आर्थिक दवाव

दूसरे शब्दों में आर्थिक दवाव अविलम्ब प्रारम्भ किया जाना चाहिये और राष्ट्रों को इस कार्यवाही में विलम्ब करने तथा अपने उत्तरदायित्वों पर वाद-विवाद करने का अधिकार नहीं था। ये उत्तरदायित्व स्पष्ट एवं अलंघ्य थे। परन्तु यह बात स्पष्ट नहीं थी कि उन्हें परिषद द्वारा तत्पश्चात् सिफारिश की गयी सेना को न देने का अधिकार था अथवा नहीं?

ऐसे ही उपबन्धों का यह उद्देश्य था कि संघ के असदस्य राज्यों के मध्य अथवा असदस्य एवं सदस्य राज्यों के मध्य विवादों का अनुसंधान अथवा विवाचन हो। इस बात पर भी सहमति थी कि यदि संघ का कोई असदस्य राज्य संघ के सदस्य राज्य के विरुद्ध युद्ध करे और उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन न करे तो अनुच्छेद १६ (अर्थात् आर्थिक वहिष्कार तथा संभाव्य युद्ध) उस राज्य के विरुद्ध संघ के सभी सदस्यों द्वारा लागू किया जावेगा।

ऊपर वर्णन किये हुए अनुच्छेदों के अतिरिक्त अन्य अनुच्छेद भी इस समझौते में थे। उनका उद्देश्य भी युद्ध के कारणों को दूर करके शान्ति बनाये रखना था। इसके निर्माताओं के मत से गुप्त कूटनीति के कारण कई युद्ध हुए थे। अतएव गुप्त कूटनीति समाप्त की जानी चाहिये। अब विभिन्न शक्तियों में व्यक्तिगत समझौते नहीं होने चाहिये वरन् भविष्य में की गई प्रत्येक संधि अथवा अन्तर्राष्ट्रीय आबंध तत्काल संघ के सचिव के कार्यालय में पंजीकृत होना चाहिये एवं प्रकाशित होना चाहिये अन्यथा यह मान्य नहीं होगा ओर अब तक किये हुए ऐसे सभी आबंध, यदि वे **समझौते** की शर्तों के विरुद्ध हैं तो, समाप्त हो जाने चाहिये। परन्तु अनुच्छेद १६ में कहा गया है कि, "इस **समझौते** की कोई भी बात विवाचन की सन्धियाँ अथवा शांति को बनाये रखने के लिये **मनरो सिद्धान्त** जैसी क्षेत्रीय मान्यताओं की प्रामाणिकता पर प्रभाव डालने वाली नहीं समझी जावेगी।

गुप्त कूटनीति पर प्रतिबन्ध

प्रादेशिक लोलुपता एवं औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धायें अतीत में युद्ध के महत्त्वपूर्ण कारण रहे थे। अतः इस समझौते के अनुसार उन देशों का प्रबन्ध करने के लिये एक प्रणाली स्थापित की गयी जो कि युद्ध के फलस्वरूप मित्र राष्ट्रों के हाथ में आ गये थे, जैसे, जर्मनी के उपनिवेश तथा तुर्की के प्रदेश। वे लूट की सामग्री के रूप में विजेताओं में विभाजित नहीं होने थे प्रत्युत सम्बन्धित जातियों के हितार्थ न्यास के रूप में ग्रहण किये हुए माने जावेंगे। ये विभिन्न प्रदेश संघ द्वारा अपने विभिन्न सदस्यों को **प्रादेशों** के अधीन दिये जाने थे जिनमें यह लिखा होगा कि वहाँ के निवासियों को कुछ अधिकारों की प्रत्याभूति देते हुए वे किस प्रकार का तथा किस मात्रा में उन पर शासन कर सकते थे। साथ ही प्रादेश प्राप्त शक्तियों से वार्षिक प्रतिवेदन माँगा जावेगा समुदाय (जाति) के अनुसार प्रादेश में भिन्नता हो सकती थी। परन्तु पृथ्वी के ये विशाल क्षेत्र किसी भी राज्य के औपनिवेशिक साम्राज्य से संयोजित नहीं किये जाने थे। वे उस समय तक संघ के अधीन रहेंगे जब तक ये अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य न हो जावें (अर्थात् अपना शासन स्वयं कर सकें)। किसी प्रादेशित शक्ति को दिये हुये प्रदेश के प्रशासनिक संचालन की देख-रेख संघ (अर्थात् विश्व का प्रबुद्ध मत) कर सकता था। यह नई पद्धति व्यवहार में पुरानी पद्धति, जिसको हटाने के उद्देश्य से कार्यान्वित किया जा रहा था, का प्रवर्द्धित संघ छद्मवेश मात्र थी अथवा नहीं थी ? वस्तुतः यह देखना शेष रहा।

प्रादेश पद्धति

इस **समझौते** के ऐसे (उपर्युक्त) उपबन्ध थे। इसने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में एक नये प्रयोग की उदघोषणा की। यह **समझौता** किसी भी समय **परिषद्** की सर्वसम्मति से तथा **सभा** के बहुमत से संशोधित किया जा सकता था।

समझौते का संशोधन

जर्मनी के साथ सन्धि

वर्साई की सन्धि के चार सौ चालीस अनुच्छेदों में केवल २६ अनुच्छेद **राष्ट्र संघ** के विषय में थे। शेष अनुच्छेदों में वे कार्यवाहियाँ तथा सावधानियाँ वर्णित की गई थीं जिनको जर्मनी के सम्बन्ध में उस देश की भावी सीमाओं के निर्धारण के सम्बन्ध में, यूरोप के राजनीतिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में जो उसके द्वारा स्वीकार

संधि की महती लम्बाई

किये जाने चाहिये, उसकी भावी सैनिक व्यवस्था से सम्बन्धित अनुवन्धों के सम्बन्ध में और क्षतिपूर्ति तथा दण्डों के सम्बन्ध में मित्र राष्ट्रीय संसार अपनाना उचित समझता था। इस संधि के विशाल खण्डों का सम्बन्ध वित्तीय तथा आर्थिक विषयों, जर्मन उपनिवेशों, बन्दरगाहों, जलमार्ग, रेलमार्गों, श्रमिक संगठनों और विधानों से है। इस युद्ध ने निस्सीम जटिल समस्याओं को उत्पन्न कर दिया था। इस युद्ध ने किसी मानव को अथवा विश्व के किसी कोने को अप्रभावित नहीं छोड़ा था। इसके फलस्वरूप विविधतापूर्ण सूक्ष्म विवरणात्मक बातों का अध्ययन एवं समन्वय आवश्यक हो गया था। इस युद्ध के कारण जो भीषण विनाश, लूटमार और प्रलयंकर उथल-पुथल हुई थी वह यदि सम्भव हो सके तो, किसी न किसी प्रकार सुधारी जानी थी। इन उपरिलिखित तथा उन सब आवश्यक एवं फलोत्पादक मानव तथा सामाजिक सम्बन्धों को देखते हुए, जिनको युद्ध ने तीव्र आघात के साथ विच्छिन्न कर दिया और जिनको पुनः सम्बद्ध करना आवश्यक था, इस बात पर आश्चर्य होता है कि **वर्साई की संधि** अधिक लम्बी नहीं है (**अर्थात् जितनी लम्बी अथवा विशाल यह होनी चाहिए उतनी नहीं है**)।

उस **संधि** का प्रत्येक शब्द तोलकर (विचार कर) के लिखा गया है। उसका प्रत्येक भाग अन्य प्रत्येक भाग से सुसम्बद्ध है और उनमें परस्पर कार्य कारण का सम्बन्ध है। इस संधि के सारांश लिखने का यहाँ प्रयत्न नहीं किया जा सकता है। इस भाग में इस **संधि** की केवल कुछ अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है।

जर्मनी की सीमायें

जर्मनी की सीमाओं का नव-निर्धारण किया गया। वह अलसेस-लारीन से वंचित हो गया और यह प्रदेश फ्रांस को पुनः मिल गया। बेलजियम की सीमा पर स्वल्प परिवर्तन किये गये। इस बात का उपबन्ध रखा गया कि स्लैस्विग के अधिकांश भाग के निवासी, यदि वे चाहें तो डेनमार्क के राज्य से अपना पुराना सम्बन्ध पुनः स्थापित कर सकते हैं। वहाँ के निवासियों के मनोभावों का पता लगाने के लिए स्लैस्विग को दो भागों में विभाजित किया गया था और प्रत्येक में जनमत संग्रह किया जाना था जिसकी व्यवस्था जर्मन के अधिकारी नहीं करेंगे वरन् **अन्तर्राष्ट्रीय आयोग** के अधीन होगी। उत्तरी भाग एक इकाई के रूप में मतदान करेगा और यदि बहुमत डेनमार्क के साथ मिलने के पक्ष में हो तो यह संयोजन अविलम्ब हो जावेगा।

अलसेस लॉरीन का निकलना

उत्तरी भाग में समुदायों (कम्यूनों) द्वारा मतदान होना था और मत में संग्रह के पश्चात् **पाँच महाशक्तियाँ** जर्मनी तथा स्लैस्विग के बीच सीमा रेखा खीचेंगी। यह रेखा मतदान के परिणामों तथा भौगोलिक और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर खींची जावेगी। जर्मनी उनके निर्णय को स्वीकार करने पर सहमत हो गया। संधि के द्वारा उपबंधित अन्य जनमत संग्रहों की भाँति इन जनमत संग्रहों में भी पुरुष तथा स्त्रियों (दोनों) को मतदान करना था।

स्लैस्विग

इस प्रकार विस्मार्क की रक्त-लौह नीति के द्वारा प्राप्त एक अन्य लाभ से जर्मनी को वंचित होना था। जिस प्रकार १८७० के युद्ध में जीते हुए प्रदेश का एक

भाग हाथ से निकलना था, ठीक उसी प्रकार से १८६४ के युद्ध में जीते हुए प्रदेश का एक भाग भी हस्तांतरित किया जाना था। एक अन्य क्षेत्र अर्थात् पूर्वी प्रशा में डेढ़ शताब्दी पूर्व फ्रैडरिक महान् द्वारा किया हुआ अनुचित कार्य भी ठीक किया जाना था। जर्मनी ने पोलैण्ड के गणतन्त्र को मान्यता प्रदान कर दी। यह गणतन्त्र हमारे युग का चमत्कार था और इस प्राचीन एवं नूतन राज्य के पक्ष में प्रशा के विस्तृत भूभाग त्याग दिये गये। इनमें से कुछ भाग तो संधि के अनुसार प्रत्यक्षतः दे दिये गये और कुछ भागों में जनता की इच्छाओं को जानने के लिए जनमत संग्रह किये जाने थे। इस प्रकार फ्रैडरिक द्वारा १७४० के प्रसिद्ध आक्रमण में हस्तगत किये गये साइलेशिया के ऊपरी अथवा दक्षिणी भाग और पूर्वी प्रशा के प्रान्त के एक भाग की ठीक-ठीक सीमायें तब तक अज्ञात रहेंगी जब तक जनता की राय नहीं ली जाती है और **पाँच महाशक्तियाँ** अन्तिम रूप से सीमा निर्धारण नहीं कर देती है। परन्तु जो कुछ भी परिणाम हो, जर्मनी उसको स्वीकार करने पर सहमत था। फ्रैडरिक द्वारा संयोजित सभी देशों से जर्मनी वंचित नहीं होगा—केवल वे भाग (हस्तांरित किये जावेंगे) जो वहाँ के निवासियों के विचार से और भावना के दृष्टिकोण से पोलिश थे परन्तु जर्मनी की पूर्वी सीमायें अतीत की सीमाओं से अधिक भिन्न होंगी। जर्मनी के मानचित्र के इस पुनराँकन में दो परिवर्तनों पर ध्यान देना चाहिए। पाँच महाशक्तियों के पक्ष में जर्मनी ने प्रशा के सुदूरतम उत्तर पूर्वी भाग में मैमेल को त्याग दिया और वह इस बात पर सहमत हो गया कि उसकी जो कुछ भी व्यवस्था की जावेगी उसे वह स्वीकार कर लेगा। उसने उनके पक्ष में डानजिग नगर को भी त्याग दिया। यह भविष्य में स्वतन्त्र नगर रहेगा और राष्ट्र संघ के अधीन कर दिया जावेगा। डानजिग पुराने पोलैण्ड राज्य के अधीन था परन्तु १७९३ में द्वितीय विभाजन में प्रशा ने इसको छीन लिया था। इसको वास्तव में अपना नगर समझने और उनका एकमात्र संभाव्य बन्दरगाह होने के कारण पोलों ने नवीन राज्य में इसके सम्मिलित किये जाने के पक्ष का समर्थन किया परंतु पैरिस के सम्मेलन ने यह नगर उनको नहीं दिया। उसने जर्मनी से डानजिग ले लिया और उसे पोलैण्ड को नहीं दिया परंतु उसने (इस) **स्वतंत्र नगर** तथा पोलैण्ड के गणतन्त्र के मध्य एक संधि कराने का दायित्व स्वीकार किया जिसके अनुसार पोलैण्ड डानजिग को अपनी आयात-निर्यात सीमाओं में सम्मिलित कर सकेगा और बिना किसी प्रतिबंध के बन्दरगाह के रूप में उसको प्रयोग कर सकेगा। इस **स्वतन्त्र नगर** की कार्यपालिका एक उच्चायुक्त होगा जिसकी नियुक्ति राष्ट्र संघ द्वारा की जावेगी। डानजिग पोलैण्ड से एक भूमि की पट्टी द्वारा सम्बद्ध है जोकि मार्ग (Corridor) कहलाता है। यह (मार्ग) प्रशा के मुख्य भाग को तथा इस मार्ग के पूर्व में स्थित भाग से अर्थात् पूर्वी प्रशा के प्रान्त के उस भाग से पृथक् करता है जो प्रशा के लिए छोड़ दिया गया है। संधि की इन शर्तों से जर्मनी तथा पोलैन्ड दोनों अति असन्तुष्ट हुए।

पोल-प्रान्तों का निकालना

इस प्रकार इस सन्धि के अनुसार जर्मनी अपनी पचास लाख जनसंख्या से वंचित हो गया परन्तु मुख्य रूप से वे ही निवासी निकल गये जोकि शक्ति द्वारा जीते गये थे और दूसरे राष्ट्रों से सम्बन्धित थे। वह केवल अपनी फ्रांसीसी, डैनिश तथा पोलिश जनता से वंचित हो गया था अथवा हो जाना था।

एक दूसरे क्षेत्र में कम से कम अस्थायी रूप से जर्मनी का नियन्त्रण समाप्त

सार की घाटी

हो गया। यह क्षेत्र युद्ध के पहले उसका था और फ्रांस से मिला हुआ था। इसका नाम सार की घाटी था। यह क्षेत्र अंशतः फ्रांस का था परन्तु १८१५ में वह जर्मन ने प्राप्त कर लिया था। यह पूर्णरूपेण फ्रांस को नहीं लौटाया गया। १७९३ से डानजिग की भाँति इसका जर्मनीकरण हो गया था। वर्साई की संधि के निर्माता इस सिद्धान्त के प्रतिपादक थे कि जनताओं को विदेशी राज्यों के अधीन नहीं किया जाना चाहिये। इस सिद्धान्त पर वे न्यूनाधिक आचरण भी करते थे। अतः सार की घाटी के सम्बन्ध में एक अति जटिल व्यवस्था की गयी क्योंकि इसमें लगभग ६ लाख जर्मन निवास करते थे। उत्तरी फ्रांस की कोयले की खानों को नष्ट करने की क्षतिपूर्ति के रूप में और सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति जो जर्मनी से युद्ध के फलस्वरूप होने वाली हानि के लिये वसूल कराई जावेगी, आंशिक भुगतान के रूप में, जर्मनी को सार की घाटी की कोयले की खानें पूर्ण तथा एकमात्र अधिकार तथा उनके शोषण के एकाकी अधिकारों के साथ फ्रांस को देनी थीं। परन्तु जर्मनी फ्रांस को केवल खानें देगा प्रदेश नहीं। तथापि इस प्रदेश पर तथा इसकी जर्मन जनसंख्या पर अपनी प्रभुसत्ता के विस्तार के बिना फ्रांसीसियों को इन खानों को संचालित करने की स्वतन्त्रता प्रदान कराने के लिये संधि निर्माताओं ने सार के तात्कालिक भविष्य के लिये विशाल एवं जटिल व्यवस्थायें कीं क्योंकि पैरिस सम्मेलन के कथनानुसार इस बार जर्मन उत्पीड़ितों सहित सार की घाटी वह समस्या उत्पन्न करेगी जो (पिछली बार) अलसेस-लॉरीन ने उत्पन्न की थी। जर्मनी ने राष्ट्र-संघ को वह प्रदेश नहीं दिया वरन् उसका शासन मात्र दिया जोकि वहाँ के निवासियों के लिये पन्द्रह वर्ष तक न्यासधारी के रूप में कार्य करेगा। वहाँ के निवासियों को इस अवधि के अन्त में जनमत संग्रह के द्वारा इस भावना को व्यक्त करने का अधिकार होगा कि वे जर्मनी अथवा फ्रांस में से किस की संप्रभुता को पसन्द करते हैं अथवा वे अनिश्चित काल के लिये राष्ट्र संघ के अधीन रहना चाहते हैं। मतदाताओं द्वारा अपनी इच्छा को अभिव्यक्त किये जाने के पश्चात् राष्ट्र संघ अपना अन्तिम निर्णय देगा कि वह प्रदेश किस प्रभुसत्ता के अधीन रखा जावे। इस मध्य उन पन्द्रह वर्षों तक (इसका) शासन संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले और उसके द्वारा नियुक्त किये जाने वाले पाँच सदस्यों के आयोग के हाथों में रहेगा। सार की घाटी के क्षेत्र के भीतर इस शासन करने वाले आयोग को शासन की वे सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो अब तक जर्मन साम्राज्य अथवा प्रशा अथवा ववेरिया को प्राप्त थीं।

आस्ट्रिया जर्मनी में नहीं मिलाया जावेगा

इस सन्धि में जर्मनी पोलैण्ड की स्वतन्त्रता को मान्यता देने पर ही सहमत नहीं हुआ वरन् जैकोस्लाविक गणतन्त्र की स्वतन्त्रता के विषय में भी यह सहमत हुआ। इस गणतन्त्र के पक्ष में उसने साइलेशिया में अपने कुछ भाग त्याग दिये थे। उसने आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता को भी मान्यता प्रदान कर दी चाहे आस्ट्रिया की सीमायें पाँच महाशक्तियों द्वारा कुछ भी निश्चित की जावें। उसने यह वचन दिया कि आस्ट्रिया की यह स्वतन्त्रता असंक्रमणीय होगी किन्तु **राष्ट्र संघ की परिषद्** की अनुमति से उसका संक्रमण किया जा सकता है। इसका आशय यह था कि यदि दोनों के निवासियों की इच्छा हो तो भी परिषद् में प्रतिनिधित्व प्राप्त ... बिना आस्ट्रिया को जर्मनी से नहीं मिलाया जा सकता

है। जर्मनी ने उन प्रदेशों की स्वतन्त्रता को भी स्थायी एवं असंक्रमणीय मानना स्वीकार कर लिया जो १ अगस्त १९१४ को पुराने रूसी साम्राज्य के भाग थे। वह इस पर भी सहमत हो गया कि **पाँच महाशक्तियों** द्वारा तत्कालीन राज्यों अथवा भविष्य में बनाये जाने वाले पुराने रूस के अन्तर्गत राज्यों के साथ जो कुछ भी संधियाँ की जावेंगी उनको तथा उन सन्धियों में ऐसे राज्यों की जो सीमायें निर्धारित की जावेंगी उनको मान्यता प्रदान करेगा। उसने ब्रेस्ट लिटोवस्क की सन्धि को समाप्त करने तथा बॉलशेविकी रूस से की गयी अन्य सभी व्यवस्थाओं को समाप्त करने का भी वचन दिया। यूरोप के बाहर उसने अपने उपनिवेश ही **पाँच महाशक्तियों** को नहीं दिये वरन् उसने मौरोको तथा मिस्र में सन्धिजन्य अधिकारों तथा स्वत्वों को जिनका वह अब तक उपभोग करता रहा था, भी त्याग दिया और मौरोको में फ्रांसीसी संरक्षित राज्य एवं मिस्र में आंग्ल संरक्षित राज्य को मान्यता प्रदान कर दी। साथ ही हस्तक्षेप करने के सभी अधिकारों को त्याग दिया। उसने जापान के पक्ष में उन सब अधिकारों और स्वत्वों को त्याग दिया जिनका उपभोग वह चीन में १८९८ से कर रहा था अर्थात् उसने शांतुंग प्रान्त के अपने अधिकारों को त्याग दिया।

जर्मन सैनिकवाद का विनाश

जर्मनी की जिन प्रादेशिक हानियों का वर्णन वर्साई की सन्धि में किया गया है वे उपर्युक्त रूप की थीं। सन्धि के एक अन्य महत्त्वपूर्ण भाग ने एक अन्य क्षेत्र में उसकी कार्य-स्वतन्त्रता को प्रतिबंधित कर दिया। यह ऐसा क्षेत्र था जिसमें उसकी अब तक सर्वाधिक रुचि रही थी। सन्धि में अति सूक्ष्म विवरण के साथ यह निर्धारित किया गया था कि वह विविध प्रकार की कितनी सेना तथा सैनिक सामग्री रख सकता है। सामान्य रूप से इन अनुच्छेदों ने जर्मनी की सैनिक शक्ति को घटाकर उसका उतना नीचा स्तर कर दिया जितना कि बहुत से छोटे राज्यों का रहा होगा। यदि ये अनुच्छेद लागू किये गये तो भविष्य में जर्मनी अपने पड़ोसियों को डराने अथवा धमकाने की सामर्थ्य नहीं रखेगा। यदि वह कोई अभियान उनके विरुद्ध प्रारंभ कर सकेगा तो वह केवल आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रचारात्मक अभियान होगा, सैनिक अभियान नहीं होगा।

जर्मन सेना

चार सहस्र से कम अधिकारियों सहित उसकी सेना में १९२० के पश्चात् एक लाख से अधिक सैनिक नहीं होंगे। सार्वभौम अनिवार्य सैनिक सेवा समाप्त कर दी गयी तथा जर्मनी की सेना में केवल स्वयं सेवक ही सम्मिलित एवं भर्ती किये जा सकते थे। सेवा काल इतना लम्बा रखा गया था कि वह रुकावट डालने वाला सिद्ध हो सके। व्यक्तिगत तथा अराजप्रत्रित-अधिकारी की भर्ती यदि वे भर्ती हों तो, लगातार बारह वर्षों के लिए होनी चाहिए; अधिकारियों की भर्ती पच्चीस वर्ष के लिए होगी। उनके सेवा काल के समाप्त होने के पूर्व किसी भी वर्ष किसी भी कारण से उनमें पाँच प्रतिशत से अधिक सेवामुक्त नहीं किये जावेंगे।

ये अनुच्छेद इस बात को प्रकट करते हैं कि इनके निर्माताओं ने इतिहास की लघु शिक्षाओं में से केवल एक शिक्षा ग्रहण की थी। १८०६ में प्रशा की विजय के

पश्चात् नैपोलियन ने यह प्रतिबंध लगाया था कि प्रशा की सेना में बयालीस सहस्र सैनिकों से अधिक नहीं होंगे। प्रशा की सरकार ने इस आज्ञा को विवश होकर स्वीकार कर लिया था परन्तु उसने एक मौलिक योजना तैयार की और इन सैनिकों से अल्पकाल तक सैनिक सेवा करायी अर्थात् केवल उतने समय तक जितने में वे सैनिक जीवन की परमावश्यक बातों को सीख लें। इसके पश्चात् वे सेवामुक्त कर दिये जावेंगे और दूसरे व्यक्ति उसी प्रशिक्षण को प्राप्त करेंगे। इस प्रणाली से बयालीस सहस्र के कई गुने पुरुषों ने सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त किया और वे अन्तिम अभियानों में युद्ध कर सके जिनके फलस्वरूप नेपोलियन को सेण्ट हैलीना जाना पड़ा। वर्साई के सन्धि-निर्माताओं की यह इच्छा थी कम से कम इस दिशा में इतिहास की पुनरावृत्ति न हो। परन्तु उनको इस बात का विश्वास नहीं था कि आज का जर्मन कहीं कोई ऐसी योजना न बना ले कि जिससे वह उस वस्तु को अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर ले जिस पर उसके लिए प्रयत्क्ष रूप से प्रतिबंध लगाया गया था। (अत:) उन्होंने यह प्रतिबंधित किया कि "शिक्षा संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, सेवामुक्त सैनिकों की संस्थाओं, गोली चलाने की अथवा पर्यटन संस्थाओं तथा सामान्यत: किसी भी प्रकार की संस्थाओं को, चाहे उनके सदस्यों की कितनी भी आयु हो, सैनिक विषयों में संलग्न नहीं रहना चाहिए" और उनको विशेष रूप से न तो अपने सदस्यों को अस्त्रों को धारण करने अथवा प्रयोग करने का प्रशिक्षण (स्वयं) देना चाहिए और न किसी के द्वारा दिये जाने की अनुमति देनी चाहिये। न शासकीय अधिकारियों जैसे सीमा शुल्क अधिकारियों, वन रक्षकों, तट रक्षकों अथवा स्थानीय पुलिस को सैनिक प्रशिक्षण के लिए एकत्रित होना चाहिये। वे सभी सैनिक विद्यालय समाप्त कर दिये गये जिनकी सैनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए नितान्त आवश्यकता नहीं थी। साथ ही वह **महा सामान्य** सैनिक वर्ग भी समाप्त कर दिया गया जिसने मानव जाति के निकट अतीत विचारों और कल्पनाओं में इतना विशाल स्थान प्राप्त कर लिया था।

युद्ध सामग्री का उत्पादन प्रतिबन्धित किया गया

इस प्रकार भविष्य में जर्मनी केवल एक निश्चित संख्या में सैनिक तैयार कर सकेगा। वह केवल निश्चित मात्रा में सैनिक शस्त्रास्त्र तथा सामग्री भी उत्पादित कर सकेगा और वह मात्रा संधि की सूचियों में मुद्रित की गयी थी यह भी उपबंधित किया गया था कि शस्त्रास्त्रों, गोला-बारूद अथवा अन्य सभी प्रकार की सैनिक सामग्री को केवल पाँच **महाशक्तियों** द्वारा स्वीकृत कारखानों में ही बनाया जा सकेगा। इनके अतिरिक्त अन्य ऐसी सभी संस्थायें (कारखाने) सन्धि लागू होने के तीन मास के भीतर बन्द कर दी जावेंगी। साथ ही जर्मनों से सभी प्रकार के शस्त्रास्त्र, गोलाबारूद, और अन्य युद्ध सामग्री का आयातनिर्यात पूर्णत: निषिद्ध किया गया था। जर्मनी दम घुटाने वाली, विषैली तथा अन्य गैसें, शस्त्र सज्जित कारें अथवा टैंकों का उत्पादन अथवा निर्यात नहीं कर सकेगा।

राइन नदी के पूर्वी किनारे अथवा उसके बाँयें किनारे पर पूर्व की ओर पचास किलोमीटर अथवा लगभग छत्तीस मील तक जर्मनी किलेबंदी नहीं कर सकेगा। इस नदी के पश्चिम में तथा उपर्युक्त क्षेत्र के सभी किले और किलेबन्दियाँ समाप्त अथवा नष्ट कर दी जावेंगी।

जर्मनी की नौसेना

जर्मनी की सेना में बड़े आकार के छः युद्धपोत, छः लघु युद्धपोत बारह विध्वंसक और बारह तारपीडो नौकायें रह सकेंगी तथा नौसैनिकों की संख्या अधिकारियों को मिलाकर पन्द्रह सहस्र से अधिक नहीं होगी तथा अधिकारियों की संख्या सौ से अधिक नहीं होगी। ११ नवम्बर के युद्ध विराम के अन्तर्गत जो युद्धपोत स्थानबद्ध किये गये थे वे समर्पित करने होंगे। जर्मनी की सभी पनडुब्बियाँ पाँच महाशक्तियों को दी जानी थीं और भविष्य में जर्मनी को व्यापारिक उद्देश्यों के लिए भी पनडुब्बी प्राप्त करने का अधिकार नहीं था।

किले बंदियाँ, सैनिक संस्थान तथा हैलगोलैंड का बंदरगाह नष्ट किये जाने थे और उनका कभी भी पुनः निर्माण नहीं होना था। कील नहर स्वतन्त्र रहेगी तथा जिन राष्ट्रों की जर्मनी के साथ मित्रता है उनके व्यापारिक तथा सामरिक जलपोत पूर्ण समानाधिकार के साथ उसमें प्रवेश कर सकेंगे।

वायुसेना नहीं

जर्मनी के सशस्त्र बलों में स्थल वायुसेना तथा जलवायु सेना नहीं रहेगी। सम्पूर्ण जर्मनी में वायुपोतों अथवा वायुपोतों के इंजिनों का उत्पादन निषिद्ध कर दिया गया। सामान्य अपवाद के साथ इस प्रकार सभी सामग्री, जो पहले से जर्मनी में विद्यमान थी, **पाँच महाशक्तियों** को दे देनी चाहिये।

ये ऐसे कठोर उपबन्ध थे कि यदि ये कार्यान्वित हो जावें तो जर्मनी का सैनिकवाद नष्ट हो जावेगा। परन्तु कार्यान्वित किये कैसे जाते? सन्धि में यह उपबंधित किया गया था कि जर्मनी अधिकारियों द्वारा इन उपबंधों को पूरा किये जाने की कार्यवाही की देखभाल करने के लिए **पाँच शक्तियों** द्वारा **अन्तः मित्र राष्ट्रीय नियन्त्रण आयोग** स्थापित किये जाने चाहिए। ये **आयोग** जर्मनी की राजधानी में अपने संगठन स्थापित कर सकते थे, अथवा जर्मनी के किसी भाग में अपने कार्यकर्त्ता (एजेन्ट) भेज सकते थे और इच्छानुसार जर्मन शासन से (आवश्यक) सूचना अथवा सहायता माँग सकते थे। जर्मन शासन को सन्धि द्वारा उपबन्धित वस्तुओं को देने, नाश करने, तोड़ देने, और गिरा देने के सभी व्यय भार वहन करने थे।

विलियम द्वितीय पर अभियोग चलाया जावेगा

युद्ध को समाप्त करने की कला के संबन्ध में एक अन्य अद्भुत विशेषता का भी इस सन्धि में उपबन्ध किया गया था। यह भविष्य में सामान्य शान्ति को भंग करने वालों को रोकेगी तथा (युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व) पर्याप्त विचार करने पर बाध्य करेगी। इसने जर्मनी के भूतपूर्व सम्राट्, विलियम द्वितीय पर सार्वजनिक रूप से 'अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता और संधियों की पवित्रता के विरुद्ध सबसे बड़े अपराध के लिए' दोषारोपण किया और उसने यह उद्घोषित किया कि अभियोग की सुनवाई करने के लिये पाँच न्यायाधीशों का एक न्यायालय स्थापित किया जावेगा। इन न्यायाधीशों में से एक-एक न्यायाधीश संयुक्त राज्य, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान द्वारा नियुक्त किया जावेगा। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के पवित्र एवं गंभीर उत्तरदायित्वों एवं अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता की वैधता को प्रमाणित करने के लिये उस दण्ड को निर्धारित करने का इस न्यायालय का कर्त्तव्य होगा जिसको यह उचित समझे। उन व्यक्तियों के अभियोगों की सुनवाई करने

के लिये भी सैनिक न्यायाधिकरण स्थापित किये जाने थे जिन पर युद्ध की विधियों और प्रथाओं के विरुद्ध कार्य करने का दोषारोपण किया गया था। ऐसे व्यक्ति प्रार्थना किये जाने पर जर्मन शासन द्वारा मित्रराष्ट्रों के सुपुर्द कर दिये जावेंगे। जर्मन शासन उन अभिलेखों और सूचनाओं को देने पर भी सहमत हो गया जिनकी आवश्यकता पड़े।

क्षतिपूर्ति

इस **संधि** का एक अन्य तथा अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग और था जिसका सम्बन्ध उस क्षतिपूर्ति से था जो कि जर्मनी को अपने शत्रुओं की महती आर्थिक क्षतियों के लिये करनी थी। इस **संधि** द्वारा जर्मनी ने यह स्वीकार किया कि युद्ध में मित्र राष्ट्रों की सरकारों और जनताओं को जो हानि हुई है उसका उत्तरदायित्व उस पर तथा उसके साथियों पर है। परन्तु इतने विशाल धन का भुगतान उनकी सामर्थ्य[1] के बाहर था। इसलिए उस दण्ड का अधिकांश भाग वह नहीं देगा। परन्तु अपने शत्रुओं की असैनिक जनता की क्षतिपूर्ति करने का उसने निश्चयरूप से वचन दिया। इसका अभिप्राय यह था कि जो संहार और विनाश उसने किया था उसकी पूर्ति उसको धन, सामग्री और श्रम के रूप में करनी चाहिये। उसे विशिष्ट प्रदेशों को पूर्व दशा में लाने के लिये सहायता करनी चाहिये। उसे ध्वस्त नगरों और ग्रामों का पुन-निर्माण करना चाहिए। जो लूट का सामान वह गाड़ियों में भरकर जर्मनी ले गया था वह उसको लौटाना चाहिये। उसे यंत्र के स्थान पर यंत्र, कारखाने के स्थान पर कारखाने, जलपोत के स्थान पर जलपोत स्थापित कर देने चाहिए। सामान्य रूप से उसे विजित प्रदेशों के पुर्नानिर्माण के लिये श्रम और धन की व्यवस्था करनी चाहिये। परन्तु यह सब कितना होगा ? स्पष्टत: यह योंही निश्चित नहीं किया जा सकता था वरन् इसका निश्चय पूर्ण अनुसंधान के पश्चात् ही सम्भव था अस्तु सन्धि में यह उप-बंधित किया गया था कि उपर्युक्त क्षति तथा तोड़फोड़ के लिए जो धनराशि जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप में दी जावेगी। उसका निश्चय एक **अन्त: मित्र राष्ट्रीय आयोग** द्वारा किया जावेगा। यह आयोग **क्षतिपूर्ति आयोग** कहलावेगा और वह आवश्यक अनु-संधान करेगा तथा १ मई १९३१ से पूर्व वह जर्मन शासन को इस बात की सूचना देगा कि उसके कितने उत्तरदायित्व होंगे। यह आयोग संधि के कार्यान्वियन का एक मुख्य माध्यम होगा। पैरिस में इसकी बैठकें होंगी और इसकी कार्यवाही कई वर्षों तक चालू रहेगी। यह समय-समय पर जर्मनी के सामर्थ्य और साधनों पर विचार करेगा और वह निश्चित माँगें भी पेश करेगा। साथ ही यह भी बतावेगा कि वे माँगें किस प्रकार पूरी की जा सकती हैं।

मित्र राष्ट्रों को अविलम्ब अपने औद्योगिक तथा आर्थिक जीवन को पुनर्व्य-वस्थित करने के लिये सक्षम बनाने के हेतु १ मई १९२१ तक, पूर्ण धनराशि के निर्धारित होने के पूर्व, जर्मनी को दो सौ खरब स्वर्ण मार्क (लगभग चालीस खरब डालर) **क्षतिपूर्ति आयोग** को देने होंगे। इसके पश्चात् उसको कितना और देना होगा ? यह आगे निर्धारित होना था। परन्तु यह धनराशि सुगमता से एक सहस्र लाख मार्क हो सकती थी। जर्मनी इस बात पर

जर्मनी द्वारा किया जाने वाला प्रारम्भिक भुगतान

1. साधनों

भी सहमत हो गया कि वह क्षतिपूर्ति के लिये अपने प्रत्यक्ष साधनों का प्रयोग करेगा अर्थात् वह शत्रु को अपने जलपोत, कोयला, रंग, रासायनिक उत्पादन, जीवित प्राणी तथा अन्य वस्तुयें शत्रुओं को देने पर सहमत हो गया। इन वस्तुओं की संख्या और मात्रा आयोग द्वारा निर्धारित की जावेंगी और ये समस्त वस्तुयें इसके क्षतिपूर्ति के हिसाब में जमा के खाने में लिखी जावेंगी। उदाहरण के लिये, उसको अपने १६०० टन से अधिक भार क्षमता वाले सभी जलपोत, १००० और १६०० टन के बीच की भार क्षमता वाले आधे जलपोत, भाप से चलने वाले टनभार क्षमता वाले जलपोतों का चतुर्थांश देना होगा। इसके अतिरिक्त उसको मित्र राष्ट्रों को २००,००० टन भार क्षमता के जलपोत प्रतिवर्ष बनाकर देने होंगे। उसको यह सब दण्ड उसकी कई वर्ष की पनडुब्बियों की कार्यवाहियों के लिये दिया गया था।

फ्रांसीसी झण्डों को लौटाना

यह सिद्धान्त पदार्थ-क्षेत्र तथा मनोभाव और मानवीय भावना के क्षेत्रों में लागू होना था। लूवे के पुस्तकालय में जितनी पाण्डुलिपियों, मुद्रित पुस्तकें और मानचित्र जलाये गये थे उतनी ही संख्या तथा मूल्य की पाण्डुलिपियाँ, मुद्रित पुस्तकें तथा मानचित्र जर्मनी द्वारा लूवे के विश्वविद्यालय को प्रदान किये जावेंगे। उस फ्रांस को कुछ अभिलेख तथा कूटनीति प्रपत्र, विजयोपहार तथा कलाकृतियाँ देनी होंगी जो कि जर्मनी के अधिकारियों द्वारा १८७०-७१ के युद्ध में फ्रांस ले जाई गयी थी और विशेष रूप से वे फ्रांसीसी झण्डे देने होंगे जो कि उस युद्ध में अपहृत किये गये थे। उसे हैजाज के नरेश को खलीफा उसमान का मूल कुरान भी लौटाना होगा। कहा जाता था कि यह कुरान उसके मित्र सुल्तान ने सम्राट् विलियम द्वितीय को भेंट किया था, तथा उसे कुछ कलाकृतियाँ बेलजियम को भी लौटानी थीं।

संधि पर लॉयड जार्ज की टिप्पणियाँ

प्रादेशिक शर्तें न्यायोचित थीं

इस महत्त्वपूर्ण सन्धि के कुछ उपबन्ध इस प्रकार के[1] थे। अभी वर्णन किये हुये क्षतिपूर्ति विषयक भाग पर, सन्धि पर हस्ताक्षर होने के कुछ दिन पश्चात् संसद में प्रस्तुत करते हुये, ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लायर्ड जार्ज ने विवाद में कहा था, "मैं समझता हूँ कि जो शर्तें जर्मनी पर थोपी गयी हैं उनको कोई भी व्यक्ति तब तक अन्यायपूर्ण नहीं बतावेगा जब तक कि वह यह विश्वास न करता हो कि युद्ध में जर्मनी का पक्ष न्यायोचित था।" "संधि की शर्तों के कुछ पहलू भयानक थे परन्तु", उसने कहा, "वे कार्य भी भयानक थे जो उन शर्तों को न्यायोचित बनाते थे और यदि जर्मनी जीत जाता तो और अधिक भयानक परिणाम हुये होते।" "जो प्रहार असफल रहा है उसके कारण सारा संसार हिल गया है। यदि वह प्रहार सफल हो जाता तो यूरोप की स्वन्त्रता तिरोहित हो जाती।" प्रादेशिक शर्तों के विषय में लायड जार्ज ने यह उद्घोषणा की कि जर्मनी से जो प्रदेश लिये गये थे वे केवल लौटाये गये प्रदेश थे—अलसेस-लॉरीन उस देश को लौटा दिया गया था जिससे वह शक्ति द्वार छीन लिया गया था और जिस देश के प्रति उसके निवासियों

---

1. उपरिलिखित प्रकार के।

का प्रगाढ़ प्रेम था। स्लेस्विग के लौटाने के विषय में उसने कहा कि 'इस प्रदेश का होहैजोलर्न वंश द्वारा छीना जाना नीचतम धोखे का कार्य था, एक असहाय देश को लूटना था और वह भी इस बहाने के साथ कि ऐसा नहीं किया जा रहा था, तथा वहाँ की जनता की इच्छा के विरुद्ध उसको अधीन बनाये रखना था।' पोलैण्ड के लौटाने के विषय में उसने कहा कि इसको रूसी, आस्ट्रियायी तथा प्रशायी निरंकुशतंत्र ने छिन्नभिन्न कर दिया था और अब वह पुनः पोलैण्ड के झण्डे के नीचे संयोजित कर दिया गया है। उसने आगे चलकर कहा, 'ये सब ऐसे प्रदेश हैं जो जर्मनी के अधीन नहीं रहने चाहिये।"

उसने संधि के अन्य पहलुओं के सम्बन्ध में भी कहा: "जर्मनी ने अपनी सेना के जो उपयोग किये उन पर विचार करने से उसको छिन्नभिन्न एवं निःशस्त्रीकृत कर देने में कोई अन्याय नहीं है। उपनिवेशों के निवासियों के साथ किये गये दुर्व्यवहार के प्रमाण मिलने के पश्चात् और उस कार्यवाही के पश्चात्

कैंजर पर अभियोग चलाना न्यायोचित

जो उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता के लिये की, यदि मित्रराष्ट्र जर्मनी को उसके उपनिवेश लौटा देते, तो यह निकृष्ट विश्वासघात होता है। अब उन लोगों पर चलाये जाने वाले अभियोगों पर विचार कीजिये जो युद्ध के लिए उत्तरदायी थे। यदि इस प्रकार के युद्ध रोके जाने हैं तो उन व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराना चाहिए जो उनके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हैं तथा जिन्होंने उनका षड़यन्त्र रचने और योजनायें बनाने में अपनी भूमिका अदा की है। अतएव **मित्रभाव** ने यह निश्चय किया कि कम से कम उनके निर्णयानुसार जिस व्यक्ति पर इसका प्राथमिक उत्तरादायित्व था, उस पर उन सन्धियों के तोड़ने के अपराधों के लिए जिनका पालन करना उसका कर्त्तव्य था इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ करने के लिए अभियोग चलाया जाना चाहिए। यह एक सामान्य कार्यवाही नहीं है और इसके लिये मुझे खेद भी है क्योंकि यदि यह कार्यवाही इससे पूर्व की गयी होती तो बहुत कम युद्ध हुये होते।"

इस प्रधानमन्त्री ने यह तर्क देते हुए अपना वक्तव्य चालू रखा कि यह प्रतिशोध पूर्ण सन्धि नहीं थी और कि 'युद्ध की पुनरावृत्ति के विरुद्ध प्रत्येक सावधानी बरतना और जर्मनी का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना कि

यह प्रतिशोधात्मक सन्धि नहीं थी

जो महत्वाकांक्षी शासकों और जनताओं को ऐसे कुख्यात कार्यों को पुनः करने से हतोत्साहित करे', प्रतिशोध नहीं था। इसलिये जर्मनी की जनता ने युद्ध की अनुमति दी थी। इसलिये (संधि की) शर्तों में यह प्रदर्शित करना आवश्यक था कि यदि राष्ट्र अपने पड़ोसियों के विरुद्ध किसी उत्तेजना से युद्ध करेंगे तो उनको भविष्य में क्या परिणाम भोगने होंगे।"

यह बात अशुभ सूचक मानी जा सकती थी कि २८ जून १९१९ को वर्साई में **प्रसिद्ध दर्पण महत्वकक्ष** में सन्धि पर हस्ताक्षर करने के पूर्व ही जर्मनों द्वारा उसकी दो स्पष्ट शर्तें तोड़ दी गयीं। हस्ताक्षरों के ठीक पहले

जर्मनी द्वारा सन्धि का उल्लंघन

जर्मनों ने उस जहाजी बेड़े को डुबा दिया जो कि स्केपाल्फो में युद्ध विराम के समय से स्थान बद्ध था। इस प्रकार उन्होंने सन्धि में उपबन्धित (उसके) समर्थन को टाल दिया। और बर्लिन में अन्टर डिन लिंडिन में फ्रैडरिक महान् की मूर्ति के सम्मुख वे फ्रांसीसी झण्डे जला दिये गये जो जर्मनों ने १८७० में ले लिये थे।

गार्ड केवेलरी डिवीजन (चौकसी करने वाली अश्वारोही सेना) के जर्मन अधिकारी तथा सैनिक **युद्ध संग्रहालय** में घुस गये और वे फ्रांसीसियों को दिये जाने के लिए पहले से बाँधकर रखे गये झण्डों को लेकर चले गये। उन्होंने झण्डों को गैसोलीन से भिगो दिया था। जब उन्होंने उनको प्रज्वलित करके उछाला तब भीड़ ने यह गाना गाया, 'जर्मनी सर्वोपरि' ये घटनायें सन्धि पर हस्ताक्षर होने के पूर्व ही घटित हुई थीं तथा जर्मन शासन ने यह उद्घोषित किया था कि वह उन शर्तों को स्वीकार करेगी जो उसके समक्ष (कई) सप्ताह पूर्व प्रस्तुत कर दी गयी थीं। संसार को इस बात का पर्याप्त संकेत दे दिया था कि बहुत से जर्मन इस सन्धि को न्यायोचित नहीं समझते थे और इसको उल्लंघन करने के प्रयत्नों तथा उल्लंघनों की भविष्य में विश्वासपूर्वक आशा की जा सकती है।

संधि का सत्यांकन

अब संधि का भविष्य (भाग्य) विभिन्न देशों की संसदों पर निर्भर था जिनके समक्ष वह सत्यांकन के लिये प्रस्तुत की गयी थी। आंग्ल, फ्रांसीसी और संयुक्त राज्य की संसदों में इस सन्धि के साथ कुछ (अन्य) संधियाँ भी प्रस्तुत की गयी थीं जो कि संयुक्त राज्य तथा फ्रांस के मध्य और इंगलैण्ड तथा फ्रांस के मध्य सम्पादित की गयी थीं। इनकी शर्तों के अनुसार इन दोनों शक्तियों ने यह वचन दिया था कि यदि फ्रांस पर जर्मनी के बिना किसी उत्तेजना ने आक्रमण किया तो वे उसकी अविलम्ब सहायता करेंगी। इन संधियों पर भी वर्साई में उसी दिन हस्ताक्षर हुये थे जिस दिन जर्मनी के साथ की गयी सन्धि पर हस्ताक्षर हुये थे। ये सन्धियाँ फ्रांसीसियों को पुनः आश्वस्त करने के लिये की गयी थीं क्योंकि वे यह अनुभव करते थे कि अपरीक्षित एवं अनिश्चित राष्ट्रसंघ उनको एक ऐसे पड़ोसी से, जो कि फ्रांस की अपेक्षा बड़ा था, पर्याप्त संरक्षण प्रदान नहीं करता था। फ्रांसीसियों का विश्वास था कि वह एक ऐसा पड़ौसी था जो सम्भवतः अवश्य ही उचित अवसर पर प्रतिशोधात्मक युद्ध आरम्भ करके १९१८ के अपमान को दूर करने का प्रयत्न करेगा। यह उपबंधित किया गया था कि यह **फ्रांस-आंग्ल-अमरीकी-मैत्री** तब तक लागू रहेगी जब तक कि राष्ट्रसंघ की परिषद् इस बात का निर्णय कर दे कि संघ स्वयं पर्याप्त संरक्षण का आश्वासन देता है।

फ्रांस, इंगलैंड और संयुक्त राज्य के मध्य संधियाँ

वर्साई की सन्धि में यह उपबन्धित किया गया था कि ज्योंही पाँच महाशक्तियों में से तीन महाशक्तियाँ एक ओर से तथा जर्मनी दूसरी ओर से इसके सत्यांकनों को पैरिस में जमा कर दें त्यों ही यह लागू हो जावेगी। ९ जुलाई को **जर्मन राष्ट्रीय सभा** ने ११५ के विरुद्ध २०८ मतों से इसको सत्यांकित कर दिया। ९९ प्रतिनिधियों ने मतदान में भाग लेना अस्वीकार किया। कुछ दिन पश्चात् ब्रिटिश संसद ने थोड़े से दिनों के वाद-विवाद के पश्चात् इसको तथा **आंग्ल फ्रांसीसी संधि** को प्रायः सर्वसम्मति से अनुसमर्थित कर दिया। फ्रांसीसी संसद ने इसको अक्टूबर में सत्यांकित किया तथा उसी मास इटली की सरकार ने इसको स्वीकार करने की उद्घोषणा की। अस्तु आवश्यक (संसद) संस्था ने इसको सत्यांकित कर दिया था। क्या यह सन्धि अविलम्ब कार्यान्वित कर दी जावेगी? क्या राष्ट्रसंघ अविलम्ब कार्य करने लगेगा?

अमरीका तथा सन्धि

अमरीका के सहयोग के विना यूरोप के राष्ट्र नवीन यन्त्र (राष्ट्रसंघ) को स्थापित करने के लिए समुत्सुक नहीं थे और अमरीका में यह संधि स्थगित पड़ी हुई थी। संयुक्त राज्य की जनता में सन्धि के उस भाग का वहुत कम विरोध किया जा रहा था जिसका सम्वन्ध प्रत्यक्षतः जर्मनी से था। अत्यधिक मत यह था कि जर्मनी पर थोपी गयी शर्तें न्यायोचित तथा आवश्यक थीं। चार सौ से अधिक अनुच्छेदों में से केवल तीन अनुच्छेदों के कारण कुछ विरोध किया जा रहा था। ये अनुच्छेदों शांतुंग की व्यवस्था, अर्थात्, उस चीनी प्रांत में जर्मनों के अधिकारों और स्वत्त्वों के जापान को हस्तांतरण से सम्वन्ध रखते थे। परन्तु राष्ट्रसंघ से संवन्धित छब्बीस अनुच्छेदों के कारण **सीनेट** तथा जनता दोनों में दीर्घकालीन एवं कटु विवाद प्रारम्भ हो गया। १९१९ की सम्पूर्ण ग्रीष्म तथा शरद ऋतु में संघ पर लगातार वाद-विवाद होता रहा और ज्यों-ज्यों यह चालू रहा त्यों-त्यों यह अधिक गंभीर एवं कटु होता चला गया। इसके मूलभूत सिद्धान्तों और विशेष उपलब्धों का कई योग्य भाषणों में खण्डन तथा मण्डन किया गया। यह मत-वैभिन्य शासन समर्थक **लोकतन्त्रवादियों** और **गणतन्त्रात्मक** विरोधी दल के मध्य में था। इस विरोधी दल का सीनेट में हल्का वहुमत था। विवाद में मत का प्रत्येक पहलू अभिव्यंजित किया गया था। कुछ सदस्य इस पक्ष में थे कि इस सन्धि को पूर्ण रूप से तथा समग्र रूप से अस्वीकार कर देना चाहिए। अतिवादियों (**पूर्णरूप से स्वीकार करने के समर्थकों और पूर्णरूप से अस्वीकार करने के समर्थकों** के वीच) में ऐसे भी व्यक्ति थे जो कुछ परिवर्तन चाहते थे, कुछ ऐसे थे जो वहुत से परिवर्तन चाहते थे। इनमें से कुछ यह चाहते थे कि ये परिवर्तन संशोधनों के द्वारा किये जाने चाहिये जिससे संपूर्ण **सन्धि** को **शान्ति सम्मेलन** के समक्ष पुनः प्रस्तुत करना पड़े और कुछ यह चाहते थे कि वे परिवर्तन "**आरक्षणों**" के द्वारा किये जाने चाहिये ताकि पुनः प्रस्तुत करने की आवश्यकता न पड़े।

अमरीका में संधि का विरोध

१० सितम्बर १९१९ को **विदेशी मामलों की समिति ने सन्धि** के विषय में अपना प्रतिवेदन सीनेट के समक्ष प्रस्तुत किया। इसमें **गणतन्त्रवादी** बहुमत के बहुत से संशोधन तथा आरक्षण थे और **लोकतन्त्रात्मक** अल्पमत ने उनका विरोध किया था। विवाद प्रारम्भ हुआ और जारी रहा। अन्त में अक्टूबर के अन्त में संशोधनों पर मतदान हुआ और वे गिर गये। वहुतों ने उनके विरुद्ध सिद्धान्ततः मतदान नहीं किया। इसलिए विरुद्ध मतदान किया था कि वे जर्मनी के साथ पुनः सन्धि की बातचीत प्रारम्भ करने की आवश्यकता को उत्पन्न कर देने वाली किसी भी प्रक्रिया के पक्ष में नहीं थे। और ये परिवर्तन प्रस्तावों के रूप में अभिव्यंजित किये जाते तो वे उनके पक्ष में मतदान करने के लिये तैयार थे। संशोधनों की असफलता के पश्चात् गम्भीर तथा निर्णयात्मक संघर्ष प्रारम्भ हुआ। अन्त में काफी विवाद के पश्चात् सीनेट के बहुमत ने **पन्द्रह आरक्षणों** को स्वीकार किया जो कि सत्यांकन-प्रस्ताव में सम्मिलित कर लिये गये थे। इन आरक्षणों में वे शर्तें प्रतिपादित

संशोधन अथवा प्रस्ताव ?

पन्द्रह आरक्षण

---

1. अर्थात् सत्यांकित नहीं हुई थी। Lang fire का यही आशय है।

की गई थीं जिनके अधीन संयुक्त राज्य **राष्ट्रसंघ** के **समझौते** सहित **वर्साई की सन्धि** को स्वीकार करेगा। वास्तव में उनमें से बहुतसों का संकेत **समझौते** की ओर ही था और उनमें विवाद के मध्य उस अभिलेख के विरुद्ध की गयी बहुत-सी आलोचनाओं को मूर्तरूप प्रदान किया गया था।

उनमें से एक में यह उपबन्धित किया गया था कि यदि संयुक्त राज्य राष्ट्रसंघ में से निकलना चाहे तो इस बात का निर्णायक केवल एक मात्र वही होगा कि उसने अपने सभी दायित्वों को पूरा किया है अथवा नहीं ? एक का संकेत प्रसिद्ध **दसवें अनुच्छेद** की ओर था। उसने उद्घोषित किया कि "जब तक किसी मामले में कांग्रेस एतदर्थ निर्णय न कर दे तब तक संयुक्त राज्य किसी देश की प्रादेशिक अखंडता अथवा राजनीतिक स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने, अथवा राष्ट्रों के मध्य के विवादों में हस्तक्षेप करने अथवा इस सन्धि के किसी भी अनुच्छेद के अधीन संयुक्त राज्य के सैनिक अथवा नौसैनिक बलों को प्रयुक्त करने का कोई भी दायित्व अपने ऊपर नहीं लेता है क्योंकि संविधान के अनुसार युद्ध की घोषणा करने का एकमात्र अधिकार कांग्रेस को ही प्राप्त है।" दूसरे शब्दों में इसका निर्णय **संघ की परिषद्** अथवा संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति नहीं करेगा कि संयुक्त राज्य की सेना अथवा नौसेना प्रयोग की जावे प्रत्युत कांग्रेस निर्णय करेगी और कांग्रेस को परिषद की सिफारिश स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का समान अधिकार होगा। एक अन्य आरक्षण के अनुसार कांग्रेस की कार्यवाही के बिना संयुक्त राज्य को कोई भी आदेश स्वीकार नहीं करना चाहिए। इसका आशय यह था कि राष्ट्रपति अकेला संयुक्त राज्य को ऐसे कार्य के लिये वचनवद्ध नहीं कर सकता था। एक अन्य आरक्षण ने उद्घोषित किया कि संयुक्त राज्य इस बात का निर्णय करने का एकाधिकार अपने पास सुरक्षित रखता है कि कौन से प्रश्न आंतरिक प्रकृति के हैं और वह इस प्रकार के प्रश्नों को विवाचन अथवा **राष्ट्रसंघ की परिषद्** अथवा **सभा** के समक्ष विचार के लिये प्रस्तुत करना अस्वीकार करता है। एक अन्य आरक्षण का सम्बन्ध **मनरो सिद्धान्त** से था। उसने उद्घोषित किया कि उस सिद्धान्त की व्याख्या केवल संयुक्त राज्य ही कर सकता था और वह सिद्धान्त पूर्णतः राष्ट्रसंघ के क्षेत्राधिकार के बाहर था। एक अन्य आरक्षण ने सन्धि के उन अनुच्छेदों पद संयुक्त राज्य की स्वीकृति को रोक दिया जिनका सम्बन्ध शांतुंग में जर्मनी के अधिकारों को ज्ञापन के प्रति हस्तांतरण से था। संयुक्त राज्य को इन अनुच्छेदों के अन्तर्गत चीन और जापान के बीच उत्पन्न होने वाले किसी भी संभाव्य विवाद में कार्यवाही करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। एक अन्य आरक्षण ने यह उपबन्धित किया कि यदि संयुक्त राज्य किसी भी समय **राष्ट्रसंघ** की **परिषद्** द्वारा प्रस्तावित शस्त्रीकरण पर किसी सीमा को स्वीकार कर ले, तो भी उसको **परिषद्** की सहमति के बिना अपने शस्त्रास्त्रों की वृद्धि करने का उस समय अधिकार होगा जब उस पर आक्रमण होने का भय हो अथवा वह युद्ध में संलग्न हो।

अनुच्छेद १० में परिवर्तन

मनरो सिद्धान्त में हस्तक्षेप मत करो

अमरीका अपनी सेना का आकार नियन्त्रित करेगा

(इन) तथाकथित लॉज आरक्षणों में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण आरक्षण

(उपर्युक्त प्रकार के थे। संन्धि के सत्यांकन करने वाले अनुच्छेद में लिपिवद्ध होने से उनके लिये सीनेट के दो तिहाई मतों की आवश्यकता होगी। इतने मत उनको तभी प्राप्त हो सकते थे जब **गणतन्त्रवादी** तथा **लोकतन्त्रवादी** पर्याप्त संख्या में सम्मिलित हो जाते। परन्तु अधिकांश **लोकतन्त्रवादी** (सदस्य) उनके विरुद्ध थे और वे सन्धि को विना आरक्षणों के सत्यांकित करने के पक्ष में थे। राष्ट्रपति विल्सन ने लॉज आरक्षणों की निन्दा, यह कहकर की कि उनका उद्देश्य 'सन्धि' को अमान्य करना था और उसने सीनेट के लोकतन्त्र वादी सदस्यों से अनुरोध किया कि वे उस सत्यांकन प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान करें जिसमें कि वे (आरक्षण) सम्मिलित थे। इस प्रकार १९ नवम्बर १९१९ को ५५ के विरुद्ध ३९ मतों से सत्यांकन प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। जहाँ तक संयुक्त राज्य का सम्बन्ध था **वर्साई की सन्धि** समाप्त (मृत) थी। वह किसी प्रकार से पुनर्जीवित की जा सकती अथवा नहीं ? वह किसी भिन्न प्रकार के सत्यांकन प्रस्ताव के साथ पारित की जा सकती थी अथवा नहीं ? इन प्रश्नों का कोई भी पहले से उत्तर नहीं दे सकता था।

सीनेट में सन्धि सत्यांकित नहीं हुई

आस्ट्रिया तथा बलगेरिया के साथ सन्धियाँ

पूर्व इसके कि इस श्रांत संसार में शान्ति का युग पूर्णरूप से प्रारम्भ हो सके वहुत सी सन्धि वार्तायें करनी होंगी और वहुत सी अन्य सन्धियाँ करनी होंगी तथा सत्यांकित करनी होंगीं। सन्धियों की शृंखला में जर्मनी के साथ संधि निस्सन्देह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी परन्तु वह केवल एक सन्धि थी। वह अकेली सफल नहीं हो सकती थी क्योंकि उसकी पूर्ति के लिए अन्य सन्धियों की आवश्यकता होगी। यह वात उस (सन्धि के) अभिलेख में पहले से सोच ली गयी थी। इसीलिये उसमें बार वार इस बात का उल्लेख किया गया था कि जो सन्धियाँ अभी नहीं की गयीं उन पर जर्मनी को अपनी अनुमति देनी होगी। जर्मनी के पश्चात् आस्ट्रिया की वारी आई और जर्मनी द्वारा अपनी सन्धि की शर्तों को स्वीकार किये जाने के पूर्व ही २ जून १९१९ को **पैरिस के सम्मेलन** ने अपनी शर्तें आस्ट्रिया के समक्ष प्रस्तुत कर दीं। इसके पश्चात् कुछ समय तक परामर्श तथा परीक्षण होता रहा और उसके प्रतिकूल प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। अन्त में संशोधित सन्धि २० जुलाई को आस्ट्रिया के समक्ष प्रस्तुत की गयी और उस पर उसने १० सितम्बर को हस्ताक्षर कर दिये।

आस्ट्रिया के साथ सन्धि

इसने **द्वैध राजतन्त्र** को समाप्त कर दिया जो अपने दो भागों में विभक्त हो गया था। हैप्सबर्ग वंश समाप्त हो गया और उसके वहुरंग के राजपरिधान को कई राज्यों ने परस्पर विभक्त कर लिया था (अर्थात् कई राज्य स्थापित हो गये थे)। भविष्य में आस्ट्रिया का गणतन्त्र स्थापित होना था तथा जैकोस्लोवाकिया को गणतन्त्र भी वनना था। सम्भवतः हंगरी का गणतन्त्र भी वनेगा और पुराने साम्राज्य के (कुछ) भाग रूमानिया तथा यूगोस्लाविया को दे दिये जावेंगे। सन्धि केवल आस्ट्रिया के साथ की गयी थी जोकि अब यूरोप का एक लघुस्तर का राज्य रह गया था।

इतिहास में यह अभिलेख **सेण्ट जर्मन की सन्धि** के नाम से विख्यात होगा क्योंकि इस पर पैरिस के उस भाग में स्थित पुराने राजप्रासाद में उस पर हस्ताक्षर

सेण्ट जर्मन में उस पर हस्ताक्षर हुए

हुए थे। सामान्य रूप से इसकी योजना जर्मनी की सन्धि के समान है। सर्वप्रथम राष्ट्र संघ के **समझौते** का वर्णन है जिसे स्वीकार करने पर आस्ट्रिया को विवश किया गया था परन्तु जर्मनी की भाँति वह भी तब तक राष्ट्र संघ में सम्मिलित नहीं किया जावेगा जब तक कि अन्य सदस्य वैसा निर्णय नहीं करेंगे। आस्ट्रिया की सीमायें सावधानी से निर्धारित की गयी थीं और उसने उन राज्यों को मान्यता प्रदान की जोकि उसके पतन के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आ गये थे। उसका निशस्त्रीकरण भी उतने ही सूक्ष्म विवरण के साथ आवश्यक समझा गया था जितना कि जर्मनी का। भविष्य में उसकी सेना बत्तीस सहस्र से अधिक नहीं होनी थी और इसके आकार तथा साज-सज्जा पर भी कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये थे। उनकी सीमा निश्चित कर दी गयी थी। शेष सभी अतिरिक्त युद्ध सामग्री मित्रराष्ट्रों को दी जानी थी। शस्त्रास्त्र का उत्पादन राज्य द्वारा संचालित केवल एक कारखाना ही कर सकेगा। अनिवार्य सैनिक सेवा समाप्त कर दी गयी थी। भविष्य में आस्ट्रिया की नौसेना में डैन्यूब पर केवल तीन देखभाल करने वाली नावें ही होंगी। वह स्थल सेना अथवा जल सेना में वायुसेना को नहीं रख सकेगा। अपने शत्रुओं की असैनिक जनता तथा उसकी सम्पत्ति की की गई क्षति के लिये आस्ट्रिया को जो धनराशि देनी होगी उसकी **मात्रा क्षतिपूर्ति आयोग** द्वारा निर्धारित की जावेगी जिसे उसके साधनों और क्षमता पर ध्यान देना होगा। उसको भी क्षति के अनुसार ही क्षतिपूर्ति करनी होगी अर्थात युद्ध में उसकी कार्यवाही के कारण जो व्यापारिक जलपोत और मछली पकड़ने वाली नावें नष्ट की गयीं अथवा तोड़ी ताड़ी गयी उनके स्थान पर उसको 'टन के लिये टन और वर्ग के लिये वर्ग' के अनुसार क्षतिपूर्ति करनी होगी। उसको भी अपने आर्थिक साधनों को प्रत्यक्षत: आक्रान्त मित्रराष्ट्रीय प्रदेशों के भौतिक पुर्ननिर्माण के लिये प्रयोग करना होगा और उसको कुछ कलाकृतियाँ, कुछ निर्धारित हीरे-जवाहरात, तथा कुछ उपस्कर फर्नीचर तथा इटली से भूतकाल में हैप्सबर्ग वंश द्वारा ले जाये गये कुछ ऐतिहासिक अभिलेख समर्पित करने होंगे।

बलगेरिया के साथ सन्धि का प्रारूप

पैरिस के सम्मेलन ने १९ सितम्बर १९१९ को बलगेरिया के साथ की जाने वाली सन्धि का श्रीगणेश किया गया। इसमें बलगेरिया को राष्ट्र संघ, घटा कर अपनी सेना केवल दस सहस्र करने, नई सीमाओं को स्वीकार करने तथा पैरिस के क्षतिपूर्ति सम्मेलन को समय-समय पर क्षतिपूर्ति की धन राशि देने के दायित्व को स्वीकार करने का उपबन्ध था। यह धनराशि मूल प्रारूप में लगभग ४४५,०००,००० डालर निश्चित की गयी थी। कई सप्ताहों तक विचार-विमर्श करने के पश्चात् नवम्बर १९१९ के अन्त में इस पर हस्ताक्षर किये गये। इतिहास में यह **न्यूसी की सन्धि** के नाम से विख्यात होनी थी।

हंगरी की परिस्थितियाँ (दशा) इतनी स्थिर एवं अनिश्चित थी कि सम्मेलन द्वारा कोई भी सन्तोषजनक बातचीत नहीं की जा सकी। तुर्की के साथ भी तब तक कोई सन्धि नहीं की जा सकती थी जब तक कि **मित्रराष्ट्र** परस्पर इस बात पर सहमत न हो जावें कि कुस्तुन्तुनिया, अनातोलिया, आरमीनिया, तथा उस देवालिये एवं शीघ्र नष्ट हो जाने वाले साम्राज्य के अन्य भागों की क्या व्यवस्था की जावे। रूस से भी अनिवार्यत: यदि संभव हो तो भी उपयोगी बातचीत नहीं की जा सकी।

विश्वयुद्ध में जो राज्य पराजित हुये थे उनकी ऐसी (उपरिलिखित रूप की) विभिन्न सन्धियाँ की गयीं ।

व्यापक असंतोष

इस प्रकार १९१९ के अन्त तक नवीन यूरोप की रूप रेखायें केवल अंशत: निर्मित की गयी थीं। अव्यवस्थित विश्व की व्यवस्था का वृहत्कार्य अपनी प्रारम्भिक दशाओं में था। इस बात की कोई भी व्यक्ति विश्वासपूर्वक भविष्य वाणी नहीं कर सकता था कि जो कुछ भी कार्य किया गया है वह शीघ्रमेव अव्यवस्था तथा संघर्ष के नवीन आक्रमणों द्वारा परिवर्तित कर दिया जावेगा अथवा नहीं। वातावरण में साम्यहीन ध्वनियों और प्रखर विरोधी भावनाओं (उत्तेजनाओं) का उच्च रव और संघर्ष परिव्याप्त था। राष्ट्रों के मन सर्वत्र अव्यवस्थित थे (अर्थात् सभी राष्ट्रों में मानसिक अव्यवस्था व्याप्त थी)। गम्भीर अशान्ति फैली हुई थी। सर्वत्र क्रान्तिकारी सिद्धान्तों की उत्तेजना और असफल आशाओं का प्राबल्य था। विस्फोटक पदार्थों की प्रचुरता थी और एक नये संघर्ष का वास्तविक भय छाया हुआ था। जर्मनी के साथ युद्ध विराम के परवर्ती बारह मास इतिहास के आनन्दपूर्ण वर्षों में स्थान प्राप्त नहीं करेंगे। इन वर्षों में जो विरोध की भावना थी वह अत्यधिक वैमनस्यपूर्ण एवं व्यापक थी। प्रत्येक देश में श्रमिक अशान्ति का अस्तित्व था। जीवन यापन के उच्च व्यय तथा हृदयहीन लाभकारिता (मुनाफाखोरी) के दृश्यों के कारण संघटित एवं कभी-कभी सभी प्रकार के राजनीतिक षड्यन्त्रकर्ताओं और कपटाचारियों द्वारा प्रोत्साहित हड़तालें सभी उद्योगों में हो रही थीं। प्रत्येक देश में ऐसे व्यक्तियों का अस्तित्व था जो वर्तमान संस्थाओं को उलटने के लिये समुत्सुक थे और वे अव्यवस्था एवं अराजकता के सिद्धान्तों को प्रोत्साहन एवं समर्थन प्रदान करते थे तथा अपने अवांछनीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिये औद्योगिक अशान्ति के शोषण करने का प्रयत्न करते थे। सर्वत्र ऐसे व्यक्ति पाये जाते थे जो बड़े उद्योगों के सामाजीकरण (राष्ट्रीय करण) में विश्वास रखते थे, जैसे रेलमार्ग तथा खानें। अर्थात् राज्य द्वारा अथवा स्वयं श्रमिकों द्वारा उद्योगों का अपने हाथ में लिया जाना और उनके स्वामियों का उनसे निकाला जाना, उनका वंचित भी किया जाना राष्ट्रीयकरण अथवा सामाजीकरण कहलाता है।

व्यापक आर्थिक असंतोष

एक दूसरे क्षेत्र में भी अव्यवस्था की भावना अभिव्यक्ति हो रही थी जो भयोत्पादक थी। नवीन राज्य सीमाओं के प्रश्न पर एक दूसरे से झगड़ा कर रहे थे। अभी भी जातिगत घृणायें तथा पूर्व परिचित शक्ति लोलुपता अपराजित रूप से अपना (नग्न) प्रदर्शन कर रही थी। किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में **पैरिस सम्मेलन** के निर्णयों का उल्लंघन किया जा रहा था अथवा उन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा था। यह उलंघनशीलता कितनी बढ़ेगी? इसके क्या परिणाम होंगे? कोई भी व्यक्ति इसका पूर्वानुमान नहीं लगा सकता था।

जातीय तथा सीमा सम्बन्धी झगड़े

भविष्य को चुनौती

तथापि युद्ध के महान् परिणाम इतने स्पष्ट और सारगर्भित थे कि जनता को

मानसिक उदासी स्थायी नहीं रह सकती थी ।[1] हमारे समय के महान् एवं चिर-स्मरणीय दुःखान्त नाटक की समाप्ति निकृष्ट भावनाओं को उत्तेजित करने वाले जनरवपूर्ण अशोभनीय नाटक में नहीं हो सकती थी । असंख्य मानवों के बलिदानों और वेदनाओं (दुःखों) के द्वारा जो उपलब्धियाँ हुई थीं वे भूल करने वालों तथा योजनाओं को विध्वंस करने वालों का (कल्पना प्रसूत) प्रचुरताओं और अशुभेच्छाओं द्वारा नष्ट नहीं की जा सकती थीं । मानव जाति की गम्भीर भावनायें अपना पुनः प्रभाव स्थापित करेंगी और उनका यह आग्रह होगा कि मानव का भाग्य (निर्धारण) वर्गों अथवा दलों का खिलवाड़ न बने । अव्यवस्था के संरक्षकों अथवा विद्रोह के प्रचारकों के हाथ में नेतृत्व नहीं चला जावेगा । यह बात पूर्ण निरापद रूप से कही जा सकती थी कि (मानव) जाति ने अपने कठोर एवं मूल्यवान अनुभव से पर्याप्त चातुर्य (बुद्धिमत्ता) प्राप्त कर लिया है जिसके कारण बिना आवश्यकता के वह अपने भविष्य को संकट में डालने के लिये इच्छुक नहीं थी ।

युद्ध की महान् सफलताएँ

---

1. जनमत स्थायी रूप से उदास नहीं रह सकता था ।

विश्वयुद्ध के पश्चात् का यूरोप

अध्याय ४०

विश्व-युद्ध के पश्चात् का इंगलैण्ड

विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् जो वर्ष बीते हैं वे विभिन्न राज्यों द्वारा उस युगान्तकारी संघर्ष से उत्पन्न अथवा घनीभूत हुई समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्नों से ओत-प्रोत रहे हैं। इस काल में समन्वय अथवा नवनिर्माण द्वारा उतने दीर्घकालीन सामान्य एवं मूल्यवान अनुभव जन्य असंख्य एवं कठिन प्रश्नों को हल करने, और उस भविष्य के लिए तैयारी करने के प्रयत्न हुये हैं जो कुछ स्पष्ट एवं तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे किन्तु साथ ही समाधान के लिए प्रस्तुत बहुत से प्रश्नों की अस्पष्ट एवं जटिल सूझबूझ की अभिव्यंजना भी करे केवल बहुत से वर्गों की प्रतियोगिता के द्वारा ही बुद्धिमानी पूर्ण कार्यवाही का विकास सम्भव हो सकता था। परिस्थिति के कारक (तत्व) विविध तथा असमाधानीय थे और विभिन्न देशों में उनमें अधिक अन्तर था। हमको प्रत्येक देशवासी से तथा पृथक रूप से परिक्षण करना चाहिए। किन्तु यह तभी सम्भव है जब हम समय की वर्तमान प्रवृत्तियों को ठीक-ठीक तथा प्राय: भली-भाँति जानते हों।

आइये, ब्रिटिश साम्राज्य से प्रारम्भ करें। यह अत्यन्त विभिन्न प्रकार के तथा दूरस्थ देशों और जातियों का संकलन है जोकि सम्पूर्ण विश्व में बिखरे हुए हैं। इसमें ऐसी मानव जातियाँ हैं जिन्होंने मुख्यतया उस निराशाजनक तथा श्रम कारक संघर्ष में सहयोग दिया था किन्तु उनकी कार्य की सफलताएँ और आवश्यकताएँ विभिन्न थीं। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् तथा शांति सम्मेलन बुलाये जाने के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री लॉयड जार्ज ने यह सर्वोत्तम समझा कि नये संसदीय निर्वाचन किये जावेंगे।

१९१८ के निर्वाचन

उसकी यह इच्छा थी कि वह तत्कालीन विजय का लाभ उठाकर पदासीन रहा आवे। उसने १९१८ के प्रसिद्ध खाकी निर्वाचनों का आह्वान किया तथा उसने आयरी प्रश्न जैसी तत्कालीन आवश्यक समस्याओं को संतोपजनक रीति से सुलझाने का वचन दिया। उसने जनता को यह आश्वासन भी दिया कि वह भावी शान्ति सम्मेलन में उस दुःख के कारणस्वरूप विलियम द्वितीय को फाँसी देने की माँग

करेगा जिससे विश्व व्यथित रहा था और इसके अतिरिक्त वह जर्मनी पर भारी क्षतिपूर्ति करने के लिए भी दबाव डालेगा। अपने सन्देश (अपील) में वह अत्यन्त सफल रहा जिसके परिणामस्वरूप उसको **लोकसभा** में दो तिहाई का भारी बहुमत प्राप्त हुआ। **संयुक्त मंत्रिमण्डल** बना रहेगा परन्तु उसके सत्तर प्रतिशत समर्थक **अनुदारवादी** थे। वह स्वयं उदारवादी था। **श्रमिक** दल को साठ से अधिक स्थान प्राप्त हुये और इस प्रकार उसने उदारवादी सदस्यों को महत्त्वहीन कर दिया तथा वह स्वयं अधिकृत विरोधी दल बन गया। लायड जार्ज शीघ्र ही पेरिस गया और वहाँ पर वह कई मास तक **वर्साई की संधि** के कार्य में व्यस्त रहा।

बेकारी की वृद्धि

प्रारंभ में सब कुछ ठीक रहा। उद्योगों ने प्रगति की क्योंकि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् यूरोपीय देशों ने इंगलैंड में बनी हुई वस्तुओं की माँग की। परंतु इंगलैंड की यह व्यावसायिक पुनर्जागृति अल्पकालीन थी। १९२० तक परिस्थिति का एक और पक्ष स्पष्ट हो गया। कई कारणों से माँग में कमी हो जाने से विनिमय में पर्याप्त कमी आ गयी। जुलाई १९२१ तक बीस लाख ब्रिटिश श्रमिक बेकार हो गये। जर्मनी, रूस तथा डैन्यूब के दक्षिण के तथा तटवर्ती आदि यूरोपीय राज्य गरीब हो गये और उनका व्यापार अत्यधिक कम हो गया। इन्हीं प्रदेशों में अँग्रेजी माल की अच्छी खपत होती थी। लैटिन अमरीका का व्यापार संयुक्त राज्य से और भारत तथा चीन का व्यापार जापान से अधिक होने लगा। साथ ही इंगलैण्ड की नीति स्वर्ण मुद्रा स्तर के पुनः स्थापन तथा पौण्ड स्टर्लिंग के भूतपूर्व मूल्य को पुनः लागू करने की थी। यह नीति स्वयं तो प्रशंसनीय थी परंतु यह अपने यूरोपीय पड़ौसी की दशा कार्यवाहियों के ठीक विपरीत थी जो मुद्रा स्फीति अर्थात् अपने मुद्रा मूल्य के घटित अवमूल्यन के द्वारा श्रम वेतन (मजदूरी) को कम करके उत्पादन को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न कर रहे थे। इसके प्रतिकूल इंगलैंड अपना मुद्रामूल्य बढ़ा रहा था। इनमें से बहुत से राज्यों ने आयात-निर्यात कर लगा दिये थे और इससे इंगलैंड का व्यापार और अधिक कम हो गया। यह व्यापार पाँच या छह वर्षो में युद्ध के पूर्व के वर्षों के अपने व्यापार से एक तिहाई कम हो गया। यह कमी उसके मूल्य में हुई थी।

युद्ध में अँग्रेजों की हानियाँ

परिस्थिति के अन्य तत्व भी थे। प्रथम, वे महान् क्षतियाँ थीं जो इंगलैण्ड को हुई थीं। युद्ध में ७५० सहस्र व्यक्ति मारे गये थे और इससे दूने व्यक्ति घायल हो गये थे। इंगलैंड का सामरिक ऋण अत्यधिक बढ़ गया था; तथापि उसका भुगतान किया जाना था। उसका व्यापारिक जहाजी बेड़ा अत्यधिक घट गया था; ८,०००,००० टन भार के २००० जलपोत नष्ट कर दिये गये थे; जलपोत निर्माण उद्योग के लगभग एक तिहाई श्रमिक बेकार हो गये थे। इसके विपरीत इंगलैण्ड को अपने बेकारों को वृत्तियों अथवा 'पूर्तदानों' के द्वारा सहायता देनी थी और इसका अभिप्राय था उसके लाखों पौंड के भार (व्यय) में वृद्धि होना।

लॉयड जार्ज के सम्मुख उपस्थित कारकों में इस प्रकार के कुछ कारक (समस्याएँ) थे। उसने व्यापार को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया। उसने विशेष हितों की रक्षा करने की आशा से कुछ आयात कर लगाये। जिन देशों में अवमानित मुद्रा थी उनसें आने वाली वस्तुओं पर भी उसने यही कर लगाये। संरक्षण की नीति का यह प्रारम्भ था। यह नीति आने वाले वर्षों में अधिकाधिक सबल होने वाली थी

परन्तु प्रारम्भ में उसकी आलोचना हुई। लॉयड जार्ज के सामने साम्राज्य की भी वहुत सी समस्याएँ थीं। ये समस्याएँ भारत की, फिलस्तीन की और मिस्र की थीं। विशेष रूप से सर्वदा परेशान करने वाली **आयरी समस्या** थी जो कि पुन: एक बार तीव्र हो गयी और जिसने अन्तिम रूप से अत्यन्त गम्भीर रूप धारण कर लिया। इस पर शीघ्र ही विचार किया जावेगा। इसी मध्य उसकी राजनीतिक स्थिति इंगलैंड में भयोत्पादक हो गयी थी और १९२२ में वह पूर्ण रूप से विगड़ गयी। लॉयड जार्ज बढ़ाचढ़ा **उदारवादी** था और तो भी वह उस मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष था जिसमें **अनुदारवादियों** का वहुमत था। यह संयुक्त शासन था और इंगलैंड में संयुक्त मन्त्रिमण्डल कभी भी पसन्द नहीं किये गये किन्तु कठिनाइयों के समय पर वे स्वीकार कर लिये जाते हैं। अन्त में अक्टूबर १९२२ में **अनुदारवादियों** ने संयुक्त मन्त्रिमण्डल हटाने का निश्चय किया। इससे नये निर्वाचनों की आवश्यकता हुई। अस्तु एक नया एवं उत्तेजनापूर्ण अभियान प्रारम्भ हुआ। लॉयड जार्ज ने त्याग-पत्र दे दिया और वोनरलॉ उसका उत्तराधिकारी हुआ। अनुदारवादी सुगमता पूर्वक जीत गये। उन्होंने नई **लोकसभा** में आधे से अधिक स्थान प्राप्त किये। श्रमिक दल ने रोमांचकारी विजय प्राप्त की। १९०० में इसको केवल दो स्थान प्राप्त थे। अव उसने १४२ स्थान प्राप्त किये। **उदारवादियों** को तीसरा स्थान मिला। अस्वस्थ होने के कारण शीघ्र ही वोनरलॉ को पद-त्याग करना पड़ा। उसके पश्चात् स्टैनले वाल्डविन प्रधानमन्त्री वना परन्तु वाल्डविन ने यह उद्घोषणा की थी कि उसके विचार में इंगलैंड की कठिनाइयों का कारण उसकी **स्वतन्त्र व्यापार नीति** थी और वे केवल संरक्षण के सिद्धान्त को अपनाने से ही कम की जा सकती थीं। वह समझता था कि देश की नीति में इतना वड़ा परिवर्तन मतदाओं से एक वार और परामर्श करने के पश्चात् ही किया जा सकता था। अतएव उसके पूर्व नया निर्वाचन होना चाहिये। परिणाम यह हुआ कि १९२३ की शरदऋतु का सन्देश (अपील) गत वर्ष के सन्देश से अत्यन्त भिन्न था। अनुदारवादियों को अव भी सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुए परन्तु लोकसभा में उनका स्पष्ट वहुमत नहीं था। **श्रमिक दल** को १९२ स्थान तथा **उदारवादियों** को १५८ स्थान प्राप्त हुये। किसी भी दल को वहुमत प्राप्त नहीं था। नया मन्त्रिमण्डल संयुक्त मन्त्रिमण्डल होगा अन्यथा उसका नेतृत्व अल्पमत के हाथों में रहेगा। अन्तिम परिणाम यह हुआ कि वाल्डविन हट गये और उनके स्थान पर द्वितीय दल के नेता रैमजे मैकडानल्ड के हाथ में नियन्त्रण चला गया। इस प्रकार एक नया मन्त्रिमण्डल वना। यह प्रथम **श्रमिक मन्त्रिमण्डल** (शासन) था। परन्तु यह श्रमिक शासन केवल **उदार दल** की सहायता से **लोकसभा** पर नियन्त्रण कर सकता था। उसे यह सहायता प्राप्त हुई परन्तु केवल अल्पकाल के लिए यह सम्भव हुआ। श्रमिक दल ने अपनी माँगों को कम कर दिया। उसने कोई भी ऐसा विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जिसका **उदारवादी** विरोधी करते। उसने कुछ ऐसे विषयों को स्वीकार कर लिया जिनमें सौभाग्य से **श्रमिक दल** तथा **उदार दल** का मतैक्य था। तथापि, यदि **श्रमिक दल** कोई ऐसा विधेयक प्रस्तुत करे अथवा कोई ऐसी वात करे जिसको उदारवादी पसंद न करे तो वे अपनी सहायता को वापस ले सकते थे और तव मन्त्रिमण्डल का वहुमत रहेगा। १९२४ के अन्त होने के पूर्व यह स्थिति वास्तव में हो गयी और तव मैकडानल्ड का प्रधान मन्त्रित्व समाप्त हो गया।

लॉयड जार्ज का पतन

जे० रैमजे मैकडानल्ड, जोकि श्रमिक दल का नेता एवं इंगलैंड के प्रथम **श्रमिक शासन** का अध्यक्ष था, १८६६ ई० में इंगलैंड स्काटलैंड के एक लॉसीमाउथ नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ था। उसका पिता श्रमिक (मजदूर) था। उसने स्वयं अपनी शिक्षा अधिक से अधिक, जितनी सम्भव थी उतनी प्राप्त की थी। उसकी शिक्षा मुख्यतया रात्रि पाठशालाओं और व्यापक तथा गम्भीर अध्ययन के द्वारा सम्पन्न हुई थी। वह पत्रकार बना और अन्त में उसने लार्ड कैलविन की भतीजी से विवाह किया जोकि प्रसिद्ध रासायनिक था और जिसके पास पर्याप्त सम्पत्ति थी। वह दीर्घ-काल से श्रमिक दल का सदस्य रहा था और १९११ से उनका नेता था। १९१४ के युद्ध ने उसको राजनीति से बहिष्कृत कर दिया था क्योंकि वह कृत संकल्प शान्तिवादी था। पदहीन, अप्रिय तथा कुछ काल तक बन्दी रहने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि उसका राजनीतिक जीवन समाप्त हो गया था परन्तु १९२२ में वह पुनः लोकसभा का सदस्य निर्वाचित हुआ। १९२४ में वह प्रधानमन्त्री बना। उसके दो प्रमुख समर्थक थे; फिलिप स्नोडन तथा हैण्डरसन।

प्रधानमन्त्री मैकडानल्ड

परन्तु उसका मन्त्रिमण्डल दीर्घकालीन नहीं रहा। एक वर्ष से कम की पदा-वधि के भीतर उसके मन्त्रिमण्डल ने विशुद्ध आन्तरिक क्षेत्र की अपेक्षा बाह्य क्षेत्र (मामलों) में अधिक सफलता प्राप्त की। इसके मूलभूत सिद्धान्त समाजवादी थे तथापि यह समाजवादी विधियों को प्रोत्साहित नहीं कर सकता क्योंकि लोकसभा में यह अल्पमत का ही प्रतिनिधित्व करता था। इसको उन प्रभावशाली अँग्रेजों की सामान्य नापसंद का सामना करना पड़ा जोकि समाजवादी विचार समूह को निन्दित करने में अभिरुचि रखते थे। साथ ही **उदारवादी** जोकि लोकसभा में इसका समर्थन करते थे, मूलतः समाजवाद के विरोधी थे। अस्तु यदि उसको अपना नया नेतृत्व (role) बनाये रखना था तो उसको भूमि और उद्योग के राष्ट्रीयकरण की बात नहीं करनी चाहिए और उसको वे कार्य करने चाहिए जो उदारवादियों की अप्रसन्नता के कारण नहीं बनेंगे। इस प्रकार उसकी कार्य करने की स्वतन्त्रता प्रतिबन्धित हो गयी थी और उसे महत्त्वपूर्ण सुधारों के प्रस्तावों को भुला देना पड़ा। स्नोडन का आय व्यय विवरण (बजट) पारित हो गया। इसने कुछ युद्ध करों को हटा दिया तथा चाय, कॉफी और शक्कर पर लगे हुए कर कम कर दिये परन्तु बेकारी के सम्बन्ध में बहुत कम किया जा सका।

विदेशी मामलों में मैकडानल्ड ने अपेक्षाकृत अधिक उल्लेखनीय कार्य किया। उसने डेवेस योजना का समर्थन किया। वह जर्मनी के राष्ट्र संघ में प्रवेश करने के पक्ष में था। उसने रूस को कूटनीतिक मान्यता इस विचार से प्रदान की कि उस देश से पुनः व्यापार प्रारम्भ करके इंगलैण्ड लाभान्वित हो सकता था। परन्तु इस कार्य की आलोचना हुई और उदारवादियों के समालोचकों में सम्मिलित होने के कारण उसने संसद को भंग करने एवं मतदाताओं से अनुरोध करने का निश्चय किया। दो सौ वर्षों के भीतर यह तीसरा अवसर था जबकि मतदाताओं का अन्तिम निर्णय के लिए आह्वान किया गया था। वह निर्णय निश्चयात्मक रहा। अनुदार-वादियों ने संसद में चार सौ से अधिक स्थान प्राप्त किये और **श्रमिकवादियों** को एक सौ पचपन तथा **उदारवादियों** को केवल छत्तीस स्थान प्राप्त हुये। इस प्रकार १९२४ में **अनुदारवादियों** को दो सौ से अधिक को बहुमत के साथ सत्तारूढ़ होने

का अवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि मैकडॉनल्ड को जनता की साढ़े पचास लाख से अधिक मत प्राप्त हुए थे तथा उसका भारी अल्पमत था। उसने तत्काल त्यागपत्र दे दिया और वह एक वार पुनः अल्पसंख्यक दल का नेता बन गया। **श्रमिकदल** के शासन के प्रथम परीक्षण को केवल सीमित सफलता प्राप्त हुई थी।

इसके पश्चात् **अनुदार** मन्त्रिमण्डल बना। स्टैनली बाल्डविन प्रधानमन्त्री था और आस्टिन चैम्बरलेन विदेश सचिव था। यह मन्त्रिमण्डल १९२४ से १९२९ तक अर्थात् पूरे पाँच वर्ष तक सत्तारूढ़ रहा और उसने पूर्ववर्ती मन्त्रिमण्डल से कुछ भिन्न नीति का अनुसरण किया। परन्तु प्रारम्भ से ही उसको गम्भीर स्थिति का सामना करना पड़ा था जोकि द्रुतगति से बिगड़ती चली गई। औद्योगिक अवपतन जारी रहा और उसके कारण कटुसंघर्ष प्रारम्भ हो गया। सबसे अधिक प्रभाव कोयले के व्यापार पर पड़ा। युद्ध के पहले यह एक महान् व्यापार रहा था जिससे केवल इंगलैण्ड की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ही पर्याप्त ईंधन प्राप्त नहीं होता था वरन यूरोप के विभिन्न देशों को निर्यात करने के लिये भी लाखों टन कोयला प्राप्त होता था। परन्तु शांति की स्थापना ने इस सब को परिवर्तित कर दिया था।

बाल्डविन मन्त्रिमण्डल

उत्पादन में कमी हो जाने के कारण तथा उसके यूरोपीय क्रेताओं की विदेशी माँग प्रायः समाप्त हो जाने के कारण इंगलैण्ड की माँग बहुत कम हो गयी थी। **वर्साई की संधि** के अनुसार जर्मनी को कोयले की अत्यधिक मात्रा फ्रांस तथा इटली को देनी पड़ी थी। उसने उन देशों को भी बेचना प्रारम्भ कर दिया जो कि अब तक इंगलैण्ड से माँगते थे। अतः इन देशों ने इगलैण्ड से माँगना बन्द कर दिया अपनी तत्कालीन कठिन परिस्थितियों के कारण रूस की माँग लाखों टन कम हो गयी। बहुतों को ऐसा दिखाई देने लगा कि कोयले का उद्योग नष्ट हो जावेगा। बहुत सी खानों को विवश होकर उत्पादन निलंबित कर देना पड़ा। जून १९१५ तक इंगलैड की खानों में काम करने वाले लगभग चौथाई (श्रमिक) बेकार हो गये।

स्थिति उग्र हो गयी और उसके गम्भीर परिणाम हुये। कोयले के संचालकों ने यह घोषणा की कि वे कम मजदूरी देंगे और श्रमिकों के कार्य के घण्टों को बढ़ा देंगे। श्रमिकों ने इसको अस्वीकार किया और उन्होंने घोषणा की कि एक मई १९२६ को वे कार्य बन्द कर देंगे। उनका कहना था कि राष्ट्र के व्यापारिक संघ संघर्ष में उनकी सहायता करेंगे। अन्य उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों को भी आमन्त्रित किया जावेगा, जैसे यातायात व्यवस्था में काम करने वाले, प्रेस, रासायनिक, लोहा-इस्पात तथा अन्य व्यवसायों में काम करने वाले श्रमिक। इस प्रकार खानों में काम करने वालों की विशेष हड़ताल के साथ अन्य व्यवसायों में लाखों काम करने वालों की "सामान्य हड़ताल" जोड़ दी जावेगी। यह कार्यान्वित की गयी। फलस्वरूप मई १९२६ के प्रारम्भ में कई उद्योगों के कई लाख श्रमिकों ने काम बन्द कर दिया।

श्रमिक हड़तालें

परन्तु इस विशाल हड़ताल का वह परिणाम नहीं हुआ जिसकी बहुत से लोगों ने (व्यापक रूप से) आशा की थी। शासन ने जनता से सहायता का अनुरोध किया और वह सहायता उसको तत्काल प्राप्त हुई। ढाई लाख से अधिक सिपाही इस हेतु नियुक्त किये गये कि वे स्वयं सेवकों (कार्य करने के लिये इच्छुक व्यक्तियों)

की रक्षा करें। शक्ति का प्रदर्शन प्रभावशाली था। बड़ी संख्या में स्वयं सेवकों ने वे कार्य किये जिनका उसको अभ्यास नहीं था। परन्तु कम से कम उन्होंने काम तो किया और जनता की पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई। श्रमिक पराजित हुये। नौ दिन के अन्त में सामान्य हड़ताल समाप्त कर दी गयी और केवल खानों में काम करने वालों की हड़ताल जो कि दस माह तक चली असफल रही। सर्दी प्रारम्भ होने पर उनको झुकना पड़ा और स्वामियों की वे शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं जो उन्होंने प्रारंभ में उनके सामने रखी थीं अर्थात् कम वेतन और अधिक घण्टे। तो भी पूर्वापेक्षा स्थान मिलने से कम अवसर उपलब्ध हुये क्योंकि उद्योग की अव्यवस्था के कारण कार्य की मात्रा कम हो गयी थी।

इंगलैण्ड को गहरा धक्का लगा था। उसको भयानक तनाव की अनुभूति हुई थी और तात्कालिक परिणाम प्रतिक्रियावादी था चाहे वह अल्पकालीन ही क्यों न था। संसद् ने अब सामान्य हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया: धरना देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया; व्यापारिक संघ को अपने सदस्यों को ऐसा अनुशासन स्थापित करने से रोका गया जो कि सामान्य हड़ताल में भाग ले सकें और श्रम पर अन्य सीमायें (प्रतिबन्ध) लागू किये गये। संसद ने **लार्डसभा** को उन शक्तियों में कुछ शक्तियाँ देने पर भी विचार किया जिनसे कि वह पन्द्रह वर्ष पूर्व वंचित कर दी गयी थी। परन्तु इस प्रस्ताव का प्रबल विरोध हुआ और वह अन्ततोगत्वा दीर्घकालीन संघर्ष के पश्चात त्याग दिया गया। इस प्रकार का कोई भी विधान पारित नहीं किया गया।

स्त्रियों को मताधिकार दिया गया

अनुदार मन्त्रिमण्डल के आधीन एक ऐसा नया विधान पारित किया गया जिसने उस पद्धति को पूरा कर दिया जिसकी दीर्घकाल से प्रक्रिया हो रही थी। अन्त में स्त्रियों को उन्हीं शर्तों के साथ मताधिकार प्रदान कर दिया गया जिन शर्तों के साथ वह मनुष्यों को मिला हुआ था। दस वर्ष पूर्व १९१८ में, मुख्यतया युद्ध में उनके पूर्ण सहयोग के कारण, स्त्रियों को उदारतापूर्वक मताधिकार दे दिया गया था परन्तु वह केवल उन्हीं तक सीमित कर दिया गया था जिनकी आयु तीस वर्ष अथवा उससे अधिक थी। इस प्रतिबन्ध का मूलभूत कारण यह था कि मनुष्य को अनुचित रूप से दण्डित करने की इच्छा नहीं थी, जिनकी संख्या युद्ध के कारण स्त्रियों से कम हो गयी थी। स्त्रियों को मताधिकार से पर्याप्त प्रसन्नता हुई थी परन्तु वे तीस वर्ष की ऊँची आयु सम्बन्धी अर्हता (आवश्यकता) से अप्रसन्न थीं। उन्होंने अपना आन्दोलन जारी रखा था। वे इस प्रतिबन्ध की निंदा मानव स्वभाव के प्रदर्शन के रूप में करती थीं। अब इस अतिरिक्त अभियान के पश्चात् १०२८ में संसद ने अन्त में यह निर्णय किया कि मनुष्यों की शर्तों पर ही स्त्रियों को भी मतदान का अधिकार मिलना चाहिये। इस प्रकार वे राजनीतिक अधिकारों के लिये दीर्घकालीन संघर्ष में विजयी रहीं। भविष्य में इंगलैण्ड के मतदाताओं की संख्या २७,०००,००० हो गयी जिनमें से लगभग १२,५००,००० पुरुष और १४,५००,००० स्त्रियाँ होंगी। मताधिकार का संघर्ष अन्तिम रूप से समाप्त होता हुआ प्रतीत होता था। स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त हो गये। वह प्रश्न अन्त में हल हो गया और इंगलैण्ड एक वास्तविक लोकतन्त्र बन गया।

समय की समस्या

तथापि समय की मूलभूत समस्या अर्थात् देश की औद्योगिक शक्ति को पुन: स्थापित करने में **श्रमिक दल** के समान **अनुदारवादियों** को भी असफलता मिली। १९२७ में ब्रिटेन का आयात १९१३ के आयात का केवल ७९% था। वास्तव में बेकारी की समस्या पूर्वापेक्षा अधिक गम्भीर हो गयी थी।

एक दिशा में अनुदार नीति उस नीति की विपरीत थी जो कि उसके पूर्ववर्ती मंत्रिमंडल ने अपनायी थी। यह देखकर कि ब्रिटेन द्वारा उनके शासन को मान्यता प्रदान किये जाने पर भी रूसी लोग बहुत से देशों में उनके विरुद्ध कार्य कर रहे थे अथवा षड्यन्त्र रच रहे थे, ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने उनके साथ कूटनीतिक संपर्क को समाप्त कर दिया। दोनों के मध्य के सभी सम्बन्ध एक बार टूट गये।

श्रमिक दल की विजय

वर्तमान **लोकसभा** का निर्वाचन १९२४ में हुआ था। इसलिये १९२९ में नवीन संसदीय निर्वाचन अवश्य होना था। पंचवर्षीय कालावधि समाप्त हो गयी थी और एक बार जनता को पुन: अपने मत की घोषणा करनी चाहिये थी मतदाताओं की संख्या पूर्वापेक्षा सर्वाधिक थी और वास्तव में नवीन निर्णय में २२,०००,००० मतदाताओं ने भाग लिया। फलस्वरूप **श्रमिक दल** की निर्णयात्मक विजय हुई जिसको २८९ स्थान प्राप्त हुए **अनुदारवादियों** के स्थान ३९६ से घटकर २५९ ही रह गये। **श्रमिक दल** को **लोकसभा** में स्पष्ट बहुमत नहीं मिला क्योंकि तीसरे **उदारवादी दल** के ५८ सदस्य चुने गये। अस्तु एक बार पुन: ग्रेट ब्रिटेन के सामने अल्पमत शासन की समस्या आयी। जून १९२९ में मैकडॉनल्ड पुन: प्रधानमन्त्री बना परन्तु सत्तारूढ़ रहने के लिये उसको **उदारवादियों** पर निर्भर रहना पड़ा। स्नोडन पुन: अर्थ-मन्त्री (चांसलर ऑव ऐक्सचेकर) हुआ। हेण्डरसन विदेशमन्त्री बना और इतिहास में पहली बार मारग्रेड बॉण्ड फील्ड नामक महिला श्रम मन्त्री के रूप में अन्तरंग मन्त्रि परिषद (कैबिनेट) की सदस्य बनी। इस समय मन्त्रिमण्डल निरापद था क्योंकि उसको उदारवादियों का समर्थन प्राप्त था परन्तु यदि किसी भी प्रश्न पर उनका समर्थन उसको प्राप्त न हो तो उसका पतन उद्घोषित हो सकता था (निश्चित था)। तीन विभाजक दलों में से किसी भी दल का इंगलैण्ड पर स्पष्ट नियन्त्रण नहीं था।

मैकडॉनल्ड मन्त्रिमण्डल[1]

मैकडॉनल्ड मन्त्रिमण्डल ने जो कुछ कार्य वह कर सकता था, किया। उसने रूस के साथ शासकीय सम्बन्ध पुन: स्थापित किये; उसने जिनेवा में ओवन डॉ० यंग के नेतृत्व में तैयार की हुई क्षति पूर्ति योजना को स्वीकार किया; उसने भारत तथा मिस्र के साथ समझौता करने का प्रयत्न किया। स्नोडन ने देश पर अधिक कर लगाने और अधिक (तर) आय की नीति को चालू रखा। हूवर के साथ बात चीत करने के लिये मैकडॉनल्ड अमरीका आया। परन्तु वह बेकारी की समस्या का समाधान नहीं कर सका। सितम्बर १९३१ में उसकी संख्या २,४२५,००० हो गयी। उस वर्ष ग्रीष्म ऋतु में एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया। यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती

1. मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य अन्तरंग मन्त्रि परिषद (कैबिनेट) के सदस्य नहीं होते हैं केवल वरिष्ठ सदस्य ही उसके सदस्य नियुक्त होते हैं। —अनु०

जा रही थी कि इंगलैण्ड का आरक्षित सुवर्ण द्रुतवेग से घटता जा रहा था और एक भारी घटी की आशंका थी। मैकडॉनल्ड ने इस स्थिति का सामना करने के लिये अतिरिक्त वित्तीय प्रक्रियाओं को प्रस्तावित किया जो राष्ट्रीय आय को बढ़ा देंगी तथा व्यय को घटा देंगी। तथापि मन्त्रिमण्डल ने उसका समर्थन करना स्वीकार नहीं किया। अतः मैकडॉनल्ड ने एक चमत्कार पूर्ण (मौलिक) कार्य किया। उसने २५ अगस्त १९३१ को संपूर्ण मन्त्रिमण्डल का त्याग-पत्र प्रस्तुत कर दिया और कुछ ही दिनों में वह प्रधानमन्त्री के रूप में पुनः प्रकट हुआ किन्तु (अब की बार) वह सदस्यों के नये संगठन का अध्यक्ष था। उसने तथाकथित राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल बनाया। इसमें लोकसभा के तीनों दलों के सदस्य थे जो उस नीति पर सहमत थे जिसका कि अनुसरण किया जाना चाहिये। पुराने **उदारवादी** तथा **श्रमिक** दल के जिन सदस्यों ने अपनी असहमति जारी रखी वे भी किसी सीमा तक उन दलों की पृथक्-पृथक् नीतियों का समर्थन करते रहे (निष्ठावान रहे)।

सुवर्ण स्तर का त्याग

इंङ्गलैण्ड का आरक्षित सुवर्ण द्रुत वेग से कम हो रहा था। मन्त्रिमण्डल ने अनुभव किया कि यह (स्थिति) जारी नहीं रहने दी जा सकती है। अस्तु उसने एक स्मरणीय परिवर्तन का प्रस्ताव किया और उसको पारित करा लिया। उसने दीर्घकालीन (अभिलिखित) विधि को निरस्त कर दिया। इसने इस अनिवार्यता को त्याग कर कि भविष्य में सुवर्ण का प्रचालन (issue) तथा विक्रय सममूल्य (at par) पर किया जावे, इंङ्गलैण्ड के सिक्के का मूल्य घटा दिया। दूसरे शब्दों में इंङ्गलैण्ड ने 'स्वर्ण-स्तर' त्याग दिया। अब शासकीय समर्थन के अभाव में पौण्ड का मूल्य द्रुतगति से गिरने लगा, ४·८६ डालर के स्थान पर ३·८९ डालर रह गया। आगामी सप्ताहों में इसके मूल्य में अन्य वस्तुओं के समान ही उतार-चढ़ाव होता रहा जो कि तीन और चार डालर के बीच में रहा। अस्तु सिक्के का मूल्य लगभग एक तिहाई कम हो गया। राष्ट्रीय ऋण पर दिये जाने वाले ब्याज की मात्रा बहुत कम हो गयी क्योंकि अब उसका भुगतान कम मूल्य के सिक्के में किया जाता था। और अब ब्रिटेन मंडियों में उन देशों के साथ प्रतियोगिता करने लगा जिनके सिक्के का मूल्य उस समय घट गया था जबकि इंगलैण्ड के सिक्के का मूल्य उतना ही बना रहा था। इस महत्त्वपूर्ण कार्यवाही से इंगलैण्ड को उपर्युक्त प्रकार के लाभ हुये।

राष्ट्रीय शासन

इन आश्चर्यजनक घटनाओं के कारण २७ अक्टूबर १९३१ को **लोकसभा** का एक नया निर्वाचन हुआ। मैकडॉनल्ड यह अनुभव करता था कि इंङ्गलैण्ड की जनता को इस बात के लिए निर्णय करने का अधिकार था कि वह अपनी सरकार की नीति का अनुमोदन करती थी अथवा नहीं। अतः अब उसने तीनों दलों के सदस्यों के राष्ट्रीय शासन को स्वीकृति प्रदान की और उन उदारवादी तथा श्रमिक सदस्यों ने उसका विरोध किया जो कि अपने अपने दलों की पुरानी नीतियों के प्रति निष्ठावान् रहे थे। इस निर्वाचन का यह परिणाम हुआ कि राष्ट्रीयतावादियों की भारी विजय हुई। उनको लोक सभा के ६१५ स्थानों में से ४९३ स्थान प्राप्त हुए। इस नये संगठन में अकेले अनुदारवादियों को ३२७ का बहुमत प्राप्त था। मैकडानल्ड पुनर्निर्वाचित हुआ और वह प्रधानमन्त्री बना रहा। आस्टिन चैम्बरलेन का भाई नेविल चैम्बरलेन, जो उच्च आयात-निर्यात कर में विश्वास करता था, वित्तमन्त्री (चांसलर

ऑव दी ऐक्सचेकर) बनाया गया और भूतपूर्व **श्रमवादी** जान साइमन विदेशमन्त्री बना। परन्तु भूतपूर्व **श्रमवादी** मैकडॉनल्ड अब भी मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष था। तथापि वह अल्पमतीय अध्यक्ष था। अनुदारवादियों द्वारा यदि वे ऐसा निर्णय करें तो, वह कभी भी हटाया जा सकता था। परन्तु उसको अनुदारवादियों के वास्तविक नेता स्टैनले वाल्डविन का निष्ठापूर्ण (सच्चा) समर्थन प्राप्त था, इसलिये वह प्रधान-मन्त्री बना रहा।

नवीन **राष्ट्रीय सरकार** ने अपने कठिन कार्यों के करने में अपनी शक्ति लगायी। उसने लगातार कई उच्च आयात निर्यात कर अधिनियम पारित कराये। एक अधिनियम के अनुसार कच्ची कपास (रुई), गेहूँ, मछली, माँस, और ऊन के अतिरिक्त आयात-वस्तुओं पर दस प्रतिशत कर लगाया गया। एक परवर्ती अधिनियम में करों को और भी ऊँचा कर दिया, यहाँ तक कि जिन देशों ने अँग्रेजी वस्तुओं पर ऊँचे कर लगा रखे थे अथवा जो लगावेंगे उनके विरुद्ध सौ प्रतिशत कर लगाने का अधिकार दिया गया। परन्तु इस प्रकार की कार्यवाहियाँ भी अँग्रेजी व्यापार को पुनर्जीवित न कर सकीं और न आर्थिक अभ्युदय ही संभव कर सकीं। इसी प्रकार राष्ट्रीय ऋण के अधिकांश भाग पर व्याज की दर घटायी गयी तथापि बेकारी अब भी बढ़ती रही। १९३२ में बेकारों की संख्या ३,०००,००० हो गयी परन्तु परवर्ती वर्षों में यह २,०००,००० से कम हो गयी। ज्वार उतर रहा था।

जर्मनी वर्साई की की सन्धि का उल्लंघन करता है

मार्च १९३५ में जर्मन की सैनिक नीति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जिसके कारण अन्य देशों में गम्भीर परिणाम हुए। जर्मनी ने उद्घोषित किया कि वह **वर्साई की सन्धि** के सैनिक प्रतिबन्ध लगाने वाले अनुच्छेदों का भविष्य में पालन नहीं करेगा। वह अब अपनी स्थल, जल तथा वायु सेना को अपने विचारों के अनुसार पुनर्निर्मित करेगा जिस पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होंगे तथा उस सन्धि के प्रतिबन्धों पर कोई भी ध्यान नहीं दिया जावेगा। इस उद्घोषणा ने उन देशों के लिये एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर दी जिन्होंने उस सन्धि का प्रारूप तैयार किया था और उसको लागू किया था। क्या वे जर्मनी के इस उद्घोषित कार्यक्रम का विरोध करेंगे? इस प्रकार के विरोध का अर्थ युद्ध था। अथवा इस नये संकट का सामना करने (उत्तर देने) के लिए वे केवल अपने प्रतिरक्षाबलों को बढ़ाने का निश्चय करेंगे? उन्होंने इसे वर्साई के समझौतों का स्पष्ट उल्लंघन बताते हुए जर्मन कार्य की निन्दा की परन्तु उन्होंने यह घोषणा नहीं की कि वे इसको शस्त्रों द्वारा रोकेंगे। इसके स्थान पर उन्होंने इसका अध्ययन करना प्रारम्भ किया कि यदि जर्मनी अपनी घोषणा के अनुसार कार्यवाही करता है तो अपनी सुरक्षा पर आँच न आने देने के लिए वे क्या करेंगे? इंगलैण्ड ने अपनी वायव्य साज-सज्जा (वायुसेना) को अत्यधिक बढ़ाने के अपने संकल्प की घोषणा की और यह भी उद्घोषित किया कि अधिक कार्यवाही भी की जा सकती है। अन्य शक्तियों ने भी अपने उद्देश्यों के इसी प्रकार के संकेत दिये परन्तु किसी ने (कहीं भी) जर्मनी को उसकी उद्घोषणा के अनुसार पुनः शस्त्रीकृत होने से रोकने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। वचन समाप्त हो गये थे। पुनः शस्त्रीकरण के क्षेत्र में अप्रति-बंधित प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गयी।

इस अवधि में **राष्ट्रीय शासन** का अध्यक्ष रामजे मैकडानल्ड ही था। परन्तु

जून १९३५ में अस्वस्थता के कारण उसने तथा उसकी मन्त्रि-परिषद् ने त्याग-पत्र दे दिया। उसके पश्चात् स्टैनले बाल्डविन प्रधानमंत्री बना, सर सैमुवल होर विदेश सचिव बना और नैविली चैम्बरलेन वित्तमन्त्री (चांसलर आफ दी एक्सचेकर) हुआ। भविष्य में अच्छा कूटिनीतिक बनने की आशा दिलाने वाला तरुण एन्थानी ऐडिन राष्ट्रसंघ के मामलों का मंत्री बना। नये मंत्रिमंडल में भी **अनुदारवादियों**, **राष्ट्रीय श्रमवादियों** और **राष्ट्रीय उदारवादियों** का सयुक्त गठबन्धन था। जो बाहर थे वे ऐसे विरोधी **उदारवादी** तथा **श्रमवादी** थे जो कि भूतपूर्व दलों के प्रति निष्ठावान थे।

इटली इथोपिया पर आक्रमण करता है

नया मन्त्रिमण्डल एक अत्यन्त जटिल स्थिति से संघर्ष करता रहा। इसने बेकारी पर विजय प्राप्त नहीं की परन्तु धीरे-धीरे बेकारी घटती गयी। अंत में बेकारों की संख्या २,०००,००० से भी कम हो गयी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में यह मन्त्रिमण्डल इटली की इथोपिया सम्बन्धी नीति के विरोध करने वालों का शीघ्र ही नेता बन गया। जो कि १९३५ की शरद् ऋतु में स्पष्ट हो गयी और शीघ्र उसकी परिणति युद्ध में हो गयी। इस युद्ध का लक्ष्य इटली निवासियों का अफ्रीका के इस अन्तिम स्वतन्त्र राज्य को जीतने का और एक आक्रामक औपनिवेशक कार्यक्रम प्रारम्भ करने का दृढ़ संकल्प था। इसने अंग्रेजों की आशंकायें जागरित कर दीं। उनको यह डर था कि इटली की सफलता के पश्चात् अन्यत्र भी औपनिवेशिक विस्तार के प्रयत्न किये जा सकते थे, कि इटावी लोग अंततोगत्वा भूमध्य सागर को एक बार पुन: प्राचीन रोमन काल का **अपना समुद्र**[1] बनाने का प्रयत्न कर सकते थे, कि उनके विस्तार के कारण ब्रिटिश अफ्रीका में गम्भीर आन्दोलन प्रारम्भ हो सकते थे, नील के ब्रिटिश नियन्त्रण को भय उत्पन्न हो सकता था। क्योंकि उस नदी पर उसके प्राधान्य का एकमात्र साधन चान झील थी जो कि इथोपिया के क्षेत्र में स्थित थी और लाल सागर पर ब्रिटिश नियन्त्रण संकटग्रस्त हो सकता था जो उसके एशियायी तथा आस्ट्रेलियायी देशों के साथ सम्बन्धों ने लिए अत्यन्त आवश्यक था।

इंगलैण्ड विरोध का नेतृत्व करता है

स्वतन्त्र रूप से तथा राष्ट्र संघ के सदस्य के रूप में शीघ्र ही इंगलैण्ड ने इटली और अबीसीनिया से सम्बन्धित मामले में हस्तक्षेप किया। इस समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के लिये संघ की विभिन्न समितियों को निर्देश दिये गये। विशेष रूप से इस विषय में अध्ययन करने का निर्देश दिया गया था कि (राष्ट्रसंघ) के **समझौते** के आधीन इटली के क्या उत्तरदायित्व थे और **संघ** को क्या करना चाहिए। अक्टूबर में **परिषद्** ने इस प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया कि संघ के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष में इटली आक्रान्ता था। इसके पश्चात् शीघ्र **सभा** ने ५१ मतों से अनुच्छेद १६ की अनुशासनात्मक शास्तियाँ को लागू करने का निर्णय किया। इटली के पक्ष में इस निर्णय के विरुद्ध आस्ट्रिया, हंगरी तथा अल्बानिया के केवल तीन मत थे। ये अनुशासनात्मक शास्तियाँ अक्टूबर में प्रस्तुत की

1. Mare=समुद्र, Nostrum=हमारी वस्तु। यह इटली भाषा का शब्द समूह है। प्राचीन रोमन काल में रोम निवासी इसको अपना समुद्र कहते थे। —अनु०

गयीं और १८ नवम्बर से उनके लागू होने की उद्घोषणा की गयी। इनमें से एक शास्ति ने संघ के (सदस्य) देशों में इटली से आने वाली सभी वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी।

इसी मध्य सभी दशाओं में इटली ने संघ के निर्णयों का विरोध किया, उनके लागू होने को स्वीकार नहीं किया और बदले में उसने उन देशों के विरुद्ध अनुशासनात्मक शास्तियाँ प्रयुक्त करने की धमकी दी जो उनके पक्ष में मतदान कर रहे थे। उसने इथोपिया-निवासियों के विरुद्ध वह युद्ध चालू रखा जिसे उसने बिना घोषणा किये १९३५ की शरद् ऋतु में प्रारम्भ कर दिया था। उसने उनके देश पर तीन दशाओं से आक्रमण किया और पहले तो धीरे-धीरे परन्तु तत्पश्चात् वह द्रुतगति से उनकी राजधानी आदिस-अबाबा की ओर बढ़ा। उनकी सैनिक सज्जा उसके शत्रु की सैनिक सज्जा से कहीं अच्छी थी। वह प्रत्येक रूप से आधुनिक थी। शीघ्र ही यह अभियान मई १९३६ में समाप्त हो गया। इटली की सेना ने विजेता के रूप में राजधानी में प्रवेश किया और रोम में सरकार ने तत्काल इथोपिया को जीतने की घोषणा कर दी और वह इटालवी साम्राज्य का एक भाग उद्घोषित कर दिया गया। सम्राट् अपने देश से भाग कर इंगलैण्ड चला गया। वहाँ वह जिनेवा में सहायता के लिए प्रार्थना करने के हेतु गया था। अपने प्राधिकार की इस अवज्ञा के लिए राष्ट्रसंघ की क्या अभिवृत्ति (रवैया) होगी? क्या इंगलैण्ड तथा अन्य पचास राज्य जिन्होंने उसकी कार्यवाही को प्रमाणित किया था सक्रिय विरोध प्रकट करेंगे अथवा वे केवल उसे चुपचाप स्वीकार कर लेंगे? यह देखना शेष रहा। राष्ट्रसंघ का सम्मान बहुत कम हो गया था। यह निश्चित था।

इसी मध्य इंगलैण्ड में एक नवीन संसदीय निर्वाचन हो चुका था। राष्ट्रीय शासन को पुनः निर्वाचित कर दिया गया। परन्तु उसका बहुमत कुछ घट गया था। २० जनवरी १९३६ को नरेश जार्ज पंचम का सत्तर वर्ष की आयु में अल्पकालीन रोग के पश्चात् देहावसान हो गया। **जार्ज पंचम की मृत्यु** उसका उत्तराधिकारी हुआ उसका सबसे बड़ा पुत्र वेल्स का राजकुमार और वह अविलम्ब एँडवर्ड अष्टम के नाम से उद्घोषित कर दिया गया।

तथापि वर्ष के समाप्त होने के पूर्व ही नरेश एडवर्ड ने श्रीमती वालिस सिम्पसन से विवाह करने के हेतु सिंहासन त्यागने का निश्चय किया। उसके पश्चात् उसका भाई यॉर्क ड्यूक नरेश जार्ज षष्ठ के नाम से सिंहासनासीन हुआ।

इन परवर्ती वर्षों में ब्रिटिश साम्राज्य की रचना में अंततोगत्वा एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन पंजीबद्ध हुआ। दिसम्बर १९३१ में **वैस्टमिनस्टर की संविधि में** स्वशासित औपनिवेशिक संगठनों को व्यावहारिक स्वतन्त्रता को संसद द्वारा मान्यता प्रदान की गयी। उस संविधि ने **वैस्टमिनस्टर की संविधि** कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के डुमीनियनों को प्रायः स्वतन्त्र स्वीकार कर लिया। उनके द्वारा पारित कोई भी विधि इस आधार पर अवैध घोषित नहीं की जा सकती थी कि वह इंगलैण्ड की विधि के विरुद्ध थी। जब तक कोई डुमीनियन (स्वशासित औपनिवेशक राज्य) एतदर्थ विशेष रूप से प्रार्थना न करे तब तक ग्रेट ब्रिटेन की संसद द्वारा पारित कोई भी विधि किसी भी डुमीनियन में लागू नहीं होगी। भविष्य में नरेश किसी भी डुमीनियन संसद के अधिनियम को अस्वीकार करने के अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।

भविष्य में डुमीनियन संसदें अपनी इच्छानुसार कोई भी अधिनियम पारित कर सकती थीं, चाहे वे विधान एक दूसरे के अविरोधी हों अथवा न हों। डुमीनियनें व्यावहारिक रूप में स्वतन्त्र घोषित कर दी गयीं। वे जहाँ चाहे यहाँ अपने कूटनीतिक प्रतिनिधि भेज सकती थीं और अपनी स्वीकृति के इच्छानुसार वे जो चाहे व्यवस्था कर सकती थीं। **'ब्रिटिश साम्राज्य'** शब्द के स्थान पर **'स्वतन्त्र राष्ट्रों का ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल'** शब्द-समूह का प्रयोग होना चाहिए। डुमीनियनों को **ताज** को एक प्रकार के आदर्श संघ के प्रतीक के रूप में स्वीकार करना चाहिए जिन पर किसी प्रकार के निश्चित उत्तरदायित्वों का प्रतिबन्ध नहीं है और उनको ब्रिटिश नौसेना द्वारा प्रदत्त संरक्षण का उपभोग करना चाहिए। यह नौसेना मुख्यतः केवल ग्रेट ब्रिटेन की जनता की सहायता पर होगी। परन्तु डुमीनियनें जैसा चाहे विधान बनाने तथा कार्य करने को स्वतन्त्र होंगी। इस हेतु उनको अपनी सहोदरा डुमीनियनों अथवा **मातृदेश** के विचारों का कोई भी ध्यान नहीं रखना होगा।

अध्याय ४१

आयरलैण्ड का स्वतन्त्र राज्य

विश्व युद्ध और उसके परिणामों ने ब्रिटिश साम्राज्य के सभी भागों को प्रभावित किया था—भारत, फिलस्तीन और मिस्र। इस विशाल एवं बिखरे भू-क्षेत्र के एक भाग अर्थात् केन्द्र के निकटतम भाग आयरलैण्ड में इसके फलस्वरूप तीव्र एवं दृढ़ विवाद हुआ और उसकी परिणति निश्चित परिवर्तनों में हुई। एक दशक की घोर अशान्ति के पश्चात् इसकी समाप्ति एक नवीन राज्य के निर्माण में हुई जो कि उतना ही स्वतन्त्र एवं स्वनियंत्रित है जितना कि ब्रिटिश प्रभुसत्ता की विस्तृत सीमाओं के अन्तर्गत कोई भी राज्य है। इसने उस समस्या का समाधान कर दिया जो कि आंग्ल संसार को दीर्घकाल से उद्वेलित करती रही थी, जिसने दीर्घकाल तक आंग्ल राजनीतिज्ञों को चक्कर में डाल दिया था, जिसने दीर्घकाल तक अविरल एवं तीव्र गम्भीर परिस्थितियाँ उत्पन्न की थीं जो कि कालान्तर में स्थायी एवं असमाधानीय प्रतीत होने लगी थीं।

जबसे १८०१ में आयरलैण्ड की संसद समाप्त कर दी गयी थी और आयरी सदस्यों को लंदन की संसद (पार्लियामेण्ट) में भेज दिया गया था, तब से आयरियों और अँग्रेजों के सम्बन्ध आवर्तित संघर्ष के कारण असुखद रहे थे और संघर्ष की प्रगति के साथ वे अधिकाधिक घनीभूत तथा भयानक होते चले गये। उस अशान्त द्वीप के लिये स्वशासन (होमरूल) का प्रस्ताव करके उन्नीसवीं शती के अन्त में ग्लैडस्टन ने आयरियों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया था। तो भी उसका एक विधेयक लोकसभा में असफल रहा था और दूसरे के विरुद्ध लोकसभा ने निषेधाधिकार का प्रयोग किया था। अन्त में १९१४ में एक तीसरा विधेयक पारित हो गया था और वह तत्काल ही निलंबित कर दिया गया था क्योंकि उस समय इंगलैण्ड विश्वयुद्ध में फँसा हुआ था और क्योंकि प्रस्तावित समाधान से आयरलैण्ड के न तो कैथोलिक ही सन्तुष्ट थे और न प्रोटेस्टेण्ट ही सन्तुष्ट थे। परन्तु उत्तरी आयरलैण्ड अर्थात् अलस्टर के प्रोटेस्टेण्ट इसके लिये कृत संकल्प थे कि राजनीतिक तथा आर्थिक

आयरलैण्ड की माँगें

कारणों से उनका प्रवेश कभी भी आयरी राज्य में सम्मिलित न किया जावे। इस विवाद से मुक्त होने की इच्छा करते हुये, जिसकी नयी विधि के कारण उत्पन्न होने की आशंका थी, तथा उस महत्तर संघर्ष पर अपना सम्पूर्ण अवधान केन्द्रित करने के लिये, जो कि जर्मनी तथा आस्ट्रिया ने प्रारम्भ करा दिया था, इंगलैण्ड ने युद्ध काल के लिये नवीन अधिनियम का निलम्बन प्राप्त कर लिया।

सिन फीन दल की माँग

तथापि परिस्थिति सुधरी नहीं प्रत्युत और अधिक बिगड़ गयी। आयरलैण्ड का **सिन फीनर्स** नामक एक नवीन दल, जो कि पूर्ववर्ती सभी दलों की अपेक्षा अधिक उग्रवादी था, सामने आ गया। इस दल की इच्छा थी कि आयरलैण्ड इंगलैण्ड से उतना ही पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो जितना कि कोई भी अन्य देश स्वतन्त्र था, उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य। इस इच्छा ने १९१६ में एक क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया जिसका नेतृत्व सर रोजर केसमेण्ट ने किया और जिसका समर्थन जर्मन शासन ने किया था परन्तु वह पूर्णतः असफल रहा। शीघ्र ही ४५० व्यक्ति मारे गये और ३५०० से अधिक बन्दी बना लिये गये तथा केसमेण्ट सहित १५ नेताओं को प्राण दण्ड दिया गया। साम्राज्य की आपत्ति को जिसके विघटन के लिये प्रयोग करने का तथा आयरलैण्ड की स्थानीय स्वतन्त्रता को स्थापित करने का यह विशेष प्रयत्न असफल रहा परन्तु इसके पश्चात् परिस्थिति पूर्वापेक्षा अधिक कटु एवं अधिक भयावह बन गयी। आगामी माँसों में **सिन फीनों** में सहानुभूति रखने वालों की संख्या बढ़ गई।

१९१८ के पश्चात् कार्यवाही अधिक आवश्यक हो गयी। **सिन फीनर दल** के ७३ सदस्य **लोक सभा** के लिये चुने गये, और **अल्स्टर दल** के केवल २६ सदस्य चुने गये। **सिन फीन** प्रतिनिधियों ने अब लन्दन की संसद में उपस्थित न होने का निश्चय किया। जिसके के लिये वे निर्वाचित किये गये थे वरन् उन्होंने अपनी पृथक् संसद चुनने का निश्चय किया जिसका नाम उन्होंने **डेल इरियन**[1] (आयरलैण्ड की सभा) रक्खा। उन्होंने डीवेलरा को राष्ट्रपति चुना और वास्तव में **आयरी गणतन्त्र** की स्थापना कर दी जो कि ग्रेट ब्रिटेन से पूर्णतया स्वतन्त्र था। दोनों के मध्य एक वास्तविक युद्ध अविलम्ब प्रारंभ हो गया जिसमें दोनों पक्षों ने बहुत से हिंसात्मक कार्य किये। प्राचीन नगर कॉर्क का अधिकांश भाग अग्नि ने नष्ट कर दिया।

यदि सम्भव हो सके तो लॉयड जार्ज ने इस प्रत्यावर्तित एवं वर्द्धमान समस्या को सुलझाने का दृढ़ संकल्प किया। परन्तु वह स्वशासन के आधार पर सुलझानी चाहिए थी। लॉयड जार्ज ने यह निष्कर्ष निकाला था कि भविष्य में आयरलैंड में दो संसदें होनी चाहिये, न कि एक। इनमें से एक संसद अल्स्टर अर्थात् प्रोटेस्टेण्टों के लिये होनी चाहिये; दूसरी संसद शेष आयरलैण्ड अर्थात् कैथोलिकों के लिये होनी चाहिये। दिसम्बर १९२० के अन्त में इस व्यवस्था को उपबंधित करती हुई विधि पारित कर दी गयी। उत्तरी आयरलैण्ड ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जो

लॉयड जार्ज और आयरी समस्या

---

1. Dail का उच्चारण dahl भी किया जाता है जैसा कि ऑक्सफोर्ड कोशकार ने दिया है परन्तु डी० जोन्सकृत अँग्रेजी के उच्चारण कोश के अनुसार dail या dail (डेल या डयल) है। —अनुवादक

कि उसके मत में डबलिन की एक संसद के अधीन सम्पूर्ण आयरलैण्ड के विचार (योजना) की अपेक्षा अधिक स्वीकार्य था और तदनुसार वह मई १९२१ में द्विसनात्मक व्यवस्थापिका के जिसमें **सीनेट** तथा **लोकसभा** थी, निर्वाचन के लिये अग्रसर हुआ। उसने लन्दन में **लोकसभा** में बैठने के लिये भी सदस्य चुने क्योंकि वह परम्परागत ग्रेट ब्रिटेन की प्रणाली का एक भाग बने रहने के लिए कृतसंकल्प था। परन्तु दक्षिणी आयरलैण्ड ने उसका अनुसरण करना अस्वीकार किया। वह इस योजना से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था जिसने आयरलैंड को भावों 'में विभाजित कर दिया था और जोकि देश के विभाजन को स्थायी स्वीकार करता था। इस स्थिति का यह नया कारक (तत्त्व) था, आयरलैण्ड का दो भागों में विभाजन जिनमें से प्रत्येक एक दूसरे से स्वतन्त्र था तथा अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता था।

आयरी स्वतन्त्र राज्य

सम्मेलन होते रहे। अक्टूबर के सम्मेलन में आयरी सदस्यों का नेतृत्व आर्थर ग्रिफ्थ कर रहा था और अन्त में ६ दिसम्बर १९२१ को एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुये जिसने **आयरी स्वतन्त्र राज्य** को मान्यता प्रदान की। इसको ब्रिटिश साम्राज्य में वही स्थान प्राप्त होगा जो कि कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा दक्षिणी अफ्रीका को प्राप्त था। इसकी अपनी संसद होगी जिसको आयरलैण्ड की शान्ति-व्यवस्था और सुशासन के लिये विधि निर्माण करने का अधिकार होगा तथा उस संसद के प्रति उत्तरदायी कार्यपालिका होगी। इसका नाम **आयरी स्वतन्त्र राज्य** होगा। उत्तरी आयरलैण्ड, यदि चाहे तो, उसमें सम्मिलित हो सकता है परन्तु वह सम्मिलित होने के लिये बाध्य नहीं था। उचित समय पर आयरलैण्ड के समुद्रतट की सुरक्षा में आयरलैण्ड को सम्मिलित होना था।

आयरलैण्ड में गृह युद्ध

परन्तु संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ था भीषणतर घटनायें घटित होनी थीं क्योंकि जब इस समाधान का समाचार आयरलैण्ड पहुँचा तब तक एकमत के **सिनफीन** दल के सदस्यों में तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया। कुछ लोग इस अत्यन्त उदार अभिलेख के पक्ष में थे जो अपने विशद रूप में अब प्रस्तुत किया जा रहा था। वे लोग अपनी विजय से संतुष्ट थे जिसने उनको उतने पूर्ण स्वशासन का आश्वासन दिया था जितने विस्तृत स्वशासन का उपभोग अन्य औपनिवेशिक स्वशासित राज्य (डुमीनियन) कर रहे थे। परन्तु अस्थायी राष्ट्रपति डी वेलरा तथा उसके अनुयायियों सहित अन्य आयरलैण्ड निवासी इसके उग्र विरोधी थे। ये लोग ब्रिटिश साम्राज्य से पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि उस साम्राज्य से सभी सम्बन्ध पूर्णरूप से तोड़ दिये जावें। उन्होंने उद्घोषणा की कि, "हमने **ब्रिटिश शासन** आयरलैण्ड पर राज्य किया जाना असम्भव कर दिया और हम ब्रिटिश प्राधिकार के अधीन कार्य करने वाले **आयरी शासन** के आयरलैंण्ड पर किये जाने वाले राज्य को भी असम्भव बना सकते हैं।"

इसके पश्चात् १९२२ में वर्ष भर अशांति रही और इसमें सभी प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाहियाँ हुईं, जैसे, रेलों और पुलों का जलाया जाना, दुर्गों और गृहों को जलाया जाना, सीमान्त आक्रमण, वध, अग्निकाण्ड। डबलिन तथा कुछ अन्य स्थानों के अतिरिक्त शासन के स्थान पर सर्वत्र प्रारम्भिक अराजकता फैल

गयी। सैकड़ों व्यक्ति मारे गये और सम्पत्ति का विनाश भी प्रचुर मात्रा में हुआ। १९२३ की आगामी वर्ष की वसन्त ऋतु के प्रारम्भ तक लगभग १४० ग्रामीण गृहों और प्रासादों को घृणा और अग्नि की ज्वालाओं पर वलिदान कर दिया गया।

आयरी के विरुद्ध आयरी

अगस्त १९२२ में इंगलैंड के साथ की गयी संधि के दो प्रमुख समर्थक तिरोहित हो गये। आर्थर ग्रिफथ समय की क्रूर घृणा का शिकार होकर मर चुका था और उसके चार दिन पश्चात् माइकेल कॉलिन्स को एक छिपी हुई सैनिक टुकड़ी ने मार डाला। दोनों ही राष्ट्रीय हितों के प्रभावशाली नेता रहे थे जिनको अग्रसर करने के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया था। आयरी स्वतंत्र राज्य के लिये उनका रहना एक भीषण प्रहार समझा गया जिसका उन्होंने, मूल **सिनफीनर** होते हुये भी, १९२१ से आयरलैण्ड की महान् विजय के रूप में निष्ठापूर्वक समर्थन किया था।

आयरलैंड की दशा भयावह थी। स्वशासन के लिये किया गया दीर्घकालीन एवं भीषण संघर्ष रक्तरंजित तथा घृणापूर्ण गृहयुद्ध में समाप्त होता हुआ दिखाई दे रहा था जिसने अव **सिनफीनर** दल को विभाजित कर दिया था जो कि अब तक मिलकर कार्य करता रहा था और जो कि ठीक उस समय जब विजय प्राप्त हो गयी थी हिंसापूर्ण (घातक) संघर्ष में छिन्नभिन्न हो गया था। ऐसा प्रतीत होता था कि आयरी अपनी सर्वाधिक सुदृढ़ एवं अत्यधिक आशाओं को नष्ट कर देंगे क्योंकि अब गृहयुद्ध उन समस्त उपलब्धियों का प्रत्यक्षत: विनाश करने वाला था जो प्राप्त हो गयी थीं। यह उपलब्धि थी वह सम्पूर्ण स्वतन्त्रता जो ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी भाग को प्राप्त थी।

एक वर्ष से अधिक काल तक अराजकता वनी रही। आयरी स्वतन्त्र राज्य के शासन ने उसके विरुद्ध अपनी सामर्थ्य के अनुसार अधिकतम संघर्ष किया परन्तु कुछ मास तक यह संघर्ष उस संघर्ष की अपेक्षा अधिक रक्तरंजित तथा सिद्धान्तहीन था जो कि विगत दो वर्षों में इंगलैण्ड के विरुद्ध रहा था।

स्वतन्त्र राज्य जीतता है

बहुत से व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और कारागार में डाल दिये गये। बहुत से मारे गये अथवा फाँसी के तख्ते पर लटका दिये गये। परन्तु अन्त में स्वतन्त्र राज्य ने अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर दी और १९२३ में डी वेलरा ने अपने अनुयायियों को आज्ञा दी कि वे हथियार रखकर इस तथ्य को स्वीकार करें। अगले चार वर्षों में डी वेलरा तथा उनके अनुयायियों ने संसार के निर्वाचन के लिये प्रत्याशी खड़े किये परन्तु चुने जाने जाने पर वे अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते क्योंकि उन्होंने संविधान के अधीन नरेश के प्रति निष्ठा की शपथ लेना अस्वीकार किया। इस प्रकार वे अपना आन्दोलन करते रहे, परन्तु अन्त में डी वेलरा झुक गया क्योंकि उनका आन्दोलन केवल शाब्दिक था और हिंसायुक्त नहीं तथा यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था कि आयरी जनता का बहुमत शासन के पक्ष में था। उसने यह घोषणा की कि यह राष्ट्रीय संसद का सदस्य वन जावेगा और उसका विरोध भविष्य केवल ऐसी संस्था में होने वाला गत रीतिगत विरोध मात्र होगा। इस प्रकार हिंसा को त्यागकर एवं भविष्य में शांतिपूर्ण एवं वैध उपायों के प्रति अपनी आस्था

प्रकट करके, उसने तथा उस दल ने, जिसका वह नेता था, १९२७ के निर्वाचन में भाग लिया और **डेल** के १५३ स्थानों में से ५७ स्थान जीत लिये जोकि कांग्रेस के **स्वतन्त्र राज्य** दल से केवल छह कम थे।

आयरलैण्ड का संविधान

अविवादग्रस्त नियंत्रण के अधीन होने से ६ दिसम्बर १९२२ को **नरेश** जार्ज पंचम ने **आयरी स्वतन्त्र राज्य** की उद्घोषणा कर दी। इसमें द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका थी—एक साठ सदस्यों की **सीनेट** थी जोकि १९२८ के एक परवर्ती संशोधन के अनुसार दोनों सदनों द्वारा चुनी जाती थी, और एक निम्न सदन अथवा **डेल ईरियन** जिसका निर्वाचन इक्कीस वर्ष अथवा अधिक आयु के सभी नागरिकों द्वारा होना था। एक कार्यपालिका होनी थी जिसमें एक गवर्नर जनरल होगा परन्तु वास्तविक कार्यपालिका शक्ति **परिषद्** में निहित होगी जिसका सभापति डेल द्वारा चुना जावेगा। राज्य में शक्ति का आवश्यक केन्द्र (स्थान) डेल **सीनेट** को केवल सामान्य विधान पर **निलंबनात्मक निषेधाधिकार** प्राप्त होगा। उनको धन विधेयकों में संशोधन करने का कोई भी अधिकार नहीं होगा।

उत्तरी आयरलैण्ड

इस प्रकार अन्त में आयरलैण्ड ने व्यवहारतः स्वतंत्र राज्य के रूप में अपना नव जीवन प्रारम्भ किया परन्तु इसमें पूरा आयरलैण्ड सम्मिलित नहीं था। उत्तरी आयरलैण्ड को यह स्वतन्त्रता दी गयी थी कि वह इस बात का निर्णय कर सकता है कि वह **आयरी स्वतन्त्र राज्य** का भाग बनेगा अथवा ग्रेट ब्रिटेन का भाग बना रहेगा। उसने दूसरे विकल्प के पक्ष में मतदान किया। उसकी अपनी निज की व्यवस्थापिका होगी परन्तु वह पुराने संगठन का भाग रहेगा और लंदन की **लोकसभा** में उसके प्रतिनिधि भी होंगे। इस प्रकार आयरलैण्ड को दो भागों में विभाजित करके **आयरी समस्या** का अंतिम समाधान कर दिया गया। वृहत्तर भाग दक्षिणी आयरलैण्ड अथवा **आयरी स्वतंत्र राज्य** होगा जिसमें १६ जिले (काउण्टी) होंगे और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासित औपनिवेशिक राज्य होगा परन्तु (लंदन की) **लोकसभा** में उसका कोई भी प्रतिनिधि नहीं होगा। इसके विपरीत उत्तरी आयरलैण्ड में ८ जिले (काउण्टी) होंगे। वह यथापूर्व ग्रेट ब्रिटेन का भाग रहेगा और उसका प्रतिनिधित्व लन्दन स्थित ब्रिटिश संसद करेगी जिसमें वह अपने प्रतिनिधि भेजेगा।

जिस प्रकार कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, और दक्षिणी अफ्रीका अपना कार्य कर रहे थे उसी प्रकार इस **स्वतंत्र राज्य** ने भी अपना कार्य (स्वतन्त्रापूर्वक) करना प्रारंभ किया। उसने हरा, सफेद और सुनहरी रंग का नया झण्डा धारण किया। उसने विभिन्न देशों में अपने कूटनीतिक प्रतिनिधि भेजे और १९२३ में वह **राष्ट्रसंघ** में प्रविष्ट कर लिया गया। शीघ्र ही उसे उसकी **परिषद्** में अस्थायी स्थान भी दिया गया। भविष्य में उसको **ब्रिटिश साम्राज्य के सम्मेलनों** में अन्य सहोदरा डुमीनियनों की भाँति प्रतिनिधित्व मिलेगा। जिनेवा के संघ की बैठकों में आयरलैण्ड के प्रतिनिधि, यदि वे चाहें तो, गालिक भाषा में भाषण दे सकेंगे। कनाडा तथा आस्ट्रेलिया के समान उसका अपना सिक्का तथा अपना डाक टिकट होगा। उसके डाक के बक्स भविष्य में लाल रंग के स्थान पर हरे रंग से रंगे

जावेंगे। यह तीस लाख निवासियों का राज्य उतना ही स्वतन्त्र होगा जितना कि ब्रिटिश साम्राज्य का कोई (अन्य) भाग था। अन्ततोगत्वा इस दीर्घकाल से अशांत देश में इतिहास का एक नवीन और अधिक सुखद काल प्रारंभ होगा। इसने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की। यह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का एक भाग है परंतु यह एक औपनिवेशिक राज्य (डुमीनियन) है और इसका भविष्य, यदि (पूर्णतः) पृथक् रूप से नहीं तो, अधिकांशतः इसके अपने हाथों में निहित है (**अर्थात् यह अधिकांशतः अपने भाग्य (भविष्य) का अपने आप निर्माण कर सकता है**)। इस समय उत्तरी आयरलैण्ड ग्रेट ब्रिटेन के साथ अपने पुराने सम्बन्ध बनाये रख रहा है और वह अपनी इच्छा (प्रसन्नता) के अनुसार अपना कार्य कर रहा है।

१९२१ में प्रायः सम्पूर्ण जनसंख्या ने **सिनफीनर** दल के कार्य को स्वीकार कर लिया। १९२३ में गृह-युद्ध की समाप्ति ने इस स्वीकृति को अग्रसित किया। १९२७ में डी वेलरा के ५७ अनुयायी **डेल इरियन** के लिये चुने गये और राष्ट्रपति कॉसग्रेव द्वारा प्रस्तुत किये संविधान को उन्होंने मौन मान्यता प्रदान करके उस स्वीकृति को अपना लिया। इसके साथ आयरलैण्ड का नवीन इतिहास प्रारम्भ हुआ। १९३२ तक कॉसग्रेव सत्तारूढ़ रहा और निर्धन सहायता (कार्यक्रम) में पर्याप्त सुधार करके, स्थायी सेना को ५०,००० से घटाकर ५००० करके, कृषि को उत्साहित करके, शिक्षा की आधुनिक प्रणाली प्रारम्भ करके और आयरी राज्य की उन्नति की अन्य नीवें रखकर उसने अपने देश के सुधार कार्य (उन्नति) में बहुत सफलता प्राप्त की। १९३२ में नये निर्वाचन हुये और इस बार अल्प बहुमत के साथ डी वेलरा को चुना गया। वह सत्तारूढ़ हो गया और उसने कई अधिनियम पारित करने का अनुरोध किया किन्तु इसको तीव्र आंग्ल विरोध का सामना करना पड़ा।

अन्त में डीवेलरा राष्ट्रपति चुना गया

डी वेलरा का जन्म न्यूयार्क में १८८२ में हुआ था। उसका पिता स्पेन निवासी था तथा माता आयरी थी। आयरलैण्ड में उसने युवावस्था प्राप्त की और उचित समय वह गणित का प्राध्यापक बन गया। युद्ध-काल में वह केसमैण्ट का अनुयायी बन गया। फलतः वह पकड़ा गया बन्दी बना और उसको मृत्यु दण्ड मिला। तत्पश्चात् वह मुक्त कर दिया गया और आगे चलकर वह पुनः कारागार में डाल दिया गया और अन्त में वह भाग कर संयुक्त राज्य चला गया। युद्ध की समाप्ति पर वह (पुनः) आयरलैण्ड लौट आया। अब वह उस अशांत देश में गणतन्त्रवादियों का नेता बन गया। वह इंगलैण्ड का कट्टर शत्रु था और वह इंगलैण्ड पूर्ण स्वतन्त्रता का समर्थन करता था। उसने अपना उद्देश्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु वह असफल रहा। **आयरी स्वतन्त्र राज्य** की स्थापना हो गयी और कॉसग्रेव व उसका अध्यक्ष तथा संचालक शक्ति बना रहा।

अन्त में १९३२ में कॉसग्रेव पराजित हुआ और अल्पबहुमत के साथ डीवेलरा सत्तारूढ़ हो गया। उसके विचार में परिवर्तन नहीं हुआ था परन्तु उसकी उद्देश्य पूर्ति अंशतः और कठिनाई के साथ हो सकती थी। उसने नरेश के प्रति निष्ठा की शपथ को समाप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु वह एक निश्चित संधि पर अवलंबित थी जो कि इंगलैण्ड के मध्य **आयरी स्वतंत्र राज्य** की स्थापना करती हुई सम्पन्न की गयी थी। अतः वह द्विपक्षीय थी और साथ ही **राष्ट्रसंघ** (के कार्यालय) में पंजीकृत की गयी थी। डी वेलरा ने इस आवश्यकता को हटाने का प्रयत्न किया

परन्तु वह पराजित हुआ। केवल अगले वर्ष १९३३ में समस्त प्रतिनिधियों द्वारा ली जाने वाली नरेश के प्रति निष्ठा की आवश्यक शपथ समाप्त की जा सकी। आयरलैंड प्रतिवर्ष ब्रिटिश कोष को लगभग पचास लाख पौण्ड देता था। परन्तु वे निजी ऋण थे, और उनको न देने से वित्तीय समझौतों तथा नैतिक दायित्वों का उल्लंघन होता था। तो भी १९३२ में आयरलैण्ड ने उस धन को केवल अंशत: देना स्वीकार किया। इंगलैण्ड ने इस कार्य को मौन मान्यता नहीं दी और यह चेतावनी दी कि यदि वार्षिक भुगतान नहीं किये गये तो सीमा[1] शुल्क युद्ध प्रारम्भ हो सकता है। ऐसा युद्ध हुआ और इंगलैंड के साथ आयरलैंड का व्यापार पूर्वापेक्षा बहुत कम हो गया। इंगलैंड की अपेक्षा आयरलैंड की अत्यधिक हानि हुई क्योंकि इंगलैंड साधारणतया आयरलैंड को उससे बहुत कम माल भेजता था जितना कि वह वहाँ से मँगाता था अर्थात् इंगलैंड का निर्यात वहाँ से आयात का एक अल्पांश मात्र था। ऐसा युद्ध शीघ्र ही इंगलैंड और आयरलैंड के मध्य प्रारम्भ हो गया परन्तु इंगलैंड आयरलैंड के निर्यात का सामान्यत: ९/१० भाग मोल लेता था और आयरलैण्ड इंगलैण्ड के निर्यात् का केवल १/१२ भाग मोल लेता था। अत: यह संघर्ष आयरलैण्ड के लिए कहीं अधिक हानिकारक था।

इस प्रकार यह संघर्ष चलता रहा। परन्तु डी वेलरा दृढ़ बना रहा और उसकी लोकप्रियता कम नहीं हुई प्रत्युत बढ़ती हुई प्रतीत हुई। यह सम्भवत: आयरियों की अंग्रेजों के प्रति परम्परागत घृणा (नापसन्द) के कारण तथा आयरियों की उस प्रवृत्ति के कारण थी जो कि अपनी कठिनाइयों के लिए अंग्रेजों को उत्तरदायी ठहराती थी। ग्रेट ब्रिटेन के संप्रभुत्व से पूर्ण रूप से मुक्त होने की डी वेलरा की माँग अभी भी अक्षुण्ण रही।

वर्तमान परिस्थिति के सारांश के रूप में हम कह सकते हैं कि १९२२ में उद्घाटित **आयरी स्वतंत्र राज्य** में सम्पूर्ण आयरलैण्ड सम्मिलित नहीं है। उत्तरी आयरलैण्ड अर्थात् अल्सटर इसका भाग नहीं है क्योंकि वह अपना पृथक अस्तित्व अच्छा समझता है। उत्तरी आयरलैण्ड की अपनी निजी संसद है जिसको व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। लन्दन की संसद में उसके तेरह प्रतिनिधि रहते है परन्तु उस संस्था में **स्वतन्त्र राज्य** का कोई भी प्रतिनिधि नहीं है। इस प्रकार विभाजित आयरलैण्ड केवल एक भौगोलिक अभिव्यंजना है। आयरलैण्ड ने स्वशासन प्राप्त कर लिया है जोकि गृह शासन का पूर्णतम रूप है। उसे राष्ट्रीय एकता की उपलब्धि नहीं हुई है।

आयरी स्वतन्त्र राज्य की जनसंख्या तीस लाख से अधिक है और उत्तरी आयरलैण्ड की जनसंख्या साढ़े बारह लाख है।

1. Tarrifs=आयात निर्यातकर, सीमा शुल्क।

अध्याय ४९

आज का फ्रांस

वर्साई की सन्धि पर हस्ताक्षर होने के पश्चात् तथा फ्रांसीसी संसद द्वारा उसके स्वीकृत हो जाने के पश्चात्, फ्रांस के लिये यह सम्भव हो सका कि वह अन्य विषयों पर ध्यान दे। १९१९ में नयी संसद का निर्वाचन हुआ और उसमें मध्यम तथा अनुदार वर्गों अर्थात् तथाकथित **राष्ट्रीय वर्ग** का बहुमत था। इन वर्गों में क्लीमैन्क्यू, पाँयनकरे, मिलीराण्ड और ब्राइण्ड जैसे व्यक्ति सम्मिलित थे। अधिक उदार तथा उग्रदलों में **उग्र समाजवादी** सम्मिलित थे जिनका नेता हैरियट था। उनको **वामांग** कहते थे। दूसरी ओर चरम वामांगी **समाजवादी** तथा **साम्यवादी** थे और कैमीलोट्स डू रॉइ अथवा **राजवादी** चरम दक्षिणांगी थे। अन्त के दोनों दल अधिक संख्या में नहीं थे और **उग्रसमाजवादियों** अथवा वामांगी दल का स्पष्ट अल्पमत था। युद्ध के पश्चात् प्रथम छह वर्षों में संसद पर राष्ट्रीय वर्ग का नियन्त्रण रहा और उसकी मन्त्रिपरिषदें बनीं। उसके पश्चात् अल्पकाल तक **उग्र समाजवादियों** का शासन रहा। इसके पश्चात् अन्य मिले-जुले शासन रहे। इनमें में पाँइनकरे के नेतृत्व में सभी दलों का एक संयुक्त मंत्रिमण्डल तीन वर्ष तक चला और उसने कम से कम अस्थायी रूप से उन वित्तीय समस्याओं का समाधान करने में सफलता प्राप्त की जो कि उस समय तक गम्भीर बन गयी थीं।

राष्ट्रीय वर्ग

१९१९ के संसदीय निर्वाचनों के पश्चात् १९२० में राष्ट्रपति का निर्वाचन हुआ। पाँइनकरे का, जोकि युद्धकाल में राष्ट्रपति रहा था और जिसकी सप्तवर्षीय कालावधि १८ फरवरी को समाप्त हुई, उत्तराधिकारी पॉल डैसनल हुआ। यह फ्रांस का नवाँ राष्ट्रपति था किन्तु गम्भीर शारीरिक अस्वस्थता के कारण उसको २० सितम्बर १९२० को त्यागपत्र देना पड़ा। उसके पश्चात् अलक्षेन्द्र मिलीराण्ड (Alexander Millerand) राष्ट्रपति बना जिसको जून १९२४ तक पदासीन रहना था, उस समय उस वर्ष की नई संसद के उग्रवादी बहुमत ने उसको पद त्यागने पर विवश कर दिया क्योंकि

फ्रांस के राष्ट्रपति

उन्होंने उसे किसी प्रकार का सहयोग देना स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार उन्होंने शासन को निष्क्रिय (अस्तव्यस्त) करने की धमकी दी। इस दवाव के अधीन मिलीराण्ड पद से हट गया और उसका उत्तराधिकारी गस्टन डूमर्ग हुआ। यह सीनेट का भूतपूर्व सभापति, वकील एवं अविवाहित व्यक्ति था जो कि फ्रांस का पहला निर्वाचित प्रोटेस्टेण्ट राष्ट्रपति था। सात वर्ष की सेवा के पश्चात् डूमर्ग ने वैयक्तिक जीवन प्रारम्भ कर दिया और उसका स्थान पॉलडूमर ने ग्रहण किया। यह सीनेट का सभापति था, कई मन्त्रिमण्डलों का सदस्य रहा था और युद्ध में इसके चार पुत्र वीरगति को प्राप्त हुये थे। दुर्भाग्य से मई १९३७ में एक रूसी द्वारा डूमर की हत्या की गयी जो कि इस प्रकार किसी रूप में अपने देश को सहायता पहुँचाने की आशा करता था। डूमर के पश्चात् राष्ट्र का अध्यक्ष अलवर्ट लीब्रन हुआ। यह भी सीनेट का सभापति था और (फ्रांसीसी) गणतन्त्र द्वारा उसका तेरहवाँ राष्ट्रपति चुना गया था। इसका वैध कार्यकाल १९३९ तक है।

युद्ध की समाप्ति के परवर्ती काल में फ्रांस के राजनीतिक जीवन में दो महान् एवं दुराग्रहपूर्ण समस्यायें अधिक महत्त्वपूर्ण रही हैं। एक पुनर्निर्माण की समस्या और दूसरी वर्साई की सन्धि का व्यवहारिक कार्यान्वियन, अधिकांशतः क्षतिपूर्ति की समस्या। इन दोनों प्रश्नों में घनिष्ठ सम्वन्ध था और प्रत्येक के वहुत से पहलू सामने आये। सन्धि के अनुसार क्षति पूर्तियाँ वे धन राशियाँ थीं जो कि जर्मनी को उन देशों के पुनर्निर्माण के लिये देनी थीं जिन पर उसने आक्रमण किया था अथवा जिनको उसने क्षति पहुँचायी थी।

पुनर्निर्माण और क्षतिपूर्ति

जो हानियाँ जर्मनी ने फ्रांस को युद्ध के द्वारा पहुँचाई थीं वे भयोत्पादक थीं। सर्वप्रथम मानव-शक्ति की हानि थी, १,३६४,००० मृतक तथा ७४०,००० व्यक्ति अंग भंग हो गये थे। इनके अतिरिक्त ३,०००,००० व्यक्ति घायल हो गये थे, और इसके कारण देश के श्रम साधनों में गम्भीर न्यूनता आ गयी थी। लगभग ५००,००० फ्रांसीसी वन्दी वनाये गये थे, और इनमें से अधिकांश रुग्ण अथवा अस्वस्थ होकर लौटे थे। इस विपय का सवसे गम्भीर पक्ष यह था कि अठारह और वत्तीस वर्ष की आयु के वीच के सैनिकों में से ५७% सैनिक अर्थात् नई पीढ़ी के आधे से अधिक युवक मारे गये थे। यह ऐसी हानि थी जो कि कई दशकों तक अनुभव की जावेगी। मा० डारड्यू का कहना है, "इन संख्याओं का पूर्ण महत्त्व समझने के लिए उनको संयुक्त राज्य की जनसंख्या पर आच्छादित कीजिये। यदि अमरीका की हानियाँ फ्रांस के स्तर पर होतीं, तो इसका अभिप्राय होता कि २६५ लाख सैनिक तैयार किये जाते जिनमें से चालीस लाख मर गये होते।"

युद्ध का मूल्य जो फ्रांस को चुकाना पड़ा

मानव-शक्ति तथा अर्थ शक्ति का ह्रास युगपत् रहा था। यह भी (उपरिलिखित) वही लेखक कहता है। उसके अनुमान के अनुसार उस धन राशि को घटा कर जो जर्मनी देगा फ्रांस का शुद्ध युद्ध-व्यय १५०० खरव फ्रैंक था और इस भारी भार के साथ मूल धन में भारी कमी आ गयी थी। इसका कारण युद्ध की विनाशकारिता थी।

स्वभावत: संपत्ति का भी भारी विनाश हुआ था। इसका एक भाग अनावश्यक रूप से किन्तु जानबूझ कर नष्ट किया गया था। इनमें आक्रान्ताओं का सोचा विचारा हुआ यह उद्देश्य था कि फ्रांस को इतना अधिक दुर्बल बना देना कि सन्धि के पश्चात् दीर्घकाल तक वह विश्व की मंडियों में प्रतियोगिता नहीं कर सके। ४००० से अधिक नगर तथा गाँव जर्मनों द्वारा अधिकृत कर लिये गये थे अथवा फ्रांसीसियों द्वारा अनिवार्यत: खाली कर दिये गये थे। इनमें लगभग ३००,००० आवास गृह पूर्णत: नष्ट कर दिये गये थे और १०,००० से अधिक सार्वजनिक भवन नष्ट अथवा क्षतिग्रस्त कर दिये गये थे और उनमें से बहुत से फ्रांस के वास्तुकलात्मक अथवा ऐतिहासिक गौरव के भवनों में से थे। नगरों, आवास गृहों और सार्वजनिक भवनों के विनाश के साथ मिलों, कारखानों, खानों, मशीनों (यंत्रों), सब प्रकार की साज-सज्जा, रेलमार्गों, राजमार्गों (बड़ी सड़कों), स्टेशनों, सुरंगों, पुलों और जंगलों का विनाश भी हुआ था। साथ ही १,३५०,००० से अधिक बैल, गायें, भेड़ें, बकरियाँ, घोड़े और खच्चर जर्मनों द्वारा ले जाये जा चुके थे।

पुन: निर्माण

इस देश को उसकी पूर्व दशा को पुन: पहुँचाने के लिये अधिक व्यय की आवश्यकता थी। केवल १३,००० वर्ग मील प्रदेश को साफ करने और उसको पुनः सुसज्जित करने की समस्या ही नहीं थी जो लूटा और नष्ट किया गया था प्रत्युत नगरों और महानगरों का पुनर्निर्माण भी आवश्यक था और कारखानों तथा मिलों की पुन: स्थापना भी आवश्यक थी। बीस लाख व्यक्ति जो अपने घरों से भगा दिये गये पुन: बसाये जाने चाहिये थे तथा उनको जीवन-यापन के लिये धन भी दिया जाना चाहिये था। यह राज्य द्वारा किया जाना चाहिये था। जो हानियाँ युद्ध के कारण हुई थीं वे राज्य द्वारा पूरी की जानी चाहिये थी। यह ऐसा कर्तव्य था जिसका दायित्व राष्ट्र ने पहली बार सामुदायिक रूप से अपने आप स्वीकार किया था। फ्रांस ने पुन: स्थापना की इस विशाल नीति को इस आशा से कार्यान्वित करना प्रारम्भ किया कि वह अन्ततोगत्वा जर्मनी से वह क्षति पूर्ति करा लेगा जो फ्रांस की असैनिक जनता की हुई थी। दो वर्ष के भीतर इस कार्य पर कई खरब फ्रेंक व्यय हुए और पुनर्स्थापना की गयी परन्तु १९२१ तक इस क्षति-पूर्ति के हिसाब में जर्मनी से कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ और उस समय जर्मनी ने आंशिक **विलम्बन** की प्रार्थना की और वह उसको मिल गया। इसी मध्य अविरल एवं भारी ऋण लेने के कारण फ्रांसीसी फ्रेंक का मूल्य कम होता जा रहा था। अत: युद्धपूर्व बीस सेण्टों के स्थान पर उसका मूल्य दो सेण्ट बताया जाने लगा।

रूहर का आक्रमण

१९२२ में पॉइनकरे के प्रधान मन्त्रित्व में फ्रांस ने जर्मनी पर दबाव डालने और उस देश के औद्योगिक केन्द्र रूहर की घाटी पर आक्रमण करने तथा यह उद्घोषणा करने का निश्चय किया कि जब तक जर्मनी उसके ऋण को चुकता नहीं कर देगा तब तक वह वहाँ अधिकार किये रहेगा। रूहर जर्मनी के ८० से ८५% तक कोयलों और लगभग ८०% लोहा तथा इस्पात का उत्पादन करता था। इसकी जनसंख्या अधिक थी। इसमें जर्मनी के $\frac{१}{१०}$ निवासी रहते थे। फ्रांस का विश्वास था कि इस छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को अधिकृत करके वह जर्मनी को क्षतिपूर्ति देने पर विवश कर देगा और यदि वह देने पर विवश नहीं होगा तो उसका औद्योगिक

कार्यक्रम समाप्त कर दिया जावेगा। अँग्रेज अपने व्यापार की सहायता के साधन के रूप में जर्मनी के साथ अपना व्यापार बढ़ाना चाहते थे। अत: वे इस योजना के विरुद्ध थे और उन्होंने अपना विरोध प्रकट किया। परन्तु फ्रांसीसी अपनी कार्यवाही करने के लिये कृत संकल्प थे। युद्धोत्तर सभी साधनों द्वारा उनका प्रतिरोध करने के लिये जर्मन भी कृतसंकल्प थे। फ्रांसीसियों ने जर्मनी १९२३ में रूहर में प्रवेश किया। जर्मनों ने निष्क्रिय प्रतिरोध की नीत का अनुसरण किया। रूहर को पूर्णत: पृथक् कर दिया गया। फ्रांसीसियों ने अर्थ दण्ड तथा कारादण्ड दिये, असंख्य अधिकारियों को गिरफ्तार किया अथवा बाहर निकाल दिया और प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: उनके कारण उस क्षेत्र से सहस्रों जर्मन नागरिक भाग गये। जर्मनों ने सभी देशों को पूर्णत: रोक दिया और उन्होंने खानों में काम करना तथा रेलों को चलाना अस्वीकार कर दिया। पर्याप्त रक्त बहाया गया। लगभग १०० व्यक्ति मारे गये और १५० व्यक्ति बुरी भाँति घायल हुए। परन्तु इस सीधे संघर्ष में जर्मन नहीं झुके।

किन्तु उनको इस मामले के एक अन्य पहलू के सामने झुकना पड़ा। आक्रमण प्रारम्भ होने के पूर्व ही जर्मन मार्क का मूल्य कम होने लगा था। फ्रांसीसियों के देश में आने के पश्चात् जर्मनी के विनिमय के माध्यम का
अवमूल्यन शीघ्रता से बढ़ता ही चला गया और अन्त में जर्मनी की अर्थव्यवस्था उसके अत्यधिक अवमूल्यन का दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव पड़ा। में अव्यवस्था
फ्रांसीसियों ने उद्घोषित किया था कि वे तब तक जर्मनी में
रहेंगे जब तक कि जर्मनी वह सब धनराशि नहीं दे देगा जो उस पर फ्रांस की चाहिये। परन्तु आक्रमण के वास्तव में प्रारम्भ होने के लगभग दो वर्ष पूर्व सन् १९२१ में ही जर्मन मार्क का मूल्य प्रति डालर ६० से अधिक कम हो गया था। यह केवल प्रारम्भ था। नवम्बर १९२२ तक मार्क का अवमूल्यन प्रति डालर ७००० तक हो गया। अगले वर्ष अर्थात् आक्रमण के वर्ष इसका अवमूल्यन द्रुतगति से तथा हास्यात्मक रूप से हुआ। अन्त में इसका मूल्य प्राय: कुछ भी नहीं रहा। जर्मनी का विनिमय का माध्यम समाप्त हो गया और इसका वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव पड़ा। जर्मनी के चांसलर क्यूनो का पतन हो गया और उसका उत्तराधिकारी स्ट्रैस-मैन हुआ। पायनकरे ने पहले ही उद्घोपित कर दिया था कि 'रूहर'[1] का प्रान्त तभी मुक्त किया जावेगा जब जर्मनी (क्षतिपूर्ति का) धन दे देगा। रैख (जर्मन संसद) को उस दुर्दशा को पहुँचा देना चाहिये कि वह (इस प्रान्त के) अधिकृत किये जाने (Occupation) की अपेक्षा वर्साई की संधि का पालन करना अच्छा समझे।" स्ट्रैसमैन ने यह स्वीकार किया कि उसका देश जिस निष्क्रिय प्रतिरोध की नीति का पालन करता रहा था वह असफल हो गयी थी और २६ सितम्बर को जर्मन शासन ने यह घोषणा की कि वह नीति त्याग दी गयी थी। इस विरोध (दिशा) में पॉयनकरे की विजय निर्णयात्मक रही।

रूहर की इस घटना का बहुपक्षीय परिणाम हुआ। अन्त में जर्मन अपनी पराजय को स्वीकार करने के लिये, अपनी मुद्रा को स्थिर करने के लिये तथा

1. इसका उच्चारण रूर भी किया जाता है।

स्वभावतः संपत्ति का भी भारी विनाश हुआ था। इसका एक भाग अनावश्यक रूप से किन्तु जानबूझ कर नष्ट किया गया था। इनमें आक्रान्ताओं का सोचा विचारा हुआ यह उद्देश्य था कि फ्रांस को इतना अधिक दुर्बल बना देना कि सन्धि के पश्चात् दीर्घकाल तक वह विश्व की मंडियों में प्रतियोगिता नहीं कर सके। ४००० से अधिक नगर तथा गाँव जर्मनों द्वारा अधिकृत कर लिये गये थे अथवा फ्रांसीसियों द्वारा अनिवार्यतः खाली कर दिये गये थे। इनमें लगभग ३००,००० आवास गृह पूर्णतः नष्ट कर दिये गये थे और १०,००० से अधिक सार्वजनिक भवन नष्ट अथवा क्षतिग्रस्त कर दिये गये थे और उनमें से बहुत से फ्रांस के वास्तुकलात्मक अथवा ऐतिहासिक गौरव के भवनों में से थे। नगरों, आवास गृहों और सार्वजनिक भवनों के विनाश के साथ मिलों, कारखानों, खानों, मशीनों (यंत्रों), सब प्रकार की साज-सज्जा, रेलमार्गों, राजमार्गों (बड़ी सड़कों), स्टेशनों, सुरंगों, पुलों और जंगलों का विनाश भी हुआ था। साथ ही १,३५०,००० से अधिक बैल, गायें, भेड़ें, बकरियाँ, घोड़े और खच्चर जर्मनों द्वारा ले जाये जा चुके थे।

पुनः निर्माण

इस देश को उसकी पूर्व दशा को पुनः पहुँचाने के लिये अधिक व्यय की आवश्यकता थी। केवल १३,००० वर्ग मील प्रदेश को साफ करने और उसको पुनः सुसज्जित करने की समस्या ही नहीं थी जो लूटा और नष्ट किया गया था प्रत्युत नगरों और महानगरों का पुनर्निर्माण भी आवश्यक था और कारखानों तथा मिलों की पुनः स्थापना भी आवश्यक थी। बीस लाख व्यक्ति जो अपने घरों से भगा दिये गये पुनः बसाये जाने चाहिये थे तथा उनको जीवन-यापन के लिये धन भी दिया जाना चाहिये था। यह राज्य द्वारा किया जाना चाहिये था। जो हानियाँ युद्ध के कारण हुई थीं वे राज्य द्वारा पूरी की जानी चाहिये थी। यह ऐसा कर्तव्य था जिसका दायित्व राष्ट्र ने पहली बार सामुदायिक रूप से अपने आप स्वीकार किया था। फ्रांस ने पुनः स्थापना की इस विशाल नीति को इस आशा से कार्यान्वित करना प्रारम्भ किया कि वह अन्ततोगत्वा जर्मनी से वह क्षति पूर्ति करा लेगा जो फ्रांस की असैनिक जनता की हुई थी। दो वर्ष के भीतर इस कार्य पर कई खरब फ्रैंक व्यय हुए और पुनर्स्थापना की गयी परन्तु १९२१ तक इस क्षति-पूर्ति के हिसाब में जर्मनी से कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ और उस समय जर्मनी ने आंशिक **विलम्बन** की प्रार्थना की और वह उसको मिल गया। इसी मध्य अविरल एवं भारी ऋण लेने के कारण फ्रांसीसी फ्रैंक का मूल्य कम होता जा रहा था। अतः युद्धपूर्व बीस सेण्टों के स्थान पर उसका मूल्य दो सेण्ट बताया जाने लगा।

रूहर का आक्रमण

१९२२ में पॉइनकरे के प्रधान मन्त्रित्व में फ्रांस ने जर्मनी पर दबाव डालने और उस देश के औद्योगिक केन्द्र रूहर की घाटी पर आक्रमण करने तथा यह उद्घोषणा करने का निश्चय किया कि जब तक जर्मनी उसके ऋण को चुकता नहीं कर देगा तब तक वह वहाँ अधिकार किये रहेगा। रूहर जर्मनी के ८० से ८५% तक कोयलों और लगभग ८०% लोहा तथा इस्पात का उत्पादन करता था। इसकी जनसंख्या अधिक थी। इसमें जर्मनी के $\frac{1}{10}$ निवासी रहते थे। फ्रांस का विश्वास था कि इस छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को अधिकृत करके वह जर्मनी को क्षतिपूर्ति देने पर विवश कर देगा और यदि वह देने पर विवश नहीं होगा तो उसका औद्योगिक

कार्यक्रम समाप्त कर दिया जावेगा। अँग्रेज अपने व्यापार की सहायता के साधन के रूप में जर्मनी के साथ अपना व्यापार बढ़ाना चाहते थे। अत: वे इस योजना के विरुद्ध थे और उन्होंने अपना विरोध प्रकट किया। परन्तु फ्रांसीसी अपनी कार्यवाही करने के लिये कृत संकल्प थे। युद्धोत्तर सभी साधनों द्वारा उनका प्रतिरोध करने के लिये जर्मन भी कृतसंकल्प थे। फ्रांसीसियों ने जर्मनी १९२३ में रूहर में प्रवेश किया। जर्मनों ने निष्क्रिय प्रतिरोध की नीत का अनुसरण किया। रूहर को पूर्णत: पृथक् कर दिया गया। फ्रांसीसियों ने अर्थ दण्ड तथा कारादण्ड दिये, असंख्य अधिकारियों को गिरफ्तार किया अथवा बाहर निकाल दिया और प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: उनके कारण उस क्षेत्र से सहस्रों जर्मन नागरिक भाग गये। जर्मनों ने सभी देशों को पूर्णत: रोक दिया और उन्होंने खानों में काम करना तथा रेलों को चलाना अस्वीकार कर दिया। पर्याप्त रक्त बहाया गया। लगभग १०० व्यक्ति मारे गये और १५० व्यक्ति बुरी भाँति घायल हुए। परन्तु इस सीधे संघर्ष में जर्मन नहीं झुके।

जर्मनी की अर्थव्यवस्था में अव्यवस्था

किन्तु उनको इस मामले के एक अन्य पहलू के सामने झुकना पड़ा। आक्रमण प्रारम्भ होने के पूर्व ही जर्मन मार्क का मूल्य कम होने लगा था। फ्रांसीसियों के देश में आने के पश्चात् जर्मनी के विनिमय के माध्यम का अवमूल्यन शीघ्रता से बढ़ता ही चला गया और अन्त में उसके अत्यधिक अवमूल्यन का दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव पड़ा। फ्रांसीसियों ने उद्घोषित किया था कि वे तब तक जर्मनी में रहेंगे जब तक कि जर्मनी वह सब धनराशि नहीं दे देगा जो उस पर फ्रांस की चाहिये। परन्तु आक्रमण के वास्तव में प्रारम्भ होने के लगभग दो वर्ष पूर्व सन् १९२१ में ही जर्मन मार्क का मूल्य प्रति डालर ६० से अधिक कम हो गया था। यह केवल प्रारम्भ था। नवम्बर १९२२ तक मार्क का अवमूल्यन प्रति डालर ७००० तक हो गया। अगले वर्ष अर्थात् आक्रमण के वर्ष इसका अवमूल्यन द्रुतगति से तथा हास्यात्मक रूप से हुआ। अन्त में इसका मूल्य प्राय: कुछ भी नहीं रहा। जर्मनी का विनिमय का माध्यम समाप्त हो गया और इसका वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव पड़ा। जर्मनी के चांसलर क्यूनो का पतन हो गया और उसका उत्तराधिकारी स्ट्रैस-मैन हुआ। पायनकरे ने पहले ही उद्घोषित कर दिया था कि 'रूहर[1] का प्रान्त तभी मुक्त किया जावेगा जब जर्मनी (क्षतिपूर्ति का) धन दे देगा। रैक्स (जर्मन संसद) को उस दुर्दशा को पहुँचा देना चाहिये कि वह (इस प्रान्त के) अधिकृत किये जाने (Occupation) की अपेक्षा वर्साई की संधि का पालन करना अच्छा समझे।" स्ट्रैसमैन ने यह स्वीकार किया कि उसका देश जिस निष्क्रिय प्रतिरोध की नीति का पालन करता रहा था वह असफल हो गयी थी और २६ सितम्बर को जर्मन शासन ने यह घोषणा की कि वह नीति त्याग दी गयी थी। इस विशेष (दिशा) में पॉयनकरे की विजय निर्णयात्मक रही।

रूहर की इस घटना का बहुपक्षीय परिणाम हुआ। अन्त में जर्मन अपनी पराजय को स्वीकार करने के लिये, अपनी मुद्रा को स्थिर करने के लिये तथा

1. इसका उच्चारण रूर भी किया जाता है।

फ्रांसीसियों को देश से बाहर करने के लिये क्षतिपूर्ति देने के लिये तैयार थे। अँग्रेजों ने अनुभव किया कि उनको चाहिये कि वे फ्रांसीसियों की सहायता इस बात में करें कि प्रभावशाली ढंग से तथा शांति के साथ क्षतिपूर्ति वसूल करने की कोई विधि कार्यान्वित की जा सके। फ्रांसीसी भी इस बात को मानते थे कि केवल शक्ति जर्मनों से क्षतिपूर्ति का धन वसूल नहीं करा सकती है और उनके (एतदर्थ) प्रयत्नों के कारण ही फ्रैंक का मूल्य गिर गया है। अस्तु शांतिपूर्ण सामजस्य किया जाना चाहिये।

अन्त में इस बात को स्वीकार कर लिया गया कि क्षतिपूर्ति के प्रश्न का अध्ययन करने के लिए अर्थ विशेषज्ञों की समिति की स्थापना की जानी चाहिए। इसके फलस्वरूप **डैविस[1] योजना** अस्तित्व में आई।

डैविस योजना

शिकागो का चार्ल्स डी डैविस इस योजना को बनाने वाली समिति का सभापति था। उसी के नाम पर इस योजना का नाम रखा गया। डैविस योजना ने यह उपबन्धित किया कि पुरानी तथा दु:खद रूप से अवमानित मुद्रा को सिद्धान्तत: हटा देना चाहिए जैसी कि वह वास्तव में हट चुकी थी, कि २००,०००,००० डालर का एक नया ऋण जर्मनी को दिया जाना चाहिए। यह धनराशि नई मुद्रा का आधार होना चाहिए। मार्क को उसके पुराने मूल्य लगभग २५ सेण्ट पर स्थिर कर दिया गया,' कि जर्मनी को १९२४ में क्षतिपूर्ति (के हिसाब) में २५०,०००,००० डालर का भुगतान कर देना चाहिये; कि १९२८ तक यह धनराशि प्रति वर्ष ६५०,०००,००० डालर कर देना चाहिये और इसके पश्चात् वह अनिश्चित काल तक उतनी ही रहनी चाहिए किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि यथा समय उन्नति के परिवर्तन सूचक अंकों के उतार-चढ़ाव के साथ उसमें न्यूनता अथवा अधिकता की जा सकती है। यदि जर्मनी इस योजना को स्वीकार कर ले तो फ्रांस रूहर को खाली कर देगा।

डैविस योजना स्वीकार की गयी और कार्यान्वित की गयी। फ्रांस के साथ पुन: सम्बन्ध स्थापित हो गये। उसकी सेनायें रूहर प्रांत से चली आई। ये सम्बन्ध कार्यकारी आधार पर चलते रहे। परन्तु डैविस योजना ने इस एक प्रश्न को अनिर्णीत छोड़ दिया था कि जर्मनी को अन्तत: कितना धन देना चाहिये। अत: शक्तियों की एक नई बैठक हुई और अंत में एक निश्चित योजना स्वीकार की गयी। यह यग योजना थी (१९२९)। इसने यह उपबन्धित किया कि उनसठ वर्ष की कालावधि में जर्मनी को कुल २७,०००,०००,००० डालर देने चाहिये; कि सैंतीस वर्ष तक वार्षिक भुगतानों का मध्यमान (औसत) ५१२,५००,००० होना चाहिये और शेष बाईस वर्ष तक उनका मध्यमान ३९१,२५०,००० होना चाहिये।

यंग योजना ने उस समिति का अवधान जिसने इसको बनाया था, चार मास तक केन्द्रित रखा और अन्त में यह ४५,००० शब्दों का अभिलेख हो गया। जब यह कार्यान्वित की गयी तब यह सामान्य अनुभूति थी कि 'पूर्णतया अन्तिम समझौता' हो गया था परन्तु जिस समिति ने इस लक्ष्य की प्राप्ति की थी वह भीषणतम सम्मेलन रहा था।[2] अधिकांशत इस समझौते को राजनीतिक क्षेत्र से

1. इसका उच्चारण डावेस भी किया जा सकता है।
2. उन सम्मेलनों में जिनका लिखित विवरण प्राप्त है।

आर्थिक क्षेत्र में लाने के लिए वासील में एक **अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान अधिकोष** स्थापित किया गया। यद्यपि यंग योजना को इतना अच्छा समर्थन प्राप्त हुआ था और वह लगभग उनसठ वर्ष के लिये तैयार की गयी थी, तथापि वह पूर्व योजना के विरुद्ध केवल दो वर्ष से अधिकतम लागू न रह सकी। परन्तु जिस समय यह वनी थी उस समय इसको फ्रांसीसी (शासन) तथा अन्य शासनों ने पूर्णहृदय से स्वीकार किया था।

जर्मनी से सेनाओं का हटाया जाना

इस उलझी हुई तथा कठिन समस्या की कल्पित समाप्ति ने जर्मनी को कुछ पारितोपिक की प्रेरणा दी थी। वर्साई की सन्धि में जर्मनी से मित्र राष्ट्रों द्वारा सेनायें हटाने का उपबन्ध था। अब उसकी निश्चित तिथि १९२९ कर दी गयी। इस प्रकार वास्तविक समझौते के हो जाने तथा पूर्व सहमत समय के कई वर्ष पहले नियन्त्रण के हटा लेने से सामंजस्य की समस्या समाप्त हुई जान पड़ी। क्षतिपूर्ति की समस्या प्रत्यक्षतः तय हो गई थी।

फ्रैंक की समस्या

१९२९ में फ्रांस का एक सबसे अधिक योग्य तथा अनुभवी राजनीतिज्ञ पुनः प्रधानमन्त्री वना। रेमण्ड पॉयनकरे का जन्म १८५० में लॉरीन में हुआ था। यह पहले भी प्रधानमन्त्री रहा था और १९१३ से १९२० तक गणतन्त्र का राष्ट्रपति रहा था। अब दो वर्ष तक हैरियट तथा पेनलीव प्रशासन के अध्यक्ष तथा उसके विरुद्ध दल के नेता रहे थे। इन दो वर्षों के पश्चात् पॉयनकरे ने पुनः सत्तारूढ़ होने का निश्चय किया। फ्रैंक की दशा ने उसको विशेष रूप से इस हेतु प्रोत्साहित किया। फ्रैंक का मूल्य लगातार घटता रहा था। मूलतः इसका मूल्य १९ सैंट से अधिक था। वह धीरे-धीरे पाँच, चार और तीन सैंट तक गिर गया और जुलाई १९२६ में इसका मूल्य केवल दो सैंट रह गया था, अर्थात् अपने पहले मूल्य का केवल एक चौथाई। इसके महान् पतन के प्रमुख कारणों में से एक कारण था शासन के लिये प्रायः लिया जाने वाला ऋण तथा असन्तुलित आय-व्यय व्योरा (वजट)। क्या शून्य मात्र रह कर फ्रैंक विनिमय के माध्यम के रूप में पूर्णतः तिरोहित हो जावेगा ? नये ऋण केवल अधिक व्याज पर लिये जा सकते थे और वे वस्तुतः शीघ्र ही पूर्णतः वन्द भी हो सकते थे। चालू गिराव को साधारण प्रयत्न नहीं रोक रखता था। पॉयनकरे ने यह सुझाव रखा कि कुछ समय के लिए उस समय संकटग्रस्त फ्रैंक को बचाने के लिये, उसको उसके मूल्य का कम से कम कुछ मूल्य प्रदान करने के लिये और उन व्यक्तियों के कुछ धन की रक्षा करने के लिए जिन्होंने राज्य में अभिरुचि प्रकट की थी और रुपया लगाया था, दलों को मिल जाना चाहिए। उसने अपने मन्त्रिमण्डल का नाम **राष्ट्रीय संघ** रखा था इस मन्त्रिमण्डल में छह पूर्ववर्ती प्रधानमन्त्री सम्मिलित थे।

पॉयनकरे मन्त्रिमण्डल तीन वर्ष तक पदासीन रहा। यह अवधि अप्रत्याशित रूप से लम्बी थी परन्तु इतने गांभीर्य की समस्या के लिये यह अवधि लम्बी नहीं थी। केवल अधिक भारी कर लगाकर और केवल कठिनतम मितव्ययता के द्वारा राज्य इस भार को वहन कर सकता था और इसके कारण राष्ट्रीय वित्त-आय तथा व्यय की समस्या का सावधानीपूर्वक तथा साहसपूर्वक अध्ययन आवश्यक हो गया था। यह एक असाधारण रूप से जटिल परिस्थिति थी परन्तु दृढ़ संकल्प के साथ उसका सामना किया गया। तेरह वर्षों में प्रथम वार १९२६ के समाप्त होने के पूर्व ही आय-व्यय व्योरा

सन्तुलित हुआ और फ्रैंक का मूल्य बढ़कर लगभग चार सैंट हो गया। इस मूल्य पर वह स्थिर हो गया और पॉयनकरे ने उसकी रक्षा करने की कोई उपाधि[1] प्राप्त कर ली। तथापि फ्रैंक की यह रक्षा उपयोगी तथा प्रशंसनीय होने पर भी वस्तुतः इतना ही अर्थ रखती थी कि अब फ्रैंक का मूल्य उस मूल्य का जो युद्ध के प्रारम्भ के समय था केवल १/५ रह गया था और आन्तरिक ऋण का ४/५ भाग व्यावहारिक रूप से अमान्य कर दिया गया था। परन्तु २५·१९ फ्रैंक का मूल्य एक डालर पर स्थिर हो गया और मुद्रा का आधार सुवर्ण रहा और उसका मूल्य तब तक उतना ही बना रहा जब तक कि आधिकारिक रूप से १९२९ में उसका अवमूल्यन नहीं कर दिया गया। युद्ध के समय राष्ट्रीय ऋण में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी और उसके भुगतान के पर्याप्त साधनों का अभाव था। युद्ध के पश्चात् विनष्ट क्षेत्रों के पुनर्निमाण के लिए व्यय में अत्यधिक वृद्धि हुई थी जिसकी पूर्ति पर्याप्त नवीन करों से नहीं प्रत्युत ऋणों से की गयी थी। इनके फलस्वरूप उसे वित्तसम्बन्धी गम्भीर स्थिति ने जो अधिकाधिक विकट होती चली गई, मुद्रा स्फीति को जन्म दिया। अब वह मुद्रास्फीति अन्तिम रूप से रोक दी गई थी। इसलिये फ्रांस अधिक सुखपूर्वक (स्वतन्त्रतापूर्वक) साँस लें सकता था। परन्तु वैधरूप से फ्रैंक का मूल्य अपने पुराने मूल्य का पंचमांश था। दूसरे शब्दों में देश के ऋणदाता वर्गों को उस धन का जो उन्होंने राज्य को मूलतः उधार दिया था, ४/५ भाग छोड़ने के लिए आमन्त्रित किया जा रहा था। यह भाग उनको कभी भी नहीं वापस मिलना था। परन्तु उन्होंने कम से कम पंचमांश की तो रक्षा कर ली थी। वास्तव में यह उनकी राष्ट्र के प्रति भारी सेवा थी।

आलसेस-लॉरीन

अन्य यूरोपीय भागों के साथ ही फ्रांस ने युद्ध परवर्ती काल में समन्वय की समस्याओं का अनुभव किया है। आलसेस लॉरीन को पुनः प्राप्त करने पर उन प्रान्तों में उसका आभार तथा प्रशंसा के साथ शुभागमन किया गया था। परन्तु शीघ्र ही उसके प्रशासन से उत्पन्न होने वाले प्रश्न दुःखदायक बन गये। इनमें से एक प्रश्न इन प्रांतों की भाषा से सम्बन्ध रखता था। यहाँ की लगभग तीन चौथाई जनता की भाषा जर्मन थी। प्रथमतः अब जर्मन भाषा को विद्यालयों से बहिष्कृत कर दिया गया था परन्तु इसके कारण अत्यन्त सबल विरोध हुआ। इसलिए यह निश्चय किया गया कि शिक्षा के प्रथम दो वर्षों में केवल फ्रांसीसी भाषा ही प्रयुक्त होनी चाहिए। उसके पश्चात् सप्ताह में तीन घन्टे जर्मनी भाषा पढ़ाई जानी चाहिए। साथ ही धार्मिक शिक्षण के कालांशों में जर्मन भाषा प्रयोग की जा सकती थी। पर्याप्त उत्तेजनापूर्ण वादविवाद के पश्चात् शिक्षा तथा धर्म से सम्बन्धित कठिनाइयाँ अन्त में हल हो गई। यह समाधान उन प्रान्तों तथा शेष फ्रांस के लिए काफी सन्तोषजनक रहा।

विदेशों में फ्रांसीसी हित

वर्साई की सन्धि के अनुसार फ्रांस को सार की कोयले की खानों के स्वामित्व के पूर्णाधिकार दिये गए थे क्योंकि जर्मनों ने उसकी बहुत-सी खानों को नष्ट कर दिया था। सार की घाटी को पन्द्रह वर्षों तक राष्ट्र-संघ द्वारा प्रशासित होने के हेतु अलग कर दिया गया था। इस अवधि की समाप्ति के पश्चात् १९३५ में (इस भाग को) सम्बन्धित जनता के जनमत द्वारा इसका अन्तिम निर्णय किया

---

1. रक्षक की उपाधि।

जावेगा कि यह क्षेत्र जर्मनी अथवा फ्रांस अथवा राष्ट्रसंघ में से किसके अधीन रहना पसन्द करेगा। लगभग ४/५ कैमरून और टोगोलैण्ड की उपलब्धि से तथा १९२१ में जर्मनी को किए भाग की उपलब्धि से फ्रांस के औपनिवेशिक साम्राज्य में वृद्धि हो गयी। उसको सीरिया का प्रदेश (मैण्डेट) भी दिया गया था। इस देश के आगामी 'पन्द्रह वर्षों के शासन में उसने कई भूलें कीं जिनके फलस्वरूप १९२५ तथा १९२६ में वहाँ के निवासियों के साथ गंभीर संघर्ष हुए। ये संघर्ष फ्रांस के लिए मूल्यवान रहे और उससे भी अधिक मूल्यवान् वे सीरिया के लिए रहे; तथापि समय की गति के साथ दोनों के सम्बन्ध अधिक शान्तिप्रिय होते हुए दीख पड़े और संभवत. वे अधिक मैत्रीपूर्ण बन गये।

इस अवधि में फ्रांस ने विशेष रूप से, यदि सम्भव हो तो, अपने भविष्य को सुरक्षित बनाने का 'प्रयत्न किया। वह भविष्य कई प्रकार से गम्भीर (चिन्ताजनक) बन गया था। १९१७ में फ्रांस के दीर्घकालीन मित्र तथा सहायक रूस में एक व्यापक क्रान्ति हुई और उसका एक परिणाम फ्रांस के लिये भयानक प्रहार बन गया। फ्रांस का एक मित्र अलग हो गया और वह अपने पृथक् निजी मार्ग का अनुसरण करने लगा। फ्रांस ने इस क्षति को इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य के साथ वर्साई में एक सन्धि ने द्वारा पूरा करने का प्रयत्न किया। इस सन्धि में इन दोनो देशों ने यह वचन दिया था कि यदि फ्रांस पर जर्मनी अकारण (बिना किसी उत्तेजना के) आक्रमण करे तो वे उसकी भविष्य में सहायता करेंगे। परन्तु यह सम्भाव्य संरक्षण शीघ्र ही तिरोहित हो गया क्योंकि इस प्रकार की व्यवस्था से संयुक्त राज्य कोई भी सम्बन्ध नहीं रखेगा और इंगलैण्ड की मान्यता अमरीका की मान्यता पर निर्भर थी। उसके पूर्ववर्ती मित्र रूस के अलग होने से जो हानि हुई थी उसकी अपेक्षा यह हानि अधिक थी।' परन्तु अगली वर्षों में भी फ्रांस ने विदेशी सहायता तथा विदेशी प्रत्याभूति प्राप्त करने का प्रयत्न इस उद्देश्य से किया कि उसका भविष्य अधिक सुरक्षित हो जावेगा और इस उद्देश्य के लिये उसने धीरे धीरे कई मित्रतायें कीं जिनसे उसको सहायता मिल सके। १९२० में फ्रांस तथा बेलजियम में जर्मनी के विरुद्ध पारस्परिक प्रतिरक्षात्मक सैनिक मित्रता हो गई। दो वर्ष पश्चात् १९२२ में फ्रांस तथा पोलैण्ड ने एक सन्धि को सत्यांकित किया। इसमें व्यावहारिक रूप से पश्चिम में जर्मनी द्वारा फ्रांस पर और पूर्व में जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण होने पर दोनों देशों की सुरक्षा के हेतु उपबन्ध रखे गये थे। जनवरी १९२४ में फ्रांस तथा जैकोस्लावाकिया के मध्य एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुये जिसका उद्देश्य दोनों देशों के हितों का सुरक्षित करना था। यदि दोनों में से किसी एक पर आक्रमण हो अथवा आस्ट्रिया और जर्मनी को मिलाने का प्रयत्न किया जावे अथवा हंगरी में हैप्सबर्ग और जर्मनी में होहैन्जोलर्न नामक राजवंशों को पुनः सिंहासनासीन करने का प्रयत्न किया जावे, (तो इस सन्धि के अनुसार दोनों देश एक दूसरे की सहायता करेंगे)। जून १९२६ में फ्रांस तथा रूमानिया ने भी एक संधि पर हस्ताक्षर किये। उसका भी लगभग ऐसा ही उद्देश्य था। १९२७ में फ्रांस तथा यूगोस्लाविया ने प्रायः ठीक ऐसे ही समझौते पर हस्ताक्षर किये। इन सन्धियों के द्वारा तथा इस दशक में हस्ताक्षरित अन्य बहुत से अभिलेखों द्वारा फ्रांस ने अपने भविष्य के लिये कुछ प्रत्याभूतियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न किया जो उसको अधिक सुरक्षित बना सकें।

मन्त्रिमण्डलों का द्रुतवेग से परिवर्तन

१९२९ में पॉयनकरे के हट जाने के परवर्ती वर्षों में द्रुतवेग से मन्त्रिमण्डलों में परिवर्तन होते रहे। १९३० में टाड्यू मन्त्रिमण्डल के समय में उन लोगों की बीमारी, असमर्थता, वृद्धावस्था, मृत्यु के विरुद्ध अनिवार्य बीमा को उपबन्धित करती हुई विधि पारित हुई जो उद्योग, व्यापार और कृषि में काम करते थे और एक निश्चित धन राशि से न्यून धन अर्जित करते थे। टाड्यू मन्त्रिमण्डल के समय में सैनिक सेवा काल तीन वर्ष से घटाकर एक वर्ष कर दिया गया। आगे चलकर अन्य मन्त्रिमण्डलों में से हैरियट के मन्त्रिमण्डल ने एक नवीन आय-व्यय ब्यौरे को पारित कराया जिसने राष्ट्रीय ऋण पर दिये जाने वाले ब्याज की दर को हटा दिया। परन्तु शीघ्र ही दिसम्बर १९३२ में इस मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया। इसका कारण यह था कि इसने एक अन्य वित्तीय विषय में एक दृष्टिकोण अपनाया था। एक वर्ष पूर्व होने वाले लॉसेन के सम्मेलन में जर्मनी ने अपनी क्षति पूर्ति की धनराशि को पर्याप्त रूप से हटाने की माँग की थी जिसका इस मन्त्रिमण्ठल ने समर्थन किया था। अस्तु जब फ्रांस से संयुक्त राज्य कोष के ऋण पर लगभग १९० लाख फ्रैंक देने को कहा गया और उसने उस भुगतान के लिये अनुरोध किया तब वह प्रस्ताव सदन में असफल रहा और मन्त्रिमण्डल ने पदत्याग कर दिया। फ्रांसीसियों ने यह अनुभव किया कि उन्होंने लॉसेन में भारी बोझ अपने ऊपर ले लिया था। अतः यह नया बोझ संयुक्त राज्य को वहन करना उचित था।

इसके पश्चात् तेरह मासों में फ्रांस पर पांच मन्त्रिमण्डलों से कम का नियन्त्रण नहीं रहा। वे बहुत कम सफलता प्राप्त कर सके। परिस्थिति भयावह प्रतीत होने लगी और स्टेविस्की की चुंगी की गिरवी की दूकान की कुख्याति फैली। तब कई व्यक्ति बरबाद हो गये और बहुत से उच्च पदस्थ व्यक्तियों पर उनका प्रभाव पड़ा। इस कुख्याति का सम्बन्ध लाखों फ्रैंकों से था।

सामान्य परिस्थिति से और प्रतिनिधियों को सदन की दुर्बलता से भयभीत होकर गणतन्त्र के राष्ट्रपति लीब्रुन ने भूतपूर्व राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री डूमर्ग से पुनः एक बार सत्ता अपने हाथ में लेने की तथा राज्य की रक्षा करने की प्रार्थना की। ऐसी कल्पना की जाती थी डूमर्ग ने सदा के लिये व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करने के लिये (राजनीति से) अवकाश ग्रहण कर लिया था।

डूमर्ग नियंत्रण को पुनः हाथ में लेता है

डूमर्ग सहमत हो गया और उसने समाजवादियों, साम्यवादियों और प्रतिश्रुत राजवादियों के अतिरिक्त प्रायः सभी दलों का मिलाजुला मन्त्रिमण्डल बनाया। इस नवीन तथा सब मिलाकर अनुदार मन्त्रि मण्डल में हैरियट, लावल, टाड्यू, और मार्शल पेता जैसे व्यक्ति सम्मिलित थे। राष्ट्रपति के विश्वास के अनुसार मुक्ति दिलाने वाले मंत्रिमण्डल ने सुधारावलि प्रारम्भ की। इसने बहुत सी कुख्यातियों की जाँच के आदेश दिये। इसने असैनिक कर्मचारियों की संख्या घटा दी तथा जो पदासीन रहे उनका वेतन घटा दिया। परन्तु जब इसने अधिक गंभीर सांविधानिक परिवर्तनों के प्रस्ताव प्रस्तुत किये तब उसने संकट में प्रवेश किया। इनमें से एक (प्रस्तावित) परिवर्तन यह था कि भविष्य में अबतक आवश्यक सीनेट की स्वीकृति के बिना प्रधानमन्त्री को प्रतिनिधि-सदन को विघटित करने का अधिकार दे दिया जावे। इससे प्रतिनिधियों

की व्यक्तिगत अथवा हल्के कारणों से मन्त्रिमण्डलों को अपदस्थ करने के प्रयत्नों पर रोक लग जावेगी क्योंकि उनमें से बहुतों को यह भय रहेगा कि प्रधानमन्त्री के परामर्श पर सदन विघटित कर दिया गया तो सम्भवत: उनका पुन: न निर्वाचन हो सके।

सदन भयभीत हो गया ओर शीघ्र ही डूमर्ग की तीव्र आलोचना होने लगी। इस प्रस्ताव की यह कहकर निन्दा की गयी कि इसका उद्देश्य अधिनायकत्व स्थापित करना था। यह सदन की अपेक्षा मन्त्रिमण्डल को अधिक शक्तिशाली बना देगा। जनता का प्रतिनिधि और अपने अधिकारों का संरक्षक सदन उनकी रक्षा करने के हेतु समर्थ रहना चाहिये। अस्तु इस प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान किया जाना चाहिये।

सांविधानिक प्रश्न ने जो उत्तेजना उत्पन्न की वह वशीभूत हो गयी। यह उन समस्याओं और घटनाओं द्वारा प्रवर्द्धित कर दी गयी जिनका सांविधानिक परिवर्तन से कोई भी संबंध नहीं था जो उस समय महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशालिनी बन गई; जैसे, शीघ्र होने वाले सार के जनमत संग्रह का संभाव्य परिणाम। तत्पश्चात् मार्सेल में यूगोस्लाविया के नरेस अलक्षेन्द्र की हत्या का तथा उसी प्रहार के फलस्वरूप शीघ्र ही होने वाले फ्रांस के विदेश मन्त्री बार्थू के देहावसान का समाचार प्रसारित हुआ। जनता का मन अशांत हो गया और इस सामान्य अनिश्चय की दशा में मंत्रिमण्डल के विरुद्ध मतदान किया गया। अत: नवम्बर १९३४ में डूमर्ग ने पद-त्याग कर दिया और उसके पश्चात् अन्य मंत्री बने जिन्होंने उस प्रश्न से बचने का प्रयत्न किया जिसके कारण डूमर्ग का तत्काल पतन हुआ था।

कई अल्पकालीन मन्त्रिमण्डल बने। सदन नवीन निर्वाचन के लिये तैयार हो रहा था परन्तु हिचक रहा था। १९३६ में अप्रैल और मई में निर्वाचन हुआ। इसके फलस्वरूप अधिक प्रगतिशील दलों की विजय हुई। **प्रतिनिधि सदन** में पहली बार **समाजवादियों** ने सबसे अधिक स्थान प्राप्त किये। जून के प्रारम्भ में समाजवादियों का नेता लियनबम प्रधानमन्त्री बना। नये मन्त्रि मण्डल ने अधिक उदार किन्तु सावधानी पूर्ण नीति अपनाई। इसने इटली के विरुद्ध राष्ट्र संघ के संघर्ष में राष्ट्र संघ का समर्थन किया परन्तु शीघ्र ही इस संघर्ष का निर्णय इटली की विजय ने कर दिया। **फ्रांस के बैंक** पर नियंत्रण में राज्य को अधिक प्रभाव प्रदान करते हुए इसने उस संस्था को अधिक उदार एवं आधुनिक बना दिया। इसने कुछ समय तक फ्रैंक के मूल्य का समर्थन किया परन्तु अन्त में उसे अपनी नीति को त्यागना पड़ा। फ्रैंक का मूल्य कम हो गया और अब फ्रांस इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य के अपेक्षाकृत अधिक समान स्तर पर आ गया। भविष्य में इन तीनों शक्तियों की वित्तीय प्रवृत्तियाँ एक उद्देश्य की पूर्ति के हेतु अधिक सरलता से तथा अधिक पूर्णता से अभिसृत हो सकती हैं। स्पेन के प्रति फ्रांस की अभिवृत्ति (रवैया) अधिक सावधानी-पूर्ण तथा विचार[1] पूर्ण रही। जर्मनी की सैनिक नीति के कारण सदा की तरह गंभीर धमकी से विश्व के न्यून रूप से सुरक्षित होते जाने से इस देश का अवधान राष्ट्रीय-सुरक्षा पर अधिक केन्द्रित हो गया।

1. सब बातों पर ध्यान देने वाला।

अध्याय ४३

इटली (१९१८-३७)

युद्ध के पश्चात् के तीन अथवा चार वर्षों में इटली ने उलझाने वाली तथा भयानक अनुभूतियाँ कीं। वह समझता था कि पेरिस के सम्मेलन में उसको उचित प्रादेशिक पुरस्कार नहीं मिला था और वह अपने भूतपूर्व मित्रों से अत्यधिक अप्रसन्न था। उसने १९१९ में उ' अनूजियों के नेतृत्व में फ्यूम को अवज्ञापूर्वक हस्तगत कर लिया था और फिर उसकी सरकार ने १९२० में उसको छोड़ दिया। उसकी जनता में तीव्र भेद थे और कई मास तक वह अपने प्रगतिशील दलों के नेतृत्व में उग्र प्रयोगों की ओर उन्मुख रहा। युद्ध में उसके ६३०,००० व्यक्ति मारे गए थे और दस लाख अथवा उससे अधिक घायल हो गए थे और उस युद्ध में भाग लेने के कारण १२९ खरब, सम्भवत: अधिक, डालर व्यय करने पड़े थे। यद्यपि पेरिस के सम्मेलन में उसने लगभग ९००० वर्गमील का प्रदेश और १,६००,००० जनसंख्या प्राप्त कर ली थी तथापि वह इसको नितान्त अपर्याप्त समझता और वह अपने मित्रों की स्वार्थपरता तथा अहंकार की अत्यधिक निन्दा करता था।

१९१९ से १९२२ तक की अवधि में इटली का शासन अदक्ष तथा अशांत रहा। पेरिस में उसने वह उपलब्धि नहीं कर पाई जो वह चाहता था और देश की जनता निराश थी तथा समालोचना करती थी।

युद्ध के पश्चात् का इटली

ऐड्रियाटिक के पूर्व में, एशिया माइनर में अथवा अफ्रीका में उसको वे प्रदेश नहीं मिले थे जिनको वह चाहता था तथा जिसकी उसने माँग की थी। अपनी निराशाओं के लिए वह अपने मित्र फ्रांस और इंगलैण्ड को उत्तरदायी समझता था। उसने उद्घोषणा की कि उसके मित्र राष्ट्र उसको उसकी विजयों से वंचित कर रहे थे और निष्ठावान नहीं थे। पश्चिमी यूरोप के जितने देश विश्वयुद्ध में विजयी हुए थे उनमें से इटली एक ऐसा देश था जिसका तात्कालिक इतिहास सर्वाधिक अशांत रहना था। १९१८ के पश्चात् कई वर्षों तक वह एक कठिन तथा गंभीर स्थिति में रहा था। तत्कालीन संकट में क्रांतिकारी दलों, समाजवादियों,

साम्यवादियों और अराजकतावादियों ने अपने प्रचार को बढ़ाने और अनैक्य का बीजा रोपण करने का उचित अवसर देखा। श्रम-समस्यायें (झगड़े) और संसद् तथा मन्त्रि-मण्डलों की असमर्थता और दुर्बलता बढ़कर इतनी भयोत्पादक बन गयी थी और इतने दिनों तक रही कि देश का राजनीतिक तथा सामाजिक विघटन निकट प्रतीत होने लगा। परिस्थिति राज्य के अशांत एवं व्यवस्था के विरोधी तत्वों के अनुकूल थी और उन्होंने इसका पूर्णरूप से लाभ उठाया।[1]

समाजवादी तथा लोकप्रिय आन्दोलन

१९१९ के नवम्बर के संसदीय निर्वाचनों में प्रतिनिधि-सदन के लिए १५७ सदस्यों को निर्वाचित करके समाजवादियों ने अपनी शक्ति को अधिक कर लिया। रूस के उदाहरण की सार्वजनिक रूप से (प्रत्यक्षतः) प्रशंसा की गयी। शीघ्र ही समाज वादी लेनिन की प्रशंसा तथा नरेश की निन्दा सार्वजनिक रूप के करने लगे। उन्होंने इटली में सोवियत पद्धति को पुनःस्थापित करने का भी प्रयत्न किया। उन्होंने रेलमार्गों, डाक-तार विभाग, और भोजन व्यवस्था विभाग आदि महत्त्वपूर्ण सेवाओं में बहुत से बड़े तथा छोटे नगरों में हड़तालों की व्यवस्था की। युद्ध के पूर्व-काल की अपेक्षा जीवन यापन पर छह अथवा सात गुना व्यय करना पड़ता था। युद्ध में लौटने वाले सैनिकों को करने के लिये कोई भी कार्य नहीं मिल सका और उनके कारण अशांति (झगड़े) फैली हुई थी। कारखाने हस्तगत कर लिये गये तथा श्रमिकों ने अपने आप संचालित करने की उद्घोषणा की। श्रमिकों ने लगभग छः सौ कारखानों पर हिंसापूर्वक अधिकार कर लिया जिनमें लग-भग पाँच लाख कर्मचारी काम करते थे। इन्होंने उत्पादन की समस्या का समाधान करना प्रारम्भ किया परन्तु उन्होंने इस प्रयत्न को शीघ्र ही छोड़ दिया। वे इसलिए असफल रहे कि उन्होंने यह अनुभव किया कि इतने विस्तृत कारखानों को चलाने की उनमें योग्यता नहीं थी, वे उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चा माल प्राप्त नहीं कर सके और उनको विदेशी मंडियाँ उपलब्ध न हो सकीं। शासन की वित्तीय तथा आर्थिक दशा भयोत्पादक हो गयी। उनकी वार्षिक आय से उसका वार्षिक व्यय तीस या चालीस खरब डालर अधिक था। हीरा का मूल्य घट रहा था और मूल्यों में डराने वाली अभिवृद्धि हो रही थी। जीवन यापन पर प्रतिदिन अधिक व्यय करना पड़ रहा था।

इटली निवासियों का कहना था कि "युद्ध जीत लिया गया था और शांति खो दी गयी थी।" राष्ट्रीय शासन दुर्बल तथा अप्रभावशाली था। वह इटली के निवा-सियों की वास्तविक भावनाओं को व्यक्त करने में असमर्थ था और वह अनिर्णय तथा अराजकता की ओर अग्रसर हो रहा था।

इन लाखों असंतुष्ट तथा क्रान्तिकारी तत्वों के विरुद्ध जोकि किसी भी सीमा तक जा सकते थे और जिन्होंने शीघ्र ही यह देख लिया था कि व्यापार को चलाने के लिए उनको न तो सामग्री उपलब्ध थी और न उनमें ज्ञान ही था, अन्य लाखों इटली निवासी थे जिनके हित तथा पृष्ठभूमि भिन्न थी, जैसे भूस्वामी सम्पत्तिशाली व्यक्ति, विश्वविद्यालयों के व्यक्ति। इन व्यक्तियों की यह इच्छा थी कि परिस्कृत एवं सबली-

---

1. शोपण किया।

कृत, नवीन वृत्तियों द्वारा संचालित एवं नवीन विचारों द्वारा नियन्त्रित राज्य सुरक्षित बना रहे। ये ऐसे व्यक्ति थे कि यह नव वर्ग को सत्तावान देखना चाहते थे परन्तु वे चाहते थे कि नव वर्ग राष्ट्रीय विचारों को बढ़ावे और उनको सुदृढ़ (घनीभूत) करे। ऐसे व्यक्ति वे थे जिनका नेता **मसोलिनी** था और जिन्होंने युद्ध की समाप्ति के चार वर्ष पश्चात् अन्तत: शक्ति को हस्तगत कर लिया तथा नवीन उद्देश्यों एवं नवीन पद्धतियों के साथ देश की संस्थाओं का पुर्ननिर्माण किया। इन लोगों के लिय फासिस्टी देश प्रेम जीवन का सर्वस्व था और उनका नारा था साम्यवाद की मृत्यु। प्रारम्भ में उनकी संख्या कम थी और उनके विचार असमान तथा विभिन्न थे तथापि वे विचार सदा सकारात्मक एवं गतिशील थे और वे लोग विचार तथा कार्यों की असाधारण शीघ्रता के प्रति संवेदनशील थे (अर्थात् वे अत्यधिक शीघ्रता से विचार तथा कार्य करने की क्षमता रखते थे।) १९२२ तक उनका सैनिक संगठन सुदृढ़ एवं सुसंगत बन गया था जोकि सुसज्जित, स्वानुशासित एवं सुसंचालित था। यह 'कालीकुर्तियों' का सेना थी जिसकी वेशभूषा के भद्देपन को उन पदकों ने दूर कर दिया था जिनको विश्वयुद्ध में उनमें से कुछ युवकों ने सम्मानपूर्वक प्राप्त किया था। इस दल में कई सहस्र सदस्य थे और एक **प्रशासक निदेशक मण्डल** की आज्ञाओं का इसके द्वारा पालन किया जाता था जिसका अध्यक्ष सैंतीस वर्षीय अत्यधिक लोकप्रिय एवं नैसर्गिक नेता बैनिटो मसोलिनी था। इस सेना के चारों ओर वहुत से असैनिक सहानुभूतिकर्त्ता तथा उत्साही समर्थक थे जो यह विश्वास करते थे कि केवल यही दल इटली को उस निराशा के दलदल से निकाल सकता था जिसमें उसकी वहुसंख्यक गुटवन्दियों और साहसहीन राजनीतिज्ञों ने उसको डाल दिया था।

फासिस्ट वादियों का उदय

फासिस्टी विधिहीन व्यक्तियों की संस्था थी अथवा विधि से ऊपर की संस्था थी जो कि साम्यवादियों के कल्पित आतंकवाद को प्रति आतंकवाद से नष्ट करने पर तुली हुई थी। यदि वे अवैध रूप से कार्य करते थे तो उनके कथानुसार वे ऐसा इसलिए करते थे कि इटली में विधि का अन्त हो गया था, उसके शासकीय प्रतिनिधि अपने आवश्यक कर्तव्यों से वहुत दूर भाग गये थे। फासिस्टी दल की संख्या में द्रुतवेग से वृद्धि होने के कारण उनके आत्म-विश्वास और महत्त्वाकाँक्षा में भी वृद्धि हो गयी।

१९२२ में अक्टूबर के अन्त में उन्होंने अपने को देश पर थोप दिया और स्वयं सत्तारूढ़ हो गये। यह सत्ता उन्होंने शक्ति के द्वारा नहीं अपितु शक्ति की धमकी के द्वारा हस्तगत की थी। यह धमकी पर्याप्त सिद्ध हुई। उनका नेता मसोलिनी प्रधानमन्त्री वना और उसने तत्काल राष्ट्र के प्रति यह उद्घोषणा की, "शासन शासन करना जानता है और शासन करेगा।

यह कैसा व्यक्ति था जो एक आन्दोलन की शक्ति के द्वारा देश का अध्यक्ष वना दिया गया था? वह उस आन्दोलन की प्रेरक शक्ति था। यह आन्दोलन मुख्यतया इटली में सामाजिक क्रांति को रोकने के लिये, देश में देश प्रेम की भावना पुनर्जागरित एवं घनीभूत करने के लिये और राष्ट्रीय जीवन को पुन: संचारित करने के लिये चलाया गया था। इस प्रश्न का केवल आंशिक एवं परीक्षणात्मक उत्तर दिया जा

बैनिटो मसोलिनी

सकता था। कालान्तर में ही मसोलिनी के व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यंजना हो सकती थी। ये सब बातें पहले ही पर्याप्त मात्रा में प्रदर्शित हो चुकी थीं कि वह मानवों का जन्मजात नेता था, कि वह जनता से अनुरोध करने (अपील करने) की कला को जानता था, वह शीघ्र निर्णय करने वाला, द्रुत कार्य करने वाला व्यक्ति था, कि उसका व्यक्तित्व गतिशील एवं आकर्षक था, कि उनमें संगठन करने की तथा अनुशासन स्थापित करने की उच्चकोटि की भावना (योग्यता) थी। परन्तु क्या उसमें राजनीतिज्ञों का सा ज्ञान, निर्णय, व्यवहारकुशलता, अध्यवसाय और सावधानी भी थी जिनकी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में आवश्यकता होती है? क्या उसमें आन्दोलनकर्त्ता के से गुणों के साथ रचनात्मक योग्यता तथा दृष्टिकोण की व्यापकता सहयुक्त थी? इसे कोई नहीं कह सकता था। मसोलिनी के द्वारा शक्ति की उपलब्धि ने व्यापक कुतूहल जागरित किया और उसके साहस तथा प्रसन्नता से भविष्य में उज्ज्वल सम्भावनाओं की आशा की जाने लगी। उसके विषय में जो कुछ निश्चयात्मक रूप से ज्ञात था वह यह था कि वह श्रमिक वर्ग के माता-पिता का बच्चा था, उसका पिता रोमग्ना के लघु नगर में लुहार था, कि युद्ध के पूर्व उसका समाजवाद में विश्वास था और वह एक प्रमुख समाजवादी **अवन्ती** का सम्पादक था; कि जितनी हो सकती थी उतनी शिक्षा उसने प्राप्त की थी किन्तु यह शिक्षा सीमित और अनियमित थी; कि एक पलायित एवं युद्ध प्रिय समाजवादी के रूप वह स्विटजरलैण्ड में कुछ समय तक अपना जीवन यापन कर चुका था और वह कारावास तथा निष्कासन के द्वारा पुलिस से अपरिचित नहीं था; कि जब विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ तब उसने अपने दल को छोड़ दिया था और उसके सर्व राष्ट्रवादी एवं शान्तिप्रिय विचारों को अस्वीकार कर दिया था; कि उसने इटली के युद्ध प्रवेश का समर्थन किया था; कि उसने आईसोना पर वीरतापूर्वक युद्ध किया था और अपनी वीरता के कार्यों के लिये उसका सम्मान हुआ था; कि वह घायल हुआ था तथा सक्रिय सैनिक के रूप में कार्य करने के लिये अक्षय हो गया था, मिलान के **इल पॉपोलोऽ इटालिया** नामक राष्ट्रीय पत्र का सम्पादक बन गया था और अब उसके प्रत्येक विचार और कार्य में राष्ट्रीयवाद का प्राधान्य था; कि उसने **फासिस्टों** का संगठन किया था और विविध प्रकार के भयों और उत्थान-पतनों में होकर उसने नेतृत्व करके उनको स्तब्धकारी विजय प्राप्त करा दी थी; कि उसने एक ऐसी जाति की कल्पना में स्थान प्राप्त कर लिया था जिसकी कल्पना सर्वदा सरलता से जागरित (प्रज्वलित) की जा सकती थी; और इस समाचार से कि वह मिलान की सड़कों पर प्रति घण्टा एक सौ किलोमीटर की चाल से अपनी स्वचालित कार को चलाना जानता था उसके नये एवं उत्साहपूर्ण व्यक्तित्व की रोमांचकारिता में कोई भी कमी नहीं आई थी क्योंकि यह वीरतापूर्ण कार्य क्रीड़ा प्रिय आयु के व्यक्तियों को अप्रसन्न नहीं कर सकता था।

मसोलिनी का कार्यचक्र

राज्य के सर्वोच्च पद पर आसीन होकर मसोलिनी ने अपने कार्यक्रम का परिचय कार्य द्वारा देना प्रारम्भ किया। उसने प्रारम्भ में सावधानी से कार्य किया। उसने संसद् से प्रायः अधिनायक की शक्तियों की माँग की जो कि १९२३ के अन्त तक लागू होनी थी। अपनी अप्रियता को जानते हुये संसद ने उनको अविलम्ब प्रदान कर दिया। तब मसोलिनी ने देश के कार्यालयों को परिवर्तित किया और देश के नायकों

और उपनायकों को फासिस्ट बना दिया। तत्पश्चात् उसने संसद के फासिस्टीकरण द्वारा उसके परवर्तन का श्रीगणेश किया, अर्थात् उसने एक ऐसा अधिनियम पारित कराया जिसके अनुसार सर्वाधिक मतों को प्राप्त करने वाले दल को प्रतिनिधि में दो तिहाई स्थान निश्चित रूप से प्राप्त होंगे। इस प्रकार उसने ठीक ही आशा की थी कि उसको सदन में निरापद बहुमत प्राप्त रहेगा। शेष एक तिहाई स्थान अन्य दलों को उनके द्वारा डाले गये मतों के अनुपात से प्राप्त होंगे परन्तु सदन पर नियंत्रण उसी का रहेगा। इस योजना का परीक्षण किया गया और वह ठीक उसी प्रकार कार्यान्वित हुई, जिस प्रकार की उसने आशा की थी। अगले वर्ष इटली की स्थानीय प्रशासन की निर्वाचनात्मक पद्धति समाप्त कर दी गयी और देश के ९००० स्थानीय संस्थाओं के अधिकारियों की नियुक्ति की जाने लगी। इसी बीच मसोलिनी ने उस पद के स्वरूप को परिवर्तित करा दिया जिस पर वह स्वयं आसीन था। वह प्रधान मन्त्री था और लोकप्रिय सदन के प्रति उत्तरदायी था। भविष्य में वह केवल नरेश के प्रति उत्तरदायी रहेगा, संसद के प्रति किंचित् मात्र भी नहीं। उसके पद का नाम परिवर्तित करके "**शासन का अध्यक्ष**" रख दिया गया। वह अध्यक्ष था और अध्यक्ष बने रहने की ही उसकी इच्छा थी। मन्त्रिगण निश्चित रूप से उसके अधीन बना दिये गये और उसके कहने पर उनकी नियुक्ति और पदच्युति हो सकती थी। शासकीय आदेशों को विधि की सामर्थ्य के साथ प्रकाशित करने का अधिकार उसको दे दिया गया था। विधि द्वारा मृत्यु-दण्ड की पुनः व्यवस्था की गयी और शासन के अध्यक्ष पर किये गये आक्रमण के लिये मृत्यु-दण्ड दिया जा सकता था। समाचार पत्रों पर इतना कठोर नियंत्रण किया गया कि अन्त में केवल फासिस्ट पत्र ही प्रकाशित हुए। विद्यालयों के पदाधिकारियों के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे उन्हीं विचारों को रख सकते हैं जो शासन के अनुकूल थे अन्यथा उनको पदत्याग कर देना चाहिये। उदार शासन के कल्पित स्तम्भों—भाषण, प्रकाशन और समुदाय—की स्वतन्त्रता का दमन किया गया। राजनीतिक विचारों के कारण बहुत से राजनीतिज्ञों को देश से निकाल दिया गया और दूसरों को देश से बाहर जाने की आज्ञा नहीं दी गयी तथा उन पर सतत नियंत्रण[1] रखा गया। शासन की नीति के विरुद्ध सभी प्रकार की अभिव्यंजना को कुचल दिया गया।

मैटीपोटी की हत्या

जून १९२४ में ही एक घटना घटी जिसने यह प्रकट कर दिया कि यह पद्धति किस प्रकार कार्य करती थी और अधिकारियों का इसके प्रति क्या विचार था। **प्रतिनिधि सदन** के एक **समाजवादी** सदस्य ने फासिस्ट-गृह-मन्त्री के भ्रष्टाचार को प्रकट करने की धमकी थी। इसका नाम जियाकोमो मैटीपोटी था। सहसा उसकी हत्या कर दी गयी। दो मास पश्चात् उसका शव एक नदी में पाया गया। मसोलिनी ने जनमत को सन्तुष्ट करने के लिये कुछ अधिकारियों को कारावास में डालने के आदेश दिये। आगे चलकर उन पर अभियोग चलाये गये परन्तु उनमें से कुछ को अल्पावधि के कारावास के दण्ड दिये गये। शेष अन्य अधिकारियों को मुक्त कर दिया गया।

---

1. इस अर्थ में Oversight शब्द का बहुत कम प्रयोग होता है।

संसद को विधान प्रारंभ करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। **'मेसन्स'** जैसी गुप्त संस्थायें समाप्त कर दी गयीं। समाजवादी दल के साथ कठोर व्यवहार किया गया और शीघ्र ही फासिस्ट दल के अतिरिक्त शेष अन्य सभी दलों पर प्रतिबंध लगा दिये गये। केवल फासिस्ट दल ही वैध दल रह गया। यह दल सावधानी एवं विस्तार के साथ संगठित किया गया। **महान् परिषद्** अथवा शासन करने वाली संस्था के ऊपर मसोलिनी सभापतित्व करता था। नहीं, वास्तव में उसमें उसका प्राधान्य था। यह परिषद् नवीन विधान और संधियों को तैयार करती थी। व्यवहारिक रूप में राज्य पर फासिस्ट दल का नियंत्रण था। शासन के पुराने वैध अंगों की अत्यंत अधीनस्थ दशा हो गयी थी। न्यायालयों में, विश्वविद्यालयों में अर्थात् सर्वत्र ही फासिस्ट विरोधी व्यक्तियों को वन्दीगृह में डाल दिया गया अथवा देश से निकाल दिया गया अथवा उन्होंने उन लोगों के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया जिनके सिद्धान्त सीधे और शुद्ध थे। मसोलिनी का कहना था, "विरोधियों के लिये कोई स्थान नहीं है।" लड़के तथा लड़कियों को विभिन्न संस्थाओं में आठ वर्ष की आयु से परिपक्वावस्था तक संगठित, निदेशित, नियंत्रित एवं प्रशिक्षित किया जाता था।

फासिस्ट शक्ति पर एकाधिकार स्थापित करते हैं

विवाह-विच्छेद (तलाक) पर भारी प्रतिबन्ध लगा दिये गये और जो व्यक्ति जन्म-नियंत्रण की माँग करता उसको अपराधी घोषित कर दिया गया। इटली निवासियों को वताया गया कि वे क्या विचार करें और यह देखा जाता था कि वे इन आदेशों का आज्ञाकारिता के साथ पालन करें। वास्तव में फासिस्ट दल ही विधान तथा राज्य के कार्यान्वियन का निर्धारण करता था किन्तु सिद्धान्ततः वह संयुक्त राज्य के **गणतंत्रवादी दल** अथवा **लोकतंत्रवादी** दल के समान केवल एच्छिक संगठन था। व्यावहारिक रूप में उसके हाथ में अनियंत्रित शक्ति थी और सम्पूर्ण प्रायद्वीप में उसको प्रधान शक्ति समझा जाता था। वस्तुतः १९२८ में उसको इटली के संविधान ने मान्यता प्रदान की और उस दल की **महान् परिषद्** को **प्रतिनिधि-सदन** के लिये प्रत्याशियों की सूची तैयार करने का वैध अधिकार प्रदान किया गया और आगे चलकर ये शक्तियाँ उसमें निहित कर दी गयी। दूसरे शब्दों में वह इटली के राजनीतिक यंत्र का वैध भाग वन गया।

फासिस्ट दल को केवल संगठन तथा उद्देश्य के प्रश्नों का ही निर्णय नहीं करना था अथवा कम से कम उस दल का ऐसा ही विचार था। इनमें से एक समस्या का सम्वन्ध **रोमन कैथोलिक चर्च** (रोम कैथोलिकों की धार्मिक संस्थाओं) से था। इटली राज्य की स्थापना के समय कैवूर ने और उसके उत्तराधिकारियों ने जव १८७१ में रोम नगर को इसकी राजधानी के रूप में हस्तगत किया था तव उन्होंने पोप से समझौते की आवश्यकता का अनुभव किया था अतः उन्होंने **पोप सम्बन्धी प्रतिभूतियों की विधि** पारित की थी जिसमें **चर्च** (धर्म संस्था) तथा इटली राज्य के सम्वन्धों का निर्धारण किया गया था परन्तु वे पोप की स्वीकृत एवं सहमति प्राप्त नहीं कर सके थे। १८७१ से १९२९ तक पोप इस **पोप सम्बन्धी प्रत्याभूतियों की विधि** को अस्वीकार करता रहा था। इसका प्रमुख कारण यह था कि यह केवल एक पक्षीय समभौता था और **राज्य** तथा **चर्च** दोनों शक्तियों के मध्य का

रोमन प्रश्न अथवा चर्च और राज्य के मध्य समझौते की समस्या का समाधान

समझौता[1] नहीं था। पोप (गत) पचास वर्षों तक इस विधान को अस्वीकार करता रहा था, उसने अपने को 'बलात् सत्ता हस्तगत करने वाली शक्ति' का बन्दी घोषित कर दिया था, वह इस सम्पूर्ण कार्यवाही को अवैध तथा प्रभावहीन मानता रहा था; और वह अर्द्ध शताब्दी तक (इटली के) राज्य को अपने प्रदेश में विधिहीन प्रवेशकर्त्ता समझता रहा था।

अब मसोलिनी ने **चर्च** की शक्ति को मान्यता प्रदान की और यह इच्छा की कि वह राज्य अर्थात् फासिस्ट दल का समर्थन करे। पायस एकादश यह समझता था कि यह विवाद पर्याप्त काल से चला आ रहा था और अन्य देशों से सहायता की कोई आशा नहीं थी। अतः वह इसको समाप्त करने के लिये उत्सुक था। फलतः १९२६ में इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर बातचीत प्रारम्भ हुई। यह दो वर्ष तक चली और फरवरी १९२९ में इसकी समाप्ति एक समझौते के साथ हुई जिसके अनुसार **रोम व कैथोलिक चर्च** तथा इटली राज्य के मध्य संधि और मैत्री स्थापित हो गयी। इसको **लैटेरन एकौर्ड** (लैटेरक **समझौता**) कहा गया और इसमें तीन अभिलेख सम्मिलित थे। एक राजनीतिक संधि, एक कॉनकौर्डट (चर्च तथा राज्य के मध्य का समझौता) तथा वित्तीय व्यवस्था। **पोप** ने इटली के राज्य तथा **सैवाय वंश** को मान्यता प्रदान की और **नरेश** ने **पोप** की संप्रभुता के अधीन वैटीकन नगर के अस्तित्व को मान्यता प्रदान की। वैटीकन नगर अन्य राज्यों के समान ही स्वतन्त्र राज्य घोषित किया गया। परन्तु वह एक लघुतम प्रदेश की संप्रभुता थी अर्थात् लगभग एक सौ एकड़ भूमि पर और लगभग पाँच सौ नागरिकों पर किन्तु इस सीमा के अंतर्गत वह किसी भी संगठित शासन के समान सबल था। पोप को 'पवित्र एवं अनवहनीय[2], माना गया उसके द्वारा राजदूत भेजे जाने तथा स्वीकार किये जाने के अधिकार को पूर्णरूप से मान्यता दी गयी और यह दौत्य सम्बन्ध तब भी बना रहेगा जबकि स्वयं इटली (किसी राज्य से) युद्ध कर रहा हो। वैटीकन अन्त-र्राष्ट्रीय सम्मेलनों में तभी भाग लेगा जब संघर्ष करने वाले पत्र सर्वसम्मति से "उसके शांति के संदेश" के लिए अनुरोध करें। अन्य राज्यों के समान इस राज्य की अपनी निजी मुद्रा, निजी डाक टिकट, निजी बेतार का तार, निजी रेलमार्ग का स्टेशन होगा। अपनी स्वेच्छा से वह कभी युद्ध न करेगा।

यद्यपि अशासकीय रूप से अन्य चर्च (धार्मिक सम्प्रदायों के गिरजाघर) स्थापित बने रहेंगे तथापि इटली का एक मात्र राज्य-धर्म **रोमन कैथोलिक धर्म** ही होगा। इटली के शासन ने सम्पूर्ण राज्य में धार्मिक विधि को कार्यान्वित करने का दायित्व अपने ऊपर लिया अर्थात् चर्च के द्वारा कैथोलिक के लिये निर्धारित विश्वास, नीति, आचरण और अनुशासन सम्बन्धी विधि को कार्यान्वित करना इटली के शासन का दायित्व रहेगा। विवाह को धार्मिक विधि द्वारा नियंत्रित संस्कार[3] स्वीकार किया गया। विवाह विच्छेद चर्च के अधिकार का विषय था। कैथोलिकों का विवाह, यदि वह धर्माधिकारियों (पुजारियों) द्वारा सम्पन्न कराया गया है तो, वैध होगा।

---

1. Concordat विशेष रूप से उस समझौते को कहते हैं जो पोप तथा किसी राज्य के मध्य में सम्पन्न हो। —अनुवादक
2. Inviolable
3. Sacrament

यद्यपि अकैथोलिकों के लिये राज्य के दीवानी न्यायालय में विवाह के पंजीकरण की आज्ञा होगी तथापि रोमन कैथोलिकों के लिये उसकी कोई भी आवश्यकता नहीं होगी। जिस प्रकार पहले प्राथमिक पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी जाती थी उसी प्रकार माध्यमिक पाठशालाओं में अनिवार्य धार्मिक शिक्षा दी जावेगी।

पोप ने पहली वार इटली के राज्य को मान्यता प्रदान की और उसने चर्च के राज्यों पर अपने अधिकारों को त्याग दिया तथा १८७० की घटनाओं के फलस्वरूप 'इटली के साथ अपने सभी वित्तीय सम्वन्धों के निश्चित समझौते के रूप में' उसने ९१,८७५,९००० डालर का भुगतान स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार अट्ठावन वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् **चर्च तथा राज्य में संधि** हो गयी। चर्च ने १८६० से १८६० के दशक के अन्तर्गत वने हुए राज्य को मान्यता दे दी। दोनों पक्ष उल्लसित थे और दोनों ने सार्वजनिक रीतियों से इस नये तथा सम्भवतः सुखदतर सम्वंध को स्वीकार किया। दो वर्ष पश्चात् १९३१ में कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं जिनके कारण कुछ समय तक नये एवं मधुर सम्वंधों के टूटने की आशंका उत्पन्न हो गयी किन्तु अन्त में बिना अधिक कठिनाई के उनका समाधान हो गया और **लैटेरन समझौता** दोनों शक्तियों के सम्वन्धों को यथाभिमत रूप से निर्धारित करता रहा। १८७० में रोम में प्रवेश तिथि अर्थात् २० सितम्वर को इटली का राष्ट्रीय अवकाश दिवस मनाया जाता था। यह राष्ट्रीय अवकाश दिवस परिवर्तित कर दिया और ११ फरवरी को मनाया जाने लगा जिस दिन कि मसोलिनी तथा काडनिल गैसपरी ने **लैटेरन समझौते** पर हस्ताक्षर किये थे क्योंकि इससे इटली के निवासियों की नवीन भावना की अभिव्यंजना अपेक्षाकृत अधिक अच्छी रीति से होती थी।

प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में इटली के शासन ने जो कार्यवाही की उससे वर्तमान शासन के उद्देश्यों और प्रवृत्तियों का पुनः प्रदर्शन होता है। **शांति सम्मेलन** ने इटली को पुराने दक्षिणी टिरॉल के प्रान्त के उस भाग को ही नहीं दिया था जिसमें इटालवी लोग रहते थे और जिसको ट्रेंटिनो कहते थे वरन् उसके ठीक उत्तर में स्थित प्रदेश भी दिया था जिसको दक्षिणी टिरॉल कहते हैं।

भूतपूर्व दक्षिणी टिरॉल अर्थात् अल्टो-एडिग की समस्या

इस प्रदेश में २२०,००० जर्मन रहते थे जो कि कई शताब्दियों तक अत्यन्त निष्ठावान् आस्ट्रियावासी रहे थे और उनको यह आश्वासन दिया गया था कि वे नये राज्य में पुराने राज्य के समान ही अपनी भाषा और संस्कृत को अक्षुण्ण रख सकेंगे। परन्तु जब **फासिस्टवादियों** का इटली पर नियन्त्रण स्थापित हो गया तब इस वचन पर ध्यान नहीं दिया गया और इटलीकरण की सवल नीति प्रारम्भ की गयी। मसोलिनी ने उद्घोषित किया कि "हम उनको इटालवी वना देंगे' और उसने इसी नीति का अनुसरण किया। इटालियन को न्यायालयों और रेलवे, वैंक, विजली, गैस-जल उत्पादक कारखानों आदि अन्य सार्वजनिक सेवाओं की एक मात्र भाषा घोषित किया गया। सभी विधियाँ केवल इटालियन भाषा में प्रकाशित की गयीं जिसको टिरॉल के वहुत से निवासी नहीं जानते थे। स्थानों, घाटियों, पर्वतों और नगरों के नामों का इटलीकरण किया गया और उनके मूल

---

1. Temper यहाँ पर Temperament के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। —अनुवादक

नाम भविष्य में प्रयुक्त नहीं किये जाने थे। प्रान्त का नाम अल्टो-एडिग रख दिया गया और उसके पुराने नाम टिरॉल के प्रयोग पर कठिन दण्ड दिया जाने लगा। इस नाम से उसको शताब्दियों से पुकारा जाता था। सभी जर्मन भाषा के समाचार पत्रों का दमन किया। जर्मन भाषा के विद्यालयों पर रोक लगा दी गयी और धार्मिक शिक्षा में भी उसका प्रयोग नहीं किया जाना था। यद्यपि यह अन्तिम प्रतिबन्ध आगे चलकर हटा दिया गया तथापि इन जर्मन भाषा के बोलने वाले कृषकों को केवल इटालियन भाषा बोलने पर विवश किये जाने के दृढ़ संकल्प में कमी नहीं आई। बहुत से व्यक्तियों के नामों को इटालियन रूप में बदलने की आज्ञा दी गयी। इनमें बहुत से अपने (नये) नामों का भली-भाँति उच्चारण भी नहीं कर सकते थे। शेष इटली के निवासी जर्मन भाषा का अध्ययन कर सकते थे परन्तु इस जर्मन भाषा भाषी प्रान्त के निवासियों को यह अधिकार नहीं था। जर्मन भाषा में गीतों के गाने पर प्रतिबन्ध था और निजी रूप से जर्मन भाषा में धार्मिक शिक्षण पर भी प्रतिबन्ध था। **फासिस्ट** वादियों द्वारा इस नव विजित प्रदेश के निवासियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया गया।

इटली का आर्थिक पुनर्गठन

सत्तारूढ़ होने तथा इटालवी जनता के अध्यक्ष के रूप में अपने अधिकारों के मूलभूत तत्त्वों पर विचार करने के लिये स्वतन्त्र होने से मसोलिनी ने अपने देश के आर्थिक संगठन के सम्बन्ध में कार्यवाही प्रारम्भ की। यह महत्त्वपूर्ण कार्य था। वह ३ अप्रैल १९२६ को पारित विधि के कार्यान्वित होने के पक्ष में था जिसके अनुसार भविष्य में इटली में तेरह फासिस्ट अभिषदें सिंडीकेट होंगी, जिनमें कि आर्थिक संसार समाहित रहेगा अर्थात् छह अभिषदें सेवकों की, छह स्वामियों की अभिषदें और एक बुद्धिजीवियों की अभिषद होगी। प्रत्येक शाखा में एक उत्पादन-अभिषद होगी। इन अभिषदों को अधिकोष (बैंकिंग), व्यापार, उद्योग, कृषि, जल यातायात, वायु यातायात, स्थल यातायात और देश के आन्तरिक जल यातायात के विभिन्न क्षेत्रों के कार्य-नियन्त्रण तथा नियमन के सामूहिक समझौतों को तैयार करने का अधिकार होगा। प्रत्येक क्षेत्र में स्वामियों और सेवकों की पृथक् अभिषद् होगी। बुद्धि जीवियों की भी एक अभिषद् होगी। स्थानीय अधीनस्थ कार्यकर्त्ताओं (एजेण्टों) की अभिषदों के अतिरिक्त स्वामियों और सेवकों की अन्य कोई भी परिषद नहीं बनने दी जावेगी। उनके निर्णयों को स्वामियों और सेवकों को मानना होगा, चाहे वे अभिषदों के सदस्य हों, चाहे सदस्य न हों। उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में एक अभिषद के द्वारा श्रमिकों की दशाओं से सम्बन्धित सभी प्रश्न सुलझाये जा सकते थे। हड़तालों तथा कारखानों की तालाबन्दी पर रोक लगा दी गयी। केवल वे ही व्यक्ति अभिषदों के सदस्य हो सकते थे जिनसे राज्य राजनीतिक रूप से संतुष्ट था। इस उपबन्ध के कारण फासिस्ट नेताओं का नियन्त्रण स्थापित हो गया। अभिषदों को ये अधिकार दिये गये कि वे श्रमिकों के कार्य के घण्टों, मजदूरी, तथा अन्य विषयों को नियमित करने वाले समझौते करा सकती थीं। यदि किसी मामले से सम्बन्धित व्यक्ति सहमत न हों तो वह मामला उच्चतर संस्था के सम्मुख रखा जाना चाहिये। यदि वह भी मामले का निर्णय न कर सके तो वह मामला स्थापित न्यायालय में भेजा जावेगा और वह न्यायालय उसका अन्तिम निर्णय कर देगा। कई वर्षों के पश्चात् १९३० में अतिरिक्त विधान

पारित किया गया जिसने इस पद्धति को पूरा किया और उसको और अधिक रूप से शासन की देखरेख में रख दिया। इस विधान ने श्रमिकों के कुछ अधिकारों को निश्चित कर दिया; जैसे, रात्रि कालीन कार्य और विरल कार्य के लिये दिन के कार्य से अधिक वेतन मिलेगा, रविवार वैध अवकाश दिवस होगा, प्रत्येक श्रमिक को सवेतन अवकाश दिया जावेगा।

प्रतिनिधि सदन का पुनर्गठन

उद्योग के संगठन का कार्य हाथ में लिया गया और उसकी छोटी से छोटी बातों पर ध्यान दिया गया। इसके कारण १९२८ में प्रतिनिधि सदन के लिये एक नवीन विधि का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस विधि के अनुसार उस संस्था का राजनीतिक आधार औद्योगिक आधार में परिणत हो गया। इस परिवर्तन के लिये कुछ सुधारक दीर्घकाल से माँग कर रहे थे। सदस्यों की संख्या ६०० के स्थान पर ४०० कर दी गयी और इन चार सौ सदस्यों की निम्नलिखित रीति से व्यवस्था की गयी। तेरह राष्ट्रीय संघ फासिस्ट दल की **महान् परिषद्** को ८०० प्रत्याशियों की एक सूची भेजेंगे। इस **महान् परिषद्** का अध्यक्ष मसोलिनी था। **महान् परिषद्** २०० प्रत्याशियों के नाम और मिला देगी परन्तु इसी सूची में से ही उसका चुनाव नहीं करना था। तब ये ४०० नाम मतदाताओं के समक्ष प्रस्तुत किये जाने चाहिये परन्तु प्रत्येक मतदाता पूरी सूची के पक्ष में अथवा विपक्ष में मतदान करेगा। किसी भी व्यक्ति के नाम को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता था प्रत्युत पूरी सूची के पक्ष अथवा विपक्ष में ही कोई व्यक्ति मतदान कर सकता था। यदि सूची के पक्ष में बहुमत हो तो, सभी ४०० प्रत्याशी निर्वाचित हो जावेंगे। यदि ऐसा न हो तो एक प्रवर्द्धित पद्धति के आधीन नये निर्वाचनों का आदेश दिया जावेगा।

२४ मार्च १९२९ को इस पद्धति के अनुसार प्रथम निर्वाचन हुए। यह प्रश्न सामने रखा गया, "क्या आप फासिस्ट वादी **महान् परिषद्** द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों की सूची को अपनी अनुमति प्रदान करते हैं?" निर्वाचक मण्डल में ९,४६०,७२७ पुरुष मतदाता थे। इनमें से ८,६६३,४१२ ने प्रस्तुत सूची के पक्ष में और केवल ३५,७६१ ने उसके विपक्ष में मतदान किया। परिणाम स्पष्ट एवं निर्णयात्मक रहा।

यह बात दृष्टव्य है कि १९२९ में ९,४६०,७२७ मतदाता थे। यह संख्या पूर्वकालीन मताधिकार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या से कम थी। क्योंकि इस नव निर्वाचन विधि ने सार्वभौम मताधिकार को समाप्त कर दिया था तथा एक विविध स्तरीय मताधिकार प्राप्त किया गया था जो कि अधिकांशत: वित्तीय प्रकृति का था। यह प्रतिबन्ध था कि वे ही व्यक्ति मतदान के अधिकारी हैं जो अभिषद-दर (सिंडीकेट रेट) देते हों अथवा १०० लीरा का कर देते हों, तथा अन्य कुछ वर्गों को यह अधिकार प्राप्त था। एक लीरा ५·२६ सेण्ट के बराबर था।

कम से कम इटली में **प्रतिनिधि-सदन** के लिये मताधिकार से कोई तीस लाख व्यक्ति वंचित कर दिये गये। यह सदन केवल दुर्बल एवं निम्न श्रेणी की भूमिका अदा करता था। अब इटली लोकतान्त्रिक राज्य नहीं रहा है और उस प्रायद्वीप

में सत्तारूढ़ **फासिस्टवादी** इस तथ्य पर उल्लसित हैं। वे समझते हैं कि "लोकतन्त्र उन्नीसवीं शती के लिये अच्छा शासन था" परन्तु वह बीसवीं शती के लिये ठीक नहीं है क्योंकि उसकी आवश्यकतायें पूर्ववर्ती शती से कहीं अधिक गम्भीर हैं जिनकी उसको पूर्ति करनी है। इस प्रकार उन्होंने बिना किसी बहाने के मतदाताओं की संख्या घटा दी। इक्कीस वर्ष अथवा अधिक आयु के एक सौ तीस लाख से कम व्यक्तियों में से तीस लाख कमी हो गयी। आगे चलकर १९३५ में **प्रतिनिधि-सदन** की समाप्ति औपचारिक रूप से कर दी गयी।

मसोलिनी का शासन अत्यधिक सक्रिय रहा है। इसने राष्ट्रीय वित्त व्यवस्था पर भली-भाँति ध्यान दिया जो कि उसके सत्तारूढ़ होने के समय अत्यन्त असन्तुलित थी। थोड़े ही समय में इसने अच्छा आयाधिक्य उत्पन्न कर दिया। तथापि यह अल्पकालीन सफलता थी क्योंकि १९२९ की गिरावट के साथ परिस्थिति पुनः गम्भीर हो गयी और भारी घटियाँ होने लगीं। लीरा का मूल्य घटकर प्रति डालर ३० तक हो गया था। १९२८ में वह प्रति डालर १९ तक बढ़ा दिया गया और इस मूल्य पर सुवर्ण मुद्रा में स्थिर हो गया। इटली की आर्थिक स्थिति में विशेष प्रकार की मूलभूत कठिनाइयाँ थीं जो कि अत्यन्त गम्भीर थीं। एक कठिनाई उसकी जनसंख्या का घनत्व थी—प्रति वर्गमील ३२३, जबकि फ्रांस की जनसंख्या प्रति वर्ग मील १८४ थी। इटली की दूसरी कठिनाई कुछ वस्तुओं की सीमित उपलब्धि (Supply) थी जो कि आधुनिक औद्योगिक समाज के लिये परमावश्यक हैं; जैसे लोहा, कोयला, गेहूँ और कपास। इनमें कुछ का उत्पादन वृद्धि के साथ इटली में हो सकता था वह अपनी आन्तरिक माँग को कम कर सकता था। उसने गेहूँ के विषय में यही किया। उसने उत्पादन को प्रोत्साहित किया तथा माँग को कम किया जिससे कई वर्ष पश्चात् उसको केवल आठ प्रतिशत आयात ही करना पड़ा। किन्तु कोयला, लोहा, तेल, फोस्फेट्स का वह न तो उत्पादन करता था और कर ही सकता था और इसीलिये इसको इनको विदेशों में मोल लेना जारी रखना चाहिए। यह उसके लिये निश्चित रूप से हानिकारक था और वह स्थायी रूप से उसके प्रसार में बाधक बना रहेगा। वह कुछ उद्योगों को प्रोत्साहित कर सकता था और उसने उनको प्रोत्साहित किया ; जैसे, रेयन तथा रेशम का उत्पादन। इसमें वह प्रथम रहने लगा। परन्तु इटली को एक असुविधा के आधीन कार्य करना पड़ता है। वह असुविधा यह कि उसको अपने आर्थिक जीवन के लिए आवश्यक अधिकांश कच्चामाल विदेशों से मोल मँगाना पड़ता है। अस्तु उसका आर्थिक दृष्टिकोण विशेष रूप से अच्छा नहीं है।

विदेशी मामले

परन्तु यह इस परिस्थिति पर अपना अवधान केन्द्रित किये हुए है और सक्रिय है। उसने अपने आन्तरिक अलाभों को पूरा करने के हेतु अपने विदेशी सम्बन्धों का अधिकाधिक लाभ उठाया है। उसने अपने विदेशी व्यापार को बढ़ाने के उद्देश्य से १९३० से ३३ तक कई देशों के साथ संधियों पर हस्ताक्षर किये हैं; जैसे, हंगरी, आस्ट्रिया, रूस। वह अधिक विस्तृत उपनिवेशों का महत्त्वाकांक्षी है और वह उन देशों की समालोचना करता रहता है जिनके अधिकार में प्रदेश हैं जो उसके विचार से उसके अधिकार में होने चाहिये ; जैसे, सैवॉई, नीस, ट्यूनिस, और कोर्सिका। ये उसको वापिस मिल जाने चाहियें। इसी प्रकार उसके विचार

में इटालवी भाषी टिसिनो नामक स्विस कैण्टन (प्रान्त), और ब्रिटिश माल्टी जो कि इटली का भौगोलिक अंग है उसे मिल जाने चाहिये यद्यपि इटली पृथ्वी के इन तथा अन्य भागों की माँगों की माँग नहीं करता है तथापि वह कभी-कभी इनके विषय में सोचता रहता है और यदि कभी उचित अवसर आवे, तो उसका विचार सम्भवतः उसको इनमें अथवा अधिक चाहे हुए क्षेत्रों को प्राप्त करने के प्रयत्न की प्रेरणा देगा। एड्रियाटिक के दूसरी ओर स्थित अलबानिया के साथ स्थापित उसके निकट अतीत के सम्बन्ध, जो कि उस आवश्यकता वाले देश के साथ की गयी विभिन्न संधियों से प्रकट होते हैं और जिस देश से इटली को कुछ आर्थिक लाभ होने की आशा है, इस दिशा में अग्रसर होने की प्रवृत्ति प्रकट करते हैं। अलबानिया के साथ १९२६ में की गयी **तिराना की संधि** तथा जो १९३१ में पुनः दुहराई गयी सम्भवतः अनन्तः शुभतर भविष्य में अधिक मूल्यवान् तथा विस्तृत क्षेत्र की विजयों के लिये झंपशिला[1] सिद्ध हो सकती है। कम से कम इसने भौगोलिक स्थिति के कारणों से अत्यधिक मात्रा में संकट में पड़ सकने योग्य राज्य यूगोस्लाविया के अवधान तथा आशंका को जागरित कर दिया है।

इसी मध्य अक्टूबर १९३५ में प्रारम्भ होने वाले **इटली-इथोपिया संग्राम** के अन्तिम दृश्य पर यवनिका का पतन हो रहा था। सात मास पश्चात् इथोपिया अथवा अबीसीनिया की पराजय में इसकी परिणति हुई। यह देश अफ्रीका का अन्तिम स्वतन्त्र देश था। मई १९३६ में इटली ने इसकी राजधानी आदिस-अबाबा पर अधिकार कर लिया। उसके कुछ दिन पूर्व वहाँ का देशी शासक हेली सिलासी अपने परिवार सहित वहाँ से भाग गया था और उसने अँग्रेजों के युद्ध पोत पर शरण प्राप्त की। स्वतन्त्र इथोपीय साम्राज्य का पतन हो गया।

इटली निवासियों ने यह आशा की थी कि यह युद्ध केवल एक औपनिवेशिक मामला रहेगा परन्तु यह इतना महत्वपूर्ण हो गया और इसके कारण इतनी अन्तर्राष्ट्रीय जटिलतायें उत्पन्न हुईं कि इसने विश्वभर में महत्ता प्राप्त कर ली। इटली तथा अबीसीनिया दोनों ही राष्ट्र संघ के सदस्य थे और राष्ट्रसंघ ने अपने सदस्यों पर यह प्रतिबन्ध लगाया था कि वे अपने विवादों को अनुसंधान तथा निर्णय के लिये प्रस्तुत किये बिना परस्पर युद्ध नहीं करेंगे। इटली ने राष्ट्रसंघ की आज्ञा को मानना अस्वीकार कर दिया था और उसने अग्रिम कार्यवाही प्रारम्भ कर दी थी। आंग्ल-इटालवी मित्रता भंग हो गयी और इंगलैण्ड ने अपना जहाजी बेड़ा भूमध्य सागर में भेज दिया था जिसके कारण सरलतापूर्वक युद्ध हो सकता था। आंग्ल-फ्रांसीसी सहयोग की भी कठोर परीक्षा हुई थी। संघ ने अपने कई अंगों को गतिशील किया और कई दृष्टिकोणों से विवादग्रस्त विषय का अनुसंधान किया। उसने १८ नवम्बर को इटली के विरुद्ध कुछ आर्थिक तथा वित्तीय अनुशासनात्मक शास्तियाँ लागू करने की उद्घोषणा की जो कि इससे सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के पश्चात् की थीं। विश्व के पचास राष्ट्रों ने इन कार्यवाहियों का समर्थन किया। इसका विरोध स्वयं इटली, आस्ट्रिया, हंगरी तथा अलबानिया ने किया। क्या आर्थिक दबाव इटली से शर्तें स्वीकार करवा देगा? यह प्रश्न था।

---

1. झंप और अँग्रेजी शब्द जंप (Jump) समानार्थक शब्द हैं।

इस बीच इटली अपने मार्ग पर अवज्ञापूर्वक चला जा रहा था। बिना किसी औपचारिक उद्घोषणा के उसने इथोपिया के प्रदेश पर १९३५ के अक्टूबर के प्रारम्भ में आक्रमण कर दिया। १३ अक्टूबर को इथोपिया का पवित्र नगर अकसम उसके अधिकार में आ गया और नवम्बर में उसने मकाले तथा गोरहाई नामक महत्त्वपूर्णनगरों को छीन लिया। तत्पश्चात् मार्शल बाडोग्लियो के प्रधान सेनापतित्व में इटली की सेनायें धीरे-धीरे किन्तु सफलतापूर्वक आगे को बढ़ीं और मई १९३६ में वे आदिस अबाबा में विजेता के रूप में प्रविष्ट हुईं। लगभग ३५०,००० वर्ग मील विस्तृत एवं प्रायः सत्तर लाख जनसंख्या वाला देश इटली के अधिकार में आ गया।

इस प्रकार युद्ध की वास्तविक समाप्ति हो गयी। इटली विजेता रहा। शीघ्र ही इटली ने इथोपियों पर अपने प्रभुत्व की अधिकृत उद्घोषणा कर दी। इंगलैण्ड ने कुछ समय पश्चात् भू-मध्यसागर से तथा स्वेज के क्षेत्र से अपना जहाजी बेड़ा हटा लिया। इंगलैण्ड की अभिवृत्ति के अनुसार ही राष्ट्रसंघ की अन्य शक्तियाँ भी इस संघर्ष से हट गईं। इन शक्तियों ने राष्ट्रसंघ द्वारा समर्थित अनुशासनात्मक शक्तियों को लागू किया था। आगामी परिवर्तनों पर जिनेवा में विचार होगा अथवा यूरोपीय देशों की राजधानियों में विचार होगा परन्तु यह विचार विमर्श तभी होगा जब कोई परिवर्तन होंगे।

अध्याय ४४

विश्व युद्ध के पश्चात् का जर्मनी

युद्ध के पश्चात्

जर्मन साम्राज्य का पतन

९ नवम्बर १९१८ को जर्मन साम्राज्य का पतन हो गया। सम्राट स्पा को चला गया था और हालैण्ड की ओर अग्रगामी था। उसका अनुसरण युवराज ने किया। उसने सिंहासन त्यागने का वचन दिया था परन्तु सप्ताह से अधिक से बीतने के पश्चात् सिंहासन त्यागा गया। उसने अपने को तथा अपने वंश को सिंहासन से वंचित कर दिया। परन्तु इस घटना के घटित होने के पूर्व जिस पद्धति का वे प्रतिनिधित्व करते थे तथा जिसके वे मूर्त स्वरूप थे वह प्रभावशाली ढंग से तिरोहित हो गयी थी और एक नई पद्धति प्रकट होने लगी थी। वेडन का राजकुमार मैक्ष साम्राज्य का अन्तिम चांसलर था और वह २ अक्टूबर से सत्तारूढ़ अथवा कम से कम पदारूढ़ था और उसने उदार शासन के द्वारा साम्राज्य को बचाने का प्रयत्न किया था परन्तु वह असफल रहा। उसने अपना अधिकार एवर्ट के नेतृत्व में **समाजवादियों** को हस्तांतरित कर दिया।

परन्तु क्या ऐबर्ट तथा उसके साथियों को उसका उत्तराधिकारी बन जाने देना चाहिये ? यह प्रथम गम्भीर प्रश्न था और कुछ प्राथमिक घटनाओं के घटित होने के पूर्व तक इसका निर्णयात्मक उत्तर दिया नहीं गया था। सत्ता **राजतन्त्रवादियों** से **समाजवादियों** को हस्तांतरित हो गयी थी परन्तु यह तत्काल स्पष्ट हो गया कि समाजवादी तीन प्रकार के थे और कि नागरिकों के इस समुदाय के तीनों वर्ग परस्पर सहमत नहीं थे और कि इनमें से एक वर्ग निश्चयात्मक रूप से अन्य दोनों वर्गों की प्रचलित सम्मति के विरुद्ध था। ये दोनों वर्ग भी परस्पर सहमत नहीं थे। जो घटना अधिक स्पष्ट रूप से घटित हुई थी वह यह थी कि केवल सम्राट ही नहीं वरन् बीस से अधिक जर्मनी के शासक राजा अपने सिंहासनों को छोड़कर भाग गये थे और ऐसा विश्वास किया जाता था कि उन्होंने इस त्याग अथवा अवकाश प्राप्ति में अपनी व्यक्तिगत

सुरक्षा खोजने का प्रयत्न किया था। एक गौरवपूर्ण एवं सबल साम्राज्य, जिससे विश्व की कल्पना में लगभग अर्द्ध शताब्दी तक अपना स्थान बरबस बना लिया था, सहसा नष्ट हो गया। जीवित व्यक्तियों की स्मृति में इतना आश्चर्यजनक परिवर्तन कभी नहीं हुआ था। लगभग एक साथ ही बीस सिंहासन रिक्त हो गये थे, उन पर आसीन उन व्यक्तियों द्वारा वे शीघ्रतापूर्वक त्याग दिये गये थे जिन्होंने उनको बनाये रखने के लिये (आवश्यक) संघर्ष के संकटों की अपेक्षा व्यक्तिगत सुरक्षा को अधिक श्रेयस्कर समझ कर पलायन कर दिया था। उनमें से प्रत्येक जितना हो सकता था उतने अच्छे शरण स्थान को चला गया। उनका नेता, होहैन्जोलर्न वंश का विलियम हालैण्ड को और द्वितीय महत्तम नेता विटिल्सबॉख वंश का राजकुमार बवेरिया के किसी पर्वतीय दुर्ग को चले गये थे।

१९१८ की क्रांति

१९१८ की जर्मनी की क्रांति की तुलना १७८९ की फ्रांसीसी क्रांति से तथा १९१७ की रूसी क्रांति से नहीं की जा सकती है। यह तत्कालीन संस्थाओं की सक्रिय, दीर्घकालीन एवं तीव्र आलोचना से उत्पन्न नहीं हुई थी और न यह दीर्घकाल से राजनीतिक स्वतन्त्रता न दिये जाने के विरुद्ध अमर्षपूर्ण विरोध ही था। इसकी पृष्ठभूमि में धीमी तथा दीर्घकालीन तैयारी का अभाव था। तथापि सैनिक दुर्भाग्य प्रसूत इस लघु तथा आकस्मिक संकट[1] स्थिति ने यूरोप के सबलतम प्रकल्पित राजतन्त्र के अस्तित्व को समाप्त कर दिया अथवा प्रतिराज्य के लिये एक-एक गणतन्त्र की स्थापना करके एक गणतन्त्र-समुदाय स्थापित कर दिया तथा जर्मनी के स्वरूप को अत्यधिक परिवर्तित कर दिया। केवल सम्राट ही उस दृश्य से तिरोहित नहीं हुआ जिस पर उसने तीस वर्ष से अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा था प्रत्युत जब कुसाद[2] अधीनस्थ राजा भाग गये तब नरेशतंत्र बुन्देसरात भी अनिवार्यतः समाप्त हो गया और इस संपूर्ण विषय में जर्मनी की संसद (रैक्स स्टेग) ने जीवन का कोई भी लक्षण प्रकट नहीं किया। अनुदार राजनीतिक दल जिन्होंने साम्राज्य की स्थापना के समय से संसद पर नियंत्रण किया था राजशक्ति के विनाश के साथ ही नष्ट हो गये। पुराने उग्रवादी दलों, विशेषकर **समाजवादियों**, ने अब प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया और पुराना काठी-निर्माता, एक श्रमिकवर्ग का समाजवादी ऐबर्ट इस समय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। वह जनता के छः कमिसारों में सम्मिलित था और जिसके हाथ में अस्थाई रूप से शक्ति आ गयी थी। जर्मनी के गणतन्त्रात्मक इतिहास का यह प्रथम काल कहा जा सकता है। ऐबर्ट द्वारा निर्मित संयुक्त मंत्रिमण्डल का प्रारम्भ १० नवम्बर १९१८ को हुआ था। इसमें बहुमत के समाजवादियों ने मन्त्रिमण्डल को त्याग दिया और उसमें (केवल) बहुमत वाले समाजवादी रह गये। नवीन गणतन्त्र का केवल यही प्रथम तथा एकमात्र विशुद्ध समाजवादी नियन्त्रण का काल था। इसके परवर्ती तेरह वर्षों ने जीवन के इतिहास ने धीरे-धीरे **दक्षिण** की ओर अग्रसर होने के लक्षण प्रकट किये।

१९ जनवरी १९१९ को जर्मनी का संविधान निर्माण करने के लिये सभा का

---

1. संकट विशेषण भी होता है।
2. अधीन।

निर्वाचन होना था। परन्तु इस चुनाव के पूर्व और उसको रोकने की आशा से उग्रतम समाजवादियों अथवा स्पार्टासिस्टों का विद्रोह हुआ। एक सप्ताह से अधिक काल तक इन अतिवादियों और नौस्के के नेतृत्व में पुलिस अथवा सेना के मध्य संघर्ष होता रहा। नौस्के की विजय हुई। लीवकर्नेट और रोजा लक्षमवर्ग १५ जनवरी को वन्दी बना लिये गये। कारागार को जाते समय उन पर मार्ग में आक्रमण हुआ और वे मारे गये। विद्रोह समाप्त हो गया परन्तु एक सहस्र अथवा उससे अधिक समाजवादियों के मारे जाने अथवा घायल हो जाने और इन दोनों नेताओं के शहीद हो जाने के पश्चात् ही इसकी समाप्ति हुई थी।

उग्रतम समाजवादियों का विद्रोह

तब चार दिन पश्चात् १९ जनवरी १९१९ को **राष्ट्रीय संविधान सभा** का निर्वाचन हुआ। यह निर्वाचन इस उद्देश्य के लिये सर्वाधिक लोकतांत्रिक मताधिकार से सम्पन्न हुआ था और सम्भवत: इतना अधिक लोकतांत्रिक निर्वाचन उस समय तक इससे पूर्व नहीं हुआ था।

संविधान सभा

बीस वर्ष अथवा उससे अधिक आयु का जर्मन (स्त्री अथवा पुरुष) मतदान का अधिकारी था और निर्वाचित हो सकता था। ३०,५००,००० से अधिक व्यक्तियों ने मतदान किया। फलत: ४२१ सदस्यों की सभा वनी जिसमें ३९ स्त्रियाँ थीं। इस सभा की बैठक ६ फरवरी १९१९ को वीमर में हुई। यह एक छोटा तथा निष्क्रिय नगर है और जर्मनी के इतिहास में इसका सम्बन्ध उदार-विचारों तथा साहित्यिक स्मृतियों से रहा है। वर्लिन में इसलिए बैठक नहीं की गयी थी कि वहाँ झगड़ों और विद्रोहों के संगठन कर्त्ताओं को पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो सकते थे। बहुमत वाले समाजवादियों का अस्थायी शासन अब समाप्त हो गया। उसके स्थान पर 'वीमर संयुक्त' शासन प्रारम्भ हुआ जिसमें **बहुमत वाले समाजवादी, केन्द्रवादी**[1] तथा **लोकतन्त्रवादी** सम्मिलित थे। ११ फरवरी को २७७ के विरुद्ध १०२ मतों से सभा ने फ्रैडरिक एवर्ट को जर्मन गणतन्त्र का प्रथम राष्ट्रपति चुना। तत्पश्चात् सभा ने संविधान का प्रारूप तैयार करना प्रारम्भ किया और साथ ही जर्मनी पर शासन करना तथा राज्य को उस समय अस्तित्व में आने वाले महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्देश देना प्रारम्भ किया। जब तक गृह प्रतिरक्षा मंत्री नौस्के द्वारा लगभग १५,००० श्रमिकों का जीवनांत नहीं कर दिया गया तब तक कुछ काल तक उपद्रव तथा उग्रवादी आन्दोलन होते रहे। २१ फरवरी १९१९ को बावेरी समाजवादी तथा प्रधानमंत्री कर्ट ईसनर की हत्या कर दी गयी।

सभा वीमर में सितम्बर तक कार्य करती रही। कई मास तक विचार विमर्श के पश्चात् ३१ जुलाई को अन्तिम रूप से इसने संविधान पारित किया जोकि ११ अगस्त से लागू हो गया। इस संविधान के अंतर्गत जर्मन राष्ट्रीय राज्य का पुराना नाम ड्यूट्स राइच[2] अक्षुण्ण रखा गया। परन्तु राइच को गणतन्त्र घोषित

---

1. वह दल जिसके सिद्धान्त उग्रवादियों और प्रतिक्रियावादियों के मध्यवर्ती होते हैं अर्थात् मध्य मार्गी राजनीतिक दल।

2. ड्यूटकेस रेक।

किया गया जिसकी सम्प्रभुता का आधार जनता थी। साम्राज्य के काला-श्वेत-लाल रंग के तिरंगे झण्डे के स्थान पर काला-लाल-सुनहरी रंगों का राष्ट्रीय झण्डा बनाया गया। ये रंग १८१५ के उदारवादी विद्यार्थी संस्थाओं के रंग थे। यह भी उपबन्धित किया गया था कि जर्मनी के राज्य का संविधान भी गणतन्त्रात्मक होगा। पुराने राज्यों को बना रहने दिया गया था ताकि संयुक्त राज्य की भाँति जर्मनी एक संघात्मक गणतंत्र हो न कि फ्रांस की भाँति एकात्मक गणतन्त्र। यह बात महत्त्वपूर्ण थी कि संविधान सभा में सचाई के साथ रखा गया। एक प्रस्ताव अस्वीकृत होगया। इस प्रस्ताव का उद्देश्य यह था कि प्रशा जैसे बड़े राज्यों को छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त कर दिया जावे और छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर बड़े राज्य बना दिये जावें जिससे प्रत्येक राज्य के निवासियों की संख्या लगभग २० या ३० लाख हो जावे और सभी राज्य प्रायः समान हो जावें। इस प्रकार राज्यों के अधिकारों की भावना अथवा गहरी पृथक्वादिता ने अब भी अपने को सबल रूप में प्रकट किया। यह भावना जर्मनी के एक सहस्र वर्ष के इतिहास में सर्वदा देखी जा रही है। नवीन जर्मनी में पुरानी जर्मनी की भाँति ही अन्य सभी राज्य मिलकर भी प्रशा से छोटे रहे। अतः प्रशा का प्रधान एवं निर्णयात्मक प्रभाव बना रहता था।

जर्मन राष्ट्रीय राज्य का कार्यकारी अध्यक्ष होगा, सम्पूर्ण जनता द्वारा चुना हुआ राष्ट्रपति। इस चुनाव में स्त्री-पुरुष दोनों ही मतदान करेंगे। वस्तुतः यह सर्वमताधिकार केवल राष्ट्रीय निर्वाचनों में ही नहीं वरन् राज्य निर्वाचनों में भी लागू होगा। राष्ट्रपति का निर्वाचन सात वर्षों के लिए होगा।

राष्ट्रपति

उसका पुर्ननिर्वाचन भी हो सकता था परन्तु कितनी बार, इसका संविधान में उल्लेख नहीं था। जनमत संग्रह द्वारा वह अपनी कालावधि की समाप्ति के पूर्व ही पदच्युत किया जा सकता था। परन्तु यदि जनमत संग्रह उसके पक्ष में रहे तो वह नवनिर्वाचन माना जावेगा और उसके पश्चात् वह सात वर्ष तक पुनः राष्ट्रपति बना रहेगा। राष्ट्रपति के अधीन चांसलर तथा अन्य मंत्री थे जिसको संसद (रैक्सटैक्स) के प्रति उत्तरदायी उद्घोषित किया गया था। उस संस्था के स्पष्ट मतदान द्वारा एक अथवा सभी मंत्रियों को त्याग करने के लिए विवश किया जा सकता था।

पुराने बुन्देसरात के स्थान पर रैक्ससरात अथवा **राष्ट्रीय परिषद्** बनाई जानी थी जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। इसमें प्रत्येक राज्य को कम से कम एक मत अवश्य प्राप्त होगा। वृहत्तर राज्यों के प्रति ७००,००० निवासियों पर एक मत प्राप्त होगा परन्तु किसी भी राज्य को परिषद् के कुल स्थानों के २/५ से अधिक स्थान नहीं प्राप्त होंगे। इसका आशय यह था कि **राष्ट्रीय परिषद** में प्रशा को कभी भी बहुमत प्राप्त नहीं होगा। यह नवीन परिषद् विभिन्न राज्यों के निवासियों का नहीं प्रत्युत उनके शासनों का प्रतिनिधित्व करेगी। उसमें, वास्तव में विभिन्न शासनों के प्रतिनिधि ही सम्मिलित होंगे।

संसद् (रैक्सटैग) का निर्वाचन सार्वभौम, समान प्रत्यक्ष, तथा गुप्त मतदान द्वारा होगा और आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार होगा। इसका निर्वाचन चार वर्षों के लिए होगा। साम्राज्य के अन्तर्गत इसकी जो स्थिति थी उसके विपरीत अब इस नये सदन को दूसरे सदन की अपेक्षा अधिक

रैक्सटैग

महत्त्वपूर्ण बना दिया गया। इसको वृहत्तर विधायनी

शक्तियाँ होंगी। इसके अतिरिक्त मंत्रिमण्डलों के निर्माण तथा विनाश की शक्ति भी इसको प्राप्त होगी क्योंकि फ्रांसीसी गणतन्त्र की भाँति जर्मन गणतन्त्र भी संसदात्मक होगा। चांसलर तथा अन्य मन्त्री संसद के प्रति उत्तरदायी घोषित किये गये थे।

वीमर संविधान में इस प्रकार की कुछ विशेषताएँ थीं। इस संविधान में कुछ अन्य उपबन्ध भी थे जिनके अनुसार उपरिलिखित संसद के अतिरिक्त एक अन्य संस्था **राष्ट्रीय आर्थिक परिषद्** की भी स्थापना होनी थी तथा इसके अधीन जिला आर्थिक परिषदें होंगी। ये परामर्शदात्री संस्थाएँ थीं परन्तु उस काल की प्रचलित इस विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करती थीं कि इस आधुनिक आर्थिक युग में पुरानी पद्धति की व्यवस्थापिका पर्याप्त नहीं रहेगी और इसके साथ-साथ आर्थिक संस्था अथवा संसद् भी होनी चाहिए। तथापि ऊपर वर्णन की गयी राजनीतिक संसद् के अतिरिक्त प्रायः पृथक् आर्थिक प्रतिनिधि-संस्था की इस योजना को सामान्य सफलता ही प्राप्त होनी थी। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि उसको कोई भी सफलता नहीं मिलेगी तथापि वह नाममात्र के लिए बनी रही।

वीमर का संविधान जनता द्वारा सत्यांकित होने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया वरन् १४ अगस्त १६१९ को अविलम्ब लागू कर दिया गया। जैसा कि हम देखेंगे कि जब तक १६३३ की वसन्त ऋतु में हिटलर की असाधारण एवं क्रांतिकारी कार्यवाही द्वारा इसका उग्र परिवर्तन नहीं कर दिया गया तब तक यह देश की विधि बना रहा।

गणतंत्र का लिखित संविधान था जो कि उसकी वैध अभिव्यंजना थी परन्तु इसका भविष्य निश्चित नहीं था। इसके समर्थक भी थे और विरोधी भी थे। इसके विरोधियों ने युद्ध के पश्चात् के अव्यवहित तीन अथवा चार वर्षों में कई बार इस नये शासन के विरुद्ध अपनी तीव्र शत्रुता का प्रदर्शन किया। भयंकर एवं क्रुद्ध **साम्य-वादी** थे जो यह चाहते थे कि जर्मनी अपने नवीन संस्थाओं
का निर्माण रूस के अनुसार करे और जन साधारण के **गणतन्त्र के पक्ष में**
नियन्त्रण में सोवियतों की स्थापना करे। वीमर में सभा के
बैठक के पूर्व ही अतिवादी वामांगियों की इस धमकी को समाप्त कर दिया गया था और जैसा कि कहा जा चुका है कि इसका अन्त इसके नेता लीबकनट तथा राजा लक्षेमबर्ग की हत्या द्वारा प्रकट कर दिया गया था। परन्तु जैसे ही यह संकट दूर किया गया वैसे ही गणतन्त्र के उग्र दक्षिणांग से प्रहार प्रारम्भ हो गये। यदि जर्मनी में क्राँन्तिकारी साम्यवाद नहीं रहेगा तो सम्भवतः इसमें पुनः राजतन्त्र स्थापित हो जावेगा।

इस प्रकार वामांग की धमकी को समाप्त करने के पश्चात् शीघ्र ही **दक्षिणांग** से प्रहार प्रारम्भ हो गये। प्रथम प्रहार कैप-लटविज द्वारा संचालित मार्च १९२० की सैनिक क्रान्ति थी। कैप भूतपूर्व प्रशायी अधिकारी था। लुटवीज उन सैनिकों का प्रधान सेनापति था जिन्होंने वर्साई की सन्धि के अनुसार हथियार रख देना स्वीकार नहीं किया था। वे दोनों व्यक्ति मिल गये और १२ मार्च १९२० को इन्होंने लगभग ८००० सैनिकों के साथ बर्लिन पर चढ़ाई की और उस पर अधिकार कर लिया। एबर्ट शासन के पास केवल २००० सैनिक थे। अतः वह सरकार ड्रेस्डन भाग

गयी और सुरक्षा के हेतु स्टटगार्ड चली गयी परन्तु इसने सम्पूर्ण देश के श्रमिकों के नाम एक अपील (अनुरोध) प्रकाशित की। उन्होंने अविलम्ब सामान्य हड़ताल कर दी और देश भर की जल, गैस, विद्युत, ट्रामों तथा अन्य आवश्यक सेवाओं को अवरुद्ध कर दिया। फलतः शासन की सत्वर विजय हुई। एक सप्ताह में सैनिक क्रान्ति समाप्त हो गई और उसके नेता भाग गये। परन्तु जर्मनी में युद्ध की निराधार आशंका तथा व्यापारिक भय फैल गया था।

गणतन्त्र के शत्रुओं ने अपने प्रहारों का स्वरूप मात्र परिवर्तित कर दिया था। १९२१ में उन्होंने **केन्द्रीय दल** के नेता अर्जबर्गर का वध कर दिया। यह एक प्रमुख राजनीतिज्ञ था और इसने मित्रराष्ट्रों के साथ संधि का समर्थन किया था। जून १९२२ में उन्होंने वाल्टर रैथीनों की हत्या कर दी। यह सफल उद्योगपति तथा तत्कालीन मन्त्रिमण्डल में विदेश मन्त्री था उसकी योग्यता के कारण उससे घृणा की जाती थी और यहूदी होने के कारण उसकी निन्दा की जाती थी। एक वर्ष पश्चात् एक अन्य दल ने बर्लिन मार्च करने (जाने) और शासन को हस्तगत करने की योजना बनायी। उसके अन्य उद्देश्यों का हमको ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है। इस दल के दो नेता थे लूडेण्डर्फ तथा अँडाल्फ हिटलर जो कि आस्ट्रिया में उत्पन्न हुआ था और उस पर मसोलिनी के रोम पर **मार्च** का प्रभाव था। परन्तु षड्यन्त्रकारियों के स्वयं के पारस्पारिक मतभेदों के कारण उनकी योजना नष्ट हो गयी और वह म्यूनिख के 'मदिरा-कक्ष' की एक सैनिक क्रांन्ति मात्र थी जिसका अशोभनीय अन्त हुआ। प्रमुख षड्यन्त्रकारी गिरफ्तार किये गये और उन पर अभियोग चलाए गए परन्तु बवेरिया के न्यायालयों ने उनको सामान्य दण्ड देकर छोड़ दिया।

विरोध और घृणा के इन तथा अन्य प्रदर्शनों से जर्मन गणतन्त्र अत्यन्त अशांत एवं भयभीत हो गया परन्तु उसने उन पर विजय प्राप्त की। जब **समाजवादी लोकतांत्रिक** दल तथा **स्वतंत्र समाजवादियों** में पुनः ऐक्य स्थापित हो गया और उन्होंने गणतन्त्र की रक्षा करने तथा उसके शत्रुओं का सामना करने की शपथ ली तब थोड़ी आशा जागरित हुई। कुछ समय तक इनमें परस्पर फूट रही थी। अब इन्होंने अपनी पूरी शक्ति तथा दृढ़ संकल्प के साथ चाहे वे साम्यवादी हों चाहे राजतन्त्रवादी हों गणतन्त्र के सभी शत्रुओं से संघर्ष करने की शपथ ली।

मुद्रा पद्धति का पतन

यदि गणतंत्र वाह्य संकटों का अनुभव कर रहा था, तो वह एक दूसरे स्वरूप के आन्तरिक संकटों का भी अनुभव कर रहा था। इनमें से वार-वार आने वाला तथा सर्वाधिक दुःखदायक था उसकी आर्थिक प्रणाली का पतन। वह सम्राट की सरकार का दोष था। उसी प्रकार यह उसकी उत्तराधिकारिणी सरकार की भी घातक भूल बनी रही थी। सम्राट की सरकार का यह भी विश्वास था कि युद्ध में शीघ्र विजय होगी और उसका यह भी विश्वास था कि वह सभी होने वाले व्यय को शत्रु को वहन करने का विवश कर देगी। अस्तु, उसने अपनी मुद्रा की सुव्यवस्थित रखने के कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। वह ऊँचे ऊँचे कर लगा कर अप्रिय नहीं बनना चाहती थी। इसलिए उसने स्थिति के अनुसार कार्य नहीं किया। यद्यपि उसने कर लगाए थे, तथापि वे किसी निश्चित सीमा के भीतर ही लगाए थे। उदाहरण के लिये ये कर इंगलैण्ड द्वारा लगाए करों से कम थे। इसलिए मार्क का क्रय-मूल्य घट गया था क्योंकि शासन ने अत्यधिक बढ़े हुए व्यय को चुकता करने के लिए

अधिकाधिक कागजी मुद्रा (नोटों) को प्रचलित किया जिसकी संख्या और आकार की वृद्धि के अनुपात में ही धीरे धीरे मूल्य भी घटता चला गया। युद्ध के प्रारम्भ में जितने मार्क प्रचलित थे। उसके पँचगुने मार्क अब चालू थे। परन्तु प्रत्येक मार्क द्वारा क्रीत वस्तु (पूर्वापेक्षा) अधिक नहीं वरन् कम होती थी। प्रत्येक व्यक्ति जिसने राज्य को ऋण दिया था अब अपनी दुखदायी भूल को समझने लगा क्योंकि उसने यह इसलिए ही नहीं दिया था कि यह देश भक्ति का कार्य या वरन् इसलिए भी दिया था कि यह ऋणदान सुरक्षित था। जब भुगतान का समय आवेगा तब राज्य उसको सम्भवतः पूर्णतया लौटा देगा।

इस प्रकार गणतन्त्र ने साम्राज्य से उत्तराधिकार में अत्यधिक स्फीत मुद्रा प्राप्त की थी। इसका आशय यह था इसकी उत्तराधिकार में ऐसी मुद्रा प्राप्त हुई थी जिसका मूल्य घट रहा था। इसने इस अवमूल्यन को रोकने का प्रयत्न किया होगा अथवा इसको करना चाहिए था परन्तु इसने नहीं किया। इसको बहुत भारी व्यय करना था; जैसे व्यापक बेकारी, देश के आर्थिक जीवन में विविध प्रकार की अव्यवस्था तथा विविध प्रकार के भारी उत्तरदायित्व। तो भी यह शासन अधिकाधिक कागजी नोट छापता रहा। इङ्गलैण्ड की भाँति इसने बड़े-बड़े पूंजीपतियों और युद्ध से लाभ उठाने वालों पर अधिकाधिक कर लगाने का प्रयत्न नहीं किया। केवल ये नागरिक ही उन्नति कर रहे थे। इसने केवल कागजीमुद्रा को बढ़ाने का प्रयत्न किया। मई १९२१ में ६० मार्क का मूल्य एक डालर रह गया था। और यह केवल प्रारम्भ था। नवम्बर १९२२ तक ७१०० मार्कों का मूल्य एक डालर हो गया! जनवरी १९२३ में रूहर में फ्रांसीसियों और बेलजियम निवासियों के आक्रमण से टोबोगन पतन[1] प्रारम्भ हुआ और भयंकर गति से अधिकाधिक होता चला गया। जनवरी १९२३ के अन्त तक एक डालर के लिए ५०,००० मार्कों की आवश्यकता पड़ने लगीं, जुलाई तक १६०,००० और जुलाई के अन्त में १,१००,००० मार्कों की आवश्यकता होने लगी। मार्क की क्रय-शक्ति जितनी अधिक घटती गयी उतनी ही अधिक मात्रा में शासन (कागज का) मार्क प्रचलित करता रहा। अन्त में इसका कुछ भी मूल्य नहीं रहा। नवम्बर १९२३ में बर्लिन में २,५२०,०००,०००,००० मार्कों का मूल्य एक डालर बताया जाता था। और कॉलोग्न में ४,०००,०००,०००,००० मार्कों का मूल्य एक डालर था। एक क्वार्ट दूध का मूल्य २५०,०००,०००,००० से अधिक मार्क था। किसी ऐसे देश के दैनिक आदान-प्रदान के लिए आवश्यक धन को प्रचलित करने के लिए जो अविश्वसनीय रूप से तथा प्रकल्पित रूप से इतना अव्यवस्थित हो, एक विशेष सेना की आवश्यकता होगी। इस नाम मात्र की तथा प्रकल्पित कागजी मुद्रा के उत्पादन के लिए ३० से अधिक कागज के कारखाने, १३३ मुद्राणालय और १७८३ (मुद्रण) यन्त्र कार्य कर रहे थे। जिस मार्क का इतना सीमाहीन अवमूल्यन हो रहा था उससे काम चलाना असम्भव था तथा वेतन, ऋण और वस्तुएँ विनिमय के मुख में समाई जा रही थीं जो कि द्रुतवेग से अत्यन्त दुखदायक बनता जा रहा था।

बिना मूल्य की मुद्रा के इस प्रकंपनकारी एवं भयंकर प्रकृति के अनुभव के

1. एक प्रकार की बिना पहियों की हाथ से बर्फ पर चलाई जाने वाली गाड़ी। यह फिसलती हुई चलती है।

कारण जर्मन का मध्यम वर्ग अधिकांशतः विनष्ट हो गया। निश्चित एवं नियत उपलब्धि के हेतु बचतों, वृत्तियों और बीमा में बहुत से व्यक्तियों द्वारा लगाया हुआ धन पूर्ण रूप से तिरोहित हो गया था और इस वर्ग के जर्मनों के पास एक पैनी भी नहीं थी। उन्होंने अपने लगाये हुए धनों पर मिलने वाले व्याज से जीवन-निर्वाह की आशा की किन्तु अब वे देख रहे थे कि उनका व्याज पूर्णतः अदृष्ट हो गया था। उन्हें भुखमरी का सामना करना पड़ रहा था। यह उनकी दूरदर्शिता का अन्त था। यह दुःखद एवं विनाशक भाग्यपूर्ण एवं सामन्य था। इस प्रकार एक जर्मनी के विचार से और सम्भवतः प्रत्येक व्यक्ति के विचार से जनसंख्या के एक विशाल तथा महत्त्वपूर्ण वर्ग को "आर्थिक मृत्युदण्ड दिया गया"। मध्यम वर्ग जनसंख्या का निम्नतर स्तर का वर्ग बन गया था।

मध्यम वर्ग का विनाश

रूहर में इस मूल्यवान तथा दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव के प्रश्चात् मित्रराष्ट्र तथा जर्मनी अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर प्रयत्न करने के इच्छुक बन गये अथवा उनको बनाना पड़ा। तब उन्होंने क्षतिपूर्ति के सम्पूर्ण प्रश्न को अर्थ विशेषज्ञों की समिति द्वारा अध्ययन कराने का निर्णय किया। उनकी पद्धति यह थी कि उस समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। इसका सभापति अमरीकी अर्थ विशेषज्ञ, चार्ल्स जी० डैविस था। समिति ने इस समस्या के सभी सूक्ष्म विवरणों का अध्ययन किया। इसका कार्य जनवरी १९२४ में प्रारम्भ हुआ था ओर इसने आगामी अप्रैल में सरकारों को अपनी सिफारिशों और परामर्शों की आख्या प्रस्तुत की। इस प्रतिवेदन में १२४ छपे हुए पृष्ठों में एक विवरणपूर्ण एवं व्यापक योजना निहित थी और यह तत्कालीन परिस्थिति का अराजनीतिक अनुसंधान था।

डैविस योजना

डैविस योजना की प्रमुख विशेषता यह थी कि जर्मनी को २००,०००,००० डालर का एक विदेशी ऋण इस हेतु दिया जाना चाहिये कि वह मार्क को अपने चौबीस सैण्ट के पुराने मूल्य पर स्थापित कर सके। दूसरी मुख्य विशेषता यह थी कि १९२४ में जर्मनी को लगभग २५०,०००,००० डालर क्षतिपूर्ति के रूप में देने स्वीकार कर लेने चाहिये; कि यह धन राशि धीरे-धीरे बढ़ायी जानी चाहिये ताकि १९२८ में वह ६२५,०००,००० डालर हो जावे तौर कि इसके अनिश्चित काल तक वह उतनी ही रहनी चाहिये परन्तु उपबन्ध यह था कि जर्मनी के उन्नति सूचकांक के साथ यह घटती-बढ़ती रहनी चाहिये। जर्मनी का यह क्षतिपूर्ति देने का उत्तरदायित्व कब तक रहेगा? इसका कोई संकेत नहीं किया गया था क्योंकि समिति का यह विचार था कि यह इस बात के निर्णय करने की अधिकारिणी नहीं थी।

सम्बन्धित शक्तियों द्वारा डैविस योजना स्वीकार कर ली गयी और १ सितम्बर १९२४ को लागू कर दी गयी। आगामी चार वर्ष तक जर्मनी ने पूरे भुगतान किये और निर्धारित समय पर किये। यह प्रतीत होता था कि यह विवादास्पद प्रश्न अन्ततः सुलझ गया था और कि जर्मनी उस दर से भुगतान करता रहेगा। इस तथा अन्य सहायक कार्यवाहियों का परिणाम अन्त में आय-व्यय व्यौरे को संतुलित करना था और जब जर्मनी ने डैविस आयोजन ने अनुसार २००,०००,००० डालर का ऋण प्राप्त कर लिया तब वह अपनी स्थिति को पुनः ठीक कर सका और अपने आर्थिक

जीवन के आश्चर्यजनक किन्तु अल्पकालीन विस्तार के युग में वह पुनः अग्रसर हो सका। कुछ स्थिरता स्थापित की गयी और भविष्य अधिक आशापूर्ण प्रतीत होने लगा।

हिडनबर्ग राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ

फरवरी १९२५ में राष्ट्रपति एवर्ट का देहावसान हो गया। ९ नवंबर १९१८ को गणतन्त्र की उद्घोषणा के समय से वह शासन का अध्यक्ष रहा था। केवल इस कारण ने कि वह शासन का अध्यक्ष था, कि स्वयं एक श्रमिक रहा था और एक श्रमिक का पुत्र था, और कि वह बुद्धिमान तथा विवेकपूर्ण व्यक्ति था, श्रमिक वर्ग के बहुत से व्यक्ति गणतन्त्र का समर्थन करने लगे थे। वीयर सभा ने उसका निर्वाचन किया था परन्तु अब १९२५ में एक लोकप्रिय निर्वाचन होना चाहिये था और संविधान के अनुसार प्रत्याशी को डाले गये मतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना चाहिए था। यदि उसको ऐसा बहुमत प्राप्त नहीं होगा तो एक नया निर्वाचन होगा और इसमें उसको अन्य किसी भी प्रत्याशी की अपेक्षा अधिक मत प्राप्त करने होंगे। पहला मतदान १९२५ के मार्च के अन्त में हुआ इसमें कोई भी प्रत्याशी नहीं चुना जा सका। अस्तु दूसरा मतदान २६ अप्रैल को हुआ। इस दूसरे निर्वाचन की विशेपता यह थी यह केवल पूर्व मतदान के प्रथम दो अथया तीन प्रत्याशियों तक ही सीमित नहीं था प्रत्युत कोई ऐसा व्यक्ति चुना जा सकता था जो पहले अवसर पर प्रत्याशी न रहा हो। इस वार यह घटना घटी, अनुदार प्रत्यशी अलग कर दिये गये और राष्ट्रीय समर वीर सेनापति (फील्ड मार्शल) वॉन हिडनवर्ग उनके स्थान पर मनोनीत किया गया और वह निर्वाचित हो गया। गणतन्त्रवादी उसके विरुद्ध थे। उनको यह भय था कि वह राजतन्त्रवादी था और वह अपने पद का उपयोग केवल राजतन्त्र की पुनः स्थापना के लिये करेगा। यदि गणतन्त्रवादियों में एकता होती तो वे अपने प्रत्याक्षी मार्क्स (मार्क्स) को निर्चाचित कर सकते थे परन्तु उनके दो प्रत्याशी थे और उनमें मत विभाजित हो गये। अस्तु हिडनवर्ग चुन लिया गया किन्तु अन्य दोनों प्रत्याशियों के मतों का योग उसके मतों की संख्या से अधिक था। तथापि उसके मित्रों और शत्रुओं की आशायें और आशंकायें दोनों ही निष्फल रहीं। हिण्डनबर्ग ने यह घोषणा की कि वह वीमर संविधान के प्रति निष्ठावान रहेगा और उसने सभी जर्मनों से उसका समर्थन करने का अनुरोध किया। उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और अन्त में वह गणतन्त्रवादियों में उतना ही लोकप्रिय हो गया जितना कि वह प्रारम्भ में उन व्यक्तियों में लोकप्रिय था जो साम्राज्य की पुनर्स्थापना के पक्ष में थे। और जब दो वर्ष पश्चात् उसका अस्सीवाँ जन्म दिवस आया तब उसको सम्मान की हार्दिक एवं सामान्य अभिव्यंजना का अवसर बनाया गया। ऐसा प्रतीत होता था कि नया राष्ट्रपति गणतन्त्र के प्रति निष्ठावान् था उस वर्ष राजतन्त्रवादियों ने गणतन्त्रवादियों के साथ इस हेतु मतदान किया कि विलियम द्वितीय अथवा कोई भी अन्य हहैंजोलर्न वंश का राजकुमार जर्मनी पर पुनः शासन नहीं करेगा। फ्रैंकफर्ट के एक महान् समाचार पत्र ने यह टिप्पणी लिखी थी, "जर्मनी में पुनः राजतन्त्र की स्थापना असम्भव है।"

अब तक युद्ध के परवर्ती विकास में रूहर प्रदेश का अधिकृत किया जाना

तथा मार्क का पूर्ण विनाशोन्मुख पतन ही जर्मनी की निकृष्टतम अधोगति के परिचायक थे। उसके पश्चात् सुदृढ़ मुद्रा की स्थापना के साथ और इंगलैंड, फ्रांस, इटली और जापान के राज्यों की ओर से स्थापित **डेविस विधि** से २००,००० डालर के विशेष ऋण की सहायता से उसका पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ।

विदेश मन्त्री के रूप में स्ट्रैसमैन

अब अभिरुचि का केन्द्र राष्ट्र संघ बनने लगा जहाँ पर गरस्टाव स्ट्रैसमैन के व्यक्तित्व में एक नवीन शक्ति प्रकट हुई और जहाँ पर एक नवीन नीति का श्रीगणेश हुआ। अगस्त १९२३ में स्ट्रैसमैन विदेश मन्त्री बना और वह इस पद पर मन्त्रि-मण्डलों के अन्तर्गत अक्टूबर १९२३ में अनेनी मृत्यु पर्यन्त आसीन रहा। इसी ने राष्ट्र संघ में जर्मनी का प्रवेश कराया और उसी ने उसका यूरोप के शक्ति समुदाय का सम्मानित तथा सक्रिय सदस्य बनाया। स्ट्रैसमैन एक प्रशिक्षित राजनीतिज्ञ तथा अनुभवी व्यापारिक परामर्शदाता था और उसका दीर्घकालीन अनुदारवादी कार्यकलाप रहा था। १९२३ में उसका मूलभूत विचार यह था कि जर्मन तथा फ्रांस को सच्चे हृदय से अपने मतभेद दूर कर देने चाहिये; कि जर्मनी को पूर्ण तथा स्पष्ट समानता और उद्देश्य की प्रत्यक्ष सचाई के साथ राष्ट्रों के उस गठबंधन में प्रवेश करना चाहिए जो कि जिनेवा में सहयोग के द्वारा स्वास्थ्य और मुक्ति के लिये प्रयत्न कर रहा था। स्ट्रैसमैन रूहर प्रदेश में विरोध की नीति के विरुद्ध था। वह स्पष्टतः तथा सचाई के साथ युद्ध के विजेताओं से सहयोग करना चाहता था क्योंकि उसका विश्वास था कि एकमात्र इसी उपाय (मार्ग) से जर्मनी अपनी स्थिति को तथा अभ्युदय को पुनः उपलब्ध कर सकता था। वह फ्रांस को तत्कालीन राइन की सीमा की प्रत्याभूति देने वाली संधि पर हस्ताक्षर करके पुनः आश्वस्त करेगा। वह सन्धि इस बात का भी वचन देगी कि भावी अन्तर्राष्ट्रीय विवाद विवाचन द्वारा सुलझायें। तब यूरोप गम्भीरता के साथ अपने समाज के पुनर्निर्माण तथा अभ्युदय की पुन प्राप्ति के कार्य को प्रारम्भ कर सकता है।

लोकार्नो का सम्मेलन

अतः अक्टूबर ५ से अक्टूबर १६ तक १९२५ में कई राज्यों के प्रतिनिधि लोकार्नो में मैगियोर झील के जल पर (नौकाओं) में इकट्ठे हुए। प्रतिनिधि भेजने वाले राज्य थे: जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड, इटली, बेलजियम, पोलैण्ड और जैकोस्लावाकिया। उन्होंने इस प्रकार के अन्य सम्मेलनों से भिन्न प्रकार का एक सम्मेलन किया क्योंकि यह सम्मेलन स्पष्टवादी, अनौपचारिक एवं संलापात्मक था। सर्वाधिक कठिन समस्याओं का समाधान स्पष्ट तथा मैत्रीपूर्ण बातचीत के द्वारा किया गया। इसनी नवीन प्रक्रिया-पद्धति का नया नाम रखा गया "लोकार्नो की भावना"। अन्त में कई संधियों पर हस्ताक्षर हुए और आगे चलकर जिन देशों पर उसका प्रभाव पड़ता था उन्होंने उनको सत्यांकित कर दिया और वे यूरोप की विधियाँ बन गयीं। वे पारस्परिक प्रत्यभूति की संधियाँ तथा अन्य छः अभिलेख थे जो विभिन्न शक्तियों को वचनबद्ध करते थे। उनमें कई बातों का उल्लेख था परन्तु मुख उपबन्ध ये थे : कि जर्मनी, फ्रांस, बेलजियम, ग्रेट ब्रिटेन और इटली इस बात पर सहमत हुए कि जर्मनी तथा बेलजियम के मध्य की तथा जर्मनी और फ्रांस के मध्य की वर्तमान सीमाएँ अक्षुण्ण रखी जावें, लोकार्नो के समझौतों के तोड़ने अथवा राष्ट्र संघ द्वारा उस राज्य के विरुद्ध युद्ध करने के निर्देशित किये जाने के अतिरिक्त जिसने संघ के सदस्य पर

पहले आक्रमण किया हो जर्मनी तथा फ्रांस ने परस्पर युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की। ये उन सब प्रकार के प्रश्नों को भी शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझाने पर सहमत हुए 'जो उनके मध्य उत्पन्न हों और जिनको सामान्य कूटनीतिक रीतियों से सुलझाना असम्भव हो'। जर्मनी के संघ में प्रविष्ट होने पर यह संधि अविलम्ब लागू हो जावेगी।

स्ट्रैसमैन पश्चिमी यूरोप के साथ निकटतर सम्बन्ध स्थापित कर रहा था और लोकार्नो में विशेष रूप से सफल रहा था। साथ ही वह पूर्वी यूरोप के प्राप्त अवसरों का लाभ उठाने की ओर भी ध्यान दे रहा था।

रूस के साथ सन्धियाँ

उसके सत्तारूढ़ होने के पूर्व १९२२ में रैपॅलो में रूस के साथ एक सन्धि हुई थी जिनके अनुसार दोनों शक्तियों ने एक दूसरे को वैध मान्यता प्रदान की और प्रत्येक ने युद्ध सम्बन्धी सभी माँगों और ऋणों का परित्याग कर दिया। दोनों पारस्परिक व्यापार को प्रोत्साहित करने पर सहमत हुए। यद्यपि इस समझौते से बहुत कम भावी सुधार होता हुआ प्रतीत हुआ तथापि जर्मनी ने इसको बुद्धिमत्तापूर्ण पग समझा। कई वर्ष पश्चात् १९२६ में दोनों शक्तियों ने बस प्रतिज्ञा के साथ अपने सम्बन्धों का पुनर्नवीकरण करते हुए एक अन्य सन्धि की कि, 'वे परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्पर्क बनाये रखेंगे जिससे उनके दोनों देशों पर राजनीतिक तथा आर्थिक प्रकृति के प्रभाव डालने वाले प्रश्नों पर पारस्परिक सहमति (सुसमञ्ज) बनी रहे'। इन समझौतों के लिये रूस ने विशेष रूप से प्रयत्न किया था क्योंकि जर्मनी के पश्चिम के साथ निकटतर सम्बन्धों से उसको भय उत्पन्न हो गया था और उसे अकेले रह जाने का डर था। ये समझौते जर्मनी के लिये भी उस स्थिति में उपयोगी सिद्ध होने प्रतीत हो रहे थे जब पश्चिमी यूरोपीय शक्तियों से सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के उसके प्रयत्न असफल हो जावें। परन्तु अस्थायी हिचक के पश्चात् वे प्रयत्न सफल हो गये और रूसी समझौतों का भावनात्मक महत्त्व होते हुए भी वे स्वल्प महत्त्व की संधियाँ थीं। इसका कारण यह था कि शीघ्र ही प्रभावित होने वाली वृत्तियों ने लोकार्नो के समझौतों को सत्यांकित कर दिया और अन्ततोगत्वा १९२६ की शरद ऋतु में राष्ट्र संघ का सदस्य बना लिया गया और उसकी परिषद् में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जापान तथा इटली के साथ एक स्थायी स्थान भी दे दिया गया। इस शान्ति-संस्था में दूसरों के साथ ही स्ट्रैसमैन ने भी स्थान ग्रहण कर लिया। अगली वर्ष जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोगों के प्रबन्ध को भविष्य के लिये राष्ट्र संघ को हस्तांतरित कराकर उनको समाप्त कर दिया। संघ में वह अब स्वयं एक महत्त्वपूर्ण तत्व बन गया था।

रूहर की घटना घटी और मार्क का दुःखद संकट उत्पन्न हुआ जिसने सैकड़ों नागरिकों को नष्ट कर दिया जो तब तक स्वतन्त्र रहे थे। उसके साधनों में न्यूनता आ गई, उसका व्यापारिक टन भार ४००,००० टन रह गया था और उसके रेलमार्गों में बहुत कमी हो गयी थी तथापि जर्मनी ने पुनः उन्नति करने का प्रयत्न किया और आगामी कुछ वर्षों में उसने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। कुछ परिस्थितियाँ उनके अनुकूल रहीं। वास्तविक लड़ाई उसकी सीमाओं के बाहर हुई थी। इसलिये युद्ध के कारण उसका विनाश नहीं हुआ था। उसको अपनी निश्चत रूप से घटी हुई सेना तथा नौसेना पर संधियों के अनुसार एक सीमित धनराशि ही व्यय करने की आज्ञा थी। पुर्ननिर्मित मुद्रा और डैविस योजना के कार्यान्वियन के कारण जर्मनी ने प्रगति की योजना बनाई

जर्मनी का पुनरुत्थान

और १९२४ से परवर्ती छः वर्षों में उसने कई दिशाओं में उन्नति की। शीघ्र ही जर्मनी ने निर्यात के लिये अधिक कोयला का उत्पादन किया, उसके रेलमार्गों का सुधार हुआ, उसके व्यापारिक जलपोत नौगुने हो गये और साथ ही वे नवीन तथा आधुनिक भी थे। १९४२ में **ग्राफ जैपलिन** नाम जर्मन वायुयान ने १२ दिवस से भी कम में विश्व की परिक्रमा की। जर्मनी के कई उद्योग और कृषि भी पुनर्जीवित हो गये। उसने कई देशों से लाभदायक व्यापारिक संधियाँ कीं। १९२९ तक उसका औद्योगिक उत्पादन १९१३ की अपेक्षा अधिक हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका भविष्य और भी अधिक उज्जवल रहेगा।

यंग योजना

जर्मनी संतोष द्वारा की दिशा में एक और पग रख गया। यह था पैरिस में तथाकथित **वित्त की यंग समिति** का अधिवेशन। ओविन डी० यंग एक अमरीकी प्रतिनिधि था और १९२५ की **डैविस योजना** का वह महत्त्वपूर्ण सहयोगी था। इसके सभापतित्व में यह समिति उस समय अपनाई गयी व्यवस्था को पूर्ण एवं परिपूर्ण करने के लिये बुलाई गयी क्योंकि वह व्यवस्था कुछ रूपों में असंतोषजनक सिद्ध हुई थी। नवीन समिति के अधिवेशन ११ फरवरी १९२९ को प्रारम्भ हुए, चार मास तक चलते रहे और उनके परिणाम स्वरूप कुछ परिवर्तन हुए जिनको सम्बन्धित शक्तियों ने शीघ्र ही स्वीकार कर लिया। डैविस योजना ने **मित्र राष्ट्रों** को जर्मनी द्वारा प्रतिवर्ष दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की धनराशि तो निर्धारित कर दी थी परन्तु उसने यह निश्चय नहीं किया था कि ये भुगतान कब तक किये जाते रहेंगे; अर्थात् इसने जर्मनी द्वारा दी जाने वाली कुल धनराशि निश्चित नहीं थी और न यह निश्चत किया था कि जर्मनी का वह उत्तरदायित्व कितने समय तक रहेगा। जो भुगतान जर्मनी को करने थे उनको जर्मनी कम कराना चाहता था और विशेष रूप से यह जानना चाहता था कि ये भुगतान उसको कितने काल तक करने होंगे अर्थात् वह निश्चय रूप से यह जानना चाहता था कि उसको कुल कितनी धनराशि देनी होगी। वातों पर गम्भीर तथा दीर्घकालीन संघर्ष हुआ। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता था कि सम्मेलन असफल हो जावेगा परन्तु अन्त में इस पर समझौता हो गया कि जर्मनी के द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की पूर्ण धनराशि प्रायः २७,०००,०००,००० डालर निश्चित की जानी चाहिये, कि ये भुगतान ५९ वर्षों की अवधि में किये जाने चाहिये, कि प्रथम ३७ वर्षों में जर्मनी प्रतिवर्ष लगभग ५१२,५००,००० डालर दे और अन्तिम २२ वर्षों में उसका वार्षिक भुगतान (मध्यमानतः) ३९१,२५०,००० डालर होना चाहिये। इस प्रकार **डैविस योजना** के प्रतिकूल (इस) **यंग योजना** के अन्तिम भुगतान के लिये वार्षिक देयों की धनराशि तथा उनकी संख्या निर्धारित कर दी। इस व्यवस्था की शर्तों को विवरणत्मक रूप से पूरा करने लिये **अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान बैंक** की स्थापना का भी आदेश दिया गया जो कि स्विट्जरलैण्ड में स्थापित किया जावेगा।

यंग योजना का ऐसा स्वरूप था। यह १९३० में लागू की जानी थी। यह कल्पना की गयी थी कि दस वर्ष के अविरल विवाद के पश्चात् क्षतिपूर्ति का प्रश्न पूर्ण रूस से तथा अन्तिम रूप से सुलझ गया था। जर्मनी के साथ रियायत करने के लिये १९३४ के वजाय जर्मनी को अब एक रियायत देने के उद्देश्य से यह निश्चित

किया गया कि वर्साई की सन्धि में उपबन्धित १९३४ के स्थान पर १९२९ में ही मित्र राष्ट्रों को जर्मन प्रदेश से अपनी सेनायें वापस बुला लेनी चाहिये।

परन्तु यह आर्थिक पुनरुत्थान अल्पकालीन तथा धोखा देने वाला था और उसी वर्ष १९२९ से यह स्पष्ट होने लगा कि यह (प्रगति) अनिश्चित काल तक चालू नहीं रहेगी। जर्मनी को अपनी मण्डियों को विस्तृत करते रहना चाहिये, तथापि यह स्पष्ट था कि ऐसा नहीं हो सकता था। उसके पुराने प्रतियोगी ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य अधिकाधिक प्रतियोगिता कर रहे थे और रूस की मन्डियाँ अधिकाधिक निराशाजनक (सिद्ध) हो रही थीं। जर्मनी अपने उत्पादन को तर्क सम्मत करने में जो उन्नति कर रहा था उसका भी एक दूसरा पहलू था क्योंकि इस प्रक्रिया से उसके बहुत से व्यक्ति बेकार हो गये थे। क्षितिज में (संकट के) बादल छा रहे थे। राष्ट्रीय वित्त व्यवस्था की धीरे-धीरे वर्द्धमान न्यूनता १९२९ के पश्चात् अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हो गई। परिस्थिति की भयोत्पादक विशेषता के रूप में बेकारी पुन: प्रकट हो रही थी और आगामी मासों में यह शीघ्रता से तथा भयानक रूप से बढ़ने वाली थी। महान् गिरावट वास्तव में प्रारम्भ हो रही थी और प्रत्येक स्थान पर वह भयावह स्वरूप धारण करने वाली थी।

अडाल्फ हिटलर का उदय

तथापि जर्मनी में एक ऐसा दल था जिसने इस परिवर्तित परिस्थिति का लाभ उठाया। यह अडाल्फ हिटलर और उसका राष्ट्रीय समाजवादी दल था। इस दल ने राष्ट्र की विपत्ति से लाभ उठाया। विश्व पर बड़ी भारी दु:खद विपत्ति आने वाली थी। हिटलर का जन्म १८८९ में ऊपरी आस्ट्रिया में हुआ था। उसका पिता सामान्य सीमा शुल्क अधिकारी था। उसके माता-पिता चाहते थे कि वह असैनिक सेवा में प्रवेश करे परन्तु वह अल्पायु में ही वियना में वास्तुकला का अध्ययन करने चला गया। तथापि प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण होने में असमर्थ रहने के कारण वह मानचिकार[1] (नकशा नवीस) तथा अलंकृत करने वाला बन गया। वियना में रहते समय वह यहूदियों और समाजवादियों से घृणा करने लगा। उसके ये मनोभाव उसके जीवन में निर्णयात्मक तत्व होने थे। विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने के कुछ दिनों पूर्व वह म्यूनिख में रहने के लिये चला गया और वहाँ उसने भवन चित्रकार के रूप में कार्य किया। युद्धकाल में वह व्यक्तिगत सैनिक के रूप में भर्ती हो गया और आगे चलकर सार्जेण्ट (नायक) बन गया। उसका सैनिक जीवन बहुत अच्छा रहा। वह घायल हुआ, उस पर गैस का प्रयोग किया गया और उसको लौह पदक (आइरन क्रौस) प्रदान किया गया। युद्ध के पश्चात् उसने जर्मन गणतन्त्र के शासन के विरुद्ध लूडैंण्डर्फ के असफल षड़यन्त्र में भाग लिया जो कि, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है मदिरा-कक्ष की गड़बड़ से अधिक (प्रभावशाली) नहीं था। वह गिरफ्तार हुआ और उसको पाँच वर्ष कारावास का दण्ड दिया गया किन्तु वह कुछ मास तक बन्दी गृह में रहने के पश्चात् मुक्त कर दिया गया। उसके सार्वजनिक भाषण देने पर प्रतिबन्ध लग जाने से वह अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में लगा रहा। वह इटली में मसोलिनी द्वारा विकसित की जाने वाली तथा लागू की जाने वाली योजनाओं से बहुत प्रभावित्त हुआ और उसने अपने अनुयायी

---

1. भवनादि के नक्शे बनाने वाला तथा सजावट करने वाला।

बनाने के लिये मसोलिनी का अनुकरण किया। उसने संस्कृत स्वास्तिक अथवा हुक्डक्रास (Hooked Crocs) को अपने दल का चिह्न स्वीकार किया। उसके दल का नाम **राष्ट्रीय समाजवादी दल** अथवा **नात्सी**[2] **दल** था। उसके आक्रमणकारी सैनिक तथा प्रतिरक्षा सैनिक दल थे। आक्रमणकारी सैनिकों का निदान-चिह्न था भुजा पर काले स्वास्तिक के साथ बादामी कमीज और 'प्रतिरक्षा सैनिके दलों' का चिह्न था काली कमीज और सफेद खोपड़ी। ज्यों-ज्यों उसकी योजना विकसित होती गई त्यों-त्यों यह अधिक विवरणात्मक होती गयीं।

उसके उद्देश्यो का स्पीकरण उसके भिविन्न भाषणों ने तथा उसके स्मरण-ग्रंथ ने किया था। ग्रंथ का नाम उसने **मेरा संघर्ष** (मीन कैंफ) रखा था। इसका प्रथम भाग १९२५ में और द्वितीय भाग १९२७ में प्रकाशित हुआ इस पुस्तक में केवल उन दृष्टिकोणों का अधिक पूर्णता के साथ विवेचन किया गया था जो उसने धीरे-धीरे निर्मित किये थे।

हिटलर के विचार

हिटलर उग्र जर्मन राष्ट्रवादी था उसका विश्वास था कि सर्वत्र रहने वाले जर्मनों का एक राष्ट्र में एकीकरण हो जावे, चाहे वे जर्मनी के जर्मन हों, चाहे आस्ट्रिया के जर्मन हों, चाहे पोलैण्ड के हों, चाहे जैको-स्लावाकिया अथवा हालैण्ड अथवा आल्सेस के हों। विजातीय रक्त होने के कारण वह अपने जर्मन देश से सभी यहूदियों को निकाल देगा। उसने शांति की सन्धियों अर्थात् वर्साई और सेण्ट जर्मन की सन्धियों के निरसन का प्रतिपादन तथा अनुमोदन किया। क्योंकि इसका आशय था अन्य बातों के साथ-साथ जर्मनों पर किये जाने वाले युद्ध दोषारोपण का अस्वीकार किया जाना तथा समस्त क्षतिपूर्तियों की अमान्यता। वह सभी युद्ध जनित लाभों की जब्ती के भी पक्ष में था। वह निम्नलिखित का भी समर्थक था : सभी अनर्जित आयों और सभी भूमि के मूल्यों को सट्टेबाजी की समाप्ति; प्रन्यासों तथा बृहत् विभागीय माल गोदामों का राष्ट्रीयकरण; कृषि सम्बन्धी सुधार तथा शस्त्रीकरण में अन्य राष्ट्रों के बराबर अधिकार ; गरीबों पर से करों के भार को हटाकर धनी व्यक्ति पर उसमें वृद्धि की जानी चाहिये। तृतीय रैक्स के नाम पर इन तथा अन्य परिवर्तनों माँग की गयी थी। **राष्ट्रीय समाजवादी** इसको प्रथम रैक्स के स्थान पर, जो कि १९१८ में समाप्त हो गयी थी, और द्वितीय रैक्स के स्थान पर जो उस समय वर्तमान थी, स्थापित करना चाहते थे।

हिटलर का दल का विकास

यह 'कई युगों का कार्यक्रम' था और कई मांगों में परस्पर तालमेल न होने पर भी इस कार्यक्रम के निर्मातओं को अधिक चिन्ता नहीं थी। उनका प्रमुख उद्देश्य एक महान् दल का निर्माण था। वे सम्बद्ध एवं संगत सिद्धान्तों की संहिता के विशद विवेचन में अभिरुचि नहीं रखते थे। १९२३ के पश्चात् की व्यवहित वर्षों में **नात्सियों** का उस समय अधिक प्रभाव नहीं था जबकि अन्य सत्तारूढ़ दलों द्वारा पुनरुत्थान किया जा रहा था और अपेक्षाकृत अधिक शांति विद्यमान थी परन्तु वे लगातार एवं अमौन रूप से सक्रिय थे। उन्होंने विपत्ति तथा

---

2. Nasi का शुद्ध उच्चारण **नात्सी है, नाजी** नहीं। —अनुवाद

असंतोष के प्रत्येक कारण से लाभ उठाया जो कि बढ़ रहे थे और जब १९३० का विश्वव्यापी अवनमन (गिरावट) घटित हुआ तब इसका उन्होंने आश्चर्यजनक लाभ उठाया। अवनम के वर्षों में बेकारों की संख्या शीघ्रता से बढ़ी। अस्तु इस दल के अनुयायियों की संख्या और भी अधिक शीघ्रता से बढ़ी।

उन्होंने बड़े भारी लाभ उठाये। १९३० में दल को केवल बाहर स्थान प्राप्त थे परन्तु उस वर्ष सितम्बर मास के नवीन संसदीय निर्वाचनों में उन्होंने १०७ स्थान प्राप्त किये और उनकी सदस्य संख्या केवल समाजवादी लोकतन्त्रकों से ही कम थी। उन्होंने लगभग ६,४००,००० मत प्राप्त किये थे। १९३२ के राष्ट्रपति के चुनाव में मार्च मास में उनके प्रत्याशी को ११,३००,००० मत प्राप्त हुए। उसी वर्ष अप्रैल के अन्तिम मतदान में उसको १३,४००,००० मत प्राप्त हुए। संसदीय निर्वाचनों में उनको रैक्सटैग में २३० स्थान मिले। गणतन्त्र के इतिहास में इतने अधिक स्थान किसी भी दल को प्राप्त नहीं हुए थे। दल की द्रुत एवं महती अभिवृद्धि का परिणाम यह हुआ कि जनवरी १९३३ में राष्ट्रपति हिंडनबर्ग ने हिटलर को चांसलर नियुक्त कर दिया। पन्द्रह वर्षों के आन्दोलन की परिणति इस असाधारण उल्लास में हुई।

हिटलर चांसलर नियुक्त हुआ

ज्यों ही हिटलर चांसलर नियुक्त हुआ त्यों ही उसने अपने मन्त्रियों के नाम घोषित कर दिये जिनमें से कुछ का सम्बन्ध उसकी १९२३ की म्यूनिख की साहसपूर्ण योजना से रहा था। उनमें से एक कप्तान हरमैन गोरिंग था जो कि युद्ध का एक प्रसिद्ध पलायनकर्ता था। हिटलर ने अपनी नीति अविलम्ब कार्यान्वित करनी प्रारम्भ करदी। उसका प्रथम चरण यह था कि प्रशा में ही नहीं वरन् जर्मनी में भी सभी महत्त्वपूर्ण कार्यालयों पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया जावे। वॉन पेपिन को प्रशा का संघीय आयुक्त नियुक्त किया गया और उसने नवीन प्रशायी संसद के निर्वाचनों का आदेश दिया। गोरिंग ने चौबीस पुलिस अधिकारी और प्रान्तीय गवर्नर अपदस्थ किये और उनके स्थान पर नात्सियों को नियुक्त किया।

हिटलर को कई वर्षों के संघर्ष से फलस्वरूप अब सफलता प्राप्त होती थी। उसने अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करना प्रारम्भ किया था। उन पर केवल राष्ट्रपति हिंडनबर्ग की अस्वीकृति का प्रतिबन्ध था। १९३२ तक हिटलर जर्मनी का नागरिक भी नहीं था। वह फरवरी १९३२ में नागरिक बना जबकि उसने बर्लिन में ब्रंजविक दूतावास में एक सहयोगी दूत का पद स्वीकार किया था। आज १९३३ में वह रूप को छोड़कर यूरोप के सबसे बड़े राज्य का शासक था। बिस्मार्क ने अपने सर्वोत्तम दिनों में जितने अधिकारों का प्रयोग किया था उससे उसके अधिकार कहीं अधिक थे।

रैक्सटेग भवन का जलना

यह तत्काल स्पष्ट नहीं हुआ परन्तु यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया। उसने ५ मार्च १९३३ को रैक्सटेग नव निर्वाचनों के लिये आदेश दिया। इस अभियान में २८ फरवरी को दुर्भावना से लगायी गयी अग्नि से रैक्सटेग के भवन का एक भाग जल गया। इस घटना से उस समय की उत्तेजना में अभिवृद्धि हो गयी। हिटलर के अनुयायियों ने इसकी तीव्र निन्दा की। उन्होंने बस कार्य का उत्तरदायित्व साम्यवादियों और समाजवादियों पर थोपा जो कि उनके घृणित शत्रु थे। उन्होंने उन पर देश भर में सामर्ष आक्रमण किये। राष्ट्रपति हिंडनबर्ग ने

संविधान के उन उपबन्धों को निलम्बित कर दिया जिन्होंने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सार्वजनिक सभायें करने का अधिकार, प्रकाशन की स्वतन्त्रता, और डाक की गोपनीयता की प्रत्याभूति प्रदान की थी। जिस प्रकार प्रशा में **समाजवादी लोकतांत्रिकी** के समाचार पत्रों का दमन किया गया उसी प्रकार जर्मनी में **साम्यवादी** समाचार पत्रों का दमन किया गया। घोषणा की गयी कि यह (सब) अस्थायी था परन्तु शीघ्र ही अस्थायी स्थायी हो गया। निर्वाचन का परिणाम **राष्ट्रीय समाजवादियों** के पक्ष में रहा। उनको रैक्सटेग में उच्च सत्ता प्राप्त हो गयी, २२८ स्थान उनको मिले तथा ५३ स्थान एक अन्य अति सम्बन्धित दल को प्राप्त हुए। उनको प्रशा तथा बबेरिया के महान् राज्यों में भी नियन्त्रण प्राप्त हो गया था।

हिटलर अधिनायक बनता है

यह शीघ्र घटने वाली घटना का संकेत था। वीमर संविधान के स्थान पर हिटलर द्वारा माँगा गया अधिनायकत्व स्थापित होने वाला था। यह २३ मार्च १९३३ को घटित हुआ जब अपनी नात्सी वेशभूषा में हिटलर रैक्सटेग के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने एक भाषण दिया और उसने माँग की कि चार वर्षों के लिए उसको अधिनायक के अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए। उसने उद्घोषणा की कि राष्ट्र की गम्भीर उत्तेजना की वर्तमान परिस्थिति में रैक्सटेग के आगामी अधिवेशन असम्भव समझे जावेंगे। उसने घोषणा की, "सज्जनों, अब शान्ति अथवा युद्ध के पक्ष में निर्णय कीजिये।" रैक्सटेग ने तत्काल उसके सुझाव अनुसार मतदान कर दिया क्योंकि उसी अधिवेशन में उसने ४४१ के विरुद्ध ९४ मतों से अभिलषित अधिनायकत्व स्थापित करने वाला अधिनियम पारित कर दिया। भविष्य में हिटलर सर्वोपरि रहा। उसी अधिवेशन में रैक्सटेग अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गयी। उसने केवल एक माँग प्रस्तुत की कि राष्ट्रपति के अधिकार अक्षुण्ण रखे जावें और कि रैक्सटेग (संसद्) तथा रैक्स सरात (परिषद्) को अस्तित्ववान संस्थाएँ समझा जावे।

अब अडाल्फ हिटलर अपनी इच्छा के अनुसार सांविधानिक अथवा असांविधानिक कोई भी कार्य करने की शक्ति रखता था। वह वैध प्रक्रिया से उस राज्य का एक मात्र एवं निरंकुश शासक बन गया था जिसमें १९१९ से रैक्सटेग के हाथ में सर्वोच्च तथा अन्तिम शक्ति सन्निहित थी। इस प्रकार सांविधानिक शासन के स्थान पर एक व्यक्ति का व्यक्तिगत शासन स्थापित हो गया था। क्या परिणाम होगा यह भविष्य का रहस्य था।

राष्ट्रीय समाजवादी 'क्रान्ति का एक ऐसा स्वरूप था। यह क्रान्ति वास्तव में क्रान्ति थी और इसका नाम भी क्रान्ति था। यह क्रांति जर्मनी के निकट अतीत के इतिहास की पृष्ठभूमि है। इसके विकास में कई तत्त्वों ने सहयोग दिया। स्ट्रैसमैन के नाम से सम्बद्ध १९२४ से १९३१ तक की अवधि में जर्मनी ने अपना पुनरुत्थान करने और अपनी आर्थिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण करने का वीरता पूर्ण प्रयत्न किया था और उसको उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई थी। उसकी कुछ सफलताएँ युद्ध से पूर्वकाल की सफलताओं के समान थीं और कुछ उन सफलताओं से भी बढ़कर थीं। भविष्य आशापूर्ण प्रतीत हो रहा था। उन वर्षों में नात्सियों ने

बहुत कम प्रगति की थी। तत्पश्चात् विश्व व्यापी अवनमन विकसित हुआ और जर्मनी पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। चार वर्षों में उसके बेकारों की संख्या बढ़कर ६५ लाख हो गयी और निर्धनता एवं दुर्भाग्य सामान्य हो गये। हिटलर तथा उसके साथियों के नेतृत्व में बहुत से जर्मनों ने इस व्यापक दुःख और दैन्य के लिये वर्साई की सन्धि को उत्तरदायी ठहराया और उनको उत्तरदायी ठहराया जिन्होंने इसको स्वीकार किया था अर्थात् वीमर के राजनीतिज्ञों को जिनकी उन्होंने आलोचना तथा निन्दा की।

इस समय जर्मन राष्ट्रीयतावाद का विस्फोटात्मक प्रादुर्भाव हुआ। साथ ही वर्साई की संधि तथा स्ट्रैसमैन और ब्रूनिंग जैसे व्यक्तियों की अति तीव्र आलोचना हुई जिनका यह विश्वास था कि जर्मनी का पुनरुत्थान केवल पराजय को मान्यता प्रदान करने तथा उसकी माँगों की पूर्ति करने से ही हो सकता था। जर्मनों को बताया गया कि वे नात्सियों के सच्चे तथा योग्य नेतृत्व में विश्वास करके उसी स्थिति को पुनः प्राप्त कर सकते हैं जिसको वे संसार में १९१४ में उपभोग कर रहे थे। क्या उनको ऐसा सक्रिय नेता प्राप्त नहीं था जो कि साथ ही लोकप्रिय तथा विश्वास उत्पन्न करने वाला भाषणकर्त्ता भी था जिसमें विशाल जनसमूहों को संचालित (प्रभावित) करने की क्षमता थी? यदि जर्मन जनता अपने भूतकालीन निराशावादी परामर्शदाताओं का त्याग कर दे और दृढ़तापूर्वक अपने नवीन नेता का साथ दे[1] तो क्या जर्मनों को अपनी पुरानी शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए अधिक सुसज्जित होने का अवसर प्राप्त हो सकेगा?

परिस्थितियों की पुकार के कारण तथा अपने भाषणकर्त्ता हिटलर के कारण अथवा विवशता के कारण वे एकत्रित हुए। ज्योंही हिटलर उनका स्वेच्छाचारी शासक बना और उसको अधिनायक की शक्तियाँ प्राप्त हो गयीं त्योंही उनको लोकप्रिय तथा सरल कार्यवाही करने का अवसर मिल गया। कई वर्षों तक हिटलर ने यहूदियों के विरुद्ध कटु एवं निर्बाध अभियान किया था। इनकी संख्या जर्मन जनसंख्या का केवल एक शतांश थी परन्तु वे राजनीति तथा व्यापार में, व्यवसायों और कलाओं में काफी प्रमुख थे। इसके कारण उनके बहुसंख्यक साथी नागरिक उनसे ईर्ष्या तथा घृणा करते थे। इन जर्मन नागरिकों ने सड़कों में, व्यवसाय के स्थानों में उन पर अत्यंत क्रोधपूर्वक आक्रमण प्रारम्भ कर दिये, उनका अपमान किया और उनको बहुधा कारागारों में भी डाल दिया। इन अत्याचारों की आख्याएँ विदेशों में प्रकाशित की गयीं और उनके विरुद्ध विदेशों में, विशेषकर संयुक्त राज्य तथा ग्रेट ब्रिटेन में विरोध की अभिव्यंजना हुई। विदेशी समालोचना ने जर्मनों के क्रोध को और अधिक बढ़ा दिया। उन्होंने यहूदियों पर मातृभूमि को अत्यधिक हानि पहुँचाने का दोषारोपण किया और उन्होंने विदेशों से जर्मनों के विरुद्ध झूठ और अपमान के प्रचार को अपनी प्रतिरक्षा की कार्यवाही के रूप में यहूदियों के भंडारागारों, यहूदी व्यापारियों, यहूदी विधिज्ञों (वकीलों) तथा यहूदी डाक्टरों (वैद्यों) के बहिष्कार की घोषणा की। यह बहिष्कार १ अप्रैल १९३३ को हुआ और प्रायः अखिल राष्ट्रीय

यहूदियों पर आक्रमण

---

1. शाब्दिक अनुवाद होगा—चारों ओर एकत्रित हो जावें।

स्तर पर हुआ। और यह उद्घोषणा की गयी कि यदि विदेशी आलोचना (विवाद) चालू रही तो आगे चलकर किसी दिनांक को इसकी पुनरावृत्ति होगी।

आर्य तथा अनार्य जर्मनी में अन्तर (विभेद) किया गया और अनार्यों अर्थात् यहूदियों को विविध प्रकार से दण्डित किया गया। किसी भी अनार्थ अथवा अनार्थ से विवाहित व्यक्ति को प्रत्येक स्थानीय अथवा राष्ट्रीय पद तथा बहुत सी संस्थाओं और संगठनों के लिये अपात्र उद्घोषित कर दिया गया तथा प्रत्येक अनार्य पदाधिकारी को अविलम्ब पदत्याग कर देना चाहिये। केवल वे ही अनार्य पदाधिकारी पदारूढ़ बने रहेंगे जो युद्ध के प्रारम्भ होने के समय अपने पद पर कार्य कर रहा था अथवा युद्ध में सैनिक रहा हो अथवा उस संघर्ष में उसके माता अथवा पिता की मृत्यु हुई हो। यहूदी विधिज्ञों तथा यहूदी डाक्टरों के विरुद्ध विधियाँ बनायी गयीं और बहुत-सी को अपना व्यवसाय करने से रोक दिया गया। यहूदी न्यायाधीशों को पदों से हटना पड़ा। विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में समस्त विद्यार्थियों के १$\frac{१}{२}$ प्रतिशत यहूदी विद्यार्थी पढ़ सकते थे। विश्वविद्यालयों के बहुत से यहूदी प्राध्यापक पदच्युत कर दिये गये। माध्यमिक विद्यालयों के यहूदी अध्यापक भी पदच्युत कर दिये गये। प्राध्यापक अलबर्ट ईंस्टीन जैसे विख्यात वैज्ञानिक उस सूची में सम्मिलित थे जिसमें दमन के शिकार होने वाले यहूदी विद्वानों के नाम थे। वकीलों की संस्थाओं, डाक्टरों की संस्थाओं, छापेखाने की संस्थाओं, समाचारपत्रों की संस्थाओं का पुनर्संगठन इस प्रकार किया गया कि उनके यहूदी सदस्य पृथक् हो जावें। भविष्य में यहूदियों द्वारा लिखी हुई पुस्तकें जर्मनी में प्रकाशित नहीं हो सकेंगी। कुछ विश्वविद्यालयों वाले नगरों में १६० लेखकों की कृतियाँ जनता के लिये हानिकारक होने वाली पुस्तकों के रूप में सार्वजनिक रूप से जला दी गयीं। अन्य कई कार्य-क्षेत्रों में शान्ति विरोधी भावनायें व्यापक हो गयीं।

नात्सियों के सत्तारूढ़ होने पर घृणा के क्रूर और पाशविक प्रदर्शन हुए।

समग्रवादी राज्य

इसी काल में जर्मनी के सत्तारूढ़ व्यक्तियों ने देश की अन्य सभी संस्थाओं का अहित करते हुए भी साम्राज्य की अभिवृद्धि का प्रयत्न किया। १९३१ में मार्च के अन्त में हिटलर ने यह आदेश दिया कि विभिन्न राज्यों की व्यवस्थपिकाओं को व राज्यों को मन्त्रिमण्डल के कार्यों की निन्दा करने का अधिकार नहीं होगा और इन मंत्रि-मण्डलों को व्यवस्थापिका से परामर्श किये विना विधियों को प्रचलित करने का अधिकार होगा चाहे वे विधियाँ स्पष्टत: असांविधानिक ही क्यों न हों। इस कार्यवाही (अधिनियम) से संसदीय शासन अर्थात् प्रत्येक राज्य पर उसकी संसद का नियंत्रण नष्ट हो गया। संघीय चांसलर राज्यों के गवर्नरों को नियुक्त करता था और वही उनको आदेश देता था। ये राज्यपाल अब राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के नियंत्रण के अधीन नहीं रहे। ये सभी व्यवस्थापिकायें राजनीतिक पद्धति से नाम के अतिरिक्त सन्य सभी प्रकार से बहिष्कृत कर दी गयीं। जर्मनी के चांसलर अडॉल्फ हिटलर के हाथ में कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका की सभी शक्तियों का पूर्ण केन्द्रीयकरण था।

जर्मनी के शासन पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के पश्चात् हिटलर ने अपने राष्ट्रीय समाजवादी दल के अतिरिक्त अन्य सभी दलों को समाप्त करने की

कार्यवाही प्रारम्भ की। सर्वप्रथम साम्यवादियों को कुचला गया। मार्च १९३३ के अन्त तक उनको रैक्सटैग के सभी स्थानों से वंचित कर दिया गया और उनको जर्मनी में सर्वत्र (कहीं भी) निर्वाचनों के लिये प्रत्याशी बनने से रोक दिया गया। अगले मास स्ट्रैसमैन का **'जर्मन जनता दल'** भंग कर दिया गया और इसके सदस्यों से अनुरोध किया गया कि **राष्ट्रीय समाजवादी** दल में सम्मिलित हो जावें। इसके एक मास पश्चात् शक्तिशाली **समाजवादी लोकतांत्रिक** दल को देशद्रोही संगठन के रूप में अवैध घोषित कर दिया गया और रैक्सटैग में इसके १२१ निर्वाचित सदस्यों के द्वारा अधिकृत स्थानों पर उनका बना रहना अवैध उद्घोषित किया गया। इसी प्रकार राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के लिये इसके चुने हुए सदस्य

विरोधी दल निलंबित कर दिये गये

अवैध घोषित कर दिये गये। उनको सम्पूर्ण जर्मनी में सभी पदों से निकाल दिया गया। तत्पश्चात् **राज्यदल** के साथ भी यही व्यवहार किया गया। इसके सदस्य भविष्य में रैक्सटैग अथवा प्रशा की व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं रह सकते थे क्योंकि इसने मार्च के निर्वाचनों में **समावादी लोकतान्त्रिकों** का समर्थन किया था। केवल **कैथोलिक मध्यवादी दल** छोड़ दिया गया और शीघ्र ही इसका भी दमन किया गया। जुलाई १९३३ तक जर्मनी में एकमात्र वैध दल **राष्ट्रीय समाजवादी** दल रह गया। कोई भी नया दल नहीं बनाया जा सकता था क्योंकि ऐसा करना देशद्रोह था।

इस प्रकार जुलाई १९३३ तक हिटलर ने जर्मनी पर नियंत्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने अपने को तथा अपने साथी **राष्ट्रीय समाजवादियों** को राष्ट्रीय, राज्यीय और स्थानीय क्षेत्रों में सत्तारूढ़ कर लिया। हिटलर ने यह उद्घोषण की कि "**राष्ट्रीय समाजवादी दल** ही राज्य है।"

यह केवल विवरणात्मक बात थी जबकि भाषण और प्रकाशन की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गयी, विरोधी समाचार पत्रों का अस्तित्व वर्जित कर दिया गया और अँग्रेजी समाचार पत्रों का प्रचार-प्रसार रोक दिया गया। शासन की निरंकुश शक्ति का तब प्रमाण मिला जब तैंतीस प्रमुख जर्मन नागरिकों को अभिनिषिद्ध कर दिया गया, उनकी नागरिकता समाप्त कर दी गयी और उनकी सम्पत्ति राज्यसात् (जब्त) कर ली गयी। इन प्रमुख व्यक्तियों में ऐसे व्यक्ति भी सम्मिलित थे जैसे प्रथम चांसलर शीडमैन, वॉसीची जितंग (Vossische Zoitung) का प्रसिद्ध सम्पादक जार्ज बर्नार्ड और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का लेखक हैनरिखमैन। वास्तव में उन सभी नागरिकों और संगठनों की सम्पत्ति राज्यसात् की जा सकती थी जो राज्य के शत्रु समझे जाते हों। सहस्रों जर्मन गिरफ्तार किये गये और उनको बन्दी शिविरों में बन्द कर दिया गया और वहाँ वे अनिश्चित काल के लिये भाग्य के निर्णयार्थ रहने लगे। जर्मनी पर हिटलर तथा उसके दल का पूर्ण एवं निरंकुश नियंत्रण था और ज्यों-ज्यों विरोधी तत्त्वों को समाप्त किया गया अथवा वे सत्तारूढ़ दल में मिलने लगे त्यों-त्यों इस दल में अधिकाधिक वृद्धि होती रही।

नात्सियों ने केवल राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं को ही हस्तगत नहीं किया वरन उन्होंने धार्मिक संस्थाओं पर भी नियंत्रण स्थापित किया। उन्होंने कैथोलिकों तथा प्रोटेस्टेण्टों (दोनों) पर अपना नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। जर्मनी में लगभग उन्तीस प्रमुख प्रोटेस्टेण्ट धर्म संस्थायें (चर्च) थीं। हिटलर

के विचारानुसार केवल एक ही होनी चाहिये थी और वह भी राज्य के अधीन। अन्य क्षेत्रों की भाँति इस क्षेत्र में भी राज्य सर्वोच्च होना चाहिये। प्रयुक्त शब्दावली के अनुसार ये धर्मसंस्थायें (चर्च) नात्सी शासन से 'सम्बद्ध' होनी चाहिये। उनका नवीन संगठन न होना चाहिये जिससे वे मिलकर एक हो जावें और वे राजनीतिक शक्ति के अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव के अन्तर्गत आ जावें। ज्योंही हिटलर सत्तारूढ़ हुआ त्योंही उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। अधिकांश प्रोटेस्टेण्टों ने कड़ा विरोध किया परन्तु हिटलर के परामर्शदाताओं में एक ऐसा दल था जो किसी सीमा तक कार्यवाही करने के पक्ष में था और उस दल का नेता डा० लुडविग मूलर था। यह नात्सी सेना का पादरी (चैपलिन) था और बिशप (धर्माधिकारी) बनना चाहता था। तीव्र तथा कटु संघर्ष के पश्चात् इस दल की विजय हुई। मूलर राष्ट्रीय धर्माधिकारी (बिशप) बना दिया गया और यह उद्घोषण की गयी कि प्रोटेस्टेण्ट चर्च नवीन राजनीतिक पद्धति के अधीन थे। इसके पश्चात् कैथोलिक चर्च की बारी आई। इस चर्च के साथ उपचांसलर वॉन पेपन ने एक धार्मिक समझौता किया। पेपन स्वयं कैथोलिक था। यह ऐसा समझौता था जिसने तीन संधियों को निरस्त कर दिया। इन तीन संधियों के अनुसार रोमन कैथोलिक चर्च तथा प्रशा, बवेरिया और वेडन (राज्यों) के पृथक्-पृथक् सम्बन्धों का नियमन होता था। हिटलर सन्तुष्ट था और उसने उद्घोषण की कि "इस बात की पर्याप्त प्रत्याभूतियाँ दी गयी हैं कि भविष्य में रोमन कैथोलिक धर्मावलंबी रैक्स नागरिक अपने को **राष्ट्रीय समाजवादी राज्य** की सेवा में बिना किसी शर्त के संलग्न रखेंगे।"

शासन तथा चर्च

अन्य कई कार्य क्षेत्रों, विशेषकर आर्थिक क्षेत्र, में 'सम्बद्धता' स्थापित की गयी। १९१९ में ३२६ सदस्यों की **राष्ट्रीय आर्थिक परिषद्** बनाई गयी थी। इसकी स्थापना के समय यह आशा की गयी थी कि सम्भवत: यह रैक्सटैग की प्रतिद्वन्द्वी संस्था बन जावेगी। यह आशा पूरी नहीं हुई। अब इसमें केवल ६० सरस्य रहेंगे जिनका चुनाव तथा नियुक्ति शासन द्वारा की जावेगी और उसमें से एक चौथाई सदस्य प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करेंगे। यह एक परामर्शदात्री संस्था (वोर्ड) होगी और तभी परामर्श देगी जब चांसलर इससे परामर्श माँगेगा। रैक्स बैंक को भी जो कि जर्मनी की सबसे अधिक शक्तिशाली संस्था थी, नात्सी विचारधारा को अपनाने के लिये वाध्य किया गया। जर्मन उद्योगों का महा संघ भी विधान के द्वारा राष्ट्रीय समाजवादी शासन के राजनीतिक उद्देश्यों के अनुकूल बना दिया गया। तब स्वतन्त्र व्यापारवादी संघों को हस्तगत किया गया। भविष्य में इन व्यापारिक संघों को वेतन अथवा कार्य की दशाओं के निर्धारण करने का कोई भी अधिकार नहीं होगा शासन ने उद्योगों की प्रत्येक शाखा में व्यक्तियों को नियुक्त किया और वे ही व्यक्ति इन तथा अन्य विषयों का निर्णय करेंगे।

१९३३ में जर्मनी ने यह उद्घोपणा की कि दो वर्प पश्चात् राष्ट्रसंघ को छोड़ देगा। यह निर्धारिक अवधि थी। यह घोपणा की गयी कि १२ नवम्बर को रैक्सटैग का नवीन निर्वाचन होगा। यह निर्वाचन यह प्रदर्शित कर देगा कि जर्मनी की जनता (अपने) अधिनायक के इस कथन का समर्थन करती थी कि वह अन्य देशों से हीनतर

जर्मन राष्ट्र-संघ को छोड़ता है

स्थिति को स्वीकार नहीं करेगी। इसके पश्चात् किसी भी विरोधी दल का अस्तित्व नहीं रहा। भाषणों अथवा समाचार पत्रों के द्वारा विरोध प्रकट नहीं किया जा सकता था और न किया गया। एकमात्र राष्ट्रीय समाजवादी ही रह गये। जब नवम्बर १२ को जर्मनी की जनता ने मतदान किया तब उन्होंने प्राय: सर्वसम्मति से मतदान किया। हिटलर के भाषण, राष्ट्रपति हिण्डनवर्ग और नये राष्ट्रीय विशप डा० मूलर के अनुरोध के कारण सभी प्रकार की सफलता प्राप्त हुई। ४३,५२५,५२९ मत पड़े जिनमें से ४०,५८३,४३० मतों ने हिटलर की नीतियों का समर्थन किया। इसके अधिक भारी समर्थन की अभिव्यंजना नहीं हो सकती थी। उतनी सर्वसम्मति प्राप्त हुई थी जितनी की आशा की जा सकती थी। शासक तथा शासित प्राय: पूर्ण समझौता था। शासक को संतुष्ट होने के लिये प्रत्येक कारण उपलब्ध था और उसी मार्ग पर चलते रहने के सभी प्रेरक उद्देश्य भी विद्यमान थे।

राज्य शासनों की शक्तियाँ कम हो गयीं

इस प्रकार उसके पश्चात् केवल राष्ट्रीय व्यवस्थापिका ही अत्यंत अधीन एवं विरल कार्य करने वाली नहीं बन गयों प्रत्युत जर्मनी के विभिन्न राज्यों के शासनों की शक्ति भी अत्यंत कम हो गयी। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि हिटलर ने अपने अधिनायक बनने पर प्रारम्भ में ही यह आदेश दिया था कि राज्य की व्यवस्थापिकाओं को निन्दा करने अथवा विरोध करनें का अधिकार नहीं होगा और कि उन मंत्रिमण्डलों को तथाकथित व्यवस्थापिकाओं से बिना परामर्श किये ही विधियाँ प्रचलित करने का अधिकार होगा जबकि वे विधियाँ चाहे स्पष्टत: अवैधानिक हों। इस प्रकार संसदीय शासन प्राय: समाप्त कर दिया गया। विभिन्न राज्यों के शासन चांसलर द्वारा नियुक्त संरक्षक (रीजेण्ट) के अधीन कर दिये गये। इस प्रकार एक शती पुराना जर्मन विशिष्ठतावाद एक रात्रि में ही समाप्त कर दिया गया। अधिनायक ही स्थानीय तथा राष्ट्रीय विधि का निर्माण तथा सिद्धान्त: उसको कार्यान्वित करने वाला था। हिटलर की आज्ञा के विरुद्ध प्रकाशन की स्वतन्त्रता, भाषण की स्वतन्त्रता और कार्य की स्वतन्त्रता अतीत के अस्तित्वमात्र बन गयी थीं। टेलीफोन पर भी स्वतन्त्रतापूर्वक बात नहीं की जा सकती थी और डाक विभाग की स्वतन्त्रता भी समाप्त हो गयी अर्थात् पत्रों को शासन से अधिकारी खोल कर पढ़ सकते थे। दोनों ही शासन के विभागमात्र थे जिनका प्रयोग उनके उद्देश्यों और हितों की पूर्ति के लिये किया जाना था।

निरंकुश शासक विरोधियों का दमन करता है

जर्मन राष्ट्र शीघ्रतापूर्वक तथा पूर्ण रूप से निरंकुशतंत्र बनता जा रहा था। ऐसा जर्मनी के इतिहास में कभी नहीं हुआ था। यह कई प्रकार से सिद्ध हुआ और विशेषकर १९२४ के जून के अंत में तथा जुलाई के प्रारम्भ में यह सिद्ध हो गया जब हिटलर ने यह समाचार पाते ही कि स्वयं उसके दल में संकट उत्पन्न हो रहा था उसको दबाने का प्रयत्न बिना किसी विशद प्रक्रिया के आरम्भ कर दिया। उसको यह सूचना मिली कि आक्रमण करने वाले सैनिकों के अध्यक्ष कप्तान वॉन रोहम के नेतृत्व में सेना के नात्सीवर्गों में असंतोष उत्पन्न हो रहा था। अत: हिटलर ने असन्तुष्टों को निकालने तथा अपने शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियों की संख्या घटाने का दृढ़ संकल्प किया। इसके लिये यदि आवश्यकता पड़े तो वह रक्त बहाने के लिये भी तैयार था। वह बर्लिन छोड़कर चला गया और ३०

जून १९३४ को रात में म्यूनिख की वायुयान में उसने प्रस्थान किया जो जो असन्तोष का केन्द्र घोषित किया गया था। वह दूसरे दिन वहाँ प्रातःकाल चार बजे पहुँचा और उसने कथित षड़यंत्रकारियों की गिरफ्तारी का आदेश दे दिया। गोइबॅल्स तथा अन्य व्यक्तियों के साथ वह नगर की निकटवर्ती बस्ती वीसे में पहुँचा और रोहम को गिरफ्तार कर लिया तथा उसको आक्रमणकारी सैनिकों के सेनाध्यक्ष के पद से वंचित कर दिया। आत्मघात करना अस्वीकार करने के पश्चात् उसी रात्रि को रोहम को मृत्युदण्ड दे दिया गया। रोहेम के घर में ब्रॅसलो का कुख्यात नात्सी पुलिस अध्यक्ष पाया गया था। उसको अविलम्बन गोली से उड़ा दिया गया। उसी प्रकार दिन में अन्य बहुत से राज्य सेनानी गोली से उड़ा दिये गये। कुछ घण्टे पश्चात् बर्लिन में षड़यन्त्र के कई सदस्य जनरल गोरिंग की विशेष पुलिस द्वारा गोली से उड़ा दिये गये। उनमें ये व्यक्ति भी सम्मित थे: जर्मनी का भूतपूर्व चांसलर जनरल वॉन शिल्चर, कैथो-लिक संघर्ष समिति की सदस्या उसकी पत्नी डा० क्लॉसनर और उप चांसलर वॉन पेपिन के तीन सचिव। कई दिनों तक गोली चला देने वाले दस्ते अपना कार्य करते रहे। किसी भी व्यक्ति पर अभियोग नहीं चलाया गया, अभियोग चलाने का नाटक भी नहीं रचा गया। उच्चाधिकारियों के आदेशानुसार मनुष्यों का जीवनांत कर दिया गया।

दो सप्ताह पश्चात् १३ जुलाई का रैक्सटैग की बैठक बुलाई गयी और उसने हिटलर द्वारा घटित घटनाओं का वृत्तान्त सुना। यह व्रत्तान्त संक्षिप्त एवं घृणापूर्ण था। किसी समय इस बात के निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए थे कि चांसलर के विरुद्ध कोई वास्तविक षड्यन्त्र रचा गया था। हिटलर ने स्वयं यह अधिकृत घोषणा की कि ७७ व्यक्तियों को मृत्युदण्ड दिया गया था किन्तु इस बात के प्रमाण थे अथवा कम से कम यह विश्वास किया जाता था कि बध किये हुए व्यक्तियों की संख्या कहीं अधिक थीं। जर्मनी में हिटलर का यह वक्तव्य बिना किसो हिचक के स्वीकार कर लिया गया कि 'इन चौबीस घण्टों में जर्मनी की जनता के सर्वोच्च न्यायालय में केवल में अकेला ही न्यायाधीस था', परन्तु विदेशों में इसको भयावह एवं अरुचिकर माना गया। रैक्सटैग ने उसके वक्तव्य को सुना। उसने उसके अथवा उसके साथियों से कोई भी प्रश्न नहीं पूछा और वह अविलम्बन स्थगित हो गयी। उसका अधिवेशन थोड़ी सी मिनटों का ही हुआ था।

हिण्डनवर्ग की मृत्यु

वास्तव में शीघ्र ही हिटलर के अधिकारों में और भी अधिक वृद्धि हो गयी क्योंकि एक मास पश्चात् २ अगस्त को राष्ट्रपति वॉन हिण्डनवर्ग की मृत्यु हो गयी और महान् सम्मान और राजकीय उपचारों के साथ उसके प्रसिद्ध युद्ध क्षेत्र नैनिनवर्ग में उसका शव दफना दिया गया। अब तक जो अधिकार उनमें निहित थे उनको हिटलर ने अधिगृहीत कर लिया और अपने अधिकारों में मिला लिया। १९ अगस्त के राष्ट्रीय मतसंग्रह के द्वारा उसको यह आदेश प्राप्त हुआ कि वह जीवन भर जर्मनी का वास्तविक नेता तथा चांसलर रहेगा। उसने पूर्ण नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया और अपने को जर्मनी की जनता के प्रति उत्तरदायी माना न कि रैक्सटैग के प्रति। कहीं भी कोई भी ऐसी अन्तिम शक्ति नहीं थी जो उसको सत्ताहीन कर सके। परन्तु जो उपाधि उसने धारण की वह राष्ट्रपति और चांसलर की उपाधि नहीं थी वरन

डर फ्यूरर (Der Fuhrer) की उपाधि थी। आज (१९३७ में) भी उसकी यही उपाधि है।

१९३५ में जर्मनी के पृथक् पृथक् राज्यों के नियन्त्रण को रैक्स ने पूरा कर लिया। निश्चय ही देश की संस्थाओं में राज्यों की स्थिति अब गौण हो गयी थी। जर्मनी की आर्थिक प्रणाली के सभी क्षेत्रों पर केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण स्थापित हो गया था। वास्तव में राज्य अब केवल अधीनस्थ संस्थायें हो गयी थीं जिन पर राष्ट्रीय शासन का नियन्त्रण था। उनको उनकी महत्त्वपूर्ण शक्तियों से वंचित कर दिया गया था और उन पर केवल गौण तथा अधिकांशत: प्रशासन सम्बन्धी भूमिका अदा करने का दायित्व रखा गया था।

जर्मनी की विदेशी नीति

विदेशी मामलों में भी अत्यधिक शक्ति प्राप्त रैक्स शासन ने उस मार्ग के अनुसरण करने का अपना दृढ़ विचार प्रदर्शित किया जिसको वह बुद्धिमत्तापूर्ण समझता था। १९३३ में राष्ट्रसंघ से पृथक होने के पश्चात् इसने अगले वर्ष के प्रारम्भ में अपने सम्मुख समस्याओं को कम करके अपनी विदेशी नीति को सरल बनाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार युद्ध की समाप्ति के पश्चात् से जर्मनी के सम्बन्ध अपने पूर्वी पड़ौसी पोलैण्ड के साथ अत्यधिक विवादग्रस्त तथा आपत्तिजनक रहे थे परन्तु उनसे उसको प्राय: कोई भी लाभ नहीं हुआ था। उसने आकस्मिक परिवर्तन करने का निश्चय किया और दस वर्ष तक मान्य जर्मन-पोलैण्ड की अनाक्रमण सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। फलत: जर्मनी और पोलैण्ड के मध्य का तनाव पर्याप्त रूप से कम हो गया। पोलैण्ड अपनी फ्रांस के साथ की गयी सैनिक मित्रता से दूर हटने लगा। इससे युद्ध को जीतने वाले तथा पोलैंड को मान्यता प्रदान करने वाले राष्ट्रों में कुछ आशंकायें उत्पन्न हुईं। जर्मनी के साथ जो सन्धि हुई थी उसमें पोलैण्ड के मार्ग के विषय में स्पष्टरूप से कुछ भी नहीं कहा गया था परन्तु यदि वह प्रश्न सुलझा नहीं था तो कम से कम स्थगित अवश्य हो गया था। सम्भवत: पोलैण्ड के लिए इसका यह अभिप्राय था कि उसने एक ऐसी शक्ति से सन्धि की थी जो कई वर्षों से मार्ग (कोरीडर) पर उसके अधिकार को अस्वीकार करती रही थी।

यह बात शीघ्र स्पष्ट हो गयी कि विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने के समय जर्मनी को जिन शत्रुओं का सामना करना पड़ा था उससे अधिक व्यापक एवं शक्तिशाली शत्रुओं का सामना हिटलर के शासन को करना पड़ा। परन्तु ये शत्रु जर्मन नहीं थे विदेशी थे जैसा कि प्रचुरता के साथ सिद्ध हुआ। १४ अक्टूबर १९३३ को जर्मनी के शासन ने **निशस्त्रीकरण सम्मेलन** तथा राष्ट्रसंघ से पृथक् होने की घोषणा की। इस समय **निशस्त्रीकरण सम्मेलन** का अधिवेशन जिनेवा में हो रहा था। इस कार्यवाही का यह कारण बताया गया था कि **मित्रराष्ट्र** तथा संयुक्त राज्य जर्मनी को शस्त्र-समानता देने अथवा अपनी सैनिक सज्जा को कम करने के लिये तैयार नहीं थे। अस्तु जर्मनी अपनी सेना का पुनर्निर्माण तथा सैनिक शक्ति का संगठन अपने विचारों के अनुसार करना चाहता था। उसने यह उद्घोषित किया कि भविष्य में वह वर्साई की सन्धि के उपलब्धों के बन्धन में नहीं रहेगा वरन् वह आगे स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने निर्णय के अनुसार कार्य करेगा।

स्वभावतः इसका अभिप्राय यह था कि जर्मनी वर्साई की सन्धि की एक महत्त्वपूर्ण माँग को न मानने के लिये तैयार था जिस पर उसने हस्ताक्षर किये थे। वह पंचम भाग का उल्लंघन करेगा जिसमें युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् जर्मनी द्वारा रखे जाने वाले शस्त्रास्त्रों का वर्णन था और जिसके अनुसार उसने गत पन्द्रह वर्षों में आचरण किया था। जर्मनी निवासी इस प्रतिबन्ध का आगे पालन नहीं करेंगे प्रस्तुत वे अपने स्वाधिकार से कार्य करेंगे और उनकी स्वीकृति के बिना कार्य करेंगे जिन्होंने वह प्रतिबन्ध उन पर लगाया था।

जर्मनी सैनिकवाद की पुनः स्थापना करता है

मित्र राष्ट्रों द्वारा १९१९ की सन्धि में निर्णीत इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के विषय में जर्मनी की परिवर्तित अभिवृत्ति (रवैया) की उद्घोषणा ने अर्थात् इस वक्तव्य ने कि वर्साई की सन्धि के पंचम भाग के शस्त्रीकरण से सम्बन्धित उपबन्धों ने उस पर जो प्रतिबन्ध लगाये थे जर्मनी उनको अब नहीं मानेगा, विश्व में सर्वत्र गम्भीर प्रभाव डाला। जर्मनी को अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रतापूर्वक शस्त्रास्त्र धारण करने से रोकने के लिये केवल शक्ति प्रयोग ही एक मात्र उपाय था परन्तु इंगलैण्ड अथवा फ्रांस अथवा कोई अन्य शक्ति उस प्रक्रिया का अवलम्बन करने के लिये तैयार न था। वे आलोचना कर सकते थे और विरोध कर सकते थे और यह उन्होंने किया परन्तु वे इससे आगे नहीं बढ़ना चाहते थे। प्रत्येक शक्ति ने इस समस्या पर अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से विचार किया और उसने वह कार्यवाही की जो उसने बुद्धिमत्तापूर्ण समझी परन्तु इस बात का कोई प्रश्न नहीं उठा कि सम्पूर्ण यूरोप सामुदायिक रूप से एकीकृत इच्छा का अपने पुराने शत्रु पर दबाव डाले। ग्रेट ब्रिटेन अपने शस्त्रीकरण पर, विशेष रूप से वायव्य शस्त्रीकरण पर, गम्भीरता से विचार करने लगा। फ्रांस ने यह निर्णय किया कि वह अनिवार्य रूप से भर्ती किये हुए रंगरूटों को एक वर्ष के स्थान पर दो वर्ष तक सक्रिय सैनिक सेवा में रखेगा। यह पद्धति उसने युद्ध की समाप्ति के पश्चात् से अपनाई थी। राष्ट्रसंघ की परिषद ने लघु राज्यों के पर्याप्त विरोध के पश्चात् एक प्रस्ताव पर मतदान किया जिसमें वर्साई की संधि के पंचम भाग के उल्लंघन करने की निन्दा की गई थी। परन्तु जर्मनी अपने चुने हुए मार्ग पर आगे बढ़ता रहा और वह शस्त्रास्त्रों के प्रश्न का समाधान अपनी इच्छानुसार करता रहा। कुछ मास बीतने पर जर्मनी ने अपने क्षेत्र में अनिवार्य सैनिक सेवा पुनः प्रारम्भ की। पहले एक वर्ष के लिये और तत्पश्चात् दो वर्ष के लिए यह सैनिक सेवा प्रारम्भ की गयी। उसका कहना था कि वह ३६ सेनांग स्थापित करेगा जिसमें लगभग ५५०,००० पुरुष होंगे। उसने समुद्र तथा वायु में भी अपनी पूर्वस्थिति को पुनः प्राप्त करने पर विचार विमर्श किया। वह इस प्रकार बातें करता था मानो कि उचित समय पर उसके पास यूरोप का सबसे अधिक शक्तिशाली सैनिक बल होगा। यह सम्भव था।

जर्मनी पुनः शस्त्रास्त्र धारण करता है

ऐसा प्रतीत होता है कि गत पन्द्रह वर्षों की अपेक्षाकृत शान्ति समाप्त हो गई। जापान ने राष्ट्रसंघ त्याग दिया है और वाशिंगटन की सन्धियों की अवमानना उद्घोषित करदी है। उसने सुदूर पूर्व में शक्ति की कूटनीति पुनः प्रारम्भ करदी है। और

जर्मनी अब इस बात का दृढ़ संकल्प कर चुका है कि वह यूरोप के एक महान् राज्य और सम्भवतः महत्तम राज्य के सम्मान (स्थिति) को पुनः प्राप्त करेगा। दीर्घकालीन एवं दुर्भाग्यपूर्ण युद्ध के क्रान्तकारी युग से होकर विश्व राजनीतिक पुनर्सामंजस्य के नवीन युग में प्रवेश कर रहा है जिसमें जापान तथा जर्मनी दो महान् तथा अत्यधिक सैनिक शस्त्रास्त्र वाले राष्ट्र स्पष्टतः वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट हैं।

भविष्य में हम देखेंगे कि वह हमारे सामने क्या दृश्य प्रस्तुत करता है। यह स्पष्ट है कि इस परिस्थिति में महान् संकट और कठिनाई के तत्व विद्यमान हैं। एक नवीन सेना, नवीन नौसेना और नवीन वायुसेना के निर्माण का राष्ट्रीय वित्तव्यवस्था पर असंदिग्ध प्रभाव पड़ता है और जर्मनी पर इसका भारी बोझ पड़ता है। क्षतिपूर्तियाँ पहले ही समाप्त हो चुकी थीं। १९३० में जर्मनी से सेनायें हटाली गयी थीं और अब निश्शस्त्रीकरण जर्मनी के स्वयं की एकपक्षीय कार्यवाही से समाप्त हो गया है। क्या इससे यह प्रकट होता है कि राष्ट्रीय समाजवादी दल का एकदलीय अधिनायकवाद अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल रहेगा अथवा क्या यह अन्ततोगत्वा अत्यन्त विस्तृत, अत्यन्त मूल्यवान और अत्यन्त संकटपूर्ण प्रयत्न के भग्नावशेषों के मध्य तिरोहित हो जावेगा ? इतना कहना पर्याप्त होगा कि वर्साई की संधि के अनुसार जो जर्मन सैनिक वर्ग (जर्मन जनरल स्टाफ) समाप्त कर दिया गया था, वह अक्टूबर १९३५ में पुनः स्थापित कर दिया गया, कि जर्मनी ने पुनः नई पनडुब्बियाँ समुद्र पर पहुँचा दीं, कि नया वायुयान बेड़ा शीघ्रता-पूर्वक बनाया जाने लगा और कि अनिवार्य सैनिक सेवा के आधार पर बनाई सेना का संगठन तथा अनुशासन किया जाने लगा। स्पष्टतः जर्मनी केवल एक ही दिशा की ओर दृष्टिपात कर रहा था, और इस सम्पूर्ण साज-सज्जा के ऊपर मूलभूत उद्देश्य की ओर संकेत करने वाला झण्डा फहरा रहा था जिसके मध्य में पुराने साम्राज्यीय काले-श्वेत-लाल चिह्न के स्थान पर उसकी केन्द्रीय विशेषता के रूप में स्वास्तिक अंकित था क्योंकि सितम्बर १९३५ में नवीन जर्मनी को यह नया चिह्न प्रदान किया गया था। आशा की गयी थी कि यह नया चिह्न भविष्य का द्योतक बनेगा। इस प्रकार पुरानी जर्मनी का निश्चयरूप से परित्याग कर दिया गया था और १९३६ की ग्रीष्म ऋतु में जर्मनी एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में तथा यदि सबसे अधिक शक्तिशाली नहीं तो कम से कम यूरोप के सर्वाधिक शक्तिशाली राज्यों में से एक राज्य के रूप में अपना स्थान प्राप्त कर चुका था। जहाँ तक उसका सम्बन्ध था वर्साई की सन्धि समाप्त हो चुकी थी। उसने अपनी सेनायें राइन के क्षेत्र में भेज दी थीं। उस सन्धि के अनुसार यह विसैन्यीकृत क्षेत्र घोषित किया गया था। वह यूरोप के अधिक से अधिक, जितने सम्भव हो सकें उतने राज्यों को मित्रों अथवा सहायकों के रूप में अपने पक्ष में करके अपनी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को निर्मित करने का प्रयत्न कर रहा था। शीघ्र ही उसके पास विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली सेना होगी उसके निर्णयानुसार निर्मित किसी भी आकार की वायु सेना (सेवा) होगी जिसमें तीन या चार सहस्र वायुयान होंगे और ग्रेट ब्रिटेन के समान विश्व में तृतीय स्थान प्राप्त नौ सेना होगी।

वह अपनी इस भयंकर सैनिक सामग्री को किस हेतु प्रयोग करेगा ? क्या

वह रूस को पीछे खदेड़ने तथा उसके मूल्यवान् प्रदेशों को छीनने का प्रयत्न करेगा ? क्या वह युद्ध काल की भाँति अन्तिम साफल्य रहित केन्द्रीय यूरोप को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करेगा ? क्या वह उस युद्ध के निर्णय को पश्चिमी देशों पर आक्रमण करके बदलने का प्रयत्न करेगा ? इसको कोई भी नहीं बता सकता, परन्तु इस पर विचार सभी कर सकते थे। वास्तव में सभी इस पर विचार करने के लिए विवश थे और जो कुछ होगा उसके लिए उनको तैयार होने के लिए विवश होना पड़ रहा था।

अध्याय ४५

१९१७ के पश्चात् का रूस

नवम्बर १९१७ में रूस में शक्ति को बॉलशेविकों ने हस्तगत कर लिया था। वह शक्ति तब से बढ़ा ली गयी है और उसके द्वारा प्राप्त स्थिति को अक्षुण्ण रखने तथा सुदृढ़ करने के लिए उसका क्रूरतापूर्वक प्रयोग किया जाता रहा। इस बात को इस नीति के निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि संगठित अधिनायकवाद उनकी प्रक्रिया है परन्तु उनके विदेशी सहानुभूतिकर्त्ताओं ने प्रायः इसको अस्वीकार किया है। लैनिन की एक उज्ज्वल उक्ति यह थी कि, 'बिना आतंक तथा हिंसा के श्रमिक वर्ग के अधिनायकवाद पर विचार नहीं किया जा सकता है।' उसी ने यह भी कहा था, "हम पूँजीवादी वर्ग के विरुद्ध लाल आतंक के पक्ष में सुदृढ़ रूप से हैं।"

बॉलशेविकों का नियन्त्रण

इस नवीन पद्धति के पीछे जो भावना है उस पर इन कथनों से प्रकाश पड़ता है। बॉलशेविक एक सिद्धान्त के अनुयायी थे और वे उस सिद्धान्त को किसी भी मूल्य पर कार्यान्वित करने के लिए कृत संकल्प थे। सिद्धान्त था साम्यवाद अर्थात् व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्तिगत साहस की वर्तमान पद्धति का विनाश तथा उसके स्थान पर समाजवादी पद्धति का निर्माण। अभी तक जनता का एक बहुत बड़ा भाग साम्यवाद में विश्वास नहीं करता था। अतः यह कार्य प्रबुद्ध अल्पमत के द्वारा किया जाना चाहिए। रूस की जनता अर्थात् विशाल श्रमिक वर्ग के हितार्थ थोड़े से लोगों का अधिनायकत्व होना चाहिए। बॉलशेविकों ने लोकतन्त्रवाद तथा संसदीय संस्थाओं को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने इनको मध्य वर्गों का अंधविश्वास बताया। ये ऐसे वर्ग थे जिनको उनके सभी कार्यों सहित समाप्त किया जाना चाहिए था क्योंकि ये ही वर्ग श्रमिकों के स्वामी थे अर्थात् जनता के शोषक थे।

परन्तु १९१७ में रूस जर्मनी तथा आस्ट्रिया से युद्ध कर रहा था और उसने शीघ्र ही उन आक्रमणकारी तथा सफल राज्यों की शक्ति का अनुभव किया। ऐतिहासिक रूस का विघटन पहले ही प्रारम्भ हो चुका था और रूस के नवीन अधिकारियों

वह रूस को पीछे खदेड़ने तथा उसके मूल्यवान् प्रदेशों को छीनने का प्रयत्न करेगा? क्या वह युद्ध काल की भाँति अन्तिम साफल्य रहित केन्द्रीय यूरोप को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करेगा? क्या वह उस युद्ध के निर्णय को पश्चिमी देशों पर आक्रमण करके बदलने का प्रयत्न करेगा? इसको कोई भी नहीं बता सकता, परन्तु इस पर विचार सभी कर सकते थे। वास्तव में सभी इस पर विचार करने के लिए विवश थे और जो कुछ होगा उसके लिए उनको तैयार होने के लिए विवश होना पड़ रहा था।

अध्याय ४५

१९१७ के पश्चात् का रूस

नवम्बर १९१७ में रूस में शक्ति को बॉलशेविकों ने हस्तगत कर लिया था। वह शक्ति तब से बढ़ा ली गयी है और उसके द्वारा प्राप्त स्थिति को अक्षुण्ण रखने तथा सुदृढ़ करने के लिए उसका क्रूरतापूर्वक प्रयोग किया जाता रहा। इस बात को इस नीति के निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि संगठित अधिनायकवाद उनकी प्रक्रिया है परन्तु उनके विदेशी सहानुभूतिकर्त्ताओं ने प्रायः इसको अस्वीकार किया है। लैनिन की एक उज्ज्वल उक्ति यह थी कि, 'विना आतंक तथा हिंसा के श्रमिक वर्ग के अधिनायकवाद पर विचार नहीं किया जा सकता है।' उसी ने यह भी कहा था, "हम पूंजीवादी वर्ग के विरुद्ध लाल आतंक के पक्ष में सुदृढ़ रूप से हैं।"

बॉलशेविकों का नियन्त्रण

इस नवीन पद्धति के पीछे जो भावना है उस पर इन कथनों से प्रकाश पड़ता है। बॉलशेविक एक सिद्धान्त के अनुयायी थे और वे उस सिद्धान्त को किसी भी मूल्य पर कार्यान्वित करने के लिए कृत संकल्प थे। सिद्धान्त था साम्यवाद अर्थात् व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्तिगत साहस की वर्तमान पद्धति का विनाश तथा उसके स्थान पर समाजवादी पद्धति का निर्माण। अभी तक जनता का एक बहुत बड़ा भाग साम्यवाद में विश्वास नहीं करता था। अतः यह कार्य प्रवुद्ध अल्पमत के द्वारा किया जाना चाहिए। रूस की जनता अर्थात् विशाल श्रमिक वर्ग के हितार्थ थोड़े से लोगों का अधिनायकत्व होना चाहिए। बॉलशेविकों ने लोकतन्त्रवाद तथा संसदीय संस्थाओं को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने इनको मध्य वर्गों का अंधविश्वास बताया। ये ऐसे वर्ग थे जिनको उनके सभी कार्यों सहित समाप्त किया जाना चाहिए था क्योंकि ये ही वर्ग श्रमिकों के स्वामी थे अर्थात् जनता के शोषक थे।

परन्तु १९१७ में रूस जर्मनी तथा आस्ट्रिया से युद्ध कर रहा था और उसने शीघ्र ही उन आक्रमणकारी तथा सफल राज्यों की शक्ति का अनुभव किया। ऐतिहासिक रूस का विघटन पहले ही प्रारम्भ हो चुका था और रूस के नवीन अधिकारियों

ने शीघ्र ही इस तथ्य को स्वीकार कर लिया। **मार्च की क्रान्ति** जो कि **नवम्बर की नीति** की पूर्वगामिनी थी और जिसने सम्राट को सिंहासन च्युत किया था, के पश्चात् साम्राज्य की कई अधीनस्थ जातियों ने (स्थानीय) स्वतन्त्रता के आन्दोलन किये थे। अगले नवम्बर में, जबकि रूस पर बॉलशेविकों का अधिकार हो गया, यह आन्दोलन और अधिक स्पष्ट हो गया। स्थानीय स्वतन्त्रता की माँग पूर्ण पार्थक्य अथवा पूर्ण स्वातंत्र्य की माँग में परिणत हो गयी। फिनलैंड, एस्थोनिया और लिथूनिया ने अपनी स्वतन्त्रता उद्घोषित कर दी और दक्षिण रूस में **यूक्रेनी जनता का गणराज्य और बसराबिया के गणराज्य** की घोषणा हो गयी। ऐसी ही कार्यवाही टिफलिस में **ट्रांसकाकेशन के गणतन्त्र** ने की और साइवेरिया में भी स्वकन्त्र गणतन्त्र की उद्घोषण हो गई। नवम्बर १९१७ में बॉलशेवियों द्वारा शक्ति हस्तगत कर लेने से रूस की पश्चिमी और दक्षिणी तथा पूर्वी सीमा पर इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।

ब्रेस्टलिटवस्क की सन्धि

इसी मध्य **केन्द्रीय शक्तियाँ** इस स्थिति को अपने लाभार्थ प्रयोग करने के लिये कृत संकल्प थीं। वे चाहती थीं कि रूस युद्ध से अलग हो जावे तब उस शक्ति (रूस) के साथ सन्धि पर हस्ताक्षर हो जाने पर तथा प्रादेशिक अभिवृद्धि हो जाने पर वे पश्चिम की ओर अपने प्रयत्नों को केन्द्रित कर सकती थीं और युद्ध को सफलता पूर्वक समाप्त कर सकती थीं। रूसियों ने जर्मनों को एक पत्र भेजा जोकि अन्ततः आश्चर्यजनक माना जाता है। उसमें उन्होंने लिखा था, "हम युद्ध के बाहर जा रहे हैं परन्तु हम अपने को शान्ति की सन्धि पर हस्ताक्षर न करने के लिये विवश समझते हैं।" परन्तु जर्मन निवासी इस परिणाम को स्वीकार करने को एक क्षण के लिए भी तैयार नहीं थे। उन्होंने तदनुसार रूस में पुनः आगे बढ़ना प्रारम्भ कर दिया और रूसियों को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। बातचीत पुनः प्रारम्भ हुई और शीघ्र ही ३ मार्च १९१८ को ब्रेस्टलिटवस्क की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। यह सन्धि पहले प्रस्तुत की गयी सन्धि की अपेक्षा अधिक कड़ी थी। इस सन्धि के अनुसार रूस को पोलैंड, कोरलैंड और लिथूनिया का परित्याग करना था और उसे जर्मनी तथा आस्ट्रिया को इन क्षेत्रों की भावी स्थिति को निश्चित करने का अधिकार देना था; फिनलैण्ड, आलैण्ड द्वीपों, एस्थोनिया और लिवोनिया से अपनी सेनाएँ हटानी होंगी; यूक्रेन को छोड़ना होगा और उस गणतन्त्र के द्वारा **केन्द्रीय शक्तियों** के साथ की गयी सन्धि को मान्यता प्रदान करनी होगी; तुर्की के अर्दहन, कार्स और बातम के नगर समर्पित करने होंगे, और जर्मनी आस्ट्रिया में तथा इस सन्धि द्वारा परित्यक्त सभी प्रदेशों में बॉलशेविक प्रचार त्यागना होगा।

बॉलशेविकों की कठिनाइयाँ

इस प्रकार रूस को शांति उपलब्ध हो गयी थी। परन्तु इस शांति को उपलब्ध करने के लिए उसको विस्तृत प्रदेश देने पड़े थे। सत्तरहवीं शताब्दी में पीटर महान् के समय का रूस आज १९१८ के रूस की अपेक्षा अधिक विस्तृत था। परन्तु अब भविष्य में वह अपना अवधान उस पद्धति की स्थापना पर केन्द्रित कर सकेगा जिसको स्थापित करने का उसके नवीन शासक विचार कर रहे थे। गत नवम्बर में सत्तारूढ़ होने के समय से लैनिन तथा ट्राटस्की इस कठिन कार्य क सम्पादित करने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे परन्तु इन वाह्य समस्याओं का अस्तित्व

उनके मार्ग में बाधा उपस्थिति कर रहा था। ज्योंही वे जर्मनी तथा आस्ट्रिया की माँगों के सम्मुख झुकने को विवश हुए त्योंही उन्होंने अपने को अपने बहुसंख्यक देशवासियों के साथ दीर्घकाल तक चलने वाले संघर्ष में फँसा हुआ पाया जोकि उन मित्र राष्ट्रों से न्यूनाधिक सहायता प्राप्त करते थे जिनका उनके राष्ट्र ने साथ छोड़ दिया था। इस रूसी क्रान्ति का बहुत से रूसी लोग विरोध करते थे जो नवम्बर में प्रारम्भ हुई थी। इसमें उनको मित्र राष्ट्रों का कई प्रकार से समर्थन प्राप्त हो रहा था तथा वे मित्रराष्ट्रों के हस्तक्षेप की प्रार्थना भी करते थे। १९१७ से १९२० तक रूस की नवीन संस्थापित सरकार के विरुद्ध वहाँ के नागरिकों ने झगड़ा-दंगे किये। इस कारण उन परिवर्तनों पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगा जिनको करने के लिए बॉलशेविक कृत संकल्प थे क्योंकि उनको लागू करने में उनको सफलता की तब तक आशा नहीं थी जब तक कि उनके अव्यवहित शत्रुओं का दमन न हो जावे और उनका सत्तारूढ़ बना रहना निश्चित न हो जावे। उनका सत्तारूढ़ बना रहना दीर्घकाल तक सन्दिग्ध रहा। बॉलशेविक राज्य पर ऐसे संकट आ सकते थे जो उसके अस्तित्व को भी खटाई में डाल दें।

युद्ध की समाप्ति

मित्रराष्ट्रों तथा रूस के मध्य सन्धि होने में बहुत समय लगने वाला था। १९१७ से १९२० तक बॉलशेविकों तथा उन लोगों के मध्य व्यापक तथा आशंकापूर्ण संघर्ष चलता रहा जोकि बॉलशेविकों के कार्यों से अप्रसन्न अथवा भयभीत हो रहे थे। मित्रराष्ट्रों अर्थात् इंगलैंड, फ्रांस और संयुक्तराज्य का साथ रूस ने सहसा छोड़ दिया था। इससे वे अप्रसन्न थे। साथ ही, उनको यह विश्वास नहीं था कि बॉलशेविकों का नियंत्रण दीर्घकाल तक बना रहेगा अथवा नहीं और यदि नियंत्रण न रहा तो क्या होगा? जनवरी १९१८ में बॉलशेविकों ने यह घोषणा की कि रूस को दिये गये सभी विदेशी ऋण निरस्त किये जाते हैं। इस घोषणा से सभी अप्रसन्न थे। मित्रराष्ट्रों ने शीघ्र ही उत्तर में स्थित मरमंस्क तथा आर्केंजिल को सेनायें भेजने का निर्णय किया। सुदूर पूर्व में स्थिति व्लाडीवोस्टक के लिये भी यही निर्णय किया गया जहाँ पर रूसियों ने वृहत्त सैनिक सामग्री इकट्ठी रखी थी और अब यह जर्मनों द्वारा हस्तगत की जा सकती थी और उन्हीं के विरुद्ध प्रयोग की जा सकती थी। फ्रांस ने शीघ्र ही दक्षिणस्थ उडेसा पर बम बरसाये और उसको छीन लिया क्योंकि वह खरबों रूसी रूबलों की सम्भाव्य हानि से अप्रसन्न था। ये रूबल उसने शासन को उधार दिये थे। अंग्रेजों ने एक और भी आगे चलकर बाकू पर आक्रमण किया। अन्य क्षेत्रों में भी वर्तमान रूसी शासन के शत्रु थे। साइबेरिया में जल सेनाध्यक्ष 'अखिल रूसी शासन' का अध्यक्ष था। बॉलशेविकों के विरुद्ध रूसी सेनाओं और मित्रराष्ट्रों की तथा जैकोस्लावाकिया वालों की सहायता उसको प्राप्त थी। जैकोस्लाविया निवासियों ने अपने से वरिष्ठ आस्ट्रियावासियों का साथ छोड़ दिया था और वे रूस से मित्र शक्ति के रूप में जा मिले थे। दक्षिण में डैनकिन की अधीनता में उनके विरुद्ध सेनायें थीं और तत्पश्चात् दक्षिणी यूक्रीन तथा क्रीमिया में जनरल पीटर रेमिल के नेतृत्व में एक सेना उनके विरुद्ध खड़ी हो गयी थी। बाल्टिक के तटवर्ती प्रदेशों में जनरल यूडीनिच की अधीनता में एक सेना उनसे असन्तुष्ट थी। साथ ही रूस के उत्तर पश्चिम में कुछ प्रदेश बॉलशेविकों के विरुद्ध हो गये और उन्होंने इस अवसर को अपनी स्वतन्त्रता की उद्घोषणा के लिये उपयुक्त समझा। ये प्रदेश थे ऐस्थोनिया,

लैटविया, लिथूआनिया तथा फिनलैण्ड। ट्रांस काकेशिया ने भी यही किया और रूमानिया ने वसराबिया का धनी प्रदेश छीन लिया।

ये 'श्वेत सेनायें' अर्थात् अनुदारवादी रूसी सैनायें बॉलशेविकों द्वारा अधिकृत रूप से सत्ता हथियाने के विरुद्ध थीं और वे पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम से आगे बढ़ने के लिये तैयारियाँ कर रही थीं। विभिन्न क्षेत्रों में अँग्रेज, फ्रांसीसी तथा अमरीकी अपने-अपने लक्ष्यों को पूरा कर रहे थे। पश्चिमी रूस के वृहत् भाग अपनी स्वतन्त्रता की उद्-घोषणा करने तथा उसकी रक्षा करने की तैयारियाँ कर रहे थे। इस परिस्थिति में रूस बॉलशेविकों की दशा अच्छी नहीं थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि चारों ओर इतने प्रबल शत्रुओं के होने से उनका पतन संभाव्य था और १९१९ तक उनको अपनी जीवन रक्षा के लिये देश के बाहर जाना पड़ेगा।

अनुदारवादी रूसियों ने विरोध किया

परन्तु विद्रोहियों के मार्ग में भी बाधायें थीं और बालशेविकों ने उनका लाभ उठाने की तैयारियाँ कीं। प्रतिरक्षा के दो उपाय थे जिनको उन्होंने शीघ्रतापूर्वक विकसित किया : **चेका और दूसरा लाल सेना**। प्रति क्रान्ति का सामना करने के लिये १९१७ के अन्त में साधारण आयोग **चेका**, की स्थापना की गयी थी। यह एक गुप्त क्रांतिकारी न्यायाधिकरण था जिसको राज्य के शत्रुओं को बुलाने, गिरफ्तार करने और दण्ड देने के अधिकार दिये गये थे। दूसरे शब्दों में उसको ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को दमन करने का अधिकार प्राप्त था जो सत्तारूढ़ बॉलशेविकों का विरोध करता हो। इस आयोग का अत्यधिक विस्तार किया गया और इसको अत्यधिक शक्तिवान् बनाया गया और इसने प्रत्येक रूप से आतंक का आश्रय ग्रहण किया। ट्राटस्की ने कहा "श्रमिक वर्ग के प्रदर्शन, इच्छा और शक्ति के रूप में आतंक का ऐतिहासिक औचित्य है।" निश्चय ही इसका प्रयोग किया गया और फ्रांसीसी 'क्रांति के आतंक के शासन' से ही बढ़कर 'आतंक का शासन' हुआ। अनुमान किया जाता है कि इस न्यायाधिकरण की आज्ञा से १९१८ के अन्तिम मासों में ६००० व्यक्तियों को गोली से उड़ा दिया और आगामी अवधि में कई सहस्र व्यक्ति और मारे गए।

बॉलशेविकों की पद्धतियाँ

लाल सेना प्रमुख रूप से ट्राटस्की के कार्यों का परिणाम था। १९१९ तक उसने लगभग १००,००० पुरुषों की दक्ष सेना तैयार कर दी और इसके अधिकांश नायक भूतपूर्व सम्राट की सेना के देशभक्त अधिकारी थे।

इस कालावधि के प्रारम्भ में रूस के सम्राट के वंश का दुःखद अन्त हुआ। अपने सिंहासन परित्याग के पश्चात् कई मास तक सार्कोसीलो में निकोलस द्वितीय को उसकी स्त्री, पुत्र और चार पुत्रियों सहित बन्दी बनाकर रखा गया था। तत्पश्चात् यह दुखी वर्ग (राजपरिवार) साइबेरिया में टोबोलस्क को स्थानांतरित कर दिया गया। १९१८ के प्रारम्भ में वे यूराल पर्वत पर स्थित एकटरिन वर्ग को ले जाये गये जहाँ उनको तीन छोटे-छोटे कमरों में रखा गया। स्थानीय अधिकारियों ने यह विश्वास करके कि कोलचोक की सेना उनके नगर पर चढ़ाई कर रही थी उन्होंने १६ जुलाई १९१८ को पूरे परिवार को गोली से उड़ा देने का आदेश दिया। इस प्रकार रोमानफ वंश के अन्तिम शासनकर्त्ताओं का अस्तित्व समाप्त हो गया।

रूस के सम्राट के वंश का अन्त

१९१९ तथा १९२० में बॉलशेविकों ने विरोधी गृह सेनाओं का सामना किया तथा उनको पराजित किया। १९१९ में सेनाध्यक्ष यूडीनिच की सेना पेट्रोग्राड के प्राय: समीप पहुँच गयी परन्तु अन्त में उसको पीछे हटा दिया गया और वह एस्थोनिया भाग गयी। एशिया की ओर से जल सेनाध्यक्ष कॉल चोक की सेनायें रूस के भीतर घुस आईं परन्तु ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ीं त्यों त्यों वे भी कम होती चली गयीं। कॉलचोक यूरोपीय रूस में अधिक दूर तक जाने में असमर्थ रहा, रोका गया, पीछे हटा दिया गया तथा इस साहस के कार्य में उसका प्राणान्त हो गया। दक्षिण डैनकिन को कुछ सफलता मिलती हुई दीखी परन्तु १९१९ में उसकी भाग्य श्री ने उसका साथ नहीं दिया और उसकी पराजय होने लगी। अन्त में वह कुस्तुन्तुनिया भाग गया। १९२० में उसने अपने अधिकार जनरल रैंगिल को दे दिये थे। वर्ष के अन्त में जनरल रैंगिल क्रीमिया के बाहर खदेड़ दिया गया और वह भी देश के बाहर चला गया।

एक अन्य भाग में भी इसी समय रूसियों पर यह आक्रमण हुआ। उनके एक अन्य शत्रु पोलों ने उनके देश पर आक्रमण किया जो मई में कीव नगर तक बढ़ आये और उस पर उन्होंने अधिकार कर लिया। परन्तु उनका अधिकार अत्यन्त असुरक्षित था। वे शीघ्र ही इस क्षेत्र से बाहर भगा दिये गये और उनको लगभग वारसा लौटाना पड़ा। यहाँ पर फ्रांसीसियों ने उनकी सहायता की और उनको बचा लिया। फ्रांसीसियों ने इनकी सहायता के लिए सेना भेजी थी।

रूसी प्रदेशों से वंचित होना

इस प्रकार अन्ततोगत्वा रूस की रक्षा हो गयी परन्तु उसकी रक्षा आंशिक थी उसने यूडीनिच, कॉलचोक, डैनकिन और रैंगिल की प्रति-क्रान्तिकारी सेनाओं को पराजित कर दिया था और उसने उन देशों को पुनः प्राप्त कर लिया था। जिन पर उस समय उन्होंने अधिकार जमा लिया था। परन्तु एक तो वह अपने पूर्ववर्ती राज्य के विशाल भागों को राष्ट्रीय प्रदेश में पुन: मिलाने में समर्थ रहा था और दूसरी ओर उसको पोलैंड, फिनलैंड, लैटविया, एस्थोनिया और लिथूनिया नामक पश्चिमी सीमा पर कई देशों की पूर्ण स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान करनी पड़ी थी। बसरेबिया भी उसके हाथ से निकल गया। अपने इतिहास के दु:खद संघर्ष पूर्ण अध्याय के समाप्त होने पर १९२० और १९२१ में रूस ने अपने प्रदेश के लगभग ५००,००० वर्ग मील भूक्षेत्र को खो दिया जिसकी जनसंख्या ६६,०००,००० थी। यह जर्मन प्रदेश साम्राज्य से विस्तार में दूना था और जर्मनी की जनसंख्या से उसकी जनसंख्या भी कम नहीं थी। रूस ने शांति तो उपलब्ध कर ली थी परन्तु वह दो सौ वर्ष पूर्व की अपेक्षा अब कम विस्तृत था।

निकोलाई लैनिन

रूस में बॉलशेविकों द्वारा सत्ता हस्तगत करने के समय एक व्यक्ति विशेष रूप से विख्यात था। इस व्यक्ति का वास्तविक नाम व्लाडीमीर इलियच यूलियानोव था परन्तु उसको लोग निकोलाई लैनिन के नाम से अधिक जानते थे। यह वह नाम था जो इतिहास में विख्यात होने वाला था। वह १८७० में सिमबिर्स्क में उत्पन्न हुआ था जिसको अब लैनिनिस्क कहते हैं। यह काजान प्रान्त में स्थित है। इसका वंश ऊँचा था परन्तु वह उग्र तथा क्रान्तिकारी विचारों के लिए विख्यात था। १८८७ में लैनिन के एक भाई अलक्षेन्द्र को मृत्यु-दण्ड दिया गया था। उसका सम्बन्ध सम्राट की

हत्या के षड्यन्त्र से था। यूलियानोव के भावी जीवन में यह घटना सक्रिय तत्व के रूप में उसकी स्मृति में विद्यमान रही। यह काजान के विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ परन्तु शीघ्र ही विद्यार्थियों के एक दंगे में भाग लेने के कारण विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया। तत्पश्चात् वह सेण्ट पीटर्सवर्ग के विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ और वहाँ से उसने १८९१ में विधि की उपाधि प्राप्त की। परन्तु उसकी अभिरुचि आन्दोलन में थी, विधि में नहीं। उसने कार्ल मार्क्स के ग्रन्थों का अध्ययन किया और उसको मार्क्स की शिक्षाओं में पूर्ण विश्वास हो गया। वह एक उग्रवादी संस्था में सम्मिलित हो गया और साइबेरिया के लिए उसको निष्काषित कर दिया गया। वह वहाँ पर १८९७ से १९०० तक रहा। साइबेरिया में उसका विवाह नदेज्दा कॉस्टैण्टीनोवा क्रुपसक्या से हुआ जो कि उसी के समान उग्र विचार-वादिनी थी और उसने भविष्य में, लगातार उसकी कार्यवाहियों में उसका साथ दिया। यह उसने लैनिन की मृत्यु पर्यन्त ही नहीं किया प्रत्युत उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसके विचारों का उसने योग्यतापूर्वक एवं दृढ़ विश्वास के साथ प्रतिनिधित्व किया। १९०० में लैनिन रूस से चला गया और स्विटजरलैण्ड में निवास करने लगा। वहाँ उसके समाचार पत्रों का सम्पादन किया; आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी, फ्रांस और इंगलैंड का पर्यटन किया तथा स्विटजरलैण्ड के पुस्तकालयों में विस्तृत अध्ययन किया। वह एक व्यावसायिक क्रान्तिकारी था। वह प्रचार तथा संगठन में भरसक भाग लेता था। उसकी आशा थी कि कभी वह अवसर आयेगा जब वह अपने देश में प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकेगा। वह १९०५ के संकटकाल में रूस लौट आया परन्तु जब वह अशांति समाप्त हो गयी तब वह स्विटजरलैण्ड को लौट गया और वह १९१७ में वहीं था, जब उसका उपयुक्त अवसर आया। जर्मनों ने उसको एक बन्द कार में स्विटजरलैण्ड से रूस लौटने का अवसर दिया। उन्होंने यह अवसर इसलिये नहीं दिया कि वे उसके विचारों में विश्वास करते थे प्रत्युत उनकी आशा थी कि वह रूस में शासन के विरुद्ध प्रचार से संकट उत्पन्न कर सकता था। इस प्रकार वे रूस को युद्ध से विमुख करने के अपने उद्देश्य को अधिक सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकते थे और तब वे अपनी शक्तियों का प्रयोग पश्चिम के संघर्ष में कर सकेंगे। एक बार पुनः अपने देश में वापिस लौटने पर लैनिन ने सीधी तथा शक्तिशाली कार्यवाहियाँ प्रारम्भ कीं और ७ नवम्बर १९१७ को वह सत्तारूढ़ हो गया। यूरोप के इतिहास का निश्चित तथा आमूल परिवर्तन का युग प्रारम्भ हुआ जिसका प्रभाव अन्ततोगत्वा युद्ध से सम्बन्धित सभी देशों पर किसी न किसी रूप से पड़ा। इस भयावह प्रकंपन में एक नया तत्व विद्यमान रहा। यह तत्व था एक छोटा, गंजा और डाढ़ी वाला व्यक्ति जो अपने मन की बात जानता था और अब जिसने उपलब्ध अवसर का प्रयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया था। एक योग्य एवं अनुभवी नेता, महान् संकल्प और लौह इच्छा शक्ति वाला व्यक्ति सहसा सत्तारूढ़ हो गया था। उसकी शक्ति गंभीर अथवा क्षणिक (कैसी भी) सिद्ध हो सकती थी परन्तु कम से कम कुछ समय के लिये वह निर्णयात्मक अवश्य होगी और उसका प्रभाव अपने देश की सीमाओं के बाहर बहुत दूर तक पड़ेगा।

इस समय लैनिन का प्रथम सहायक अथवा सहयोगी सत्तारूढ़ व्यक्ति था लियोन ट्रॉटस्की जिसका वास्तविक नाम था लियोन डैविडोविच ब्रान्सटीन। वह एक यहूदी कृषक का पुत्र था और उसका जन्म १८७९ में कर्सन के प्रान्त में हुआ था।

ट्राटस्की पर प्रारम्भ में ही उग्रवादी विचारों का प्रभाव पड़ गया था। वह उन परिस्थितियों के विषय में अधिक जानकारी रखता था और अधिक विचार करता था जिनमें वहुसंख्यक जनता रहती थी। १८९८ तथा १९१७ के बीच में उसको दो वार निष्कासित करके साइवेरिया भेजा गया था और चार वर्ष तक वह कारागृह में रहा। वह वारह वर्ष तक विदेशों में रहा। वहाँ उसने कई देशों में अध्ययन, लेखन, पर्यटन और भाषण देने का कार्य किया, जैसे वेलजियम, फ्रांस तथा जर्मनी। १९१७ में वह न्यूयार्क में निवास कर रहा था जवकि पेटोग्राड में रूसी क्रान्ति प्रारम्भ हुई। उसने अविलम्ब रूस के लिए प्रस्थान किया। एक मास तक वह हैलीफैक्स में रोक लिया गया परन्तु अन्ततः उसको जाने की आज्ञा दे दी गयी और जव वह वहाँ पहुँच गया तो उसने विशेष रूप से सैनिक भावना को विकसित करने का कार्य किया तथा लाल सेना को स्थापित करने तथा सुसज्जित करने का प्रयत्न किया। वारह वर्ष पश्चात् उसने अपने आत्मचरित में लिखा था, "मेरे सचेतन जीवन की प्रायः एक तिहाई शताब्दी पूर्णतः क्रान्तिकारी संघर्ष से ओत-प्रोत रही। और यदि मुझको वह जीवन पुनः व्यतीत करना पड़े तो मैं विना किसी हिचक के उसी मार्ग पर पुनः चलूँगा।"

लियोन ट्रॉटस्की

कुछ ऐसे व्यक्ति थे जिनको कम से कम विदेशी लोग १९१७ के अन्त में विशिष्ट नेता समझते थे। दूसरे नेताओं का शीघ्र ही विकास हुआ और अन्त में ट्राटस्की का प्रभाव क्षीण हो गया परन्तु यह तव हुआ जव उसने क्रान्ति में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर दी थी। रूस के नवीन शासन के प्रथम तीन वर्षों के इतिहास में लैनिन तथा ट्राटस्की गणतन्त्र की रक्षा करने में सक्रिय रहे। यह रक्षा उन्होंने भयानक वहुशत्रुओं से १९२० तक की जवकि शांति स्थापित हो गयी। साथ ही वे गणतन्त्र को उसके कार्यपथ पर अग्रसर करने में, उसकी विचारधारा को प्रकट करने में, उसकी राजनीति को निर्धारित करने में और उसकी प्रतिरक्षा के निर्माण करने में सक्रिय रहे। इसकी परमावश्यकता थी क्योंकि वे निरंकुश राजतंत्रात्मक रूस को आमूल परिवर्तन करके पूर्ण गणतन्त्र में परिवर्तित करने के लिए कृत संकल्प थे। यह गणतंत्र अब तक प्रस्तावित सभी गणतन्त्रों की अपेक्षा अधिक आमूल परिवर्तनवादी होगा, समाजवादी, साम्यवादी गणतन्त्र होगा जिसका आशय केवल उग्रतम स्वशासन ही नहीं था वरन् एक विशेष प्रकार का समाज भी था जो ऐसे विचारों पर आधारित था जिनका कभी परीक्षण नहीं किया गया था। वह नवीन मनोविज्ञान, नवीन आर्थिक सिद्धान्त पर अवलम्बित था जो कि अत्यन्त अनिश्चित एवं क्रान्तिकारी थे।

वॉलशेविक दल ने ७ नवम्वर १९१७ को सत्ता हस्तगत की थी। उसके सम्मुख कुछ ऐसी समस्यायें थीं जिनका अविलम्व समाधान होना चाहिये था। उसने अपने शान्ति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था—जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ व्रेस्ट-लिटवस्क की सन्धि की गयी। इसको रूस की भूमि का समुचित वितरण करना था। दल के आधारभूत सिद्धान्त के अनुसार भूमि का स्वामित्व परम्परागत (ऐतिहासिक) जमींदारों (कुलीन वर्गों) अथवा ग्राम समाजों (कम्यूनों का नहीं था अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र का था। इस प्रकार के मूलभूत विश्वास का अविलम्व

वॉलशेविकों के मूलभूत विचार

साधिकार प्रख्यापन एवं कार्यान्वयन किया जाना चाहिये था। इस बॉलशेविक दल को रूस में उचित संस्थायें स्थापित करनी थीं जो उस प्रकार से शासन करें जो कि इसके सत्तारूढ़ होने की पद्धति द्वारा उद्घोषित किया गया था क्योंकि भूतपूर्व शासन यन्त्र इसके लिए अपर्याप्त था। नये शासन का नया संविधान भी होना चाहिये था जो उसके उद्देश्यों के अनुसार बनाया गया हो। यह तैयार किया गया और १९१८ की ग्रीष्म ऋतु में लागू कर लिया गया।

रूस का नया संविधान

इस संविधान के अनुसार रूसी समाजवादी संघीय सोवियत गणतन्त्र की स्थापना हुई। सुविधा के लिए इसके अँग्रेजी पर्याय शब्द के प्रारम्भिक अक्षरों से इसका संक्षिप्त नाम आर० एस० सफ० एस० आर० लिया जाता है। जिन सिद्धान्तों के आधार पर इस सत्ता की स्थापना हुई थी उनकी उद्घोषणा इस प्रकार की गयी थी कि समस्त शक्ति श्रमिकों की है जोकि ग्रामीण तथा नागरिक सोवियतों में सुसंगठित हो गये थे। दूसरे शब्दों में इसको रूस के श्रमिक वर्ग का 'स्वतन्त्र समाजवादी' उद्घोषित किया गया था। अठारह वर्ष (अथवा अधिक) की आयु के सभी स्त्री-पुरुषों को (यदि वे उत्पादक श्रमिक अथवा उसके गृहस्वामी हों), सभी सैनिक अथवा जलपोत चालकों को मताधिकार प्राप्त होगा अर्थात् कुछ विशिष्ट अपवादों को छोड़कर शेष सभी को मताधिकार प्राप्त होगा। ये अपवाद इस प्रकार स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गये थे : (१) जो लाभार्थ वेतन देकर श्रमिक नियुक्त करते हों; (२) जिनकी आय अपने श्रम के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से होती हो; (३) व्यक्तिगत व्यापारी; (४) किसी धर्म संस्था (चर्च) के धर्माधिकारी (मॉङ्क तथा क्लर्जी); (५) जार के वंश के सदस्य और भूतपूर्व शासन के कार्यकर्ता (एजेण्ट)। इस प्रकार यह स्पष्ट था कि भविष्य में राजनीतिक शक्ति केवल श्रमिक वर्ग के हाथ में रहेगी और वह भी सभी श्रमिकों के हाथ में नहीं रहेगी। जो लोग रूस के भूतपूर्व शासन से सम्बन्धित रहे हों अथवा श्रमिकों को वेतन देकर नौकर रखते हों वे पूँजीपति माने गये थे और पूँजीपतियों अथवा समाज के अन्य शत्रुओं को राजनीतिक सत्ता से वंचित रखा गया था अर्थात् ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग ८ प्रतिशत प्रौढ़ जनता तथा रूसी नगरों में इससे कुछ अधिक प्रतिशत जनता को अनागरिक घोषित किया गया था और उनको मताधिकार प्राप्त नहीं था।

इस प्रकार अब रूस मुख्यतया देश के कृषकों पर, जो ग्रामीण संस्थाओं का चुनाव करते हैं, तथा औद्योगिक श्रमिकों पर अवलम्बित है जो नगर-संस्थाओं का निर्माण करते हैं। औद्योगिक श्रमिक जनसंख्या पर आधारित क्षेत्रों के अनुसार नहीं वरन् व्यवसाय के अनुसार अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करते हैं अर्थात् विभिन्न उद्योगों के श्रमिक पृथक्-पृथक् मतदान करते हैं; जैसे खानों में काम करने वाले व्यक्ति, लोहे का काम करने वाले व्यक्ति, सैनिक आदि अपने-अपने वर्गों में पृथक् पृथक् मतदान करते हैं।

इस प्रक्रिया की यह केवल आदि है। इस नवीन पद्धति की यह नींव है। इन स्थानीय इकाइयों और **अखिल रूसी कांग्रेस** के मध्य में विभिन्न संस्थायें हैं : जिला कांग्रेस, काउंटी कांग्रेस, मण्डलीय कांग्रेस तथा प्रान्तीय कांग्रेस। एक ही संस्था के ये विभिन्न सोपान हैं जो कि ग्राम सोवियत तथा नगर सोवियत रूपी द्विविध धाराओं के

स्रोत से प्रारम्भ होकर अन्ततोगत्वा **अखिल रूसी सोवियत काँग्रेस** में समाहित हो जाते हैं। आर० एस० एफ० एस० आर० की यह अन्तिम निर्वाच्य संस्था है। इस संस्था में नगर सोवियतों के द्वारा प्रति २५,००० मतदाताओं पर एक प्रतिनिधि के हिसाब से प्रत्यक्षत: चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं तथा प्रान्तीय प्रतिनिधि होते हैं जोकि प्रति १२५,००० निवासियों पर एक प्रतिनिधि के हिसाब से चुने जाते है। इस **अखिल रूसी सोवियत काँग्रेस** में एक सहस्र अथवा अधिक सदस्य हैं और यह राज-काज को दक्षतापूर्वक चलाने के लिये एक वृहत संस्था है। अस्तु यह आर० एस० एफ० एस० आर० की **केन्द्रीय कार्यपालिका समिति** का निर्वाचन करती है जोकि उसकी सर्वोच्च व्यवस्थापिका है तथा प्रशासन और नियन्त्रण की संस्था है।" यह **केन्द्रीय कार्यपालिका समिति कमिसरों की परिषद्** की नियुक्ति करती है जो सत्तारूढ़ सदस्यों की लघुसंस्था है और जो व्यवहारत: रूस का मंत्रिमण्डल है वास्तव में यह **कमिसरों की परिषद्** ही रूस पर शासन करती है किन्तु उसका प्रत्येक कार्य **केन्द्रीय कार्यपालिका समिति** द्वारा स्वीकृत हो जाना चाहिए अन्यथा वह उसके द्वारा निरस्त किया जा सकता है। दूसरी संस्था में लगभग चालीस सदस्यों का एक **बोर्ड** भी होता है जिसको **प्रसीडियम** (अध्यक्ष संस्था) कहते हैं। यह प्रसीडियम कमिसरों पर उस समय नियन्त्रण रखता है जब **केन्द्रीय कार्यपालिका समिति** के अधिवेशन नहीं होते हैं।

रूस पर जिस पद्धति से शासन होता है वह विशद तथा मुख्यत: अप्रत्यक्ष शासन पद्धति है जिसके कई सोपान हैं। ज्यों-ज्यों प्रत्येक ऊपरी संस्था छोटी होती जाती है त्यों-त्यों उसकी शक्तियों में वृद्धि होती जाती है। यद्यपि यह उपर्युक्त नियंत्रण में कार्य करती है तथापि रूसी शासन में सम्भवत: वास्तविक शक्ति मुख्यत: इस **कमिसरों की परिषद्** में निहित है।

आज (१९१९) में स्वयं रूस के शासन का यह स्वरूप है। परन्तु रूस के लिये एक और उच्चतर शासन है। वास्तव में रूस सात गणतन्त्रों में से एक गणतन्त्र है और एक दूसरे संविधान के अधीन ये सातों गणतन्त्र परस्पर एक संघ में सम्मिलित हैं जिसको **समाजवादी सोवियत गणतन्त्रों का संघ** कहते हैं। यह संघ भूतपूर्व रूसी साम्राज्य का स्थानापन्न है। ये सात गणतन्त्र हैं : रूस, श्वेतरूस, यूक्रीना ट्रॉस काकेशिया, उजबेगिस्तान, तुर्कमानिस्तान और ताजिक। ये सातों गणतन्त्र परस्पर वैसी ही प्रणाली द्वारा सम्बद्ध हैं जैसी कि हमने ऊपर रूस के सम्बन्ध में वर्णित की है। उनकी काँग्रेस का नाम है **सोवियतों की संघीय काँग्रेस**। इस शासन की संस्थायें भी केवल रूस की संस्थाओं के समान हैं परन्तु सब मिलाकर वे एक अधिक विस्तृत क्षेत्र पर नियन्त्रण रखती हैं। इन संघीय राज्यों में से कुछ राज्य बहुत छोटे हैं जिनमें लगभग दस लाख निवासी रहते हैं। इसके प्रतिकूल केवल रूस की जन संख्या दस करोड़ अथवा उससे भी अधिक है।

मुख्यतया पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमाओं के निकटवर्ती प्रदेशों में कुछ बातों में अन्तर है। इन दोनों प्रदेशों के लिए इन दो प्रकार के शासनों के अतिरिक्त एक अन्य संगठन और है। यद्यपि इस संगठन का किसी भी संविधान में वर्णन नहीं है तथापि यह एक प्रकार से अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। यही वह आधार है जिस पर सम्पूर्ण सोवियत शासनालय खड़ा हुआ है। जिसका कि हम वर्णन करते रहे हैं। यह **अखिल संघीय साम्यवादी दल** है जोकि रूस की वास्तविक शक्ति है। इसका महत्त्व लैनिन की एक उद्घोषणा से प्रकट होता है, "हमारे दल की केन्द्रीय समिति

के निर्देश के अनुसार विना हमारे गणतन्त्र की एक भी राज्य संस्था नीति और संगठन से सम्बन्धित एक भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय नहीं कर सकती है।" इस दलीय संगठन से वहुत व्यक्तियों का प्रत्यक्ष संवन्ध नहीं है,

साम्यवादी दल

सम्भवत: सोलह करोड़ व्यक्तियों में से केवल वीस लाख व्यक्तियों का इससे सम्वन्ध है। ग्रामीण सोवियतों में भारी बहुमत असाम्यवादियों का है। परन्तु उत्तरोत्तर परिषदों में **साम्यवादियों की संख्या** बढ़ती जाती है और **प्रसीडियम** (अध्यक्ष मण्डल) तथा **कमिश्नरों की परिषद्** में केवल साम्यवादी ही भरे हुए हैं। केवल साम्यवादी ही उच्चतर तथा अधिक प्रभावशाली पदों पर आसीन हैं और साम्यवादी ही राज्य के शासकीय अंगों में प्रमुख पदों पर कार्य करते हैं। वे अत्यधिक सक्रिय एवं सुचारु रूप से संगठित हैं। सभी मतदाताओं को यह उद्घोषणा करनी पड़ती है कि वे या तो साम्यवादी हैं अथवा 'दलहीन' व्यक्ति हैं। दूसरे शब्दों में रूस में केवल एक ही राजनीतिक दल है और सम्पूर्ण शक्ति पर इसका एकाधिकार है। भाषण की स्वतन्त्रता समाप्त घोषित कर दी गयी है और प्रकाशन की स्वतन्त्रता तथा चलचित्र शासन के नियन्त्रण में हैं।

इस **साम्यवादी दल** का संगठन विशद है। इसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई **पोलित ब्यूरो** है जिसमें नौ सदस्य हैं। लैनिन इस राजनीतिक संस्था (ब्यूरो) का सभापति १९२४ तक अपनी मृत्यु पर्यन्त रहा और तब से इस दल का प्रमुख अधिकारी **जोसेफ स्टालिन**[1] रहा है। **यह केन्द्रीय समिति का महासचिव, पोलित ब्यूरो का सदस्य** तथा इस राज्य द्वारा निर्मित सांविधानिक संस्थाओं का भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। श्रमिक वर्ग के प्रसिद्ध अधिनायकत्व का यह स्वरूप है। इस समय दल की नीतियों के स्वरूप के निर्धारण में स्टालिन का

पोलित ब्यूरो

सर्वाधिक प्रभाव है और इस रूप में वह सोवियत संघ का प्राय: अधिनायक है। कार्ल मार्क्स के शब्दों में वह श्रमिक वर्ग का अधिनायक है। राज्य के अधिकांश उच्च पदों पर इसी दल के सदस्य हैं और वे दल के आदेशों का पालन करते हैं। वे राज्य पर नियन्त्रण रखते हैं और वे ही यह निर्णय करते हैं कि राज्य क्या करेगा। जिस वात के पक्ष में बालशेविक अपने मत की घोषणा कर देते हैं उसके विरुद्ध किसी भी व्यक्ति को कुछ भी कहने, लिखने अथवा मुद्रित करने की आज्ञा नहीं दी जाती है और राज्य के सभी उच्च कार्यालयों में बॉलशेविक ही आसीन हैं।

रूस के जिन शासन को बॉलशेविकों ने हस्तगत किया था उसके हेतु उनके द्वारा इस प्रकार संस्थाएँ प्रारम्भ में ही स्थापित की गयी थीं। राजनीतिक प्रणाली में इन आमूल परिवर्तनों को करने के पश्चात् वे राष्ट्र के आर्थिक जीवन में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए अग्रसर हुए। उन्होंने रूस की सम्पूर्ण भूमि और उत्पादन तथा वितरण के सभी साधनों के राष्ट्रीय-

भूमि तथा उद्योग का राष्ट्रीयकरण

करण' की उद्घोषणा कर दी; अर्थात् उन्होंने यह घोषणा की कि भविष्य में देश की सामाजिक तथा आर्थिक प्रणाली **समाजवादी** होगी। भूमि अथवा उद्योग पर व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होगा और उनके निजी लाभ के द्वारा उसकी व्यवस्था की जावेगी परन्तु

---

1. यह १९३७ तक का काल निर्देशन करता है। —अनुवाद

समग्र रूप से राज्य ही उनकी व्यवस्था करेगा और वही उनका स्वामी होगा और यह व्यवस्था तथा स्वामित्व सबके कल्याण के लिए होगा। परन्तु इतना गम्भीर और व्यापक प्रभाव वाला परिवर्तन जिसमें लाखों की जनसंख्या के विचारों के पूर्ण परिवर्तन का प्रश्न निहित था अतिशीघ्र नहीं हो सकता था। देश के केवल विश्वस्त साम्यवादी जिनकी संख्या अत्यल्प थी और जिनमें कारखानों के श्रमिक सम्मिलित थे, इस आमूल परिवर्तन को समझते थे और उनकी माँग करते थे। परन्तु सम्भवतः जनसंख्या ने ⅘ व्यक्ति जो कृषक थे वे देश की भूमि को हस्तगत करने के लिए उत्सुक थे और उन्होंने अविलम्ब ९६% भूमि हस्तगत कर ली। वे इसको राज्य की नहीं वरन अपनी समझते थे। साथ ही नगरों के श्रमिक तथा सम्पूर्ण देश के कृषक अपने को नये प्रबन्धों के अनुकुल अविलंब न बना सके। अस्तु कारखानों में औद्योगिक अव्यवस्था फैल गयी और सम्पूर्ण कृषक संसार में प्रकट रूप से विरोध होने लगा। आश्चर्यजनक रूप से उत्पादन गिर गया। इस प्रकार युद्ध के एक वर्ष पूर्व १९१३ के उत्पादन तथा १९२० के उत्पादन की तुलना में अब ४७% तेल, ३०% कोयला, ६% कच्चा लोहा, ४% इस्पात उत्पादित किया गया। अन्य उद्योगों में ऐसे ही उत्पादनहीनता व्याप्त थी। १९१३ में जो कृषि सम्बन्धी उत्पादन था उसकी तुलना में १९२० का उत्पादन इस प्रकार था : कच्ची कपास ५%, शकर १५%, रेशमी धागा ३१%। शासन ने यह माँग की कि उनकी आवश्यकता से अधिक जितना भी उत्पादित अन्न कृषकों के पास हो यह सब शासन को दे दिया जावे। इसी के साथ उनको यह वचन भी दिया गया था कि उनकी आवश्यकता के अनुसार उनको औद्योगिक उत्पादन में भाग मिलेगा। परन्तु जो वस्तुएँ उनको राज्य से प्राप्त हुईं उनके मूल्य के केवल एक अंश की ही वृद्धि उनके अन्न के मूल्य में हुई। यदि उनको उत्पादित वस्तुएँ समान मात्रा में उपलब्ध हुई होतीं तो वे सहमत हो जाते। परन्तु वे वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हुई। अस्तु उन्होंने अपना अन्न देना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने अपनी आवश्यकताओं से अधिक अन्न उपजाना अस्वीकार कर दिया। इस सत्वर अस्वीकृति का एक कारण यह भी था कि उनकी आवश्यकता की वस्तुओं के स्थान पर उनको कागज की मुद्रा स्वीकार करने पर विवश किया जा रहा था जिसका मूल्य द्रुतगति से घट रहा था और जो आगे चलकर प्रायः मूल्यहीन हो गयी।

इन मानव निर्मित बुराइयों के अतिरिक्त १९२० तथा १९२१ में रूस को अभूतपूर्व रूप से निकृष्टतम फसलों के कारण दुखी होना पड़ा। १९१३ की अपेक्षा १९२१ में केवल ⅖ अन्न उत्पन्न फसलों का नष्ट होना हुआ। यदि अन्य देश, विशेषरूप से अमरीका, सहायता प्रदान न करते तो मानव जीवन की भयंकर क्षति होती। तो भी सहस्रों रूसी भुखमरी के शिकार हुए।

राज्य-समाजवाद का प्रथम रूसी परीक्षण शीघ्रतापूर्वक असफल हुआ जा रहा था। फलतः अनाज्ञाकारिता तथा कटु आलोचना का बोलबाला था। कृषकों के विरोध तथा नगरों के श्रमिकों के आंशिक विरोध के कारण यह आवश्यक हो गया कि उनको शक्ति द्वारा दबाया जावे अथवा शासन की आर्थिक नीति में संशोधन किया जावे।

बॉलशेविकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि "कृषकों को परिवर्तित करने की अपेक्षा अपनी नीति को परिवर्तित करना सरल था"। अस्तु राजनीतिक सत्ता से पूर्णतः वंचित होने से बचने के हेतु उन्होंने कुछ आर्थिक रियायतें देने का निर्णय किया और

नवीन आर्थिक नीति

उसके पश्चात् धीरे-धीरे तथा अधिक बुद्धिमानी के साथ संघर्ष करने का विचार किया। समाजवाद बनाये रखना चाहिये परन्तु संकुचित सीमा के भीतर, "उतना ही समाजवाद जितना कि परिस्थिति की आवश्यकताओं के अनुसार सम्भव हो, अधिक नहीं।" बॉलशेविक राज्य पर अपना पूर्ण नियन्त्रण बनाये रखेंगे ; वे उन बड़े उद्योग-धन्धों को अक्षुण्ण रखेंगे जो उन्होंने प्रारम्भ किये थे, यातायात के साधनों का राष्ट्रीयकरण बना रहेगा परन्तु कुछ समय तक वे भूमि तथा उद्योग के राष्ट्रीयकरण के अपने प्रयत्नों को स्थगित कर देंगे और वे देश के आर्थिक जीवन में कुछ रियायतें देने के लिये तैयार थे। यही नई आर्थिक नीति होनी थी। संक्षेप में इसको एन० ई० पी० अथवा नेप कहा जावेगा।[1]

नई आर्थिक नीति १९२१ में अपनाई गयी थी। परित्यक्त नीति तथा नवीन पद्धति में मूलभूत अन्तर यह था कि कृषकों से अन्न की अनिवार्य माँग के स्थान पर उनको समस्त कृषि सम्बन्धी उपज पर निश्चित कर देना होगा। वे जितना अधिक उत्पादन करेंगे उतना ही अधिक उनको कर देना होगा परन्तु इस कर की राशि से वे जितना अधिक उत्पादन करेंगे वह इनकी अपनी सम्पत्ति होगी और उसको वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी इच्छानुसार खुले बाजार में बेच सकेंगे। भूतपूर्व समाजवादी पद्धति उनके लिये किंचित मात्र भी उपयोगी नहीं थी क्योंकि वे जितना अधिक उत्पादन करते उतना ही अधिक उसको राज्य को देना पड़ता। उनको व्यक्तिगत लाभ कुछ भी नहीं होता था। साम्यवादी पद्धति ने अन्न के उत्पादन को बढ़ाने की प्रेरणा को नष्ट कर दिया था। अब वह प्रेरणा पुनः स्थापित कर दी गयी थी। परिणाम कृषकों के लिये हितकर रहा। १९२६ तक अन्न की फसलें उतनी ही अच्छी और बड़ी हो गयी जितनी कि वे १९१३ में थीं।

कुलक

१९२५ में राज्य ने कृषकों को एक और रियायत प्रदान की। भविष्य में भूमि पट्टे पर ली-दी जा सकती थी और कृषकों को कुछ मजदूर रखने की आज्ञा दे दी गई। उनको वे उसी प्रकार वेतन देते थे जिस प्रकार अन्य देशों के कृषक देते थे। यह कार्य अपेक्षाकृत अधिक साहसी कृषकों, कुलकों ने किया। परन्तु रूस के शासक इस वर्ग को अपना कृपा-भाजन नहीं बनाना चाहते थे। वे वास्तव में उचित अवसर आने पर इस वर्ग को पूर्ण रूप से नष्ट करना चाहते थे। १९२८ में ही उन्होंने अन्य कृषकों की अपेक्षा इन पर अधिक कर लगाने प्रारम्भ कर दिये।

नई आर्थिक नीति के अधीन कृषकों के सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त है। उद्योगपतियों को भी रियायतें दो गयी क्योंकि जिस समय कृषि-फार्मों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया उसी समय उन कारखानों का भी अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जिनमें २० से कम श्रमिक कार्य करते थे और वे निजी उद्योगपतियों को वापस कर दिये गये। यह कार्य भी बहुत लोकप्रिय रहा। इस प्रकार राज्य १९१८ से १९२० तक प्रथमतः अपनाये गये समाजवाद से आंशिक रूप से पीछे हट रहा था।

---

1. N. E. P.=New Economic Policy अर्थात् प्रत्येक शब्द का प्रथम अक्षर ले लिया गया है। —अनुवादक

अस्तु राज्य ने रूस के कृषक वर्ग को, जिसका वहाँ की जनसंख्या में भारी बहुमत था, तथा अल्प किन्तु बहुसंख्यक कारखानों के श्रमिकों को पुनः एक बार पूर्व-परिचित दशाओं में कार्य करने का अवसर दिया। परन्तु राज्य इससे अधिक करने के लिये तैयार नहीं था। उसने सभी बड़ी तथा मध्यम श्रेणी की औद्योगिक संस्थाओं को तथा विदेशी व्यापार को अपने नियन्त्रण में रखा। उसने इस विकास को संरक्षण देना तथा प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया क्योंकि यह आशा की गयी थी कि कृपकों तथा लघु उद्योगपतियों को दी गयी रियायतें अस्थायी सिद्ध होंगीं। वे तभी तक रहेंगी जब तक कि समाजवादी पद्धति को पूर्ण रूप से पुनः स्थापित करने का उचित अवसर नहीं आता है।

बॉलशेविक तथा विदेशी पूँजी

जिस पद्धति का वे विरोध करते थे उनके पक्ष में भी उन्होंने रियायत की। उन्होंने लगभग एक सौ से अधिक औद्योगिक संस्थाओं के साथ सीमित अवधि के लिये समझौते किये और उसको रूस में वह कार्य करने की आज्ञा दी जिसको करने के लिये रूसियों को आज्ञा नहीं थी। विदेशी पूंजीपतियों को उत्पादन, खानों, व्यापार, यातायात, कृपि में रियायत दी गयी। यदि राज्य मोल लेना चाहेगा तो इन व्यावसायिक संस्थाओं को राज्य की अपनी उत्पादित वस्तुएँ बेचनी होंगी। शेप वस्तुओं को वे जिस प्रकार चाहें अथवा जिस प्रकार बेचें बेच सकेंगे। परन्तु इन व्यावसायिक संस्थाओं से बॉलशेविक केवल आवश्यक वस्तुएँ ही प्राप्त नहीं कर सकते थे वरन् इस बात की भी लाभप्रद जानकारी प्राप्त कर सकते थे कि बड़े व्यापार किस प्रकार संचालित किये जाते हैं।

लैनिन की मृत्यु

जब नई आर्थिक नीति का निर्माण एवं कार्यान्वयन हो रहा था उसी समय स्वयं बॉलशेविक दल के नियन्त्रण के लिये संघर्ष चल रहा था। लैनिन के जीवन पर्यन्त इस बात में कोई भी संदेह नहीं था कि वास्तविक नेता कौन था। वह साम्य-वादी दल के पोलित ब्यूरो का अध्यक्ष था। वह सोवियत संघ का अधिनायक था। उसके महान् मस्तिष्क तथा इच्छा का प्राधान्य था। परन्तु १९२२ में वह आंशिक पक्षाघात से रुग्ण रहा और मार्च १९२३ में द्वितीय पक्षाघात हुआ परन्तु उसका विचार था कि वह अन्ततोगत्वा ठीक हो जावेगा। भाग्य का आदेश इसके विपरीत था और २१ जनवरी १९२४ को उसका देहावसान हो गया। उसके पश्चात् मास्को में एक विशाल स्मारक बनाया गया और वह शीघ्र ही एक मन्दिर बन गया जहाँ पर प्रतिदिन सहस्रों भक्त आने लगे। आगे चलकर पैट्रोग्राड का नाम लैनिनग्राड रख दिया गया। आज (१९३७) भी उसका यही नाम है।

ट्रॉटस्की तथा स्टालिन

शीघ्र ही शासन पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिये संघर्ष प्रारम्भ हो गया। दो व्यक्ति अपने को लैनिन का उत्तराधिकारी बनने के लिये निर्धारित समझते थे : लियोन ट्रॉटस्की तथा जौसेफ स्टालिन। स्टालिन अधिक सबल प्रतियोगी था। मार्च १९१७ की क्रांति के समय से इन दोनों व्यक्तियों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। दो में से कोई भी देश का मुख्य संचालक बनने की वैध महत्त्वाकांक्षा कर सकता था। इन दोनों व्यक्तियों के मध्य सत्ता के लिये दीर्घकाल तक तथा जटिल संघर्ष होता रहा। यह

संघर्ष कम से कम १९२४ से १९२९ तक चला जबकि ट्रॉटस्की अन्तिम रूप से निरस्त कर दिया गया। यह केवल महत्त्वाकाक्षाओं का द्वन्द्व नहीं था। केवल एक की महत्त्वाकांक्षा ही विजयी हो सकती थी। यह सिद्धान्तों की प्रतिद्वन्द्विता भी थी। १९२४ तक स्टालिन का यह विश्वास हो चला था कि रूस के बाहर पूँजीवादी व्यवस्था इतनी प्रबल थी कि वह दीर्घकाल तक समाप्त नहीं की जा सकती। अस्तु वह इस बृहतर संघर्ष का परित्याग कर सकता था और अपने अवधान को स्वयं रूस के वांछनीय आर्थिक परिवर्तन को क्रियान्वित करने पर केन्द्रित कर सकता था। इसके विपरीत ट्रॉटस्की यह विश्वास करता था कि रूसी क्रान्ति एक वस्तु थी और विश्वक्रांति उससे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी, कि यह विश्वक्रान्ति उनके समय में ही सम्पन्न हो सकती थी और कि एक बार सम्पन्न हो जाने पर यह सर्वत्र अधिक बलवती हो जावेगी। स्टालिन का यह विश्वास भी था कि कृषकों पर पहले ध्यान देना चाहिये और उसको सन्तुष्ट करना चाहिये। क्योंकि वे रूस की जनसंख्या के कम से कम ४/५ थे और कि यदि अल्प पूँजीवाद से कुछ समय के लिये समझौता भी करना पड़े तो भी उनमें तथा राज्य में अच्छे सम्बन्ध होने चाहिये। तथापि ट्रॉटस्की अज्ञ एवं अनुदार विचारों की कृषक जनता के साथ अधिक धैर्य नहीं रख सकता था और वह नगरों में काम करने वाले अधिक प्रगतिशील श्रमिकों के अधिक पक्ष में था क्योंकि श्रमिक वर्ग के राज्य में वास्तव में वही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व था। औद्योगिक श्रमिक पहले से ही साम्यवादी थे। उचित समय पर कृषक भी साम्यवादी बन जावेंगे परन्तु जब तक वह समय नहीं आता है तब तक उन पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिये। स्टालिन का विश्वास था कुछ समय तक रूसियों को विदेशी पूँजी की सहायता तथा विदेशी सहायता प्राप्त करनी चाहिये जिससे रूस में अन्ततोगत्वा साम्यवाद की विजय हो सके। इसके विपरीत पूँजीवाद से किसी भी प्रकार का समझौता करना ट्रॉटस्की के अनुसार पूर्ण विश्वासघात था।

इस प्रकार के विभिन्न दृष्टिकोणों के इन दोनों व्यक्तियों का सत्ता के लिये संघर्ष कभी गुप्त रूप से होता था और कभी प्रकट रूप से होता था। समय की गति के साथ यह संघर्ष भी बढ़ता चला गया और अन्त में वह तीव्र एवं विषाक्त हो गया। सर्वप्रथम ट्रॉटस्की को मास्को से चले जाने का दण्ड दिया गया। कुछ दिन पश्चात् वह लौट आया और कुछ संघर्ष के पश्चात् उसके कुछ साथियों के साथ उसको अधिक दूर दूर स्थानों पर भेज दिया गया। अन्त में १९२९ में यह संघर्ष समाप्त हो गया। वह रूस से निष्कासित होने पर तुर्की को भाग गया। उसको मृत्यु दण्ड दे दिया गया होता परन्तु इससे वह शहीद बन जाता क्योंकि उसका पक्ष प्रभावोत्पादक था। विजेता स्टालिन को उसके घृणित विरोधी के विरुद्ध अभियान में साम्यवादी दल के अंगों तथा सोवियत राज्य की अन्य अनेक शक्तियों ने सहायता दी थी।

ट्रॉटस्की का रूस से निकाला जाना

अपने देश की अशांत राजनीति में रूस के प्रभावशाली व्यक्ति जॉसेफ स्टालिन का जीवन दीर्घकालीन तथा जटिलताओं से परिपूर्ण रहा था। वह सुदूर दक्षिणी पूर्वी रूस का जाजिया का कृषक था। उसका मूल नाम था जॉसेफ विसरियोनोविच जगोश्विली। वह १८७९ में गोरी नगर में उत्पन्न हुआ था और एक

जूते बनाने वाले का पुत्र था। उसने पादरी बनाने के लिये शिक्षा प्राप्त की थी परन्तु अपने मार्क्सवादी विचारों के कारण वह उस जीवन से बहिष्कृत कर दिया गया था। **समाजवादी लोकतांत्रिक** दल का सदस्य बन गया। १९०० से १९१७ तक उसको सामाजिक असन्तोष के सभी संकटों और आपत्तियों का सामना करना पड़ा। बातून के आन्दोलन में भाग लेने के कारण उसको साइबेरिया के लिये निष्कासित किया गया। १९०४ में वह भाग गया और आगामी दस वर्षों में उसने विविध प्रकार के साहसपूर्ण कार्य किये। वह दल के किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रहा। वह छः बार गिरफ्तार हुआ। अपनी वीरता तथा साधन सम्पन्नता के कारण वह पाँच बार बचा। तथापि १९१३ की उसकी अन्तिम गिरफ्तारी के कारण उसको ध्रुववृतीय साइबेरिया जाना पड़ा और वह १९१७ में वहीं था जबकि उस वर्ष की बॉलशेविकी क्रान्ति के कारण उसको स्वतन्त्रता प्राप्त हुई वह शीघ्र ही **साम्यवादी** दल का **महासचिव** बन गया। यह उस देश के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पदों में से एक पद है और आगे चलकर उसने ट्रांस-**काकेशियन गणतन्त्र** तथा **समाजवादी सोवियतों के गणतन्त्रों के संघ** के संगठन के लिये अत्यधिक कार्य किया। लैनिन का उत्तराधिकारी जॉसेफ वी० स्टालिन ऐसा था। (एक बार उसने पुलिस को धोखा देने के लिये अपना नाम स्टील[1] रख लिया और जब वह यूरोपीय अधिनायक बन गया तब भी उसका यह नाम बना रहा।)

जॉसेफ स्टालिन

अपने विरोधी ट्रॉटस्की को निष्काषित करने के पश्चात् उसने उसके दो एक सिद्धान्तों को अपनाना प्रारम्भ किया, विशेष रूप से उन सिद्धान्तों को जोकि कुलकों तथा नेक व्यक्तियों से सम्बन्धित थे। औद्योगिक प्रसार की ठोस नीति और उन अप्रिय वर्गों के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्यवाही के द्वारा वह उनको समाप्त करने की आशा रखता था और वह सफल हुआ। १९२८ में उसने एक नवीन आर्थिक योजना प्रारम्भ की। इसका नाम था **प्यातीलेत्का** अर्थात् **पंचवर्षीय योजना**। यह एक विशद एवं विवरणपूर्ण योजना थी जिसको एक विशेषज्ञ मण्डल ने सावधानी से तैयार किया था और एक ठोस आर्थिक विकास के काल के लिये बनाई गयी थी। यह **सोवियत की संघीय कांग्रेस** द्वारा स्वीकार की गयी और १९२९ में लागू की गयी। इस योजना ने राष्ट्र के उद्योगों की सामान्य ठोस प्रगति के काल का श्रीगणेश किया जिसमें नवीन व्यापारिक विधियों का विशाल परिमाण में निर्माण, वृहत् ट्रेक्टर उत्पादक कारखानों का निर्माण, बृहत् कृषि सम्बन्धी यंत्र उत्पादक कारखानों का निर्माण, अत्यधिक विस्तृत इस्पात उत्पादक कारखानों का तथा अतिरिक्त रेल मार्गों का निर्माण होना था। देश के उद्योगों का अत्यधिक विस्तार होना था कृषि भी वृहतर स्तर पर होनी थी। यह कृषि कार्य विस्तृत राजकीय तथा सहकारी फार्मों की स्थापना द्वारा होना था जिनसे बृहत्तर फसलें उगाई जावेंगी तथा महत्त्वपूर्ण बचत होगी। यह योजना अत्यन्त सावधानी के साथ प्रस्तुत की गयी थी और तब लागू की गयी। यह मुख्यतया व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त पर आधारित थी क्योंकि कई सूक्ष्म बातों की व्यवस्था

पंचवर्षीय योजना

---

1. अर्थात् लौह पुरुष।
2. नेप=नई आर्थिक नीति।

के पश्चात् यह उपबंधित किया गया था कि बढ़ा हुआ उत्पादन कृषकों में विभाजित कर दिया जावेगा। तथापि बढ़ा हुआ उत्पादन समाजवाद की दिशा में एक पग था और इससे दो व्यक्तिगत पूँजीगत गाँवों में 'कुलक' तथा नगरों में व्यक्तिगत व्यापारी—भयभीत तथा नष्ट हो जावेंगे।

सामूहिकवाद की दिशा में ठोस पग

उद्योगों तथा कृषि दोनों में प्रवर्द्धित उत्पादन की पद्धति लागू की गई और फलस्वरूप स्पष्ट लाभ हुए। कभी-कभी यह लाभ उन लोगों की आशा से अधिक होता था। जिन्होंने इन योजनाओं को अत्यन्त सावधानी के साथ तैयार किया था। बृहत् उत्पादक संस्थान और कभी-कभी वृहत् सामूहिक फार्म कार्यान्वित किये गये। परिणाम प्राय: आश्चर्यजनक तथा बहुधा लाभदायक होते थे। परन्तु इसका एक दूसरा पक्ष भी था। विश्वव्यापी आर्थिक गिरावट १९२९ में प्रारम्भ हो गयी थी और वह कई वर्ष तक रहती थी। सुधरने की अपेक्षा वह बिगड़ती ही चली गई। मूल्य गिर गये। उपजों का अधिकांश विदेशों से बनीं हुई वस्तुओं के मँगाने के लिये बाहर भेजा जाता था। बाहर भेजी गयी वस्तुओं का मूल्य गिर गया और शासन को विवश होकर देश में जनता को कम खाद्य सामग्री (राशन) पर निर्वाह करने के लिये बाध्य करना पड़ा ताकि अन्न की अधिक मात्रा विदेशों से मँगाई हुई वस्तुओं के मूल्य चुकाने के लिये निर्यात की जा सके। इन विदेशी वस्तुओं को आवश्यक समझा जाता था।

यद्यपि श्रम की प्रचुरता थी तथापि वह प्राय: मध्यम श्रेणी को तथा अपव्यय-शील था। उत्पादक को पर्याप्त होता था। परन्तु वह प्राय: अच्छा नहीं होता था। इसी प्रकार विदेशी विशेषज्ञ बड़े-बड़े कारखानों को तथा जटिल यन्त्रों को स्थापित तो कर देते थे परन्तु अप्रशिक्षित देशी श्रमिक उनको भलीभाँति तथा दक्षतापूर्वक नहीं चला पाते थे। ये विशद रूप से बनाये गये कारखाने स्थापित किये गये और उत्साहपूर्ण समारोहों के साथ उनका उद्घाटन किया गया; जैसे, निजनी, नोवगोरोड के स्वचालित (कारों) के कारखाने जिनमें प्रतिवर्ष १४४,००० कारें बनाने की आशा की गयी थी। ये कारखाने तीन मास तक चालू रहने के पश्चात् बन्द कर दिये गये। इसका प्रभाव गम्भीर तथा हतोत्साहित करने वाला हुआ। क्या श्रमिकों को पर्याप्त रूप से दक्ष और योग्य बनाया जा सकता था? क्या सामूहिकीकरण देश के लिये उपयुक्त था। क्या कम से कम यह आवश्यकता से अधिक नहीं किया जा रहा था? बड़े-बड़े औद्योगिक कारखाने स्थापित तो किये जा सकते थे परन्तु क्या वे दक्षता के साथ चलाये भी जा सकते थे?

रूस के नवीन अर्थशास्त्र में विश्वास करने वाले हतोत्साहित नहीं हुए। उन्होंने केवल यह देखा कि उन्होंने जितना सोचा था उससे कहीं अधिक कार्य करना था। जो सफलता प्राप्त हुई थी उससे उत्साहित होकर तथा यह विश्वास करके कि अधिक विचार से यह पद्धति सुधारी तथा पूर्ण बनाई जा सकती है, वे अग्रसर हुए। परन्तु यह देखना शेष रहा कि वे ठीक मार्ग पर चल रहे थे अथवा नहीं। इसके लिये निश्चय ही समय की आवश्यकता होगी। इतने जटिल विषय का समाधान इतनी शीघ्रता से नहीं हो सकता था।

साम्यवादी केवल क्रान्तिकारी प्रकृति के नवीन राजनीतिक तथा आर्थिक

समाज की स्थापना करने के लिये ही कृत संकल्प नहीं थे वरन् उसका लक्ष्य एक नवीन रूप की शिक्षा तथा संस्कृति भी थी। नवीन व्यवस्था के लिए बौद्धिक क्रान्ति भी आवश्यक थी। जारों के अधीन बहुसंख्यक जनता अशिक्षित थी। सम्भवत: संयुक्त राज्य की तुलना में रूस में अष्टमांश बच्चे विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा उच्चतर वर्गों के लिए बहुसंख्यक थी। यह बहुसंख्यक जनता को दी जानी चाहिये और यदि किसी व्यक्ति को इससे वंचित किया जावेगा तो वह भूतपूर्व अधिकार प्राप्त वर्ग का होगा। वास्तव प्रक्रिया उलटी कर दी गयी थी। भविष्य में नगरों में श्रमिकों के बच्चों को और ग्रामीण क्षेत्र में कृषकों के बच्चों को ज्ञानप्राप्ति तथा प्रशिक्षित होने का अधिकार होगा। मध्य वर्गों के बच्चों को यह अधिकार तभी होगा जब पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों और जनमत अनुकूल हो। बॉलशेविक कार्यक्रम के अनुसार तीन वर्ष की आयु से सोलह वर्ष की आयु तक बच्चों की शिक्षा नि:शुल्क, अनिवार्य तथा सार्वभौम होनी थी। यदि वे चाहें तो उच्चतर तथा प्राविधिक शिक्षा भी उन्हीं को दी जावेगी। धनवानों की अपेक्षा निर्धनों के बच्चों को प्राथमिकता दी जावेगी। इस प्रकार यह अनुमान लगाया जाता है कि १९३३ तक रूस में लगभग २२,०००,००० बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान की जा रही थी और आठ से चौदह वर्ष के बीच की आयु वाले ४/५ बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। स्वाभावत: ये विद्यालय बहुत अच्छे बुरे तथा सामान्य थे परन्तु कम से कम प्रत्यक्षत: प्रगति की जा रही थी। जार के शासन की तुलना में सोवियत गणतन्त्र कम से कम तिगुने बच्चों को शिक्षा प्रदान कर रहा था। इन विद्यालयों में समाजवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध कुछ भी नहीं पढ़ाया जा सकता था।

सोवियतें तथा शिक्षा

विश्वविद्यालयों तथा प्राविधिक विद्यालयों में दिये जाने वाले अवसरों (सुविधाओं) में भी अभिवृद्धि हो गयी है।

रूस के अधिकारियों का धर्म के प्रति रवैया अत्यन्त शत्रुतापूर्ण रहा है। साम्यवादी दल आधिकाधिक रूप से नास्तिक है। कोई भी साम्यवादी चर्च में जाकर प्रार्थना नहीं कर सकता है। साम्यवादियों का कहना है कि पुराने कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट धर्म व्यक्तिगत सम्पक्ति सम्पत्ति के सिद्धान्त के ऐसे समर्थक थे जिनका सुधार किया जा सकता है और इसका आशय था धनी व्यक्तियों द्वारा निर्धन व्यक्तियों का दासत्व। लैनिन का विचार था, "धर्म आत्मिक उत्पीड़न का साधन (शक्ति) है। धर्म जनता को चेतनाहीन करने की औषधि (अफीम) है।" यह शब्द समूह आजकल रूस के बहुत से सार्वजनिक भवनों पर लिखा हुआ है। बॉलशेविकों का विश्वास है पुराने धर्मों की शिक्षायें केवल असत्य ही नहीं हैं वरन् वे जनता के लिए निश्चय ही हानिकारक हैं। आर्थोडॉक्स चर्च (सनातन धर्म संस्थाओं) की सम्पत्तियों की जब्ती की उद्घोषणा की गयी। कई चर्चों के भवन विद्यालयों, मनोरंजनशालाओं (क्लब), राष्ट्रीय विचित्र शालाओं में परिगत हो गये और चर्च की भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। धार्मिक प्रार्थनायें तथा उपदेश अब भी दिये जा सकते थे परन्तु भविष्य में वे केवल विशुद्ध धार्मिक होंगे। उनके धार्मिक स्वरूप की परिभाषा इन विरोधी अधिकारियों ने की थी। चर्च का विवाह पर कोई भी नियंत्रण नहीं रहेगा। मृत्यु तथा जन्म के पंजीयन पर, तथा कब्रिस्तानों पर भी उसका नियन्त्रण नहीं रहेगा। इनको नागरिक

साम्यवाद तथा धर्म

विषय घोषित किया गया और वे राज्याधीन रहेंगे। चर्च को व्यवस्थित मर्यादा को चालू रखने का अधिकार नहीं रहा और न वह लोगों का धर्म परिवर्तन करने का प्रयत्न ही कर सकता था। प्रारम्भ में यह घोषित किया गया था कि "धर्म के पक्ष अथवा विपक्ष में प्रचार करने की स्वतन्त्रता की सभी नागरिकों को प्रत्याभूति दी जाती है" परन्तु आगे चलकर धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता को प्रदान करने वाले शब्द संविधान से निकाल दिये गये। नास्तिकवाद व्यवहारतः राज्य का दृढ़ विश्वास हो गया और नास्तिकवाद के अतिरिक्त अन्य सिद्धान्तों के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस प्रकार नास्तिकवादी धर्मों को छोड़कर साम्यवादी शासन सभी नये पुराने धर्मों का शत्रु है।

१९१७ में सत्तारूढ़ होने के पश्चात् बॉलशेविकों द्वारा किये गये परिवर्तनों में से कुछ परिवर्तन अथवा उनके लिये किये प्रयत्न इस प्रकार के हैं। जब रूस ने मित्र राष्ट्रों के साथ छोड़ा था तब संयुक्त राज्य के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध समाप्त हो गये थे, वे १९३३ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा पुनः औपचारिक रूप से स्थापित कर लिये गये। दो वर्ष पश्चात् फ्रांस ने सोवियत राज्य के साथ पारस्परिक सहायता के पंच-वर्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किये। १९३४ में रूस राष्ट्रसंघ में प्रविष्ट हो गया और उसको परिषद में एक स्थायी स्थान दे दिया गया। अभी-अभी जर्मनी तथा जापान उसके दो सबल पड़ौसियों ने अपने को राष्ट्रसंघ का असदस्य घोषित कर दिया था। अस्तु डरकर अथवा डर की कल्पना से उसने सहायता तथा सुरक्षा को उस स्थान पर खोजा जहाँ वे उसको सम्भवतः प्राप्त हो सकते थे।

अध्याय ४६

१९१८ के पश्चात् आस्ट्रिया तथा हंगरी

आस्ट्रिया

१९१८ के पश्चात् आस्ट्रिया

विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप रूस, आस्ट्रिया, हंगरी तथा तुर्की के तीन साम्राज्य नष्ट अथवा भग्न हो गये और एक चौथे साम्राज्य जर्मनी की पराजय हुई तथा उसके चौबीस नरेशों का पतन हो गया।

आस्ट्रिया तथा हंगरी का आज भी अस्तित्व है परन्तु वे दोनों पृथक् राज्य हैं। आस्ट्रिया अपनी भूतपूर्व आकार का एक चौथाई है और हंगरी एक तिहाई है। पराजय ने आस्ट्रिया-हंगरी में चरम उपलब्धि की, शेष की पूर्ति क्रांति ने की। द्वैध राजतन्त्र भूतल से पूर्णत: तिरोहित हो गया और उसके स्थान पर कई उत्तराधिकारी राज्यों का उदय हुआ, इसी नाम से उनको पुकारा जाता था। एक जैकोस्लावाकिया का राज्य था जिसमें उत्तरी आस्ट्रिया तथा उत्तरी हंगरी के स्लैव और उसके उत्तर-पश्चिमी भागों में रहने वाले तीस लाख जर्मन सम्मिलित थे। आस्ट्रिया तथा हंगरी के स्लैव बृहत्तर सर्बिया में सम्मिलित हो गये जो कि द्रुत वेग से बढ़ रहा था और आज के यूगोस्लाविया नामक विस्तृत राज्य में परिवर्तित हो रहा था। आस्ट्रिया के इटालवी निवासी इटली में सम्मिलित हो गये। हंगरी के रूमानवी निवासी रूमानिया में सम्मिलित हो गये और गालीशिया के पोल निवासी पोलैन्ड के गणतन्त्र में सम्मिलित हो गये। अब क्या शेष रहा ? केवल जर्मन भाषी आस्ट्रिया की डची (रियासतें) रह गयीं जो कि आस्ट्रिया के लघु गणतन्त्र में परिणत हो गयीं। हंगरी के मगयरभाषी निवासियों ने अपने को आस्ट्रिया के पूर्णरूप से स्वतन्त्र घोषित कर दिया और वे एक पृथक् तथा अत्यन्त छोटे राज्य में सम्मिलित हो गये। हैप्सबर्ग राज्य का यह विघटन अपने आप तथा द्रुतगति से सम्पन्न हुआ और वह अधिकांश वहाँ के निवासियों ने अपने आप किया था। इन्होंने इस दुर्भाग्य के समय का लाभ

उठाकर अपने को कारावास से मुक्त कर लिया था। उनमें से अधिकांश जनता हैप्सवर्ग राज्य को कारावास समझती थी। पैरिस में की गयी सन्धियों द्वारा उनके कार्य को मान्यता प्रदान की गयी और उसको नियमानुकूल बना दिया गया। हैप्सवर्ग वंश का अन्तिम शासक चार्ल्स था। वह फ्रांसिस जॉसिफ की मृत्यु के पश्चात् १९१६ से सिंहासनासीन था। दो वर्ष से भी कम काल तक राज्य करने के पश्चात् वह स्विटजरलैंड को भाग गया और उस देश में यथावश्यकता कोई भी नया परीक्षण स्वतन्त्रतापूर्वक किया जा सकता था।

आस्ट्रिया का गणतन्त्र

१२ नवम्बर १९१८ को भूतपूर्व संसद के जर्मनभाषी सदस्यों ने आस्ट्रिया के गणतन्त्र की उद्‌घोषणा की। **सेण्ट जर्मन की सन्धि** द्वारा कुछ समय पश्चात् इसको मान्यता प्रदान की गयी तथा इसकी सीमायें निर्धारित कर दी गयीं। भविष्य में आस्ट्रिया में नौ प्रान्त सम्मिलित होंगे अर्थात् वियना, जो कि अब पृथक् प्रान्त बना लिया गया था, निचला आस्ट्रिया, ऊपरी आस्ट्रिया, बर्गेनसैण्ट, वॉरल वर्ग साल्जबर्ग, स्टीरिया, कैरिथिया और टिरॉल। अन्तिम तीन प्रान्तों का आकार उनके युद्ध के पहले के आकार से बहुत कम था। आस्ट्रिया का क्षेत्रफल ११६,००० वर्गमील से घटकर ३२,००० वर्गमील रह गया था। हंगरी, जैकोस्लाविया तथा स्विटजरलैण्ड की भाँति वह भी चारों ओर से स्थल-राज्यों से घिरा रहेगा अर्थात् उसकी सीमा पर समुद्रतट नहीं होगा। उसकी जनसंख्या २५० लाख से घटकर ६५ लाख ही रह गयी थी। उसका समष्टिक रूप पूर्णतः नष्ट हो गया था और वह पूर्णरूप से राष्ट्रीय राज्य हो गया था जिसमें भूतपूर्व साम्राज्य के केवल जर्मन तत्त्व सम्मिलित थे। सभी जर्मन तत्त्व भी सम्मिलित नहीं थे क्योंकि जब सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिये उसके प्रारूप को लेने के हेतु आस्ट्रियायी प्रतिनिधि मण्डल बुलाये जाने पर पैरिस पहुँचा तब उसने देखा कि दक्षिणी टिरॉल इटली में सम्मिलित होना था। इसमें २५०,००० अत्यन्त देश भक्त आस्ट्रियायी जर्मन रहते थे। उसे यह भी पता चला कि जैकों को घृणा करने वाले बोहीमिया के ३,०००,००० जर्मन जैकोस्लावाकिया में सम्मिलित किये जावेंगे; कि भविष्य में इटली का मुक्त* राज्य स्थापित होगा और आस्ट्रिया का अमुक्त* राज्य बनेगा (अर्थात् जिन भागों को इटली दीर्घकाल से प्राप्त करना चाहता था वे उसको मिल जावेंगे और आस्ट्रिया अपने भूतपूर्व भागों (प्रदेशों) से वंचित कर दिया जावेगा)। यह उनकी प्रथम निराशा थी।

आस्ट्रिया को जर्मनी से मिलने से रोक दिया जाय

उनकी दूसरी निराशा यह थी कि उसकी इच्छा के अनुकूल आस्ट्रिया को जर्मन गणतन्त्र का एक भाग बनने से रोक दिया गया क्योंकि नवम्बर १९१८ से यह उद्‌घोषणा कर दी गयी थी कि जर्मन-आस्ट्रिया एक गणतन्त्र होगा और वह जर्मन रैक्स का अभिन्न अंग होना चाहिये अब इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और **'जर्मन आस्ट्रियायी गणतन्त्र'** को 'आस्ट्रिया का गणतन्त्र' कहना होगा। दोनों को अपने एकीकरण (संयोजन) की योजना को त्यागना

---

* मुक्त और अमुक्त क्रमशः redeemed तथा irredenta का भाव व्यक्त करते हैं। ये समानार्थक शब्द नहीं हैं। इनका भाव ऊपर कोष्ठांकित कर दिया गया है।
—अनुवादक

था। इसका कारण यह था कि मित्रराष्ट्र यह नहीं चाहते थे कि युद्ध के पश्चात् का जर्मनी पूर्वापेक्षा बृहत्तर हो और यूरोप में अधिक प्रभुत्वशाली हो। क्या वह पश्चिमी शक्तियों—फ्रांस अथवा इंगलैंड को परास्त करने की अपनी जनसंख्या सम्बन्धी वरिष्ठता को बनाये रहेगा तथा बढ़ा सकेगा? जर्मनी को आलसेस-लॉरीन तथा अपने डैनिश एवं पोलिश प्रान्तों से वंचित होना पड़ेगा परन्तु यदि उसको आस्ट्रिया मिल जावेगा तो पूर्वापेक्षा उसकी जनसंख्या अधिक हो जावेगी और हैमवर्ग तथा ब्रीमैन से प्रायः ऐड्रियाटिक तक सम्पूर्ण केन्द्रीय यूरोप में उसका विस्तार हो जावेगा। वह डैन्यूब तथा उत्तर को बहने वाली अन्य नदियों का स्वामी बन जावेगा। स्ट्रैसवर्ग तथा सोसेन के स्थान पर वियना का साम्राज्यवादी नगर मिलना अविश्वसनीय सौभाग्य की बात समझी जावेगी और जर्मनी इसको सहर्ष स्वीकार कर लेगा। परन्तु इस योजना को पैरिस में मित्रराष्ट्रों ने अविलम्ब आधिकार रूप से अस्वीकार कर दिया। उनका निर्णय यह था कि राष्ट्रसंघ की अनुमति के बिना आस्ट्रिया को जर्मनी से मिलने की आज्ञा नहीं दी जावेगी। परिषद् का निर्णय सर्वसम्मति से होना चाहिए। इस मतदान में फ्रांस भी अनिवार्य रूप से सम्मिलित होगा और स्वभावतः अपने पड़ोसी (जर्मनी) को बढ़ता हुआ देखने की उसकी किंचित् मात्र भी अभिरुचि नहीं थी।

आस्ट्रिया का संविधान

आस्ट्रिया के गणतन्त्र का राजनीतिक स्वरूप उसके नवीन संविधान में वर्णित किया गया था। यह संविधान प्रथम अक्टूबर १९२० को लागू हुआ। इसमें संसद के दो सदनों का उपबन्ध किया गया था। साथ ही २१ वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के स्त्री-पुरुषों को सर्वमताधिकार प्राप्त होना था। दोनों सदन मिलकर गणतन्त्र के राष्ट्रपति को चुनेंगे जिसका कार्यकाल चार वर्ष का होना था और इस बार वह पुनः चुना जा सकता था। यह उपबन्ध आगे चलकर १९२९ में परिवर्तित कर दिया गया और आस्ट्रिया के निर्वाचकों को राष्ट्रपति के निर्वाचन का अधिकार दे दिया गया। पैंतीस वर्ष से अधिक आयु का कोई भी नागरिक वस पद के लिये स्वीकार्य घोषित किया गया। केवल वर्तमान अथवा भूतपूर्व राजवंशों के सदस्य राष्ट्रपति के पद के लिये अनर्ह घोषित किये गये थे। प्रथम राष्ट्रपति जो इस संविधान के अधीन निर्वाचित हुआ डा० माइकेल हेनिश था। यह वकालत करता था ओर भूतपूर्व साम्राज्य में इसने कई पदों पर कार्य किया था। इसने समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र पर बहुत से ग्रन्थ भी लिखे थे।

दिसम्बर १९२० से आस्ट्रिया राष्ट्र संघ का सदस्य रहा था और संघ को ही इस घटे हुए और निर्धन राज्य का वित्तीय एवं आर्थिक पुनर्संस्थापन करना था।

संगठन की समस्या

अगले पन्द्रह वर्षों में जर्मनी के साथ एकीकरण अथवा संगठन का प्रश्न बार-बार उठता रहा। विभिन्न कालों में इसके विभिन्न स्वरूप रहे थे। कभी एक वर्ग तथा कभी दूसरे वर्ग के लोगों ने इसके पक्ष का समर्थन किया। परन्तु यह प्रश्न जनता के मस्तिष्क में सर्वदा बना रहा। १ फरवरी १९२१ में राष्ट्रीय परिषद् ने संघ के समक्ष उसकी स्वीकृति के हेतु प्रार्थना प्रस्तुत करने का विचार किया परन्तु संघ ने सहयोग देना अस्वीकार किया और यदि विधेयक पारित होगा तो उसने अपनी अप्रसन्नता की धमकी थी। अतः यह विषय (यहीं)

समाप्त हो गया अथवा उसने एक नया रूप धारण कर लिया। तब दो प्रान्तों ने **संगठन**[1] के प्रश्न पर सार्वजनिक मतदान किया और बहुमत से इसका समर्थन किया। टिराल में इसके पक्ष में १४५,३०२ तथा विपक्ष में १८०५ और साल्जबर्ग में पक्ष में १०३,००० तथा विपक्ष में ८०० मत पड़े। अन्य प्रान्तों ने भी इसके अनुसरण करने की तयारी की परन्तु यदि यह प्रक्रिया चालू रही तो मित्रराष्ट्रों ने हस्तक्षेप करने की धमकी दी। अस्तु यह बन्द कर दी गयी। यदि जर्मनी का विस्तार अधिक हो गया और वह उत्तरी सागर से इटली तथा बलकानी देशों तक फैल गया तो फ्रांस, इटली और **अल्प मित्र भाव** के राज्यों को संकट की आशंका थी।

कुछ वर्ष पश्चात् यह मामला पुनः उभड़ा। सभी आस्ट्रिया निवासी इसके पक्ष में नहीं थे। कुछ लोग कैथोलिक आस्ट्रिया का प्रमुख रूप से प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी जर्मनी से संगठन अच्छा नहीं समझते थे। अन्य दूसरे व्यक्ति सैनिकवादी प्रशा से **संगठन** पसन्द नहीं करते थे। अन्य दूसरे लोगों को यह आशंका थी कि इस प्रकार के **संगठन** से वियना की स्थिति गौण हो जावेगी। परन्तु ऐसे लोगों की संख्या अधिक थी जो संघ के पक्ष में थे क्योंकि इससे आस्ट्रिया में बनी हुई वस्तुओं के लिये मण्डियाँ मिलने तथा विदेशी नीतियों में सहायता मिलने की आशा थी।

१९२२ तथा १९२३ में स्थिति अधिक अनुकूल नहीं रही क्योंकि तब जर्मनी तथा फ्रांस में संघर्ष छिड़ गया और रूहर में हस्तक्षेप के परिणाम स्वरूप जर्मनी की मुद्रा का पूर्ण पतन हो गया। आस्ट्रिया के जर्मनी के साथ संगठित होने की हानि एक बार पुनः स्पष्ट हो गयी और यह भावना कई वर्ष तक प्रबल रही परन्तु दशक के अंतिम चरण में जब जर्मनी की स्थिति ठीक हो गयी तब यह भावना पुनः जागरित हुई। यह आवर्तक तथा भयानक प्रश्न था। दोनों देशों के राजनीतिज्ञों के परिवर्तनशील उद्देश्यों और दृष्टिकोणों के अनुसार यह प्रश्न कभी पीछे पड़ जाता था और कभी सामने आ जाता था। १९२५ में मैगडबर्ग में जर्मन आस्ट्रियावासियों के सम्मेलन में इस पर विचार-विमर्श हुआ। **एकीकरण** के पक्ष में प्रायः इतने प्रदर्शन हुए कि इटली तथा **अल्प मित्र भाव** के राष्ट्रों को विरोध पत्र के साथ पुनः हस्तक्षेप करना पड़ा। १९२४ की ग्रीष्म ऋतु में स्कूबर्ट की मृत्यु की शताब्दी मनाने के लिये दो सौ सहस्र जर्मन नागरिक आस्ट्रिया गये और वहाँ रहते हुए उन्होंने दोनों देशों के राजनीतिक संघ का समर्थन किया।

परन्तु उसी वर्ष हैनिश के उत्तराधिकारी के रूप में विलियम मिकलास गणतन्त्र का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ और वह इस **संगठन** का विरोधी था। १९३० में चांसलर स्खूबर ने हेग के क्षतिपूर्ति सम्मेलन में भाग लिया।

मिकलास राष्ट्रपति चुना गया

उस समय उसको यह बताया गया कि १९४३ तक आस्ट्रिया से क्षतिपूर्ति के रूप में कोई भी भुगतान नहीं कराया जावेगा। अगले वर्ष यह पुनः उपस्थित हुआ जब जर्मनी तथा आस्ट्रिया ने सीमा शुल्क-संघ स्थापित करने पर विचार किया। यह विश्वास हुआ कि सीमा शुल्क-संघ का अभिप्राय था दोनों देशों के संघ की स्थापना। अतः

---

1. शुद्ध शब्द संघट्टन है। हिन्दी में केवल संघ ही Union का अर्थ देता है और संगठन शब्द Organisation का समानार्थक माना जाने लगा है। —अनु०

फ्रांस, जैकोस्लावाकिया तथा पोलैण्ड ने पुनः विरोध प्रकट किया। उन्होंने आस्ट्रिया-जर्मनी के प्रस्ताव को तीन प्रकार से अवैध बतलाकर उसकी निन्दा की। उन्होंने घोषणा की कि यह वर्साई की सन्धि के उपबन्धों के विरुद्ध था, सेण्ट जर्मेन की सन्धि के उपबन्धों के विरुद्ध था और १९२२ के जिनेवा सन्धिसंलेख (प्रोटोकल) के विरुद्ध था। अन्ततोगत्वा यह विषय राष्ट्रसंघ के समक्ष रखा गया। उसने इसको **विश्व न्यायालय** को सम्मति के लिए भेज दिया क्योंकि यह संधि की व्याख्या का प्रश्न था। उस न्यायालय ने ५ सितंबर १९३१ को आठ के विरुद्ध सात मतों से यह निर्णय किया कि प्रस्तावित कार्यवाही जिनेवा के सन्धि संलेख के अनुसार नहीं थी परन्तु उससे वर्साई की संधि तथा सेण्ट जर्मेन की सन्धि का उल्लंघन नहीं होता था; कि १९४२ में जिनेवा संधि संलेख की समाप्ति पर आस्ट्रिया-जर्मनी के सीमा शुल्क-संघ के मार्ग में कोई भी बाधा नहीं रहेगी परन्तु तब तक ऐसा संघ स्थापित नहीं किया जा सकता है।

१९३२ में फ्रांस, इंगलैण्ड तथा अन्य देशों ने आस्ट्रिया को ४२,०००,००० डालर का ऋण इस शर्त पर देने का वचन दिया कि वह देश जर्मनी के साथ उस कालावधि के भीतर कोई आर्थिक संबंध नहीं स्थापित करेगा। इस ऋण प्रस्ताव का तीव्र विरोध हुआ परन्तु केवल दो मतों के बहुमत से उसका सत्यांकन हो गया। इस प्रकार **संगठन** की संभावना का संभवतः कम से कम बीस वर्ष के लिए स्थगन हो गया।

हिटलरी आन्दोलन के विरुद्ध

परन्तु स्थगन के कई अर्थ होते हैं। इसका यह अभिप्राय भी होता है कि विषय भविष्य के लिए छोड़ा जा रहा है वह शीघ्र ही किसी दूसरे रूप में पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है, कि यह वास्तव में किसी वास्तविक देरी को प्रकट नहीं करता है। हिटलरी आन्दोलन, जो कि अंततः जर्मनी में सफल सिद्ध हो रहा था, आस्ट्रिया, जैकोस्लावाकिया तथा अन्य पड़ौसी देशों में उस समय बढाया जा रहा था। १९३२ में यह चांसलर डौलफस को चुनौती थी जिसने अभी निकट भूतकाल में आस्ट्रिया में सत्ता प्राप्त की थी और जोकि कुछ ही समय पूर्व इस विचार के साथ सहानुभूति रखता था परन्तु अब उसके विरुद्ध हो गया था। अब १९३३ में राष्ट्रपति मिकलास ने डॉलफस को अधिनायकीय शक्तियाँ प्रदान की थीं और उसने अपनी शक्ति को जर्मन चांसलर हिटलर की आग्रहपूर्ण एवं कपटपूर्ण नीति के विरुद्ध प्रयुक्त किया। उसने अविलम्ब आस्ट्रियायी संसद को भंग कर दिया और प्रकाशन तथा एकत्रित होने की स्वतन्त्रा को निलंबित घोषित कर दिया क्योंकि हिटलरवादी उनको अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयुक्त कर रहे थे। उसने उन जर्मन नात्सियों को देश छोड़ने पर विवश कर दिया जो कि आस्ट्रिया में आ गये थे, उसने नात्सियों द्वारा प्रचार के लिए रेडियो का प्रयोग वर्जित कर दिया, उसने नातनी वर्दी पहनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया और अन्त में जून १९३३ में उसने आस्ट्रिया में नात्सीदल को पूर्णतः अवैध घोषित कर दिया। उसने उदघोषणा की कि आस्ट्रिया की इच्छा और वह एक स्वतन्त्र देश रहेगा और संगठन की नीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होगा। उसको एक '**विशेष संदेश**' की पूर्ति करनी थी। उसका कहना था कि वह स्विटजर-लैण्ड की भाँति अपने पैरों पर खड़ा रहेगा। अन्य शक्तियाँ उसको अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकेंगी। यह स्वयं अपने भविष्य का निर्णय करेगा और

उसमें वह अपने हितों पर विचार करेगा तथा दूसरों के हितार्थ उनके इशारों पर नहीं नाचेगा।

डॉल्फस की नीति

इस प्रकार एक लघु राज्य के प्रतिनिधि डॉल्फस तथा यूरोप के एक महानतम राज्य के प्रतिनिधि हिटलर के मध्य संघर्ष था। अतिरिक्त कटुताओं के साथ यह संघर्ष कुछ समय तक चलता रहा। इसमें अन्य शक्तियाँ, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली भी सम्मिलित थीं। इंगलैण्ड तथा फ्रांस को जर्मनी ने बता दिया कि उनको जर्मनी तथा आस्ट्रिया के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था परन्तु इटली को अपेक्षाकृत नम्र आश्वासन मिला कि यदि जर्मनी रोक सका तो वह अप्रिय घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होने देगा। तथापि थियोडर हैबिट ने, जो कि आस्ट्रिया के लिए नात्सी निरीक्षक था, उद्घोषित करना चालू रखा कि आस्ट्रिया की एक मात्र आशा **संगठन** में निहित थी और "जब तक जर्मनी तथा आस्ट्रिया का संगठन नहीं होता है तब तक यूरोप में शांति तथा स्थिरता नहीं रह सकती है।" डॉल्फस ने १९३३ की शरद ऋतु में जो घटना घटित हो सकती थी उसकी आशंका से उस वर्ष की ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा एक पग आगे को बढ़ाया। उसने आस्ट्रिया को पूर्णतः निरंकुशतन्त्र में परिवर्तित कर दिया, सभी तत्कालीन राजनीतिक दलों का दमन कर दिया, 'मातृभूमि के मोर्चा' की स्थापना की और उसने स्वयं आस्ट्रिया के पुनः संगठित मंत्रिमण्डल में केवल चांसलर का पद ही नहीं प्रत्युत चार अन्य मन्त्रियों के पदों को ग्रहण किया। आस्ट्रिया एक व्यक्तिवादी शक्ति बन गया। उसकी नीति का निर्धारण केवल उसका चांसलर करता था परन्तु वह नीति सम्पूर्ण देश के हित के लिए होती थी। डॉल्फस ने सार्वजनिक रूप से घोषित किया कि वह सभी सम्भव उपायों से आस्ट्रिया और जर्मनी के संघटन की प्रत्येक योजना का विरोध करेगा और ऐसा प्रतीत होता था कि ब्रिटेन, फ्रांस तथा इटली ने उस को यह आश्वासन दिया था कि उसके संकल्प को सुदृढ़ समर्थन प्रदान करेंगे।

डाल्फस की हत्या

तथापि शीघ्र ही एक घटना घटी। २५ जुलाई १९३४ को नात्सियों ने शासन के विरुद्ध एक सैनिक क्रान्ति की। उन्होंने बालहॉजप्लाज में शासन के प्रधान कार्यालय पर अधिकार कर लिया। यहाँ पर डॉल्फस अपने अन्य मन्त्रियों से मन्त्रणा कर रहा था। एक नात्सी नायक, ऑटो फ्लानेट, ने गोली दागी और चांसलर को घातक आघात पहुँचाया। उसके घावों पर सामान्य रूप से पट्टियाँ बाँध दी गयीं पर आक्रान्ता नात्सियों ने डाक्टर को बुलाने की आज्ञा नहीं दी और न पादरी को ही बुलाने दिया। उसी दोपहर को डॉल्फस की मृत्यु हो गयी। अन्य मन्त्री कई घन्टों तक बन्दी बने रहे परन्तु अन्त में न्याय मन्त्री शुशनिग की अधीनता में शासन के प्रति निष्ठावान सैनिकों की संख्या अधिक होने के कारण नात्सियों ने आत्म-समर्पण कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् वह डॉल्फस का उत्तराधिकारी बना। कई दिनों तक प्रान्तों में लड़ाई होती रही और बहुत से व्यक्ति मारे गये। सहस्रों नात्सी यूगोस्लाविया भाग गये और बहुत से बन्दी शिविरों में बन्द कर दिये गये। सैनिक क्रान्ति असफल रही। हिलटर ने इससे अपना कोई भी सम्बन्ध नहीं बताया परन्तु चांसलर डॉल्फस की मृत्यु हो चुकी थी। ३१ जुलाई को फ्लानेटा को मृत्यु-दण्ड दिया गया और विद्रोही दल के एक प्रमुख नेता सार्जेण्ट हॉल्वीवर को भी मृत्यु-दण्ड दिया गया।

साथ ही उस हिंसात्मक कार्यवाही में जिन अन्य लोगों का हाथ था उनमें से बहुत-सों को मृत्यु-दण्ड दिया गया। लगभग ४० नात्सियों को आजीवन कारावास दण्ड दिया गया और लगभग सातसौ व्यक्तियों को कुल मिलाकर प्रायः तीन वर्षों का कारावास प्रदान किया गया।

शासन की विजय रही थी। सांविधानिक रूपों के नष्ट करने की प्रक्रिया जो कई मास से आस्ट्रिया में कार्यान्वित हो रही थी अब पूर्णता पर पहुँचा दी गयी। गणतन्त्र नाम हटा दिया गया और भविष्य में आस्ट्रिया पर निरंकुश शासन होगा। परन्तु हैप्सबर्ग वंश को पुनः स्थापित नहीं किया गया। यह घोषित किया गया कि "वह तात्कालिक प्रश्न नहीं" था। इसको अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। अधिक व्यक्ति राजवंश की पुनः स्थापना की माँग नहीं करते थे परन्तु इस बात के कम प्रमाण थे कि यदि इसका प्रयत्न किया गया तो इसका सबल विरोध होगा। डा० स्कुशनिग ने १३ नवम्बर को उद्घोषित किया कि आस्ट्रिया के भावी शासन के स्वरूप का निर्णय केवल वह स्वयं करेगा। कुछ समय के लिए यह मामला यहीं रुका रहा। २७ सितम्बर को ब्रिटिश; फ्रांसीसी तथा इटालवी प्रतिनिधियों ने जिनेवा में अपनी १७ फरवरी की घोषणा को पुनः संयुक्त उदघोषणा में दोहराया यह घोषणा तत्कालीन संधियों के अनुसार आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता तथा अखण्डता बनाये रखने की आवश्यकता से सम्बन्ध रखती थी।

हंगरी

युद्ध की समाप्ति के परवर्ती क्रान्ति के प्रभजन से अन्य पराजित राज्य हंगरी गणतन्त्र के रूप में निसृत हुआ। इसका आस्ट्रिया से कोई भी सम्बन्ध नहीं था इसको भी अपने शत्रुओं से संधि करनी पड़ी। फलस्वरूप
१९२० की **ट्रियानॉन की संधि** हुई। इसको रूमानिया, **युद्ध के पश्चात् हंगरी**
जॅकोस्लावाकिया, यूगोस्लाविया और आस्ट्रिया को महत्त्व-
पूर्ण प्रदेश देने पड़े थे इन प्रदेशों की हानियों के कारण हंगरी केन्द्रीय यूरोप का लघुतम राज्य रह गया था। १२५,००० वर्गमील के क्षेत्रफल के स्थान पर अब इस का क्षेत्रफल ३५,००० वर्गमील रह गया था। लगभग २१० लाख की जनसंख्या के स्थान पर अब इसकी जनसंख्या लगभग ८५ लाख रह गयी थी।

युद्ध के पश्चात् हंगरी का इतिहास अशांतिपूर्ण रहा है। १६ नवम्बर १९१८ को 'जनता के '**गणतंत्र**' के नाम से इसकी घोषणा की गयी और अविलम्ब पुराने शासक वर्गों के हाथ से निकलकर सत्ता लोकतन्त्र के प्रतिनिधियों के हाथ में आ गयी। काउण्ट माइकेल कारोली राष्ट्रपति बना और २२ मार्च १९१९ तक उसका शासन चला। तत्पश्चात् साम्यवादी शासन स्थापित हो गया। कारोली का जन्म एक महान् धनवान् माग्यार वंश में हुआ था परन्तु उग्र राजनीतिक होते हुये भी उसके वर्ग के लोग उसको विश्वासघातक मानते थे और फलतः

काउण्ट माइकेल
कारोली

उसका वर्ग उससे तीव्र घृणा करता था। एक महान् भूमिधर और उच्चवंशीय होते हुए भी वह वर्षों तक कृषकों की मुक्ति का, बड़ी बड़ी रियासतों के विभाजन का, तथा सर्वमताधिकार का समर्थन करता रहा था। इन बातों को अल्पसंख्यक कुलीनतंत्र अत्यधिक घृणित समझता था। उसकी दृष्टि में अब उसने एक अप्रिय विडम्बना और

धारण कर ली अर्थात् उसने अमग्यार राष्ट्रीयताओं (जातियों) को मान्यता प्रदान करने और हंगरी को एक ऐसे संघ में परिणत करने का प्रस्ताव किया जो कि उन राष्ट्रीयताओं को उनके अधिकारों को देने का आश्वासन देगा। उसके साथी कुलीनों ने यह कहकर उसकी निन्दा की वह हृदयहीन उपदेशक, लोकप्रियता के पीछे भागने वाला, सम्मान तथा सिद्धान्तहीन व्यक्ति था जो अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये अपने देश का बलिदान करने को तैयार था। विदेशों को वह उदार विचारों का व्यक्ति प्रतीत हुआ। ये ऐसे विचार थे जिनको हंगरी के हितार्थ बहुत पहले ही अधिकांशत अपना लेना चाहिये था। परन्तु वह ऐसा व्यक्ति नहीं था जो गंभीर परिस्थिति में अपनी पर्याप्त शक्ति प्रदर्शित करता और विक्षोभ के समय में एक नये समाज की नींव डालता और न्यून सफलता के साथ वह शीघ्र ही तिरोहित हो गया। उसके पतन का तात्कालिक कारण यह था कि पैरिस में मित्रराष्ट्रों ने ट्रांसिलवानिया रूमानिया को देने का निर्णय किया। कारोली तथा राष्ट्रीय परिषद अथवा व्यवस्थापिका दोनों ही इसके प्रबल विरोधी थे। अतः कारोली ने पद त्याग दिया।

साम्यवादियों का शासन

कारोली का उत्तराधिकारी बेलाकून हुआ जिसके साथी थे "लाल दल वाले" अथवा साम्यवादी। रूसी शैली की सोवियत पद्धति शीघ्र ही लागू की गयी। यह पद्धति मार्च के अंत से अगस्त १९१९ के प्रथम दिनांक तक ही चल सकी। तथापि इसने हंगरी के इतिहास में एक दुःखद अध्याय का समावेश करा दिया। जून १८८६ में एक यहूदी परिवार में उत्पन्न हुआ था और युद्ध के प्रारम्भ होने के समय वह पत्रकार था। आस्ट्रिया-हंगरी के युद्ध में वह सेना में भर्ती हुआ और १९१५ में उसको रूसियों ने बन्दी बना लिया। रूस में अपने प्रवास काल में वह बॉलशेविकी सिद्धान्तों से अत्यन्त प्रभावित हुआ। अब उसने एक विद्रोह का संगठन किया और फलस्वरूप वह सत्तारूढ़ हो गया। वह अधिकृत रूप से राज्य का अध्यक्ष नहीं बना। पत्थरों की चिनाई करने वाला गारबाई गणतन्त्र का राष्ट्रपति बनाया गया परन्तु कून ने विदेशी विभाग (कार्यालय) पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया और शासन का वास्तविक अधिनायक बन गया। वर्तमान राजनीतिक तथा आर्थिक प्रणाली को समाप्त करने के लिये तथा श्रमिक वर्ग की संस्थापित अधिनायकता के अधीन साम्यवादी प्रणाली को स्थापित करने के लिये कार्यवाही की गयी। सम्पूर्ण व्यक्तिगत सम्पत्ति को राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दिया गया। यदि 'आतंक का राज्य' स्थापित हो जाता, तो परीक्षण सफल रहता और तदनुसार जैम्यूली की अधीनता में 'आतंक सेना' संगठित की गयी। जैम्यूली एक अत्यंत घृणास्पद व्यक्ति था जो कि इस विद्रोह (प्रकंपन) के परिणामस्वरूप नेता बन गया था। यह साम्यवादी शासन असफल रहा परन्तु इसने राष्ट्र के औद्योगिक जीवन को अव्यवस्थित कर दिया जिसके परिणामस्वरूप देश में व्यापक संकट उपस्थित हो गया। बहुत से व्यक्ति बरबाद हो गये, बहुत-सों को प्राणदण्ड दे दिया। इस अत्याचारी शासन का चार मास के पश्चात् पतन हो गया। बेलाकून रूस को भाग गया जैम्यूली ने आत्महत्या कर ली।

इस साम्यवादी प्रयोग की असफलता के पश्चात् तीन मास तक बुडापेस्ट पर रूमानिया की सेना का अधिकार रहा जिसने १९१६-१७ में मेकनसन के

द्वारा जिनके साथ की गयी बुराइयों का प्रतिशोध लेने के लिये आक्रमण किया था। मेकनसन ने उनके देश को लूटा तथा नष्टभ्रष्ट किया था। उसके बदले में रूमानिया ने अपनी सेना हंगरी को लूटने तथा नष्टभ्रष्ट करने एवं रूमानिया को भारी लूट का सामान भेजने के लिए भेजी थी। यह प्रतिशोध-प्रतिक्रिया तीन मास तक चलती रही। पैरिस की मित्रराष्ट्रों की सर्वोच्च परिषद् के कई विरोधों का भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में रूमानिया की सेना पीछे लौट आई और उसके पश्चात् शीघ्र ही प्रतिक्रान्तिवादी सेना का नेतृत्व करते हुए जलसेनाध्यक्ष हॉर्थी ने राजधानी में प्रवेश किया और उसने सोवियत शासन से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को दण्ड देने की तैयारी की। इस प्रकार **लाल आतंक** के पश्चात् **श्वेत आतंक** का आगमन हुआ और कई सौ व्यक्तियों के जीवन का अन्त कर दिया गया। भूतपूर्व शासक वर्गों का नियंत्रण पुनः स्थापित हो गया। हंगरी राजतंत्र उद्घोषित हो गया और मार्च १९२० में हॉर्थी को संरक्षक (रीजेण्ट) निर्वाचित किया गया। इस प्रकार हंगरी के गणतन्त्र की समाप्ति हुई। नरेश चार्ल्स चतुर्थ निश्चय ही निर्वासित की भाँति स्विटजरलैण्ड में रह रहा था। उसने सिंहासन नहीं त्यागा था।

हंगरी के गणतन्त्र का अन्त

बुडा की पहाड़ी की चोटी पर बने हुए विशाल राजप्रासाद में चार्ल्स के न रहने का एक कारण तो यह था कि पैरिस की शक्तियों ने उद्घोषणा की थी कि वे हैप्सवर्ग वंश की पुनः स्थापना को सहन नहीं करेंगे और दूसरा कारण यह था कि जैकोस्लाविया, यूगोस्लाविया और रूमानिया के **लघु मित्रभाव** ने भी अपने उसी प्रकार के दृढ़ निश्चय की अभिव्यंजना की थी। तथापि १९२१ में चार्ल्स ने अपने हंगरी के सिंहासन को पुनः प्राप्त करने के लिये दो प्रयत्न किये, एक अप्रैल में और दूसरा अक्टूबर में। दोनों प्रयत्न असफल हुए और दूसरे प्रयत्न के पश्चात् वह बन्दी बना लिया गया और मैडीराद्वीप को भेज दिया गया। वहाँ ३५ वर्ष की आयु में निमोनिया से अकस्मात् ही उसका देहावसान हो गया। उसने अपने पीछे आठ वर्ष के अपने पुत्र राजकुमार ऑरो को छोड़ा जो कि उसका उत्तराधिकारी तथा सिंहासन का अधिकारी था।

चार्ल्स चतुर्थ की मृत्यु

लघु मित्रभाव की शक्तियों ने चार्ल्स के साम्राज्य को विघटित करने में सहायता दी थी और उसके दुर्भाग्य से वे लाभान्वित हुई थीं। अब वे चार्ल्स की कार्यवाहियों के कारण भयभीत एवं आशंकित हो गयी थीं और उनकी पुनरावृत्ति को रोकना चाहतीं थीं। उन्होंने यह माँग की कि हैप्सबर्ग वंश को स्थायी रूप से हंगरी सिंहासन से वंचित कर दिया जावे और उन्होंने हंगरी की **राष्ट्रीय सभा** से इस आशय की विधि पारित करने के लिए कहा। भविष्य में मित्रराष्ट्रों की अनुमति के बिना हंगरी के सिंहासन के लिये निर्वाचन नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार यह देश अब भी राजतंत्र तो रहा, तथापि अनिश्चित काल तक कोई राजा निर्वाचित नहीं किया जा सकता था। संरक्षक हो सकता था परन्तु राजा नहीं हो सकता था। यही परिस्थिति बनी रही।

हंगरी राजतंत्र रहा

जिस समय ये अशांति उत्पन्न करने वाली घटनायें हो रही थीं उसी समय

काउण्ट स्टीफेन बेथलेन ने सत्ता अपने हाथ में ली। वह १९२१ के अप्रैल मास में प्रधानमन्त्री बना और अगस्त १९३१ तक वह इस पद पर रहा। इतने दीर्घकाल तक युद्ध के परवर्ती युग में यूरोप में कोई भी अन्य राजनीतिज्ञ सत्तारूढ़ नहीं रहा था। एक दशक से अधिक काल तक वह हंगरी का वास्तविक शासक रहा। वह ट्रांसिलवानिया के एक धनाढ्य परिवार में १८७४ में उत्पन्न हुआ था परन्तु युद्ध के फलस्वरूप जब वह रूमानिया को हस्तांतरित कर दिया गया तब उसको दोनों देशों में से एक देश को चुनना पड़ा। उसने हंगरी को चुना और फलत: उसकी ट्रांसिलवानिया की सम्पत्ति उसके हाथ से निकल गयी और वह अपेक्षाकृत निर्धन व्यक्ति हो गया। प्रधानमन्त्री के रूप में उसकी नीतियाँ प्राय: मध्यमार्गीय तथा बुद्धिमत्तापूर्ण रहीं और उसने उसके देश को राजनीतिक लाभ हुए तथा उसका आर्थिक पुन: संस्थापन हुआ। (किन्तु) उसको कठिन कार्य करना था। उदाहरणत: १९२४ में हंगरी को राष्ट्रसंघ से वित्तीय सहायता का अनुरोध करना पड़ा। राष्ट्रसंघ ने बोस्टन के जेरैमिया स्मिथ को अपना अभिकर्त्ता (एजेण्ट) नियुक्त किया। उसने अपना कार्य इतनी अच्छी तरह से किया कि प्रत्याशित संभावना से डेढ़ वर्ष पूर्व ही संतुलित आय-व्यय ब्यौरा (बजट) बनाने में सफलता मिल गयी। स्मिथ एक लोकप्रिय तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यक्ति, प्रसन्न चित्त एवं सहायता देने वाला व्यक्ति था। उसने त्यागपत्र दे दिया और वह अमरीका को लौट गया। उसने जाने के पूर्व हंगरी के निर्धनों को अपना १००,००० डालर का वेतन दान कर दिया था।

काउण्ट स्टीफेन बेथलेन का प्रधान मंत्रित्व

वित्तीय पुनर्स्थापना की अपेक्षा आर्थिक पुनर्निर्माण का कार्य कठिन था क्योंकि ट्रायनॉन की संधि के अनुसार हंगरी अपने दो तिहाई भू-क्षेत्र तथा $\frac{3}{5}$ जनसंख्या से वंचित हो गया था। उसका समुद्र से सम्पर्क नहीं रहा था। हंगरी प्रमुख रूप से कृषि प्रधान देश है। इसकी ४०% से अधिक भूमि पर कृषि की जाती है तथापि इसकी भूमि व्यवस्था साधारण जनता की अपेक्षा कुलीनों के लाभ के लिये विशेष रूप से की गयी थी। हंगरी में कुछ थोड़े से व्यक्तियों का भूमि पर एकाधिकार है। इस कृषि कार्य को करने वाली जनसंख्या का एक बड़ा बहुसंख्यक वर्ग स्वयं भूमि का स्वामी नहीं है प्रत्युत वह कुछ थोड़े से कुलीन भूस्वामियों (जमीदारों) के हितार्थ श्रमिक कार्य करता है। कई शताब्दियों से यही दशा रहीं है और अब भी वैसी ही दशा है। १९३० में देश की कृषि योग्य भूमि के तृतीयांश पर केवल लगभग १५०० व्यक्तियों का स्वामित्व था जो कि अब तक अपना प्रभुत्व जमाये रहे हैं और भविष्य में जमाये रखना चाहते हैं यद्यपि इस समय एक **लघु कृषक दल** है जोकि भूमि के स्वामित्व को कृषकों में विभक्त कराना चाहता है और बड़ी-बड़ी जमीदारियों को समाप्त कराना चाहता है तथापि इस बात के प्रमाण बहुत कम उपलब्ध हैं कि यह दल सफल हो सकेगा। यूरोप के अन्य किसी भी देश की अपेक्षा हंगरी की भूमि वितरण व्यवस्था अधिक मध्ययुगीन, एकाधिकारवादी, अधिक असीमित है। अस्तु छोटे-छोटे भागों में भूमि को विभक्त करने की लोकप्रिय माँग के सामने झुकने वाला यह अनिवार्यत: अन्तिम देश ही नहीं होगा वरण यदि कभी भी इसने इस माँग को स्वीकार भी किया तो भी वह इसको दीर्घकाल के पश्चात् ही मानेगा। ऐसा प्रतीत हो रहा है युद्ध के पूर्व जिनके हाथों में हंगरी का शासन था उन्हीं के हाथों

आर्थिक समस्यायें

में वह युद्ध के पश्चात् भी बना रहा है और जहाँ तक विचार किया जा सकता है वहाँ तक संभवतः यह उन्ही के हाथों अनिश्चित काल तक बना रहेगा। हंगरी के १५ लाख मग्यार रूमानिया के अधीन हो गये, लगभग दस लाख जैकोस्लावाकिया में चले गये और पाँच सौ सहस्र युगोस्लाविया ने ले लिये। इन लाखों मग्यारों की वापिसी की समस्या उस देश के शासकों के लिये प्रत्यक्षतः महत्त्वपूर्ण समस्या है। उस देश के शासकों के विचार से हंगरी की भूमि का मग्यार जनता में विभाजन करने की अधिक प्रबल माँग नहीं है और वह विभाजन अपेक्षाकृति अधिक सफल नहीं रहेगा।

१९३१ में काउण्ट बेथलेन का प्रधान मन्त्रित्व समाप्त हो गया। उत्तराधिकारी काउण्ट जुलियस कारोली हुआ। वह इस पद पर लगभग एक वर्ष तक रहा। इसके पश्चात् जो व्यक्ति चुना गया वह जनरल जुलियस गोम्बोज था जोकि जल सेनाध्यक्ष हॉर्थी का अंतरंग मित्र था। उसी ने उसको संरक्षक बनाने में सहायता की थी। इसी के कारण १९२१ में चार्ल्स हंगरी के सिंहासन पर अधिकार नहीं कर सका था। वह उन संधियों के संशोधन में विश्वास करता था जो कि युद्ध की समाप्ति पर उसके देश पर थोप दी गयी थीं परन्तु १९३३ में वह निश्चित रूप से राजतन्त्र की पुनर्स्थापना के विरुद्ध था जिसके लिये राजकुमार ऑटो के मित्र उसकी ओर से अनुरोध कर रहे थे। उसने उद्घोषित किया कि इससे किसी भी प्रकार से देश की सेवा नहीं होगी। उसके मत से हंगरी के आर्थिक उत्थान के लिये उन अप्रिय संधियों के संशोधन की आवश्यकता थी जो युद्ध की समाप्ति पर की गयी थीं परन्तु यह संशोधन शांतिपूर्ण उपायों से ही कराया जा सकता था। यहीं पर यह मामला रुका रहा।

काउण्ट जुलियस
गोंबोज

अध्याय ४७

जैकोस्लावाकिया

हमने अभी आस्ट्रिया-हंगरी के विषय में विचार किया है जिसने पराजय के विनाशकारी अथवा क्रांतिकारी परिणामों की अनुभूति की। परन्तु युद्ध उनके लिये विनाशकारी था तथा दूसरों के लिये रचनात्मक था।

जैकोस्लावाकिया का गणतन्त्र

केन्द्रीय शक्तियों के पतन के परिणामस्वरूप तीन महत्त्वपूर्ण राज्यों का उदय हुआ—जैकोस्लावाकिया, पोलैण्ड और यूगोस्लावाकिया। भविष्य में इन पर विचार करना होगा। तीनों में स्लाविक जाति के लोग रहते थे जिन पर दीर्घकाल से (दूसरों का) शासन अथवा नियंत्रण चला आ रहा था। लाखों स्लैवों के लिये विश्वयुद्ध मुक्ति का युद्ध सिद्ध हुआ। इन वर्गों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा भावी उन्नति की आशा दिलाने वाला जैकोस्लावाकिया का गणतन्त्र था और उसके विषय में हमको सबसे कम ज्ञान है। इसका नाम तक नया था। दीर्घकाल तक मानव बोहीमिया के राज्य से परिचित रहा था। उसे उसकी भौगोलिक स्थिति तथा इतिहास का ज्ञान था। इस देश को जब एक बार पुनः उसकी स्वतन्त्रता प्रदान करने का अवसर आया जिसका इसने दीर्घकाल तक उपभोग किया था और जिससे यह चार शताब्दी पूर्व ही वंचित हुआ तब इसका यह ऐतिहासिक तथा प्रसिद्ध नाम क्यों अक्षुण्ण नहीं रखा गया? यह नाम इसलिये नहीं रखा गया कि नवीन गणतन्त्र भूतपूर्व बोहीमिया का पुनर्भाव मात्र नहीं था प्रत्युत वह उससे अति भिन्न था। इस राज्य का बृहत्तर भाग बोहीमिया से बनना था परन्तु उससे सम्पूर्ण राज्य का निर्माण नहीं होना था। इससे उत्तरी हंगरी का एक प्रदेश स्लावाकिया मिलाया जावेगा जिसको मग्यारों ने दसवीं शताब्दी में जीता था और तब से उस पर उसी प्रकार आधिपत्य बनाये हुए थे जिस प्रकार १५२६ से बोहीमिया पर हैप्सवर्ग वंश का रहा था। एक सहस्र वर्ष में भी वेहीमिया के जैकों और हंगरी के स्लावकों में ऐक्य स्थापित नहीं हो सकता था तथापि वे सहोदरा प्रजातियाँ थीं। वे एक ही भाषा को परिवर्तनों के साथ वोलती थीं। स्लाविक परिवार की इन दोनों प्रशाखाओं ने विश्व युद्ध में अपनी मुक्ति के अवसर के दर्शन किये—एक ने आस्ट्रियावासियों के नियंत्रण से तथा दूसरे ने मग्यारों के नियंत्रण से।

परन्तु प्रत्येक ने यह अनुभव किया कि वह एक दूसरे के बिना जनसंख्या की दृष्टि से इतना दुर्बल रहेगा और भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से आक्रमण के लिये इतना खुला रहेगा कि यदि वह स्वतन्त्र भी हो जावे तो भी अपनी स्वतन्त्रता को अधिक समय तक नहीं बनाये रख सकेगा। अस्तु दोनों का परस्पर सम्मिलन दोनों के लिये आवश्यक था। अत्यन्त स्पष्ट रूप की स्वार्थपरता ने उनके संघ को अभिप्रेरित किया और वह उसको बनाये रखने के लिये सबलतम शक्ति सिद्ध होगी। वह सम्भवतः इन दोनों प्रजातियों के संघर्ष को रोकने में समर्थ रहेगी जो परस्पर सम्बन्धित तो हैं किन्तु उनके इतिहास भिन्न रहे हैं और विभिन्न निर्माणकारी प्रभावों के अधीन रहे हैं।

जैकोस्लावाकिया की सीमायें

इस नये राज्य की सीमायें वर्साई, सेण्ट जर्मन तथा ट्रियानॉन की संधियों द्वारा निर्धारित की गयी थीं। इस प्रकार निर्मित जैकोस्लाविक गणतन्त्र की जनसंख्या लगभग १४,०००,००० तथा क्षेत्रफल न्यूयार्क के राज्य अथवा इंगलैंड और वेल्स के बराबर था। यह पश्चिम से पूर्व लगभग छह सौ मील लम्बा और इसकी अधिकतम चौड़ाई लगभग १८० मील और न्यूनतम चौड़ाई कदाचित ५० मील या कुछ कम है। भूतपूर्व आस्ट्रिया के समान जिसका कि यह एक उत्तराधिकारी है, जैकोस्लावाकिया भी बहुभाषी राज्य है। इस १४० लाख जनसंख्या वाले देश के ३५% निवासी न जैक हैं न स्लॉवक हैं। इनमें से लगभग ३० लाख जर्मन हैं, लगभग ७५०,००० स्लॉवाकिया में मग्यार हैं और लगभग पाँच लाख रूथैनी अथवा लघु रूसी हैं। इस प्रकार प्रारम्भ से ही शासन के क्षेत्र की एक सर्वाधिक विवादग्रस्त एवं कठिन समस्या इसके सामने रही अर्थात् विभिन्न प्रजातिक तथा विभिन्न भाषा-भाषी निवासियों को एक राष्ट्रमण्डल के निर्माण के हेतु प्रेमपूर्वक सहयोग करने के लिये तैयार करने की समस्या थी और इन प्रजातियों पर किये गये अथवा इनके द्वारा सहन किये गये अत्याचारों का भिन्न इतिहास था। आस्ट्रिया इस समस्या का समाधान नहीं कर सका था और उसका पतन हो गया था यह पतन कुछ अंश में उसी असफलता के कारण था। क्या अपने पूर्वाधिकार की अपेक्षा जैकोस्लावाकिया अपनी प्रणाली अधिक बुद्धिमत्ता से लागू करेगा तथा अपनी सफलता पर उसको अधिक प्रसन्नता होगी अथवा यही समस्या बनी रहेगी जिसके फलस्वरूप कटु प्रजातीय तथा राष्ट्रीय घृणाओं एवं प्रतिस्पर्धाओं की परिसमाप्ति उचित अवसर पर प्रकंपनों और पतन में होगी ?

जैकोस्लावाकिया का संविधान

जैकोस्लावाकिया के संविधान पर २९ फरवरी १९२० अंकित है। इस पर फ्रांसीसी तथा अमरीकी उदाहरणों का प्रभाव स्पष्टरूप से परिलक्षित होता है। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में शक्तियों के विभाजन के सिद्धान्त को लागू किया गया है। शासन के अंग ये हैं : राष्ट्रपति, द्विसदनात्मक संसद जिनमें एक सीनेट है और दूसरा प्रतिनिधि-सदन है। प्रत्येक सदन के दो तिहाई सदस्यों के कुल बहुमत से संविधान संशोधित किया जा सकता है।

दोनों सदनों के राष्ट्रीय सभा के रूप में संयुक्त अधिवेशन द्वारा इस गणतन्त्र का राष्ट्रपति सात वर्ष के लिये निर्वाचित किया जाता है। वह दुबारा पुनः निर्वाचित किया जा सकता है परन्तु जब तक कम से कम सात वर्ष समाप्त न हो जावें तब तक इस पद के लिये वही व्यक्ति तीसरी बार नहीं चुना जा सकता है। यह

प्रतिबन्ध प्रथम राष्ट्रपति मासारिक पर लागू नहीं किया गया था। उनके लिये एक विशेष अपवाद रखा गया था क्योंकि वहाँ के सभी लोग सामान्यत: उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। वास्तव में १९३५ में मासारिक तीसरी बार चुना गया था तथापि उसने शीघ्र ही त्यागपत्र दे दिया और बीन्स उसका उत्तराधिकारी हुआ।

प्रतिनिधि सदन में सात वर्ष के लिये निर्वाचित होने वाले ३०० सदस्य हैं जिनको २१ वर्ष से अधिक आयु के सभी स्त्री-पुरुष चुनते हैं। सीनेट में १५० सदस्य हैं जोकि २६ वर्ष से अधिक आयु के सभी मतदाताओं द्वारा आठ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। मन्त्रिमण्डल प्रत्यक्षत: **सदन** के प्रति उत्तरदायी है जिसको सीनेट के **निषेधाधिकार** के विरुद्ध भी विधियाँ पारित करने की शक्ति प्राप्त है। सदन मन्त्रिमण्डल को अविश्वास के प्रस्ताव को पारित करके पदत्याग के लिये विवश करने की शक्ति रखता है स्त्रियों को पुरुषों के समान ही मतदान करने का तथा दोनों में किसी भी सदन के लिये निर्वाचित होने का अधिकार है। सर्वमताधिकार का अस्तित्व है और मतदान केवल प्रत्यक्ष तथा गुप्त रूप से (गूढ़शलाका द्वारा) ही नहीं होता है वरन् वह अनिवार्य भी है।

विधियों की सांविधानिकता का निर्णय **सांविधानिक न्यायालय** करता है। वहाँ पर यह उसी प्रकार कार्य करता है जिस प्रकार संयुक्त राज्य में **सर्वोच्च न्यायालय** कार्य करता है।

नये शासन ने जो प्रथमत: कार्य किये उनमें से एक कार्य कृषकों की दशा को सुधारने की इच्छा से किया गया था। इसने प्रचलित भूमि-व्यवस्था को अत्यधिक परिवर्तित कर दिया। यह व्यवस्था **धर्म-सुधार काल** से चली आ रही थी और उस आन्दोलन के विजेताओं को लाभान्वित करने के उद्देश्य से स्थापित की गयी थी। बोहिमिया की भूमि बोहिमिया वालों की थी जोकि उस धार्मिक विवाद में प्रोटेस्टेण्ट बन गये थे। सम्राट् फर्डीनैण्ड ने अन्त में उनको (सनातन) चर्च की अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया था और उसने उनकी भूमि को उनसे छीनकर तथा उसकी बड़ी-बड़ी रियासतें (सम्पदाओं) के रूप में जर्मनों को देकर उन्हें दण्डित करने की कार्यवाही प्रारम्भ की। तब से भूमि पर प्राय: एकाधिकार रहा था। बोहिमिया के दो प्रतिशत भूस्वामियों के अधिकार में भूमि का एक चतुर्थांश था। यह मोराविया के भूस्वामियों से एक प्रतिशत कम थी जिनके पास लगभग एक तिहाई भूमि थी और स्लावाकिया की लगभग आधी भूमि एक सहस्र व्यक्तियों के अधिकार में थी। भूमि-व्यवस्था अधिकांश एकाधिकार रूप की थी। उस समय की गई इस महान् ऐतिहासिक भूल को ठीक करने के लिये, जिसका तब से कटुता के साथ विरोध किया जा रहा था, एक अत्यन्त परिवर्तनकारी विधि बनाई गयी। सम्पत्ति-हरण के पक्ष में एक विधि पारित की गयी। जिसके अनुसार ३७५ एकड़ का उपजाऊ तथा ६२५ एकड़ की अन्य प्रकार की भूसम्पदा जब्त की जा सकती थी और इस सीमा से अधिक सभी भूमि छोटी-छोटी भू-सम्पदाओं में विभाजित करके कृषकों में वितरित की जा सकती है। ये भू-सम्पदायें पन्द्रह एकड़ से पच्चीस एकड़ तक की होंगी परन्तु कुछ दशाओं में उनकी अधिकतम सीमा साढ़े सैंतीस एकड़ हो सकती है। इस हेतु कुछ प्रतिकर भी उपबंधित किया गया था। निर्धारित राशि का ५% भाग कृषक को देना था शेष के लिये राज्य ऋण देगा। १९२६ तक २,०००,००० एकड़ भूमि छोटी-छोटी भू-सम्पदाओं में विभाजित कर दी गयी और पाँच लाख से अधिक

कृषक वास्तविक भूस्वामी वन गये थे। इसमें कोई आश्चर्य की वात नहीं थी कि मासारिक ने व्यवस्थापिका के इस कार्य को उस काल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य उद्घोषित किया।

कोई आश्चर्य नहीं है कि (वोहिमिया के) वड़े-वड़े भूस्वामियों की सम्पदा के हरण से रोमन कैथोलिक चर्च के अधिकारी अप्रसन्न हुए जो कि सम्पूर्ण देश की वहुत सी वड़ी-वड़ी सम्पदाओं के स्वामी थे और जिन्होंने दीर्घकाल तक अपने पद तथा प्रभाव को हैप्सवर्ग वंश के समर्थन के हेतु प्रयोग किया था। चच के उच्चाधिकारी (प्रीलेट) दीर्घकाल से आस्ट्रिया के राजवंश के उत्साही मित्र रहे थे।
जिस लोक-अप्रियता ने उस राजवंश को सत्ताहीन कर दिया **कैथोलिकों की अभिवृत्ति** था उसका कटु अनुभव अव इन धर्माधिकारियों को भी होने
लगा। कुछ धर्मक्रियाओं में जैकभाषा के स्थान पर जर्मन भाषा का प्रयोग करते रहे थे। १९२० में वहुत से वोहिमिया के कैथोलिक अलग हो गये और उन्होंने जैकोस्लाविक राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की थी। यह रोमन कैथोलिक चर्च से भिन्न था और पोप (के अधिकार) को अस्वीकार करता था, धर्माचारियों के अविवाहित रहने का विरोध करता था, और अपनी धार्मिक क्रियाओं में जैक भाषा के प्रयोग का आग्रह करता था। १९२१ में इन धर्म-विरोधियों की संख्या पाँच लाख थी और तीन वर्ष पश्चात् दस लाख से अधिक हो गयी और वहुत से व्यक्तियों की यह आशा थी कि यह भविष्य में और भी अधिक वढ़ जावेगी। संघर्ष के अन्य कारण भी थे। स्लावाकिया में शिक्षा का प्रवन्ध धर्माधिकारी करते थे। अव राज्य अधिक संख्या में उदारतापूर्वक धर्मनिरपेक्ष विद्यालय स्थापित कर रहा था। इस कारण कैथोलिक धर्माधिकारी अप्रसन्न हो रहे थे। साथ ही जैकोस्लावाकिया के धार्मिक जिले राष्ट्रीय सीमाओं से भिन्न थे। जैकोस्लावाकिया निवासियों का विचार था कि उनको इस वात पर सहमत हो जाना चाहिये कि सभी विशपों के पद जैको-स्लावकों के अधीन होंगे, जर्मन प्रीलेटों[1] के अधीन नहीं।

इन तथा अन्य सम्वन्धित विषयों पर कई वर्षों तक विवाद होता रहा और जव शासन ने ६ जुलाई को राष्ट्रीय अवकाश तय किया तव दोनों दलों का सम्वन्ध टूट गया। इसी दिनांक को १४१५ में वोहिमिया निवासी प्रीलेट जॉनहस को पोप के अधिकारियों की अनुमति से जीवित जला दिया गया था क्योंकि उसके कुछ विचारों को चर्च ने अमान्य ठहराया था। उस दिन से इसे राष्ट्रीय
वीर माना जाता था और अव वह समय आ गया था जव **पोप के साथ समझौता** कि उसका देश उसका सम्मान अत्यन्त गम्भीर तथा
प्रेरणादायक रीति से करने के लिए कृत संकल्प था। परन्तु जैकोस्लावाकिया के नये राज्य के इस निर्णय का धार्मिक अधिकारियों ने विरोध किया। यह निर्णय अपने सवसे अच्छे राष्ट्रीय वीर को स्थायी रूप से हार्दिक मान्यता प्रदर्शन करने के लिए किया गया था। धर्माधिकारियों ने इस कार्यवाही को चर्च का अपमान घोषित किया और प्राग[2] से अपने प्रतिनिधियों को वापस वुला लिया।

---

1. प्रीलेट धर्माधिकारी होता है। वह विशप के समकक्ष अथवा उससे ऊँची श्रेणी का होता है।
2. पुराना उच्चारण प्रेग भी प्रचलित है।

इस पर प्राग के अधिकारियों ने रोम से अपने प्रतिनिधि वापस बुला लिये। लगभग तीन वर्ष तक वैर-भाव बना रहा। तथापि, अन्त में १९२८ में लम्बी बातचीत के पश्चात् एक समझौता हो गया और पारस्परिक मनोमालिन्य समाप्त हो गया। यह निश्चय हुआ कि भविष्य में जैकोस्लावाकिया के धार्मिक जिलों की सीमायें गणतन्त्र की सीमा के अनुसार होंगी, कि कोई भी धार्मिक जिला किसी भी विदेशी प्रीलेट (धर्माधिकारी) के अधीन नहीं होगा, किन्तु इस प्रकार के सभी भागों पर जैकोस्लावक अधिकारियों की अध्यक्षता होगी और ऐसे सभी बिशपों को राज्यों के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी होगी; कि राज्य पादरियों का वेतन देता रहेगा; और कि कुछ धार्मिक कार्यों के लिए देशीय भाषा प्रयोग की जावेगी। इस समझौते के पश्चात् १९२९ में पोप ने राष्ट्रपति मासारिक को सेक्रेड टूम्ब के आर्डर का ग्रांड क्रॉस[1] प्रदान किया। दोनों विरोधी दलों का मनोमालिन्य अन्त में दूर हो गया। प्रारम्भ में यह मनोमालिन्य अत्यन्त उग्र प्रतीत होता था।

प्रजातीय समस्यायें

जैकोस्लावाकिया में कई प्रजातियाँ निवास करती हैं। जैक और स्लॉवकों का बहुमत है परन्तु गणतन्त्र में बहुत से जर्मन, मग्यार और रूथैनियन भी रहते हैं। पोल और यहूदी भी हैं। १९२० के संविधान ने विधि की दृष्टि में प्रजाति, भाषा और धर्म के मामलों में इन सबको समान घोषित कर दिया है। परवर्ती विधान का आधार यह समानता ही रही है और ऐसा प्रतीत होता है कि समग्ररूप में जनता को इसने संतोष प्रदान किया है, उत्तरी तथा पश्चिमी सीमा के सहारे महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक जर्मन निवास करते हैं वे अपना सम्बन्ध अपने प्रजाति के भाइयों से जर्मनी अथवा आस्ट्रिया में बनाये रखना चाहते थे। उन्होंने प्रारम्भ से जैकोस्लावाकिया के अन्तर्गत जाने का विरोध किया और वे अलग रहे। परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् उन्होंने विरोध करना बन्द कर दिया, वे मन्त्रिमण्डल के सदस्य बने और १९२७ में राष्ट्रपति मासारिक के पुनर्निर्वाचन के लिए उनमें से तीन चौथाई ने मतदान किया। १९२० में उनमें से किसी ने भी इसका समर्थन नहीं किया था। कभी-कभी प्रत्यक्षत: रूथेनिया में जैकों तथा रूथेनिया निवासियों के मध्य और स्लॉवाकिया में जैकों तथा स्लॉवाकों में संघर्ष रहा है परन्तु यह दीर्घकाल तक नहीं चला है और जैकों द्वारा किये उदार व्यवहार के कारण वह तिरोहित हो गया प्रतीत होता है। जो प्रजातियाँ इस संयुक्त राज्य में रहती हैं उनमें परस्पर कई महत्त्वपूर्ण भिन्नतायें हैं। जैक सुशिक्षित हैं और कुछ-कुछ समाजवादी हैं। उनका धार्मिक दृष्टिकोण प्राय: अनीश्वरवादी हो जाता है। स्लॉवकों को कम शिक्षा मिली है। वे अपेक्षाकृत अधिक अशिक्षित हैं और वे रोमन कैथोलिक बने रहे हैं। पूर्वी प्रांत के लघु रूसियों अथवा रूथेनिया निवासियों ने केन्द्रीय शासन के कई कार्यों के विरुद्ध सबल विरोध प्रदर्शित किया है परन्तु पर्याप्त स्वशासन प्राप्त करने के पश्चात् वे सम्पन्न रूप से सन्तुष्ट दिखाई देते हैं। यह प्रांत कॉनेक्टीकट के समान विस्तृत है और यह पैरिस की शक्तियों द्वारा इस गणतन्त्र से मिला दिया गया था जिससे दक्षिण की ओर जैको-स्लॉवकों तथा रूमानिया वासियों के साथ उनका पार्थक्य पूरा हो जाता है। भिन्नतायें

---

1. एक धार्मिक उपाधि। Sacred of Tomb=पवित्र समाधि, Order=श्रेणी, Grand Cross=भव्य पदक।

प्रत्यक्ष हैं परन्तु वे कम होती जा रही हैं क्योंकि जो प्रदेश अपने को वास्तव में अथवा काल्पनिक रूप में प्रभावशाली जैकों की अपेक्षा हीनता तथा अपेक्षाकृत कम संतोप-जनक स्थिति में समझते थे उनके साथ यह गणतन्त्र उदार तथा सूझवूझ पूर्ण नीति का अनुसरण करता है।

परन्तु जैकोस्लॉवाकिया की सीमाओं में कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता है। विशेष रूप से उत्तर की वोहिमिया में उनके कारण संकट उत्पन्न हो सकता है। ज्योंही जैकों के सम्बन्ध स्लॉवकों और रूथेनियों से अच्छे हुए त्योंही जर्मनी के हिटलर के दल से कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं। इस दल ने १९३३ में जर्मनी पर नियंत्रण स्थापित कर लिया था और उसने अखिल जर्मनी नीति को दक्षिणस्थ पड़ोसी जैकोस्लॉ-वाकिया और आस्ट्रिया पर लागू करने का प्रयत्न किया। उसका उद्देश्य सभी स्थानों के जर्मनों को एक ही झण्डे के नीचे संगठित करना था। जैकोस्कॉवाकिया भयभीत था और उसने हिटलरवादियों के प्रचार को रोकने के लिये गणतन्त्रके लिये रेडियो के प्रयोग को सीमित करने और अपनी सीमा में जर्मनी तथा आस्ट्रिया के समाचार पत्रों के प्रसार को प्रतिवन्धित करने का प्रयत्न किया। परन्तु यह संकट ऐसा था जिस पर भली-भाँति दृष्टि रखनी थी और यदि यह लगातार संकट बढ़ता गया तो दोनों साथ-साथ वसने वाले राष्ट्रों में सम्भवतः गम्भीर संघर्ष हो जावेगा। १९३३ में वोहिमिया के नात्सी दल ने अपने विघटन की उद्घोषणा कर दी। उसको डर था कि शासन उसको अवैध घोषित कर देगा।

वृक्ष का औचित्य उसके फलों से सिद्ध होता है। अव तक इस नये राज्य ने वहुत अच्छा कार्य किया है। घरेलू तथा विदेशी मामलों में उसने बुद्धिमत्ता तथा सत-र्कता से कार्य किया है। युद्ध से उत्पन्न तथा युद्ध को समाप्त करने वाली संधियों द्वारा निर्धारित नई यूरोपीय व्यवस्था को सुदृढ़ करने का सिद्धान्त
इसकी विदेशी नीति का अनिवार्य आधार रहा है। मित्र जैकोस्लॉवाकिया की राष्ट्रों की विजय के कारण ही इसका अस्तित्व हुआ। अतः विदेश नीति
इसका अस्तित्व संभवतः तभी तक वना रहेगा जव तक
इसका निर्धारण करने वाली संधियों का पालन होगा। अस्तु जैकोस्लॉवाकिया ऐसे लोगों (राज्यों) का शत्रु प्रतीत होगा जो इसके अस्तित्व के कारण भूत अभिलेखों (संधियों) को परिवर्तित अथवा नष्ट करेंगे। लघु मित्र भाव के सदस्य के रूप में वह हंगरी के सिंहासन पर हैप्सवर्ग के पुनः प्रतिष्ठित होने को रोकने के लिये वचनवद्ध है। क्योंकि एक वार पुनः सिंहासनासीन होते ही वह वंश सभवतः अपने खोये हुए देशों को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता है। इस प्रकार संभवतः जैकोस्लॉवाकिया उन राज्यों के साथ सहयोग करने के लिये सदा तैयार रहेगा जो युद्ध के परवर्ती युग को इन संधियों का पालन करना चाहते हैं और वह उनका विरोध करेगा जो उन संधियों पर आधारित केन्द्रीय यूरोप की व्यवस्था को अस्तव्यस्त करना चाहते हैं।

गृह नीति के क्षेत्र में १९१८ के परवर्ती युग में पर्याप्त सफलता हुई है और पर्याप्त सफलता प्राप्त की जा रही है। जैकोस्लॉवाकिया के राजनीतिज्ञ उसको

आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाने में लगे हुए हैं । अल्पसंख्यक प्रजातियों—जर्मनों, मग्यारों और लघु रूसियों—के साथ उदार व्यवहार किया जाता है ।

गृह नीति

एक बड़ी संख्या में विद्यालयों की स्थापना की गई है जोकि विशेषरूप से स्लॉवाकिया में खोले गये हैं जहाँ पर मग्यारों के पचास वर्ष के शासन में स्लाविक भाषा का एक भी माध्यमिक विद्यालय नहीं था। अतः वहाँ सार्वजनिक शिक्षा की दशा शोचनीय थी । वृहत् भू-सम्पदाओं के विभाजन तथा कृषक भू-स्वामियों की संख्या एवं समृद्धि के उद्देश्य पर आधारित भूमि सुधार किये जा रहे है । १९१८ की क्रान्ति के पश्चात् पर्याप्त सामाजिक तथा आर्थिक विधान पारित एवं कार्यान्वित किया गया है; जैसे, कुछ अपवादों के साथ उद्योग तथा कृषि के श्रमिकों के लिये आठ घंटे प्रतिदिन कार्य करने का उपबन्ध करने वाली विधियाँ—सामाजिक बीमा विधियाँ, आवास समस्या सम्बन्धी विधियाँ, रेलमार्ग तथा नहरों सम्बन्धी विधियाँ ।

उन सभी राज्यों में, जिन्होंने आस्ट्रिया-हंगरी के राजतन्त्र से अपने प्रदेश उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किये हैं, आर्थिक दृष्टिकोण से जैकोस्लॉवाकिया सर्वाधिक सम्पन्न और सर्वाधिक प्रगतिशील है । उद्योग तथा कृषि क्षेत्रों में समान रूप से विभक्त कार्यों के कारण भूतपूर्व आस्ट्रियायी देशों में वह सर्वाधिक समृद्धिशील देश है। स्वतन्त्रता के कारण अपने भाग्य का स्वयं नियामक होने के कारण वह अपनी समृद्धि को बढ़ाने में व्यस्त है । परन्तु अन्य देशों के समान वह अपने भाग्य का पूर्ण नियंत्रक नहीं है । वह प्रत्येक दूसरे देश की समृद्धि पर अथवा उसके अनुकूल झुकाव पर अंशतः निर्भर रहता है । १९२९ से उसको अपने विदेशी व्यापार में पर्याप्त हानि हुई है और १९३३ के प्रारम्भ में उसके बेकारों की संख्या ७५०,००० थी । उसने अपनी मुद्रा को सुस्थिर बनाये रखा और १९३३-३४ में अपना आय-व्यय व्यौरा संतुलित कर लिया। उसने १९१८ से १९३६ तक के अपने सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के युग में अपने दो प्रमुख जन सेवियों को उनके स्थानों पर बनाये रखा है । मासारिक राष्ट्रपति तथा बेनेस विदेश मन्त्री बने रहे हैं । यह सफलता अन्य किसी भी देश को नहीं मिली है ।

राष्ट्रपति मासारिक

संयुक्त राज्य के समान जैकोस्लॉवाकिया को अपना प्रथम कार्यपालिका के गठन एवं स्थायित्व का सौभाग्य हुआ है । टामस गारिगू मासारिक राज्य का अध्यक्ष उस समय बनाया गया जबकि वह देश स्वतन्त्र हुआ । वह व्यक्ति इस पद के लिये असाधारण रूप से योग्य था। मासारिक व्यापक उपलब्धियों[1] का व्यक्ति था । वह दीर्घकाल तक निवास तथा गम्भीर अध्ययन के द्वारा इंगलैण्ड तथा जर्मनी से भली-भाँति अवगत था ; वह फ्रांस के इतिहास तथा वर्तमान फ्रांसीसी विचारधारा से पूर्ण रूप से परिचित था; वह 'रूस की भावना' नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक का लेखक था । यह पुस्तक उस देश के इतिहास, दर्शन, धर्म और राजनीति का अध्ययन है जिसके प्रति उसकी सर्वाधिक अभिरुचि रही है । वह आस्ट्रिया-हंगरी तथा बल्कान की समस्याओं को पूर्णरूप से जानता था और एक अमरीकी (महिला) से विवाह सम्बन्ध के द्वारा वह नवीन ससार से भली भाँति परिचित था । जैसा कि किसी अन्य व्यक्ति ने कहा

1. सुसंस्कृत

है कि जब उसके जीवन का गम्भीर परिवर्तन काल आया तब, "वह सम्भवतः अन्य सभी समकालीन राजनीतिज्ञों की अपेक्षा यूरोप की उन समस्याओं का सामना करने की अधिक क्षमता रखता था जोकि युद्ध के द्वारा उत्पन्न की गई थीं।" उसकी पूर्ण ईमानदारी तथा सचाई के लिये उसका सम्मान होता था। ये उसके जातिगत सर्वोच्च गुण तथा आदर्श थे। वह स्पार्टन था और लोकप्रियता के प्रतिउदासीन था। इसके अतिरिक्त अपने देशवासियों द्वारा सम्मानित होने के लिये उसमें एक अन्य योग्यता भी थी कि १९१६ में आस्ट्रियायी शासन ने उसको मृत्यु दण्ड दिया था और जब वह विदेशों में जाकर सुरक्षित बन गया तब उसको भयभीत करने के लिये उसकी पुत्री डा० ऐलिस मासारिक को कारागार में डाल दिया गया। वह जेल में एक वर्ष तक बिना अदालती कार्यवाही के अकेली बन्द रही। अन्त में अमरीका की कुछ महिला संस्थाओं के अमर्षपूर्ण विरोध के कारण वह कारावास से मुक्त की गयी थी। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि स्वतन्त्रता की उपलब्धि के पश्चात् जैकोस्लॉवाकिया ने अपने सर्वोच्च पर्वत शिखर तथा ब्रून के विश्वविद्यालय को अपने प्रथम राष्ट्रपति के नाम से विभूषित किया।

१९१८ से गणतन्त्र की स्थापना के समय से जिस पद को राष्ट्रपति मासारिक ने सुशोभित किया था उसको उसने आयु तथा स्वास्थ्य के कारण १४ दिसम्बर १९३५ को त्याग दिया। चार दिन पश्चात् उसका योग्य और अविरल समर्थक ऐडवर्ड बेनेस उसका उत्तराधिकारी चुना गया। वह १९१५ से विदेश सचिव था।

बेनेस राष्ट्रपति बनता है

मासारिक की भाँति बेनेस भी बोहिमिया के एक कृषक का पुत्र था। एक निर्धन परिवार का दसवाँ पुत्र होने के कारण उसने निम्नतम स्तर से जीवन प्रारम्भ किया था परन्तु उसमें वह अध्यवसाय और महत्वाकांक्षा थी जिसके कारण उसकी अन्तिम सफलता का पूर्वाभास होता था। उसका स्वभाव विद्वानों जैसा था और उसकी अभिव्यंजना सर्वाधिक प्रत्यक्ष एवं बुद्धिमत्तापूर्ण अध्ययन में हुई। इतिहास, अर्थशास्त्र और दर्शन उसके प्रिय विषय बन गये जिनका अध्ययन उसने प्राग, दियोन पैरिस और बर्लिन के उच्चतम विद्यालयों के तत्वावधान में किया। वह विधि का डाक्टर और दर्शन का डाक्टर बना और अन्ततोगत्वा वह प्राग की व्यापारिक अकादमी में प्राध्यापक नियुक्त हुआ। वह लोकतन्त्र में पूर्णास्था रखने वाला अत्यधिक स्वदेश प्रेमी था और (धीरे-धीरे) उसकी बौद्धिक नवीनता तथा तरुणोचित शक्ति अधिकाधिक स्पष्ट होती चली गयी। इसी मध्य मासारिक से उसका घनिष्ठ संपर्क स्थापित हो गया जिसने उसके विषय में आगे चलकर सार्वजनिक रूप से कहा था "बेनेस के बिना हमको जैकोस्लाविक गणतन्त्र प्राप्त न हुआ होता।"

युद्ध के साथ उसका अवसर भी आया था और उसने उस अवसर को लाभ के साथ प्रयोग किया। आस्ट्रियायी अधिकारियों द्वारा उसकी गिरफ्तारी की जाने वाली थी। तभी वह अपने देश से भागकर पैरिस चला गया। वह वहाँ युद्ध के अन्त तक रहा और बोहिमिया के हित में अहर्निश कार्य करता रहा। जब युद्ध समाप्त हो गया तब वह जैकोस्लॉवाकिया के प्रतिनिधि के रूप में शान्ति सम्मेलन में गया। कई वर्षों तक उसने मासारिक के सहयोगी के रूप में लगातार कार्य किया था और अब वह जैकोस्लावाकिया का विदेश-सचिव बन गया। वह १९३५ में उस महत्वपूर्ण

पद पर आसीन था। तभी वह मासारिक के उत्तराधिकारी के रूप में राष्ट्रपति बना। वह अत्यन्त स्वदेश भक्त तथा उन्हीं सिद्धान्तों से अभिप्रेरित एवं उन्हीं विश्वासों से परिपूर्ण था (जो कि मासारिक के थे)। अब वह अपने अभिन्न मित्र का राष्ट्रपति के रूप में उत्तराधिकारी बनाया गया था जिसने इस दिशा में अपने देशवासियों का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व किया था जो कि अब तक इतनी अच्छी तरह से चलता रहा था। मासारिक के मतानुसार वह उसका इंगित एवं पूर्ण निर्धारित उत्तराधिकारी था।

अध्याय ४८

बाल्टिक सागर के तटवर्ती गणतन्त्र तथा पोलैण्ड

१९१७ में रूस की युद्ध में पराजय तथा उससे पृथक हो जाने के फलस्वरूप यूरोप के मानचित्र में उसकी पश्चिमी सीमा पर आर्कटिक सहासागर से कालेसागर तक छः नये राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ जो कि स्वतन्त्र अथवा अत्यधिक विस्तृत हो गये। ये परिवर्तन सैनिक घटनाओं के परिणामस्वरूप सम्भव हुए थे। लगभग ५०० लाख व्यक्ति रूसी नियन्त्रण से मुक्त हुए थे और अपने भविष्य के निर्माण हेतु उनको अपने भौतिक, मानसिक तथा नैतिक साधनों का उपयोग करना पड़ा था। इन नव-निर्मित राज्यों में से प्रत्येक राज्य ने (उचित) अवसर आने पर १९१७ में उत्सुकतापूर्वक अपनी स्वतन्त्रता को अधिगृहीत किया था। इस प्रकार के पाँच राज्य थे जिनमें फिनलैंड, ऐस्थोनिया, लैटविया, लिथूआनिया और पोलैण्ड सम्मिलित थे। प्रत्येक देश को अपनी संस्थाओं के निर्माण तथा संगठन की समस्या का समाधान करना था। परन्तु प्रत्येक राज्य ने प्रारम्भ में हिचक तथा अनिश्चय के साथ तथा तत्पश्चात् विश्वास और दृढ़ संकल्प के साथ इस कार्य को करना आरम्भ किया।

फिनलैंड

१९वीं शती के प्रारम्भ में रूसी जार ने पोलेण्ड पर अधिकार कर लिया और १८०८ में वह उसका महान् ड्यूक बन गया था। यह संघ विशुद्ध रूप से वैयक्तिक था, संस्थागत नहीं था परन्तु १८९४ में निकोलस द्वितीय के सिंहासनारोहण के पश्चात् इस देश के रूसीकरण के प्रयत्न प्रारम्भ हुए और वे प्रयत्न अनवरुद्ध रूप से चलते रहे। परन्तु १९१७ में जार को पद-च्युत करने वाली क्रान्ति हुई। तब फिनलंड निवासियों ने इस आधार पर रूस से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया कि वह केवल वैयक्तिक सम्बन्ध था और चूँकि वह वैयक्तिक सम्बन्ध समाप्त हो गया था, इसलिये सम्बन्ध टूट गया था।

इसके पश्चात् फिनलैण्ड को जर्मन नियन्त्रण में लाने की चालों का युग प्रारम्भ हुआ और फिनलैण्ड का ताज केजर के एक बहनोई को भेंट किया गया। परन्तु १९१५ में जर्मनी की पराजय होने पर यह आन्दोलन समाप्त हो गया और अगले वर्ष फिनलैण्ड गणतन्त्र बन गया और उससे अगले वर्ष वह राष्ट्र संघ का

सदस्य बन गया। फिनलैण्ड एक विस्तृत देश है जो कि बाल्टिक सागर से आर्कटिक महासागर तक फैला हुआ है और इसका क्षेत्रफल फ्रांस के दो तिहाई के बराबर है। इसकी जनसंख्या लगभग ३० लाख है जो कि अधिकांशत: कृषक है और वे कृषक कुछ सीमा तक प्रभावशाली मध्यम वर्ग (का निर्माण करते) हैं। स्वभावत: फिनलैण्ड मध्यवर्गीय गणतन्त्र बना।

युद्ध के फलस्वरूप फिनलैण्ड के दक्षिण में एस्थोनिया नामक राज्य का उदय हुआ जिसमें एस्थोनियन तथा लैट्ट लोग निबास करते थे। यह वह क्षेत्र था जिस पर अब तक बाल्टों का आधिपत्य रहा था जो कि एक जर्मन वंशज लघु वर्ग था। वे युद्ध के परिणामस्वरूप असम्मानित एवं दुर्बल हो गए थे।

एस्थोनिया

वास्तव में बाल्टों ने कैजर को अपना संप्रभु बनाने के लिये आमन्त्रित किया था और बिलियम द्वितीय ने उस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया था परन्तु फ्रांस में उसकी सेनाओं के पराजय हो जाने पर उस वर्ष की समाप्ति से पूर्व उसकी शक्ति का पतन हो गया और अपने शत्रुओं से बचने के लिये वह शरणस्थल के रूप में हालैण्ड भाग गया। १९२० में एस्थोनिया ने एक संविधान अपनाया जिसने उसको एक स्वतन्त्र 'गणराज्य' घोषित किया 'जिसमें राज्य की शक्ति जनता के हाथों में सन्निहित है।' उस समय वहाँ की जनसंख्या लगभग दस लाख थी।

लैटविया

एस्थोनिया के दक्षिण में उसी समय एक अन्य लघु राज्य लैटविया का उदय हुआ जिसने १७ नवम्बर १९१८ को रूस से अपने को स्वतन्त्र उद्घोषित किया। १९२० की ऋतु तक रूस ने इसको पूर्ण स्वतन्त्र राज्य स्वीकार कर लिया। इसकी जनसंख्या लगभग दस लाख थी।

लिथुआनिया

चौथा बाल्टिक गणतन्त्र जो युद्ध के कारण बना लिथुआनिया था। १८३६ में अपने तत्कालीन महान् ड्यूक के पोलैण्ड की रानी के साथ विवाहित हो जाने से लिथुआनिया का सम्बन्ध पौलैण्ड के साथ स्थापित हो गया था। इस प्रकार व्यक्तिगत सम्बन्ध के आधार पर दोनों राज्यों का संघ बन गया था। यह सम्बन्ध इतने अधिक काल तक बना रहा कि उनके पृथक् होने का विचार ही मस्तिष्क से निकल गया। परन्तु बीसवीं शती के प्रारम्भ में लिथुआनिया की स्वतन्त्रता का आन्दोलन रूस में विकसित हुआ और १९१८ की फरवरी में उसकी परिणति औपचारिक उद्घोषणा में हुई। ऊपर वर्णन किये गये अन्य बाल्टिक राज्यों के इसी प्रकार के आन्दोलनों की भाँति यह आन्दोलन जर्मन प्रभाव के अन्तर्गत लाया गया था जो कि अब तक विजयी था और उसी वर्ष जुलाई में लिथुआनियावासियों ने एक जर्मन राजकुमार को अपने सिंहासन के लिये प्रत्याशी स्वीकार कर लिया। परन्तु यह सम्बन्ध दीर्घकाल तक नहीं चला क्योंकि जर्मनी को फ्रांस में एक निर्णायक पराजय का अनुभव करना था फलत: उसको यूरोप में सामान्य रूप से पीछे हटना पड़ा। १९१८ में लिथुआनिया गणतन्त्र बन गया। उसका राष्ट्रपति एन्टीनस स्मैटोना बना तथा प्राध्यापक ऑगस्टस वॉल्डीमरास प्रधान मन्त्री बना। रूस से युद्ध हुआ और उसके परिणामस्वरूप १९२० में रूस ने लिथुआनिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया। मास्को की इस संधि के अनुसार विलना के नगर को उस देश का अंग मान लिया गया।

परन्तु रूस को इस व्यवस्था के पश्चात् पोलैण्ड के साथ कठिनाई उत्पन्न हो गई। वह विल्ना को अपना बताता था। इस अधिकार को १९२३ के राजदूतों के सम्मेलन ने समर्थन प्रदान कर दिया। प्रधान मन्त्री वॉल्टीमरास ने आगे चलकर घोषणा की कि "किसी भी राजदूतों के सम्मेलन द्वारा सम्प्रभु राज्य के कार्य को समाप्त नहीं किया जा सकता है।" इसी मध्य पोलैण्ड ने विल्ना पर अपना अधिकार जमा लिया और कई वर्षो तक यह मामला इसी अनिर्णीत कानूनी स्थिति में पड़ा रहा। यह विवादग्रस्त विषय उन दो राज्यों के मध्य था जोकि केवल परस्पर संघर्ष करने के लिये ही रूस से अलग हुए थे। आज १९३७ में भी यह प्रश्न इसी अनिर्णीत दशा में है। विल्ना पर वास्तविक अधिकार पोलैंड का है।

इस प्रकार ये चार वाल्टिक राज्य रूस के नियन्त्रण से बाहर निकल आये। प्रत्येक का एक राष्ट्रपति है परन्तु वह भिन्न रीति से चुना जाता है—फिनलैण्ड का राष्ट्रपति प्रायः संयुक्त राज्य की पद्धति पर चुना जाता है, लटविया तथा एस्थोनिया का राष्ट्रपति व्यवस्थापिका द्वारा चुना जाता है और लिथुआनिया का राष्ट्रपति सार्वजनिक मतदान द्वारा चुना जाता है। बचत के विचार से एस्थोनिया का राष्ट्रपतित्व प्रधान मन्त्री को प्रदान किया जाता है।

पोलैण्ड

ये चार लघुराज्य हैं। इनकी जनसंख्या १० लाख से ३० लाख तक है। ये सब वाल्टिक के तट पर हैं। परन्तु रूस की पराजय तथा जर्मनी और आस्ट्रिया की परवर्ती पराजय के परिणास्वरूप इनकी अपेक्षा कहीं अधिक बड़े राज्य पोलैंड को इस युद्ध ने स्वतन्त्रता प्रदान की। इसकी जनसंख्या २७० लाख है। यह युद्ध १९१४ में आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया पर किये गये आक्रमण से प्रारम्भ हुआ था और विस्तृत होकर उसने संसार व्यापी रूप धारण कर लिया।

पोलैंड तथा युद्ध

पैरिस के सम्मेलन में सम्प्रभु राज्य के रूप में पोलैंड का प्रादुर्भाव हमारे युग की सर्वाधिक प्रभावशाली तथा उत्साहवर्द्धक घटनाओं में से है। वह राष्ट्र पुनः जीवित हो गया जिसका मध्य युग की समाप्ति के समय का महान् तथा स्मरणीय इतिहास था, जोकि उसके पश्चात् अपने नेताओं की भूलों तथा स्वार्थपरताओं के कारण पतन एवं अनैक्य के युग में होकर गुजरा, और जो अन्ततोगत्वा अपने पड़ोसियों द्वारा विभक्त कर दिया गया। कभी-कभी काल अपना प्रतिशोध लेता है और यह सर्वाधिक आश्चर्यजनक प्रतिशोधों में से था। भाग्य चक्र को एक पूरा चक्कर लगाने में एक सौ पच्चीस वर्ष लग गये। आश्चर्य इस बात का है कि यह एक चक्कर लगा सका।

१९१४ में युद्ध की उद्घोषणा से पोलों के लिये अंधाकरपूर्ण एवं कष्टदायक आशा का संचार हुआ। एक शताब्दी से अधिक काल के दुःखद अत्याचार के पश्चात् उन्होंने अपने को आस्ट्रिया, रूस तथा जर्मनी की सेनाओं में एकत्रित पाया और वे शीघ्र ही भ्रातृघातक संघर्ष में धकेले जाने वाले थे जिसमें भाई-भाई के विरुद्ध खड़ा होगा और सभी अपनी मातृभूमि के विरुद्ध संघर्ष करेंगे। ऐसे युद्ध में पोलों के लिये क्या आशा थी? यदि केन्द्रीय शक्तियाँ विजयी रहीं तो रूस को अपने पोलों का परित्याग करना होगा, परन्तु आस्ट्रिया और जर्मनी के अतिरिक्त उनको और कौन

प्राप्त करेगा ? यदि आस्ट्रिया और जर्मनी की पराजय हुई तो क्या परिणाम ठीक इसके विपरीत नहीं होगा ? अर्थात् आस्ट्रिया और जर्मनी के स्थान पर रूस की अधीनता !

पोलों के लिए केवल एक ही आशा (उत्साहवर्द्धक) थी कि युद्ध में एक ओर रूस तथा दूसरी ओर जर्मनी-आस्ट्रिया दोनों (पक्षों) की पराजय हो। यह आशा इतनी भद्दी प्रतीत होती थी इसको हृदय में धारण करना तर्क सम्मत नहीं था। तथापि भद्दी आशा (असम्भव घटना) पूरी हुई। केन्द्रीय शक्तियों द्वारा रूस पराजित किया गया और उसको ब्रेस्ट-लिटोवस्क की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। केन्द्रीय शक्तियाँ कुछ मास पश्चात् पराजित हुईं और उनको वर्साई की तथा अन्य संधियों पर हस्ताक्षर करने पड़े। नव-निर्माण का क्षेत्र तैयार था और जो निर्माण होगा वह उसके निवासियों के लिए उस अनिश्चित एवं प्रतिभासिक योजना की अपेक्षा अधिक सारगर्भित एवं अधिक सुविधाजनक होगा जोकि युद्ध-काल में उन पर अत्याचार करने वालों ने उनके सम्मुख प्रस्तुत की थी।

पोलैंड की स्वतन्त्रता की घोषणा

नवम्बर १९१८ को पोलैण्ड की स्वतन्त्रता की उद्घोषणा की गयी। उसी दिन विलियम द्वितीय अपनी स्वचालित कार में हालैन्ड को पलायन कर रहा था और जर्मनी के सिंहासनों का पतन हो रहा था। पाँच दिन पश्चात् पोल जनता की प्रायः सर्वसम्मति से जनरल जौसेफ पिल्सुदस्की ने राज्य का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। यह मैंजवर्ग के कारावास से मुक्त किया गया था जहाँ पर जर्मनों ने इसको पन्द्रह मास से अधिक तक बन्दी रखा था। यद्यपि पिल्सुदस्की को पोलैण्ड के बाहर कोई नहीं जानता था तथापि उसको प्रत्येक पोल (भली भाँति) जानता था क्योंकि उसने महान् शत्रु के विरुद्ध एक पोल सेना का निर्माण किया था और वह पोलैन्ड के गणतंत्र का स्वाभाविक एवं पूर्व निर्धारित प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति माना जाता था। अमरीका के इतिहास ने इस बात को पहले ही प्रदर्शित कर दिया था कि राष्ट्र का विश्वसनीय सैनिक नेता उसका प्रमुख राजनीतिक नेता भी बना हो। अस्तु यह प्रथम अवसर नहीं था। इस नई स्थिति में विल्सुदस्की के प्रारम्भिक कार्यों में से एक कार्य यह था कि उसने इगनास पैडरेव्स्की को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। इस व्यक्ति को सारा संसार पोलैण्ड का सर्वाधिक विख्यात व्यक्ति एवं सर्वाधिक प्रसिद्ध नागरिक समझता था। यह महान् संगीतज्ञ, सच्चा देशभक्त, और जैसा कि अब घटनाओं ने प्रदर्शित किया वह योग्य कूटनीतिज्ञ तथा राजनीतिज्ञ भी था। इन्हीं दोनों व्यक्तियों को इस नये राज्य की नौका के जलावतरण का प्रमुख श्रेय प्राप्त है।

इस नवीन गणतन्त्र के प्रारम्भिक वर्ष अशांतिपूर्ण तथा अनिश्चयपूर्ण थे। स्वतन्त्र राज्यत्व प्राप्त करने के लिये सीमाओं का निर्धारित होना आवश्यक था किन्तु यह बड़ी कठिन समस्या थी और ऐसी समस्या थी जिसने पोलैण्ड के मित्रों का ही नहीं अपितु स्वयं पोलों का मत विभाजित कर दिया था और इसके कारण कई पड़ोसी देशों से विवाद हो जाने के पश्चात् ही इसका अन्तिम समाधान हुआ। पोलैण्ड की सीमायें कभी भी स्वाभाविक नहीं थीं वरन् समय-समय पर वे उसकी तथा उसके पड़ोसियों की पारस्परिक सहमति से निर्धारित कर ली गयी थीं और इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया था कि वे सीमा रेखायें अस्थायी होती थीं। यदि किसी भी देश की

सीमाओं को अस्थायी कहा जा सकता है तो वह पोलैण्ड की सीमाओं के विषय में कहा जा सकता है। नये पोलैण्ड की सीमाओं का निर्धारण दीर्घकालीन एवं अत्यन्त जटिल कार्यवाही थी। यह पैरिस के सम्मेलन में १९१९ में प्रारम्भ हुई थी और १९२३ की वसंत ऋतु में पूरी हुई। अन्य बातों के अतिरिक्त इसके कारण १९२० में बॉलशेविक रूस से युद्ध हुआ। तब रूसी सेनायें वारसा से आठ मील से भी कम दूर रह गईं और ऐसा प्रतीत हुआ कि यह गणतन्त्र समाप्त होने वाला था परन्तु वह अन्त में फ्रांसीसियों की सहायता से पुनर्जीवित हो सका। अंतत: मार्च १९२१ में रीगा की संधि पर हस्ताक्षर हो गये। इससे पोलैण्ड को अभिलषित उपलब्धि तो नहीं हुई किन्तु उसने वह पूर्वी सीमा प्राप्त कर ली जोकि लगभग उस सीमा के अनुसार थी जो १७९५ के विभाजन के ठीक पूर्व उसको उपलब्ध थी। अन्त में लिथुआनिया, यूक्रेन तथा रूस में से प्रत्येक के साथ युद्ध के पश्चात् जो सीमा निर्धारित की गयी वह उदारतापूर्वक निर्धारित की गयी थी। पोलैण्ड का क्षेत्रफल १५०,००० वर्ग मील होगा जोकि जर्मनी का ⅘ होगा। वास्तव में विस्तार के दृष्टिकोण से यह यूरोप का छटा राज्य होगा, केवल रूस, जर्मनी, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और स्पेन ही उससे वृहत्तर होंगे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पोलैण्ड की प्रथम जनगणना (१९२१) के अनुसार उसकी जनसंख्या २७,०००,००० से अधिक थी। अत: स्पेन से बढ़कर वह यूरोप का पाँचवा राज्य बन गया। उसकी महत्त्वाकांक्षा और भी अधिक प्राप्त करने की थी और जो कुछ उसने प्राप्त किया उसके हेतु भी उसके पड़ोसियों से शत्रुता उत्पन्न हो गई तथापि उसके साथ उदार समझौता हो गया था। १९३२ तक उसकी जनसंख्या ३१,०००,००० हो गयी।

पश्चिम के दो प्रदेशों ने कठिनाइयाँ उत्पन्न कीं। ये पहले जर्मन प्रदेश थे—ऊपरी साइलेशिया तथा पोल-मार्ग। ऊपरी साइलेशिया की औद्योगिक उपयोगिता थी। उसमें जर्मनी का २३% कोयला उत्पादित होता था। इसमें जर्मन पोल मिश्रित जनसंख्या थी जिसमें पोलों का बहुमत था जर्मन इस प्रदेश को अपने अधिकार में रखना चाहते थे और पोल इसका अधिकाधिक भाग लेना चाहते थे। इसका निर्णय साइलेशिया की जनता को करना था। २० मार्च १९२१ को मतदान हुआ। जर्मनी के पक्ष में ७०७,६०५, पोलैण्ड के पक्ष में ४७९,३५९ तथा इस प्रान्त के ७५४ कम्यून (प्रादेशिक इकाइयाँ) जर्मनी के पक्ष में और ६९९ पोलैण्ड के पक्ष में थे। पोलों ने तत्काल यह माँग की कि उनको ऊपरी साइलेशिया वह क्षेत्र दे दिया जावे जिसमें पोल लोकतांत्रिक शासन हैं; जर्मनों ने यह माँग की कि साइलेशिया को एक इकाई रखा जावे और जर्मन को जिलों का अधिकांश मत प्राप्त हुआ है, इसलिये उसको सम्पूर्ण साइलेशिया प्राप्त होना चाहिये। तथापि यह निश्चय हुआ कि इस प्रदेश का विभाजन हो, कि मुख्यरूप से मतदान के अनुसार रहा हो और कि एक भाग पोलैण्ड को मिलेगा और दूसरा जर्मनी के पास रहेगा।

जर्मनी तथा पोलैण्ड के झगड़े के एक अन्य विषय का सम्बन्ध बाल्टिक सागर के तट पर स्थित डानजिग नामक नगर से था। राष्ट्रपति विल्सन ने अपनी उद्घोषणा में, जिसको 'चोदह बातें' कहते हैं, एक बात यह सम्मिलित की थी कि 'एक स्वतन्त्र पोलैण्ड राज्य की स्थापना की जानी चाहिये' और इसको 'समुद्र तक जाने

डानजिग

का स्वतन्त्र एवं सुरक्षित मार्ग' मिलना चाहिये। इस घोषणा की पूर्ति पोलैण्ड को पैरिस के सम्मेलन ने एक संकरा भू प्रदेश प्रदान करके की। इस भूप्रदेश को 'मार्ग' कहते थे और यह बाल्टिक तट पर स्थिति डानजिग तक जाता था। जर्मनों ने इस समाधान का विरोध इस आधार पर किया कि इससे प्रजा को दो भागों में विभक्त हो जावेगा और डानजिग तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश मे प्राय: सभी जर्मन निवास करते थे। तथापि शाँति सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि सर्वोत्तम समाधान यह होगा कि राष्ट्रसंघ की सामान्य देखरेख में डानजिग को स्वतन्त्र नगर घोषित कर दिया जावे, वह अपना प्रबन्ध स्वयं करे परन्तु उसके वैदेशिक सम्बन्ध पोलैण्ड के अधीन रहें, वही उसके आयात निर्यात का नियन्त्रण करे और सीमा-शुल्क का प्रबन्ध पोलैण्ड के द्वारा किया जावे। पोलैण्ड को उसका 'मार्ग' मिलना चाहिये और वह उस बन्दरगाह को 'स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग में ला सके।' पोलैण्ड की प्रमुख नदी तथा विश्व के महत्त्वपूर्ण मार्ग को संभाव्य शत्रुभाव के जर्मनी के अधिकार में छोड़ने की अपेक्षा यह अच्छा होगा कि पोलैण्ड में बहुत से जर्मनी रहें। अस्तु वैसा ही निर्णय किया गया।

पोलैण्ड का संविधान

१९१८ में युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् कई वर्षों तक निश्चित एवं सन्तोषजनक सीमाओं के लिये बहुमुखी संघर्ष चलता रहा। साथ ही पोलैण्ड अपने राजनीतिक यंत्र को भी कार्यान्वित कर रहा था और अपनी सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाओं का निर्माण कर रहा था। उसको ऐसे शासन का निर्माण करना चाहिये जो कि उसके स्वभाव तथा दशाओं के अनुकूल हो, संविधान का प्रारूप तैयार करना चाहिये और उसको कई विषयों के सम्बन्ध में विधान बनाकर उसे कार्यान्वित करना चाहिये जिनके सम्बन्ध में पोलैण्ड की जनता को अपने सवा सौ वर्ष से अधिक काल तक के तीन महान् राज्यों रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के सम्पर्क में विभिन्न अनुभव हुए थे। ये अनुभव उन शक्तियों की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार हुए थे न कि अधीन पोल प्रजाति की तीन शाखाओं की इच्छाओं और आवश्यकताओं के अनुसार। इन तीनों शाखाओं को अब एक साथ रहना था परन्तु मेल के साथ तथा सफलतापूर्वक एक साथ रहने के पूर्व उनके मतों और महत्त्वाकांक्षाओं की विभिन्नतायें समाप्त अथवा परस्पर सम्मिलित होकर तिरोहित हो जानी चाहिये। गंभीर कठिनाइयों का सामना करना था। पोलैण्ड के स्वाभाविक नेताओं का राजनीतिक अनुभव बहुत कम था। साथ ही देश के तीन पृथक्-पृथक् भागों में एक शताब्दी से अधिक काल तक उन पर विभिन्न प्रशासनिक प्रभाव पड़े थे तथापि वे आवश्यकता एवं परिस्थितिवश साथ-साथ कार्य करने लगे जिससे अच्छे से अच्छा संविधान बनाया जा सके। जब बन जावे तब वह संतोषजनक रूप से कार्य करे अथवा न करे परन्तु उसके निर्माण का प्रयत्न अविलम्ब प्रारम्भ कर देना चाहिये।

उन्होंने एक संसद स्थापित की जिसमें एक सीनेट तथा एक निम्न सदन सैज्म था। दोनों का निर्वाचन सर्वमताधिकार पर अवलम्बित था। उच्च सदन (सीनेट) के लिये तीस अथवा अधिक आयु के नागरिक तथा दूसरे सदन के लिये इक्कीस वर्ष की आयु के नागरिक मतदान कर सकते थे। इन दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में सात वर्ष की अवधि के लिये राष्ट्रपति का निर्वाचन होना था परन्तु

उसकी शक्तियाँ बहुत कम होनी थीं क्योंकि उसके प्रत्येक कार्य पर मंत्रिमण्डल के किसी न किसी सदस्य को प्रतिहस्ताक्षर अवश्य करने होंगे। निम्न सदन अथवा सैजम अपनी पंचवर्षीय कालावधि के भीतर सीनेट द्वारा कभी भी विघटित किया जा सकता था। संसद के प्रथम अधिवेशन में ऐसा प्रतीत हुआ कि अवश्य ही व्यवस्थापिका में बहुत से दल होंगे और इसलिये उनमें से किसी का भी बहुमत नहीं होगा। मन्त्रि-मण्डल कई दलों का प्रतिनिधित्व करेगा और वह कई दलों के समूह (ब्लॉक) पर आधारित होगा। दलों के समूह का मन्त्रिमण्डल अवश्य ही प्रायः असंतोषजनक तथा सामान्यतः अल्पकालीन सिद्ध होगा। पोल गणतन्त्र के प्रथम द्वादश वर्षीय इतिहास में बाईस मन्त्रिमण्डल बने और बिगड़े।

पोलैण्ड की समस्यायें

यद्यपि पोल-संविधान १९२१ में पारित हुआ था तथापि वह बीस मास पश्चात् लागू किया गया क्योंकि संसद के सदस्य अपना अधिकार बनाये रखना चाहते थे। जब वह अन्ततः १९२२ की समाप्ति पर कार्यान्वित किया गया तो उसने अच्छा कार्य नहीं किया। सदस्यों में राजनैतिक अनुभव का अभाव था, वे बीस अथवा अधिक दलों में विभक्त थे जिससे किसी को भी बहुमत प्राप्त नहीं था, और एक दूसरे से अपरिचित तथा प्रतिस्पर्धा करते थे। तो भी पोलों को एक दक्ष मन्त्रि-मण्डल की आवश्यकता थी क्योंकि उनके सामने गम्भीर आर्थिक तथा राजनीतिक समस्यायें थीं। उनको युद्ध से भारी हानि पहुँची थी। रूसियों और जर्मनों ने उनको लूटा था तथा उन पर कुशासन किया था। उनको अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने तथा पुनर्निर्माण का कार्य करना था। बहुत से छोटे-बड़े परिवर्तन करने थे। ये परिवर्तन पोलों के रूसी, प्रशायी तथा आस्ट्रियायी विभागों की रीतियों (और व्यवहारों) में होने थे। इन तीनों भागों का प्रथमतः एकीकरण होना चाहिये। इसके पश्चात् ही सर्वोपयोगी एक राज्य का निर्माण हो सकता था। विभिन्न दलों के कारण अदक्ष और अनैक्यपूर्ण (झगड़ने वाले) शासन स्थापित हुए। दुःखद बहुलता एवं निष्प्रयोजन के साथ मन्त्रिमण्डल बने और बिगड़े और राजनीति में वैयक्तिक तथा दलीय संघर्ष होने लगे जिनमें वृहत् एवं मूलभूत हितों पर ध्यान नहीं दिया गया। पिल्सुदस्की तथा प्रतिनिधियों के पारस्परिक सम्बन्ध अशांतिपूर्ण तथा विवादपूर्ण बने रहे। कई मन्त्रिमन्डल बने-बिगड़े। उनमें से कई मन्त्रिमण्डलों में मार्शल पिल्सुदस्की सम्मिलित था। वह कभी प्रधानमन्त्री रहा, कभी युद्ध मन्त्री रहा और कभी विदेश मन्त्री रहा। कभी-कभी वह अपदस्थ भी रहा तथापि वह वास्तव में किन्तु विरल रूप से सत्तारूढ़ रहा। यदि इसकी शक्ति मन्त्रिमण्डल में उसके औपचारिक स्थान[1] पर निर्भर न होती थी तो वह उसके बाह्य प्रभाव पर अवलंबित होती थी। पिल्सुदस्की का सामान्य उद्देश्य राष्ट्रपति की शक्ति को बढ़ाना था और व्यवस्थापिका को आज्ञा-कारी अनुयायी के रूप में गौण स्थान दिलाना था। परन्तु इसके मार्ग में दुःखद और हतोत्साहित करने वाली कठिनाइयाँ थीं। तथापि मार्च १९३२ में एक अधिनियम पारित किया गया जिसने राष्ट्रपति को आगामी तीन वर्षों में विधि की शक्ति रखने वाले आदेशों को देने का अधिकार प्रदान किया और एक वर्ष से अधिक काल के

---

1. नाम की प्राथमिकता।

पश्चात् मई १९३३ में पिल्सुदस्की का मित्र इगनेस मौसिकी पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ।

पुर्ननिर्माण का कार्य

सौभाग्य से इस राजनीतिक उथल-पुथल तथा अशांति के काल में राज्य में किसी न किसी प्रकार के निश्चित सुधार किये गये। केवल समय का बीतना ही ऐसे परिवर्तनों के अनुकूल रहा क्योंकि उनके साथ प्रभावशाली लोकप्रिय समर्थन बढ़ता चला गया। ज्लॉटी नामक नवीन मुद्रा प्रणाली अपनाई गयी और वह स्थिर रखी गयी, एक नया राष्ट्रीय बैंक स्थापित किया गया और अन्ततोगत्वा आय-व्यय ब्यौरा (बजट) सन्तुलित हो गया। प्रिंसटन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक ई० डब्ल्यू० कैमर ने पोलों को इस कठिन प्रयत्न में सहायता प्रदान की जिसको देश की वित्तीय स्थिति का अध्ययन करने के लिये और अपेक्षाकृत ठोस आर्थिक तथा वित्तीय सिद्धान्तों की सिफारिश करने के लिये बाह्य आयोग के अध्यक्ष के रूप में आमन्त्रित किया गया। उसकी सिफारिशों को अधिकांशतः अपना लिया गया। संयुक्त राज्य के कोष के सहायक सचिव चार्ल्स एस० डयूवी को भी वित्तीय परामर्शदाता के रूप में आमन्त्रित किया गया था। अन्ततोगत्वा १९२७ में आय व्यय संतुलित हो गयी और १९३२ तक पाँच वर्ष तक वह सन्तुलित रही। उस समय विश्वव्यापी सामान्य आर्थिक गिरावट ने उसको अस्तव्यस्त कर दिया तथापि ज्लॉटी (नामक मुद्रा प्रणाली) स्थिर बनी रही।

गिडनिया बन्दरगाह की स्थापना।

ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते गये त्यों-त्यों पोलैण्ड की दशा कुछ-कुछ सुधरती गई। देश का आर्थिक जीवन भी कुछ विस्तृत हो गया। जो भूमि युद्ध के द्वारा क्षतिग्रस्त हो गयी थी उसको पुनः ठीक कर दिया गया और उन पर खेतों की पुनः व्यवस्था कर दी गयी। बहुत से नये व्यक्तियों को बसा दिया गया और सहस्रों आवास गृहों तथा कृषि-भवनों का निर्माण हुआ। पुरानी रेलें जो युद्ध काल में नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थीं पुनः ठीक कर दी गईं और कई मील नये रेल मार्गों का निर्माण किया गया। उद्योगों का विकास हुआ और १९२५ में गिडनिया के नये बन्दरगाह का निर्माण प्रारम्भ किया गया जिसके द्वारा पोलैण्ड की डानजिग पर निर्भरता समाप्त हो जावेगी जिसके साथ नगर-सम्बन्ध प्रायः कठिन तथा विवादमय रहते थे। थोड़े ही वर्षों में गिडनिया एक लघु ग्राम से बढ़कर शीघ्र ही १५,००० व्यक्तियों का नगर बन गया और प्रतिवर्ष २० लाख टन का माल यहाँ से आता-जाता है और लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि यह प्रति वर्ष १०० लाख या १५० लाख टन तक बढ़ जावेगा। १९३० में न्यूयार्क तक यहाँ से जलपोत आने-जाने लगे। १९३२ तक गिडनिया में तीन सहस्र से अधिक जलपोत आये गये और ५० लाख टन से अधिक का माल यहाँ से आया-गया। कुछ वर्ष पूर्व यह एक मछली मारने का छोटा सा गाँव था। ऐसा प्रतीत हुआ कि जब यह नया बन्दरगाह पूर्णरूप से कार्य करेगा तब डानजिग की वर्तमान दशा नहीं बनी रहेगी। डानजिक प्रमुख बन्दरगाह था और उसका वर्तमान व्यापार युद्ध-पूर्व के व्यापार से अधिक था तथापि डानजिग चिंतत हो गया। हिटलर का दल, जो कि अब जर्मनी में महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा था, सहानुभूति प्रकट करने लगा और उस भूल को सुधारने की बातें करने लगा जो कि **वर्साई की संधि** ने की थीं। डानजिग ने राष्ट्रसंघ से सहायता की याचना की परन्तु पोलैण्ड

पर प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में डानजिग की सीनेट का अध्यक्ष वारसा को यह देखने के लिये भेजा गया कि क्या व्यवस्था की जा सकती थी। पोलैण्ड इस बात पर सहमत हो गया कि यदि उसका व्यापार बढ़ गया तो कुछ व्यापार डानजिग द्वारा किया जावेगा और अगले मास सितम्बर में यह प्रबन्ध किया गया कि उसका ४५% विदेशी व्यापार डानजिग द्वारा होगा और ५५% गिडनिया द्वारा होगा। इस समझौते से डानजिग संतुष्ट हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि पोलैण्ड तथा डानजिग के सम्बन्ध पूर्वापेक्षा अधिक मैत्रीपूर्ण हो जावेंगे। शांति की विजयें युद्ध की विजयों से न्यून नहीं होती हैं।

१९३५ के प्रारम्भ में पिल्सुदस्की की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार एक स्मरणीय जीवन समाप्त हो गया जो कि अपने देश के लिये सर्वाधिक उपयोगी था।

अध्याय ४९

विश्व-युद्ध के पश्चात् का स्पेन

स्पेन के प्रमुख प्रभाव

विश्व-युद्ध के प्रारम्भ से स्पेन ने जो भाग लिया है उसका कुछ महत्त्व है परन्तु उसका तीव्र एवं क्रांतिकारी पक्ष अभी प्रारम्भ हुआ है। उसका प्रभाव स्थायी हो सकता है अथवा वह अधिकांशत: स्थायी सिद्ध हो सकता है। उस प्रायद्वीप की स्थिति के विषय में निश्चय रूप से कुछ भी कहने का अभी समय नहीं आया है और न उसकी अन्तिम प्रवृत्तियों के विषय में कुछ कहा जा सकता है परन्तु यह बात पर्याप्त विश्वास के साथ कही जा सकती है कि निकट भूतकाल में स्पेन पूर्वापेक्षा अधिक दृढ़ विचार और संकल्प के साथ प्रयत्न करता रहा है। यह प्रयत्न उसके जीवन को आधुनिक बनाने, उसको वह स्वभाव और वह महत्त्वाकांक्षा तथा स्वाभिव्यंजना की वे प्रतिक्रियायें प्रदान करने के लिए किया जा रहा है जो कि दीर्घकाल से अन्य देशों की विशेषतायें बनी रही हैं और जिनके कारण उन देशों का अधिक स्वतन्त्र विकास तथा अधिक आशान्वित एवं अधिक सशक्त दृष्टिकोण निश्चित हो गया है।

सम्पूर्ण १९वीं शताब्दी में स्पेन का इतिहास अधिकांशत: यथापूर्व अत्यधिक स्थानीय, प्रगतिशील और संकुचित दृष्टिकोण का बना रहा। कभी-कभी उदार (प्रगतिशील) आन्दोलन हो जाते थे परन्तु वे शीघ्र ही दबा दिए जाते थे। कभी-कभी परिवर्तन भी हो जाते थे परन्तु वे स्थायी अथवा गम्भीर प्रभाव वाले सिद्ध नहीं होते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि स्पेन अपनी राष्ट्रीय आदतों की अरुचिकर पुनरावृत्ति करता रहेगा।

नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव

तथापि परिवर्तन हुए थे जिनका प्रभाव साधारण जनता पर कम पड़ा था परन्तु वे थे महत्त्वपूर्ण। दीर्घकाल से वास्तव में शासन सत्ता राजतन्त्र, पादरीगण, कुलीन व्यक्तियों (सामन्तों) और सेना के हाथ में रही थी। चिरकाल से उनका प्रभाव रहा था और वे अब भी आत्म-तुष्टि, अदूरदर्शी और अत्यधिक अनुदार बने हुए थे। जन-संख्या के ये तत्व उन परिवर्तनशील आर्थिक परिस्थितियों के प्रति दीर्घकाल से उदासीन बने हुए थे जोकि सम्पूर्ण विश्व में अधिकाधिक

प्रचलित होती जा रही थीं। परन्तु १९१४ में युद्ध के प्रारम्भ होने से नवीन शक्तियाँ कार्य करने लगीं। प्रभावशाली वर्गों के बहुत से सदस्य केन्द्रीय शक्तियों के मित्र बने रहे परन्तु दूसरे वर्गों का झुकाव दूसरी ओर था। देश की उदारवादी शक्तियाँ, बुद्धिजीवी वर्ग तथा आमूल परिवर्तनवादी वर्ग, मित्र राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति रखते थे। परन्तु वे समग्र रूप में अपेक्षाकृत मौन रहीं। विश्व युद्ध में स्पेन तटस्थ रहा और उसने युद्ध की सामग्री की बिक्री से अत्यधिक लाभ उठाया जिसका इसने पर्याप्त मात्रा में उत्पादन तथा निर्यात किया। युद्ध के पहले व्यापार का संतुलन लगभग ५०,०००,००० डालर से प्रतिकूल रहता था परन्तु १९१७ में यह परिवर्तित होकर ७०,०००,००० डालर से अनुकुल रहा। परन्तु युद्ध के पश्चात् वह पुनः स्पेन के प्रतिकूल हो गया। अन्य बातों के साथ-साथ इसके ये कारण थे: श्रमिक वर्गों का बढ़ता हुआ असन्तोष, क्षेत्रीय तथा पृथक्करण के विवादों का विकास और स्पेनिश मौरोको के झगड़े जो कि कई वर्षों से गम्भीर एवं व्ययसाध्य बनते जा रहे थे। स्पेन के उत्तर पूर्वी भाग कैटालोनिया में आर्थिक कठिनाइयों ने उग्र रूप धारण कर लिया था और पृथक्करण की माँग लगातार की जा रही थी। युद्ध के पश्चात् ये माँगें कम होने के स्थान पर प्रबल एवं प्रभावशाली हो गयीं। कैटालोनिया के निवासी अपना राज्य बनाना चाहते थे जिस पर वे स्वयं शासन करें, वे अपनी निजी संसद् (कॉर्टेज) और अपनी निजी कार्यपालिका चाहते थे जो स्पेन की संसद् तथा कार्यपालिका से पृथक् हों और वे विशेष रूप से अपनी भाषा के प्रयोग की अभिलाषा करते थे जो कि स्पेन की भाषा में भिन्न थी। वे केवल उसी को अपने राजकाज की भाषा बनाना चाहते थे। युद्ध के पश्चात् इन माँगों के लिए संघर्ष हुआ और वह प्रति वर्ष उग्रतर होता चला गया। व्यावसायिक हड़तालें प्रायः होती थीं और कभी-कभी वे अत्यन्त रक्तरंजित हो जाती थीं। मन्त्रिमंडल स्थिर नहीं रहते थे और प्रायः उनमें परिवर्तन होते रहते थे।

स्पेनिश मौरोको का विद्रोह

उत्तरी अफ्रीका में स्पेन तथा उसके नवोपलब्ध मौरोको के प्रदेश में अधिक गम्भीर युद्ध हुआ जिसमें प्रतिवर्ष लगातार स्पेन की पराजय होती थी। अनुमान किया जाता है। इस दसवर्षीय (१९१७ से १९२७) संघर्ष में स्पेन के १२०,००० व्यक्ति मारे गये और लगभग ४००,०००,००० डालर इस अभियान पर व्यय हुए, जुलाई १९२१ में जनरल सिलवैस्ट्रे की पराजय दुर्भाग्यपूर्ण एवं अशोभनीय थी। उसके १२,००० सैनिक मारे गये और १००० पकड़ लिये। उसकी सेना में विद्रोहियों की सेना से अधिक सैनिक थे। पराजय के पश्चात् उसने आत्महत्या कर ली। इस महान् विपत्ति के कारण स्पेन में अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हो गया और जाँच की तीव्र माँगें की गयीं। वह जाँच हुई परन्तु उनके निर्णयों (खोजों) को कठोरता से दबा दिया गया। तो भी उसके कारण अत्यन्त अमर्षपूर्ण सार्वजनिक विवाद उठ खड़ा हुआ और उसके कारण नरेश की शक्ति को महान् क्षति पहुँची क्योंकि इस दुर्भाग्यपूर्ण मामले में उसका अवैध एवं संयमहीन भाग था। ऐसा कहा जाता था कि इस मामले के दबाये हुये वर्णन में राजतन्त्र को समाप्त करने की माँग की गयी थी। एक ओर यह असम्मानजनक दुर्भाग्यपूर्ण मामला स्पेन के जनमत को भयानक रूप से प्रभावित कर रहा था, (उसी समय) दूसरी ओर इटली की सफल फासिस्टवादी क्रान्ति हो रही थी। इसने सामान्य उत्तेजना को प्रवर्द्धित कर दिया और असन्तुष्ट तथा क्रुद्ध स्पेनवासियों के मस्तिष्कों को और अधिक उत्तेजित कर दिया।

इस अशोभनीय तथा व्ययसाध्य घटना से नरेश अलफौंजो को क्षति पहुँची क्योंकि ऐसी कल्पना की जाती थी कि उसने अपने सेनाध्यक्षों से बिना परामर्श लिये हुए उच्च स्तर पर इस युद्ध का समर्थन किया था। ऐसा विश्वास था कि इस मामले में उसका हाथ था। परन्तु यह सकारात्मक रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता था। यह भी स्पष्ट दिखाई देता है कि इसके कारण उसने एक अन्य उग्रवादी कार्य अधिनायकत्व की स्थापना को अपनी सहमति प्रदान कर दी ताकि यह गम्भीर कठिनाई दूर की जा सके। कम से कम १३ सितम्बर १९२३ को लोकप्रिय सेनाध्यक्ष जनरल प्राइमो डी रिवैरा ने स्पेन में शक्ति प्रयोग करके अधिनायकत्व की स्थापना की। इसने संविधान को निलम्बित कर दिया, सैनिक शासन की स्थापना की और सैनिक विधि (मार्शल लॉ) की उद्घोषणा की। उसने संसद को भंग कर दिया और भाषण तथा प्रकाशन की स्वतन्त्रता आदि के अधिकारों का दमन किया। उसने कुछ सुधारों को लागू करने का प्रयत्न भी किया ताकि देश की आर्थिक दशा सुधर जावे। चाहे वह अच्छी बात का समर्थन करता, चाहे वह बुरी बात का समर्थन करता किन्तु वह जनमत पर विजय पाने में असफल रहा और अधिकाधिक अप्रिय होता चला गया। अन्त में हतोत्साहित तथा अस्वस्थ होने के कारण और नरेश तथा सेना के नेताओं द्वारा साथ न दिये जाने के कारण उसने पदत्याग कर दिया और वह फ्रांस चला गया। वहाँ १९३० में उसकी मृत्यु हो गयी।

प्राइमो डी रिवैरा

उसका उत्तराधिकारी जनरल वैरेंगुअर हुआ। यह पहले मौरोको में राजदूत रह चुका था उसने अधिक अनुग्रवादी शासन प्रारम्भ किया परन्तु वह कुछ देर से सत्तारूढ़ हुआ था। मैडरिड की सड़कों पर ये नारे सुने जाते थे—"नरेश तथा राजतन्त्र समाप्त हो!" गणतन्त्रवादियों ने नई सभा के लिए प्रत्यक्ष रूप से तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। विद्यार्थियों ने गणतन्त्र की माँग को दोहराया और बहुत से गिरफ्तार कर लिये गये। इस उदीयमान सिद्ध होने वाला ज्वार (विद्रोह) के विरुद्ध नरेश और उसके मन्त्रियों ने निराशापूर्ण तथा तन्मयतापूर्ण संघर्ष किया। यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि जनमत गणतन्त्रवाद के पक्ष में बड़ी तेजी से होता जा रहा था। सहस्रों गणतन्त्रवादी कारागृहों में डाल दिये परन्तु इससे इस आन्दोलन में वृद्धि ही हुई। स्पेन निवासी अपने नरेश तथा राजतन्त्र से तंग आ गये थे, और वे शासन की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहते थे तथा स्वतन्त्र बौद्धिक लोकप्रिय शासन पद्धति की स्थापना करना चाहते थे। उनकी नीति आमूल एवं व्यापक सुधारों की थी जो कि पुरानी घृणित सरकार को समाप्त कर देगी तथा एक अत्युग्र, अति क्रान्तिकारी एवं और भी अधिक क्रान्तिकारी सरकार को पुनः स्थापित करेगी क्योंकि इतने दीर्घकाल से वह स्थापित नहीं होने दी गयी थी। १२ अप्रैल १९३१ को राजतंत्र की समाप्ति हो गयी। इसी समय सम्पूर्ण स्पेन में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के निर्वाचन हुये थे जिनका परिणाम गणतन्त्रवादियों के अनुकूल रहा। यदि नरेश ने तत्काल सिंहासन नहीं त्यागा तो सशस्त्र क्रान्ति के स्पष्ट चिन्ह दिखाई दे रहे थे। इस प्रकार गर्विष्ट बॉरबून वंश का अन्त हो गया। १४ अप्रैल को अलफॉन्जो त्रयोदश एक स्वचालित कार में बैठकर समुद्र के तट पर स्थित कार्टाजीना चला गया और वहाँ से फ्रांस चला गया। उसने औपचारिक रूप से सिंहासन को नहीं त्यागा प्रत्युत, नरेश के

स्पेन में गणतन्त्रवाद की वृद्धि

अधिकारों के उपभोग का निलम्बन मात्र किया था। उसने कहा था कि देश की जनता ही 'सामूहिक' रूप से अपने भविष्य के विषय में अपने मत को अभिव्यक्त कर सकती है। वे राजतन्त्र के पक्ष में मतदान करें अथवा गणतन्त्र के पक्ष में, यह उनका कार्य था।

नरेश अलफॉन्जो त्रयोदश के पलायन के पश्चात् गणतन्त्रवादियों के नेता निकेटो अलकाला जमोरा को स्पेन का अस्थायी राष्ट्रपति उद्घोषित किया गया। उसको गणतन्त्र का कार्य संचालन उस समय तक करना था जब तक कि कुछ सप्ताह पश्चात् सांविधानिक कार्टेज (संसद) का अधिवेशन नहीं होता है और उसको महत्त्वपूर्ण कार्यों को नियन्त्रित करना था। उसके मन्त्रिमण्डल ने अभिजात वर्गों की सभी उपाधियों को समाप्त कर दिया। इसने निर्वाचन पद्धति को परिवर्तित कर दिया ताकि वह वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल बन जावे। किन्तु उसका प्रमुख कार्य था जून १९३१ के कॉर्टेज के निर्वाचनों का संचालन। १९२३ में जब से अधिनायकत्व की स्थापना की गयी थी तब से कोई भी निर्वाचन नहीं हुआ था।

नरेश का पलायन

जून २८, १९३१ को निर्वाचन हुए और परिणाम भारी बहुमत से गणतन्त्रवादियों के अनुकूल रहा। अब तो ४७० सदस्य चुने गये थे उनमें से अधिकांश प्रथम बार ही निर्वाचित हुये थे। उनमें से केवल १४ सदस्यों का ही इससे पूर्व कभी निर्वाचन हुआ था। पच्चीस से अधिक दलों के प्रत्याशियों ने चुनाव में भाग लिया था जिनमें से गणतन्त्रवादियों की संख्या अत्यधिक थी। ११७ स्थान समाजवादियों ने प्राप्त किये, ९३ स्थान उग्रवादियों ने प्राप्त किये तथा अन्य बहुसंख्यक दलों के। अलग-अलग प्रत्याशी तो कम संख्या में ही चुने गये परन्तु उन सब की सम्मिलित संख्या पर्याप्त थी। १४ जुलाई को सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। लगभग पाँच मास में प्रायः लम्बे और कभी-कभी आवेशपूर्ण विवादों के पश्चात् ९ दिसम्बर १९३१ को इसने संविधान को पारित कर दिया जिसमें १२५ अनुच्छेद थे। यह एक उग्रवादी और व्यापक मूलभूत विधि थी और एक सर्वाधिक लोकतान्त्रिक विधि थी जो कभी भी निर्मित हुई हो।

गणतन्त्रात्मक कॉर्टेज

स्पेन को "सभी वर्गों के श्रमिकों का लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र" घोषित किया गया। २३ वर्ष से अधिक आयु के सभी स्त्री-पुरुषों को मताधिकार दिया गया। एकसदनात्मक व्यवस्थापिका अथवा कार्टेज होगी जो चार वर्ष की अवधि के लिये निर्वाचित की जावेगी। राष्ट्रपति का निर्वाचन ६ वर्ष की अवधि के लिये उस संस्था के द्वारा किया जावेगा जिसमें कार्टेज के ४७० सदस्य होंगे तथा अन्य ४७० सदस्य होंगे जिनको मतदाताओं ने सार्वजनिक रूप से चुना हो। राष्ट्रपति स्वयं अपना उत्तराधिकारी नहीं बन सकता है तथा कोई भी सैनिक अधिकारी, पादरी और किसी भी राष्ट्र के राजवंश का कोई भी सदस्य राष्ट्रपलि नहीं चुना जा सकता है। जब तक मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य अपने प्रतिहस्ताक्षर नहीं करेगा तब तक राष्ट्रपति का कोई भी कार्य वैध नहीं माना जावेगा। राजनीतिक दृष्टिकोण से स्पेन लोकतान्त्रिक संसदात्मक गणतन्त्र होगा। एक वर्ष में कार्टेज को केवल दो बार निलंबित किया जा सकता है और राष्ट्रपति की एक पदावधि में उसको दो बार से अधिक विघटित नहीं किया जा सकता है।

ऐसा प्रतीत होगा कि सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक मामलों में यह संविधान राजनीतिक गठन की अपेक्षा अधिक उग्रवादी (सिद्धान्तों पर आधारित) था और इस क्षेत्र में वह अतीत की अपेक्षाकृत अधिक असंबद्ध था। राज्य का कोई भी चर्च नहीं होगा और धर्म की पूरी स्वतन्त्रता होगी। शिक्षा धर्म निरपेक्ष होगी। विवाहित स्त्री अथवा पुरुष (दोनों में से कोई भी) सम्बन्ध विच्छेद की माँग करके उसे सम्पादित करा सकेगा और वैध अथवा अवैध सन्तान को समान अधिकार प्राप्त होंगे। सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी सामान्य सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया। प्रतिकर देकर सम्पूर्ण व्यक्तिगत सम्पत्ति को राज्य अधिगृहीत कर सकेगा। राज्य समस्त वृहत् सम्पदाओं का समाजीकरण कर सकेगा और सभी सार्वजनिक उपयोगिताओं का राष्ट्रीकरण कर सकेगा। अस्तु देश की सम्पत्ति देश के हितों के अधीन रहेगी।

उग्रवादी संविधान

'राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में युद्ध' का परित्याग कर दिया गया। राष्ट्रपति द्वारा युद्ध को घोषित करने की शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जावेगा जबकि इस बात का प्रमाण हो कि 'वह राष्ट्रसंघ के समझौते में उल्लिखित शर्तों के अनुसार है, और इसको रोकने के अन्य सभी उपाय असफल रहे।

संक्षेप में स्पेन के नये संविधान के प्रमुख अनुच्छेद इसी प्रकार के थे। ९ दिसम्बर १९२१ से इसके लागू होने की उद्घोषणा की गयी और दूसरे दिन निकेटो जमोरा को, जिसने अस्थाई कार्यपालिका के पद से पहले ही त्यागपत्र दे दिया था, राष्ट्रपति निर्वाचित कर दिया गया और वह भूतपूर्व नरेश अलफॉन्जो के राजप्रसाद में पदासीन हुआ। सांविधानिक संस्था के रूप में कार्टेज का अन्त हो गया परन्तु वह साधारण व्यवस्थापिका के रूप में दो वर्ष तक और कार्य करती रही और इस रूप में इसने ऐसी कई विधियाँ पारित कीं जो कि संविधान के अनुसार आवश्यक अथवा वांछनीय थीं और उस अभिलेख में उनको वास्तविक रूप नहीं दिया गया था। इनमें से कुछ विधियों ने तो उस कार्य को विवरणात्मक रूप से पूरा किया जो सार रूप में सन्निहित थीं। प्रधानमन्त्री ने यह उद्घोषणा की कि "हमने प्रथम चरण समाप्त कर दिया है। अब पूरक विधियों को पारित करके हम को इस क्रांति को पूरा करना चाहिये।

निकेटो जमोरा का राष्ट्रपति चुना जाना

संविधान को समाप्त करने के पश्चात् कार्टेज (संसद) स्थगित नहीं हुई प्रत्युत वह आगे दो वर्ष तक साधारण व्यवस्थापिका के रूप में कार्य करती रही किन्तु उसको असाधारण महत्त्व के कर्तव्यों को पूरा करना था। संविधान शासन के रूपों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर सकता था परन्तु वह आवश्यक समस्याओं से संबंधित विवरणपूर्ण विधान पारित नहीं कर सकता था। यह संसद द्वारा अपनी व्यावहारिक (परंपरागत) पद्धति से कार्य करने पर ही हो सकता है। साथ ही उन मूलभूत सुधारों के कार्य को करने के पूर्व जो कि उद्घोषित उद्देश्य को प्राप्त करेंगे यह संसद (कार्टेज) अपने स्थान पर नई सभा को आने देना भयानक समझती थी। अतः यह अपना कठिन कार्य करती रही। इस प्रकार का पहला कार्य यह था: भूतपूर्व नरेश को सिद्ध देशद्रोही घोषित करना, उसको स्पेन के सभी अधिकारों और उपाधियों से वंचित करना, यदि वह कभी अपने देश को लौटने का साहस करे तो

व्यवस्थापिका के रूप में कार्टेज

उसके लिए अनंतकालीन कारावास को लागू करना लगभग १०,०००,००० डालर के मूल्य को उस सम्पत्ति को राज्यसात् करना। उसने जैसूइट[1] संप्रदाय को समाप्त कर दिया और उसकी संपत्ति को राज्यसात् कर दिया। इस सम्पत्ति का मूल्य ३०,०००,००० डालर था। इस सम्पत्ति को उसने सामाजिक कल्याण के लिये वितरण करने का आदेश दिया। सैकड़ों जैसूइट देश से निकाल दिये गये। ५० के विरुद्ध २७७ के भारी बहुमत से मई १९२३ में इसने विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की सदस्यता को नियन्त्रित करने वाली विधि पारित की। उनको व्यापार करने तथा धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार की शिक्षा प्रदान करने से रोका गया। शिक्षा को अधार्मिक विषय (lay affair) उद्घोषित किया गया और १९३३ के अन्त में सभी प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय राज्य द्वारा उसके अधिकार में ले लिये जाते थे और धर्म निरपेक्ष स्तर पर उनका संचालन होता था। चर्च की सम्पूर्ण सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण की उद्घोषणा कर दी गयी। कहा जाता है कि इसका मूल्य पाँच खरब डालर था। १९३३ के अन्त से पादरियों का भरण-शोषण राज्य द्वारा नहीं किया जावेगा। लगभग ४०,००० पादरी थे। १९३१ और १९३२ में ७४०० नये राजकीय विद्यालय खोले गये। परन्तु ये केवल श्रीगणेश मात्र था। अनुमानतः लगभग ४५% स्पेनिश जनता अपढ़ थी और यथाशीघ्र इनके लिए शिक्षा की व्यवस्था की जानी थी। मई १९३३ में इसमें से अधिकांश विधान का पोप द्वारा विरोध किया गया। उसने जैसूइटों के प्रति किये गये व्यवहार का, धार्मिक संस्थाओं द्वारा शिक्षा देने पर प्रतिबन्ध का और उसको धर्म निरपेक्ष बनाने का, चर्च तथा राज्य के पृथक्करण का विद्रोह किया। यह बात अनिश्चित रही कि उसके विरोध के कारण पूर्व सम्मत व्यवस्थाओं में कोई परिवर्तन होगा अथवा नहीं।

पोप का स्थान

कृषि सुधार के उद्देश्य से विधान पारित किया गया। स्पेन के कुलीनों की बड़ी बड़ी सम्प्रदायें राज्य द्वारा छीन ली गयीं और राष्ट्र की इच्छानुसार उनकी व्यवस्था किये जाने की उद्घोषणा कर दी गयी। सितम्बर १९३२ में यह घोषणा की गई कि ५०० लाख एकड़ से अधिक भूमि का वितरण किया जावेगा जो कि पहले नरेश तथा उन लोगों के अधिकार में थी जिनको उसने प्रदान कर दिया था। ऐसी कल्पना की गयी थी कि इससे लगभग दस लाख स्पेनवासियों को सहायता मिलेगी। अन्त में तीन मास के विवाद के पश्चात् कैटालोनिया की माँगें भी स्वीकार कर ली गयीं। कटालोनिया का अपना निजी पृथक राज्य-शासन अपनी (पृथक्) संसद, अपना (पृथक्) राष्ट्रपति, अपना (पृथक्) लोकप्रिय राष्ट्रगीत, तथा अपना (पृथक) झण्डा होगा। उसकी भाषा को भी पूर्व मान्यता प्रदान की गयी। १७०५ के पश्चात् दिसंबर १९३२ में केवल कैटालोनिया का प्रतिनिधित्व करने वाली संसद का सर्वप्रथम अधिवेशन हुआ।

८ अक्टूबर १९३३ को कॉर्टेज समाप्त हो गयी और अगले मास में नये गणतन्त्रात्मक संविधान के अन्तर्गत प्रथम निर्वाचन हुआ। वास्तव में प्रतिक्रिया पहले ही प्रारम्भ हो गई थी परन्तु वह कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी और इसका कितना

---

1. ईसाइयों का एक सम्प्रदाय जिसकी स्थापना १५३४ में इग्नेशियस लायला ने की थी।

प्रभाव पड़ेगा; यह अनिश्चित था। यह बात तो स्पष्ट थी कि सुधार करने वाली संसद (कार्टेज) द्वारा जो इतने व्यापक तथा उदार परिवर्तन किये गये थे उनसे पीछे हटना पड़ेगा। परन्तु कितना पीछे हटना होगा? यह देखना शेष रहा।

१९३३ की नवीन कार्टेज

नवीन कार्टेज के १९३३ के नवम्बर-दिसम्बर के निर्वाचन ने इस प्रश्न का निर्णायक उत्तर दिया। इसने गणतन्त्र के दुर्भाग्य के चिह्न प्रकट किये क्योंकि इसमें निर्वाचित राजतन्त्रवादियों की संख्या में अभिवृद्धि तथा गणतन्त्रवादियों की संख्या में बड़ी भारी न्यूनता प्रकट हुई। ४७० सदस्यों में से २०० सदस्य राजतन्त्रवादी दलों के चुने गये और यदि उनको **सीनर लीरक्स** का समर्थन प्राप्त हो जाता तो उनका बहुमत हो जाता। इस प्रकार १९२१ के निर्वाचनों से चला आता हुआ उनका अल्पमत बहुमत में परिणत हो जाता। प्रक्रियावादी दलों ने देश का नियन्त्रण अपने हाथों में लेने का प्रयत्न किया क्योंकि उनका विश्वा स था कि यदि वे श्रमिक वर्गों पर अपना राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकार स्थापित कर लेंगे तो वे भूतपूर्व शासन की पुनः स्थापना कर सकेंगे। भूसंपदा का संरक्षण तथा कैथोलिक धर्म की सुरक्षा ही उनके दो उद्देश्य थे। लीरक्स, जोकि सर्वाधिक अनुदार गणतन्त्र वादियों का नेता था, सितम्बर १९३३ में मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष बना और वह १९३१ की गणतन्त्रात्मक कार्टेज द्वारा पारित विधियों को कुशासनात्मक ढंग से लागू अथवा निलंबित करने लगा और उनके अभाव में गणतन्त्र दुर्बल हो जावेगा और संभवतः उसका पतन हो जावेगा। राष्ट्रीय नीति का यह परिवर्तन कहाँ तक होगा? इसके विषय में कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता था। गणतन्त्रवादी तथा समाज-वादी दोनों ही दलों के कम प्रत्याशी निर्वाचित हुए थे। राजतन्त्रवादियों ने समाजवादियों का विशेष कटुता से सामना किया था। यदि संभव होता तो वे उनको पूर्ण रूप से नष्ट करने के लिये कृत संकल्प थे। परिणाम यह हुआ कि देश भर में सैकड़ों समाजवादी मारे गये और घायल हुए। इससे गणतन्त्र की पर्याप्त हानि हुई।

स्पेन के गणतन्त्र की भावी प्रवृत्ति संदेहपूर्ण थी तथापि यह बात विश्वास के साथ देखी जा सकती थी कि ऐतिहासिक राजतन्त्र की पुनः स्थापना नहीं होगी क्योंकि अभी हाल में एक स्पेनी लेखक[1] ने लिखा है "अफॉन्जो तृतीय का व्यक्तिगत जीवन, उसके कार्यों का वित्तीय पक्ष, उसकी महान् राजनीतिक भूलें और अपने परिवार को छोड़कर १४ अप्रैल का उसका पलायन उसको बहुसंख्यक स्पेन निवासियों के लिये अस्वीकार्य बना चुके हैं।"

परन्तु गणतन्त्र का भविष्य अत्यन्त संदिग्ध रहा। राजनीति की तात्कालिक प्रवृत्ति अनुदारता अथवा प्रतिक्रिया की ओर उन्मुख थी। दोनों वर्गों ने संसद को आमन्त्रित किया किन्तु वह अनुदारवादियों के अधिक अनुकूल रही। उसने पादरियों के अनुकूल, भूस्वामियों के अनुकूल, अधिकार प्राप्त वर्ग के अनुकूल, और उन लोगों के अनुकूल विधियाँ पारित कीं जो हृदय से राजतन्त्रवादी माने जाते थे। वामपक्षी नेता शीघ्र ही इस परिणाम पर पहुँचे कि वे अनुदारवादी गणतन्त्र के अस्तित्व को ही संकट में डाल रहे थे। जो अधिनियम कैटालोनिया के निवासियों के अनुकूल

---

1 देखिये पृष्ठ ४७०, **'विदेशीमामले'**, लेखक लुई अराकुइस्टेन (जोकि एक स्पेनिश राजनीतिज्ञ तथा भूतपूर्व कार्टेज का सदस्य था) अप्रैल १९३४।

अतीत में पारित तथा कार्यान्वित किये गये थे वे धीरे-धीरे वापस लिये जाने लगे अथवा उन पर प्रतिवन्ध लगाये जाने लगे। १९३५ की ग्रीष्म ऋतु में चर्च, शिक्षा, भूमि सुधार, से सम्वन्ध रखने वाली कई विधियों पर विवाद हुआ अथवा उनके लिये वचन दिया गया। ये प्रस्ताव दक्षिण पंथियों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करते थे। वास्तव में संसद् में दक्षिण तथा वामपंथियों में वड़े कटुतापूर्ण संघर्ष हुए। फरवरी १९३६ के लिए नये निर्वाचनों की उद्घोषणा की गयी। इन निर्वाचनों के फलस्वरूप वामपक्षी दलों के वहुसंख्यक प्रत्याशी चुने गये। दोनों विरोधी वर्गों का यह संघर्ष चलता रहा। अन्त में जून १९३६ में इसकी परिणति गृहयुद्ध के प्रारम्भ में हुई। ऐसा प्रतीत होता था कि भविष्य का निर्णय परम्परागत राजनीतिक प्रक्रियाओं द्वारा नहीं होगा वरन् सशस्त्र संघर्ष और शक्ति के द्वारा होगा। दक्षिण पक्षीय दलों तथा वहुसंख्यक सैनिक अधिकारियों ने इस संघर्ष को प्रारम्भ किया। यह सर्वप्रथम मौरोको में उन सेनाध्यक्षों के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ था जिनको विध्वंसक कार्यवाहियों के लिए दण्डित करके उस उपनिवेश में भेज दिया था। तदनंतर यह शीघ्र ही स्पेन में भी फैल गया। इस विद्रोह के नेता जनरल फ्रांसिस्को फ्रैंको तथा ईमीलियोमोला थे। जनरल मोला का देहावसान मई १९३७ में हुआ। उन्होंने स्पेनी प्रायद्वीप के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों का समर्थन प्राप्त कर लिया और वे धीरे-धीरे मैडरिड की ओर मुड़े। यह संघर्ष फासिस्टी दक्षिण पक्ष तथा गणतन्त्रतात्मक वाम पक्ष के मध्य में स्पेन पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए हो रहा था। दोनों पक्षों को विदेशी सहायता मिल रही थी। युद्ध में अत्यन्त रक्त वहाया गया और नर संहार हुआ और इन शब्दों के लिखने के समय प्रत्यक्षतः अनुदारवादियों के अनुकूल चल रहा था जिनमें राजतन्त्रवादियों के अनुयायी, अभिजात वर्ग, पादरी और धनी मध्य वर्ग सम्मिलित थे। इस गृहयुद्ध (भाई-भाई के युद्ध) का अन्तिम परिणाम क्या होगा ? इसको कोई नहीं वता सकता है।

अध्याय ५०

१९१८ के पश्चात् का यूगोस्लाविया

युद्ध के परिणाम स्वरूप एक नवीन राज्य का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें पूर्व संस्थापित राष्ट्र सर्बिया तथा आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य का कुछ भाग अर्थात् क्रोशिया और स्लॉवानिया सम्मिलित थे जोकि इससे संयोजित होना चाहते थे। १९१७ की ग्रीष्म ऋतु में इन क्षेत्रों के प्रतिनिधियों की बैठक कॉर्फू में हुई और वे 'सांविधानिक, लोकतांत्रिक, संसादात्मक राजतंत्र की स्थापना पर सहमत हो गये जिसका नाम होगा **'सर्बो, क्रोटों और स्लॉवीनों कॉर्फू का आविष्पत्र** का राज्य'। कॉर्फू के आविष्पत्र को यूगोस्लाविया के 'जन्म का प्रमाणपत्र' कहा जाता है। नवीन राज्य का अपना झंडा होगा। साथ ही उसके तीनों भागों के भी अपने अपने झंडे होंगे। यद्यपि ये तीनों वर्ग एक स्लाविक प्रजाति के ही थे और वे एक सहस्र वर्ष से एक ही क्षेत्र में रहते थे तथापि वे पहले कभी भी एक सूत्र में नहीं बँधे थे। पहले सर्बिया तुर्की साम्राज्य का अंग था और वह तब उन्नीसवीं शती में स्वतन्त्र हुआ था। यद्यपि वे अनिच्छुक अंग थे तथापि क्रोशिया और स्लावॉनिया आस्ट्रिया-हंगरी के राजतन्त्र के दीर्घकाल से अंग रहे थे। तीनों स्लैव प्रजातीय थे तथापि एक-दूसरे से पृथक् रहने के कारण उनमें ऐसी विभिन्नताओं का विकास हो गया था जिनके कारण उनके अपने एकीकृत राज्य की स्थापना कठिन हो गयी थी। यद्यपि उनकी भाषा प्रायः एक ही थी तथापि उन्होंने उसको दो भिन्न वर्णमालाओं—सिरिलिक तथा लैटिन—द्वारा अभिव्यंजित किया था और इन दोनों को ही अक्षुण्ण रखना था। एकही वंश की इन शाखाओं को तीन धर्मों ने विभक्त कर दिया था। सर्व अथवा सर्बिया वासी यूनानी कथौलिक थे, क्रोट तथा स्लॉवीन अधिकांशतः रोमन कैथोलिक थे। और इन तीनों में लगभग १५ लाख मुसलमान थे अतः तीनों धर्मों को समानता की प्रत्याभूति दी जानी थी। इस कॉर्फू आविष्पत्र ने यही उद्घोषणा की और उसने यह भी उद्घोषणा की कि शीघ्रातिशीघ्र

इस नवीन राज्य के लिए मूलविधि को तैयार करने के लिए संविधान सभा की बैठक होनी चाहिए। यह राज्य इन विविध तत्वों के योग से प्रादुर्भूत होने वाला था।

परन्तु कॉर्फू उद्घोषणा एक बात पर मौन थी। इस स्लाविक वंश की तीनों शाखाओं का भावी शासन एकात्मक होगा अथवा संघात्मक ? शीघ्र ही यह भी प्रकट हो गया कि इस विषय में जनता में गम्भीर मतभेद था और इस मतभेद के कारण अपने निर्माणकाल से इस नवीन राज्य के विकास को प्रत्यक्षतः बाधा पहुँची है और वह मतभेद बना रहा है। दोनों नीतियों में संघर्ष ही संघर्ष हो गया और आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य के विघटन के पश्चात् संघ के स्थापित होने पर दीर्घकाल तक कटुतापूर्ण विवाद चलता रहा। एकात्मकवादी दल का नेता निकोलस पैशिच प्रधान मन्त्री था जिसको साधारण जनता 'सर्विया के महान् वृद्ध व्यक्ति' के नाम से सम्मानित करती थी। संघात्मकवादी दल का नेता स्टीफन रैचडि था जिसको क्रोशिया का राजमुकुट हीन नरेश कहा जाता था। विश्व के इस भाग में नवीन व्यवस्था के विकास में इन दो व्यक्तियों की घनीभूत तथा कूटतापूर्ण प्रतिस्पर्धा ने कई वर्षों तक गम्भीर बाधा उपस्थित की। वास्तव में कोई भी व्यक्ति निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता था कि यह नवीन राज्य स्थायी रूप से बना रहेगा।

एकात्मक अथवा संघात्मक राज्य

एकात्मक राज्य के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हुए पैशिच ने यह संकेत किया कि हंगरी से प्राप्त किया हुआ कुछ प्रदेश राजनीतिक अर्थ में अविकसित था; कि यूगोस्लाविया समानों का संघ नहीं होगा क्योंकि उस देश के विभिन्न भाग पूर्णतः असमान थे; कि राष्ट्र की अपेक्षा सर्विया वृहत्तर एवं शासन का अधिक अनुभव रखता था और इसलिए संघात्मक राज्य में भी उसका प्राधान्य रहेगा। रैचडि ने उत्तर दिया कि हंगरी का भाग होते हुए भी क्रोशिया ने अपना शासन दीर्घकाल से स्वयं किया था, इसलिए उसको अत्यन्त उपयोगी अनुभव प्राप्त था और उसको उस अनुभव (शासन) को जारी रखने का अधिकार था और उसने यह भी कहा कि सर्विया की अपेक्षा क्रोशिया अधिक प्रगतिशील देश था और इसलिए वह राजनीतिक अर्थ में उससे निम्नतर अथवा उसके अधीन नहीं होना चाहिए।

१९२० के अन्त तक सांविधानिक सम्मेलन नहीं बुलाया गया क्योंकि यह नवीन राज्य अपनी सीमाओं की व्यवस्था करने में व्यस्त था और वह उस प्रकार तब तक व्यस्त रहा जब तक कि इटली के साथ रैवैलों की संधि के अनुसार एड्रियाटिक क्षेत्र में पृथक करने वाली सीमा रेखा निर्धारित नहीं हो गयी। तब नवम्बर १९२० के अन्त में एक सम्मेलन बुलाया गया और अगले जून के अन्त तक एक संविधान निर्मित एवं पारित कर दिया गया। यह संविधान पैशिच के अनुकूल था। इसने सम्पूर्ण शक्ति को बैलग्रेड में स्थित एकसदनात्मक संसद अथवा स्कुपशितना में केन्द्रित कर दिया। प्रान्तों तथा नगरों का स्थानीय शासन स्पष्ट रूप से इसके अधीन कर दिया गया। यह संविधान स्वीकार कर लिया गया परन्तु क्रोशिया के प्रतिनिधियों ने इसके निर्माण अथवा स्वीकृति में भाग लेना अस्वीकार कर दिया और ट्रंबिच तथा प्रौटिच जैसे विख्यात सर्बों ने भी इसका तीव्र विरोध किया। इस प्रकार प्रारम्भ से विरोधी

संविधान सभा

दल विद्यमान था जोकि उस समय पारित व्यवस्था के परिवर्तन की माँग कर रहा था। क्रोशियावासियों ने उस संविधान को मान्यता प्रदान नहीं की। वे स्कुपुश्तिना (संसद्) में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए सहमत नहीं हुए। उनके नेता रैंचिड को सब लोग अत्यन्त घृणा करते थे। उनके द्वारा पीछा किये जाने के कारण उसने अपना अधिकांश समय कारावास में अथवा देश से निष्कासित होकर विदेशों में व्यतीत किया। अन्त में १९२४ में उसने क्रोशिया के प्रतिनिधियों को संसद में अपना स्थान ग्रहण करने की आज्ञा देदी क्योंकि रूस ने यह निष्कर्ष निकाला था कि वे अपनी विध्वंसात्मक कार्यवाही बाहर रहकर उतने सुचारु रूप से नहीं कर सकते थे जितने सुचारु रूप से सभा के भीतर रहकर कर सकते थे। फलस्वरूप १२९४ के मार्च में पैशिच को विवश होकर पद-त्याग करना पड़ा तथापि कई मास तक व्यवस्थापिका की अशांति एवं शक्तिहीनता के पश्चात् नरेश ने उसको सत्तारूढ़ होने के लिए पुनः आमंत्रित किया और उसको रैंचडि की कटुतापूर्ण शत्रुता को समाप्त करने का आदेश दिया। रैंडिच को तत्काल देशद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। परन्तु विरोध यथा पूर्व होता रहा। अन्त में कारावास से मुक्त होने पर रैंडिच ने यह उद्घोषणा की कि उसका दल १९२१ के संविधान को स्वीकार कर लेगा और यदि उनको यह आश्वासन दिया जावे कि उसको शासन में स्थान दिया जावेगा तो वे संसद् में प्रवेश करेंगे। पैशिच सहमत हो गया और रैंडिच शिक्षा मन्त्री नियुक्त कर दिया गया परन्तु उसने अपनी आलोचना (आक्रमण) पूर्ववत् जारी रखी। अतः यह साझेदारी असफल रही। १९२६ में पैशिच की मृत्यु हो गयी और व्यवस्था बिगड़ गयी, सुधरी नहीं। रैंडिच ने मन्त्रिमन्डल पर विभिन्न कुकृत्यों का दोषारोपण करके अपनी नीति को जारी रखा। फलस्वरूप २१ जून १९२८ को संसद में जब क्रोशिया निवासियों द्वारा कुछ किये गये एक शासन समर्थक सदस्य ने पिस्तौल निकालकर उन पर गोली छोड़ दी तब एक हंगामा मच गया। दो मारे गये और स्वयं रैंडिच इतना घायल हुआ कि वह कुछ सप्ताह पश्चात् ८ अगस्त को परलोकवासी हो गया। क्रोशिया के प्रतिनिधि स्कुपश्तिना को त्याग कर चले गये और उन्होंने पुनः बाहर से विरोध का संगठन किया। संसदात्मक शासन का अन्त होता दीख पड़ता था। क्रोशिया निवासी अपनी व्यवस्थापिका स्थापित करने की बातें करने लगे। दिसम्बर १९२८ में उन्होंने राज्य के दसवें जन्मदिवस के उत्सव में भाग लेना अस्वीकार कर दिया।

नरेश अलक्षेन्द्र का हस्तक्षेप

१९२९ के प्रारम्भ में नरेश अलक्षेन्द्र ने निर्णयात्मक हस्तक्षेप किया। उसने संसद् को भंग कर दिया, संविधान को समाप्त कर दिया, राजनीतिक दलों का दमन किया और उसने नरेशीय अधिनायकत्व की स्थापना की जिसका अध्यक्ष जनरल जिवको विच था। उस समय सर्वो, क्रोटों और स्लॉवीनों का देश एक निरंकुश राजतन्त्र में परिवर्तित हो गया। राज्य में नरेश की सत्ता सर्वोपरि थी। अधिनायकतन्त्र की आलोचना की आज्ञा नहीं थी, उसको कोई भी विरोध नहीं कर सकता था, राजनीतिक सभाओं और हथियार रखने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। राज्य के विभिन्न भागों की विभिन्नताओं को दूर करने का प्रयत्न किया गया। देश की तीनों इकाईयों के झण्डों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और १९२८ में राजादेश द्वारा देश का नाम 'सर्वो क्रोटों और स्लावीनों के राज्य' के स्थान

पर 'यूगोस्लाविया का राज्य' रख दिया गया। इसका उद्देश्य यह था कि जनसंख्या के भिन्न-भिन्न तत्व अपने प्रजातीय उद्भव, इतिहास को भूल जावें और अपनी एकता पर बल दें।

इस तीन वर्ष के शासन के पश्चात् ३ सितम्बर १९३१ को नरेश ने सांविधानिक शासन पुनः लागू करने की उद्घोषणा की और उसने स्वयं यह घोषणा की राज्य में एक सदनात्मक व्यवस्थापिका होगी—**प्रतिनिधि सदन** के सदस्यों का निर्वाचन २१ वर्ष अथवा अधिक आयु के उस देश के सभी स्त्री-पुरुषों द्वारा चार वर्ष के लिये किया जावेगा और सीनेट के सदस्यों की कालावधि छः वर्ष होगी जिनमें से आधे निर्वाचित होंगे तथा आधे नरेश द्वारा नियुक्त किये जावेंगे। आगे चलकर यह भी उपबंधित किया गया कि सम्पूर्ण मतदान मौखिक होगा और जिस दल को बहुत से मत प्राप्त होंगे, उसको दो तिहाई राष्ट्रीय प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जावेगा। शीघ्र ही इस आधार पर निर्वाचन हुआ।

परन्तु नवीन पद्धति पुरानी पद्धति की अपेक्षा अच्छी सिद्ध होती हुई नहीं दिखाई दी। क्रोटों ने विरोध जारी रखा और स्थानीय इतिहास में उल्लेखनीय हिंसापूर्ण कार्य होते रहे। जगरीब के विश्वविद्यालय में एक लोकप्रिय प्राध्यापक, मिलान सफले, की हत्या की गयी और उनके दल के एक अन्य प्राध्यापक पर आगे चलकर पाशविक आक्रमण हुआ। तत्कालीन अधिनायकतन्त्र के विरुद्ध किये जाने वाले प्रदर्शनों का कठोरता से दबाया गया। १९३२ में कुछ समय के लिये बैलग्रेड विश्वविद्यालय का सत्र निलंबित कर दिया गया और प्राध्यापक गिरफ्तार कर लिये गये; और अधिनायकतन्त्र की आलोचना करने के लिये क्रोटों के नेताओं को कारागार में डाल दिया गया। इस प्रकार नवीन यूरोप के इस अशांत भाग में घटनाचक्र अशांतिपूर्ण तथा उपद्रवग्रस्त बना रहा। यह स्पष्ट था कि यूगोस्लाविया के राज्य में अभी तक राजनीतिक स्थिरता अथवा तालमेल स्थापित नहीं हुआ था तथापि उसका अस्तित्व बना रहा और **लघु मित्रभाव** में जैकोस्लॉवाकिया तथा रूमानिया का सह-सदस्य होने के कारण यूगोस्लाविया को अपनी शान्ति बनाये रखने में सहायता प्राप्त हुई जैसी कि विश्व के इस भाग में युद्ध के विजेताओं ने स्थापित की थी।

नरेश अलक्षेन्द्र का वध

९ अक्टूबर को १९३४ में नरेश अलक्षेन्द्र प्रथम की फ्रांस में मारसेल्स के स्थान पर हत्या कर दी गयी। उसको मकदूनिया के आतंकवादी नेता इवान मिहिलॉफ के अंगरक्षक व्लारको ज्यॉग्रीफ ने गोली से मार डाला था। उस समय उसकी हत्या की गयी थी जबकि वह फ्रांस के विदेश मन्त्री बर्थू के साथ बातचीत करने पेरिस जा रहा था। यह बातचीत बार्थू के यूगोस्लाविया तथा इटली में समझौता कराने के प्रस्ताव से सम्बन्ध रखती थी। फ्रांस, इटली, यूगोस्लाविया राजनीतिक समझौते के पूर्व उस समझौते का होना प्राथमिक कार्य था। अलक्षेन्द्र जैसे दृढ़ व्यक्ति के न रहने से यूगोस्लाविया संकटग्रस्त हो गयी। क्योंकि विदेशों में उसके शक्तिशाली शत्रु थे और देश के भीतर के प्रजातीय, वर्गीय तथा धार्मिक विभेदों के कारण वह दुर्बल हो गया था। इस हत्या का दोषारोपण पहले तो इटली के षड्यन्त्रों पर किया गया और फलतः

देश के विभिन्न स्थालों पर इटली विरोधी उपद्रव हुए परन्तु शीघ्र ही राष्ट्रीय क्रोध का विषय हंगरी बन गया क्योंकि इस बात का पता लग गया कि मकदूनिया का रहने वाला व्यक्ति, जिसने हत्या की थी, यूगोस्लाविया की सीमा के समीप हंगरी में स्थित जंका युज्ता के कोट आतंकवादी प्रशिक्षण शिविर में प्रशिक्षित हुआ था।

अलक्षेन्द्र का उत्तराधिकारी उस का पुत्र पीटर द्वितीय बना जो कि इंगलैंड में ग्यारह वर्ष की आयु में विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। वह शीघ्र ही अपने देश को वापस बुला लिया गया और वहाँ पर उसको अभिभावकों और शिक्षकों की देख-रेख में तब तक के लिये रख दिया गया जब तक वह वयस्क न हो जावे।

अध्याय ५१

रूमानिया, यूनान तथा बलगेरिया

दक्षिण पूर्वी यूरोप

जिस भाग से युद्ध का तात्कलिक कारण उत्पन्न हुआ था वह उस संघर्ष में से अत्यंत परिवर्तित निस्रत हुआ। यह बलकान प्रायद्वीप अथवा पूर्वीय यूरोप था। इस भू-भाग में १९वीं शती में कई स्वतन्त्र किन्तु लघु राज्यों का उदय हुआ था: रूमानिया, बलगेरिया, यूनान, और सर्बिया। साथ ही निकट अतीत काल में किन्तु अनिश्चित अर्थ में अलबानिया का प्रादुर्भाव भी हुआ था। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में युद्ध हुआ था। यह शेष सम्पूर्ण यूरोप तथा वास्तव में सम्पूर्ण विश्व में भी उसी प्रकार लड़ा गया था जिस प्रकार इस क्षेत्र में। इसके महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए थे। इस संघर्ष में से कई बलकान राज्य बृहत्तर तथा शक्तिशाली होकर निस्रत हुए थे परन्तु उनके समक्ष कठिन एवं विवादग्रस्त समस्यायें थीं जो स्थिति के स्थायित्व को चुनौती देती थीं।

इनमें एक अनिश्चित तथा अशान्त राज्य था रूमानिया जो कि अपना उद्-भाव प्राचीन रोम की बाहरी चौकी तथा उपनिवेश से बतलाता था। जिस काल का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है उस काल में इस पर इन नरेशों का शासन रहा है। कार्लो प्रथम (१८६६ से १९१४) और फर्डीनैण्ड प्रथम (१९१४ से १९२७)। इनके पश्चात् कार्लो द्वितीय सिंहासन पर बैठा परन्तु उसने १९२५ में रूमानिया के सिंहासन पर बैठने के अपने उत्तराधिकार का परित्याग कर दिया था और अपनी प्रेयसी मैडमी लूयैस्कू के साथ पैरिस में आमोद-प्रमोद में जीवन व्यतीत करता रहा था। आगे चलकर १९३० में वह वायुयान द्वारा बुखारेस्ट लौटा और उसने सिंहासन की पुनः माँग की जो कि शीघ्र ही उसकी प्रजा ने उसको दे दिया। इस प्रकार सिद्धान्ततः कार्लो द्वितीय अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् से १९२७ से ही रूमानिया का नरेश रहा था किन्तु वास्तव में उसने इस राज्य पर १९३० से ही राज्य किया है।

युद्ध के कारण रूमानिया की उपलब्धियाँ

रूमानिया ने १९१६ से केन्द्रीय शक्तियों के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया था। किन्तु यह भाग गौरवपूर्ण नहीं रहा था। इस युद्ध के शेष काल के अधिकांश भाग में यह जर्मनी तथा आस्ट्रिया द्वारा पराजित किया गया तथा उनका इस पर अधिकार रहा परन्तु १९१६ में उनकी परिवर्तित परिस्थिति के कारण यह उस अधीनता से मुक्त हो गया और उनके विरुद्ध आक्रमण किया तथा हंगरी में कुछ सफलता भी प्राप्त की। इसके पश्चात् पैरिस में शांति-संधियाँ हुईं। उनमें रूमानिया की संधि भी थी। फलतः इसको आश्चर्यजनक प्रादेशिक उपलब्धियाँ हुईं जिन पर स्वयं रूमानिया निवासियों को आश्चर्य हुआ। सामयिक पतनों के कारण उन्होंने अपने विरोधी आस्ट्रिया-हंगरी के हैप्सवर्ग वंश से ही नहीं अपितु अपने भूतपूर्व मित्र रूस के रोमानॉफ वंश से भी प्रादेशिक उपलब्धियाँ कीं जो एक वर्ष पूर्व सन्धि करके युद्ध के बाहर हो गया था। युद्ध में प्रवेश करते समय रूमानिया का जितना प्रदेश था उससे दूना प्रदेश उसके अधिकार में उस समय था जब वह इस विस्मयकारी युद्ध से निस्रत हुआ। आस्ट्रिया-हंगरी से उसने ट्रांसिलवानिया नामक विस्तृत प्रदेश प्राप्त किया था जिसमें रूमानियावासियों की बहुलता थी परन्तु मग्यार भी पर्याप्त संख्या में निवास करते थे; बूकोविना का क्षेत्र तथा टेमेस्वर के वानाट का प्रांत भी उसने प्राप्त किया था। पूर्व में रूस से उसने बसराबिया का प्रान्त ले लिया जो कि रूस ने एक शताब्दी पूर्व १९१२ में तुर्की से छीना था। रूस ने इस संयोजन को मान्यता प्रदान नहीं की तथा १९२० में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान (नामक) प्रमुख मित्र राष्ट्रों ने इस क्षेत्र पर रूमानिया की संप्रभुता को इस शर्त पर स्वीकार किया कि उनमें से कम से कम तीन शक्तियाँ अपने हस्ताक्षरों द्वारा इस मान्यता को सत्यांकित करें। यह सत्यांकन इंगलैंड में १९२२ में, फ्रांस में १९२४ में और इटली में १९२७ में हुआ तथापि वसरेविया पर रूमानिया का वास्तविक अधिकार १९१८ से ही स्थापित था।

अब रूमानिया के राज्य का क्षेत्रफल १२२,२८२ वर्गमील था और उसकी जनसंख्या १९३० में १८,०००,००० थी। इस जनसंख्या में कई प्रजातियाँ सम्मिलित थीं। लगभग ४,०००,००० व्यक्ति अन्य प्रजातियों के थे। १,५००,००० ट्रांसिलवानियायी मग्यार, १,०००,०००० वसरेवियायी यूक्रेन निवासी, ७५०,००० जर्मन, ७५,००० यहूदी और २५०,००० बलगेरियावासी।

जिस राज्य का आकार इस प्रकार दुगुना हो गया था उसने सर्वप्रथम विधानों में भूमि से सम्बन्धित विधान को प्रारम्भ किया। राज्य की लगभग आधी कृषि योग्य भूमि पर कुछ सहस्र भूस्वामियों का अधिकार था जिनमें से किसी किसी के पास ४०,००० एकड़ तक भूमि थी। अन्ततोगत्वा यह उपबन्धित किया गया कि बड़ी बड़ी जोतों (भूसम्पदाओं) में से पर्याप्त भूमि राज्यसात् कर लेनी चाहिए और छोटे-छोटे क्षेत्रों के रूप में तथा सुविधाजनक शर्तों पर बेच दिया जाना चाहिये। नवोपलब्ध प्रदेशों की भूमि के प्रति उतना अच्छा रवैया नहीं अपनाया गया जितना अच्छा रवैया पुराने राज्य में स्थित भूमि के प्रति अपनाया गया। विशेष रूप से

ट्रांसिलवानिया के निवासियों की दशा बहुत खराब थी क्योंकि उसी क्षेत्र में लगभग ८०% बड़ी बड़ी भूसंपदायें स्थित थीं। १९३२ तक लगभग ९०% भूमि कृषकों के अधिकार में आ गयी। भूमि सुधारों के कार्यान्वियन से हंगरी निवासियों को विशेष रूप से अप्रसन्नता हुई और एक शतक तक उस भाग में विवाद तथा कलह बनी रही। ट्रांसिलवानिया में बड़ी-बड़ी भूसम्पदायें थीं। इसलिये बहुत से हंगरी निवासी भूस्वामी जो पहले धनाढ्य थे अब निर्धन हो गये थे। प्रधानमन्त्री काउण्ट बैथलैन इसी प्रकार का एक व्यक्ति था। यह मामला राष्ट्र संघ के पास ठीक व्यवस्था करने के हेतु भेजा गया परन्तु कई वर्षों तक इस पर व्यर्थ परिश्रम करने के पश्चात् इस पर विचार समाप्त कर दिया गया। १९३० में इसका हल निकाला जा सका जिसको **ब्रॉची योजना** कहते हैं। इसके अनुसार हंगरी इत्यादि कुछ प्रमुख **मित्र राष्ट्रों** ने हंगरी के उन भूस्वामियों को आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया जिनकी भूमि राज्यसात् कर ली गयी थी। हंगरी निवासियों को इससे केवल आंशिक सन्तोष हुआ क्योंकि वे ट्रांसिलवानिया में अपनी भूतपूर्व स्थिति को पुनः प्राप्त करना चाहते थे और हैप्सबर्ग वंश को पुनः सत्तारूढ़ कराना चाहते थे परन्तु रूमानियावासी, जैकोस्लॉवक तथा यूगोस्लाव (जनता) इसको रोकने के लिये प्रतिश्रुत थे। अस्तु रूमानियावासियों और मग्यारों के सम्बन्धों में तनाव बना रहा।

भू-सम्बन्धी विधान

१९२३ में रूमानिया में राजनीतिक सुधार प्रारम्भ हुए। इस देश में युद्ध के पहले २००,००० से कम नागरिकों को मताधिकार प्राप्त था। परन्तु १९२७ में कई लाख व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान कर दिया गया और अब एक नये संविधान का निर्माण हुआ। इसका आधार था सर्व मताधिकार और पुरानी पद्धति समाप्त कर दी गयी। यहूदियों को नागरिक घोषित किया गया। **प्रतिनिधि सदन** का निर्वाचन अब चार वर्ष की अवधि के लिये मतदाताओं द्वारा होने लगा। सीनेट में केवल चुने हुए सदस्य ही नहीं होंगे वरन् उसमें कुछ आजीवन सदस्य तथा ऐसे व्यक्ति भी होंगे जिनके पदों से सदस्यता सम्बद्ध थी। मन्त्रिमन्डलीय प्रणाली को **'उत्तरदायी'** नहीं बनाया गया क्योंकि नरेश अपने मन्त्रियों को नियुक्ति तथा अपदस्थता अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार कर सकता था चाहे वे संसद की इच्छाओं को पूरा करें अथवा न करें।

नवीन संविधान

युद्ध के पूर्व रूमानिया में दो प्रमुख राजनीतिक दल थे। **उदारवादी** तथा **अनुदारवादी**। अनुदारवादी दल अभिजातवर्गीय तथा जर्मनों के अनुकूल विचारधारा वाला संगठन था। वह अब प्रायः तिरोहित हो चुका था। वह अपने स्थायी भावों द्वारा तथा युद्ध के परिणाम स्वरूप बड़ी-बड़ी भूसंपदाओं के समाप्त हो जाने से नष्ट हो गया था। परन्तु **उदारवादी** अब भी सक्रिय थे और उनका नेता जॉन ब्रैटियानो था। एक दूसरे दल का संगठन जनरल अवैरेस्कू द्वारा किया गया था और दोनों दल कई वर्षों तक मैत्रीपूर्ण भाव के साथ एकांतर रूप से सत्तारूढ़ रहे। ये दो पुराने राजनीतिज्ञ थे और उनका परम्परागत दृष्टिकोण यह था कि शासन सत्ता युद्ध पूर्व रूमानिया के हाथों में रहे—वह रूमानिया जो अपने आकार में दुगुनी वृद्धि होने के पूर्व था। १९२६ में एक निर्वाचन-विधि पारित हुई जिसका उद्देश्य इस पद्धति को और भी अधिक सुरक्षित करना था। भविष्य में जिस दल को

रूमानिया के राजनीतिक दल

४०% मत प्राप्त होंगे उसी का संसद में बहुमत होगा और उन अल्पसंख्यक दलों का प्रतिनिधित्व पूर्णरूपेण समाप्त हो गया जिनको २% से कम मत मिले हों। इस विधि के कारण अकस्मात ही एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। डा० जुलियस मैन्यू योग्य वक्ता तथा अनुभवी राजनीतिज्ञ था। उसने कई छोटे-छोटे दलों को राष्ट्रीय कृषक दल में संगठित कर दिया जोकि प्रगतिशील प्रवृत्तियों का दल था। अगले वर्ष नरेश फर्डीनैण्ड और जॉन ब्रैटियानू की मृत्यु के पश्चात् इस नये संगठन को सुअवसर प्राप्त होना था। मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में उसका भाई विण्टिला ब्रैटियानू उसका उत्तराधिकारी हुआ परन्तु अगले वर्ष उसने अवकाश ग्रहण करने की माँग की। विण्टिला के पदत्याग करने के कई मास पश्चात् मैन्यू प्रधान मन्त्री बन गया। दिसम्बर १२, १९२८ को निर्वाचन हुए और मैन्यू के नेतृत्व में नये दल को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। ऐसा ज्ञात हुआ कि जो शासन दीर्घकाल से चला आ रहा था वह समाप्त हो जावेगा और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि एक नवीन प्रणाली प्रारम्भ होने वाली है जोकि सामयिक विचार धारा के तथा अभिवर्द्धित जनसंख्या एवं निर्वाचकगण की आवश्यकताओं के अधिक अनुकूल होगी।

युवराज कैरौल नरेश बनता है

परन्तु इसी मध्य अन्य घटनायें घटित हो रही थीं और अन्ततोगत्वा उनका स्थिति पर प्रभाव पड़ा। जब १९२५ में युवराज कैरौल ने अपने सिंहासनाधिकार का परित्याग किया और वह पैरिस में बसने के लिये चला गया, तब रूमानिया की संसद ने उसके पंचवर्षीय पुत्र राजकुमार माइकेल को जोकि उसकी पत्नी यूनान को भूतपूर्व राजकुमारी हैलन से उत्पन्न हुआ था, उसका उत्तराधिकारी घोषित किया। यदि इस बालक के वयस्क होने के पूर्व ही नरेश फर्डीनैण्ड का देहावसान हो जावे तो उसकी अल्पायु के काल में एक राजपता (रीजेन्सी) कार्य संचालन करेगी।

जुलाई १९२७ में फर्डीनैण्ड की मृत्यु हो गयी। बालक राजकुमार राजा बन गया और एक राजपता की स्थापना की गयी। अगले वर्ष के अन्तिम भाग में मैन्यू प्रधान मन्त्री बना। राष्ट्रीय कृषक दल का बहुमत उसके साथ था। यदि वह अपनी पत्नी के साथ समझौता कर ले तो यह दल कैरौल के पुरागमन के विरुद्ध नहीं था। कैरौल ने अपनी पत्नी से समझौता नहीं किया, तथापि वह ६ जून १९३० को वायुयान से बुखारेस्ट लौट आई और दो दिन पश्चात् वह नरेश उद्घोषित कर दिया गया। उसका पुत्र युवराज बना दिया गया। उसकी पत्नी रानी नहीं बनी। अगले वर्ष उसको अपनी रानी की उपाधि त्यागनी पड़ी और आगे चलकर वह रूमानिया से निष्कासित कर दी गयी।

कैरौल के मन्त्रिमण्डल

यद्यपि अक्टूबर १९३० में मैन्यू ने अपने नेतृत्व का त्याग कर दिया था तथापि कैरौल के पैरिस में पंचवर्षीय प्रवास से लौटने के कुछ मास तक उसका मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ़ रहा। अगले वर्ष अप्रैल में कैरौल ने अपने मन्त्रिमण्डल को भंग कर दिया और इसके स्थान पर उसने अपने भूतपूर्व शिक्षक की अध्यक्षता में एक नये मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति की। इसका नाम निकोलस जॉरगा था। वह बुखारेस्ट विश्वविद्यालय का एक प्राध्यापक तथा विख्यात इतिहासकार था। वह मन्त्रिमण्डल केवल एक वर्ष तक चला। यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अधिनायकतन्त्र था। यह अदक्ष, अपव्ययी मन्त्रि-

मण्डल था और अन्त में उसको एक विदेशी ऋण लेने का प्रयत्न करना पड़ा, जिसमें असफल होने पर उसने मई १९३२ में पदत्याग कर दिया। शीघ्रतापूर्वक एक के पश्चात् दूसरा मन्त्रिमण्डल बनता रहा। परिस्थिति अशांतिपूर्ण तथा अनिश्यपूर्ण बनी रही। इसका प्रमुख कारण था नरेश का भावात्मक तथा परिवर्तनशील चरित्र।

रूमानिया तथा राष्ट्रसंघ

इस काल में राष्ट्रीय वित्त-व्यवस्था इतनी गम्भीर हो गयी कि रूमानिया को राष्ट्रसंघ से (आर्थिक) सहायता माँगनी पड़ी और जनवरी १९३३ में राष्ट्रसंघ ने उस देश को सहायता देकर उसकी साख पुनः स्थापित करने के लिये एक योजना प्रस्तुत की। रूमानिया इस योजना को स्वीकार नहीं करना चाहता था परन्तु उसकी दशा ऐसी थी कि अन्त में विवश होकर उसको ऐसा करना पड़ा और इस प्रकार कुछ समय के लिए रूमानिया की वित्तीय-अवस्था (कोष) में संघ को अधिकारपूर्वक अपनी सम्मति प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो गया अर्थात् संघ के निर्देशानुसार अर्थ-व्यवस्था की जाने लगी।

१९१७ के पश्चात् से यूनान

विश्व युद्ध के प्रारम्भ से, यूनान सर्वाधिक अशांत और अव्यवस्थित रहा है। यह यूनान के लघुतम देशों में से एक देश है। इस युद्ध के मध्य में १९१७ में प्रधान मन्त्री वैनीजिलॉस ने मित्रराष्ट्रों के पक्ष में युद्ध की उद्घोषणा की। यह घोषणा नरेश कान्स्टेण्टाइन के परामर्श के विरुद्ध की गई थी। कॉन्स्टेण्टाइन को सिंहासन त्यागने के लिए विवश किया गया और उसका पुत्र अलक्षेन्द्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। किन्तु १९२० में अलक्षेन्द्र की अकस्मात मृत्यु हो गयी। यह मृत्यु एक पालतू बन्दर के काटने से हुई थी। उसके पिता ने अविलम्ब यह संकेत दिया कि वह विदेश से स्वदेश लौटने को तथा राजपद सम्हालने के लिए तैयार था। जनमत संग्रह द्वारा वह यूनान लौटने के लिये आमन्त्रित किया गया और वैनीजीलॉस को देश त्यागने पर विवश किया गया जो कि पैरिस के सम्मेलन में एक प्रमुख व्यक्ति रहा था और ऐसा विश्वास किया जाता था कि मित्रराष्ट्रों के कूटनीतिज्ञों की बैठक में उसने यूनान के लिये स्पष्ट लाभ प्राप्त किये थे जिनमें एशिया माइनर में स्मरना नामक नगर तथा अतिरिक्त प्रदेश सम्मिलित था। ऐथेन्स लौटने पर कॉन्सटैण्टाइन को एक नया युद्ध लड़ना पड़ा जोकि यूनान ने तुर्की के विरुद्ध प्रारम्भ किया था। कॉन्सटैण्टाइन को अपने पद तथा जनता की माँग के कारण यह संग्राम जारी रखना पड़ा परन्तु वह अपने प्रयत्नों में असफल रहा। यूनानियों को उनके साथी फ्रांस तथा इंगलैण्ड ने इस कठिन परिस्थिति में त्याग दिया क्योंकि वे कॉन्सटैण्टाइन के पुरागमन को पसन्द नहीं करते थे। अतः यूनानियों की दुर्भाग्यपूर्ण पराजय हुई, वे समुद्र तट तक पीछे खदेड़ दिये गये और उनको तुर्की के साथ संधि करनी पड़ी। इस प्रकार एशिया माइनर में उनकी विस्तार करने की आशा सहसा समाप्त हो गयी। अब वे अपने निकट अतीत में बुलाये हुए नरेश कॉन्सटैण्टाइन के विरुद्ध हो गये, उसको पराजय के लिये उत्तरदायी ठहराया जिसके लिये वह अधिक से अधिक अंशतः उत्तरदायी था और उन्होंने यह माँग की कि वह पुनः सिंहासन त्याग दे। सितम्बर १९२२ में उसने सिंहासन त्याग दिया। उसके पश्चात् उसका पुत्र जार्ज द्वितीय राजा हुआ। वह शीघ्र

ही यूनान में निश्चित अवस्था होने तक 'अनुपस्थित रहने की आज्ञा' लेकर रूमानिया चला गया।

वैनीजीलॉस पुनः यूनान बुलाया गया और उसको १९२३ में लॉसेन के सम्मेलन में भाग लेने के लिये भेजा गया ताकि वह अपने देश को उस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से निकाल ले जिसमें उसके मूल परामर्श ने उसको डाल दिया था क्योंकि तुर्की के विरुद्ध यह दुर्भाग्यपूर्ण अभियान वैनीजीलॉस ने ही प्रारम्भ किया था न कि कॉन्सटैण्टाइन ने। लॉसेन में वैनीजीलॉस को विवश होकर स्मर्ना तथा पूर्वी थ्रेस तुर्की को देने पड़े। उसको यूनान में रहने वाले तुर्कों का तुर्की में रहने वाले यूनानियों से विनिमय करना पड़ा। विजयी तुर्कों ने कहा कि जनसंख्याओं का विनिमय होना चाहिये ताकि तुर्की में तुर्की जनसंख्या और यूनान में यूनानी जनसंख्या निवास करे। तदनुसार ऐसा ही किया गया। लगभग १,२००,००० यूनान एशिया माइनर से लाये गये तथा मकदूनिया और पश्चिमी थ्रेस में बनाये गये। इस प्रकार यूनान की कुल बढ़ी हुई जनसंख्या ६,२००,००० हो गयी। जनसंख्या के स्थानांतरण पर लगभग ७०,०००,००० डालर व्यय हुए। यद्यपि प्रारम्भ में इन शरणार्थियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथापि धीरे-धीरे उनकी परिस्थितियों में सुधार हुआ और अन्त में यूनान को लाभ पहुचा। राष्ट्रसंघ ने भी कुछ सहायता प्रदान की। दोनों देशों की सभी विजातीय जनता का वास्तव में स्थानांतरण नहीं हुआ क्योंकि अन्त में दोनों राज्य इस बात पर सहमत हो गये कि पश्चिमी थ्रेस के तुर्क वहीं रह सकते हैं और कुस्तुन्तुनिया के यूनानियों को भी अपना स्थान नहीं छोड़ना होगा। इन अपवादों के अतिरिक्त अन्त में विनिमय हो गया और दोनों देशों के पारस्परिक संघर्ष का एक शताब्दी पुराना कारण अन्ततोगत्वा दूर कर दिया गया। विवाद और घृणा का वह विशिष्ट कारण अन्त में दूर हो गया। साथ ही एक और लाभ हुआ कि पश्चिमी थ्रेस तथा यूनानी मकदूनिया में इन यूनानियों के बसाये जाने से ये क्षेत्र मुख्यतया यूनानी बन गये और इस प्रकार वे अन्तर्राष्ट्रीय विवाद की सीमा के बाहर हो गये। प्रजातीय इकाई बना देने से उस क्षेत्र की राजनीतिक सीमा पूर्वापेक्षा अधिक स्थायी हो गयी। इस प्रकार यूनान तथा तुर्की के मध्य में प्रादेशिक संघर्ष प्रकटतः तथा स्थायी रूप से समाप्त हो गया। अन्ततोगत्वा ऑटोमनवाद तथा हैलैनवाद का पुराना झगड़ा मिट गया और १४ सितम्बर १९३३ को तुर्की तथा यूनान ने दशवर्षीय अनाक्रमण संधि पर भी हस्ताक्षर कर दिये। इन शुभ सम्बन्धों की स्थापना का प्रमुख श्रेय वैनीजीलॉस को ही प्राप्त है।

यूनान गणतन्त्र घोषित किया गया

तुर्की के विरुद्ध युद्ध तथा पराजय जनित व्यवस्थाओं के कारण यूनान के लिये कठिनाइयाँ तथा आपत्तियाँ उत्पन्न हो रही थीं। एक दशक के पश्चात् इनकी परिणति दोनों राज्यों के मध्य पूर्वापेक्षा शुभतर सम्बन्धों की स्थापना में हुई। उसी समय यूनान में उसके शासन के स्वरूप के सम्बन्ध में उग्र, विविध रूपों वाला तथा अनिश्चियपूर्ण विवाद चल रहा था। १९२२ में नवयुवक जार्ज द्वितीय सिंहासनासीन हुआ ही था कि उसको देश के बाहर उस समय तक रहने के लिये कहा गया जब तक कि यूनानी संसद देश के भावी राजनीतिक संगठन का निर्णय अन्तिम रूप से न कर दें। वैनीजीलास ने इस विषय को जनमत संग्रह द्वारा जनता के निर्णय के हेतु प्रस्तुत करने का समर्थन किया परन्तु संसद का सबल दल

अपनी कार्यवाही द्वारा ही नरेश को सिंहासन से हटाना तथा राजवंश को तत्काल समाप्त करना चाहता था। अन्त में संसद ने अपना निर्णय दिया और उसने अप्रैल १९२४ में अविलम्ब गणतन्त्र स्थापित करने के पक्ष में मतदान किया। अस्तु यह किया गया परन्तु इस गणतन्त्र के प्रारम्भिक समय में अशांति एवं मानसिक चिन्ता बनी रही। कई मास तक परिस्थिति अशांतिपूर्ण रही। मन्त्रिमण्डल अल्पकालीन तथा महत्त्वहीन रहे। वैनीजीलास ने अपना पद त्याग दिया था और वह क्रीट चला गया था परन्तु आगे चलकर उसने हस्तक्षेप करने का तब निश्चय किया जब उसने देखा कि कई दुर्बल तथा परिवर्तनशील मन्त्रिमण्डल अपनी अनुभवहीन तथा अदक्ष नीतियों को कार्यान्वित कर रहे थे तथा सार्वजनिक रंगमंच पर अपनी व्यर्थ की व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धाओं का प्रदर्शन कर रहे थे। वह १९२८ में लौट आया, शीघ्र ही वह एक बार पुनः प्रधानमन्त्री बना दिया गया और वह चार वर्ष तक प्रधानमन्त्री बना रहा। उसके सामने कठिन तथा बहुसंख्यक समस्यायें थीं। परन्तु उसने तत्काल उनको सुलझाना प्रारम्भ किया और उसने शीघ्र ही कई उपयोगी सुधार किये। उसने पश्चिमी देशों की राजधानियों का दौरा इस आशा से किया कि वह उन राज्यों के साथ पुनः मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा जो उदासीन हो गये थे तथा आलोचना करने लगे थे। उसने इटली तथा यूगोस्लाविया से मैत्री-संधियों की। यूगोस्लाविया के साथ की गई संधि के अनुसार विवादग्रस्त विषय निर्णय के लिए कई शान्तिपूर्ण संस्थाओं के समक्ष प्रस्तुत कर दिये गये। उसने संयुक्त राज्य के साथ लाभदायक वित्तीय व्यवस्था की।

नवीन गणतन्त्र

इसी समय नवीन गणतन्त्रात्मक पद्धति में सफलता प्राप्त हुई। सीनेट का निर्वाचन हुआ और जलसेनाध्यक्ष कून डोरियोटिस गणतन्त्र का प्रथम सांविधानिक राष्ट्रपति चुना गया और उसने १९२९ के अन्त में अस्वस्थता के कारण पद त्याग कर दिया और उसके पश्चात् अलक्षेन्द्र जैमिस राष्ट्रपति बना। इन वर्षों का प्रमुख कार्य था तुर्की के साथ दीर्घकाल से चले आते हुए विवाद का अन्तिम निराकरण। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है इस विवाद की परिणति मित्रता, विवाचन तथा अनाक्रमण की विभिन्न संधियों में हुई जिनसे यह प्रकट होता था कि दोनों पड़ोसियों के पारस्परिक संबंध भावी वर्षों में उतने ही निकट के तथा शांति पूर्ण रहेंगे जितने कि वे दीर्घकाल तक अविश्वासपूर्ण तथा कटुतापूर्ण रहे थे। इसने ऐसे भविष्य की आशा दिलाई जोकि दोनों राज्यों के मध्य सद्भावना और सन्तोष पर अवलम्बित होगा जो भूतकाल में प्रायः परस्पर युद्ध करते रहे थे अथवा उनमें सर्वदा युद्ध की सम्भावना बनी रही थी।

यूगोस्लाविया के सम्बन्ध

वैनीजीलॉस के निर्देशन में यूनान तथा यूगोस्लाविया के मध्य के सम्बन्धों में भी सुधार हुआ। यूगोस्लाविया के औपचारिक अस्तित्व के पूर्व ही १९१३ में यूनान तथा सर्बिया ने यह समझौता किया था कि सर्बिया सालोनिका निवासी बन्दरगाह पर समुद्र पर स्वतन्त्रतापूर्वक आ जा सकेंगे तथा व्यापार कर सकेंगे। कई वर्ष पश्चात् दोनों राज्यों के मध्य एक नया समझौता हुआ जोकि १९२५ में लागू हुआ परन्तु उसका कार्यान्वयन ठीक नहीं हुआ। घैवेली जोकि यूगोस्लाविया का सीमावर्ती नगर था, और सालोनिका के बीच में केवल ४८ मील दूरी पर है तथापि रेलें

इतनी धीमी चलती थीं और मालभाड़े की दरें इतनी ऊँची थीं कि यूगोस्लाविया को बहुत कम लाभ होता था और उसमें तथा यूनान में संघर्ष बराबर बढ़ता जा रहा था। वैनीजीलॉस ने इस स्थिति को ठीक करने का संकल्प किया। उसने यूगोस्लाविया के साथ पुनः बातचीत प्रराम्भ की और १९२९ में अधिक सन्तोषजनक समझौता हुआ। रेल गाड़ियों में बहुत सुधार होना था, मालभाड़े की दरें उचित रूप से कम होनी थीं और सड़कों के विरूद्ध यूगोस्लाविया की माँग समाप्त करने के लिये यूनान अपने पड़ोसी (यूगोस्लाविया) को २०,०००,००० सुवर्ण के फ्रैंक देगा। इन विषयों से सम्बन्धित विवाद भविष्य में विवाचन के लिये निर्णायक अथवा राष्ट्रसंघ को सौंपे जावेंगे।

इस प्रकार प्रधान मन्त्री वैनीजीलॉस की बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्यवाही से यूनान की दशा सुधर गयी। परन्तु आर्थिक गिरावट की प्रगति ने इस लघु देश के जीवन पर भी उचित समय पर विपरीत प्रभाव डाला। १९३२ में यूनान को स्वर्ण स्तर का त्याग करना पड़ा और उसी वर्ष आगे के मासों में उसको विदेशी ऋण पर ब्याज का भुगतान करना भी बन्द करना पड़ा। १९३३ के जून मास में वैनीजीलॉस पर आक्रमण हुआ जोकि अब भूतपूर्व प्रधानमन्त्री था। उसके चोट नहीं आयी परन्तु उसकी पत्नी के गम्भीर चोट आई। इस देश के भविष्य के विषय में अब पर्याप्त आशंकायें थीं।

वैनीजीलॉस की मृत्यु

जनता के भारी बहुमत से १९३५ में यूनान में पुनः राजतन्त्र की स्थापना हो गयी और जार्ज द्वितीय पुनः राजा बन गया। वैनीजीलॉस पैरिस चला गया और वहाँ अगले वर्ष १९३६ में उसकी मृत्यु हो गयी। शीघ्र ही उसकी जन्मभूमि क्रीट में उसका शव दफना दिया गया। इस प्रकार यह अध्याय समाप्त हो गया।

१९१८ के पश्चात् का बलगेरिया

२९ सितम्बर १११८ को बलगरिया को सन्धि करनी पड़ी। उस दिन उसको युद्ध विराम सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसका आशय बिना शर्त से आत्मसमर्पण था। इस प्रकार बलगेरिया युद्ध के बाहर चला गया।

फर्डीनैण्ड का पतन

अपने को बलगेरिया का जार कहने वाला उसके अधिराट् फर्डीनॅन्ड ने इकत्तीस वर्ष तक शासन करने के पश्चात् अपने पुत्र युवराज बॉरिस के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। इस समय बॉरिस की आयु चौबीस वर्ष थी विश्वयुद्ध में अपने कृत्यों के कारण जिन बलकानी नरेशों को अपने सिंहासनों से वंचित होना पड़ा उनमें फर्डीनैण्ड का दूसरा स्थान था क्योंकि यूनान का (नरेश) कॉन्सटैण्टाइन उसके पहले जून सन् १९१७ में ही निर्वासित किया जा चुका था। केन्द्रीय शक्तियों में बलगेरिया ने सर्व-प्रथम संधि-याचना की थी। उसके राजा ने ऊँचा खेल खेला था और उसमें उसकी पराजय हुई थी। अतः उसने सिंहासन त्याग दिया और अपनी राजधानी को छोड़ दिया। जनता पूर्णतः उदासीन रही। उसने न प्रसन्नता प्रकट की और न दुःख प्रकट किया। मन्त्रीगण भी भाग गये। स्टैम्बुलस्की कारागार मुक्त कर दिया और वह शीघ्र प्रधानमन्त्री बन गया। उसने न्यूली की संधि पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार

बलगेरिया को विवश होकर कुछ प्रदेश रूमानिया, सर्बिया और यूनान को देने पड़े, जो हानि उसने पहुँचाई थी उसकी क्षति पूर्ति करनी पड़ी और भविष्य में उसको अपनी सीमा में ३३,००० सैनिकों से अधिक न रखने को वचनबद्ध होना पड़ा। फर्डीनैण्ड के सिंहासन को त्यागने के पश्चात् शीघ्र ही उसके पुत्र बॉरिस तृतीय का राज्याभिषेक हो गया क्योंकि गणतन्त्र की स्थापना के अल्पकालीन प्रयत्न असफल रहे थे। बॉरिस इस परिणाम पर पहुँचा था कि वह अपनी प्रजा की इच्छा के अनुसार कार्य करके, कृषकों का नरेश बनकर तथा लोकतांत्रिक अधिराज बनकर ही अपने सिंहासन को सुरक्षित रख सकता था। बलगेरिया की अधिकांश जनता कृषक थी। वहाँ निवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। बलगेरिया में खेत अधिक हैं जिनमें से अधिकांश छोटे-छोटे हैं। उसकी जनसंख्या लगभग ६० लाख है और क्षेत्रफल लगभग ४०,००० वर्ग मील है।

कृषक दल के सत्तारूढ़ हो जाने से देश की सार्वजनिक नीति को एक नया मोड़ प्राप्त हुआ। बलगेरिया का शासन यूरोप में एक विशेष प्रकार का कृषक शासन बन गया। इसके प्रधानमन्त्री स्टैम्बुलिस्की को तीन वर्ष का सश्रम कारावास भोगना पड़ा था क्योंकि उसने १९१५ में नरेश फर्डीनैण्ड को यदि उसने केन्द्रीय शक्तियों की ओर से युद्ध में प्रवेश किया, तो व्यक्तिगत दुर्भाग्य एवं अपमान की धमकी थी। अस्तु, वह विख्यात हो गया था। स्टैम्बुलिस्की जन्मजात कृषक था, अन्य मन्त्री भी कृषक थे और जो कार्यक्रम अस्वीकार किया गया वह कृषक और उसकी समस्याओं से सम्बन्ध रखता था। बलगेरिया के कृषक रूसी साम्यवाद से घृणा करते थे। वे स्वयं सम्पत्तिवान थे। इसलिये वे कृषकों की व्यक्तिगत सम्पत्ति में विश्वास करते थे। वे जनता को उच्चतर भौतिक तथा बौद्धिक-स्तर पर पहुँचाना चाहते थे। वे अपने आन्दोलन को, जो प्रायः 'हरा समाजवाद' कहलाता है, अन्तर्राष्ट्रीय बनाना चाहते थे क्योंकि उनके कथनानुसार कृषकों की समस्यायें सभी स्थानों पर मूलतः समान ही हैं।

स्टैम्बुलिस्की

यदि इस आन्दोलन को काफी समय तक चालू रहने दिया जाता तो यह निस्संदेह अभिरुचिपूर्ण आन्दोलन था अथवा हो जाता। १९१९ से १९२३ तक स्टैम्बुललिस्की इसका नेता, व्याख्याता और प्रेरक शक्ति था। इसलिये उन लोगों ने उसका विरोध किया जो उसके उद्देश्य को अतिवादी तथा उसकी पद्धति को अधिनायकवादी समझते थे। वह केवल कृपक वर्ग में अभिरुचि रखता था। उसका अभियान उग्र अथवा हिंसापूर्ण था और प्रारम्भ से ही मध्यम वर्ग, सेना तथा शिक्षित वर्गों ने उसका कड़ा विरोध किया क्योंकि वे उसके निर्वाचनों के प्रबन्ध में अतिवादी कार्यों तथा प्रकाशन और भाषण पर लगाये गये प्रतिबन्धों के कारण उससे अप्रसन्न थे। भूतपूर्व शासक वर्ग अर्थात् मध्यम वर्ग के द्वारा उसका प्रबल विरोध किया गया क्योंकि वे उसके शासन को निरंकुश एवं दमनपूर्ण समझते थे। जिन लोगों पर बलगेरिया के युद्ध प्रवेश का तथा उसकी युद्धकालीन कार्यवाहियों का उत्तरदायित्व था और जिनको सत्तारूढ़ दल ने भारी दण्ड दिये थे वे सब उसको विशेष रूप से घृणा करते थे। इन तीव्र भावनाओं का लक्ष्य (केन्द्र) स्टैम्बुलिस्की था और यह विनाशार्थ चुन लिया गया था।

इन कृषक-शासन कला तथा सामाजिक व्यवस्था का आकस्मिक एवं हिंसात्मक

अन्त होने वाला था। १९ जून १९२३ को ३ बजे प्रातःकाल सैनिक क्रान्ति द्वारा बलगेरिया के शासन का अन्त कर दिया गया। राजधानी के बाहर गये प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त अन्य सभी मन्त्रियों को सेनाधिकारियों ने बन्दी बना लिया और उनके स्थान पर मंत्री नियुक्त कर दिये गये। सोफिया विश्वविद्यालय का ए० सैंकॉफ प्रधानमन्त्री बना और कृषक तथा साम्यवादी दलों के अतिरिक्त अन्य सभी दलों ने संयुक्त रूप से उसका समर्थन किया।

स्टैम्बुलिस्की मारा गया

कुछ दिन पश्चात् १४ जून को भूतपूर्व शासन का अध्यक्ष स्टैम्बुलिस्की उस लड़ाई में मारा गया जो कि उसके कुछ अनुयायियों तथा नवीन शासन के सैनिकों में हुई थी। यह अधिकृत वक्तव्य था परन्तु निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उसका केवल बध हुआ था। इस प्रकार बलगेरिया अपने भूतपूर्व योग्यतम नेता से वंचित हो गया। जिन व्यक्तियों के हाथ में युद्ध के पश्चात् से सत्ता थी वे अब सत्ताहीन हो गये और वह सत्ता उन व्यक्तियों के हाथ में चल गई जो कि उनके कट्टर शत्रु थे और जो कि प्रकटतः उनके मुख्य शिकार बने रहते थे अर्थात् अब सत्ता मध्यम वर्ग के हाथ में आ गई। स्टैम्बुलिस्की के शासन-काल में इस मध्यम वर्ग पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। उसको केवल कर देने वाला वर्गमात्र समझा गया।

परिवर्तनशील मंत्रिमण्डल

भूतपूर्व शासक दल के नेताओं का दमन करने तथा उसकी नीति को बदलने के लिये नये मन्त्रिमण्डल ने दृढ़ता और शक्ति के साथ कार्य प्रारम्भ किया। समग्र रूप से वह सफल रहा परन्तु अप्रैल १९२५ को इस पर दुर्भावनापूर्ण आक्रमण किया। सोफिया में संत नेडीलिया के गिरजाघर में एक लोकप्रिय सेनाध्यक्ष की मृत्युसंस्कार से सम्बन्धित प्रार्थना हो रही थी। इस सेनाध्यक्ष की हत्या की गई थी। इस प्रार्थना के अवसर पर इस गिरजाघर में एक बम फटा। लगभग १५० व्यक्ति मारे गये और प्रधानमन्त्री सैंकाफ (Tsankoff) सहित कई सौ व्यक्ति घायल हुए। शासन ने इस बर्बर आक्रमण के उत्तर में सहस्रों व्यक्तियों को गिरफ्तार किया और उनमें से बहुत सों को मृत्यु-दण्ड दिया।

सैंकॉफ मन्त्रिमण्डल अत्यन्त कठोर समझा गया और शीघ्र ही दूसरे मन्त्रिमण्डल बने। बलगेरिया का शासन अनिश्चित और असुरक्षित था परन्तु वह येनकेन प्रकारेण चलता रहा। केवल इतना ही कहा जा सकता है।

अध्याय ५२

विश्वयुद्ध के पश्चात् का तुर्की

युद्ध विराम के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने अपने अधिकांश भूतपूर्व शत्रुओं के साथ तर्कसम्मत शीघ्रता के साथ संधियाँ कर लीं, राष्ट्रों की नवीन सीमायें सामान्यतः निर्धारित कर दी गयीं और नवीन संस्थाओं ने कुछ सीमा तक निश्चित स्वरूप प्राप्त कर लिया किन्तु अशांत विश्व के एक भाग में दीर्घकाल तक परिस्थितियाँ परिवर्तनशील तथा अनिश्चित बनी रहीं और संधि स्थगित रही। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् लगभग पाँच वर्ष तक तुर्की के साथ कई कारणों से कोई सन्धि नहीं की जा सकी। इतिहास का यह जटिल अध्याय आश्चर्यों और क्रान्तियों के भीतर क्रान्तियों से भरा पड़ा है। हम इसका पूर्ण विवरण प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं।

१९१८ से १९२३ तक तुर्की का राष्ट्रीय आन्दोलन कठिनाई से किन्तु सफलतापूर्वक बढ़ रहा था। उस समय के तथा युद्ध के सम्पूर्ण परवर्तीकाल के तुर्की के इतिहास का केन्द्रीय व्यक्तित्व एक नवयुवक सेनाधिकारी में सन्निहित था। इसका नाम **मुस्तफा** था। यह १८८० में सालोनिका में उत्पन्न हुआ। कुस्तुन्तुनिया में उसने एक

मुस्तफा कमाल

शिक्षक ने उसके साथ **कमाल** और जोड़ दिया था जिसका आशय है '**पुर्णता**'-1 इस नवयुवक को सैनिक जीवन ने आकर्षित किया। १९११-१९१२ में उसने ट्रिपोली में युद्ध किया था। वह १९१२-१९१३ में होने वाले बलकानी युद्धों में तुर्की का एक अत्यन्त दक्ष सेनाध्यक्ष सिद्ध हुआ था और गैलीपोली के युद्ध में १९१५ में उसने ख्याति प्राप्त की थी। वह विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् अधिक स्वतन्त्रता से कार्य करने लगा। यह देखकर कि कुस्तुन्तुनिया की सरकार विजेताओं के प्रति सम्मान दिखा रही थी उसने अंगोरा में अवशिष्ट संसद का संगठन प्रारम्भ कर दिया। अंगोरा एशिया माइनर के मध्य में कुस्तुन्तुनिया से दूर बसा हुआ एक महत्त्वपूर्ण नगर है। उसने एक पृथक नीति का स्पष्टीकरण भी प्रारम्भ किया। १९२० में वह इस अंगोरा की सभा का सभापति (अध्यक्ष) तथा राष्ट्रीय सेना का अध्यक्ष चुना गया। जब तक *खलीफा-सुल्तान* विदेशी विजेताओं के सामने झुकने की प्रवृत्ति रखेगा तब तक

वह तुर्की की रक्षा करने के लिए कृत संकल्प रहेगा। अंगोरा की सभा ने १९२१ में नवीन संविधान बनाना प्रारम्भ किया और आगे चलकर उसने **महान् राष्ट्रीय सभा** को अधिकार देने की कार्यवाही प्रारम्भ की जिसके सदस्य चार वर्षों के लिए चुने जा सकेंगे, जिसका अध्यक्ष तथा मन्त्रिमण्डल कार्यपालिका की शक्तियों का उपभोग करेंगे और जिसकी न्यायपालिका भी सभा द्वारा नियुक्त की जा सकेगी। इस प्रकार एक स्वतन्त्र सरकार बनाई जा रही थी। तुर्की की तत्कालीन अशांति पूर्ण परिस्थिति में इस सरकार की शक्ति शीघ्रता पूर्वक बढ़नी थी। पैरिस में मित्र राष्ट्रों ने सैवर्स की सन्धि को तैयार किया गया तथा स्वीकार किया परन्तु तुर्की ने उसको स्वीकार नहीं किया। यूनानियों ने उस सन्धि को मानने पर तुर्कों को विवश करना चाहा और १९२१ में एशिया माइनर पर आक्रमण किया। वे कुछ समय तक सफल रहे परन्तु आगे चलकर उसको स्मर्ना तक पीछे हटा दिया गया। इस नगर से उनको अन्त में हटना पड़ा और शीघ्र ही विजयी तुर्कों से उनको सन्धि करनी पड़ी। यह कार्य लासेन के सम्मेलन ने किया जो कि सैवर्स की सन्धि को संशोधित करने के लिये बुलाया गया था। यह सन्धि तुर्कों ने अस्वीकृत कर दी थी और जिसको मित्र राष्ट्रों की प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या के कारण उन पर थोपा नहीं जा सका था। लॉसेन के इस सम्मेलन ने एक अनिश्चित तथा अस्पष्ट स्थिति का स्पष्टीकरण किया। जिस सन्धि पर तुर्कों ने हस्ताक्षर किये वह उस समय की अन्य सन्धियों के समान नहीं थी जिसको मानने पर उसे विवश किया गया हो प्रत्युत् वह उसके द्वारा स्वीकार की गयी सन्धि थी और उसकी इच्छाओं के विरुद्ध उस पर लादी नहीं गयी थी। इस सम्मेलन की बैठक होने के तीन सप्ताह पूर्व महत्त्वपूर्ण घटनायें घटित होने लगीं जो कि यह प्रदर्शित करती थीं कि स्वयं तुर्की में महत्त्वपूर्ण घटनायें होने वाली थीं। अस्थाई राज्य समाप्त हो गया। २ नवम्बर १९२२ को अंगोरा की महान् **राष्ट्रीय सभा** ने सुल्तान मुहम्मद षष्ठ को सिंहासन से हटा दिया। सुल्तान का पद तो समाप्त कर दिया गया परन्तु साम्राज्य की समाप्ति औपचारिक रूप से नहीं की गयी। एक वर्ष पश्चात् २९ अक्टूबर १९२३ को तुर्की को गणतन्त्र घोषित किया गया और तभी मुस्तफा उसका राष्ट्रपति चुना गया।

सैवर्स की सन्धि अस्वीकृत की गयी

लॉसेन के सम्मेलन ने स्थिति को स्पष्ट किया और कुछ रूपों में तुर्कों को आश्वस्त कर दिया। अपनी आर्थिक अथवा न्यायिक संस्थाओं और पद्धतियों को परिवर्तित करने के अपने अधिकारों पर किसी भी प्रतिबन्ध को स्वीकार करने को तुर्क तैयार नहीं थे। उन्होंने अपने राज्य की निश्चित सीमाओं को स्वीकार कर लिया जिसमें एशिया माइनर, कुस्तुन्तुनिया और ऐड्रिया नोपल तथा मरित्जा नदी तक का यूरोपीय थ्रेस का भाग सम्मिलित था। एक स्थान पर वह वास्तव में मरित्जा नदी के भी दूसरी ओर तक विस्तृत था। ईजियन सागर में तुर्की के अधिकार में कुछ द्वीप बने रहने थे। साथ ही उसने डॉडकानीज द्वीप समूह को इटली के अधिकार में स्वीकार कर लिया और शेष द्वीपों को यूनान का भाग मान लिया। इतना उनको लाभ हुआ। अपनी हानियों को भी उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया। हानियाँ ये थीं; एशिया माइनर के पूर्व तथा दक्षिण के विस्तृत प्रदेश जैसे फिलस्तीन, इराक, सीरिया, अरब का राज्य, मिस्र तथा सूडान। वह इन सभी देशों से वंचित हो गया, उनका

लॉसेन की सन्धि

अधिकार से निकल जाना स्वीकार किया गया और अब वे बिल्कुल भिन्न मार्ग पर जा रहे थे। इंगलैंड द्वारा साइप्रस द्वीप पर किये गये अधिकार को भी मान्यता प्रदान की गयी।

इस प्रकार नवीन ऑटोमन राज्य अत्यन्त छोटा था और युद्ध के पूर्व के अपने रूप से अति भिन्न था। परन्तु उस घटे हुए भू-भाग में उसकी शक्ति को आधिकारिक तथा सर्वोपरि माना जाता था। तुर्की में विदेशियों को प्राप्त संरक्षणों को समाप्त कर दिया गया, मित्रराष्ट्रों को युद्धकाल में किये गये कार्यों के निमित्त दी जाने वाली क्षति पूर्तियाँ त्याग दी गयीं तथा तुर्की की सैनिक शक्ति पर लगे हुए सभी पूर्व प्रतिबन्धों का परित्याग कर दिया गया। भविष्य में तुर्की स्वशासक देश बनेगा, उसका क्षेत्रफल ३००,००० वर्ग मील से कुछ ही कम होगा तथा उस समय उसकी जनसंख्या ३० और १४० लाख के बीच में थी।

जैसा कि हम देख चुके हैं तुर्की ने पराजित यूनानियों को अपनी पूर्वाभिलपित शर्तें स्वीकार करने पर विवश किया था। यूनानियों को तुर्की तथा तुर्कों को यूनान त्यागना होगा। जनसंख्याओं का विशाल विनिमय होगा।

यूनानी तथा तुर्की

इसका यह आशय था कि दस लाख से अधिक यूनानियों को तुर्की के प्रदेश से जाना होगा और वे अपने सजातीय यूनानियों से पश्चिमी राज्य में जाकर मिल जावेंगे और चार या पाँच लाख तुर्क जो अब तक यूनान में रहते थे अब तुर्की राज्य में आ बसेंगे। दोनों राष्ट्रों के मध्य होने वाले युद्ध का प्रमुख परिणाम यह जनसंख्याओं का आवश्यक स्थानांतरण था, इससे अतीव कठिनाई तथा निर्दयता सम्बद्ध थी। अन्त में कुस्तुन्तुनिया तथा थ्रेस पर यह शर्त लागू नहीं की गयी और वहाँ से किसी को भी विस्थापित होने का आदेश नहीं दिया गया। इन दोनों क्षेत्रों में सम्मिलित जनसंख्यायें पूर्ववत रहने दी गयी।

यूनानी तथा तुर्की जनसंख्याओं के इस अनिवार्य विनिमय से मुस्तफा कमाल की राष्ट्रीय भावना प्रकट होती है। प्रारम्भ में कटुभावनाओं की जागृति हुई परन्तु अन्त में इस कार्यवाही के परिणामस्वरूप अधिकांश तुर्क अतुर्की प्रभावों से मुक्त हो गये। तुर्की तथा यूनानियों के सम्बन्ध जो प्रारम्भ में बहुत कटु थे, वे आगामी दशक में बहुत सुधर गये और १९३४ तक ये पूर्वापेक्षा अत्यन्त मैत्रीपूर्ण हो गये। इन दोनों राज्यों के मध्य में १९३३ में मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर हुए और उन्होंने एक दशवर्षीय अनाक्रमण समझौते पर भी हस्ताक्षर किये। एक शताब्दी पुराना तुर्की-यूनानी संघर्ष समाप्त हो गया और भविष्य में उनके मध्य सुमधुर सम्बन्ध बने रहने की सुनिश्चित आशा हो गयी।

लासेन में मित्र राष्ट्रों तथा यूनानियों पर इन विजयों को प्राप्त करने के पश्चात् मुस्तफा कमाल ने अपना अवधान तुर्की के सुधार पर केन्द्रित किया। अब तक यूरोप से संघर्ष करके तथा अपने लिये स्वतन्त्रतापूर्वक

तुर्की में सुधार हुए

कार्य करने के लिये क्षेत्र प्राप्त करके अब उसने उसकी प्रथाओं और पद्धतियों को अपना कर उसका अनुकरण प्रारम्भ किया। उसका विचार तुर्की को यूरोपीय विचारधारा तथा संस्थाओं के द्वारा पूर्णतः यूरोपीय देश बनाना था। आगे उसके शासन का यही लक्ष्य रहा।

वह अपने देश को आधुनिक बनाना चाहता था। इस आधार पर उसने स्फूर्ति तथा संयम के साथ कार्य करना प्रारम्भ किया।

लाँसेन सम्मेलन के अधिवेशन के प्रायः तीन सप्ताह पूर्व सुल्तान **मुहम्मद षष्ठ** २ नवम्बर १९२२ को तुर्की की **महान् राष्ट्रीय सभा** द्वारा सिंहासन से उतार दिया गया था। एक वर्ष पश्चात् २९ अक्टूबर १९२३ को इस राष्ट्र को गणतन्त्र घोषित कर दिया गया और मुस्तफा कमाल उसका राष्ट्रपति चुना गया। वह १९२७ में दूसरी बार तथा १९३१ में तीसरी बार सर्व-सम्मति से राष्ट्रपति चुना गया। उसका शासन अधिनायकवादी होना था परन्तु वह अधिनायकत्व सुधार करने के लिये वचनबद्ध तथा संलग्न था क्योंकि उसने पश्चिमी यूरोप के आधार पर अपने देश के पुनः निर्माण का दृढ़ विचार कर रखा था। मार्च १९२४ में खिलाफत अर्थात् शासन का धार्मिक पहलू समाप्त कर दिया गया। खलीफा सम्पूर्ण मुस्लिम विश्व का नेता माना जाता था। भूतपूर्व सुल्तान के वंश के सदस्यों को देश के बाहर निकाल दिया। कुछ समय तक इस्लाम राज्य धर्म माना गया परन्तु १९२८ में अतीत से यह सम्बन्ध भी समाप्त कर दिया गया क्योंकि इस समय एक अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार इस्लाम को राज धर्म उद्घोषित करने वाला अनुच्छेद संविधान से निकाल दिया गया। भविष्य में इस्लाम सहित सभी धर्मों का एक ही आधार होगा। परमात्मा (अल्लाह) में विश्वास रखने की शपथ अब राज्य के पदाधिकारियों को नहीं लेना होगी प्रत्युत उनको केवल गणतन्त्र के प्रति अपनी निष्ठा की घोषणा करनी पड़ती थी।

छोटे मोटे परिवर्तन भी हुए। भविष्य में मस्जिदों में जूते पहने जा सकते थे, और प्रार्थना के समय मस्जिद में स्थान सुरक्षित किये जा सकते थे तथा गाना गाया जा सकता था। पवित्र मुसलमान होने के चिह्न तुर्की टोपी को पहनने की आज्ञा नहीं दी गयी। व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक सभी प्रकार के विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। धार्मिक प्रशिक्षण अपेक्षाकृत अधिक उदार होना चाहिये।

स्त्रियों की सुधरी हुई दशा

स्त्रियों की दशा में भारी परिवर्तन हुआ। वैध बहुविवाह को समाप्त करने वाली विधियाँ पारित की गयीं। विवाह का भविष्य में पंजीकरण होना चाहिये। राष्ट्रपति विवाह-सम्बन्ध विच्छेद (तलाक की आज्ञा दे सकता था और उसने स्वयं शीघ्र ही अपने विवाह सम्बन्ध को समाप्त करके इसका श्रीगणेश किया। भविष्य में स्त्रियों को वे ही अधिकार प्राप्त होंगे जो पश्चिमी यूरोप में स्त्रियों को सामान्यतः प्राप्त हैं। विवाह की इच्छा करने वाले व्यक्तियों के लिये न्यूनतम आयु निश्चित कर दी गयी : स्त्रियों के लिये सत्तरह वर्ष और पुरुषों के लिये अठारह वर्ष। स्त्रियों को स्वतन्त्रतापूर्वक शिक्षा दी जाने लगी और उन्होंने बड़ी संख्या में नवीन अवसरों का लाभ उठाना प्रारम्भ किया। कुछ वर्षों में निरक्षरता आधी रह गयी तो भी निरक्षर व्यक्तियों की संख्या अब भी अत्यधिक थी। १९३२ में ४२% व्यक्ति निरक्षर थे। पर्दा को ऐच्छिक घोषित कर दिया गया। स्त्रियों को पश्चिमी वेश-भूषा धारण करने की आज्ञा दे दी गयी और उसका व्यापक प्रचलन हो गया। स्त्रियों के लिये बहुत से व्यवसाय खोल दिये गये और १९२९ में उनको स्थानीय निर्वाचन में मतदान करने का अधिकार दे दिया गया। उसके

पश्चात् उनको स्थानीय संस्थाओं में पदाधिकारी होने का अधिकार भी दे दिया गया। स्त्रियों की मनोरंजन-संस्थायें (clubs) पर्याप्त संख्या में स्थापित हो गयीं।

१९२६ में ग्रेगोरीय वर्ष अपना लिया गया और २४ घन्टों वाली घड़ी भी प्रयोग की जाने लगी। यह (प्रस्ताव भी) पारित किया गया कि कुछ समय के पश्चात् अरबी लिपि के स्थान पर लैटिन लिपि का प्रयोग किया जावेगा। यूरोपीय अंकपद्धति का प्रयोग होने लगा। (प्रस्ताव भी) परित किया गया कि १ जनवरी १९३३ से मीटरिक पद्धति लागू हो जावेगी। स्विटजरलैण्ड, जर्मनी तथा इटली की प्रणालियों पर आधारित व्यवहार (दीवानी) व्यापार तथा अपराध (फौजदारी) की विधियाँ तथा नवीन न्याय-पद्धति स्थापित की गयी। सैनिक सेवा की अवधि घटाकर अठारह मास करदी गयी। यह अधिनियम कृषकों में अधिक प्रिय हो गया। सर्वजनोपयोगी सेवाओं की योजनायें बनाई गयीं और उनका अध्ययन किया गया। फलतः रेल मार्गों, सड़कों और बन्दरगाहों में अत्यधिक सुधार हो जावेगा जबकि वे योजनायें पूरी हो जावेंगी। औद्योगिक विकास का अध्ययन किया गया और उसकी योजनायें बनाई गयीं। १९२८ से १९३१ तक तीन वर्षों के भीतर तुर्की का उत्पादन २०,०००,००० डालर बढ़कर ५०,०००,००० डालर हो गया।

यह नवीन विधियाँ पुनः स्थापित की गयीं

तुर्की ने अतीत से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया है और उन्होंने अपनी भाषा तथा भौगोलिक नामों तक में (परिवर्तन करके) वर्तमान के प्रति एक नई अभिवृत्ति (रवैया) का प्रदर्शन किया है। कुस्तुन्तुनिया का नाम अब उन्होंने स्तांबुल और स्मर्ना का स्मीर रख दिया है। उन्होंने प्रसिद्ध किन्तु अभिक्रम्प कुस्तुन्तुनिया के स्थान पर अंगोरा को अपनी राजधानी बनाया है जोकि एशिया माइनर के मध्य में एक सुरक्षित स्थान है। अंगोरा को अब अंकारा कहते हैं और शासन का स्थान होने के कारण इसकी जनसंख्या ५००० के स्थान पर ४०,००० हो गयी है। तुर्कों ने अपनी भाषा को शुद्ध करने के लिये बहुत से अरबी भाषा के नवीन प्रयोगों को बन्द करने का प्रयत्न किया है और नवीन विचारों तथा आधुनिक तथ्यों के लिये तुर्की भाषा के शब्दों को प्रयोग करना आरम्भ किया है।

अपनी संस्थाओं को आधुनिक बनाने तथा उनमें नवजीवन का संसार करने के लिये तुर्कों ने जहाँ कहीं से सम्भव हो वहीं से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया है। इस प्रकार उन्होंने तुर्की के साधनों का सावधानी के साथ अध्ययन करने तथा राष्ट्रीय विकास के लिये एक व्यापक योजना का सुझाव देने के लिये संयुक्त राज्य अमरीका की रेलों के भूतपूर्व महा-निदेशक डा० डी० हाइन्स तथा अमरीका सहायक वर्ग को नियुक्त किया। उनकी इच्छा तथा उद्देश्य स्पष्टतः यही हैं कि वे विश्व के अधिकतम आधुनिक राष्ट्रों में स्थान प्राप्त कर लें।

वाकर डी० हाइन्स आयोग

आमन्त्रण पाने पर १९३२ ई० में तुर्की राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया। और १९३६ में स्विटजरलैण्ड में मॅण्ट्रा के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने तुर्की के डॅडिनलीज की किलाबन्दी करने के अधिकार को मान लिया जो कि कई वर्षों से नहीं माना जा रहा था।

अगले अध्यायों में १६३७ से १६६५ तक की प्रमुख घटनाओं का संक्षिप्त विवरण अनुवादक द्वारा प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुतीकरण यथासम्भव श्री हेजन की शैली से ही किया गया है किन्तु प्रत्येक अध्याय के अन्त में प्रमुख तिथियों और घटनाओं की तालिका सारांश के रूप में विद्यार्थियों और पाठकों की सुविधा के लिये दे दी गयी है।

अध्याय ५३

उपसंहार, १९३७

१९१९ में पैरिस के सम्मेलन ने विश्व में शांति स्थापित की थी। इसी सम्मेलन में यह प्रयत्न किया गया था कि वह शांति चिरस्थायी रहे। यह प्रयत्न था विश्व के अन्य संस्थाओं के अतिरिक्त एक नए संस्थान राष्ट्रसंघ की स्थापना। इसका मूल उद्देश्य उन अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयों को सुलझाकर शांति के प्रयत्नों और कार्यों को चिरस्थायी बनाना था जो कि भविष्य में उत्पन्न हों। इस प्रकार युद्ध को समाप्त कर देना ही इसका उद्देश्य था। राष्ट्रसंघ का संगठन किया गया और उसका कार्यालय जिनेवा में स्थापित किया गया। यह आशा की गयी थी कि अन्ततः इस संघ में सभी राष्ट्र सम्मिलित होंगे और इसके निर्णय सामान्यतया पूर्ण होंगे। उसका अधिकार पत्र तैयार किया गया और वह १९२० में कार्य करने लगा। परन्तु प्रारम्भ से ही यह स्पष्ट था कि इसको कठिन कार्य करना होगा और वह सम्भवतः असम्भव कार्य होगा क्योंकि प्रारम्भ में संघ में विश्व के सभी राष्ट्र सम्मिलित नहीं होते थे। जो चाहते थे वे इस नवीन पद्धति को अस्वीकार कर सकते थे और संयुक्त राज्य ने इसको प्रारम्भ में ही अस्वीकार किया था। प्रारम्भ में वे राष्ट्र भी इसमें सम्मिलित नहीं किये गये थे जो कि उन राष्ट्रों के शत्रु थे जो इस नवीन संस्था का संगठन कर रहे थे।

तथापि यह संगठन कार्य करने लगा। एक नवीन पद्धति को प्रयोग करने का परीक्षण प्रारम्भ किया था। यह पद्धति भद्दे तथा व्ययसाध्य युद्ध को टालने की थी जो कि कठिनाइयों के समय प्रायः व्यवहृत किया जाता था।

युद्ध के पश्चात् के प्रारम्भिक वर्षों में संघ ने समग्ररूप में सक्रियता तथा सफलतापूर्वक कार्य किया। इसने कई कठिन और अशांतिपूर्ण स्थितियों पर विचार किया और उसने कम से कम अस्थायी रूप से उन सबका समाधान कर दिया। सम्बन्धित देशों के सम्बन्ध में इनमें से बहुतसी समस्याओं का वर्णन किया जा चुका है। आलैंड द्वीपों के मामले का अध्ययन किया गया तथा उसका समाधान किया गया। डैनिश सीमा के प्रश्न तथा साइलेशिया पर पोलैण्ड और जर्मनी के अधिकार

के प्रश्न पर सन्तोषजनक कार्यवाही की गयी। संघ ने वित्तीय कठिनाइयों में फँसे हुए आस्ट्रिया तथा हंगरी की सहायता के लिए भी हस्तक्षेप किया।

परन्तु कभी-कभी ऐसा प्रश्न सामने आता था जिसका सन्तोषजनक समाधान नहीं किया जाता था।१९२२ में फ्रांस ने जर्मनी के मामलों में हस्तक्षेप किया और उसका समाधान भली-भाँति नहीं किया गया। फ्रांस ने अपनी आशा के अनुसार सफलता प्राप्त नहीं की। दूसरी ओर जर्मनी ने अपनी दशा को अक्षरणीय बना दिया और उसने अपने विनिमय के साधन अर्थात् अपनी मुद्रा का सत्यानाश कर दिया। इस घटना का यह परिणाम हुआ कि संघ ने विधान द्वारा जर्मनी के ऋण के भुगतान की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया। यह ऋण जर्मनी को उसके युद्धकाल के कार्यों के कारण देना था। यह समस्या सम्बन्धित शक्तियों द्वारा १९२४ की डैविस योजना तथा १९२८ की यंग योजना के द्वारा हल की गयी थी। कुछ विरोध के पश्चात् जर्मनी ने इन व्यवस्थाओं को स्वीकार कर लिया और यह प्रतीत होने लगा कि युद्ध के द्वारा उत्पन्न की गयी गम्भीरतम समस्याओं का अन्त में निराकरण हो गया था, और विश्व के राष्ट्र निर्विघ्न होकर अपनी समस्याओं के समाधान पर अपना अवधान केन्द्रित कर सकते हैं। इससे यह प्रदर्शित होता था कि संघ का यन्त्र सुचारु रूप से चल रहा था और संघ सफलतापूर्वक अपनी जड़ जमा रहा था।

इस बात का एक प्रमाण और मिला। वह यह था कि जर्मनी को संघ का एक प्रमुख सदस्य स्वीकार कर लिया गया और उसका प्रतिनिधि स्ट्रैसमैन संघ में शक्ति सम्पन्न व्यक्ति बन गया था। स्ट्रैसमैन अपने तथा अन्य राष्ट्रों के शांतिपूर्ण विकास में दृढ़ विश्वास रखता था। सभी राष्ट्रों का दृष्टिकोण आशापूर्ण दिखाई देता था।

परन्तु दुर्भाग्य से यह स्थिति दीर्घकाल तक नहीं बनी रही। १९२९ और १९३० में संसार की दशा पूर्वापेक्षा अधिक गम्भीर हो गयी। क्षितिज में आर्थिक गिरावट का दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था और शीघ्र ही उसने सामान्य एवं उग्र रूप धारण कर लिया। जर्मनी में अडोल्फ हिटलर नामक व्यक्ति ने उसकी सक्रिय अभिव्यंजना की। वह कई वर्षों तक प्रभावहीन रहा था और उसको महत्त्वहीन भूमिका अदा करनी पड़ी थी परन्तु अब जर्मनी के असन्तोष तथा अशांति में उसको उपयुक्त अवसर दिखाई दिया। उसने तीव्र भाषा में अपने असन्तोष की अभिव्यंजना की, तत्कालीन शासन के विरुद्ध उसने व्यापक तथा प्रबल विरोध किया और उसने मतदाताओं में आलोचनात्मक तथा अनुचित आन्दोलन को जागरित किया। उसके अनुयायियों की संख्या द्रुतगति से बढ़ी और वह १९३३ में जर्मनी का चांसलर बन गया। उसने शासन में द्रुत एवं आमूल परिवर्तन प्रारम्भ किये। कुछ ही मासों में वह अधिनायक बन गया और उसने जर्मनी की पुरानी संस्थाओं को समाप्त कर दिया।

फलस्वरूप नात्सियों ने वर्साई की सन्धि के उन भागों को मानना अस्वीकार कर दिया जिनमें कुछ ऐसी शर्तें थीं जिनको १९१९ में जर्मनों ने स्वीकार किया था। इन सैनिक, नौसैनिक तथा नभसैनिक उपबन्धों को जर्मनों ने भविष्य में न मानने की उद्घोषणा की। वे भविष्य में वर्साई की सन्धि के आदेशों के अनुसार नहीं प्रत्युत अपनी इच्छाओं के अनुसार अपनी स्थल सेना, जलसेना तथा वायुसेना का निर्माण करेंगे। जहाँ तक उनका सम्बन्ध था वह सन्धि समाप्त हो चुकी थी। १५ अप्रैल

१९३५ को जर्मनी ने अनिवार्य सैनिक सेवा पुनः प्रारम्भ कर दी और उसने यह प्रदर्शित किया कि वह ५००,००० की सेना रखेगा, कई सहस्र वायुयानों से उसकी वायुसेना का निर्माण होगा तथा ब्रिटेन की नौसेना की एक तिहाई के आकार की उसकी नौसेना होगी। इन व्यवस्थाओं को वह अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब परिवर्तित कर सकेगा।

जापान राष्ट्रसंघ से पहले ही निकल गया था और उसने अपनी युद्ध सामग्री तैयार करना तथा मंचूरिया में अपना राज्य-विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया था। और अब १९३५ की शरद् ऋतु में इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया था जो कि पचास से अधिक राष्ट्रों के निषेध के विरुद्ध किया गया था। मई १९३६ में उसने विजय प्राप्त कर ली।

इस प्रकार तीन महान् सैनिक राज्यों ने राष्ट्रों की स्पष्ट इच्छाओं के विरुद्ध कार्य किया था। इन राष्ट्रों ने जनेवा में यह आशा की थी कि उन्होंने भविष्य के लिए शांतिपूर्ण विश्व का निर्माण कर दिया है। परन्तु संघ के इन राष्ट्रों में से कोई भी राष्ट्र इन युद्धप्रिय राष्ट्रों को उनकी इच्छानुसार कार्य करने से रोकने के लिए शस्त्र ग्रहण करने को तैयार नहीं था। संघ की आज्ञा का उल्लंघन किया जा चुका था परन्तु वह अपने उद्देश्य की रक्षा के लिए युद्ध नहीं करेगा। वह केवल ऐसे निर्णयात्मक कार्यों (सामरिक कार्यवाहियों) की केवल सार्वजनिक रूप से निन्दा करता था। संघ को दिवालिया समझना उचित था। शीघ्र ही इंगलैण्ड ने अपनी नौसेना को बढ़ाना तथा वायव्य सामरिक सामग्री को पूर्ण करना प्रारम्भ कर दिया। फ्रांस ने अपनी सैनिक सामग्री को बढ़ाना, अन्य राष्ट्रों से अपने समझौतों का सुदृढ़ करना तथा रूस से भी एक सैनिक मैत्री करना प्रारम्भ कर दिया जो कि जर्मनी के भय से राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया था। इस प्रकार यूरोप १९१४ में युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व की स्थिति में पुनः पहुँच गया था। १९१८ के विजेताओं की विश्व को स्थायी शांति का आश्वासन दिलाने की आशा पूर्णरूप से तिरोहित हो गयी थी। संघ बना रह सकता था परन्तु यदि वह स्थापित रहा तो वह अनिवार्य रूप से परिवर्तित तथा महत्त्वहीन भूमिका अदा करेगा। विश्व को एक नये युग का, नहीं नहीं पुनर्निर्मित भूतपूर्व युग का, सामना करना पड़ रहा था—एक ऐसा युग आ गया था जो कि भविष्य का निर्णय-शक्ति के आधार पर करेगा। इस युग का विश्व तीन विरोधी दर्शकों में विभाजित था: साम्यवाद का दर्शन, फासिस्टवाद का दर्शन और लोकतंत्रवाद का दर्शन। इन विभिन्न शक्तियों का क्या भविष्य होगा? यह परिस्थितियों पर निर्भर था। राष्ट्रसंघ के मूलभूत लक्ष्य की पूर्ति अब सम्भव नहीं थी क्योंकि महती शक्तियों ने उसको चुनौती दे दी थी। १९१९ का वह स्वप्न समाप्त हो चुका था जो कि एक ऐसी संस्था द्वारा युद्ध की सम्भावनाओं को समाप्त करने का था जिसके प्रत्येक सदस्य को समानाधिकार प्राप्त थे। यह स्वप्न यदि साकार बनाया जा सकता था तो समान सदस्यों के सघ के द्वारा नहीं अपितु एक सच्चे संघ के द्वारा, एक उच्चतर शक्ति द्वारा साकार बनाया जा सकता था। यह भी स्पष्ट था कि ऐसी उच्चतर शक्ति (की स्थापना) का समय अभी नहीं आया था। सम्भव है कि वह समय कभी न आवे।

अध्याय ५४

युद्ध को पृष्ठभूमि
(जून १९३७ से अगस्त १९३९ तक)

[पिछले अध्यायों में १९१९ से १९३७ (मई) तक यूरोपीय देशों की प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया जा चुका है। इस अध्याय में उन देशों की अगले दो वर्षों की प्रमुख घटनाओं का दिग्दर्शन मात्र कराया जावेगा।]

स्पेन—जून १९३६ में स्पेन का गृहयुद्ध प्रारम्भ हुआ था। मई १९३७ में विद्रोहियों के नेता ऐमीलियोमोला का देहान्त हो गया। अब उनका एक मात्र नेता जनरल फ्रैंकों ही इस गृह युद्ध का संचालन कर रहा था। विदेशी व्यक्तियों ने स्पेन की सरकार तथा जनरल फ्रैंकों को सहायता प्रदान की। इटली तथा जर्मनी फ्रैंकों को सहायता दे रहे थे। और रूस ने स्पेन की साम्यवादी दृष्टिकोण की सरकार की सहायता की। फ्रांस तथा इंगलैंड इस साम्यवादी सरकार को सहायता देने में हिचके तथापि विदेशी सहायता के कारण ही वह गृह युद्ध इतने काल तक चालू रहा। १९३७ में जनरल फ्रैंकों की सहायतार्थ १०,००० जर्मन तथा ७०,००० इटालवी सैनिक युद्ध कर रहे थे। दूसरी ओर गणतन्त्रात्मक शासन की सहायता के लिये २०१ रूसी वायुयान तथा बहुत से स्वयं केवल सैनिक युद्ध में संलग्न थे। रूस की यह सहायता अपर्याप्त थी। तो भी सरकार ने विद्रोहियों का दृढ़तापूर्वक सामना किया किन्तु जनवरी १९३९ में जनरल फ्रैंकों ने बार्सीलोना के प्रमुख दुर्ग पर अधिकार कर लिया और ३० मार्च १९३० में मैड्रिड भी विद्रोहियों के हाथ में चला गया। फलस्वरूप स्पेन में जनरल फ्रैंको की अध्यक्षता में फासिस्टवादी शासन की स्थापना हो गयी। फ्रैंकों अधिनायक बन गया। हिटलर तथा मुसोलिनी ने फ्रैंको की विजय को अपनी विजय समझा और इस गृह युद्ध के फलस्वरूप इन दोनों देशों में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये। साथ ही ये दोनों अधिनायक अपनी भावी विजयों को सम्भव समझने लगे।

न्योन का सम्मेलन—१९३७ में इटली के वायुयान तथा पनडुब्बियाँ फ्रैंको की सहायता तो करते ही थे, वे तटस्थ देशों के जहाजों पर आक्रमण करके उनको लूट लिया करते थे। इन समुद्री लूटों और डकैतियों की संख्या बढ़ती चली गई। क्योंकि भूमध्य सागर तथा काले सागर के तटवर्ती देशों के अन्य सामुद्रिक लुटेरे भी इसमें भाग लेने लगे। ब्रिटेन के चार युद्धपोत भी इन डकैतियों के शिकार हुए। अस्तु इन सामुद्रिक डकैतियों को समाप्त करने के लिए ब्रिटेन तथा फ्रांस ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया जिसका प्रथम अधिवेशन न्योन में १४ सितम्बर १९३७ को प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में इटली तथा जर्मन ने भाग लेना अस्वीकार किया किन्तु सम्मेलन ने ऐसे प्रस्ताव पारित किये कि पनडुब्बियों और वायुयानों के द्वारा भूमध्य-सागर पर जो डकैतियाँ होती थीं वे शीघ्र ही उनके लागू होने के पश्चात् समाप्त हो गयीं।

जर्मनी—हिटलर के अधिनायकत्व में जर्मनी ने वर्साई की सन्धि की अवहेलना प्रारम्भ कर दी थी, सैनिकवाद को पुनः अपना लिया था, जल-स्थल तथा नभ सेनाओं में अभिवृद्धि प्रारम्भ करदी थी। ७ मार्च १९३७ को जर्मनी की सेनाओं ने राइन के प्रदेश में प्रवेश किया तथा वहाँ पर सुदृढ़ सैनिक किलाबन्दी प्रारम्भ कर दी। उधर १९३६ में उसने तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय के विरुद्ध जापान से एक समझौता किया था। यह साम्यवादी देशों के विरुद्ध मोर्चा जुटाने के लिये किया गया था। इसको **कॉमिण्टर्न विरोधी सन्धि** कहते हैं। १९३७ में मसोलिनी भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार **रोम-बर्लिन टोक्यो-धुरी** स्थापित हो गयी। राष्ट्र संघ की सदस्यता का परित्याग करने वाले तीन देशों ने इंगलैण्ड, फ्रांस तथा रूस के विरुद्ध एक नया मोर्चा स्थापित कर दिया।

आस्ट्रिया—आस्ट्रिया में अधिकांश जनसंख्या जर्मनों की है। इसलिये हिटलर उसको जर्मनी से संयोजित करना चाहता था। इस संयोजन संगठन के मार्ग में दो बाधायें थीं। वर्साई की सन्धि और ब्रैनर दर्रे पर उपस्थिति इटालवी सेना। स्पेन के गृह-युद्ध में वह वर्साई की सन्धि के प्रमुख समर्थकों इंगलैंड तथा फ्रांस की असमर्थता तथा युद्ध में भाग न लेने की इच्छा से परिचित हो चुका था। इन दोनों देशों का उसको कोई भी भय नहीं था। उधर सितम्बर १९३५ में बर्लिन में पहुँचकर मसोलिनी ने हिटलर को विश्वास दिला ही दिया था कि वह उसके मार्ग में बाधा नहीं डालेगा। तब हिटलर ने आस्ट्रिया के चांसलर शुशनिग को अपने निवास-स्थान बर्केट गाडेन में आमन्त्रित किया तथा उसको आस्ट्रिया के नात्सी दल के नेता सीईस इन्क्वार्ट को गृह मन्त्री बनाने पर विवश किया। शुशनिग इन्क्वार्ट में प्रतिस्पर्धा चलती रही। हिटलर की सहायता से प्रत्येक मतवैभिन्य के अवसर पर इन्क्वार्ट की विजय होती थी। इसलिये ११ मार्च १९३८ को शुशनिग ने प्रधान मन्त्री का पद त्याग दिया। इन्क्वार्ट आस्ट्रिया का चांसलर बना और उसने हिटलर से प्रार्थना की कि वह अपनी सेना आस्ट्रिया भेजे। १२ मार्च १९३८ को नात्सी सेना ने आस्ट्रिया की सीमा में प्रवेश किया। अपनी सेना सहित हिटलर १४ मार्च को आस्ट्रिया की राजधानी वियना में प्रविष्ट हुआ। शुशनिग तथा अन्य सहस्रों नात्सी विरोधी नागरिक बन्दी बना लिये गये और बिना एक भी गोली चलाये हुए, बिना किसी रक्तपात के आस्ट्रिया और जर्मनी को संयोजित कर दिया गया। उनकी संगठन की कल्पना वास्तविकता में परिणित हो गयी। राष्ट्र संघ की मर्यादा मिट्टी में मिल

गई, वर्साई की सन्धि कूड़ेदान में फेंक दी गई, इंगलैण्ड और फ्रांस मौखिक विरोध करके चुप हो गये, और जर्मनी की जनसंख्या में ८० लाख की अभिवृद्धि हो गयी। किन्तु हिटलर के इस साहसपूर्ण कार्य ने समस्त विश्व को चौकन्ना कर दिया। २२ फरवरी १९३८ को ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने लोकसभा में कहा था, "मैं विश्वास-पूर्वक कह सकता हूँ कि वर्तमान रूप में राष्ट्र संघ में किसी को भी सुरक्षा प्रदान करने की सामर्थ्य नहीं है। अस्तु हमको अपने को तथा अन्य छोटे-छोटे राष्ट्रों को इस भ्रम में नहीं रखना चाहिए कि आक्रमण के विरुद्ध राष्ट्र संघ उनकी रक्षा कर सकेगा।" अब आस्ट्रिया की घटनाओं ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की भविष्यवाणी को सच्चा सिद्ध कर दिया। फलतः फ्रांस और ब्रिटेन ने अपनी **मैत्री-सन्धि** को पुनः दोहराया और भविष्य में युद्ध छिड़ने की दशा में उचित कार्यवाही के हेतु अपने जनरल स्टाफ (युद्ध विभाग) को परस्पर विचार विनिमय का अवसर दिया।

जैकोस्लावाकिया—जैकोस्लावाकिया की सीमा बहुत दूर तक जर्मनी से मिली हुई थी। इस सीमा पर सूडेटन पहाड़ के क्षेत्र में लगभग ३५ लाख जर्मन निवास करते थे। यहाँ भी आस्ट्रिया की भाँति नात्सी दल स्थापित हो गया था और धीरे-धीरे इस दल का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। आस्ट्रिया के जर्मनी में संयोजित होने के पश्चात् इस दल ने अविलम्ब स्वशासन की माँग की और जर्मनी के रेडियो से इस माँग का सबल समर्थन किया गया। २४ अप्रैल १९३८ को हेनालिन ने अपनी उदघोषणा में सूडेटन जर्मनों की माँगों का पूर्ण समर्थन किया और जहाँ पर जर्मनों का अधिकार था वहाँ पर स्वशासन स्थापित करने के लिए प्राग की सरकार से माँग की। साथ ही प्राग की सरकार से कहा गया कि वह फ्रांस तथा रूस से अपने सम्बन्धों को विच्छिन्न करके जर्मनी के साथ अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करे। जैकोस्लावाकिया की सरकार ने इन माँगों को अस्वीकार किया। फलतः जर्मनी ने उसके विरुद्ध अधिक तीव्र प्रचार प्रारम्भ किया तथा उसकी सीमाओं पर अपनी सेना को एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया।

इंगलैण्ड तथा फ्रांस का रवैया

चम्बरलेन ने इंगलैण्ड की संसद को चेतावनी दी थी कि 'यदि आस्ट्रिया का पतन हो गया तो जैकोस्लावाकिया की रक्षा नहीं की जा सकेगी।' चर्चिल ने भी संसद में यही वक्तव्य दिया था, "वियना पर जर्मनों के प्रभुत्व के कारण नात्सियों के लिए दक्षिण पूर्वीय यूरोप के लिये सभी मार्ग उन्मुक्त हो जाते हैं। ये भविष्यवाणियाँ निष्फल नहीं रहनी थीं। किन्तु जैकोस्लावाकिया के साथ ब्रिटेन की सहानुभूति ही थी, फ्रांस तथा रूस की भाँति उसकी कोई विशिष्ट सन्धियाँ नहीं थीं। अस्तु, आस्ट्रिया पर नात्सी आक्रमण के ११ दिन पश्चात् २२ मार्च १९३८ को लन्दन के **टाइम्स** नामक पत्र ने यह सुझाव दिया कि सूडेटन क्षेत्र के नागरिकों का जनमत संग्रह किया जावे, कि वे जैकोस्लावाकिया में रहना चाहते हैं अथवा अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित करना चाहते हैं। परन्तु नात्सी प्रचार तथा सीमा पर जर्मन सेना की उपस्थिति के कारण यहाँ की ८५% जनता जर्मनी के साथ संयोजित होने के पक्ष में थी।

जैकोस्लावाकिया के राष्ट्रपति मासारिक की मृत्यु के पश्चात् उनके परराष्ट्र मंत्री डा० वेनीज वहाँ के राष्ट्रपति बन गये थे (दिसम्बर १९३५)। उन्होंने फ्रांस तथा ब्रिटेन से जर्मनी के संभाव्य आक्रमण के समय सहायता के विषय में पूछ-ताछ

की। इन दोनों देशों ने यह उत्तर दिया, "हम सहायता देने के लिये तो तैयार हैं परन्तु यदि सूडेटन को स्वशासन प्रदान करके युद्ध की विभीषिका टाली जा सके तो हमारी सम्मति में युद्ध का टाला जाना ही उचित है।"

हिटलर की माँगें

परन्तु जैकोस्लावाकिया ने जर्मन आक्रमण को रोकने की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। फ्रांस ने सहायता देने का वचन दिया। अतः यह आशा थी कि रूस भी सहायता देगा। इन दो महान् शक्तियों की अभिवृत्ति का अनुमान करके इंगलैण्ड की सरकार ने विवाचन के हेतु लार्ड रंसीमैन को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। ७ जुलाई १९३८ को जैकोस्लावाकिया की सरकार के अनुरोध पर सूडेटन के नात्सी दल ने अपनी चौदह माँगें प्रस्तुत कीं। इन माँगों में देश की लोकतांत्रिक तथा प्रतिनिधि-त्यात्मक संस्थाओं को समाप्त करने तथा देश को पाँच भागों में विभक्त करने की भी माँगें सम्मिलित थीं। १२ सितम्वर को अपने न्यूरेम्बर्ग व्याख्यान में उसने जैकोस्लावाकिया के अल्पसंख्यक सूडेटनों का सार्वजनिक रूप से समर्थन किया और १४ सितम्वर को हैनालिन ने जैकोस्लावाकिया के अविलम्ब विघटन की माँग प्रस्तुत की। साथ ही सीमाओं पर जर्मनी की सेना में पर्याप्त अभिवृद्धि हो गयी और युद्ध के लक्षण दिखाई देने लगे। इसलिये १५ सितम्वर को इंगलैंड के प्रधान मन्त्री चैम्बरलैन ने वर्खटेसगाडेन में हिटलर से भेंट की। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस भेंट में हिटलर ने जैकोस्लावाकिया के उन प्रदेशों को माँगा जिनमें जर्मनों की संख्या अधिक थी। चैम्वरलेन ने फ्रांस की सहमति से जैकोस्लावाकिया पर दवाव डालकर हिटलर की उक्त माँग को पूरा कराने का वचन ले लिया परन्तु जव वे हिटलर से इस सम्वन्ध में पुनः मिले तब उसने २३ सितंबर को उनके सामने अधिक विस्तृत माँगें रखीं। ये माँगें गैटिसवर्ग के स्मृतिपत्र रूप में प्रस्तुत की गयी थीं। ये इस प्रकार थीं : (१) सूडेटन प्रदेश से १ अक्टूबर १९३८ तक जैकोस्लावाकिया की सैनिक तथा असैनिक व्यवस्था समाप्त हो जावे और जैक सरकार के सभी उच्च अधिकारी वहाँ से चले जावें। (२) २५ अक्टूबर से पहले जैकोस्लावाकिया के अन्य प्रान्तों में जनमत संग्रह किया जावे। २६ सितंबर के भाषण में हिटलर ने यह घोषणा की यदि २७ सितंबर को दोपहर तक जैक सरकार इन माँगों को स्वीकार नहीं करेगी तो जर्मन सेनाओं की लामबन्दी कर दी जावेगी। मसोलिनी ने हिटलर का समर्थन किया। इंगलैण्ड तथा फ्रांस ने यह घोषणा की कि यदि रूसी सेनायें जैकोस्लावाकिया की सहायता करेंगी तो वे भी उसकी सहायता करेंगे। परन्तु हिटलर यह जानता था कि रूस तथा फ्रांस कुछ कारणों से जैकोस्लावाकिया की सहायता नहीं कर सकते हैं। मसोलिनी ने मध्यस्थता का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और उसने इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली तथा जर्मनी के सम्मेलन का प्रस्ताव किया। संयुक्तराज्य के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने मसोलिनी से अनुरोध किया कि वह इस गुत्थी को सुलझाने के लिए अपने प्रभाव को काम में लावें। २७ सितंबर को टैलीफून से वातचीत करके मसोलिनी ने हिटलर को उक्त चार महान् शक्तियों के सम्मेलन के पक्ष में सहमत कर लिया। फलस्वरूप २९ सितंबर को म्यूनिख में चार राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ जिसमें इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री चैम्बरलेन, फ्रांस के प्रधानमन्त्री दलादियर, इटली के अधिनायक मसोलिनी तथा जर्मनी के अधिनायक हिटलर ने स्वयं भाग लिया। आठ घण्टे के

म्यूनिख का समझौता

विचार विमर्श के पश्चात् एक समझौते पर इन चारों ने हस्ताक्षर कर दिये । इसको **म्यूनिख का समझौता** कहते हैं । इस समझौते के प्रमुख उपवन्ध निम्नलिखित थे :—

(१) १ अक्टूबर १९३८ को जैक शासन सूडेटन प्रदेश को खाली करना प्रारम्भ करेगा तथा उसी दिन इस प्रदेश के चार जर्मन वहुल क्षेत्रों पर जर्मनी का अधिकार हो जावेगा ।

(२) चार महा शक्तियों तथा जैकोस्लावाकिया का अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ७ अक्टूबर तक शेष सूडेटन प्रदेश की सीमायें निर्धारित करेगा और उस प्रदेश पर १० अक्टूबर तक जर्मनी का अधिकार हो जावेगा ।

(३) इस विभाजन के पश्चात् वचे हुए जैकोस्लावाकिया पर होने वाले किसी भी आक्रमण के विरुद्ध इंगलैण्ड तथा फ्रांस उसकी सहायता करेंगे । तीन मास के भीतर जैकोस्लावाकिया अपने अल्पसंख्यक पोलों तथा हंगारियों के प्रश्न का निर्णय करेगा । तत्पश्चात् जर्मनी तथा इटली भी इंगलैण्ड और फ्रांस की भाँति जैकोस्लावाकिया को बाह्य आक्रमण के समय सभी प्रकार की सहायता देंगे । स्लावकों को भी आत्य-निर्णय का अधिकार होगा ।

समझौता का आधार तुष्टीकरण की नीति थी

स्पष्ट है कि इस समझोते का आधार हिटलर को संतुष्ट करना था । सम्मेलन में जैकोस्लावाकिया का एक भी प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं था । तो भी उसको अपने प्रदेश तथा अधिकारों से वंचित होने के लिये अपनी सहमति देनी पड़ी । इस समझौते के परिणामस्वरूप जैकोस्लावाकिया को अपना $\frac{१}{५}$ प्रदेश जर्मनी को देना पड़ा जिसमें उसके सबसे बड़े सैनिक दुर्ग तथा प्रमुख औद्योगिक केन्द्र स्थित थे । १५% शीशे का उद्योग, ५९% टैक्सटाइल (वस्त्र) उद्योग, ३३% औद्योगिक जनसंख्या और २७ बड़े नगरों में १४ बड़े नगर जर्मनी को हस्तांतरित करने पड़े । शीघ्र ही टेशीन प्रान्त पोलैण्ड को और स्लॉवाकिया का दक्षिणी भाग तथा लूथेनिया का मध्य भाग हंगरी को देना पड़ा ।

म्यूनिख समझौता तुष्टीकरण की नीति पर आधारित था । कुछ आलोचकों का विचार है कि यह इंगलैंड तथा फ्रांस की दुर्बलता का परिचायक था परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं था । ये दोनों लोकतन्त्र युद्ध को टालना चाहते थे और यह विश्वास करते थे कि हिटलर केवल जर्मनों को एकत्रित करना एवं एक सबल जर्मन राष्ट्र की स्थापना करना चाहता है । इस उद्देश्य की पूर्ति को वे केवल युद्ध के द्वारा रोक सकते थे । इसके लिये वे तैयार नहीं थे । किन्तु परवर्ती घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि यह उनकी भूल थी । भावी इतिहासकार म्यूनिख समझौते को महाशक्तियों का हिटलर के सामने घुटना टेकना ही वतावेंगे । वह वास्तव में गैटिसवर्ग के स्मृति पत्र की माँगों का अनुपूरक था । लोकतन्त्र ने अधिनायकवाद को प्रोत्साहन प्रदान कर दिया था ।

म्यूनिख समझौते के पश्चात् डाक्टर वेनीज ने अपना पद त्याग दिया तथा वे विदेश चले गये । डा० हाचा राष्ट्रपति वने तथा एम० वेरन प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए । १४ दिसम्बर को जैकोस्लावाकिया की संसद स्वप्रस्ताव द्वारा अनिश्चित काल के लिये स्थगित हो गयी और कार्यपालिका को आदेश द्वारा विधि निर्माण करने का

अधिकार प्राप्त हो गया। अब केवल बोहिमिया तथा मोराविया इस शासन के नियन्त्रण में रह गये थे। १४ मार्च १९३९ को स्लावाकिया तथा रुथेनियाँ को लोक सभाओं ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की और १५ मार्च को हिटलर ने राष्ट्रपति हाचा और उसके विदेश सचिव को बर्लिन बुलाकर एक अभिलेख पर हस्ताक्षर करा लिये। इसके अनुसार बोहमिया जर्मनी का संरक्षित राज्य बन गया। स्लॉवाकिया के प्रधान मन्त्री की प्रार्थना पर वह जर्मनी के संरक्षण में ले लिया गया। इसी मध्य हंगरी ने रूथेनिया को अपने राज्य में मिला लिया। जैकोस्लावाकिया का अस्तित्व समाप्त हो गया। वह यूरोप के मानचित्र से तिरोहित हो गया। परन्तु इस घटना का लोकतांत्रिक देशों पर विशेषकर इंगलैण्ड पर भारी प्रभाव पड़ा। १७ मार्च को बर्मिघम के भाषण में प्रधानमन्त्री चैम्बरलेन ने शोकाकुल होकर कहा," क्या एक छोटे राज्य पर यह अन्तिम आक्रमण है अथवा इसके पश्चात् अन्य आक्रमण होंगे? क्या विश्व पर पाशविक शक्ति द्वारा आधिपत्य जमाने का यह प्रथम पग है?" किन्तु हिटलर ने इस प्रकार की अभिव्यंजनाओं को दुर्बलता का प्रतीक अथवा पागल का प्रलाप मात्र समझा।

ग्रेट ब्रिटेन—अध्याय ४० में हम देख चुके हैं कि इंगलैंड में १९३१ में राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल मैकडानॉल्ड के नेतृत्व में स्थापित हुआ था। १९३५ में मैकडानॉल्ड के पश्चात् बाल्डविन प्रधान मन्त्री बना और १९३७ में उसके स्थान पर चैम्बरलेन ने प्रधानमन्त्री का पदभार सम्हाला था किन्तु ये तीनों प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल के नेता थे अर्थात् प्रधान मन्त्रियों तथा मन्त्रियों का परिवर्तन हुआ था, शासन का स्वरूप और उसकी नीतियाँ अपरिवर्तित रही थीं। राष्ट्रीय शासन ने देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए अथक प्रयत्न किये। फलस्वरूप इंगलैण्ड की आर्थिक दशा में सुधार हुआ। साम्राज्य की अन्य समस्याओं का निराकरण करने के लिये कई सम्मेलन भी किये गये। ब्रिटिश साम्राज्य को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की संज्ञा प्रदान की गयी। भारत, मिस्र इत्यादि देशों में स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये कुछ समय से प्रयत्न हो रहे थे। इनकी परिणति आगे चलकर उन देशों की स्वतन्त्रताओं में हुई। इसका सविस्तार वर्णन आगे यथास्थान किया जावेगा।

यूरोपीय रंगमंच पर घटनायें द्रुतवेग से घटित हो रही थीं जिनके कारण राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। मार्च १९०९ के अन्त में प्रधानमन्त्री चैम्बरलेन ने लोकसभा में उद्घोषणा की,

तुष्टीकरण की नीति में परिवर्तन

"यदि मुझको यह विश्वास हो जावे कि किसी राष्ट्र ने विश्व पर शक्ति के द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित करने का निश्चय कर लिया है तो मैं समझता हूँ कि उसको रोकना आवश्यक होगा।" ३१ मार्च को पोलैण्ड को यह विश्वास दिलाया गया था कि "जब किसी कार्यवाही से पोलैण्ड की स्वतन्त्रता को संकट उत्पन्न होता है और उसको रोकने के लिए पोलैण्ड की सरकार सैनिक कार्यवाही आवश्यक समझती है तब ब्रिटिश सरकार को विवश होकर उसको सब प्रकार की सहायता देनी होगी।" इन उद्घोषणाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि इंगलैण्ड की विदेश-नीति में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। फ्रांस भी इंगलैण्ड के साथ था। अतः शीघ्र ही जिस प्रकार का आश्वासन पोलैंड को दिया गया था उसी प्रकार के आश्वासन रूमानिया तथा तुर्की को भी प्रदान किये गये। रूस के साथ संधिवार्ता प्रारम्भ की गयी तथा २६

अप्रैल को आक्षित सैनिकों को बुला लिया गया। १९३९-४० के आय-व्यय व्यौरे में सैनिक व्यय में पर्याप्त वृद्धि कर दी गयी। इंगलैण्ड यह अनुभव करने लगा था कि अव युद्ध अधिक दिनों तक नहीं टाला जा सकता है।

रूस—लैनिन की मृत्यु के पश्चात् रूस में ट्राटस्की और स्टैलिन के मध्य जो सत्ता के लिए संघर्ष हुआ था उससे स्टैलिन को सफलता मिली। ट्राटस्की विदेश चला गया था और स्टैलिन ने अपने विरोधी तत्त्वों का दमन करके अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। उसकी गृह तथा विदेश नीति में जो परिवर्तन हुआ था उसके परिणाम अव स्पष्ट होने लगे। १९२८ में प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ की गयी थी। उसकी सफलता से उत्साहित होकर उसने १९३३ में द्वितीय पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ की। इस योजना के अन्तिम वर्ष तक (१९३९) रूस की कृषि योग्य भूमि के ११%पर बड़े-बडे फार्म स्थापित हो गये। १९३९ ई० में जो औद्योगिक उत्पादन होता था उसका ⅘ भाग उन कारखानों द्वारा तैयार होता था जो कि गत दस वर्षों में खड़े किये गये थे। यांत्रिक तथा वैज्ञानिक, सहकारी आधार पर व्यवस्थित और पंच-वर्षीय योजनाओं द्वारा प्रोत्साहित एवं संपोषित कृषि ने आशातीत उन्नति की। देश के प्राकृतिक साधनों, नदियों, खानों, वनों आदि का पूरा-पूरा शोषण किया गया। परिणाम यह हुआ देश ने सर्वतोन्मुखी उन्नति की। १९१७ में शिक्षितों की संख्या २७% थी। वह १९३९ में ५८% हो गयी। आवास व्यवस्था में भी सुधार हो गया जनसाधारण का जीवन स्तर ऊँचा उठ गया।

राजनीतिक क्षेत्र में भी रूस ने उन्नति की। मई १९३६ में एक प्रमुख घटना घटी अर्थात् लिटविनॉव के स्थान पर मॉलोटोव विदेश विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। लिटविनॉव लोकतान्त्रिक देशों के प्रति कुछ आकर्षण रखता था। इस-लिए इंगलैण्ड तथा फ्रांस के साथ मंथरगति से चलने वाली संधिवार्ता की सफलता की जो एक क्षीण आशा थी वह भी नष्ट हो गयी। ये दोनों लोकतांत्रिक देश रूस से जर्मनी के विरुद्ध संधि करना चाहते थे परन्तु वे पोलैंड तथा रूमानिया के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश को आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा की प्रत्याभूति नहीं देना चाहते थे। इन दोनों देशों से रूस के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। तो भी रूस इस शर्त पर इन देशों से गठबंधन करने को तैयार था कि इंगलैंड, फ्रांस तथा रूस तीनों ही देश बाल्टिक सागर से लेकर काले सागर तक सभी देशों को इस प्रकार की सुरक्षा की प्रत्याभूति दें। परन्तु इंगलैंड तथा फ्रांस इसके लिये तैयार नहीं थे।

उधर रूस को भी जर्मनी से भय वढ़ता जा रहा था। जैकोस्लावाकिया के जर्मनी में मिलाए जाने से जर्मनी तथा रूस की सीमायें कारपेथिया में एक दूसरे से आ मिली थीं। जव हिटलर ने लिथुआनिया से मेमेल का प्रदेश ले लिया, तव रूस को चिन्ता और भी वढ़ गयी। उसका यह संदेह था कि इंगलैंड जर्मनी को रूस के विरुद्ध प्रोत्साहित कर रहा था; कि इसीलिये वह पोलैंड तथा रूमानिया के अतिरिक्त अन्य किसी देश को आक्रमण के विरुद्ध प्रत्याभूति नहीं देना चाहता था। और कि पश्चिमी लोकतन्त्र वास्तव में हिटलर के विरुद्ध युद्ध के लिये तैयार नहीं थे। इसलिए जर्मन समर्थक मॉलोटोव ने जर्मनी से संधि करने में कोई हानि नहीं समझी। जर्मनी भी रूस की ओर से निश्चिन्त होकर इंगलैंड तथा फ्रांस से निवटना चाहता था। अस्तु दोनों ही देश अपने अपने कारणों से परस्पर मैत्री संवन्ध स्थापित करना चाहते थे।

इंगलैण्ड तथा रूस में बातचीत चलती रही। श्रमिक दल ने यह प्रस्ताव किया कि इस हेतु लार्ड हैलीफैक्स को रूस भेजा जावे किन्तु सरकार ने विदेश विभाग के एक कर्मचारी, विलियम स्ट्रैंग को वहाँ भेजा। परन्तु उसको भी कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये थे। अगस्त के मध्य में सैनिक स्तर पर बातचीत प्रारम्भ हुई। इस बार भी कोई प्रथम श्रेणी का राजनीतिज्ञ वार्ता के लिए रूस नहीं भेजा गया। अतः रूसियों ने ठीक ही कहा कि हम आशा करते थे कि कोई प्रथम वर्गीय राजनीतिज्ञ यहाँ आवेगा किन्तु आपने ऐसे व्यक्ति भेजे हैं जो हमारे साथ समानता के स्तर पर बातचीत नहीं कर सकते हैं। तथापि रूस ने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि वह उत्तर में विलना तथा दक्षिण में ल्वोव को अपनी सेनायें भेजेगा ताकि वे जर्मन सेनाओं का प्रतिरोध कर सकें। पोलैण्ड ने इस प्रस्ताव को पहले तो अस्वीकार किया किन्तु २२ अगस्त को उसने उसको स्वीकार कर लिया। इस शुभ समाचार को सुनने के लिए जब इंगलैंड तथा फ्रांस के रूस में रहने वाले राजदूत मोलोटोव के पास पहुँचे तो उसने हँसकर कहा कि अगले दिन जर्मन का विदेश मन्त्री इवॉनट्राप मास्को में रूस तथा जर्मनी के मध्य होने वाले प्रतिरक्षात्मक एवं परस्पर अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर करने आने वाला है। २३ अगस्त को इस सन्धि पर हस्ताक्षर हो गए। यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जिसने सारे संसार को आश्चर्य चकित कर दिया। इस संधि से निश्चित होकर रूस ने अपनी प्रतिरक्षात्मक कार्यवाहियाँ प्रारम्भ कर दीं और वह अपनी सीमाओं को संभावित आक्रमण से बचाने के लिए तैयारी करने लगा।

इटली—१९२७ में मसोलिनी अपनी गृह नीति तथा विदेशनीति पर संतुष्ट था। इटली ने उसके अधिनायकत्व में आर्थिक, औद्योगिक तथा राजनीतिक प्रगति की थी। विदेशों में अबीसीनिया की विजय से उसका सम्मान तो नहीं किन्तु आतंक अवश्य बढ़ गया था। इंगलैंड जैसे देश ने प्रारम्भिक विरोध के पश्चात् अबीसीनिया की विजय को एक तथ्य मान लिया। यूरोप के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में उसको गौरवपूर्ण पद दिया जाता था। संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति उसको यूरोपीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अपने प्रभाव को प्रयोग करने के लिए अनुरोध करता था। प्रथम विश्वयुद्ध में इटली मित्र राष्ट्रों के साथ रहा था परन्तु वह उनसे परवर्ती युग में अधिकाधिक असंतुष्ट होता चला गया। जर्मन की ओर उसका झुकाव बढ़ने लगा और जब रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी की स्थापना हो गयी तब तो मानो विश्व दो गुटों में ही बट गया : एक ओर धुरी राष्ट्र तथा दूसरी ओर लोकतान्त्रिक राज्य। रूस का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण था। १९३९ में मसोलिनी ने अपनी सेनायें भेजकर अलबानिया पर अधिकार कर लिया और उसका राजा झॉग प्रथम विदेश भाग गया। २२ मई १९३९ को जर्मनी के रिबैनट्राप तथा इटली के काउण्ट सियानो में बर्लिन में बातचीत हुई और पारस्परिक प्रतिरक्षा तथा सहायता की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये।

फ्राँस—१९३७ में साम्यवादी मन्त्रिमण्डल के नेता ब्लम ने त्याग पत्र दे दिया। इसके पश्चात् उग्रवादी दलों के कई अल्पकालीन मन्त्रिमण्डल बने और बिगड़े। अन्त में वामपक्षियों, मध्यवादियों और उग्रवादियों ने यूरोप की विस्फोटक परिस्थिति से भयभीत होकर दलादिये के प्रधानमन्त्रित्व में संयुक्त मंत्रिमण्डल स्थापित किया। १९३९ में यही मन्त्रिमण्डल फ्रांस का भाग्यविधाता बना हुआ था। द्रुत वेग से मन्त्रिमण्डलों के बदलने के कारण फ्रांस की गृह नीति तथा वैदेशिक नीति स्थिर

नहीं रही थी। यद्यपि फ्रांस ने संयुक्त राज्य की ओर से निराश होकर कई यूरोपीय देशों से सुरक्षात्मक सन्धियाँ की थीं। रूस ने भी सन्धि वार्ता की थी किन्तु उसका कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ था। हिटलर की बढ़ती हुई शक्ति का वह प्रतिरोध करना चाहता था परन्तु इंगलैंड की तुष्टीकरण की नीति के कारण वह ठोस विरोध नहीं कर सका। किन्तु जब इंगलैंड में हिटलर का अधिक विरोध आरम्भ हुआ और चैम्बरलेन ने अपनी नीति में परिवर्तन की घोषणा की तब फ्रांस ने उसका साथ दिया। प्रधानमन्त्री दलादिये ने पर्याप्त योग्यता तथा नीति कुशलता का परिचय दिया।

पोलैण्ड—हिटलर ने धीरे-धीरे अपनी महत्त्वकांक्षाओं को पूरा कर लिया था। अब केवल पोलैण्ड की समस्या शेष बची हुई थी। हिटलर चाहता था कि डानजिग का बन्दरगाह जर्मनी को मिल जावे और पूर्वी साइबेरिया तथा पूर्वी प्रशा से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उसको मार्ग प्रदान कर दिया जावे। डानजिग के विख्यात बन्दरगाह की एक विशेष व्यवस्था की गयी थी। इस विषय में जर्मनी प्रारम्भ से ही असंतुष्ट था परन्तु १९१९ के विजेताओं ने उसके विरोध पर कोई भी ध्यान नहीं दिया था। इस नगर के शासन तन्त्र पर स्थानीय नात्सीदल का अधिकार था। डानजिग में जर्मनों की संख्या अधिक थी और वे जर्मनी के साथ संयोजित होना चाहते थे। अस्त मेमल को लेने के पश्चात् तथा रूस जर्मन अनाक्रमण सन्धि के सम्पादित हो जाने के पश्चात् इंगलैण्ड तथा फ्रान्स के द्वारा पोलैण्ड को आक्रमण के समय सहायता तथा सुरक्षा की प्रत्यानुभूति को पुनः दुहराये जाने पर भी उसने पोलैण्ड की समस्या का अविलम्ब समाधान करना चाहा। क्यों? वह समझता था कि इंगलैण्ड और फ्रांस जैकोस्लावाकिया आदि देशों में उसके द्वारा की गयी कार्यवाही के पश्चात् चुप हो गये थे। उसी प्रकार वे पोलैण्ड की विजय के पश्चात् चुप हो जावेंगे, और पौलैण्ड का अभियान एक सप्ताह से अधिक नही चलेगा। जब पौलैण्ड ने हिटलर की दोनों माँगों को अस्वीकार कर दिया तब हिटलर ने १६ अप्रैल १९३४ में किये गये पोल-जर्मन समझौते की समाप्ति की घोषणा की और अपनी सेनायें १९३९ की ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में डानजिग की ओर भेजनी प्रारम्भ कर दीं। आगामी मासों में जर्मनी ने पोलैण्ड पर अधिकाधिक दबाव डाला और जर्मन पत्र-पत्रिकाओं में पोलैण्ड के विरुद्ध भयंकर प्रचार हुआ। यूरोप में चारों ओर भय और आशंकायें परिव्याप्त होती जा रही थीं क्योंकि निकट भविष्य में युद्ध अवश्यंभावी प्रतीत हो रहा था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है मदान्ध हिटलर अपनी योजना को पूरा करने पर तुला हुआ था। २२ अगस्त को चैम्बरलेन ने तथा २६ अगस्त को दलादिये ने व्यक्तिगत पत्र भेज कर हिटलर से अपील की वह इस समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने का प्रयत्न करे। इसी प्रकार संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति ने २० अगस्त को इटली नरेश विक्टर एमेनुअल से तथा २४ अगस्त को हिटलर तथा पोलैण्ड के राष्ट्रपति से इस समस्या के शांतिपूर्ण समाधान का अनुरोध किया। २३ अगस्त को बेलजियम के राजा ने भी हिटलर से ऐसी अपील की। पोप पाइस द्वादश ने २४ अगस्त को हिटलर तथा मसोलिनी से शांति भंग न करने की अपील की किन्तु क्या हिटलर अपने निर्णय को बदल सकता था?

२८ अगस्त को ब्रिटिश राजदूत हैण्डरसन ने पोलैण्ड तथा जर्मनी के मध्य

सीधी वार्ता का प्रस्ताव रखा था किन्तु पोलैण्ड ने इस प्रस्ताव को नहीं माना। अतः ३० अगस्त को जब यह ब्रिटिश राजदूत जर्मनी के विदेशमन्त्री रिबैनट्राप से मिला तब रिबैनट्राप ने जर्मन भाषा में एक लम्बे स्मृतिपत्र को जल्दी-जल्दी पढ़कर उसको सुनाया। हैण्डरसन ने इस स्मृतिपत्र की एक प्रतिलिपि माँगी ताकि वह पोलैण्ड की सरकार को भेजी जा सके। इस पर रिबैनट्राप ने उत्तर दिया कि "इसके लिये अब समय नहीं था।" इसी दिन संध्या के समय बर्लिन के रेडियो ने जर्मनी की शर्तों की उद्घोषणा की और यह भी बताया कि पोलैण्ड ने इन शर्तों को अस्वीकार कर दिया था। ३१ अगस्त को पोप ने पुनः शांति की अपील की किन्तु यूरोप में ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण संसार में उस समय एक ही प्रश्न पूछा जा रहा था : अब क्या होगा ?

अध्याय ५५

द्वितीय विश्वयुद्ध और उसके परिणाम

काल दण्ड गहि काहु न मारा। हरहि धर्म बलबुद्धि विचारा ।।

—तुलसीदास

३० अगस्त की जर्मन घोषणा के उपरान्त युद्ध की अनिवार्यता प्रत्यक्ष हो चुकी थी किन्तु औपचारिक घोषणा नहीं हुई थी। ३१ अगस्त को पोप ने अपनी शांति की अपील को पुन: दोहराया था। किन्तु हिटलर को किसी की अपील या परामर्श को सुनने का अवकाश नहीं था। 'काल बस्य उपजा अभिमाना'। एक सितम्बर १९३९ को प्रात:काल साढ़े पाँच बजे जर्मनी सेना पोलैण्ड की सीमाओं में प्रवेश कर चुकी थी। युद्ध प्रारम्भ हो गया था।

युद्ध की घोषणायें

इंगलैण्ड तथा फ्रांस ने इन सेनाओं को वापस बुलाने के लिये हिटलर को कड़े शब्दों में कूटनीतिक संदेश भेजे परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। फलत: ३ सितम्बर को ११·१५ बजे इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री ने जनता को बताया कि जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जा चुकी है। छ: घन्टों के भीतर फ्रांस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की और एक सप्ताह के भीतर आइर को छोड़कर शेष सभी डुमीनियनों ने युद्ध की घोषणाएँ कर दीं। सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य ने जर्मनी की चुनौती को स्वीकार कर लिया।

१९३९ का युद्ध

१ सितम्बर को जर्मनी की सेनाएँ, बड़े-बड़े टैंक, बख्तरबन्द गाड़ियाँ और बमवर्षकों ने युद्ध नीति के एक नये अध्याय का श्रीगणेश किया। यह नीति विद्युत वेगीय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। पोलैण्ड की सेनाएँ इनका सामना नहीं कर सकती थीं। ब्रिटेन तथा फ्रांस की सेनाएँ इतने शीघ्र नहीं पहुँच सकती थीं। अत: एक सप्ताह के भीतर जर्मनी ने साइलेशिया के औद्योगिक केन्द्र पर अधिकार कर लिया और वारसा पर आक्रमण की तैयारियाँ होने लगीं।

दूसरी ओर २३ अगस्त की अनाक्रमण संधि की शर्तों के अनुसार रूसी सेनाएँ भी पोलैण्ड में प्रवेश कर रही थीं। २८ सितम्बर को वारसा का पतन होगया और उसी दिन जर्मन रूस सीमा तथा मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार पोलैण्ड को लगभग दो भागों में बाँटा गया था। विभाजक रेखा वारसा में होकर जाती थी। इसी दिनांक को जर्मनी तथा रूस की सरकारों ने एक संयुक्त विज्ञप्ति में यह उद्घोषणा की कि उन्होंने पोलैण्ड की समस्या को पूर्ण रूप से सुलझाकर यूरोप में स्थायी शांति की आधारशिला की स्थापना कर दी है। शांति के सद्प्रयत्नों का द्वार उन्मुक्त हो गया है। ८ अक्टूबर को पोलिश मार्ग तथा साइलेशिया जर्मनी में मिला लिये गये। जो भाग रूस द्वारा नहीं लिये गये थे वे ही अवशिष्ट बचे थे अर्थात् लगभग ४०,००० वर्ग मील का मध्य पोलैण्ड का क्षेत्र शेष रह गया था।

पोलैण्ड का पतन तथा विभाजन

पोलैण्ड को अधिकृत करने के पश्चात् हिटलर ने फ्रांस तथा इंगलैण्ड से सद्भावना की अपील की, क्योंकि उसके कथनानुसार उसने केवल वर्साई की संधि के अन्याय का अन्त किया था। उसकी अब कोई भी अन्य प्रादेशिक अभिलाषा नहीं थी। वह ब्रिटिश साम्राज्य की प्रत्याभूति देने को तैयार था। किन्तु फ्रांस और इंगलैण्ड को हिटलर की प्रतिज्ञाओं और आश्वासनों का कोई भी भरोसा नहीं था। हालैण्ड तथा बेलजियम के नरेशों ने भी इंगलैण्ड नरेश को व्यक्तिगत पत्र लिखे कि युद्ध रोका जा सके तो उसको रोकने का प्रयत्न किया जाना चाहिये परन्तु लोकतंत्र की चक्की धीमी चलती है और एक बार चालू होने पर कठिनाई से रुक पाती है। इंगलैण्ड तथा फ्रांस ने युद्ध को बन्द करना उचित न समझा।

हिटलर की अपील

रूस ने जर्मनी से अनाक्रमण संधि तो की थी किन्तु वह जर्मनी से अत्यन्त सतर्क था। वह अपनी सीमाओं को सुदृढ़ करना चाहता था। इसीलिये उसने रूस के विभाजन में भाग लिया था। उसकी सेनायें दक्षिणी यूक्रेन में वहाँ तक पहुँच गयीं जहाँ से जर्मनी की सेनायें हंगरी तथा रूमानिया पर सीधा आक्रमण करने से रोकी जा सकें। इस प्रकार हंगरी तथा रूमानिया से सटे हुए सीमान्त प्रदेश की प्रतिरक्षा का पूरा प्रबन्ध करके रूस ने बाल्टिक राज्यों की ओर अपना अवधान केन्द्रित किया। इस दिशा में भी वह केवल अपनी सीमाओं को सुदृढ़ करना चाहता था, अपने साम्राज्य की स्थापना तथा विस्तार नहीं करना चाहता था। वह बाल्टिक सागर पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था।

रूस का बाल्टिक राज्यों को जीतना

२८ सितम्बर को एस्थोनिया के साथ दशवर्षीय संधि की गयी। इस संधि के अनुसार रूस को एस्थोनिया में नौसैनिक तथा वायुयानों के अड्डे स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हो गया। दोनों में पारस्परिक सद्भावना रखने का तथा एक दूसरे के विरुद्ध किसी अन्य देश से संधि न करने का वचन दिया गया था। अगले दो सप्ताहों में अर्थात् ५ अक्टूबर को लैटविया के साथ तथा १० अक्टूबर को लिथुआनिया के साथ भी इसी प्रकार की संधियाँ की गयीं। इस क्षेत्र में केवल फिनलैण्ड शेष बचा। किन्तु

एस्थोनिया, लैटविया तथा लिथुआनिया के साथ

पूर्व उसने दक्षिण में रूमानिया की ओर अभियान किया क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् से बसरेबिया प्रान्त पर उसने अपना अधिकार कर रखा था। रूमानिया के विरुद्ध उसको सफलता नहीं मिली क्योंकि उसने मित्रराष्ट्रों तथा हंगरी से गठबंधन करके अपनी शक्ति को सुदृढ़ कर लिया था। इसी प्रकार रूस ने तुर्की से काले सागर को अन्य देशों के द्वारा प्रयोग न करने की आज्ञा न देने को कहा। तुर्की ने उसकी माँग को ठुकरा दिया और ब्रिटिश सरकार के साथ पारस्परिक सहयोग का समझौता कर लिया।

फिनलेण्ड का युद्ध

जिस प्रकार बाल्टिक सागर के किनारे राज्यों पर रूस के प्रभुत्व स्थापित होने की आवश्यकता थी उसी प्रकार उसके प्रभाव क्षेत्र में फिनलैण्ड का आना भी आवश्यक था। १२ अक्टूबर १९३९ को रूसी सरकार ने फिनलैण्ड के प्रतिनिधि के समक्ष ये प्रास्ताव रखते थे : (१) फिनलैण्ड रूस को कुछ सैनिक अड्डे तथा बन्दरगाह प्रदान करे। (२) रूसी सरकार उनके वदले में कुछ रूसी प्रदेश फिनलैण्ड को दे देगी। किन्तु इस प्रस्ताव को फिनलैण्ड ने अस्वीकार किया तो भी २९ नवम्बर तक बातचीत चलती रही। अन्त में शांतिपूर्ण उपायों की असफलता को देखकर रूस ने ३० नवम्बर को फिनलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। रूसी सीमा पर फिनों ने एक सुदृढ़ किलाबन्दी कर रखी थी जिसका नाम **मैनरहीम पंक्ति** था। इस छोटे किन्तु वीर राष्ट्र ने इसी पंक्ति पर रूसियों का डटकर सामना किया और दिसम्बर १९३९ के अन्त तक इस शीत प्रदेश में युद्ध चलता रहा। ऐसा समझा जाता है कि फिनलैण्ड को हिटलर का गुप्त समर्थन प्राप्त था।

पश्चिमी मोर्चे पर निष्क्रियता

एक ओर रूस और फिनलैण्ड का युद्ध हो रहा था। दूसरी ओर पोलैण्ड की विजय के पश्चात् हिटलर की सैनिक कार्यवाहियाँ मानो समाप्त हो गयी थीं। उसने किसी भी दिशा में कोई भी अतिक्रमण नहीं किया था। वह सम्भवतः युद्ध को यहीं रोक देना चाहता था और इंगलैण्ड तथा फ्रांस की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा था अथवा अपनी सामरिक तैयारियों में लगा हुआ था। जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण किये जाने के समय सारे संसार ने यह आशा की थी कि शीघ्र ही यूरोप के बड़े नगर ध्वस्त हो जावेंगे और चारों ओर भयंकर प्रलय मच जावेगी परन्तु इस युद्ध-शैथिल्य ने असैनिक जनता को ही नहीं सैनिकों को भी आश्चर्य में डाल दिया था। अक्टूबर १९३९ में लार्ड गौर्ट ने लिखा था कि इस निष्क्रियता के कारण सैनिकों के उत्साह को बनाये रखना कठिन होता जा रहा था। क्रिस्मस का त्यौहार सैनिकों द्वारा बड़ी धूमधाम और प्रसन्नता के साथ मनाया गया क्योंकि दिसम्बर १९४० में किसी भी मोर्चे पर, जिसमें मित्र-राष्ट्रों की सेनायें पड़ी हुई थीं, युद्ध नहीं हो रहा था।

१९४० का युद्ध

फिनलैण्ड की पराजय

१९४० के प्रारम्भ में केवल फिनलैण्ड के मोर्चे पर युद्ध हो रहा था। फिनों ने बड़ी वीरता के साथ रूस की वृहत् सेनाओं का ३ मास तथा १२ दिन सामना किया। किन्तु अन्त में उनको रूस से संधि के लिये विवश होना पड़ा। अस्तु १२ मार्च १९४० को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। ३० मार्च को रूस के साथ संधि पर हस्ताक्षर हो गये जिसके अनुसार रूस ने सामरिक महत्त्व के बन्दरगाहों,

नगरों और अन्य स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया । फिनलैण्ड की आन्तरिक स्वतंत्रता अक्षुण्ण रही किन्तु उसके शासन में कुछ परिवर्तन हो गये। हिटलर के अभियाओं का उद्देश्य विजित देशों को जर्मनी में मिलाना था किन्तु रूस का उद्देश्य केवल अपनी सीमाओं और सामरिक स्थिति को सुदृढ़ करना था। रूस साम्राज्य का विस्तार नहीं करना चाहता था। वाराबारावार्ड ने ठीक ही कहा है, "१९३९-१९४० की शीत ऋतु में की गई रूसी सैनिक कार्यवाही का मुख्य उद्देश्य यह था कि जिस समय उसके सबलतम शत्रु अन्यत्र युद्ध कर रहे थे, उस समय वह अपने को सामरिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाले।" इस उद्देश्य में रूस को बाल्टिक क्षेत्र में पर्याप्त सफलता मिली। उसकी इस दूरदर्शिता का महत्त्व आगामी वर्षों में प्रकट हुआ।

पश्चिमी मोर्चे की हलचलें

हिटलर ने अपनी छह मास की शांति को ९ अप्रैल १९४० को अचानक नार्वे पर आक्रमण करके भंग किया। यह आक्रमण क्यों किया गया था? जर्मन को स्वीडन से प्राप्त मात्रा में कच्चा लोहा मिलता था। जिससे स्टील की तोपें, बन्दूकें, टैंकें आदि बनाये जाते थे। यह लोहा नार्वे के नाविक नामक बन्दरगाह से जर्मनी को भेजा जाता था। अँग्रेजों ने नार्वे के आस-पास के समुद्र में सुरंगें बिछा दी थीं ताकि लोहा ले जाने वाले जहाज उनसे टकराकर नष्ट हो जावें और जर्मनी को कच्चा लोहा न मिल सके। उधर रूस ने बाल्टिक के तटवर्ती राज्यों पर अपना प्रभाव जमा लिया था। इसलिये कच्चे लोहे को उपलब्ध करने तथा अपने प्रभाव को स्थापित करने के लिये नार्वे पर आक्रमण किया गया था। साथ ही नार्वे के हवाई अड्डों से तथा बन्दरगाहों से वायुयानों और पनडुब्बियों द्वारा अंगरेजों के साथ व्यापार करने वाले जहाजों को नष्ट किया जा सकता था।

नार्वे का आक्रमण

९ अप्रैल का प्रातःकाल होने के पूर्व ही जर्मन सैनिक वायुयानों से पैराशूट की सहायता से नार्विक, त्रोन्धजेम बर्गेन, ऑसलो आदि नगरों में उतारे गये। उन्होंने देश के बहुत से महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार कर लिया। इंगलैण्ड और फ्रांस की सेनायें नार्वे की सहायता के लिये गयीं और मित्रराष्ट्रों की सेना ने नार्विक पर पुनः अधिकार कर लिया परन्तु जून के प्रारम्भ में मित्रराष्ट्रों को अन्यत्र की घटनाओं के कारण अपनी सेनायें वहाँ से हटा लेनी पड़ीं। नार्वे नरेश हाकोन इंगलैण्ड भाग आया। नार्वे के नात्सी दल का नेता भेजा क्विसलिंग[1] वहाँ की सरकार का अध्यक्ष बनाया गया। नार्वे जर्मनी का संरक्षित राज्य बन गया।

डेनमार्क की विजय

डेनमार्क से मक्खन, गोस्त, अंडे, पनीर इत्यादि खाद्य पदार्थ उपलब्ध किये जा सकते थे। ३१ मार्च को वहाँ की सरकार से नात्सीदल के १५० सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया था। इसलिये हिटलर ने नार्वे पर आक्रमण का आदेश देते समय उसने डेनमार्क पर भी आक्रमण करने का आदेश दे दिया। डेनमार्क की राजधानी में ९ अप्रैल को ही जर्मन सेनाओं ने प्रवेश किया और डेनमार्क ने बिना किसी प्रतिरोध के उसी दिन आत्म-समर्पण कर दिया। वह हिटलर के संरक्षण में आ गया।

---

1. युद्ध के काल में सभी देशों के देशद्रोहियों के नेताओं को क्विस्लिंग के नाम से पुकारा जाने लगा।

नार्वे और स्वीडन में हिटलर की जो विजयें हुई उन्होंने इंगलैन्ड की जनता को उत्तेजित कर दिया। संसद में चैम्बरलेन का कड़ा विरोध हुआ। अस्तु १० मई को चैम्बरलेन ने प्रधान मन्त्रित्व का पद त्याग दिया और चर्चिल के नेतृत्व में संयुक्त मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो गयी। उसी दिन हिटलर ने हालैण्ड तथा लक्षेम्बर्ग की तटस्थता बनाये रखने के अपने पूर्व वचन को त्यागकर "सैनिक आवश्यकता" के नाम पर हालैण्ड, बेलजियम तथा लक्षेम्बर्ग पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। लक्षेम्बर्ग पर सुगमतापूर्वक अधिकार कर लिया गया। हालैण्ड ने चार दिन तक जर्मन सेना का वीरतापूर्वक सामना किया किन्तु १४ मई को उसने हथियार डाल दिये। हालैण्ड के लगभग एक लाख सैनिक तथा नागरिक मारे गये। वहाँ की रानी विल्हेलिमना इंगलैण्ड भाग गयीं और हालैण्ड जर्मनी के संरक्षण में आ गया। बेलजियम की सहायता के लिये इंगलैण्ड ने एक बड़ी सेना भेजी। फ्रांस अधिक सैनिक भेज सका क्योंकि उस पर आक्रमण हो गया था। हिटलर की विद्युतवेग से लड़ने वाली नवीनतम शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना के सामने मित्रराष्ट्रों की सेना नहीं ठहर सकी। परिणाम यह हुआ कि २७ मई को बेलजियम नरेश ने पराजय स्वीकार करके युद्ध समाप्त कर दिया।

चर्चिल इंगलैण्ड का प्रधानमन्त्री बनता है

हालैण्ड, बेलजियम तथा लक्षेम्बर्ग पर आक्रमण

बेलजियम की पराजय ने अंगरेजों के ३५०,००० तथा फ्रांसीसियों के ११२,००० सैनिकों को और पर्याप्त युद्ध सामग्री को बड़े भारी संकट में डाल दिया। तीनों ओर से जर्मन सेनाओं ने उनको घेर लिया था। केवल पश्चिम में आंग्ल समुद्रवंक (चैनल) से होकर वे काल के गाल से निकाल सकती थीं। ब्रिटिश सेनापति की प्रार्थना पर प्रधानमंत्री चर्चिल ने एक सहस्र से भी अधिक सभी प्रकार के जलपोतों को २७ मई की रात्रि को साउथ एण्ड नामक स्थान पर एकत्रित किया और २८ मई को **मित्रराष्ट्रों** की उपर्युक्त सेना ने डनकर्क नामक फ्रांसीसी बन्दरगाह से निकल भागने का प्रयत्न किया। हिटलर को इस योजना का पता लग गया और उसने वायुयानों के द्वारा बमवर्षा कराकर लौटती हुई सेना के ४०,००० सैनिकों को नष्ट कर दिया तथा पीछे छोड़ी हुई प्रचुर युद्ध सामग्री और फ्रांसीसी सैनिकों को जर्मनों ने हस्तगत कर लिया। डनकर्क के पलायन ने इंगलैण्ड को अत्यन्त विक्षुब्ध कर दिया।

डनकर्क का पतन

फ्रांस की आन्तरिक दशा अच्छी नहीं थी। फ्रांसीसी शासन ठीक नहीं चल रहा था। कोई भी राजनीतिज्ञ प्रथम विश्वयुद्ध के विख्यात क्लैमैन्श्यू की टक्कर का नहीं था। दलादिये, रीनान तथा हैरियट में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिगत ईर्ष्या थी। १८ मार्च को फ्रांसीसी मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष रीनान बन गया। दलादिये ने पद त्याग कर दिया था। उधर देश की उत्पादन क्षमता पर श्रमिक वर्ग के असंतोष तथा प्राय: होने वाली हड़तालों का प्रभाव पड़ रहा था। १९३७ में जर्मनी में १००० वायुयान प्रतिमास बनते थे। फ्रांस केवल ३८ वायुयान ही प्रतिमास बना सकता था। १९३८ में फ्रांसीसी नागरिकों को न तो गैस के ओढ़न प्राप्त थे और न वायु-आक्रमणों

फ्रांस की कठिनाइयाँ

से सुरक्षा के स्थान ही उपलब्ध थे। १९३९ में युद्ध प्रारम्भ होने के समय फ्रांस के पूर्वी मोर्चे पर ८० सैनिक टुकड़ियाँ (डिवीजनें) थीं किन्तु उनमें से केवक ४ डिवीजनों के पास समुचित शस्त्रास्त्र थे। १० डिवीजनें अँग्रेजों की तथा २२ डिवीजन वेलजियम से आई थीं किन्तु इसी समय जर्मनी की २७ डिवीजनें फ्रांस पर आक्रमण करने को तैयार थीं। तात्पर्य यह है कि फ्रांस की सैनिक, औद्योगिक तथा प्रशासनिक दशा ठीक नहीं थी।

फ्रांस पर जर्मन आक्रमण

जर्मनी ने फ्रांस पर सीडान तथा चारविलेली के बीच में होकर अप्रत्याशित स्थान से आक्रमण किया वह पैरिस पर नहीं वरन् पश्चिमी समुद्र तट पर अधिकार करना चाहता था। एक सेना दक्षिण की ओर चली और उसने सम्पूर्ण पश्चिमी समुद्र पर अधिकार कर लिया। दूसरी सेना सोमे नदी को पार करके पैरिस की ओर बढ़ी। तीसरी सेना मेजिनो पंक्ति की ओर बढ़ी जोकि फ्रांस की सुदृढ़तम सुरक्षा पंक्ति थी और फ्रांस को उसकी अभेद्यता पर गर्व था। इस जर्मन सेना मैजिनी पंक्ति को घेर लिया और उस पर अधिकार कर लिया। १९ मई को अमीन्स, २० मई को अवेवाईल और २३ मई को बोलोन तथा कैलो पर जर्मन सेना ने अपना अधिकार जमा लिया था। फ्रांस ने निराश होकर इंगलैण्ड और अमरीका से सहायता की याचना की। इंगलैण्ड स्वयं

वाह्य सहायता का अभाव

विपत्ति में फँसा हुआ था। अतः वह सहायता करने में असमर्थ था। अमरीका के राष्ट्रपति ने यह उत्तर दिया, "वे केवल युद्ध सामग्री उसको दे सकते हैं और दे रहे हैं परन्तु इससे अधिक और कुछ करने का यह अभिप्राय होगा कि वे जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की उद्घोषणा कर दें। यह कार्य केवल सीनेट के अधिकार में है।" मित्रराष्ट्रों की सेना का सर्वोच्च सेनापति जनरल वगाँ अत्यन्त विषम स्थिति में था। वह फ्रांस की रक्षा करने में असमथ था। जर्मन रेडियो नवीन प्रचार कर रहा था। एक बार उसने कहा, "अँग्रेज केवल एक ही युद्ध नीति को जानते हैं - किस प्रकार अपनी सेनाओं को वचाकर भाग जावें।" अँग्रेजों के केवल तीन या चार डिवीजन फ्रांसीसियों की सहायतार्थ फ्रांस में थे।

इटली का युद्ध में प्रवेश

फ्रांस के इस संकट को देखकर इटली ने १० जून को फ्रांस तथा मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की उद्घोषणा कर दी। इटली ने १ वर्ष ९ मास के पश्चात् युद्ध में क्यों प्रवेश किया? इस पर यथास्थान आगे विचार किया जावेगा। फ्रांस के इस भीषण संकट में मसोलिनी ने अपनी योजनाओं की सफलता का उपयुक्त अवसर देखा किन्तु इस संकट काल में भी इटली की सेनाओं को फ्रांसीसियों ने आगे बढ़ने से रोक दिया। उधर जर्मनी की सेनायें प्रहार करती हुई विद्युत् वेग से आगे बढ़ रही थीं। १४ जून को पैरिस पर उन्होंने अधिकार कर लिया। फ्रांसीसी सरकार तूवर्स चली गयी और १५ जून को उसने ब्रिटेन से प्रार्थना की कि वह उसको जर्मनी से युद्ध विराम करने की सहमति प्रदान करे परन्तु इंगलैण्ड के

फ्रांस का पतन

प्रधान मन्त्री चर्चिल ने इंगलैण्ड-फ्रांस के संघ का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और फ्रांस जर्मनी से युद्धविराम करे तो उससे पूर्व अपना जहाजी वेड़ा इंगलैण्ड को सुपुर्द कर दे। फ्रांस के प्रधान मन्त्री रीनान को ये शर्तें स्वीकार नहीं थीं। उसने त्यागपत्र दे दिया था

१६ जून को नये प्रधान मन्त्री मार्शल पेताँ (Petain) ने इंगलैण्ड को सूचित किया। वह फ्रांसीसी बेड़े को जर्मनी के अधिकार में नहीं जाने देगा परन्तु इंगलैण्ड को इस आश्वासन में कोई भी सार नहीं दिखाई दिया। अस्तु २२ जून के फ्रांस-जर्मन युद्ध विराम के पश्चात् प्लाईमाऊथ तथा पोर्टस्माऊथ स्थित सभी फ्रांसीसी युद्ध-पोतों पर इंगलैण्ड ने अधिकार कर लिया, सिकन्दरिया फ्रांसीसी बेड़े को तितर-बितर कर दिया और आराना तथा फ्रांसीसी मोरक्को के फ्रांसीसी बेड़े को बमवर्षा के द्वारा नष्ट कर दिया।

२२ जून को फ्रांसीसी प्रतिनिधियों ने हिटलर के साथ भेंट करके युद्ध-विराम संधि पर हस्ताक्षर किये। यह भेंट कोम्पीन में उसी रेल के डिब्बे में हुई थी जिनमें पराजित जर्मनी ने प्रथम विश्व युद्ध के अन्त में युद्ध-विराम संधि पर हस्ताक्षर किये थे। इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं, विधि की विडम्बना थी। २४ जून को फ्रांस-इटली युद्ध-विराम संधि पर हस्ताक्षर हुये। फ्रांस का उत्तर-पश्चिमी भाग, (आंग्ल समुद्र वंक चैनल) तथा अटलांटिक समुद्र के किनारे के सभी फ्रांसीसी बन्दरगाहों पर जर्मन का अधिकार हो गया। इटली को जिबूटी बन्दरगाह तथा आल्पस प्रदेश के कुछ पर्वतीय भाग प्राप्त हुए। शेष फ्रांस पर मार्शल पेताँ की सरकार का अधिकार रहा तथा उसकी राजधानी विशी नगर में बनाई गई। फ्रांस, ट्यूनिस, अल्जीरिया और फ्रांसीसी सोमालीलैण्ड की सेनायें तोड़ दी गयीं। केवल उतनी सेना की आज्ञा दी गई जितनी देश की आन्तरिक सुव्यस्था के लिये आवश्यक हो। जनरल डीगाल ने इंगलैण्ड में फ्रांस के स्वतन्त्र शासन की स्थापना की तथा जर्मन से युद्ध जारी रखने के लिए एक फ्रांसीसी स्वयंसेवक सेना संगठित की। मित्रराष्ट्रों ने इस शासन को मान्यता प्रदान कर दी। विशी सरकार तथा इंगलैण्ड के सम्बन्ध बिगड़ गये।

युद्ध-विराम

विस्थापित शासन

यदि फ्रांस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् हिटलर इंगलैण्ड पर आक्रमण कर देता तो क्या परिणाम होता? अधिकांश राजनीतिज्ञों का मत है कि इंगलैण्ड पराजित हो जाता किन्तु हिटलर ने सीधा आक्रमण न करके वायुयानों से बमवर्षा के द्वारा असैनिक जनता के नैतिक पतन का निश्चय किया। साथ ही जहाजों को नष्ट करने का कार्यक्रम भी बनाया गया। इंगलैण्ड के नगर, रेलवे स्टेशन, बन्दरगाह, औद्योगिक केन्द्रों पर बमवर्षा होने लगी। इंगलैण्ड ने रात को बिजली की रोशनी बन्द कर दी। स्टेशनों और नगरों के नाम की पट्टियाँ उतरवा दीं। वायुयान नष्ट करने वाली तोपें तथा हरीकेन तथा स्पिटफाइर नामक वायुयान शत्रु के बम बरसाने वाले वायुयानों को नष्ट करने लगे तो भी इंगलैण्ड में हलचल मची रही, बड़ी-बड़ी इमारतें नष्ट भ्रष्ट हो गयीं। पोर्टसमाऊथ, लिवपूल, ब्रिस्टल, हल, संदूम्पटन आदि नगरों के अतिरिक्त लंदन तक पर बमवर्षा हुई और इंगलैण्ड की पर्याप्त क्षति पहुँची परन्तु जनता का नैतिक पतन नहीं हुआ। १९४० के अन्त में जर्मनी को विश्वास हो चला था कि वायव्य आक्रमणों से इंगलैण्ड पराजित नहीं किया जा सकता है। तो भी इङ्गलैण्ड की हवाई लड़ाई चालू रही।

ब्रिटेन का युद्ध

यद्यपि मसोलिनी के प्रारम्भिक कार्यों ने हिटलर को प्रेरणा प्रदान की थी

और हिटलर मसोलिनी की कई वर्ष पश्चात् सत्तारूढ़ हुआ था किन्तु इटली के औद्योगिक पिछड़ेपन, सैनिक अप्रसन्नता आर्थिक स्थिति तथा अन्य कई कारणों से वह उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर सका जितनी हिटलर ने प्राप्त की। शिष्य अब गुरु के अनुकरण का आदर्श बन गया था। स्पेन के गृहयुद्ध में जर्मनी तथा इटली के सैनिक साथ-साथ लड़े थे और तब से दोनों अधिनायकों में परस्पर घनिष्टता बढ़ती चली गयी। हिटलर की दक्षिणपूर्वी यूरोप के रक्तहीन विजयों से मसोलिनी अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह भी भूमध्य सागरीय म्यूनिख के स्वप्न देखने लगा था। परन्तु यह स्वप्न केवल जर्मनी की सहायता से पूरा हो सकता था और जर्मनी जेकोस्लावाकिया, मेमल इत्यादि पर अधिकार करने में लगा हुआ था। फलस्वरूप मसोलिनी की महत्त्वाकांक्षा पूरी नहीं हो सकी।

इटली की नीति

जब १ सितम्बर १९३९ को युद्ध प्रारम्भ हुआ तब मसोलिनी को अपना अवसर दृष्टिगोचर हुआ किन्तु वह तुरन्त समरांगण में नहीं कूदा। क्यों? प्रथमतः इटली की शक्ति अबीसीनिया के आक्रमण तथा स्पेन के गृहयुद्ध में क्षीण हो चुकी थी। वह शक्ति संचय कर रहा था। साथ ही तुरन्त युद्ध प्रवेश का परिणाम यह भी होता कि फ्रांस उसके उत्तरी क्षेत्र के औद्योगिक केन्द्रों को नष्ट कर सकता था। इंगलैण्ड का जिब्राल्टर तथा स्वेज नहर पर अधिकार था। वह उसका भूमध्य सागर का घेरा सम्पादित करके उसके ८०% विदेशी व्यापार तथा अफ्रीकी साम्राज्य को नष्ट कर सकता था। इस प्रकार इटली की सैनिक स्थिति युद्ध के लिये उपयुक्त नहीं थी। द्वितीयतः हिटलर भी यह नहीं चाहता था कि इटली अविलम्ब युद्ध की घोषणा कर दे क्योंकि इटली पर मित्रराष्ट्र कई ओर से आक्रमण कर सकते थे जिनके कारण जर्मनी को अपनी सेनायें इटली सहायता को भेजनी पड़तीं। तटस्थ रहकर इटली जर्मन के आर्थिक घेरे को तोड़ने में उसकी सहायता कर सकता था। इटली के द्वारा जर्मनी का सम्बन्ध विदेशी मन्डियों से स्थापित रह सकता था और वैसा ही हुआ भी।

किन्तु उत्तर पश्चिमी यूरोप में जर्मनी की विजयों ने तथा जर्मन रेडियो के सतत प्रचार ने, इंगलैण्ड तथा फ्रांस ही इटली की उन्नति के मार्ग में बाधक हैं, इटली की जनता को युद्धोन्मुख बनाने तथा उत्तेजित करने में भारी सहयोग दिया। इटली की जनता आंग्ल-फ्रांसीसी घृणा व्यापक हो गयी और सामूहिक भावना का प्राधान्य हो गया। युद्ध प्रवेश की माँग जोर पकड़ने लगी और जब फ्रांस का पतन सुनिश्चित हो गया। तब इटली अपने को युद्धाग्नि में कूदने से संयुक्त राज्य तथा इंगलैण्ड के समझाने पर भी न रोक सका। १० जून १९४० को इंगलैण्ड तथा फ्रांस के विरुद्ध उसने युद्ध की घोपणा कर दी।

इटली की विफलतायें

जिस समय हिटलर की वायुसेना इंगलैण्ड पर आक्रमण कर रही थी उसी समय मसोलिनी ने इंगलैण्ड के उत्तरी अफ्रीका में स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों तथा मिस्र को हथियाने की योजना बनायी। १३ सितम्बर को लोबिया में स्थित इटालवी सेना ने मिस्र पर आक्रमण कर दिया। वह मिस्र की सीमा सिदी बर्रानी (Sidi Barrani) तक पहुँच गयी परन्तु जनरल वेवल की अध्यक्षता में अँग्रेजी सेना ने इटालवी सेना को ११ दिसम्बर को मिस्र के बाहर निकाल दिया। इस प्रकार मिसोलिनी का स्वप्न साकार न हो सका।

मिस्र में असफलता

२८ अक्टूबर को इटली ने यूनान पर आक्रमण किया। प्रारम्भ में तो इटली की सेना को कुछ सफलता प्राप्त हुई परन्तु जब यूनानियों तथा अँग्रेजी सेनाओं ने उनका सबल विरोध किया तब वे पीछे हटने लगीं। तीन सप्ताह के भीतर इटली की सेनायें यूनान से वापस लौट आयीं।

यूनान में विफलता

इस वर्ष की एक उल्लेखनीय घटना है धुरी राष्ट्रों की एक नवीन संधि। २७ सितम्बर की संधि सम्पन्न हुई। इसके अनुसार यह तय हुआ कि तीनों देश आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करेंगे। इससे उसके पारस्परिक सम्बन्ध हृढ़ हो गये और धुरी राष्ट्रों का प्रभाव भी बढ़ गया।

धुरी राष्ट्रों की नई संधि

१९४० के वर्ष में मित्रराष्ट्रों को उत्तर-पश्चिमी यूरोप में भारी विफलताओं और निराशाओं का सामना करना पड़ा। हिटलर की विजय दुन्दुभि नार्वे से स्पेन की सीमा तक बज रही थी किन्तु ब्रिटेन के हवाई आक्रमण में उसको सफलता की आशा नहीं हो रही थी। उधर भूमध्यसागर के दक्षिणी-पूर्वी भाग में इटली को पराजयों का कटु अनुभव हो रहा था। समग्र रूप में मित्रराष्ट्रों की दशा अत्यन्त शोचनीथ थी।

१९४१ का युद्ध

उत्तर-पश्चिमी यूरोप पर अधिकार जमाने के पश्चात् हिटलर ने दक्षिण पूर्वी यूरोप की ओर अपना अवधान केन्द्रित किया। यूनान में इटली की पराजय से हिटलर अत्यन्त उत्तेजित हुआ। इसलिये दक्षिण पूर्वी यूरोप पर सैनिक अभियान प्रारम्भ हो गया। सर्वप्रथम यूगोस्लाविया की बारी आई क्योंकि हंगरी तथा रूमानिया ने नवम्बर १९४० में हिटलर से संधि कर ली थी। मार्च १९४१ में बलगेरिया के सामने भी वही शर्तें रखीं। उसने भी उन शर्तों को स्वीकार कर लिया। तब यूगोस्लाविया से भी वैसी ही संधि करने के लिये कहा गया। वहाँ का शासन तो संधि के लिये तैयार था किन्तु जनता तैयार नहीं थी। २७ मार्च को इस सरकार को अपदस्थ करके यूगोस्लाविया के नरेश ने नयी सरकार बनायी। जर्मनी की शर्तों को ठुकरा दिया गया परन्तु ग्यारह दिन के युद्ध के पश्चात् यूगोस्लाविया पर जर्मनी का अधिकार हो गया।

६ अप्रैल को यूगोस्लाविया पर आक्रमण हो गया

६ अप्रैल को ही पश्चिमी थ्रेस पर जर्मन सेना का अभियान प्रारम्भ हुआ। यूनानियों तथा मित्रराष्ट्रों की सेनाओं ने मोनास्टीर के निकट अपनी रक्षापंक्ति की स्थापना की परन्तु वे जर्मन सेना को रोकने में असफल रहे। ओलिम्पस की रेखा पंक्ति पर भी मित्रराष्ट्रों की सेना विफल रही। तब उसने थर्मोपोली के दर्रे पर जर्मन सेना का डट कर सामना किया परन्तु विजयश्री उनके भाग्य में नहीं थी। यूनान ने हथियार डाल दिये। ब्रिटिश सेना को वहाँ से हटाना पड़ा। डनकर्क की घटना की मानो पुनरावृत्ति हुई और जर्मनों की भीषण बम वर्षा से एक चौथाई ब्रिटिश सैनिक इस युद्ध में मारे गये। यूनानी सरकार क्रीट के टापू में चली गयी। परन्तु यहाँ पर भी हिटलर के

यूनान की पराजय

छाताधारी सैनिकों का अधिकार हो गया। बहुत से ब्रिटिश युद्धपोतों को जल समाधि लेनी पड़ी और १५००० से अधिक सैनिकों ने वीर गति प्राप्त की।

जर्मनी की इन विजयों के कारण २० मई तक प्रायः सम्पूर्ण बलकान प्रायद्वीप पर जर्मनी का अधिकार हो गया।

इटली के साम्राज्य की समाप्ति

जनरल वेवल ने इटालवी सेना को केवल मिस्र के बाहर ही नहीं खदेड़ा था वरन् उसको साइरेनिका प्रान्त को खाली करने पर भी विवश किया था। यह प्रत्याक्रमण चालू रहा तथा चार महीने के घोर संग्राम के पश्चात् इटली का अफ्रीकी साम्राज्य अतीत की कहानी मात्र रह गया। २५ मार्च को इरीटेरिया पर अधिकार कर लिया। लीबिया और सोमालीलैण्ड पर भी ब्रिटिश सेना ने अधिकार कर लिया तथा ६ अप्रैल को अबीसीनिया की राजधानी आदिस अबाबा में ब्रिटिश सेनायें प्रवेश कर चुकी थीं। इथीपिया के सम्राट् हेलीसेलासी ने पाँच वर्ष पश्चात् ५ मई १९४१ को अपनी राजधानी में प्रवेश किया। इटली के सेनापति मार्शल बैडोगलियों ने त्यागपत्र दे दिया। जर्मनी की वायुसेना ने इटली की सहायता के लिये सिसली आदि स्थानों पर नियंत्रण को अपने हाथ में ले लिया। जनरल रोमेल की अध्यक्षता में विशाल जर्मन सेना इटली के साम्राज्य के उद्धार के लिये अफ्रीका पहुँच गयी।

मध्यपूर्व की घटनायें

मध्य पूर्व में ईराक, सीरिया, लीबानन और ईरान में नात्सी समर्थक सरकार के स्थापित हो जाने से अँग्रेजों की स्थिति बिगड़ गयी। यूनान पर जर्मनी का अधिकार हो ही गया था। अस्तु इंगलैण्ड के पूर्वी प्रदेशों के साम्राज्य को संकट उत्पन्न हो सकता था। स्वेज नहर पर जर्मनी का अधिकार हो जाने पर भारत को जाने वाला सामुद्रिक मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता। अस्तु ईराक की सरकार को बलात् पदच्युत किया गया। बगदाद में नई सरकार स्थापित की गयी जो ब्रिटेन पर पूर्णतः आश्रित थी। इसी प्रकार के परिवर्तन सीरिया तथा लेबनान में भी किये गये। ईरान का शासन भी ब्रिटिश समर्थक बनाया गया। इस प्रकार मध्यपूर्वी देशों में ब्रिटेन ने अपना प्रभुत्व बनाये रखा।

जनरल रोमेल का अफ्रीकी अभियान

जनरल रोमेल ने अफ्रीका में अभूतपूर्व वीरता, योग्यता और रण-कुशलता का परिचय दिया। उसने लीबिया तथा उत्तरी अफ्रीका से ब्रिटिश सेनाओं को निकाल दिया। वे मिस्र में चली गयीं। ब्रिटिश सेना तथा जर्मन सेना का यह संग्राम इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि कभी किसी पक्ष की विजय होती थी और कभी किसी की। १९४१ के अन्त तक यही दशा बनी रही। चर्चिल जैसे व्यक्ति को जनरल रोमेल की योग्यता की प्रशंसा करनी पड़ी थी।

रूस तथा जर्मनी

१९४० के उत्तरार्द्ध में हिटलर की पश्चिमोत्तर यूरोप की विजयों ने रूस के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया था। १९४१ के पूर्वार्द्ध में जर्मनी ने दक्षिण पूर्वी यूरोप पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। भूमध्य सागर में अँग्रेजों की स्थिति कमजोर हो गयी थी। जर्मनी ने इस क्षेत्र का सर्वोच्च समादेश अपने हाथ में ले लिया था क्योंकि इटली ने दुर्बलता का परिचय दिया था। धुरी राष्ट्रों के २७ सितम्बर को

त्रिपक्षीय संधि से भी रूस को आशंका उत्पन्न हो चुकी थी । २६ नवम्बर १९४० को रूस ने हिटलर से यह माँग की थी कि बाकू और बातम को रूसी प्रभाव क्षेत्र माना जावे, बलगारिया में रूस को हवाई अड्डे मिलने चाहिये और फिनलैंड से जर्मन सेनायें वापस बुला ली जानी चाहिये । इन माँगों के कारण रूस-जर्मन सम्बन्ध को आघात पहुँचा । रूस तथा इंगलैंड से सम्बन्ध सुधरते जा रहे थे । रूसी समाचार-पत्रों में चर्चिल की आलोचना बन्द होती जा रही थी और रूस अपनी सेनाओं की लामबन्दी उच्च स्तर पर कर रहा था । ६ मई को स्टालिन प्रधानमन्त्री बना और मोलोटोव उपप्रधान मन्त्री बना । उसने रूस की सेनाओं और अन्य सभी साधनों को भावी विपत्ति का सामना करने के लिये संगठित करना प्रारम्भ कर दिया ।

उधर जर्मनी यह अनुभव करने लगा था कि हवाई आक्रमणों से इंगलैंड को पराजित करना असम्भव था । उन आक्रमणों से हानि अधिक तथा लाभ कम हो रहा था । इसलिये मई १९४१ में ये आक्रमण धीरे-धीरे समाप्त हो गये । ब्रिटेन को पराजित करने के लिये सम्पूर्ण यूरोप के साधनों का उपयोग आवश्यक था । रूस के प्राकृतिक तथा मानवीय साधन इस हेतु हस्तगत किये जाने चाहिये थे । हिटलर को विश्वास था कि रूस में योग्य नेताओं का अभाव है और आधुनिक सैनिक सामग्री भी उसके पास नहीं है । अस्तु उसकी परामर्शदात्री समिति तथा उसने यह निष्कर्ष निकाला कि चार मास के भीतर रूस घुटने टेक देगा । वह १९४० की शरद ऋतु में ही रूस पर आक्रमण करना चाहता था परन्तु जनरल केरल ने उसको ऐसा नहीं करने दिया था । परन्तु अब १९४१ की ग्रीष्म ऋतु में उसकी योजना के कार्यान्वित होने में अधिक अड़चल नहीं आई ।

२१ जून को युद्ध की घोषणा किये बिना ही जर्मनी की सेनाओं ने रूसी सीमा में प्रवेश कर दिया । रूस पर तीन दिशाओं से आक्रमण किया गया था : वॉन लेब की अध्यक्षता में उत्तर में लैनिग्राड की ओर उत्तरी सेना बढ़ी, वॉन बाक की अध्यक्षता में मध्यसेना ने स्मोलेन्स्क की ओर अभियान किया और वॉन रंसटैंड की अध्यक्षता में दक्षिणी सेना ने यूक्रेन की ओर प्रस्थान किया ।

रूस पर आक्रमण

२७ जून को हँगरी ने भी रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । तीनों सेनाओं ने प्रारम्भ में विजय प्राप्त की । प्रथम चार मास के भीतर रूस की ५०% कोयले की खानें, ५०% इस्पात का उत्पादन, ६०% कच्चे लोहे की खानें और रूस का सर्वोत्तम कृषि प्रदेश जर्मनी ने हस्तगत कर लिया । परन्तु उनका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ—लैनिनग्राड और मास्को अभी दूर थे, जर्मनी और उसके साथी रूस पर वज्र-प्रहार तो करते रहे परन्तु दिसम्बर १९४१ तक रूस अपराजित था, रूसी शीत प्रारम्भ हो गया था । नैपोलियन की पराजय की कहीं पुनरावृत्ति तो नहीं होगी ? चारों ओर बर्फ जमी हुई थी, जर्मनी के सैनिकों के पास पर्याप्त वस्त्र नहीं थे हिटलर ने निराश होकर क्रीमिया का अभियान कराया और सेबस्टापोल को छोड़कर शेष सम्पूर्ण क्रीमिया पर दिसम्बर के अन्त तक जर्मनी का अधिकार हो गया । परन्तु शेष रूसी क्षेत्र में जर्मन सेनाओं को निराशाओं का सामना करना पड़ रहा था ।

यूरोप, अफ्रीका तथा मध्यपूर्व की घटनाओं को महत्त्वहीन करने वाली एक घटना दिसम्बर के प्रारम्भ में सुदेर पूर्व में घटी । धुरी राष्ट्रों में जापान भी सम्मिलित

जापान का युद्ध-प्रवेश

था उसने १ दिसम्वर १९४१ को सहसा पर्लहार्वर में स्थित अमरीकी जहाजी वेड़े पर आक्रमण किया और ५ युद्धपोतों, ३ विध्वंसकों कई जलपोतों और क्रूजरों और १७७ वायुयानों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार जापान युद्ध में क्यों प्रविष्ट हुआ ? इस पर आगे विचार किया जावेगा। पर्लहार्वर में अमरीका की भारी क्षति और पूर्व दक्षिणी एशिया तथा प्रशान्त महासागर में जापान की धाक जम गयी। दिसम्वर मास में जापान ने सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई आदि स्थानों पर वमवर्षा करके और ब्रिटेन के प्रिंस ऑफ वेल्स तथा रिपल्स जैसे विशाल युद्ध-पोतों को नष्ट करके मित्र राष्ट्रों के छक्के छुड़ा दिये।

१९४१ का वर्ष भी मित्र राष्ट्रों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण ही रहा। विश्व में लोकतन्त्र के प्रति आस्था में कमी आने लगी। अधिनायकवाद की प्रतिष्ठा बढ़ गयी।

१९४२ का युद्ध

दक्षिण पूर्वी एशिया तथा प्रशान्त महासागर में जापान की विजयों का वर्णन करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि जापान ने युद्ध में क्यों प्रवेश किया और संयुक्त राज्य तथा इंग्लैण्ड की नौसैनिक शक्ति को क्यों आघात पहुँचाया ? प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जापान तथा अन्य मित्र राष्ट्रों के क्या सम्बन्ध रहे और वह किस प्रकार विरोधी गुट में सम्मिलित हुआ ? इन प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है।

जापान तथा संयुक्त राज्य के सम्बन्ध

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अमरीका ने चीन के शांतुंग प्रान्त को जापान को दिये जाने पर आपत्ति की थी।[1] कारण यह था कि सुदूर पूर्व में एक प्रभुत्व सम्पन्न शक्ति के रूप में जापान का अस्तित्व पश्चिमी शक्तियों, विशेषकर संयुक्त राज्य, को अखरता था। विगत तीस वर्षों में जापान ने तीन सफल युद्ध लड़े थे : कोरिया तथा फारमूसा में उसने चीन को पराजित किया था, शाखालिन तथा मंचूरिया से रूस को निकाल दिया था और शांतुंग में से जर्मनी को वहिष्कृत कर दिया था। संयुक्त राज्य को आशंका थी कि जापान 'उन्मुक्त द्वार' को वन्द कर देगा और जापान संयुक्त राज्य के चीन के साथ वढ़ते हुये व्यापार को देखकर ईर्ष्या करता था। दोनों देशों में परस्पर तनाव रहता था और कुछ लोग युद्ध को अनिवार्य समझते थे। दोनों ही देश अपनी नौसेना को वढ़ा रहे थे। अस्तु इस तनाव को कम करने तथा समस्या को सुलझाने के लिए १९२१ में राष्ट्रपति हार्डिंज ने वाशिंगटन सम्मेलन बुलाया। इसमें रूस के अतिरिक्त अन्य सभी शक्तियों ने भाग लिया जिनके सुदूर पूर्व में हितों की रक्षा का प्रश्न था। इस सम्मेलन के ये परिणाम हुए :

वाशिंगटन सम्मेलन

(१) **नौ सैनिक समझौते** के अनुसार नौ सैनिक शक्ति का यह अनुपात निर्धारित हुआ : इंगलैण्ड ५, संयुक्त राज्य ५, जापान ३, फ्रांस १.६७ और इटली १.६७।

(२) दूसरे **समझौते** से प्रशान्त महासागर के द्वीपों में अतिरिक्त किला वन्दियों पर रोक लगा दी गयी। केवल कुछ क्षेत्रों में ही सैनिक किलावन्दी हो सकती थी। इन

1. यह जापान की स्थिति का दिग्दर्शन मात्र है, विस्तृत इतिहास नहीं है।

समझौतों से जापान को लाभ हुआ क्योंकि अन्य देश प्रशान्त सागर में अपनी सैनिक अथवा नौसैनिक अभिवृद्धि नहीं कर सकते थे।

(३) संयुक्त राज्य का यह कहना था कि **आंग्ल जापानी संधि** से जापान को प्रोत्साहन मिला था, तनाव में अभिवृद्धि हुई थी और इससे आंग्ल अमरीकी सम्बन्धों में कटुता आई थी। इसलिये संयुक्त राज्य की इच्छानुसार १९२१ में इस संधि के समाप्त होने पर उसका पुनर्वीकरण नहीं हुआ प्रत्युत इंगलैण्ड, फ्रांस, जापान तथा संयुक्त राज्य में **चतुर्मुखी संधि** हुई। इस संधि के अनुसार चारों शक्तियों ने प्रशान्त महासागर के एक दूसरे के अधिकारों को सम्मानित करने तथा विवादग्रस्त विषयों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने का वचन दिया।

(४) चीन की अखंडता और स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देने के लिये ९ **शक्तियों की संधि** हुई। जापान ने शांतुंग प्रान्त चीन को लौटा दिया। चीन ने एक धनराशि जापान को वहाँ रेलमार्ग आदि बनाने के बदले में दी।

(५) जापान तथा संयुक्त राज्य के मध्य एक संधि हुई जिसने दोनों देशों के बीच के संघर्ष को कम कर दिया। यैप नामक द्वीप में समुद्री तार की सुविधायें दोनों देशों को समान रूप से उपलब्ध हो गयीं।

इस प्रकार वाशिंगटन सम्मेलन के परिणाम स्वरूप सुदूर पूर्व की समस्या का अस्थायी समाधान हो गया। चीन में **'उन्मुक्त द्वार'** का सिद्धान्त मान लिया गया। **आंग्ल जापानी** संधि समाप्त हो गयी। चीन की अखंडता और स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति मिल गई। सम्मेलन ने न जानते हुए प्रशान्त महासागर में जापान की शक्ति को बढ़ा दिया। जापान तथा संयुक्त राज्य की पारस्परिक कटुता में कुछ कमी आ गयी परन्तु सभी शक्तियाँ जापान को सन्देह की दृष्टि से देखती रहीं।

जापान की विस्तार-वादी नीति

वाशिंगटन सम्मेलन में जापान ने चीन के शांतुंग प्रान्त को लौटाकर उदारता तथा समझौता परक नीति का परिचय दिया था किन्तु जापान के सैनिकवादियों के प्रभाव तथा आर्थिक दृष्टिकोण के कारण १९३१ में जापान ने चीन के विशाल प्रान्त मंचूरिया पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया।

मंचूरिया की विजय

वहाँ जापान ने कठपुतली सरकार की स्थापना की। उसका नाम **मंचूको** रखा गया और उसको स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया किन्तु वास्तव में वह संरक्षित राज्य से अधिक नहीं था। चीन ने राष्ट्रसंघ से शिकायत की कि **कैलोंब्रियाँ समझौते**[1] को लागू किया जावे। **संघ** ने लिटन कमीशन नियुक्त किया। उसने मंचूको को चीनी आधिपत्य में रखने की सिफारिश की। जापान ने संघ की बात नहीं मानी और उसकी सदस्यता

---

1. **कैलो-ब्रियाँ** (Kellog-Briand Pact) समझौता १९२८ में फ्रांस तथा संयुक्त राज्य के मध्य हुआ था। इस समझौते द्वारा हस्ताक्षर करने वाले देशों ने युद्ध का राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में परित्याग कर दिया था। युद्ध को अवैध घोषित कर दिया था। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने इस समझौते को स्वीकार करके उस पर हस्ताक्षर किये थे। जापान भी इन हस्ताक्षरकर्त्ताओं में सम्मिलित था। यद्यपि इस समझौते का पालन नहीं हुआ तथापि आदर्श के रूप में इसका महत्त्व सभी स्वीकार करते हैं।

को त्याग दिया। तत्पश्चात् जापान ने चीन के जेहौल प्रान्त को छीनकर मंचूको में मिला दिया। विवश होकर चीन ने जापान से समझौता कर लिया।

जापान ने सुदूर पूर्व के मनरो सिद्धान्त की उद्घोषणा की अर्थात् चीन के मामलों में किसी पाश्चात्य अथवा अमरीकी शक्ति को चीन, आदि पूर्वीय देशों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं। इस क्षेत्र की सुरक्षा और शान्ति का भार केवल जापान पर है। जापान ने चीन के उत्तरी भाग पर अपनी ललचाती हुई दृष्टि जमा रखी थी। अस्तु चीन पर आक्रमण होते रहे और चीनी जापानी संघर्ष चलता रहा। चीन के उत्तरी भाग पर जापान ने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया किन्तु जापान इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। जुलाई १९३७ में एक सामान्य घटना—मार्कोपोलो पुल की घटना—को बहाना बनाकर जापान ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। चीन में साम्यवादियों तथा राष्ट्रवादियों में एकता स्थापित हो गयी और उन्होंने डटकर जापानियों का सामना किया किन्तु जापानियों ने पूर्वोत्तर चीन पर (टीस्टीन से कांटन तक) अधिकार कर लिया। केवल पश्चिमोत्तरी भागों तथा पश्चिमी भागों में स्वतन्त्र चीन का अस्तित्व शेष रहा। उसमें भी दो शासन व्यवस्थायें थीं : (१) चांगकाई शेक की अध्यक्षता में राष्ट्रवादी शासन जिसकी राजधानी चुंगकिंग में थी, और (१) साम्यवादी शासन जिसकी राजधानी यूनान थी। कई कारणों से यह युद्ध १९४० तक चलता रहा। जापान स्वतन्त्र चीन पर आक्रमण न कर सका और स्वतन्त्र चीन जापानियों को अधिकृत चीन से न निकाल सका। अधिकृत चीन नानकिंग में कठपुतली सरकार की स्थापना हो गयी और उसी को जापान ने चीन की राष्ट्रीय सरकार उद्घोषित किया। (१९४०)।

चीन के समुद्री तट पर तथा समीपवर्ती प्रदेश पर जापान का अधिकार

जापान की चीनी विजयों को संयुक्त राज्य ने स्वीकार नहीं किया अपितु उनका लगातार विरोध किया। जापान ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए धुरी राष्ट्रों के गुट में प्रवेश किया। १९४० के सैनिक समझौते ने संयुक्त राज्य को चिन्तित एवं सतर्क कर दिया था। इसके पश्चात् जापान ने रूस के साथ तटस्थता का समझौता किया जिसका स्पष्ट उद्देश्य यह था कि यदि रूस पर जर्मनी का और जापान पर संयुक्त राज्य का आक्रमण अथवा इन शक्तियों का पारस्परिक युद्ध होता है तो दोनों देश तटस्थ रहेंगे अर्थात् एक दूसरे के शत्रु की सहायता नहीं करेंगे। उधर संयुक्त राज्य अमरीका इंगलैण्ड और फ्रांस के साथ गठबंधन कर रहा था। संयुक्त राज्य की नीति तथा आवश्यक गतिविधियों का वर्णन आगे किया जावेगा।

संयुक्त राज्य की अभिवृत्ति

अब जापान की १९४२ की विजयों का वर्णन किया जाता है। जापान के प्रथम प्रहार ने संयुक्त राज्य तथा इंगलैण्ड की स्थिति को प्रशान्त महासागर में बड़ा भारी आघात पहुँचाया था। जापान ने जलपोतों को एक बड़ी संख्या में एकत्रित किया और उनको आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दो लाख सैनिकों को बिठाकर विजयाभिमान पर भेज दिया। जनवरी मास में फिलीपाइन द्वीप पर जापान ने अधिकार कर लिया। अमरीकी सेना परास्त हो गयी। ब्रिटिश बंदरगाह हांगकांग को भी जापानियों ने हस्तगत कर लिया। इस प्रकार हांगकांग में अँगरेजों को हराकर तथा हवाई द्वीप (पर्ल हार्बर) और

दक्षिण पूर्वी एशिया में जापान की प्रारम्भिक विजयें

समझौतों से जापान को लाभ हुआ क्योंकि अन्य देश प्रशान्त सागर में अपनी सैनिक अथवा नौसैनिक अभिवृद्धि नहीं कर सकते थे।

(३) संयुक्त राज्य का यह कहना था कि **आंग्ल जापानी संधि** से जापान को प्रोत्साहन मिला था, तनाव में अभिवृद्धि हुई थी और इससे आंग्ल अमरीकी सम्बन्धों में कटुता आई थी। इसलिये संयुक्त राज्य की इच्छानुसार १९२१ में इस संधि के समाप्त होने पर उसका पुनर्वीकरण नहीं हुआ प्रत्युत इंगलैण्ड, फ्रांस, जापान तथा संयुक्त राज्य में **चतुर्मुखी संधि** हुई। इस संधि के अनुसार चारों शक्तियों ने प्रशान्त महासागर के एक दूसरे के अधिकारों को सम्मानित करने तथा विवादग्रस्त विषयों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने का वचन दिया।

(४) चीन की अखंडता और स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देने के लिये ९ **शक्तियों की संधि** हुई। जापान ने शांतुंग प्रान्त चीन को लौटा दिया। चीन ने एक धनराशि जापान को वहाँ रेलमार्ग आदि बनाने के बदले में दी।

(५) जापान तथा संयुक्त राज्य के मध्य एक संधि हुई जिसने दोनों देशों के बीच के संघर्ष को कम कर दिया। पैप नामक द्वीप में समुद्री तार की सुविधायें दोनों देशों को समान रूप से उपलब्ध हो गयीं।

इस प्रकार वाशिंगटन सम्मेलन के परिणाम स्वरूप सुदूर पूर्व की समस्या का अस्थायी समाधान हो गया। चीन में **'उन्मुक्त द्वार'** का सिद्धान्त मान लिया गया। **आंग्ल जापानी** संधि समाप्त हो गयी। चीन की अखंडता और स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति मिल गई। सम्मेलन ने न जानते हुए प्रशान्त महासागर में जापान की शक्ति को बढ़ा दिया। जापान तथा संयुक्त राज्य की पारस्परिक कटुता में कुछ कमी आ गयी परन्तु सभी शक्तियाँ जापान को सन्देह की दृष्टि से देखती रहीं।

जापान की विस्तारवादी नीति

वाशिंगटन सम्मेलन में जापान ने चीन के शांतुंग प्रान्त को लौटाकर उदारता तथा समझौता परक नीति का परिचय दिया था किन्तु जापान के सैनिकवादियों के प्रभाव तथा आर्थिक दृष्टिकोण के कारण १९३१ में जापान ने चीन के विशाल प्रान्त मंचूरिया पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। वहाँ जापान ने कठपुतली सरकार की स्थापना की। उसका नाम **मंचूको** रखा गया और उसको स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया किन्तु वास्तव में वह संरक्षित राज्य से अधिक नहीं था। चीन ने राष्ट्रसंघ से शिकायत की कि

मंचूरिया की विजय

कैलोब्रियाँ समझौते[1] को लागू किया जावे। संघ ने लिटन कमीशन नियुक्त किया। उसने मंचूको को चीनी आधिपत्य में रखने की सिफारिश की। जापान ने संघ की बात नहीं मानी और उसकी सदस्यता

---

1. **कैलो-ब्रियाँ** (Kellog-Briand Pact) समझौता १९२८ में फ्रांस तथा संयुक्त राज्य के मध्य हुआ था। इस समझौते द्वारा हस्ताक्षर करने वाले देशों ने युद्ध का राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में परित्याग कर दिया था। युद्ध को अवैध घोषित कर दिया था। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने इस समझौते को स्वीकार करके उस पर हस्ताक्षर किये थे। जापान भी इन हस्ताक्षरकर्त्ताओं में सम्मिलित था। यद्यपि इस समझौते का पालन नहीं हुआ तथापि आदर्श के रूप में इसका महत्त्व सभी स्वीकार करते हैं।

को त्याग दिया। तत्पश्चात् जापान ने चीन के **जेहौल** प्रान्त को छीनकर मंचूको में मिला दिया। विवश होकर चीन ने जापान से समझौता कर लिया।

जापान ने सुदूर पूर्व के **मनरो सिद्धान्त** की उद्घोषणा की अर्थात् चीन के मामलों में किसी पाश्चात्य अथवा अमरीकी शक्ति को चीन, आदि पूर्वीय देशों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं। इस क्षेत्र की पुरक्षा और शान्ति का भार केवल **जापान** पर है। जापान ने चीन के उत्तरी भाग पर अपनी ललचाती हुई दृष्टि जमा रखी थी। अस्तु चीन पर आक्रमण होते रहे और चीनी जापानी संघर्ष चलता रहा। चीन के उत्तरी भाग पर जापान ने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया किन्तु जापान इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। जुलाई १९३७ में एक सामान्य घटना—मार्कोपोलो पुल की घटना—को बहाना बनाकर जापान ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। चीन में साम्यवादियों तथा राष्ट्रवादियों में एकता स्थापित हो गयी और उन्होंने डटकर जापानियों का सामना किया किन्तु जापानियों ने पूर्वोत्तर चीन पर (टीस्टीन से कांटन तक) अधिकार कर लिया। केवल पश्चिमोत्तरी भागों तथा पश्चिमी भागों में **स्वतन्त्र** चीन का अस्तित्व शेष रहा। **उसमें भी दो** शासन व्यवस्थाये थीं : (१) चांगकाई शेक की अध्यक्षता में **राष्ट्रवादी शासन** जिसकी राजधानी चंगकिंग में थी, और (१) **साम्यवादी शासन** जिसकी राजधानी **यूनान** थी। कई कारणों से यह युद्ध १९४० तक चलता रहा। जापान **स्वतन्त्र चीन** पर आक्रमण न कर सका और स्वतन्त्र चीन जापानियों को **अधिकृत चीन** से न निकाल सका। अधिकृत चीन नानकिंग में कठपुतली सरकार की स्थापना हो गयी और उसी को जापान ने चीन की राष्ट्रीय सरकार उद्घोषित किया। (१९४०)।

चीन के समुद्री तट पर तथा समीपवर्ती प्रदेश पर जापान का अधिकार

जापान की चीनी विजयों को संयुक्त राज्य ने स्वीकार नहीं किया अपितु उनका लगातार विरोध किया। जापान ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए **धुरी राष्ट्रों** के गुट में प्रवेश किया। १९४० के सैनिक समझौते ने **संयुक्त राज्य** को चिन्तित एवं सतर्क कर दिया था। इसके पश्चात् जापान ने रूस के साथ **तटस्थता का समझौता** किया जिसका स्पष्ट उद्देश्य यह था कि यदि रूस पर जर्मनी का और जापान पर संयुक्त राज्य का आक्रमण अथवा इन शक्तियों का पारस्परिक युद्ध होता है तो दोनों देश तटस्थ रहेंगे अर्थात् एक दूसरे के शत्रु की सहायता नहीं करेंगे। उधर संयुक्त राज्य अमरीका इंगलैण्ड और फ्रांस के साथ गठबंधन कर रहा था। संयुक्त राज्य की नीति तथा आवश्यक गतिविधियों का वर्णन आगे किया जावेगा।

संयुक्त राज्य की अभिवृत्ति

अब जापान की १९४२ की विजयों का वर्णन किया जाता है। जापान के प्रथम प्रहार ने संयुक्त राज्य तथा इंगलैण्ड की स्थिति को प्रशान्त महासागर में बड़ा भारी आघात पहुँचाया था। जापान ने जलपोतों को एक बड़ी संख्या में एकत्रित किया और उनको आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दो लाख सैनिकों को बिठाकर विजयाभिमान पर भेज दिया। जनवरी मास में फिलीपाइन द्वीप पर जापान ने अधिकार कर लिया। अमरीकी सेना परास्त हो गयी। ब्रिटिश बंदरगाह हांगकांग को भी जापानियों ने हस्तगत कर लिया। इस प्रकार हांगकांग में अँगरेजों को हराकर तथा हवाई द्वीप (पर्ल हार्बर) और

दक्षिण पूर्वी एशिया में जापान की प्रारम्भिक विजयें

फिलीपाइन द्वीपों में संयुक्त राज्य की सेना और नौसेना को हराकर जापान ने दक्षिण पूर्वी एशिया में अपना व्यापक प्रभुत्व जमा लिया। २७ से ३० जनवरी तक मित्र राष्ट्रों के एक जहाजी बेड़े को नष्ट करके जापान ने इस क्षेत्र में अपने विशाल साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न को साकार करने का निश्चय किया।

जनवरी मास में ही जापानियों ने मलाया और जेहोर पर अधिकार कर लिया। अँग्रेजी सेनायें वहाँ से हट गयीं। १५ फरवरी को सिंगापुर पर भी जापानियों का पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया। मार्च में उसने हालैण्ड के पूर्वी द्वीप समूह (ईस्ट इंडीज) पर अधिकार कर लिया। अब जापान ने ब्रह्मा पर चढ़ाई की जहाँ पर चीनी सैनिक भी अँगरेजों की सेना की सहायता कर रहे थे। यहाँ भी विजयश्री जापानियों के हाथ रही और मार्च के अन्त तक ब्रह्मा पर जापान का अधिकार हो गया। मार्च में ही न्यूगिनी तथा सोलोमन द्वीपों पर उसने विजय प्राप्त की। ८ अप्रैल को एडमिराल्टी द्वीप पर जापानी झण्डा फहराया गया। अन्डमान नीकोबार पर जापान ने अधिकार कर लिया और भारत पर आक्रमण की आशंका होने लगी। दूसरी ओर वह आस्ट्रे-लिया के समीप पहुँच चुका था और उस पर आक्रमण कर सकता था।

युद्ध का पासा पलटता है

किन्तु अब पासा पलटने वाला था। अमरीका तथा इंगलैण्ड ने भारी संख्या में अपनी सेनायें इस क्षेत्र में भेजनी प्रारम्भ कर दीं। मई के आरम्भ में कोरल समुद्र में और जून में मिडवे द्वीपों के समीप जापानी बेड़े की पराजय हुई। अगस्त में अमरीकी सेना सोलोमन द्वीप में उतर गयी। इस प्रकार मित्रराष्ट्रों ने अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया और १९४२ के अन्त तक जापान की स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था।

रूस जर्मनी का सफल प्रतिरोध

उधर १९४२ की बसन्त ऋतु में जर्मनों ने कर्च पर अधिकार कर लिया और डोनेज नदी के उस पार रूसी सेना की पराजय हुई जून में सेबस्टापोल को विजय करके क्रीमिया पर पूर्णरूप से अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसका लक्ष्य काफ प्रदेश के मिट्टी के तेल के कुओं और स्टालिन ग्राड पर अधिकार करना था। प्रारम्भ में जर्मनों को सफलता हुई और १५ अगस्त तक वे रूसियों को पीछे हटाते हुए डॉन नदी के उस पार पहुँच गये और कॉफ पर्वत के आंचल में प्रवेश किया। अक्टूबर के अन्त में वे जार्जिया-टिफलिस सड़क पर पहुँच गये परन्तु इसके आगे उनको कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा।

स्टालिनग्राड का घेरा

किन्तु ५ दिसम्बर को जर्मन सेनाओं ने स्टालिनग्राड का घेरा प्रारम्भ कर दिया। रूसियों ने डटकर सामना किया। यद्यपि नात्सी सेना ने नगर के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया तथापि वह सहसा एक विपत्ति में फँस गयी। रूसी सेनानायक जुकोव ने स्टालिन ग्राड की जर्मन सेना को तीन ओर से घेर लिया और उसके यातायात के सभी साधनों को नष्ट कर दिया। वह जर्मन से विच्छिन्न होकर दिसम्बर के अन्त में नैराश्यपूर्ण संग्राम कर रही थी। चारों ओर दूर-दूर तक एक भी जर्मन सैनिक दृष्टिगोचर नहीं होता था।

इसी प्रकार लैनिनग्राड और मास्को की स्थिति भी जर्मनों के अनुकूल नहीं

थी। हिटलर को रूस में सत्वर विजय की आशा नहीं रह गयी थी। वह इस ओर से चिंताकुल होता जा रहा था।

उत्तरी अफ्रीका में अलामीन की पराजय

१९४२ की बसन्त ऋतु में जनरल रोमेल ने अंग्रेजी सेना को पराजित करके सिकन्दरिया लौटने पर विवश कर दिया और इसी नगर के समीम अलामीन नामक स्थान पर अपनी सुदृढ़तम रक्षापंक्ति की स्थापना कर ली। २३ अक्टूबर को मित्रराष्ट्रों की सेना ने अलामीन पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ और इस सेना ने १२ दिसम्बर को जर्मन रक्षा पंक्ति को तोड़ दिया। वह तोवरुके तक बढ़ती चली गयी और जनरल रोमेल की सेना को अल अघीला तक खदेड़ दिया। १४ दिसम्बर को अल अघीला भी मित्रराष्ट्रों के हाथ में आ गया और जर्मनी ने पीछे हटकर बूरट पर नया मोर्चा स्थापित किया। दूसरी ओर संयुक्त राज्य की सेना ने मोरक्को और अल्जीरिया पर नवम्बर मास में ही अधिकार कर लिया था। अब वह पूर्व की ओर बढ़ रही थी। जनरल रोमेल की सेना दोनों ओर से मित्रराष्ट्रों की सेना द्वारा घेरी जा रही थी अतः उत्तरी अफ्रीका में जर्मन-इटालवी सेना का भविष्य उज्ज्वल नहीं था।

संयुक्त राज्य का युद्ध में प्रवेश

इस वर्ष की घटनाओं का सिंहावलोकन करने के पूर्व संयुक्त राज्य की अभिवृत्ति का एक संक्षिप्त वर्णन आवश्यक है। प्रायः प्रश्न किया जाता है कि संयुक्त राज्य ने द्वितीय विश्वयुद्ध में क्यों प्रवेश किया? उसने अपनी तटस्थता की नीति का क्यों परित्याग किया? जापान और संयुक्त राज्य की प्रशांत महासागर तथा दक्षिण पूर्वीय एशिया की प्रतिस्पर्धा का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कारणों से अभिप्रेरित होकर संयुक्त राज्य ने मित्रराष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में भाग लिया।

अधिनायकों की कार्यवाहियों के लिए प्रतिक्रिया

यूरोप की घटनाओं ने संयुक्त राज्य अमरीका की प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अपनाई गयी तटस्थता की नीति पर आघात किया और ज्यों-ज्यों हिटलर और मसोलिनी की आक्रामक कार्यवाहियाँ बढ़ीं त्यों-त्यों अमरीकी सरकार और जनता अपनी नीति को परिवर्तित करने पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अमरीकी जनमत जाग्रत करने का प्रयत्न किया क्योंकि लोकतन्त्र संकट में पड़ता जा रहा था और यह आशंका में उलझा देगा। १६ जुलाई १९३७ को संयुक्त राज्य के कर्डलहल ने उद्घोषणा की कि इस समय कुछ ऐसी समस्यायें और संघर्ष चल रहे हैं जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्षतः समीपवर्ती देशों से प्रतीत होता है परन्तु अन्तिम विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि वे सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित कर रहे हैं। यद्यपि हम अपने को किसी संगठन अथवा काठिन्यपूर्ण वचनबद्धता में उलझाना नहीं चाहते हैं तथापि शांतिपूर्ण एवं व्यावहारिक पद्धति के सहयोगात्मक प्रयत्नों में हम विश्वास करते हैं। इस सहयोग को सुदृढ़ करने के लिए प्रतिरक्षात्मक सुदृढ़ता अनिवार्य थी। अस्तु एक ओर तो संयुक्त राज्य अपने को किसी प्रकार से भी वचनबद्ध नहीं

लोकतांत्रिक देशों की पराजय

करना चाहता था। दूसरी ओर वह तटस्थता की नीति के कुप्रभावों से भी बचना चाहता था। प्रशांत महासागर में जापानी हलचलें उसको विक्षुब्ध कर रही थीं। फ्रांस के पतन ने मानो उस विक्षोभ को तीव्रतम कर दिया।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने ३ सितम्बर १९३९ को यह उद्घोषित किया था कि यदि विश्व के किसी एक भाग में शांति भंग होती है तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ता है।

१९४० में संयुक्त राज्य की कांग्रेस ने अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण एवं दोनों महासागरों—अटलांटिक तथा प्रशान्त—में अपनी नौसेना को सुदृढ़ करने के लिए विशाल धनराशि के पक्ष में मतदान किया।

इसी वर्ष (१९४०) हवाना में एक **अन्त: अमरीकी सम्मेलन** पुन: बुलाया गया जिसने यह निश्चय किया कि अमरीका स्थित किसी भी यूरोपीय उपनिवेश को अन्य यूरोपीय देश को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। कनाडा से सम्बन्धों में सुधार किया गया तथा इंगलैण्ड को अधिक सहायता दी गयी। नकद रुपये के स्थान पर नौसैनिक अड्डों को रहन रख कर अमरीका ने इंगलैंड को सैनिक सामग्री प्रदान की (१९४१)। इस तथाकथित **उधार-धरोहर विधेयक** (Lend-Lease Bill) के अनुसार मानव शक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की सहायता इंगलैण्ड को दी गयी। अमरीका ने स्वयं अपने संरक्षण में यह युद्ध सामग्री इंगलैण्ड पहुँचाई क्योंकि राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने उद्घोषणा की कि, "लोकतन्त्र के दीपक को प्रज्ज्वलित रखना आवश्यक है।"

अमरीका की नीति में परिवर्तन

इस प्रकार संयुक्त राज्य युद्ध में सक्रिय भाग लेने की तैयारियाँ कर रहा था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा प्रधानमन्त्री चर्चिल ने न्यू फाउण्डलैण्ड के समीप एक जलपोत में बैठकर विचार विमर्श किया और १४ अगस्त १९४१ को **अटलांटिक** अधिकार पत्र नामक घोषणा प्रकाशित की। इस घोषणा में संसार में शांति स्थापित करने के लिये कुछ सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया था। कुछ समय पश्चात् इस घोषणा पत्र पर २६ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने अपने हस्ताक्षर करके इन सिद्धान्तों में अपनी आस्था प्रकट की।

अटलांटिक चार्टर

जापान की सुदूर पूर्व की सैनिक कार्यवाहियों का संयुक्त राज्य ने कभी भी समर्थन नहीं किया था। ४ दिसम्बर १९४१ को राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जापान के सम्राट के पास शान्ति की स्थापना के हेतु एक व्यक्तिगत प्रार्थना (अपील) भेजी। दूसरे दिन प्रातःकाल जापानियों ने इसका उत्तर पर्ल हावर पर आक्रमण करके दिया। संयुक्त राज्य को विवश होकर युद्ध में प्रवेश करना पड़ा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९४२ के अन्त तक युद्ध का पासा पलटता जा रहा था। उत्तरी अफ्रीका, रूस और प्रशांत महासागर में धुरी राष्ट्रों का अवरोध ही नहीं उनकी पराजय भी होने लगी थी। मित्रराष्ट्रों का भविष्य सुधरता जा रहा था परन्तु अभी भी जर्मनी और जापान के अधिकृत देशों और प्रभाव में न्यूनता नहीं आयी थी।

१९४३ का युद्ध

रूसी युद्धक्षेत्र

१९४३ के प्रारम्भ में जर्मनों का रूसियों द्वारा तीव्र गतिरोध किया जा रहा था। जर्मन सेना को मार्शल जूकोव ने सब ओर से घेर लिया था। बड़ी भारी संख्या में रूसी सेना वहाँ आ पहुँची थी और हिटलर किसी प्रकार से अपनी सेना को नहीं बचा पा रहा था। अन्त में निराश होकर ३१ जनवरी को जर्मन सेना ने आत्म-समर्पण कर दिया। स्टालिनग्राड ने अपनी अजेयता को सिद्ध कर दिया। रूसियों ने प्रत्याक्रमण प्रारम्भ कर दिया। लालसेना की खोई हुई प्रतिष्ठा और भूमि को पुनः प्राप्त करने का सफल प्रयत्न प्रारम्भ हो गया था।

जर्मनी सेनाओं के पैर उखड़ने लगे। काकेशिया तथा काले सागर के क्षेत्र से वे पीछे हटने लगीं। तैल क्षेत्र पर रूस ने पुनः अधिकार कर लिया। जर्मनी ने ग्रीष्म ऋतु में एक और प्रबल प्रयत्न किया किन्तु रूसियों ने डटकर सामना किया। रूसी विशाल वाहिनी ने जर्मन सेना को पीछे खदेड़ना प्रारम्भ किया और एक के पश्चात् दूसरे रूसी नगर का उद्धार किया। २३ अगस्त को खारकोव (Kharkov) पर रूसियों का अधिकार हो गया। नवम्बर मास तक उन्होंने क्रीमिया को जर्मन सेनाओं से मुक्त करा दिया और वे नैपर नदी तक आ गये। कीव से भी जर्मनों को भगा दिया गया और २५ दिसम्बर को स्मोलन्सक पर रूस का झण्डा पुनः फहराने लगा। रूसी सेना उत्तर में एस्थोनिया तक पहुँच गयी। दस लाख से अधिक जर्मन सैनिक मारे गये और लगभग २० लाख बन्दी बनाये गये अथवा घेर लिये गये। १० सहस्र जर्मन वायुयानों, १७,००० टैंकों, ७५,००० सैनिक ट्रकों को रूसियों ने नष्ट कर दिया। जर्मनी को अपनी रूसी योजना की विफलता में सन्देह करने का अधिक अवसर नहीं रह गया था किन्तु हिटलर हताश होने वाला व्यक्ति नहीं था।

उत्तरी अफ्रीका का युद्धक्षेत्र

उत्तरी अफ्रीका में १९४२ के अन्त में एक ओर से ब्रिटिश सेनायें और दूसरी ओर अमरीकी सेनायें जर्मन-इटालवी सेनाओं की ओर बढ़ रही थीं। जनवरी १९४३ में जनरल रोमेश की सेनाओं को बूरत (Buerat) के स्थान पर आंग्ल सेना ने पराजित करके पीछे हटा दिया और २३ जनवरी को ट्रिपोली पर भी अँगरेजी सेना का अधिकार हो गया। इसके पश्चात् जर्मन सेना को मरेथ रक्षापंक्ति तक हट जाना पड़ा। यह रक्षापंक्ति फ्रांसीसियों ने बनाई थी परन्तु फ्रांस की पराजय के पश्चात् जर्मनों ने इसको हस्तगत कर लिया था। यह पंक्ति ट्यूनिशिया की रक्षार्थ बनाई गयी थी।

ब्रिटिश तथा अमरीकी सेनाओं ने फ्रांसीसी उपनिवेश कैसाब्लांका, ओरान तथा अलजीरिया को लेने का प्रयत्न किया। पहले तो विशी सरकार की फ्रांसीसी सेना ने मित्र राष्ट्रों का विरोध किया किन्तु बाद में वह उन्हीं से आ मिली। इन तीनों प्रदेशों पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार हो गया।

अँगरेजी सेना, अमरीकी सेना तथा फ्रांसीसी सेना ने सेनाध्यक्ष जिरोंद (Giraund) की अध्यक्षता में फरवरी मास में जनरल रोमेल पर आक्रमण किया। जर्मन सेनाओं ने वीरतापूर्वक शत्रुओं का सामना किया परन्तु वे असफल रहीं। मार्च का जर्मन प्रत्याक्रमण भी विफल हो गया और २० मार्च को मित्र राष्ट्रों ने मरेथ

पंक्ति को तोड़ दिया। अप्रैल में और आगे को बढ़कर मित्रराष्ट्रों की सेना ने जनरल रोमेल को पीछे हटाया। इसी समय दूसरी अमरीकी सेना यहाँ आ पहुँची।

पश्चिम की ओर आंग्ल-फ्रांसीसी सेनायें आगे बढ़ रही थीं। वे भी अप्रैल के प्रारम्भ के विसर्टा के पश्चिम में सेरात अन्तरीप पर अधिकार करने में सफल हो गईं।

जर्मन सेना का आत्म-समर्पण

५ मई को मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जर्मन इटालवी सेना पर भीषण प्रहार किया। फलस्वरूप अंग्रेजों ने ट्यूनिशिया पर और अमरीकी सेना ने विसर्टा पर अधिकार कर लिया। एक सप्ताह के भीतर जर्मन-इटालवी सेना ने आत्म-समर्पण कर दिया। २५०,००० सैनिक बन्दी बनाये गये और पर्याप्त युद्ध सामग्री मित्र राष्ट्रों के हाथ लगी। कहा जाता है कि इस युद्ध में धुरी राष्ट्रों के ४१ युद्धपोत; ५ लाख टन भार के व्यापारिक जहाज; १०,००० ट्रक; ४,००० वायुयान, ६००० तोपें तथा २,५५० टैंक नष्ट हो गये।

परिणाम

उत्तरी अफ्रीका की विजयों ने (१) आंग्ल-अमरीकी उद्देश्यों की एकता को बल प्रदान किया, (२) फ्रांस की भूमि पर स्वतन्त्र फ्रांसीसी शासन की स्थापना सम्भव बनायी, (३) इटालवी सेना के साहस को गिराया तथा मसोलिनी के अधिनायकत्व के पतन का श्रीगणेश किया, और (४) मित्र राष्ट्रों को यूरोप के उस भाग पर आक्रमण में सफलता मिल सकी जो अपेक्षाकृत सैनिक दृष्टि से निर्बल था।

जनवरी १९४३ में कैसाब्लांका में चर्चिल तथा रूजवेल्ट की भेंट हुई। उन्होंने इटली पर आक्रमण करने, भूमध्यसागर को शत्रुहीन करने की और नात्सी शक्ति को नष्ट करके यूरोप को मुक्त करने की योजना बनाई।

भूमध्य सागर का युद्धक्षेत्र

लेम्पेदूसा और पेण्टेलारिया नामक द्वीपों को हस्तगत एवं सुदृढ़ करने के पश्चात् १० जुलाई को सिसली पर आक्रमण किया गया। आठवीं ब्रिटिश सेना तथा कनाडा की सेना ने पूर्वी किनारे पर तथा अमरीका की ७वीं सेना ने पश्चिमी किनारे पर आक्रमण किया। प्रारम्भ में मित्र राष्ट्रों की सेना ने अच्छी प्रगति की परन्तु जर्मनों के डट कर सामना करने से उनकी प्रगति धीमी पड़ गयी तथापि उन्होंने अपना अभियान चालू रखा तथा १७ अगस्त को मेरीना को जीत कर उन्होंने सम्पूर्ण द्वीप पर अधिकार जमा लिया। मित्र राष्ट्रों ने ३७,००० जर्मनों को बन्दी बनाया और प्रचुर परिणाम में युद्ध सामग्री हस्तगत की जिसमें १००० वायुयान थे।

मित्र राष्ट्रों की उत्तरी अफ्रीका की विजयों और सिसली के आक्रमण का इटली की जनता पर यह प्रभाव हुआ कि मसोलिनी की आलोचना होने लगी। २५ जुलाई को फासिस्ट महासमिति ने रोम में अधिवेशन किया और मोलिनी को वन्दी इनाकर अज्ञात स्थान में रख दिया। मार्शल बोदीलियो (Bodoglio) नया प्रधान मन्त्री बना और उसने मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध जारी रखना उचित नहीं समझा। अतः उसने ३ सितम्बर को मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध विराम संधि कर ली। इटली ने विना शर्त के आत्म-समर्पण किया था। उसने अविलम्ब युद्ध को वन्द कर दिया तथा

इटली का आत्म-समर्पण

विवश होकर सम्पूर्ण युद्धपोत, वायुयान तथा सैनिक तथा सैनिक अड्डे मित्र राष्ट्रों को समर्पित कर दिये।

हिटलर की मसोलिनी को सहायता

मित्र राष्ट्रों की सेनायें इटली पर अपना अधिकार भी नहीं जमा पाई थीं कि जर्मनी की सेनाओं ने रोम पर अधिकार कर लिया। इटली की नई सरकार अपने प्राणों की रक्षा के लिये मित्र राष्ट्रों के शिविर में चली गयी। वहाँ उसने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सितम्बर को हिटलर के छाताधारी सहसा उस स्थान पर उतरे जहाँ पर मसोलिनी कैद था और वे मसोलिनी को कैद से छुड़ा कर जमनी ले गये। वहाँ से वह जमन सेना के साथ इटली पर पुनः अधिकार करने के लिये उत्तरी इटली चला आया।

इटली में मित्रराष्ट्रों की प्रगति

जनरल आइजनहावर मित्र राष्ट्रों का सेनाध्यक्ष था। उसकी अध्यक्षता में मित्र राष्ट्रों की सेना ने इस प्रकार प्रगति की। ३ सितम्बर को ब्रिटिश सेना रीगियो में उत्तरी ९ सितम्बर को अमरीकी सेना नेवल्स के समीप सलेर्नो में उतर गयी। जर्मन ने मित्र राष्ट्रों की सेना का बड़ी वीरता तथा तीव्रता से सामना किया और यदि ब्रिटिश सेना वहाँ न पहुँच गई होती तो अमरीकी सेना के पैर उखड़ जाते। अस्तु मित्र राष्ट्रों ने फोगियो (Fogio) के हवाई अड्डे को ले लिया। १ अक्टूबर को नेपिल्स पर विजय पा ली गयी। नवम्बर मास में ब्रिटिश सेना ने सेना नदी को पार कर लिया और दिसम्बर के अन्त तक मारो नदी को पार करने में सफलता प्राप्त कर ली किन्तु इसके उत्तर में इटली पर जर्मनी सेना का अधिकार बना रहा। दिसम्बर मास में आइजनहावर के स्थान पर जनरल अलक्षेन्द्र सेनापति बनाया गया।

पश्चिमी युद्ध क्षेत्र

जिन वायु आक्रमणों से जर्मनी इंगलैण्ड को परास्त करना चाहता था वे ही वायु आक्रमण अब उसके भाग्य का निर्णय करने जा रहे थे। अमरीका के युद्ध में प्रविष्ट हो जाने तथा जर्मनी के वायु आक्रमणों के गत वर्ष ही समाप्त हो जाने से इंगलैण्ड को स्वयं हवाई आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो गया। आंग्ल अमरीकी वायुयान जर्मनी तथा उसके अधिकृत देशों पर बम वर्षा करने लगे और औद्योगिक केन्द्रों को नष्ट करने लगे जिससे युद्ध सामग्री के उत्पादन में बाधा पड़े। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी की उत्पादन क्षमता घटने लगी और इंगलैण्ड की उत्पादन क्षमता बढ़ने लगी। फलतः मित्र राष्ट्रों की सेना भी भली-भाँति यन्त्रीकृत होने लगी, किन्तु इस मोर्चे पर अभी तक हालैण्ड-नार्वे से लेकर स्पेन की उत्तरी सीमा तक हिटलर की धाक जमी हुई थी।

सुदूर पूर्वी युद्धक्षेत्र

१९४३ में संयुक्त राज्य ने प्रचुर मात्रा में युद्ध सामग्री, जलपोत, वायुयान, पनडुब्बियाँ आदि तैयार कीं। विध्वंसक शस्त्रास्त्र भी तैयार किये। फलस्वरूप संयुक्त राज्य की पनडुब्बियों, जल पोतों, वायुयानों और विध्वंसकों ने जापानी नौसैनिक शक्ति पर प्रहार करने प्रारम्भ किये। जापानी युद्धपोत तथा व्यापारिक पोत उनके अचूक लक्ष्य बनने लगे। जापान की शक्ति क्षीण होने लगी। १९४३ की वसंत ऋतु में अमरीका ने प्रशान्त महासागर में आगे बढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। एक के

पश्चात् दूसरा द्वीप उसके अधिकार में आ रहा था और गिलवर्ट तथा मार्शल द्वीप समूहों पर वर्ष की समाप्ति पर अधिकार करने में उसको सफलता प्राप्त हो रही थी।

अस्तु १९४३ का वर्ष मित्र राष्ट्रों के लिए आशा का संचार करता हुआ समाप्त हुआ। जर्मनी, इटली और जापान तीनों देशों के विपक्ष में पासा पलट रहा था। इटली तो एक प्रकार से आत्मसमर्पण कर चुका था किन्तु उत्तरी इटली में मसोलिनी और जर्मन सेनायें डटी हुई थीं।

१९४४ का युद्ध

इटली का युद्धक्षेत्र

२० जनवरी को मित्र राष्ट्रों की सेना ने गेरिगलियानो को पार किया और दो दिनों के पश्चात् उत्तर में स्थित एंजियो (Anzio) में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को उतारा गया जिससे जर्मन सेना को उसके आधार से विच्छिन्न कर दिया जावे परन्तु यह प्रयास विफल हुआ। फरवरी में भी अमरीका सेना गेरिगलियानी नदी के पूर्व में कोसिनो के पर्वतीय क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकी। इन अमरीकी सेनाओं की शक्ति को कई मास में आंग्ल सेना ने बढ़ा दिया। तब इन संयुक्त सेनाओं ने इस प्रदेश में सफलता प्राप्त की तथा रिपिडो नदी को पार किया। अब मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जर्मन सेनाओं को पीछे खदेड़ना प्रारम्भ किया तथा ४ जून को रोम नगर ले लिया। जुलाई में सीना और लेघार्न पर अधिकार करके ११ अगस्त को फोरेंस पर अधिकार कर लिया। अब मित्र राष्ट्रों की सेना जर्मन की सुदृढ़ रक्षा पंक्ति के सम्मुख पहुँच चुकी थी जिसको **गार्थिक रक्षा पंक्ति** कहते थे। सितम्बर में पीसर तथा रिमनी को मित्र राष्ट्रों ने ले लिया। दिसम्बर में रेवेना तथा बोलोना (Bologna) का भी पतन हो गया और हिटलर की आशाओं पर पानी फिर गया। परन्तु अभी तक इटली की पूर्ण रूपेण मुक्ति नहीं हुई थी।

पश्चिमी युद्धक्षेत्र

जब स्टालिन ने जर्मनी पर आक्रमण किया था तब उसने मित्र राष्ट्रों से यह अनुरोध किया था कि वे पश्चिम में दूसरा मोर्चा स्थापित करें परन्तु इस विषय में उन्होंने अधिक उत्साह प्रकट नहीं किया। चर्चिल चाहता था कि दक्षिणी पूर्वी यूरोप से हिटलर पर प्रहार किया जावे किन्तु इससे रूस को गलतफहमी हो सकती थी। अस्तु अप्रैल १९४२ में दूसरा मोर्चा स्थापित करने का निर्णय किया परन्तु इस दिशा में विशेष प्रगति तब हुई जब दिसम्बर १९४२ में इस मोर्चे का प्रधान सेनापति आइजनहावर नियुक्त किया गया। जनवरी १९४४ में इस दिशा से जर्मनी पर आक्रमण करने की तैयारियाँ की गयीं और पश्चिमी तट पर भी बम वर्षा करके शत्रु के यातायात के साधनों को नष्ट करने का प्रयत्न किया गया। रेल की सड़कों को, नदियों के पुलों को और सड़कों को तोड़ डाला गया ताकि जर्मनी की सेनायें वहाँ न पहुँच सकें। ५-६ जून की रात को मित्र राष्ट्रों की सेनायें शेरबर्ग तथा लीहावरे के बीच में ऐसे स्थान पर उतारी गई थीं जहाँ पर कोई भी बन्दरगाह नहीं था। चौबीस घण्टे के भीतर २२५,००० सैनिक फ्रांस में उतारे गये और दस दिनों के भीतर उनकी संख्या ५ लाख हो गई। वे आधुनिकतम शस्त्रों से सुसज्जित थे। उन्होंने शीघ्र ही १० मील लम्बा और १२ मील चौड़ा क्षेत्र अधिकृत कर लिया और २० जून तक

उन्होंने पर्याप्त प्रगति कर ली। परन्तु इसके पश्चात् प्रथम सात सप्ताहों में उनकी प्रगति धीमी रही क्योंकि जर्मन सेनाओं ने तीव्र प्रतिरोध किया और इस क्षेत्र में झाड़ियाँ बहुत थीं। जुलाई के अन्तिम सप्ताह में वे द्रुतवेग से आगे बढ़ीं। १५ अगस्त को फ्रांसीस तथा अमरीकी सेनाओं की और टुकड़ियाँ आ गयीं और १९ अगस्त को पैरिस को मुक्त करके जनरल डिगाल की सरकार की वहाँ स्थापना कर दी गई। इस प्रकार सेण्टला, एवेरेंशिज, नानतेज, चाट्रीज, ऑरलिन्यस शेट्डन, ड्रीक्स आदि नगरों को इस काल में मुक्त कराया गया और उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से जर्मन सेनाओं को घेरने का प्रयत्न किया गया। उधर टूलू और नाइस के बीच में रिवीरा में मित्र सेनायें उतर गयीं। उन्होंने टूलू, मार्सेल्स, वालेन्स लियोन्स आदि नगरों को मुक्त करा दिया। उत्तर की ओर १४ सितम्बर तक ब्रिटिश तथा कनाडी सेनायें डच सीमाओं तक पहुँच गयी थीं। १५ सितम्बर तक प्रायः सम्पूर्ण फ्रांस को मुक्त करा लिया गया और जर्मन सेनायें सीजफ्रीड रक्षापंक्ति पर जा पहुँची थीं। अब मित्र राष्ट्रों की सेना तथा जर्मन सेना के बीच में मास नदी तथा निचली राइन नदी ही रह गई थी।

मित्र राष्ट्रों ने इन नदियों को पार करके सीजफ्रीड रक्षापंक्ति को तोड़ने का प्रयत्न किया परन्तु इसमें उनको सफलता नहीं मिली क्योंकि ये रक्षापंक्तियाँ अत्यन्त सुदृढ़ थीं। मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने समुद्री मार्ग से भी हालैण्ड और बेल्जियम पहुँचना चाहा परन्तु इनमें भी उनको कठिन प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। अक्टूबर में आखन (Aachan) नामक स्थान पर यह रक्षापंक्ति तोड़ दी गई परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। इसी बीच में ब्रिटिश सेना ने दक्षिणी हालैण्ड से जर्मनों को भगा दिया था और फ्रांसीसी सेना राइन नदी पर मुलहौजेन (Mulhauzen) पहुँच गयी थी। अमरीकी सेना ने स्ट्रासबर्ग पर अधिकार करके जर्मन सीमा में प्रवेश करके सार क्षेत्र में आगे बढ़ने में सफलता प्राप्त कर ली थी उधर जर्मन सेना भी इसकी प्रगति में बाधा डालने का ही पूरा-पूरा प्रयत्न नहीं कर रही थी अपितु प्रत्याक्रमण की तैयारी भी कर रही थी। १६ दिसम्बर को अन्तिम पासे के रूप में जर्मनी ने अपना प्रत्याक्रमण प्रारम्भ कर दिया। ९ दिन तक वह भीषण रूप धारण किये रहा किन्तु दसवें दिन मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने उस आक्रमण को रोकने में सफलता प्रारम्भ करली। मित्र राष्ट्रों ने आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। अब उनके तीन प्रमुख उद्देश्य थे। पश्चिमी राइन क्षेत्र से जर्मन को निकालना, राइन को पार करना और अवशिष्ट जर्मन सेना को नष्ट करना अथवा बन्दी बनाना। इस वर्ष के अभियान में मित्रराष्ट्रों की सेना ने लगभग १० लाख जर्मन सैनिकों को नष्ट किया था और मित्र राष्ट्रों के ३ लाख सैनिक मारे गये थे।

रूसी युद्धक्षेत्र

१९४४ में रूसी सेनाओं ने अपनी सफलताओं को अक्षुण्ण बनाये रखा। जनवरी में उन्होंने लेनिनग्राड को घेरने वाली सेना को उन स्थानों से भगा दिया जिन पर उसका १९४१ से अधिकार चला आ रहा था। इसके पश्चात् नीरगोराडे पर अधिकार करके जर्मनों को नार्वा नदी और पीपल झील तक पीछे हटने पर विवश किया। इसी बीच निकोपोल तथा क्रिवोई रोग (Krievoi Rog) नामक दो औद्योगिक केन्द्रों को मुक्ति दिलाई गई। मार्च में कोर्सून के समीप जर्मन सेना के दस डिवीजनों का सफाया कर दिया गया। ग्रीष्मऋतु में रूसी सेनाओं ने पश्चिमोत्तर की ओर

बढ़ना प्रारम्भ किया तथा फिनलैण्ड को मुक्त करा दिया। एक दूसरी रूसी सेना ने पोलैण्ड की सीमा में प्रवेश किया। तब पोलों (poles) को यह आशंका हुई कि कहीं जर्मनों के पंजे से निकलने के पश्चात् वे रूसी शिकंजे में न कस दिये जावें। अतः लन्दन में स्थित पोल **स्वतन्त्र सरकार** ने सभी पोलों से अपील की कि वे जर्मन नियन्त्रण से मुक्त होने का प्रयत्न करें। फलतः पोलैण्ड में विद्रोह हुआ और दो लाख देशभक्तों का जर्मनों ने बध कर दिया। रूस की उत्तरी सेना अगस्त मास में ही पूर्वी प्रशा में प्रवेश कर चुकी थी।

दक्षिण-पूर्वी यूरोप

इसी वर्ष के अन्त तक रूसियों ने दक्षिण पूर्वी यूरोप में भी भारी सफलता प्राप्त की। रूमानिया पर अधिकार करने के पश्चात् उन्होंने बलगेरिया तथा हंगरी से जर्मनों को सुगमता पूर्वक निकाल दिया। यूगोस्लाविया से भी जर्मन बहिष्कृत कर दिये गये और यूनान को भी जर्मन प्रभाव से मुक्त कराने में दिसम्बर तक सफलता प्राप्त हो गयी। इस प्रकार दक्षिण पूर्वी यूरोप में जर्मनों के प्रभाव का अन्त हो गया।

रूसी युद्ध क्षेत्र में १९४४ में जर्मनी के अस्सी लाख सैनिक तथा रूस के पचास लाख सैनिक मारे गये। परन्तु शीत अभियान अभी पूर्ण रूप से प्रारम्भ नहीं हुआ था।

सुदूर-पूर्वी युद्धक्षेत्र

फरवरी १९४४ में मार्शल द्वीप पर भीषण बम वर्षा की गयी जिससे जापानी प्रतिरोध क्षीण होने लगा। इसके पश्चात् इस द्वीप समूह पर संयुक्त राज्य ने अधिकार कर लिया। अमरीका में खुशियाँ मनाई गयीं क्योंकि जापानियों द्वारा अधिकृत क्षेत्रों में से पहला क्षेत्र था जिस पर अधिकार हुआ था। तत्पश्चात् एडमिराल्टी द्वीप समूह पर अधिकार हो गया और मेरियान द्वीप समूह को विजय करने की योजना बनायी गई। जून में आक्रमण प्रारम्भ हुआ और जुलाई के अन्त तक इस द्वीप समूह से जापानियों को खदेड़ दिया गया। अक्टूबर के अन्त तक अमरीका युद्धपोत तथा विध्वंसकों ने फिलीपाइन द्वीपों के पश्चिम में प्रवेश कर दिया था और उन द्वीप समूहों की रक्षा के लिये भजा गया जापानी जहाजी बेड़ा और सेनायें नष्ट कर दी गयीं। परन्तु दिसम्बर के अन्त तक पूर्ण रूप से फिलीपाइन द्वीप समूह पर अधिकार नहीं हुआ था तो भी मैरिन द्वीप समूह से मेक आथर की अध्यक्षता में अमरीकी वायुयान कई बार जापान पर भीषण बमवर्षा कर चुके थे।

अस्तु १९४४ के अन्त में मित्रराष्ट्रों की स्थिति सभी युद्ध क्षेत्रों में अच्छी हो गई थी। इटली और फ्रांस को मुक्त करा दिया गया था और दक्षिण पूर्वी यूरोप के सभी देशों से जर्मन सेनाओं को भगा दिया गया था। उत्तर में फिनलैंड पर जर्मनी का प्रभाव समाप्त हो गया था। पोलैण्ड में रूसी सेनाओं ने प्रवेश कर दिया था और वे पूर्वी प्रशा में पहले ही प्रवेश कर चुकी थीं। पश्चिम से भी मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जर्मनी की सीमा में प्रवेश करके सार के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति प्राप्त कर ली थी। जर्मनी का अन्तिम प्रत्याक्रमण विफल हो चुका था।

१९४५ का युद्ध

पश्चिम की ओर से जर्मनी पर आक्रमण होता है

जनवरी १९४५ में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी पर आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर ली थी। वे जर्मन के प्रत्याक्रमण (१६ दिसम्बर १९४४) को विफल बना चुके थे किन्तु इस प्रत्याक्रमण के कारण मित्र राष्ट्रों का आक्रमण छह सप्ताह की देरी से हुआ। ८ फरवरी को आंग्ल-कनाडी ने निजमेगन (nijmegen) की दक्षिण-पूर्व की दिशा से आक्रमण किया। शीघ्र ही सम्पूर्ण पश्चिमी मोर्चे पर मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। प्रथम अमरीकी सेना ने रेमागेन पर राइन नदी को पार करने में सफलता प्राप्त कर ली। ट्रापर, क्रेफेल्ड, कोलोन आदि नगरों के पश्चात् मध्य मार्च में काब्लेन (Coblenz) पर अधिकार कर लिया गया। इस समय जर्मन सेना राइन के पश्चिमी किनारे को खाली कर चुकी थी। दक्षिण में अमरीकी सेनायें सार क्षेत्र को विजय कर रही थीं। इस प्रकार २५ मार्च तक राइन नदी के पश्चिम में मित्र राष्ट्रों की विजय पताका फहराने लगी।

दक्षिण की ओर से आक्रमण

उत्तर की ओर से आक्रमण

उत्तर की ओर से माण्टगोमरी की अध्यक्षता में मित्र राष्ट्रों की सेनायें लोअर राइन को पार कर रही थीं। वे उत्तर-पूर्व के क्षेत्रों पर अधिकार करती हुई अप्रैल मास में रूर प्रान्त को लेने में सफल हो गईं। इस प्रकार अप्रैल में राइन नदी के पूर्व में वेजेल, रेमागेन और ओपहीम नामक तीन स्थानों पर मित्र राष्ट्रों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। वे मध्य जर्मनी पर प्रहार करने जा रही थीं।

पूर्व की ओर से आक्रमण

उधर रूसी सेनायें १२ जनवरी को शीतकालीन आक्रमण प्रारम्भ नहीं कर सकी थीं किन्तु जनवरी में उन्होंने पोलैंड की राजधानी पर अधिकार करके जर्मनी पर आक्रामक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी थी। उन्होंने विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था और जर्मनी पर भीषण बम वर्षा कर रही थीं। दक्षिण में रूसी सेनाओं ने हंगरी को विजय करके १५ अप्रैल तक आस्ट्रिया की राजधानी वियना को जीतने का उपक्रम कर दिया था। वे जर्मनी पर आक्रमण करने की तैयारी कर रही थीं। १६ अप्रैल को रूसी सेनाओं ने जर्मनी की राजधानी बर्लिन पर आक्रमण प्रारम्भ किया।

बर्लिन की लड़ाई

पश्चिम में मित्र राष्ट्रों की सेनायें जर्मन सेनाओं को परास्त करती हुई आगे को बढ़ रही थीं। रूर की घाटी में काफी जर्मन सेना फँसी हुई थी। दूसरी ओर राइन नदी के समानान्तर बहने वाली अन्य नदियों को पार करके वे एल्ब नदी की घाटी में प्रवेश कर चुकी थीं और दक्षिण में अमरीकी सेना ने बवेरिया को जीतकर जेकोस्लावाकिया की सीमा में प्रवेश कर दिया था।

इस प्रकार एक ओर से रूस की सेनायें और दूसरी ओर से आंग्ल, अमरीकी, कनाडी, फ्रांसीसी आदि मित्र सेनायें बर्लिन की ओर बढ़ रही थीं। अप्रैल के अन्तिम

सप्ताह में रूसी सेनायें बर्लिन के समीप युद्ध कर रही थीं और इसी समय मित्र राष्ट्रों की सेनायें भी वहाँ पहुँच चुकी थीं। बर्लिन नगर में युद्ध हो रहा था।

इटली की घटनायें

उधर इटली से जर्मन सेनाओं को वाहर निकालने की कार्यवाही जारी थी। अप्रैल के अन्त तक मित्र राष्ट्रों ने सम्पूर्ण इटली को मुक्त कराने में सफलता प्राप्त कर ली। इस समय मसोलिनी उत्तरी इटली में था। २८ अप्रैल को वह अपनी पत्नी सहित पलायन करने का प्रयत्न कर रहा था परन्तु उसके साथियों द्वारा ही उसका सपत्नीक बध कर दिया गया। मिलान के चौराहे पर मसोलिनी का शव टाँग दिया गया। यह था इटली के अधिनायक मसोलिनी का भयानक एवं दयनीय अन्त !

जर्मनी का पतन

एक ओर मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने चारों ओर से बर्लिन पर आक्रमण किया, दूसरी ओर हिटलर के साथियों ने उसका साथ छोड़ना प्रारम्भ किया। गोरिंग ने २३ अप्रैल को और हिमलर ने २९ अप्रैल को उसका साथ छोड़ दिया। ३० अप्रैल को रूसी सेनायें बर्लिन नगर में प्रवेश करने वाली थीं। उसी समय हिटलर, उसकी पत्नी ईवा ब्रॉन, गोबिल्स तथा अन्य कुछ साथियों ने आत्मघात कर लिया। विश्व पर अधिकार करने की इच्छा वाला हिटलर अपने को अग्नि को समर्पित करके भावी दुर्दशा से मुक्ति पा गया। परन्तु दीर्घकाल तक उसकी मृत्यु अविश्वास का विषय बनी रही।

जर्मनी का आत्मसमर्पण

१ मई को बर्लिन रेडियो ने हिटलर की आत्महत्या तथा एरडमिल डोनिज को राज्य के प्रधान बनाये जाने की घोषणा की। २ मई को बर्लिन की सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया और ७ मई को शर्त रहित आत्मसमर्पण पत्र पर जर्मनी की ओर से जनरल जोदल और मित्र राष्ट्रों की ओर से जनरल आइजनहावर ने हस्ताक्षर कर दिये। ८ मई को जर्मन नौसेना ने आत्मसमर्पण किया। इस प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध का यूरोप में अन्त हो गया।

प्रशांत महासागर तथा सुदूर पूर्व की घटनायें

मित्र राष्ट्रों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति को यूरोपीय मोर्चे पर केन्द्रित करने का निर्णय किया था किन्तु साथ ही पूर्वी मोर्चे को भी बिल्कुल भुला नहीं दिया। १९४४ के अन्त में संयुक्त राज्य की नौसेना और सेना मैरिन द्वीप समूह पर अधिकार करके फिलीपाइन पर अधिकार करने की चेष्टा कर रही थी और जापान पर वम वर्षा प्रारम्भ हो चुकी थी।

ब्रह्मा की विजय

उधर अंग्रेजों ने जापानी सेनाओं को भारत में प्रवेश करने से रोक दिया था और १९४३ में ब्रह्मा में संचार साधनों को नष्ट-भ्रष्ट करके जापानियों को कठिनाइयों में डाल दिया था। फरवरी १९४४ में आराकान में जापानी आक्रमण असफल रहा था। इसके पश्चात् ही आसाम में जापानी आक्रमण को विफल करके उनको बहुत दूर तक खदेड़ दिया था। इसके पश्चात् कई मास तक अंग्रेजी सेना तथा जापानी सेना में युद्ध होता रहा और जनवरी १९४५ के प्रारम्भ में अमरीकी सेना ने चिन्द-विन नदी पार कर ली। इसी समय भारत-चीन सड़क जो ब्रह्मा में होकर जाती थी जापानियों के अधिकार से निकल चुकी थी। चीन का मार्ग उन्मुक्त हो गया था।

मार्च में मांडले पर और मई में रंगून पर अंग्रेजी सेना का अधिकार हो गया। मित्र सेनायें इसके पश्चात् मलाया को विजय करने की योजना बना रही थीं।

फिलीपाइन द्वीप की विजय

दिसम्बर १९४४ में अमरीकी सेना फिलीपाइन द्वीप के समीप पहुँचने में सफल हो गई थी और जनवरी १९४५ में वह इस द्वीप समूह के प्रमुख द्वीप लूजो (Luzou) पर उतर गयी और दूसरी सेना लेट द्वीप पर उतरी। तीसरी सेना मिण्डनिट (Mindinaot) में उत्तरी। तीन दिशाओं से आक्रमण करके फिलिपाइन को पुनः विजय करने में सफलता मिली और ५ जुलाई तक सम्पूर्ण द्वीप समूह पर अमरीका ने अधिकार कर लिया। मनीला तो ४ फरवरी को ही अधिकार में आ गया था। इसी बीच इवाजीमा तथा ओकीनावा भी अमरीका द्वारा जीते जा चुके थे। फिलीपाइन्स में लगभग ५,५०,००० जापानी सैनिक मारे गये अथवा घायल हुए और ओकीनावा में १,१८,००० जापानी सैनिकों ने वीरगति प्राप्त की।

आजाद हिन्द सरकार

जब प्रशान्त महासागर में जापान की विजय दुन्दुभि बज रही थी और यूरोप में हिटलर की तूती बोल रही थी तब सितम्बर १९४२ में कैदी बनाये गये भारतीय सैनिकों और दक्षिण पूर्वी एशिया मे रहने वाले प्रवासी भारतीयों ने आजाद हिन्द सेना का निर्माण किया। सन् १९४३ जुलाई से भारत के सपूत नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने इसका संचालन अपने हाथ में लिया और भारत को स्वतन्त्र कराने की योजना बनाई। महात्मा गांधी से उनका मतभेद था। वे बर्लिन पहुँचे और वहाँ से वे सिंगापुर आये थे। जापानियों और हिटलर से उन्होंने **आजाद हिन्द सरकार** को मान्यता दिलवाई। आजाद हिन्द फौज ने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिये प्रयत्न किया किन्तु 'दिल्ली चलो' का नारा असफल रहा। ज्यों-ज्यों जापान की पराजय समीप आती जा रही थी त्यों-त्यों आजाद हिन्द सरकार का भविष्य भी अन्धकारमय होता जा रहा था। अन्त में कहा जाता है कि सुभाषबाबू की वायुयान की दुर्घटना में मृत्यु हो गयी।

जापान की दुर्दशा तथा इंगलैण्ड, अमरीका, चीन और रूस का पोट्डसम सम्मेलन

धीरे-धीरे न्यूगिनी, न्यूब्रिटेन, बोर्नियों आदि द्वीपों से जापानी सत्ता समाप्त होती चली गयी। फिलीपाइन्स, इवोजीमा और ओकीनावा पर अधिकार करने के पश्चात् जापान पर भीषण बम वर्षा हुई। टोकियों, ओसाका, नागोया, कावे इत्यादि अनेकों नगरों को इस बमवर्षा में अपार क्षति पहुँची। जुलाई में पोट्सडम सम्मेलन में मित्रराष्ट्रों ने घोषणा की कि यदि जापान बिना शर्त के आत्म-समर्पण नहीं करेगा तो उसका पूर्ण विनाश कर दिया जावेगा। यह विनाश एक अभूतपूर्व आयुध के द्वारा होने जा रहा था। इसका संकेत भी इस घोषणा में था।

एटम बम

अस्तु जब जापान ने आत्म-समर्पण नहीं किया तो इस भयंकर आयुध एटम बम का प्रयोग किया गया और ६ अगस्त को इसके द्वारा हिरोशिमा नगर में प्रलय मचा दी गयी। मानव, पशु-पक्षी, कीड़े, मकोड़े, सभी नष्ट हो गये और आधे से अधिक नगर जलकर ध्वस्त हो गया। आठ अगस्त को रूस ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की और ९ अगस्त को नागासाकी पर दूसरा एटम बम फेंका गया। नागासाकी भी ध्वस्त हो गया। जापान ने ही नहीं विश्व ने इस विनाश को प्रलंयकर समझा। दूसरे दिन

जापान ने संधि की याचना की और १४ अगस्त को सम्राट हिरोहितो ने बिना शर्त आत्म-समर्पण को स्वीकार कर लिया। जापान को ये शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं : (१) जापान के शासन से तत्कालीन सत्तारूढ़ तत्त्वों को पृथक करना होगा। (२) जापान की सम्प्रभुता उन्हीं द्वीपों तक सीमित रहेगी जिनमें जापानी जनसंख्या है, (३) जापानी युद्ध-अपराधियों पर अभियोग चलाकर उनको दण्डित करना होगा, (४) जापान पर मित्र राष्ट्रों की सेना का अधिकार होगा और (६) जापान में लोकतन्त्र की स्थापना करनी होगी। २ सितम्बर १९४५ को जापान के प्रतिनिधियों ने टोक्यो की खाड़ी में अमरीकी युद्ध पोत मिसौरी पर समर्पण पत्र पर हस्ताक्षर किये।

इस प्रकार जापान में सूर्य पुत्रों के साम्राज्य का स्वप्न समाप्त हुआ और ६ वर्ष १ दिन पश्चात् **द्वितीय विश्वयुद्ध** का अन्त हो गया जिसमें कई करोड़ मानवों ने अपने प्राणों का बलिदान किया था। एक बार पुनः मानवता ने दानवता पर, शुभ ने अशुभ पर, लोकतन्त्र ने अधिनायकवाद पर विजय प्राप्त की थी। युद्ध की विभीषिका से विस्तृत मानव स्वतन्त्रता पूर्वक साँस ले रहा था। भविष्य में शान्ति की स्थापना पर गम्भीर विचार किया जा रहा था।

युद्ध पर एक विहंगम दृष्टि

इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व द्वितीय विश्वयुद्ध पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है। इस युद्ध का वास्तविक स्वरूप कैसा था? क्या यह विभिन्न विचारधाराओं का संग्राम था अथवा केवल साम्राज्यवादी हितों की रक्षा मात्र का संग्राम था? द्वितीय विश्वयुद्ध का स्वरूप पूर्ववर्ती युद्धों से भिन्न था। यह सम्पूर्ण युद्ध था जिसमें भाग लेने वाले राज्यों को सभी प्रकार के साधनों का उपयोग करना पड़ा था। राज्य ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर नियन्त्रण करके उसको युद्ध संचालन के आश्रित बना दिया।

पहली विशेषता

भोजन-वस्त्र आदि का नियन्त्रण किया गया, आवासगृहों तक पर राज्य ने अधिकार किया, कारखानों पर नियन्त्रण किया। रात को बड़े-बड़े नगरों में अँधेरा रखा गया अर्थात् मानव की स्वतन्त्रताओं का एक प्रकार से अपहरण हो गया था। प्रत्येक परिवार, प्रत्येक व्यक्ति इस युद्ध से प्रभावित हुआ था।

दूसरी विशेषता

यह युद्ध पूर्ववर्ती युद्धों की अपेक्षा अधिक व्यापक भी था। प्रायः सम्पूर्ण पुराने विश्व में युद्ध और संयुक्त राज्य पर भी थोड़ी बहुत बम वर्षा हुई। यूरोप, अफ्रीका, एशिया अटलांटिक सागर, प्रशांत महासागर आदि सभी क्षेत्रों में भीषण नर संहार हुए।

तीसरी विशेषता

इस युद्ध की नीति और रीति पूर्ववर्ती युद्धों से भिन्न थी। हिटलर के विद्युत् वेगीय युद्ध ने संसार को चकित कर दिया जो विजयें मासों और वर्षों में होती थीं वे सप्ताहों और दिनों में सम्पादित हुईं। इस युद्ध में स्थल सेना और जल सेना का उतना महत्त्व नहीं था जितना कि वायु सेना और वायुयानों का था। आक्रमण और प्रत्याक्रमण की नवीन रीतियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया। एटम बम के प्रयोग ने मानव को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया।

यह राष्ट्रों का नहीं अपितु विचारों या सिद्धान्तों का युद्ध था। एक ओर हिटलर का नात्सीवाद, मसोलिनी का फासिस्टवाद और जापान का शिन्तोवाद[1] था। हिटलर जर्मन जाति की श्रेष्ठता में विश्वास करता था। वह अपने देशवासियों को आर्य (श्रेष्ठ) समझता और अन्यों को अनार्य। यहूदियों का उसके शासन में अत्यन्त तिरस्कार-पूर्ण स्थान था। मसोलिनी का कहना था, "दोनों संसारों के संघर्ष में कोई समझौता नहीं हो सकता है। वे रहेंगे या हम रहेंगे।" जापान अपने को सूर्य की सन्तान समझता था और सम्राट के नाम पर सब कुछ करने को तैयार था। दूसरे देशों की स्वतन्त्रता का उसकी दृष्टि में कोई भी महत्व नहीं था।

चौथी विशेषता

दूसरी ओर लोकतान्त्रिक देश थे। इंगलैण्ड, फ्रांस और संयुक्त राज्य ने मानव की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये, सभ्यता और संस्कृति की सुरक्षा के लिये इन अधिनायकवादी देशों की चुनौती को स्वीकार किया था। मित्रराष्ट्रों ने अटलांटिक अधिकार पत्र में अपने उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भय से स्वतन्त्रता, न्यूनता से स्वतन्त्रता, पूजा की स्वतन्त्रता और राजनीतिक स्वतन्त्रता नामक चार स्वतंत्रताओं को युद्ध का उद्देश्य उद्घोषित किया और १९४३ के कैसाब्लांक सम्मेलन में संयुक्त विज्ञप्ति में यह कहा गया था, 'बिना शर्त आत्मसमर्पण का आशय जर्मन राष्ट्र, इटली राष्ट्र, अथवा जापानी राष्ट्र (जनता) का विनाश नहीं है परन्तु उसका उद्देश्य जर्मनी, इटली और जापान के उस दर्शन का विनाश करना है जो दूसरी जातियों (राष्ट्रों) की विजय और पराधीनता पर आधारित है।" अस्तु यह विश्वयुद्ध दो विचारधाराओं का, दो दर्शनों का संग्राम अथवा संघर्ष था।

एक तीसरी विचारधारा और थी—साम्यवाद। साम्यवादी रूस इन दोनों विचारधाराओं के प्रतिकूल था। यद्यपि साम्यवाद में लोकतांत्रिक तत्वों की अपेक्षा अधिनायकवादी तत्व अधिक विद्यमान हैं तथापि परिस्थितियों ने उसको लोकतांत्रिक देशों के साथ लाकर खड़ा कर दिया। वह इंगलैण्ड, फ्रांस और संयुक्त राज्य से कंधे से कंधा भिड़ाकर धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ा किन्तु वास्तव में इन दोनों विचारधाराओं में आकाश-पाताल का अन्तर है। अस्तु युद्ध समाप्त होने पर इन दोनों गुटों की रस्साकशी पुनः प्रारम्भ हो गयी।

द्वितीय विश्वयुद्ध अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुआ अभी तक इस विनाश का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सका है परन्तु अनुमानतः २००० करोड़ रुपये के मूल्य की संपत्ति ब्रिटेन में नष्ट हुई। रूस की राष्ट्रीय सम्पत्ति का $\frac{१}{४}$ भाग नष्ट हुआ और फ्रांस, जर्मनी, पोलैण्ड आदि देशों की साम्पत्तिक क्षति का अनुमान लगाना भी कठिन है।

परिणाम

दोनों पक्षों की २$\frac{१}{२}$ करोड़ से अधिक सैनिक मारे गये। एक करोड़ से अधिक घायल हुये। करोड़ों असैनिक नागरिकों का जीवन बमवर्षा आदि कारणों से समाप्त हो गया। एक लाख करोड़ से अधिक रुपयों का व्यय तो मित्रराष्ट्रों का हुआ। इससे कम व्यय धुरी राष्ट्रों का भी नहीं हुआ होगा।

भीषण संहार

---

1. शिन्तोधर्म।

दूसरा परिणाम यह भी हुआ कि यूरोपीय देशों के साम्राज्यों में स्वतंत्रता की भावनायें जागरित हुईं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी नीति में परिवर्तन करके भारत, ब्रह्मा, पाकिस्तान, मलाया मिस्र आदि देशों को स्वतन्त्रता प्रदान की। आगे चलकर अफ्रीकी देशों को भी स्वतन्त्रता मिली परन्तु कुछ देश स्वतंत्र नहीं हो सके। उधर फ्रांसीसी हिन्द चीन में फ्रांसीसी साम्राज्य का अंत हो गया। कम्बोडिया लाओस और वियतनाम (दो भागों में) स्वतंत्र हो गये। हालैण्ड के उपनिवेश जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि ने **हिन्देशिया** नामक संघ की स्थापना की। वह भी स्वतन्त्र हो गया। इस प्रकार ब्रिटेन और फ्रांस ने चाहे अपने साम्राज्यों की रक्षा के लिये ही युद्ध क्यों न लड़ा हो, परिणाम विपरीत हुआ। उधर जर्मनी, इटली और जापान ने १९३०-४० तक भूतपूर्व व्यापारिक उन्नति कर ली थी। इसलिए इंगलैण्ड और फ्रांस ने उनको ध्यस्त करने की नीति अपनाई क्योंकि ये अपनी उत्पादित वस्तुओं के लिये नई मण्डियों की खोज में इन दोनों देशों तथा संयुक्त राज्य के प्रतियोगी बन गये थे। साम्राज्य की रक्षा तथा व्यापारिक हितों की रक्षा के लिये मित्रराष्ट्रों ने युद्ध किया था। इस कथन में पर्याप्त सार निहित है। परन्तु जिस प्रकार अधिनायकवादी देशों के उद्देश्य पूरे नहीं हुए उसी प्रकार मित्र राष्ट्रों के ये प्रच्छन्न उद्देश्य भी पूरे नहीं हुए।

औपनिवेशक साम्राज्यों का अन्त

तीसरा परिणाम यह हुआ कि विश्व का नेतृत्व ग्रेट ब्रिटेन के हाथ से निकल गया क्योंकि उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। यद्यपि साम्राज्य का विघटन ब्रिटेन की उदारता और स्वतन्त्रता के कारण हुआ तथापि उसकी शक्ति पूर्वापेक्षा कम हो गई और संयुक्त राज्य तथा साम्यवादी रूस में विश्व नेतृत्व की महत्त्वाकांक्षा ने घर कर लिया। सारे संसार को दो गुटों में विभाजित करने का प्रयत्न होने लगा। इंगलैण्ड ने भी अपने खोये हुये प्रभाव को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। साम्राज्य को राष्ट्र[1] मण्डल में परिणत करने का प्रयत्न किया है और सभी मण्डलीय देशों के साथ सद्भावनापूर्ण एवं समानता का व्यवहार किया जाने लगा है। परन्तु इस नेतृत्व में लोलुपता का क्या अन्त होगा? यह भविष्य के गर्भ में निहित है।

विश्व नेतृत्व की प्रतिस्पर्धा

चौथा परिणाम यह हुआ कि विश्व की अशांति को दूर करने के लिये मानव ने अपने हृदय को पुनः टटोला। **राष्ट्रसंघ** की स्थापना १९१९ में इसी उद्देश्य से हुई थी परन्तु वह असफल रहा और राष्ट्रों को द्वितीय विश्वयुद्ध में कूदने से न रोक सका। एक बार पुनः लोकतांत्रिक देशों ने शान्ति की खोज के प्रयत्न किये और युद्ध के समाप्त होने के पूर्व एक नई संस्था की स्थापना पर विचार किया जाने लगा। इस संस्था की जो रूपरेखा अक्टूबर १९४४ में वाशिंगटन के समीप डंबरटन ओक्स में तैयार की गयी थी उस पर विचार करने के लिये अप्रैल १९४५ में सेनफ्रांसिस्को में ४६ राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ। २४ अप्रैल से २६ जून तक यथेष्ट वादविवाद के पश्चात् **संयुक्त राष्ट्र संघ** की रूपरेखा तैयार हुई जोकि '**संयुक्त राष्ट्रीय अधिकार पत्र** में सन्निहित थी। फलस्वरूप

शान्ति के पथ पर

---

1. ब्रिटिश शब्द हटा दिया गया है।

२४ अक्टूबर १९४५ को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हो गयी। इस संस्था का विशद विवेचन आगे किया जावेगा किन्तु क्या यह भूतपूर्व राष्ट्रसंघ के समान ही शक्तिहीन संस्था होगी अथवा वास्तव में विश्व शान्ति की स्थापित करने में सफल रहेगी ? इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। भविष्य ही मानव के इस पवित्र प्रयत्न की सफलता का निर्णय कर सकेगा।

छठा परिणाम यह हुआ कि विभिन्न देशों के साथ युद्ध काल में अथवा उसकी समाप्ति के पश्चात् संधियाँ सम्पादित हुईं। इन संधियों का क्या आधार था ? जिस समय युद्ध के परिणामों का कुछ भी पता नहीं था और अधिनायकवादी देशों की विजय तथा लोकतांत्रिक देशों की पराजय हो रही थी उस समय विश्व की भावी रूपरेखा पर विचार विमर्श किया जा रहा था। युद्ध में प्रविष्ट होने के पूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जनवरी १९४१ में मानव स्वतंत्रताओं की उदघोषणा की थी : विचार की स्वतन्त्रता धर्म की स्वतन्त्रता, दीनता से स्वतन्त्रता और भय से स्वतन्त्रता। उसी वर्ष अगस्त में अटलांटिक चार्टर में चर्चिल-रूजवेल्ट ने ये उदघोषणाएँ कीं : (१) कोई भी देश युद्ध से आर्थिक लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं करेगा, (२) जनता की इच्छा के अनुसार ही राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन किया जावेगा, (३) प्रत्येक देश को अपनी इच्छानुसार अपने शासन के स्वरूप को निर्धारित करने का अधिकार होगा, (४) जिन देशों की राजनीतिक स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया गया है उनको उनकी पुनः प्राप्ति का पूर्णाधिकार होगा, (५) केवल राष्ट्रों को भय और आक्रमण के विरुद्ध आश्वासन ही प्रदान नहीं किया जावेगा वरन् उनकी जनता की गरीवी और भय को दूर करने के सभी प्रयत्न किये जावेंगे, (६) विश्वशान्ति को बनाये रखने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित की जावेगी। इसके पश्चात् १९४२ का कॅसाव्लांका सम्मेलन, १९४३ का मास्को सम्मेलन; दिसंबर १९४३ का तेहरान सम्मेलन, १९४५ का माल्टा सम्मेलन और जुलाई-अगस्त १९४५ का पोटस्डम सम्मेलन इसी शान्ति के आधारों और संधियों के मूलभूत सिद्धान्तों को तय करने के लिये हुए थे। किन्तु इन सम्मेलनों में पूर्व और पश्चिम के दृष्टिकोणों का अन्तर स्पष्ट हुआ और रूस तथा अमेरिका के बीच में दूरी बढ़ती चली गयी तो भी कुछ बातों में सभी शक्तियों में सहमति विद्यमान थी। उन्हीं के आधार पर युद्धकालीन तथा परवर्ती संधियाँ की गयीं। अब की बार प्रथम युद्ध के अन्त में हुए पेरिस सम्मेलन जैसे कोई भी साधारण सम्मेलन नहीं हुआ किन्तु पोटस्डम सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि महाशक्तियों के विदेश-मन्त्री संधियों की समस्याओं पर विचार करेंगे।

संधियों का आधार

१९४७ में इटली, रूमानिया, बलगेरिया, हंगरी और फिनलैंड से सन्धियाँ सम्पादित की गयीं। इटली को उसके औपनिवेशिक साम्राज्य में वंचित कर दिया गया—लीबिया, इरीटीरिया और इटालवी सोमालीलैंड उसके अधिकार में नहीं रहे। उसने अबीसीनिया तथा अल्बानिया की स्वतंत्रता और सम्प्रभुता को मान्यता प्रदान कर दी। डेकानीज द्वीप समूह यूनान को लौटा दिये गये। उत्तर-पश्चिम सीमा पर फ्रांस को, उत्तर-पश्चिम सीमा पर यूगोस्लाविया को कुछ भूक्षेत्र दे दिये और ऐड्रियाटिक क्षेत्र में भी कुछ भाग यूगोस्लाविया को मिल गया। संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में ट्रिस्टी का प्रशासन रख दिया गया। उसकी सेना की सीमा २५०,०००

इटली के साथ संधि

निश्चित कर दी गयी और उसने ३६०० लाख डालर क्षतिपूर्ति के रूप में देखा स्वीकार कर लिया।

रूमानिया, बलगेरिया हंगरी तथा फिनलैण्ड के साथ सन्धियाँ

रूमानिया, बलगेरिया, हंगरी और फिनलैंड के साथ की गई संधियों के अनुसार प्रत्येक देश को निश्चित धन राशि क्षतिपूर्ति के रूप में देनी थी। उनकी सेनाओं की सीमा निश्चित कर दी गई और उन्होंने 'मानव अधिकारों' तथा 'मूलभूत स्वतन्त्रताओं' को प्रदान करने की प्रत्याभूति दी। बलगेरिया की सीमाओं में अभिवृद्धि हो गई क्योंकि उसको रूमानिया से डोबूजा मिल गया। अन्य देशों की सीमाओं में कमी हो गयी। रूमानिया को बेसरेबिया का प्रान्त रूस को देना पड़ा। हंगरी ने ट्रांसिलवानिया रूमानिया को लौटा दिया और स्लावक क्षेत्र जैकोस्लावाकिया को देने पड़े। फिनलैण्ड ने करैलिन डवरूमध्य और पैट्समो प्रान्त रूस को दे दिये।

जर्मनी की समस्या

१९४५ में माल्टा सम्मेलन में यह तय हुआ था कि जर्मनी पर चार शक्तियों का अधिकार होगा : अमरीका, रूस, इंगलैण्ड तथा फ्रांस। इस हेतु उसको चार पृथक क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जावेगा और उसको पूर्ण रूप से विसैन्यीकृत कर दिया जावेगा। नात्सीवाद का अन्त कर दिया जावेगा। युद्धोपरांत इसी प्रकार चार क्षेत्रों पर चारों शक्तियों ने अधिकार कर लिया। अपने क्षेत्रों में प्रत्येक देश का सेनापति सर्वोच्च शक्ति का उपयोग करेगा परन्तु सम्पूर्ण जर्मनी के लिये चारों प्रधान सेनापतियों की **परिषद्** बना दी गयी। जर्मनी के पूर्ण विसैन्यीकरण एवं नात्सीवाद को नष्ट करने के सभी प्रयत्न किये गए। नूरेम्बर्ग में मित्र राष्ट्रों से **अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण (Inter Allied Tribunal)** ने प्रमुख युद्ध-अपराधियों पर अभियोग चलाये और उनको दण्डित किया—रिबैनट्राप, रोनबर्ग, गोयरिंग आदि प्रमुख नात्सियों को मृत्यु दन्ड दिया गया किन्तु गोयरिंग ने विषपान करके आत्म-हत्या कर ली।

जर्मनी का विभाजन

परन्तु जर्मनी के साथ की जाने वाली संधि की शर्तों के सम्बन्ध में मित्रराष्ट्रों में मतैक्य का अभाव था। रूस चाहता था कि जर्मनी में एक दलीय सबल केन्द्रीय शासन हो जिसमें साम्यवादी दल का बाहुल्य हो। इंगलैण्ड और संयुक्त राज्य संघीय जर्मनी के पक्ष में थे जिसमें कई राजनीतिक दल हों तथा स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था हो। रूस जर्मनी से भारी क्षतिपूर्ति कराना चाहता था और उसके भुगतान के लिये जर्मनी के औद्योगीकरण के पक्ष में था। पश्चिमी मित्रराष्ट्र इसके विरुद्ध थे। अस्तु पारस्परिक सहमति के अभाव के कारण रूस तथा पश्चिमी मित्रराष्ट्रों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी-अपनी इच्छानुसार राजनीतिक व्यवस्था की और जर्मनी दो भागों में विभक्त हो गया : (१) **पश्चिमी जर्मनी का संघीय गणतन्त्र** है जो राजधानी बॉन है, और (५) **पूर्वी जर्मनी का लोक तान्त्रिक गणतन्त्रों** है जिसकी रूसी प्रभाव क्षेत्र में बर्लिन में स्थित है। बर्लिन नगर दोनों गणतन्त्र के बाहर है और दोनों गणतन्त्र संप्रभु राज्य नहीं हैं क्योंकि उनके सैनिक एवं विदेशी मामलों का नियंत्रण क्रमशः अधिकार करने वाली शक्तियों के हाथ में है।

आत्मसमर्पण के पश्चात् जापान के साम्राज्य का विघटन हो गया। क्यूराइल

जापान की व्यवस्था

द्वीपों तथा दक्षिणी शाखालिन पर रूस ने अधिकार कर लिया। चीन ने फारमोसा ले लिया। कोरिया पर संयुक्त राज्य और रूस ने अपने-अपने क्षेत्रों में अधिकार कर लिया और उसको उचित समय पर स्वतन्त्रता प्रदान करने का आश्वासन दिया। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् प्रशांत महासागर के जो द्वीप जापान को प्रादेश व्यवस्था (Mandate System) के अन्तर्गत दे दिये गये थे वे संयुक्त राष्ट्रसंघ की देख रेख में ट्रस्टीशिप (न्याय व्यवस्था) के अन्तर्गत संयुक्त राज्य को हस्तांतरित कर दिये गये। इस प्रकार चार मूल द्वीपों तथा समीपवर्ती छोटे-छोटे द्वीपों पर ही जापान की संप्रभुता रह गयी।

किन्तु यह संप्रभुता पूर्ण नहीं थी। मित्रराष्ट्रों की ओर से संयुक्त राज्य का मैक आर्थर जापान में सर्वोच्च सेनानायक था जिसने जापान पर अधिकार कर लिया। वह वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से वहाँ का अधिनायक था। उसका कार्य केवल जापान का प्रशासन करना ही नहीं था अपितु वह जापानियों की विचारधारा को संयुक्त राज्य की विचारधारा के अनुकूल भी बनाने का कार्य करता था। जापान में लोकतन्त्र को प्रोत्साहित किया गया और सम्राट के स्थान पर जापानी संसद की सर्वोच्चता स्थापित की गयी। **शिन्तोवाद** को राज्य की सहायता बन्द कर दी गयी जिससे साम्राज्य की पूजा भी समाप्त हो गयी। अनिवार्य सैनिक सेवा समाप्त करके जापान के सैनिकवाद को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। सैनिक संस्थाओं और सैनिक शिक्षा पर रोक लगा दी गयी। इस प्रकार संयुक्त राज्य ने जापान के राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों और आधारों में आमूल परिवर्तन करने का प्रयत्न किया।

संयुक्त राज्य से संधि

१९५१ के सितम्बर में सैन फ्रांसिस्को में जापान और संयुक्त राज्य के मध्य संधि हो गयी। इसने जापान की संप्रभुता को अपनी प्रतिरक्षा के अधिकार के साथ मान्यता प्रदान की और जापान ने विदेशी आक्रमण को रोकने में सहायतार्थ संयुक्त राज्य की सेना को अपने देश में रखने की स्वीकृति प्रदान की। यदि जापानी शासन प्रार्थना करे तो भविष्य में जापान की रक्षा का दायित्व संयुक्त राज्य अपने ऊपर ले लेगा। साथ ही आन्तरिक विद्रोहों को दबाने में भी यह जापान की सहायता करेगा। जापान को विदेशी हस्तक्षेप से मुक्त कराने का भार संयुक्त राज्य अपने ऊपर लेगा और जापान किसी अन्य राष्ट्र को अपने क्षेत्र में हवाई अड्डे प्रयोग में नहीं लाने देगा। रूस ने इस संधि को मान्यता प्रदान नहीं की क्योंकि इसके अनुसार जापान संयुक्त राज्य का संरक्षित राज्य मात्र बन गया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रमुख तिथियाँ और घटनायें
(१९३९ से १९४५ तक)

१९३९

१ सितम्बर—जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण—युद्ध प्रारम्भ
३ सितम्बर—इंगलैण्ड और फ्रांस द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा
२९ सितम्बर—रूस-जर्मन सन्धि, पोलैण्ड के विभाजन पर रूस की सहमति
३० नवम्बर—फिनलैण्ड पर रूस का आक्रमण

१४ दिसंबर—रूस ने फिनलैण्ड के युद्ध में राष्ट्रसंघ की मध्यस्थता अस्वीकार कर दी। रूस को राष्ट्र संघ से निकाल दिया गया।

१९४०

९ अप्रैल—जर्मनी का नार्वे और स्वीडन पर आक्रमण

१० मई—हालैण्ड, बेलजियन और लक्षेम्बर्ग पर जर्मन-आक्रमण

२७/२८ मई—बेलजियम का आत्म-समर्पण, डनकर्क से अँग्रेजी सेना का वापस आना

५ जून—जर्मनी का फ्रांस पर आक्रमण

१० जून—इटली का युद्ध-प्रवेश

१४ जून—पॅरिस का पतन

१ जुलाई—आंग्ल समुद्र बंक के कुछ द्वीपों पर जर्मनी का अधिकार

१५ अगस्त—लन्दन पर जर्मनी के हवाई आक्रमणों की बहुलता का श्रीगणेश

७ सितम्बर—दिन में लन्दन पर आक्रमण प्रारम्भ हुए

१३ सितंबर—मिस्र पर इटालवी सेना का आक्रमण

२७ सितंबर—जर्मनी,इटली और जापान के मध्य नवीन संधि

२४ अक्टूबर—इटली का यूनान पर आक्रमण

१९४१

६ अप्रैल—यूनान तथा यूगोस्लाविया पर जर्मन आक्रमण

५ मई—हेली सेलासी का पुनः आदिस अबाबा में प्रवेश

२२ जून—जर्मनी का रूस पर आक्रमण

१४ अगस्त—अटलांटिक चार्टर की घोषणा

६ अक्टूबर—मास्को पर जर्मन आक्रमण

७ दिसंबर—जापान का पर्लहार्बर पर आक्रमण और इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य के विरुद्ध युद्ध-घोषणा

१० दिसंबर—चीन की धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा

११ दिसंबर—इटली और जर्मनी की संयुक्तराज्य के विरुद्ध युद्ध-घोषणा

१९४२

७ फरवरी—सिंगापुर में जापानी सेना का उतरना

१५ फरवरी—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा आजाद हिन्द की घोषणा

२७ फरवरी—ब्रह्मा से आंग्ल सेना का पलायन

१ मार्च—जावा में जापानी सेना का आगमन

९ मार्च—जावा का आत्मसमर्पण

२५ मार्च—अण्डमान नीकोबार पर जापान का अधिकार

१८ अप्रैल—संयुक्त राज्य का टोक्यो पर हवाई आक्रमण

२३ अक्टूबर—मित्रराष्ट्रों का मिस्री अभियान

१६ नवम्बर—रूसी सेनाओं के सामने जर्मन सेना का पीछे हटना

१९४३

२ फरवरी—जर्मन सेना का स्टैलिनग्राड में आत्मसमर्पण
२५ जुलाई—मुसोलिनी का पदत्याग
३ सितंबर—इटली मित्रराष्ट्रों का अभिक्रमण
८ सितंबर—इटली का आत्मसमर्पण
२७ नवम्बर—तेहरान में चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन का सम्मिलन
३० नवम्बर—चर्चिल, रूजवेल्ट और चांगकाईशेक का उत्तरी अफ्रीका में सम्मिलन

१९४४

५ जून—रोम का पतन
६ जून—मुक्ति दिवस, जनरल आइजनहोवर की अध्यक्षता में मित्र सेनायें यूरोप में नारमण्डी से उतरीं
२१ सितंबर—अमरीकी सेनाओं ने जर्मनी में प्रवेश किया
३ अक्टूबर—सीजफ्रीड पंक्ति का अमरीकी सेना द्वारा तोड़ा जाना
१५ अक्टूबर—हंगरी से युद्ध विराम के लिये अनुरोध
दिसंबर—आर्डेनीज के जंगलों में होकर जर्मन सेना का प्रत्याक्रमण

१९४५

३ फरवरी—१००० हवाई जहाजों द्वारा बर्लिन पर बम-वर्षा
२३ फरवरी—तुर्की द्वारा राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा
५ अप्रैल—रूसी जापानी तटस्थता की संधि की रूस द्वारा अवमानना
१२ अप्रैल—राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मृत्यु
२७ अप्रैल—रूसी-अमरीकी सेनाओं का जर्मन मोर्चों पर मिलना
१ मई—जर्मन रेडियो द्वारा हिटलर की मृत्यु की घोषणा
२ मई—जर्मन सेना का इटली में आत्मसमर्पण
७ मई—जर्मन सेनाओं से आत्मसमर्पण का अनुरोध
८ मई—यूरोप में युद्ध का अन्त, वी० ई० (विजय दिवस)
५ अगस्त—हिरोशिमा पर अणु-बम का गिराना
९ अगस्त—नागासाकी पर दूसरे अणु-बम का गिराया जाना
१४ अगस्त—जापान का आत्मसमर्पण
२४—अक्टूबर—संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना

अध्याय ५६

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् का यूरोप

"द्वितीय विश्वयुद्ध संसार के इतिहास में मानव की बुद्धि और संगठन की सबसे बड़ी असफलता थी।"
—डेविड थॉम्सन

रूस—रूस को द्वितीय विश्वयुद्ध से सर्वाधिक हानि हुई थी। उसके तीस लाख सैनिक मारे गये थे। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि स्टैलिनग्राड की लड़ाई में जितने रूसी सैनिक मारे गये थे उनकी संख्या संयुक्त राज्य के सैनिकों की संख्या से कम नहीं होगी जो कि सम्पूर्ण द्वितीय विश्वयुद्ध में मारे गये। इसी प्रकार खारखोव की लड़ाई में खेत रहे रूसी सैनिकों की संख्या संयुक्त राज्य के उन सैनिकों की संख्या के बराबर होगी जो कि प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में जापान के विरुद्ध युद्ध में मारे गये थे। २½ करोड़ रूसी इसी युद्ध ने आवासहीन बना दिये थे और रूस के आठ लाख वर्ग मील के प्रदेश को जर्मन सेनाओं ने ध्वस्त कर दिया था। रूस की सम्पत्ति की जो हानि हुई उसका परिमाण भी अत्यधिक था। इस प्रकार उसने जन-धन की अत्यन्त हानि को उठाकर नात्सी सेनाओं पर विजय प्राप्त की थी परन्तु उसके ये बलिदान और विपत्तियाँ उसके लिए छद्मवेशधारी उपयोगितायें और वरदान सिद्ध हुये। उसको विशाल प्रदेशों को उपलब्धि हुई और कई पड़ौसी देशों पर उसकी आर्थिक नीतियों का प्रभाव पड़ा। आन्तरिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु विदेशों में भी उसके प्रभाव में अत्यन्त वृद्धि हुई। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् रूस को जितना अपमान सहना पड़ा था उतना ही अब उसका सम्मान बढ़ गया। उसका विश्व की राजनीति पर दूरगामी प्रभाव स्थापित हो गया, साम्यवादी सिद्धान्तों और जीवनदर्शन में मानव की आस्था में वृद्धि हो गयी और घरेलू मामलों में स्टैलिन का और शासन का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया। सैनिक गुट का प्रभाव समाप्त हो गया तथा साम्यवादी दल में जो अवांछनीय तत्त्व थे वे स्टैलिन और साम्यवादी दल के इस प्रभाव-विस्तार के अतिरिक्त प्रत्येक रूसी नागरिक में आत्म-

रूस की क्षति

मनोवैज्ञानिक उपलब्धियाँ

निर्भरता और आत्मविश्वास की प्रचुरता का अभूतपूर्व प्रादुर्भाव हुआ। उनको अपने जीवनयापन की रीति-नीति पर गर्व होने लगा।

युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् भी रूस की सेनाओं में कोई विशेष कमी नहीं की गयी और जनता को यह बताया गया कि पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देशों से रूस को संकट उत्पन्न हो सकता है। अस्तु रूस का सैनिक वातावरण अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया गया। आधुनिकतम भयंकर से भयंकर शस्त्रास्त्र बनाने पर विशाल धनराशियाँ व्यय की गयीं। परिणाम यह हुआ रूस ने अणु-बम, हाइड्रोजन बम, तथा अन्य प्रकार के अणु आयुधों का निर्माण कर लिया। वह संसार के सबसे अधिक शक्तिशाली देश संयुक्त राज्य के समकक्ष बन गया।

भौतिक उपलब्धियाँ और प्रगति

इस वैज्ञानिक प्रतियोगिता में स्टैलिन की मृत्यु (६ मार्च १९५३) के पश्चात् रूस ने आशातीत प्रगति की है। अंतरिक्ष यात्रा के प्रयत्नों में रूस अमरीका से भी आगे निकल गया है और वह अधिक दूर नहीं है जब रूसी अंतरिक्ष यान चन्द्रमा पर उतरने में सफल हो सकेगा।

१९४३ में साम्यवादी दलों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन (कॉमिनटर्न) तोड़ दिया गया था परन्तु १९४७ में एक दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन (कॉमिन फार्म) स्थापित किया गया[1] और रूस ने अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। अपनी शक्ति की पूँजीवादी-साम्राज्यवादी-देशों से समानता करने के लिए रूस ने अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और हंगरी, रूमानिया, फिनलैण्ड और इटली से जो युद्ध की क्षतिपूर्ति की धनराशि मिली उसको इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किया गया। पॉटस्डम उद्घोषणा के अनुसार रूस ने अपने क्षेत्र के जर्मन उद्योगों को भी अपनी समृद्धि के हेतु प्रयोग किया।

चतुर्थ योजना

चतुर्थ योजना (१९४४-१९४९) का उद्देश्य भी देश की शक्ति को बढ़ाना था। फलतः इस योजना के पूरे होने पर रूस के भारी उद्योगों में ६६% की वृद्धि हुई और भोग्य वस्तुओं का उत्पादन २६% ही बढ़ा। पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में रूस के उद्योगों को क्षति पहुँचने की आशंका रहती थी। अस्तु रूसी उद्योगों का स्थानांतरण यूराल के पूर्वी प्रदेश को कर दिया गया। वहाँ नये-नये औद्योगिक नगर बसाये गये।

स्टालिन के पश्चात् का रूस

१९५३ से स्टालिन के परवर्ती युग में उसकी नीतियों की प्रक्रिया ख्रुश्चोव के व्यक्तित्व के द्वारा विश्व के समक्ष अभिव्यंजित हुई। सह-अस्तित्व के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया गया और पश्चिमी देशों से रूस के सम्बन्धों में भी सुधार हुआ। रूस की लौह-यवनिका उठने लगी और ख्रुश्चोव के व्यक्तित्व, हँसमुख स्वभाव और अनाधिनायकवादी प्रवृत्तियों के कारण रूस की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई परन्तु अक्टूबर १९६४ में ख्रुश्चोव को अपदस्थ कर दिया गया और

---

1. वास्तव में रूस आदि तथाकथित साम्यवादी देशों में भी अभी तक समाजवादी समाज की स्थापना हुई है साम्यवादी समाज की नहीं।

कोसीजिन रूस के प्रधानमंत्री बने तथापि खु्श्चोव की नीतियों का परित्याग नहीं किया गया है। उधर साम्यवादी देशों में सैद्धान्तिक मत विभिन्नता हो गयी है। विशेषकर के रूस-चीन विवाद के कारण केवल सैद्धान्तिक ही नहीं हैं।

पोलैण्ड—एक सितम्बर १९३९ को द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ था और इसके तीन सप्ताह पश्चात् पोलैण्ड के एक भाग पर जर्मनी का और दूसरे भाग पर रूस का अधिकार हो गया परन्तु पोलैण्ड की जनता इस पराधीनता से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करती रही और जनरल सिकोरस्की की अध्यक्षता में स्वतन्त्र पोलैण्ड की सरकार की स्थापना फ्रांस में हो गयी। कुछ समय के पश्चात् यह स्वतंत्र सरकार लन्दन से कार्यवाही करने लगी। जनरल सिकोरस्की की सरकार ने रूसी सरकार से उस समय संधि कर ली जब १९४१ में जर्मन और रूस में युद्ध छिड़ गया। पोलैण्ड के जिस भाग पर रूस ने अधिकार कर लिया था उसको वह नहीं छोड़ना चाहता था अतः रूस और स्वतंत्र पोलैण्ड की सरकार का समझौता भंग हो गया (१९४३) और सिकोरस्की की मृत्यु के पश्चात् भी इन सम्बन्धों में कोई सुधार नहीं हुआ। १९४४ में पोलैण्ड में साम्यवादी सरकार की स्थापना हो गयी जिसको रूस ने मान्यता प्रदान कर दी परन्तु इंगलैण्ड और संयुक्त राज्य ने उसको मान्यता नहीं दी। तथापि आगे चलकर पश्चिमी देशों ने पोलैण्ड के पूर्वी भाग को रूसी नियन्त्रण से मुक्त न करने का निश्चय किया और रूस ने लन्दन की स्वतंत्र पोलैण्ड की सरकार के प्रतिनिधियों को पोलैण्ड की साम्यवादी सरकार में स्थान दिलाने का आश्वासन दिया। साथ ही पोलैण्ड में शीघ्र ही स्वतन्त्र निर्वाचन कराने का निर्णय किया गया परन्तु पूर्व-पश्चिम के बढ़ते हुए मतभेदों के कारण पोलैण्ड के सम्बन्ध में किये गये इन निर्णयों का सच्चे हृदय से पालन नहीं किया गया।

१९४५ में पोलैण्ड की अस्थायी साम्यवादी सरकार बनी। इस सरकार में लन्दन सरकार के दो प्रतिनिधि मिकोलैसिक तथा जॉन स्टैनसिक सम्मिलित थे परन्तु प्रधानमंत्री साम्यवादी था और प्रभुत्व विभाग भी साम्यवादियों के अधीन थे। रूस तथा पश्चिमी देशों ने इस शासन को मान्यता दे दी। पॉट्स्डम सम्मेलन १९४५ (जुलाई-अगस्त) में यह निर्णय हुआ कि ऑडर तथा नीस के पूर्व के प्रान्त तथा पूर्वी प्रशा का अधिकांश भाग पोलैण्ड को दे दिया जावेगा। इसी प्रकार का समझौता रूस और पोलैण्ड के मध्य पहले ही सम्पादित हो चुका था।

नव निर्वाचन

जनवरी १९४७ में निर्वाचन हुए परन्तु ये निर्वाचन स्वतन्त्रापूर्वक नहीं हुए और लन्दन सरकार के दोनों प्रतिनिधियों को डराया-धमकाया गया। मतदाताओं ने अपनी इच्छानुसार मतदान नहीं किया प्रत्युत् साम्यवादियों के प्रभाव और धमकियों से भयभीत होकर मतदान किया। परिणाम यह हुआ कि साम्यवादी भारी संख्या में चुने गये और नवीन सरकार रूस की ओर अधिक आकृष्ट हो गयी। पश्चिमी देशों ने इन निर्वाचनों के विरुद्ध आवाज उठाई परन्तु कोई परिणाम नहीं हुआ।

जो साम्यवादी और असाम्यवादी रूस की हाँ में हाँ नहीं मिलाते थे वे

अपदस्थ किये गये और बन्दी बना लिए गये। साम्यवादी व्यवस्था और शासन प्रणाली स्थापित की गयी। संविधान भी उसी आधार पर वनाया गया राष्ट्रीयकरण की नीति अपनाई गई। जमींदारी समाप्त कर दी गयी और भूमि का पुनः वितरण किया गया। विदेशी व्यापार, विदेशी नीति, औद्योगिक नीति पर रूस का प्रभाव बढ़ गया। सुरक्षा परिषद में जब पोलैण्ड को (१९४४-४८) अस्थायी स्थान मिला तव उसके प्रतिनिधि रूस के संकेत पर नाचते रहे। सैनिक, भौगोलिक, आर्थिक और सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों से रूस के प्रभाव क्षेत्र में पोलैण्ड ने जो प्रगति की है वह पश्चिमी देशों को अखरती रही है परन्तु पोलैण्ड ने इनके प्रस्तावों और कूटनीतिक गतिविधियों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि **मार्शल योजना** (१९४७) को पोलैण्ड ने स्वीकार किया।

साम्यवादी संस्थायें स्थापित होती हैं

रूमानिया—१९४० से ४४ तक रूमानिया पर जर्मनी का प्रभाव रहा और वह रूस के विरुद्ध युद्ध करता रहा परन्तु १९४५ में जर्मनी की पूर्ण पराजय के पूर्व ही रूमानिया पर रूसी प्रभाव स्थापित हो गया। फलतः यहाँ मिली जुली सरकार वनी जिसका अध्यक्ष एण्टोनेस्कू था। धीरे-धीरे रूमानिया का शासन साम्यवादी बनता चला गया और फरवरी १९४५ में विशिसकी के बुखारेस्ट जाने पर उसका स्वरूप पूर्णरूपेण साम्यवादी हो गया। जो दल अथवा व्यक्ति रूस के प्रभाव का विरोध करते थे वे डराये धमकाये और दबाये जाने लगे। साम्यवादी प्रधानमंत्री ग्रोजा ने रूस को अपनी निष्ठा से प्रसन्न करके उत्तरी ट्रांसिलवानिया प्राप्त कर लिया जिस पर कई वर्ष से हंगरी का अधिकार था। देश की आर्थिक नीति को साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित किया गया और १९४७ के नव निर्वाचनों में ग्रोजा के दल की विजय हुई। इस दल का नाम था **राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल।**

वास्तव में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल साम्यवादी दल था। अतः सत्तारूढ़ होने पर उसने भूतपूर्व प्रधान मंत्री ऐण्टोनेस्कू को मृत्यु-दण्ड दिया और मान्यू जैसे वयोवृद्ध नेता को कारावास की हवा खानी पड़ी। विरोधी दल का दमन किया गया। नया संविधान बनाया गया जो कि रूसी आदर्शों के अनुसार बना था। मार्च १९४८ में इस नवीन संविधान के अन्तर्गत नये चुनाव हुये। उनमें विरोधी दलों के केवल ७% सदस्य चुने गये। अस्तु राष्ट्रीय सभा में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल का बोलवाला रहा और भविष्य में रूमानिया पूर्णरूपेण रूस का पिछलग्गू बन-गया।

यूगोस्लाविया—यूगोस्लाविया को द्वितीय विश्वयुद्ध में भारी क्षति उठानी पड़ी थी। सहस्रों पुल, घर और कारखाने नष्ट हो गये और १७ लाख तरुण व्यक्तियों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी थी। किन्तु अन्ततोगत्वा उसको जर्मनी के सामने झुकना पड़ा था और उस पर हिटलर का आतंक स्थापित हो गया था; तथापि, राष्ट्रवादी तत्त्व अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील रहे। इन तत्त्वों का नेतृत्व मार्शल टीटो के द्वारा किया गया था जो कि साम्यवादी होते हुये भी देशभक्त था। उसने छापामार युद्ध शैली को अपनाया और जर्मन-इटालवी सेनाओं को नाकों चने चबाता रहा था।

युद्ध के अंत में इस देश को भी लाल सेना ने जर्मनी के नियन्त्रण से मुक्त कराया था। वहाँ पर अस्थायी सरकार की स्थापना हुई जिसका अध्यक्ष मार्शल टीटो

था। इस शासन को रूस, इंगलैण्ड आदि सभी मित्रराष्ट्रों ने मान्यता प्रदान कर दी। नया संविधान बनाया गया और मन्त्रिमण्डल में असाम्यवादी भी रखे गये परन्तु वास्तव में यूगोस्लाविया का साम्यवादीकरण होना प्रारम्भ हो गया। देश की आर्थिक नीति का राष्ट्रीयकरण हो गया परन्तु उसने इंगलैण्ड और रूस की पूंजी का यथार्थवादी समाधान किया जो कि उद्योगों में लगी हुई थी। वह इस पूंजी को राज्यसात् करके अपनी कठिनाइयों को बढ़ाना नहीं चाहता है। इससे रूस अप्रसन्न हो गया और उसने यूगोस्लाविया को सहायता देना बन्द कर दिया।

मार्शल टीटो की नीति

१९४७ में यूगोस्लाविया की पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन में इस रूसी अभिवृत्ति के कारण बड़ी कठिनाई हुई। रूस चाहता था कि यूगोस्लाविया रूस की आवश्यकताओं और आज्ञाओं का पालन करे परन्तु मार्शल टीटो अपने देश के आंतरिक अभ्युदय में अधिक अभिरुचि रखता था। अस्तु उसने अपनी योजनाओं को सफल बनाने के लिये पश्चिमी राष्ट्रों से अधिक सम्पर्क बढ़ाया और रूसी प्रभाव से अपने देश को मुक्त करा लिया। पश्चिमी देशों ने यूगोस्लाविया को आर्थिक सहायता प्रदान की और मार्शल टीटो ने अपनी योजनाओं को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया। रूस तथा अन्य साम्यवादी देशों ने यूगोस्लाविया को कॉमिनी फार्म से ही नहीं निकाल दिया अपितु उसका आर्थिक बहिष्कार भी किया। मार्शल टीटो ने अपनी नीति का परित्याग नहीं किया अर्थात् उसने साम्यवाद में आस्था रखते हुये भी पश्चिमी राष्ट्रों से अपना सम्पर्क स्थापित किया और रूस की चिन्ता न करते हुए उस सम्पर्क को बनाये रखा। यह सह-अस्तित्व का प्रथम सफल परीक्षण था। जब रूस की बागडोर स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् ख्रुश्चेव आदि नेताओं के हाथ में आई तब यूगोस्लाविया से रूस के सम्बन्धों में पुन: सुधार हुआ। मार्शल टीटो ने पश्चिमी राष्ट्रों से ही नहीं अपितु तटस्थ राष्ट्रों से भी घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किया और १९६४-६५ में भी मार्शल टीटो अपनी नीति में दृढ़ हैं। यूगोस्लाविया को विश्व के राष्ट्रों में अतीव सम्मान प्राप्त है।

बल्गेरिया—१९४४ के अंत में बल्गेरिया को नात्सी प्रभाव से मुक्त कराने का श्रेय रूसी सेनाओं को ही प्राप्त है। तत्पश्चात् वहाँ अस्थायी शासन स्थापित किया गया परन्तु उस पर साम्यवादियों का नियन्त्रण था। उसने फासिस्टवादियों और लोकतन्त्रवादियों को बुरी तरह से कुचला। अस्तु, पश्चिमी देशों ने इस शासन को मान्यता नहीं प्रदान की।

१९४५ में जो निर्वाचन हुये उनमें साम्यवादियों को ७०% मत प्राप्त हुये किन्तु इन निर्वाचनों में अवांछनीय प्रभावों और रीतियों का प्रयोग किया था। रूस ने तो नव-निर्मित शासन को मान्यता दे दी किन्तु लोकतांत्रिक देशों ने उसको मान्यता नहीं दी। तो भी १९४६ (सितम्बर में) **बल्गेरिया की जनता के गणतन्त्र** की उद्घोषणा कर दी गई। पुन: अक्टूबर में निर्वाचन हुये और साम्यवादियों को बहुमत प्राप्त हुआ। देश में साम्यवादी शासन पद्धति की स्थापना हो गई और प्रधान मन्त्री बना दिमित्रोव। विपक्षी नेताओं को मृत्यु दण्ड एवं दीर्घकालीन कारा-दण्ड दिये गये। १९४७ से बल्गेरिया में साम्यवादी संविधान लागू है और वह वह पूर्णरूपेण रूसी प्रभाव क्षेत्र मे आ गया है।

जैकोस्लावाकिया—युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व मार्च १९३९ तक सम्पूर्ण जैकोस्लावाकिया जर्मनी के अधीन हो गया था। यह स्थिति युद्ध की समाप्ति तक रही। तत्पश्चात् कारवैंथोयूक्रेन को छोड़कर जो कि रूस ने हस्तगत करा लिया, शेष सम्पूर्ण जैकोस्लावाकिया पर वहाँ की नवीन सरकार का १९४५ में आधिपत्य स्थापित हो गया। यह नई जैक सरकार अस्थायी सरकार थी और इसके अध्यक्ष डॉ० बेन्स थे जो कि युद्ध काल में विदेशों को चले गये थे। मई १९४६ में निर्वाचन हुये जिनमें ४०% मत साम्यवादी दल को प्राप्त हुये। अस्तु साम्यवादी नेता क्लीमैण्ट गॉटवाल्ड के नेतृत्व में नवीन संयुक्त मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई। धीरे-धीरे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया और ६०% उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो गया। राष्ट्रीयकरण में अधिक कठिनाई नहीं हुई क्योंकि जर्मनों ने अधिकांश उद्योगों को अपने हाथ में ले लिया था।

संयुक्त मंत्रिमण्डल

अब जैकोस्लावाकिया के सामने विदेशी नीति की समस्या थी। वह रूसी प्रभाव में रहे अथवा पाश्चात्य लोकतन्त्रों के प्रभाव में रहे। वह रूसी प्रभाव क्षेत्र में चला गया। क्यों? प्रथमत: यद्यपि वहाँ की जनता की आस्था व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्र में पूर्णरूपेण से तो नष्ट नहीं हुई थी तथापि देश में साम्यवादी तत्वों की प्रधानता होती जा रही थी। द्वितीयत: जैकोस्लावाकिया को विश्वास था कि उसकी सुरक्षा रूसी प्रभाव क्षेत्र में जाने से ही अक्षुण्ण बनी रहेगी। तृतीयत: १९३८-३९ में इंगलैण्ड और फ्रांस ने जैकोस्लावाकिया के साथ विश्वासघात करके उसको हिटलर को समर्पित किया था किन्तु रूस ने इसका विरोध किया था। चतुर्थत: उसको अपनी आर्थिक नीतियों की सफलता के लिये विदेशी ऋण की आवश्यकता थी। अभी तक संयुक्त राज्य ने इस प्रकार की कोई योजना नहीं बनाई थी। अस्तु जैक सरकार ने रूस का नेतृत्व स्वीकार करके अपने अभ्युदय के लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये।

रूसी प्रभाव

धीरे-धीरे रूस ने यहाँ के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया और १९४८ के निर्वाचनों में लोकतांत्रिक तत्त्वों को बड़ी असुविधा रही। असाम्यवादी मन्त्रियों ने इसका विरोध किया और त्याग-पत्र दे दिये। तब गॉटवाल्ड ने साम्यवादी सरकार की स्थापना की और अपने विरोधियों को बुरी तरह से कुचल दिया। जैकोस्लावाकिया में शिक्षा, प्रकाशन (प्रेस), अवशिष्ट उद्योग, विदेशी व्यापार, बैंक इत्यादि सभी का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। भूमि का पुन: वितरण तथा राष्ट्रीयकरण किया गया। हड़तालों पर रोक लगा दी गई और साम्यवादी श्रम व्यवस्था स्थापित हो गई। यहाँ का लगभग सभी विदेशी व्यापार रूस तथा बलकानी राज्यों से ही होने लगा और १९४८ में डॉ० बेन्स की मृत्यु के पश्चात् जैकोस्लावाकिया ने स्पष्ट रूप से रूस का नेतृत्व स्वीकार कर लिया।

साम्यवादी शासन

हंगरी—फरवरी १९४५ में रूसी सेनाओं ने हंगरी को जर्मन नियन्त्रण से मुक्त किया और फरवरी १९४६ में ही वहाँ की विधान परिषद ने उसको गणतन्त्र बनाने का निश्चय किया। अगस्त १९४७ के चुनावों में साम्यवादियों को बहुमत प्राप्त हुआ। तभी से वहाँ पर साम्यवादी शासन चला आ रहा है और हंगरी पर रूस का प्रभाव स्थापित हो गया है।

फिनलैण्ड—फिनलैण्ड में साम्यवादी व्यवस्था तो स्थापित नहीं हुई है परन्तु उसने अप्रैल १९४८ में रूस के साथ 'मित्रता, सहयोग एवं पारस्परिक सहायता' की संधि करके रूस के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया है क्योंकि रूस से शक्तिशाली पड़ोसी देश में अच्छे सम्बन्धों के द्वारा ही उसके हितों की रक्षा हो सकती थी। फिनलैण्ड को अपना कुछ भाग १९४७ की संधि के अनुसार रूस को देना पड़ा था। उस पर रूसी शासन व्यवस्था स्थापित हो गयी है।

बाल्टिक सागर का तटीय प्रदेश—एँस्थोनिया, लैटविया और लिथुआनिया पर रूसी प्रभाव १९३९ में ही स्थापित हो गया था। वह आज तक अक्षुण्ण बना हुआ है। इन देशों में साम्यवादी व्यवस्था है।

अलबानिया—इस देश पर इटली ने आधिपत्य जमा लिया था। युद्ध के अन्त में इटली के पतन के साथ ही अलबानिया भी स्वतन्त्र हो गया किन्तु यह भी रूसी प्रभाव क्षेत्र में था। यहाँ पर साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हो गयी। आगे चलकर जब १९६४ में चीन-रूस सैद्धान्तिक मतभेद हुये तब वह चीन की ओर झुक गया और वहाँ पर रूसी प्रभाव कम होने लगा।

निष्कर्ष—इस प्रकार फिनलैण्ड से लेकर बाल्टिक तटवर्ती, दक्षिणीपूर्वी यूरोपीय तथा एड्रियाटिक-ईजियन सागर के किनारे के देशों पर रूस का प्रभाव स्थापित हो गया। यूगोस्लाविया और अलबानिया दो साम्यवादी देश और यूनान जैसा असाम्यवादी देश ही न्यूनाधिक रूप में इस प्रभाव से मुक्त माने जा सकते हैं। तुर्की पर भी रूस का प्रभाव नहीं है।

यूनान—दिसम्बर १९४४ में यूनान को मित्र राष्ट्रों की सेना में जर्मन नियंत्रण से मुक्त किया था। दिसम्बर १९४६ में जनता ने राजतन्त्र के पक्ष में मतदान किया। अस्तु सितम्बर १९४६ में यूनान नरेश लन्दन से वापस लौट आये और सिंहासनासीन हो गये। यह नात्सी सेना से पराजित होकर लन्दन चले गये थे। १९४७ में उनकी मृत्यु हो गयी। १ अप्रैल १९४७ को वहाँ **पाल** को सिंहासनासीन किया गया। यूनान के समीपवर्ती देशों और रूस की साम्यवादी व्यवस्था का यूनान पर भी प्रभाव पड़ रहा है परन्तु संयुक्त राज्य तथा इंगलैण्ड इस प्रभाव की रोकथाम करते रहे हैं। आज भी यूनान राजतन्त्रात्मक पद्धति का लोकतन्त्रीय देश है और रूस के प्रत्यक्ष प्रभाव क्षेत्र के बाहर है।

ग्रेटब्रिटेन और उसका साम्राज्य—द्वितीय विश्वयुद्ध में इंगलैण्ड को भी जन, धन और सम्पत्ति की भारी क्षति उठानी पड़ी थी। उसका आन्तरिक तथा विदेशी ऋण भी बहुत बढ़ गया परन्तु १९४५ में प्रधान मन्त्री चर्चिल ने इंगलैण्ड की पुरानी धाक की दुहाई दी, 'समुद्रों पर ब्रिटेन का शासन है'। युद्धोपरांत के इंगलैण्ड और युद्ध पूर्व के इंगलैण्ड की शक्ति और सम्मान में पर्याप्त अन्तर हो गया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् शीघ्र ही जो निर्वाचन हुए उनके परिणामस्वरूप श्रमिकदल का मन्त्रिमण्डल बना जिसका नेता एँटली था। चर्चिल संसद सदस्य तो चुना गया किन्तु अनुदार दल के अल्पमत के कारण उसको मन्त्रित्व का त्याग करना पड़ा।

श्रमिक दल की विजय

श्रमिक दलीय शासन के सामने कई समस्यायें थीं : (१) आन्तरिक प्रगति को अग्रसरित करना, (२) साम्राज्य के राष्ट्रीयतावादी देशों की महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करना; (३) विश्व में अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को बनाये रखना; और (४) द्वितीय श्रेणी की शक्ति बनने से रोकने के लिये अपने को शक्तिशाली बनाये रखना। दूसरे शब्दों में इंगलैण्ड के सामने अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने की जटिल समस्या थी।

आन्तरिक प्रगति

श्रमिक सरकार ने अपनी आन्तरिक प्रगति को अग्रसरित करने के लिये अपनी अर्थ-व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया, औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये राष्ट्रीयकरण की नीति को अपनाया। फरवरी १९४६ में बैंक और बीमा का राष्ट्रीयकरण किया गया। इससे देश के आर्थिक जीवन पर शासन का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित हो गया। अगस्त १९४६ में वायुसेना का, और १९४७ में कोयलेखानों का, यातायात का और बिजली का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। मई १९४९ में गैस उद्योग और लोहा इस्पात उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो गया। इस प्रकार लगभग देश की २०% अर्थव्यवस्था पर शासन का नियन्त्रण स्थापित हो जाने से इंगलैण्ड ने इस काल में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक प्रगति की। जब १९५१ में अनुदार दलीय मन्त्रिमण्डल बना तो भी राष्ट्रीयकृत उद्योगों, सेवाओं आदि का अराष्ट्रीयकरण नहीं किया गया। इसके परवर्ती अनुदार दलीय मन्त्रिमण्डलों की भी यही नीति रही। १९६४ में पुनः श्रमिक दल का मन्त्रिमण्डल बना जिसका नेतृत्व प्रधान मन्त्री हैराल्ड विल्सन कर रहे हैं। जनवरी १९६२ से इंगलैण्ड अपनी आर्थिक कठिनाइयों में फँसा हुआ है।

ब्रिटेन ने कनाडा, संयुक्त राज्य आदि देशों से ऋण भी लिये हैं और कृषि के क्षेत्र में भी प्रगति की है। इस प्रगति का प्रमुख श्रेय इंगलैण्ड की जनता को है जिसने सब प्रकार की सुविधाओं का बलिदान करके और कठिन परिश्रम करके देश की आर्थिक दशा को ठीक करने के लिये शासन के साथ पूर्ण सहयोग किया है। फलतः आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी और आवास समस्याओं का सन्तोषजनक समाधान करके ब्रिटेन ने पर्याप्त प्रगति की है।

साम्राज्य की समस्यायें

आयरलैण्ड (अल्स्टर के अतिरिक्त) तो पहले ही स्वतन्त्र हो चुका था। १९३६ में आंग्ल मिस्री समझौते के अनुसार मिस्र को एक प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी थी और १९३७ में वह राष्ट्रसंघ का सदस्य भी बन गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध में मिस्र ने मित्रराष्ट्रों के साथ सहयोग किया और धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध किया परन्तु अँग्रेजों के व्यवहार को उचित न समझकर इस युद्ध की समाप्ति के पश्चात् उसने ब्रिटिश प्रभुत्व के सभी चिह्नों को मिटाने का संकल्प कर लिया। १९३६ की आंग्ल-मिस्री संधि को मिस्र की संसद ने १९४७ में समाप्त कर दिया और वहाँ के बादशाह फारूक ने अपने को **मिस्र तथा सूडान** का राजा घोषित कर दिया।

मिस्र की समस्या का समाधान

स्वेज नहर के प्रश्न पर भी इंगलैण्ड से मतभेद था। इंगलैण्ड की सरकार ने मिस्र की इन कार्यवाहियों को मान्यता तो नहीं दी किन्तु बातचीत करने पर सहमति प्रकट की। फलतः नहरी क्षेत्र में दोनों देशों में सशस्त्र मुठभेड़ हो गई। इसी के

पश्चात् आन्तरिक तथा अन्य कारणों से मिस्र में क्रान्ति हुयी और जनरल नगीव के नेतृत्व में वहाँ सैनिक शासन स्थापित हो गया। राजा इटली भाग गया और ब्रिटेन से एक सन्धि हो गयी जिसके अनुसार तीन वर्ष के पश्चात् सूडान स्वतन्त्र हो सकता था। मिस्र गणतन्त्र उद्‌घोषित कर दिया गया जिसका राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री जनरल नगीब था। १९५४ की सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सेना नहरी क्षेत्र से हटा ली गई परन्तु नगीब असन्तुष्ट थे। अतः कर्नल **नासिर** ने उसको पदच्युत करके सत्ता को अपने हाथ में ले लिया। तब से मिस्र देश ने (जो अब संयुक्त अरब गणतन्त्र का एक प्रमुख अंग है) अत्यधिक उन्नति की है और विश्व के तटस्थ राष्ट्रों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

१८५७ में भारत में सशस्त्र क्रांति की असफलता के पश्चात् अँग्रेजों ने अपनी स्थिति को वहाँ पर अत्यन्त सुदृढ़ कर लिया था किन्तु राष्ट्रीय भावना पूर्णतः दबाई नहीं जा सकती थी। १९वीं शती के अन्तिम चरण में देश को अधिकाधिक राजनीतिक अधिकार प्रदान करने के लिये पर्याप्त प्रयत्न हुए। बीसवीं शती के प्रथम चतुर्थांश में (१९०९ और १९१९) में भारतीयों को व्यवस्थापिका सम्बन्धी कुछ अधिकार प्रदान किये गये परन्तु भारतीय उनसे सन्तुष्ट नहीं हुए। १९२१ में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अखिल भारतीय कांग्रेस ने भारत की स्वतन्त्रता के लिये अथक प्रयत्न प्रारम्भ किये। १९२९ में कांग्रेस ने अपना उद्देश्य **भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता** उद्‌घोषित किया। स्वतन्त्रता के लिये अहिंसात्मक आंदोलन हुआ परन्तु अँग्रेजों ने १९३५ के अधिनियम के अनुसार प्रांतों को स्वाधीनता प्रदान की किन्तु भारतीय उससे संतुष्ट नहीं हुए।

इसके पश्चात् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर भारत में स्वतन्त्रता की भावना और अधिक बलवती हुयी। जनता ने अँग्रेजी शासन के साथ उसकी युद्ध सम्बन्धी नीति में पूर्ण सहयोग नहीं किया किन्तु महात्मा गाँधी विदेशी सहायता से भारत को मुक्त नहीं कराना चाहते थे। फलतः नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भारत छोड़कर चले गये और उन्होंने जापानी संरक्षण में **आजाद हिन्द सरकार** की स्थापना की। उधर महात्मा गाँधी ने १९४२ में **भारत छोड़ो** आन्दोलन प्रारम्भ किया। मुस्लिम लीग देश की **भारत स्वतन्त्र होता है** स्वतन्त्रता में बाधा उत्पन्न करती रही किन्तु १९४५ में युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इंगलैण्ड की श्रमिक सरकार ने भारत स्वतन्त्र करने का वास्तविक प्रयत्न किया। फलतः १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु उसका विभाजन हुआ और **पाकिस्तान** की स्थापना हुई। इससे मुस्लिम लीग भी सहमत था।

१५ अगस्त १९४७ को भारत ने औपनिवेशक स्वराज्य प्राप्त कर लिया किन्तु यह इससे सन्तुष्ट नहीं था। अस्तु भारत की संविधान सभा ने भारत के लिये गणतन्त्रात्मक संविधान बनाया जोकि २६ जनवरी १९५० को लागू हो गया। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद और प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू बने। नेहरू के नेतृत्व में भारत ने सर्वतोन्मुखी उन्नति की। उनकी तटस्थता की नीति के कारण भारत के सम्मान और प्रभाव में अत्यधिक अभिवृद्धि हुई। मई २७, १९६४ को उनका देहान्त हो गया। उनके पश्चात् कुछ समय तक गुलजारी लाल नन्दा

प्रधान मन्त्री रहे परन्तु आगे चलकर कांग्रेस दल ने लाल बहादुर शास्त्री को प्रधान मन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित किया और नंदा ने सहर्ष गृह मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया।

राष्ट्र मण्डल

१९४८ में ब्रह्मा भी स्वतन्त्र हो गया और वह भी गणतन्त्र बन गया। धीरे-धीरे अफ्रीका के कई देशों ने भी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। इनमें से कुछ देशों ने राष्ट्र मण्डल से सम्बन्ध तोड़ लिया है परन्तु १९४५ के पश्चात् सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि भारत और पाकिस्तान (१९४७) भी राष्ट्र मण्डल के सदस्य रहे अर्थात् ऐसे लोग जो ब्रिटिश अथवा यूरोपीय रक्त सम्बन्ध के नहीं थे वे भी उसमें सम्मिलित हो गये। धीरे-धीरे यूरोपीय, एशियायी, अफ्रीकी आदि कई जातियों और प्रजातियों के लोग इसके सदस्य बन गये हैं। यह बहुजातीय संस्था है।

१९६४ में राष्ट्र मण्डल के प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन ने राष्ट्र मण्डल के सचिवालय की स्थापना का निर्णय किया और तदनुसार अब वह स्थापित हो गया है। प्रधान मन्त्री सम्मेलन में २१ राष्ट्रों[1] ने भाग लिया था। इन सम्मेलनों में विचार विमर्श होता है किन्तु औपचारिक प्रस्ताव पारित नहीं किये जाते हैं। न कोई राष्ट्र मण्डलीय विदेशी नीति ही है क्योंकि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र पूर्ण स्वतन्त्र है। कई सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संस्थायें मण्डल के अन्तर्गत हैं। सितम्बर-अक्टूबर (१९६५) में लन्दन, कार्डिक, लिवरपूल और ग्लास्गो में **राष्ट्र मण्डलीय कला उत्सव (Arts Festival)** मनाया जावेगा।

राष्ट्र मण्डल के सभी सदस्य देश इंगलैण्ड के **ताज** को अपने अपने राज्य का प्रतीकात्मक अध्यक्ष मानते है, चाहे वे डुमीनियन हों, चाहे गणतन्त्र हों। अप्रैल १९४९ में **ईरी** राष्ट्र मण्डल से पृथक् हो गया और अब वह **आयरलैण्ड का गणतन्त्र** कहलाता है। इसी प्रकार अपनी रंग भेद की नीति की आलोचना के कारण मई १९६१ में गणतन्त्र की स्थापना होने पर **दक्षिणी अफ्रीका** ने राष्ट्र मण्डल को त्याग दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के ७५०० लाख निवासियों में से अब केवल १२० लाख ही ४० **अधीन देशों** (dependencies) में निवास करते हैं। १९४५ से १९६५ तक निम्नलिखित देशों ने स्वतन्त्रता प्राप्त की और अपनी इच्छा से राष्ट्र मण्डल के सदस्य बने :—

भारत और पाकिस्तान १९४७ में, लंका १९४८ में, घाना और मलाया संघ (जो १९६१ में **मलेशिया** बन गया) १९५७ में, नाइजीरिया १९६० में, साइप्रस तथा सिरालयोने १९६१ में; टंगनीका १९६१ में, जमेका, ट्रिनीडाड और टोबैगो,

---

1. भाग लेने वाले राष्ट्र ये थे : (१) कीनिया, (२) माल्टा, (३) जैमेका, (४) साइप्रस, (५) मलेशिया, (६) यूगांडा, (७) पाकिस्तान, (८) नाइजीरिया, (९) मालावी, (१०) गैम्बिया, (११) ट्रिनीडाडज्येबैगो, (१२) भारत, (१३) इंगलैण्ड, (१४) आस्ट्रेलिया, (१५) न्यूजीलैण्ड, (१६) घाना, (१७) जैम्बिया, (१८) टजानिया, (१९) सैरालोने, (२०) कनाडा, और (२१) लंका।

यूगाण्डा १९६२ में, जंजीबार (टंगानीका से अब संयुक्त है) और कीनिया १९६३ में, मारावी (भूतपूर्व न्यासालैन्ड) तथा माल्टा, जैम्बिया (भूतपूर्व उत्तरी रोडेशिया); और गैम्बिया १९६५ ; दक्षिणी रोडेशिया स्वशासित प्रदेश है परन्तु अभी तक वह राष्ट्र मण्डल का सदस्य नहीं है।

ग्रेट ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य के जिन देशों को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी है उनके साथ उसने समानता, सहृदयता और उदारता का व्यवहार करके उन्हीं राष्ट्रों के हृदयों में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं किया है अपितु विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्रों में अपने भूतपूर्व सम्मान को पुनः प्राप्त करने का अनुकरणीय प्रयत्न किया है। साथ ही इंगलैण्ड ने अपनी सैनिक शक्ति की ओर भी अपने अवधान को केन्द्रित किया है। यद्यपि उसने अन्तरिक्ष यात्रा की प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया है तथापि आणविक अनुसन्धान में उसने संयुक्त राज्य और रूस के पश्चात् अपना तृतीय स्थान बना लिया है। उसने अणु शक्ति को शांति पूर्ण उद्देश्यों के लिये प्रयुक्त किया है किन्तु वह उसकी सैनिक और संहारक तकनीक से भी पूर्णतः परिचित है तथापि विश्व का नेतृत्त्व संयुक्त राज्य और रूस के हाथ में चला गया है और ब्रिटेन अपनी पूर्व प्रतिष्ठा, सम्मान और शक्ति को अभी तक पूर्णतया उपलब्ध नहीं कर सका है।

सैनिक शक्ति

फ्रांस और उसका साम्राज्य—विगत युद्ध में अपनी जनसंख्या और भौम क्षेत्र के अनुपात में संभवतः फ्रांस की सर्वाधिक क्षति हुई थी। ५ लाख घर नष्ट हो गये, ७½ लाख परिवार गृह विहीन हो गये, ५०,००० कारखाने धराशायी हो गये और १½ लाख कारखाने भग्न हो गये। १½ लाख सैनिक और २ लाख असैनिक मारे गये तथा लगभग २६० खरब डालर की आर्थिक हानि हुई। ६० लाख एकड़ भूमि कृषि के अयोग्य हो गयी। अस्तु द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने पर फ्रांस के सामने अपने पुनर्निर्माण की समस्या थी। दूसरी ओर फ्रांस के हिन्द-चीनी साम्राज्य का प्रश्न था। जापानियों ने १९४१ में इस साम्राज्य पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया था और वहाँ के फ्रांसीसी अधिकारी उसी के आदेश से कार्य करते थे। परन्तु वहाँ की जनता अब फ्रांस के नियन्त्रण में रहने के लिये तैयार नहीं थी। अस्तु दूसरी समस्या थी कि इस विशाल भू-भाग को किस प्रकार यथापूर्व अपने अधिकार में रखा जावे ?

फ्रांस की समस्यायें

दुर्भाग्य से युद्ध काल में तथा अव्यवहित परवर्ती काल में फ्रांस में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था जिसके नेतृत्व में वह अपनी समस्याओं को सफलतापूर्वक हल कर सकता। डीगाल ने युद्धकाल में स्वतंत्र फ्रांसीसी शासन का लंदन से संचालन किया था और फ्रांस के मुक्ति काल में वह वहाँ की सरकार का अध्यक्ष बनाया गया था परन्तु युद्धोपरांत जब चतुर्थ गणतंत्र की स्थापना हुई तब समाजवादी दल का नेता फैलिक्सग्वान वहाँ का प्रधान मन्त्री बना। डीगाल का शासन से कोई भी संबंध नहीं रहा और वह जनता को जागरित करने तथा सभी दलों को एक दल में संगठित करने के प्रयत्नों में संलग्न हो गया।

चतुर्थ गणतन्त्र

नवीन शासन ने आर्थिक क्षेत्र में कुछ प्रगति की। १६४ सदस्यों की एक

आर्थिक परिषद बनाई गई। प्रशासन में भी सुधार हुआ। शासन का विकेन्द्रीकरण किया गया और मॉने योजना के अन्तर्गत उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। थोड़ी सी आर्थिक प्रगति हुई परन्तु जनता में असंतोष फैलता चला गया। साम्यवादी दल का प्रभाव बढ़ता चला जा रहा था और यदि संयुक्त राज्य ने आर्थिक सहायता न दी होती तो संभवतः फ्रांस में साम्यवाद स्थापित हो जाता। फ्रांस के वैधानिक, आर्थिक, प्रशासनिक, औद्योगिक एवं सामाजिक असंतोष के कारण देश में रक्तहीन क्रांति हुई और ८ जनवरी १९५९ को जनरल डीगाल वहाँ का राष्ट्रपति बन गया। सांविधानिक परिवर्तन हुये तथा राष्ट्रपति की शक्तियाँ विस्तृत और प्रभावपूर्ण हो गयीं। अगस्त १९६५ में डीगाल ही फ्रांस के कर्णधार हैं। १९५९ से पाँचवाँ गणतंत्र स्थापित है।

आर्थिक प्रगति

राष्ट्रपति डीगाल

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय होची मिन्ह साम्यवादी दल का संगठन करता रहा। उसके दो उद्देश्य थे : (१) फ्रांसीसी जापानी नियन्त्रण से हिन्द चीन को मुक्त करना, और (२) स्वतन्त्र गणतन्त्र की स्थापना करना। जापान की पराजय के पश्चात् वहाँ पर वियतनाम का गणतन्त्र स्थापित हो गया। पहले तो फ्रांस ने इस गणतन्त्र की मान्यता नहीं प्रदान की किन्तु १९४६ में उसने होची मिन्ह से समझौता कर लिया और वियतनाम के स्वतन्त्र राज्य को मान्यता प्रदान कर दी। वह हिन्द-चीन संघ का सदस्य होगा और फ्रांसीसी संघ बना रहेगा। शीघ्र ही फ्रांसीसी सरकार ने अपने साम्राज्य को संघ में परिवर्तित कर दिया। सभी उपनिवेश और अधीन राज्य समान स्तर पर इस संघ के सदस्य रहेंगे। परन्तु हिन्द-चीन जनता को इस नवीन संविधान पर संदेह था। अस्तु वियतनाम तथा फ्रांस में युद्ध छिड़ गया। भूतपूर्व जापानी कठपुतली सम्राट बाओ डाई को वहाँ का शासक बनाया गया और फ्रांस, इंगलैण्ड और संयुक्त राज्य ने इस शासन को मान्यता प्रदान कर दी। उधर साम्यवादी चीन-तथा रूस ने होची मिन्ह के वियतनाम को मान्यता प्रदान कर दी। वियतनाम की समस्या का सूत्रपात हो गया। होची मिन्ह के नेतृत्व में छापा मार लड़ाई प्रारंभ हो गई। १९५४ में होची मिन्ह को प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई। उसी समय जिनेवा सम्मेलन ने वियतनाम की समस्या पर विचार किया और वियतनाम को दो भागों (उत्तरी वियतनाम और दक्षिणी वियतनाम) में विभाजित कर दिया। उत्तर में होची मिन्ह का साम्यवादी शासन बना तथा दक्षिणी वियतनाम में असाम्यवादी शासन स्थापित हुआ जोकि १९५६ ने निर्वाचनों द्वारा निर्णीत हुआ। फ्रांस को उत्तरी वियतनाम की पुनः प्राप्ति की कोई भी आशा नहीं रही। आज १९५६ में भी इन दोनों वियतनामों के संघर्ष के कारण अन्तर्राष्ट्रीय शांति को संकट उत्पन्न हो रहा है। कम्बोडिया और लाओस भी स्वतंत्र हो गये थे और वे तटस्थ राष्ट्र माने जाने लगे।

साम्राज्य का विघटन

उत्तरी अफ्रीका में फ्रांस के उपनिवेशों की कहानी भी ऐसी है। उन्होंने भी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है। अल्जीरिया में जून १९६५ में सैनिक क्रांति हुई और वहाँ के राष्ट्रपति बैन बेला को अपदस्थ करके बन्दी बना लिया गया।

डीगाल ने स्वतन्त्र नीति को अपनाया है। उन्होंने फ्रांस को संयुक्त राज्य

की कठपुतली न बनने देने का निश्चय किया। आणविक अनुसंधान को चालू करने और साम्यवादी रूप से सम्बन्ध सुधारने का प्रयत्न किया।

डीगाल की नीति

अणुबम का विस्फोट करके फ्रांस विश्व की चतुर्थ सैनिक शक्ति बन गया है। डीगाल के नेतृत्व में फ्रांस की आन्तरिक प्रगति हो रही है, सांविधानिक स्थिरता स्थापित हो गई और विश्व के राष्ट्रों में डीगाल के व्यक्तित्व की चर्चा होने लगी है। **आंशिक आणविक नियन्त्रण सन्धि** पर हस्ताक्षर न करके एक ओर तो उन्होंने शांति प्रिय देशों की मनोभावनाओं को ठेस पहुँचाई है, दूसरी ओर अपने स्वतंन्त्र व्यक्तित्व का भी परिचय दिया है। किन्तु अन्तोगत्वा क्या स्थिति होगी? इसका निर्णय भविष्य ही करेगा। फ्रांस ने २७ जनवरी १९६४ को चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता प्रदान कर दी।

जर्मनी—युद्ध के पश्चात् जर्मनी को चार भागों में विभक्त करके एक-एक भाग का नियन्त्रण रूस, इंगलैण्ड, संयुक्त राज्य तथा फ्रांस ने अपने हाथ में ले लिया। बर्लिन में चारों शक्तियों ने संयुक्त प्रशासन स्थापित किया, परन्तु ये चारों राष्ट्र सहयोग पूर्वक प्रशासन नहीं कर सके। इसका कारण यह था कि पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों और साम्यवादी रूस के दृष्टिकोण में आकाश-पाताल का अन्तर था। अस्तु इनमें प्रारम्भ से ही संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

नात्सी प्रभाव की समाप्ति

मित्र राष्ट्र चाहते थे कि जर्मनी नात्सी प्रभाव से मुक्त हो जावें, उसकी सैनिक मनोवृत्ति में परिवर्तन आ जावे और जो जर्मन अन्य देशों में प्रयास कर रहे हैं वे स्वदेश लौट आवें। नात्सी प्रभाव को कम करने के लिये इन्होंने रिबैनट्राय, गोयरिंग आदि प्रमुख नात्सी अपराधियों को मृत्युदण्ड तथा बहुतसों को दीर्घकालिक कारावास का दण्ड दिया। २० नवम्बर १९४५ को युद्ध अपराधियों के विरुद्ध नूरेम्बर्ग में सुनवाई प्रारम्भ हुई थी।

आर्थिक विकास

जर्मनी से युद्ध की क्षति पूर्ति कराना असंभव प्रतीत होने लगा क्योंकि उसकी अर्थ-व्यवस्था को सुधारना बड़ा कठिन कार्य था और जब तक उसकी आर्थिक दशा में सुधार न हो जाता, तब तक वह क्षतिपूर्ति कहाँ से करता। जर्मनी की आर्थिक दशा को सुधारने में रूस तथा पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों के मतभेद भी बाधक थे। पूर्व और पश्चिम का प्रभाव क्रमशः जर्मनी के पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में बढ़ता जा रहा था। अस्तु जनवरी १९४५ में इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य ने जो संयुक्त प्रशासन स्थापित किया था उसने पश्चिमी भाग के उत्थान के लिये कार्यक्रम बनाया क्योंकि अब उनको यह निश्चय हो गया था कि किसी न किसी दिन पूर्व और पश्चिम का युद्ध अवश्य होगा। उसमें पश्चिमी जर्मनी को अपने पक्ष में रखना चाहिए। इन दोनों देशों ने जर्मनी की औद्योगिक प्रगति के लिये उसको आवश्यक ऋण दिये। फलतः १९५१ तक जर्मनी का उत्पादन तथा निर्यात युद्ध के पूर्व के स्तर पर आ गया। दूसरी ओर रूस ने जर्मनी के पूर्वी भाग में आर्थिक प्रगति के लिये अथक प्रयत्न किया। उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया और पूर्वी जर्मनी ने शीघ्र ही पर्याप्त

औद्योगिक प्रगति की। हाँ, उसकी राजनीतिक प्रगति अपेक्षाकृत उतनी नहीं हुई जितनी कि पश्चिमी जर्मनी की हुई।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि पश्चिमी देशों ने जर्मनी के प्रति अपने रवैये को बदलना प्रारम्भ कर दिया था और उसकी आर्थिक तथा राजनीतिक प्रगति को वे अवांछनीय समझते थे। अतः १९४८ में पश्चिमी जर्मनी को संविधान बनाने की आज्ञा प्रदान की गई। आन्तरिक मामले जर्मनों को सुपुर्द कर दिये गये परन्तु विदेशी मामले, विदेशी व्यापार आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर उसको नियन्त्रण रखने का अधिकार नहीं दिया गया। १९४९ के निर्वाचनों में ८०% मतदाताओं ने भाग लिया और उसमें **ईसाई लोकताँत्रिकों** अर्थात् दक्षिण पंथियों की विजय हुई। **लोकतांत्रिक** समाजवादियों को भी पर्याप्त मत मिले। उनकी सदस्य संख्या १३१ थी। यह संख्या **ईसाई लोकताँत्रिकों** से केवल ४ कम थी तथापि उनके नेता एडैनौर (Adenaur) ने स्वतन्त्र दल की सहायता से सितम्बर १९४९ में निर्वाचित शासन की स्थापना की। यह शासन १९३३ के पश्चात् प्रथम निर्वाचित शासन था। इसकी राजधानी बान में है। पूर्वी भाग में भी लोकतांत्रिक के सिद्धान्तों के आधार पर संविधान बनाया गया और वहाँ पर जर्मन जनतन्त्रीय गणतन्त्र की स्थापना हो गई (अक्टूबर १९४९)। इसकी राजधानी वर्लिन में है। परन्तु ये दोनों राज्य संप्रभु राज्य नही हैं। इनके सैनिक तथा वैदेशिक मामलों पर क्रमशः पाश्चात्य लोकतांत्रिक देशों और रूस का नियन्त्रण है।

पश्चिमी जर्मनी की राजनीतिक प्रगति

वर्लिन पूर्वी जर्मनी की राजधानी अवश्य है परन्तु उसकी स्थिति पूर्णतया विलक्षण है। पॉट्स्डम सम्मेलन की घोषणा के अनुसार वर्लिन के कुछ भाग पश्चिमी देशों इंगलैण्ड, संयुक्तराज्य और फ्रांस को दे दिये गये थे परन्तु पश्चिमी जमनी से वर्लिन लगभग एक सौ मील की दूरी पर स्थित है। जब जर्मनी में रूस तथा पश्चिमी देशों में मतभेद हुए और शीतयुद्ध (Cold war) प्रारम्भ हुआ तब १९४८ में रूस ने वर्लिन की नाकेबन्दी करदी। पश्चिमी देशों ने वर्लिन के अपने अधिकृत भाग में लाखों टन सामग्री वायुयानों के द्वारा पहुँचाई परन्तु १० मास पश्चात् अप्रैल १९४९ में यह नाकेबन्दी समाप्त कर दी गई। रूस और अमरीका के सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ परन्तु वर्लिन की समस्या आज अगस्त १९६५ तक भी नहीं सुलझ सकी है।

वर्लिन की समस्या

इटली—ऐसा प्रतीत होता था कि इटली में एक नया युद्ध छिड़ जावेगा। अतः इटली के प्रशासन को चलाने के लिए वहाँ पर युद्ध के पश्चात् **मित्र राष्ट्रों की संयुक्त युद्ध परिषद** बनाई गई। इसमें सर्वाधिक प्रभाव इंगलैण्ड का था। फासिस्टवाद को समाप्त करके जनतन्त्र की स्थापना के पश्चात् मित्रराष्ट्र अपनी सेनाओं को वहाँ से हटाने के लिये तैयार थे क्योंकि यदि इटली में पूँजीवादी जनतन्त्र स्थापित हो जाता तो इंगलैण्ड का प्रभाव भूमध्यसागर में अक्षुण्ण बना रहता।

युद्ध के समाप्त होने पर १९४६ की ग्रीष्म ऋतु में वहाँ पर नये निर्वाचन हुए। इटली को गणतन्त्र घोषित कर दिया। पैरिस की सन्धि के अनुसार इटली के उपनिवेशों को संयुक्त राष्ट्र संघ के सुपुर्द कर दिया गया था। अल्वानिया तथा डोडैकानीज द्वीप समूह भी उसके अधिकार में नहीं रहे और उसकी जल-स्थल-नभ

सेनाओं को सीमित कर दिया गया था (फरवरी १९४७)। परन्तु उसकी आन्तरिक समस्यायें अत्यन्त जटिल थीं। उनका समाधान नहीं हो सका। उसकी सैनिक शक्ति ही नहीं नष्ट हुई थी वरन् उसकी अर्थ-व्यवस्था और कृषि भी अस्तव्यस्त हो गई थी। साम्यवादी महत्त्वपूर्ण भौम सुधारों और उत्तम अर्थ व्यवस्था की प्रतिज्ञायें कर रहे थे। वे भूमि के पुनर्वितरण, सम्पत्ति के समान वितरण, उद्योगों, बैंकों आदि के राष्ट्रीय-करण इत्यादि के सब्जबाग जनता को दिखा रहे थे। संक्षेप में इटली में साम्यवाद स्थापित हो जाता परन्तु संयुक्त राज्य ने मार्शल योजना के अन्तर्गत इटली को आर्थिक सहायता प्रदान की और उसको रूस के प्रभाव क्षेत्र में जाने से रोक लिया।

स्पेन—स्पेन के गृहयुद्ध में जर्मनी और इटली ने फ्रैंकों की सहायता की थी परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध में स्पेन ने प्रवेश नहीं किया। १९४२ तक उसने धुरी राष्ट्रों की अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की। उसके पश्चात् वह तटस्थ रहा और जब मित्रराष्ट्रों की विजय निश्चित दीखने लगी तब उसकी सहानुभूति उनके साथ हो गयी। स्पेन के तटस्थ रहने तथा सहानुभूतिपूण रुख अपनाने के कारण मित्रराष्ट्रों को यूरोप पर आक्रमण करने तथा उत्तरी अफ्रीका में और भूमध्य सागर में सफलतायें प्राप्त करने में सुविधा रही।

युद्ध के समाप्त होने पर स्पेन की आर्थिक एवं प्रशासनिक समस्यायें विचारणीय थीं। देश की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। जीवन स्तर गिर गया था और पुलिस प्रशासन से जनता संतुष्ट नहीं थी। परन्तु जनरल फ्रैंको ने न तो अपने प्रशासन को लोकतान्त्रिक बनाया और न उसके सैनिक स्वरूप को ही परिवर्तित किया। राजनीतिक सत्ता कतिपय भूस्वामियों और पूंजीपतियों के हाथ में है। अस्तु स्पेन में राजनीतिक सुधारों और आर्थिक सुधारों की सम्भावना नहीं है।

स्पेन को अधिनायकवाद धुरी राष्ट्रों की सदस्यता से स्थापित हुआ था। इसलिये मित्रराष्ट्र उसके प्रति अच्छा विचार नहीं रखते थे परन्तु जब संयुक्त राज्य और रूस में शीतयुद्ध प्रारम्भ हुआ तब स्पेन के प्रति मित्र राष्ट्रों के रुख मे कुछ नर्मी आयी। रूस ने स्पेन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बनने दिया किन्तु १९४९ में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने सदस्य राष्ट्रों को स्पेन के साथ समझौता करने की आज्ञा दे दी। इतना होने पर भी स्पेन को मार्शल योजना के अन्तर्गत कोई सहायता नहीं दी गयी। आज १९६५ में भी स्पेन में सैनिक अधिनायकवाद का अस्तित्व है।

पुर्तगाल—द्वितीय विश्वयुद्ध में पुर्तगाल तटस्थ रहा और उसने दोनों पक्षों के साथ व्यापार से लाभ उठाया। यहाँ पर अधिनायक सालाजार का शासन स्थापित हो चुका था और युद्ध के उपरान्त भी नहीं का वहाँ पर बोलबाला रहा है। पुर्तगाल की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। कृषि तथा उद्योग दोनों क्षेत्रों में वह पिछड़ा हुआ है तथापि वह साम्यवाद की कट्टर शत्रु रहा है। यही कारण है कि पश्चिमी राष्ट्रों का रुख उसकी ओर सहानुभूतिपूर्ण रहा है। इंगलैंड और पुर्तगाल के सम्बन्ध १४७३ से मैत्रीपूर्ण रहे हैं। संयुक्त राज्य भी उसके प्रति सहानुभूति रखता रहा है परन्तु रूस का रवैया उसके प्रति कठोर बनता चला गया है। उत्तरी अटलाँटिक संधि संगठन में भी पुर्तगाल को सदस्यता प्राप्त है और उसकी सैनिक शक्ति बढ़ रही है।

सैनिकवादी अधिनायक सालाजार साम्राज्यवादी भी है। पुर्तगाल के भी कुछ

पुर्तगाल के उपनिवेश

उपनिवेश हैं किन्तु सालाजार उनको पुर्तगाल का अभिन्न अंग कहता है। इसलिये इंगलैण्ड, फ्राँस और हालैण्ड की भाँति वह उनको मुक्त करने के लिये तैयार नहीं है। पश्चिमी राष्ट्रों की सहानुभूति और प्रोत्साहन के कारण वह इन उपनिवेशों को स्वतन्त्र नहीं कर रहा है। इन उपनिवेशों में आन्दोलन प्रारम्भ हुए हैं। सालाजार ने उनको कुचला है। परन्तु भारत के पुर्तगाली उपनिवेश गोआ, डामन, डयू स्वतन्त्र हो गये (१९६०-६१) और वे भारतीय संघ के अभिन्न अंग बन गये। दादरा तथा नगर हवेली तो पहले ही मुक्त हो गये थे।

हालैण्ड—मई १९४० में हालैण्ड की रानी विल्हेल्मना इंगलैण्ड भाग गयी और सम्पूर्ण देश नात्सियों का अधिकार हो गया। युद्ध के पश्चात् हालैण्ड नात्सी प्रभाव से मुक्त हो गया और वहाँ पर भूतपूर्व राजतन्त्र स्थापित हो गया। हालैण्ड की आन्तरिक समस्याओं का समाधान उतना कठिन सिद्ध नहीं हुआ जितना कि उसके साम्राज्य की समस्या को सुलझाना कठिन रहा। हालैण्ड के प्रशान्त महासागर में स्थित जावा, सुमात्रा, वालि आदि उपनिवेशों को युद्धकाल में जापान ने हस्तगत कर लिया था (१९४१) और वहाँ पर उन्होंने डा० सुकर्ण की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शासन स्थापित कर दिया था। ये हिन्देशियायी द्वीप जापानियों से भी संतुष्ट नहीं रहे और युद्ध की समाप्ति पर हालैण्ड की ओर से ब्रिटेन ने वहाँ पर जापानियों से सत्ता प्राप्त की तो उन्होंने यहाँ पर डचों के विरुद्ध भावना को अत्यन्त तीव्र पाया। जब डचों ने यहाँ की राष्ट्रीय तत्वों को आगे चलकर कुचला तब अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया हुयी। फलत: १९४९ में हिन्देशिया का गणतन्त्र स्थापित हो गया किन्तु वह समान स्तर पर हालैण्ड के साथ संघटित बना रहा। हिन्देशियावासियों और हालैण्ड के सम्बन्ध कटुतर बनते चले गये और १९५६ में न्यूगिनी (ईरियन) के प्रश्न पर दोनों देशों में तीव्र मतभेद हुआ। हिन्देशिया ने १९४९ की संधि को समाप्त करके हालैण्ड के साथ अपना सम्बन्ध पूर्णरूप से विच्छिन्न कर दिया। यहाँ पर डा० सुकर्ण के राष्ट्रपतित्व में पर्याप्त प्रगति हुयी है। १९६४ में मलेशिया के प्रश्न पर डा० सुकर्ण ने हिन्देशिया को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता से पृथक कर लिया है। जुलाई १९६५ में उन्होंने भी अणुबम बनाने की उदघोषणा की है।

यूरोप के पुनर्निर्माण के प्रयत्न—द्वितीय विश्वयुद्ध में यूरोपीय देशों के जन-धन की ही बड़ी भारी क्षति नहीं हुयी प्रत्युत उनका मानसिक अध:पतन भी हुआ। यूरोप निवासियों में आत्म-विश्वास की न्यूनता आ गयी और वे यह समझने लगे बिना विदेशी सहायता के उनकी पुन: उन्नति नहीं हो सकती है। यह सहायता केवल दो स्रोतों से ही प्राप्त हो सकती थी : (१) संयुक्त राष्ट्रसंघ, और (२) संयुक्त राज्य।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयत्न

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने १९४३ में **संयुक्त राष्ट्र पुनर्प्राप्ति तथा पुनर्वासन प्रशासन** की स्थापना की। इस संस्था ने युद्ध के अन्तिम मासों और उसके परवर्ती मासों में जैकोस्लावाकिया तथा यूगोस्लाविया में सहस्रों व्यक्तियों को भुखमरी से बचाया। **अन्तर्राष्ट्रीय विस्थापित संगठन** ने विस्थापितों (Refugees) की भी बड़ी भारी सहायता की। १९४४ में **अन्तर्राष्ट्रीय बैंक** तथा **अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-निधि** की स्थापना हुई जिसने नष्ट-भ्रष्ट देशों की आर्थिक पुनर्व्यवस्था तथा आर्थिक सहायता

के कार्यक्रम को अग्रसरित किया। **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संगठन** ने भी इन देशों को सहायता प्रदान की।

रूस ने दक्षिण पूर्वी तथा उत्तर पश्चिमी देशों (रूमानिया, बलगेरिया, पौलैण्ड इत्यादि) में ही साम्यवाद स्थापित नहीं कर दिया अपितु फ्रांस और इटली भी रूस के प्रभाव में आने लगे थे। इस रूसी प्रभाव को अवरुद्ध करने, पश्चिमी यूरोप के देशों को साम्यवाद से बचाने के लिये और अपने विश्व नेतृत्व को स्थापित करने के लिये संयुक्त राज्य अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने मार्च १९४७ में प्रसिद्ध **ट्रूमैन सिद्धान्त** की उद्घोषणा की जिसका आशय यह था कि संयुक्त राज्य अमरीका को उन देशों की सहायता करनी चाहिये जिनमें बाह्य सहायता प्राप्त सशस्त्र अल्पसंख्यक अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं और वहाँ की बहुसंख्यक जनता इस आधिपत्य को रोकने का प्रयत्न कर रही है। स्पष्टतः यह सहायता साम्यवादी शक्तियों के विरुद्ध केवल लोकतांत्रिक देशों को ही नहीं वरन् अधिनायकवादी देशों को भी उपलब्ध हो सकती थी। इसी उद्घोषणा के अनुसार ग्रीस और तुर्की को अमरीकी सहायता देकर साम्यवादी प्रभाव से मुक्त कराने का सफल प्रयत्न किया गया था क्योंकि ग्रेट ब्रिटेन अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण यहाँ पर अपनी सेनायें अधिक काल तक नहीं रख सकता था।

संयुक्त राज्य अमरीका के प्रयत्न

मार्शल योजना—राष्ट्रपति ट्रूमैन की नीति को अमरीकी परराष्ट्र सचिव (Secretary of State) ने साकार रूप प्रदान करने के लिये जो योजना बनायी उसको **मार्शल योजना** कहते हैं। जून १९४७ में एतदर्थ पैरिस में रूस, फ्रांस और ब्रिटेन के विदेश मन्त्री इस योजना पर विचार करने के लिये एकत्रित हुए। रूसी विदेश मन्त्री मोलोटोव तथा पश्चिमी देशों के दृष्टिकोण में बहुत अन्तर था। अस्तु रूस और उसके प्रभाव के देशों ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया क्योंकि इसमें उनको साम्राज्यवाद की गन्ध आती थी। पश्चिमी देशों ने इसको स्वीकार कर लिया।

१९४७ की कांफ्रेन्स में बनायी गयी समितियों ने अपनी रिपोर्ट संयुक्त राज्य को भेजी जिनके आधार पर १९४८ से यूरोप के पुनर्निर्माण के लिये सहायता का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। १९४८ में संयुक्त राज्य की कांग्रेस ने यूरोप की पुनः प्राप्ति के कार्यक्रम का अधिनियम पारित किया। इस योजना के अन्तर्गत अरबों डालर की सहायता यूरोप के पश्चिमी देशों को प्रदान की गई। प्रोफेसर अर्ल के शब्दों में मार्शल योजना की सफलता का वर्णन अप्रासांगिक न होगा, "यह (योजना) आंग्ल-अमरीकी राजनीति के सिद्धान्त का—प्रबुद्ध स्वार्थपरता का—विचित्र उदाहरण है।" किन्तु मानव के स्वार्थपरता पूर्ण प्रयत्नों से ही दूसरों का भी कल्याण होता है। इस योजना ने भी पश्चिमी यूरोप के देश का पर्याप्त कल्याण किया है और कर रही है। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये यूरोप के आर्थिक सहयोग के लिये संगठन की स्थापना की गयी और इस योजना के अन्तर्गत प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५२ में कार्यान्वित हुई।

ई० आर० पी० (E. R. P.)

ओ० ई० ई० सी० (O. E. E. C.)

उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन—संयुक्त राज्य ने साम्यवाद के बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने के लिये केवल पश्चिमी यूरोप के देशों को आर्थिक सहायता ही नहीं दी अपितु सैनिक संगठन की आवश्यकता पर भी बल दिया। फलस्वरूप उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन की स्थापना (४ अप्रैल १९४९) हुई। इस संगठन में धीरे-धीरे दस यूरोपीय देश सम्मिलित हो गए और संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा भी सम्मिलित हो गये। यूरोपीय देशों के नाम ये हैं—बेलजियम, हालैण्ड, लक्षेम्बर्ग, इंगलैण्ड, फ्रांस, नार्वे, डैनमार्क, आइसलैण्ड, इटली और पुर्तगाल। इस संधि में इस बात पर बल दिया गया है कि यह प्रतिरक्षात्मक है अर्थात् ये देश और संयुक्त राज्य उसी दशा में एक दूसरे की सहायता करेंगे जबकि उन पर कोई अन्य देश—विशेषतः रूस आक्रमण करे।

यूरोपीय परिषद—पश्चिमी देशों ने एकता की भावना को साकार रूप देने के लिये मई १९४९ में द्विसनात्मक यूरोपीय परिषद् की स्थापना की। कार्यपालिका के रूप में मन्त्री समिति तथा परामर्शदात्री संस्था के रूप में सभा का निर्माण किया गया। अगस्त-सितम्बर १९४९ में स्ट्रासबर्ग में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ और पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने को सुदृढ़ रूप से ऐक्य सूत्र में बाँधने के लिये राजनीतिक परिवर्तनों पर भी बल दिया। परन्तु यह संस्था वास्तव में कितनी सफल होगी यह तो भविष्य ही बता सकेगा।

यूरोपीय साझा मण्डी—फ्रांस, इटली, बेलजियम, लक्षेम्बर्ग, नीदरलैण्ड और पश्चिमी जर्मनी ने अपनी व्यापारिक तथा आर्थिक उन्नति के लिये जनवरी १९५९ में साझा-बाजार की स्थापना की। ब्रिटेन भी इसका सदस्य बनना चाहता था परन्तु वह राष्ट्र मण्डीय देशों के विरोध के कारण इस संस्था का सदस्य नहीं बन सका है। यह संस्था अच्छा कार्य कर रही है परन्तु कभी-कभी इसकी सफलता में सदस्य राष्ट्रों को सन्देह होने लगता है।

कामिन्फार्म—जिस प्रकार पश्चिमी यूरोपीय देश और संयुक्त राज्य विविध संधियों और संगठनों द्वारा अपनी शक्ति को प्रतिरक्षा के नाम पर संगठित करते रहे हैं उसी प्रकार रूस और यूरोप के अन्य पूर्वी देशों ने भी अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने तथा साम्यवाद का प्रचार और प्रसार करने के लिये २५ अक्टूबर सन् १९४७ को **कामिन्फार्म** की स्थापना की। इस संस्था में रूस, पोलैण्ड, रूमानिया बलगारिया, हंगरी, यूगोस्लाविया आदि देशों के साम्यवादी दल सम्मिलित हैं। आगे चलकर फ्रांस, इटली तथा एशिया के देशों के साम्यवादी दल भी इसके सदस्य बन गये। इस संस्था ने रूस को पूर्वी यूरोप के देशों पर अपना प्रभुत्व जमाने एवं उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान किया।

वारसा समझौता—उत्तरी अटलांटिक संधि के परिणामस्वरूप पूर्वी यूरोप के देशों ने भी एक सैनिक संधि मई १९५५ में की। इसको **पूर्वी यूरोपीय सुरक्षा समझौता** अथवा **वारसा समझौता** कहते हैं। इसमें रूस, बलगेरिया, अलबानिया, जैकोस्लावाकिया, पोलैण्ड, रूमानिया और हंगरी सम्मिलित हुये परन्तु आगे चलकर पूर्वी जर्मनी भी इस सैनिक संगठन में सम्मिलित हो गया। चीन ने भी इन देशों को आश्वासन दिया है कि यदि इनमें से कोई भी देश किसी अन्य शक्ति के साथ युद्ध करता है तो वह उसकी सहायता करेगा। इसका मुख्य कार्यालय मास्को में है।

शीत युद्ध—इस प्रकार पूर्वी यूरोप तथा पश्चिमी देशों के मध्य शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया है। इसकी क्या परिणति होगी ? इसका उत्तर भविष्य के गर्भ में सन्निहित है किन्तु कभी-कभी दोनों गुट राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हैं और समस्याओं को बुद्धिमानी के साथ हल कर लेते हैं। आकस्मिक युद्ध को रोकने के लिये मास्को और वाशिंगटन के मध्य टेलीफोन का सम्वन्ध भी स्थापित हो गया है। इसको 'गर्मरेखा' कहते हैं। इसकी स्थापना ३१ अगस्त १९६३ को हुई थी। इसके पूर्व ५ अगस्त १९६३ को पूर्व-पश्चिम के मध्य मास्को में आंशिक अणु परीक्षण संधि पर इंगलैण्ड, रूस और संयुक्त राज्य के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये थे। इन कार्यवाहियों के कारण पूर्व-पश्चिम के सम्वन्धों में जो सुधार हुआ वह अंशतः अद्यावधि बना हुआ है। रूस में ख्रुश्चेव के पतन से वैदेशिक नीति पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु वियतनाम की समस्या ने आज १९६५ में भीषण रूप धारण कर लिया है। संभव है भगवान भविष्य में सभी सम्बन्धित पक्षों को सुबुद्धि प्रदान करे और यह संकट टल जावे।

यूरोपीय इतिहास की प्रमुख तिथियाँ और घटनायें (१९४५ से १९६५)

फरवरी १९४६—हंगरी में गणतन्त्र की स्थापना का निर्णय
१० फरवरी १९४७—इटली के साथ पैरिस में संधि, फिनलैण्ड से संधि
२१ अगस्त १९४७—हंगरी में साम्यवादी शासन की स्थापना
२५ अक्टूबर १९४७—कामिन्फार्म की स्थापना
अक्टूबर १९४७—बलगेरिया में साम्यवादी शासन की स्थापना
३० दिसम्बर १९४७—रूमानिया में गणतन्त्र तथा साम्यवादी शासन की स्थापना की घोषणा
फरवरी १९४८—जैकोस्लाविया में साम्यवादी शासन की स्थापना
१९४८—मार्शल योजना के अन्तर्गत यूरोप का पुनर्निर्माण प्रारंभ
१९४८—संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा
४ अप्रैल १९४९—उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन की स्थापना
मई १९४९—द्विसनात्मक यूरोपीय परिषद् की स्थापना
अगस्त १९५९—यूरोपीय परिषद् का प्रथम अधिवेशन
१९५२—महारानी एलिजावेथ का इंगलैण्ड में राज्याभिषेक
७ मार्च १९५३—स्टालिन की मृत्यु
मई १९५५—वारसा समझौता
१५ मई १९५५—आस्ट्रिया का स्वतंत्र होना
४ अक्टूवर १९५७—रूस द्वारा प्रथम मानव निर्मित उपग्रह का अन्तरिक्ष में छोड़ा जाना
२७ मार्च १९५८—ख्रुश्चेव का रूस का प्रधानमन्त्री वनना
जनवरी १९५९—यूरोपीय साझावाजार की स्थापना
४ जनवरी १९५९—दी गाल का फ्रांस का १७वाँ राष्ट्रपति वनना और फ्रांस के पाँचवें गणतन्त्र की स्थापना
१३ फरवरी १९६०—फ्रांस द्वारा प्रथम अणुवम का सहारा में विस्फोट

१७ मई १९६०—अमरीका हवाई जहाज यू-२ की रूस में घटना
१२ अप्रैल १९३१—रूस ने प्रथम अंतरिक्ष यान वोस्तोक प्रथम को अंतरिक्ष में मानव सहित भेजा
१४ मार्च १९६२—जिनेवा में १७ राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन प्रारंभ
५ अगस्त १९६३—मास्को में रूस, संयुक्त राज्य और ब्रिटेन द्वारा आंशिक अणु-परीक्षण संधि पर हस्ताक्षर
२२ नवम्बर १९६३—राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या
२७ जनवरी १९६४—फ्रांस द्वारा साम्यवादी चीनी शासन को मान्यता
१९६४—ख्रुश्चोव का रूस में अपदस्थ होना, इंगलैण्ड में मजदूर सरकार का निर्माण, राष्ट्रमण्डलीय सचिवालय की स्थापना का निर्णय
जून १९६५—लन्दन में राष्ट्रमण्डल सम्मेलन में २१ राष्ट्रों द्वारा राष्ट्र-मण्डलीय सचिवालय की स्थापना का निर्णय।

अध्याय ५७

संयुक्त राष्ट्रसंघ

पृष्ठभूमि

अनादि काल से मानव संघर्ष करता रहा है। साथ ही वह शान्ति के प्रयत्नों में लगा रहा है। विगत शताब्दी में नैपोलियन के युद्धों के पश्चात् जार अलक्षेन्द्र प्रथम ने **ईसाई शक्तियों के पवित्र मैत्री संगठन** की योजना प्रस्तुत की। इस शताब्दी में प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१९१९) के पश्चात् संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति विल्सन की प्रेरणा और प्रयत्नों से **राष्ट्रसंघ** की स्थापना हुई परन्तु यह संघ अपने उद्देश्यों को पूरा करने में असफल रहा और द्वितीय विश्वयुद्ध की रण-चण्डिका ने विश्व के कई भागों में भयंकर एवं विनाशक दृश्य उपस्थित किये। सारा संसार त्राहि-त्राहि करने लगा। अस्तु, शान्ति की स्थापना का एक और प्रयत्न किया गया। मानव की आशावादिता ने उसकी निराशाओं और असफलताओं पर विजय प्राप्त की जिस समय युद्ध अपनी भंयकरता की पराकाष्ठा पर था उसी समय मानव के **विश्व राज्य** के स्वप्न को साकार करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। इसी विश्व राज्य की कल्पना की परिणति **संयुक्त राष्ट्र संघ** के रूप में हुई।

अटलांटिक अधिकार पत्र

अगस्त १९४१ में प्रधानमन्त्री चर्चिल तथा राष्ट्रपति रूजवेल्ट की भेंट एक जलपोत में न्यूफाउंडलैण्ड के समीप अटलांटिक महासागर में हुई। इस विचार विमर्श के परिणाम स्वरूप १४ अगस्त १९४१ के घोषणा पत्र का आविर्भाव हुआ जिसको **अटलांटिक अधिकार पत्र** कहते हैं। इस अधिकार पत्र में विश्व शांति को स्थापित करने और युद्ध के संकट को सदा के लिये दूर करने के लिये आठ सिद्धान्त स्थिर किये गए थे। ये सिद्धान्त निम्नलिखित थे :—

(१) प्रादेशिक अथवा अन्य प्रकार के बलात् अधिग्रहण का परित्याग, (२) सम्बन्धित जनताओं की सहमति के बिना प्रादेशिक सीमाओं में परिवर्तन न किया जाना, (३) प्रत्येक राष्ट्र को अपने शासन के स्वरूप के निर्णय करने का अधिकार

होगा और उन राष्ट्रों को स्वशासन का अधिकार होगा जिनकी स्वतन्त्रताओं का बलात् अपहरण किया गया है, (४) विश्व के व्यापार तथा कच्चे माल की उपलब्धि के लिए सभी राज्यों को समान सुविधाओं की प्राप्ति, (५) आर्थिक क्षेत्र में सभी राष्ट्रों का सहयोग, (६) नात्सियों के अत्याचार के विनाश के पश्चात् सभी जातियाँ अपनी अपनी सीमाओं के भीतर शान्तिपूर्वक एवं भय और अभाव से मुक्त होकर रहेंगी, (७) सागरों तथा महासागरों पर मानव मात्र को निर्विघ्न यात्रा करने का अधिकार होगा, और (८) सम्पूर्ण राष्ट्रों द्वारा शक्ति के प्रयोग के परित्याग में विश्वास। इस अधिकार पत्र के उपयुक्त सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे स्वतः स्पष्ट हैं। कुछ समय पश्चात् १९४२ में २६ राष्ट्रों ने इन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए वाशिंगटन में एक अन्य अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर किये। जिसको **संयुक्त राष्ट्रों की उद्घोषणा** कहते हैं।

७ जनवरी १९४२ को राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने **चार स्वाधीनताओं** की घोषणा की जो निम्नलिखित है :—

चार स्वाधीनताएँ

(१) विश्व में सर्वत्र सभी व्यक्तियों को भाषण एवं लेखन द्वारा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता, (२) सभी जातियों को अपनी रीति के अनुसार अपने इष्टदेव की पूजा करने की स्वतन्त्रता, (३) विश्व के सभी व्यक्तियों को सुख-सन्तोष और शान्ति का जीवन व्यतीत करने और सभी राष्ट्रों को अपने आर्थिक जीवन के विकास करने की स्वतन्त्रता, और (४) विश्व के सभी राष्ट्रों की सेनाओं, युद्ध सामग्री तथा शास्त्रास्त्रों में कमी करके उनको युद्ध के संकट से मुक्त वातावरण में विचरण करने की स्वतन्त्रता। इसके पश्चात् १९४३ में रूस, चीन, इंगलैण्ड और संयुक्त राज्य के विदेश मन्त्रियों के सम्मेलन ने विश्व संगठन के आधार का सर्वप्रथम स्पष्टीकरण किया। उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र संभाव्य दिनांक को सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की आवश्यकता को स्वीकार किया जोकि सभी शांति प्रिय राज्यों की संप्रभु समानता पर आधारित हो और इस प्रकार के सभी छोटे-बड़े राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को अक्षुण्ण रखने के लिये उसके सदस्य बन सकें।" तदनन्तर डंबरटन ओक्स के सम्मेलन में १९४४ में इन्हीं चार राज्यों के प्रतिनिधियों ने विचारधीन विश्व-संगठन के प्रस्तावों का प्रारूप तैयार किया जिनके आधार पर १९४५ में सेन फ्रांसिस्को में पचास राज्यों के प्रतिनिधियों ने **संयुक्त राष्ट्र अधिकार पत्र** बनाया। इस अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले सभी प्रतिनिधियों की सरकारों ने इसे सत्यांकित कर दिया। फलस्वरूप २४ अक्टूबर १९४५ को **संयुक्त राष्ट्र संघ** स्थापित हो गया। इस **संघ** के प्रमुख उद्देश्य ये हैं :—

संघ के उद्देश्य

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाये रखना, (२) जातियों के आत्मनिर्णय और समानाधिकारों के आधार पर राष्ट्रों में मैत्री पूर्ण सम्बन्धों का विकास करना, (३) विश्वस्तरीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं का समाधान करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्राप्त करना, और (४) मानवीय अधिकारों, सम्मान और स्वतन्त्रता के लिये आदर-भाव को प्रोत्साहित करना। परन्तु इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये **संघ** प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः सदस्य राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

उपर्युक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ की छह प्रमुख संस्थायें बनाई गयीं :

संघ का संगठन

(१) महासभा अथवा साधारण सभा, (२) सुरक्षा परिषद्, (३) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद, (४) प्रन्यास परिषद्, (५) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, तथा (६) सचिवालय।

प्रारम्भ में इस संघ के केवल ५० सदस्य थे परन्तु धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती रही और १९६५ में ११४ राष्ट्र इसके सदस्य हैं। हिन्देशिया ने मलेशिया के प्रश्न पर इसकी सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया।

सदस्यता

कोई भी संप्रभु एवं स्वतन्त्र राज्य इसका सदस्य बन सकता है। सदस्यता के प्रार्थना पत्र को सुरक्षा परिषद संपुष्ट करती है और उसकी संपुष्टि (recommendation) के आधार पर साधारण सभा उसको स्वीकार अथवा अस्वीकार करती है परन्तु पाँच बड़े राष्ट्रों में से कोई भी एक राष्ट्र सदस्यता पर निषेधाधिकार का प्रयोग करके किसी भी राष्ट्र को सदस्य बनने से रोक सकता है। इससे राजनीतिक एवं कूटनीतिक प्रभाव की पर्याप्त गुंजाइश रहती है। सदस्य बनने वाले राष्ट्र को यह विश्वास दिलाना होता है कि वह संघ के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पालन कर सकता है।

साधारण सभा (General Assembly)—प्रत्येक सदस्य राज्य इसका सदस्य होता है और इसके लिए अपने पाँच प्रतिनिधि भेज सकता है परन्तु प्रत्येक सदस्य राज्य को केवल एक मत देने का अधिकार है। वास्तव में यह विश्व के राष्ट्रों की संसद मानी जा सकती है और इसका कार्य विचार-विमर्श करना एवं वाद-विवाद करना है। विश्व की शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों से सम्बन्धित किसी भी विषय पर विचार किया जा सकता है। साधारण प्रश्नों का निर्णय बहुमत से होता है परन्तु महत्त्वपूर्ण विषयों का निर्णय दो तिहाई बहुमत से होता है। शान्ति सम्बन्धी मामलों पर यह सभा केवल अपनी सिफारिश कर सकती है।

निर्वाचन कार्य

यह सभा सुरक्षा परिषद के अस्थाई सदस्यों का और प्रन्यास परिषद, आर्थिक और सामाजिक परिषद् के सभी सदस्यों का निर्वाचन करती है।

विचार-विमर्श और निर्वाचन के अतिरिक्त यह संघ की वित्त-व्यवस्था पर भी नियन्त्रण रखती है और अपने विभिन्न विभागों के प्रतिवेदनों पर विचार करती है।

अधिवेशन

इसका वार्षिक अधिवेशन प्रति वर्ष २ सितम्बर के पश्चात् के पहले मंगलवार से प्रारम्भ होता है परन्तु सदस्यों के बहुमत से किसी भी समय इसका अधिवेशन बुलाया जा सकता है। सुरक्षा परिषद् यदि साधारण सभा को संघ की संसद माना जावे तो सुरक्षा परिषद उसकी कार्यकारिणी समिति है और संघ की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्था है। इसका सर्वोपरि उत्तरदायित्व है विश्व में शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सद्भावना को बनाये रखना। इसमें ग्यारह सदस्य हैं परन्तु गत वर्षों में संघ के सदस्यों की संख्या के बढ़ जाने से तथा एशिया, अफ्रीका के बहुत से देशों को

स्वतन्त्रता मिल जाने से और विश्व की राजनीति में भारी परिवर्तन हो जाने से यह माँग की जा रही है कि इसकी सदस्य संख्या १५ कर दी जावे। सम्भवतः सितम्बर-अक्टूबर १९६५ में संघ की साधारण सभा इस विषय में अन्तिम निर्णय कर देगी। सद्यः इसके पाँच सदस्य स्थायी हैं : (१) संयुक्त राज्य, (२) रूस, (३) राष्ट्रवादी चीन, (४) इंगलैंड, और (४) फ्रांस। शेष ६ सदस्य अस्थायी होते हैं और साधारण सभा द्वारा दो वर्ष की कालावधि के लिये चुने जाते हैं। परिषद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत प्राप्त होता है। परिषद् के निर्णयों के लिए ७ सदस्यों के सकारात्मक मत की आवश्यकता होती है किन्तु पाँच स्थायी सदस्यों में से प्रत्येक को निपेधाधिकार प्राप्त होने से वह किसी भी निर्णय को बाधित कर सकता है। रूस ने इस प्रकार के निपेधाधिकार को कई बार प्रयुक्त किया है। इस संस्था के प्रत्येक सदस्य राज्य का प्रतिनिधि अकारादि क्रम से इसका सभापति बनता रहता है और उसका कार्य-काल एक मास का होता है। इसके अधिवेशन भी प्रायः होते रहते हैं और विशेप अवसरों पर उसके विशेष अधिवेशन भी बुला लिये जाते हैं। परिषद् शान्ति की स्थापना के लिये सैनिक समिति के परामर्श से सशस्त्र सेना के प्रयोग की योजना भी बना सकती है परन्तु इस प्रकार की योजनाओं पर प्रायः मतभेद होना स्वाभाविक है।

आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्—यह साधारण सभा द्वारा चुने जाने वाले १८ सदस्यों की संस्था है। यह सभा के निर्देशानुसार कार्य करती है और उसी के प्रति उत्तरदायी है। इसके उद्देश्य ये हैं : (१) अधिकाधिक स्थिर एवं समृद्ध विश्व की रचना करना, (२) मानवाधिकारों के लिये सार्वभौम सम्मान की भावना उत्पन्न करना, और (३) उच्चतर सांस्कृतिक और शैक्षिक स्तर को प्रोत्साहित करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु इसने कई विशेष आयोगों (कमीशनों) की संस्थापना की है ; जैसे संयुक्त राष्ट्र संघीय सहायता और पुनर्वास प्रशासन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन भोजन और कृषि संगठन संयुक्त राष्ट्र संघीय शैक्षणिक-वैज्ञानिक सांस्कृतिक संगठन इत्यादि।[1] यह संगठन शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान इत्यादि की उन्नति और प्रसार के लिए सराहनीय कार्य कर रही है।

प्रन्यास परिषद्—प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् प्रादेश पद्धति के अनुसार शत्रु के उपनिवेशों को राष्ट्रसंघ के प्रशासन में रख दिया गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् वे तथा अन्य भू-क्षेत्र संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रशासन में रख दिये गये। कोई अन्य देश भी इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ को सौंपा जा सकता है। अर्थात् कोई भी शासक देश किसी भी शासित देश को इस संघ को न्यस्त कर सकता है और यह संघ उसका शासन वहाँ के निवासियों के शोषण के लिये नहीं अपितु उनके हित साधन के लिये करेगा। उसको स्वशासन की ओर अग्रसरित करेगा और उनके आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक अभ्युदय को अपना लक्ष्य बनावेगा।

१९४७ में जो न्यास-समझौते किये गये थे उनके अनुसार न्यस्त देशों की प्रशासन व्यवस्था अग्रांकित अनुसार होती है :—

---

1. संक्षेप में इन के क्रमशः ये नाम हैं—U. N. R. R. A. ; I. L. O.; F. A. O.; U. N. E. S. C. O.।

प्रशासक देश	प्रशासित देश
इंगलैंड	टंगान्यका, कैमरून्स तथा टोगोलैंड
फ्रांस	कैमरून्स तथा टोगोलैण्ड
आस्ट्रेलिया	न्यूगाइना
बेलजियम	रुआण्डा उराण्डी
न्यूजीलैंड	पश्चिमी सामोआ
संयुक्त राज्य	मार्शलद्वीप, मैरियाना, और कैरो-द्वीप
इटली	सोमालीलैंड

इस कार्य के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ की जो समिति है उसको प्रन्यास परिषद् कहते हैं और उसके चौदह सदस्य होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—इस न्यायालय में १५ न्यायाधीश होते हैं जिनमें से कोई भी दो न्यायाधीश एक ही राज्य के नागरिक नहीं हो सकते हैं। संघ के सदस्य राष्ट्र जिस किसी मामले को इस न्यायालय के सुपुर्द करेंगे उसकी सुनवाई इसके द्वारा की जा सकती है। सुरक्षा परिषद् तथा साधारण सभा द्वारा पूछे जाने वाले प्रत्येक विषय पर यह अपनी सम्मति प्रकट करता है। अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और समझौतों की व्याख्या भी इसके द्वारा की जाती है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि संघ के सदस्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय विवाद इसके सम्मुख प्रस्तुत ही करें।

सचिवालय—इस संस्था के सभी कार्यकारी कर्मचारी सचिवालय पर (Secretariat) के सदस्य हैं। सचिवालय का अध्यक्ष संघ का महासचिव (Secretary General) होता है जिसकी नियुक्ति साधारण सभा द्वारा पाँच वर्ष के लिये होती है और उसको ५०००) मासिक वेतन मिलता है। उसको साधारण सभा के समक्ष वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है, और वह सुरक्षा परिषद का ध्यान किसी भी ऐसे विषय की ओर आकर्षित कर सकता है जो उसकी सम्मति में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को संकट उत्पन्न कर सकता हो। सचिवालय के सभी कर्मचारियों को राष्ट्रसंघ के प्रति निष्ठावान होना पड़ता है।

सचिवालय के आठ विभाग हैं। प्रत्येक विभाग एक सचिव के अधीन होता है। इन विभागों के ये नाम हैं :—

(१) सुरक्षा विभाग, (२) आर्थिक विभाग, (३) सामाजिक विभाग, (४) विधि विभाग, (५) अधिवेशन व्यवस्थाकार विभाग, (६) सार्वजनिक सूचना विभाग, (७) न्यस्त प्रदेशों के प्रबन्ध का विभाग, और (८) वेतन तथा बजट विभाग।

उपर्युक्त छः प्रमुख संस्थाओं के अतिरिक्त संघ की अन्य संस्थायें भी हैं जोकि मानव जाति के कल्याण के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं; जैसे—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (२) भोजन तथा कृषि संगठन (३) शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन (४) अन्तर्राष्ट्रीय असैनिक उड्डयन संगठन (५) पुनर्निर्माण तथा विकासार्थ अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (६) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (७) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (८) अंतर्राष्ट्रीय अणुशक्ति प्रशाखा (९) विश्व स्वास्थ्य संगठन (१०) विश्व डाक यूनियन (११) अंतर्राष्ट्रीय तार संवाद यूनियन (१२) विश्व ऋतु विज्ञान संगठन

(१३) अन्तः राजकीय नाविक परामर्श संगठन और (१४) अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य संगठन। इन संस्थाओं का उद्देश्य और कार्य उनके नामों से स्पष्ट है। अतः उनका विस्तृत वर्णन अनावश्यक है : इनमें से कुछ संस्थायें राष्ट्रसंघ के समय से चली आ रही हैं और कुछ की स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के पश्चात् हुई है। संख्या १, १०, ११ की संस्थाओं की स्थापना १९४५ के पूर्व हुई थी। शेष संस्थाओं की स्थापना २४ अक्टूबर १९४५ के पश्चात् हुई है। स्थापना की तिथियाँ इस अध्याय के अन्त में दी हुई प्रमुख तिथि तालिका में देखी जा सकती हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का मूल्यांकन—लीग की असफलताओं और दोषों से विश्व के राजनीतिक परिचित थे। अतः संयुक्त राष्ट्र की स्थापना, संगठन और संचालन से उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। संयुक्त राष्ट्र का अधिकार पत्र लीग के समझौते से कहीं अधिक विस्तृत और स्पष्ट है। इसका क्षेत्र और कार्य अधिक व्यापक है तथा इसका उद्देश्य अधिक व्यावहार्य हैं। इसके सदस्य भी लीग के सदस्यों की अपेक्षा विश्व की जनताओं का व्यापक प्रतिनिधित्व करते हैं तथा शान्ति भंग होने पर संयुक्त राष्ट्र संघ सैनिक कार्यवाही द्वारा भी शान्ति स्थापित कर सकता है। एतदर्थ उसके अधीन सैनिक कर्मचारी कार्य करते हैं जोकि सशस्त्र सेना के प्रयोग की योजनायें बनाकर सुरक्षा समिति की स्वीकृति के हेतु उसके समय प्रस्तुत करते हैं। लीग के पास ऐसा कोई भी साधन नहीं था। साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने सदस्यों को अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिये शक्ति के न प्रयोग करने के लिये अधिक बल देकर उनको वचनबद्ध किया है। परन्तु इन सब कागजी प्रतिबन्धों के होते हुए भी सबल सदस्य सशस्त्र कार्यवाहियाँ करने से नहीं चूकते हैं अथवा इन सैनिक कार्यवाहियों को कोई दूसरा रूप दे देते हैं।

सुरक्षा समिति का गठन तथा कार्यवाही के नियम त्रुटिपूर्ण हैं। महाशक्तियों का निषेधाधिकार भी प्रायः अवांछनीय रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके कारण इस समिति की कार्यवाहियों में प्रायः गतिरोध उत्पन्न हो जाया करता है। रूस ने कई बार इस निषेधाधिकार का प्रयोग किया है सशस्त्र सेना बनाने का उपबंध तो है और आवश्यक होने पर सशस्त्र सेना बनाई भी जा सकती है परन्तु पाँचों बड़े राष्ट्रों की इस सेना की व्यवस्था पर किसी न किसी प्रकार की आपत्ति न हो यह असम्भव है। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्रीय संकीर्णताओं को पूर्ण रूप से दूर करने में असमर्थ रहा है। अस्तु राष्ट्रीय हितों के टकराव के कारण शान्ति के प्रयत्नों को कभी कभी आघात पहुँचता है और संघ शक्ति वर्गों में विभाजित हो गया है। ये दो वर्ग हैं : आंग्ल-अमरीकी वर्ग या गुट और रूसी वर्ग या गुट। एक तीसरा गुट या वर्ग और बन गया है जो अपने को **तटस्थ** कहता है और जो प्रत्येक प्रश्न पर खुले मस्तिष्क से विचार करता है। प्रथम महासचिव ली ने ठीक ही कहा था, "संयुक्त राष्ट्र संघ महान् शक्ति के विवादों को सुलझाने में असफल रहा है परन्तु संघर्ष को शांतिपूर्ण सीमाओं के भीतर रखा गया है और अग्रिम शांतिपूर्ण समझौते के लिये मार्ग प्रशस्त किया गया है।" संघ ने द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् शांति को बनाये रखने के लिये स्तुत्य प्रयत्न किये हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलतायें—संयुक्त राष्ट्र संघ को द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् कई जटिल और भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ा। उसके सामने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हुए। यदि वह इन प्रश्नों की सतर्कता एवं विचार-

शीलता के साथ न सुलझाता तो विश्व-शांति को संकट उत्पन्न हो जाता। यद्यपि कई वार इन समस्याओं के सुलझाने में उसने आदर्शवादी एवं पूर्णतः स्तुत्य प्रयत्न नहीं किया और पाँच बड़े राष्ट्रों, विशेषकर रूस और संयुक्त राज्य के विरोधी दृष्टिकोणों के कारण बड़ी पेचीदा स्थिति उत्पन्न हुई तथापि दोनों ओर सद्भावना ने अपना कार्य किया और समस्यायें येन-केन प्रकारेण सुलझती रहीं।

अब तक निम्नलिखित समस्याओं को उसने सुलझाया है :

ईरान की शिकायत—सन् १९४६ में ईरान ने रूस के विरुद्ध यह शिकायत की कि युद्धकाल में समझौता के अनुसार जो रूसी सेनायें ईरान में रखी गई थीं उनको रूस नहीं हटा रहा है। इस प्रकार रूस ईरान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है। रूस ने इस आरोप का प्रतिवाद किया किन्तु सुरक्षा समिति के कड़े रुख के कारण अंत में रूस ने अपनी सेनायें वहाँ से हटा लीं। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ ने सीरिया तथा लीबानन से फ्रांसीसी तथा ब्रिटिश सेनाओं को हटवा दिया।

यूनान की शिकायत—सन् १९४६ में यूनान ने बलकान प्रायद्वीप के साम्यवादी राज्यों के विरुद्ध यह शिकायत की कि वे यूनानी छापामारों को सहायता देकर वहाँ शक्ति हस्तगत करना चाहते हैं। इस संबंध में संघ ने सामान्य रूप से शांति पूर्ण वातावरण बनाये रखने में सफलता प्राप्त थी।

फिलस्तीन का प्रश्न—संघ के निर्माण के पूर्व १९४५ में ही यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था परन्तु सन् १९४७ में इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना पड़ा। संघ ने एक आयोग नियुक्त किया जिसने अरबों और यहूदियों के मध्य देश के विभाजन का प्रस्ताव किया। ब्रिटिश सेना के हटते ही यहूदियों ने स्वतन्त्र **फिलस्तीन** की घोषणा की और अरबों ने वहाँ पर मुक्ति सेना भेज दी। परन्तु संघ के प्रयत्नों से युद्ध विराम समझौता हो गया और तब से अद्यावधि वहाँ पर संघ दोनों पक्षों के तनाव को कम करने का प्रयत्न करता रहा है।

इण्डोनेशिया का प्रश्न—भारत तथा आस्ट्रेलिया ने १९४७ में इण्डोनेशिया के विषय में एक महत्त्वपूर्ण विषय सुरक्षा परिषद के सम्मुख प्रस्तुत किया। जावा, सुमात्रा आदि डच उपनिवेशों के विद्रोही अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिये कृत संकल्प थे। उन्होंने सशस्त्र विद्रोह कर दिया था और डच सरकार उनको दबा रही थी। भारत तथा आस्ट्रेलिया ने विद्रोहियों का पक्ष लिया। डच इस मामले को आन्तरिक मामला वताते थे परन्तु सुरक्षा समिति ने कड़ा रुख अपनाया और दोनों पक्षों से युद्ध विराम समझौता करा दिया। आस्ट्रेलिया, बेलजियम तथा संयुक्त राज्य के आयोग के प्रयत्नों के फलस्वरूप डचों ने हेग में गोलमेज सभा करना स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप इण्डोनेशिया और हालैण्ड के संघ का अधिनियम पारित हुआ और इण्डोनेशिया इस संघ का स्वतन्त्र एवं सम्प्रभु सदस्य बन गया। (१९४९)।

काश्मीर का प्रश्न—१९४८ में पाकिस्तानी आक्रान्ताओं ने काश्मीर में निर्दयतापूर्ण आक्रमण किया। भारत ने यह प्रश्न सुरक्षा-समिति के सम्मुख रखा। संघ के पर्यवेक्षकों के पर्यवेक्षण के अधीन युद्ध विराम समझौता सम्पन्न हो गया परन्तु यह समस्या पाकिस्तान द्वारा अद्यावधि उत्पन्न की जाती रही है। १९६५ में अगस्त मास में पाकिस्तानियों ने अनाधिकार घुसपैठ की और तनाव बढ़ा। ५ अगस्त को युद्ध प्रारम्भ हुआ और २३ सितम्बर १९६५ को युद्ध विराम हो गया था परन्तु स्थिति विस्फोटक थी।

कोरिया का प्रश्न—१९४५ में संयुक्त राज्य तथा रूस ने क्रमशः दक्षिणी तथा उत्तरी कोरिया पर अधिकार कर लिया था। अड़तीसवीं समानांतर रेखा अर्थात् अक्षांश दोनों की विभाजक सीमा रेखा थी। इसी वर्ष इन के विदेश मंत्रियों के सम्मेलन में यह तय हुआ था कि अन्ततोगत्वा संपूर्ण देश के लिए अस्थायी लोकतांत्रिक कोरिया-शासन स्थापित किया जावेगा परन्तु अमरीकी-रूसी आयोग इस लक्ष्य की पूर्ति न कर सका। फलतः उत्तरी कोरिया में साम्यवादी शासन तथा दक्षिणी कोरिया में लोकतांत्रिक शासन स्थापित हुआ और इस प्रकार कोरिया दो राज्यों में विभक्त हो गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने रूस के विरोध तथा संयुक्त राज्य के अनुरोध पर एतदर्थ एक आयोग नियुक्त किया। रूस के रवैये के कारण यह आयोग उत्तरी कोरिया में प्रवेश न कर सका। तथापि दक्षिणी कोरिया में आयोग ने संविधान सभा के निर्वाचन कराये और उसने देश के लिए लोकतांत्रिक संविधान बनाया। १९४८ में संघ ने राष्ट्रपति के शासन को कोरिया का एक मात्र वैध शासन माना। देश में दो शासनों ने जटिल समस्या उत्पन्न कर दी और उत्तरी तथा दक्षिणी कोरिया में युद्ध प्रारम्भ हो गया। सुरक्षा समिति ने उत्तरी कोरिया की आक्रामक सेना को लौटाने का आदेश दिया और सदस्यों से संघीय सेना को वहाँ भेजने के लिए अनुरोध किया। ब्रिटेन आदि देशों ने वहाँ सेना भेजी। प्रारंभ में साम्यवादी सेना विजयी रही। चीन ने भी उत्तरी कोरिया की सहायता की परन्तु अन्त में लगभग ३८ वें अक्षांश के आसपास स्थिति दृढ़ हो गयी। १९५१ में चीनी साम्यवादी शासन को संघ ने आक्रान्ता घोषित किया। समझौते की बातचीत हुई और प्रारंभिक असफलताओं के पश्चात् १९५३ में युद्ध विराम समझौता हो गया। इसका पर्यवेक्षण भी संघ के पर्यवेक्षक करते रहे हैं।

अन्य सफलतायें—१९५६ में स्वेज नहर की समस्या का संतोषजनक समाधान किया। हंगरी में रूस के द्वारा किये जाने वाले दमन के सम्बन्ध में भी संघ ने कार्यवाही की। १९५४ में लीबानन ने यू०ए०आर० के विरुद्ध शिकायत की। सघ के महासचिव ने रूस और संयुक्त राज्य के बीच यू-२ घटना से उत्पन्न वैमनस्य को दूर कराने का सफल प्रयास किया। संघ के प्रन्यस्त देशों को यथासमय स्वतंत्रता प्राप्त हुई। १९६२ में लाओस में युद्धरत दलों में समझौता कराकर एक निष्पक्ष संयुक्त सरकार स्थापित कराई। १९६२ के प्रारम्भ में इंडोनेशिया और नीदरलैण्ड के बीच इरियान पर संघर्ष छिड़ जाता परन्तु संघ के सचिव की योजना को दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया। १९६३ में यह द्वीप इण्डोनेशिया को दे दिया गया।

पुर्तगाल के विरुद्ध प्रस्ताव—१५ दिसंबर १९६२ को संघ की महासभा ने भारी बहुमत से पुर्तगाल से अनुरोध किया कि वह अपने शासन के अन्तर्गत प्रजातियों को स्वतंत्रता प्रदान करे, सभी प्रकार के दमन को बन्द करे, अपनी सेनाओं को हटा ले। इस प्रकार एशिया तथा अफ्रीका के अधीन देशों के पक्ष का समर्थन किया गया।

कांगो-कटंगा की समस्या—१९६२ में कांगो-कटंगा संघर्ष की समस्या भी संघ के समक्ष प्रस्तुत हुई। यहाँ पर गृहयुद्ध हो रहा था क्योंकि बेलजियम की सरकार ने योग्य लोगों को सत्ता हस्तांतरित नहीं की थी। कांगो का एक प्रदेश कटंगा बाहर रहना चाहता था। कांगो को यह स्वीकार्य नहीं था। संघ ने इस समस्या को हल करने के लिए संघीय सेना वहाँ भेजी जिसने १० जनवरी १९६३ को कटंगा में बिना रक्तपात के प्रवेश किया। स्थिति ठीक होने पर तथा केन्द्रीय शासन के द्वारा सुशासन स्थापित किये जाने पर यह सेना वहाँ से चली आई।

क्यूबा का प्रश्न—अक्टूबर २०, १९६२ को संयुक्त राज्य ने क्यूबा की पूर्ण नाकेबन्दी का आदेश दिया क्योंकि रूस अपने जलपोत तथा प्रक्षेपणास्त्र इस देश को भेज रहा था। रूस ने इस नाकाबन्दी को तोड़ने की घोषणा की। विश्व के राजनीतिज्ञ इस परिस्थिति के कारण अत्यन्त चिंतित हुए क्योंकि भयंकर युद्ध होने की आशंका हो गयी थी। संघ के महासचिव ऊथांत स्वयं क्यूबा गये और संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति से भी मिले। उन्होंने रूस के प्रधान मन्त्री ख़ुश्चोव से भी विश्व शांति की रक्षा की अपील की। दोनों पक्षों में सद्‌भावना जागरित हुई और युद्ध टल गया। समस्या भी सुलझ गयी।

अफ्रीका के कुछ देशों की समस्यायें—अफ्रीका में एक ओर देश प्रेम और स्वतंत्रता की लहर दौड़ी। दूसरी ओर कतिपय देशों के श्वेत शासक वहाँ के निवासियों एवं एशियायी प्रवासियों के साथ बुरा व्यवहार करते हैं। दक्षिण अफ्रीका की रंग भेद नीति के विरुद्ध संघ ने साहस पूर्ण पग उठाया। संघ ने अपने प्रस्ताव द्वारा रंग भेद नीति की अवांछनीयता घोषित की। दक्षिणी अफ्रीका को संघ से निकालने का संकल्प किया और सभी सदस्य देशों से अनुरोध किया कि वे इस देश को शस्त्रास्त्र न बेचें।

इसी प्रकार दक्षिणी रोडेशिया के श्वेत शासकों की दमनकारी नीति और शासन के विरुद्ध भी राष्ट्र संघ ने कड़ा प्रस्ताव पारित किया।

आणविक अस्त्रों के निर्माण को रोकना—राष्ट्र संघ इस बात का प्रयत्न करता रहा है कि आणविक अस्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाया जावे। इसी के प्रयत्नों के फलस्वरूप रूस, संयुक्त राज्य और ब्रिटेन ने ५ अगस्त १९६३ को आंशिक अणु परीक्षण सन्धि (Partial Test Ban Treaty) पर हस्ताक्षर किये। संघ के प्रायः सभी सदस्यों (फ्रांस के अतिरिक्त) ने इस संधि को स्वीकार कर लिया है। साम्यवादी चीन ने भी इसको स्वीकार नहीं किया।

निश्शस्त्रीकरण संघ ने इस बात का भी प्रयत्न किया है कि विश्व के राष्ट्र शस्त्रीकरण की प्रतियोगिता में भाग न लें। फलस्वरूप १९६२-६४ के निश्शस्त्रीकरण सम्मेलन ने इस दिशा में सराहनीय एवं उत्साहवर्द्धक कार्य किया।

साइप्रस की समस्या—मार्च ४, १९६४ को सुरक्षा समिति के सम्मुख साइप्रस का प्रश्न उपस्थित हुआ। समिति ने सर्व सम्मति से महासचिव को यह अधिकार दिया कि वह साइप्रस में शांति सेना भेजे और एक मध्यस्थ की नियुक्ति करे। इस समस्या को सुलझाने का दायित्व समिति ने स्वयं ग्रहण कर लिया। इस शाँति सेना तथा मध्यस्थ ने साइप्रस में सराहनीय कार्य किया है।

इन सामरिक तथा राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने के अतिरिक्त संघ ने मानव के कल्याण के लिये निरक्षरता, दीनता, रोग आदि को रोकने अथवा दूर करने के लिये कई महत्त्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना की है, जैसे, विश्व स्वास्थ्य संगठन संयुक्त राष्ट्र संघीय शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संबंधी संगठन इत्यादि। ये संस्थायें अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रशंसनीय कार्य करती रही हैं।

असफलताएँ—कुछ ऐसी भी समस्यायें हैं जिनको संयुक्त राष्ट्रसंघ नहीं सुलझा सका है। इनमें प्रमुख समस्यायें ये हैं—

(१) साधारण निश्शस्त्रीकरण के सम्बन्ध में कोई भी सर्वसम्मत समझौता नहीं हो सका है।

(२) कोरिया का एकीकरण नहीं हो सका।

(३) जर्मनी का एकीकरण नहीं हुआ और न बर्लिन की समस्या ही सुलझ सकी है।

(४) साम्यवादी चीन संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बनाया जा सका है और न फारमोसा का प्रश्न ही हल हुआ है। किसी भी समय इस सम्बन्ध में अशांति उत्पन्न हो सकती है।

(५) लाओस की समस्या पूर्णतः नहीं सुलझी है।

(६) वियतनाम में उत्तरी तथा दक्षिणी वियतनाम में युद्ध चल रहा है। चीन तथा साम्यवादी शक्तियाँ उत्तरी वियतनाम का पक्ष ले रही हैं। संयुक्त राज्य दक्षिणी वियतनाम की सहायता कर रहा है। भीषण संकट चल रहा है। राष्ट्रपति जॉनसन संयुक्त राष्ट्रसंघ से इस समस्या को सुलझाने का अनुरोध कर रहे हैं परन्तु क्या होगा? यह भविष्य की बात है। अगस्त १९६५ तक समस्या का हल नहीं निकल सका है और विश्व शान्ति कभी भी भंग हो सकती है।

(७) काश्मीर से आक्रान्त पाकिस्तानी सेनाएँ अभी तक नहीं हटी हैं और भारत-पाकिस्तान के बीच संघर्ष की सम्भावनायें हैं।

(८) तिब्बत की स्वतन्त्रता को चीन ने समाप्त कर दिया और संयुक्त राष्ट्र संघ कुछ भी नहीं कर सका।

(९) दक्षिणी अफ्रीका और पुर्तगाल ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों को कार्यान्वित नहीं किया है और वे अपनी नीतियों का परित्याग नहीं कर रहे हैं।

(१०) इन पंक्तियों के प्रकाशित होने के समय (१९६५) में भी विश्व दो शक्ति गुटों में बँटा हुआ है। साम्यवादी गुट जिसका नेता रूस है और आंग्ल-अमेरिका गुट जिसका नेता संयुक्त राज्य है। कुछ राज्य तटस्थ हैं; जैसे, भारत, यू० ए० आर०, यूगोस्लाविया इत्यादि। फ्रांस ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की इच्छा के विरुद्ध अणुबम बना लिया है। चीन ने अणु बम के विस्फोट कर दिये हैं और मलेशिया के प्रश्न पर १९६४-६५ में इण्डोनेशिया ने संघ की सदस्यता को त्याग दिया है। अभी-अभी अगस्त १९६५ में राष्ट्रपति सुकर्ण ने अणुबम बनाने की घोषणा की है।

भारत की उत्तरी सीमाओं पर चीन ने आक्रमण किया और विश्व शांति को संकट उत्पन्न कर दिया (अक्टूबर २०, १९६२)। यद्यपि अधिकांश भाग से आक्रांता की सेनायें विश्व जनमत के भय के कारण वापस लौट गयी हैं तथापि लद्दाख के कुछ भागों पर उसने अब तक अवैध अधिकार कर रखा है। भारत का जनमत अणुबम बनाने के पक्ष में होता जाता है परन्तु गांधी और नेहरू के आदर्शों पर चलने वाली भारत सरकार ने अणुबम न बनाने का निश्चय किया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ इस संबंध में कोई भी सक्रिय पग नहीं उठा रहा है। विश्व के छोटे-छोटे राज्यों तथा आदर्शवादी राज्यों को संकट की आशंका हो चली है। देखें भविष्य में संयुक्त राष्ट्रसंघ क्या कार्यवाही करता है?

संयुद्ध राष्ट्रसंघ की अद्यावधि कार्यवाहियां सफलताओं और असफलताओं का उपयुक्त संक्षिप्त विवरण मानव को आशापूर्ण भविष्य का संकेत करता है अथवा नहीं? इस विषय में निराशावादियों और आशावादियों में मतभेद हो सकता है। भविष्य में संघ की क्या दशा होगी? इस प्रश्न का उत्तर भविष्य ही देगा। परन्तु आज तक की विश्व की स्थिति का अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि १९४५ से १९६५ के दो दशकों में विश्व की समस्याओं को सुलझाने के लिए संघ ने स्तुत्य प्रयत्न किये हैं और इन प्रयत्नों में नितान्त दोषहीनता नहीं थी तथापि उनकी

परिणति अधिकांशतः सफलताओं में हुई है। जो समस्यायें अभी नहीं सुलझ सकी हैं वे भी कभी न कभी इस विश्व संगठन के द्वारा सुलझा दी जावेंगी। यह आशा सर्वथा उचित प्रतीत होती है। अशांति में शान्ति की एक मात्र किरण इसी प्रकाशपुंज से निःसृत हो रही है।

संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बन्धित प्रमुख तिथियां और घटनायें

१४ अगस्त १९४१—अटलांटिक अधिकार पत्र का आविर्भाव

१९४२—२६ संयुक्त राष्ट्रों की उद्घोषणा

७ जनवरी १९४२—राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा चार स्वाधीनताओं की घोषणा

१९४३—रूस, चीन, इंगलैंड और संयुक्त राज्य के विदेश मंत्रियों का सम्मेलन, विश्व संगठन की रूपरेखा स्वीकृत

१९४४—डम्बरटन ओक्स सम्मेलन

२६ जून १९४५—विश्वसुरक्षा अधिकार पत्र पर सैन फ्रांसिस्को में हस्ताक्षर

२४ अक्टूबर १९४५—संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना

२६ अक्टूबर १९४५—खाद्य तथा कृषि संगठन की स्थापना

२७ सितम्बर १९४५—पुर्ननिर्मित तथा विकासार्थ अन्तर्राष्ट्रीय बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की स्थापना

४ नवम्बर १९४६—शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन की स्थापना

१९४६—ईरान की रूस के विरुद्ध शिकायत का समाधान

४ अप्रैल १९४७—अन्तर्राष्ट्रीय असैनिक उड्डयन संगठन की स्थापना

१९४७—फिलस्तीन का प्रश्न

७ अप्रैल १९४८—विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्थापना

१९४८—काश्मीर और कोरिया की समस्यायें,
मानवीय अधिकारों की सार्वभौम घोषणा का प्रस्ताव स्वीकृत

१३ मार्च १९५०—विश्व ऋतु विज्ञान संगठन की स्थापना

१९५३—कोरिया का युद्ध विराम समझौता

२० जुलाई १९५६—अन्तर्राष्ट्रीय विश्वनिगम की स्थापना, स्वेज नहर की समस्या

१९ जुलाई १९५७—अन्तर्राष्ट्रीय अणु शक्ति प्रशाखा की स्थापना

१९५८—लीबानन की यू० ए० आर० के विरुद्ध शिकायत

१४ मार्च १९६२—१७ राष्ट्रों का निश्शस्त्रीकरण प्रारम्भ

१५ अगस्त १९६२—पुर्तगाल सम्बन्धी प्रस्ताव पारित

१९६२—कांगो की समस्या (प्रारम्भ)

जनवरी १९६२—क्यूबा की समस्या

५ अगस्त १९६३—आंशिक अणु परीक्षा संधि पर हस्ताक्षर

१९६४—निश्शस्त्रीकरण सम्मेलन की समाप्ति

४ मार्च १९६४—साइप्रस की समस्या

१९६५—वियतनाम की समस्या ?